श्रीगणेशाय नमः ॥

❀ पारसभाग ❀

जिसमें

वेदान्त मतानुसार काम क्रोध मद लोभ मोहाहङ्कार का नाशन उपाय और दान व्रत करने के लाभ और प्रीति दया सत्यासत्य चोरी ईर्षादि वहुत से देह संबंधीय कर्मोंका निर्णय दृष्टान्तयुक्त वर्णित है ॥

जिसको

श्रीमद्विद्वद्वृन्दशिरोमणि महात्मा युगलानन्यशरणजी वैकुंठ वासी अयोध्यानिवासी ने बड़े प्रयत्न से निज पुस्तकालय में संचित किया था ॥

श्रीमन्महामहोपाध्याय श्रीमहात्माजानकीवरशरणजीके द्वारा जो कि उन्हीं महात्माजी के स्थानापन्नहैं बड़े परिश्रम से प्राप्तहुई सम्पूर्ण निस्स्पृह ईश्वरानुरागी साधु महात्माओंके उपकारार्थ जिसके अवलोकनसे सम्पूर्ण बुराइयां मनुष्य के हृदय से निकलजाती हैं ॥

[illegible]

लखनऊ

मुंशी नवलकिशोर (सी, आइ, ई) के छापेखाने में छापागया

मूल्य सा १॥०

इश्तहार ॥

श्रीमद्भागवत भाषा टीका संयुक्त ॥

इस ग्रन्थ के उत्तम होने में कदापि सन्देह नहीं है—इसका भाषा तिलक ब्रजबोलीमें बहुतही प्याराहै आशय प्रत्येक श्लोकोंकाहै क्यों न हो इसके तिलककार महात्मा ब्रजवासी अम्बूदशास्त्री भी हैं—यह तिलक ऐसा सरलहै कि इसके द्वारा अल्प संस्कृतज्ञ पुरुषोंका पूरा कार्य निकलसक्ता है—संस्कृत पाठकभी इससे श्लोकोंका पूराआशय समझसक्तेहैं इसबार यह ग्रन्थ टैपके अक्षरों में उम्दा कागज़ सफ़ेद चिकना में छापागया है और विशेष विद्वान् शास्त्रियों के द्वारा शुद्ध कराया गया है जिससे बम्बई की छपीहुई पुस्तकसे किसी बातमें न्यून नहींहै उम्दा तसावीरभी प्रत्येक स्कन्ध में युक्तहैं—आशाहै कि इस अमूल्य रत्नके लेनेमें महाशयलोग विलम्ब न करेंगे मूल्यभी इसका स्वल्प रक्खागया है—

श्रीगीतगोविन्दकाव्यम् ॥

वनमालीभट्टकृत सञ्जीविनीटीकोपेतम् ॥

यह गीतगोविन्द काव्य पण्डित जयदेवकृत वही है जोकि अतीव उत्तम होने के कारण इस संसार में प्रसिद्धहै प्रायः पण्डितलोग इसको अच्छीभांति जानतेहैं संस्कृत पढ़नेवाले विद्यार्थियों को तो यह काव्य बहुतही लाभकारी है क्योंकि इसका तिलक वनमालीभट्टजीकृत जिसका कि सञ्जीविनी नामहै अर्थात् इस तिलकका जैसा नामहै वैसाही गुण है जो विद्यार्थी थोड़ीभी व्याकरण जानते हैं इस तिलक के द्वारा पूर्ण अर्थ मूलका लगा सक्तेहैं पण्डितलोगोंकी रुचि संस्कृत पुस्तकों में अक्सर बम्बई की छपी हुई में अधिक होती है क्योंकि उम्दा कागज़ और शुद्ध छपाई यह सब उन पुस्तकों में मिलती है यद्यपि वहां से यहांतक माल आने में खर्च महसूल आदि होने के कारण वहांकी पुस्तकों का मूल्य विशेष है तथापि दूसरे यंत्रालय में वैसा न छपने के कारण लाचार होके उन लोगोंको लेना पड़ता है इस यन्त्रालयमें यह पुस्तक जो अब छपीहुई तैयारहै बम्बई से कोई बात न्यून नहीं हुआ अर्थात् बहुत उम्दा कागज़ सफेदपर बहुत उम्दा छपाई भीगई है शुद्ध होनेमें तो हम कहसक्ते हैं कि बम्बई की छपीहुई पुस्तक में चाहे पांच अशुद्धियां भी हावें परन्तु यह पुस्तक ऐसे परिश्रम से शोधी गई है कि पण्डितलोगोंको परिश्रम करके ढूंढने पर भी गलती नहीं मिलेगी और मूल्य इस पुस्तकका बम्बई से बहुत न्यून रक्खा गयाहै हम पूर्ण रीति से उम्मेद करते हैं कि हमारे देशके रहनेवाले पण्डित लोग इस पुस्तक को देखके बम्बई की पुस्तक लेना छोड़ देवेंगे और इसे प्रसन्नतापूर्वक अङ्गीकार करेंगे जो लोग संस्कृत कुछ भी नहीं जानते केवल भाषाहीमात्र जानतेहैं उनके लिये भी यह काव्य भाषाटीकामें बहुतही थोड़ी क़ीमतसे मिल सक्ती है क्योंकि यह काव्य गानविद्या जाननेवालों तथा रसिकपुरुषों और श्रीभगवद्भक्तों व संस्कृत विद्याके सीखनेवाले विद्यार्थियों आदि इन सबको प्रियहै इसहेतु दो प्रकारसे इस यन्त्रालयमें यह पुस्तक छापीगई है एक तो भाषाटीका युक्त दूसरे संस्कृतटीका सम्मिलित ॥



अथ पारसभाग प्रारम्भः ॥

पहिलाप्रकरण ॥

दोहा ॥ भक्तिभक्त भगवन्त गुरु चतुर नाम वपु एक ॥
तिनके पद वन्दन किये नाशत विघ्न अनेक १

प्रथम मंगलाचरण स्तुति और शुक्र एक उसी महाराज के लिये आकाश के तारे और मेघकी बूंदें और वनस्पतियों की पत्ती और पृथ्वीके रेणु के समान है कि जिसका ऐश्वर्य्य और उसकी पूर्णताई और सामर्थ्यताई को कोई जीव पहिचान नहीं सक्ता पुन उसके सम्पूर्ण पहिचानने के मार्ग को कोई नहीं पाइ सक्ताहै और उस महाराज की सृष्टि के विषे किसी और जीवकी सामर्थ्य और बल नहीं चलसक्ता ताते जे महापुरुष सचे हैं सो उनकी भी अन्त अवस्था यही है कि वेभी उसके सम्पूर्ण पहिचानने के विषे अपनी असामर्थ्य वर्णन करते हैं पुन देवता और बड़े ईश्वर भी महाराज की स्तुति और बड़ाई विषे अपनी लघुता मानते हैं और महाबुद्धिमानों की बुद्धि भी उसके आदि प्रकाश और सामर्थ्य विषे विस्मरताको प्राप्त होती है पुनः जिज्ञासू और प्रीतिमान् भी उसके दरबारकी निकटता के ढूंढने के विषे विस्मय होइरहे हैं और उसके स्वरूप का पावना संकल्प विषे प्राप्त नहींहोता बहुरि उसका समझावना और आकार स्थूल दृष्टांतों से विलक्षणहै इसीकारण से बुद्धिरूपी नेत्रों की दृष्टि उसके स्वरूप के देखने विषे मन्द होइजाती है ताते सर्व बुद्धियोंका फल यही है कि उसकी आश्चर्य कारीगरियों को देखकर महाराजको पहिचाने और किसी मनुष्यका ऐसा अधिकार नहीं जो उसके स्वरूपकी बड़ाई का विचारकरे कि वह कैसा है और

क्याहै और यहभी किसीको उचित नहीं कि जो एक क्षणमात्रभी उसकी आश्चर्य कारीगरी से अचेतहोवै और इसप्रकार न जानै कि इसकारीगरी का कर्त्ता और आश्रय कोई नहीं ताते चाहिये कि कारीगरी को देखकर इसप्रकार मानै कि यह सर्व जगत् भी उस महाराज के ऐश्वर्य्य का प्रतिबिम्ब है और उसही के तेजका प्रकाशहै बहुरि सर्व आश्चर्य्यमय जो रचना है सो उसही का अनुभव है और सब कुछ उसके स्वरूप का आभासहै ताते सर्व पदार्थ उसही से उत्पन्नहुये हैं और उसही विषे स्थितहैं तात्पर्य्य यह कि सब वही है काहेते कि कोई पदार्थ भगवन्तकी शक्ति बिना आपकरके स्थित नहीं है ताते सब किसी का आश्रय वही है बहुरि उसके प्रियतम जे सन्तजन हैं सो वेभी जिज्ञासुओं को शुभमार्ग दिखावनेवाले हैं और भगवन्त के गुह्य भेद लखावनेवाले हैं और परमदयालुरूपहैं ताते उनको भी मेरा नमस्कारहै आगे ऐसेजान तू कि इस मनुष्यको भगवन्तने व्यर्थ बोलने और हँसने के निमित्त नहीं उत्पन्न किया ताते इस मनुष्यका पदभी महाउत्तमहै और भयभी अधिक है और यद्यपि यह जीव अनादि नहीं अर्थात् उत्पन्नकिया हुआहै पर तो भी अविनाशी रूपहै और यद्यपि इसजीवका स्वरूप स्थूलतत्त्वों करके रचाहुआ है पर इसका हृदय जो चैतन्यरूप है सो महाउत्तम और अमरहै बहुरि यद्यपि इस जीवका स्वभाव आदि उत्पत्ति विषे पशुओं और सिंहों और भूतों के स्वभावके साथ मिलाहुआ है पर जब इसको यत्नकी कुठाली विषे डालिये तब नीचस्वभावों के मेलते शुद्धस्वरूप होइजाता है और भगवन्त के दर्शन और दरबार का अधिकारी होता है तातेप्रसिद्धहुआ कि अधोगति महारसातलहै और ऊर्द्धगति जे देवताहैं सोभी इसी मनुष्यकी गति है और अधोगति विषे जाना यह है कि पशु और सिंहोंके स्वभावविषे गिरना अर्थात् भोगों और क्रोधके वशीकार होना बहुरि ऊर्द्धगतिजाना यहकि देवतोंके स्वभाव विषे स्थितहोना और भोग और क्रोधको अपने वशीकार करना और अपने अधीन रखना सो जब इनको अपने वशीकरताहै तब भगवन्तकी भक्तिका अधिकारी होताहै सो देवतोंका स्वभाव यहीहै और मनुष्यकी उत्तमअवस्थाभी यहीहै और जब इसमनुष्य को भगवन्तके दर्शन का आनन्द भासहोता है तब एक क्षणभी उसके स्वरूपते इतर उधर नहींसक्ता और उसी दर्शनका आनन्द उसको स्वर्गरूप भासताहै और यह स्थूलस्वर्ग जो भोगों और आहारका स्थानहै सो तिस

को तुच्छरूप जानता है और यह जो मनुष्य देहरूपी रत्न है सो आदि उत्पत्ति विषे नीच और मलीन होता है ताते पुरुषार्थ और साधन विना किसी प्रकार पूर्णपदको नहीं पहुंचता जैसे तांबे और और धातुको पारस बिना स्वर्ण करना कठिन होताहै और यह विद्या सब कोई नहीं पहिचानसक्ता तैसेही मनुष्यरूपी जो धातु है सो तिसको पशुओं के स्वभावरूपी मैलते शुद्ध करना और पूर्ण भागों विषे प्राप्तहोना सो यहभी विद्या महागुप्तहै और कोई नहींजानसक्ता ताते यह जो ग्रन्थ है सो भागों का पारस है और इस विषे जे सुन्दर वचन हैं तेई पारसरूप हैं ताते इसग्रन्थका नाम पारसभाग राखाहै काहेते कि पारस उत्तमताईका नामहै पर वह पारस जो तांबे को स्वर्ण करताहै सो स्थूल और नीचहै इसकरिके कि तांबे और स्वर्ण विषे रङ्गहीका भेद है और उस स्वर्ण करके माया के भोग प्राप्तहोते हैं सो मायाए आपही नाशवान्है ताते मायाके भोगभी अल्प काल विषे परिणामी होजाते हैं बहुरि यह जो पारसरूपी वचन है सो महा विशेषहै काहेते कि इनवचनों करिके महारसातलते ऊर्द्धगति को प्राप्तहोताहै सो इस अधोगति और ऊर्द्धगति विषे बडा भेदहै और जब यह मनुष्य निर्मल स्वभावरूपी ऊर्द्धगतिको पहुंचताहै तब अविनाशी भागोंको पहुंचता है सो वह कैसा सुखहै कि उसका काल और अन्त नहीं बहुरि दुःखरूपी मैलभी उसपरम सुख विषे कदाचित् स्पर्श नहींकरता ताते इसग्रन्थ का नाम पारसभाग कहा है जो पारसकी शोभाभी दृष्टिमात्रही कहीहै ताते जान तू कि तांबा और अपर धातु तबहीं स्वर्ण होती है जब प्रथम पारसकी प्राप्तिहोवे सो यह स्थूल पारसभी सबठौर और सब किसीके गृहमें नहीं पायाजाता किसी सिद्ध अवस्थावाले के पास अथवा किसी महाराजा के भण्डार विषे होता है तैसेही वह सूक्ष्म पारस भी भगवन्तही के भण्डार विषे है सो भगवन्त का भण्डार सन्तजनों का हृदय है ताते जो कोई इसपारस को सन्तजनों के हृदय विना अपर ठौर ढूंढताहै सो व्यर्थही भटकता फिरताहै और उसको प्राप्त कुछ नहीं होता इसीकारण ते वह पुरुष अन्तकालमें निर्द्धनताई को प्राप्तहोता है और झूठे मदकरिके जो अभिमानी हुआथा सो पीछे निर्लज्जता को प्राप्त होता है ताते भगवन्त ने अपनी दया करिके यह भी बडा उपकार कियाहै कि जो सन्तजनोंको इस जगत् विषे कल्याण के निमित्त भेजा है कि वे सन्तजन वचनरूपी पारस को प्रसिद्ध कर

और जीवोंको उपदेश करें कि हृदयरूपी धातुको साधनरूपी कुठाली में क्योंकर राखिये और मलीन स्वभावोंको क्योंकर दूरकरिये और उत्तम स्वभावोंको क्योंकर प्राप्तहूजिये तब सतजनों के उपदेश करिके ये मनुष्य नीच स्वभावों से मुक्त होते हैं और निर्मल स्वभावों को पावते हैं सो इस वचनरूपी पारसका तात्पर्य्य यह है कि प्रथम मायाके पदार्थों से विरक्त-चित्तहोवें और भगवन्त की शरण आवें जैसे महापुरुषने भी कहाहै कि सर्व पदार्थों को त्यागकरि आपको भगवन्तकी शरण विषे लावो सो सर्व विद्याका तात्पर्य्य यही है और यद्यपि इसका बखान भी बहुत विस्तार करिके समझाजाताहै पर तो भी इसका पहिंचानना चारप्रकार का होताहै सो प्रथम यह है कि अपने आपको पहिंचाने बहुरि भगवन्तको पहिंचाने और तीसरा प्रकार यह है कि मायाको पहिंचाने बहुरि परलोकको पहिंचाने ॥ इति मङ्गलाचरणसम्पूर्णम् ॥

पहिला अध्याय ॥

पहिला सर्ग ॥

ताते जान तू कि अपने आपका पहिंचानना यही भगवन्त के पहिंचानने की कुन्जी है सो इसीपर महापुरुषने भी कहा है कि जिसने अपने को पहिंचाना है तिसने निस्सन्देह अपने महाराज को पहिंचानाहै बहुरि महाराजने भी कहा है कि तैंने अपने लक्षण जीवों के मनमें प्रकट किये हैं इस करिके कि आपको पहिंचानकर मुझकोभी पहिंचाने ताते हे भाई! तेरेसमान तुझको और पहिंचानने को कोई निकट नहीं सो प्रथम जब तू आपको भी न पहिंचाने तब अपर किसी को क्योंकर पहिंचानेगा और जब तू इस प्रकार कहै कि मैं तो आपको पहिंचानताहूं सो यह कहना तेरा झूठहै काहे से कि जैसा तू आपको पहिंचानता है तैसा पहिंचानना भगवन्तके पहिंचानने की कुन्जी नहीं इस करिके कि जिस प्रकार आपको शरीर हाथ पाव और त्वचा मास स्थूल जो तू पहिंचानता है अथवा अपने अन्तरविषे जब तू भूखा होताहै तब आहार को चाहता है और जब क्रोधवान होताहै तब लड़ाई करताहै और जब कामादिक भोगों को चाहता है

तब उसी सद्रूपविषे लीन होजाताहै सो इस प्रकार के पहिचाननेमें सब पशू भी तेरे समान हैं ताते तुझको इस प्रकार यथार्थरूपका पहिचानना चाहिये कि मैं क्या वस्तुहूं और कहांते आयाहूं बहुरि किस स्थानविषे जाऊंगा और इस संसारविषे किस कार्य्य निमित्त आयाहूं और किस कार्य्य के निमित्त मुझको भगवन्तने उत्पन्न कियाहै और मेरीभलाई क्याहै और किसविषे है और भाग्यहीनता क्या है बहुरि तेरेविषे जो पशुओं और देवतों के स्वभाव इकट्ठे उत्पन्न किये हैं सो इनमें तेरा प्रबल स्वभाव कौनहै बहुरि इसप्रकार भी पहिचाने कि तेरा अपना स्वभाव क्या है और परस्वभाव कौनहै सो यह तैंने जब भलीप्रकार करिके पहिचाना तब श्रद्धाभी करसकेगा काहेते कि सब किसी की भलाई और पूर्णता और आहार भिन्न-भिन्न हैं जैसे पशुओं की भलाई और पूर्णता सोवने और खाने और युद्धकरनेमे इतर कुछ नहीं ताते जब तू आपको पशू जानता है तब दिन रात यही पुरुषार्थकर कि पेट और इन्द्रियोंकी पालनाहोवे बहुरि सिंहोंकी पूर्णता यह है कि फाड़ना और क्रोधवान् होना और भूत प्रेतोंका प्रभावयह कि छल और प्रपञ्चरचना सो जब तू सिंह अथवा भूतहै तब इसीस्वभाव विषे स्थित होउ तब अपनी पूर्णताको प्राप्तहोवेगा और देवताओं की भली पूर्णताई और आहार भगवन्तका दर्शनहै भोगवासना और क्रोध तो पशु और सिंहोंका स्वभाव है सो तिनको स्पर्श नहीं करसक्ता सो आदि उत्पत्तिविषे जब तेरा देवभाव है तब यही पुरुषार्थकर कि भगवन्त के दरबारको पहिचाने बहुरि भोगवासना और क्रोधसे आपको मुक्तकरे और इसभेदको भी समझे कि भगवन्तने तेरेविषे पशुओं और सिंहोंका स्वभाव इस निमित्त उत्पन्न कियाहै तब तू उनके स्वभावों को अङ्गीकारकरे और जिस मार्गविषे तुझको जानाहै सो तिस मार्गविषे स्वभावों को अपने अधीनकर लेजावे और तू इनके अधीन न होवे इसीकारण तुझको चाहिये कि एक स्वभाव को घोड़ा करै और दूसरे स्वभावको शस्त्रकरै और जगत्विषे जितनेकाल तुझे जीवनाहै इस आयुष्को अपने कार्य्यके सिद्ध करने में वितावै तो उस घोड़े और शस्त्रकरिके अपनी भलाईका शिकारकरै और जब वह भलाई तुझको प्राप्तहुई और उन स्वभावों को तैंने वशीकारकिया और भगवन्त के पहिचानने की ओर तेरामुख हुआ तब तू मुक्त होवेगा सो भगवन्तका पहिचानना कैसा है कि सन्तजनों के स्थितहोनेका स्थान है और सूक्ष्मरूप है

जैसे इतरजीव स्वर्ग को सुखरूप मानते हैं तैसे सन्तजनों को सुख महाराजजी की शरण विषे होता है सो जब इसप्रकार तैंने स्वर्गको तब कुछ एक अपने आपका पहिचानना होवेगा और जो कोई इस भेद को नहीं पहिचानता उसको धर्ममार्ग विषे चलना कठिन होता है और आतमसुख विषे उसको आवरण होता है॥

दूसरा सर्ग॥

॥बहुरि जब तू आपको पहिचानना चाहता है तब इस प्रकार निश्चय जान कि तुझको दो पदार्थ करिके उत्पन्न कियाहै सो एकतो शरीर जो स्थूलनेत्रों करिके देखाजाताहै और दूसरा चैतन्यहै वह सूक्ष्मरूप है और उसको जीव कहते हैं और मन कहते हैं और चित्तभी उसीका नामहै सो तिसको बुद्धिरूपी नेत्रकरि देख सक्ता है और स्थूल नेत्रोंकी दृष्टि ते परेहै ताते तेरा जो निजस्वरूप है सो वही चैतन्य तत्त्वहै और जेते गुणहैं सो चैतन्य के अधीनहैं और उसी के टहलुये हैं अर्थात् सेनाकी नाईं हैं और मैंने उसी चैतन्य का नाम हृदय राखाहै सो यह जानो निस्सन्देहहै कि आत्मा और हृदय और मन उसी चैतन्यके नामहैं ताते मैं जो हृदयका वर्णन करताहूं सो मेरा प्रयोजन शरीर के हृदय स्थानका नहीं काहेते जो इसा स्थूल हृदयस्थान का स्वरूप मांस और रक्ताकरि रचाहुआ है और पंचभूतों का रचाहै ताते जड़रूपहै और मनुष्य का जो चैतन्यरूप हृदयहै सो स्थूल सृष्टि ते विलक्षण है और इस शरीरमें परदेशी की नाईं अपने कार्य निमित्त आया है बहुरि यह जोस्थूल हृदय का स्थान है सो जीव का घोड़ा अर्थात् सवारीहै और सब इन्द्रियगोलक उसकी सेनाहैं और शरीर का राजा जीवहै ताते भगवन्तकी पहिचानना और उसका देखना भी जीवको अधिकार है इसीकारण ते दण्ड और उपदेश और पुण्य पापका अधिकारी वही जीवहै ताते भाग्यहीन और भाग्यवान् उसी जीवको कहाजाताहै और सर्वकाल विषे शरीर उसके अधीनहै इसी कारणते उस चैतन्यके स्वरूप का पहिचानना और उसके स्वभावोंका समझना भगवन्त के पहिचानने की कुञ्जीहै ताते तू यही पुरुषार्थ कर कि चैतन्यरूप को पहिचाने काहे ते कि यह चैतन्यरूपी रत्न दुर्लभ है और देवताओं की नाईं निर्मल स्वरूपहै और इस रत्न की खानि परब्रह्म है इस करिके कि यह जीव उसी ओरते आयाहै बहुरि उसी ओर जावेगा और इस संसार विषे परदेशी है सो

अपने कार्य के निमित्त यहां आयाहै तातें तुझको वह कार्य्य भी अवश्यमेव पहिचाननां चाहिये पर भगवन्तकी दया करिके जानाजाताहै ॥

तीसरा सर्ग ॥

आत्मसत्ता के अभ्यासका वर्णन ॥

अब आत्मसत्ता के अभ्यासका वर्णन करताहूं तातें जान तू कि जबलग चैतन्यरूपको नहीं पहिचानिये तबलग हृदयके यथार्थ स्वरूपको पहिचान नहीं सक्ता सो इसीकारण से भगवन्त का पहिचानना भी नहीं हो सक्ता और उत्तम भोगोंको भी नहीं पावता और जब एकभाव करिके देखिये तो चैतन्यरूप अति प्रकट है काहेते कि चैतन्य का होना शरीर के आश्रित नहीं जैसे मृतकशरीर और इन्द्रिय प्रकट होतीहैं पर चैतन्यसत्ता बिना उसको मृतक कहते हैं बहुरि योंभी है कि जब कोई पुरुष नेत्रआदिक इन्द्रियोंको रोके और चैतन्यता के अभ्यास विषे सर्वशरीर और स्थूल जगत विस्मरण करदेवे तो निस्सन्देह अपने आप को पहिचान लेवे और यथार्थरूप आत्मा को जाने बहुरि उसी विषे अधिक अभ्यासकरे और विचारकरे तब सुगमही परलोक को भी देखलेवे और इस वार्त्ताको भी प्रत्यक्ष जाने कि जब इस मनुष्यका शरीर छूटताहै तब चैतन्यरूप जीव का नाश नहीं होता और अपने आप विषे स्थिर रहताहै ॥

चौथा सर्ग ॥

साधनाकाल का वर्णन ॥

बहुरि इस जीवका जो शुद्ध स्वरूप है और जो इसका परम स्वभाव है सो तिसका खोलना धर्मशास्त्र विषे प्रमाण नहीं कहा इसीपर एक वार्त्ताहै कि लोगों ने जाकर महापुरुष से पूंछाथा कि जीवका स्वरूप क्या है तब उन्होंने जीवका परम स्वरूप वर्णन नहीं किया और भगवन्तकी आज्ञा पायकर इतनाही कहा कि यह महाराज की सत्तामात्र है सो इससे अधिक बखान करना उचित नहीं देखा तातें इतनाही उत्तरदिया कि यह सब सृष्टि दो प्रकारकी रचना है सो एक सृष्टि स्थूल है और दूसरी सत्तारूप सूक्ष्म है सो जिस पदार्थ की मर्याद और आकार और बढ़ना घटना है तिसको स्थूल कहतेहैं और चैतन्यसत्ता जो सूक्ष्म रूप है तिसकी मर्याद और आकार कुछ नहीं और अखण्ड है काहेते कि वह जब इस मनुष्यका हृदय खण्डरूप होता तब इसके शरीर विषे एकओर बिया

जैसे इतरजीव स्वर्ग को सुखरूप जानते हैं तैसे सन्तजनों को सुख महाराज की शरण विषे होता है सो जब इसप्रकार तैंने समझा तब कुछ एक अपने आपका पहिचानना होवैगा और जो कोई इस भेद को नहीं पहिचानता उसको धर्ममार्ग विषे चलना कठिन होता है और आत्मसुख विषे उसको आवरण होता है ॥

दूसरा सर्ग ॥

बहुरि जब तू आपको पहिचानना चाहता है तब इस प्रकार निश्चय जान कि तुझको दो पदार्थ करिके उत्पन्न किया है सो एक तो शरीर जो स्थूल नेत्रों करिके देखा जाता है और दूसरा चैतन्य है वह सूक्ष्मरूप है और उसको जीव कहते हैं और मन कहते हैं और चित्त भी उसी का नाम है सो तिसको बुद्धिरूपी नेत्र करि देख सक्ता हैं और स्थूल नेत्रों की दृष्टि ते परे है ताते तेरा जो निजस्वरूप है सो वही चैतन्य तत्त्व है और जेते गुण हैं सो चैतन्य के अधीन हैं और उसी के टहलुये हैं अथवा सेना की नाईं हैं और मैंने उसी चैतन्य का नाम हृदय राखा है सो यह सांची निस्सन्देह है कि आत्मा और हृदय और मन उसी चैतन्य के नाम हैं ताते मैं जो हृदय का वर्णन करता हूं सो मेरा प्रयोजन शरीर के हृदय स्थान का नहीं कहते जो इस स्थूल हृदयस्थान का स्वरूप मांस और रक्त करि रचा हुआ है और पंचभूतों का रचा है ताते जड़रूप है और मनुष्य का जो चैतन्यरूप हृदय है सो स्थूल सृष्टि ते विलक्षण है और इस शरीर में परदेशी की नाईं अपने कार्य निमित्त आया है बहुरि यह जो स्थूल हृदय का स्थान है सो जीव का घोड़ा अथवा शस्त्र है और सब इन्द्रिय जीव की सेना हैं और शरीर का राजा जीव है ताते भगवन्त को पहिचानना और उसको देखना भी जीव को अधिकार है इसी कारण ते दण्ड और उपदेश और पुण्य पाप का अधिकारी वही जीव है ताते भाग्यहीन और भाग्यवान् उसी जीव को कहा जाता है और सर्व काल विषे शरीर उसके अधीन है इसी कारण ते उस चैतन्य के स्वरूप का पहिचानना और उसके स्वभावों का समझना भगवन्त के पहिचानने की कुंजी है ताते तू यही पुरुषार्थ कर कि चैतन्यरूप को पहिचाने काहे ते कि यह चैतन्यरूपी रत्न दुर्लभ है और देवताओं की नाईं निर्मल स्वरूप है और इस रत्न की खानि परब्रह्म है इस करिके कि यह जीव उसी ओर ते आया है बहुरि उसी ओर जावेगा और इस संसार विषे परदेशी है सो

अपने कार्य के निमित्त यहां आयाहै तातें तुझको वह कार्य्य भी अवश्यमेव पहिंचाननां चाहिये परि भगवन्तकी दया करिके जानाजाताहै ॥

तीसरी सर्ग ॥

आत्मसत्ता के अभ्यासका वर्णन ॥

अब आत्मसत्ता के अभ्यासका वर्णन करताहूं तातें जान तू कि जबलग चैतन्यरूपको नहीं पहिंचानिये तबलग हृदयके यथार्थ स्वरूपको पहिंचान नहीं सक्ता सो इसीकारण से भगवन्तका पहिंचानना भी नहीं हो सक्ता और उत्तम भागोंको भी नहीं पावता और जब एकभाव करिके देखिये तो चैतन्यरूप अति प्रकट है काहेते कि चैतन्य का होना शरीर के आश्रित नहीं जैसे मृतकशरीर और इन्द्रिय प्रकट होतीहैं पर चैतन्यसत्ता बिना उसको मृतक कहते हैं बहुरि योंभी है कि जब कोई पुरुष नेत्रआदिक इन्द्रियोंको रोके और चैतन्यता के अभ्यास विषे सर्वशरीर और स्थूल जगत विसमरण करदेवे तिससन्देह अपने आप को पहिंचान लेवे और यथार्थरूप आत्मा को जाने बहुरि उसी विषे अधिक अभ्यासकरे और विचारकरे तब सुगमही परलोक को भी देखलेवे और इस वार्त्ताको भी प्रत्यक्ष जाने कि जब इस मनुष्यका शरीर छूटताहै तब चैतन्यरूप जीव का नाश नहीं होता और अपने आप विषे स्थिर रहताहै ॥

चौथा सर्ग ॥

साधनाकाल का वर्णन ॥

बहुरि इस जीवका जो शुद्ध स्वरूप है और जो इसका परम स्वभाव है सो तिसका खोलना धर्मशास्त्र विषे प्रमाण नहीं कहा इसीपर एक वार्त्ताहै कि लोगों ने जाकर महापुरुष से पूछाथा कि जीवका स्वरूप क्या है तब उन्होंने जीवका परम स्वरूप वर्णन नहीं किया और भगवन्तकी आज्ञा पायकर इतनाही कहा कि यह महाराज की सत्तामात्र है सो इससे अधिक बखान करना उचित नहीं देखा तातें इतनाही उत्तरदिया कि यह सब सृष्टि दो प्रकारकी रचना है सो एक सृष्टि स्थूल है और दूसरी सत्तारूप सूक्ष्म है सो जिस पदार्थ की मर्याद और आकार और बढ़ना घटना है तिसको स्थूल कहतेहैं और चैतन्यसत्ता जो सूक्ष्म रूप है तिसकी मर्याद और आकार कुछ नहीं और अखण्ड है काहेते कि वह जब इस मनुष्यका हृदय खण्डरूप होता तब इसके शरीर विषे एकओर विद्या

जैसे इनर नीच स्वर्ग को दुर्लभ जानते हैं तैसे सन्तजनों को मुख महाराज की शरण विषे होता है सो जब इसप्रकार तैने समझा तब कुछ एक अपने आपका पहिचानना होवेगा और जो कोई इस भेद को नहीं पहिचानता उसको धर्ममार्गविषे चलना कठिन होता है और आत्मसुख विषे उसको आवरण होता है ॥

दूसरा सर्ग ॥

॥ बहुरि जब तू आपको पहिचानना चाहता है तब इस प्रकार निश्चय जान कि तुझको दो पदार्थ करिके उत्पन्न किया है सो एक तो शरीर जो स्थूल नेत्रों करिके देखाजाता है और दूसरा चैतन्य है वह सूक्ष्मरूप है और उसको जीव कहते हैं और मन कहते हैं और चित्त भी उसी का नाम है सो तिसको बुद्धिरूपी नेत्रकरि देख सक्ता है और स्थूल नेत्रों की दृष्टि ते परे है ताते तेरा जो निजस्वरूप है सो वही चैतन्य तत्त्व है और जेते गुण हैं सो चैतन्य के अधीन हैं और उसी के टहलुये हैं अर्थात् सेना की नाईं हैं और मैंने उसी चैतन्य का नाम हृदय राखा है सो यह वार्त्ता निस्सन्देह है कि आत्मा और हृदय और मन उसी चैतन्य के नाम हैं ताते मैं जो हृदय का वर्णन करता हूं सो मेरा प्रयोजन शरीर के हृदय स्थान को नहीं कहिने जो इस स्थूल हृदयस्थान का स्वरूप मांस और रक्त करि रचा हुआ है और पंचभूतों का रचा है ताते जड़रूप है और मनुष्य का जो चैतन्यरूप हृदय है सो स्थूल सृष्टि ते विलक्षण है और इस शरीर में परदेशी की नाईं अपने कार्य निमित्त आया है बहुरि यह जो स्थूल हृदय का स्थान है सो जीव का घोड़ा अथवा गठड़ी है और सब इन्द्रिय भी जीव की सेना हैं और शरीर का राजा जीव है ताते भगवन्त का पहिचानना और उसका देखना भी जीव को अधिकार है इसी कारण ते दण्ड और उपदेश और पुण्य पाप का अधिकारी वही जीव है ताते भाग्यहीन और भाग्यवान् उसी जीव को कहा जाता है और सर्वकाल विषे शरीर उसके अधीन है इसी कारणते उस चैतन्य के स्वरूप का पहिचानना और उसके स्वभावों का समझना भगवन्त के पहिचानने की कुंजी है ताते तू यही पुरुषार्थ कर कि चैतन्यरूप को पहिचाने काहे ते कि यह चैतन्यरूपी रत्न दुर्लभ है और देवताओं की नाईं निर्मल स्वरूप है और इस रत्न की खानि परब्रह्म है इस करिके कि यह जीव उसी ओरते आया है बहुरि उसी ओर जावेगा और इस संसार विषे परदेशी है सो

और इसके विषे सेना भिन्न भिन्न रहती है पर इस जीवको जो भगवन्तने उत्पन्न किया है सो परलोकके कार्य्य निमित्त पैदा किया है सो कार्य्य इसका क्या है कि अपनी भलाई को ढूढ़ना और भलाई इसजीवकी यहहै कि भगवन्तका पहिंचानना और भगवन्तका पहिंचानना उसकी आश्चर्य्य कारीगरी करि होती है सो यह सर्व जगत् भगवन्तही की कारीगरी है और कारीगरी का पहिंचानना इन्द्रियोंकरि होताहै सो इन पाचों इन्द्रियोंका आश्रय शरीर है ताते ये इन्द्रिया कामी की नहिं हैं और शिकार इनका कारीगरी है और यह शरीर पाच तत्त्वोंकरि रचा हुआहै और वायु पित्त कफ इसमें प्रबल विकार हैं ताते सर्वदा इसको नाशहोने का भय रहता है और यद्यपि यह शरीर भूख और तृषा करि भी नाशहोजाता है और जल और अग्नि और शत्रु और सिंह आदिकभी इसको नाश करनेवाले हैं ताते भूख और प्यास दूर करनेको भगवन्तने जल और अनाज उत्पन्न किया है और शरीरकी रक्षा के निमित्त दो प्रकारकी सेना रची है सो एक स्थूल है जैसे हाथ और पाव और नानाप्रकारके शस्त्र बहुरि दूसरी सेना सूक्ष्महै सो चाह और क्रोध है पर सर्व कार्य्यों के पहिंचाननेवाली बुद्धिहै सो प्रथम बुद्धिकरिके शत्रु को पहिंचानता है तब क्रोध करिके जल और अनाजको खींचता है और शरीरकी रक्षा करताहै बहुरि श्रवण त्वचा नेत्र रसना नासिका जो पंचइन्द्रिय हैं सो यहभी बुद्धिके आश्रितहैं और शरीरका प्रेरक चतुष्टयअन्तःकरण है सो यह सभी सेना भगवन्त ने कार्य्यनिमित्त बनाई है और जब इस सेना विषे किसी को कुछ विघ्नहोजाता है तब इस मनुष्य का स्वार्थ और परमार्थ का कार्य्य सिद्ध नहीं होता और ये सूक्ष्म स्थूल जो सेना है सो सब जीवही के आधीन हैं पर राजा इनका जीव है सो जब रसनाको आज्ञा करताहै तब बोलने लगती है और हाथ आज्ञा से ग्रहण करते हैं और चित्तको जब आज्ञा करताहै तब चित्त विषे चिन्तवनकी शक्ति आयफुरती है इसीप्रकार सब अगों और सर्व स्वभावों विषे जीवही की आज्ञा वर्त्तती है तब यह जीव परलोक मार्ग के तोशेको बनावै और भगवन्तकी पहिंचानरूपी शिकारको फँसावै और अपनी भलाई के बीज को बढ़ावै और परमार्थ के कार्य्यविषे दृढ़ होवे तब निस्सन्देह परमपदको पहुंचता है और शरीरकी रक्षा करनी भी इस निमित्त प्रमाण कही है कि यह जीव शरीर करिके अपने कार्य्य को सिद्ध करै बहुरि जिसप्रकार देवता भगवन्त की आज्ञाके आ-

होती और एक ओर मूर्खताहोवी सो चैतन्य स्वरूप विषे इसप्रकार विद्या और मूर्खता नहीं ताते इसको अखण्ड कहाजाताहै और मर्याद ते रहित है और इस का नाम जीव इस निमित्त कहा है कि यह भगवन्तका उत्पन्न कियाहुआ है इसी करके जीवको सूक्ष्मसृष्टि कहागया है पर तौभी इसका स्वरूप स्थूल नहीं ताते सूक्ष्म है बहुरि जिन पुरुषों ने इसप्रकार निश्चय किया है कि यह जीव अनादिहै सो वे भी भूले हैं और जिन्होंने इस जीवको प्रतिबिम्ब जाना है सो वे भी भूले हैं काहेते कि प्रतिबिम्ब आप करिके वस्तु कुछ नहीं और जो अनादि है वह उत्पन्नकियाहुआ नहींहोता और यह जो जीव है सो उत्पन्न कियाहुआ है और शरीर का आश्रय है ताते इसको प्रतिबिम्ब भी कहना योग्य नहीं और जिन्हों ने इस शरीर को आत्मा प्रमाण कियाहै सो वे भी भूलेहैं काहेते कि यह शरीर खण्ड खण्ड होजाता है और आत्मा अखण्डहै और ज्ञानस्वरूपभी है सो यह शरीर भी नहीं और प्रतिबिम्बभी नहीं अर्थ यह कि सत्तारूपहै और चैतन्य है और देवतोंकी नाईं प्रकाशमान है और इस जीवका जो कारणस्वरूपहै सो तिसका पहिंचानना दुर्गम है और वचन विषे प्रसिद्ध कहाभी नहींजाता और साधन कालविषे जिज्ञासुको इसनिर्णयकी अपेक्षाभी नहीं रहती काहेते कि धर्म मार्ग विषे जिज्ञासुको यत्न और उद्यम चाहियेहै बहुरि जब विधिसंयुक्त पुरुषार्थ दृढ होजाता है और भली प्रकार दृढअभ्यास करताहै तब जिज्ञासु को आपही स्वरूप का ज्ञान भास आवता है और उसको किसीसे कुछ सुननेकी अपेक्षा नहीं रहती काहे ते कि स्वरूप का ज्ञान अपने पुरुषार्थ और भगवन्त की दया से प्राप्त होता है इसीपर साईं ने भी कहा है कि जब पुरुष मेरे मार्ग विषे गमन और अभ्यास करतेहैं तब मैं उनको अपने स्वरूपका ज्ञान लखावता हूं और जिस पुरुष ने यत्न और पुरुषार्थ भली प्रकार न कियाहोवे तब उसको आत्मस्वरूप की वार्त्ता प्रसिद्ध करनी योग्य नहीं और जब उसको कहिये तब दृढ भी नहीं होती जबलग पत्र के आगेही जीवकी सेना को न पहिंचानिये तबतक अशुभ सेना से विरुद्ध भी नहीं करसक्ता ॥

पांचवां सर्ग ॥

जीवकी सेनाका वर्णन ॥

वाते जान तू कि जीवरूपी राजा है और यह शरीर उसका राजमण्डल है

और इसके विषे सेना भिन्न भिन्न रहती है पर इस जीवको जो भगवन्तने उत्पन्न किया है सो परलोकके कार्य्य निमित्त पैदा किया है सो कार्य्य इसका क्या है कि अपनी भलाई को ढूंढ़ना और भलाई इसजीवकी यहहै कि भगवन्तका पहिंचानना और भगवन्तका पहिंचानना उसकी आश्चर्य्य कारीगरी करि होती है सो यह सर्व जगत् भगवन्तही की कारीगरी है और कारीगरी का पहिंचानना इन्द्रियों करि होताहै सो इन पाचों इन्द्रियोंका आश्रय शरीर है ताते ये इन्द्रिया फासी की नाई हैं और शिकार इनका कारीगरी है और यह शरीर पाच तत्त्वोंकरि रचा हुआहै और वायु पित्त कफ इसमें प्रबल विकार हैं ताते सर्वदा इसको नाशहोने का भय रहता है और यद्यपि यह शरीर भूख और तृषा करि भी नाशहोजाता है और जल और अग्नि और शत्रु और सिंह आदिकभी इसको नाश करनेवाले हैं ताते भूख और प्यास दूर करनेको भगवन्तने जल और अनाज उत्पन्न किया है और शरीरकी रक्षा के निमित्त दो प्रकारकी सेना रची है सो एक स्थूल है जैसे हाथ और पाव और नानाप्रकारके शस्त्र बहुरि दूसरी सेना सूक्ष्महै सो चाह और क्रोध है पर सर्व कार्य्यों के पहिंचाननेवाली बुद्धिहै सो प्रथम बुद्धिकरिके शत्रु को पहिंचानता है तब क्रोध करिके जल और अनाजको खींचता है और शरीरकी रक्षा करताहै बहुरि श्रवण त्वचा नेत्र रसना नासिका जो पचइन्द्रिय हैं सो यहभी बुद्धिके आश्रितहैं और शरीरका प्रेरक चतुष्टयअन्तःकरण है सो यह सभी सेना भगवन्त ने कार्य्यनिमित्त बनाई है और जब इस सेना विषे किसी को कुछ विघ्न होजाता है तब इस मनुष्य का स्वार्थ और परमार्थ का कार्य्य सिद्ध नहीं होता और ये सूक्ष्म स्थूल जो सेना है सो सब जीवही के आधीन हैं पर राजा इनका जीव है सो जब रसनाको आज्ञा करताहै तब बोलने लगती है और हाथ आज्ञा से ग्रहण करते हैं और चित्तको जब आज्ञा करताहै तब चित्त विषे चिन्तवनकी शक्ति आयफुरती है इसीप्रकार सब अगों और सर्व स्वभावों विषे जीवही की आज्ञा वर्त्तती है तब यह जीव परलोक मार्ग्ग के तोशेको बनावे और भगवन्तकी पहिंचानरूपी शिकारको फँसावे और अपनी भलाई के बीज को बढ़ावे और परमार्थ के कार्य्यविषे दृढ़ होवे तब निस्सन्देह परमपदको पहुँचना है और शरीरकी रक्षा करनी भी इस निमित्त प्रमाण कही है कि यह जीव शरीर करिके अपने कार्य्य को सिद्ध करे बहुरि जिसप्रकार देवता भगवन्त की आज्ञा के आ-

धीन है और प्रसन्नता सहित उसकी आज्ञा मानते हैं तैसेही शरीर और इन्द्रिय और अन्तःकरण इसजीवके आधीनहैं और इसकी आज्ञा विषेही वर्त्ते हैं सो यह सबही जीवकी सेनाहै यद्यपि उस सेनाका बखान करना बहुत विस्तारहै पर तोभी समझाने के निमित्त कुछ वर्णन करताहूं अब ऐसे जान तू जो यह शरीर राजाका नगरहै और सबइन्द्रिय इस शरीरविषे बसनेवाले लोगहैं और लोगों की अभिलाषारूपी राजाका प्रधानहै और क्रोधरूपी कोतवाल है और जीव इसदेश का राजा है बुद्धि इसका मन्त्री है पर जीवरूपी राजाको इस सबसेना की चाह है काहे ते कि राज्य इनही करिके सिद्ध होती है पर अभिलाषारूपी क्रोध प्रधान है सो महाझूठा और पाखण्डी है और बुद्धिरूपी मंत्री के कहने से विपर्यय वर्त्तता है और सर्वदा यही चाहता है कि राजाकी सामग्री सब मेंही खर्च लेऊ बहुरि क्रोधरूपी जो कोतवालहै सो महातीक्ष्ण और कठोर है और सर्वदा जीवों का घातही चाहताहै इसीकारणते जीवरूपी राजाको देश महादुःखी रहता है पर यह जीव जो राजा है सो जब बुद्धिरूपी मंत्री के साथ सम्मत लेवे और अभिलाषारूपी प्रधानको निर्बल करिके अपने वशीकार करे और बुद्धिने विपर्यय जो कुछ कहे सो न माने और कोतवाल को उसके ऊपर प्रबल करे तब उसको मर्य्याद विषे राखसकाहै इसीप्रकार क्रोधरूपी कोतवालको प्रबल न होने देवे और मर्य्यादते उलांघकरि न वर्त्तने देवे तब इसका देश सुखीहोवे औ सदैव बुद्धिरूपी मन्त्रीके कहनेके अनुसार वर्त्ते जो अभिलाषा और क्रोधको ऐसा निर्बलकरे कि वहभी बुद्धिकी आज्ञाविषे चले और बुद्धिको उनके आधीन न करे तब इसका राज्य स्वाधीनहोवे और सुखेन होवे और भगवन्त के दरबारमें विघ्न न होवे परन्तु यह जीव बुद्धि को अभिलाषा और क्रोधके आधीन करदेवे तब इसका राज्य नष्ट होजाता है और राजा भी मन्दभागी होता है तातें इस करके प्रसिद्ध हुआ कि भोग और रोगभी शरीरकी रक्षाके निमित्त उत्पन्न कियेहैं तैसे ही जल और अनाज भी शरीरका आधार बनाया है और शरीरको इन्द्रियों के ठहराने के निमित्त बनायाहै ताते शरीर इन्द्रियोंका टहलुवाहै बहुरि इन्द्रिय जो हैं सो बुद्धिको खबर पहुँचाने के निमित्त रची हैं कि इन्द्रियों करिके भगवन्तकी कारीगरी को देखे और जाने ताते यह इन्द्रियां बुद्धिकी टहल करतीरहती हैं और तैसेही बुद्धिको जीव के निमित्त उत्पन्न कियाहै सो यह बुद्धि जीव का दीपकहै

कि उसको प्रकाशकरिके महाराजको देखताहै सो महाराज का दर्शन इस जीव का परमस्वार्थ है ताते बुद्धि जीव का टहलुवाहै तैसेही जीवको महाराजके दर्शन निमित्त बनाया है सो जब यह जीव महाराज के दर्शन को प्राप्तहोने तब अपने उत्तम कार्य्यको पावताहै और महाराज की सेवाविषे लीन होताहै इसीपर महाराजने भी कहाहै कि मैंने सर्वमनुष्यों को अपने भजन के निमित्त उत्पन्न किया है सो इसका अर्थ यही है कि इस जीवको महाराजने उत्पन्न कियाहै और इन्द्रियादिक सेनादीनी हैं और शरीररूपी घोड़ा दियाहै कि जिस करिकै स्थूल देश से गमनकरके सूक्ष्म देशविषे पहुँचे बहुरि जब यह जीव भगवन्तके उपकारका धन्यवाद कियाचाहे और भगवन्तका दर्शन हुआचाहे तब इसप्रकार प्रथम इस को करना योग्यहै कि इस शरीररूपी देशविषे बैठकर राज्यकरै और अपना मुख भगवन्तकी ओर लावै और इस संसार से गमन करने की इच्छाराखै और सर्व इन्द्रियों को अपनी टहलविषे लगावै अर्थ यह कि अपने २ कार्य्य विषे सावधान करै और तब इन्द्रियों करके जो कुछ कार्य्य करै तिसको चित्तविषे विचारै बहुरि समय पायके बुद्धिविषे उसका अभ्यासकरै और बुद्धिरूपी मन्त्री उस खबरको पायकर राजाको समझावै सो इसका दृष्टान्त यह है कि जैसे देशकी खबर दूतले आवते हैं और उतमे दरबान खबरलेकर मन्त्रीको पहुँचावते हैं और वह मन्त्री राजाको समझाय देताहै तैसे इन्द्रियरूपी दूतहैं और चित्त इसका पवँरियाहै और बुद्धिरूपी मन्त्री है सो इसप्रकार इन्द्रियरूपी दूतोंने जोखबरें चित्तरूपी पवँरियाके द्वारा मन्त्री बुद्धिरूपीको पहुँचाई हैं तिनको मन्त्रीके द्वारा जीवरूपी राजा पाता रहै बहुरि बुद्धिरूपी मन्त्री जब देखै कि इस जीवकी सेनामें काम और क्रोध अथवा कोई औरस्वभाव प्रबल हुआहै और राजाकी आज्ञा से विपर्य्यय होकर विचरनें लगाहै और राजाको नाशकिया चाहताहै तब बुद्धिरूपी मन्त्री उसको अपनें आधीनकरै और कोमलकरके राखै काहेते कि उन बिना शरीरका व्यवहार भी सिद्ध नहीं होता और उनका प्रबल होना भी दुःखदायकहै ताते जब इसकी आज्ञा विषे होते हैं तब यह सर्वस्वभाव भी यथार्थ मार्गकी सहायता करते हैं और यह जीवरूपी राजा अपनें स्वामी को पहुँचता है और सम्मुख होता है और महाराजकी बख्शीश को पावताहै पर जब यह जीवरूपी राजा इस प्रकार अपने देश विषे न्याय न करै और दुष्टों के साथ मिल जावै अर्थात् वासनाके

धीन है और प्रसन्नता सहित उसकी आज्ञा मानते हैं तैसेही शरीर और इन्द्रिय और अन्तःकरण इसजीवके आधीनहैं और इसकी आज्ञाविषेही वर्त्ते हैं सो यह सबही जीवकी सेनाहै यद्यपि उस सेनाका बखान करना बहुत विस्तारहै परं तौभी समझाने के निमित्त कुछ वर्णन करताहूं अब ऐसे जान तू जो यहशरीर राजाका नगरहै और सबइन्द्रिय इस शरीरविषे बसनेवाले लोगहैं और भोगों की अभिलाषारूपी राजाका प्रधानहै और क्रोधरूपी कोतवालहै और जीव इसदेश का राजा है बुद्धि इसका मन्त्री है पर जीवरूपी राजाको इस सबसेना की चाह है काहेते कि राज्य इनहीं करिके सिद्ध होती है पर अभिलाषारूपी क्रोध प्रधान है सो महाकूड़ा और पाखण्डी है और बुद्धिरूपी मन्त्री के कहने से विपर्यय वर्त्तना है और सर्वदा योंही चाहता है कि राजा की सामग्री सब मेंही खर्च लेऊ बहुरि क्रोधरूपी जो कोतवालहै सो महातीक्ष्ण और कठोर है और सर्वदा जीवों का घातही चाहताहै इसीकारणते जीवरूपी राजाको देश महादुःखी रहता है पर यह जीव जो राजा है सो जब बुद्धिरूपी मंत्री के साथ सम्मत लेवे और अभिलाषारूपी प्रधानको निर्बल करिके अपने वशीकार करे और बुद्धिते विपर्यय जो कुछ कहे सो न माने और कोतवाल को उसके ऊपर प्रबल करे तब उसको मर्यादविषे राखसक्ताहै इसीप्रकार क्रोधरूपी कोतवालको प्रबल न होने देवे और मर्य्यादते उलांघकरि न वर्त्तने देवे तब इसका देश सुखीहोवे औ सर्वदा बुद्धिरूपी मन्त्रीके कहनेके अनुसार वर्त्ते जो अभिलाषा और क्रोधको ऐसा निर्बलकरे कि वहभी बुद्धिकी आज्ञाविषे चले और बुद्धि को उनके आधीन न करे तब इसका राज्य स्वाधीनहोवे और सुखेन होवे और भगवन्तके दरबारमें विघ्न न होवे पर जब यह जीव बुद्धि को अभिलाषा और क्रोधके आधीन करदेवे तब इसका राज्य नष्ट होजाता है और राजा भी मन्दभागी होताहै ताते इस करिके प्रसिद्ध हुआ कि भोग और रोगभी शरीरकी रक्षाके निमित्त उत्पन्न कियेहैं तैसेही जल और अनाज भी शरीरको आहार बनाया है और शरीरको इन्द्रियों के ठहराने के निमित्त बनायाहै ताते शरीर इन्द्रियों का टहलुवाहै बहुरि इन्द्रिय जो हैं सो बुद्धिको खबर पहुंचाने के निमित्त रची हैं कि इन्द्रियों करिके भगवन्तकी कारीगरी को देखे और जाने ताते यह इन्द्रिया बुद्धिकी टहल करनेवाली हैं और तैसेही बुद्धिको जीव के निमित्त उत्पन्न कियाहै सो यह बुद्धि जीवका दीपकहै

कि उसके प्रकाश करिके महाराजको देखताहै सो, महाराज का दर्शन इस जीव का परमस्वर्ग है ताते बुद्धि जीवका टहलुवाहै तैसेही जीवको महाराजके दर्शन निमित्त बनाया है सो जब यह जीव महाराज के दर्शन को प्राप्तहोवे तब अपने उत्तम कार्य्यको पावताहै और महाराज की सेनाविषे लीन होताहै इसीपर महाराजने भी कहाहै कि मैंने सर्वमनुष्यों को अपने भजनके निमित्त उत्पन्न किया है सो इसका अर्थ यही है कि इस जीवको महाराजने उत्पन्न कियाहै और इन्द्रियादिक सेनादीनी हैं और शरीररूपी घोड़ा दियाहै कि जिस करिके स्थूल देश से गमनकरके सूक्ष्म देशविषे पहुँचे बहुरि जब यह जीव भगवन्तके उपकारका धन्यवाद कियाचाहे और भगवन्तका दर्शन हुआचाहे तब इसप्रकार प्रथम इस को करना योग्यहै कि इस शरीररूपी देशविषे बैठकर राज्यकरे और अपना मुख भगवन्तकी ओर लावे और इस संसार से गमन करने की इच्छाराखे और सर्व इन्द्रियों को अपनी टहलविषे लगावे अर्थ यह कि अपने २ कार्य्य विषे सावधान करे और तब इन्द्रियों करके जो कुछ कार्य्य करे तिसको चित्तविषे विचारे बहुरि समय पायके बुद्धिविषे उसका अभ्यासकरे और बुद्धिरूपी मन्त्री उस खबरको पायकर राजाको समझावे सो इसका दृष्टान्त यह है कि जैसे देशकी खबर दूतले आवते हैं और उनसे दरबान खबरलेकर मन्त्रीको पहुँचावते हैं और वह मन्त्री राजाको समझाय देताहै तैसे इन्द्रियरूपी दूतहैं और चित्त इसका पवँरियाहै और बुद्धिरूपी मन्त्री है सो इसप्रकार इन्द्रियरूपी दूतोंने जोखबरें चित्तरूपी पवँरियाके द्वारा मन्त्री बुद्धिरूपीको पहुँचाई हैं तिनको मन्त्रीके द्वारा जीवरूपी राजा पाता रहै बहुरि बुद्धिरूपी मन्त्री जब देखे कि इस जीवकी सेनामें काम और क्रोध अथवा कोई औरस्वभाव प्रबल हुआहै और राजाकी आज्ञासे विपर्य्यय होकर विचरने लगाहै और राजाको नाशकिया चाहताहै तब बुद्धिरूपी मन्त्री उसको अपने आधीनकरे और कोमल करके राखे काहेते कि उन बिना शरीरका व्यवहार भी सिद्ध नहीं होता और उनका प्रबल होना भी दुःखदायकहै ताते जब इसकी आज्ञा विषे रहते हैं तब वह सर्वस्वभाव भी यथार्थ मार्गकी सहायता करते हैं और वह जीवरूपी राजा अपने स्वामी को पहुँचता है और सम्मुख होता है और महाराजकी बक्शीश को पावताहै पर जब यह जीवरूपी राजा इस प्रकार अपने देश विषे न्याय न करे और दुष्टों के साथ मिल जावे अर्थात् मामनाके

आधीन होजावे तब भगवन्तके उपकारका कृतघ्नी होजाताहै और मन्दभागी होताहै और महादुख पाताहै॥

छठासर्ग॥

जीवके स्वभावका वर्णन॥

ताते ऐसे जान तू कि जितने स्वभाव इसशरीरके विषे पाये जाते हैं सो सबों के साथ इसका सम्बन्धहै और इस विषे इतना भेदहै कि कोई स्वभाव तो शुभ होते हैं और कोई अशुभ होते हैं सो अशुभ स्वभावों करि इस जीवको नाश होताहै और शुभ स्वभावों करि उत्तम अवस्था को पावता है सो वह स्वभाव यद्यपि अगणितहैं पर तो भी चारप्रकारके स्वभावहैं सो एकस्वभाव पशुओंके हैं और दूसरे सिंहों के तीसरे भूतों के चौथे देवतों के सो प्रथम जो इस मनुष्य विषे भोगोंकी अभिलाषाहै और तृष्णाहै सो इस करके पशु आदिक व्यवहार सिद्ध होताहै अर्थात् कामादिक खान पानादिक भोगों विषे लगे हैं बहुरि दूसराजो क्रोधका स्वभावहै तिसकरके सिंहादिक व्यवहार सिद्ध होताहै जैसे मन कर्म वचन करके ईर्षा और दुर्वचन और जीवोंका घात करना और तीसरा भूतोंका स्वभाव मनुष्य विषे यहहै कि छल प्रपञ्च दम्भ कपट करना और उपाधि उठा-वनी और चौथा स्वभाव देवतोंका इसविषे बुद्धिहै सो बुद्धि करके दिव्य कार्य्य करताहै जैसे विद्या और भलाई और निरागको अंगीकार करना और निंद्य कर्मों से आपको बचाइ रखना और सब जीवों के सुखको चाहना बहुरि बुद्धि करके शुभ कर्मों विषे प्रसन्नताको पावताहै जड़ता और मूर्खताके विघ्नोंको सम झना है सो इसमनुष्य विषे चारिप्रकार के स्वभाव पाये जाते हैं जैसे पशु और भूत और देव स्वभाव आगे वर्णन कियेहैं पर कूकुरको जो जगत् विषे अपवित्र कहा जाताहै सो तिसका स्वभावही अपवित्रहै शरीरकरके अपवित्र नहीं है पर क्रोध करके जो जीवों को फाड़ने लगते हैं ताते अपवित्र हैं तैसेही शूकरभी शरीर करके अपवित्रता कुछ नहीं है अपवित्र पदार्थों की जो तृष्णा करता है तिसकरके अपवित्र कहा जाताहै तैसेही भूत और देवता जो वर्णन कियेहैं सो यहभी स्वभावहीका अर्थ है और इन मनुष्यों को सन्तजनों और शास्त्रोंने यही उपदेश कियाहै कि बुद्धिरूपी नेत्रों के प्रकाश करके मनरूपी भूतके छलोंको पहिचानें और उनकी बुराई जानकर अपने चित्त सों त्यागें तब उनकी उसके

विघ्न और छलसे रक्षाहोवे इसीपर महापुरुषने भी कहा है कि सर्व मनुष्यों विषे भूतोंका स्वभाव प्रत्यक्षहै और मेरे विषे भी है पर महाराजने उसके ऊपर मुझको प्रबल कियाहै उसका विघ्न मुझको स्पर्श नहींकरता तैसेही इसमनुष्यको सन्त जनों ने इसीप्रकार आज्ञाकरी है कि तृष्णारूपी शूकर और क्रोधरूपी कूकरको अपने आधीनकरे जो बुद्धिकी आज्ञानुसार वर्त्ते तब इसकरके तेरे सभीस्वभाव भलेहोजावेंगे और यह स्वभावही तेरे पुण्योंके बीज होवेंगे और जब तू इससे विपर्य्यय होकर वर्त्तेगा अर्थात् उनहीं के आधीन होइ चलेगा तब तेरे सबही स्वभाव अशुभ होजावेंगे और वह अशुभ स्वभावही तेरे भाग्यहीनता का बीज होजावेंगे पर जब इसजीवको जाग्रत् अवस्था अथवा स्वप्न विषे अपनी अवस्था प्रत्यक्षहोवे तब निस्सन्देह जाने कि मैं भूतों और कूकुरोंके आधीनहू और उन की आज्ञा विषे वर्त्तताहू सो इसका दृष्टान्त यहहै कि जैसे किसी धर्मात्मा पुरुष को किसी अधर्मी तामसी मनुष्यके बन्दीखाने में बाँध राखिये तब वह धर्मात्मा पुरुष महादुःखी और कष्टवान् होताहै बहुरि जैसे कोई देवता किसी कूकुर अथवा किसी दैत्यके बंधन विषे आइ फँसे तब उसकीभी नीच अवस्था होती है तैसेही जब यह मनुष्य विचारकरे और यथार्थ नीतिकी दृष्टिकर देखे तब जाने कि मैं दिन रात अपने मनकी वासनाके आधीन हूं और यद्यपि देखने में मनुष्यका शरीर दृष्टि आवताहू पर तोभी स्वभाव करके कूकर शूकर और भूतोंका स्वरूप हू सो परलोक विषे यह वार्त्ता प्रसिद्ध होवेगी क्योंकि जैसा जिसका स्वभावहै सो तैसाही शरीर वहां पावताहै ताते जिस मनुष्य विषे तृष्णा और अभिलाषा अधिकहै सो शूकरके शरीरको पावेगा और इसप्रकारभी है कि जब कोई स्वप्न विषे आपको कूकुर और सिंहदेखे तब इसका अर्थ यहहै कि उस पुरुषका स्वभाव अपवित्रहै काहे ते कि स्वप्नभी परलोक को लखावनेहारा है इस करके कि स्वप्न विषे भी यह मनुष्य इन्द्रियादिक देशमे उल्लंघित होजाताहै ताते स्वप्नविषे जीव को अपना स्वरूप स्वभाव के अनुसार भासता है और जैसा इसका हृदय होता है तैसाही आकार प्रत्यक्ष देखता है और इस वचनका वखान करनेभी बहुत विस्तार करिके होताहै ताते इस ग्रन्थविषे कहा नहीं जाता बहुरि जब तैंने इस प्रकार जाना कि यह चारों स्वभाव तेरे अन्तःकरण विषे प्रकटे हैं तब तू अपनी करतूति को विचार करके देख कि मैं इनचारों स्वभावों में से किसकी आज्ञा विषे

चलताहै और यह बातभी निश्चयजान, कि जैसी क्रिया तू करता है वैसाही स्वभाव तेरे हृदय के विषे दृढ़ होता है और वही स्वभाव तेरे परलोक में भी संगी होगा। सो सर्व स्वभावों का मूल यह चारोंकृत हैं पर जब तू तृष्णारूपी शूकरकी आज्ञा विषे चलता है तब तेरे हृदय में अपवित्रता और निर्लज्जता और लम्पटता और ईर्षादिक अपलक्षण प्रकट होते हैं और जब तू तृष्णारूपी शूकरको अपने आधीन करे तब संयम और शीतलता और गम्भीरता और निर्लोभता और निराशता आदि शुभगुण उपजते हैं बहुरि जब तू क्रोधरूपी कुक्कुर के आधीन होताहै तब कुटिलता और निरशङ्कता और बढ़ावना और अपनी स्तुतिकरनी और दुर्वचन बोलना और मानता चाहनी और और जीवोंको नीच जानना और उनको डरावना इत्यादिक अनेक अवगुण उत्पन्न होते हैं और जब तू इस क्रोधरूपी कुकुरको अपने वशमें करे तब धैर्य और सहनशीलता और क्षमा और स्थिति और पराक्रम और दयाआदिक शुभ गुण प्रकट होते हैं बहुरि जब तू शैतान और भूतोंकी आज्ञामें वर्त्तता है तब तेरे हृदय विषे मलिनता और रोग और कपट और दुबिधा और छल पाखण्ड आदिक बुरे स्वभाव आन उत्पन्न होते हैं और जब तू इसको अपने वशीकारकरे और भूतों के स्वभावों के आधीन न होवे तब तेरी बुद्धिकी जीत होती है तातें विवेक और पहिचान और विद्या और अनुभव और सबजीवोंका भला चाहना और भावआदिक गुण बढ़ते हैं सो यह भलेस्वभाव जब तेरे हृदय विषे प्रकट होते हैं तब सर्वदा तेरेसंगी होते हैं और अविनाशी हैं और तेरे परमभागोंका बीज हैं बहुरि जो अशुभकर्म हैं सो तिनकरके हृदयका स्वभावभी बुरा होजाता है तातें पापभी इसीका नाम कहा जाताहै सो सब करतूति इसमनुष्य के शुभ और अशुभ क्रियाके कदाचित् निजग नहीं होते पर मनुष्यका जो यह हृदयहै सो दर्पणवत् निर्मल है और जेते बुरेस्वभाव हैं सो धूप और जगलकी नाईं हैं तातें इन करके हृदयरूपी दर्पण ऐसा मलिन होजाताहै कि भगवन्तके दरबारको नहीं देखसक्ता बहुरि यह जो भले स्वभावहैं सो प्रकाशरूपहैं तातें इन करके हृदयरूपी दर्पणसे अविद्यारूपी मैल उतरजाताहै इसीपर महापुरुषने भी कहाहै कि जब कोई निन्दित कर्म तुमसे होजावे तब उसके पीछे शीघ्रही भलाकर्मकर तब वह बुराई नष्ट होजावेगी और हृदय मलिन न होनेपावेगा क्योंकि परलोक विषे जैसा किसीका हृदय है

तैसाही प्रकट होजाताहै जिसका हृदय निर्मलहै सो ब्रह्मभी प्रत्यक्ष होताहै इसी पर महाराजनेभी कहाहै कि जिसका हृदय शुद्ध है उसहीको अनन्तकी ओर मार्ग खुलताहै क्योंकहते कि आदि उत्पत्ति विषे इस मनुष्यका हृदय लोहे की नाईं होताहै सो तिसको विधि संयुक्त जब मर्दन करिये तब दर्पणवत् निर्मलहोजाता है और सर्वपदार्थोंको लखावताहै और जब उसको मर्दन न करिये तब ऐसा मलिन होजाताहै कि उस विषे कुछ निर्मलताई भासती नहीं और किसी पदार्थ को भी नहीं लखाता इसीपर महाराजका वचनहै कि निस्सन्देह मैं तुम्हारे हृदय की ओर देखताहूं और जैसी करतूति तुम करतेहो सो तिनकी ओरभी देखताहूं॥

सातवां सर्ग ॥

पूर्णताका वर्णन॥

तातें जान कि जब तू इस प्रकार प्रश्न करै कि जो इसमनुष्य विषे पशुओं और सिंहों और भूतों और देवतों के स्वभाव प्रकटहैं सोतो मैं समझा पर इस प्रकार तुम क्योंकर कहतेहो कि यह मनुष्य दिव्यरत्न है और कारण इसका निर्मल है और इसका अपना स्वभावभी शुद्ध है और अपर सबही परस्वभावहैं सो इस वार्ताको क्योंकर समझावे कि इस मनुष्यको भगवन्तके निर्मल स्वभावके भासहोने निमित्तही पैदाकियाहै काहेते कि यह चारप्रकारके स्वभावहैं और इस मनुष्य विषे इकट्ठे हुये उपजे हैं तातें निर्मल स्वभाव इसका क्योंकर अपनाहुआ और अपर स्वभाव परस्वभाव किसकारण कहेगये सो तिसका उत्तर यहहै कि इस मनुष्यको भगवन्तने पशुओं और सिंहोंसे विशेष उत्पन्न कियाहै और सर्व पदार्थोंकी बड़ाई और पूर्णताई भी भिन्न २ है और जिस पदार्थकी जो बड़ाई होती है सो वोही तिसका कारण कहा जाताहै जैसे गर्दभसे घोड़ा विशेषहै काहेते कि गर्दभको बोझ उठावने के निमित्त बनाया है और घोड़े को इस निमित्त उत्पन्नकिया कि उसका दौड़ना और चलना सवारकी आज्ञानुसारहोवे और लड़ाई में सावधानहोवे पुनः घोड़ा आठ गर्दभकी नाईं बोझा उठावने का बलभी रखता है और दौड़ने और संग्राम में सावधानताकी बड़ाई अधिक होती है कि जो गर्दभविषे नहीं पाई जाती पर जब घोड़ा अपनी बड़ाई और पूर्णतासे हीन होताहै तब बोझा उठावनेका अधिकारी रहताहै और गर्दभके पदको पावता है और उसकी अपनी बड़ाई नष्ट होजाती है तैसेही जिनपुरुषोंने इसप्रकार समझा

है कि यह मनुष्य खाने और सोवने और कामादिके भोग और प्रसन्नहोनेके निमित्त उत्पन्न हुआहै सो मूढहै और उनकी सर्वआयुर्बल इनहीं कार्य्यों विषे बीत जाती है अथवा जिन्होंने इसप्रकार जानाहै कि यह मनुष्य जीतने और क्रोध करनेके निमित्त उत्पन्न हुआहै सो वहभी महानामसी पुरुष और दुष्टहैं ताते यह दोनों प्रकारके मनुष्य मूर्ख हैं काहेते कि अधिक आहार और भोग तो पशुओं विषेभी पायेजाते हैं जैसे सिंह और बैलको आहार तो मनुष्यतेभी अधिक होता है और चिड़ियों विषे कामचेष्टा अधिक होती है तैसेही क्रोध करना और फाड़ना सिंहों विषे होताहै ताते जो कुछ पशुओंके स्वभावहैं सो यहभी मनुष्योंको दिये हैं और एक बड़ाई भी इनमे अधिक दीन्हीं है सो बुद्धि है कि उस बुद्धिही करके भगवन्तको पहिचानताहै और महाराजकी कारीगरीको भी बुद्धिही करके जानताहै और उस बुद्धिही करके क्रोध और भोगोंते आपको बचाये रखताहै सो यह देवस्वभाव कहाजाताहै और इसी स्वभाव करके यह मनुष्य पशुओं और सिंहोंते विशेष कहाहै और इसी कारणकर सर्वसृष्टि मनुष्यके आधीनहै इसीपर साईंनेभी कहाहै कि धरती और आकाश विषे जेती सृष्टि है सो मैंने तुम्हारी आज्ञाकारी करिदीन्हीं है ताते मनुष्यका जो अर्थ है सो यही बुद्धिहै कि इसकी बड़ाई और विशेषता बुद्धिही करके प्रकट है और अपर जेते स्वभाव इसमनुष्य विषे पायेजाते हैं सो वास्तव में मनुष्यके स्वभाव नहीं केवल इसजीवकी टहल और कार्य्य के निमित्त उत्पन्न किये हैं बहुरि जब यह जीव मृत्यु होता है तब भोग और क्रोधभी सबही सामग्री नष्ट होजाती हैं पर जब इस जीवकी बुद्धि शुद्ध होती है और देवतोंकी नाईं इसका स्वभाव निर्मल होताहै तब चैतन्य देश विषे प्राप्त होताहै और निस्सन्देह भगवन्त की पहिचान और उसके दर्शन विषे लीन होता है बहुरि जिसकी बुद्धि मलिन और विपरीत होती है तब यह भोगों और क्रोधकी मलिनता करके आवरण आजाताहै सो यद्यपि उसदेश विषेभी जाताहै तौभी उसका मुख संसारकी ओर रहताहै अर्थ यह कि उसका हृदय इन्द्रियादिक भोगोंमें बद्धमान होताहै और सर्वदा उसको विषयोंकी खैंच रहती है ताते उसको अधोगति कहाहै और अधोगतिका अर्थ यह कि परलोकरूपी उत्तम देश विषे भी उस मनुष्यका हृदय नीचताकी ओर गिरा रहताहै इसीपर साईंने भी कहाहै कि परलोक विषे पापियोंका शीश नीचे लटकाया रहेगा ताते जिस मनुष्यकी

ऐसी अवस्थाहैसोभूतोंकेसमान कहना चाहिये बहुरि ऐसे जानि तू कि हृदय रूपी देशकी ऐश्वर्य्यता अमित है और वड़ाई इसकी यह है कि इस मनुष्यका हृदय सर्वपदार्थों से आश्चर्य्यरूप है परन्तु मनुष्य अचेतता करके इस आश्चर्यता को नहीं पहिंचानते और विशेषता इस मनुष्यकी दोप्रकारकरके कहीहै सो एक विद्याहै और द्वितीय बलहै बहुरि विद्याकरके जो यह विशेषता कही है सो इसे सबकोई पहिंचानताहै सो स्थूलहै और दूसरी सूक्ष्म और गुह्य है सो महादुर्ल्लभ है बहुरि स्थूलविद्या यहहै कि यह मनुष्य सर्वपदार्थोंकी विद्याका वेत्ता होसक्ताहै और नानाप्रकारकी कारीगरी को पहिंचानसक्ता है बहुरि अनेकग्रन्थों की विद्या को पढ़सक्ता है जैसे वैद्यक और ज्योतिष और व्याकरण और धर्म्मशास्त्र और अनेक विद्याके भेदोंको समझता है और यद्यपि येते प्रकारकी विद्याको पढ़ताहै तोभी इस मनुष्यका हृदय ऐसा आकाशरूपहै कि पंडिताईको नहीं प्राप्तहोता और सर्वपदार्थों का ज्ञान इस विषे समायजाता है अथवा सर्व संसारही इसकी चैतन्यताके विषे ऐसी समायरहा है कि जैसे समुद विषे बूंद समायजाताहै और इस चैतन्य पुरुषकी ऐसी सूक्ष्मगति है कि अपने किंचित् संकल्पकरके पाताल और आकाशका कार्य करलेताहै और उदय अस्तलों देखआवताहै सो यद्यपि इस चैतन्यका सम्बन्ध इस शरीरके साथ ऐसा दृढ़है कि सर्वदा आपको शरीरही जानताहै तोभी इसविषेऐसी शक्तिहै कि विद्याके बलकरके आकाशके तारोंका प्रमाणभी पहिंचानताहै औरयोंभी जानता है कि अमुकग्रह अमुकस्थान विषे आया है और अमुकग्रह अमुकग्रह ते इतना दूरहै बहुरि विद्याही के बलकरके मछलीको समुदकी गहराईसे बाहर निकास लेताहै और आकाशविषे उड़नेहारे पक्षियोंको पृथ्वीपर आन डारताहै और जो कुछ इसजगत्विषे आश्चर्यता और विद्या है सो तिसको पांच इन्द्रियों करके ग्रहण करलेता है सो यह इन्द्रियादिक विद्या सबही स्थूल कहलाती है ताते इसको सब कोई पहिंचानताहै बहुरि दूसरी विद्या जो महा आश्चर्य्यरूप है सो यहहै कि इस मनुष्य के हृदयविषे एक बारी अर्थात् खिड़की है सो यह देवलोककी ओरको खुलीहुईहै जैसे यह पाचों इन्द्रिय आधिभौतिक जगत् की ओर को खुलीहुई हैं पर सूक्ष्मदेश का नाम देवलोक है और चैतन्यदेशभी उसीको कहते हैं सो बहुत पुरुष तो इसी इन्द्रियादिक देशको समझते हैं पर चैतन्यदेशकी अपेक्षाकरके जो देखिये तो यह सब जगत्

तुच्छमात्रहै बहुरि चित्तविषे जो खिड़की है सो तिसका खुलनाभी दोमकारका होताहै प्रथम जब निद्रा करके सर्व इन्द्रियों का मार्ग रोकाजाता है तब स्वप्न विषे सूक्ष्मदेशकी ओर वह खिड़की खुलती है सो तिसविषे अपूर्व सृष्टिकोभी पहिचानताहै पर प्रत्यक्ष नहीं देखता जैसे मंदहृष्टि जीवोंको पदार्थोंका स्वरूपभी मंदही दृष्टि आता है तैसेही स्वप्नविषे भविष्यकाल को इस प्रकार पहिचानता है कि जब उस स्वप्नका वखान करिये तब युक्तिकर समझा जाता है अन्यथा नहीं समझाजाता सो यहवार्त्ता प्रसिद्धहै और सबकोईजानताहै कि जाग्रत्‌विषे किसी भविष्यकालकी प्रकटता नहीं होती और स्वप्नविषे सबकोई अधिक व अल्प भविष्य देखताहै सो वह देखना इन्द्रियों के मार्गकर नहीं होता और इस स्वप्नका अर्थ खोलना भी बहुत विस्तारकरके होताहै ताते इतना कुछ तात्पर्य समझना चाहिये कि इस मनुष्यका हृदय दर्पणवत्‌ निर्मल है सो जैसे दो दर्पण परस्पर सम्मुखहोने समय उनका प्रतिबिम्ब दूसरेविषे भास आवता है तैसेही चित्तरूपी दर्पण जब इन्द्रियादिक वृत्ति सों भिन्न होता है तब हिरण्यगर्भ जो स्थूल जगत्‌का आश्रयहै सो तिसका प्रतिबिम्ब चित्त विषे भास आवताहै और जब यह चित्त इन्द्रियों की वृत्तिको त्याग जाताहै तब भविष्यकालको देखताहै इस विषे इतना भेदहै कि यद्यपि स्वप्न विषे इन्द्रियों की वृत्ति रोकीजाती है तो भी संकल्पोंका ठहरना नहींहोता और चित्तका फुरना भटकना रहताहै ताते स्वप्नविषे भविष्यकालको मंदहृष्टिकी नाई देखताहै और पदार्थों को प्रत्यक्ष नहीं देखता और जब यह जीव शरीर को छोड़जाता है तब इन्द्रिय और संकल्प की वृत्ति नष्टहोजाती है तो उसको परलोक प्रत्यक्ष भास आवताहै और नरक स्वर्गकोभी प्रत्यक्ष देखताहै तब महाराजके आगे प्रार्थना करने लगताहै कि हे भगवन्‌ तू मेरी सहायताकर बहुरि दूसरी युक्ति यहहै कि जब किसी को अकस्मात्‌ कोई संकल्प फुरआवताहै तब वही संकल्प सत्यरूपहोय भासताहै और इसप्रकार नहीं जाना जाता कि यह संकल्प कहां से आयाथा सो इसकरके इतना पहिचान सकता है कि विद्याका मार्ग केवल इन्द्रियोंही नहीं ताते विद्याका प्रकटहोना सूक्ष्मदेशते होताहै और इन्द्रियों को इस स्थूल जगत्‌ के ग्रहणकरने के निमित्त उत्पन्न किया है इसीकारण करके सूक्ष्मदेशकी पहिचान विषे इन्द्रियों करके पटल होताहै सो जबलग इन्द्रियों की विक्षेपता दूर न होवे तबलग सूक्ष्मदेशको नहीं पाता बहुरि

त्रिसविषे जो बारी अर्थात् खिड़की कहीथी सो तिसके खुलनेका दूसराप्रकार यहहै कि जब कोई पुरुष इस जगत् विषे पुरुषार्थ और अभ्यासकर इन्द्रियोंको रोके और चित्तको क्रोध और भोग और मलिन स्वभाव और सर्व अभिलाषाते शुद्धकरे बहुरि एकान्त ठौर बैठकर मनको एकत्रकरे और चित्तकी वृत्ति चैतन्य देशकी ओर लगावे और भजनविषे सावधान होवे तब उसही अभ्यास विषे ऐसा लीनहोता है कि उसको अपना शरीर और सर्वजगत् विस्मरण होजाता है और उसके चित्तविषे किसी पदार्थका ज्ञान नहीं फुरता सो जब इसपुरुषकी ऐसी अवस्था होतीहै तब निस्सन्देह जाग्रत् विषेही उसको सूक्ष्म देशकी खिड़की की खुलती है और और पुरुषोंको जो स्वप्न विषे भविष्यत्कालकी खबर होतीहै सो तिसको जाग्रत् विषेही फुरआती है बहुत देवतों और अवतारोंके स्वरूप को प्रकट देखताहै उनसों सहायता और लाभ पाता है सो जिसके हृदयविषे ऐसा मार्ग खुलता है तिसको और अनेक पदार्थोंका भी ज्ञान होता है कि जिनका बखान नहीं कियाजासक्ता है इसीपर महापुरुषने भी कहाहै कि मैंने अपने प्रकाश करके धरती और आकाश को लपेटलिया है और उदय अस्तको मैंने प्रत्यक्ष देखाहै ताते सन्तजनोंकी जो विद्या है सो तिनको अपनेचित्त के मार्ग विषे खुलीहै और उनका जानना इन्द्रियोंके मार्ग करके नहीं हुआ पर प्रथम उन्हों ने भी यत्न और अभ्यास कियाहै इसीपर साईं ने भी कहा है कि प्रथम तुमसब पदार्थोंसेविरक्त और शुद्धहोवहु बहुरि अपने आपको मुझको अर्पण करो और मायाके कार्य्यों विषे आसक्त न होवो इस करके कि कार्य्य तुम्हारे मेरी सहायता करके सिद्धहोवेंगे काहेते कि उदय अस्त विषे मेरी नाईं और कोई समर्थ नहीं ताते मेराही आसरा करो और और किसी कार्य्य की ओर हृदय न देवो और जब तुमने मेरा आसरा लिया तब तुम अपने चित्तको निस्सङ्कल्प कर सब जगत् ते भिन्नहोवो ताते यह जो सब उपदेश और यत्न वर्णन किया है सो जगत् के जञ्जाल और इन्द्रियादिक भोगोंते हृदयकी शुद्धता के निमित्त कहा है ताते जिज्ञासुओं और सन्तोंका आदिमार्ग यही है बहुरि शास्त्रोंकी विद्याको पढ़ना और उनके भेदोंको समझना पण्डितों का मार्ग और विशेषताहै परंतु भी सन्तजनोंकी विद्या ऐसी है कि वह किसीशास्त्र और किसीउपदेशके आधीन नहीं ताते उनके हृदय विषे भगवन्तकी सहायता करके सर्वदा अनुभवका —

वरसताहै सो यह वार्त्ता बहुत पुरुषों को प्राप्तहुईहै और उनकी अवस्था ऐसीही हृढ़हुई है और शास्त्रोंके वचन और अपनी बुद्धिकरकेभी समझा जाताहै तातें तुझको इतना तो अवश्यमेव समझना चाहिये कि इस अवस्था के प्राप्तहोने की प्रतीति तेरे हृदय विषे हृढ़होवे बहुरि सन्तजनोंकी अवस्था और विद्यावानोंका मार्ग और तीसरी उनकी प्रतीतिसों अप्राप्त न होवे और यह जो अवस्था वर्णन विषे आई है सो इस मनुष्यके हृदयकी आश्चर्यता यहीहै और इसीकरके मनुष्यके हृदयकी विशेषता कही है बहुरि इसप्रकारभी अनुमान न किया चाहिये कि यह अवस्था आगेही सन्तजनों और अवतारोंको प्राप्त हुईहै और इससमय विषे किसी को नहीं प्राप्तहोनी काहेते कि आदि उत्पत्ति विषे सब मनुष्यों का हृदय इस पदका अधिकारी होता है जैसे सबलोहा दर्पणका अधिकारी होता है पर जब कोई जङ्गारकरके महामलिन होजावे तब उसकी निर्मलता नष्टहोजाती है तैसेही जिस मनुष्यका हृदय मायाकी तृष्णा और भोगोंकी अभिलाषा करके और पापकर्मों करके मलिन होजाताहै और उसके ऊपर यह बुरे स्वभाव प्रबल होजातेहैं तब निस्सन्देह उसकी मनुष्यता नष्ट होजाती है और उस परमपदके पावनेका अधिकारी नहीं कहलाता इसीपर महापुरुष ने भी कहाहै कि सबही बालकों का एकधर्म्म होताहै पर पीछे माता पिताकी सङ्गति करके उनका निश्चय भिन्न भिन्न होजाताहै इसीपर साईंने भी कहाहै कि तुम्हारामें ईश्वरहों और तुम मेरे उत्पन्नाकियेहुयेहो तब सर्वजीवोंने इस वचनको सत्य करके मानाहै सो इस वचनविषे प्रसिद्धहुआ कि इस अवस्था के प्राप्तहोनेका सबकोई अधिकारी है इस विषे कुछ भेद नहीं जैसे बुद्धिमान्पुरुष इस बातको प्रत्यक्ष जानताहै कि एकसे दो अधिक होते हैं सो यद्यपि उसी ने किसीसे सुनाभी नहीं तौभी इस वचनको निस्सन्देह समझता है तैसेही सर्वजीवों की आदि उत्पत्ति विषे यह निश्चय हृढ़ है कि हमारा उत्पत्तिकर्त्ता भी ईश्वरहै धरती और आकाश को भी उसीने स्थित कियाहै ताते यहवार्त्ता अपने अनुभव और बुद्धिकी युक्ति करके हमने प्रत्यक्ष समझी है कि उस परमपदको प्राप्तहोना केवल उनहीं का अधिकार नहीं इसीपर महापुरुष ने भी कहा है कि मैंभी तुम्हारी नाईं मनुष्य हूं पर भगवन्त की सहायता करके मुझको आकाशवाणी होतीहै ताते इस वचन का तात्पर्य यह है कि जिस पुरुषको ऐसी अवस्था प्राप्तहोवे और सर्व जीवोंको

उपदेश करके कल्याण का मार्ग दिखावे तब उसको आप्त और अवतार कहते हैं और उसके वचन ही धर्मशास्त्र कहलाते हैं और जिसको यह अवस्था भी प्राप्त होवे और उस विषे उपदेश की बलभी होवे पर किसी और आचार्य का उपदेश जगत् विषे वर्तमान होवे और इसकरके वह उपदेश न करे तोभी उस पुरुष की अवस्था कुछ खंडित नहीं होती और तुझको भी इसबातकी प्रतीति उचित है और यद्यपि इस अवस्था के प्राप्तहोने का मूल अभ्यास है पर तोभी भगवन्तकी सहायता करके पहुँच सक्ता है और अपने बलकरके पहुँचना कठिन है काहेते कि मार्गमें विघ्न करनेहारे शत्रुभी बहुत हैं और जो पदार्थ दुर्लभ होताहै तिसका पावनाभी दुर्लभ होताहै और उस वस्तु के प्राप्तहोनेके निमित्त युक्तिभी बहुत चाहती है इसीकारण ते कहा है कि सबही खेती बोवनेवाले अनाजको नहीं पाते और सबही ढूंढनेवाले अपनी प्रियतमवस्तुको नहीं पाइ सक्ते हैं सो यद्यपि अनाजकी प्राप्ति खेती ही करके होती है और वस्तुका पावनी ढूंढने करके होता है तो भी अकस्मात् विघ्नभी होजाता है बहुरि यह जो सब बखाने हुआहै सो इस मनुष्यकी बूझ और उत्तम अवस्था वर्णन करी है और इसका प्राप्तहोना यत्न और पूर्ण गुरुदेवकी सहायता विना सम्भव नहीं होता और जबै जिज्ञासुको यत्न और सद्गुरुकी संगति भी प्राप्तहोवै तौभी सर्वप्रकार भगवन्त की सहायता चाहिये काहे ते कि उसकी सहायता विना कोई कर्म सिद्ध नहीं होता इसी पर महापुरुष ने भी कहा है कि पुरुषार्थ और बड़ाई भी उसही को प्राप्तहोती है जिसको भगवन्त देताहै और धर्मका मार्ग भी वही देखता है जिस को साईं आप देखावे ॥

आठवांसर्ग ॥

मनुष्यके बल वर्णनमें ॥

तातें जान तू कि मनुष्यकी विशेषता और विद्याको जो तैंने भलीप्रकार समझा तब चाहिये कि बलकरके जिसप्रकार मनुष्यकी विशेषताहै सो तिसकी पहिचान इसकरके कि वहभी देवशक्ति है और पशुआदिक में पाई नहीं जाती सो तिसका अर्थ यहहै कि जैसे यह सबही शरीरधारी जीव देवत्रों के आधीनहैं सो वह देवता भगवन्त की आज्ञा पाइकर जीवों के सुखके निमित्त मेघ बरसावते हैं और जिस समय विषे पवन चाहिये है तब पवनको चलावते हैं बहुरि

गर्भविषे जीवों का प्रतिपाल करते हैं और धरतीविषे बनस्पतियों की उत्पत्ति करते हैं इसीप्रकार सबही देवता भगवन्त ने अपने अपने कर्मोंविषे दृढ़ किये हैं वैसेही इस मनुष्य का जो हृदय है सो यहभी देवरूप है और इसविषेभी देवतों की नाईं बलदियाहै इसी कारणते केते शरीरों पर इसकी भी आज्ञा चलती है और इसका जो निज शरीर है सो भी इसके हृदयके आधीन है और सर्व अङ्गों विषे चित्त की आज्ञा वर्तती है जैसे यह वार्ता प्रसिद्ध है कि हाथ की अंगुली विषे चित्त का स्थान नहीं कह सकें पर चित्त की प्रेरणा करके प्रत्यक्ष अंगुली हलती है ऐसेही जिसके चित्तविषे क्रोधका बलहोताहै तब शरीर के अङ्गों विषे पसीना होइ आवताहै सो यह वर्षा की नाईं है बहुरि जब चित्त विषे कामका सकल्प आनि फुरताहै तब इन्द्रियों को चपलता आन होती है और जब भोजन करने लगताहै तब रसना भी जलको डालने लगती है सो इस वार्त्ता को सबकोई जानताहै कि शरीरकी सर्व क्रिया चित्त के फुरने करके होती है बहुरि योंभी है कि केते पुरुष विशेषता और पुरुषार्थ संयुक्त ऐसे दृढ होते हैं कि उनका स्वभाव देवतोंकीनाईं दृढ होताहै ताते उनकी आज्ञा और शरीरों पर चलती है और उनके तेजकरके सिंह भी कांपने लगते हैं और जब वह चाहें तब रोगी पुरुषको अरोग्य करलेवें और जब क्रोध करके देखें तब अरोग्य मनुष्य भी रोगी होजावे और जो पुरुष उनसे दूरहोवे तब उसको संकल्प की खैंच करके निकट ले आवते हैं और उसके चित्तको खैंचलेते हैं बहुरि जब इसप्रकार चाहें कि मेघ बरसे तब वर्षा होनेलगे सो यह सबही वार्त्ता प्रसिद्ध और निश्चयहोती है और बुद्धिकी युक्तिकरकेभी पहिचाना जाताहै सो सन्तजनों का बल इससे भी अधिक है बहुरि दृष्टिदोष और मन्त्र यन्त्र आदिक जो फुरना है सो यह भी मनुष्यके हृदय की विशेषता और बलहै सो वह बलही और शरीर विषे प्रवेश करता है पर जिसका हृदय मलिन होताहै सो तिसकाबल भी ऐसा होता है कि जब किसी सुन्दर पशु को देखताहै तब उसकी ईर्षा और दोषदृष्टिकरके तत्कालही वह पशु नष्ट होजावताहै सो यह भी मनुष्यके हृदयका बलहै पर इसविषे इतना भेदहै कि जिसके बलकरके जीवों का हृदय शुभमार्ग विषे दृढहोवे तब उसको शुद्ध सात्त्विकी बल कहते हैं और जिसके बल करके जीवों को शारीरिक अथवा धन का सुख प्राप्त होता है तब उस को सिद्धता और ऐश्वर्य कहतेहैं और जिसके बल करके उपाधि और

खेद उत्पन्नहोवै सो तिसको तामसीबल कहते हैं पर तोभी शुद्ध सात्विकीबल और ऐश्वर्य और यन्त्रमन्त्रादिक जेते तामसीबल हैं सो यह सबही इसमनुष्य के हृदयका बल और पुरुषार्थहै पर स्थूलदृष्टि करके देखिये तो इन्हों विषे बड़ा भेदहै सो इसका बखानभी सम्पूर्ण इसग्रन्थ विषे कहा नहीं जाता पर जो पुरुष इस वर्त्तनके भेदको नहीं समझैगा तो तिसको सन्तजनोंकी अवस्था की पहिचान कुछभी नहीं होवैगी और श्रवणमात्रही वह पुरुष उनको सन्त जानता है पर तोभी अवतारों और सन्तजनों की जो अवस्थाहै सो यह सबही इसी मनुष्य का पुरुषार्थहै और इस अवस्था के भी तीन लक्षण हैं उनमेंसे प्रथम यह है कि संसारीजीव जिसभेदको स्वप्नकरके पहिचानते हैं सो सन्तजनोंको जाग्रत्विषेही प्रत्यक्ष भासताहै और दूसरा यह है कि इतरजीवोंका संकल्प अपनेही शरीर में प्रवेश करताहै और सन्तजनोंका संकल्प सर्व शरीरों विषे प्रवेश करजाताहै पर इस संकल्पके प्रवेश करके जीवोंका हृदय शुद्धमार्गको पाताहै बहुरि तीसरा यह है कि और जीव जिस विद्या को पढ़कर प्राप्त होते हैं सो विद्या सन्तजनों को बिनापढ़ेही अपने अन्तःकरणविषे फुर आवती है इसकी युक्ति यहहै कि जो पुरुष बुद्धिमान् शुद्धचित्त होता है सो तिसको कितनी विद्या अपने हृदय मेंही भास आती है और अनुभवभी इसीको कहते हैं इसीपर साईंने भी कहा है कि केते पुरुषोंकी विद्या अपनेही अनुभव करके होती है ताते जिस पुरुषमें यह तीनलक्षण सम्पूर्ण होते हैं तब उसकी अवस्था सन्तजनों और अवतारों आचार्योंकी होती है पर जब उसपुरुषकी आज्ञा और उपदेश जगत्विषे वर्त्तमानहोवै तब उस को आचार्य्य कहते हैं और जब वैराग्य करके सकुचता है अर्थात् उपदेश नहीं करताहै तब उसकी सनकादिक अवस्था कहलाती है पर सतजनों की अवस्था विषेभी बड़ाभेद होताहै किसी की अवस्था उत्तमहोतीहै और किसीकी मध्यम और किसीकी निकृष्टहोती है पर सम्पूर्ण सन्त उसीही को कहते हैं कि जिसमें यह तीनोंलक्षण सम्पूर्णहोवें पर यह तीन लक्षणभी इसनिमित्त कहे हैं कि इनका कछुक अंश जीवों विषे भी पायाजाताहै जैसे स्वप्न और संकल्पका सत्यहोना और अनुभव जो कहआये हैं सो मनुष्य इनतीनों करके वह तीनलक्षणभी समझताहै काहेते कि इसमनुष्यका यही स्वभावहै कि जिस अवस्थाका अंश इसी विषे होवाहै उसविषे प्रतीतिभी करताहै इसीकारण करके कहाहै कि भगवन्तकी

पूर्णताईको भगवन्तही ठीक जानताहै और कोई नहीं पहिचानसकता सो इसका तात्पर्य यहहै कि आचार्यों और सन्तोंविषे इन तीनलक्षणों से अधिक और भी अनेकलक्षण हैं पर हमको उनकी पहिचान कुछ नहीं काहेते कि उनका अंश हमारेविषे कुछ पाया नहीं जाता इसी कारणते कहाहै कि जैसे भगवन्तको आप भगवन्तही यथार्थ पहिचानताहै तैसेही सन्तजनोंकी अवस्थाको सन्तजनही पहिचानतेहैं इतरजीव नहीं जानसकते सो इसका दृष्टान्त यहहै कि जब हमारे देश विषे निद्राकी मिलता न होती और कोई पुरुष हमको यह वार्त्ता सुनाता कि अमुकदेशविषे पृथ्वीपर लोग पड़ेहुये दृष्टिआतेहैं पर उनविषे बोलना देखना सुनना कुछ नहीं रहता और उनकी चेष्टाभी शून्य होजाती है और फिर समय पायकर सुचेत हो उठते हैं सो जब हमको निद्रा न होती तब हम कदाचित् इस वार्त्ताको न समझते काहेते कि यहमनुष्य जो कुछ देखताहै सो उसीपर प्रतीति करताहै इसीपर साईंनेभी कहाहै कि यद्यपि मैंने तुमको विद्या समझनेका अधिकार दियाहै पर तोभी जबलग मैं तुमको मार्ग न दिखाऊं तबलग तुमको उस विद्याके भेदकी युक्ति नहीं खुलती ताते तू इसवार्त्ता को आश्चर्य न जान कि सन्तजनोंविषे कितने लक्षण ऐसेभी होतेहैं कि उनको और कोई पहिचान नहीं सकता और वह सन्त उनलक्षणों करके परमानन्दको पाते हैं जैसे यहवार्त्ता प्रसिद्धहै कि जिस पुरुषको राग और गीतकी पहिचान नहींहोती तिसको राग और गीतके श्रवण करनेसे आनन्द कुछ नहीं होता और जब कोई उसको और गीत शब्दका अर्थ समझावै तोभी नहीं समझता काहेते कि वह उसको जानताही नहीं बहुरि जैसे जन्मके अंधेको तेजरूप और सुन्दरताई का ज्ञान कुछभी नहीं होता तैसेही भगवन्तकी सामर्थ्य के विषे यह बात कुछ आश्चर्य नहीं कि आचार्यों और सन्तजनोंको ऐसीभी कितनी अवस्था प्राप्तहोती है कि उनको और जीव नहींजानते॥

नवांसर्ग॥

पूर्वसर्गके उत्तरके बतानेमें॥

ताते जान तू कि इससेआगे जो कुछ वर्णनकियाहै सो इसकरके तैंने मनुष्य की विशेषताको समझा और जिज्ञासुओंका मार्गभी तैंने पहिचाना पर जब तैंने योगीजनों से यह सुनाहोवै कि अन्तरीय अभ्यास मार्ग विषे यह विद्या प्रत्यक्ष

डालती है तो तुझको इसवचनने का तिरस्कार करना प्रमाण नहीं काहेते कि यह वचन निस्सदेह सत्यहै कि यह इन्द्रिय और इन्द्रियादिक विद्या जो स्थूलहैं सो हृदयकी एकाग्रताविषे यहभी पटलहै और इस करके चित्त विक्षेपताको प्राप्त होता है सो इसका दृष्टांत यह है कि इस मनुष्यका हृदय तालावकी नाईं है और यह पांचों इन्द्रिय तालावविषे जल प्रवेशकरने के मार्ग हैं सो जब कोई इस तालाव के भीतर से निर्मलजल निकासाचाहे तब इसका उपाय यह है कि प्रथम जो उस तालावविषे बाह्यजल है तिसको निकासे बहुरि उस मलिन कीचको दूरकरे फिर उस तालाव को खोदे और जल प्रवेश करनेवाली मोहरियों को रोंके तब उस तालावविषे निर्मलजल उत्पन्नहोवे पर जबलग वह बाह्यकाजल और कीच दूर न होवे तबलग निर्मल जल कदाचित् नहीं निकसता तैसेही चित्त जब इन्द्रियादिक विद्यासे रहित न होवे तबलग वह सूक्ष्मविद्या कदाचित् नहीं प्रकटहोती ताते जब यह पुरुष स्थूल जगत्की जानताको विस्मरणकरे और हृदयके अभ्यास विषे दृढ़ होवे तब निस्सदेह अनुभवविद्याको पाताहै और स्थूलविद्याको जो पटल वर्णन कियाहै सो इसनिमित्त कहाहै कि जब यह मनुष्य किसी मत और पन्थको ग्रहण करताहै तब उसकी विद्या और युक्तियों को पढ़कर प्रतीति करलेताहै फिर एक दूसरे के मतको खण्डन किया चाहताहै और उसके बाद विवाद विषे दृढ़ होताहै तब ऐसे जानताहै कि इस विद्याते इतर और विद्या कोई नहीं बहुरि तिससे पीछे जब किसी यथार्थ वचनको श्रवण करताहै और समझता भी है पर तो भी अपने हृदयविषे ऐसा अनुमान करताहै कि जैसी विद्या मैंने आगे पढ़ी है सो यह वचन उससे विपर्यय है ताते उन वचनों को यथार्थ नहीं जानता इसीकारण से यथार्थ विद्याको प्राप्त नहीं होता और संसारी जीव जिस विद्याको और मतको निश्चय करते हैं सो विद्या यथार्थ ज्ञानकी त्वचाहै अर्थात् सारवस्तु नहीं और यथार्थ ज्ञान उसको कहते हैं कि उस गुह्यभेद को भलीप्रकार समझे पर जैसे दनकी त्वचा जब दूर होती है तब उसका सर्वरस और गूदा प्रकट होताहै तैसे जब पन्थों और मतोंका निश्चय दूर होताहै तब यथार्थ वस्तुका ज्ञान प्रकट होताहै ताते जान तू कि जो पुरुष वादविवादकी विद्याको पढ़ताहै उसको यथार्थ ज्ञानकी विद्या नहीं प्राप्त होती और वह जानताहै कि जो विद्या मैंने पढ़ी है सो यथार्थरूप यही विद्याहै ताते यह अभिमानही उसको पटल होताहै इस करके कि ऐसी विद्या पढ़नेवाले

को अवश्यमेव अभिमान उपजताहै और जब वह पुरुष अभिमानी न होवे तब उसको वह विद्या पढ़ना नहीं होती और सारवस्तु के ज्ञान को पाताहै और उसकी अवस्था भी उत्तम होती है और वह यथार्थ मार्ग विषे चलताहै पर बहुत से विद्यावान् तो ऐसे होते हैं कि अपना जन्म मिथ्याप्रतीति विषेही खोते हैं और वह स्थूल प्रतीतिही उनको पढ़ना डालती है और जो पण्डित बुद्धिमान होताहै सो झूठी प्रतीति नहीं करता कदाचित् भी और संशयों से निर्भय होताहै शास्त्र द्वार वचन विषे जो विद्या को पढ़ना कहाहै सो तिसका अर्थ तुझको समझना योग्य है और तिरस्कार करना प्रमाण नहीं पर तौभी यह वचन उसको कहना योग्यहै जिसको अनुभव विद्या खुली है और यह जो निन्दक झूठे लोगहैं तिनको अनुभव विद्या नहीं प्राप्त हुई थोड़े से सूक्ष्मवचन सन्तजनों के उन्होंने पढ़ लिये हैं और सर्वदा करतूति उनकी यही है कि सदैव शरीर को धोते रहते हैं और मैली गुदड़ी और आसनों को बनावते रहते हैं और समझ बिनाही विद्यावानों और विद्याको निंदा करते हैं सो तिनको अति दण्ड देना उचितहै काहेते कि यह जगत का मार्ग खोनेवाले हैं भगवत् और भागवतों से विमुखहैं इसकारण कि भगवत् और सन्तजनों ने विद्यावानोंकी स्तुति करी है और सर्वजगत को विद्या पढ़ने का उपदेश कियाहै और यह जो पापी भाग्यहीन लोगहैं सो उस अनुभव की अवस्थाको भी नहीं प्राप्त हुये और विद्यामें भी हीन होते तो इनको विद्यावानों की निंदा करनी कैसे प्रमाणहोवे सो ऐसे पुरुषोंका दृष्टान्त यहहै कि जैसे किसीने सुना होवे कि स्वर्ण से रसायन उत्तम है काहेते कि रसायन करके अनेक स्वर्ण उत्पन्न होता है और जब कोई उसको स्वर्ण देने लगे अङ्गीकार न करे और कहै कि स्वर्ण किस कारण आताहै और इसका मोल भी तुच्छहै वा नेम हमको तो रसायन चाहिये है क्योंकि रसायन स्वर्ण का मूल है पर जब यह पुरुष स्वर्ण भी न लेवे और उसके पास रसायन भी न होवे तब वह पुरुष निर्द्धन और भाग्यहीन रहता है और मूर्ख है काहेते कि रसायन की विशेषता सुनकरही प्रसन्न होता है तैसेही सन्तजनों की अवस्था रसायन की नाईं है सो यह वार्ता निस्सन्देह है कि रूपे और स्वर्णसे रसायन का पाना विशेष है तैसेही सन्तजनों की अवस्था विद्यावानों से विशेष है बहुरि इस लिये एक और भी भेदहै कि जैसे किसीके पास इतनीही रसायन होवे कि १०० मोहर प्रमाण स्वर्ण उसमें होसके और किसी

और पुरुष के भास सहस्रमोहरहोवें तब उस सहस्र मोहरवाले पुरुष से सो मोहर का रसायनवाला विशेष नहीं होता काहे से कि रसायनकी विद्या और उसके ढूंढ़नेवाले पुरुष जगत् विषे बहुतहैं पर रसायनकी पूर्ण विद्या प्राप्त होनी कठिन है इसी कारणसे चिरकाल में किसी विरले को प्राप्त होती है तैसेही हृदय के अभ्यास का जो मार्ग है सो यद्यपि महाउत्तम है पर इसकी पूर्णताई को पहुँचना महाकठिन है ताते योंभी पहिचानना चाहिये कि जिस पुरुषको धनिध्यान अथवा मंत्रयंत्र का कुछ प्रत्यक्ष होता है तौभी वह पुरुष सर्व विद्यावानों से विशेष नहीं होता काहेते कि जब किसी को प्रथम साधन करके कछुक एकत्रता होती भी है तौभी बहुत पुरुष पीछेको पसरजाते हैं अथवा किसी संकल्पकरके बावले होजाते हैं और वह जानते हैं कि हम बड़ी अवस्थाको प्राप्तहुयेहैं ताते ऐसा कोई विरलाही होता है जो अपने हृदयकी शुद्धताकरके पूर्णपदको पहुँचे और बहुत तो विक्षेपताको प्राप्त होजाते हैं जैसे सत्यास्वप्न भी कोई होताहै और विशेष करके तो चित्त का भ्रमही होताहै ताते विद्यावानोंसे वह पुरुष विशेष कहाजाताहै जिस की अवस्था ऐसी होवे कि जिस विद्याको और जीव पढ़कर समझें सो तिसको बिना पढ़ेही प्राप्त आवे सो यह अवस्था महादुर्लभ है ताते तुझको उचित है कि सन्तजनोंकी अवस्था और उनकी विशेषतापर भी तेरी प्रतीतिहोवे और पाखण्डी मनुष्योंके वचनों करके विद्यावानोंका निरादर भी न करे तब तेरा धर्म नष्ट न होवे बहुरि जब तू इसीप्रकार प्रश्न करे कि इस मनुष्यकी बुराई भलाई उत्तम भाग जो भगवंतकी पहिचानि करके आगे कहाहै सो इस भेदको क्योंकर पहिचानिये तब इसका उत्तर यह है कि जिस पदार्थ करके किसी को प्रसन्नता और आनन्द प्राप्त होताहै तब वही पदार्थ उसपुरुषकी भलाई कही जाती है बहुरि प्रसन्नता और आनन्द उस पदार्थ विषे प्राप्त होताहै जो पदार्थ इसके स्वत स्वभाव अनुसार होता है और स्वतं स्वभाव उसीको कहते हैं कि जिस पदार्थ के निमित्त इस जीवको भगवन्तने उत्पन्न कियाहै जैसे कामकी प्रसन्नता यहहै कि अपनी इष्टवस्तु को प्राप्त होना और क्रोधकी प्रसन्नता यहहै कि अपने शत्रु को जीते बहुरि श्रवणों को सुख सुन्दर शब्द और रागविषे होताहै तैसेही बुद्धिकी प्रसन्नता और भलाई यहहै कि कामों के भेदको पहिचाने काहेते कि इसका अपना स्वभाव भी यहहै और भगवन्तने भी इस बुद्धिको इसी निमित्त उत्पन्न कियाहै बहुरि राग और

क्रोध और पाचों इन्द्रियों के भोग तो पशुओं विषे भी पाये जाते हैं परन्तु यह स्वभाव मनुष्यों में और अधिक है कि जिस पदार्थ के भेदको नहीं जानता तब निस्सन्देह उस पदार्थको ढूँढ़ा करताहै और जानना चाहताहै बहुरि जब उसके भेदको समझताहै तब प्रसन्न होकर उसपर बड़ाई करताहै और यद्यपि वह पदार्थ नीच होवे तोभी उसके ज्ञानविषे ऐसा प्रसन्नहोताहै कि उस प्रसन्नताको रोंकनहीं सक्का जैसे शतरञ्ज खेलनेवाला पुरुष शतरञ्जकी क्रिया बताने से धैर्य नहीं कर सक्का और योंभी समझताहै कि मैं भलीप्रकार खेलताहूं ताते उस प्रसन्नता को प्रकट किया चाहताहै सो जब तैंने इसवचनके भेदको समझा कि इस मनुष्यका स्वस्वभाव पहिंचानहै तब ऐसे जान कि जो पदार्थ जितनाही जानने योग्य विशेष और उत्तम होताहै तितनाही उसकी पहिंचानविषे आनंदभी अधिकहोता है जैसे कोई वज़ीरके भेदको जानताहै तब प्रसन्नहोताहै और जो पुरुष बादशाह के भेदको जाने तब वह उससे अधिक प्रसन्नताको पाताहै बहुरि शतरञ्जकी क्रिया जाननेवाले पुरुष से ज्योतिष और वैद्यकक्रियाका वेत्ता अधिक प्रसन्न होता है ताते यह वार्त्ता प्रसिद्धहै कि जब जानने योग्य पदार्थ उत्तम होवे तिसकी पहिंचान विषे आनन्द अधिक होताहै ताते कोई पदार्थ भगवन्तके समान उत्तम नहीं काहेते कि सर्व पदार्थोंकी विशेषता उसीकी शक्तिकरके होतीहै और वह सर्व सृष्टिका ईश्वरहै और जो कुछ जगत्विषे आश्चर्य है सो सब उसीकी कारीगरी है इसीकारण से भगवन्तकी पहिंचान के समान और पहिंचान कोई नहीं और उसके दर्शन समान और दर्शन सुन्दर कोई नहीं सो वह पहिंचान और दर्शन इसमनुष्यका स्वस्वभाव है और इस जीवको भगवत् ने अपनी पहिंचान के निमित्त उत्पन्न किया है ताते इस मनुष्यकी भलाई और पूर्णताई भगवत्की पहिंचान विषे है पर जिस पुरुषके हृदयमें भगवत्की पहिंचानकी प्रीति न होवे तब जानिये कि उसका हृदय रोगीहै जैसे किसी पुरुषको अनाजकी रुचि न होवे और माटीको प्रीति संयुक्त खावे तब वह रोगी कहलाताहै और जब उसका उपचार न करे तब मृत्युको पाताहै और इस जगत् विषे भाग्यहीन कहाजाताहै तैसे ही जिस मनुष्य को विषयों की प्रीति अधिकहोवे और भगवत्की प्रीतिसे शून्य होवे तब उसका हृदय रोगी कहाजायगा पर जब वह भी मानसी रोगका उपचार न करे तब परलोक विषे मन्दभागी होता है और उसकी बुद्धि नष्ट होजाती है

और महादुःखी होता है काहेते कि इन्द्रियादिक भोगोंका सम्बन्ध इस शरीर के साथ है सो मृत्युके समय यह शरीर दूर होजाताहै ताते सर्व भोग भी नष्टताको पाते हैं और वह जीव भोगोंकी खैंचाविषे बड़े कष्टको प्राप्त होता है ताते परलोक विषे भाग्यहीन कहलाता है और भगवत् की पहिचानका जो सुख है तिसका सम्बन्ध हृदय के साथ है ताते वह सुख मृत्यु के समय अधिक होता है काहेते कि विक्षेपदायक पदार्थ सब दूर होजाते हैं बहुरि जितनी कुछ इस मनुष्य के हृदय की विशेषता कही है सो इस ग्रन्थ विषे इतनाही बहुत है पर यह सबही बखान इस जीव के स्वभावों का वर्णन किया है बहुरि इस मनुष्य का जो शरीर है सो इस विषेभी भगवन्तने बड़े आश्चर्य गुण उत्पन्न किये हैं और सर्व अङ्गों विषे अनन्त गुण उपजाये हैं और इसी शरीर विषे कितनी नाडी और अस्थिहैं सो सभोंके आकार और गुण भिन्नभिन्न बनाये हैं और कर्मभी उनके भिन्नभिन्न सिद्धहोते हैं परन्तु इन सर्व अङ्गोंते अचेतहै और यों तू जानताहै कि हाथ ग्रहण करने के निमित्त हैं और चरण चलने के निमित्त और रसना बोलने के निमित्त है पर यह जो तेरे नेत्रहैं तिनको सात परदेकर बनायाहै बहुरि जब एक परदा दूर होजावे तब नेत्रोंकी दृष्टि मन्द होजाती है सो तुझको यह पहिचान कुछनहीं कि यह सातपरदे किस निमित्त बनाये हैं और सभोंविषे देखने की क्रिया किसप्रकार राखी है बहुरि नेत्रोंका जो आकारहै सोतो प्रकटही अल्प मात्रहै पर इनकी दृष्टि कितनी फैलती है और इनकी दृष्टि और विधिका वर्णन करिये तबतो कितने और ग्रन्थ चाहिये ताते तुझको इतना पहिचानना योग्य है कि इस शरीरविषे मूलचक्र से आदि लेकर जो स्थान बनाये हैं तिनके बनावने का प्रयोजन क्याहै सो प्रथम इस शरीर विषे कलेजा इस निमित्त बनाया है कि भिन्नभिन्न आहारों को परिपक्व करके रुधिर बनाताहै बहुरि वह रुधिर सर्व नाड़ियों में प्रवेश करताहै और उसका आहार सब अङ्गों को पहुँचताहै बहुरि एक ऐसा स्थानहै कि जब वह रुधिर परिपक्व होताहै तब उसका जो मैल शेष रहता है तिसको गिराय देता है बहुरि उसी रुधिर विषे कछुक भाग उत्पत्ति होते हैं तब उसको पित्ता दूरकरदेता है और प्रथमहीं जो रुधिर कलेजे से बाहर निकसता है तब पतला और जलसहित होता है सो उस जलको गुरदा रुधिर से खींचलेताहै बहुरि उस जलके अंशको कुलिया भिन्न करके लहूके स्थानमें

हारदेती है तब वह रुधिर मैल और झाग और जलके अंगमें शुद्ध करि ना-
डियों में प्रवेश करता है फिर जब मन आदिकोंविषे किसी प्रकारका पित्त हो जाय
तब शरीरविषे रोगउत्पत्ति होती है ताते प्रसिद्ध हुआ कि सूक्ष्म और स्थूल
शरीरके जो अङ्ग हैं सो भगवद्‌ने अपने कार्य के निमित्त बनाये हैं और शरीरकी
रक्षा इनहीं करकेहोती है बहुरि यह जो जीवका पिण्ड है सो यद्यपि देखने में
इसका आकार अल्पसा भासता है तोभी ब्रह्माण्डकी नाईं है और जितने पदार्थ
ब्रह्माण्डविषे बनाये हैं तिनके अंश पिण्डविषे भी प्रवेश हैं जैसे अस्थि पर्वतों
की नाईं हैं और रोमावली वनस्पति हैं और पसीना मेघकी नाईं है शीश आ-
काश और इन्द्रियां लोकपाल हैं सो इनका व्याख्यान करना बड़े विस्तार करके
होताहै परन्तु तात्पर्य यह है कि ब्रह्माण्ड विषे यावत् पदार्थ और जीव हैं सो तिनका
अंश पिण्ड विषे सबही पाया जाता है जैसे शूकर कूकर पशु प्रेत देवता और पक्षी
आदि कहे हैं सो तिन के स्वभाव भी इस मनुष्य के शरीर विषे पाये जाते हैं बहुरि
ब्रह्माण्ड विषे यावत् व्यवहार हैं तिनका अंश भी शरीर विषे प्रसिद्ध है जैसे जठ-
राग्नि जो आहार को पचाती है सो मानो रसोई करनेवाली है और जिस शक्ति
करके आहारका रस खींचता है और मैलको भिन्न करता है सो गृहिणी की नाईं
है और जिस अङ्ग करके रुधिरका दूध और वीर्य बनता है सो धोबीकी नाईं है
और जो अङ्ग जलके अंशको लघुशंका स्थान विषे डालता है सो मानो दास है और
जिस करके आहार का मैल बाहर निकलता है सो मानो भङ्गी है और
जिस करके [illegible] शरीर विषे क्रोध भी है और देह को [illegible] होता है सो
ठग्गर और चोर की नाईं हैं बहुरि जिस करके बादी पित्त कफ का कोप निवृत्त
होता है सो धर्मात्मा राजा की नाईं है पर इसका वर्णन करना भी बहुत विस्तार
होताहै और तात्पर्य यह है कि तुझको ऐसी पहिचान चाहिये है कि तेरे शरीर
विषे भिन्न भिन्न स्वभाव और गुण उत्पत्ति किये हैं और सब ही तेरी टहल विषे
सावधान हैं बहुरि जगत् आदिक होकर [illegible] रहता है [illegible]
लोग नहीं जानते और तू उनको जानता नहीं और जिस [illegible]
टहलुवे बनाये हैं सो तिसको तू [illegible] जानता पर जब कोई मनुष्य
एक बार तेरी टहल के निमित्त अपने टहलुवे को भेजे तब [illegible]
[illegible]

शरीरकी इहल विषे जगतमें हैं ओ ऐसेमें सावधान है किन्तुक पलि भी तेरी सेवाके आधीन तिसहि किसे विनेविष्ठ औगर्वक्रमा हूआ जो तिन भी स्मरण नहीं करता जिह हरि इसगरहिकी नहीं इनतिसके ओसइस के आगे विषे जो गुण रचे हैं तिसकी विद्यानी ओपारहे ओर सिवही लोग इस विद्या से जानते हैं पर जबकोई इसशरीरकी नवियोंको मर्दनामी है तो भी चैम होने के निमित्त पड़ता है ताते शरीरकी विद्याको भी इस निमित्त महत उपयोगी है कि इस विद्याको पढ़कर भगवत् की कारीगरीको पहिचानते तब उस पुरुषको निसन्देह भगवत् की महिमा प्रसिद्ध होती है सी भगवत् का पहिचानना यह है कि प्रथम शरीर और जीवके उत्पन्न करनेवाले महाराजको ऐसा समझे जाने कि उसकी सामर्थ्य विषे दीनता और पराधीनता का भी अंश कुछ भी नहीं है जो कुछ कर्ता चाहता है सो करसकता है जैसा थी कि बूंदसे इसने यह शरीर उत्पन्न किया है सो जिसी भगवत् मैं ऐसी सामर्थ्य है तिसको समर्थ्य विषे शरीरका नाश हुये पश्चात् जिवाय लेना कुछ कठिनता नहीं इसी कारणसे भगवत् का कारीगरी और सुन्दरी है वान किया जिसका है सृष्टि ऐसेसे ही किन्त भावित ऐसा ज्ञान स्वरूप है जिसका ज्ञान सर्व जगतकी विषे भरपूर है और आंखादि नाना प्रकार के आश्चर्य हो इनके विषे गुण हैं सो सबही उसकी विद्याकर सिद्ध हुये हैं यह ही तीसरा गुण महाराज का ऐसे भी प्रतीत होता चाहिये जो कि वह परमात्मा दयालु है और सर्व जीवों पर उसकी अमित करुणा है क्योंकि जिस जिस जीवको जो कुछ चाहिये था सो सबही दिया है और कृपणता करके उसने कुछ नहीं राखा जैसे शिर ओ हृदयस्थान से लेकर जो कुछ अवश्यही चाहिये था सो सबही दिया और जिन अंगोंकरके इस जीव का प्रयोजन और स्वार्थ सिद्ध होता है जैसे हाथ पावं रसना आदिक सो सबही दिये हैं और जिसविषे इस जीवका प्रयोजन ओ न था और उस पदार्थ का होना अवश्यही चाहिये सो भी न था परन्तु उसके सुन्दरता और शृङ्गार निमित्त होना था सो वह सबही दिये हैं जैसे नेत्रोंकी समता अधरोंकी ललाई नखोंकी स्याही भृकुटी कुटिलता पलकोंकी समानता और इस कीनाई करके अङ्ग और भी सुन्दरता के निमित्त दिये हैं यह ही भगवत् ने ऐसी कृपा मनुष्यों पर ही नहीं करी ताते सर्व जीवोंपर उसकी दया समान है इसी कारण से मच्छर और मक्खी पर्यन्त जीवों को जो कुछ चाहिये था सो सबही दिया है जैसे बदन और आकार और नाना

प्रकारके चिह्नों करके सुन्दर बनाये हैं सो इनजीवोंके शरीरोंकी उत्पत्तिका पहिचानना भी इसप्रकारकरके भगवत्‌के पहिचाननेकी कुञ्जीहै और विद्याके पढ़नेकी विशेषता यही है कि इसकरके भगवतकी बड़ाईको पहिचाने जैसे कोई पुरुष किसी कवीश्वरकी कविता और किसीकी कारीगरीको भलीप्रकार समझता है तब निस्सन्देह उसकवीश्वर और कारीगर की बड़ाई को पहिचानलेताहै तैसेही यह जेती कुछ भगवत् की कारीगरी है सो महाराज के पहिचानने की कुञ्जी है और उसके सर्व गुणोंको लखावनेवाली है पर तौभी शरीरकी उत्पत्ति का जो पहिचाननाहै सो हृदयकी पहिचान के निकट तुच्छमात्रहै काहेते कि यह शरीर घोड़ेकी नाईं है और चित्त सवारहै ताते उत्पत्तिका जो तात्पर्य है सो हृदयरूपी सवारही है इसकरके कि घोड़ा सवारके निमित्त होताहै और सवारकी उत्पत्ति घोड़ेके निमित्त नहीं वहुरि इतना कुछ जो वर्णन हुआहै सो इस करके प्रसिद्ध हुआ कि तू अपने शरीरके भर्मों को भलीप्रकार नहीं पहिचानता और यह वार्ता प्रकटहै कि तुझको तेरे स्वरूपसे निकट और कोई पदार्थ नहीं सो जब तू अपने आपकोही न पहिचाने तब और किसी पदार्थ के पहिचानने का अभिमानी किसप्रकार होताहै सो इसका दृष्टान्त यहहै कि जैसे कोई पुरुष ऐसानिर्धन होवे कि अपने शरीरके आहारको समर्थ न होवे और इसप्रकार अभिमान करके कहे कि सारे नगर के अभ्यागत मेरेही गृहसे भोजन पावते हैं सो यह वार्ता असम्भवहै और ऐसा अभिमान करनेहारा पुरुष मूर्ख और झूठा कहाजाताहै॥

दसवांसर्ग॥

जीवकी पराधीनता के वर्णन में॥

ताते जान तू कि बड़ाई और शोभा और विशेषता इस मनुष्य के हृदयरूपी रत्नकी तैंने भलीप्रकार समझी तब आगे यों भी जानना चाहिये कि यद्यपि भगवत्‌ने ऐसारत्न तुझको दियाहै पर तौभी तुझसे गुप्तकर राखाहै सो जबलग तू इस रत्नको न खोजे और उससे असेतहोवे और व्यर्थ गँवावे तब इस करके तेरी परमहानि होती है ताते तू पुरुषार्थ करके अपने चित्तको खोज और माया के जञ्जालों से विरक्त हो तब वह तेराचित्तरूपी रत्न पूर्णताको पहुँचे सो उसकी पूर्णता और बड़ाई चैतन्यतारूपी सूक्ष्मदेश विषे प्रकटहोती है काहेते कि चैतन्यदेश विषे शोकसे रहित आनन्दको पाताहै और अविनाशी सत्यस्वरूप को

देखता है और पराधीनता ते रहित सामर्थ्यता को प्राप्तहोता है और अविद्याते रहित ज्ञानको पाताहै सो भगवत्का निर्मल स्वरूप यही है और यह जीव भी सूक्ष्मदेशमें इसीस्वरूप विषे लीन होताहै बहुरि इस स्थूलदेश विषे जो जीवकी विशेषता कहीहै सो इस निमित्त कही है कि उस परमपदके पानेका अधिकारी है और जबलग ऐसे परमपद को न प्राप्त होवे तबलग यह जीव ऐसा पराधीन और महाहीनहै कि इसकी हीनता वर्णनविषे नहीं आती भूख प्यास शीत उष्ण रोग शोक दुःख मोह क्रोध तृष्णा आदिक सर्व स्वभावों के अधीनहै बहुरिइस जीवके शरीरका जो सुखहै सो भी कडुवे औषधोंविषे राखाहै और जो भोग इस को प्रियतम लगते हैं सो तिनकरके रोग को प्राप्त होताहै बहुरि इस मनुष्य की विशेषता जो है सो विद्या और बल अथवा धैर्य और श्रद्धा और सुन्दरताकर होती है सो जब तू इस मनुष्यकी ओर देखे तब जाने कि ऐसा मूर्ख और कौनहै काहेसे कि जब एक नाड़ी इसके शीशविषे विपर्यय होजावे तब बावला होजा- ताहै और नाशताके भयको पाताहै और यद्यपि इसका औषध इसके निकटही पड़ाहोवे तौभी जान नहींसक्ता कि मेरा औषध यही है और मुझको रोग क्याहै बहुरि जब तू इसके बलकी ओर देखे तब जाने कि इसके समान बलहीन और पराधीन भी कोई नहीं काहेते कि यह मनुष्य एक माखी सेभी आपको बचाय नहींसक्ता और जब मच्छरही इसके ऊपर प्रबल होवे तौभी उसके काटने से महा- दुःखी होताहै और जब इसके पुरुषार्थ और धैर्य की ओर देखिये तब ऐसा अधीर प्रकटहोताहै कि एक पैसे के गिरनेकरके शोक और दुःखको पाताहै और जब भूखकेसमय एक ग्रासभी कमपिले तब मूर्च्छा को प्राप्तहोताहै ताते इस मनुष्य स- मान नीच और कोई नहीं बहुरि जब इस मनुष्यकी सुन्दरता का विचार करिये तब इसका शरीर ऐसा मलिन है कि मानो मलमूत्रके भवन पर त्वचा लपेटी है और जब एकदिनविषे दो बार न धोवे तब ऐसी दुर्गंध उत्पन्न होती है कि आपने आपही ग्लानि करनेलगताहै और और पुरुषभी उससे ग्लानि करनेलगतेहैं सो जिस शरीरकी सुन्दरताका अभिमान करताहै और जो शरीरका इसको आधार है सो तिसके मलको अपने हाथोंकरके नित्यप्रति आपही धोताहै, इसपर एक वार्ता है कि एक महापुरुष मार्गविषे चलाजाताथा और उसमार्गविषे एक घा- ड़ा विष्ठा को डालतेथे सो तिसकी दुर्गंधकरके लोग नासिकाको मूंदतेथे तब

लोगोंसे उस महापुरुष ने कहा कि हे भाई! तुमकोभी कुछ सुनाईदेता है यह विष्ठा मुझसे यह कहती है कि कल्हके दिन में बाजारविषे धरीहुई थी और सबलोगों ने मुझको दाम देकर मोललियाथा परन्तु मैंने एकरात्रिपर्य्यन्त तुम्हारी सङ्गति करी है तिसकरके ऐसी मलिनताको प्राप्तहुई हों इसी हेतुसे जब विचारकरके देखिये तो मुझको तुमसे भागना उचितहै कि तुमको मुझसे, सो इसका तात्पर्य्य यह है कि यह जीव इस शरीरविषे महादीन और पराधीन है और इसकी अवस्था भी महानीच है ताते परलोकविषे इसकी हीनता और विशेषता प्रकट होवेगी अर्थात् जब यह पुरुष भले स्वभावोंके पारस साथ निर्मल करलेवे तबही पशु और सिंहों के स्वभावों से मुक्तहोकर देवतों के पदको पाय सकेगा काहे ते कि पशुओं की क्रिया और कर्मों का दोष नहींलगता और यह मनुष्य अशुभकर्मोंकरके नरकोंको भोगताहै ताते इस पुरुष को चाहिये कि जिसप्रकार अपनी विशेषता को पहिचानताहै तैसेही अपनी नीचता और पराधीनताकोभी पहिचानराखे काहेसे कि इसप्रकारका पहिचाननाभी भगवत्के पहिचानने की कुञ्जी है ताते अपने आपके पहिचाननेका वर्णन करना इतनाही बहुत है॥

दूसरा अध्याय॥

भगवत्के पहिचानने के वर्णन में॥

ताते जान तू कि भक्तजनोंके वचनोंविषे यहवचन प्रसिद्धहै और उन्होंने यही उपदेश कियाहै कि हे भाई! जब तू अपने आपको पहिचाने तब निस्सन्देह भगवत्को पहिचानेगा इसीपर महाराजका वचनहै कि जिसने अपने आत्मा और मनको पहिचानाहै तिसने भगवत् को पहिचानाहै और इसकी युक्ति यहहै कि मनुष्य का हृदय दर्पण की नाईं है ताते जो पुरुष इस विषे बुद्धिकी दृष्टि करके देखताहै तब उसको भगवत् का दर्शन प्रत्यक्ष भासताहै यद्यपि सबहीलोग जो आपको देखतेहैं और भगवत् को नहीं देखसके सो तिसका कारण यह है कि जिसप्रकार आपको देखना सन्ताननो ? करहै तिस विधिसंयुक्त आपको नहीं देखने ताते जिस दृष्टिकरके हृदयरूपी दर्पण विषे भगवत्को देख सकाहै तिसका खोजना अवश्यही प्रमाण है पर बहुत लोगोंकी बुद्धि इस भेदको समझ नहींसक्ती ताते जिसप्रकार सबोंको समझना सुगमहै सो तिसी प्रकारसे वर्णन करताहूं कि प्रथम यह मनुष्य अपने स्वरूपके होनेकरके भगवत् के स्वरूप को

पहिंचाने और अपने गुणों करके भगवत् के गुणों को पहिंचाने बहुरि अपने शरीर और इन्द्रियोंविषे जिसप्रकार इसजीवकी आज्ञाचलती है तैसेही सर्वजगत् विषे भगवत् की आज्ञाको पहिंचाने सो तिसका वखान यह है कि जैसे मनुष्य अपने होनेको जानताहै कि केतेकाल आगे मेरा नाम रूप कुछभी न था बहुरि जब यह पुरुष अपनी आदि को समझे तब आदि उत्पत्तिका मार्ग वीर्य है सो मलिन जलकी बूंदथी सो उस बूंदविषे बुद्धि श्रवण नेत्र शीश हाथ पाव रसना अस्थि नाडी त्वचा कुछ न थी और वह केवल श्वेत जलही था ताते यही विचार करे कि शरीर विषे नानाप्रकार के आश्चर्य उत्पत्ति हुयेहैं सो इस ने आपही बनाये हैं कि किसीने उसको उत्पन्न किया है और योंभी जानना योग्य है कि अब तो यह मनुष्य बुद्धि और इन्द्रियों करके सयुक्त और पूर्ण है तोभी एक बाल को बनाय नहींसक्ता और जब इसका आकार वीर्यरूप था तब तो महानीच था तब आपको क्योंकर बनायसक्ता सो जब इस प्रकार यह मनुष्य अपनी उत्पत्तिको पहिंचाने तब अपने उत्पत्ति करनेवाले महाराज को सुगमही पहिंचान लेवे बहुरि जब अपने आश्चर्यरूप अंगोंको देखे तब भगवत्की समझको प्रकटही समझलेवे और योंभी जाने कि वह ईश्वर ऐसा समर्थ है कि जिस प्रकार किसी पदार्थको उत्पन्न कियाचाहै सोकरसक्ता है बहुरि इससे विशेष और क्या वर्णन करिये उसका बल जो ऐसे मलिनजलकी बूंदमे यह शरीर सुन्दर बनाया है और आश्चर्यरूप इन्द्रियोंके साथ शरीरको बनायाहै और जब यह मनुष्य अपने स्वभावों की ओर देखे और इन्द्रियोंके कर्मोंको पहिंचाने तब इस वार्त्ता को जानलेवे कि एक एकअङ्ग कैसे गुणोंके निमित्त बनाये हैं जैसे हाथ पांव जिह्वा नेत्र दांत और इस शरीरके अन्तर के अङ्ग जैसे हृदय नाभि प्राण इत्यादिक और भी जो असरूप अङ्ग हैं सो इनकी उत्पत्ति के गुणों करके अपने उत्पत्ति करनेवाले ईश्वरकी विद्याको समझे कि उसकी विद्या अपार है और सर्व पदार्थों विषे भरपूरहै और योंभी जाने कि उसकी ऐसी विद्याते कोई पदार्थ गुप्त नहींहोसक्ता ताते जब सर्व बुद्धिमान् एकत्रहोकर दीर्घकाल पर्यन्त विचार करके किसी एक अंगको और भांतिसे बनाया चाहैं तब जिसप्रकार आगे भगवत् ने बनाया है तिसही को भलाजाने और उससे अन्यथा किसी प्रकार न समझे जैसे यह दांत हैं सो अगले दांतोंका शीश तीक्ष्णहै और उस तीक्ष्णता करके

लोगोंसे उस महापुरुष ने कहा कि हे भाई ! तुमकोभी कुछ सुनाईदेताहै यह विष्ठा मुझमें यह कहती है कि कल्हके दिन में बाजारविषे धरीहुई थी औरसबलोगों ने मुझको दाम देकर मोललियाथा परन्तु मैंने एकरात्रिपर्य्यन्त तुम्हारी सङ्गति करी है तिसकरके ऐसी मलिनताको प्राप्तहुई हों इसी हेतुसे जब विचारकरके देखिये तो मुझको तुमसे भागना उचितहै कि तुमको मुझसे, सो इसका तात्पर्य यह है कि यह जीव इस शरीरविषे महादीन और पराधीन है और इसकी अवस्था भी महानीच है ताते परलोकविषे इसकी हीनता और विशेषता प्रकट होवेगी अर्थात् जब यह पुरुष भले स्वभावोंके पारस साथ निर्मल करलेवे तबही पशु और सिंहों के स्वभावों से मुक्तहोकर देवतों के पदको पाय सकेगा काहे ते कि पशुओं की क्रिया और कर्मों का दोष नहींलगता और यह मनुष्य अशुभकर्म्मोंकरके नरकोंको भोगताहै ताते इस पुरुषको चाहिये कि जिसप्रकार अपनी विशेषता को पहिंचानताहै तैसेही अपनी नीचता और पराधीनताकोभी पहिंचानराखे काहेसे कि इसप्रकारका पहिंचाननाभी भगवत्के पहिंचानने की कुंजी है ताते अपने आपके पहिंचाननेका वर्णन करना इतनाही बहुत है॥

दूसरा अध्याय॥

भगवत्के पहिंचानने के वर्णन में॥

ताते जान तू कि भक्तजनोंके वचनोंविषे यहवचन प्रसिद्धहै और उन्होंने यही उपदेश कियाहै कि हे भाई! जब तू अपने आपको पहिंचाने तब निस्सन्देह भगवत्को पहिंचानेगा इसीपर महाराजका वचनहै कि जिसने अपने आत्मा और मनको पहिंचानाहै तिसने भगवत् को पहिंचानाहै और इसकी युक्ति यहहै कि मनुष्य का हृदय दर्पण की नाईं है ताते जो पुरुष इस विषे बुद्धिकी दृष्टि करके देखताहै तब उसको भगवत् का दर्शन प्रत्यक्ष भासताहै बहुरि सबहीलोग जो आपको देखतेहैं और भगवत् को नहीं देखसक्ते सो तिसका कारण यह है कि जिसप्रकार आपको देखना सन्तजनोंने कहाहै तिस विधिसंयुक्त आपको नहीं देखते ताते जिस दृष्टिकरके हृदयरूपी दर्पण विषे भगवत्को देख सक्ताहै तिसका खोजना अवश्यही प्रमाण है पर बहुत लोगोंकी बुद्धि इस भेदको समझ नहींसक्ती ताते जिसप्रकार सबोंको समझना सुगमहै सो तिसी प्रकारसे वर्णन करताहूं कि प्रथम यह मनुष्य अपने स्वरूपके होनेकरके भगवत् के स्वरूप को

पहिचाने और अपने गुणों करके भगवत् के गुणों को पहिचाने बहुरि अपने शरीर और इन्द्रियोंविषे जिसप्रकार इसजीवकी आज्ञावर्त्तती है तैसेही सर्वजगत् विषे भगवत् की आज्ञाको पहिचाने सो तिसका बखान यह है कि जैसे मनुष्य अपने होनेको जानताहै कि केतेकाल आगे मेरा नाम रूप कुछभी न था बहुरि जबै यह पुरुष अपनी आदिको समझे तब आदि उत्पत्तिका मार्ग वीर्य्य है सो मलिन जलकी बूंदथी सो उस बूंदविषे बुद्धि श्रवण नेत्र शीश हाथ पांव रसना अस्थि नाड़ी त्वचा कुछ न थी और वह केवल श्वेत जलही था ताते यही विचार करे कि शरीर विषे नानाप्रकार के आश्चर्य्य उत्पत्ति हुयेहैं सो इस ने आपही बनाये हैं कि किसीने उसको उत्पन्न किया है और योंभी जानना योग्य है कि अब तो यह मनुष्य बुद्धि और इन्द्रियों करके संयुक्त और पूर्ण है तोभी एक बाल को बनाय नहींसक्ता और जब इसका आकार वीर्य्यरूप था तब तो महानीच था तब आपको क्योंकर बनायसक्ता सो जब इस प्रकार यह मनुष्य अपनी उत्पत्तिको पहिचाने तब अपने उत्पत्ति करनेवाले महाराज को सुगमही पहिचान लेवे बहुरि जब अपने आश्चर्यरूप अंगोंको देखे तब भगवत्की समझको प्रकटही समझलेवे और योंभी जाने कि वहईश्वर ऐसा समर्थ है कि जिस प्रकार किसी पदार्थको उत्पन्न कियाचाहे सो करसक्ता है बहुरि इससे विशेष और क्या वर्णन करिये उसका बल जो ऐसे मलिनजलकी बूंदसे यह शरीर सुन्दर बनाया है और आश्चर्य्यरूप इन्द्रियोंके साथ शरीरको बनायाहै और जब यह मनुष्य अपने स्वभावों की ओर देखे और इन्द्रियोंके कर्मोंको पहिचाने तब इस वार्त्ता को जानलेवे कि एक एक अङ्ग कैसे गुणोंके निमित्त बनाये हैं जैसे हाथ पांव जिह्वा नेत्र दांत और इस शरीरके अन्तर के अङ्ग जैसे हृदय नाभि प्राण इत्यादिक और भी जो असरूप अङ्गहैं सो इनकी उत्पत्ति के गुणों करके अपने उत्पत्ति करनेवाले ईश्वरकी विद्याको समझे कि उनकी विद्या अपार है और सर्व पदार्थों विषे भरपूरहै और योंभी जाने कि उसकी ऐसी विद्याने कोई पदार्थ गुप्त नहींहोसक्ता ताते जब सर्व बुद्धिमान् एकत्र होकर दीर्घकाल पर्यन्त विचार करके किसी एक अंगको और भांतिसे बनाया चाहें तब जिसप्रकार आगे भगवत् ने बनाया है तिसही को भलाजाने और इससे अन्यथा किसी प्रकार न करसके जैसे यह दांत हैं सो अगले दांतोंका शीश तीक्ष्णहै और उस तीक्ष्णता करके

आहार को खण्ड खण्ड करदेते हैं बहुरि दूसरे जो दांत हैं तिनके शीश चौड़े हैं उनकरके आहार पीसाजाता है जैसे अनाज को चक्की पीसती है और जैसे उस विषे नलीकरके अनाज इकट्ठा होजाता है तैसेही रसना ग्रासको इकट्ठा करके दांतोंके तले करदेती है बहुरि रसनाके नीचे एक सरोवर रचाहै सो उस करके रसना ग्रासको भिगो लेती तब आहारको भिगोवने करके कोमलता ग्रासहोती है और उसका भिगोवनाभी मर्य्यादा अनुसार होताहै ताते यह ग्रास सूखे नहीं कंठ विषे उतरजाता है सो जब सब बुद्धिमान इकट्ठे होकर भगवत् की कारीगरी आश्चर्यरूपी से कुछ और प्रकार बनावना सोचें तब इससे विशेष नाबनाय न सकें ताते जो कुछ भगवत्ने कियाहै उसही विषे भलाई और सुन्दरताई है जैसे हाथकी पांच अंगुली हैं सो चार अंगुलियों का स्वभाव एकहै और पांचवां जो अंगूठा है तिसका स्वभाव भिन्न है और इसकी उंचाई थोड़ी है बहुरि ऐसाहै कि सब अंगुलियों के ऊपर फिरताहै और सभों के साथ कार्यों को करताहै और अंगुलियों के तीनतीन बन्द हैं अंगूठेके दोही बन्द हैं ताते अंगूठेको ऐसा हद बनायाहै कि जब चाहताहै तब अंगुलियों को समेटकर मूठ करलेताहै और फिर उसमूठको उघारभी देताहै और कभी हाथको तलपात्र करलेताहै कभी कौड़ा करलेताहै और नानाप्रकारके जो शस्त्रहैं सो अंगूठे करकेही सिद्ध होते हैं और कभी हाथ को प्रासनकीन्याईं बनायलेताहै तात्पर्य्य यहहै कि हाथोंकी क्रिया सब अंगूठेकरके सिद्ध होतीहै और जब सभी सयाने मिलकर किसी और प्रकार विचारकरें कि पांचों अंगुलियां समानहोवें अथवा तीन एकओर होवें और दो भिन्नहोवें अथवा एक अथवा चारहोवें अथवा इनतीन बन्दोंसे औरभांति कियाचाहें सो यह जितना विचार करेंगे वह सब नीच और कुरूपहोवेगा ताते जो भगवत्ने बनाया है सोई पूर्ण है और इस करके प्रसिद्ध हुआ कि उत्पत्ति करनेवाले महाराजकी विद्या इस जीवके शरीर और सर्व पदार्थों विषे भरपूरहै और सर्व जगतका जाननेवालाहै बहुरि जितने इस शरीरके अंगहैं सो सभों विषे ऐसेही गुण और भेदहैं पर जो कोई इन भेदोंको अधिक समझताहै सो भगवत्की विद्याको देखकर अधिकही आश्चर्यवान् होताहै ताते यह पुरुष अपने अंगोंकी ओर देखै बहुरि आहार और वर्षा और पृथ्वी आदिक जो स्थान हैं सो तिनका विचारकरै बहुरि आहार की उत्पत्ति का जो सम्बन्ध मेघ और पवन और शीत उष्ण आदिक के साथहै सो

तिनको पहिचाने और आश्चर्यरूप जो खानि हैं तिन विषे लोहा और ताँबा आदिक धातु उपजती हैं बहुरि लोहे और काष्ठकर्के अनेकभाँति के शस्त्र बनाते हैं और इन शस्त्रोंकी विद्या जो है और कारीगरी जो है सो यह भी अपार है और जब कोई पुरुष विचारकर देखे तब यह सबही पदार्थ जगत्विषे जो दिये थे सो भगवत्ने आगेही अपनी दयाकरके उत्पन्नकिये हैं और सम्पूर्ण विधिसंयुक्त बनाय राखे हैं और एक एक पदार्थ विषे कितनेगुणरचे हैं सो प्रथमही जब भगवत् इनको उत्पन्न न करता तब यह भी कोई न जानता कि अमुक पदार्थ मुझको चाहिये है और माँगलूं ताते भगवत्ने अपनी दया करके पहिचानने और माँगने के पहिलेही सभी पदार्थ दिये हैं और जीवोंको सबकार्यों की विद्या दीन्ही है सो इस करके भगवत् की परमदया पहिचानी जाती है सो यह महाराज सब सृष्टिपर महाकृपालु है और इसकी ऐसी दयाको देखकर सबसन्त आश्चर्यवान् होरहे हैं इसीपर महापुरुषने भी कहा है कि जैसे बालकके ऊपर माता पिता की दया होती है तैसेही सर्वजीवों पर भगवत् इससे भी अधिक दयालु है ताते इस जीवको उत्पन्नहोनेकरके उस भगवत्की सत्ता पहिचानी जाती है और नानाप्रकारके अंगोंकी उत्पत्तिकरके उस और अस्तोंकी पूर्ण सामर्थ्य पहिचानसक्ते हैं बहुरि सर्व अंगोंविषे जो अनेकभाँतिके गुण और कार्य रचे हैं सो इसकरके भगवत्की परमदया भासआवती है और जेते पदार्थ अवश्यमेव कार्यमात्र और सुन्दरताईके निमित्त चाहतेथे सो सभी इस मनुष्यको दिये हैं और किसीसे कुछ द्रव्य नहीं राखा सो ऐसे विचारोंकरके भगवत्की परमदया पहिचानी जाती है ताते अपना पहिचानना भगवत् के पहिचाननेकी कुञ्जी जो कहा है सो यही है॥

दूसरा सर्ग॥

भगवत्की निर्लेपता और परमशुद्धताकी पहिचान के बयान में॥

ताते जान तू कि जब तूने अपने स्वरूपकी सत्ता करके भगवत् के स्वरूप को पहिचाना और अपने गुणों करके भगवत् के गुणोंको पहिचाना तब भगवत्की शुद्धता और निर्लेपता का अर्थभी पहिचानना चाहिये सो शुद्धताका अर्थ यह है कि जेती स्थूलता मन के सङ्कल्प विषे आवती है तिससे भगवत् निर्लेप है अर्थ यह कि उसका स्वरूप सङ्कल्प विषे नहीं आवता बहुरि देशकालसे भी निर्लेप है सो यद्यपि कोई स्थान उसकी सत्तासे भिन्न नहीं परन्तौभी उसको

ऐसे नहीं कहसक्के कि भगवंत् अमुक स्थान विषे रहताहै और इस निर्लेपताका लक्षणभी अपने निजही पहिचान सक्केहैं जैसे मैंने आगेभी वर्णन कियाहै कि इस जीवका चैतन्य स्वरूप है सो मनके संकल्प विषे उसका रङ्गरूप कुछ नहीं भासता बहुरि मर्यादते रहितहै और अखण्डहै और अरूपहै ताते जो वस्तु मर्याद और रूपते रहित होतीहै उसका स्वरूप संकल्प विषे कदाचित् नहीं आवता काहेते कि जिस पदार्थको नेत्रों करके देखाहोवे अथवा उसकी न्याई और वस्तु देखीहोवे तब उसका स्वरूप संकल्प करके जानना चाहताहै इसका अर्थ यही है कि अमुकी वस्तु कैसी है और अमुक का रूपरङ्ग क्याहै और अमुकी मर्याद केती है और लघु वा दीर्घ है सो उस चैतन्यस्वरूप विषे ऐसे संकल्पोंका मार्गही नहीं और जब कोई यह प्रश्न करे कि वह कैसाहै सो यह प्रश्नही व्यर्थहै और जब तू इस संशयको दूर कियाचाहे कि जिस पदार्थका रङ्गरूप कुछ नाहोवे तब उस पदार्थको क्योंकर सत्यजानिये सो तिसका उत्तर यहहै कि इस बातकोभी तू अपनेही अन्तर विषे देख कि तेरा चैतन्य स्वरूपहै सो मर्याद और प्रमाणते रहित है और उसकारूप वर्णन विषे नहीं आवता पर जब तैंने आपकोभी इसी प्रकार निर्लेप जाना तब ऐसे जाना कि भगवत् की निर्लेपता तेरी निर्लेपता से अधिक विशेषहै पर यह लोग इसवार्त्ताको सुनकर आश्चर्य मानते हैं कि जिसका रङ्गरूप कुछ न होवे तब उसको सत्यस्वरूप क्योंकर जानिये परन्तु जब विचार करके देखें तब यह आपभी रङ्गरूपते रहित है और सत्यस्वरूप है और आपको पहिचान नहीं सक्के बहुरि जब यह मनुष्य अपने शरीरविषे विचारकर देखे तब सहस्रों पदार्थोंको रूपरङ्गते रहित पहिचाने जैसे क्रोध और प्रेम और पीड़ा और सुख दुःखआदि सो यह सबही अरूपहैं ताते जो कोई यह प्रश्न करे कि अरूपवस्तु क्योंकर सत्यहोसक्की है सो यह प्रश्नही व्यर्थहै काहेते कि जब यह पुरुष राग और सुगन्ध और स्वादके चिह्नको देखाचाहे तब इनके आकार देखने विषेभी असमर्थ होताहै सो इसका कारण यहहै कि रूपरङ्ग की हदभी मनके संकल्प कर होतीहै तोभी प्रथम जिसपदार्थको नेत्रों करके देखाहोवे तब उसकी मूर्त्ति संकल्प विषे दृढ होजाती है तो संकल्प नेत्रों के देखेहुये को ढूंढताहै पर श्रवणों विषे जो शब्दहै तिस विषे नेत्रों का देखना पहुँच नहीं सक्का और शब्दका रूप चिह्नभी कुछ नहीं पाइसक्का ताते जिस प्रकार शब्दका स्वरूप दृष्टिसे विलक्षण

है तैसेही रूपरंग का देखना श्रवणोंनेभी विलक्षणहै बहुरि इसीप्रकार सर्व इन्द्रियोंके विषय भिन्न भिन्न हैं पर जिस पदार्थ का ज्ञान बुद्धि करकेही होताहै तिस को इन्द्रिय अगोचर कहतेहैं उसमें किसी इन्द्रियका गम्य और विषय नहीं और रूपरंगकी प्राप्ति इन्द्रियों के देश विषय विषे पाई जाती हैं पर इस भेदको पुरुषार्थ और युक्ति करके समझ सक्तेहैं इसका विस्तार अपर ग्रन्थों में है इस ग्रन्थमें जितना वर्णनहुआ सो यही बहुतहै सो इसका तात्पर्य यहहै कि यह मनुष्य अपनी अरूपता और निराकारता करके भगवत् की अरूपता और निराकारता को पहिंचाने और इसप्रकार जाने कि इस जीवका स्वरूप जिस प्रकार रूपरंग ते रहितहै और शरीर जो रूपरंग सहितहै तिसका राजा है और शरीर इसका देशहै तैसेही सर्वसृष्टि का ईश्वर जो भगवत्है सो अरूप और निराकारहै और जेताकुछ जगत्स्थूल और आकारवान् है सो महाराजकी आज्ञा विषे वर्तताहै बहुरि भगवत्को जो स्थानसे निर्लेप कहा है सो तैसेही इस जीवको भी हाथ पांव शीश और किसी और अङ्ग विषे पाइ नहीं सक्ता काहेते कि यह इन्द्रिय और सब अंग खण्डाकारहैं और चैतन्यरूप जो जीवहै सो अखण्डहै सो खण्डाकार विषे अखण्ड वस्तुका स्थित होना असम्भवहै इसकरके कि जब खण्डाकार रूप पदार्थ विषे अखण्डवस्तु स्थितहोवै तब वह भी खण्ड खण्ड होजावै ताते यह बड़ा आश्चर्य्य है कि यद्यपि जीवकी सत्ता से कोई अंग भिन्न नहीं और सब अंग जीवकी सत्ता और आज्ञामें हैं सत्ताबिना कोई अंगनहीं पर तौभी उसको किसी एक स्थान विषे कह नहीं सक्ते और शरीर के सर्व अंग जीवकी आज्ञाके अधीनहैं इसीप्रकार वह महाराज सर्व सृष्टिका ईश्वरहै और निर्लेपहै और सर्व जगत् उसकी सत्तामें है और उसके अधीनहै सो भगवत् को धरती और आकाश और पाताल विषे किसी एक स्थानमें कहा नहीं जाता बहुरि भगवत्की जो निर्लेपता और शुद्धताहै तिसका सम्पूर्ण भेद तबहीं समझा जासक्ता है जब जीवके यथार्थ रूपका वर्णन करिये और धर्मशास्त्र विषे इस वचन को प्रसिद्ध कहने से वर्जित कियाहै जैसे महाराजने भी कहाहै कि इस मनुष्यको मैंने अपने रूपके अनुसार उत्पन्न कियाहै ॥

तीसरा सर्ग ॥

भगवत्की बादशाहीके वर्णनमें ॥

हे जिज्ञासु! तू ने भगवत्का स्वरूप और उसके गुण और अरूपताको तैंने समझा और देशकालसे निर्लेप निराकार तैंने जाना सो इन सब भेदोंका पहिचानना अपने पहिचाननेकरके सिद्ध हुआ ॥ तब भगवत्की बादशाहीको पहिचाननेका प्रसंग भी तुझको श्रवण कियाचाहिये कि वह महाराज अपनी बादशाही विषे क्योंकर वर्त्तता है और इन देवतोंको किसप्रकार आज्ञाविषे चलाता है और देवता उसकी आज्ञा क्योंकर मानते और चलते हैं बहुरि जगत्के कार्योंको क्योंकर सिद्ध कराता है और आकाशलोकसे उसकी आज्ञा भूमिलोकविषे किसप्रकार आती है और तारामण्डलको क्योंकर फिरावता है और भूमिलोकके जीवोंके कर्म किसप्रकार देवतोंके आधीन रक्खे हैं और सर्वजीवोंकी प्रतिपाल आकाशद्वारे क्योंकर होती है सो इस विद्याको भगवत्के करतूतोंका पहिचानना कहते हैं और इसका वखान करना बहुत विस्तारसे होता है पर इस विद्याके पहिचाननेकी कुंजी अपने अपने पहिचाननेकरके प्राप्त होती है ताते जबतक तू इस भेदको भी न पहिचानसके कि मैं अपने शरीरविषे क्योंकर बादशाही करता हूं तबतक सर्व जगत्का राजा जो महाराज भगवत् है तिसकी बादशाहीके भेदको क्योंकर पहिचानेगा इसी कारणसे प्रथम तू अपने एक कर्मको पहिचान कि जैसे तेरे चित्तविषे भगवत्का नाम लिखनेकी इच्छा होवे तब प्रथम वह संकल्प हृदयविषे आन फुरता है बहुरि उसका प्रवेश शरीरविषे जाय पहुँचता है पर जिसको हृदयस्थान कहाहै सो प्राणकी स्थिति होनेका ठौर है और सर्वइन्द्रियोंका व्यवहार इसहीकरके सिद्ध होता है ताते वैद्यक विद्याविषे प्राणोंके स्थानको चेतन कहतेहैं पर मेरे मतविषे प्राणोंका ठौर जो हृदयस्थान है सो जड़ और स्थूल और नाशवन्त है बहुरि वह हृदय जो चैतन्यरूप है और ज्ञानका स्थान है सो इस प्राणवायुसे भिन्न है और अविनाशी है पर वह सङ्कल्प हृदयस्थानमें शीशाविषे पहुंचता है तब उस नामकी मूर्त्ति संकल्पविषे दृढ होजाती है तिससे पीछे उसकी प्रेरणा कार्यों और सर्वांगोंकी अर्थात् पुट्ठोंविषे आन पसरती है तिसकरके पुट्ठे और उनकी प्रेरणासे अंगुली हलती हैं और अंगुली लेखनीको हिलाती हैं तब कागज पर अक्षर प्रकट होतेहैं और नामकी मूर्त्ति

वनजाती है पर जैसी मूर्त्ति सङ्कल्प विषे फुरीथी सो नेत्रादिक इन्द्रियों के सम्बन्ध से पत्रके ऊपर प्रकट होती है सो जैसे तुझको भी प्रथम महाराजके नाम लिखने की इच्छा प्रकट हुईथी तैसेही सर्वजगत्‌की उत्पत्ति का कारण भगवत्‌की इच्छा है और जैसे उस इच्छाकी प्रेरणा तेरे हृदय स्थान विषे फुरीथी तैसेही प्रथम भगवत्‌की इच्छाभी ईश्वरविषे आन फुरती है और जैसे तेरी इच्छा हृदय स्थानसे शीर्श विषे पहुँचतीथी तैसेही भगवत्‌की इच्छा ईश्वर से और देवतोंको पहुँचती है और जैसे तेरी इच्छाकी मूर्त्ति प्रथमसे सङ्कल्प विषे दृढ़ हुईथी और उसके अनुसार अक्षर प्रकट हुयेथे तैसेही जो कुछ इस जगत् विषे प्रकट हुआहै सो प्रथम तिनकी मूर्त्ति महत्तत्त्व विषे प्रकट होती है और जैसे शीश के बल करके कांधे और भुजा और अंगुलियां हलती हैं तैसेही देवतों की सत्ता नक्षत्र और तारा मण्डलको हलावती है और जैसे भुजा और अंगुलियों के बलकरके कलमका हिलना होताहै तैसेही नक्षत्रों करके पांच भूतोंके स्वभाव भिन्न भिन्न प्रकट होते हैं और जैसे कलम करके स्याहीका पसरना और अक्षर प्रकट होते हैं तैसेही वाई पित्त और कफ आदिक जो भूतों के स्वभावहैं सो तिन्हों करके नानाप्रकार के शरीर उत्पन्न होते हैं और जैसे कलम का कार्य येही था कि उस करके आदि सङ्कल्प अनुसार नामकी मूर्त्ति कागजपर प्रकट हुई तैसेही पचतत्त्वों की करतूति येही है कि देवतोंकी सहायता करके इनके विषे नानाप्रकारके शरीर और वनस्पति उत्पन्न होती हैं सो जैसे शीश में सङ्कल्प विषे प्रथम नामकी मूर्त्ति दृढ़ होकर फिर तिसके अनुसार नाड़ी और अंगुली आदिक कोरे कागजपर प्रकट होती हैं तैसेही भगवत् के आदि सङ्केत विषे सब रचना प्रथमही होचुकीहै और तिसहीके अनुसार सर्व जगत् की उत्पत्ति और उसमें सर्व जीवोंके समस्त व्यवहार समय पायकर होतेरहतेहैं बहुरि जैसे तेरे सर्व कार्यों की इच्छा हृदय स्थान विषे फुरती है और पीछे उसका प्रवेश सर्व अङ्गों विषे होताहै तैसेही सर्व जगत् का कारण ईश्वरहै और पीछे देवतों को तिन ईश्वरसे पहुँचता है और जैसे तेरे चैतन्यताका स्थान हृदय कहाजाताहै और उस करके सर्व क्रिया सिद्ध होतीहै तैसेही भगवत्‌की इच्छाका स्थान ईश्वरहै और ईश्वरकी सत्ताकरके सर्व जगत् का व्यवहार सिद्ध होताहै सो इस वार्त्ता विषे कुछ भेद नहीं पर जिन्होंके बुद्धि रूपी नेत्र खुलेहैं तिनको प्रकट भासती है और जिस यवन के अंगरो भी यही

समझताहै जैसे भगवत्‌ने कहा है कि मैंने मनुष्य को अपनी सूरत के अनुसार उत्पन्न किया है ताते निस्सन्देह जान तू कि राजाओं के भेदको कोई राजाही जानताहै और अन्यथा कोई नहीं जानसक्ता इसी कारण से भगवत्‌ने तुझको भी राज्य दियाहै कि अपने शरीररूपी देशके राज्यकरके तू भगवत्‌के राज्यको पहिचाने ताते तू महाराज का परमउपकार विचार कि जो तुझको प्रथम उत्पन्न कियाहै बहुरि अपने राज्यकी नाईं तुझको भी कछुक राज्य दियाहै और हृदय स्थान को तेरा वैकुण्ठ बनाया है और शीश को देवलोक बनाया है और तेरे चित्तको महत्तत्त्व बनायाहै बहुरि नेत्र और श्रवणादिक जो सर्व इन्द्रिया हैं सो तिनको देवतारूप स्थित कियाहै और तेरे शीशको आकाश की नाईं इन्द्रियों का स्थान बनाया है बहुरि तुझको रूप रङ्गसे रहित उत्पन्न किया है और जेता कुछ रूप रङ्गसहित शरीर है सो तिसपर तुझको राजा बनायाहै बहुरि इसप्रकार तुझको आज्ञा करी है कि तू अपने राज्यसे एक पलभी अचेत न हो काहेते कि जब तू अपने आपसे अचेत होवेगा तब मुझको भी न पहिचानेगा ताते तू प्रथम आपको पहिचान और यह जो कुछ वर्णनविषे आयाहै सो जीव और भगवत् के राज्यको सूचनमात्र करके कहा है बहुरि जब जीवके सर्व अङ्गों और सर्व स्वभावोंका वर्णन कियाहै सो वह भी बहुत विस्तार होताहै तैसेही इस ब्रह्माण्ड और देवतोंका जो परम्परा सम्बन्धहै और उनके जो स्थान और मुखिया हैं सो यह विद्याभी अपार है और तात्पर्य्य यह है कि जो कोई बुद्धिमान् होवे सोइस भेदको समझकर प्रतीतिकरे कि सर्वसृष्टिका ईश्वर भगवत्‌है पर जिसका हृदय मलिन होता है सो इतनाभी नहीं समझसक्ता और ऐसा अचेत होताहै कि भगवत् के स्वरूपकी सुन्दरता और सामर्थ्यके ऊपर प्रतीति नहीं करता ताते इन जीवोंकी बुद्धि तो ऐसी मलिन है कि जेता कुछ वर्णन मैंने कियाहै सो तिसको भी नहीं समझते ताते भगवत् स्वरूपको क्योंकर पहिचानें॥

चौथा सर्ग॥

वैद्यक और ज्योतिषके मतके खण्डन के वर्णन में॥

ताते जान तू कि ये वैद्य और ज्योतिषी ऐसे मतिहीन हैं कि सर्व जगत्‌के कार्य्यों को बाई पित्त कफ और नक्षत्रोंके अधीन कहते हैं सो इनका दृष्टान्त यहहै कि जैसे किसी लिखेजाते हुये कागजको कोई मकोड़ा देखे कि, काला हुआ

जाता है और उसपर अक्षर बनताहै तब जाने कि क्योंकर कागज स्याह होता जाताहै फिर कलमको देखे तब अपने चित्तविषे प्रसन्नहोवे कि मैंने इस भेदको भलीप्रकार समझाहै कि इन अक्षरोंको कलमही आप बनाताहै सो यह दृष्टान्त वैद्यक मतपर प्रसिद्ध है कि उन्होंने सबसे नीचे पदको अंगीकार कियाहै काहेते कि वह सर्वकार्य्यों को वाई पित्त कफके अधीन समझते हैं बहुरि कोई दूसरा मकोड़ा अर्थात् चींटी उसके पास आवे और उस पूर्वकी चिउँटी से इसकी दृष्टि अधिक विशालहोवे तब यह चिउँटी उसको कहे कि तू भूली है काहेते कि इस कलम को चलावनेवाली अंगुलियां हैं बहुरि इस अपनी समझकर प्रसन्नहोकर कहे कि मैंने तो इस वार्त्ता को भलीप्रकार जानाहै सो यह दृष्टान्त ज्योतिषियों का है कि वैद्यों से उनकी दृष्टि अधिक है काहेते कि वे तत्त्वों के स्वभावों को नक्षत्रों के अधीन जानते हैं पर यह नहीं जानते कि नक्षत्र भी और देवतों के अधीन हैं ताते इससे परे जो पदवीथी सो तिसको यहभी नहीं जानतेभये बहुरि जैसे ज्योतिषी और वैद्यों की समझ विषे भेद है परस्पर उनका विवाद होता है तैसेही आत्मा और अनात्माके समझनेवालों विषेभी भेद बड़ाहोताहै सो बहुत पुरुष तो ऐसे हैं कि वे शरीर और प्राणादिकोंको चैतन्य मानते हैं ताते यह तो बहुत नीचीपदवी विषे गिरे हैं और ऊँचीपदवी जो चेतन्यपना का मार्ग है सो तिसमे उनको आवरण हुआहै ताते उनकी बुद्धि शरीर देशविषेही दृढ़ हुई है बहुरि एक ऐसे पुरुषहैं कि उन्होंने शरीरसे जीवको भिन्न जानाहै और वे चैतन्यता के प्रकाश विषे स्थिर हुये हैं इसीप्रकार और भी केते पदहैं जो परे से परे चले जाते हैं पर किसीका प्रकाश तारावत् है कितने चन्द्रमाके समान हैं कितने सूर्य्य की नाईं प्रकाशमानहैं सो इन पदों को वही पुरुष प्राप्तहोते हैं जिनकी बुद्धि चिदा काश विषे गमनकरती है इसीपर खलीलनामी सन्तने भी कहाहै कि जिस महाराजने पृथ्वी और आकाशको उत्पन्न कियाहै सो मैं तिसकी ओर अपना मुख लायाहूं औरमहापुरुषने भी कहाहै कि भगवत् और जीव विषे सत्तरहजार पर्दे हैं सो दूर जो होवें तो प्रकाशरूप होवे अर्थात् महाराजके सत्तरहजार परदे अथवा कैसा प्रकाशरूप है सो जो महाराज उन पर्दों को समस्त उठादेवें तो निश्चय करके उनका प्रकाश ऐसा है कि जिनकी दृष्टि उनपरपड़े तिनके मुखको अवश्यमेव शीघ्रही भस्म करदेवें सो इनवचनोंका तात्पर्य्य यहहै कि वैद्य हकीम

वाले ने भी सत्य कहाहै काहे ते कि जो बाई पित्त कफ विषे भगवत्की सत्ता न होती तो वैद्यरविद्या भूठहोजाती सो नहीं परन्तु भूलना उनका इसप्रकारहै कि वे महात्तीके पदको उत्तमपद मानते हैं ताते इनकी दृष्टि महामन्दहै अर्थ यह कि जैसे कोई मूर्ख किसी टहलुवेको राजाकरके जाने और यों न जाने कि यह टह लुवा तो पनहीं पकड़नेवालाहै बहुरि एकताकी दृष्टिकरके देखिये तो ज्योतिषि योंने जो जगत्को नक्षत्रोंके अधीन कहाहै सो यहभी सत्य कहाहै काहेसे कि जब नक्षत्रोंविषे भगवत्की सत्ता कुछ न होती तो रात्रिन दिन एक समान होते क्योंकि सूर्यभी एक दीर्घताराहै जो सूर्यकरकेही जगतविषे प्रकाश और उष्ण ताहोतीहै जब सो न होता तब ग्रीष्म और शरदऋतु समान होतीं काहेते कि जब सूर्य आकाशविषे पृथ्वीके निकट आवतेहैं तब ग्रीष्मऋतु होती है जब पृथ्वीसे दूरजातेहैं तब शरदऋतुहोतीहै ताते जिस भगवत्ने सूर्यको प्रकाशमान और उष्णतासहित बनायाहै तिसही ने शुक्रको भी शीतल और सोखनेवालाबना याहै बहुरि एकतारेको उष्ण और सजलता सहित बनायाहै सो इसप्रकार सम- भने करके धर्म विषे खण्डता कुछ नहीं होती परन्तु ज्योतिषियोंको इसकारण भूलेहुये कहाहै कि उन्होंने जगत्को नक्षत्रोंही के अधीन जानाहै और नक्षत्रों की पराधीनता नहीं जानते कि सूर्य चन्द्र और सब तारे भगवत् की आज्ञाके अधीनहैं ताते इनको चलावनेवाली भगवत् की शक्ति है और यह सब आप समर्थ नहीं जैसे हाथ और भुजाके विषे कामोंकी शक्ति फुरती है पर कामों विषे भी शीशाका बल होता है तैसे यद्यपि तारामण्डल और नक्षत्र भी चरणदासी पकड़नेहारे टहलुवे की नाईं नहीं पर तोभी नीच किंकरहैं पर तत्त्वोंको स्वभाव जो बाई पित्त कफहैं सो महाअधमते अधम हैं और महाराजके हाथ विषे कलम की नाईं हैं और अधीनहैं पर बहुतलोगों विषे इस करके विवादहोताहै क्योंकि एक एक मतकरके वैद्यक और ज्योतिष् वाले भी सत्य कहते हैं पर भलीप्रकार यथार्थ भेदको नहीं समझते और जानतेहैं कि हमने ज्योंकात्यों भेदपायाहै सो इनका दृष्टान्त यहहै कि जैसे किसी जगह कई एक अन्धे रहते थे सो उन्होंने सुना कि हमारे नगर विषे हाथी आयाहै तब हाथी के देखनेको सबइकट्ठे होकर गये पर उन्होंने इस प्रकार न जाना कि हाथीका देखना नेत्रोंसे होताहै और हाथों करके नहीं पहिचानाजाता बहुरि तहां जायकर हाथी पर हाथ फेरनेलगे

तब किसीका हाथ पावोंपर पड़ा और किसीका दांतोंपर किसीका कानपर किसीका सूंडपर हाथ पहुँचा इसी प्रकार हाथी को देखकर लौटआये और परस्पर पूछनेलगे कि हे भाई वह हाथी कैसाथा सो जिसने पांवको पकड़ाथा वह कहनेलगा कि हाथी बड़े खम्भा की नाईं है और जिसने कानों को पकड़ाथा उसने हाथीको पंखेकीनाईं बताया और जिसका हाथ दांतोंपर पहुँचाथा वह मूसलकी नाईं वर्णन करनेलगा और जिसके हाथ सूंड आई थी वह अंगरखाकी आस्तीन की नाईं कहनेलगा ऐसे कहकर परस्पर झगड़ने लगे पर विचार करके देखिये तो एक भावकरके उनका कहना सत्यहै और एक भावसे मिथ्याहै काहेते कि उन्होंने एक एक अंगको पहिचानाथा हाथीको सम्पूर्ण नहीं देखा तैसेही वैद्यके और ज्योतिषवालों की दृष्टिभी भगवत्के एक टहलुवेपर पड़ी और उस टहलुवे के ऐश्वर्यको देखकर आश्चर्यवान् हुये ताते उसी को राजा जाना पर जिसको भगवत्ने सीधामार्ग दिखाया वह सबोंकी नीचता और पराधीनताको पहिचानताहै और योंभी जानताहै कि जो कोई पराधीन होताहै वह राजा नहीं कहलाता ताते इनके ऊपर ईश्वर और है॥

पांचवां सर्ग॥

सवारों और नकीबों के परवर्णन में॥

ताते जान तू कि यह ब्रह्माण्ड राजाके मन्दिरकी नाईंहै सो तिसविषे बैकुण्ठपुरी एक घरहै कि वहां प्रधानके रहनेका स्थानहै अर्थात् विष्णुका भवन है बहुरि उस भवनके चारों ओर एक बारहदरीहै सो तिसको बारहराशि कहते हैं और उसके एकएक दरवाजोंपर उसप्रधानके कामदार बैठेहैं सो मानों द्वादश राशिविषे द्वादश देवताहैं बहुरि उस बारहदरीके बाहर नवनकीब फिरते हैं सो नवग्रहहैं और प्रधानकी आज्ञा जो कामदारों को पहुँचती है तिसको यह सुनतेहैं बहुरि नकीब सवारों के नीचे पांच प्यादे हैं सो वे पांच तत्त्वहैं सो इनकी दृष्टि सर्वदा सवारकी ओर रहती है कि देखिये उस दरबार से कैसी आज्ञा आती है बहुरि उन प्यादों के हाथमें पांच जेवड़ी हैं सो वे गर्मी सिर्दी तरी खुश्की आदि रस्सियांहैं तब उसके फेंके मनुष्यों को भगवत्की आज्ञाकरके ऊर्ध्वगति को खैंचते हैं और फेंकोंको नीचे गिरायदेते हैं बहुरि किसी को सुखरूपी सिरोपाव देते हैं और किसीको दण्डदेते हैं और बैकुण्ठरूपी भवनविषे जो प्रधान कहे हैं सो विष्णुदेवहैं

और परब्रह्मरूपी महाराज के अतिनिकटवर्ती हैं और सबही उनके अधीन हैं सो जगतविषे जो किसी मनुष्यकी अवस्था उलटजाती है तब संसारसे उसकी रुचि दूर होजाती है तब उसके ऊपर शोक ऐसा प्रबल होजाता है कि संसारके भोगों को विरस जानता है और परलोकके भयकरके चिन्तित रहता है सो उसको जब कोई वैद्य देखताहै तब कहताहै कि इसको वाईका रोगहै और इसका कारण शीतऋतु की सोखताहै जबलग वसन्तऋतु न आवै तबलग इसका उपचार नहीं होसक्ता और जब उसको कोई ज्योतिषी देखता है तब वह इसप्रकार कहताहै कि इस पुरुषको वाईकारोग बृहस्पतिके कोप करके हुआहै काहेसे कि बृहस्पति और मंगलका विरुद्ध हुआहै सो जबलग इनका विरुद्ध दूर न होवै तबलग इस पुरुषका रोग दूर न होवेगा सो एकभावकरके जो देखिये तो इन्हीं नेभी सत्य कहाहै पर तात्पर्य यहहै कि भगवत् जिस जीवका भलाई भावकिया चाहता है तब बृहस्पति और मंगल जो दो नौकर हैं तिनको शीघ्रही उसकी ओर भेजता है और उनकी आज्ञा करके पवनरूपी प्यादा सोखतारूपी जेवड़ी उसपर डालताहै तिसकरिके उसका चित्त मायाके भोगों से विरस होजाताहै और शोकरूपी चाबुक लगाकर श्रद्धारूपी बाग उसकी खैंचते हैं और भगवतके दरबारकी ओर उसका मुख लेआवतेहैं पर इस भेदकी बूझ वैद्यक और ज्योतिश्शास्त्रविषे नहीं पाईजाती ताते यह विद्या सन्त जनों के अनुभवरूपी समुद्रविषे होती है सो सन्त जनों की विद्या सर्व दिशा और सब कार्यों विषे भरपूर है इसी कारण से वे सन्तजन ग्रह और नक्षत्रों के फिरनेको भी जानते हैं और योंभी जानते हैं कि भगवत्की आज्ञा पायकर किसीको ऊपरको खैंचते हैं और किसी को नीचे गिरायदेते हैं सो यद्यपि वैद्य और ज्योतिषीका कहनाभी सत्यहै परंतो भी महाराज और उसके श्रेष्ठ प्रधान और सेनापतियों को नहीं जानते काहेते कि वह महाराज दुःख और रोग और आपदा और दंडकरके जीवोंको अपनी ओर खैंचताहै और महाराजका वचनहै कि जब सात्त्विकी मनुष्योंको कुछ रोग होताहै तब मैं उनको पीड़ा नहींदेता परन्तु उस दुःखकरके मैं अपने प्रियतमोंको अपनीओर खैंचताहूं ताते यह दुःखभी मेरी जेवड़ी है पर जेता कुछ प्रथम वखान कियाहै सो इस जीवके स्वरूपका पहिचानना कहाहै और इस प्रकारके भगवत्के स्वरूपकी पहिचानभी प्रसिद्ध करके कही है और अब यह जो अर्पन कियाहै सो

भगवत् के राज्य और उसकी करतूतोंकी पहिचान कही है सो यह पहिचानभी अपने राज्य और करतूतोंकी पहिचानने करके प्राप्त होती है इसी कारणसे मैंने अपने पहिचानने का अध्याय प्रथम कहाहै॥

छठा सर्ग॥

चार वचन भगवत्के स्तुतिके वर्णनमें॥

जानना चाहिये कि भगवत् की स्तुति चार वचनों विषे कही है सो चार वचन ये हैं प्रथम भगवत् सबसे निर्लेप है और शुद्ध है १ और दूसरा यह कि, महाराज का सर्व प्रकार धन्यवाद है और वह सर्व जगत्का ईश्वर है २ तीसरे भगवत् एक है और उसकी नाईं दूसरा कोई नहीं ३ चौथा यह कि वह महाराज सबसे बड़ा है और परेते परे है ४ सो यद्यपि ये चारवचन कहने विषे संक्षेपकरके कहे हैं पर तौभी भगवत् की सम्पूर्णताई को लखावनेवाले हैं ताते जब तैंने अपनी निर्लेपता करके महाराज की निर्लेपता को समझा तब निर्लेपता के अर्थकी पहिचान तुझको भासहुई १ बहुरि जब अपनेराज्यकरके ईश्वरके राज्यको तैंने पहिचाना कि जेते कुछ देवता और काल कर्म स्वभावसहित सम्बन्धहैं सो ईश्वर के अधीन हैं तब ऐसे जानने करके धन्यवादका अर्थ तैंने समझा काहेसे कि जब कोई और सुख देनेहारा नहीं और आप करके कोई समर्थ भी नहीं तब सर्व प्रकार के जितने सुख हैं तितने केवल भगवत्हीके उपकार हैं और उस ही का धन्यवाद किया चाहते हैं २ बहुरि जब तैंने इसप्रकार जाना कि भगवत् बिना और कोई समर्थ नहीं और सबही उसके अधीन है तब तीसरे वचनका अर्थ तुझको प्रकट हुआ ३ बहुरि चौथे वचनका भाव यहहै कि भगवत् सबसे बड़ाहै सो तिसका अर्थ इसप्रकार जानना चाहिये कि जैसे तू यों जानताहै कि मैंने भगवत्को पहिचानाहै सो तिसको तैंने पहिचानाही कुछ नहीं काहेसे कि भगवत्की बड़ाईका अर्थ यहहै कि यह जीव सर्व अनुमान करके उस महाराज को पहिचान नहींसके ताते बड़ाईका अर्थ यह नहीं कि भगवत् अमुक पदार्थ से बड़ाहै काहेसे कि उसके निकट तो और कोई पदार्थही नहीं कि जिस पदार्थसे भगवत्को बड़ा कहिये इस करके कि जेती कुछ सृष्टि भासती है सो भगवत्के प्रकाशका प्रतिबिंबहै और उसकी सत्ताकरके स्थितहै तो बड़ा किससेहोवे जैसे सूर्य्यकी जो धूपहै सो जब धूप सूर्य्यसे कुछ भिन्न होवे तब उससे सूर्य्य को

बड़ा कहिये इस कारणसे भगवत् की बड़ाई का अर्थ यही है कि यह मनुष्य अपनी बुद्धि और अनुमान करि के महाराजको नहीं जानिसक्ता और उसकी जो निर्लेपता और शुद्धता है सो तिसको मनुष्यकी निर्लेपताकी नाईं जानना महाअयोग्य है काहेसे कि जितनी यह सृष्टि भासती है सो सब से भगवत् का स्वरूप विलक्षण है और उसको किसी की नाईं नहीं कहाजाता तब यह मनुष्य क्या है कि जो इसका दृष्टान्त भगवत् के ऊपर सम्भव होवे बहुरि ऐसी बुद्धिसे भगवान् रक्षा करि जो उस महाराज मिहाभगुना और राज्यको इस मनुष्य के ऐश्वर्य राज्य के समान जाने अथवा विद्या और शक्ति आदिक जो महाराज के स्वभाव हैं तिनको मनुष्यकी विद्या और सामर्थ्य की नाईं विचारि सो यह महाअयोग्य है यद्यपि इसप्रकार आगे वर्णन कियागया है तोभी महाराजका स्वरूप लखावने के निमित्त दृष्टान्तमात्र कहा है कि उस करके इस मनुष्यको भी कुछ बूझभाव होवे जैसे कोई बालक किसी बुद्धिमान् से पूछे कि राज्य करने में कैसा स्वाद होवा है तब उस बालकको कहा जायगा कि जैसे तुमको गेंद दण्डा खेलने में स्वाद आवता है वैसेही राजाओं को राज्यमें स्वाद मिलता है सो उस बालकको इस निमित्त ऐसे कहा है कि वह गेंद दण्डासे इतर सुखको नहीं जानता और जिस सुखको उसने देखा ही न होवे तिसको अनुमान करके क्योंकरि पहिचाने ताते उसको गेंद दण्डाके दृष्टान्त करके समझ में आवेगा पर यह बात प्रसिद्ध है कि गेंद दण्डाका सुख राज्य के सुखसे परस्पर कुछ सम्बन्धही नहीं रखता पर सुख शब्द दोनों पर समान आवता है ताते नामसंज्ञाकी एकता करके बालकों को समझावना सुगम होता है तैसेही मनुष्यकी शुद्धता और निर्लेपता का जो वर्णन कियाहै सो इस जीवकी मूर्ख बुद्धि समझावने के निमित्त कहाहै ताते यह वार्त्ता निस्सन्देह है कि भगवत् की पूर्णताको भगवत् बिना और कोई नहीं जान सक्ता इसी कारण से भगवत्की पहिचानका विस्तार अमित है जो इस ग्रन्थ में कहा नहीं जाता ताते इस जीवको श्रद्धा और प्रीति उत्पन्नहोने के निमित्त इतना ही कहताहै और यह मनुष्यभी इतनेही समझने का अधिकारी है कि इसजीवकी भलाई भगवत्की पहिचानि और उसकी सेवा और भजनविषे होती है इस करके कि जब इस मनुष्य का शरीर मृत्युको प्राप्त होवे तब चाहिये कि इसका ध्यान महाराजही और होवे काहेसे कि इस जीवके स्थितहोने का स्थान वोही

है और इस को अवश्यमें नहीं पहुंचतो है ताते जब आगेही इसकी प्रीति उस के साथ होवे तब जीवकी भलाई जानिये इसकरके कि जितनी प्रीति किसीकी अधिक होती है तितनीही उस प्रियतम के दर्शन विषे उसको आनन्द भी अधिक होताहै और जबलग इस मनुष्यको भगवत्की पहिचान और भजनकी अधिकता न होवे तबलग इसके हृदयविषे भगवत्की प्रीति दृढ नहीं होती सो यह वार्त्ता प्रसिद्धहै कि जिस पुरुषके साथ किसीकी प्रीति अधिक होती है उस का स्मरणभी बहुतकालाहै और जिसका स्मरण करताहै उसके साथ प्रीति भी दृढ होजाती है इसीप्रकार एकसन्त दाऊदको आकाशवाणी हुई थी कि हे दाऊद! तेरे सर्व कार्योंकी सिद्ध करनेवाला मैंहीहूं और तेरा प्रयोजनभी मेरेही साथहै ताते एक क्षणभी मेरे भजनसे अचेत न हो पर इस मनुष्यके हृदयविषे भजन तबहीं दृढ होता है जब प्रथम सत्कर्मोंविषे वर्तता है और सत्कर्मों का अवकाश तब पावताहै जब सर्व भोगवासनाका त्याग करताहै ताते पापकर्मोंका त्याग करना हृदयकी मुक्तिका कारणहै और सत्कर्मोंका ग्रहण करना भजनकी दृढ़ता का कारण है और ये दोनों भगवत्की प्रीति के उपजावनेवाले हैं और उत्तम भागोंकाबीज भगवत्की प्रीति करके सिद्ध होताहै सो यद्यपि यह जीव शरीरधारी जोहै सो सर्व भोगोंसे रहित नहीं होसक्ता और खानपान वस्त्र आदिक शरीर के कार्य्य निमित्त प्रमाण मोजूदहै हैं ताते चाहिये कि विचारकी मर्यादविषे स्थित होवे तब कल्याणीय कर्मों और भोगवासनाको भिन्नकरे पर विचारकी मर्यादभी दो प्रकार करके होती है सो एक यहहै कि यह मनुष्य अपनी बुद्धि और अनुभव की दृष्टिके साथ विचारकी मर्यादको देखकर अंगीकारकरे अथवा किसी महापुरुषकी संगति करके विचारकी मर्याद विषे वर्ते पर अपनी बुद्धि और पुरुषार्थ के आश्रित मर्याद विषे रहना कठिन है काहेसे कि इसजीवके ऊपर भोगवासना ऐसी प्रबलहै कि इसकी बुद्धिको अन्धकरके सर्वदा यथार्थ मार्गसे दूराय रखती है और अपने मनोरथों के अनुसार भोगोंको पुण्यरूप करके देखावती है ताते चाहिये कि यह मनुष्य स्वाधीन होकर कभी न वर्ते और अपना शरीर किसी महापुरुषको समर्पणकरे पर सबही मनुष्यभी इस योग्य नहीं होते कि उन को अपनपो अर्प दीजिये ताते जो ज्ञानवान सन्त होवे उसकी आज्ञाविषे वर्ते और आज्ञाकी मर्याद से उल्लंघन न होवे तब स्वाभाविकही भलाईकी प्राप्ति होता है

सो सेवक होनेका अर्थ यही है और जो मनुष्य अपनी वासना करके संतजनों की मर्य्यादसे उल्लंघित होताहै तब उसकी बुद्धि तत्कालही नष्ट होजाती है इसी पर महाराजने भी कहाहै कि जिसपुरुष ने विचारकी मर्य्यादका त्याग कियाहै तिसने अपने आपपर अन्याय किया है ॥

सातवांसर्ग ॥

मूर्ख मनुष्य सवमार्ग विपरीतगामियों के वर्णन में ॥

ताते जान तू कि जिन पुरुषों ने अपनी वासना के अनुसार संतजनों की आज्ञा और मर्य्यादको त्यागकियाहै सो तिनकी अवस्था सात प्रकारकी है सो प्रथम ऐसे मूर्ख हैं कि उनकी प्रतीति भगवत् पर भी नहीं होती और इस प्रकार कहते हैं कि भगवत्भी कल्पनामात्रहै काहेसे कि जब कोई इस जगत्का ईश्वर होता तब उसका भी कुछ रूप रंग होता ताते जिसका रूपरंग स्थान दिशा न पाईजावे तब इससे जानाजाताहै कि भगवान् कल्पाहुआ है और इस जगत्के कार्य्य तत्त्वों के स्वभाव और नक्षत्रों के आश्रित होतेहैं सो वह मूर्ख ऐसेही जानते हैं कि यह मनुष्य और और जीव और नानाप्रकारकी रचना अनेकगुणों संयुक्त जो दीखते हैं सो ईश्वर बिना आपही उत्पन्न हुये हैं और इसीभांति स्थित रहेंगे अथवा इनका उत्पन्नहोना तत्त्वोंका स्वभावहै सो यह उनका कहना व्यर्थ है काहेसे कि वह मूर्ख अपने आपसे भी अचेतहै तब और किसी पदार्थको क्या जाने सो इसका दृष्टान्त यहहै कि जैसे कोई पुरुष लिखेहुये अक्षरोंको देखे और कहे कि यह अक्षर विद्यावान् और समर्थ लिखारी बिना आपहीकरके लिखेहुये हैं अथवा अक्षरोंकी मूर्त्ति अनादिकालकी लिखी चली आवती है सो जिनकी बुद्धिके नेत्र ऐसे अंधहोवें तब उनका इसप्रकार देखनाही मार्गोंकी हीनता का मार्गहै बहुरि वैद्य और ज्योतिषियोंका भूलना तो पहिलेही वर्णनहुआहै १ और दूसरे मनुष्य इसप्रकारके मूर्खहैं कि वह परलोकको नहीं मानते और यों कहते हैं कि यह मनुष्यभी घास और खेतीकी नाईं हैं ताते जब यहजीव मृत्युहोताहै तब मूलहीसे नष्ट होजाता है इसी कारण से पाप पुण्य सुख दुःख दण्ड ताडना सबही व्यर्थहै सो यह ऐसेमूर्ख हैं कि आपको भी घास और बेलों और गधोंकी नाईं जानते हैं और आत्मा जो चैतन्य और अविनाशी है तिसको नहीं पहिचानते और मृत्युहोना जो शरीरकी नाशताका नामहै तिससे अचेतहैं पर इस

का निर्णय परलोकअध्याय विषे कहेंगे २ बहुरि तीसरे मूर्ख ऐसे हैं कि वह भगवत् और परलोकको मानते हैं पर उनकी प्रतीति निर्बल होती है ताते सतजनों के वचनोंको नहीं पहिंचानते और कहते हैं कि भगवत्को हमारे भजनकी अपेक्षा क्याहै और हमारे पाप करने करके उसको दुःख क्याहै काहेसे कि वह भगवान् ऐसा महाराजाहै कि उसको जगत्के भजन करनेकी कुछ परवाहही नहीं ताते उसके निकट पाप और भजन सब समानहैं पर यह मूर्ख भगवत्के वचनों में प्रत्यक्ष नहीं देखते हैं कि महाराज ने कहा है कि जिज्ञासुजन पुरुषार्थ और शुभकर्म अपने मनकी पवित्रता के निमित्त करते हैं सो यह मूर्ख मंदभागी इस वचनको नहीं जानते और इस प्रकार समझ रक्खा है कि शुभकर्म भगवत् के निमित्त कियेजाते हैं अपने कल्याणके निमित्त नहीं सो तिसका दृष्टान्त यहहै कि जैसे कोई पुरुष रोगी होवे और पथ्यका त्यागन करे और कहे कि मेरे पथ्य और कुपथ्यकरके वैद्यकी क्या हानि होती है सो यह वचन तो सत्यहै कि वैद्यकी हानि कुछ नहीं होती पर इसकुपथ्य करके रोगीहीका नाश होताहै सो रोगीका नाश वैद्यकी अप्रसन्नता करके नहीं होता पर वह कुपथ्यही रोगीकी नाशताका मार्ग है और वैद्यतो उसको शुभमार्ग दिखानेवालाहै ताते वैद्य की हानि क्योंकर होवे सो जैसे शरीरका रोग शरीरकी नाशताका कारणहै और रोगोंका उपचार करना सुखों का कारण है तैसेही मलिन स्वभाव बुद्धिकी नाशताका कारण है और भगवत्का भजन और पहिंचान बुद्धिकी अरोग्यताका कारण है ३ बहुरि चौथे मूर्ख इसप्रकार कहते हैं कि सन्तजनों ने जो भोग और क्रोध से हृदयको शुद्धकरना कहाहै सो यह असम्भवहै काहे से कि यह स्वभाव मनुष्यकी आदि उत्पत्ति विषे मिलेहुये उपजे हैं ताते यह यत्न करना ऐसा है जैसे कोई कालेकम्मलको सफ़ेद कियाचाहे तब वह कदाचित् सफ़ेद नहीं होता सो यह मूर्ख यों नहीं जानते कि सतजनों ने भोगोंको और क्रोधको वशीकारकरना कहाहै जिसमे संतजनोंकी आज्ञा और मर्य्यादसे उल्लंघित न होवे और प्रबल न होजावे बहुरि तामसी राजसी कर्म्मोंका त्यागना जो कहाहै सो यहचार्त्ता होनेके योग्य है और बहुतपुरुष इस अवस्थाको प्राप्तहुये हैं इसीपर महापुरुषने भी कहाहै कि मैं भी और मनुष्यों की नाईं क्रोध करताहूं पर मेराहृदय तपायमान नहीं होता और महाराजने भी ऐसे पुरुषोंकी प्रशंसा करी है जिन्होंने क्रोधको जीताहै सो

जीतना तबही कहा जाताहै जब प्रथम क्रोधहोवे और जब क्रोधहोवेही नहीं तब उसका जीतना क्योंकर कहिये ४ बहुरि पांचवें मूर्ख इसप्रकार कहते हैं कि भगवत् परमदयालु और कृपालु स्वरूप है तातें हमारे अवगुणों की ओर न देखेगा पर यों नहीं जानते कि यद्यपि वह महाराज परमदयालु है पर तौभी पापी मनुष्यों को दण्ड देनेवाला भी वोही है और इस जगत् विषे जो नानाप्रकार के रोग और कष्ट और निर्धनता आदिक दुःख जो जीवोंको प्राप्त होते हैं सो तिसको नहीं देखते और भगवत् की दया और कृपामें तो कुछ सन्देह नहीं परन्तु जब वह अपनी जीविका के निमित्त यत्न करते हैं तब उनकी प्रतीति भगवत् के दयालु जाननेमें कहां रहसक्ती है और व्यवहार और जीविका के निमित्त क्यों यत्न करते हैं काहेसे कि वह महाराज उद्यम बिनाही प्रतिपाल करनेवालाहै और महाराज ने प्रसिद्ध कहाहै धरती और आकाश विषे सर्व जीवों का प्रतिपाल करनेवाला एक मैंहीहों सो इस वचनसे महाराज ने व्यवहारमें प्रसिद्ध वर्जाहै पर परलोक के मार्गमें यत्न करनेसे तो इसप्रकार नहीं वर्जा कि तुम भजन और पुरुषार्थ मतकरो बहुरि इसीप्रकार जब मूर्ख भगवत्को कृपालुस्वरूप जानते हैं और माया की तृष्णा का त्याग नहीं करसक्ते तो परलोककी वार्ता मुखसे व्यर्थही कहतेहैं कि हमको भगवत् क्षमा करलेवेगा सो यह लोग अपने मनके सिखाये हुये हैं और वासना के दासहैं और भगवत की कृपापर उनको प्रतीतिही कुछ नहीं ५ बहुरि छठे मूर्ख अपने ऊपर अभिमानी हैं और इसप्रकार कहते हैं कि हम ऐसी अवस्थाको प्राप्तहुये हैं कि हमको पापोंका स्पर्शही नहीं होता और हमारा धर्म ऐसा दृढ़ हुआहै कि उसको कदाचित् मैल नहीं लगता सो ऐसे मूर्खोंकी अधिकतो ऐसी अवस्था होती है कि जब कोई उनका एकवचन खण्डन करके निरादर करे तब सर्व आयुष अपनी उस के विरोध विषे खोवते हैं अथवा जब एक ग्रास भी भोजनका किसी से मांगें और वह न देवे तब क्रोधकरके उनके हृदय विषे ऐसा अंधकार छाय जाताहै सो यह मूढ़ परमपुरुषार्थ विषे ऐसे तो दृढ़ नहीं हुये कि जो इनको पापोंका स्पर्श न होवे फिर ऐसा अभिमान करना क्योंकर प्रमाण होवे और जब कोई मूर्ख ऐसे पदको पहुंचभी जावे कि पैआर और भोगोंकी अभिलाषा दम्भ और क्रोधको उसने दूर कियाहोवे पर जब इसप्रकार जाने कि मैं परमपद को प्राप्तहुआहूं तौभी अभिमानी कहलावेगा काहेसे कि सन्तजनों

की अवस्था जो ऐसी हुई है कि जब उनसे कुछ भी अवज्ञा होजाती थी तब बहुत रुदन करते थे और महाराज के आगे प्रार्थना करके क्षमा करावते थे और जो उत्तम पुरुष सचे हुये हैं वह किंचित् पापसे भी डरते थे और प्रहित आत्मा के संशय करके शुद्ध आत्मा को भी त्यागदेते थे तब इसमूर्खने यह क्योंकर जाना कि भोगों और भोगों की आसक्तिसे मुक्त हुआहूं सो इसकी जो कहीहै की अवस्था जो सन्तजनों से उत्तम नहीं हुई फिर जब इसप्रकार कहें कि सन्तजन भी कर्मोंसे निर्लेप हुये हैं पर उन्होंने जीवों के कल्याणके निमित्त अशुभ कर्मों का त्याग कियाहै सो तिसका उत्तर यहहै कि जब निश्चय सन्तजन जीवों के कल्याण के निमित्त पापकर्मों का त्याग करते थे तब यह मूर्ख जीवों के कल्याण निमित्त कर्मों नहीं करते और ऐसा जानते हैं कि जो कोई और भी हमारे अशुभकर्मों को देखताहै तब वह भी धर्मके मार्गमें गिरपड़ताहै और उसकी बुद्धि नाश होजाती है फिर जब इस प्रकार कहें कि लोगों की बुद्धिके नाशहोने से हमारी क्या हानि होती है तब ये मूर्ख यों नहीं जानते कि जो लोगों के नाश करके इनकी कुछ हानि न होती तो आगे जो सन्तजनों ने अपने शरीर पर तप और वैराग्य रक्खाहै सो लोगोंके अकाज विषे उनकी हानि क्योंकर होती थी जैसे महापुरुषके पास एक छुहारा सकागतारूप आयाथा तब उन्होंने मुखमें उसको डालदिया सो जब उस छुहारे को भोजन करलेते तब इसमें उनको क्या पापहोना और लोगों का क्या अवगुणथा और जब उस छुहारेके खानेके विषे दोषथा तब इन मूर्खोंको मांसे मदिरा के खानेपान करने से क्योंकर दोष नहीं होगा और फिर जो विचारकरदेखें कि जिन्होंने एक छुहारेका त्याग कियाथा तिनकी अवस्थासे इन मूर्खोंकी अवस्था तो उत्तम नहीं और एक छुहारे के पापमें मदपानका पाप भी थोड़ा नहीं ताते क्योंकर जानिये कि उनको एक छुहारेका भी पाप लगताथा और इनको मदिरा करके भी दोष नहीं ताते निस्सन्देह जाना जाताहै कि इन की क्रियादेखकर माया प्रसन्न होती है और इन मूर्खों को हास्यका स्थान और खिलौना बनायाहै और जब बुद्धिमान् पुरुष इनके कर्मों को देखतेहैं तब इनके दम्भकरके आश्चर्यवान् होतेहैं ताते धर्मात्मा पुरुष वेहीहैं कि जिन्होंने मनको बलरूप जानाहै इसी कारणसे मन और वासनाको जिसने वशमें नहीं किया सो मनुष्य महानीचहै अथवा पशुहै काहेसे कि जिसको अपने मनके छलोंकी पहिचान नहीं तिसको

अभिमान करना व्यर्थ है इस करके कि वह मूर्ख बुद्धिकी हीनता करके कहताहै कि मैंने मनको वशीकार कियाहै और मनके वशीकार करनेका कोई लक्षणही इस विषे पाया नहींजाता सो मनके जीतने का लक्षण यह है कि जब इसजीव की करतूति अपनी वासनाके अनुसार न होवे और सतजनोंकी आज्ञाविषे वर्ते और सर्वदा आपको उनकी आज्ञाविषे वर्ते तब जानिये कि सच्चा है और जब अपनी सयानप और चतुराई करके निर्दोष हुआचाहै तब जानिये कि मनका दासहै और झूठा अभिमान करताहै ताते अपने मनकी परीक्षाका त्यागकरना कदाचित् प्रमाण नहीं और जब निडर होताहै तब निस्सन्देह छलाजाताहै और अपने नाश होनेको भी नहीं जानता बहुरि सन्तजनों के वचन अनुसारकर-तूति करना भी जिज्ञासु की आदि है अवस्था इसके बिना धर्म की दृढ़ता नहीं होसक्ती तब परमपदका पावना तो महाकठिनहै और परेसे परेहै सो तिस पदका अभिमानी होना व्यर्थ है और सातवमूर्ख अपनी वासनाकी प्रबलताकरके मूढ़ हुयेहैं अजान नहीं हैं इस करके कि आपको निर्लेप नहीं जानते पर जब मन-मती लोगों की ओर देखते हैं कि कुमार्ग विषे चले जातेहैं और नानाप्रकारके भोग भोगते हैं और सूक्ष्म वचनोंका उच्चारण करते हैं और आपको सन्तकरके दिखावते हैं और वेषभी सतजनोंका करतेहैं सो इनकी क्रियाको देखकर वह दे-खनेवालेभी लम्पट होजातेहैं ताते वह भोगोंको बुरा नहीं कहते और योंभी नहीं जानते कि भोगों करके दुःख प्राप्त होताहै और कहतेहैं कि भोग तो निन्द्य नहीं और भोगोंविषे दुःखही कहा है दुःखभी यह कहनेमात्रहै और ये ऐसे मूर्खहैं कि कहनेमात्रका अर्थ भी नहीं जानते और पाखण्डियों के संगकरके और मनकी वासना करके महाअचेत और अंधेहुयेहैं और इनको मायाने जीत लियाहै सो यह वचन और चर्चाकरके सीधे नहीं होते काहेसे कि अजानता करके नहींभूले जान बूझकर बावले हुयेहैं ताते उनका उपाय राजदण्डहै और वचनकरके उन-का उपाय नहीं होता बहुरि ऐसे जे मूर्खहैं तिनकी अवस्थाका वखान इतनाही बहुतहै और इस अध्याय विषे इस कारणसे इनकी अवस्था का वर्णन कियाहै कि ऐसे मूर्खोंकी अवस्था और मूर्खता अपने मनकरके होती है अथवा भगवत् की ओर पहुँचने का जो मार्ग है सो तिस सतजनोंके मार्गसे अचेत होतेहैं पर मूर्खके हृदयमें मूर्खताका स्वभाव ऐसादृढ़ होजाताहै कि इसका दूरकरना कठिन

होजाताहै इसीकारणसे एक ऐसे मूर्ख होते हैं कि अजानता और संशय विषेही मनमतिके मार्गमें चलेजाते हैं और उसपर बड़ाई करते हैं बहुरि जब उनसे कोई प्रश्नकरे तब बावलेसे होजाते हैं और वचनका निर्णय बनाय नहींसके और किसी से पूंछने भी नहीं काहेसे कि उनके हृदयविषे प्रीति भी कुछ नहींहोती और किसी वचनकी शङ्काभी नहींकरते क्योंकि शङ्काभी उसीको उपजती है जिसके हृदयविषे कुछ ढूंढ़ होती है सो ऐसे पुरुषोंका उपचार करना कठिन है जैसे कोई रोगीपुरुष वैद्यके पासजावे और अपने रोगको प्रसिद्ध वर्णन करे तब उसका उपचारकरना कठिन रहताहै और ऐसे मूर्खों को यह उपदेश करना भलाहै कि और जिसवार्त्ता को तुम नहींसमझते तिससे अजानहीरहो पर इतनी प्रतीति तुमको अवश्यही चाहिये है कि तुम सब भगवत्के उत्पन्न कियेहुये हो और तुम्हारा उत्पन्न करनेवाला भी ईश्वर समर्थ है और जो कुछ किया चाहे सो करसक्ता है सो वार्त्ताविषे संशयकरना अयोग्य है बहुरि जब उसविषे कुछ श्रद्धा देखिये तब सतजनों के वचन उसको युक्तिअनुसार समझाइये जिसप्रकार मैंनेभी इस ग्रन्थ विषे वर्णन कियाहै ॥

तीसरा अध्याय ॥

मायाकी पहिचानके वर्णन में ॥

तातेजान तू कि यह संसार भी धर्म के मार्गकी मंज़िलहै और जो जिज्ञासु जन भगवत्की ओर गमनकरते हैं सो तिनके पथविषे यह संसार भी ऐसा स्थान है कि जैसे किसी महावनके किनारेपर कोई बड़ा नगर अथवा बाजारहोवे इस करके कि उस नगरसे परदेशी मनुष्य अपना तोशा करलेवें तैसेही यह संसार भी परलोक मार्गका तोशा बनावने के निमित्त रचाहै बहुरि लोक और परलोक का अर्थ यह है कि शरीर के नाश होने से पहले जो संसार दीखता है तिसका नाम लोक है और शरीर के मृत्युहुये से पीछे जो जीवकी अवस्था होती है सो परलोक कहाताहै और इसलोक विषे जीवका उत्तम प्रयोजन यहहै कि परलोकका तोशा बनावे और यद्यपि आदि उत्पत्ति विषे इस मनुष्यकी अवस्था सामान्य और नीच होती है पर तौभी पूर्णपद का अधिकारी बनाया है कि देवतों के निर्मल स्वभावको जब अपने हृदयविषे स्थितकरे तब भगवत्के दरबार का

अधिकारी होवे सो जबाइस मनुष्य को उस मार्ग की बूझ प्राप्त होवे तब निस्सन्देह महाराज का दर्शन देवेगा और जीव की परम भलाई यही है और इसकी बेहुमी यही है और इस जीव को भगवत् ने इसी कार्य्य के निमित्त उत्पन्न किया है तब लग महाराज का दर्शन नहीं देवसक्ता जबलग प्रथम इसके हृदय की आंखें न खुलजावें और उस सूक्ष्म स्वरूप को देख सका और पहिचान भलीप्रकार न लेवे सो भगवत् के पहिंचानने की कुंजी यही है कि उसकी आश्चर्य कारीगरी को प्रथम पहिंचाने बहुरि महाराज की कारीगरी के पहिंचानने की कुंजी इन्द्रियां और इन्द्रियों के स्थित होने का स्थान शरीर है और यह शरीर पञ्चतत्त्वों के सम्बन्ध करके रची हुई है इसी कारण से यह जीव स्थूल तत्त्वों के देश विषे आया है कि इस जगत् विषे तोशा बनाय लेवे और अपने मन की पहिंचान करके भगवत् को पहिंचाने और सब पदार्थों का पहिंचानना इन्द्रियों करके होता है ताते जबलग इस मनुष्य को इन्द्रियां जगत् की खबर देती हैं तब लग यह पुरुष संसार विषे जीवता रहता है और जब इन्द्रियां इससे दूर होजाती हैं और यह जीव अपने स्वभाव विषे स्थित होता है तब इसी को परलोक कहते हैं सो इस जगत् विषे इस मनुष्य का आवना इसी निमित्त है कि अपने कार्य्य को सिद्ध करे ॥

दूसरा सर्ग ॥

है ताते जीव और शरीर का सम्बन्ध ऐसाहै जैसे तीर्थयात्रा में यात्री और ऊंट का सम्बन्ध होता है अर्थात् यात्री के निमित्त ऊंट चाहिये है पर ऊंट के निमित्त तो यात्री नहीं होता और यद्यपि वह यात्री भी घास और पानी करके ऊंटकी रक्षा करताहै पर तौभी उसका प्रयोजन तीर्थयात्रा है बहुरि जब तीर्थयात्रा सिद्ध होती है तब यात्री को ऊंटकी अपेक्षा नहीं रहती ताते चाहिये कि मार्गविषे ऊंट की खबर कार्यमात्रेही लेवे पर जब सारादिन ऊंटकी टहलविषे और सभारविषे बीतजावे तब वह यात्री संगियों से दूर पड़जाताहै और तीर्थ को नहीं पहुँचता तैसेही जब यह मनुष्य सर्व आयुष आहारकी उत्पत्तिविषे लगावे और यत्नोंसे शरीर की रक्षा करतारहे तब यह पुरुष भी अपनी भलाई को नहीं पहुँचता ताते इस संसार विषे शरीर की रक्षा के निमित्त अवश्यही चाहिये है सो तीन पदार्थ हैं एक आहारहै दूसरा वस्त्र तीसरा शीत उष्णकी रक्षाके निमित्त स्थानके होने की भी अपेक्षा होतीहै सो प्राणों की रक्षाके निमित्त इस जीवको इन तीन पदार्थों से अधिक कुछ नहीं चाहिये बहुरि मायाके सर्व पदार्थों के मूल भी येही हैं बहुरि हृदयका आहार जो भगवत्की पहिचानहै सो जितनीही अधिकहोवे तितनीही सुखदायक है और शरीर का आहार जो अनाजहै सो जब मर्य्याद से अधिक अंगीकार करताहै तब इस करके शरीर का नाश होजाताहै पर इस जीव विषे जो भगवत् ने भोगों की अभिलाषा रची है तिसका प्रयोजन यहहै कि वह अभिलाषा आहार वस्त्र स्थानकी चाह करनेवाली होवे और इसकरके शरीररूपी घोड़ेकी रक्षाकरे पर यह अभिलाषा ऐसी प्रबल रची है कि अपनी मर्य्याद विषे नहीं ठहरती और सदैव अधिकताको चाहतीहै ताते भगवत्ने बुद्धि को उत्पन्न कियाहै कि उस अभिलाषाको मर्य्याद विषे राखे और सन्तजनोंकी रसना विषे धर्मशास्त्रके वचन उत्पन्न किये हैं कि वचनों करके विचारकी मर्याद प्रकट होवे और भोगोंकी अभिलाषा बालक अवस्थासेही इसके ऊपर प्रबलहुई काहे से कि शरीरकी प्रतिपालना खानपान आदिक भोगोंकरके होती है और बुद्धिका प्रवेश पीछे हुआहै ताते भोगोंने आगेही से हृदयस्थानको घेरलिया है इसीकारण से बुद्धिकी आज्ञा को नहीं मानते और विचारकी मर्य्याद तो पीछे प्रकटहुईहै सो तिससे उलटिवत वर्त्तते हैं ताते इस मनुष्यका अपना आप आहार और वस्त्र और स्थान आदिक भोगों विषे आसक्त हुआहै और इसीसे जीव ने

भोगोंकी अभिलाषा करके आपको विस्मृत कियाहै बहुरि योभी नहीं जानता कि आहार और स्थानआदिक का प्रयोजन क्याहै और इस जगत्‌विषे मैं किस निमित्त आयाहूं इसी अजानता करके हृदय के आहारसे अचेत हुआ है और परलोकमार्ग विषेका तोशा इसको भूलगयाहै पर जब तैंने ईसवचन करके माया का स्वरूप और उसके विघ्न और प्रयोजनको भलीप्रकार समझा तब इससे आगे मायाका विस्तार और इसकी जो शाखाहैं तिसकोभी पहिंचाननाचाहिये॥

तीसरासर्ग॥

मायाके विस्तार के वर्णन में॥

तातें जान तू कि जब विचार करके देखिये तो तीनहीं पदार्थोंका नाम संसार है सो एक तो प्रकटही देखने में वनस्पति हैं १ दूसरे पर्वतों में खानि हैं २ तीसरे अनेकभांति के जीवहैं ३ पर धरती के उत्पन्नहोनेका जो कारण और प्रयोजनहै सो यहहै कि यह सर्व पदार्थोंकी स्थिति और वनस्पति उपजने के निमित्त बनाई है बहुरि तावे और लोहे आदिक की जो खानि हैं सो बासनों और वस्त्रों के निमित्त बनाई हैं और नानाप्रकार के जो जीव हैं सो अपने अपने निमित्त उत्पन्न किये हैं पर इन मनुष्यों ने अपने हृदय और शरीरको इन जंजालों विषे बध्यमान कियाहै और हृदयका बन्धन स्थूल संसार की प्रीतिहै और शरीरका बन्धन संसार के कार्य्य हैं पर मायाकी प्रीति करके चित्त विषे ऐसे बुरेस्वभाव उपजते हैं कि वह सबही बुद्धिकी नाशताके कारण होते हैं जैसे तृष्णा और कृपणता और ईर्षा और वैरभाव आदिक जो बुरेस्वभाव हैं सो निस्सन्देह बुद्धिके नाशक-रनेवाले हैं बहुरि शरीरका बन्धन जो मायाके कार्य्य हैं सो तिन विषे हृदय भी ऐसा आसक्त होजाताहै कि आपको और परलोक को विसार देताहै पर तोभी मायाके पदार्थों का जो मूल और प्रयोजन है सो केवल आहार और वस्त्र और स्थान है तातें तीनों व्यवहार इसजीव को अवश्यही चाहियें हैं जैसे खेती और वस्त्रों और स्थानोंका बनावना बहुरि और जेते व्यवहारहैं सो इनहींकी शाखाहैं जैसे धुनियां सूत बनावनेवाला कोरी धोबी दरजी सो यह सबही वस्त्रकेकार्य सिद्ध करते हैं पर इनसभोंको जो अपने अपने शस्त्र चाहियेहैं तातें काष्ठ और लोहा आदिक जो शस्त्रों को बनावते हैं सो तिनका व्यवहार पसरताहै सो जब इतने व्यवहारी आपसविषे इकट्ठे हुये तब यह सबही एक दूसरे की सहायता करते हैं

काहेसे कि सबकोई सर्वकार्य्य अपने आप नहीं करसके जैसे दरजी कोरी और लोहारका कार्य्य करताहै बहुरि लोहारभी इनदोनों के कार्य्यों विषे सावधान है इसीप्रकार सबही एक दूसरेकी सहायताकरते हैं और परस्पर कार्य्य सिद्ध करते हैं ताते सभोंकापरस्पर व्यवहार चलताहै बहुरि लेने देने विषे विरुद्ध जागआवताहै काहे से कि सबकोई नीति विषे नहीं वर्तता और तृष्णाकरके एक दूसरे को डुबाया चाहताहै इसकारण और भी तीनपदार्थोंकी अपेक्षाहुई सो प्रथम तो धर्म्मशास्त्र का ज्ञाता चाहिये जो धर्म्म की मर्य्यादको प्रकटकरे बहुरि कोई ऐसा श्रेष्ठमनुष्य विचारवान् चाहिये जो झगड़ा करनेवालोंको समझावे बहुरि तीसरा कोई बलवन्त राजाभी चाहिये जो झूठे मनुष्य को दण्डदेवे सो इसीप्रकार यह सबही व्यवहार ऐसे हैं कि सभों का परस्पर सम्बन्ध है अधिकसे अधिक पसरते जाते हैं काहेसे कि संसार संसरनेहीका नामहै पर लोगों ने इनहीं कार्य्यों विषे अपना आप भुलायदियाहै और आहार वस्त्र स्थान जो प्राणोंकी रक्षाके कारण हैं और मायाके भी सर्व पदार्थों का मूलहै सो तिसके प्रयोजन को नहीं जाना अर्थात् सर्वव्यवहारोंका प्रयोजन आहार आदिक तीनपदार्थ हैं और इनतीनों पदार्थ आहार वस्त्र स्थानसे प्रयोजन शरीरकी रक्षाहै बहुरि शरीरकी रक्षा जीवके निमित्त है कि यह शरीर जीवका घोड़ाहै और जीवके उत्पन्नहोने का प्रयोजन भगवत्की पहिंचानहै परइनमनुष्यों ने मायाके कार्योंविषे आपको और भगवत्को विस्मरण करदियाहै जैसे यात्री कोई तीर्थ के मार्ग और संगियों को भुलायदेवे और अपने समयको घोड़ेके सँभार और सेवाविषे बितावे तब उसकी यात्रा नष्ट होतीहै तैसेही जो मनुष्य परलोकके मार्गपर अपनी दृष्टि नहीं रखता और आपको परदेशी नहीं जानता और मायाके जंजालों विषे मर्य्यादसे अधिक आसक्तहोताहै तब निस्सन्देह जानाजाताहै कि उसने मायाके भेदको नहीं जाना और मायाकी जो पहिंचान नहींभई तिसका कारण यहहै कि यहमाया महाछलरूपहै इसीपर महापुरुषने भी कहाहै कि यहमाया जीवों को यन्त्र मन्त्र करके मोहनेवाली है ताते इसके छलोंसे भयकरना प्रमाणहै सो जब यहमाया ऐसीहुई तब इसके छलोंका पहिंचानना अवश्यही चाहिये ताते मैं इसमायाके छलोंको दृष्टान्तसहित वर्णन करताहूं॥

चौथासर्ग ॥

मायाके छलों के वर्णनमें ॥

ताते जान तू कि मायाके छलों का प्रथम दृष्टान्त यहहै कि यह माया सर्वदा तुझको स्थिर दिखावती है परन्तु इसको ऐसे जानताहै कि सदैव मेरेपास रहेगी पर यहमाया ऐसी है कि सर्वदा तुझसे दूर चली जाती है और क्षणक्षण विषे इस का जीवना ऐसासूक्ष्म है कि जाना नहीं जाता जैसे वृक्षकी छायाको जब कोई देखे तब वह स्थिरही पड़ी भासती है पर जब भली प्रकार देखिये तब एक क्षण भी नहीं ठहरती तैसेही तेरी आयुष पलपल विषे घटती जाती है और तू इसको स्थिरही जानताहै सो निस्सन्देह यह शरीर और आयुष मायारूप है और ऐसी छलरूपहै कि तू इस के दूरहोनेसे अचेतहै औ यह सर्वदा तुझसे बिछुड़तीजाती है १ बहुरि दूसरा मायाके छलका दृष्टान्त यह है कि यहमाया तेरे साथ अपनी अधिक प्रीति दिखावती है ताते अपने ऊपर तुझको उरझायलेती है और तेरे हृदय विषे उसकी प्रीति और प्रतीति ऐसी दृढ़ होजाती है कि यह हमारी परम प्यारी है और कदाचित् और किसी के पास न जावेगी पर यह माया अज्ञातक ही तुझको छोड़कर तेरे शत्रुके पास जातीरहती है जैसे व्यभिचारिणी स्त्री पर पुरुषोंको अपने ऊपर उरझाते और उनकी अधिक प्रीति दिखाकर अपने गृह विषे लावे बहुरि अदया करके उनका घात करे इसी पर एकवार्ता है कि महात्मा ईसाने स्वप्न विषे मायाको स्त्री के स्वरूपवत् देखा था तब उससे पूछने लगे कि तूने कितने भर्त्ता किये हैं तब मायाने कहा कि मेरे भर्त्ता अगणित हैं तब उन्हों ने पूछा कि वह सब मृतक हुये अथवा उन्हों ने तेरा त्याग किया है तब मायाने कहा कि मैंने ही सबको मारा है तब महात्मा ईसा कहनेलगे कि मुझको लोगों की मूर्खता पर आश्चर्य आता है काहेसे कि जिनकी प्रीति तेरे साथ दृढ़ हुई है तिनका नाश और दुःखी होनाभी देखते हैं और फिरि तेरे ऊपर उरझकर आसक्त होते हैं और भय नहीं करते २ बहुरि तीसरा दृष्टान्त यहहै कि यहमाया आप को कपटी मनुष्यकी नाईं बाहरसे सुंदर बनाकर दिखावती है और इसके अंतर जो दुःख और विघ्न हैं तिन को दुराय रखती है ताते जब इसको मूर्खमनुष्य देखते हैं तब अचानकही लिपटजाते हैं बहुरि जब इसका भेद पावते हैं तब महादुःखी होते हैं जैसे कोई महाकुरूपा स्त्री नानाप्रकारके भूषण और सुंदर वस्त्र पहरे और

अपने मुखको घूंघुट विषे छुपायलेवें सो जब कोई उसको देखताहै तब अवश्यही मोहजाताहै फिरि जब घूंघुटउतारकर उसकी कुरूपताको देखताहै तब पश्चात्ताप करनेलगताहै इसीपर महापुरुषने भी कहा है कि परलोक विषे माया की सूरत महाकुरूपा वृद्धास्त्रीवत् दिखावेंगे कि उसके नेत्र भयानक और दांत मुखसें बाहर निकसेहुये होवेंगे तब महाराजसे प्रार्थनाकरेंगे कि हे महाराज ! इससे हमारी रक्षा कर और कहेंगे कि यह महाराक्षसी कौन है तब आकाशवाणी होगी कि जिस मायाके निमित्त तुम ईर्षा और परस्पर विरोध करते थे और जीवोंका घातकरते थे बहुरिमाव और दयासे रहितहोतेथे और जिसके ऊपर तुम अभिमान करते थे सो यह वोही माया है बहुरि आज्ञाहोवेगी कि इस मायाको महानरक विषे डारो तब माया कहेगी कि मेरे प्रियतम कहां हैं तब आज्ञा होवेगी कि इसके प्रियतमोंकोभी नरकविषे डारदो ३ बहुरि चौथा दृष्टान्त यहहै कि जबकोई मायाकी आदि अन्तका विचारकरे तब निस्सन्देह जाने कि यह माया आदिमें भी न थी और अन्तमेंभी न रहेगी ताते मध्यकाल विषे कुछदिन इसकी स्थिति है जैसे कोईपुरुष परदेशी होवे तिसको मार्गविषे ठहरना अल्पकालही होताहै तैसेही संसारकी आदि प्रा- लब्धहै और अन्त श्मशानहै और इसके मध्यमार्गविषे केती मञ्जिलें हैं सो वर्षतो मञ्जिलकी नाईंहै और महीना योजनहै और कोसकी नाईं दिन है और श्वास पैंडहै इसीप्रकार सर्वजीव सर्वदा मृत्युके मार्गविषे चलेजाते हैं सो किसीको यो- जनपर्यंत मार्ग रहताहै और किसीको इससे भी अल्प रहताहै और किसीको कुछ अधिक रहताहै पर यहमनुष्य आपको स्थिर जानता है कि मैं इसी संसार विषे सदैव स्थितरहूंगा और कितने वर्षोंकी आशाधारकर कार्यों की चिन्ता करताहै और यों नहीं जानता कि मेरीआयुष् दोदिन अथवा चारदिनही है अथवा कुछ भी नहीं है ४ बहुरि पांचवां दृष्टान्त यह है कि विषयीजीव माया के भोगोंविषे प्रसन्न होते हैं पर परलोकविषे ऐसे दुःख और निर्लज्जताको प्राप्तहोवेंगे कि इस कष्टका वर्णन किया नहीं जाता जैसे कोईमीठा और चिकना आहारदेवे और उस को कोई मनुष्य ऐसा बहुतोंका खावे कि उसउदरके उदरपीड़ाको प्राप्तहोवे बहुरि विसूचिका रोग करके वमन और अजीर्णताको प्राप्तहोवे और अतिमूर्च्छाको प्राप्त होवे तिसकी अतिदुर्गंध करके तब बहुत पश्चात्ताप और लाजको पावाहै कहै सो कि सुखका समय बीतगया और कष्ट उसपर शेषरहा सो चलकरकेभी दूर नहीं

॥ चौथासर्ग ॥

मायाके छलों के वर्णनमें ॥

तातें जान तू कि मायाके छलों का प्रथम दृष्टान्त यहहै कि यह माया सर्वदा तुझको स्थिर दिखावती है परन्तु इसको ऐसे जानता है कि सदैव मेरेपास रहेगी पर यहमाया ऐसी है कि सर्वदा तुझसे दूर नहींजाती है और क्षणक्षण विषे इस का जीवना ऐसासूक्ष्म है कि जाना नहीं जाता जैसे वृक्षकी छायाको जब कोई देखे तब वह स्थिरही पड़ी भासती है परन्तु भली प्रकार देखिये तब एक क्षण भी नहीं ठहरती तैसेही तेरी आयुष पलपल विषे घटती जाती है और तू इसको स्थिरही जानता है सो निस्सन्देह यह शरीर और आयुष मायारूप है और ऐसी छलरूपहै कि तू इसके दूरहोनेसे अचेतहै औ यह सर्वदा तुझसे बिछुड़तीजाती है १ बहुरि दूसरा मायाके छल का दृष्टान्त यह है कि यहमाया तेरे साथ अपनी अधिक प्रीति दिखावती है ताते अपने ऊपर तुझको उरझायलेती है और तेरे हृदय विषे उसकी प्रीति और प्रतीति ऐसी दृढ़ होजाती है कि यह हमारी परम प्यारी है और कदाचित् और किसी के पास न जावेगी पर वह माया अचानक ही तुझको छोड़कर तेरे शत्रुके पास जातीरहती है जैसे व्यभिचारिणी स्त्री पर-पुरुषोंको अपने ऊपर उरझावे और उनको अधिक प्रीति दिखायकर अपने गृह विषे लावे बहुरि अदया करके उनका घात करे इसी पर एकवार्ता है कि महात्मा ईसाने स्वप्न विषे मायाको स्त्री के स्वरूपवत् देखा था तब उससे पूछने लगे कि तूने कितने भर्त्ता किये हैं तब मायाने कहा कि मेरे भर्त्ता अगणित हैं तब उन्हों ने पूछा कि वह सब मृतकहुये अथवा उन्हों ने तेरा त्याग कियाहै तब मायाने कहा कि मैंने ही सबको माराहै तब महात्मा ईसा कहनेलगे कि मुझको लोगों की मूर्खता पर आश्चर्य आताहै काहेसे कि जिनकी प्रीति तेरे साथ दृढ़ हुई है तिनका नाश और दुःखी होनाभी देखते हैं और फिरि तेरे ऊपर उरझकर आसक्त होते हैं और भय नहीं करते ३ बहुरि तीसरा दृष्टान्त यहहै कि यहमाया आप को कपटी मनुष्यकी नाईं बाहरसे सुंदर बनाकर दिखावती है और इसके अंतर जो दुःख और विघ्न हैं तिन को दुराय रखती है ताते जब इसको मूर्खमनुष्य देखते हैं तब अचानकही लिपटजाते हैं बहुरि जब इसका भेद पावते हैं तब महादुःखी होते हैं जैसे कोई महाकुरूपा स्त्री नानाप्रकारके भूषण और सुंदर वस्त्र पहरे और

अपने मुखको घूंघट विषे छुपायलेवै सो जब कोई उसको देखता है तब अवश्यही मोहजाताहै फिरि जब घूंघट उतारकर उस की कुरूपताको देखताहै तब पश्चात्ताप करनेलगताहै इसीपर महापुरुषने भी कहा है कि परलोक विषे माया की मूरत महाकुरूप वृद्धास्त्रीवत् दिखावैंगे कि उसके नेत्र भयानक और दांत मुखसे बाहर निकसेहूये होवेंगे तब महाराजसे प्रार्थना करेंगे कि हे महाराज। इससे हमारी रक्षा कर और कहेंगे कि यह महाराक्षसी कौन है तब आकाशवाणी होगी कि जिस मायाके निमित्त तुम ईर्षा और परस्पर विरोध करते थे और जीवोंका घातकरते थे बहुरिभाव और दयासे रहितहोतेथे और जिसके ऊपर तुम अभिमान करते थे सो यह वोही माया है बहुरि आज्ञाहोवैगी कि इस मायाको महानरक विषे डारो तब माया कहेगी कि मेरे प्रियतम कहां हैं तब आज्ञा होवेगी कि इसके प्रियतमोंकोभी नरकविषे डारदो ३ बहुरि चौथा दृष्टांत यहहै कि जबकोई मायाकी आदि अन्तका विचारकरे तब निस्सन्देह जानै कि यह माया आदिमें भी न थी और अन्तमेंभी न रहेगी तातें मध्यकाल विषे कुछदिन इसकी स्थिति है जैसे कोईपुरुष परदेशी होवै तिसको मार्गविषे ठहरना अल्पकालही होताहै तैसेंही संसारकी आदि मा-लताहै और अन्त श्मशानहै और इसके मध्यमार्ग विषे केती मञ्जिलें हैं सो वर्ष तो मञ्जिलकी नाईं हैं और महीना योजनहै और कोसकी नाईं दिन है और श्वास पैंड़हैं इसीप्रकार सबजीव सर्वदा मृत्युके मार्गविषे चलेजाते हैं सो किसीको यो-जनपर्यंत मार्ग रहताहै और किसीको इससे भी अल्प रहताहै और किसीको कुछ अधिक रहताहै पर यह मनुष्य आपको ऐसा जानता है कि मैं इसी संसार विषे सदैव स्थितरहूंगा और कितने वर्षोंकी आशाधारकर कार्यों की चिन्ता करताहै और यों नहीं जानता कि मेरीआयुष् दोदिन अथवा चारदिनही है अथवा कुछ भीनहींरही ४ बहुरि पांचवां दृष्टांत यह है कि विषयीजीव माया के भोगोंविषे प्रसन्न होते हैं परपरलोकविषे ऐसे दुःख और निर्लज्जताको प्राप्तहोवेंगे कि उस कष्टका वर्णन किया नहींजाता जैसे कोईमीठा और चिकना आहारदेवे और उस को कोई मनुष्य ऐसा स्वादहोकर खावे कि उसकरके उदरपीडाको प्राप्तहोवे बहुरि विसूचिका रोग करके वमन और अतीसारको प्राप्तहोवे और अतिमूर्च्छाको प्राप्त होवे तिसकी अतिदुर्गंधकरके तब बहुत पश्चात्ताप और लाजको पावताहै कहै है कि सुखका समय बीतगया और कष्ट उसका रहिगया सो यत्नकर केभी दूर नहीं

चौथासर्ग।

मायाके छलों के वर्णनविषे

ताते जान तू कि मायाके छलों का प्रथम दृष्टान्त यहहै कि यह माया सर्वदा तुझको स्थिर दिखावती है परन्तु इसको ऐसे जानताहै कि सदैव मेरेपास रहेगी पर यहमाया ऐसी है कि सर्वदा तुझसे दूर नहीं जाती है और क्षणक्षण विषे इस का जीवन ऐसासूक्ष्म है कि जाना नहीं जाता जैसे वृक्षकी छायाको जब कोई देखे तब वह स्थिरही पड़ी भासती है पर जब भली प्रकार देखिये तब एक क्षण भी नहीं ठहरती तैसेही तेरी आयुष पलपल विषे घटती जाती है और तू इसको स्थिरही जानताहै सो निस्सन्देह यह शरीर और आयुष् मायारूप है और ऐसी छलरूपहै कि तू इसके दूरहोनेसे अचेतहै औ यह सर्वदा तुझसे बिछुड़तीजाती है १, बहुरि दूसरा माया के छलका दृष्टान्त यह है कि यहमाया तेरे साथ अपनी अधिक प्रीति दिखावती है ताते अपने ऊपर तुझको उरझायलेती है और तेरे हृदय विषे उसकी प्रीति और प्रतीति ऐसी दृढ़ होजाती है कि यह हमारी परम प्यारी है और कदाचित् और किसी के पास न जावेगी पर वह माया अचानक ही तुझको छोड़कर तेरे शत्रुके पास जातीरहती है जैसे व्यभिचारिणी स्त्री पर पुरुषोंको अपने ऊपर उरझावे और उनको अधिक प्रीति दिखाकर अपने गृह विषे लावे बहुरि अदया करके उनका घात करे ऐसी पर एक वार्त्ता है कि महात्मा ईसाने स्वप्न विषे मायाको स्त्री के स्वरूपवत् देखा था तब उससे पूछने लगे कि तूने कितने भर्त्ता किये हैं तब मायाने कहा कि मेरे भर्त्ता अगणितहैं तब उन्हों ने पूछा कि वह सब मृतकहुये अथवा उन्हों ने तेरा त्याग कियाहै तब मायाने कहा कि मैंने ही सबको माराहै तब महात्मा ईसा कहनेलगे कि मुझको लोगों की मूर्खता पर आश्चर्य आताहै काहेसे कि जिनकी प्रीति तेरे साथ दृढ़ हुई है तिनका नाश और दुःख भी होताभी देखते हैं और फिरि तेरे ऊपर उरझकर आ सक्त होते हैं और भय नहीं करते२ बहुरि तीसरा दृष्टान्त यहहै कि यहमाया आप को कपटी मनुष्यकी नाईं बाहरसे सुंदर बनाकर दिखावती है और इसके अंतर जो दुःख और विघ्न हैं तिनको दुराय रखती है ताते जब इसको मूर्खमनुष्य देखते हैं तब अचानकही लिपटजाते हैं बहुरि जब इसका भेद पावते हैं तब महादुःखी होते हैं जैसे कोई महाकुरूपा स्त्री नानाप्रकारके भूषण और सुंदर वस्त्र पहरे और

अपने मुखको घूंघटविषे ढंगमलेवे सो जब कोई उसको देखताहै तब अवश्यही मोहजाताहै फिरि जब घूंघट उतारकर उसकी कुरूपताको देखताहै तब पश्चात्ताप करनेलगताहै इसीपर महापुरुषने भी कहा है कि परलोकविषे माया की सूरते महाकुरूपा वृद्धास्त्रीवत् दिखावेंगे कि उसके नेत्र भयानक और दांत मुखसे बाहर निकसेहुये होवेंगे तब महाराजसे प्रार्थना करेंगे कि हे महाराज! इससे हमारी रक्षा कर और कहेंगे कि यह महाराक्षसी कौन है तब आकाशवाणी होगी कि जिस मायाके निमित्त तुम ईर्षा और परस्पर विरोधकरते थे और जीवोंका घातकरते थे बहुरि भाव और दयासे रहितहोतेथे और जिसके ऊपर तुम अभिमान करते थे सो यह वोही माया है बहुरि आज्ञाहोवेगी कि इस मायाको महानरकविषे डारो तब माया कहेगी कि मेरे प्रियतम कहां हैं तब आज्ञा होवेगी कि इसके प्रियतमोंकोभी नरकविषे डारदो ३ बहुरि चौथा दृष्टान्त यहहै कि जबकोई मायाकी आदि अन्तका विचारकरे तब निस्सन्देह जाने कि यह माया आदिमें भी न थी और अन्तमेंभी न रहेगी ताते मध्यकाल विषे कुछदिन इसकी स्थिति है जैसे कोईपुरुष परदेशी होवे तिसको मार्गविषे ठहरना अल्पकालही होताहै तैसेही संसारकी आदि माताहै और अन्त श्मशानहै और इसके मध्यमार्गविषे केती मंजिलें हैं सो वर्षतो मंजिलकी नाईंहै और महीना योजनहै और कोसकी नाईं दिन है और श्वास पैंड़हैं इसीप्रकार सबजीव सर्वदा मृत्युके मार्गविषे चलेजाते हैं सो किसीको योजनपर्यंत मार्ग रहताहै और किसीको इससे भी अल्प रहताहै और किसीको कुछ अधिक रहताहै पर यह मनुष्य आपको स्थिर जानता है कि मैं इसी संसार विषे सदैव स्थितहूंगा और कितने वर्षोंकी आशाधारकर कार्यों की चिन्ता करताहै और यों नहीं जानता कि मेरीआयुष् दोदिन अथवा चारदिनही है अथवा कुछ भी नहींरही ४ बहुरि पांचवां दृष्टान्त यह है कि विषयीजीव माया के भोगोंविषे आसक्त होने से पर परलोकविषे ऐसे दुःख और निर्लज्जताको प्राप्तहोवेंगे कि उस कष्टका वर्णन किया नहीं जाता जैसे कोईमीठा और चिकना आहारहोवे और उस को कोई मनुष्य ऐसा तृप्तहोकर खावे कि उसअन्नके उदरपीड़ाको प्राप्तहोवे बहुरि विसूचिका रोग करके वमन और अतीसारको प्राप्तहोवे और अतिमूर्च्छाको प्राप्त होवे तिसकी अतिदुर्गंधकरके तब बहुत पश्चात्ताप और लाजको पाताहै न्याहै से कि सुखका समय बीतगया और कष्ट उसका शेषरहा सो यत्नकरकेभी दूर नहीं

होता और जितनाही भोजन स्वादिष्ठहोताहै तितनीही उसमें परिणामविषे दुर्गंध अधिक होती है तैसेही इस संसारविषे मायाके भोग जितने अधिक भोगताहै तितनाही परलोक विषे अधिक दुःखी और लज्जित होताहै और इस दुःख को शरीरके नाशहोनेके समय में प्रकट देखताहै काहेसे कि जिसमनुष्यके पास भोग और बागीचे और टहलुवे और दासी और सोना चांदी अधिक होताहै तिसको शरीर छूटने के समय उनके वियोग का दुःखभी उतनाही अधिक होताहै और जिसकेपास मायाकी सामग्री थोड़ी होती है तिसको दुःखभी थोड़ा होताहै ताते भोगोंके वियोगका जो दुःखहै सो शरीरके मरनेपरभी दूर नहींहोता और अधिक वृद्ध होताहै काहेसे कि मायाकी प्रीति मनुष्यके हृदयका स्वभाव है और शरीर के दूरहुयेसे मनुष्यका हृदय अपनेआप विषे स्थित रहताहै इसी कारणसे माया के भोगोंकी प्रीतिको खैंचकरके अधिक दुःखी होताहै ५ बहुरि छठवां दृष्टान्त यहहै कि जिसमायाके कार्य्योंको यह मनुष्य करनेलगताहै तब प्रथम वह कार्य अल्प दिखाई देताहै और यह मनुष्य जानताहै कि मैं शीघ्रही इस कार्य्य को करलूंगा और आसक्त न हूंगा बहुरि इस कार्यकी आशा और तृष्णा बढ़ती है तब एकही कार्य्यविषे अनेक सहस्रों और मनोरथ उपजि आवते हैं और वह कदाचित् नहीं सम्पूर्ण होते इसीपर महात्मा ईसानेभी कहाहै कि मायाकी तृष्णा करके मनुष्य महाअवस होताहै जैसे कोई तृषावन्त पुरुष कालर पृथ्वी के जलको पीवे तब उसकी तृषा अधिकसे अधिक बढ़ती जाती है और उसही जलपान करके नाश को पावताहै बहुरि महापुरुषनेभी कहाहै कि जैसे कोई मनुष्य जलविषे प्रवेशकरे तब वह किसी प्रकार सूखा नहीं रहता तैसेही मायाके व्यवहारों विषे भी निर्लेप रहना अतिकठिन है ताते ऐसा कोई विरला महापुरुष होताहै जो मायाके व्यव- हारों विषे आसक्त न होवै ६ बहुरि सातवां दृष्टान्त यहहै कि जैसे किसीके गृहविषे कोई परदेशी पुरुष आवे और वह घरवाला पुरुष परदेशियों की टहल करनेलगे और उनके निमित्त स्थान पवित्र कररक्खे और उनको रूपे के बासनों में भोजन और सुगंधआदिक देवे सो इसीप्रकार परदेशी लोग उसके आवने जाते रहाकरें और वह पुरुष सबकीसेवा इसीप्रकार करताहै सो उनपरदेशियोंमें जो कोई बुद्धि- मान् होताहै और घरवालों के भेदको जानताहै वह पुरुष भोजन और सुगंधको अंगीकार करके फिर प्रसन्नता सहित उसकेबासन सब उसकेपास पहुंचाय देताहै

और उसका उपकार मानता है बहुरि जो परदेशी मूर्ख होताहै वह उन सुगन्ध और भोजनवाले रूपेके बासनोंको जानताहै कि उसने मुझको देडाले हैं और ऐसा विचारकर चलनेके समय उन बासनोंको अपनेसाथ उठाने लगताहै बहुरि जब उससे फेरलेते हैं तब शोकवान् और दुःखी होता है और पुकार करता है तैसेही यह संसार भी परदेशियोंका स्थानहै और इस निमित्त भगवत्ने बनाया है कि इसविषे परदेशीजीव अपना तोशा बनायलेवें और किसी पदार्थ के लोभ करके बध्यमान न होवें ताते जो बुद्धिमान् पुरुष होता है वह अपने कार्य्यमात्र व्यवहारको सिद्ध करलेताहै और जो मूर्ख होताहै वह पदार्थों के लोभविषे और भोग विषे बध्यमान होजाता है और फिर वियोग समय दुःखी होता है ७ बहुरि आठवां दृष्टान्त संसारी जीवोंपर यह है कि यह संसारीजीव माया के व्यवहारों विषे ऐसे आसक्त होते हैं कि उनको परलोक की वार्त्ताही भूलजाती है सो इसी पर एक वार्त्ता है कि किसी जहाजविषे कितनेक पुरुष चलेजाते थे जब वह जहाज किसी टापूपर आया तब शरीर की नित्यक्रिया के निमित्त सब कोई उतरे तब केवटने पुकारकर कहा कि हे भाई! अपनी अपनी क्रियाकरके शीघ्रही चले आईयो काहेसे कि यह जहाज वेगही आगेचलेगा बहुरि वह लोग उस टापूपर अपनी क्रिया करनेलगे पर उनमें जो बुद्धिमान् थे सो उन्होंने तो शीघ्र अपनी क्रिया करके जहाज विषे आयकर सावकाश समेत अपनी रुचिके अनुसार ठौर लेलिया और उसमें स्थितहुये और थोड़े पुरुष उसटापूमें जो नानाप्रकारके फूल और पक्षी शब्द कररहेथे और रङ्गीन पत्थर पड़े हुयेथे सो उन की आश्चर्य्य रचनाको देखनेलगे पर कुछेक ढील करके वह भी जहाजपर आयपहुँचे तब उनको सावकाश समेत ठौर न मिला ताते सकुचकर बैठे बहुरि कितने लोग उस आश्चर्य्यता को देखकर भी तृप्त न हुये और रङ्गीन पत्थरों की पोटें बांधकर ले आये और कङ्कड़ों के रखनेका ठौर भी उस जहाजविषे उन्होंने न पाया ताते वह पोटें शीशपर रखकर बैठे बहुरि जब एक दो दिन व्यतीतहुये तब उन कङ्कड पत्थरों का रङ्गभी होगया और उनमेंसे दुर्गंध आवनेलगी और उन को फेंकदेनेका मार्ग दूर प्राप्त न हुआ ताते बड़े दुःख को प्राप्तहुये और पश्चात्ताप करनेलगे बहुरि कितने पुरुष उस टापूकी आश्चर्य्यता को देखकर विस्मयको प्राप्तहुये और सुन्दर रचनाको देखनेमें जहाजसे दूरगये और वह जहाजभी आगेको चलदिया और

वतमूर्खोंने केवटकी पुकारभी न सुनी तातें उस टापूविषे भूख प्यासके मारे मृतक हुये और कितनोंको सिंहादिकोंने फाड़डाला पर वह मनुष्य जो प्रथमही शीघ्र जहाजविषे आय बैठेथे सो वैराग्यी पुरुषकी नाईं हैं और जो पुरुष टापूविषेही रहे वह तामसी मनुष्य हैं कि उन्होंने आपको और भगवत्‌को और परलोकको भुलायदिया और अपनेआप मायाके विषे बन्धायमान हुयेहैं बहुरि जो पुरुष कुछ एक ढील करके जहाज विषे आये थे और रङ्गीन कंकड़ उठाय लाये थे सो वह दोनोंविषभी राजसी हैं कि यद्यपि भगवत् और परलोकको मानते हैं पर तोभी मायाका त्याग नहीं करते और जगत्‌के पदार्थोंके संग्रहकरके भार उठाते हैं॥

पांचवां सर्ग ॥

माया और निर्विषय पदार्थों के वर्णन में ॥

तातें जानतू कि जेती कुछ मायक पदार्थों की मायाकी नाईं निषेधता कही है सो इस करके यों नहीं जानना चाहिये कि मायाविषे सबही पदार्थ निन्द्य हैं काहेसे कि इस संसारविषे कितने पदार्थ ऐसे भी पाये जाते हैं कि वह मायासे रहित हैं जैसे विद्या और शुभकर्तव्य भी संसारही विषे प्राप्त होती हैं पर माया से रहित हैं और परलोकविषे भी जीवों की संगी और सहायता करनेवाली हैं सो यद्यपि परलोकविषे विद्याके अक्षर और वचन नहीं पहुँचते परन्तोभी विद्या का जो गुण है सो जीवोंके साथ रहताहै सो विद्या का गुण भी दो प्रकार का होताहै प्रथम तो हृदयरूपी रत्नकी पवित्रता और शुद्धता पापोंके त्याग करके प्राप्त होती है और दूसरा गुण रहस्य और आनन्दहै सो भगवत्‌के भजन और चित्तकी एकाग्रता करके प्राप्त होताहै सो यह शुभगुण सत्यस्वरूप है तातें भगवत्‌की प्रार्थना और भजनका जो रहस्य है सो सर्व कार्यों से विशेषहै पर यह रहस्य भी इसी जगत् विषे प्राप्त होताहै और माया से रहितहै इसकरके प्रसिद्ध हुआ कि सबही रस भी निन्द्य नहीं पर जो रस परिणामको शीघ्रही पावता है सो निन्द्यहै और जब विचारकरके देखिये परिणाम पावनेकी रस वही स्वाद निन्द्य नहीं काहेसे कि परिणाम पावनेवाले स्वाद भी दो प्रकारके हैं सो एकतो यह कि जिन स्वादोंकरके शरीरकी पुष्टता होती है सो यह निन्द्यहै काहेसे कि ऐसे स्वादोंकरके अभिमानता और प्रमाद और संसारकी सचाई पदवी है बहुरि दूसरा सुखजो आहार और वस्त्र और स्थानकरके प्राप्तहोताहै सो यद्यपि यह भी

साधनतहै पर तौभी नित्य नहीं काहेसे कि विद्या और शुभ करतूति भी इसी से सिद्ध होतीहै ताते इस को भी परलोकका सगी कहते हैं २ ताते जो कोई पुरुष इस शरीरके सुखको संतोष सहित अङ्गीकारकरे और उसका मनोरथ यही होवे कि मैं अचिंत्य होकर भगवतका भजनकरू तव उसको मायासे रहित कहते हैं इसीपर महापुरुषने भी कहाहै कि जिन मायाके पदार्थों करके भगवत की प्राप्तिहोवे सो पदार्थ निंद्यनहीं और ग्रहण करने के योग्य हैं ताते मायाके छलों और इसके विस्तारका जो वर्णन किया सो इसग्रन्थ विषे इतनाही बहुतहै ॥

चतुर्थ अध्याय ॥

पहिलासर्ग ॥

परलोक की पहिचान के वर्णनमें ॥

ताते जान तू कि जबलग प्रथम मृत्युहोने को न पहिचानिये तबलग परलोक भी नहीं जानाजाता और संसारका जीवनहै जबलग इस जीवनेको न जानेगा तवलग मृत्युको नहीं पहिचानसक्ता बहुरि जब जीवके यथार्थ स्वरूप को न पहिचानेगा सो जीवका पहिचानना यह कि अपने आपको पहिचानिये सो कुछएक इसवचन का बखान मैंने पहलेभी वर्णन कियाहै और सन्तजनों के वचन विषे भी आयाहै कि यह मनुष्य दो पदार्थों के सम्बन्धसे उत्पन्न हुआ है सो एकजीवहै और दूसरा शरीर बहुरि शरीररूपी घोड़ाहै और जीवरूपी उस के ऊपर सवारहै और परलोक विषे सुख दुःख इसजीवको शरीरके सम्बन्धकरके भी होताहै और शरीर विनाही अपने आप करके यह जीव दुःखी सुखी होताहै ताते प्रसिद्ध हुआ कि परलोक विषे जीवकी अवस्था केवल जीवकी भी होती है पर शरीरकेसाथ जो जीवकी अवस्थाहै सो तिसको स्थूल स्वर्ग नरक कहते हैं और दुर्गति सुगतिभी कहते हैं बहुरि शरीरके बिना जो जीवको सुख और आनंद प्राप्त होताहै तिसको आत्मस्वर्ग कहते हैं और शरीरसे रहित जो जीवको कष्ट और दुःख होताहै तिसकानाम मानसी नरकहै पर वह जो स्थूलनरक स्वर्ग है तिसको सब कोई प्रत्यक्षही समझते हैं जैसे स्वर्ग विषे कल्पवृक्ष और उत्तम फल और अप्सरा और अनेक प्रकारके सुन्दर खानपान आदिक भोग पाये-जाते हैं बहुरि नरक विषे सर्प और बिच्छू और अग्निके कुण्ड आदिक और

उनमनुष्योंने केवट की पुकारभी न सुनी तातें उसटापूविषे भूख प्यासके मारे मृतक हुये और कितनोंको सिंहादिकोंने फाड़डाला, पर वह मनुष्य जो प्रथमही शीघ्र जहाजविषे आय बैठेथे सो वैरागीपुरुषकी नाईं हैं और जो पुरुष टापूविषेही रहे वह तामसी मनुष्य हैं कि इन्होंने आपको और भगवत को और परलोक को भुलायदिया और अपनेआप मायाके विषे वध्यमान हुये हैं बहुरि जो पुरुष कुछ एक ढीलकरके जहाज विषे आये थे और रङ्गीन कङ्कड़ उठाय लाये थे सो वह दोनों विषयी राजसी हैं कि यद्यपि भगवत और परलोकको मानते हैं पर तौभी मायाकात्याग नहीं करते और जगत् के पदार्थोंके संचनेकरके भार उठाते हैं॥

पांचवां सर्ग॥

माया और निर्माया पदार्थों के वर्णन में॥

तातें जानि तू कि जेती कुछ मायक पदार्थोंकी मायाकीनाईं निषेधता कही है सो इस करकेयों नहीं जानना चाहिये कि मायाविषे सबही पदार्थ निन्द्य हैं काहे सें कि इस संसार विषे कितने पदार्थ ऐसे भीपायेजाते हैं कि वह मायासे रहित हैं जैसे विद्या और शुभकरतूति भी संसारहीविषे प्राप्त होती हैं पर माया से रहित हैं और परलोक विषे भी जीवों की संगी और सहायता करनेवाली हैं सो यद्यपि परलोक विषे विद्याके अक्षर और वचन नहीं पहुँचते पर तौभी विद्या का जो गुण है सो जीवोंके साथ रहताहै सो विद्या का गुण भी दो प्रकार का होताहै प्रथम तो हृदयरूपी रत्नकी पवित्रता और शुद्धता पापों के त्याग करके प्राप्त होती है और दूसरा गुण रहस्य और आनन्द है सो भगवत्के भजन और चित्तकी एकाग्रता करके प्राप्त होताहै सो यह शुभगुण सत्यस्वरूप है तातें भगवत् की प्रार्थना और भजनका जो रहस्य है सो सर्व कार्यों से विशेषहै पर यह रहस्य भी इसी जगत् विषे प्राप्त होताहै और माया से रहितहै इसकरके प्रसिद्ध हुआ कि सबही रस भी निन्द्य नहीं पर जो रस परिणामको शीघ्रही पावता है सो निन्द्यहै और जब विचारकरके देखिये परिणाम पावनेका रस वही स्वाद निन्द्य नहीं कहेंगे कि परिणाम पावनेवाले स्वाद भी दो प्रकारके हैं सो एकतो यह कि जिन स्वादोंकरके शरीरकी पुष्टता होती है सो यह निन्द्यहै काहे से कि ऐसे स्वादोंकरके अचेतनता और प्रमाद और संसारकी मचाई बढ़ती है १ बहुरि दूसरा सुख जो आहार और वस्त्र और स्थानकरके प्राप्तहोताहै सो यद्यपि यह भी

नाशवन्तहै पर,तौभी निंद्य नहीं,काहेसे कि विद्या और शुभ करतूति भी इसी से सिद्ध होतीहै,ताते इसको भी परलोकका संगी कहते हैं २ ताते जो कोई पुरुष इस शरीरके सुखको संतोष सहित अङ्गीकारकरै और उसका मनोरथ यही होवे कि मैं अचिंत्य होकर भगवत्का भजनकरूं तब उसको मायासे रहित कहते हैं इसीपर महापुरुषने भी कहाहै कि जिन मायाके पदार्थों करके भगवत् की प्राप्तिहोवे सो पदार्थ निंद्यनहीं और ग्रहण करने के योग्य हैं ताते मायाके छलों और इसके विस्तारका जो वर्णन किया सो इसग्रन्थ विषे इतनाही बहुतहै ॥

चतुर्थ अध्याय ॥

पहिलासर्ग ॥

परलोक की पहिचान के वर्णनमें ॥

ताते जान तू कि जबलग प्रथम मृत्युहोने को न पहिचानिये तबलग पर-लोक भी नहीं जानाजाता और संसारका जीवनाहै जबलग इस जीवनेको न जानेगा तबलग मृत्युको नहीं पहिचानसका बहुरि जब जीवके यथार्थ स्वरूप को न पहिचानेगा सो जीवका पहिचानना यह कि अपने आपको पहिचानिये सो कुछएक इसवचन का बखान मैंने पहले भी वर्णन किया है और सन्तजनों के वचन विषे भी आयाहै कि यह मनुष्य दो पदार्थों के सम्बन्धसे उत्पन्न हुआ है सो एकजीवहै और दूसरा शरीर बहुरि शरीररूपी घोडाहै और जीवरूपी उस के ऊपर सवारहै और परलोक विषे सुख दुःख इसजीवको शरीरके सम्बन्धकरके भी होताहै और शरीर बिनाही अपने आप करके यह जीव दुःखी सुखी होताहै ताते प्रसिद्ध हुआ कि परलोकविषे जीवकी अवस्था केवल जीवकी भी होती है पर शरीरकेसाथ जो जीवकी अवस्थाहै सो तिसको स्थूल स्वर्ग नरक कहते हैं और दुर्गति सुगतिभी कहते हैं बहुरि शरीरके बिना जो जीवको सुख और आ-नंद प्राप्त होताहै तिसको आत्मस्वर्ग कहते हैं और शरीरसे रहित जो जीवको कष्ट और दुःख होताहै तिसकानाम मानसी नरकहै पर यह जो स्थूलनरक स्वर्ग है तिसको सब कोई प्रकटही समझते हैं जैसे स्वर्ग विषे कल्पवृक्ष और उत्तम फल और अप्सरा और अनेक प्रकारके सुन्दर खानपान आदिक भोग पाये-जाते हैं बहुरि नरक विषे सर्प और बिच्छू और अग्निके कुण्ड आदिक और

बहुते दुःख पायेजाते हैं सो इसलिये स्थूलस्वर्ग और नरककी वार्ता मैंने संक्षेप करिके कही है काहेसे कि यह वार्ता धर्मशास्त्रमें प्रसिद्धहै ताते सब कोई पहिंचानताहै ताते अब इससे आगे मृत्युहोनेका अर्थ प्रकटकरके कहताहूं फिरि मानसी नरक और स्वर्ग का वर्णन करूगा काहे से कि इस सूक्ष्म नरक और स्वर्ग को सब कोई नहीं पहिंचानता पर इस भेदके पहिंचानने का उत्तम मार्ग यहहै कि इस मनुष्यके चित्तविषे एक खिड़की है और वह देवलोककी ओर खुलीहुई है पर जो कोई इस अनुभवरूपी सूक्ष्म खिडकी विषे देखताहै उसको परलोक की दुर्गति और सुगति प्रकट भास आवती है और संशय रहित होताहै काहे से कि प्रत्यक्ष देखने में संशय कुछ नहीं रहता और युक्ति और वचन श्रवण से संशय रहजाताहै जैसे वैद्यको शरीरका रोग और आरोग्यता भास आवती है और वह योंभी जानता है कि जब यह रोगीपुरुष कुपथ्य को अङ्गीकार करेगा तब नाशको प्राप्त होवेगा और जब अपने रोगका उपचार करेगा और संयम विषे वर्त्तेगा तब रोगके दुःखसे मुक्तहोवेगा तैसेही सन्तजनोंको जीवोंकी सुगति और दुर्गति प्रकटभासती है और इसबातको भी प्रकटदेखते हैं कि भगवद्भजन और उसकी पहिंचान जीवकी उत्तमगति का कारण है और मूर्खता और पापों करिके यहजीव नीचगतिको पाताहै सो यहविद्या ऐसी दुर्लभहै कि बहुत पण्डित भी इसभेदको नहीं समझते अथवा इसपर प्रतीति नहीं करते और स्थूल नरक और स्वर्ग बिना और कुछ नहीं जानते और परलोकको भी श्रवणमात्रही मानते हैं ताते मैं शास्त्रोंकी युक्ति और वचन करके कुछ परलोकका अर्थ वर्णन करूगा पर जिसमनुष्यकी बुद्धि उज्ज्वलहोवे और जिसका हृदय पक्षोंके विवादसे रहित होवे और देखादेखी के विरुद्धसे शुद्ध और निष्कामहोवे तब उसको इसमार्गकी बूझ भासआवेगी और उसके चित्तविषे परलोकका दृढ़होवेगा काहेसे कि बहुत लोगोंकी प्रतीति परलोकके जाननेविषे निर्बल और संशययुक्त होती है ॥

दूसरासर्ग ॥

मृत्यु के वर्णन में ॥

तातें जान तू कि जब तुमको मरनेका अर्थ जानने की इच्छा हुई तब इस प्रकार श्रवणकर कि इसमनुष्य विषे दो प्रकारकी चैतन्यता है सो एक प्राणनेतमा कहाती है जिस करके हृदय स्थान और प्राणवायु के संयोगसाथ शरीर

और इन्द्रियां चैतन्य रहती हैं सो प्राणचेतना पशुओं और मनुष्यों विषे एक समानहै, बहुरि दूसरी चैतन्यता बुद्धि करके होती है वह केवल मनुष्यही का अधिकारहै पर वह प्राणचेतना जो शरीरको सुचेत करती है सो प्राणोंका फुरना हृदय स्थानसे होता है बहुरि हृदयस्थान जो तत्त्वों के सूक्ष्म अंशों करके रचा हुआहै सो तत्त्वोंका अंश वायु पित्त कफ आदिक है पर जबलग इनकी वृत्ति समानहोती है तबलग वह हृदयस्थान सुचेत रहताहै और उसी हृदयस्थान की नाड़ी शीश और सर्व अंगों विषे पसरती हैं ताते प्राणवायुके सम्बन्ध करके सब इन्द्रियां चैतन्य होजाती हैं और शरीरकी सर्व क्रिया सिद्धहोती है और जब वह तत्त्वों की समानवृत्ति शीश विषे पहुँचती है तब नेत्र और श्रवण आदि इन्द्रियों को अपने अपने विषे ग्रहण करने का बलहोताहै सो इसका दृष्टान्त यह है कि जैसे दीपकके प्रकाश करके मन्दिर विषे चमत्कार होताहै और सर्व पदार्थ भासनेलगते हैं तैसेही भगवत् की सत्ता पायकर तत्त्वोंकी समान अंश और प्राण वायुके मार्ग से सब इन्द्रियोंको अपनी क्रियाका बल पहुँचताहै और वह अपनी अपनी क्रियाविषे सावधान होती हैं और जब किसी नाड़ी में प्राणवायुके मार्ग और तत्त्वोंके समान अंशसे पटल पड़जाताहै तब वह अंग क्रियासे रहित होजाताहै जो उस पटल और ग्रन्थीके आगे है और वह अंग शून्यभी होजाताहै बहुरि वैद्यकी विद्या का प्रयोजन यह है कि उसका उपचार करके पटल को दूर करदेवे तब उस अंगविषे चैतन्यता फुरआवती है और अपनी क्रिया विषे सावधान होताहै ताते वह हृदयस्थान शरीर विषे दीपककी नाई है और प्राणवायु उसकी वाती है और आहार तेल है ताते यह वार्त्ता प्रसिद्ध है कि तेल बिना दीपक बुझजाता है तैसेही प्राणरूपी दीपक आहार बिना बुझजाता है और जैसे अधिक तेल करके भी वाती तेलको नहीं खींचती तबभी दीपक शून्य होजाताहै तैसे यह हृदयस्थान भी अधिक व्यतीतहुये वृद्ध अवस्था विषे आहार को नहीं खींचसक्ता ताते मृत्यु होजाती है बहुरि जैसे तेल और वातीहोते भी अकस्मात् किसी विघ्न करके दीपक बुझजाता है तैसेही शस्त्रादिक निमित्त करके भी शरीरका नाश होजाता है और प्राणवायु की जो समानता है तिस करके शरीर और इन्द्रियोंकी क्रिया सिद्धहोती है और जब वायु पित्त कफके कोप करके वह समान वृत्ति नष्टहोजाती है तब अवश्य में इन्द्रियों की क्रिया शून्यहोजाती है जैसे

जैसे यह हाथभी जब अपनी कियासे शून्य होताहै तब उसको अनक कहते हैं अर्थात् हाथकी क्रिया बलकरके होतीहै और बल प्राणचेतना के प्रकाश करके नाड़ियों के मार्गसे सर्व अङ्गों में पहुचताहै और जब किसी नाड़ीका मार्ग रुक जाता है तब उस अङ्ग को प्राणोंका प्रकाश नहीं पहुचता और बलकी हीनता करके क्रियासे रहित होजाताहै तैसेही यह शरीरभी प्राणोंके सम्बन्ध करके तेरी आज्ञाविषे वर्त्तता है पर जब प्राणों की समान वृत्ति दूरहोजाती है तब शरीरके सब अङ्ग शून्य होजातेहैं और तेरीआज्ञासे रहित होतेहैं सो इसीको मृत्यु कहते हैं पर तौभी तेरा चेतन्यस्वरूप अपनेआप विषे स्थित रहता है काहेसे कि जब कोई टहलुवा तेरी टहलसे दूरहोजावै तब इसकरके तेरा तो नाश नहींहोता अर्थ यह कि शरीर तेरा टहलुवाहै और तेरा निजस्वरूप इससे विलक्षणहै और जब तू विचार करके देखे कि यह तेरे अङ्ग जैसे बालकअवस्था में थे सो अब तो वोही अङ्ग नहीं काहेसे कि वह अंग सबही परिणाम करके विपर्ययहुये हैं और आ हारों करके वृद्ध होगयेहैं ताते प्रसिद्धहुआ कि तेराशरीर वह नहीं और तू अब भी वही है इस करके कि तेरास्वरूप शरीरही नहीं ताते तू शरीरके नाशहोने की चिन्ता न कर काहेसे जब तेराशरीर दूरहोजावेगा तब भी तेरास्वरूप अवि नाशी है और तेरे स्वभाव दो प्रकारके हैं सो एक तो शरीर के सम्बन्ध के साथ मिलेहुये हैं जैसे भूख प्यास और निद्रा जो है सो यह शरीरके सम्बन्ध के साथ मिलेहुये हैं और शरीर के सम्बन्धबिना सिद्ध नहीं होते ताते शरीर के मृत्युहुये यह सबही स्वभाव दूर होजाते हैं और दूसरे स्वभाव तेरे ऐसे हैं कि उनविषे श रीरका सम्बन्ध कुछ नहीं होता जैसे भगवत् का पहिचानना और उसके ऐश्वर्य का देखना और उसबूझकी जो प्रसन्नता है सो केवल तेरा अपनाही स्वभावहै इसीकारण से यह पदार्थ सर्वदा तेरे साथही रहते हैं और कदाचित् दूरनहीं होते और भले गुणोंको जो अविनाशी कहाहै तिसका अर्थ यहहै कि भले स्वभाव जीवके सर्वदा सङ्गी हैं और ऐसेही मूर्खता और अविद्या जो है सो यह भी तेरा अपनाही स्वभावहै ताते यह मूर्खताभी परलोक विषे तेरे साथही रहती है इस करके कि यह अजानता तेरी बुद्धिके नेत्रों की हीनताहै और मन्दभागी का बीजहै इसीपर महाराजने भी कहाहै कि मनुष्य संसार विषे अज्ञान करके अन्धा है वह परलोकविषे महादुःखी और अन्धा रहताहै पर जबलग तू भलीभांति इस

अंकारकी चैतन्यताको न पहिंचाने तबलग किसीप्रकार मृत्युके अर्थको न पहिं-
चानसकेगा काहेसे कि परिणामतत्व औ चैतन्यता विषे जो भेदहै तिसके पहिं-
चानने करके मृत्युका अर्थ भी जानाजाताहै॥

चौथासर्ग॥

प्राणचेतना और चैतन्य कलाके भेदके वर्णनमें॥

तातें जानतू कि यह प्राण चेतन्यता तत्त्वोंका विकारहै और वायु पित्तआ-
दिक जो तत्त्वोंका सूक्ष्म अंशहै सो तिन करके रचीहुई है बहुरि जब कुछ वायु
पित्त कफका कोप आपसमें होताहै तब प्राणोंकी वृत्तिभी विपर्यय होतीहै और
जब इनका स्वभाव समानहोताहै तब प्राण चेतना भी समानता स्वभावविषे ठहर-
जाती है तातें वैद्यक विद्याका तात्पर्य यहहै कि वायु पित्त कफ रुधिरके कोपको
उपचार करके समान रखते हैं तब इस करके प्राण चेतना सावधान होती है और
चैतन्यकलाकी आज्ञाको मानती है बहुरि चैतन्य कला जो कही है वह तत्त्वोंके
देशसे नहीं उपजी और सूक्ष्म देशसे आई है और देवतोंकी नाई निर्म्मलस्व-
रूपहै और तत्त्वों के देशविषे उसका आना परदेशीकी नाई है और उसका
स्वरूप आधिभौतिक नहीं पर इस शरीरविषे उसके आनेका प्रयोजन यहहै कि
परलोक मार्ग्गका तोशा बनालेवे इसीपर साईं ने भी कहा है कि मैंने अपनी
कृपा करके सर्व जीवोंको मार्ग्ग दिखाया है पर जो शुभमार्ग की बूझ पायकर
उस पन्थविषे चलते हैं वह भय और शोकसे रहित हुये हैं और इसमनुष्य का
शरीर जो है सो मैंने पृथ्वी आदिक तत्त्वों से रचाहै बहुरि मेराअंश जो चैतन्य
कला है तिसको शरीर विषे प्रवेश किया है तिसका तात्पर्य्य यह है कि प्रथम
प्राणचेतनाको स्थितकिया है और चेतना को चैतन्यकला के स्थित होने का
अधिकारी बनायाहै बहुरि उसविषे चैतन्यकला प्रवेश की है सो इसका दृष्टान्त
यहहै जैसे प्रथम रुईकी अथवा कपड़ेकी मशाल बनाई जावे जो अग्निके खैंच-
ने के लायक होजावे बहुरि उस विषे अग्नि प्रवेशकीजाती है तब प्रकाशमान
होती है तैसेही प्राणोंकी समानवृत्ति मशालकी नाईहै और चैतन्यकला अग्नि
की नाई है पर जैसे वैद्यक विद्याके जाननेवाले प्राणोंकी समान वृत्तिको पहिं-
चानते है तब उसकरके रोग और कष्टसे शरीरकी रक्षा करतेहैं तैसेही चैतन्यरूप
जो अग्नि है तिसके स्वभावकी भी समानताहै पर तिसको सन्तजन पहिंचानते

हैं और जब इसी जीवके स्वभाव और वैराग्य और पुरुषार्थ करके सन्तजनोंकी मर्यादा विषे समाप्त होते हैं तब इस मनुष्यका चित्त आरोग्य होता है ताते प्रसिद्ध हुआ कि जैसे आपको पहिचाने बिना भगवन्त भी नहीं पहिचानसक्ता तैसे ही यथार्थरूप चैतन्य की पहिचान बिना परलोकको भी भलीप्रकार नहीं पहिचानसक्ता ताते अपने मनका पहिचानना भगवन्त के पहिचाननेकी कुञ्जी है और परलोकके पहिचाननेकी भी कुञ्जी है पर धर्मकी प्रतीतिका मूल भी अपना पहिचानना है इसी कारणसे मैंने अपने आपका पहिचानना प्रथमही वर्णन किया है पर तौभी इस जीवका जो यथार्थ रूप है सो तिसको मैंने प्रसिद्ध नहीं कहा और सन्तों ने भी उस स्वरूपके कहनेको वर्जा है काहेसे कि इस जीवकी बुद्धि उस गुह्य भेदको समझ नहींसक्ती और भगवन्तकी सम्पूर्ण पहिचान और परलोकका भलीप्रकार देखना उसी यथार्थ स्वरूप के ज्ञान करके होताहै ताते तू नहीं पुरुषार्थकर कि जिसमें अभ्यास और यत्न करके इस यथार्थरूपको अपने अन्दर देखे काहेसे कि उसस्वरूपका देखना आपहीविषे होताहै और जब उस स्वरूप की वार्ता सुनकर हृदयमें न जाहै तब तेरी प्रतीति नष्ट होजावेगी इसकरके कि बहुत पुरुषों ने भगवत्के यथार्थरूपके लक्षण श्रवण किये हैं तब उनकी प्रतीति नष्टहोगई है और बुद्धिकी हीनता करके संशयको प्राप्त हुये हैं और ईश्वर का नतकार करके महाढीठ हुये हैं सो तिसका तात्पर्य यहहै कि जब तेरेविषे भगवत्के यथार्थस्वरूप श्रवण करनेका बलही नहीं तब तू उसस्वरूपकी वार्ता श्रवण करके आपविषे क्योंकर प्रमाण करसकेगा इसी कारण से परमेश्वरस्वरूप का बखान धर्मशास्त्रविषे भी नहीं कहा काहे से कि जब संसारी जीव इस भेद को श्रवण करेंगे तब प्रतीति से हीन होजावेंगे ताते सर्व जनों को इसप्रकार आज्ञा करी है कि जीवोंकी बुद्धि अनुसार उपदेश करो और इनको मेरे गुह्यभेद और सहज स्वरूपकी वार्ता प्रकटकरके न कहो काहे से जो इन जीवोंविषे ऐसे सूक्ष्म वचन सुनकर इनकी प्रतीति दूरहोजावेगी ताते सब धर्महीनता को प्राप्तहोवेंगे इसीकरके जीवोंकी बुद्धि अनुसार वचनकहना विशेषहै पर तैंने जब भलीप्रकार समझा कि इसमनुष्यका चैतन्यस्वरूप आपनेआप करके स्थितहै और जीवका होना शरीरके आधीन नहीं ताते मरने का अर्थ यह नहीं कि चैतन्यस्वरूपका नाशहोवै पर मृत्युहोने का अर्थ यहहै कि जब इसजीवकी आज्ञा इस शरीरविषे

वर्त्तमान नहीं होती तब इसको मृत्युहुआ कहते हैं बहुरि परलोकविषे जीव के जीनेका भी अर्थ यहनहीं कि प्रथम इस जीवका नाशहोताहै फिर परलोकविषे उपजाआताहै ताते परलोकविषे पुरजीत होनेका अर्थ भी यही है कि यह जीव दूसरे शरीरको अङ्गीकारकरताहै पर जिसप्रकार भगवत् इस जीवको और शरीर कोउत्पन्नकरताहैसो किसी मनुष्यकी बुद्धिविषे नहीं आता काहेसे कि भगवत् की करतूति विषे कठिनता और सुगमता नहीं कही जाती पर बहुत पुरुष योंभी कहते हैं कि परलोकविषेइस जीवको यही शरीर मिलताहै सो यह शास्त्र अयोग्य है काहेसे कि यह शरीर घोड़े की नाई है सो जब घोड़ा बदलजावे तब सवार तो नहीं बदलता और यह शरीर तो बाल्यावस्था से वृद्धावस्थापर्य्यंत परिणामको पाता जाताहै और आहारके सम्बन्ध करके सर्व अंगोंका स्वरूप और से औरही होताजाताहै पर जीव तो कदाचित् अन्यथा नहींहोता सो जिन पुरुषोंने ऐसाही निश्चयकियाहै कि परलोकविषे बहुरि यही शरीर सावधान होताहै सो तिनके वचनपर और भी अनेक प्रश्न और संशय उपजते हैं और उनका उत्तर ऐसा निर्बलहोताहै कि संशय को दूर नहीं करसक्ता जैसे कोई प्रश्न करे कि एकमनुष्य को कोई दूसरा मनुष्य भक्षण करजावे तब वह तो दोनों शरीरके अंग इकट्ठेहो-जाते हैं बहुरि परलोकविषे एकही शरीर दोनों जीवोंको क्योंकर मिलताहै अ-थवा जब कोई अंगहीन पुरुषहोवे और वह भजनकरे तब परलोक विषे भजन करनेवालेको अंगहीनकरके भजनकाफल भोगनापड़ेगा कि अंगों के संयुक्त पर जब कहिये कि वह पुरुष पुण्य के फलको अंगहीनही भोगता है तब उत्तर यह कि स्वर्गविषे तो अंगहीनही कोई नहीं होता बहुरि जब कहिये कि अंगोंसंयुक्त भोगताहै तब उत्तर यह कि भजनके समयविषे और करतूति म तो वह अंगथेही नहीं फलभोगने के समय क्योंकर संगीहुये सो ऐसे प्रश्नोंकरके उनका उत्तर मंद और निर्बलहोताहै और संशयको दूर नहीं करसक्ते ताते प्रसिद्धहुआ कि पर-लोकविषे अवश्यही इस जीवको पूर्व शरीरकी अपेक्षा नहीं रहती और जिन्होंने इसप्रकार समझाहै कि परलोकविषे जीवको वहही शरीर फिर मिलताहै सो तिस का कारण यह है कि उन्होंने अपने आपको शरीरही जानाहै ताते यह ऐसेही समझते हैं कि शरीरके और होने करके जीवभी और होजाताहै सो इस वचन का मूलही मिथ्या है काहेसे कि शरीर भिन्नहै और जीव भिन्न है ॥

पांचवां सर्ग ॥

परलोक उत्तर-वर्णन में ॥

बहुरि, जब तू इसप्रकार प्रश्न करे कि केते शास्त्र के मतविषे यह वार्त्ता प्रमाणकरते हैं कि जब इस जीवका शरीर छूटता है तब प्रथम जीवही नाश होजाताहै फिर परलोकविषे जीवको सुरजीतकरके शरीर पहरावते हैं और जिसप्रकार तुमने आगे कहाहै सो उस वचनके साथ इस का विरुद्धहोताहै ताते दोनों वचनों में से किसविषे प्रतीतिकरिये सो तिसका उत्तर यहहै कि जो कोईपुरुष किसी दूसरेपुरुष के कहनेपर भटकताहै सो अंधाकहाताहै और जिन्हों ने यही निश्चयकियाहै कि मृत्युहोने करके प्रथम जीवभी नाशताको पावता है सो तिनकी प्रतीति अपनी बूझ करके भी नहीं और शास्त्रों की विद्याकरके भी नहीं क्याहैसे कि जब उनको अपनी बूझहोती तब इसबातको प्रत्यक्ष देखते कि शरीरके मरने करके जीवका नाश नहीं होता और जब शास्त्रोंकी विद्यापर प्रतीतिकरते तो भगवत् और सन्तजनों के वचनों को पढ़कर समझलेते कि यह जीव अविनाशी है और शरीरके नाशहुये से जीव अपने आपविषे स्थित रहताहै ताते यह वार्त्ता भी सतजनोंके वचनोंविषे प्रसिद्ध है कि परलोकविषे दोप्रकारके जीव होते हैं सो एक तो भाग्यहीनहैं और दूसरे भाग्यवान् हैं पर जो भाग्यवान् जीवहैं सो बड़ाई को पावते हैं और अविनाशीरूपहैं इसीपर महाराजने भी कहाहै कि जिन्हों ने मेरे मार्गविषे अपने शरीर का त्यागकिया है तिनको मृत्यु हुआ न जानो और वह उत्तमपुरुष मेरी बख़शिश पायकर सर्वदा आनन्दविषे रहते हैं बहुरि जीव भाग्यहीन हैं तिन का भी नाश नहीं होता इसी पर एकवार्त्ता है कि जब लड़ाईविषे एकवार बहुत मनुष्य मृत्युहुये और महापुरुषकी जीतहुई तब मृत्युहुये पुरुषों से महापुरुष कहने लगे कि हे भाई ! जिसप्रकार मुझको भगवत् की आज्ञा हुई थी कि तेरी जीत होवेगी सो तिसको तो मैंने प्रत्यक्ष देखाहै पर जिसप्रकार भगवत् ने कहाथा कि मैं तामसीमनुष्योंको परलोकविषे दण्ड और कष्टदेऊंगा सो उसदुःखको तुमने भी पायाहै कि नहींपाया तब महापुरुषके साथवालों ने पूछा कि यह मृतक माटी की नाईं है तुम इनकेसाथ वचन क्योंकर कहतेहो तब महापुरुषने कहा कि जिस महाराजकी सामर्थ्यविषे मैं पराधीनहूं तिसकी दुहाईकरके कहताहूं कि यह मृतक पुरुष मेरे वचनोंको तुमसे अधिक सुनते हैं पर इनको उत्तर देनेकी आज्ञा नहीं

तातें प्रसिद्ध हुआ कि जीव का मरना तो धर्मशास्त्र विषे भी नहीं कहा काहेते कि पितृपूजा के निमित्त श्राद्ध और दानआदिक कर्म जो करणीय कहे हैं तब इस करके जानाजाताहै कि जीवका नाश नहीं होता पर इसप्रकार धर्मशास्त्र विषेभी कहाहै कि मृत्युहोने करके जीवको शरीर और स्थान परिणामको पाताहै अर्थ यह कि शरीर भी दूसरा पहरताहै और स्थितभी और स्थानविषे होताहै पर जो पुण्यवान् जीवहैं वे स्वर्गविषे सुख पाते हैं और पापी नरकों के दुःखोंको भोगते हैं ताते तू इसवार्त्ताको निस्सन्देह जान कि शरीरके नाश करके तेरे स्वरूप और स्वभावों का नाश नहीं होता और इन्द्रियों और शारीरिक व्यवहार सब दूर होजाताहै जैसे घोड़ेकेमरनेसे सवार नहीं मरता पर तौभी पियादा रहजाताहै और उसका जो अपना स्वभाव और क्रिया है सो ज्योंका त्यों बना रहता है तैसेही शरीररूपी घोड़े के नाश होने से तेरा नाश नहींहोता काहेसे कि तेरा स्वरूप सवारकी नाईं शरीररूपी घोड़े से भिन्नहै इसीकारण से जिन पुरुषों ने शरीर और इन्द्रियों का विस्मरण कियाहै और अपने चैतन्य स्वरूपविषे स्थितहुये हैं और भजनकी एकत्रता करके चित्तविषे लीनहुये हैं तिनको परलोक की अवस्था प्रत्यक्ष भासआती है इसका कारण यहहै कि यद्यपि उनसे प्राणोंकी समान वृत्ति विपर्यय नहींहुई पर चित्तके स्थिर होने से प्राण चेतना भी ठहर जाती है ताते भगवत्के दर्शन को भी वे प्रत्यक्ष देखते हैं और उनके चित्तकी वृत्ति किसी पदार्थ विषे आसक्त नहीं होती इसी कारणसे उनको जीवन्मुक्त कहते हैं अर्थात् जो भेद लोगोंको मरनेके पीछे प्रकटहोताहै वह उनको चित्तकी एकत्र अवस्था में जीवतेही खुलजाताहै और प्रत्यक्ष देखते हैं फिर जब उस अवस्था से उत्थान होकर इन्द्रियों के देश में आते हैं तब तिनको जाग्रत् विषे भी उस अवस्था का स्मरण रहताहै सो जब एकत्रता विषे सूक्ष्म स्वरूप करके स्वर्गको देखते हैं तब जाग्रत् में प्रसन्नता और आनन्द उनके हृदयविषे रहताहै और जब अकस्मात् करके नरक को देखते हैं तब जाग्रत विषे उनको भय प्रत्यक्ष प्रकट होती है ताते जो कुछ परलोककी वार्त्ता उनको जाग्रत्में स्मरणविषे रहजाती है सो जगत्विषे उसका वर्णन करके बताय देते हैं और उस एकत्रता विषे जैसा सङ्कल्प उनके चित्त विषे फुरता है सो सत्यस्वरूप होताहै और दृष्टान्तमात्र उसका वर्णन भी करते हैं कि एकसमय महापुरुष समाधि विषे बैठे थे तब उन्होंने अपने हाथको

ऊपरको करके फिर सँभालिया तब लोगोंने पूछा कि जी तुमनेहाथ किसनिमित्त पसाराथा तब महापुरुषने कहा कि स्वर्गके अमृतफलको मैंने देखाया और उस को जगतविषे खावनेकी मैंने मनसाकी थी पर शीघ्रही वह फल छिपगया ताते तू इस वार्त्ता से ऐसा अनुमान न करना कि वह फल जगतविषे आने योग्यथा और महापुरुष उसके लानेमें समर्थ न हुये सो ऐसे जानना अयोग्य यहकारहै कि सूक्ष्मदेशका फल इस जगत विषे किसीप्रकार आता ही नहीं इसकरके कि यह आधिभौतिक जगतस्थूल और जड़स्वरूपहै और इसवचनका खोलनाभी बहुत विस्तार करके होताहै और तेरा प्रयोजन भी इस विषे कुछ नहीं पर कैसे विद्यावान् भी इसी संशयविषे डूब गये हैं कि वह अमृतफल कैसाथा और महापुरुषने क्योंकर देखाया सो ऐसेही प्रश्न उत्तर करके इस विषे पड़े विवाद करते हैं और अपने कल्याण की वार्त्ता को अंगीकार नहीं करते बहुरि अपनी विद्यापर अभिमानी होते हैं सो वे महामूढ़ हैं सो इसका तात्पर्य यह है सन्तजन परलोक को अपने हृदय की दृष्टि करके देखते हैं और उनका देखना किसी के वचन और युक्तिकरके नहीं होता ताते वे इस जगत की वृत्तिको त्यागकर चैतन्य देश विषे जाते हैं और परलोकको प्रत्यक्ष देखते हैं सो परलोकका देखना भी सन्तजनों के बलका एक अंगहै ताते प्रसिद्ध हुआ कि परलोककी अवस्था दोप्रकार करके देखसक्ते हैं सो एकतो यह है कि जब प्राण चेतना के नाश होने से शरीर मृत्यु होजाताहै तौभी यह जीव परलोकको प्रत्यक्ष देखताहै और दूसरे जब भजनकी एकत्रता करके प्राणोंकी वृत्ति ठहरजाती है तब समझके बल करके परलोकको प्रत्यक्ष देखताहै और इंद्रियादिक देश विषे परलोकका प्रत्यक्ष देखना असम्भवहै जैसे चौदहलोकब्रह्माण्ड एक राईविषे नहीं समाते तैसेही आत्मस्वर्गकी एक राई सर्वब्रह्माण्डविषे नहीं समायसकी और जैसे श्रवणइन्द्रिय किसीप्रकार पदार्थ के रूपको नहीं देखसक्ती तैसेही सर्व इन्द्रियां चैतन्यदेश की वार्त्ताको नहीं देख सक्तीं ताते सूक्ष्मदेशको देखनेहारी इन्द्रिया चैतन्यदेश की वार्त्ता को नहीं देख सक्तीं ताते सूक्ष्मदेशको देखनेहारी इन्द्रिया भी सूक्ष्महैं ॥

छठा सर्ग ॥

यममार्गके कष्टके वर्णनमें ॥

ताते जान तू कि यममार्गका कष्टभी तुझको यदि जानना उचित है पर वह

कष्टभी दोप्रकारकाहै सो एकदु ख तो शरीरके साथ जीवको होताहै और दूसरा शरीरी कष्ट है सो शरीरी दु खको तो सबकोई जानताहै पर जीवके दुःखको कोई नहीं पहिचानता पर जिसने अपने आपको पहिचानाहै और हृदयका स्वामी उसको प्रत्यक्ष हुआहै सो जीवके दु खको वही पहिचानताहै काहेसे कि देह अपना होना शरीर के आश्रित नहीं जानता और ऐसे भी जानताहै कि शरीरके नाशहुये से मेरा नाश नहीं होता और मृत्यु के समय शरीर और इन्द्रियोंका वियोग होजावेगा और ऐसेही धन पुत्रादिक सम्बधी सुन्दर टहलुवे पशु इष्ट मित्र धरती आकाशादिक जो पदार्थ इन्द्रियोंकरके जानेजाते हैं सो सबही दूर होजावेंगे और जिस मनुष्यकी प्रतीति इन पदार्थोंविषे दृढ़ हुई है और जिसने अपना आप स्थूलताविषे बध्यमान किया है सो वह इनके वियोग करके निस्सन्देह दुःखीहोताहै और जिस पुरुषका हृदय सर्वपदार्थों से विरक्तहै और भगवत्के विना और किसी पदार्थकेसाथ उसकी प्रीति नहीं उसको मृत्युकेसमय दु ख कुछ नहीं होता और अधिक आनन्दकोपाताहै काहेसे कि जिसके हृदयविषे भगवत्की प्रीतिदृढ़हुई है और जिसके चित्तविषे सजनका रहस्य प्रकट हुआहै और सर्वदा अपनाआप जिसने भगवत्की ओर लगायाहै और मायाके सर्व पदार्थोंको विरस जानकर आसक्त नहीं हुआ है तब मृत्यु के समय वहपुरुष निस्सन्देह अपने प्रियतमको पहुँचताहै और जिन पदार्थों करके चित्तको विक्षेपता होतीथी सो सबही दूर होजाते हैं तावे परमशान्ति को पाताहै पर अब तू इस वार्ता को विचार कर देख कि जिस पुरुषने शरीर के नाशहुये से भी आपको अविनाशी जाना और यों भी जाना कि सर्व मायिक पदार्थ संसार में ही रहजावेंगे इनमें मेरी अधिक प्रीतिहै तो उसको अवश्य ही यह निश्चय होजावेगा कि जब मैं अन्तसमय अपने प्रियतम पदार्थों से अलगहोऊंगा तब निस्सन्देह मुझको इनके वियोग करके दु ख प्राप्तहोवेगा इसी पर महापुरुषने भी कहा है कि जिस पदार्थके साथ किसी की प्रीति है सो तिसके वियोग करके अवश्यही दु खी होताहै और जब इसप्रकार जाने कि मेरी प्रीति केवल भगवत् के साथहै और माया के पदार्थों में से प्राणों की रक्षामात्र खान पानादिक व्यवहार संयम के साथ ग्रहण करके और समस्त पदार्थों को अपना शत्रु जाने तब वहभी निस्सन्देह जानेगा कि जब मेरा शरीर नाश होगा और माया के पदार्थ दूर होवेंगे तब मैं अपने

प्रियतम महाराज को मायाकर सुखी हुंगी ताते जिस पुरुषने इस वचन के भेदको समझाहै वह यममार्ग के कष्टोंको निस्संशय जानताहै कि वैरागी पुरुष मायाके वियोगकरके सुखको प्राप्तहोवेंगे और विषयीजीव विषयों के वियोगकरके अधिक दुःखी होवेंगे तब इसप्रकारके इस वचनका अर्थ प्रसिद्ध हुआ कि यह माया मनमुखोंको स्वर्गरूपहै और जिज्ञासु जन मायाको भी नरक जानते हैं ताते माया का वियोग मनमुखोंको नरकरूप होता है और वैरागी पुरुष सुखको पावते हैं॥

सातवां सर्ग॥

माया के वियोग के दुःखों के भेदके वर्णन में॥

ताते जानतू कि जब तैंने यममार्ग के कष्टोंको पहिचाना कि इस दुःखका कारण मायाकी प्रीति है तब ऐसेभी जान कि यह दुःख सर्व जीवोंको एक समान नहीं होते किसीको अधिक होते हैं किसीको अल्पहोते हैं अर्थात् जितनी प्रीति इस मनुष्यकी मायाके पदार्थों और भोगोंकेसाथ होती है तैसाही दुःखको पावता है ताते जिस पुरुषके पास एकही पदार्थ होवे और किसी पुरुषके पास बहुत सामग्री टहलुवे पशु मनुष्यादिक सर्व पदार्थ होवें तब ऐसे सम्पदा रखने वाले पुरुष से एक सम्पदावाले पुरुष को निस्सन्देह दुःख अल्प होता है जैसे किसीपुरुषका एक घोड़ा चोरीजावे और किसी दूसरे पुरुषके दशघोड़े चोरीजावें सो जिस पुरुषका एकघोड़ा चोरी गया है तिसको दशघोड़े चोरी जानेवाले से दुःख अल्प होताहै और जब किसी पुरुषका आधाधन दण्ड करके राजा हरलेवे और किसी का साराधन हराजावे सो सर्वधनवाला अधिक दुःखको पावताहै और जिसका सर्व धनभी हराजावे और स्त्री पुत्रादिक भी मरिजावें और अपने देशसे भी निकासाजावे तब वह सर्व धन जानेवाले से भी अति अधिक कष्टको पावताहै तैसेही मृत्युका अर्थ है कि जब इस जीवको शरीर छूटजाताहै तब स्त्री पुत्रादिक सम्बन्धी माया के सर्वपदार्थ दूर होते हैं और यह जीव अकेला रहजाता है ताते जो पुरुष माया की सामग्री विषे अधिक आसक्त होताहै सो दुःखी भी अधिक होताहै और जिस पुरुषकी प्रीति पदार्थों में अल्पहै वह पदार्थों के वियोग करके दुःखी भी अल्पही होता है इसीपर महाराजने भी कहा है कि जिस मनुष्यको सर्वसुख और संपदा प्राप्तहुई है और वह पुरुष सर्व माया के पदार्थोंविषे अधिक आसक्तहै सो दुःखी भी अधिक होता है और इन पदार्थों विषे

जिसकी प्रीति अल्प है सो पदार्थों के वियोग से भी अल्पदुःखी होता है इसीपर महापुरुष ने भी कहा है कि मनमुख पुरुष को यममार्ग विषे ऐसा कष्ट होता है कि उसको अजगर काटते हैं और उन अजगरों के सौ सौ शीश होते हैं ऐसे महा-अजगर विषयी जीवों को सर्वदा डसते रहते हैं और जिसके बुद्धिरूपी नेत्र खुले हुये हैं सो इन अजगरों को प्रत्यक्ष देखता है और बुद्धिहीन पुरुष इसप्रकार कहते हैं कि हमने तो बहुत मृतक पुरुष देखे हैं और हमारे नेत्रों की दृष्टि भी तीक्ष्ण है पर हमको तो कोई भी सर्प दृष्टि नहीं आया जो प्राणी को डसता होवे ताते ऐसे पुरुषों को इसप्रकार जानना चाहिये कि यह महाअजगर जीव के हृदय विषे होते हैं और उसी जीव को डसते हैं और जब शरीर को डसने होते तब और कोई भी देखसकै फिर वह ऐसे सर्प हैं कि उस मनमुख के हृदय विषे इसही संसार में डसते थे पर वह मूर्ख अचेतता करके जानता न था ताते इसका तात्पर्य यह है कि यह सर्प मन के मलिन स्वभाव हैं और एक २ स्वभाव से जो अवगुणों की शाखा उपजती हैं सो सर्पों के शीश वर्णन किये हैं परं इनकी उत्पत्ति का कारण माया की प्रीति है जैसे ईर्षा कठोरता कुटिलता कपट मान चपलता वैरभाव मान की प्रीति इत्यादिक जो बुरे स्वभाव हैं सो येही सर्प हैं और इन अजगरों का यथार्थ स्वरूप और संख्या और इन के शीशों का विस्तार जो है सो केवल भगवत् की कृपा से अनुभव के द्वार मनुष्य देखसक्ते हैं काहे से कि जितनी बुरी प्रकृति की शाखा हैं तिनको भगवत् की दया और अनुभव करके पहिंचाना जाता है और मुझको सर्व मलिन स्वभावों की जानसी नहीं पर यह मलिन स्वभाव मनमुख के हृदय विषे आगे भी थे इसी करके जो मनमुख पुरुष भगवत् और सन्तजनों की प्रीति से शून्य होता है और सर्वदा माया के पदार्थों विषे आसक्त रहता है तिसको मलिन स्वभावरूपी सर्प जो उसके हृदय विषे थे सो यममार्ग में डसते हैं और इन सर्पों का डसना महादुःखरूप है काहे से कि जब उसको स्थूल सर्प डसने तब किसी समय क्षणमात्र उसको विश्राम भी देवे पर यह मन के स्वभावरूपी सर्प जो उसके हृदय विषे डसने हैं सो इनसे कदाचित् मुक्त नहीं होता जैसे किसी पुरुष की प्रीति अपनी दासी के साथ होवे और वह उस प्रीति को आगे न जानता होवे और किसी कारण करके उस दासी का वियोग होजावे तब उस पुरुष को प्रीतिरूपी सर्प डसने हैं यद्यपि उसमें आगे अचेन भी होता है तौभी वियोग के समय

उसकी उस प्रीति की मोटे महादुःख देनी है सो वह प्रीतिरूपी अजगर भी उसके हृदय विषे आगेही स्थितथा और डसताथा पर मूर्खता करके पहिचानता न था बहुरि वियोग विषे उसका डसना प्रत्यक्ष देखनाहै अर्थ यह है कि जैसे वह उसकी प्रीति करके उसकी प्रीति विषे सुख पावताथा वैसेही वियोग करके वहही प्रीति उसको दुःख देती है काहेसे कि जो उस दासी के साथ इसकी प्रीति ना होती तो उसके वियोग करके दुःखभी न होता इसीप्रकार मनमुख की जो प्रीति मायाके साथ होती है तिसकरके मायाके भोगो विषे आनंदित होता है बहुरि उसी प्रीति करके वियोगविषे दुःखीहोताहै वर्तमान मान और ऐश्वर्य्यकी प्रीति जो है सो विष की दमनी अजगरकी नाईं है और धनकी प्रीति सर्पकी नाईं है और सुन्दरों की प्रीति बिच्छू की नाईं है वैसेही जिस जिसकी प्रीति इसमनुष्यके हृदय विषे दृढ़ होती है तब उसकरके निस्सन्देह दुःखको पावताहै जैसे वह पुरुष दासीके वियोग विषे ऐसादुःखी होता है कि आपको अग्नि और जलमें डालाचाहताहै इसकरके कि प्रीतिरूपी सर्पके डसने में किसी प्रकार छूटे तैसेही जिस जीवको धर्ममार्ग विषे भोगोंके वियोगका दुःख होताहै तब वहभी चाहताहै कि जब मुझको स्थूल सर्प और बिच्छू डसते तो भी भलाथा काहेसे कि उनके डसने करके शरीरको दुःखहोता और यहदुःख मेरे हृदयको डसताहै और कोई इसको देखताभी नहीं जो मेरा उपकारकरता ताते प्रसिद्ध हुआ कि यहजीव अपने दुःखके बीज को इसी संसारसे अपने साथही लेजाताहै इसीपर महापुरुषने भी कहाहै कि यह तुम्हारे अशुभकर्म्मही तुमको दुःख देते हैं और कोई तुम को दुःख देनेवाला नहीं इसीपर महाराजका वचनहै कि जब तुम्हारी प्रीति और निश्चय दृढ़होवे तब तुम नरकों को इसी संसार विषे देखनेलागो काहेसे कि मनमुखों का हृदय यहां भी नरक के दुःखोंकरके पूर्ण है सो महाराजने भी इसप्रकार तो नहीं कहा कि मनमुख परलोक विषेही नरकको पावेंगे पर यह कहा कि यहांही नरक उनके साथहै और उससे वे पूर्ण हैं अर्थात् इसी ठौरमें उनका हृदय नरकरूपहै॥

आठवां सर्ग॥

मनोमार्ग के वर्णन में॥

बहुरि जब तू पूछे कि धर्मशास्त्र विषे तो स्थूल नेत्रों से उन सर्पों का देखना कहाहै और जैसे सर्प तुमने हृदयविषे वर्णन किये हैं सो स्थूल नेत्रों करके

नहीं दीखसक्ते ताते इसका उत्तर यहहै कि यह सर्पभी दीखते हैं पर जिस मृतक प्राणीको डसते हैं वहही देखताहै और इस संसारके लोग उनको नहीं देखसक्ते काहेसे कि सूक्ष्मदेशका पदार्थ स्थूल नेत्रोंसे नहीं देखेजाते ताते वह सर्प प्राणीको स्थूलसर्पोंकी नाईं नहीं डसते जो सबकोई प्रकट देखलेवें और उस मृतकजीवको स्थूलसर्पोंकी नाईं प्रत्यक्ष डसते हुये दीखते हैं जैसे कोई स्वप्नविषे देखे कि सर्प मुझको काटता है और जो पुरुष और कोई उसके निकट बैठे होवें तिसको कोई सर्प दृष्टि नहीं आवता पर उस स्वप्न देखनेवालेको यह सर्प प्रत्यक्ष दीखता है और उसके डसनेका दुःखभी प्रत्यक्ष भावता है और जाग्रत् पुरुषके ज्ञानमें सर्प नहीं भासता और उस जाग्रत् पुरुषको जो सर्प नहीं भासता तिसकरके उस स्वप्न देखनेवाले पुरुषको सर्पके डसनेका दुःख कुछ खण्डन नहीं होता काहेसे कि स्वप्न देखते पुरुषको सर्प डसनेका दुःख ऐसे प्रत्यक्ष है जैसे किसी मनुष्यको जाग्रत्विषे कष्ट होवे और योंभी है कि जब कोई स्वप्नविषे देखे कि मुझको सर्पने डसा तब इसका फल यह होगा कि जाग्रत्विषे उसको शत्रु जीतलेवेगा सो इस कष्टको मानसीदुःख कहते हैं और यह विशेष कष्ट है काहेसे कि वह पुरुष इसप्रकार चाहताहै कि जो मुझको जाग्रत्विषे सर्प डसता तो भलाथा पर किसीप्रकार मेरी शत्रुसे रक्षा होवे क्योंकि सर्पके डसनेसे शत्रुका दुःख अधिक होताहै इसकरके कि शत्रुका दुःख हृदयको पहुँचताहै और सर्प तो शरीरको डसताहै बहुरि जब तू इसप्रकार प्रश्नकरे कि जब प्राणीको डसनेवाले सर्पभी स्वप्नकी नाईं हुये तब प्रसिद्ध हुआ कि वह सर्प भी संकल्पमात्र है अर्थात् उस पुरुषको वास्तवमें कोई सर्प नहीं डसता पर अपने संकल्प करके दुःख मानताहै सो तिसका उत्तर यहहै कि ऐसा जानना भी बड़ीमूर्खताहै काहेसे कि जब विचारकी दृष्टिमें देखिये तब वे सर्प निस्सन्देह प्रत्यक्षहैं इसकरके जिस पदार्थका सुख और दुःख प्रकट प्राप्त होवे तिसको प्रत्यक्ष कहते हैं और संकल्पमात्रका अर्थ यहहै कि उस पदार्थका सुख दुःख प्रत्यक्ष न भासे ताते जब तुझको स्वप्नविषे कोई पदार्थ दृष्टि आवे और तैने उसका सुख अथवा दुःख पाया तब वह पदार्थ तुझको तो प्रत्यक्ष हुआ सो यद्यपि और कोई उसको नहीं देखता पर तोभी तुझको प्रत्यक्ष है और जिस पदार्थको सबही लोग देखें और तुझको वह पदार्थ न भासे तब तेरी ज्ञानविषे वह पदार्थ मिथ्या होताहै इसीप्रकार स्वप्न देखनेवाले और मृतक पुरुषको जो दुःख प्राप्त होता

भोगको इस जीवको मतचाहे और संतजनोंके वचनों विषे वह रोग निश्चय है सो जो यह मनुष्य उस समय विषे अपनी रुचि संतजनोंके वचनोंविषे अधिक देखे और मनकी वासनाका त्यागकरे तब जानिये कि उस पुरुषकी प्रीति श्रीभगवत् के साथ अधिकहै सो इसका दृष्टान्त यहहै कि जैसे दोपुरुषों के साथ किसीकी प्रीतिहोवे और अकस्मात् उन दोनों पुरुषों में आपसविषे विरुद्ध होजावे तब जिस पुरुष के साथ वह मनुष्य अपनी खैंच अधिक देखे तब जानिये कि उसकी प्रीति उसी पुरुषके साथ अधिक है तैसेही जबलग इस जीवकी अवस्था संतजनोंकी आज्ञानुसार नहोवे तबलग मुखके कहने करके कुछ लाभ नहीं होता और ऐसा कहनाही व्यर्थ है इसीपर महापुरुषोंने भी कहाहै कि जो पुरुष सर्वदा मुखसे ऐसेही कहते हैं कि एक भगवतही सत्य स्वरूपहै और सबही नाशवन्तहैं पर मायाके पदार्थोंविषे उनकी प्रीति अधिकहै और इस वचनके कहनेकरही आपको मुक्त कियाचाहते हैं तिनै भगवत उनको इसप्रकार कहते हैं कि तुम झूठे हो काहेसे कि तुम्हारी तो मायाही के साथ अधिक प्रीति है और मुखसे भगवत् ही को सत्यस्वरूप कहतेहो ताते तुम अपने वचनहीविषे झूठे हो सो इसकरके प्रसिद्ध हुआ कि जिनके बुद्धिरूपी नेत्र खुले हैं सो सूक्ष्मदृष्टि करके साथ जिस प्रकार प्रत्यक्ष देखते हैं कि यममार्ग के कष्टसे कोई विरलाही मुक्त होवेगा और बहुत मनुष्यतो उस दुःखसे नाछूटेंगे पर अधिक और अल्पदुःखका भेद रहेगा जैसे मायाके पदार्थोंकी आसक्ति विषे जीवोंकी अवस्थाका भेद है तैसेही यममार्गविषेभी दुःखका भेद होवेगा अर्थ यह कि कोईपुरुष त्रिकालपर्यन्त उसही दुःखविषे रहेगा और कोई एकपुरुष अल्पकाल दुःखको भोगकर मुक्त होवेगा॥

नवां सर्ग॥

अभिमानी मनुष्योंकी भीषणताके वर्णन में॥

चतुर्थ सूक्ष्मअहंकार प्रथमकरे कि कितने पुरुष तो इसप्रकार कहते हैं कि यममार्ग के दुःखका कारण मायाहीकी प्रीतिहै तब हमको तो इस दुःखका कुछ भयही नहीं काहेसे कि हमाराचित्त मायाकेपदार्थोंमें आसक्तही नहीं पदार्थों का होना अथवा न होना हमको एक समान है सो इसका उत्तर यह कि ऐसा अभिमान करना कठिनहै और ऐसे अभिमान करनेवाले भी महामूर्ख हैं काहेसे कि जबलग अपने मनकी परीक्षा न करिये तबलग ऐसी अवस्थाका अभिमान

करना व्यर्थ है सो परीक्षा यह है कि जब उस पुरुष का धन तस्कर ले जावे अथवा उसका ऐश्वर्य नष्ट होवे और उसके मिलापी लोग विमुख होकर निंदा करने लगें तिसपर भी उस पुरुष की अवस्था न बदले और चित्त की वृत्ति को खेदा न पहुंचे और ऐसे जाने कि किसी और का धन हरा गया है और किसी और का मान दूर होता है और मेरा कुछ नहीं गया तब जानिये कि उसका कहना सत्य है और उत्तम अवस्था को प्राप्त हुआ है पर जब उस का धन और मान दूर नहीं हुआ होवे तब चाहिये कि अपनी परीक्षा के निमित्त आप ही धन का त्याग करे और जिस नगर विषे इसका मान होवे तिस नगर को छोड़ जावे और फिर ऐसी परीक्षा करके आपको निर्मल और निर्लेप देखे तब जाने कि मुझको परमपद की प्राप्ति हुई है और जबलग आपको इस परीक्षा विषे परिपक्व न देखे तबलग उत्तम अवस्था का अभिमान करना व्यर्थ है काहे से कि केते पुरुष सम्बन्धियों के संयोग विषे इस प्रकार जानते हैं कि स्त्री पुत्रादिकों के साथ हमारी प्रीति कुछ नहीं पर जब उनका वियोग होता है तब उनके हृदय विषे जो प्रीति रूपी अग्नि छिपी हुई थी सो प्रकट होइ आवती है और उसकी तपत करके बावरे हो जाते हैं ताते जो कोई पुरुष जीव को परमार्ग के कष्ट से मुक्त किया चाहे तब उसको किसी स्थूल पदार्थ विषे आसक्त होना प्रमाण नहीं और माया का व्यवहार अवश्य सेवा कार्यमात्र करना भला है सो जैसे इस मनुष्य को मल के त्यागने की अपेक्षा अवश्य मेव होती है और अवश्य मेव मलमूत्र के स्थान विषे जाय बैठता है तैसे ही जीव को चाहिये कि आहार की अभिलाषा भी इसी प्रकार कार्यमात्र होवे और ऐसे जाने कि जैसे मल त्याग किये बिना शरीर को दुःख होता है तैसे ही आहार के बिना भी शरीर की क्रिया सिद्ध नहीं होती और ऐसे ही सब कार्यों विषे भय और संयम संयुक्त बर्ते तब्बरे जब मायाके भोगों से यह मनुष्य अपना चित्त विरक्त करलेवे तब चाहिये कि जो पुरुषार्थ और प्रेम करके भजन विषे सावधान होके भजन करे और रहस्यको गाया केवल रहस्य से पूर्वलक्षणे न हारे सर्वदा आपने चित्त की परीक्षा करतारहे कि मेरा चित्त अपनी वासना की ओर अधिक खींचता है अथवा भगवत् और सन्तजनों की आज्ञा विषे अधिक प्रीति करता है सो जब इस प्रकार देखे कि मेरा चित्त अपनी वासना का त्याग करके सर्वदा सन्तजनों की आज्ञानुसार वर्तता है तब निस्सन्देह जाने कि मैं निस्सन्देह यमगार्ग के कष्ट से मुक्त होऊंगा और जिन अपने

मनको इसप्रकार न देखे तब जाने कि उसपरमदुःखसे मुक्तहोना कठिन है ऐसा भगवत्की दयाहोवे तब मुक्त होसक्ता है सो वह इनसब करतूतोंसे न्यारी है सो जब वह महाराज अपनी कृपाकरे तब दुःखसे मुक्तहोना क्या आश्चर्य है ॥

दशवां सर्ग ॥

मानसी नरकों के बखान में ॥

तातें जान तू कि मानसी नरकोंका अर्थ यहहै कि वह दुःख केवल जीवको होताहै और उस दुःखविषे शरीर का सम्बन्ध कुछ नहीं होता तातें जिस अग्नि करके शरीर को जलन होती है तिसको स्थूल नरक कहते हैं और जो अग्नि केवल मनहीको जलावती है तिसको मानसी नरक कहते हैं बहुरि मानसी नरककी जो अग्निहै सो तीन प्रकारकी होती है प्रथम तो स्थूल भोगोंके वियोग की अग्नि जीव को जलावती है १ और दूसरी अग्नि अपमान और निरादर और लज्जावानी की है २ बहुरि तीसरी अग्नि यह है कि भगवत्के दर्शनसे अप्राप्त रहनेका पश्चात्ताप इस जीवको जलावता है ३ सो यह तीनप्रकारकी अग्नि केवल हृदयकोही तपायमान करती है और इस दुःखका प्रवेश शरीरपर कुछ नहीं होता तातें इसका बखान करना प्रमाणहुआ पर इन तीनों अग्निका बीज यह जीव इसी संसारसे अपने साथ लेजाता है जैसे स्थूल दृष्टान्तों करके वर्णन करूंगापर प्रथम अग्नि जो भोगोंके वियोगकी कही है सो इसका बखान कुछ आगे भी किया है सो इस दुःख का कारण मायाकी प्रीति है अर्थ यह कि उसही प्रीति करके सुखी होताहै और वियोगकरके उसी प्रीतिकरके दुःखी होता है तातें इस पुरुषकी प्रीति जो मायाके साथहै सो भोगोंको इस संसारविषे स्वर्ग की नाईं भोगता है फिर नरकको प्राप्त होता है काहेसे कि यह मायाही इसकी प्रियतमथी सो जब उसका वियोग होताहै तब महादुःखी होताहै इस करके प्रसिद्ध हुआ कि एकही पदार्थ सुखका कारणभी होताहै बहुरि दुःखका कारण भी वहही है पर उस पदार्थ का सुख और दुःख संयोग और वियोग करके होताहै सो इस अग्निका दृष्टान्त यह है कि जैसे कोई महाराजा होवे और सर्व पृथ्वीमण्डल पर उसकी आज्ञा वर्त्तमानहोवे और सर्वदा सुन्दर स्वरूपों का देखना उसको प्राप्तहोवे और नानाप्रकारके दास और दासी और स्त्रियां सुन्दर और बाग बगीचे रमणीक स्थान और इसकी नाईं औरभी बड़े सुखको भोगताहोवे बहुरि

अज्ञानकही कोई और राजा उसका विरोधी आनकर प्राप्तहोवे और उसको जी-तकर अपने अधीन करलेवे और उसके प्रधान के देखतेही उस महाराजा को कूकरोंकी टहलविषे लगावे बहुरि उसके देखतेही उसकी स्त्रियोंको अपनी दासी कररखे और उसके दास दासियों से अपनी टहल करावे और उसके भण्डार विषे जो रत्न और माणिक्यहोवें सो सबही उसके शत्रुओं को देवै सो जब विचार करि देखिये तब उस राजाके शरीरपर दुःख कुछ प्राप्त नहीं हुआ पर राज्य और स्त्री पुत्र दास दासी भण्डार और औरजो सर्व सुखोंकेवियोगकी अग्निहै सो उसके हृदयको जलावती है और वह महाराजा अपने हृदय विषे आपको ऐसा दुःखी जानता है कि मैं किसीप्रकार मरजाऊ तो भलाहै जो इस दुःख से छूटूं सो यह दृष्टान्त स्थूल भोगों की अग्नि का है ताते प्रसिद्ध हुआ कि जितने माया के सुख अधिक होवें और वह पुरुष निष्कण्टक उनको भोगता होवे सो तितना ही उनके वियोगकी अग्नि भी उसके हृदय को अधिक जलावतीहै और जिस के पास मायाकी सामग्री अधिक होवे और इन्द्रियादिक भोगभी उसको निर्विघ्न प्राप्त होवें तब उनको वियोग भी उसके हृदय को अतिशय तपायमान करता है बहुरि यों भी है कि जिस वियोग की अग्नि करके इस जीवका हृदय जलने लगता है तिसके समान स्थूल अग्निका दृष्टान्त नहीं सम्भवता काहे से कि जब इस मनुष्य के शरीर को इस जगत् विषे कुछ दुःखभी होताहै तबभी हृदय को सम्पूर्ण नहीं पहुँचता इस करके कि नेत्र और श्रवणादिक इन्द्रियोंकी कि-याविषे चित्तकी वृत्ति पसरजाती है ताते दुःखका भास निर्बल होजाता है और इन्द्रियों का व्यवहार भी हृदय को ऐसा पटलहोजाता है कि दुःखका प्रवेश स-म्पूर्ण चित्त विषे पहुँचने नहीं देता जैसे जब कोई दुःखी पुरुष अचानक निद्रा से जागता है तब उसको दुःख की पीड़ा अधिक भासने लगती है काहेसे कि उससमय विषे उस पुरुषका चित्त पसराहुआ नहीं होता और जैसे जब कोई पुरुष निद्रा से अचानकजागे और इन्द्रियोंविषे चित्तकी वृत्ति पसरनेसे आगेही सुन्दर शब्द उसके श्रवण विषे पड़े तौभी उस शब्दविषे चित्तकी वृत्ति एकाग्र होतीहै पर जबलग यह मनुष्य इस संसारविषे जीवता है तबलग इन्द्रिय व्यव-हारके मैलसे कदाचित् निर्मल नहीं होता और जब इसजीवका शरीर छूटता है तब परलोकविषे अकेलाही रहजाता है और इन्द्रियों की विक्षेपता सबही दूरहो-

मनको इसप्रकार न देखे तब जाने कि उस परमदुःखसे मुक्तहोना कठिन है अथवा भगवत्की दयाहोवे तब मुक्त होसक्ता है सो वह इन सब करतूतोंसे न्यारी है सो जब वह महाराज अपनी कृपाकरे तब दुःखसे मुक्तहोना क्या आश्चर्य है ॥

दशवां सर्ग ॥

मानसी नरकों के बखानमें ॥

तातें जान तू कि मानसी नरकोंका अर्थ यहहै कि वह दुःख केवल जीवको होताहै और उस दुःखविषे शरीर का सम्बन्ध कुछ नहीं होता तातें जिस अग्नि करके शरीर को जलन होती है तिसको स्थूल नरक कहते हैं और जो अग्नि केवल मनहीको जलावती है तिसको मानसी नरक कहते हैं बहुरि मानसी नरककी जो अग्निहै सो तीन प्रकारकी होती है प्रथम तो स्थूल भोगोंके वियोग की अग्नि जीव को जलावती है १ और दूसरी अग्नि अपमान और निरादर और लज्जावानी की है २ बहुरि तीसरी अग्नि यह है कि भगवत्के दर्शनसे अप्राप्त रहनेका पश्चात्ताप इस जीवको जलावता है ३ सो यह तीनप्रकारकी अग्नि केवल हृदयकोही तपायमान करती है और इस दुःखकाप्रवेश शरीरपर कुछ नहीं होता तातें इसको बखान करना प्रमाणहुआ पर इन तीनों अग्निका बीज यह जीव इसी संसारसे अपने साथ लेजाता है जैसे स्थूल दृष्टान्तों करके वर्णन करूंगापर प्रथम अग्नि जो भोगोंके वियोगकी कही है सो इसका बखान कुछ आगे भी किया है सो इस दुःख का कारण मायाकी प्रीति है अर्थ यह कि उसही प्रीति करके सुखी होताहै और वियोगकरके उसी प्रीतिकरके दुःखी होता है तातें इस पुरुषकी प्रीति जो मायाके साथहै सो भोगोंको इस संसारविषे स्वर्ग की नाईं भोगता है फिर नरकको प्राप्त होता है काहेसे कि यह मायाही इसकी प्रियतमथी सो जब उसका वियोग होताहै तब महादुःखी होताहै इस करके प्रसिद्ध हुआ कि एकही पदार्थ सुखका कारणभी होताहै बहुरि दुःखका कारण भी वहही है पर उस पदार्थ का सुख और दुःख संयोग और वियोग करके होताहै सो इस अग्निका दृष्टान्त यह है कि जैसे कोई महाराजा होवे और सर्व्व पृथ्वीमण्डल पर उसकी आज्ञा वर्त्तमानहोवे और सर्व्वदा सुन्दर स्वरूपों का देखना उसको प्राप्तहोवे और नानाप्रकारके दास और दासी और स्त्रिया सुन्दर और बाग बगीचे रमणीक स्थान और इसकी नाईं औरभी बड़े सुखको भोगताहोवे बहुरि

उस पुरुष अपने भाईको मानि खानेवालेको जुई परनिंदा करनेका तात्पर्य जैसो मलिनहै तैसा अब तुमको नहीं भासता और परलोकविषे उसको प्रत्यक्ष देखेगा इसीकारणसे कहाहै कि जब कोई मनुष्य स्वप्न विषे आपको मृतकका आहार करते देखे तब इसकी युक्तियहहै कि वह मनुष्य किसी पुरुषको निंदा करताहोवै बहुरि दृष्टान्त यह कि जैसे तू स्वाभाविकही किसीभीत के पीछे से पत्थर डारने लगे और वह पत्थर तेरेघरमें जायकर पड़तेहोवें और कोई पुरुष तुझसे कहे कि तू पत्थर डारनेका त्यागकर काहेसे कि यह पत्थर तेरेही गृहमें पड़ते हैं और इन पत्थरों करके तेरे पुत्रोंके नेत्र अंधे होते जाते हैं फिर जब तू अपने गृहविषे जाकर प्रत्यक्ष देखे कि पत्थरों करके मेरे पुत्रों के नेत्र अन्धेहुये हैं तब उससमय विषे तेरे चित्तको कैसी अग्नि लगती है और किसप्रकार तू लज्जाग्नि विषे जलताहै ताते जब कोई पुरुष किसी मनुष्यकी ईर्षा करताहै तब परलोक विषे आपको ऐसाही लज्जित देखेगा काहेसे कि ईर्षाका भी यही होताहै कि ईर्षा करनेवाला पुरुष अपने शत्रुकी हानि चाहताहै पर वास्तवमें अपनीही हानि करताहै और अपनाही धर्म नष्ट करता है और अपने शुभ करतूतोंका नाश किया चाहता है तात्पर्य यहकि परलोक विषे सर्वकरतूतोंका स्वरूप अर्थ के अनुसार भासेगा और यह मनुष्य पदार्थों के अनुसार बीजको प्रत्यक्ष देखेगा इसी कारण से अपमानकी लज्जा को प्राप्तहोवेगा बहुरि स्वप्न की अवस्था भी परलोक की अवस्था की न्याईं होती है ताते जैसा इसपुरुषका हृदय होताहै तिसको स्वप्नविषे आकारवन्त देखता है इसीपर एक वार्त्ता है कि कोई मनुष्य पाषिहन ए कसन्तके पास आयाथा और कहनेलगा कि मैंने स्वप्नविषे अपने आपको लोगों के मुखपर मोहर लगाभते देखाहै सो इसका अर्थ क्याहै तब उससन्त ने कहा कि तू जाग्रत् विषे दण्डकरके लोगोंको अन रखावता होगा बहुरि उसने कहा कि निस्सन्देह मेरी ऐसाही स्वभावहै ताते अब तू विचारकरके देख कि इस करतूतका आकार कैसाहै और अर्थ कैसाहै सो स्थूलव्यवहार विषे तो अन रखावना यही कर्म दृष्टि आवताहै पर उसका अर्थ अशुभ प्रकटहुआ कि मानों लोगों के मुखोंपर मोहर लगारता है और उनको आहारसे रोक रखता है सो यहभी बड़ा आश्चर्य है कि भगवत्ने मुझको यह स्वप्न परलोककी अवस्थाका जनानेवाला बनाय दिखायाहै पर तू इसमें भी अंधहै इसी कारण से सन्तजनोंके वचनोंविषे आयाहै

जाती है इसी कारण से परलोक विषे दुख और दंड लज्जा अमेरा जीवको भासित होता है ताते तू ऐसा अनुमान चित्तविषे न करे कि वह सूक्ष्म अग्नि जीवको जलावनेवाली भी स्थूल अग्नि की नाईं होवेगी काहेते कि यह अग्नि सब भाग तिस सूक्ष्म अग्निसे शीतल है बहुरि दूसरी अग्नि जो अपमान की कही है सो तिसका दृष्टान्त अब है कि जैसे कोई राजा नीच मनुष्यको दयाकरके आपना निकटवर्ती करे और सर्व कार्य गृहके तिसको सौंपदेवे बहुरि उसके रनिवासपर्यन्त ताईं भी आवना जाना न रोके और धन और भण्डार भी सब उसके अधीन होवें सो जब ऐसे पुरुषको ऐसे सुखों की प्राप्ति होजावे तब विमुखताकरके उसका हृदय मलिन होजावे और तिस राजाके भण्डारों विषे चोरी करने लगे और तिस राजाके महलों में भी अयोग्य अपकर्म करने लगे और बाहिरसे आपको शुद्ध और भलाई सहित दिखावे बहुरि अचानक किसी समय महलों विषे अपकर्म करते हुये उस महाराजा को देखे और इसप्रकार जाने कि राजा मुझको झरोखे में से अपकर्म महलों में करता हुआ देखता है और ऐसे ही सदैव काल आगे भी देखता रहता है परन्तु मुझको इस निमित्त दंड नहीं दिया कि जब इसका पाप पूर्ण और स्पष्ट होजावेगा तब मैं इसको इकट्ठाही दंड और दुःख देऊंगा सो अब तू विचारकर देख कि उस समय विषे उस नीच मनुष्यको लज्जा की अग्नि किसप्रकार जलावती है कि यद्यपि उसका शरीर और कष्टसे रहित है तो भी उस लज्जा होती के अपने आपको धरती विषे लीन किया चाहता है इस करके कि किसी प्रकार लज्जा के कष्ट से मैं छूटूं तो भला है हे भाई तैसे ही तू इस जगत् विषे अपने स्वभाव से सारे कर्म करता है और वह कार्य भीतर से मलिन दृष्टि आवते हैं और उस क्रिया का तात्पर्य मलिन होता है सो जब परलोक विषे तीव्र क्रिया का तात्पर्य प्रसिद्ध होवेगा तब तुझको अति लज्जा प्राप्त होवेगी और तू उस लाज की अग्नि विषे दग्ध होवेगा जैसे कोई पुरुषकी निन्दा अब कोई करे तो परलोक विषे ऐसी लज्जाको प्राप्त होवेगा कि जैसे कोई पुरुष इस संसारविषे अपने भाई का मांस भोजन करे और जाने कि मैं पशु का मांस भक्षण करता हूं बहुरि जब भलीप्रकार देखे तब जाने कि यह तो मेरे संबन्धी का मांस है ताते तू भलीप्रकार देख कि उस समय विषे उस पुरुषका हृदय कैसा लज्जायुक्त होता है और कैसा तापकरके तपने लागता है सो निंदा करनेवाले को परलोक विषे ऐसी ही लज्जा प्राप्त होवेगी जैसी

उस पुरुष अपने भाईके मांस खानेवालेकी न्याई पराई निंदा करनेका तात्पर्य जैसा मलिनहै तैसा अब तुमको नहीं भासता और परलोकविषे उसको प्रत्यक्ष देखेगा इसीकारणसे कहाहै कि जब कोई मनुष्य स्वप्न विषे आपको मृतकका आहार करता देखे तब इसकी युक्तियहहै कि यह मनुष्य किसी पुरुषकी निंदा करताहोवे बहुरि दृष्टान्त यह कि जैसे तू स्वाभाविकही किसीभीत के पीछे से पत्थर डारने लगे और वह पत्थर तेरेघरमें जायकर पड़तेहोवें और कोई पुरुष तुमसे कहै कि तू पत्थर डारनेका त्यागकर काहेसे कि यह पत्थर तेरेही गृहमें पड़ते हैं और इन पत्थरों करके तेरे पुत्रोंके नेत्र अंधेहोते जाते हैं फिर जब तू अपने गृहविषे जाकर प्रत्यक्षदेखे कि पत्थरों करके मेरे पुत्रों के नेत्र अन्धेहुये हैं तब उससमय विषे तेरे चित्तको कैसी अग्नि लगती है और किसप्रकार तू लज्जाग्नि विषे जलताहै ताते जब कोई पुरुष किसी मनुष्य की ईर्षा करताहै तब परलोक विषे आपको ऐसाही लज्जित देखेगा काहेसे कि ईर्षाका भी येही होताहै कि ईर्षा करनेवाला पुरुष अपने शत्रुकी हानि चाहताहै पर वास्तवमें अपनीही हानि करताहै और अपनाही धर्म नष्ट करता है और अपने शुभ करतूतोंका नाश किया चाहता है तात्पर्य यहहै कि परलोकविषे सर्वकरतूतोंका स्वरूप अर्थ के अनुसार भासेगा और यह मनुष्य पदार्थों के अनुसार बीजको प्रत्यक्ष देखेगा इसी कारण से अपमानकी लज्जा को प्राप्तहोवेगा बहुरि स्वप्नकी अवस्था भी परलोक की अवस्था की न्याई होती है ताते जैसा इसपुरुषका हृदय होताहै तिसको स्वप्नविषे आकार रूपन्त देखता है इसीपर एक वार्त्ता है कि कोई पवृत्तिपरिग्रहन एक सन्तके पास आयाथा और कहनेलगा कि मैंने स्वप्नविषे अपने आपको लोगों के मुखपर मोहर लगावते देखाहै सो इसका अर्थ क्याहै तब उससन्त ने कहा कि तू जाग्रत् विषे दण्डकरके लोगोंको अन रखावता होगा बहुरि उसने कहा कि निस्सन्देह मेरी ऐसाही स्वभावहै ताते अब तू विचारकरके देख कि इस करतूतका आकार कैसाहै और अर्थ कैसाहै सो स्थूलव्यवहार विषे तो अन रखावना भला कर्म दृष्टि आवताहै पर उसका अर्थ अशुभ प्रकटहुआ कि मानों लोगों के मुखोंपर मोहर लगावता है और उनको आहार से रोके रखना है सो यहभी बड़ा आश्चर्य है कि भगवन्तने मुझको यह स्वप्न परलोककी अवस्थाका नमूनारूपता करके दिखायाहै पर तू इसमें भी अभिमानीहै इसीकारण से सन्तजनोंके वचनोंविषे आयाहै

कि परलोकविषे मायाका आकार वृद्धा कुरूपास्त्री की नाईं होवेगा, और सब जीव उसे देखकर भयवान् होवेंगे और प्रार्थना करेंगे कि हे महाराज! इस महाराक्षसी से तू हमारी रक्षाकर तब आज्ञा होवेगी कि जिस मायाकी प्राप्तिके निमित्त तुम अपने धर्मको नाश करतेथे सो यहवही मायाहै, तब वह जीव ऐसी अपमानता और लज्जाको प्राप्तहोवेंगे कि आपको अग्निविषे जलाया चाहेंगे इसकरके कि किसीप्रकार हम इस लज्जासे छूटें सो इस लज्जावानी का दृष्टान्त यहहै कि एक समयविषे किसी राजाने अपने पुत्र का विवाह कियाथा बहुरि वह राजपुत्र मदिरा अधिकपानकरके अपने गृहको चला सो मदकी उन्मत्तता करके अपरिणीत होगया और अपने गृहको भुलायकर किसी और स्थान विषे जाय निकसा और वहां एक मन्दिरमें दीपक जलतादेखा तब उसनेजाना कि मैं अपने घरमें आय प्राप्त हुआहूं बहुरि जब उसस्थानके अन्दरगया तब उसमें उसको बहुत पुरुषपड़े सोवतेहुये दृष्टिआये सो उनकोपुकारा तो कोई न बोला तब उसने जाना कि सब निद्राविषे हैं, बहुरि एकस्त्रीको उसने उज्ज्वलवस्त्र पहिरेहुये सोवती देखा तिसको अपनी स्त्री जानकर उसकेपासही शयनकरारहा और उसस्त्री के शरीरसे उसको सुगन्ध आवनेलगी, तब वह राजपुत्र उसकेसाथ क्रीड़ाकरने लगा बहुरि जब सूर्य उदयहुये तब उस राजपुत्रका मद उतरा और जागउठा और भलीप्रकार देखा तो जाना कि जिनको मैं सोयाहुआ जानताथा सो वह सबही मृतककेहैं और जिसको मैं अपनी स्त्री जानताथा सो महाकुरूप वृद्ध स्त्री है और मुझको जो सुगन्ध आवतीथी सो उसकेशरीरकी दुर्गंध और मलिनता है बहुरि जब अपने अंगों को देखा तो सब विष्ठा सोंघ लपटेहुये दृष्टिआये तब बड़ा मलिनचित्त होकर चाहनेलगा कि इससे तो मेरीमृत्यु आजावे तो भलाहै बहुरि यहभी भय करनेलगा कि कहीं मेरापिता और उसकी सेना इसविष्ठादिक में लपटाहुआ मुझको न देखलेवे सो वह ऐसेही मनमें विचार कररहा था कि इतने में वह राजा अपने प्रधानोंसयुक्त उसको ढूंढ़ताहुआ वहांही आय पहुँचा तब पुत्रको महामलिन अवस्था विषे देखा और वह राजपुत्र लज्जा करके ऐसे विचारनेलगा कि जो किसीप्रकार मैं धरतीविषे लीनहोजाऊं तो भलाहै पर किसी भांति इसलज्जावानी से छूटूं तैसेही विषयीजीव परलोक विषे माया के सुखभोग और इन्द्रियोंके रसोंको ऐसाही मलिनदेखेगा पर उसके हृदयविषे जो स्थूल भोगों

की प्रीति शेषरहेगी तिस करके महाकुर्गन्धनाको प्राप्त होवेगा बहुरि जब विचार करके देखिये तब भोगीमनुष्य इसी संसारविषे अतिनिर्लज्जताको और दुःखको पावते हैं परं तोगी परलोकविषे इसप्रकार यह जीव दुःख और लज्जावानी को प्राप्तहोते हैं कि तिसके निकट इससंसारके दुःख और लज्जावानी अल्पमात्र है और मैंने जिज्ञासुओंको लक्ष्य करावने के निमित्त कुछ संक्षेपकरके वर्णनकियाहै सो इसका तात्पर्य यहहै कि यह लज्जावानीरूपी अग्नि भी ऐसी तीक्ष्णहै कि केवल हृदयको तपायमान करती है और इस दुःखका प्रवेश शरीरको कुछ नहीं होता २ बहुरि तीसरी अग्नि यहहै कि भगवत्के दर्शन से अप्राप्तरहना और उत्तम भोगोंकी प्राप्तिसे निराशहोना सो यह मूर्च्छनामी इसीसंसार से जीवकेसाथ जाती है कोहिसे कि इसलोकविषे जिस पुरुषने सन्तजनों के उपदेश और पौरुषप्रयत्न करके ज्ञानको नहीं पाया और अपने हृदयको शुद्धकरके भगवत् के दर्शनका दर्पण नहीं बनाया और भोग और पापरूपी जगारको हृदयरूपी दर्पणसे नहीं छुड़ाया सो परलोकविषेभी उसका हृदयरूपीदर्पण अवाही रहताहै और सर्वदा पश्चात्ताप को पावता है सो इस पश्चात्तापरूपी अग्निका दृष्टान्त यहहै कि जैसे तू अँधेरीरात्रि विषे बहुतलोगों के साथ किसी वनमेंजाय निकसे और उसवनमें पत्थरों के टुकड़े बहुत पड़ेहोवें पर अन्धकार विषे उनका स्वरूप कुछ न भासे बहुरि तेरे संगी इसप्रकार कहें कि हमने इन पत्थरों की बहुत विशेषता सुनी है ताते यथाशक्ति इनको उठायलेवो बहुरि वह सबहीलोग यथाशक्ति कंकड़ उठायलेवें और तू कुछ भी न उठावे और उनसे कहनेलगे कि यह तो बड़ीमूर्खताहै कि अपने शरीर को प्रथम दुःखदीजिये और कंकड़ों का बोझ उठायलेवें और यह बातोभी प्रसिद्ध नहीं जानीजाती कि यह कंकड़ हमारे किसी कामआवेंगे या नहीं आवेंगे पर तेरे संगी सबही उन कंकड़ोंको उठालेवें और तू विना कंकड़ोंके उनके साथ खाली चलाजावे और उन सबको मूर्ख जानकर हास्य करने लगे और ऐसे कहै कि जो पुरुष बुद्धिमान् होताहै सो मेरी नाईं सुखेनही चला जाताहै और जो मूर्ख होताहै सो गर्दभकी नाईं बोझ उठावताहै और जिसवस्तुकी हानि लाभ कुछ प्रसिद्ध न भासे उसीसे यत्न करताहै बहुरि जब अचानकही सूर्य उदयहोवे तब वह कंकड़ सबरत्न और लाल प्रत्यक्ष दृष्टि आवें और वह रत्न ऐसेहोवें कि उनकामोल वर्णनविषे न आवे सो तेरेसंगी देखकर प्रसन्न

होवें और इसप्रकार पश्चात्तापभी करें कि हम इससे भी अधिक उठालेते तो भलाहोता और तुझको तो इनके अप्राप्त रहनेका अत्यन्तही पश्चात्ताप होवेगा और उसकी अग्निविषे जलेगा बहुरि तेरे सगी रत्नोंको पायकर धनी होवें और राजा अरव ऐश्वर्यादि उत्तमसुखों को भोगनेलगें और तू निर्धनताई करके भूखा और नग्न रहे और वह तुझको नीचटहल विषे लगावें और जो तू इनसे कुछ मांगने भी लगे तो भी तुझको न देवें और इसप्रकार तुझसे कहें कि तू प्रथम हमको हँसताथा सो तुझको उस हँसनेका फल प्राप्तहुआहै जिसकरके तू पश्चात्ताप और दुःखविषे जलताहै और हमको परमसुख प्राप्तहुआहै तैसेही जो पुरुष भगवत् के दर्शनसे अप्राप्त रहे हैं सो परलोकविषे तिनकी अवस्था ऐसेही होवेगी इस करके कि यह संसार अँधेरी रात्रिकी नाईं है और जप तप भजन आदिक साधनरूपी रत्न हैं सो इस संसारविषे इन रत्नोंका स्वरूप और मोल नहीं भासता ताते संसारीजीव शुभकर्मोंको अङ्गीकार नहीं करते और कहते हैं कि हम माया के प्रत्यक्ष सुखोंको छोड़कर परलोक के सुख परोक्षका काहेको यत्न करें सो ऐसे पुरुष निस्सन्देह परलोकविषे दुःखीहोवेंगे और पुकारकरेंगे और कहेंगे कि साधन करनेवाले परमसुखके अधिकारी हैं और उनको देखकर जलेंगे सो सत्यहै काहे से कि जिन पुरुषों ने साधन करके इससंसार विषे भगवत् की प्रीति और पहिंचानको प्राप्तकियाहै सो तिनको परलोकविषे भगवत् ऐसा उत्तम सुखदेवेगा कि मायाके सर्वभोग अमितकालके उस सुखके कणसमानभी न लगेंगे काहे से कि वह आत्मसुख ऐसा अपार है कि उसके साथ कोई सुखका दृष्टान्त सम्भवित नहीं होता इसकरके कि वह आत्मसुख सर्वसुखोंका सारहै जैसे कोई जौहरी कहै कि रत्नका मोल सौ मोहरहै तब उसरत्नकी तोल और आकार तो सौ मोहर के समान नहीं होता पर उसके कहने का अर्थ यह है कि वह रत्न मोहरके स्वर्ण चांदीका सार है तैसेही इन्द्रियादिक सुखोंसे आत्मसुखकी जो अधिकता कही है सो मर्य्याद और आकार करके नहीं कही पर यह आत्मसुख ऐसा है कि सर्व सुखोंका सारहै ताते उसको अधिक वर्णन कियाहै ॥

ग्यारहवां सर्ग ॥

सूक्ष्म दु ग्खों मानसी दुःखोंकी सौक्ष्मताके वर्णन में ॥

वाने जब तूने तीन प्रकार की सूक्ष्म अग्निको समझा तब ऐसे भी जान

कि इस सूक्ष्म अग्नि की तपतें स्थूल अग्नि से महातीक्ष्ण हैं काहेसे कि श- रीरको भी क्षीण करके इसका ज्ञान नहीं होता ताते शरीर का दुःखभी नहीं भासता है जब जीव की वृत्ति शरीर विषे आय फुरती है और जो दुःख केवल जीव के अन्दर में ही स्थित होवे तब वह दुःख तो निस्सन्देहही अधिक होताहै ताते यह तीन प्रकारकी अग्नि जो कही है सो इसकी अग्नि जीव के अन्त- रही उत्पन्न होती है और शरीर के दुःखकी नाईं बाहर से आय के नहीं प्रवेश करती इसी कारण से सूक्ष्म अग्निकी जलन महाप्रबल है और सर्व दुःखोंका कारण यहहै कि जो पदार्थ शरीरके स्वभावको इष्ट होते हैं सो जब उन पदार्थों का विरोधी प्राप्त होताहै तब यह जीव अधिक दुःखको पाताहै सो शरीर का इष्ट पदार्थ यह है कि तत्त्वोंकी वृत्ति समानहोवे सर्व अङ्गों का सम्बन्ध परस्पर बना रहे बहुरि जब अकस्मात् किसी विघ्न अथवा शस्त्रकी चोटकरके अङ्गोंकी ही- नता होजावे तब अवश्यही दुःखी होताहै और शस्त्रादिकों करके तो किसीएक अङ्गका वियोग होताहै पर अग्नि करके सर्वअङ्ग जलने लगते हैं इसीकारण से अग्निकी पीड़ा शस्त्रादिकों से अधिकहै तैसेही जो पदार्थ केवल इसको इष्ट होताहै जब उसका विरोधी पदार्थ प्राप्तहोवे तब इसका दुःखभी जीवको अधिक पीड़ा देता है सो इस जीवका स्वतः स्वभाव भगवत् की पहिचान और उसका दर्शन है जब अज्ञान करके भगवत्की पहिचान और दर्शनासे दूर रहताहै तब निस्सन्देह ऐसे दुःखको पाताहै कि उस दुःखका अन्त कदाचित् नहीं होता पर जब इस संसारविषे इस जीवको सुचेतता होती है तब इस दुःखको कुछ जानता है पर यहजीव मायाके भोगोंविषे ऐसा शून्यचित्त रहताहै कि सूझ बूझ कुछ नहीं आवती बहुरि जब परलोकविषे भोगोंकी शून्यता दूर होतीहै तब यहदुःख इसको प्रत्यक्ष भास आवता है जैसे किसी पुरुष का शरीर अर्द्धाङ्ग रोगकरके शून्य होजावे तब उसको अग्नि की उष्णता नहीं भासती पर जब अर्द्धाङ्ग की शून्यता दूर होजाती है तब अग्नि की ताप उसको तीक्ष्ण लगती है और उस तपन करके महादुःखी होताहै तैसेही इस मनुष्यका हृदय मायाकरके शून्य हो रहाहै इस कारण से अनेक दुःखको भी नहीं जानता पर परलोक विषे जब इस की शून्यता दूरहोती है तब अपने हृदयकी अग्निके दुःखसे तपायमान होता है और जलने लगताहै सो यह अग्नि जीवको बाहरसे नहीं आय जलावती है

होवें औरइसप्रकार पश्चात्तापभी करें कि हम इससे भी अधिक उठायलेते तो भलाहोता और तुझको तो इनके अप्राप्त रहनेका अत्यन्तही पश्चात्ताप होवेगा और उसकी अग्निविषे जलेगा वहुरि वेरे सगी रत्नोंको पायकर धनी होवें और राज अश्व ऐश्वर्यादि उत्तमसुखोंको भोगनेलगें और तू निर्द्धनताई करके भूखा और नग्न रहे औरवह तुझको नीचटहलविषे लगावें और जो तू इनसे कुछ मांगने भी लगे तो भी तुझको न देवें और इसप्रकार तुझसे कहें कि तू कबहू हमको हँसताथा सो तुझको उस हँसनेका फल प्राप्तहुआहै तिसकरके तू पश्चात्ताप और दुःखविषे जलताहै और हमको परमसुख प्राप्तहुआहै तैसेही जो पुरुष भगवत् के दर्शनसे अप्राप्त रहे हैं सो परलोकविषे तिनकी अवस्था ऐसेही होवेगी इस करके कि यह संसार अँधेरी रात्रिकी नाईं है और जप तप भजन आदिक साधनरूपी रत्न हैं सो इस संसारविषे इन रत्नोंका स्वरूप और मोल नहीं भासता ताते संसारीजीव शुभकर्मोंको अङ्गीकार नहीं करते और कहते हैं कि हम माया के प्रत्यक्ष सुखोंको छोड़कर परलोक के सुख परोक्षका काहेको यत्नकरें सो ऐसे पुरुष निस्सन्देह परलोकविषे दुःखीहोवेंगे और पुकारकरेंगे और कहेंगे कि साधन करनेवाले परमसुखके अधिकारी हैं और इनको देखकर जलेंगे सो सत्यहै काहे से कि जिन पुरुषों ने साधन करके इससंसार विषे भगवत् की प्रीति और पहिचानको प्राप्तकियाहै सो तिनको परलोकविषे भगवत् ऐसा उत्तम सुखदेवेगा कि मायाके सर्वभोग अमितकालके उस सुखके क्षणसमानभी न लगेंगे काहे से कि वह आत्मसुख ऐसा अपार है कि उसके साथ कोई सुखका दृष्टान्त सम्भवित नहींहोता इसकरके कि वह आत्मसुख सर्वसुखोंका सारहै जैसे कोई जौहरी कहे कि रत्नका मोल सौमोहरहै तब उसरत्नकी तोल और आकार तो सौ मोहर के समान नहींहोता पर उसके कहनेका अर्थ यह है कि वह रत्न मोहरके स्वर्ण चांदीका सार है तैसेही इन्द्रियादिक सुखोंसे आत्मसुखकी जो अधिकता कही है सो मर्य्याद और आकार करके नहीं कही पर वह आत्मसुख कैसा है कि सर्व सुखोंका सारहै ताते उसको अधिक वर्णन कियाहै ॥

ग्यारहवां सर्ग ॥

स्थूल दुःखसे मानसी दुःखोंकी तीक्ष्णताके वर्णन में ॥

ताते जब तूने तीन प्रकार की सूक्ष्म अग्नि को समझा तब ऐसे भी जान

कि ईस सूक्ष्म अग्नि की तपते स्थूल अग्नि मे गहातीक्षण है कार्हेसे कि श रीरको भी स्पर्श करके दुःखका ज्ञान नहीं होता ताते शरीर का दुःखभी तवहीं भासता है जब जीव की वृत्ति शरीर विषे आय फुरती है और जो दुःख केवल जीव के अन्दर मेंही स्थित होवे तब वह दुःख तो निस्सन्देहही अधिक होताहै ताते यह तीन प्रकार की अग्नि जो कही है सो इसकी अग्नि जीव के अन्तरही उत्पन्न होती है और शरीर के दुःखकी नाई बाहर से आय के नहीं प्रवेश करती इसी कारण से सूक्ष्म अग्निकी जलन महाप्रबल है और सर्व दुःखोंका कारण यहहै कि जो पदार्थ शरीरके स्वभावको इष्ट होते हैं सो जब उन पदार्थों का विरोधी प्राप्त होताहै तब यह जीव अधिक दुःखको पाताहै सो शरीर का इष्ट पदार्थ यह है कि तत्त्वोंकी वृत्ति समानहोने सर्व अङ्गों का सम्बन्ध परस्पर बना रहे बहुरि जब अकस्मात् किसी विघ्न अथवा शस्त्रकी चोटकरके अङ्गोंकी हीनता होजावे तब अवश्यही दुःखी होताहै और शस्त्रादिकों करके तो किसीएक अङ्गका वियोग होताहै पर अग्नि करके सर्वअङ्ग जलने लगते हैं इसीकारण से अग्निकी पीड़ा शस्त्रादिकों से अधिकहै तैसेही जो पदार्थ केवल इस को इष्ट होताहै जब उसका विरोधी पदार्थ प्राप्तहोवे तब उसका दुःखभी जीवको अधिक पीड़ा देता है सो इस जीवका स्वत स्वभाव भगवत् की पहिचान और उसका दर्शन है जब अज्ञान करके भगवत्की पहिचान और दर्शनसे दूर रहताहै तब निस्सन्देह ऐसे दुःखको पाताहै कि उस दुःखका अन्त कदाचित् नहीं होता पर जब इस संसारविषे इस जीवको सुचेतता होती है तब इस दुःखको कुछ जानता है पर यहजीव माया के भोगों विषे ऐसा शून्यचित्त रहताहै कि सूक्ष्म दुःख कुछ नहीं आवती बहुरि जब परलोकविषे भोगोंकी शून्यता दूर होतीहै तब यहदुःख इसको प्रत्यक्ष भास आवता है जैसे किसी पुरुष का शरीर अर्द्धाङ्ग रोग करके शून्य होजावे तब उसको अग्नि की उष्णता नहीं भासती पर जब अर्द्धाङ्ग की शून्यता दूर होजाती है तब अग्नि की ताप उसको तीक्ष्ण लगती है और उस तपन करके महादुःखी होताहै तैसेही इस मनुष्यका हृदय मायाकरके शून्य हो रहाहै इस कारण से अनेक दुःखको भी नहीं जानता पर परलोक विषे जब इस की शून्यता दूर होती है तब अपने हृदयकी अग्निके दुःखविषे तपायमान होता है और जलने लगताहै सो यह अग्नि जीवको बाहरसे नहीं आय जलाती है

इस करके कि इस अग्निका बीज यहांही इस जीवके अन्तर स्थितथा और प्रतीतिकी हीनता करके इसको जानता न था और जब वह बीज विस्तार करके वृक्ष हुआ तब प्रत्यक्ष भासनेलगा और उसके फलको पावताभया इसीपर महाराजनेभी कहाहै कि जब तुम्हारी प्रीति दृढ़होती तब तुम नरकको यहांहीं प्रत्यक्ष देखते पर धर्मशास्त्र विषे स्थूल नरकों और स्वर्गका अधिक वर्णन जो किया है सो इसका कारण यह है कि संसारी जीव इसही को समझसक्के हैं और जब मानसी नरकोंकी वार्त्ताको श्रवण करते हैं तब बुद्धिकी हीनता करके इस दुःख को तुच्छ जानते हैं जैसे किसीबालकसे कहिये कि तू विद्यापढ़ और जो विद्या न पढेगा तो पिताके ऐश्वर्य को नहीं प्राप्तहोवेगा और महामूर्ख रहेगा तब वह बालक इस वचन को समझताही नहीं और पिता के ऐश्वर्य से अप्राप्त रहने के दुःखको जानताही नहीं पर जब बालक को ऐसे कहिये कि जब तू विद्याको न पढ़ेगा तब पाधा तेरे कानोंको मरोड़ेगा तब इसकरके वह बालक भयवान् होता है और इस दुःखको सुगमही समझ लेताहै सो जैसे विद्याके न पढ़नेकरके पाधाकी ताड़नाभी सत्य है पर पिताके ऐश्वर्य से अप्राप्तरहना भी सत्य है वैसेही स्थूल नरकभी नरक सत्यहै और मूर्खताकरके भगवत् के दर्शन से अप्राप्त रहने की अग्निभी सत्यहै पर महाराजके दर्शनसे अप्राप्त रहनेका दुःख ऐसाहै जैसा पाधा बालकके कान मरोड़नाहै॥

बारहवां सर्ग॥

पूर्वपक्षोत्तरके वर्णन में॥

बहुरि जब तू इसप्रकार प्रश्नकरे कि तुमने ऐसे वर्णन कियाहै कि मानसीनरकको अनुभवकी दृष्टिकरके देखसक्के हैं और विद्यावान् पण्डित इसप्रकार कहते हैं कि शास्त्रोंविषे ऐसे वर्णन कियाहै कि परलोककी वार्त्ताको प्रतीतिही करके समझ सक्के हैं और अपनी दृष्टिकरके देखना असम्भवहै सो इनदोनों वचनोंका परस्पर विरोध होताहै तब इसका उत्तर यहहै कि कुछ इस वचनका बखान मैंने आगेभी वर्णन कियाहै और भलीप्रकार देखिये तो इस वचनको विरोधभी कुछ नहीं और जिसप्रकार शास्त्रोंविषे परलोकका वर्णन कियाहै सो ऐसेही प्रमाणहै पर इसविषे इतना भेद है कि कितने पण्डित तो ऐसे हुये हैं कि उनकी बुद्धि इन्द्रियादिक देशसे बाहर नहीं निकलती और चैतन्य देशको उन्होंने जानाही

नहीं और केते बुद्धिमान् ऐसेभी हुये हैं कि उन्होंने परलोक की अवस्था और मानसी नरककी प्रत्यक्ष देखाहै और उन्होंने इसनिमित्त प्रसिद्ध नहीं कहा कि बहुत लोग इसमानसी दुःखको समझ नहीं सके और सब किसीकी बुद्धि विषे ऐसा बल भी नहीं होता कि अल्पबुद्धि जीवोंको चैतन्यदेशका भेद यत्न करके हस्तामलकवत् कर दिखावें अथवा जिसको भगवत् अपनी कृपाकरे वह आप ही इस भेदको देखलेताहै और अपर जीवोंको भी युक्ति करके समझाय सक्ताहै पर ऐसे पुरुषभी इसजगतविषे दुर्लभ पाये जाते हैं ताते स्थूल नरकोंका भेद शास्त्रोंके श्रवणकरके ही समझसक्ते हैं और मानसी नरकों का अर्थ अपने आपकी पहिंचानकरके जानाजाताहै सो अपने आपका पहिंचानना और बुद्धिके नेत्रों करके चैतन्यरूपको देखना इस अवस्था को भी पुरुषार्थ और यत्नके मार्गकर पहुँचसक्ता है ताते इस परम पदको सोई पावताहै जो अपने देशसे अटन करके किसी और देश को गमनकरे और जिस स्थान विषे इस जीवकी उत्पत्ति और स्थिति हुई है तिसको त्यागकर आगेचलनेका उद्यमकरै पर यह जो मैंने अपने देश और गृहका त्यागना कहाहै सो इसका अर्थ यह नहीं कि स्थूलदेश और मन्दिरोंको त्यागआवे काहेसे कि स्थूल मन्दिर और नगर तो शरीर का देशहै ताते स्थूलदेशके त्यागने करके कुछ फल नहीं प्राप्तहोता पर मैंने जीवके देशका त्यागना विशेष कहाहै अर्थ यह कि वास्तव जीवका देश औरहै और इस शरीर देशविषे कार्यमात्र आयाहै पर इस जीवने अपना देश यही जान लियाहै पर तो भी अवश्यही इस मनुष्य को स्थूलदेश से गमनकरना है और सूक्ष्मदेशविषे पहुँचना है बहुरि मार्गविषे कई मजिलहैं सो सब मजिलों का भिन्न भिन्न व्यवहार है पर प्रथम जो जीवकी स्थितिका स्थानहै सो इन्द्रियादिक देशहै १ और दूसरी मजिल सकल्पदेशकी है २ और तीसरादेश सकल्पका कारण जगत्की प्रतीति है सो इसको स्थूलबुद्धि भी कहते हैं ३ बहुरि चौथा सूक्ष्म बुद्धिका देशहै ४ पर जब यह जीव सूक्ष्मदेशविषे पहुँचताहै तब इसको अपने स्वरूप की बूझ प्राप्त होती है और प्रथम तीनों देशविषे अज्ञान करके आवरण कियाहुआ रहताहै पर यह जो चार मजिलें मैंने कहीं हैं सो दृष्टान्त करके समझमें आसक्ती हैं सो प्रथम इन्द्रियादिक देशका दृष्टान्त यहहै कि इन्द्रियादिक देशविषे इसजीवकी अवस्था पतंगकी नाई है जैसे पतंग नेत्रोंके विषयकर दी

पतंगके ऊपर आनि पड़ता है अरु उसविषे भय और निवृत्त कुछ नहीं होत
ताते अंधकारसे भागिकर देखताहै खिड़कीके मार्गसे निकलना चाहताहै और स
दीपकही उसको खिड़की भासती है इसकारण से आपको दीपकके ऊपर आन
डालताहै बहुरि धुयेंकी प्रबलता करके पीछे गिरपड़ताहै और उसको मित्र कि
इतनीभी समझ नहीं कि धुयेंके दुःखको स्मरणविषे रक्खे और ऐसे जाने कि इस
दीपककी तपन करके मैंने आगेभी दुःख पाया है सो भी नहीं समझता ताते
बहुरि दीपककी ओर जाताहै और इसीप्रकार मृत्युको प्राप्त होताहै सो यह बात
प्रसिद्ध है कि जब उसको स्मरण अथवा निश्चय नहीं होता कुछभी तो एकवार उस
पतंगके फिर दीपककी ओर भ्र जाता है दूसरा देश संकल्पका पशुओंकी नाईं है
इसकरके कि पशुओं को जब कोई पुरुष लाठी मारता है तब दूसरीवार लाठीको
देखकर भयवान् होते हैं और उस पहली लाठीका दुःख उनके स्मरणविषे रहता
है ताते लाठीको जब फिर देखते हैं तब भागजाते हैं तात्पर्य यह कि प्रथम इन्द्रि
यादिक देशकी मंजिल है और दूसरी मंजिल संकल्पके देशकी है सो जब यह
मनुष्य संकल्पके देशविषे होता है तोभी पशुओं के समान है इसकरके कि जब
लग किसी पदार्थ में दुःखी नहीं होता तबलग उस पदार्थका त्याग नहीं करता
पर जब एकवार किसीसे दुःख पावता है तब दूसरीवार उसको देखकर भागजाता
है बहुरि तीसरी मंजिल संकल्पकी कारण स्थूलबुद्धि है सो जब यह मनुष्य
इसदेशविषे पहुँचता है तब घोड़ी और बकरीकी अवस्थाको प्राप्त होता है अर्थ यह
कि दुःख पाये बिनाही दुःखदायक पदार्थों से भयवान् होता है और यों जानता है
कि इसकरके मुझको दुःख प्राप्त होवेगा जैसे आगे बकरीने भेड़ियेको देखा नहीं
और घोड़ीने सिंहकोभी आगे नहीं देखा पर जब अचानकही सिंह और भेड़िये
को देखते हैं तब घोड़ी और बकरी भागजाते हैं और अपने शत्रुको पहिचानलेते
हैं सो यद्यपि ऊंट और हाथियोंको देखते हैं तब नहीं डरते और नहीं भागते इस
करके कि उनको अपना शत्रु नहीं जानते सो यह अपने शत्रुका पहिचाननाभी
सूक्ष्म दृष्टिसे है कि भगवन्तने यह दृष्टि उनके हृदयविषे रक्खी है ताते शत्रु और
मित्रको सुगमही पहिचान लेते हैं पर तोभी यह घोड़ी और बकरी इसभेदको नहीं
जानते कि कबहूं क्या होवेगा जाने आगेके दुःखको पहिचानना और उससे भय
करना यह अवस्था चौथी मंजिलविषे प्राप्त होती है और वह मंजिल सूक्ष्म है कि

जब यह मनुष्य इस अवस्थाको प्राप्त होताहै तब पशुओंके पदसे उल्लंघित होता है और जब प्रथम तीन मञ्जिलों विषे होताहै तबलग पशुओं के समान होताहै और जब सूक्ष्मबुद्धिके देशको प्राप्तहोताहै तोभी सम्पूर्ण मनुष्यके पदको प्रथम अवस्थाको पावता है और ऐसे पदार्थों को देखता है कि जिस विषे इन्द्रियें और सकल्प और स्थूलबुद्धि का प्रवेश न होवे और जिसकरके आगे दुःख होवेगा तिससे भय करताहै और करतूतों के सारेभेदको समझताहै बहुरि भेदको समझ कर करतूत के आकार को भिन्न करताहै और उसके तात्पर्य्य को भिन्न करताहै और सर्व पदार्थोंकी मर्य्यादको पहिचानताहै और इसप्रकार जानताहै कि जेते पदार्थ इस जगत्विषे दृश्यमान भासते हैं सो सबही अन्तवन्तहैं इस करके कि जो कुछ इन्द्रियोंके विषयहैं सो स्थूलहैं और इन्द्रियादिक व्यवहारकी क्रिया ऐसे है जैसे पृथ्वीपर चलना फिरना सुगम होताहै और सकल्पके देश की क्रिया ऐसे है जैसे नदीविषे नौकापर चढ़कर चलना होताहै अर्थ यह कि नौकापर चढ़नेसे बालक डरताहै और बड़े पुरुषोंको कुछभय नहीं होता बहुरि स्थूलबुद्धि जो सकल्पोंका कारणहै तिसकीक्रिया तैरनेकी नाईं है अर्थ यह कि जलविषे वहीपुरुष तैरसक्ताहै कि जिसको तैरने की विद्या परिपक्व होती है और सूक्ष्मबुद्धि जो चौथी मञ्जिलहै उसका गमन ऐसे है जैसे मेघमण्डलविषे उड़नाहोवे सो तिसविषे कोई विरला शक्तिमान्ही उडसक्ताहै तैसेही सूक्ष्मबुद्धिकी चिदाकाशविषे गतिहोती है और यद्यपि इस अवस्थाका प्राप्त होना महाकठिन है तोभी ज्ञानवान् पुरुषों का जो पदहै और सतजनोंकापद है सो इससेभी परे है सो इस परमपदकी गति ऐसी है जैसे कोई महाकाशविषे उड़ना करे इसीकारण से महापुरुष से किसी ने कहाथा कि महात्मा ईसा जलविषे चलते हैं तब महापुरुषने कहा कि यह वार्त्ता भी सत्यहै पर जब उनकी प्रतीति अत्यन्त दृढ़होती तब वह आकाश विषे भी उड़नेको समर्थहोते पर यह मनुष्य सब मञ्जिलोंविषे जो चलताहै सो पृथ्वी के देशविषे इसकीगति चलीजातीहै बहुरि पशुओंकी आत्मा से लेकर देवतों के स्वभाव को जाय पहुँचता है इसीकारणसे कहाहै कि अधोगति और ऊर्द्धगति विषे जाना इसीमनुष्यका अधिकारहै ताते यहमनुष्य सर्वदा इसीभय विषे स्थित है कि देखिये मैं अधोगति स्थानन विषे जाऊं अथवा ऊर्द्धगति देवलोक को प्राप्तहोऊं और भयका अर्थ यह है कि जैसे जड़पदार्थहैं तिनकी अवस्था एक

चित् नहींबदलती इसकरके कि उनविषे चैतन्यता नहीं डालीगई ताते निर्भय और ईश्वर कोटी जो देवते हैं सो अपने शुद्धपदसे कदाचित् नहीं गिरते ताते निर्भय हैं ताते शुभकर्मोंकरके ऊर्द्ध्वगति को प्राप्तहोता है और अपकर्मोंकरके अधोगति विषे जाताहै इसीकारण से मनुष्य को भयविषे स्थितरहना कहा है और ऐसे जो कहाहै कि भगवत्की प्रीति और प्रेमकी अमानता मनुष्यविषेही राखीहै सो इसका भी अर्थ येही है पर मेरे कहने का तात्पर्य्य यहहै कि परदेशी और नगरवासियोंकी अवस्था भिन्न भिन्न होती है ताते बहुत मनुष्य तो नगर वासियोंकी नाईं अपने स्वभावविषेही स्थित होते हैं और परदेशी जो निष्काम जनहैं सो विरले हैं और जिस पुरुषकीस्थिति इन्द्रिय और संकल्पोंके देशविषेही है तिसको यथार्थ भेदकी सूझ प्राप्ति नहीं होती और निश्शरीर पद को नहीं पावता और शरीरते रहित अवस्था को भी नहींजानता इसी कारण से चैतन्य सत्ताका अधिक बखान शास्त्रों विषे नहींकिया ताते मैं भी इस वचनको यहांही पूर्ण करताहूं कि स्थूलबुद्धि जीव इतने वचनको भी नहीं समझसके तब इससे अधिक भेद उनकी बुद्धि क्योंकर पायसक्ती है ॥

तेरहवांसर्ग ॥

नास्तिकों के मतके खण्डनके विषयमें ॥

बहुरि केतेपुरुष जो ऐसेमूर्ख होते हैं कि वह परलोककी गतिको अपनी बुद्धि करके नहीं देखसक्ते और संतजनोंके वचनपर प्रीतिभी नहीं करते ताते परलोक के निश्चयविषे संशयवान्होते हैं बहुरि भोगोंकी प्रबलता करके परलोक का प्रसिद्ध नतकार करते हैं सो उनको उनका मनही ऐसीढीठता दिखावे है तब वह जानते हैं कि संतजनोंने जो नरकोंका वर्णन कियाहै सो जीवों को भय देनेके निमित्त कहाहै और ऐसेही स्वर्गों का वचनभी लालच देनेके निमित्त कहाहै पर वास्तवमें नरक और स्वर्ग कुछनहीं सो ऐसेजानकर भोगोंविषे आसक्तरहते हैं और सन्तजनोंकी आज्ञासे विमुख होते हैं इसी कारणसे जो पुरुष शास्त्रकी मर्य्याद विषे वर्त्तते हैं तिनको मूर्खजानकर हँसते हैं और इसप्रकार कहते हैं कि यहमूर्ख मर्यादकी रस्सीविषे बँधेहुये हैं सो ऐसे बुद्धिहीन नास्तिकवादियों को परलोककी गतिको किसीप्रकार समझाय नहीं सक्ते पर जब कुछ श्रद्धा किसी पुरुषविषे देखले तब इसप्रकार उनसे कहना प्रमाणहै कि सन्तजन अमल्य और

पहुंते आचार्य तो ऐसेहुये हैं कि तुम्हारे निश्चयके अनुसार उनके वचन संबही झूठे होनेहैं और छलेहुये सिद्धहोते हैं तब तुमने मूर्खताकरके गुह्यभेदको क्योंकर यथार्थ समझाहै ताते जानाजाता है कि वह महापुरुष नहीं भूले और झूठेभी नहीं पर तुम मूर्खहो कि तुमने यथार्थ भेदको नहीं समझा और नरकोंके दुःखों को भी नहीं जाना बहुरि आत्मा अनात्मा की भिन्नताको भी तुमने नहीं पहिचाना पर जब वह मूर्ख अपनी भूल को न माने और हठकरके इसप्रकार कहने लगे कि हमतो इस वार्त्ताको प्रत्यक्ष हस्तामलकवत् जानते हैं कि अब भी इस शरीरविषे चैतन्यता का निश्चय करना मिथ्याहै ताते मरने के पीछे भी जीवको अविनाशी जानना व्यर्थ है काहेसे कि शरीर का व्यवहार प्राणवायु करि सिद्ध होना होता है और जो परलोकका दुःख सुख कहतेहैं सो यह भी कल्पनामात्र है सो जब इनकानिश्चय ऐसाहै तब तिनकी बुद्धि मूलही से नष्टहै और उनको समझावने से निराश हुआ चाहिये काहे से कि वह महामूर्ख है इसी पर किसी सन्तको आकाशवाणी हुईथी कि तुम नास्तिकों को उपदेश मतकरो इसकरके कि यह मूर्ख वचनों करके समझने के अधिकारी नहीं पर जब वह इसप्रकार प्रश्न करे कि यद्यपि परलोक की गति निस्सन्देह सत्यहोवेगी तोभी हमसे बहुतदूरहै काहेसे कि प्रथमतो हस्तामलकवत् नहींभासती ताते ऐसे संशयके वचनकरके मक्लभोगोंका त्याग काहेको करिये और अपनीसब आयुष् वैराग्यके दुःखविषे क्योंलगावें तब तिसको इसप्रकार कहिये कि जब तूने परलोककी वार्त्ताको कुछ माना तब तुझको बुद्धिकी आज्ञाकरके प्रमाणहुआ कि सन्तजनोंकी मर्य्याद विषे स्थितहोवो काहेसे कि जिस कार्य्यविषे अत्यन्त भयहोताहै तब उस कार्य्य को सशयकरभी त्यागना भला है जैसे तू भोजन करने की इच्छा करे और कोई पुरुष तुझको अचानकही संशयडाले कि इस भोजन विषे सर्पने मुखडाला है तब तू अवश्यमेव उस भोजनका त्याग करताहै यद्यपि तुझको यहनिश्चयभी होवे कि यह मनुष्य झूठ कहताहै अथवा अपने लोभके निमित्त तुझको ठग ता है पर तोभी तू उस भोजन को अङ्गीकार नहीं करता इसी करके कि यह पुरुष सत्य भी कहता होवे तब मरने के दुःख से भयका त्याग तो अलग है पर जब तुझको कुछरोग होताहै तब यन्त्र लिखनेवाला पुरुष न यन्त्र लिख देवगा तब तेरा दुःख दूर होजावेगा सो

होती है कि यन्त्र और रोगका सम्बन्ध है। नहीं तोभी तू चित्तविषे ऐसा अनुमान करता है कि यद्यपि मैं यन्त्रवाले को कुछ धनभी यन्त्र के बदले देऊंगा तोभी मेरा क्या हानि है पर जब मेरा रोग दूर होजावे तब यहतो बड़ा लाभ होगा ऐसेही ज्योतिषियों के वचनभी प्रमाण करके तू देवपूजा करने लगता है इस करके कि जब इसका वचन सत्यभी होवे तब तुझको बड़ा सुख प्राप्त होवेगा और जब यह झूठही कहता है तो मुझको देवपूजा विषे कितना कष्ट है तैसेही असंख्य जो सन्तजन हैं और अवतार महापुरुष हैं और आचार्य अवधूत हैं सो तिनके वचन बुद्धिमानों के निकट ज्योतिषी और यन्त्र लिखनेवाले के वचनसे तुच्छ तो नहीं होते ताते जिज्ञासूजन सन्तोंके वचनों पर प्रतीति करके यत्न करके स्थित होते हैं और निस्सन्देह परलोक के दुःखों से छूटते हैं बहुरि परलोक के दुःखके निकट वैराग्यादिक दुःख किञ्चिन्मात्र होजाते हैं काहेसे कि जब विचारकर देखिये तो प्रथम इस जगत् विषे जीवताही तुच्छमात्र है और परलोक की अवस्था का कदाचित् अन्त नहीं आवता ताते परलोक के दुःख से मुक्त होने के निमित्त जो इस जगत् विषे यत्न कियाजाता है सो उस दुःखकी मर्याद क्या है अर्थात् किञ्चिन्मात्र है इसीकारण से इस जीवको चाहिये कि सन्तों के वचनोंपर प्रतीति करे और यों जाने कि जब मैं इनके वचनसे विमुख होऊंगा तब चिरकाल पर्य्यंत दुःख को भोगता रहूंगा और मेरी मुक्ति कदाचित् न होवेगी और इन्द्रियादिक भोग जो अल्पकाल विषे विरस होजाते हैं इनकरके मुझको क्या लाभ होवेगा काहे से कि परलोक का दुःख अनन्त है और शास्त्रों विषे इसप्रकार कहा है कि जब सर्व ब्रह्माण्डको राईके दानों से भरपूर करिये और कोई ऐसा पक्षी होवे कि सहस्रवर्ष पर्य्यन्त एकदाना भक्षण करे तब उस अनाजका भी अन्त आपजाता है पर परलोकके दुःखका कदाचित् अन्त नहीं आवता सो ऐसा चिरकाल पर्य्यंत यद्यपि मानसी दुःख होवे अथवा स्थूल दुःख होवे पर उसका सहना महाकठिन है और उस दुःखके निकट इस संसारकी आयुष् क्या है ताते जो बुद्धिमान् पुरुष है सो विचार करके समझता है कि विचारकी मर्य्याद विषे चलना और दोष दृष्टि करके अपकर्म्मों का त्याग करना प्रमाण है इसकरके कि जिस कार्य्य विषे अत्यन्त कष्ट होवे सो अनुमान करके भी उससे अपनी रक्षा करनी भली है और यद्यपि उसके यत्न विषे कुछ दुःखभी होवे तोभी विशेष है काहेसे कि सबलोग अपने व्यवहार के

निमित्त जहाजोंविषे बैठकर देशान्तर को जाते हैं सो उनकी सर्वक्रिया अनुमान करके सिद्ध होती है ताते परलोक की गतिपर जिस पुरुषकी एकप्रतीति नहीं और अनुमानमात्रही परलोक को मानना होवे सो वह भी जब दुःखसे अपनी रक्षाचाहे तब धैर्य करके वैराग्यादिक दुःखोंको अंगीकारकरे इसीपर एक वार्ताहै कि किसी नास्तिकवादी के साथ में एक महात्मा संतकी चर्चा हुई थी तब वह नास्तिक कहताथा कि परलोक का सुख दुःख सब कोई अनुमान करके मानता है और प्रत्यक्ष किसी ने देखा नहीं तब अली कहने लगे कि जो तेराही कहना सत्यहै तो हम और तू दोनोंमुक्तहुये और जो मेरावचन सत्यहै कि परलोकसत्य है तो परलोक विषे तू चिरकाल पर्यन्त दुःखी होवेगा और हम मुक्त होवेंगे सो यह जो वचन संशय संयुक्त अली संतने कहा जो उस नास्तिकवादी की बुद्धि अनुसार कहाहै कि वह पुरुष अनुमानमात्र परलोक को प्रमाण करताथा नहीं तो परलोकके सुख दुःखविषे अलीसंतको कुछ संशय न था पर वह यह जानता था कि जिस प्रकार परलोक को भलीभांति देख सके हैं तिसप्रकार यह मूर्ख न समझसकेगा ताते ऐसे जान तू कि जो इससंसारविषे तोशा नहीं बनावते पर-लोकका और और कार्य्योंविषे मग्न रहते हैं सो निस्सन्देह महामूर्ख हैं और इस मूर्खता का कारण विषयों की प्रीति है ताते भोगों की प्रीति विषे ऐसे लीनरहते हैं कि कदाचित् परलोक का विचारही नहींकरते पर जो परलोकको दृढ़प्रतीति करके मानते हैं तिन सबको परलोक के दुःखसे भयमान होना प्रमाण है बहुरि संयम और भयके मार्ग विषे चलना विशेष है सो अब अपनी पहिचान और परलोक की पहिचानका वचन पूराहुआ॥

इति चतुर्थ अध्याय समाप्तम्

सूचना॥

हे भाई! जब तूने अपने स्वरूप और भगवत् और माया और परलोक के स्वरूप को इन चारों अध्याय करके पहिचाना और योभी जाना कि इस जीवकी भलाई सम्पूर्ण भगवत्के भजन और उस की पहिचानविषे है तो अब इससे आगे भगवत् का भजन और जिसप्रकार भगवत्की आज्ञा माननी योग्य है तिसको श्रवण करना चाहिये सो यह युक्ति चार प्रकरणकरिके प्राप्त होतीहै सो प्रथमप्रकरण यहहै कि आपको भगवत्के भजन और सत्कर्मों विषे स्थितकरे १ बहुरि दूसरा प्रकरण यहहै कि अपने सर्वशरीर की क्रिया विचार की मर्यादा अनुसार करे २ और तीसरा प्रकरण यहहै कि अपने चित्तको मलीन स्वभावों से शुद्ध करे ३ और चौथा प्रकरण यहहै कि अपने हृदयको भले स्वभावोंके साथ सुन्दर बनावे सो चारों प्रकरण विस्तारपूर्वक भिन्नभिन्न वर्णन होवेंगे और इन चारोंप्रकरणहीके वखानमें यह पुस्तक पूर्ण होगी अब आगे समस्त शेष ग्रंथ विषे इन चार प्रकरणही का वखान है॥

प्रथम प्रकरण

पहिलासर्ग॥

भगवत्की प्रतीतिकोवर्णनहै॥

ताते जानतू कि सर्व जीवोंको इतनाहीहिअधिकारहै कि जिसमें सबकोई कहताहै कि भगवत् एकहै सो इसके अर्थकोभी चित्तविषे समझे और इसपर ऐसी प्रतीतिकरे कि जिसमें भ्रम और संशयका किंचित् प्रवेशभी न होनेपावे और जब इसप्रकार चित्तमें निश्चय करलिया और बालके बराबर भी संशय न रहा तो सद्धर्म के मूलको इतनाही प्रतीति रखना विशेष है पर विद्या पढ़ना और प्रश्नोत्तरका व्यवहार करना सब किसीका अधिकार नहींहै इसीकारणसे संतों और महापुरुषने हृदयकी सचाई और प्रतीतिकी दृढ़ताका उपदेश कियाहै कि संसारीजीवोंका इतनाही अधिकारहै बहुरि ऐसे पंडितभी बहुतहोते हैं कि वचनों के भेदको समझते हैं और युक्ति करके इतरजीवोंको समझाय सक्ते हैं और

प्रश्नोत्तर करके लोगोंके संशयको भी दूर करते हैं सो तिनको पंडित कहा जाताहै और ऐसे जो विद्यावानहैं सो संसारीजीवों की प्रतीति की रक्षा करनेवाले हैं बहुरि पहिचाननेका जो भेदहै और पहिचानका जो वास्तवस्वरूपहै सो यह केवल पण्डित वक्ताहोने से और संसारीजीवोंके बल प्रतीतिवालोंकी अवस्थासे भिन्नहै पर उसके आगे को पुरुषार्थ के द्वारा प्राप्त होसक्ताहै और जबलग यह मनुष्य परमार्थके मार्गविषे दृढ़ पुरुषार्थ और यत्न न करे तबलग वह पहिचान की पूर्ण अवस्था को नहीं पहुंचसक्ता और इसका अभिमानी होनाभी उसको अयोग्यहै और ऐसे पुरुषको विद्या और शास्त्रोंके व्यवहारोंका पढ़ना फलदायक नहींहोता और उसको अधिक अवगुणही होताहै जैसे कोई रोगीपुरुषहोवे जो ओषधि खावै कुपथ्यका त्याग न करे तब वह रोगी अधिक तो मृत्युको पावताहै अथवा उसका रोगबढ़ जाता है काहेसे कि पथ्य बिना ओषधिभी रोग को बढ़ावता है ताते मैंने पहिचानते के चारों अध्याय प्रथमही वर्णन किये हैं और इस वचन के यथार्थ भेदको वहपुरुष प्राप्तहोता है जिसका चित्त मायाके किसी पदार्थविषे आसक्त नहींहोता और अपनी सर्व आयुष भगवत्की प्रीति विषे वितावता है सो ऐसे परमपदका पावना महादुर्लभहै और कठिन यत्न करके प्राप्त होताहै ताते मैं सर्व जीवों के अधिकार का उपदेश वर्णन करताहूं सो सब जीव इस प्रतीति को अपने हृदय विषे दृढ़करें तब यह प्रतीतिही उनके उत्तम भागों का बीजहोवे ॥ अथ प्रकट करता भगवत्की प्रतीति का ॥ ताते जान तू कि तू उत्पन्न कियाहुआ है और तेरा उत्पन्नकरतेवाला भगवतहै और सर्व विश्व का उत्पन्नकर्ता भी वही है बहुरि वह एक है और उनकीनाई और समर्थ कोई नहीं और वह किसी जैसाभी नहीं बहुरि वह अनादिहै और अविनाशी है कि उसका अन्त कदाचित् नहीं आवता और सर्व कालविषे सत्यस्वरूप है और कदाचित् असत्य भावको प्राप्त नहींहोता बहुरि अपने आपकरके स्थितहै और सर्व पदार्थों की स्थिति उसके आश्रितहै अर्थ यह कि उसको किसी पदार्थकी आधीनता नहीं और सर्व पदार्थ उसही के आधीन हैं बहुरि उसका स्वरूप सबसे निर्लेपहै ताते उसको कारण और कार्य नहीं कहा जाताहै और शरीरसे रहितहै और उसके स्वरूपकेसमान कोई आकार और दृष्टान्त नहीं सम्भवता कि वह रूप और रंगसे विलक्षणहै इसीकारणसे जो कुछ इसमनुष्यके संकल्पविषे आवताहै सो भगवत

उमसे परेहै काहेमे कि संकल्प और बुद्धिविषे आवनेवाले पदार्थ सबही उसके उत्पन्नकिये हुयेहैं और उत्पन्न हुई वस्तुमे उसकी स्वरूप भिन्नहै ताते संकल्प और बुद्धिविषे जिसको स्वरूप और चिह्न दृढ़होता है सो वह भगवत् उनसबों का उत्पन्न करनेवाला है बहुरि मर्य्याद और बढ़ना घटना उसविषे नहीं पायाजाता काहेमे कि यह सबही शरीरके स्वभावहै और वह शरीरमे रहितहै इसीकारण से उसमहाराजको किसी स्थानविषे नहीं कहाजाता और किसी स्थानके ऊपरभी नहीं कहसक्ते और उसका स्वरूप स्थान की कुछ अपेक्षाही नहीं रखता और स्थानका ग्रहण करनेवालाही नहीं इसकरके कि देहादिकोंकेसाथ उसकासम्बन्ध कुछ नहीं ताते यह सर्व सृष्टि ईश्वरोंके आश्रितहै और ईश्वर सब उस महाराज के आधीनहैं और महाराज को जो वैकुण्ठके ऊपर कहाहै सो ऐसानहीं कि जैसा कोई स्थान किसी स्थानपर होवे काहेसे कि वह स्थूल नहीं ताते वैकुण्ठ उसको उठायेहुये नहीं है पर वैकुण्ठ व वैकुण्ठवासी सब देवते पार्षद उसकीशक्तिके आश्रित हैं बहुरि वह भगवत् जिसप्रकार सृष्टिकी उत्पत्तिके आगेथा तैसेही अबहै और अंतमेंभी एकरस बनारहेगा काहेमे कि उसके स्वरूपविषे तो परिणामकरके घटना बढ़ना कुछ प्रवेश नहीं करसक्ता और जो घट जावे तब भगवत् कहना उसको अयोग्यहै व जो वृद्धताको प्राप्तहोवे तब ऐसे कहिये कि मानो आगे न्यूनथा अब पूर्णहुआहै सो यहबातभी अयोग्य है बहुरि उस महाराज का स्वरूप सब सृष्टिसे निर्लेपहै पर तौभी इसलोकमें बुद्धिकरके पहिचानने योग्यहै और परलोक विषे देहादिक अभिमान दूर हुये दर्शन उसका होताहै पर जिसप्रकार बुद्धिकरके रूप रंगसेरहित उस महाराजको समझा जाता है तैसेही उसलोकविषे उसका दर्शन भी रूपरंगसे विलक्षणहै इसकरके कि उसका दर्शन स्थूल दर्शनकीनाईंनहीं ॥ अथ शक्ति सामर्थ्य ॥ बहुरि वह ऐसा सम्पूर्ण समर्थ है कि उसविषे दीनता और पराधीनता प्रवेश नहीं करसक्ती ताते जो कुछ उसने चाहाहै सो कियाहै और जो कुछ चाहेगा सो करेगा बहुरि चौदहलोक और वैकुण्ठादिक पुरियां उसीकी सामर्थ्यविषे स्थितहैं उसीकी आज्ञाके आधीनहैं ताते और किसीके हाथ कुछ नहीं जो कुछ आपकरके समर्थहोवे कोई भी इसीकारणते और कोई भगवत्के समान और उसकी नाईं और उसका विरोधी नहीं ॥ अथ ज्ञान ॥ बहुरि वह भगवत् अपने ज्ञानकरके सर्व पदार्थों का ज्ञाताहै और जो कुछ जानने योग्यहै तिसको

आगेही जानताहै बहुरि उसीके ज्ञानको अंग सर्वपदार्थों विषे भरपूर है ताते आकाश और पातालविषे कोईपदार्थ उसके ज्ञानसे बाहर नहीं इसकरके कि सर्वही उसके उत्पन्न कियेहुये हैं और उसहीकर स्थित हैं इसी कारण से पृथ्वी के अणु और वृक्षोंकी पाती और जीवों के श्वास और हृदयों के सङ्कल्प इत्यादिक और सर्वही पदार्थ भगवत् के ज्ञानविषे हस्तामलकवत् प्रसिद्धहैं जैसे हमारी दृष्टिविषे आकाश और धरती प्रसिद्ध भासती है॥ अथ इच्छा॥ बहुरि सब कुछ उसकी इच्छा और आज्ञाके अधीनहै जैसे सूक्ष्म स्थूल लघु दीर्घ विधि निषेध पुण्य पाप सम्मुखता विमुखता लाभ और हानि सुख और दुःख रोग और आरोग्यता धन और निर्धनता सो यहसर्वहीपदार्थ महाराजकी आज्ञा और इच्छाबिना कदाचित् वर्त्तमान नहींहोते ताते जब सर्वसृष्टि अर्थात् भूत प्रेत मनुष्य देवता आदिक सब ही जीव एकत्र होकर भगवत् की रचनाको कुछ विपर्यय कियाचाहैं तब वह महाराजकी आज्ञा बिना कोई कुछ कर नहीं सक्ते और असमर्थ हैं ताते जो कुछ भगवत् किया चाहता है सोई होताहै और जो कुछ नहीं चाहता वह नहीं होता और उसकी आज्ञा ऐसी प्रबल है कि उसको कोई अन्यथा नहीं करसक्ता इसी कारण से भूत भविष्यत वर्त्तमान विषे जितने पदार्थ स्थित हैं सो सर्वही सर्वगात्र भगवत्की सत्ता और क्रियाकेसाथ रचेहुये हैं॥ अथ श्रवण और दृष्टि॥ बहुरि वह सबकुछ सुनता और देखता और जानताहै पर उसके सुनने विषे निकटता और दूरता नहीं तैसेही उसकी दृष्टि विषे तम और प्रकाश समान हैं अर्थ यह कि तमकरके उसकी दृष्टि विषे आवरण नहीं होता ताते जब अँधेरी रात्रि अथवा दिन विषे पृथ्वीमें चींटीचले तब वह महाराज उसके चलने के शब्द को भी सुनता है पर उसका सुनना और देखना भी नेत्रन और श्रवण करके नहीं होता बहुरि उसका उत्पन्न करना आरम्भ और सामग्री कर नहीं होता॥ अथ भगवद्वचन॥ बहुरि उसकी आज्ञा माननी सर्वजीवों को प्रमाण है जाते कि जो कुछ उसने वचन कियाहै सो निस्सन्देह सत्य है पर उसका वचन रसना और अधर और दांतों और कण्ठकरके नहीं होता जैसे जीवके मनविषे किसी वचन वार्त्ता का जो सङ्कल्प फुरता है तब उस फुरना के वचन विषे शब्द और अक्षर नहीं होता और वह शब्द असमर्थहोताहै तैसेही उस महाराजका वचन इससे भी सूक्ष्म अधिकहै ताते सन्तजनों के हृदयविषे जो आकाशवाणी हुई है सो सर्वही

भगवत् के वचन हैं और परावाणी से उत्पन्न हुये हैं बहुरि वही वचन सन्तजनों के मुखसे जगत्विषे प्रकटे हैं और वह वचन महाराज के निर्मल स्वभाव हैं और उसके स्वभाव सबही अनादि हैं और अविनाशी हैं जैसे भगवत्के स्वरूप की जानता का प्रतिबिम्ब जीवों की बुद्धिविषे भासता है और सर्वजीवों की रसनाविषे उसकी स्तुति होती है पर जाननेवाली जो बुद्धि है सो उत्पन्न कीहुई है और भगवत्का स्वरूप उत्पन्न कियाहुआ नहीं बहुरि जीव जो उसका रसनासे स्मरण करते हैं सो यह स्मरण उत्पन्न कियाहुआ है और जिसको स्मरण करता है सो वह महाराज अनादि और अविनाशी है तैसेही उस महाराज के वचन जो उस ही के स्वत स्वभावहैं सो यह भी अनादि हैं पर जीवों के हृदयविषे गुप्त करके हैं और रसनाविषे उन वचनोंका उच्चारण होताहै और कागज़ की पोथियोंविषे लिखेजाते हैं सो वह हृदय की गुप्तता उत्पन्न कीहुई है और लिखना पोथी का और उच्चारणकरना रसनासे सो यह सब उत्पन्न कियेहुये हैं पर हृदयमें जो गुप्त उन वचनों का स्वरूपहै और पोथी में जो वस्तु लिखितहै और रसनासे उच्चारणहुये उन वचनों का जो अर्थ है सो उत्पत्ति से रहित है ऐसेही वेदों के अक्षर और कागज़ और शब्द उत्पन्न कियेहुये हैं और उनविषे जो भेदहै सो उत्पत्ति से रहितहै वह भगवत्के स्वभावसे है ॥ अथ कारीगरी के वर्णन में ॥ बहुरि जो कुछ यह रचना मन और इन्द्रियों करके भासती है सो सब भगवत् की कारीगरी है और इस कारीगरी को उसने सर्व अंगों करके पूर्ण ऐसा बनाया है कि उस विषे कुछ ऊनता नहीं और जब किसी के चित्त विषे ऐसा सकल्प फुरे कि अमुक पदार्थ ऐसे नहीं बनावना योग्य था ऐसा सकल्प उस मनुष्यकी मूर्खताहै इस करके कि जिस भेद के निमित्त भगवत् ने उसको बनाया है सो यह मनुष्य उस के भेद और गुण को नहीं समझता सो इसका दृष्टान्त यह है कि जैसे कोई अन्धा पुरुष किसी के गृह विषे जावे और उस गृह विषे सब सामग्री अपनी अपनी ठौरपर रक्खी हुई होवें पर वह अन्धा पुरुष यों न जाने कि यह वस्तु अपने उचित स्थानविषे धरी है ताते अजानताकरके ठोकर खाकर गिरपड़े तब कहनेलगे कि यह वस्तु तुमने मार्ग विषे काहे को रखदी है पर ऐसे नहीं समझता कि मैं आपही मार्ग से भूलाहूं तैसेही भगवत् ने जो कुछ बनाया है सो यथार्थ विधि संयुक्त उत्पन्न किया है और जिसप्रकार चाहिये था तैसाही रचा है

काहे से कि जब इससे कुछ विशेषकरना होसकाहै और महाराजने नहीं किया तब ऐसे जानाजावेगा कि भगवत् ने वह विशेषता अपनी कृपणता अथवा असमर्थता करके उत्पन्न नहीं करी सो भगवतविषे ऐसा अनुमान करना महाअयोग्य है ताते प्रसिद्ध हुआ कि दुःख रोग निर्द्धनता मूर्खता पराधीनता आदिक जो कुछ भगवत् ने रचाहै सो यथार्थ भेदही के निमित्त बनायाहै काहे से कि उस महाराज से अन्याय कदाचित् नहीं होता इसकरके कि अधिकार बिना दंड देने का नाम अन्यायहै सो वह महाराज किसी को अधिकार बिना दंड नहीं देता काहे से कि अन्याय तो वह करता है जो दूसरे की प्रजा और राज्य को प्रथम अपने अधीन करताहै सो महाराज में यहवार्ता सम्भवनीही नहीं अर्थात् महाराजके संग किसी दूसरेका ईश्वर होना असम्भव है इस करके कि जो कुछ सृष्टि आदि में थी और वर्त्तमानविषे है और भविष्यत्काल में होनेवाली है तिस सब का उत्पन्नकर्त्ता और सबका परमेश्वर एक महाराजही है और वह किसी के अधीन नहीं और अवरके समानभी नहीं न कोई उसके समानहै ॥ अथ परलोक निरूपण ॥ बहुरि दो प्रकारकी सृष्टि उसने रची है सो एक स्थूल है और दूसरी सूक्ष्म है और यह स्थूल सृष्टि जो देहादिक है सो जीवकी मंज़िल बनाई है कि इस मंज़िलविषे आयकर कार्य्यको सिद्धकरे बहुरि शरीर के आयुष्की मर्यादा रक्खीहै तिस उपरान्त शरीर का मृतक होना बनायाहै सो वह आयुर्बल मर्यादा से अधिक अथवा अल्प नहीं होती ताते कालआयकर शरीर और जीवकी भिन्नता होजाती है बहुरि परलोकविषे जीवको शरीर पहिरावते हैं और जैसी जैसी किसीकी करतूति होती है सो प्रकट दिखावते हैं तब यह मनुष्य अपनी भलाई और बुराईको पहिचानता है बहुरि परलोकका जो कठिन मार्ग है तिस के ऊपर चलावते हैं और वह एक पुल है सो वह सेतु बालसे विशेष सूक्ष्म और तरवार से अधिक तीक्ष्ण है सर जो पुरुष इस संसारविषे विचारकी मर्य्यादा विषे दृढ़ होता है सो उस मार्ग को सुगमही लांघ जाता है और जिसने विचारकी मर्य्यादा का त्याग कियाहै सो नरकों विषे गिरपड़ताहै ताते परलोक विषे उस सेतु पर खड़ा होकर सबों के सत्यकी परीक्षा लेवेंगे और विमुखों को लज्जायमान करेंगे बहुरि केते महापुरुष कष्ट बिनाही परमसुखको प्राप्तहोवेंगे और कितनों को अल्प दंड देवेगा केते अधिक दण्ड और ताड़नाको पावेंगे पर जिन पुरुषोंके आचार

और सन्तों की सहायता होगी वे दुःखों से मुक्त होवेंगे और तामसी जीव त्रिकाल पर्यन्त नरकों विषे दुःखों को भोगेंगे तात्पर्य यह कि पाप और पुण्य की मर्यादा के अनुसार सब किसी को दण्ड और सुख प्राप्त होवेगा ॥ अब आचार्य और संत स्वरूप वर्णन ॥ सो भगवत ने यह संकेत रचा है कि कर्मों अनुसार सब जीव फलको पावें और इस संकेत विषे केते भाग्यहीन और केते भाग्यवान बताये हैं पर यह मनुष्य अपनी भाग्यहीनता और उत्तम मार्गों को पहिचान नहीं सक्ता इसकारण से आचार्यों और संतजनों को भेजा है और अपनी दया करके उनको इसप्रकार आज्ञा की है कि जीवों को शुभ और अशुभ मार्ग को लखावें और भाग्यवान पुरुषों को शुभमार्ग विषे लगावें बहुरि शुभ और अशुभमार्ग के प्रकट करने का हेतु यह है कि महाराज के ऊपर किसी का निहोरा न रहे और ऐसे न कहें कि हम शुभमार्ग को न जानते थे ताते सन्तजनों ने अपनी दया करके जिसप्रकार भलाई और बुराई का मार्ग प्रसिद्ध किया है सो उस विषे संशय कुछ नहीं और इस प्रकार की प्रतीति सर्व मनुष्यों को रखना अवश्यही प्रमाण है ॥

दूसरा सर्ग ॥

पवित्रता के वर्णन में ॥

ताते जान तू कि भगवत ने इसप्रकार अपने वचनों विषे कहा है कि जैसे पैगंबरों मुझको अतिप्रिय हैं तैसेही पवित्र मनुष्य मुझको प्रियतम लगते हैं पर तू अपने मन विषे ऐसे न जानना कि यह विशेष शरीर और वस्त्रों की पवित्रता की कही है जैसे कि यह पवित्र जल करके होती है सो यही इस्तु न है ताते पवित्रता का अर्थ तुझको इसप्रकार समझना चाहिये है कि पवित्रता भी ४ प्रकार की है सो प्रथम जीवात्मा की पवित्रता है और इस पवित्रता का अर्थ यह है कि अनात्मा से भिन्न और जुदाही होना और सर्व पदार्थों को विस्मरण करना और भगवत के स्वरूप विषे अपने चित्त की वृत्ति को लीन करना सो यह महापुरुषों की अवस्था है पर जबलग यह जीव अंतःकरण में शुद्ध नहीं होता तबलग भगवत के भजन विषे स्थित नहीं हो सक्ता ॥ बहुरि दूसरी हृदय की पवित्रता है सो इस पवित्रता का अर्थ यह है कि मलिन स्वभावों से शुद्ध होना जैसे ईर्षा अभिमान पाखंड तृष्णा लोभादि इत्यादिक सबही बुरे स्वभावों का त्याग करे और सर्व

स्वभावोंकी,सुन्दरताकेसाथ अपने हृदयको सुंदरबनावे,जैसे,नम्रता संयम त्याग धैर्य,मरणवकागत मरणकी आशा,भगवत्की प्रीति इत्यादिक जो उत्तम स्वभाव हैं,सो,यह जिज्ञासु जनों की पवित्रता है,बहुरि,तीसरी पवित्रता यहहै कि सब इन्द्रियों को पापों से शुद्धकरना जैसे निन्दा झूठ अशुद्ध जीविका चोरी परनारि पर दृष्टिकरना सो ऐसे अपकर्मों का त्यागकरना और सर्व इन्द्रियों को संयम और सन्तजनोंकी आज्ञा विषे रखना सो यह साधिकी मनुष्यों की पवित्रता है ३ बहुरि चौथी पवित्रता यहहै कि अपनेवस्त्रों और शरीरको मलिनता से शुद्धकरनी और अपवित्रहोकर अपने इष्टकी पूजा और जाप विषे सावधान न होना ४,तातें प्रसिद्ध हुआ कि पवित्रता की चार अवस्थाहैं पर सर्व किसी ने जो अपना मुख शरीर और वस्त्रोंको पवित्रताकी ओर किया है और सर्वदा इसी ही शुचिताके यत्न विषे लगते हैं सो यह पवित्रता महानीच है इसकरके कि प्रथम तो सुगम है और दूसरे इस विषे मनको भी प्रसन्नता होती है इसीकारण से सर्व कोई इसीको पवित्रता जानते हैं बहुरि हृदयकी पवित्रता जो मलिन स्वभावों से थहोथी और पापकर्मों के त्याग विषे जो इन्द्रियोंकी पवित्रता है सो इस पवित्रताविषे,मनको कुछ स्थूलसुख नहीं प्राप्त होता और इस सूक्ष्म पवित्रताको और लोग देखतेभी नहीं काहे से कि यह हृदयकी पवित्रताको भगवतही देखता है और इतरजीव नहीं जानसके इसीकारण से इस पवित्रताकी ओर मनुष्यों की प्रीति कुछ नहीं होती और इस को महाकठिन जानते हैं पर यह जो स्थूल शरीरकी पवित्रता है सो यद्यपि यह महानीच है तो भी जो इस पवित्रताको युक्ति के साथ करिये तब यह भी भली होती है और जब इसही संशय के समुद्र विषे बहजावे तब उलटापापी और अभिमानी होजाता है जैसे इन आचारी वैष्णवों का स्वभाव होजाताहै कि सर्वदा आसनों और वस्त्रों को धोते रहते हैं और पवित्रजल को जुदा करते हैं और आसनों को भिन्न रखते हैं जिसमें किसीका हाथ न लगनेपावे सो यद्यपि इस पवित्रताके विषे भी और दोष कुछ नहीं पर यह भी तबहीं भली होती है जब यह शुचिता पट्युक्तिके साथ होवे सो प्रथम युक्ति यह है कि जैसे शुभ कर्तृति करने योग्य और यही हैं तिनसे दूरि न रहे जैसे विद्याका पढ़ना और सतजनोंके वचनोंको विचारना,अथवा,अपने शरीर और सम्बन्धियों के निमित्त शुद्ध जीविकाका उद्यम करना कि किसी से कुछ मांगने की इच्छा

न रहे और किसी की आशा न होवे ताते यह सबही करतूति लाभदायक है इसीकारण से चाहिये कि ऐसे कार्योंको त्यागकर पवित्रता की अधिकता विषे अपना समय न वितावे काहे से कि विद्या और विचार और शुभजीविका का उद्यम करना पवित्रतासे अधिक उत्तमहै ताते प्रीतिमान् और जिज्ञासु जो आगे हुये हैं सो शरीरकी पवित्रता विषे आसक्त और लीन नहीं हुये हैं और शुद्ध जीविका और विद्या और विचार और भजन आदिक शुभ करतूतों विषे सावधान रहते थे और हृदय की शुद्धता के निमित्त अधिक पुरुषार्थ करते थे पर जिस पुरुष की ऐसी अवस्था होवे तिसके ऊपर वैष्णव को दोषदृष्टि रखना प्रमाण नहीं और जो कोई आलस और भोगों के निमित्त पवित्रताका त्यागकरे तिस को वैष्णवों के ऊपर दोष रखना अयोग्यहै ॥ बहुरि दूसरी युक्ति यहहै कि कपट और अभिमान से अपने चित्तको बचाय रक्खे इस करके कि जिस पुरुष की वृत्ति स्थूलपवित्रता विषे अधिकहै वह स्वाभाविकही अपनी शुचिता और बड़ाई को सदा दिखाताहै इसी कारण से अभिमानी होजाताहै बहुरि जब अकस्मात् उसका चरण पृथ्वीपर पड़जाताहै अथवा किसी और के बासनसे जल लेताहै तब लोगोंकी निन्दासे भयवान् होताहै ताते ऐसे पुरुष को चाहिये कि लोगों के देखतेहुये नंगेपावँ चले अथवा किसी और के बासनोंका पानीभी पी लिया करे इसप्रकार अपनी परीक्षाके निमित्त वर्ते तो भला है तात्पर्य यहकि अपनी बड़ाईको प्रकट न करे और जब उसका मन ऐसी करतूतिविषे चलेमात्र लि होसके तब जाने कि मुझको कपट और दम्भने घेरलियाहै तब उसको अवश्यही उचितहै कि उस पवित्रताका त्यागकरे और लोगोंकी नाईं सहज वर्ते काहे से कि स्थूल पवित्रताभी जगत्की कीर्त्तिहै और दम्भकरके इसकी बुद्धिका नाश होजाताहै ताते दम्भ और कपटको दूर करने के निमित्त स्थूल पवित्रताका त्याग करनाही विशेषहै ॥ बहुरि तीसरीयुक्ति यहहै कि सर्वदा अधिक संशयविषे आसक्तभी न होजावे ताते चाहिये कि जिस प्रकारका संयोग आय बने तिसीभांति वर्तलेवे काहेसे कि अपनी वृत्तिको संशय विषे दृढ़करना अयोग्यहै और आगे जेते सन्तजन हुये हैं तिन्होंने भी संशय और ग्लानि विषे आप को तत्पर नहीं किया और लोगोंकी नाईं समान आचार विषे विचरे हैं ताते जो महापुरुषोंके आचारका त्यागकरे और उनको भ्रष्टजाने तब जानियेगा कि वह पुरुष

पवित्रता अपने मनकी प्रसन्नताके निमित्त करताहै ताते निस्सन्देह ऐसी पवित्रताका त्याग करना प्रमाणहै ३ बहुरि चौथी युक्ति यहहै कि जिस पवित्रताविषे किसी मनुष्यको दुःख पहुँचे तब उस कर्मको अवश्यमेव त्यागदेवे इस करके कि जीवोंका दुखावना महापापहै और स्थूलपवित्रताके त्यागने में कुछ पाप नहीं होता जैसे कोई मित्र इसको मिलनेलगे और यहपुरुष उसके शरीर और अंगों के पसीने करके सकुचायरहे तब यहभी अयोग्यहै काहेसे कि उस मित्र को मैत्रीयुक्त मिलना और उस का आदरकरना सहस्र पवित्रतासे विशेषहै ऐसेही जब कोई पुरुष इसके आसन के ऊपर चरणराखे अथवा इस के बासनसे जललेवे तब चाहिये कि उसको बरजे नहीं और ग्लानिभी न लावे पर बहुत पुरुष तो शरीर की पवित्रता करनेवाले ऐसे सूक्ष्म भेदको नहीं समझते ताते जब कोई मनुष्य अज्ञातकही उन के आसन अथवा बासनको छूवे तब उस का निरादर करते हैं और कठोर वचन कहकर उसका हृदय दुखावते हैं सो ऐसी क्रिया और पवित्रता सबही अयोग्यहै काहे से कि ऐसी क्रियासे अभिमान प्रकटहोताहै और अभिमान करके ऐसे उन्मत्तहोजाते हैं कि मानों इन्होंने लोगोंपर बड़ाउपकार किया है और जब किसीका निरादर करते हैं अथवा किसीसे सकुचरहते हैं तब इसको भला कर्म जानते हैं और अपनी पवित्रताको प्रकट दिखावते हैं और बड़ाईकरते हैं और औरोंको अपवित्रजान कर ग्लानि करते हैं सो मानों महामूढ़हैं और उनका हृदय क्रोध और अभिमान करके महा अपवित्र है सो ऐसे कर्मोंकरके उनके हृदयकी अपवित्रता प्रकट होती है और इस अपवित्रतासे अपने हृदयको शुद्ध करना अवश्यही प्रमाणहै काहेसे कि अपलक्षणकी अपवित्रताकरके बुद्धि काही नाश होजाता है ४ बहुरि पांचवीं युक्ति यहहै कि जैसे शरीर को शुद्ध रखता है तैसेही आहार और व्यवहारको भी शुद्धकरे और वचनभी शुद्ध बोले इसकरके कि वचन और आहारकी शुद्धता वस्त्रों और बासनोंकी शुद्धता से अधिक विशेषहै और जो पुरुष आहारादिककी पवित्रताका तो त्यागकरे और शरीरहीकी पवित्रता विषे डूबजावे तब जानिये कि वहपुरुष शरीरकी पवित्रताभी दंभ और कपटके निमित्त करताहै जैसे कोई पुरुष मंत्रबिना अधिक आदरकरे और हाथ पाव धोयेबिना स्थित भोजनविषे होवे नहीं सो वह इतनाभी नहीं समझता कि जब वह आहार अपवित्र है तो विशेष मंत्र बिना क्यों मानाहै और जो पवित्र

सामर्थ्य भी नहीं ताते धनका संग्रह रखते हैं पर तो भी अर्थी जीवोंको उदारता सहित देते हैं जैसे अपने सम्बन्धियों को प्रतिपालन करते हैं तैसेही अभ्यागतोंको भी प्रीति संयुक्त देते हैं बहुरि तीसरे पुरुष ऐसे हैं कि उनमें ऐसी उदारता की सामर्थ्य नहीं ताते भगवंतके निमित्त दशांश देते हैं पर भगवंत की आज्ञा जानकर दशांशके देने विषे प्रसन्न होते हैं और जिसको देते हैं तिन के ऊपर अपना उपकार नहीं जानते काहेसे कि उस दान देने विषे अपनीही भलाई समझते सो यह भी निष्ठ अवस्था है पर जिस मनुष्यको दशांश देना भी कठिन होवे भगवंत के निमित्त तिस जानिये कि उसको भगवंत की प्रीतिही कुछ नहीं इस करके कि यद्यपि प्रसन्नता सहित दशांश भी देवे और उससे अधिक देने विषे समर्थ होवे तौ भी प्रीतिमानों की सभा विषे उसको कृपण कहा जाताहै १ बहुरि दान देनेका दूसरा तात्पर्य यह है कि दान करके कृपणतारूपी मलिनता दूर होतीहै और जीवका हृदय शुद्ध होताहै काहे से कि भगवंतके निकट पहुंचने विषे कृपणताही बड़ा पटलहै अथवा बाह्यमलिनता जैसे शरीरको अपवित्र करता है तैसेही कृपणतारूपी अपवित्रता से हृदय मलिन और अपवित्र होजाताहै और जैसे बाह्यमलिनता से भजन पूजाकी योग्यता नहीं रहती तैसेही कृपणता से हृदय में भगवंत की निकटता की योग्यता नहीं रहती बहुरि जिस प्रकार जलके धोये बिना शरीर मलिनतासे पवित्र नहीं होता तैसेही कृपणतारूपी अपवित्रतासे दान दिये बिना हृदय शुद्ध नहीं होता पर सन्त महात्मा जो कि दशांश आदिक दान अंगीकार अयोग्य है काहे से कि दशांश धनकी रक्षाके निमित्त होताहै ताते महामलिनहै २ बहुरि तीसरा तात्पर्य यह है कि दान देने करके भगवंतके उपकार का शुक्र होताहै इस करके कि यह धनभी दोनों लोकों सुख का हेतुहै ताते जैसे व्रत और भजन करना शरीरके सुखका शुकहै तैसेही दान देना धनका शुक्रहै इसी कारण से भीतिमान पुरुष जब आपको सुखी देखताहै और किसी मनुष्यको निर्द्धनता करके दुःखी देखता है तब इसप्रकार चित्त विषे विचार करताहै कि यह भी महाराज का जीव है और मैं भी उसी महाराज का जीवहूं ताते सर्वप्रकार महाराज का शुकहै कि मुझको तो धनादिक करके प्रसन्न कियाहै और इसको दीन और अर्थी बनायाहै तातें सर्वप्रकार ऐसे (मेरे) इसके साथ विशेषहै काहेसे कि मत यह भी मेरी परीक्षा होवे और मैं इस परीक्षा

से अचेत होजाऊँ तब महाराज उसको मेरीनाईं सुखेन करे और मुझको उसके आधीन करदेवे तब मेरा क्या बस चले ताते सब किसी को उचित है कि दानके अवसर को समझे तब उसका दान देना व्यर्थ न होवे २ बहुरि जब किसी को दान देवे तब इसलिये इतनी युक्तियां हैं प्रथम यह कि दशांश देने में विलम्ब न करे तब इस करके तीन लाभ होते हैं प्रथम यह कि उदारता की रुचि प्रकट होती है और जब सम्पूर्ण वर्ष पर्यन्त व्यतीत होजावे तब उसको दशांश देना अवश्यमेव प्रमाण है और जब न देवे तब पापी होताहै सो पापके भय करके दान देने विषे प्रीतिका लक्षण कुछ नहीं भासता और जो टहलुवा प्रीति करके स्वामीकी टहल न करे और भय करके कुछ सेवा करे तब वह टहलुवा बुरा कहावता है १ बहुरि दूसरा लाभ यह है कि शीघ्र दशांश देने में अर्थियों के चित्त विषे प्रसन्नता प्राप्त होती है और दानीको अशीष देते हैं तब अचानक ही इसके चित्तको भी प्रसन्नता पहुँचती है २ बहुरि तीसरा लाभ यह कि विघ्नोंमें वेशोच होजावेगा और जब दशांश देने में ढील करता है तब आधि व्याधि आदिक विघ्न आन व्यापते हैं और जब शीघ्र देताहै तब सर्वदा भौसे निर्भय होताहै अथवा जब कोई अचानक ही सङ्कट आन उपजे और यह पुरुष सङ्कट विषे दान देनेको समर्थही न होसके तो भी पुण्यकर्म से अप्राप्त रहजाता है ताते सर्वप्रकार शीघ्रही दान देना भला है काहेसे कि जब इस मनुष्यके हृदय विषे दान देनेकी रुचि उपजे तब उसको भगवत् की दया जाने और अपने चित्तविषे इसप्रकार भयवान् होवे कि मत इस धर्मकी रुचिको बुरा सङ्कल्प मिटायदेवे ताते इस धर्म की रुचि को शीघ्रही पूर्ण किया चाहिये १ बहुरि दूसरी युक्ति यहहै कि दानको गुप्तही देवे और प्रसिद्ध न करे तब दम्भ और कपटसे दूरहोवे और इसका दानदेना निष्काम है और सन्तजनों के वचनों विषे भी आयाहै कि गुप्तदान करके भगवत की दया को पावता है और जब परलोक विषे अधिक तपन होवेगी तब गुप्तदान करनेवाले पुरुष भगवत की छाया तले रहेंगे और जब कोई दान देकर आपही वर्णन करने लगता है तब वह दान ही व्यर्थ होजाता है इसी कारण से जिज्ञासु सन्तों ने गुप्तदान देने निमित्त बहुत यत्न किये हैं ताते जब किसी नेत्रहीन का देते थे तब मुखसे बोलते ही न थे जिसमें वह पहिचानेही नहीं अथवा जब निद्रावंत पुरुष को निद्रा विषे सोयाहुआ देखते थे तब जो कुछ देना होताथा उसके

वस्त्र में बांधे जाते थे अथवा जब किसी अर्थी को आवता देखते थे तब दानकी वस्तु को मार्ग विषे डालदेते थे अथवा किसी और के हाथ से देते थे सो इसका तात्पर्य्य यह है कि ऐसा गुप्तदान दीजिये जो देनेवालेको अर्थीभी न पहिचाने और गुप्तदान देनेका प्रयोजन यहहै कि प्रकट देने विषे दम्भ होताहै सो कृपणता और दम्भ दोनोंको इक्ट्ठाही तोड़तेथे काहे से कि यह दोनों स्वभाव दुःखदायकहैं परं कृपणता बिच्छूकी नाईं है और दम्भ महाअजगर है ताते दोनों को दूर करना विशेष है कि मलिनस्वभावों का दुःख परलोक विषे प्रकट होवेगा। बहुरि तीसरी युक्ति यह है कि जिस पुरुषने दम्भ को अपने चित्तसे दूर कियाहै तब उसको प्रत्यक्ष देनाही भलाहै काहे से कि उसकी उदारता को देखकर और जीवों को भी रुचि उपजती है परं यह अवस्था उस पुरुष की होती है जिसको निन्दा और स्तुति समान होवे और भगवत को अन्तर्य्यामी जाने ताते लोगों की ओर दृष्टि न करे ४ बहुरि चौथी युक्ति यहहै कि जब यह पुरुष दानदेने के समय अर्थी को कठोर वचन बोलताहै अथवा क्रूरदृष्टि देखे तब इस करके भी दान देना निष्फल होताहै और ऐसी मूर्खता दो कारण करके उपजती है सो प्रथम यहहै कि जिसको धनका देना कठिन होताहै तब वह दान देने के समय क्रोधवान् और अप्रसन्न होताहै ताते दुर्वचन कहने लगताहै सो यह भी बड़ी मूर्खताहै काहे से कि जिसको एक दाम देकर सहस्र दाम लेने की आशाहोवे और देती बार सकुच जावे तब भी मूर्खता कहावती है तैसेही दान देने करके नरकों मे इस जीवकी रक्षा होती है और बड़े सुखों को प्राप्त होताहै सो जिसकी प्रतीति इस वचन पर दृढ़होवे तब उसको दान देना क्योंकर कठिन होगा और दूसरा कारण यह है कि मूर्खता करके आपको अर्थी से विशेष मानताहै कि यह निर्द्धन और मैं धनवान्हूं और ऐसे नहीं जानता कि परलोक विषे निर्द्धन पुरुष सुखको प्राप्त होवेंगे और धनवान् दण्डको पावेंगे काहेसे कि इसलोक विषे निर्द्धन पुरुष दुःख को भोगते हैं और धनवान् सुखों को भोगते हैं बहुरि धनवान् अभिमानी होते हैं और निर्द्धनों का हृदय दीन होताहै ताते भगवत्को दीन मनुष्यही प्रियलगते हैं और जब विचार करके देखिये तब इस लोक विषे भी धनवान् बहुत दुःखी हैं कि नानाप्रकार के व्यवहारों की विक्षेपता विषे चिंतावान् रहते हैं और खानपान इतनाही करते हैं जितनी कुछ शरीर की म-

र्यादा होतीहै बहुरि धनवानों पर यहभी दण्ड रक्खाहै कि अर्थी जीवोंको यथा- शक्ति दानदेवें और जो न देवें तो पापी होवेंगे ताते प्रसिद्धहुआ कि धनवानों को इसलोक विषे भगवत्ने निर्द्धनोंका टहलुआ बनायाहै और परलोक विषे तो धनवानों से निर्द्धन पुरुष निस्सन्देह अधिक सुखी होवेंगे ताते चाहिये कि दान देने विषे संकुच और कठोरता नकरे और आपको अर्थियों से विशेष भी न जाने ४ बहुरि पांचवीं युक्ति यहहै कि जिसको कुछ दान देवे तब उसकेऊपर अपना उपकार न राखे काहेसे कि इसके ऊपर तबहीं उपकार रखताहै जब ऐसे जानताहै कि मैंने उसको बड़ा पदार्थ दियाहै और यह मेरे अधीनहै सो ऐसा जानना भी बड़ी मूर्खताहै इस करके कि जब इस पुरुष के चित्तविषे ऐसा अ- भिमान दृढ होताहै तब इसप्रकार चाहताहै कि यह अर्थी पुरुष मेरी टहल विषे सावधान होवे अथवा मेरा सन्मान करके प्रथमही नमस्कार करे बहुरि जब यह अर्थी पुरुष ऐसे नहीं करता तब दान देनेवाला चित्त विषे रोष करताहै और इसप्रकार कहने लगताहै कि मैंने इसके साथ ऐसा उपकार कियाथा पर इसने मेरा सन्मानही न किया सो यह सब मूर्खता के लक्षणहैं काहेसे कि जब भली प्रकार विचार करके देखिये तो जानाजाता है कि अर्थी पुरुष ने इसके ऊपर उ- पकार किया है कि दान को अंगीकार करके इसको नरकोंकी अग्नि से बचा- याहै और दान देनेवाले पुरुषके हृदयमे कृपणता के मैल को छुड़ाया है जैसे कोई नाऊ किसी पुरुषका विकारी रुधिर निकाले और लेवे कुछ नहीं तब वह पुरुष निस्सन्देह उस नाऊका उपकार मानता है काहेसे कि इसके दुःखदायक रुधिर को उसने दूर किया है तैसेही कृपणतारूपी मैल भी मनुष्य के हृदयको दुःख देनेवाला है सो जिस अर्थी के सम्बन्ध करके दूरहोवे तिसका उपकार जा- नना चाहिये बहुरि सन्तजनों के वचनों विषे भी आया है कि जब कोई पुरुष किसी को दान देता है तब वह दान प्रथम भगवत् के हाथमें जाय पहुँचताहै पीछे अर्थीको प्राप्त होताहै अर्थ यह कि उस दानका फल भगवत्ही देताहै सो जब ऐसेहै तब चाहिये कि अर्थी पर उपकार न राखे और अपने ऊपर उसका उपकार जाने और जब भली प्रकार दानके भेदका विचार करे तब जानिये कि अर्थी के ऊपर उपकार रखना मूर्खता है ताते जो आगे जिज्ञासुजन हुयेहैं सो तिन्होंने अर्थियों और अभ्यागतों का सन्मान कियाहै और अधीनता सहित

उसके [illegible] विरोधी हो कर कहने लगे थे कि तुम इस दान को [illegible] किसी से ऐसे भी [illegible] अपने हाथों [illegible] सो [illegible] उनके आगे किया है इस कारण से [illegible] आप ही [illegible] और हमारे हाथ [illegible] नके [illegible] इसी कारण से [illegible] भी [illegible] फिर वे [illegible] कि [illegible] उपकार [illegible] और [illegible] देखिये [illegible] उपकार करने [illegible] जिसने इस [illegible] दान को [illegible] अर्थ [illegible] पदार्थ [illegible] कि [illegible] पुरुषार्थ को भगवत [illegible] विशेष [illegible] कि [illegible] पदार्थ [illegible] और [illegible] भी कहा है कि [illegible] पदार्थ को तुम [illegible] विधि [illegible] तब उस [illegible] वस्तु को [illegible] जैसे कोई [illegible] किसी [illegible] आवें तब उस को [illegible] देखि [illegible] होती है [illegible] और [illegible] वस्तु [illegible] अपने [illegible] योग्य है [illegible] कि [illegible] नहीं [illegible] सहित [illegible] और [illegible] होते हैं इस [illegible] महापुरुष [illegible] सहित [illegible] दान [illegible] कि दान देना भी अधिकारी [illegible] सो [illegible] है कि जिस [illegible] उसने [illegible] दान देना [illegible] और [illegible] किसी [illegible] भजन [illegible] होते हैं [illegible] भजन [illegible] होता है [illegible] धन [illegible] सावधान [illegible] और [illegible] भजन [illegible] भागवत के भजन [illegible] लीन [illegible] किसी वस्तु को [illegible] होता [illegible]

पिछले पत्तों को भी होता है तो जैसे मैं पुत्रदार [illegible] के अपने निज को प्रकट
किस्नुसार है इससे भी मुझको इनकी सेवा अधिक प्रियतम लगती है क्योंकि जो
जो अकेला ही व्यवहार की विशेषता विना स्त्री और लड़के इनकी सेवा करता
है वजीर यह अनेक प्रकार की जिन लिये प्रकट होके ताके अपने हृदय की प्रकट
सिनाना एक हृदय की प्रसन्नता से मैं विशेष जानता हूं जो यह वचन एक संत ने
सुना तब कहने लगा कि यह वचन किसी गंभीर विद्वान् के और महापुरुष का
है नहीं कि अकस्मात् यह उदार पुरुष निर्धन होगया इस हेतु के जो सत्य पात्र और
विद्वानों को कुछ देते थे तब यह सबों को मालूम करता था और हस्त दे कर मोल
कुछ ले लेता था सो इस त्याग की निर्धनता एक महात्मा ने सुनी तब कहा कि उनके
मान कितना मोल जो कहला भेजा कि अब कहां जाके फिर भी इस
प्रकार प्रश्न करो कि इस दर्पण को लाना करने से भी कुछ अप्रमाण नहीं है
तीसरी यह है कि अधिकारी के हैं कि जिन को विद्या पढ़ने की इच्छा होवे तब उन को
भी दान देना विशेष है और दाता देनेवाला पुरुष भी उस विद्या का भागी हो
ता है तीसरे अधिकारी वे हैं कि जिन्होंने अपनी निर्धनता को गुप्त
किया है और मांगने से रहित हुये हों ऐसे पुरुषों को भी दान देना महाउत्तम है
चौथे अधिकारी वे हैं कि जिनका कुटुम्ब बड़ा होवे और धन से हीन होवे
अथवा रोगी होवें तिनको भी देना अति विशेष है इस कर के कि जितना
किसी को आर्त्त अधिक होता है तैसा ही उस को देने का फल भी अधिक होता है ५
पांचवें अधिकारी वे हैं कि कोई अपना सम्बन्धी निर्धन होवे तब उसको
देना भी श्रेष्ठ है क्योंकि उसको देने करके सम्बन्धी से भी सम्बन्ध होता है और
पुण्य को भी पाता है अथवा जो कोई अपना मित्र होवे तब उसको देने करके
अधिक फल को प्राप्त होता है परन्तु जो मैंने अधिक उत्तम पात्र लक्षण कहे हैं
सो जिस विषे यह पांचों लक्षण सभी पाये जावें अथवा कुछ अल्प होवें तब ऐसे
अधिकारी को दान देना विशेष है और उनकी आशीषों करके इसको भी लाभ
प्राप्त होता है ताते चाहिये कि दान देने के निमित्त बड़े यत्न और सुपात्रों को
ढूंढ़ि देवें और अधिकारी को देवें॥ अथ प्रसंग कहता हूं कि दानलेने की॥ ताते
जानना कि दान लेनेवाले को भी पांच युक्ति चाहिये हैं सो प्रथम युक्ति यह है कि
जिस वस्तु को पावे तिसको इस प्रकार विचार करे कि मैंने यह पाया है मनुष्यों को

धनके अधीन बनायाहै इसीकारण से बहुते मनुष्यों को मतमी दियाहै पर जो भी जिनके ऊपर भगवत् की दयाहै तिनको मायाके व्यवहार की विशेषता से बचाय लियाहै और धनके संग्रहका बोझा और उसकी रक्षाका क्लेश धनवानों के ऊपर डाली है बहुरि उनको आज्ञा करी है कि मेरे प्रियतम धनसे जो रहित हैं तिनकी सेवाकरो तब वह माया के व्यवहारों से भी मुक्तहोवें और सर्व्वदा मेरे ही भजन विषे स्थित होवें ताते चाहिये कि जब यह पुरुष किसी से कुछ दान लेवे तब हृदय विषे यही भरोसा रक्खे कि मैं शरीरके आहारमात्र कुछ अङ्गीकार करके भजन विषे सावधान होऊं और इस उपकार को भी जाने कि भगवत् ने धनवानों को मेरी टहलुआ बनायाहै सो इस निमित्तजो मुझको भजनमें विक्षेपता न होवे और इसका दृष्टान्त यहहै कि जिसके ऊपर किसी राजा की दया होती है तब उसको अपनी टहल के निमित्त अपने निकट रखता है और अवर सभी प्रजा राजा की सेवा के अधिकारी नहीं ताते उनको अपने निकटवर्तियों के अधीन करदेता है तब वह प्रजा उनके आगेही दण्ड भरती है ताते वह निकटवर्ती आरामके साथ सुखको भोगताहै और राजाकी सेवा विषे सावधान रहता है तैसेही भगवत् ने भी सर्व मनुष्यों को अपने भजनके निमित्त उत्पन्न किया है ताते चाहिये कि जब असमर्थ ही पुरुष किसी से कुछ लेवे तब इसी भरोसा साथ लेवे तो भलाहै इसीपर महापुरुष ने भी कहा है कि दान देनेवाले से लेनेवाला विशेष तो नहीं होता पर जब वह संयम संयुक्त लेकर भजन विषे स्थितहोवे तो भला है और धनवानों को उनकी सेवाकरनी प्रमाण है ताते प्रसिद्ध हुआ कि धनवान् और निर्द्धन पुरुष सबही भगवत् के भजन और उसकी आज्ञा मानने के निमित्त उत्पन्न हुये हैं १ बहुरि दूसरी युक्ति यह है कि जब किसी से कुछलेवे तब उस दानको भगवतही का उपकारजाने और देनेवाले को महाराज की प्रेरणा के अधीन समझ काहे से कि जब भगवत् ने प्रथमही उसके हृदय विषे प्रेरणाकरी है तब उसने मुझको दान दियाहै सो भगवत् की प्रेरणा श्रद्धाहै इस करके कि जब उस विषे श्रद्धा और निश्चयकी दृढ़ता न होती तब वह एक दाम भी न देता ताते सर्व प्रकार भगवत ही का शुक है कि हृदयों का प्रेरक वही है बहुरि जब ऐसे जाना कि देनेवाला भगवत् है पर तौभी दान देनेवालेका संबंध बीच में रक्खा है कि उसके हाथों करके पहुँचता है ताते उसकी भलाई को भी

जानना चाहिये इसकरके कि उसकोभी दयाका स्थान बनायाहै इसहेतुसे वहभी भगवत्का प्रियतमहै और उसका भला चिन्तवना प्रमाणहै और यहभी चाहिये है कि जब वह इसको थोड़ी वस्तु देवे तब उसको अल्प न जाने सो यहभी शुक्र होताहै जैसे देनेवाले को इस प्रकार चाहिये है जितना कुछ किसीको देवे उसको किञ्चिन्मात्रही जाने तैसेही लेनेवालेकोभी उचितहै कि किञ्चिन्मात्रहीको अधिक करके देखे २ बहुरि तीसरी युक्ति यहहै कि अशुद्ध वस्तको अङ्गीकार न करे अर्थात् पापकर्मियोंका दान न लेवें ३ बहुरि चौथी युक्ति यहहै कि अपने कार्यमात्रमें अधिक न लेवे काहेसे कि कार्यमात्रसे अधिक लेना अयोग्यहै और जब कोई पदार्थ गृह विषे रखताहोवे तब दान दशांश का अङ्गीकार करना प्रमाण नहीं ४ बहुरि पांचवीं युक्ति यहहै कि प्रथमही दान देनेवाले से पूछलेवे कि तू यह दान रोगियोंके निमित्त का देताहै अथवा निर्धनियोंके निमित्त का देताहै अथवा हमको साधु जानकर किसी कामनाके निमित्त देता है सो वह जब कुछ उत्तर देवे तब चाहिये कि कामनाके निमित्त का अङ्गीकार न करे और जब वह कहे कि यह निर्धनोंके निमित्तका है सो जब इसको अत्यन्तही चाहना होवे तब लेलेवे अन्यथा नहीं ५ ॥

चौथा सर्ग ॥

व्रतके वर्णन में ॥

तातें जान तू कि भगवत् ने इसप्रकार आज्ञा करी है कि जो पुरुष मेरे निमित्त व्रत और तप करके भोगों का त्याग करते हैं तिनको फल देनेवाला मैंही हूं बहुरि व्रत भी तीन प्रकारका होताहै सो प्रथम यह कि अपने चित्तको सङ्कल्पों से रोकरखना और चित्त की वृत्तिको भगवत् के स्वरूप विषे स्थित करना सो यहे व्रत ऐसा कठिनहै कि जब भगवत् बिना कुछ सङ्कल्प भी इसके हृदये विषे फुरे तब यह व्रत खण्डित होजाताहै जो दिन विषे रात्रिके आहारका सङ्कल्प लावे तौभी प्रमाण नहीं इस करके कि प्रतिपाल करनेवाला भगवत्‌है तातें चाहिये कि यह पुरुष अपनी जीविका की चिन्ता न करे और महाराजका भरोसा करके अचिन्त्य होरहै सो यह अवस्था सन्तजनों को प्राप्त होतीहै और उत्तम व्रतभी यही है १ और दूसरा व्रत यहहै कि सर्व इन्द्रियों को पापकर्मों से रोक राखे सो प्रथम अपनी दृष्टि नेत्रों की बुरी भावना से बचाय रक्खे काहे से कि इस प्रकार

काम उत्पन्न होताहै इसी कारण से सन्तजनों ने कहा है कि नेत्रोंकी दृष्टि पाप का विष भरा तीरहै वहुरि यह उसही के ऊपर विष लपेटा हुआहै ताते जो पुरुष भगवत्के भय करके इसका त्याग करता है तब उसको धर्मका शिरोमणि प्राप्त होताहै और अपने चित्त विषे प्रसन्नता को पावता है १ इसीपर महापुरुष ने भी कहाहै कि पांच कर्मों करके व्रत खण्डित होजाता है निन्दा और झूठ बोलना और झूठी दुहाई कठोर वचन काम की दृष्टिकर देखना सो यह पांचि पाप व्रत को तोड़ डालते हैं तातें काम दृष्टिका रोकना यह नेत्रों का व्रतहै १ दूसरा दुर्वचनों से रसना को रोक राखे अर्थात् जिस वचन विषे प्रयोजन कुछ सिद्ध न होवे उस वचनसे मौन होरहे अथवा भगवत्के वचन और सन्तोंके वचनों विषे मन को लगावे और वाद विवाद विषे आसक्त न होवे परनिन्दा और झूठ ये ऐसे महापाप हैं कि इन करके ससारी जीवों का स्थूल व्रतभी खण्डित होजाता है इसीपर एक वार्त्ता है कि दो स्त्रियों ने निराहार व्रतकिया था तब भूखकी अधिकता करके व्याकुल होनेलगीं और व्रत खोलने के निमित्त महापुरुषसे पूछनेलगीं तब महापुरुष ने उनको जलका कटोरा भरदिया सो जब उन्होंने जल पान किया तब उनको वमनहुआ और उस वमनमें सब रुधिरही गिरा सो यह देखकर सबलोग विस्मय को प्राप्तहुये तब महापुरुष ने कहा कि इन स्त्रियों का ऐसा स्वभाव और अवस्थाहै कि जिस खान-पानको भगवत्ने शरीरका आहार बनायाहै तिससे तो इन्होंने व्रत राखा और जिसको महाराज ने महापाप कहाहै तिसको अङ्गीकार करती हैं अर्थात् निन्दा विषे आसक्त हैं और इनके मुखसे जो रुधिर निकसा है सो निन्दा करके मानों इन्होंने मास खायाहै २ बहुरि तीसरे श्रवणोंको भी मर्य्याद विषे रक्खे तात्पर्य्य यह कि जो वचन बोलने विषे निषिद्ध है तिनका श्रवण करना भी निषिद्ध है जैसे निन्दा और झूठ वचन विषे निषिद्ध है तिसका सुननेवाला भी कहनेवाले की नाईं पापका भागी होताहै १ बहुरि ऐसेंही अशुभ कर्मोंमें हाथ और पावोंको रोकरक्खे काहेसे कि व्रत रखनेवाला पुरुष रोगी की नाईं होताहै सो जब वह रोगी फल मूल आदिकों को कुपथ्य जानकर तो त्यागकरे और विषको पान करे तब शीघ्रही मृत्यु होताहै तैसेही पापकर्म विषकी नाईं है और खान पान फल मूलकी नाईं है इस करके कि इनकी अर्थात् आहारकी अधिकता में पापहै वास्तव में कुछ आहार पा-

रूप नहीं ताते खान पान का त्याग करना और इन्द्रियों करके अशुभ कर्मों में आसक्त रहना सो ऐसे व्रत करके लाभ कुछ नहीं होता इसीपर सन्तजनोंने भी कहा है कि केते पुरुषों को व्रत विषे केवल भूख प्यासका कष्टही प्राप्त होताहै ४ पाचवें योभी चाहिये कि अशुद्ध आहार का अङ्गीकार न करे और शुद्ध आहार को भी मर्य्याद के अनुसार अल्पही अङ्गीकार करे और भोजन बहुत न करे और इस प्रकार भी न करे कि दिनको व्रत रखकर रात्रिको दूना आहार करलेवे काहेते कि व्रत रखने का प्रयोजन यहहै कि भोगों को निबलकरे ताते जब व्रतको रखकर पारण समय नाना प्रकार के व्यञ्जनों को अङ्गीकार किया तब इस करके तो भोग और अधिक होते हैं और हृदयभी उज्ज्वल नहीं होता ५ और जिस प्रकार मैंने इन्द्रियों का व्रत वर्णन कियाहै सो जिज्ञासुजनों का व्रतहै इसको मध्यम कहते हैं २ बहुरि तीसरी प्रकार का व्रत संसारी जीवोंका स्थूलहै कि वह केवल खान पान का त्याग करते हैं और इन्द्रियों को पापों से नहीं रोक सकते सो यह व्रत महाकनिष्ठ है और इस विषे इतनाही गुणहै कि उस समय विषे इन्द्रिया कुछ निबल होजाती हैं पर जिज्ञासुजन जो सर्व्व इन्द्रियों का व्रत रखते हैं और अशुभ कर्म्मोंमे अपनी वृत्तिको रोक रखते हैं तब उनको भी इस प्रकार चाहिये है कि सर्वदा भगवत् के भय विषे स्थितरहें काहेसे कि न जाने भगवत् इस व्रतको प्रमाणकरे अथवा न करे ताते भय विषे स्थित रहनाही विशेषहै परं निराश होकर शुभकर्मोंको त्यागना प्रमाण नहीं काहेसे कि भगवत् किसी के किञ्चिन्मात्रभी करतूत को व्यर्थ नहीं करताहै ३ ॥

पांचवां सर्ग ॥

पोथी पाठ करने के वर्णन में ॥

ताते जान तू कि सन्तजनों ने इसप्रकार कहाहै कि पोथी का पढ़ना भी उत्तम भजनहै और महापुरुषने भी कहाहै कि मनुष्यों के हृदय मलिन होरहे हैं जैसे अग्नार करके दर्पण मलिन होजाताहै बहुरि लोगोंने पूछा कि ऐसे हृदय क्योंकर निर्मल होवें तब उन्होंने कहा कि भगवत् वचनोंके पाठ और मृत्यु के स्मरण करके हृदय निर्मल होताहै बहुरि महापुरुष ने योभी कहाहै कि मेरे पीछे तुमको उपदेश करनेवाले दो बहुतहैं एक तो मौनी और दूसरा बोलनेवाला सो बोलनेवाले तो भगवत और सन्तों के वचन हैं और मौनवाली मृत्यु है सो इन

काम उत्पन्न होताहै इसी कारण से सन्तजनों ने कहा है कि नेत्रोंकी दृष्टि काम का विष भरा तीरहै बहुरि यह उसही के ऊपर विष लपेटा हुआहै ताते जो पुरुष भगवत्के भय करके इसका त्याग करता है तब उसको धर्मका शिरोमणि प्राप्त होताहै और अपने चित्त विषे प्रसन्नता को पावता है १ इसीपर महापुरुष ने भी कहाहै कि पांच कर्मों करके व्रत खण्डित होजाता है निन्दा और झूठ बोलना और झूठी दुहाई कठोर वचन काम की दृष्टिकर देखना सो यह पांच पाप व्रत को तोड़ डालते हैं ताते कामदृष्टिका रोकना यह नेत्रों का व्रतहै २ दूसरा व्रत वचनों से रसना को रोक राखे अर्थात् जिस वचन विषे प्रयोजन कुछ सिद्ध न होवे उस वचनमे मौन होरहे अथवा भगवत्के वचन और सन्तोंके वचनों विषे मन को लगावे और वाद विवाद विषे आसक्त न होवे परनिन्दा और झूठ ये ऐसे महापाप हैं कि इन करके संसारी जीवों का स्थूल व्रतभी खण्डित होजाता है इसीपर एक वार्ता है कि दो स्त्रियों ने निराहार व्रतकिया था तब क्षुधाकी अधिकता करके व्याकुल होनेलगीं और व्रत खोलने के निमित्त महापुरुषसे पूछनेलगीं तब महापुरुष ने उनको जलका कटोरा भरदिया सो जब उन्होंने जल पान किया तब उनको वमनहुआ और उस वमनमें सब रुधिरही गिरा सो यह देखकर सबलोग विस्मय को प्राप्तहुये तब महापुरुष ने कहा कि इन स्त्रियों का ऐसा स्वभाव और अवस्थाहै कि जिस खान पानको भगवत्ने शरीरका आहार बनायाहै तिससे तो इन्होंने व्रत राखा और जिसको महाराज ने महापाप कहाहै तिसको अङ्गीकार करती हैं अर्थात् निन्दा विषे आसक्त हैं और इनके मुखसे जो रुधिर निकसा है सो निन्दा करके मानों इन्होंने मांस खायाहै ३ बहुरि तीसरे श्रवणोंको भी मर्य्याद विषे रक्खे तात्पर्य यह कि जो वचन बोलने विषे निषेध है तिनका श्रवण करना भी निषेधहै जैसे निन्दा और झूठ वचन विषे निषेधहै तिस का सुननेवाला भी कहनेवाले की नाईं पापका भागी होताहै ४ बहुरि ऐसेही अशुभ कर्म्मोंसे हाथ और पांवोंको रोकरक्खे क्योंकि जो व्रत राखनेवाला पुरुष रोगी की नाईं होताहै सो जब वह रोगी फल मूल आदिकों को कुपथ्य जानकर तो त्याग करे और विषको पान करे तब शीघ्रही मृत्यु होताहै तैसेही पापकर्म विषकी नाईं हैं और खान पान फल मूल की नाईं हैं इस कारण कि इसी अर्थात् आहारकी अधिकता में पापहै वास्तव में शुभ आहार पा

रूप नहीं ताते खान पान का त्याग करना और इन्द्रियों करके अशुभ कर्मों में आसक्त रहना सो ऐसे व्रत करके लाभ कुछ नहीं होता इसीपर सन्तजनोंने भी कहा है कि ऐसे पुरुषों को व्रत विषे केवल भूख प्यासका कष्टही प्राप्त होताहै ४ पातेंभें योंभी चाहिये कि अशुद्ध आहार का अङ्गीकार न करे और शुद्ध आहार को भी मर्याद के अनुसार अल्पही अङ्गीकार करे और भोजन बहुत न करे और इस प्रकार भी न करे कि दिनको व्रत रखकर रात्रिको दूना आहार करलेवे काहेते कि व्रत रखने का प्रयोजन यहहै कि रोगों को निर्बलकरे ताते जब व्रतको रखकर पारण समय नाना प्रकार के व्यञ्जनों को अङ्गीकार किया तब इस करके तो रोग और अधिक होते हैं और हृदयभी उज्ज्वल नहीं होता ५ और जिस प्रकार मैंने इन्द्रियों का व्रत वर्णन कियाहै सो जिज्ञासुजनों का व्रतहै इसको मध्यम कहते हैं २ बहुरि तीसरी प्रकार का व्रत संसारी जीवोंका स्थूलहै कि वह केवल खानपान का त्याग करते हैं और इन्द्रियों को पापों से नहीं रोक सकते सो यह व्रत महाकनिष्ठ है और इस विषे इतनाही गुणहै कि उस समय विषे इन्द्रिया कुछ निबल होजाती हैं पर जिज्ञासुजन जो सर्व इन्द्रियों का व्रत रखते हैं और अशुभ कर्मोंसे अपनी वृत्तिको रोकरखते हैं तब उनको भी इस प्रकार चाहिये है कि सर्वदा भगवत्के भय विषे स्थितरहें काहेसे कि न जानें भगवत् इस व्रतको प्रमाणकरे अथवा न करे ताते भय विषे स्थित रहनाही विशेषहै पर निराश होकर शुभकर्मोंको त्यागना प्रमाण नहीं काहेसे कि भगवत् किसी के किञ्चिन्मात्रभी करतूत को व्यर्थ नहीं करताहै ३ ॥

पांचवां सर्ग ॥

॥ पोथी पाठ करने के वर्णन में ॥

ताते जान तू कि सन्तजनों ने इसप्रकार कहाहै कि पोथी का पढ़ना भी उत्तम भजनहै और महापुरुषने भी कहाहै कि मनुष्यों के हृदय मलिन होगये हैं जैसे जंगाल करके दर्पण मलिन होजाताहै बहुरि लोगोंने पूछा कि ऐसे हृदय क्योंकर निर्मल होवें तब उन्होंने कहा कि भगवत् भजनों के पाठ और मृत्यु के स्मरण करके हृदय निर्मल होताहै बहुरि महापुरुषने योंभी कहाहै कि मेरे पीछे तुमको उपदेश करनेवाले दो बहुतहैं एक तो पाती और दूसरा बोलनेवाला सो बोलनेवाले तो भगवत और सन्तों के वचन हैं और मौनधारी मृत्यु है सो इन

दोनों के उपदेश करके जीवों को भलाई प्राप्त होवेगी ॥ अथ प्रकट करना भ्र मेत मनुष्यों के पाठ के स्वरूपका ॥ ताते जान तूं कि जो कोई वचनोंका पाठ क रतो है उसकी निस्सन्देह उत्तम अवस्था होती है पर तोभी उसको चाहिये कि वचनों की विशेषता समझकर आपको नीच कर्मों से बचाये रहे और सर्वकाल विषे भयसंयुक्त रहे और जो इस प्रकार न करे तो उसमें यह भय होती है कि वह वचनही उसको झूठा करते हैं इस पर महापुरुष ने कहा है कि बहुत कपटी तो विद्या पढ़नेवालेही होवेंगे इसीपर महाराज काभी वचन है कि हे मनुष्यो! तुमको लाज नहीं आवती कि जब किसी सम्बन्धीकी पत्री तुमको पहुँचती है तब एकाग्र चित्तहोकर पढ़ते हो और बारम्बार उसको विचारकर वही कार्य क रते हो और यह जो मेरे वचन हैं सो मानों तुम्हारी और पत्री मेरी आई है कि इसको विचार कर इसके अनुसार करतूत करो सो तुम इससे विपर्यय वर्तते हो और यद्यपि कुछ पाठ भी करतेहो तोभी उसका विचार नहीं करते कि इस पत्री विषे क्या लिखा है बहुरि और एक सन्तने कहाहै कि हमसे आगे के जिज्ञासु जन ऐसे हुये हैं कि सन्तों के वचनों को पत्री जानतेथे ताते रात्रि विषे उनका पाठ और विचार करतेथे और दिनको उसके अनुसार करतूत करतेथे और अब तुमलोग इस कालमें केवल पाठकोही करतूत जानते हो बहुरि अक्षर और मा त्राहीं को सुधारते रहते हो और जो कुछ इन विषे लिखाहै तिसके तात्पर्य की ओर तुम चित्त नहीं देते ताते इसप्रकार समझना चाहिये कि पढ़नेका फल प ढ़नाही नहीं इसका फल यह है कि वचन के भेद को समझकर उसके अनुसार करतूत करे और जो पुरुष वचनों को पढ़कर उनकी आज्ञा न माने तब इसका दृष्टान्त यहहै कि जैसे किसी दासको और उसका स्वामी कोई पत्री पठावे और उस पत्री विषे किसी कार्य की शिक्षा होवे कि यह काम तुम करना और वह दास उस पत्रीको उत्तम स्थान विषे बैठकर तो पढ़े और भली प्रकार अक्षरों को सुधारे पर जो कुछ उस विषे लिखा होवे तिस कार्य को न करे तब निस्सन्देह दुःखका अधिकारी होताहै ॥ अथ प्रकट करनी युक्ति पाठकी ॥ ताते जान तू कि जब वचनोंको पढ़ युक्ति साथ पढ़ताहै तब वह पढ़ना अधिक फलदायक होताहै - सो प्रथम युक्ति यहहै कि जैसे टहलुवा स्वामीके आगे स्थित होताहै तैसेही न म्रतासहित बैठकर वचनोंका पाठकरे और पवित्रहोकर स्थित होवे १ बहुरि दूसरी

युक्तियहहै किमी रेसपाठकरें। शीघ्रता न करे और उसके अर्थों को विचारता जावे ऐसे न चाहे कि किसीप्रकार शीघ्रही पाठ पूर्ण करलूं २ बहुरि तीसरी युक्ति यहहै कि पाठ करनेके समयों भय और प्रीति संयुक्त रुदन करे और जो नेत्रोंमें आंसू न आवें तो चित्त को कोमल करे इसीपर महापुरुषने भी कहाहै कि यह भगवत बचनके ग्रन्थ भयप्रकटावनेके निमित्त हैं ताते भयसंयुक्त पाठकरो। और जो कोई इनको विचारताहै तो निस्सन्देह उसको भय उत्पन्न होताहै और अपनेको दीन पराधीन जानलेताहै तब शोकवान् भी होता है परन्तु यह अवस्था भय और शोककी तबहीं प्राप्त होती है जब असावधानता और अचेनताको दूरकरके पाठ करे ३ बहुरि चौथी युक्ति यहहै कि वचनों के तात्पर्यकोभिन्न भिन्न करके विचारे अर्थ अह कि जब ताड़ना का प्रसंग आवे तब भगवत् से अपनी रक्षा चाहे और जब भगवत्की कृपाकी बचन आवे तब आशावन्त होवे ४ बहुरि पांचवीं युक्ति यहहै कि कपट और विक्षेपताको दूरकरे अर्थात् जब दम्भका आभास जानपड़े अथवा किसी दूसरे के भजन में विक्षेप होता देखे तब ऊंचे स्वरसे न पढ़े काहेसे कि गुप्त पाठकरनेका ऐसा माहात्म्य है जैसे गुप्तदानादेनेका विशेष फलहै परंतु जो दम्भ ना फुरे और किसीके भजनमें विक्षेप भी न होना होवे तब प्रत्यक्ष और ऊंचे स्वरसेही पढ़ना भलाहै काहेसे कि इसरीति से पढ़ने में निद्रा और आलस दूर होतेहैं और सुननेवालों को भी गुण होताहै और सोवनेवाले जाग पड़तेहैं बहुरि देखकर पोथीको पढ़े तो अतिविशेषहै कि नेत्रभी इसी काममें लग जावें तो नेत्रोंका भी भजन हुआ और अपर दृष्टिसे नेत्र बचे रहेंगे इसीपर एक वार्ताहै कि एक रात्रि विषे महापुरुष चले जातेथे तब एक जिज्ञासु को गुप्त पाठ करते देखकर पूछनेलगे कि तुम गुप्त क्यों पढ़ते हो तब उसने कहा कि मैं जिस को सुनावता हूं वह गुप्त पाठ भी सुनता है बहुरि महापुरुष आगे को चले तब एक दूसरे प्रेमी सन्त को देखा कि वह ऊंचे स्वरसे पढ़ते हैं तब उनसे पूछा कि ऊंचे स्वरसे क्यों पढ़तेहो तब उसने कहा कि अपनी और सोवतेहुये पुरुषों की निद्रा और विक्षेपता को दूर करताहूं तब महापुरुषने कहा कि दोनों की भावना निर्मल है काहेसे कि करतूत की भलाई और बुराई मनसा करके होती है ताते जिसकी मनसा शुद्ध होतीहै तिसकी करतूतभी शुद्धही होतीहै ५ बहुरि छठीं युक्ति यहहै कि कोमल ध्वनिसहित पाठकरे काहेसे कि जितना कोमल ध्वनि

महिन पाठ करताहै तिनताही चित्त विषे वचन अधिक प्रवेश करते हैं २ सोजे जो पट्युक्ति मैंने कही है सो स्थूल है और इसी प्रकार पट्युक्ति सूक्ष्म भी चाहिये है सो प्रथम यहहै कि वचनों की बड़ाई को समझै और ऐसे जाने कि यह वचन आप भगवत्ने कहे हैं और भगवत् के सहज स्वभाव रूप अविनाशी हैं और इनका तात्पर्य भगवत् के ज्ञान विषे स्थित है और रसना पर जो स्तुति होती हैं सो, ये अक्षर हैं और जिस प्रकार अग्नि का नामलेना मुख से सुगम है और अग्निकी तपन का सहना कठिन है तैसेही अक्षरों का अर्थ ऐसा प्रबल है कि जब वह अर्थ प्रकट साक्षात्कार होवे तब उसके प्रभाव विषे चौदहोंलोक लीन होजावें और उस तेज को सह न सकें पर उन वचनोंके अर्थ की सुन्दरताई को और उनकी बड़ाईको शब्द और अक्षरों के परदे में गुप्त करखेला है कि जिस करके उस परदेकरके मन और रसनाकोभी वचनोंकी प्राप्ति होवे और इस परदे के बिना वचनोंका तात्पर्य मनुष्यों को समझाया नहीं सके ताते जिज्ञासु अपने चित्त विषे इसप्रकार विचार करे कि वचनोंका तात्पर्य अक्षरोंसे परे है सो जैसे बैल आदिक पशुओं को मनुष्यों के शब्दोंका अर्थ नहीं भासहोता और मनुष्य अपनी सदनाबोलीका कोउनसे काम नहीं लेसके ताते उन को चरम और हल में चलावने के निमित्त पशुओं की नाईं शब्द किया जाताहै तब वह श्रवण करके सुचेत होते हैं और कार्यको सिद्ध करते हैं परंतौ भी तात्पर्य को नहीं समझ सके कि हलको किस निमित्त पृथ्वी विषे चलावते हैं और धरतीको क्यों खोदते हैं सो धरतीके खोदनेका प्रयोजन यह है कि वह कोमल होवे और उस विषे पवन प्रवेश करे फिर जल सींचने करके उस विषे बीज की वृद्धता होती है पर बैलोंके हृदय विषे यह ज्ञान कुछ नहीं होता तैसेही बहुत पुरुष पाठ करनेवाले भी ऐसे होते हैं कि वह भगवत् और सन्तोंके वचनों को शब्दमात्र और अक्षरमात्रही जानते हैं सो अत्यन्त बुद्धिकी हीनता है और ईसका दृष्टान्त यह है कि जैसे कोई पुरुष ऐसे जाने कि अग्निका अर्थ अगनही है और या न जाने कि अग्नि तो कागज को जलानेवाली है पर यह तीनों अक्षर तो सर्वदा कागज पर लिखे रहते हैं और कागज को कुछ आंच नहीं पहुंचती ताते जिस प्रकार सब शरीरके परे जीव होताहै और उस जीव करकेही शरीर स्थित रहता है और जीवही के प्रभाव से शरीर की बड़ाई है तैसेही अक्षर शरीरवत् हैं और

अर्थ इनका जीवहै और अर्थों करकेही शब्द और अक्षरोंकी बडाई है ताते इस प्रकार प्रथम वचनोंकी बडाईको जानना चाहियेहै १ बहुरि दूसरी युक्ति यहहै कि जिस महाराज के ये वचनहैं तिसको पाठके समय विषे अपने सामने विद्यमान देखे और ऐसे जाने कि ये वचन मुख से महाराजही कहते हैं ताते भय संयुक्त स्थितहोवे और जैसे पोथी को पवित्र हाथसे स्पर्श करताहै तैसेही वचनों को हृदय की पवित्रताई के साथ ग्रहण करे और हृदय की पवित्रता यह है कि बुरे स्वभावों से शुद्धहोवे और भगवत् वचनके आदर और बडाई के प्रकाश करके सुन्दर प्रकाशितहोवे जैसे अकमानामा एक बाईथी सो जब वह भगवत् वचनों के पाठकरने को बैठकर पोथी खोलती तब कहती कि यह महाराज सर्वेश्वर का वचनहै और ऐसा कहकर मूर्च्छित भय और प्रीतिके सम्बन्ध से होजाती ताते जबलग भगवत् की बडाईको नहीं पहिचानता तबलग उसके वचनोंकी महिमाको भी नहीं जानसक्ता और भगवत् की बडाई भी उसकी कारीगरी और गुणके जाने बिना जानी नहीं जासक्ती सो कारीगरी यहहै कि आकाश पाताल पानी देवता मनुष्य पशु कीट वृक्ष पर्वत आदिक जो सर्व सृष्टि है सो सब महाराजके उत्पन्न किये हुये हैं और उसीके अधीनहैं और जब वह इन सबको नाश करडाले तौभी उसको कुछभय नहीं और उसकी पूर्णताई में कुछ ऊनता नहीं आवती बहुरि सर्व जीवोंका उत्पन्न और पालन और रक्षा करनेवाला भी वही है इस प्रकार विचार करने से किंचित् बडाई महाराजकी हृदयमें भास आवती है सो विचारे कि ऐसा जो ईश्वरोंका ईश्वर महाराज है तिसही के वचनों का मैं पाठ करताहूं तब ऐसे जानने करके भय उत्पन्नहो आवती है २ बहुरि तीसरी युक्ति यह है कि पाठ विषे चित्तको एकाग्र रक्खे और विक्षेपता को दूरकरे और जब कुछ अचेतता सहित पढ़ाजावे तब उसही को फेर पाठकरे काहे से कि अचेतता सहित पाठ करना ऐसा होताहै जैसे कोई पुरुष फूलों के देखने के निमित्त बाग विषे जानेकी मनसा करे और जब वहां जावे तब विक्षेपता करके ऐसा अचेत होवे कि नानाप्रकार के फूलों की रचनाको कुछ न देखे और योंही फिरकर बाहर चला आवे तब उसका वहां जाना व्यर्थ होता है तैसेही भगवत् वचन जिज्ञासुजनों का बाग है और इन में नानाप्रकार के जो भेद रहस्य हैं सो मानों परमविचित्र सुखद मनमोहन फल फूल हैं सो जब कोई इनको कि-

चारकरे और एकाग्र चित्त होवे तब निस्सन्देह ऐसे परमानन्द को प्राप्त होताहै कि फिर किसी पदार्थ की ओर रुचि नहीं होती इसी कारणसे कहा है कि जब पाठ करनेवाला पुरुष वचनों के अर्थ को न जानै तब उसको पाठका गुण न प्राप्त नहीं होताहै ताते चाहिये कि वचनों की बड़ाई और सुन्दरताई को अपने हृदय में विद्यमान राखे तब अज्ञानमें कष्टोंसे रहित होवै ३ बहुरि चौथी युक्ति यह है कि सर्व वचनों को विचारे और जो समझ न सके सो वारंवार उतका अभ्यासकरे तब इस करके रहस्य उपजताहै बहुरि उसही रस विषे मग्न होवै सो ऐसे रसहित पढ़नेसे अधिक लाभ को प्राप्त होताहै इसीपर एक सन्तने कहा है कि जब कोई पुरुष रसना विषे किसी वचन को उच्चारण करताहै और चित्त विषे किसी और वस्तु का विचार करता है तब उस प्रथम वचनके अर्थों से दूर पड़जाता है बहुरि एक और सन्तने कहा है कि जब भजन अथवा पाठ विषे मुझको कोई व्यवहार का सङ्कल्प फुरताहोवे तब उस सङ्कल्प से मैं अपना मरना विशेष जानताहूं ताते इस पुरुष को चाहिये कि जब किसी वचन का पाठ करनेलगे तब चित्त विषे और सङ्कल्प का चिंतवन न करे यद्यपि वह सङ्कल्प सात्त्विकी होवे तो भी उसको विस्मरण करता विशेषहै बहुरि जब भगवान् की स्तुति का पाठ करनेलगे तब इस प्रकार विचार करे कि यह महाराज सबमें निर्लेप है सङ्कल्प से परे है सबों के ऊपर समर्थ है परमदेव है बहुरि जब महाराज की कारीगरी का वचन होवे तब इस प्रकार विचार करे कि पृथ्वी और आकाश को उसहीने उत्पन्न किया है ऐसे नानाप्रकार की रचना का देखनेवाला महाराज की विद्या और सामर्थ्य और बड़ाई को पहिचाने और जिस पदार्थ की ओर दृष्टिकरे तब उस विषे भगवत्‌हीकी सत्ताको देखे बहुरि जब उस वचनको पढ़े कि महाराजने इस जीवको एक पानी की बूंदसे उत्पन्न किया है तब ऐसे जाने कि यह वीर्य की बूंद तो एकही रङ्गकी थी पर भगवत् ने उसमें नानाअंग के चिह्न बनाये हैं जैसे त्वचा और मांस नाड़ी हाथ पांव नेत्र रसना कर्ण इत्यादिक जो अनेक अंग हैं सो सबही आश्चर्य रूप हैं बहुरि यह शरीर मांसके पुतले की नाईं है सो इस विषे देखना सुनना बोलना और चैतन्यता किस प्रकारसे प्रकट हुई है पर इसप्रकार सर्व वचनों का प्रमाण करना कठिन है ताते इसका तात्पर्य यह है कि जिस वचनका पाठकरे उसही वचनके अर्थ विषे विचार और अभ्यास को साथ राखे

और जिस पुरुषकी वृत्ति किसी महापाप विषे आसक्त होती है अथवा जो पुरुष मनमत करके किसी क्रियाको अङ्गीकार करताहै अथवा किसी मत और पथके निश्चय विषे ऐसा दृढ़ होजाता है कि उस पथकी प्रतीति बिना यथार्थ वचनको श्रवणही न करे तब ऐसे पुरुषको महाराज के वचनों का अर्थ कदाचित् प्रकट नहीं होता ४ बहुरि पांचवीं युक्ति यह है कि जिसप्रकार वचनोंका अर्थ भिन्न २ भावको प्राप्तहोताहै तैसेही चित्तकी वृत्तिको भी उसके अनुसार उलटावता जावे जैसे भय और ताड़ना के वचन को जब पाठकरे तब भयवान् और अधीन हो जावे और जब महाराज की कृपा का वचन पढ़े तब आशावन्त और प्रसन्न चित्त होवे और जब महाराज की अपारता का वचन आवे तब महादीनभावको ग्रहणकरे और ऐसे जाने कि महाराजकी स्तुति और बड़ाई के वर्णन करनेकी मेरी बुद्धिही नहीं ताते लज्जित होकर स्तुति करनेलगे इसप्रकार सर्व वचनों के अनुसार चित्तकी अवस्था बनावे ५ बहुरि छठीं युक्ति यह है कि वचनों विषे इस प्रकार प्रतीति करे कि यह वचन मैं भगवत्के मुखसे सुनताहूं इसीपर एक सत जन ने कहाहै कि आगे मुझको भजनका कुछ रहस्य न आवताथा तब मैंने इस प्रकार प्रतीति करी कि मैं यह वचन महापुरुष के मुख से सुनता हूं तब मुझको रस आवनेलगा बहुरि मैंने इस प्रकार अनुमान किया कि यह वचन मुझको आकाशवाणी होती है तब मैंने उससेभी अधिक स्वाद को पाया फिर मैंने यह अनुमान करलिया कि यह वचन मुझको आप भगवत् विद्यमान सुनाते हैं तब मैंने ऐसा रस और आनन्द पाया कि जिसका वर्णन नहीं करसक्ता ६ ॥

छठवां सर्ग ॥

स्मरणके वर्णन में ॥

ताते जान तूं कि सर्व साधनों का फल भगवत्का स्मरणहै जैसे पाठ वचनोंका भी उत्तम कहाहै पर इसका तात्पर्य भी यही है कि भोगों से विरक्त होकर स्मरण विषे स्थित हूजिये काहेसे कि भोगोंकी मलिनता विषे भजनका कुछ रहस्य नहीं उपजता ताते प्रसिद्ध हुआ कि सर्व कर्मोंका सार भगवत्का भजन है और सर्व साधन भजनकी दृढ़ताके निमित्त कहे हैं इसी पर महाराजने भी कहा है कि तुम मेरा स्मरणकरो तब मैं तुम्हारा स्मरण करूं पर जब स्मरणकी ऐसी अवस्था को न पहुँचसके तब अधिककाल विषे तो मनहीं का अभ्यास हो

हिये कहिदेते कि इसमें जीव की मुक्ति का कारण भजनही है ताते जो पुरुष बैठे उ-
ठते जागते सोवते चलते किसी अवस्था विषे भगवत् के भजन से अचेत नहीं
होवे सो तिनकी महिमा महाराजने भी कही है और योंभी कहाहै कि भय और
दीनता सहित गुरुही स्मरणकरो बहुरि मध्या और प्रभात पर्यन्त किसी काल
विषे अचेत न होवो और किसीनें महापुरुषसे यों पूछा था कि सर्व करतूतों से
कौनसी करतूत विशेषहै तब उन्होंने कहा कि मृत्यु के समय विषे जिसकी सुरति
सकल अभ्यास करके भगवत्की ओर होवे सो यह स्मरण सब भजनोंसे विशे-
षहै और महापुरुष ने योंभी कहा है कि अचेत मनुष्यों विषे भजन करनेवाले
पुरुष ऐसे विशेषहैं जैसे मृतकों विषे सजीव पुरुष होवे अथवा जैसे सूखे वृक्षों में
सफल वृक्ष होताहै और जैसे कायरों विषे कोई शूरमा शत्रुओंके सम्मुख होकर
युद्धकरे बहुरि एक और सन्तने भी कहा है कि परलोक विषे सर्व मनुष्यों को
पश्चात्ताप होवेगा कि हमनें भगवत् का भजन सर्वकाल क्यों न किया और
संसारविषे अपने समयको व्यर्थ क्यों बिताया और जिन्होंने भजन कियाहोगा
वेभी कहेंगे कि हमने अधिक भजन क्यों न किया और एक क्षण भी अचेत
क्यों हुये ॥ अथ प्रकट करनी अवस्था भजनकी ॥ ताते जानै तू कि भजनकी
भी चार अवस्था हैं जो प्रथम अवस्था यह है कि रसना सो भगवत् का नाम
उच्चारण करना और हृदय में अचेत रहना सो यह कनिष्ठ अवस्था है ताते इस
का गुण भी अल्प है पर तो भी गुण से रहित नहीं काहेसे कि जब यह रसना
विवाद मिथ्या विषे आसक्त होवे तब इसमें जो भगवत् का नामलेना तिस्सेंभी
उत्तम है १ बहुरि दूसरी अवस्था यहहै कि चित्त से भजन करना और जब भजन
विषे चित्त की एकाग्रता न होवे तब भी हठकरके संकल्प को दूरकरना और मन
को भजन विषे स्थित करना सो यह मध्यम अवस्था है २ बहुरि तीसरी अव-
स्था यहहै कि इस पुरुषका हृदय भजन विषे स्थिर होजावे और भजन का रस
चित्त विषे ऐसा प्रबल होवे कि जब कोई कार्य अवश्यही करना होवे तो भी
यत्न करके उसी ओर जावे सो यह उत्तम अवस्थाहै ३ बहुरि चौथी अवस्था यह
है कि जिस वस्तु का स्मरण करताहै तिसके स्वरूप विषे चित्त की वृत्ति का लीन
होजाना सो वह वस्तु परमात्मा स्वरूपहै और उस विषे लीनता का अर्थ यहहै
कि परमात्मा के स्वरूप की मग्नता विषे भजन की सुरति नहीं रहे और समस्त

भजनहीं दोष रहजावें काहेसे कि भजन भीपर और आकार होताहै सो निस्सन्देह स्वप्नहै और सकल्परूपहै और परम अवस्था यहहै कि सकल्प और अक्षरोंका अभावहोजावे और केवल ब्रह्मसत्ता विषे स्थितहोवे सो यह अवस्था पूर्ण प्रेमकर होती है जैसे किसी पुरुषका प्रेम किसी पुरुष के साथ ऐसा प्रबल होवे कि अपने प्रियतमके स्वरूप की मग्नता विषे आपा और सर्व पदार्थों को विस्मरण करे और प्रियतमका नामही उसको भूलजावे तैसेही यह पुरुष महाराज के दर्शनविषे आप और सर्व पदार्थों को विस्मरण करे तब सन्तोंकी आदि अवस्थाको प्राप्त होवेगा सो सन्तलोग इस अवस्था का नाम जीवन्मृतक कहते हैं अर्थ यह कि सर्व पदार्थों की जानसे मृतक होजाताहै जैसे और जो अनेक ब्रह्माण्ड भगवत्‌ने उत्पन्न किये हैं पर उनका भान हमको कुछ नहीं होता और हमको वही पदार्थ सत्यस्वरूप भासते हैं जिनको हम प्रत्यक्ष इन्द्रियोंकर देखते हैं सो जिस पुरुषको यह इन्द्रियादिक पदार्थ सबही विस्मरण होजावें तब उसके निकट नहींही हैं अर्थात् असत्यस्वरूप होजाते हैं बहुरि जब आपको भी विस्मरण करे तब इस भाव करके आपभी अपने जान में नेस्त होगया इसी को जीवन्मृतक कहतेहैं और जब सर्व पदार्थों की सत्ता इसके निकट दूरहुई तब केवल महाराजही उसके निकट सत्यस्वरूप और विद्यमानहैं जैसे तू धरती और आकाशको देखकर कहताहै कि सर्व जगत् इतनाही है और तुझको और कुछ नहीं भासता तैसेही उस जीवन्मृतक स्वरूप को किसी और पदार्थ की जान नहीं रहती केवल महाराजही को देखताहै और कहताहै कि रामही रामहै राम बिना और कुछ नहीं तब ऐसी अवस्था विषे वह पुरुष महाराजसे अभेद होता है अर्थ यह कि एकता विषे लीन होजाताहै और भेदभिन्नता नष्ट होजाती है सो यह ज्ञानवानोंकी आदि अवस्थाहै पर जब यही अवस्था जीवको प्राप्त होती है तब निकटता और दूरीकी और द्वैतकी कुछ सुधि ही नहीं रहती काहेसे कि निकटता और दूरी और भेदभावकी उसको सुधि होती है जिसको दो दृष्टिआवें कि यह मैं हूं और वह महाराजहै सो ऐसे पुरुष को तो सर्वथा अपना आपा विस्मरण होगयाहै तब निकटता और दूरीको कैसेकर देखे और द्वैतबुद्धि करे ताते इस अवस्था विषे जिज्ञासुजन को चैतन्यस्वरूप की प्रसन्नता प्रकट होती है और चिदाकाशकी गतिविषे नानाप्रकारके आश्चर्यों को देखताहै और आदि

गम्य अन्तका ज्ञान उसको प्राप्त होताहै बहुरि सन्तजनों और अवतारों के पद को प्रत्यक्ष देखताहै और हस्तामलकवत् पहिंचानताहै और इसप्रकारके आश्चर्योंको देखताहै कि वचन करके उनका बखान नहीं होसक्ता बहुरि यद्यपि ऐसी समाधिमे जब उसको उत्थान होताहै तोभी एकाग्रताका रस उसके हृदयसे दूर नहीं होता और सर्वदा उसके चित्तकी वृत्ति उसही रसकी ओर खिंची रहती है और मायाके सर्व पदार्थों को विरस जानता है और यद्यपि संसारी जीवों बिषे स्थित दृष्टि आवता है तोभी हृदय करके निर्लेप रहता है और यह मनुष्य जो मायाके व्यवहारों बिषे आसक्त रहते हैं सो तिनकी अवस्थाको देखकर आश्चर्य मानताहै और दयादृष्टिसे देखकर कहताहै कि यह अल्पबुद्धि जीव कैसे सुखसे अभावहैं और जगत्के जीव उसकी अवस्थाको देखकर इसप्रकार कहते हैं कि यह पुरुष मायाके व्यवहार को भली प्रकार क्यों नहीं करता ताते उसको बावरा और उन्मत्त जानतेहैं पर जब जिज्ञासुजन ऐसे परमपदको पहुँच न सके और सूक्ष्मभेद उसको प्रकट न होवे तो भी निराश न होवे काहेसे कि केवल भजनही की प्रबलताभी जीवको उत्तम भोगोंका बीजहै इसकरके कि भजन की दृढ़ता बिषे प्रेमकी अधिकता होती है और प्रेमकरके सर्व पदार्थोंसे विरक्तचित्त होताहै ताते महाराजही को अपना अधिक प्रियतम रखता है सो उत्तम भोगोंका बीज यही है काहेसे कि इस जीवको अवश्यमेव भगवत्के निकटही पहुँचनाहै और सर्व संसारको त्याग जानाहै ताते चाहिये कि इस मनुष्यकी प्रीति सर्वथा भगवतहीके साथ होवे इसकरके कि जितनी किसीकी प्रीति अधिक होतीहै उतनाही उसको अपने प्रियतमके दर्शन बिषे आनन्द अधिक होताहै तैसेही जिसका भगवत्के साथ पूर्ण प्रेमहै तिसको महाराजके स्वरूप बिषे पूर्णही आनन्द प्राप्त होताहै और जिनके हृदय बिषे माया की प्रीति दृढ़ होती है तब वह माया के पदार्थों के बियोग करके सदा दुःखी रहताहै तात्पर्य यह कि जब जिज्ञासुजन भगवद्भजन बिषे दृढ़ होवे और सिद्धता आदिकका ऐश्वर्य इसके हृदय बिषे फुर न फुरे तोभी भजनका त्याग न करे काहेसे कि परमपदकी प्राप्ति सिद्धता और ऐश्वर्य्य के आश्रित नहीं ताते जब इस पुरुषका चित्त शुभ गुणों सहित निर्मल हुआ तब स्वाभाविकही परमपद का अधिकारी होताहै इसी कारण से इस जीवको चाहिये कि सर्वदा अपने चित्त बिषे अभ्यास करे कि किसी प्रकार

मेरा चित्त भगवत् के भजन से, एक क्षणभी अचेत न होवे काहे से कि भजनही महाराज के दर्शन और सूक्ष्म भेदोंकी कुंजी है इसी पर महापुरुष ने भी कहा है कि जब कोई पुरुष वैकुण्ठ आदिक सुख को भोगना चाहे तब भगवद्भजन विषे ही लीन होवे काहे से कि भजनही परमवैकुण्ठ है ताते प्रसिद्ध हुआ कि सर्व गुणों का सार यह है कि निंद्यकर्मों से इमजीव की रक्षा होवे और जो कुछ भगवत् ने करणीय कर्म कहे हैं तिनको श्रद्धा सहित करे और जब निंद्यकर्मों विषे आसक्त रहे और शुभ कर्मों विषे सावधान न होवे तब ऐसे जानिये कि उस पुरुष का भजन करना भी मन का संकल्प है और उस विषे यथार्थ कुछ नहीं ताते यथार्थ भजन वही है जो पाप कर्म के समय जीव की सहायता करे और भगवत् के स्मरण करके सावधान होवे ॥

इति नियमवर्णननाम प्रथमं प्रकरणं समाप्तम् ॥

दूसरा प्रकरण ॥

पहिलासर्ग ॥

जगत्के मिलापकी युक्ति के वर्णनमें ॥

ताते जान तू कि यह संसार परलोक के मार्ग की मंजिल है और सर्व मनुष्य इस मंजिल विषे परदेशी हैं और सबको एकही ओर जाना है जैसे सबही परदेशी आपस में सम्बन्धी की नाई होते हैं तैसेही इस जीवको सब मनुष्यों के साथ प्यार और शुभ भावना चाहिये है पर जिस जिस प्रकार भाव और भगति करने का अधिकार है तिसका तीन सर्ग विषे वर्णन किया जायगा प्रथमसर्ग विषे जो जिज्ञासुजन भगवत् मार्ग के संगी हैं तिनके संगकी विशेषता प्रकट करेंगे और दूसरे सर्ग में सबों के मिलाप का अधिकार और युक्ति वर्णन होगी बहुरि तीसरे सर्ग विषे सम्बन्धी और सेवक और मलावों के भावकी युक्ति का वर्णन किया जायगा ताते जानतू कि भगवत् के निमित्त जिज्ञासुजनों के साथ मित्रता करनी उत्तम भजन है और सर्व कर्मोंसे विशेष है इसी पर महापुरुष ने भी कहा है कि जिस पुरुष को भगवत् मार्ग की प्रीति होवे तिसको भगवद्भक्तों का मिलाप बड़े भागों से प्राप्त होता है काहे से कि जब किसी समय

मध्य अन्तका ज्ञान उसको प्राप्त होताहै बहुरि सन्तजनों और अवतारों के पद को प्रत्यक्ष देखताहै और हस्तामलकवत् पहिचानताहै और इसप्रकारके आश्चर्यों को देखताहै कि वचन करके उनका बखान नहीं होसक्ता बहुरि यद्यपि ऐसी समाधिसे जब उसको उत्थान होताहै तौभी एकत्रताका रस उसके हृदयसे दूर नहीं होता और सर्वदा उसके चित्तकी वृत्ति उसही रसकी ओर खिंची रहती है और मायाके सर्व पदार्थों को विरस जानता है और यद्यपि संसारी जीवों विषे स्थित दृष्टि आवता है तौभी हृदय करके निर्लेप रहता है औरयह मनुष्य जो मायाके व्यवहारों विषे आसक्त रहते हैं सो तिनकी अवस्थाको देखकर आश्चर्य मानताहै और दयादृष्टिसे देखकर कहताहै कि यह अल्पबुद्धि जीव कैसे सुखसे अप्राप्तहैं और जगत्के जीव उसकी अवस्थाको देखकर इसप्रकार कहते हैं कि यह पुरुष मायाके व्यवहार को भली प्रकार क्यों नहीं करता ताते उसको बावरा और उन्मत्त जानतेहैं पर जब जिज्ञासुजन ऐसे परमपदको पहुँच न सके और सूक्ष्मभेद उसको प्रकट न होवे तौ भी निराश न होवे काहेसे कि केवल भजनही की प्रबलताभी जीवको उत्तम भोगोंका बीजहै इसकरके कि भजन की दृढ़ता विषे प्रेमकी अधिकता होती है और प्रेमकरके सर्व पदार्थोंसे विरक्तचित्त होताहै ताते महाराजही को अपना अधिक प्रियतम रखता है सो उत्तम भोगोंका बीज यही है काहेसे कि इस जीवको अवश्यमेव भगवत्के निकटही पहुँचनाहै और सर्व संसारको त्याग जानाहै ताते चाहिये कि इस मनुष्यकी प्रीति सर्वथा भगवत्हीके साथ होवे इसकरके कि जितनी किसीकी प्रीति अधिक होतीहै उतना ही उसको अपने प्रियतमके दर्शन विषे आनन्द अधिक होताहै तैसेही जिसका भगवत्के साथ पूर्ण प्रेमहै तिसको महाराजके स्वरूप विषे पूर्णही आनन्द प्राप्त होताहै और जिसके हृदय विषे माया की प्रीति दृढ़ होती है तब वह माया के पदार्थों के वियोग करके सदा दुःखी रहताहै तात्पर्य यह कि जब जिज्ञासुजन भगवद्भजन विषे दृढ़ होवे और सिद्धता आदिकका ऐश्वर्य इसके हृदय विषे कुछ न फुरे तबभी भजनका त्याग न करे काहेसे कि परमपदकी प्राप्ति सिद्धता और ऐश्वर्य्य के आश्रित नहीं ताते जब इस पुरुषका चित्त शुभ गुणों सहित निर्मल हुआ तब स्वाभाविकही परमपद का अधिकारी होताहै इसी कारण से इस जीवको चाहिये कि सर्वदा अपने चित्त विषे अभ्यास करे कि किसी प्रकार

मेरा चित्त, भगवत् के भजन से, एक क्षणभी अचेत न होवे काहे से कि भजनही महाराज के दर्शन और सूक्ष्म भेदोंकी कुंजी है इसी पर महापुरुष ने भी कहा है कि जब कोई पुरुष वैकुण्ठ आदिक सुख को भोगना चाहे तब भगवद्भजन विषे ही लीन होवे काहे से कि भजनही परमवैकुण्ठ है ताते प्रसिद्ध हुआ कि सर्व्व गुणों का सार यह है कि निंद्यकर्मों से इसजीव की रक्षा होवे और जो कुछ भगवत् ने करणीय कर्म कहे हैं तिनको श्रद्धा सहित करे और जब निंद्य कर्मों विषे आसक्त रहे और शुभ कर्मों विषे सावधान न होवे तब ऐसे जानिये कि उस पुरुष का भजन करना भी मन का सङ्कल्प है, और उस विषे यथार्थ कुछ नहीं ताते यथार्थ भजन वही है जो पाप कर्म के समय जीव की सहायता करे और भगवत् के स्मरण करके सावधान होवे ॥

इति नियमवर्णननाम प्रथमं प्रकरणं समाप्तम् ॥

दूसरा प्रकरण ॥

पहिलासर्ग ॥

जगत्के मिलापकी युक्ति के वर्णनमें ॥

ताते जान तू कि यह संसार परलोक के मार्ग की मंजिलहै और सर्व्व मनुष्य इस मंजिल विषे परदेशी हैं और सबको एकही ओर जानाहै जैसे सबही परदेशी आपस में सम्बन्धी की नाईं होते हैं तैसेही इस जीव को सब मनुष्यों के साथ प्यार और शुभ भावना चाहिये है पर जिस जिस प्रकार भाव और सङ्गति करने का अधिकार है तिसका तीन सर्ग विषे वर्णन किया जायगा प्रथमसर्ग विषे जो जिज्ञासुजन भगवत् मार्ग के सङ्गी हैं तिनके सङ्गकी विशेषता प्रकट करेंगे और दूसरे सर्ग में सबों के मिलाप का अधिकार और युक्ति वर्णन होगी बहुरि तीसरे सर्ग विषे सम्बन्धी और सेवक और सन्तानों के भावकी युक्ति का वर्णन किया जायगा ताते जानतू कि भगवत् के निमित्त जिज्ञासुजनों के साथ मित्रता करनी उत्तम भजन है और सर्व्व कर्मोंसे विशेष है इसी पर महापुरुष ने भी कहा है कि जिस पुरुष को भगवत् मार्ग की प्रीति होवे तिसको भगवद्भक्तों का मिलाप बड़े भागों से प्राप्त होताहै काहे से कि जब किसी समय

विषे वह पुरुष भगवद्भजनसे अचेतभी होताहै तब उसको वह दूसरा भक्तसचे करताहै बहुरि जब दोनों सचेत होतेहैं तब एकै मार्गके संगी होते हैं और यों भी कहाहै कि जिन्ना सुजनोंकी संगति करके ऐसा सुख उत्तम प्राप्त होताहै कि अ जनों करके नहीं पायो जाता और यों भी कहाहै कि जब कोई भक्तोंके साथ प्री करताहै तब वह भी भगवत् का प्रियतम होताहै और भगवत्ने भी कहाहै मेरी प्रीति उन पुरुषोंको प्राप्त होतीहै जो मेरे निमित्त मेरे प्रियतमों के साथ प्री करते हैं और तन धनादिक करके उनकी सेवा करते हैं और उनके सर्व कार्य की सहायता विषे सावधान रहते हैं और महापुरुषने यों भी कहाहै कि परलो विषे भगवत् इस प्रकार कहेंगे कि जिन्हों ने केवल मेरे निमित्त प्रीति और मि ताई परस्पर करी है सो पुरुष कहां हैं कि उनको अब हम अपनी छायातले र और योंभी कहाहै कि ७ प्रकारके पुरुषों को परलोक विषे भगवत्की छायात ठौर मिलेगा और परमसुखी होवेंगे-सो प्रथम नीति और विचारकी मर्यादा वि वर्त्तनेवाला राजाहै १ दूसरा वह पुरुष है जो बालअवस्था से लेकर अपनी आ युष् भगवद्भजन विषे लगावे २ और तीसरा वह है जो यद्यपि शुभस्थान बाहरभी निकसे तोभी व्यवहारकी विशेषता विषे आसक्त न होजावे और उस चित्तकी वृत्ति सर्वदा शांतिकी ओर रहे ३ चौथा वहहै जो एकांत विषे बैठ भगवद्भजन विषे सावधान रहे और प्रीति सहित रुदन करे ४ पांचवां वह कि जब उसको एकान्त ठौर विषे स्त्री का मिलाप होवे और वह भगवत् के भ करके उसका त्याग करे ५ छठवां वहहै कि निष्काम गुप्तदान देवे ६ सातवां व है जो भगवतही के निमित्त भगवद्भक्तों के साथ मैत्री करे और जो किसी पुरु की प्रीतिका त्याग करे तो भी उसमें भगवत् सम्बन्धही कारण होवे अर्थात् मि लाप और त्याग दोनों भगवत् निमित्त होवें और अपने स्वार्थका सम्बन्ध हो में कुछ न विचारे ७ इसीपर एक वार्त्ता है कि कोई पुरुष किसी प्रियतमके दर्श को जाताथा उसको मार्ग विषे एक देवता मिला और कहने लगा कि तू क जाताहै तब उस पुरुषने कहा कि अपने मित्रके दर्शन को जाताहूं बहुरि उ देवताने कहा कि उस के साथ तेरा कुछ अर्थ है अथवा उसने तेरे ऊपर कु उपकार कियाहै तब उस पुरुषने कहा कि मैं केवल भगवतही के निमित्त उस दर्शन की इच्छा रखताहूं तब उस देवताने कहा कि मुझको भगवत्ने तेरेपा

भेजा है सो मैं तुझको प्रसन्नताका सन्देशा पहुँचाता हूं कि इस श्रद्धाहीं करके भगवत्‌ने तुझको अपना प्रियतम किया है और महापुरुषने योंभी कहा है कि धर्मका दृढ़ चिह्न यही है कि धर्मात्मा पुरुषों से मिलाप और भगवत् विमुखों के संगको त्याग करना और एक संतको आकाशवाणी हुईथी कि यद्यपि तू सर्व मनुष्यों और सर्व देवतों के तुल्य अकेला भजन भी करे तोभी जबलग मेरे निमित्त मेरे भक्तों के साथ मिताई और मनमुखोंका त्याग न करेगा तबलग तू परमपद को प्राप्त न होवेगा और एक सन्त से जिज्ञासुजनों ने पूछा था कि संगति किसकी करें, तब उन्हों ने कहा कि जिसके दर्शन करके तुमको भगवत् का भजन दृढ़ होवे और जिसकी करतूत देखकर तुमको शुभ कर्तृतकी इच्छा उपजे तब उसकी संगति करो और एक और सन्तको भी आकाशवाणी हुईथी कि तैंने किस निमित्त एकान्त ग्रहण किया है, तब उसने कहा कि हे महाराज जगत्‌के मिलाप करके तेरी प्रीति विषे पटल होता है तिस निमित्त एकान्त को विशेष प्रिय मानता हूं बहुरि आज्ञा हुई कि इस एकान्त करके तो अपना सुख स्वार्थ अर्थात् व्यावहारिक क्लेशनिवृत्ति और भजन से प्रतिष्ठाकी चाहना प्रसिद्ध है ताते मेरे भक्तोंके साथ प्रीति कर और विमुखोंके संग का त्यागकर बहुरि एक और सन्तने भी कहा है कि भगवद्भक्त जब परस्पर मिलकर प्रसन्न होते हैं तब जैसे शरद्‌ऋतु में वृक्षों के पात झर पड़ते हैं तैसेही उनके सर्व पाप नष्ट होजाते हैं॥ अब प्रकट करता इसका कि भगवत् के निमित्त मिताई किस प्रकार होती है॥ ताते जानतू कि जो मित्रता किसी सम्बन्ध करके होती है वह भगवत् निमित्त नहीं कहाती है जैसे चटशाला विषे अथवा पड़ोस करके जो स्वाभाविक ही मित्रभाव होजाता है सो यह सब स्थूल प्रीति है अथवा जिस का रूप सुन्दर होवे और जिसकी वाणी मधुर होवे अथवा जिसके साथ धन और मान का अर्थ कुछ होवे सो यह भी अज्ञानकी प्रीति कहाती है ताते भगवत् के निमित्त मित्रताका अर्थ यह है कि जिस प्रीति विषे कोई प्रयोजन और स्थूलता कुछ न होवे और केवल धर्मही के निमित्त होवे सो यह प्रीतिभी दो प्रकार की है प्रथम यह है कि वह प्रीति प्रयोजन करके होती है पर उस विषे शान्ति का प्रयोजन होवे जैसे विद्यार्थी की प्रीति पढ़ानेवाले के साथ होती है सो जब वह पढ़ना परमार्थ के मार्ग निमित्त होवे तब यह भी भगवत् के निमित्त गिना

जाता है और जब उसमें धन और मान का प्रयोजन होवे तब वह आन प्रीति होजाती है और ऐसेही पढ़ानेवाले की प्रीति पढ़नेवाले के साथ जब निष्काम होवे और भगवत् की प्रसन्नता के निमित्त उसको पढ़ावे तब यह भी भगवत्के निमित्त प्रीति होती है और जब पढ़ानेवाले को मान का प्रयोजन होवे तब अशुभ कामना होजाती है तैसेही जब कोई दान देनेवाला पुरुष अपने टहलुये को इस निमित्त प्रियतम राखे कि यह टहलुआ भली प्रकार अर्थियोंको दान पहुँचाता है अथवा उत्तम भोजन करके अभ्यागतोंको खवावता है तब यह भी धर्म की सम्बन्धी प्रीति है १ बहुरि दूसरी प्रकार की प्रीति यह है कि जिसके साथ इसका प्रयोजन कुछभी न होवे केवल ईश्वरही के सम्बन्ध की प्रीति होवे और उस को भगवत् प्रियतम जानकर उसके साथ मित्रता करे सो यह उत्तम प्रीतिहै और जब इस प्रकार किसी के साथ प्रीति करे कि यह भगवत्का जीव है और यद्यपि उस विषे गुणकी कुछ भावना न होवे तो भी उसको प्रेमदृष्टिकर देखे सो यह पूर्ण प्रेमकी अवस्थाहै जैसे किसी पुरुषके साथ किसी मनुष्यकी अधिक प्रीति होवे तब वह अपने प्रियतम के मन्दिर और गलीको भी प्रियतम रखताहै उस के सम्बन्धियों और दासोंको देखकर प्रसन्न होताहै तात्पर्य यह कि उसके कूकरों को भी और कूकरों से विशेष जानताहै और प्रियतमके मित्रों को तो अधिक प्रियतम रखताही है तैसेही भगवत् के साथ जिसका पूर्ण प्रेम होता है तब सब जीव उसको प्रियतम लगते हैं और वैष्णवों और जिज्ञासुजनों के साथ तो निस्सन्देह उससे भी अधिक प्रीति होती है और सर्वपदार्थोंको भी इस करके प्रियतम रखता है कि यह सब मेरे प्रियतमके रचे हुये हैं इसी पर एक वार्ता है कि जब वसंतऋतु विषे महापुरुष के आगे कोई नवीन फूल आन रखताथा तब उस फूलको नेत्रोंपर मर्दन करतेथे और इसप्रकार कहतेथे कि यह मेरे प्रियतमने बनाये हैं और थोड़ाही काल बीताहै कि प्रियतमसे बिछुड़े हैं अर्थात् नवीन रचनाहै २ पर भगवत्के साथ जो प्रीति होती है सो भी दो प्रकारकी होती है एक प्रीति इस लोक और परलोक के सुखोंकी कामना करके होती है १ और दूसरी निष्काम होतीहै सो पूर्ण प्रीति इसही का नामहै २ ताते जितना जिस मनुष्यका निश्चय दृढ़ होताहै सो उतनाही भगवत्के साथ इसको प्रीति अधिक होती है बहुरि उसी प्रीति करके महाराजके प्रियतमों कोभी प्रियतम रखताहै और प्रीतिकी

मध्यर्थाद धन और मानके अर्पण कर प्रकट होती है अर्थ यह कि, जितना धन और मान उनके ऊपर वारता है तितनाही प्रीति का चिह्न प्रकट होता है सो एक पुरुष ऐसे होते हैं कि वह अपने धन और मानको अर्पण करदेते हैं सो पूर्ण प्रेमी हैं और जो कुछ धन अर्पण करते हैं सो अल्पप्रेमी हैं ॥ अथ प्रकट करना इसका कि भगवत् के निमित्त किस प्रकार विरुद्ध करना चाहिये ताते जान तू कि जिस प्रकार सात्त्विकी मनुष्यों के साथ भगवत् के निमित्त प्रीतिमानों की मित्राई होती है तैसेही राजसी और तामसी मनुष्यों के साथ जिज्ञासु जनों का स्वाभाविकही विरुद्ध होता है काहे से कि वे भगवत् से विमुख हैं और उनकी संगति करके यह भी अनेक होजाता है सो यद्यपि विरुद्ध का अर्थ यह नहीं कि उनकी क्रियाओं को देखकर अपने चित्त को तपायमान करे पर तौभी मनमुखों की संगति से जिज्ञासुजन संकुचित रहते हैं सो इसही का नाम विरुद्ध है और इस विषे एक और भी भेद है कि जब कोई पुरुष सात्त्विकी होवे और उसविषे कुछ राजसी गुणकी प्रबलता भी होवे तो चाहिये कि उस पुरुषके साथ सात्त्विक गुण साथ मित्राई राखे और जो गुण की प्रबलता के अनुसार उससे विरुद्ध रहे सो इस प्रकार करके एकही मनुष्य के साथ मित्रता और विरुद्ध इकट्ठा होता है जैसे किसी पुरुष के तीन पुत्र होवें, सो एक आज्ञाकारी और बुद्धिमान् भी होवे और दूसरा पुत्र मूर्ख और आज्ञासे विमुख होवे और तीसरा मूर्ख भी होवे और आज्ञाकारी भी होवे तब आज्ञाकारी और बुद्धिमान् पुत्र के साथ पिताकी प्रीति स्वाभाविकही अधिक होती है और दूसरा पुत्र जो मूर्ख और आज्ञासे विमुख होता है सो स्वाभाविकही दण्ड का अधिकारी होता है और तीसरा पुत्र जो मूर्ख और आज्ञाकारी होता है सो तिसके साथ आज्ञा मानने के भावकरके पिताकी प्रीति होती है और मूर्खता के निमित्त उसको ताड़ना करता है तैसेही जो पुरुष भगवत्की आज्ञासे विमुख होवे सो तिस विमुखताके अनुसार तिसका त्यागकरना योग्य है और जितना कुछ भगवत् की आज्ञा विषे भावधान होवे तितनीही प्रीति उसके साथ राखे सो इस मित्राई और विरोध का चिह्न वरतनि विषे प्रकट होता है कि जब किसी पुरुषविषे तुझको कुछ अवगुण भासता है, तब उस पुरुष से तेरा चित्त विरुद्ध करता रहता है और जब अधिक अवगुण भासता है तब उससे चित्तकी वृत्ति भी उचाट जाती है और वचन वार्त्ता का मिलाप भी छोड़

होजाताहै पुरिरि जब लम्पटता करके सन्तजनों की मर्यादा को त्याग देताहै और ढीठ होकर विचरता है तब उसके साथ प्रीति और वचन और करतूति का सम्बन्ध कुछ नहीं होता पर तौभी भोगी मनुष्यों से तामसी की गति महानीच होतीहै ताते तामसी मनुष्य के साथ प्रीतिकरना सर्वथा अयोग्य है काहेसे कि वह सर्व जीवोंका घातक होताहै पर जब कोई तामसी मनुष्य ऐसा होवे जो केवल तुम्हही को दुखावे तब उसके ऊपर दयाकरनी प्रमाण है पर यह जो तामसी मनुष्यों से विरुद्ध करना प्रमाण कहा है सो इस विषे भी जिज्ञासुजनोंकी अवस्था दो प्रकारकी हुई है सो एक तो ऐसे हुये हैं कि उन्होंने विचार और धर्म की मर्यादा के निमित्त पापीजीवों को दण्ड दिया है और एक ऐसे हुये हैं कि उन्होंने सर्वजीवों के ऊपर दयादृष्टि राखी है जगत् से सम्बन्ध ही उन्होंने तोड़ाहै पर इसका तात्पर्य यहहै कि जिस पुरुषकी मनसा शुद्धहै और अपनी वासना से रहित है सो तिसका सबही करतूति शुभ और नीक होताहै ताते जिस पुरुष ने ऐसे जानाहै कि सर्वजीवों का प्रेरक भगवत् है और आपसे यह जीव सबही पराधीन है तिस कारण में वह पुरुष सबों के ऊपर दयादृष्टि से देखताहै सो यह उत्तम अवस्था है और पापीजीवों को पापसे वर्जना यह भी भलाहै पर केते मनुष्य ऐसे भी मूर्ख होते हैं कि वह पापकर्मोंका त्याग नहीं करसके और पापी जीवों की संगतिका अवगुण पहिचान भी नहीं सके और मुखसे इस प्रकार कहते हैं कि हम किसीको बुरा नहीं जानते काहेसे कि सर्व जीवों का प्रेरक भगवत् है और हृदय विषे राग द्वेष कर जलते रहते हैं सो जबलग भगवत् की एकता जाननें का चिह्न प्रकट न होवे तबलग ऐसा अभिमान करना व्यर्थ होताहै सो एकताका चिह्न यहहै कि जब कोई इसका धन हरलेजावे अथवा दुर्वचन बोले अथवा कुछ दण्डदेवे तौभी कोपवान् न होवे और उसके ऊपर दयादृष्टिसे ही देखता रहै तब जानिये कि इसके हृदय विषे एकता दृढ़हुई है जैसे एक समय विषे मनमुखोंने महापुरुष के दांत तोड़ेथे और रुधिर चलनेलगा तब महापुरुष कहनेलगे कि हे महाराज ! यह लोग मुझको जानते नहीं ताते तूही इनके ऊपर दयाकर पर जो पुरुष अपनेप्रयोजन करके राग द्वेष विषे दृढ़होवे और धर्मकी मर्यादा के निमित्त मौन होरहे अर्थात् पापियों को पाप से न वर्जे और उनसे अपना सम्बन्धभी न तोड़े तब यहभी बड़ी मूर्खताहै ताते जबलग इस मनुष्य के

हृदयविषे एकताकी अवस्था दृढ़ न होवे और कुसंगी पुरुषों को त्यागजानकर उनकी मित्रता का त्याग न करे तब जानिये कि इसका धर्मही दृढ़ नहीं जैसे किसी पुरुष का कोई मित्र होवे और कोई पुरुष उसके मित्रको दुर्वचन कहे और वह उसको ताड़ना न करे तब जानिये कि उस पुरुषके साथ इसकी मिताई ही नहीं बहुरि पापी मनुष्य जो कहे हैं सो तिनके विषे भी भिन्नभिन्न भेद होता है और उनके ऊपर दण्डकरना भी अधिकार प्रति चाहिये सो प्रथम तो एक ऐसे मनुष्य होते हैं कि वह भगवत् को नहीं मानते और परलोकपर भी प्रतीति नहीं करते और सर्वदा तमोगुण विषे स्थित हैं सो ऐसे मनुष्यों के साथ जिज्ञासुजन को मिलाप करना नहीं चाहिये काहे से कि जब बड़े ईश्वरों और अवतारों ने शस्त्रोंकरकेभी उनका प्रहार कियाहै ताते उनकेसाथ किंचित् व्यवहार रखनाभी अयोग्यहै बहुरि जो पुरुष लोगोंको सत्कर्मों से भ्रष्टकरे और मनमतकरके नास्तिकवादिमें कामत दृढ़ करावे सो ऐसे मनुष्यकेसाथ सम्बन्ध रखना भला नहीं और उसका निरादर करनाही विशेषहै काहेसे कि निरादरको देखकर लोगोंकी प्रतीति उनमे दूरहोवे बहुरि जो पुरुष और लोगों को भ्रष्टन करे और आपही सत्कर्मों मेंहीनहोवे तब मध्य निरादर उसका करना भला नहीं और मिताई करनी भी अयोग्य है बहुरि जो पुरुष निंदा और कूड़ और कपट और दुर्वचन और अनीतिकरके लोगोंको दुखावता होवे तब उसके साथ कठोरता और निरादर करनाही भलाहै और उसके साथ प्रीतिकरना अयोग्यहै बहुरि जो मनुष्य भोगी होवे अथवा मद्यपान करनेहारा होवे पर और किसी को दुखावे नहीं तब उसको उपदेश करना विशेषहै पर जब कुछ श्रद्धावान्होवे और जब कुछ श्रद्धा न देखिये तब लज्जा करके उसकी क्रियासे नेत्र मूंदने भले हैं॥

दूसरा सर्ग॥

॥ संगति और अधिकार के वर्णन में ॥

॥ ताते जान तू कि सबही मनुष्य मिताई करने के अधिकारी नहीं इसी कारण से जिज्ञासु जन को चाहिये कि जिस पुरुष विषे तीन लक्षण पाये जावें उसके साथ मिताई करे सो प्रथम लक्षण यह है कि बुद्धिमान् पुरुष होवे काहे से कि मूर्खकी संगति निष्फल होतीहै और उसकी मिताई का निर्वाह नहीं होता और मूर्ख मनुष्य जब तेरे साथ उपकार किया चाहता है तब भी मूर्खता करके एता

करतूत करता है जो तेरे कार्य्य को बिगाड़देवे और यों भी नहीं जानता कि मैंने इस कार्य्य को बिगाड़ा है ताते मूर्ख की संगति से दूर रहनाही भगवत् से निकटता है और मूर्ख का देखनाही पाप का कारण है पर मूर्ख तिसको कहते हैं कि जो कार्य्य के भेद को न जाने और यद्यपि उसको समझाय कर कहिये तो भी न समझ सके १ बहुरि दूसरा लक्षण यह है कि जिसका स्वभाव कोमल नहीं है सो तिसही के साथ मिताई करनी विशेष है काहे से कि जिसका स्वभाव क्रोधी होता है सो कठोरता करके मित्रता को दूर करदेता है और निडर होकर प्रीति की रीति को बिगाड़ देता है २ बहुरि तीसरा लक्षण यह है कि जिसकी बुद्धि सत्कर्मों विषे दृढ़ होवे तब उत्तम अधिकारी मिताई का वही है काहे से कि पापकर्मी मनुष्य के हृदय विषे भगवत् का भय कुछ नहीं होता ताते जो पुरुष भगवत् के भय से रहित होवे तिसके साथ प्रीति और प्रतीति करनी महाअयोग्य है इसी से महाराजने भी कहा है कि जो पुरुष मेरे भजन से अचेत हैं और अपनी वासना विषे वर्तते हैं तिनके साथ प्रीति और प्रतीति न करो ३ और जो कोई नास्तिकवादी होवे तिसकी संगति न करनाही विशेष है काहे से कि उसकी रहनि रीति का प्रवेश इसके हृदय विषे भी दृढ़ होजाता है ताते यह भी अपकर्मी होजाता है और यह भी नास्तिकवादियों का लक्षण है कि वह इसप्रकार कहते हैं कि किसी को धर्म्म का उपदेश करना प्रमाण नहीं पापों और भोगों में भी किसी को वर्जना योग्य नहीं काहे से कि लोगों के मान हम को कैसा प्रयोजन है सो यह वचन भी मन्दमार्गों और दुःखों का बीज है और नगनगतियों का चिह्न है ताते इनकी संगति का त्याग करना भला है इस करके कि यह वचन मन की वासना का हितकारी है और जब यही निश्चय दृढ़ होता है तब प्रकटही ढीठ होकर अपकर्म करने लगता है इसी पर एक सन्तने कहा है कि पांच प्रकार के मनुष्यों की संगति न करिये सो प्रथम तो झूठे मनुष्य की संगति बुरी है काहे से कि झूठ कहनेहारा पुरुष कपट करके सर्वदा भ्रमही देता है १, और दूसरा वह पुरुष जो मूढ़ता करके तेरे लाभ को गँवाय देता है २ बहुरि तीसरा वह जो कृपण मनुष्य है सो वह भी तेरी शुभ अवस्था को व्यर्थ करडालता है ३ और चौथा पुरुष वह है जो पुरुषार्थ से हीन होवे सो वह भी तेरे किसी कार्य्य का निर्वाह नहीं करता ४ बहुरि पांचवा पुरुष जो लम्पट है सो वह भी तेरी मिताई को एक ग्रास के

अल्प खेंचताहै और लोगोंसे पूछा कि भीख से अल्प खेंचना क्या है तब उन्होंने कहा कि लोभ का त्यागना सो अङ्गीकार करता है और तेरी मित्राई को त्याग देताहै ताते मिताईको ज्ञानके समान भी नहीं जानता ॥ फेरि एक औरसंत ने कहाहै कि मैं कठोर मनुष्य विद्यावान्सेभी भोगी पुरुष कोमलचित्तकी संगतिको विशेष मानताहूं पर ऐसे जान तू कि सर्व्व मनुष्यों विषे शुभगुण दुर्लभ पाये जाते हैं ताते प्रथम संगति के प्रयोजनको पहिंचानना चाहिये कि जब तुझको केवल शुभगुणका प्रयोजन होवे तब कोमल मनुष्य और धीर मनुष्योंकी संगतिकर और जब कुछ माया का प्रयोजन होवे तब उदार पुरुषके निकट जावो ऐसेही सब मनुष्यों का स्वभाव भिन्न भिन्न है सो एक पुरुषकी संगति आहार की नाईंहै अर्थ यह कि इनका मिलाप सर्वदा चाहिये और एक पुरुषकी संगति औषधकी नाईं है अर्थ यह कि उनका मिलाप किसी अवस्था विषे चाहियेहै और एक पुरुषोंकी संगति रोगकी नाईं है अर्थात् किसी समय भी उन का मिलाप नहीं चाहिये और जब अकस्मात् उनका संयोग भी होजावे तौभी धैर्य्य और पुरुषार्थ करके उनसे मुक्त हुआ चाहिये पर सर्वदा उसहीकी संगति करनी योग्यहै जिसकी संगति विषे परस्पर शुभगुणोंका लाभ होवे ॥ अथ प्रकट करती युक्ति मिताईके सम्बन्धकी ॥ ताते जान तू कि मित्राई और प्रीति काजो-नातहै सो सम्बन्धकी नाईंहै इसी कारणसे सम्बन्धकी युक्तियें भी चाहिये इसी पर महापुरुषने भी कहा है कि प्रीतिमानों का मिलाप इसप्रकार सुखदायक हो-ताहै कि जैसे दोनों हाथ परस्पर एक दूसरेका मैल उतारते रहते हैं ताते उन की संगति करनी युक्ति के साथ विशेष होती है सो प्रथम युक्ति यहहै कि अपने से खान पान वस्त्र मित्रको अधिक देवे और जो पदार्थ इसको भी चाहता होवे तब अपनी अभिलाषा का त्याग करके उसके कार्य्य को पूर्ण करे बहुरि अपने धन और सामग्री को अपने से भिन्न भिन्न नहीं जाने ताते कहे बिनाही उसके कार्य विषे सावधान होवे और जब मित्रको इससे कुछ मांगना पड़े और आप करके उसकी सुरति न लेवे तब इस करके प्रीति मन्द होजाती है काहे से कि इसका हृदय उसकी सुरत और सहायता से अचेत रहा तब यह देना लेना की प्रीति होजाती है इसीपर एक वार्त्ता है कि दो प्रीतिमान परस्पर मित्रथे तब एक मित्रने कहा मुझको चारसहस्र रुपया चाहिये तब दूसरे मित्रने कहा कि दो स-

देकर रुपया लेलेव तब उस मित्रने कहा कि तुझको लाज नहीं आवती कि मि ताई का अभिमान करताहै और मुझसे मायाको अधिक प्रियतम रखताहै बहुरि एक और वार्ताहै कि किसी नगरविषे केते प्रीतिमान् रहतेथे तिसी दुष्टने राजा से जाकर कहा कि ये सब शास्त्र की मर्य्याद से उल्लंघित रहतेहैं और लोगोंको भ्रष्ट करते हैं तब राजाने उन को पकड़वाकर मारडालने की आज्ञा करी बहुरि जब मारनेलगे तब एक प्रीतिमान् सबसे आगे गया और कहनेलगा कि मुझ को प्रथम मारो तब राजाने पूछा कि तू शीघ्रही आगे काहेको आयाहै तब उस प्रीतिमान् ने कहा कि ये सब मेरे प्रियतम हैं ताते इस प्रकार चाहताहूं कि कोई क्षण अपनी आयुर्बल इनपर वारों तब राजा ने कहा कि जो इनके हृदय विषे ऐसी प्रीति और प्रतीति है तिनको मारना प्रमाण नहीं ताते सबोंको छुड़ाय दिया बहुरि एक और वार्ता है कि एक प्रीतिमान् अपने मित्रके गृहविषे आया और वह मित्र अपने गृहविषे न था तब उस प्रीतिमान् ने मित्रकी दासी को बुलाकर धनकी संदूक मँगाया और उसको आपही खोलकर जो कुछ चाहिये था सो लेलिया बहुरि जब वह मित्र अपने गृह विषे आया तब यह वार्ता सु नकर बड़ा प्रसन्न हुआ और प्रसन्न होकर उस दासी को भी मुक्त करदिया ॥ बहुरि एक और वार्ताहै कि एक संतके पास एक पुरुष आकर कहनेलगा कि मैं तुम्हारे साथ मिताई किया चाहताहूं तब उन्होंने कहा कि तू मिताई की युक्ति को जानताहै तब उस पुरुषने कहा कि मैं तो नहीं जानता बहुरि संतजन ने कहा कि जब धन और सब सामग्रीको मुझसे अधिक प्रियतम न राखे तब प्रीति की युक्ति पूर्ण होती है तब उस पुरुषने कहा कि मुझको यह अवस्था तो प्राप्त नहींहै तब उस संतने कहा कि तू प्रीतिका अधिकारी नहीं ताते अपने गृहको जावो ॥ बहुरि एक वार्ता है कि एकबार महापुरुष बन विषे गयेथे और एक और संगी भी उनके साथ था तब महापुरुषने एक वृक्षमें से दो दन्तधावन तोड़ी सो सीधी और कोमल दतौन तो उस संगी को दी और कठोर दतौन आपने ली तब उस संगीने कहा कि हे महाराज आपने सीधी दतौन क्यों न ली तब महा- पुरुष कहनेलगे कि हे भाई। जब एक सबु भी किसी की संगतिकरे ये सबगी उस की मिताई को निर्बाह करना प्रमाण है और मिताई का निर्बाह यह है कि अ पने आप से मित्रको अधिक सुख दीजिये १ बहुरि दूसरी युक्ति यहहै कि मित्र

के संबन्धि कार्य्यों विषे सहायता करे और मित्र के कहे बिनाही उसके कार्य्य विषे सावधान होवे और चित्त की प्रसन्नता सहित निर्वाह करे काहे से कि आगे ऐसे प्रीतिमान् हुये हैं कि अपने मित्र के कार्य को सम्बन्धियों से भी अधिक जानते थे इसी पर एक सन्त ने कहा है कि भगवत् मार्ग के मित्र मुझ को स्त्री पुत्रादिकों से भी अधिक प्रियतम हैं काहे से कि वह धर्म की दृढ़ता विषे सहाय करनेहारे हैं बहुरि एक और सन्त ने भी कहा है कि जब मेरे साथ मेरे शत्रु को कुछ प्रयोजन होता है तब मैं उसके भी प्रयोजन को शीघ्रही किया चाहता हूं फिर मैं अपने प्रियतमों के अर्थ विषे क्योंकर सावधान होऊंगा २ बहुरि तीसरी युक्ति यह है कि रसना करके मित्र का गुणही वर्णन करे और अवगुण को प्रसिद्ध न करे और जब कोई इसके मित्र की निन्दा करे तब उसको भी वर्जे और ऐसे जाने कि मेरा मित्र अब भी मेरे निकट है ताते जिस प्रकार मित्र के सम्मुख वचन करता है तैसेही पीछे भी मित्र की भलाई चिन्तते करे बहुरि मित्र का वचन सुनकर खंडन न करे और उसकी गुप्त वार्ता को प्रकट न करे और जब वह मित्र इस के कार्य्य विषे कुछ अवज्ञा करे तौ भी उसको कुछ न कहे और रोष न करे और ऐसे करके जाने कि यह मनुष्य सदैवही भूला हुआ है और मुझसे भी तो कितनी अवज्ञा भगवद्भजन विषे होजाती हैं ताते इस प्रकार समझ करके रोष को मिटावे और जब सर्वथा ऐसेही मनुष्य को ढूंढ़े कि जिस विषे अचेतता और अवगुण कुछ भी नहीं पायाजावे तब यह वार्ता भी महादुर्लभ है और इस करके किसी के साथ प्रीति न करेगा ताते मिताई से अप्राप्त रहता है इसीपर महापुरुष ने भी कहा है कि प्रीतिमान् लोग गुण की ओर दृष्टि रखते हैं और यद्यपि किसी के कुछ अवगुण भी देखते हैं तो भी जानते हैं कि अकस्मात् किसी कारण करके इससे भी यह अवज्ञा हुई होवेगी और जो कपटी मनुष्य होता है सो सर्वदा अवगुण की ओरही देखता है ताते चाहिये कि जिस विषे एक गुण भी देखे तब उसके दश अवगुणों का विचार न करे इसी पर महापुरुष ने भी कहा है कि कुसंगी मनुष्यों से भगवत् रक्षाही करे ॥ सो कुसंगी मित्र वह है जो अवगुण देख कर प्रसिद्ध करे और शुभगुणों को छुपायराखे ताते चाहिये कि मित्र के अवगुणों को विचारे नहीं और मित्र के ऊपर मन्दा अनुमान करे काहे से कि बुरा अनुमान करना महानिंद्य है इसीपर एक सन्त ने भी कहा है कि मित्र के अवगुणों को

प्रसिद्ध करने का दृष्टान्त यह है कि जैसे कोई पुरुष अपने मित्र को सोता देख कर उसका वस्त्र उतार लेवे और उसको नग्न करे सो जिसप्रकार कर्तव्य महानिंद्य है तैसेही मित्रका अवगुण प्रकट करना इससे भी अधिक निन्द्य है ताते बुद्धिमानों ने कहा है कि जिसप्रकार भगवत् तेरे गुणों और अवगुणों को जानता है और अवगुणों को प्रकट नहीं करता तैसेही मित्र भी वही है जो अवगुणों को जानकर प्रकट न करे तब उसकी संगति भी लाभदायक होती है इसी विषयपर एक वार्ता है कि किसी मित्रने अपने मित्र के आगे गुप्तभेद प्रकट किया था और फिर कहने लगा कि तुमने यह भेद हृदय विषे राखा है तब उस मित्र ने कहा कि मैंने तो बिसार दिया है इसप्रकार के मित्रों में कपट और अन्तर्वासना करके अथवा और किसी अवसर विषे अकस्मात् जो मित्रको त्याग करता है सो मिताई का अधिकारी नहीं होता ताते मिताई की युक्ति यह है कि मित्र के भेदको प्रकट न करे और मित्र के आगे भी किसीकी निंदा न करे बहुरि सूक्ष्म वचन भी न कहे और मित्र के वचन का खंडन भी न करे बहुरि कोई कार्य अपना मित्र से दुरावे नहीं ताते ऐसे जानना कि मित्र के साथ नित की विपरीत वचन करके खंडन करने से मिताई सामर्थ्य नष्ट होजाती है काहेते कि वचनको खंडन करने का अर्थ यह है कि मित्रको मूर्ख करना और आपको बुद्धिमान् जनावना सो यह मिताई के चिह्न नहीं इसी पर महापुरुषों ने भी कहा है कि जिस तेरा मित्र तुझ को ऐसे कहे कि उठ खड़ा हो तब तो भी पूछने का प्रमाण नहीं कि कहां चलोगे काहेते कि प्रीति की उत्तम रीति यही है कि इसका अभी कहना मित्र की आज्ञा और प्रसन्नता अनुसार होवे ४ बहुरि चौथी युक्ति यह है कि सर्वदा अपने मित्र की स्तुति करे और मधुर वचन करके उसके गुण भेदको पूछे बहुरि प्रसन्नता और शोक विषे उसका साथी होवे अर्थ यह कि मित्र की प्रसन्नता और शोक को अपने से भिन्न न जाने और मित्रको शुभ वचन करके बुलावे और जब मित्र से कुछ भलाई देखे तब प्रसन्न होवे और महाराज का आरम्भ जाने ५ बहुरि पांचवीं युक्ति यह है कि मित्र को परस्पर धर्म की विद्या सिखावे काहेते कि संसार के दुःखों से मनुष्यों के छूटने की चेष्टा करनी विशेष करनी चाहिये कि यह शुभ कर्तव्य विषे जो कुछ आलस्य करे तो भी मना उपदेश करके उनको सर्व ओरसे दृढ़ करावे और भगवत् के भोग का निश्चय दृढ़ावे पर मित्रको उपदेश करना एकान्त

और विषे प्रमाण है इस करके कि प्रसिद्ध ताड़ना करने विषे मित्रका अपमान होताहै ताते मित्र को कोमलता और दया संयुक्त सिखावे इसी पर महापुरुष ने भी कहा है कि प्रीतिमान् का दर्पण प्रीतिमान् होताहै अर्थ यह कि उस करके अपने अवगुण को देखना है ताते यों चाहिये है कि जब वह मित्र एकान्त और विषे दयाकरके समझावे तब मित्र का उपकार जाने और क्रोधवान् न होवे काहे से कि अवगुण जनावने का दृष्टान्त यहहै कि जैसे किसी के वस्त्रविषे सर्प होवे और उसने देखा न होवे और कोई मित्र उसको लखादेवे कि तेरे वस्त्र विषे सर्प है तब इस करके क्रोधवान् होना प्रमाण नहीं और उसका उपकार जानना प्रमाण है तैसेही सभी मलिन स्वभाव सर्प हैं और जीव को डसनेवाले हैं और इन के विषका प्रवेश परलोक विषे प्रत्यक्ष होवेगा ताते जो पुरुष इसके अवगुण लखावे सो इसका परममित्र है इसीपर एक वार्त्ता है कि एक प्रीतिमान् सन्तके निकट एक और सन्त आया और उससे पूछनेलगा कि हे मित्र तैंने मेरा कुछ स्वभाव कोई सुनाहै तब उसने कहा कि मुझसे मत पूछ बहुरि उसने अतिदीनता सहित कहा कि तुम संकोच त्यागकर मेरा अवगुण मुझको लखावो तब वह सन्त कहने लगा कि मैंने तुम्हारे आहार और वस्त्रों की अधिकता सुनी है सो यह सुनकर उसने कहा कि अब फिर मैं यों भी न करूंगा पर जो और कुछ भी सुनाहोवे सो भी कहो तब उसने कहा कि और तो कोई अवगुण तुम्हारा मैंने नहीं सुनाहै इसीपर महापुरुषने भी कहाहै कि जो पुरुष उपदेश करनेवाले को प्रियतम नहीं राखे तब जानिये कि उसकी बुद्धिपर अभिमान की प्रबलता है ताते चाहिये कि मित्र को प्रीतिसहित धर्म उपदेश करिये और पाप से बर्जित रखिये पर जब वह मित्र तेरेही किसी कार्य विषे अवज्ञा करे तब उस को क्षमाही करना योग्यहै बहुरि जब ऐसी अवज्ञा होजावे कि उस करके मित्रताकी नष्टता होती होवे तब एकान्त में समझा देना प्रमाण है मित्रता का त्यागना प्रमाण नहीं पर जब वह कोमल वाणी करके न समझे और हृदय की निष्पापमानी करके कठोर वचन कहना पड़े तब इस से तो मित्रता का त्याग देना विशेष है काहे से कि मित्रता और संगति का प्रयोजन यही है कि शुभगुणों की वृद्धि होवे और सहनशीलता प्राप्त होवे सो जब संगति विषे स्वभाव की कठोरता होने लगी तब उसको त्यागनाही भला है ५ बहुरि छठी युक्ति यह है कि अपने मित्र

के निमित्त भगवत् के आगे प्रार्थना किया करे और उसकी मना चितवे इसी पर महापुरुषने भी कहाहै कि जब कोई अपने मित्र के निमित्त प्रार्थना करताहै तब इसको भी भलाई प्राप्त होतीहै ६, बहुरि सातवीं युक्ति यहहै कि मित्रकी मित्रताका निर्वाहकरे सो निर्वाहका अर्थ यहहै कि जब कोई इसके मित्रकीनिन्दा करे तब निन्दकको शत्रुजाने और निन्दा सुनकर मित्र की मित्रताका त्याग न करे ७ बहुरि, आठवीं युक्ति यहहै कि मिताई में दम्भ न करे अर्थात् बहुत स्तुति करनी और अपना प्यार प्रकट दिखावना सो यह सब निंद्य और दम्भ होताहै ताते चाहिये कि जिसप्रकार अपने आपसे बड़ाई कोई नहीं चाहता ऐसेहीमित्रमें भी समानता होवे और केवल हृदयही की प्रीति होवे इसीपर एक सन्तने कहाहै कि जिस मित्र की मनसा के निमित्त कुछ उद्यम और क्लेश करना पड़े तब वह मित्रही भला नहीं होता ८ बहुरि नवें युक्ति यह है कि अपने आपको मित्र से नीचजाने अर्थात् मित्र से उपकार और सेवा की चाह न करे इसीपर एक वार्त्ता है कि कोई पुरुषने एक सन्त के निकट कईबार कहा कि इस समय में धर्ममार्गका मित्रपना महादुर्लभहै, तब सन्तने कहाहै कि जब तू ऐसे मित्र को चाहे कि जो सबप्रकार तेरा सेवक होवे और तू उसका सेवक न होवे तब ऐसे मित्र तो निस्सन्देह दुर्लभ हैं और जब तू सेवक हुआ चाहेगा तब स्वामी होनेवाले तो मेरी सभा में बहुत हैं ताते बुद्धिमानों ने इस प्रकार कहा है कि जो अपने आपको मित्र से विशेष जानता है सो पापी होताहै और जब आपको उसके समान देखता है तब भी दुःखी रहता है और जब सब से नीच जानता है तब उत्तम लाभको पावता है ९॥

तीसरा सर्ग॥

संसारी, मित्रों और सम्बन्धियों, और पड़ोसियों और दासोंके मिलाप के वर्णनमें॥

ताते, जान तू कि जितना किसी का सम्बन्ध व्यवहार में अधिक होताहै तितनाही उसका निर्वाह करना प्रमाणहै, पर सब सम्बन्धों से जो उत्तम सम्बन्ध है सो भगवत् मार्गकी मित्रताहै और उस मित्रता की युक्ति मैंने पूर्व वर्णन करी है बहुरि जिस मनुष्य के साथ अधिक प्रीति न होवे और कुछ एक सांसारिक सम्बन्ध पायाजावे तो उसके मिलाप विषे भी कई युक्तियां चाहिये सो प्रथम युक्ति यहहै कि जो पदार्थ इसको अनिष्टहोवे तब उस पदार्थ की प्राप्ति

दूसरे कोभी न चाहे इसीपर महापुरुषने भी कहाहै कि सर्वजीवोंका सम्बन्ध एक शरीरके अंगोंकीन्याईंहै सो जब एक अंगको कुछ दुःख होताहै तब सर्वशरीर को दुःख पहुँचता है तैसेही चाहिये कि किसी जीवका दुःख न चितवे १ बहुरि दूसरी युक्ति यहहै कि मन वचन कर्म करके किसीको दुखावे नहीं पर महापुरुष ने भी कहाहै कि जिस पुरुषकी रसना और हाथों करके कोई दुःख न पावे वह धर्मवान् कहाता है ताते अपने रसना और कर्म को ऐसी मर्यादा विषे रखिये कि किसी प्रकार किसी मनुष्य को दुःख न पहुँचे २ बहुरि तीसरी युक्ति यह है कि अभिमान करके आप को किसी से बड़ा न जाने काहे से कि अभिमानी मनुष्य भगवत् की ओर से विमुख होताहै इसीपर महापुरुष को आकाशवाणी हुई थी कि दीनता और नम्रता को अंगीकार करो और अभिमानी न होवो ताते चाहिये कि किसी को नीच न देखे काहे से कि जिस को नीच देखता है सो जब वह सन्त होवे और यह उस को जानता न होवे तब क्या आश्चर्य है क्योंकि बहुत सन्त ऐसे गुप्त रहते हैं कि उनको भगवत् बिना और कोई नहीं जानता ३ बहुरि चौथी युक्ति यहहै कि जब कोई इस को किसी की निन्दा सुनावे तब उस को श्रवण न करे काहे से कि यथार्थीपुरुष के वचन पर प्रतीति करनी प्रमाण है और निन्दकपुरुष यथार्थी नहीं होता इसी पर एक सन्तने कहा है कि पिशुन और निन्दक अवश्यही नरकगामी होते हैं और योंभी जानना चाहिये कि जो पुरुष प्रयोजन बिना किसीका छिद्र तुझ को सुनावताहै वह तेरा छिद्रभी लोगों के आगे अवश्यही वर्णन करेगा ४ बहुरि पांचवीं युक्ति यह है कि सबको आगेही प्रणाम करे और किसी के साथ विरोध न राखे और क्रोधित होय करके किसी से मौनता न करलेवे ताते जब किसीसे कुछ अवज्ञा होजावे तबभी क्षमाही करे ५ बहुरि छठी युक्ति यहहै कि सब किसीके साथ यथा शक्ति मित्रता और उपकार करे और उसकी भलाई बुराई की ओर न देखे काहेसे कि जो वह उपकारका अधिकारी नहीं तो तू तो उपकार करनेका अधिकारी है ताते नेकी उपकारका और धर्मकी दृढ़ता यही है कि सबके ऊपर दया करनी ६ बहुरि सातवीं युक्ति यहहै कि जो आपसे बड़ा होवे तिसकी बड़ाई राखे और जो आपसे लघु होवे तिसके ऊपर दया करे इसीपर महापुरुष ने कहाहै कि जब कोई अपने से बड़ोंकी बड़ाई रखताहै तब उसकी बड़ाई महाराज ओरसे रखा

इसीपर सदापुरुषने भी कहाहै कि जब कोई तुम्हारा विरोधी होवे तौभी उसके साथ भलाईही करो और जब तुमको कुछ देवें नहीं तब तुमही उसको कुछदेवो ॥

चौथा सर्ग ॥

एकांतके वर्णन में ॥

॥ तातें जान तू कि इस वार्ताविषे बुद्धिमानों ने परस्पर चर्चा कियाहै सो कितनों ने तो आचार्यों की सङ्गति को विशेष कहाहै और कितनों ने एकान्त रहने को प्रमाण कियाहै पर जो जिज्ञासु अन्तर्मुख हुये हैं तिन्हों ने एकान्त को अङ्गीकार कियाहै इसीपर एक सन्तने कहाहै कि जिसने भोगोंसे संयम किया है तिसको जगत्‌की कामना कुछनिहीं रही और जिसने ईर्षा का त्याग किया है सो दयावान् होताहै और जिसने कुछ पदेन पुरुषार्थ कियाहै सो अविनाशी सुखको प्राप्त हुआहै और जिसने एकान्त को अङ्गीकार कियाहै सो जगत् के जञ्जालोंसे छूटाहै और एक औरसन्तने कहाहै कि भजन के अभ्यासका मूल मौन और एकांतहै और एक औरसन्तने कहाहै कि जो पुरुष मुझको प्रणाम नाकरे और जब मैं रोगी होऊं तब मुझको आयकरके न पूछे तब मैं उसका उपकार जानताहूं और किसी जिज्ञासु ने एक सन्तसे कहाथा कि मैं तुम्हारी सङ्गति किया चाहताहूं तब उसने कहा कि जब मेरी मृत्यु होवेगी तब तू किसके सङ्ग रहेगा तब उसने कहा कि तब मैं भगवत्‌के आश्रित रहूंगा तब उसने कहा कि तू अबही भगवत्‌का सङ्गीहो भी एकान्त और सङ्गति की महिमा विषे ऐसेही वचन बहुत आये हैं परन्तु जबलग इनके गुण और अवगुण नहीं प्रकट किया जावे तबलग समझना इस भेदका कठिनहै तातें मैं एकान्त के षट्गुण वर्णन करताहूं फिर सङ्गति के षट्गुण वर्णन करूंगा सो एकान्त का प्रथमगुण यह है कि भजन और विचार की सिद्धता एकान्तविषे होती है और सर्व भजनोंका मूल यहहै कि भगवत्‌की कारीगरीका विचार करना और इससेभी उत्तम साधन यहहै कि अपने चित्तकी वृत्तिको भगवत्‌के स्वरूप विषे लीनकरना और आप सर्व पदार्थों को विस्मरण करना सो ऐसी एकाग्रता एकान्त बिना सिद्ध नहीं होती काहेसे कि माया के सर्व पदार्थ इस जीवको भयमान करनेवाले हैं और जिज्ञासुकी बुद्धिमें ऐसा बल दुर्लभ होताहै जो संसारविषे निर्भय रहे तातें अभ्यासके निमित्त एकान्तविषे रहनाही विशेषहै काहेसे कि महापुरुषों आदि

अवस्थामें पहाड़की कंदरामें जा मिलरहेथे बहुरि जीवसूर्ण अवस्था को प्राप्त हुये अभ्यास करिके तबऐसे निर्लेपहुये कि शरीर करके लोगों में रहे और चित्त उन का भगवत्के चरणों में रहा और महापुरुषने यों कहाभीहै कि मुझको भगवत् की प्रीतिने और सबकी प्रीति से विरक्त कियाहै सो इस अवस्थाका प्राप्त होना आश्चर्य नहीं इस करके कि यह जीव परमपद का अधिकारी है इसीपर एक सन्तने कहाहै कि मैं तीसवर्ष से भगवत्हीके साथ बचन कहताहूं और यह लोग ऐसे जानते हैं कि हमारे साथ बोलताहै ताते प्रसिद्ध हुआ कि इस अवस्थाकी प्राप्ति असम्भव नहीं काहेसे कि जब किसी मनुष्य को किसी स्थूल पदार्थ की अधिक प्रीति होतीहै तो भी ऐसा लीन होजाताहै कि लोगों में बैठाहुआभी उनके बचनोंको नहीं सुनता और उन को देखता भी नहीं परऐसी अवस्था का अभिमान करना अयोग्य है काहेसे कि बहुत पुरुष तो ऐसेहोते हैं कि लोगोंके मिलाप विषे उनकी वृत्ति विसरजाती है इसीपर एकवार्ता है कि जैसे एकतपस्वी से किसीने पूछाथा कि तू अकेलाही रहताहै तब तपस्वी ने कहा कि मेरा मित्र भगवत्है ताते मैं अकेला नहींहूं। बहुरि एक और सन्तने किसी एकान्ती से पूछाथा कि तू अकेला क्यों रहताहै और तैंने संग का किस निमित्त त्याग कियाहै तब उसने कहा कि मैं अपने कार्य्यमें ऐसा मग्नहूं कि किसीके मिलाप की इच्छा मुझको नहीं रहती बहुरि उस सन्तने पूछा कि वह कार्य क्याहै तब उसने कहा कि क्षण क्षणमें सर्वदा भगवत् के उपकार होते रहतेहैं और मुझ से पाप होते रहते हैं ताते मैं अपने पापों को क्षमा करावता हूं और महाराज के उपकारों की धन्यवाद करता रहताहूं इसीकारणसे मुझको किसी के मिलापकी आवश्यकता नहीं रहता और न अभिलाष करताहूं बहुरि उस सन्तने कहा कि तूधन्यहै। बहुरि एक जिज्ञासु किसी सन्तके निकट गयाथा तब उन्हों ने पूछा कि तू किस निमित्त आयाहै तब उसने कहा कि आपके संगमें विश्राम के निमित्त आयाहूं तब उन्होंने कहा कि जिसने भगवत्को पहिचाना है वह और किसी के मिलाप में क्योंकर विश्राम चाहता है बहुरि एक और सन्तने कहा है कि जब रात्रि आती है तब मैं प्रसन्न होता हूं कि एकान्तमें एकान्त होकर भगवत् के भजनमें स्थित रहूंगा बहुरि जब सूर्य उदय होते हैं तब मुझको शोक होताहै कि दिनमें औरोंकी सोंग का मिलाप होवेगा बहुरि एक और सन्त

नें कहाहै कि लोगोंके वाद विवादसे जिसकी प्रीति महाराजके भजनमें अ- धिक नहीं होती वह पुरुष बुद्धिहीन है और उसका हृदयभी मलिन है अपनी आयुष् व्यर्थ वितावताहै बहुरि एक और बुद्धिमान्ने कहाहै कि जिस पुरुषको किसी मनुष्य के मिलने और देखनेकी अभिलाष उपजती है तब जाना जाता है कि इसके हृदयमें आत्मसुख का रस कुछ नहीं तो ते स्वज पदार्थों की मह त्वता ज्ञाहताहै और यहभी कहाहै कि लोगों के मिलापमें जिस पुरुष की प्रीति है वह अत्यन्त निर्द्धन है ताते प्रसिद्ध हुआ कि उत्तम भजन हृदयमें का स्पर्श है और अभ्यासहीं करके भजन की रहस उपजतीहै बहुरि विचार और ज्ञान की प्राप्ति अभ्यासहीं करके होतीहै जो यह सर्व साधनों का फलहै काहेसे कि इस जीवको परलोक में अवश्य जानाहै सो जब यह पुरुष महाराजाके भजन की एकत्रताके साथ वहां जाताहै तब उत्तम भाग्यवान् कहाताहै पर भजनकी रहस और विचारका अभ्यास एकांत विना हो नहीं सक्ता ॥ २ बहुरि दूसरा गुण यहहै कि एकान्त करके कितनेही पापों से छूटता है काहेसे कि लोगों के मि- लाप में चार पाप तो अवश्यमेव उपजते हैं और इन पापोंसे कोई विरलाही छूटताहै सो प्रथम पाप निन्दा है कि निन्दा करके धर्म नष्ट होताहै और दूसरा पाप यहहै कि जब किसी मनुष्यका अपकर्म देखकर उसको उपदेश न करे तब शास्त्रोंकी मर्याद से विमुख होता है और जब उपदेश करके उस को पाप से वर्जना चाहै और उसकी रुचि न होवे तब उस पुरुषके साथ विरोध होताहै बहुरि तीसरा पाप दम्भ और कपटहै सो दम्भसे छूटना भी महाकठिनहै काहे से कि जब किसी की मनोहारता और उसकी प्रीति में दृढ़होवे तब विशेषता को पाताहै और जब ऐसे न करे तब उनके विषे नमे नहीं छूट सक्ता बहुरि ऐसाही पाप तो यह है कि जब अज्ञानकेही किसीको मिलताहै तब ऐसे कहता है कि मुझको तुम्हारे दर्शनकी बहुत अभिलाषथी सो जबकि इसके हृदयमें उसकी प्री- तिही कुछ न होवे तब ऐसा कहना झूठहीनाहै और जब इसप्रकार ना कहै तब उसकी मनोहार नहीं होती बहुरि मनोहारके निमित्त उससे पूछताहै कि तेरी क्या दशाहै और तेरे सम्बन्धी कैसे हैं पर हृदयमें उसकी प्रीति कुछ नहीं रखता तब यह केवल पाखण्डही होता है इसी पर एक सन्तने कहा है कि जब किसी के साथ अपना प्रयोजन होताहै तब अपने मनोरथ के निमित्त इतनी स्तुति का-

तेहैं कि अपने धर्म से भ्रष्ट होजाते हैं और वह धर्म में भी सिद्ध नहीं होते तो बहुरि कपट करके भगवत् की ओर से विमुख होते हैं इसीपर एक और वार्त्ता है कि एक पुरुष किसी सन्त के पास आया था तब सन्त ने पूछा कि तू किस निमित्त आया है तब उसने कहा कि तुम्हारे दर्शन को प्रीति करके आया हूं तब उन्होंने कहा कि तू तो प्रीति के कुछ करने को आया है काहेसे कि तू मेरी होती और अनहोती स्तुति करेगा जिसमें तेरी बड़ाई को प्रकट करेगा सो यह सबही कूड़ और पाखण्ड है ताते जो पुरुष आपको संसार के मिलाप में भी बचाय रखता है उसको मिलाप करके कुछ विघ्न नहीं होता पर यह अवस्था महादुर्लभ है इसी कारण से जो आगे प्रीतिमान् हुये हैं वह परस्पर एक दूसरे के व्यवहार की वार्त्ता नहीं पूछते थे इसीपर एक वार्त्ता है कि एक प्रीतिमान् ने एक प्रीतिमान् से पूछा था कि तेरी क्या अवस्था है तब उसने कहा कि सुख और आनन्द है तब दूसरे सन्त ने कहा कि सुख आनन्द तो तबही होवेगा जब आत्मसुख को प्राप्त होगे बहुरि एक और सन्त से भी किसी ने पूछा था कि तुम्हारी क्या अवस्था है तब उन्होंने कहा कि जिसपद करके सुख प्राप्त होता है तिसको प्राप्त होना मेरे हाथ नहीं और जिन कर्मों करके दुःख प्राप्त होता है तिनका निवृत्त करना भी मुझसे नहीं होसक्ता बहुरि और सर्वदा अपनी क्रिया में बंधमान रहता हूं और कार्य मेरा महाराज के हाथ है ताते मुझसा दुखी और अनाथ कोई नहीं है बहुरि एक और सन्त से किसी ने पूछा था तब उन्होंने कहा कि मैं महारोगी और निर्बल हूं ताते अपनी प्रारब्ध को सदा भोगता हूं और कालको और सदा निहारता हूं ॥ बहुरि इसी प्रकार किसी ने एक और सन्त से पूछा था कि तेरी क्या अवस्था है तो उन्होंने कहा कि सुख है तब उसने कहा कि सुख तो तब होवे जब नरकों के दुःख से निर्भय हूजिये बहुरि एक और सन्त से किसीने पूछा था कि तुम्हारी क्या अवस्था है तब उन्होंने कहा कि जो पुरुष प्रभात समय उठे और इतना भी न जानसके कि मैं रात्रिपर्यन्त जिऊंगा अथवा न जिऊंगा तब उस की क्या अवस्था वर्णन करिये बहुरि एक सन्त से किसी ने पूछा कि तुम्हारी क्या अवस्था है तब उन्होंने कहा कि जिस पुरुष की आयुर्बल तो घटती जावे और पाप बढ़ते जावें उसकी क्या अवस्था वर्णन करिये बहुरि एक और बुद्धिमान् से किसीने पूछा था कि क्या अवस्था है तब उन्होंने कहा कि जिसका न

हाराजका खाताहूं और आज्ञा मनकी मानताहूं बहुरि एक और सन्तसे किसी ने अवस्था को पूछा तब उन्होंने कहा कि जिसकी आयुर्वल क्षण क्षण घर्मा जावे और वह जाने कि मैं बड़ा होता जाताहूं तब उसकी क्या अवस्था वर्णन करिये बहुरि एक और सन्त से किसी ने पूछा था कि तुम्हारा क्या हाल है तब उन्होंने कहा कि जिस पुरुषको अवश्यही मरनाहोवे और परलोक में दण्डका अधिकारी होनाहोवे तब उसकी कौन अवस्था कहिये बहुरि एक सन्तसे किसी ने पूछा कि तुम्हारी क्या अवस्थाहै तब उन्होंने कहा कि जो मेरा एक दिनभी सुखसे बीते तौभी मज़ा है तब उसने कहा कि क्या अब तुमको सुख नहीं तब उन्होंने कहा कि जिस दिन मुझसे कोई पाप न होवे तब मैं सुखका दिन वही जानताहूं बहुरि एक प्रीतिमान्से मृत्युसमय किसीने पूछाथा कि तुम्हारी अब क्या अवस्था है तब उन्होंने कहा कि जिसको दूरदेश जाना होवे और उसके पास तोशा कुछ न होवे और महाघोर अँधेरे में जिसका मार्ग होवे तिससमय मार्ग में जावना जिसको होवे और संगी भी कोई न होवे बहुरि न्याय करने वाले महाराजके सन्मुख पहुँचना होवे और वहां आपको बचनेका आश्रय भी कुछ न होवे तब उसकी क्या अवस्था वर्णन करिये ॥ बहुरि एक और सन्तने किसी पुरुषसे पूछाथा कि तेरा क्या हालहै तब उसने कहा कि मुझको पांचसौ रुपये देने हैं तिसके शोच में रहताहूं तब उन्होंने सहस्र रुपये उसको देकर कि पांचसौ तो देना देवो और पांचसौ रुपयेसे अपनी जीविका करो और फिर इस प्रकार कहनेलगे कि जब प्रीति करके किसी की अवस्था पूछिये और उसका दुःख सुनकर सहायता न करिये तब वह पूछना हो कपट होताहै ताते इस तरह चाहिये कि जब किसीसे कुछ पूछिये तब उसका प्रतिपालन करिये अथवा पूछिये नहीं ताते आगे जो प्रीतिमान् सन्त हुये हैं तिनकी ऐसी अवस्थाथी कि यद्यपि व्यवहार में परस्पर अपनी प्रीति प्रकट करतेथे तौभी हृदय करके एक दूसरेको ऐसा प्रियतम रखते थे कि जब किसीको कुछ अर्थ होताथा तब अपनी कुछ सामग्री दुराय नहीं रखतेथे और इससमय फिर अब ऐसे लोग प्रकटहुये हैं कि एक दूसरेकी मनोहारके निमित्त उनके सम्बन्धियों और पशुओंको भी हाल पूछतेहैं और जब उसको एक पैसेकाभी अर्थ होताहै तो विमुख होजाते हैं सो यह सच्ची प्रीति नहीं कहाती इसीका नाम कपटकी प्रीतिहै ताते इस जगत्के मित्रपना

ऐसाही स्वभाव है कि जब हृदयपूर्वक इनके साथ मिलाप करिये तब कपट और पाखण्डके समुद्रमें डूबना होता है और जब उनको मिलकर ऐसे मनोहार न करिये तब यह लोग विरोधी होजाते हैं और इसका छिद्र ढूंढ़ने लगते हैं और इस करके अपना धर्मभी खोवते हैं और इसके धर्मको भी नष्ट कियाचाहते हैं बहुरि जगत्के मिलापमें चौथा पाप यहहै कि यह मनुष्य जिसकी संगति करताहै तब अवश्यही उसका स्वभाव इसके हृदय में दृढ़ होजाता है और यद्यपि इसको उस स्वभावका ज्ञानहीं कुछनहीं होता तौभी निस्सन्देह वह स्वभाव बढ़जाता है और उसकरके कितनेही पाप उपजते हैं और अचेत पुरुषोंकी संगति में यहभी अचेत होजाता है बहुरि जब मायाधारियोंकी संगति करताहै तब इस कोभी माया की तृष्णा उपज आती है और यद्यपि किसी भोगको निन्द्यही जानताहै पर भोगी मनुष्यों की संगति करके उस कर्मकी दोषदृष्टि नष्ट होजाती है बहुरि जब किसी अपकर्मकी वार्त्ता सुनता है तब इसके हृदय में भी उसकी मलिनता प्रवेश करजाती है जैसे महापुरुषोंकी वार्त्ता सुनकर इसका हृदय कोमल होजाताहै तैसेही भोगियों और पापियोंकी वार्त्ता सुनकर इसकोभी रुचि उपजआतीहै ताते प्रसिद्ध हुआ कि जिसकी वार्त्ता सुनने से इसका हृदय मलिन होवे तब उसकी संगति में क्यों न मलिनता उत्पन्न होवेगी इसीपर महापुरुष ने भी कहा है कि कुसङ्गी मनुष्यों की संगति ऐसीही है जैसे कोई लुहार के निकट जायबैठे अर्थ यह कि यद्यपि अपने वस्त्रको जलने से बचायराखे तौभी उष्णता और धुआं तो अवश्यही पहुँचेगा बहुरि सात्त्विकी मनुष्योंकी सङ्गति जो है सो गन्धीके हाट की नाईं है कि यद्यपि उससे मोल करके सुगन्ध न लेवे तौभी उसकी सुगन्धता तो निस्सन्देह नासिका में पहुँचती है तात्पर्य्य यह है कि मनमुखोंकी सङ्गति से अकेलाही रहना भला है और अकेला रहनेसे सात्त्विकी मनुष्यकी सङ्गति विशेष है इसीपर सतजनों ने कहा है कि जिस पुरुषकी संगति में मायाकी प्रीति दूर होवे और भगवत्की प्रीति उत्पन्नहोवे तब उसकी सङ्गति को उत्तमजानो और कदाचित् उसका त्याग न करो बहुरि जिसकी सङ्गति से तुमको विषयोंमें प्रीति होवे तिसका त्यागनाही भलाहै पर वह विद्यावान् जो मायाका लोभीहोवे और उसकी करतूति वचन के अनुसार न होवे तब उसकी सङ्गति का त्यागना अवश्यही प्रमाणहै काहेसे कि उसकी सङ्गतिकरके विद्याकी प्रीतिही घटजातीहै

क्योंकि जिज्ञासु की बुद्धि आदि अवस्थामें परिपक्व नहीं होतीहै सो विषयविषयीको देखकर जिज्ञासु भी ऐसा अनुमान करताहै कि जब गया हुआ त्यागने योग्य होताहै तब ग्रहण किया हुआ नहीं त्यागतेंहैं ता सो इसका दृष्टान्त यहहै कि जैसे कोई पुरुष भीतिसम्पन्न गिरगईहै तो उसतजाये और मुझसे इसप्रकार कहे कि यह गिरगई हलाहल अर्थात विषहै ताते इस के आहारकी त्यागि नापे लाकों तिस के वचनपर किसीको भी प्रीति नहीं आवती काहेसे कि उसकी भीतिकरके स्वयं आपही तृष्णाको उपजावता है और इससे यही सिद्ध होताहै कि यह पुरुष अपने लोभके निमित्त गिरगई को विष बतावताहै तैसेही ऐसे मनुष्यभी बहुतहैं कि उनको आपनियों अशुद्ध आहार और पापों विषे दोषदृष्टि होती है पर विषयवानों को निःशङ्क देखकर उनकी दोषदृष्टि भी नष्ट होजाती है और निडर दोषिन अपने लगते हैं इसीकारण से विषयवानोंका छिद्र पूछना ऐसा अयोग्यहै इस करके कि प्रथम तो निन्दा होती है दूसरे उसकी पापप्रीति कर और लोगभी दुःखी होजातेहैं ताते इतर जीवोंका अधिकारयहहै कि जब किसी विषयवानकेछिद्र को देखें तब दो प्रकार करके ग्लानि को निवारणकरे सो प्रथम तो ऐसे जाने कि यद्यपि इस विषयवान से यह अरक्षा हुई है तौभी इसकी क्रियाही पापों को क्षमा करनेवाली है पर जो मनुष्य क्रिया से भी हीन होवेगा उसकी अवज्ञा क्योंकर क्षमा होवेगी और दूसरे ऐसे जानना प्रमाण है कि क्रियावान के जो पापकर्म को बुरा जानता है और उस विषे पश्चात्ताप भी होताहै तो उसका मनैनो अ- सारी जीवों की नाई नहीं होता काहेसे कि क्रियावानोंकी शुद्धिमें संसारी जीवों की बुद्धि पाप नहीं होती जाते इतरजीवोंको चाहिये कि क्रियावानोंमें कभी दोषदृष्टि न राखें तब उनका अपना नाश न होवे तात्पर्य यहहै कि सत्पुरुषों मनुष्यों की सङ्गति भी इसके अर्थ की नाशकारी हैं ताते जिज्ञासु को चाहिये कि जगत् के मिलाप से एकान्तही रहनेको निश्चय करे यहही जिज्ञासु का गुण यहहै कि सब संसार में वैर भाव और ईर्षा और सब्यों के विरोध आदिक विघ्न बड़े उपजते हैं सो एकान्त रहनेवाला पुरुष उन सब विघ्नोंसे मुक्त रहताहै और जिसने जगत् के मिलाप को अङ्गीकार किया है तिसके धर्मकों नाश होनेका भय होता है इसी पारमार्थ पुरुषने भी कहाहै कि लोगोंकी सङ्गति त्यागकर अपने घर में बैठरहो और रसनाको अधिक बोलने से वर्जरक्खो और जिसको तुम भलाई

संयम करतेहो तिस को अंगीकार करो और जिस करतूति के भेदको तुम समझते नहीं सो उसको त्यागकरो ३ और आत्मपथ में निश्चय स्थित होवो और संसारके कार्यों को विस्मरण करो ३ बहुरि चौथा गुण यहहै कि एकान्त रहनेकरके यह पुरुष लोगों की उपाधि से मुक्त रहताहै काहेते कि जब लोगों के साथ मिलाप करताहै तब निंदा और दोषदृष्टि और लोभसे रहित नहीं होसक्ता और जब संसारी जीवों के सुख दुःख का संगी होताहै तब इसकी सब आयुर्बल व्यर्थ होती है और जब ऐसे न करे तब वह लोग इसको बुरा जानकर दुर्वचन कहते हैं बहुरि जब किसी के साथ तो मिलाप करे और किसी से एकान्त रहै तोभी विषमता होती है और वह भी एक दूसरे को देखकर विरोधी होते हैं ताते जब सर्वत्याग करके एकान्त में स्थित होता है तब सब विघ्नों से मुक्त रहताहै और कोई मनुष्य भी अप्रसन्न नहीं होता इसी पर एक वार्त्ता है कि एक भाग्यवान् सदा भगवत् वाक्य की पोथी को लेकर श्मशान में रहताथा तब किसी ने पूछा कि तुम अकेले क्यों रहतेहो तब उसने कहा कि एकान्त के समान सुखस्थान और कोई मैंने नहीं देखा और श्मशान समान उपदेश भी और कोई नहीं और पोथी के समान सुखदायक मित्र भी और कोई नहीं देखा ४ बहुरि पांचवां गुण यहहै कि एकान्ती पुरुष से सबलोग भी निराश होजाते हैं और यह भी सब से निराश होजाता है और यह आशाही सब दुःखों का मूल है काहेते कि जब धनवानों के साथ मिलाप करताहै तब अवश्यही इसको भी तृष्णा उपजती है बहुरि जब तृष्णा उत्पन्न हुई तब निरादर और अपमान को पाताहै इसी पर महापुरुष ने भी कहाहै कि मायाधारी जीवों का मुन्दरता को न देखो इस कारके कि यह माया इनको छलनेवाली है बहुरि यों भी कहाहै कि जब तुम धनवानों के सुख की ओर देखोगे तब भगवत् के उपकारसे विमुख होवोगे और अर्थिन दुःखों की अभिलाष लिये दुःख पावोगे ५ बहुरि छठवां गुण यहहै कि एकान्त करके मूर्खों और पापियों की संगति से छूटजाताहै सो मूर्खों की संगति कैसी है कि उनका देखनाही चित्त को मलिन करताहै इसीपर एक बुद्धिमान्‌ने कहाहै कि जैसे ज्वरवाले को ज्वर दुःखदायी होताहै तैसेही मूर्खों की संगति करके हृदय व नेत्र नाममें होताहै ताते एकान्त विषे ऐसे परोहै जैसे मुक्त रहताहै और त्यागारिकों ही इनके गुण भी अवगुण की ओर दृष्टि नहीं पड़ती ६ अब संग करनेवालों संगति के गुणों को भी जान तू कि

जितने अर्थ और परमार्थ के लाभहैं सो परस्पर मिलाप करके प्राप्त होते हैं और एकान्त करके उनको पा नहीं सके सो प्रथम लाभ यहहै कि विद्याभी समझि करके प्राप्त होतीहै और जबलग यथार्थविद्याका वेत्ता न होवे तबलग एकान्त रहना भी फलदायक नहींहोता काहेसे कि जो पुरुष विद्या पढ़े बिना एकान्तमें स्थित रहताहै तब निद्रा और व्यर्थ सङ्कल्पों में उसका समय बीतजाता है और यद्यपि यत्न करके भजनमें सर्वदा लगारहे तौभी यथार्थविद्याके समझे बिना अभ्यास नहींहोता और छलोंसे रहित नहीं होसक्ता बहुरि जब अभिमानसे भी रहित होवे तब जिसप्रकार भगवत् को जानना चाहिये सो यथार्थविद्या बिना किसी प्रकार जान नहींसक्ता और किसी ऐसे विपरीत निश्चयको अङ्गीकार करता है कि उस करके भगवतही से विमुख होजाताहै अथवा मन्मथ करके किसी कुमार्ग को अङ्गीकार करलेताहै और उस कुमार्ग के अवगुण को जान नहींसक्ता तात्पर्य यह कि एकान्तमें रहना भी किसी विद्यावानही को फलदायक होताहै इसीकारण से इतरजीवों को एकान्त प्रमाण नहीं कहा काहेसे कि इतरजीवों की बुद्धि रोगी की नाईं है अर्थ यह कि रोगी को वैद्यकी सङ्गति का त्यागकरना प्रमाण नहीं और जब वह रोगी आपही अपना उपचार करनेलगे तब शीघ्रही मृत्युको पावता है इसी कारण से शुभ उपदेश और विद्या का फल भी अधिक है इसीपर महापुरुष ने भी कहाहै कि जो पुरुष यथार्थविद्याको समझा होवे और उसके अनुसार उसकी करतूति भी होवे बहुरि और लोगों को भी उपदेश करे तब उसकी अवस्था महाउत्तम कहीजाती है सो किसी को उपदेश करना भी एकान्तमें नहीं होसक्ता ताते प्रसिद्धहुआ कि किसीको उपदेश करना और किसीसे कुछ उपदेशलेना यह दोनों एकान्तमें नहीं सिद्ध होसके पर उपदेश करनेका अधिकारी वह है जिसका मनसा निष्काम होवे और भगवान् के प्रयोजन रहितहोवे बहुरि विद्याभी वही सिखावे जिस करके धर्मकी प्राप्ति होवे और जिज्ञासुके अधिकार अनुसार उपदेश करे पर जब वह विद्यार्थी परमार्थ की युक्तिको अङ्गीकार न करे तब जानिये कि वह भी मानके निमित्तही पढ़ता है ताते जिज्ञासु को यही उपदेश करना योग्यहै कि उत्तम पवित्रताई हृदय की शुद्धताहै सो हृदय तबहीं शुद्ध होताहै जब मायिक पदार्थोंसे विरक्त होताहै ताते सर्व मन्त्रोंका बीजमन्त्र यही है कि स्थूल पदार्थ सब नाशरूप हैं और मायाके

सर्वदा सत्यस्वरूपहै ताते सर्वप्रकार महाराजहीका दासहुआ चाहिये और और किसी पदार्थ में सक्त न होवै काहेसे कि जो पुरुष अपनी वासनामें बंध्यमानहै वहै अपनी वासनाही का दास है और उसने यथार्थभेदको समझा नहीं ताते यथार्थभेद यहहै कि मलिन स्वभावों से मुक्तहोना और उत्तम स्वभावको ग्रहण करना और उत्तम विद्या विषे जिसकी प्रीति न होवे और नानाप्रकार के प्रवृत्ति मार्गोंकी विद्या पढ़नाचाहै तव जानिये कि यह विद्यार्थी धन और मानके निमित्त विद्या को पढ़ता है ताते उसको पढ़ावना प्रमाण नहीं काहेसे कि उसकी विद्या विघ्नोंका कारण है तात्पर्य यह कि मनही इस पुरुषका परममित्रहै और मन सर्वदा इसको दुःखोंमें डालता है पर जो पुरुष मनको विरुद्ध और विपरीत करके जीतनेका यत्न नहीं करता और और पन्थों के वाद विवाद और विरुद्ध विषे आसक्त होता है तब ऐसे जानिये कि उसका मनही उसको नचावता है बहुरि इसके हृदय में जो मलिन स्वभाव है जैसे ईर्षा अभिमान दम्भ धनकी प्रीति आदिके जितने अवगुण हैं सो इस जीवकी बुद्धिको नाश करनेवाले हैं और हृदयको भ्रष्ट करदेते हैं पर जो पुरुष ऐसे स्वभावों के दूर करनेका यत्न न करे और प्रवृत्तिमार्ग की क्रिया को सावधान होकर वारम्वार विचारा करे तव किसप्रकार निर्मल नहीं होता ताते जिस पुरुषकी मनसा निष्काम न होवे तव उसको विद्या पढ़ावनी ऐसी है जैसे कोई पुरुष किसी चोरको तलवारदेवे बहुरि जब इसप्रकार कोई प्रश्न करे कि तलवार तो चोरको शुभमार्ग में नहीं लगावती पर विद्या का पढ़ना ऐसा है कि यद्यपि इसकी मनसा सकाम होवे तोभी विद्या के बल करके अकस्मात् निष्काम होजाता है तव इसका उत्तर यहहै कि नाना प्रकार के मतों और पन्थोंकी जो विद्याहै सो इस विद्याकरके कदाचित् निष्कामता नहीं उपजती काहे से कि जिस विद्याकरके निष्कामता उत्पन्नहोतीहै और भोगोंसे मुक्तहोता है सो विद्या सन्तजनों के वचन हैं और यह विद्या ऐसी है कि सर्व मनुष्योंका अधिकारहै और सब किसीको लाभदायकहै और जब कोई पुरुष कठोरचित्त होवे और उसकी मनसा मलिनहोवे तव वह पुरुष अकस्मात् लाभ से अपात्र भी रहता है पर जो पुरुष इस उत्तमविद्या का ज्ञाताहै और वह अपने हृदयमें कुछ अभिमानकी अभिलाषा देखे तव उसको चाहिये कि किसी को उपदेश न करे काहे से कि यद्यपि उपदेशकरके और मनुष्योंको गुणहोना

बेपर ज्ञानकी अधिकता करके उसको भगवत की ओरसे विमुख होजाता है तो इसका दृष्टान्त यह है कि जैसे दीपक करके मंदिर आदिमें तो प्रकाश होता है पर वह दीपक क्षण क्षण विषे घटता जाता है तैसेही ज्ञानी के उपदेश करके औरों को लाभ होवे परन्तु उसको आपहानि का कुछ उपाय उस करके नहीं और यहि हेतु ज्ञानियोंके वास्ते एक सन्तने कहा है कि उन्होंने सात सन्दूक पोथियों के जमीं में दबा दिये और उपदेश लोगों को नहीं किया जब किसीने पूछा कि आप उपदेश क्यों नहीं करते तब उन्होंने कहा कि मेरे हृदयमें जब मौन करके रहने की अभिलाष होती तब मुझको उपदेश करना प्रमाण था परन्तु अपने हृदयमें उपदेश करनेकी अभिलाष पाकि देखता हूं जाते उपदेश करने को त्याग करके मैंने मौनको अङ्गीकार किया है इसीप्रकार एक सन्तने एक जिज्ञासु से कहाथा कि तेरी अवस्था तो उत्तम है परन्तु तुझको सभाकी प्रीति होती तब उसने पूछा कि सभा के साथ मेरी प्रीति क्योंकर है तब उस सन्तने कहा कि लोगके मिलाप और उपदेश करनेकी तेरेको अधिक प्रीति है तब उस जिज्ञासुने कहा कि मैंने अब इसमें लोगोंको उपदेश करनेका त्याग किया तात्पर्य यह है कि विद्या का पढ़ने और पढ़ानेहारा निष्कामी कोई विरला होता है जाते अधिकारी बिना विद्या का पढ़ाना नाही श्राप है और पढ़ाना भी उसीको प्रमाण है जिसको अपने कल्याण का प्रयोजन होवे तब ऐसे उपदेश करनेवाले को एकान्त रहने से उपदेश का करना विशेष है और उपदेश सुननेवाले को इस प्रकार चाहिये है कि उपदेश करनेवाले पर दोषदृष्टि न लावे और ऐसा जाने कि यह मुझको मेरे कल्याणके निमित्त उपदेश करता है अपने मानके निमित्त नहीं करता और अपने कल्याण के निमित्त यथार्थ उपदेश को अङ्गीकार करे और उसके ऊपर भावना शुद्ध करे पर जिसका हृदय मलिन होता है वह औरों पर भी भावना मलिन रखता है और उसको भी ज्ञानी नहीं जानता है २ बहुरि दूसरा लाभ यह है कि जीवों को प्रसन्नता पहुंचावनी भी संगति करके प्राप्त होती है काहेसे कि जिस पुरुषने एकान्त को ग्रहण किया है वह किसीकी सेवा नहीं करसक्ता और जो पुरुष किसी की सेवा करके प्रसन्न करता है उसको प्रसन्नता पहुंचती है ३ बहुरि तीसरा लाभ यह है कि सहनशीलता आदिक जितने गुण हैं सो बहुधा संगति विषे प्राप्त होते हैं काहेसे कि जिस पुरुषका किसी वास्ते किसीके साथ न

होवे वह सहनशीलता किस प्रकारको पर जिज्ञासुको सहनशीलता और धैर्य्य आदिक गुण अवश्यमेंही चाहिये हैं और अधिक लाभदायक हैं इस करके कि इस पुरुष का स्वभाव तबही भला होता है जब दुष्टों के वचनों को सहता है इसी कारणसे जिज्ञासु जनोंने भिक्षा आदिक कर्म्मोंको अंगीकार कियाहै और ऐसी क्रिया करके प्रथम तो अभिमान दूर होताहै दूसरे लोगों के ताड़ना और दुर्वचनों को सुनकर क्षमा और सहनशीलता की वृद्धि होती है सो यद्यपि इस समय में लोगों की कामना धन और मानके निमित्त होती है पर पहिले जिज्ञासु जन इसी मनोरथ से यत्न करते थे कि जिस से अभिमान टूटे और सन्तों की सेवा करके कृपणता भी दूरहोवे और उनकी अशीषको प्राप्त करें और आदि अवस्था में महापुरुषों ने भिक्षा आदिक कर्म्म इसी कारण करके प्रमाण कियेहैं काहे से कि जिसका स्वभाव सहनशील नहीं होता वह लोगों के वाद विवाद में आसक्त होजाताहै तात्पर्य्य यह कि क्षमा और सहनशीलता जो जिज्ञासु के धर्म्म को दृढ करनेवाली है तिसको एकान्त विषे पाय नहीं सक्ता पर जो पुरुष किसीका वचन सह न सके उसको एकान्त में रहनाही भला है और जो पुरुष तितिक्षा भिक्षा आदिक और सन्त सेवा करके भली प्रकार कर चुका है और तिस करके निरभिमानता और सहनतादिक गुण पाय चुकाहै तिसको भी एकान्तही रहना योग्यहै काहेसे कि तितिक्षा आदिक साधनों से यह प्रयोजन नहींहै कि सदा दुःख और कष्टही उठावै जैसे औषध में केवल कटुता प्रयोजन नहीं और रोगकी निवृत्ति होना उससे प्रयोजन है जब रोग सर्वप्रकार दूर हुआ तब औषधियों की कटुताका कष्टसहना व्यर्थ है इसी प्रकार सब साधनों से श्रीभगवत् पदारविन्द में प्रेमभक्ति की प्राप्ति प्रयोजन है और जो पदार्थ भक्तिके बाधक हैं तिनका दूर होना जिस करके निर्विघ्न और निश्चिन्त महाराजके स्मरणमें परायण रहे वरु जो पुरुष उपदेश करनेवाला है तिसको भी एकान्त रहना प्रमाण नहीं सो जैसे शिष्यको श्रीगुरुकी सङ्गतिका त्याग आदि अयोग्यहै तैसेही गुरुको भी जिज्ञासुओं के वियोग करके एकान्त रहना प्रमाण नहीं पर मिलाप में भी जब दम्भ और मानका आवरण न होवे तबही सङ्गति योग्य है और शेष है र बहुरि चौथा लाभ यह है कि नाना प्रकारके संशय और सङ्कल्प भी सङ्गति करके दूर होते हैं काहे से कि जब यह पुरुष एकान्त में स्थित होताहै तब

है। पर मान की अभिरुचि करके उसको भगवत की ओर से औगुण होजाता है तिसका दृष्टान्त यह है कि जैसे दीपक करके मन्दिर में जो प्रकाश होता है परन्तु वह दीपक क्षण क्षण विषे घटता जाता है तैसेही साधू के उपदेश करके औरों को गुण होवे परन्तु उसकी अभिरुचि अरु कुछ उपाय उस को नहीं और यही होती जाती है इसी कारण एक सन्त ने कहा है कि मैंने सात सन्दूक पोथियों के धरती में दबा दिये और उपदेश लोगों को नहीं किया जब किसी ने पूछा कि आप उपदेश क्यों नहीं करते तब उन्होंने कहा कि मेरे हृदय में जब मौन कर रहने की अभिलाष होती तब मुझ को उपदेश करना प्रमाण था अब मैं अपने हृदय में उपदेश करने की अभिलाष अधिक देखता हूँ इस कारण उपदेश करने को त्याग करके मैंने मौन करने को अङ्गीकार किया है इसी प्रकार एक सन्त ने एक जिज्ञासु से कहा था कि तेरी अवस्था तो उत्तम है पर जब तुम को प्रश्न की अभिलाषा होती तब उसने पूछा कि सन्त के साथ मेरी प्रीति अपने से अधिक है तब सन्त ने कहा कि जगत के मिलाप और उपदेश करने की तेरे में अधिक प्रीति है तब जिज्ञासु ने कहा कि मैंने अब इस में लोगों को उपदेश करने का त्याग किया तात्पर्य यह है कि विद्या का पढ़ने और पढ़ाने वाला ऐसा अधिकारी कोई विरला होता है ताते अधिकारी बिना विद्या का पढ़ावना भी त्याग है और पढ़ावना भी उसी को प्रमाण है जिसको अपने स्वरूप का प्रयोजन न होवे तब ऐसे उपदेश करनेवाले को एकान्त रहने से उपदेश का करना विशेष है और उपदेश सुननेवाले को इस प्रकार चाहिये है कि उपदेश करनेवाले पर दोषदृष्टि न लावे और ऐसा जाने कि यह मुझ को मेरे कल्याण के निमित्त उपदेश करता है अपने मान के निमित्त नहीं करता सो अपने कल्याण के निमित्त यथार्थ उपदेश को अङ्गीकार करे और तिसके ऊपर भावना शुद्ध करे परन्तु जिसका हृदय मलिन होता है वह औरों पर भी भावना मलिन रखता है और उसको भी अमानी नाईं जानता है २ दूसरा लाभ यह है कि जीवों को प्रसन्नता पहुँचावनी भी सङ्गति करके प्राप्त होती है काहेसे कि जिस पुरुष ने एकान्त को ग्रहण किया है वह किसी की सेवा नहीं कर सक्ता और जो पुरुष किसी की सेवा करके प्रसन्न करता है उसको प्रसन्नता पहुँचती है ३ बहुरि तीसरा लाभ यह है कि सहनशीलता आदिक जितने गुण हैं सो यह भी सङ्गति विषे प्राप्त होते हैं काहेसे कि जिस पुरुष का मिलाप ही किसी के साथ न हो

होवे वह सहनशीलता किस प्रकारकरे पर जिज्ञासुको सहनशीलता और धैर्य्य आदिक शुभगुण अवश्यमेंही चाहिये हैं और अधिक लाभदायक हैं इस करके कि इस पुरुष का स्वभाव तबही भला होता है जब दुष्टों के वचनों को सहता है इसी कारणसे जिज्ञासु जनोंने भिक्षा आदिक कर्म्मोंको अंगीकार कियाहै और ऐसी क्रिया करके प्रथम तो अभिमान दूर होताहै दूसरे लोगों के ताड़ना और दुर्वचनों को सुनकर क्षमा और सहनशीलता की वृद्धि होती है सो यद्यपि इस समय में लोगों की कामना धन और मानके निमित्त होती है पर पहिले जिज्ञासु जन इसी मनोरथ से यत्न करते थे कि जिस से अभिमान टूटे और सन्तों की सेवा करके कृपणता भी दूरहोवे और उनकी आशीषको प्राप्त होंवें और आदि अवस्था में महापुरुषों ने भिक्षा आदिक कर्म्म इसी कारण करके प्रमाण कियेहैं काहे से कि जिसका स्वभाव सहनशील नहीं होता वह लोगों के वाद विवाद में आसक्त होजाताहै तात्पर्य्य यह कि क्षमा और सहनशीलता जो जिज्ञासु के धर्म्म को दृढ़ करनेवाली है तिसको एकान्त विषे पाय नहीं सक्ता पर जो पुरुष किसीका वचन सह न सके उसको एकान्तमें रहनाही भला है और जो पुरुष तितिक्षा भिक्षा आदिक और सन्त सेवा करके भली प्रकार कर चुकाहै और तिस करके निरभिमानता और सहनतादिक गुण पायचुकाहै तिसको भी एकान्तही रहना योग्यहै काहेसे कि तितिक्षा आदिक साधनों से यह प्रयोजन नहींहै कि सदा दुःख और कष्टही उठावे जैसे औषधमें केवल कटुता प्रयोजन नहीं और रोगकी निवृत्ति होना उसमें प्रयोजन है जब रोग सर्वप्रकार दूर हुआ तब औषधियों की कटुताका कष्टसहना व्यर्थ है इसी प्रकार सब साधनों से श्रीभगवत् पदारविन्द में प्रेमभक्ति की प्राप्ति प्रयोजन है और जो पदार्थ भक्तिके बाधक हैं तिनका दूर होना जिस करके निर्विघ्न और निश्चिन्त महाराजके स्मरणमें परायण रहे व पुनि जो पुरुष उपदेश करनेवाला है तिसको भी एकान्त रहना प्रमाण नहीं सो जैसे शिष्यको श्रीगुरुकी सङ्गतिका त्याग आदि अयोग्यहै तैसेही गुरुको भी जिज्ञासुओं के वियोग करके एकान्त रहना प्रमाण नहीं पर मिलाप में भी जब दम्भ और मानका आवरण न होवे तबही पर सो भी सङ्गति एकान्तसे विशेष है व चौथा लाभ यह है कि नाना प्रकार के सम्भ्रम और मदादि भी सङ्गति करके दूर होते हैं काहेसे कि जब यह पुरुष एकान्त में स्थित होताहै

अकस्मात् ऐसे संकल्प उत्पन्न होते हैं कि उन करके भक्तिभजन में पड़दा होता है सो वे संशय आप करके दूर नहीं होते ताते उनके दूर करने का उपाय सात्त्विकी मनुष्यों की संगति है इसी पर एक सन्तने कहा है कि चित का उज्वल सात्त्विकी संगति करके होता है काहे से कि इस मनका ऐसाही स्वभाव है कि जब इसको एकही क्रिया में स्थित करिये तब शून्यता करके अन्ध होजाता है बहुरि सात्त्विकी संगति में जब पहुँचता है तब वह शून्यता दूर होजाती है इसी कारण से चाहिये कि नित्यप्रति किसी सात्त्विकी मनुष्य की संगति करे बहुरि उससे अपना अवगुण प्रकट करके कहे और जीविका आदिक क्रिया पूछे तो भला है पर अचेत पुरुष की संगति एक घड़ी भी बुरी है काहे से कि सारे दिन भर के अभ्यास करके जितना हृदय निर्मल होता है वह निर्मलता मूर्खों की संगति से दूर होजाती है इसी पर महापुरुष ने भी कहा है कि जब यही पुरुष किसी मनुष्य के साथ प्रीति करता होवे तब चाहिये कि प्रथमही इस प्रकार विचार करे कि मैं इसके साथ किस गुण के निमित्त प्रीति करता हूं। ४ बहुरि पांचवां लाभ यह है कि परस्पर भाव और प्रीति की रीति भी संगति में प्राप्त होती है और जो पुरुष एकान्त में स्थित रहता है वह सात्त्विकी मनुष्यों की प्रीति और भाव के लाभ को नहीं पावता। ५ बहुरि छठवां लाभ यह है कि लोगों के मिलाप और उन की नाईं वर्तने करके दीनता और नम्रता प्रकट होती है और एकान्त करके चित्त में अभिमान की वृत्ति फुरती है अथवा ऐसा भी होता है कि कितने पुरुष स्वामी होने के निमित्त एकान्त को अङ्गीकार करते हैं ताते किसी महापुरुष के दर्शन को भी नहीं जाते और ऐसेही चाहते हैं कि लोग हमारे दर्शन को आवें सो ऐसा अभिमान महाअयोग्य है इसी पर एक वार्त्ता है एक नगर में कोई ऐसा बुद्धिमान् हुआ था कि उस ने तीनसौ शास्त्र ग्रन्थ बनाये थे और ऐसे जानने लगा कि मैं भगवत् के निकट प्राप्त हुआ हूं तब उसको आकाशवाणी हुई कि तैंने आपको जगत् में प्रकट कियाहै सो मैं इस बड़ाई को प्रमाण नहीं करता तब वह बुद्धिमान् इस वचन को सुनकर सब त्यागकर एकान्त में रहनेलगा और ऐसे जाना कि अब मेरे ऊपर भगवत् प्रसन्न हुआ है बहुरि आकाशवाणी हुई कि मैं तेरे ऊपर अब भी प्रसन्न नहीं हुआ काहे से कि अब भी तैंने आपको स्वामी बनाया है तब वह बुद्धिमान् एकान्त को त्यागकर बाहर आया और खान पान

आदिक लोगोंकी नाईं करनेलगा और अभिमान से रहित होकर समान गोत्र विषे स्थित हुआ तब आकाशवाणी हुई कि अब तू मेरी प्रसन्नताको प्राप्त हुआ है तात्पर्य यह कि जिस पुरुषकी मनसा मरगई है और एकान्तको इस कारण अंगीकार कियाहै कि लोगोंके मिलाप करके मेरा मान घटजावेगा अथवा मेरी क्रिया और करतूतके छिद्रको कोई देखलेगा तब ऐसे जानाजाता है कि उसने अपने छिद्र छिपावने के निमित्त एकान्तरूपी परदा डाला है काहेसे कि उसको नित्यप्रति यही अभिलाषा दृढ़होती है कि लोग मेरा आयकर दर्शन करें और मुझको दण्डवत् करें सो ऐसा एकान्त रहना केवल दम्भ है तातें चाहिये कि जब यह पुरुष एकान्त विषे रहै तब भजन और विचारसे किसी समय भी गाफिल न होवे अथवा विद्या और पाठमें चित्तको लगावे बहुरि जिस पुरुषकी संगति में कुछ धर्मका लाभ होवे उसकी संगतिको और प्रीतिरहित मनुष्य जो मृतक की नाईं हैं तिनकी संगति को न चाहे इसी पर एक वार्त्ता है कि कोई पुरुष बड़ा बुद्धिमान् एक सन्तके निकट आकर कहनेलगा कि मैं तुम्हारे दर्शन को शीघ्र नहीं पहुँचसका हूं ताते मैं अपनी अवज्ञा क्षमा करावता हूं तब उस सन्तने कहा कि तू इस वार्त्ता को अवज्ञा न जान काहे से कि जैसे और पुरुष लोगोंके मिलने को उपकार जानते हैं तैसे मैं न मिलनेवाले का उपकार मानता हूं इस करके कि मुझको सर्वदा काल के आवने की चितवनी रहती है ताते मैं और किसी के आवने और मिलने की चाह नहीं करता इस करके प्रसिद्ध हुआ कि मान और दम्भ के निमित्त एकान्त रहना बड़ी मूर्खता है काहे से कि जिज्ञासु को ऐसे चाहिये कि यह अपने मनमें विचारे कि मेरा कार्य्य किसी मनुष्य के हाथ नहीं और सबलोग पराधीन हैं बहुरि यों भी है कि जब यह पुरुष पहाड़की कन्दरामें जावैगा तौ भी दुष्ट मनुष्य यही अनुमान करेंगे कि यह दम्भही के निमित्त कन्दरामें स्थित हुआ है और जो कोई पुरुष महाअशुभ स्थान विषे जावे तौ भी सुहृद मनुष्य ऐसे जानते हैं कि यह धर्मात्मा पुरुष आपको लोगोंसे छिपावने के निमित्त ऐसी ठौर में गया होगा तात्पर्य यह कि सब लोग दो प्रकारके होते हैं एक मित्र दूसरे शत्रु सो जो इसका मित्र है सो सर्व कार्यों में इसके ऊपर भला अनुमान करता है और जो शत्रु होता है वह सर्वदा दोषदृष्टि रखता है ताते जिज्ञासुको जिसप्रकार चाहिये है कि अपने चित्त

की वृत्तिको परमधर्म की दृढ़ता में सावधान करे और लोगोंके अशुभ वचनों की ओर सुरति न राखे इसी पर एक वार्त्ता है कि एक सन्त ने अपने जिज्ञासु से किसी कार्य के करने को कहाथा तब उसने कहा कि लोगों के भय करके इस कार्य को नहीं करसक्ताहूं वह सन्त कहनेलगे कि जबलग जिज्ञासु को दो अवस्था न प्राप्त होवें तबलग यथार्थ भेदको नहीं पहुँचसक्ता सो प्रथम अवस्था यहहै कि इस पुरुषकी दृष्टि से सब जगत् नष्ट होजावे और भगवत् विना कुछ और न देखे और दूसरी अवस्था यहहै कि जब इसका मन मरजावे ताते जिस प्रकार जगत् इसको कुछ कहे तब इसके चित्तमें ग्लानि कुछ न आवे और मान अपमानका भय कुछ न रहे बहुरि एक और सन्तसे किसी ने कहाथा कि कितने मनुष्य जो तुम्हारे वचन सुनकर बाहर जाते हैं तब निन्दा करने लगते हैं तब उस सन्त ने कहा कि मेरे चित्त की वृत्ति तो परमपद के पावनेकी ओर लगीहुई है ताते मुझको लोगोंकी निन्दा का भय कुछ नहीं है और जिस पुरुष ने लोगों की निन्दा और स्तुतिकी अभिलाषा का त्याग कियाहै वह मुक्तरूप है ताते जिज्ञासुको निन्दा और स्तुतिकी ओर सुरति देनाही अयोग्यहै काहेसे कि जगत् की निन्दा से रहित नहीं होसक्ता अब इस वचन के निर्णय में मैंने एकान्त और मिलाप के गुण और दोष वर्णन कियेहैं ताते जिज्ञासु इस वचन को सुनकर प्रथम अपने अधिकार को विचारे बहुरि जैसा इसका अधिकार होवे तैसीही वृत्तिको अंगीकार करे ॥ अथ अष्टकरनी युक्ति एकान्त रहनेकी ॥ ताते जान तू कि जब यह पुरुष एकान्त में स्थितहुआ चाहे तब प्रथम ऐसी मनसा करे कि मैं एकान्त को इस निमित्त अंगीकार करताहूं कि मेरे वचन और कर्म करके किसी को खेद न पहुँचे और जगतकी उपाधि से मैं भी दुःखी न होऊं बहुरि सर्वान्जालोंसे मुक्त होकर भगवद्भजन में सावधान होऊं तात्पर्य यह कि एकान्ती पुरुषको भजन और विचार विना रहना किसीसमय प्रमाण नहीं अथवा विद्या और शुभ करतूतों में दृढ़होने बहुरि लोगोंके मिलापकी अभिलाषा करनीभी उसको अयोग्यहै और प्रयोजन विना किसीसे नगरकी वार्त्ता भी न पूछे काहेसे कि यह मनुष्य जैसी बात सुनताहै तैसाही संस्कार उसके हृदय में दृढ़होताहै फिर भजनकी एकत्रता में वही संकल्प फुरने लगताहै और एकान्त रहनेका प्रयोजन यहीहै कि सब संकल्पोंका निरोध होवे ताते एकान्तीको चा

हिये कि आहार और वस्त्र का संयम राखे काहे से कि जबतग यह पुरुष संयम को अंगीकार नहीं करता तबतग लोगों की पराधीनता से नहीं छूटता बहुरि जब कोई इसको वचन अथवा कर्म करके दुःख देवे तो भी सहनशीलता करके उसको क्षमा करे और अपनी स्तुति और निन्दा को श्रवण न करे और धर्मकार्य में सावधान रहे काहे से कि जब अपनी स्तुति और निन्दा की ओर सुरति देता है तो भी उसका समय व्यर्थ होता है और एकान्त रहने का प्रयोजन यह है कि इस समय में यह पुरुष अपने उत्तम कार्य्य को सिद्ध करलेवे ॥

पांचवां सर्ग ॥

राजनीति के वर्णन में ॥

तातें जानो तू कि राजनीति करनी भी महाउत्तम है और जो पुरुष विचार संयुक्त राज्य विषे वर्त्तता है वह भगवत् का निकटवर्त्ती होता है पर जो पुरुष राज्य में धर्म की मर्य्याद को त्याग देता है वह अपने मन की वासना का दास है उस को महाराज की ओर से धिक्कार होती है काहे से कि सर्व उपायों का मूल धर्मज्ञ राजा है और धर्मात्मा वही होता है जिसको विचार की बुद्धि होती है और उस का स्वभाव सात्त्विकी होता है सो राजनीति की विद्या भी अपार है और इस विद्या का तात्पर्य्य यह है कि प्रथम वह राजा इस भेद को जाने कि मैं इस जगत् में किस कार्य्य के निमित्त आया हूं और किस अवस्था विषे जाऊंगा और यों भी जाने कि यहां मैं परदेशी हूं और यह संसार एक मंजिल है और इस मंजिल की आदि तो पालना है और अन्त श्मशान है बहुरि दिन मास वर्ष मार्ग के योजन और कोस हैं सो इस प्रकार काल बीतने करके सर्वदा मैं परलोक के निकट पहुंचता जाता हूं बहुरि जिस स्थान में मुझे जाना है वह स्थान इस संसार की जा-मत् से भिन्न है तातें जैसे किसी पुरुष का मार्ग पुलों के ऊपर होवे और वह पुरुष सारा दिन पुल के बनावने में लगा रहे और अपने मार्ग की मंजिल को बिसार देवे तब वह महामूर्ख कहा जाता है तैसेही यह संसाररूपी पुल है सो जो मनुष्य मूर्ख होता है वह इस संसार के कार्य्यों को सम्पूर्ण किया चाहता है और जो पुरुष बुद्धि-मान् है वह और किसी कार्य्य की ओर सुरति ही नहीं देता और सर्वदा परलोक मार्ग के तोशे को बनाया चाहता है और माया के पदार्थों को कार्य्यमात्र अंगीकार करता है और कार्य्यमात्र से अधिक जो भोग विलास है तिसको विष की न्याईं

जानताहै और यों समझताहै कि जितना सोना चांदी कोई इकट्ठा करताहै सो मृत्यु के समय सब खजाने भस्म होजावेंगे अर्थात् यह कि किसी काम न आवेंगे और अन्तकाल में चित्त को उनके वियोग का दुःख प्राप्त होवेगा ताते मायारूपी सर्व सामग्री का सार यहहै कि जिसकरके शरीरका खान पान आदिक कार्य सिद्ध होवें और इससे अधिक सब सामग्री पश्चात्ताप और दुःखों का बीजहै सर्व पदार्थों के वियोग का और पश्चात्ताप का जो दुःख है तिस दुःख से रहित और शुद्ध और पापसे रहित माया का संचय न करिके होताहै और जो पुरुष पापसहित माया को जोड़ताहै उसको परलोक में भी ताड़ना होती है और तमोगुण करके जिस के धन को हराहै उस का ऋणी रहताहै और यह बात तो निस्सन्देह है कि हठ और पुरुषार्थ बिना किसी प्रकार भोगों से रहित नहीं होसकता जिस पुरुष की प्रतीति और बुद्धि दृढ़ होती है वह ऐसे समझताहै कि यह इन्द्रियादिक भोग तुच्छ काल पीछे सब विरस होजावेंगे और अब भी दुःखरूप हैं तदुपरि परलोक का सुख जो आत्मरहस्य है वह सर्वदा परमानन्दस्वरूप है और सच्चा आनन्द वही है और सब विरोध रहितहै सो जिस पुरुषकी प्रतीति दृढ़ होती है उसको भोगों का त्यागना सुगम होताहै और इसका दृष्टान्त यहहै कि जैसे किसी पुरुषका कोई प्रियतम होवे और उस पुरुष से इस प्रकार कहिये कि जो तू अब एक रात्रि मदिरापान प्रियतम के मिलाप का त्याग करे तो सर्वदा वह प्रियतम तेरे पास ही रहेगा और तेरा विरोधी भी कोई न होवेगा सो यद्यपि उस प्रियतम के साथ उस पुरुष की प्रीति अधिक होती है तौभी एक रात्रि के मिलने के त्यागने में कुछ खेद नहीं आनता और नित्य मिलाप की आशा करके उसको सुखसहित भोगता है तैसे ही बुद्धिमान् पुरुष को ऐसे समझना चाहिये कि प्रथम तो इसलोक में आयुष् तुच्छमात्रहै दूसरे जितने भोग्य पदार्थ हैं वह क्षण क्षण में परिणामी होते जाते हैं और आत्मा का आनन्द ऐसा है कि उस सुख का कदाचित् अन्त नहीं आवता और जिस सुख का अन्त ही न होवे तिसका प्रमाण क्योंकर वर्णन करिये और इस मनुष्य की आयुर्दा का प्रमाण सौ वर्ष का है और कदापि इससे अधिक होवे और उदय अस्त पर्यंत निष्कण्टक राज्य को भी पावे तौ भी आत्मसुख जो अनन्त है तिस की अपेक्षा करके यह आयुष् और सुख सब तुच्छमात्र हैं तदुपरि जब किसी को इस प्रकार के सुख और चक्रवर्ती राज्य सर्वदा भी प्राप्त होवें तौभी महामलिन और निरर्थक है से कि

यह सब सुख दुःखों के साथ मिले हुये हैं ताते ऐसे सुखस्वरूप दुःखरहित आ- त्मसुख को त्यागि कर इन्द्रियादिक सुखों में जो मिथ्या मलिन हैं आसक्त होना बड़ी मूर्खता है ताते धर्मात्मा राजा और उसके मंत्रियों को इस नीति को सर्वदा सम- झना चाहिये सो जब ऐसी समझी करके भोगों से रहित होवे तब उन को रा- जनीति और प्रजा को सुखी रखना और जीवों पर दया करनी सुगम होवे और राज्य करना उसी को प्रमाण है जिसको सन्तों के वचनों की सूझि होवे और माया के पदार्थों की तृष्णा न होवे क्योंकि ऐसे कि धर्म और नीति सहित राज्य करने की भजन जप और तप में भी अधिक भगवत् प्रीति मानते हैं इसी पर महापुरुष ने भी कहा है कि एक दिन विचार की मर्यादा सहित न्याय करना साठि वर्ष के तप से विशेष है और यों भी कहा है कि धर्मात्मा राजा परलोक में तप निवि- भगवत की छाया तले शीतल रहेंगे और धर्मात्मा राजा भगवत् का प्रियतम है और धर्महीन भगवत् से विमुख है वहुरि महापुरुष ने भगवत् की दुहाई देकरि कहा है कि धर्मात्मा राजा को सब प्रजा के भजन का फल होता है और जो वह एकवार भगवत् को नाम लेता है तो उसको सहस्त्र गुण का फल होता है सो जब राजनीति का ऐसा लाभ हुआ तब चाहिये कि वह राजा भगवत् के उपकार को जाने और धर्म से विमुख न होवे और जब इस उपकार को न जानि होकर अन- नीति विषे बर्ते और अपने मन की वासना का दास होवे तब दुःखों का अधि- कारी होता है ताते यों राजनीति के धर्म की कुछ युक्ति वर्णन करता हूं सो प्रथम युक्ति यह है कि जैसे दुःख और अपमान आपको भला नहीं लगता तैसे ही सब किनों से प्रजा की रक्षा करनी प्रमाण है और जब ऐसे न करे तब राजा धर्म से भ्रष्ट होता है इसी पर एक वार्ता है कि एक वार महापुरुष छाया तले बैठे थे और और लोग धूप में बैठे थे तब महापुरुष को आकाशवाणी हुई कि लोगों को ऐसे बैठना प्रमाण नहीं तात्पर्य यह कि इस किंचित् मात्र धर्म को भी तोड़ता हुई ताते चाहिये कि राजा जिस बात से आप प्रसन्न न होवे उसको प्रजा के कारण भी प्र- माण न करे और जिस राजा की मनसा ऐसी निष्काम न होवे वह राजा धर्म- हीन होता है दूसरी युक्ति यह कि अर्थी को नीच दृष्टि से न देखे और उसके दुःखी होने से सावधान होवे और यद्यपि उत्तम भजन पूजा नियम अथवा जप करता होवे सो भी उस नियम को छोड़कर अर्थी के मनोरथ को पूर्ण करे काहे ते कि अर्थी

के अर्थको पूर्ण करना सब नियमों से विशेष है इसीपर एक वार्ता है कि एक महा धर्मात्मा राजा था सो एकबार सारे दिन प्रजा के कार्यों को करके विश्राम करने के अर्थ जब चारघड़ी दिन रहा तब गृहमें जाकर शयन कररहा तब उस राजा का पुत्र आकर कहनेलगा कि हे पिता ! तुम अचिन्त होकर क्यों सोय रहेहो मैं तो इस वार्त्ता से अधिक भय मानताहूं कि मत अबही काल आकर तुमको मारलेवे और कोई अर्थी तुम्हारे दरवारपर अप्राप्त रहजावे और तुम उससे अचेतरहो तब राजाने कहा कि हे पुत्र ! तू सत्य कहताहै बहुरि वहराजा उसी समय उठ खड़ा हुआ और प्रजाके कार्य्य में सावधान हुआ ३ बहुरि तीसरी युक्ति यहहै कि अपने ऊपर अधिक भोगों का स्वभाव प्रबल न करे और खानपान आदिक विषे संयमसहित वर्ते काहेसे कि जब राजा संयमरहित होकर अधिक भोगों विषे वर्तताहै तब उससे धर्मकी मर्य्याद नष्ट होजाती है इसीपर एक धर्मात्मा राजाने किसी अपने मन्त्री से पूछाथा कि तुमने मेरा कोई अवगुण सुना होवे सो कहो तब उसने कहा कि तुम रात्रि और दिनका पोशाक भिन्न भिन्न रखते हो और भोजनमें दो तरकारीके साथ खातेहो तब उन्होंने कहा कि मैं फिर अब यह भी न करूंगा ३ बहुरि चौथी युक्ति यहहै कि यथाशक्ति सब कार्य्यों को दयायुक्त निर्वाह करे और क्रोध तबकरे जब कोई ऐसाही कठिन कार्य्य होवे जो बिना क्रोध किये उसमें निर्वाह न होवे इसीपर महापुरुषने भी कहाहै कि प्रजाके ऊपर जिस राजाकी सर्वदा दया होतीहै जिसके ऊपर भगवत्‌भी दया करताहै और यों भी कहाहै कि तबही राज्य करना भला होता है जब धर्म की मर्य्याद के अनुसार होवे और जो राजा धर्ममर्य्याद से भ्रष्ट होताहै तब वह राज्यही उसको नरक गामी करताहै इसीपर एकवार्ता है कि एक राजाने किसी विद्यावान् से पूछाथा कि राजनीति में मुक्तिदायक धर्म कौनहै तब उसने कहा कि पापरहित धनको उत्पन्न करना और यथार्थही के मार्ग में उसको लगावे तब वह राजा कहनेलगा कि यह बात किससे होसक्ती है तब उन्हों ने कहा कि जिसको नरकके दुःखोंका भय होवेगा और परमसुखों को प्राप्त हुआ चाहेगा उसको यह करतूति करना भी सुगम होगा ४ बहुरि पांचवीं युक्ति यहहै कि हृदय से सर्वदा यही यत्न करे कि शास्त्रकी मर्य्यादके अनुसार सब प्रजा सुखी होवे और यह वार्त्ता प्रसिद्ध है कि राजाके निकट जो स्तुति लोग करते हैं सो सब भय करके करते हैं और वह

जानता है कि मेरे ऊपर प्रसन्न अतिशय करके हैं ताते बुद्धिमान् राजाको इस प्रकार चाहिये कि मंत्री और दूतोंके द्वारा प्रजाकी सुगति लेवे और अपनी भलाई बुराईको जाने और लोगोंसे स्तुति सुन कर अभिमान न करे ५ बहुरि छठी युक्ति यह है कि जब कोई पुरुष दुष्ट और धर्महीन होवे तब उसकी प्रसन्नता को न चाहे काहेसे कि उनकी प्रसन्नता करके और जीवोंको दुःख होताहै और यथार्थ नीति अनुसार जब वह दुष्ट अप्रसन्न होवेगा तब उसकी अप्रसन्नताका पाप राजाको स्पर्श नहीं करेगा ताते दुष्ट मनुष्योंकी प्रसन्नता चाहनी और भगवत्की प्रसन्नता से विमुख होना बड़ी मूर्खता है इसीपर एक महात्माने कहा है कि जो पुरुष सब प्रकार भगवत्ही की प्रसन्नता चाहता है तब महाराज उसके ऊपर लोगोंको भी प्रसन्न कर देता है और जो पुरुष लोगोंकी प्रसन्नताके निमित्त भगवत्से विमुख होता है तो भगवत् भी उससे प्रसन्न नहीं होता और लोग भी अप्रसन्न रहते हैं ६ बहुरि सातवीं युक्ति यह है कि राजाको सर्वदा राजनीतिका भय चाहिये काहेसे कि राजनीति विषे यथार्थ विचरना बड़ा कठिन है ताते जो पुरुष सब प्रकार प्रजाको धर्म विषे वर्तावे और सुखी राखे और आप भी धर्ममें सावधान रहै तब निस्सन्देह वह राजा परमभाग्यवान् होता है और जब इससे विपरीत होवे तब ऐसा अभागी होता है कि उससे अधिक भाग्यहीन और कोई नहीं होता इसीपर महापुरुष ने कहा है कि जब कोई भगवत्की दया चाहे तब सब जीवोंपर आपही दया करे और जो राजा अपने तेजको चाहे वह धर्मनीति में दृढ़ होवे और जैसा प्रजा आपको चाहे तैसी करतूति करे और जब ऐसे न करे तब देवता भी उसको धिक्कार करते हैं और महाराज की ओरसे भी विमुख होता है और जिस राजासे प्रजाका पालन न होवे और वह यद्यपि पूजा पाठके नेममें सावधान रहै तौभी उसको लाभदायक कुछ नहीं होता ताते तू विचार करके देख कि धर्म की मर्य्याद से रहित होकर राजनीति का वर्तना ऐसाहै जिस करके कोई शुभ करतूति लाभदायक नहीं होती इसीपर बहुरि महापुरुष ने कहा है कि जबकोई पुरुष दशपुरुषों विषे मुखिया होवे और विचार की नीति साथ न विचरे तौभी ति[illegible] कारका अधिकारी होता है और यों भी कहा है कि अधिक करके तो राजादि नरकको प्राप्त होवेंगे और उनमें से कोई वही मुक्त होवेगा जो सदा भगवान् के भय करके डरता रहेगा और विचार की युक्तिको अङ्गीकार करेगा और यों भी कहा है

कि जब कोई इस लोकमें किसी के ऊपर कोप करताहै तब भगवत्भी उसके ऊ पर क्रोध करेगा बहुरि योंभी कहाहै कि जो इस लोकमें किसीको सुखदेगा वह आपभी सुख को प्राप्तहोवेगा बहुरि कहाहै कि जब इस लोकमें राजा अपनी प्रजापर दण्ड करलेवे और उनकी रक्षा न करे और जो चौधरी नगर में समान भाव न बर्ते अर्थात् किसी का पक्षकरे किसीकी सुरत न लेवे बहुरि जो पुरुष अपने सम्बन्धियों को धर्ममार्ग न सिखावे और अशुद्धजीविका करके उनकी उदरपूर्णताकरे बहुरि जो पुरुष किसी से अपना कार्य्य कराकर उसकी मजदूरी न देवे सो ऐसे पुरुष सबही नरकगामी होते हैं ताते राजाको चाहिये कि सन्त जनों के वचनोंको अपना दर्पण बनावे और जो वचनोंमें अनीतिकी निंदा वर्णनहुई है तिसको समझकर सर्वदा भयवान्रहे ७ बहुरि आठवीं युक्ति यहहै कि राजा सदा विद्यावान् पुरुषोंकी संगतिकरे और उनसे धर्मकी मर्यादा पूछताहै और जो विद्यावान् धनके अर्थी होवें उनकी संगति न करे काहे से कि सकामी पण्डित राजा को प्रसन्नकरके अपने प्रयोजन को सिद्धकिया चाहते हैं और यथार्थ उपदेश को नहीं सुनासक्ते ताते उनकी संगतिही बुरी है और राजाको उसी विद्यावान्की संगति करनी प्रमाण है जो अपने प्रयोजन और राजा के मान के निमित्त यथार्थ को दुरावते नहीं इसी पर एकवार्त्ता है कि किसी राजा ने किसी सन्त से पूछाथा कि अमुक तपस्वी तुमहींहो तब उन्हों ने कहा कि अमुक तो मैं हूं पर तपस्वी तूही है काहे से कि जो अनित्य वस्तु को त्यागकर अल्प वस्तु को अङ्गीकार करे उसको तपस्वी कहते हैं सो तैंने आत्मसुख को त्यागकर माया के सुख को अङ्गीकार किया है ताते तपस्वी भी तूही है बहुरि राजा ने कहा कि मुझको कुछ उपदेश करो तब सन्त ने कहा कि तुझको भगवत् ने धर्मके सिंहासन पर बैठाया है ताते महाराज तुझसे परलोक में धर्म की मर्य्याद पूछेंगे बहुरि भगवत्ने तुझ को नरकों के द्वारका पैंवरिया बनाया है अर्थ यह कि तु नरकों से प्रजाकी रक्षा करने का अधिकारी बनायागया है ताते जो पुरुष जीविकाके निमित्त पाप करताहोवे तो तू उसको जीविकामात्र धन दे और जो कोई धर्मगर्य्याद से मनगत करके रहित होवे तब उसको ताड़ना करके पाप से वर्जना कर और जब कोई अपनी प्रबलता करके जीवोंका संहार करता होवे तब उसको खड्ग करके दण्डदे और जब तू ऐसे न करेगा तब

प्रथम तूही नरकगामी होगा बहुरि राजा ने कहा कुछ और उपदेश करिये तब सन्त बोला कि हे राजन्! तू नदीकी नाईं है और प्रधान तेरे प्रवाह हैं अर्थ यह कि जो तू निर्मल होगा तो वह भी निर्मल होवेंगे और जब तेराही हृदय मलिन होगा तब प्रधान भी मलिन क्रिया विषे वर्त्तेंगे बहुरि एक और राजा किसी सतके दर्शन को गयाथा सो वह सन्त यह वचन पढरहाथा कि यथाशक्ति शुभ करतुतिही को अंगीकार करो काहेसे कि उत्तम और नीचकी गति समान नहीं होती सो जब राजाने यह वचन सुना तब अपने चित्तमें विचार करनेलगा कि सन्तोंका एक वचन सर्व उपदेशका मूलहै पर दर्शन की अभिलाषाके निमित्त राजाके प्रधान ने किवाड़ी को खड़काया और कहनेलगा कि हे महाराज! किवाड़ को खोलो तब सन्तने पूछा कि तुम कौनहो बहुरि प्रधान ने कहा कि अमुक राजा तुम्हारे दर्शन को आया है तब सन्त ने कहा कि हमारे साथ राजा का क्या प्रयोजन है बहुरि राजा के प्रधानने कहा कि राजाका निरादर करना प्रमाण नहीं है तब सन्तने किवाड़को खोला और गृहमें जो दीपक जलताथा तिसको बुझाय दिया तब उस राजा ने भीतर जाकर सन्तके चरणोंपर मस्तक धरा और हाथों करके चरणों को पकड़ा तब सन्त ने कहा कि यह तेरे हाथ तो बहुत कोमल हैं पर जब नरकों की अग्निमे इनकी रक्षाहोवे बहुरि राजासे इस प्रकार कहनेलगे कि हे राजन्! जो तू अनदीं यथार्थविषे विचरे तो भलाहै काहे से कि परलोक में तुझसे एक एक जनकी बात पूछेंगे तब यह बात सुनकर राजा रुदन करनेलगा और मूर्च्छित होगया तब प्रधानने कहा कि हे महाराज! अब इस वचन से मौन करिये क्योंकि राजा तुम्हारे वचनकरके मृतकहुआ जाता है तब संतने कहा हे कुमन्त्री! राजा तो तुम लोगोंकी संगति करके मृतकहुआ है और तू हम से कहता है कि राजा को तुमने मारा है बहुरि वह राजा सचेत होकर सन्त के आगे तीन सहस्र रुपया रखनागया और कहनेलगा कि हे महाराज! यह धन पाप रहित उत्पन्न किया हुआहै तब सन्तने कहा कि मैं तुझको मायासे विमुक्त किया चाहताहू और तू मुझकोही माया विषे डाला चाहताहै ऐसे कहकर वह सन्त उठखड़ेहुये और गृहमे बाहर निकल आये और धनको अंगीकार न किया बहुरि और एक राजाने किसी सन्त स कहाथा कि तुम मुझको धर्मनीति का उपदेश सुनाओ तब सन्तने कहा कि जो तुझ से लघु मनुष्य है

उनको पुत्र की नाईं जान और जो तुझसे बड़े हैं तिनको पितावत् जान औ. जा सगर्हे तिनके संग बान्धवोंकी नाई वर्तावकर और जो किसीको कुछ दण्ड देवे तोभी जितना उसका अपराधहोवे तितनाही उसका दण्ड ताड़नाकर और चित्तमें यही भावना रख कि मैं ताड़ना भी उसको भलाईहीके निमित्त करताहूं बहुरि जब किसीको क्रोधकरके एक छड़ीभी मारेगा तब नरकगामी होवेगा इसी पर एक बुद्धिमान् राजा ने कहाहै कि एक बार मेरे टहलुवे से कोई काम बिगड़ाथा ताते मैं क्रोधकरके उसको मारनेलगा तब टहलुवेने कहा कि तुम परलोक की ताड़नाका स्मरण करो अर्थ यह कि क्रोधसेरहित होवो सो जब यह वचन मैंने सुना तब मुझको भगवत् का भय उत्पन्न हुआ तात्पर्य्य यह कि राजाको चाहिये कि सदा ऐसेही वचन सुनतारहे ८ बहुरि नवींयुक्ति यहहै कि राजाको ऐसा अभिमान न चाहिये कि मैं तो किसी को दण्ड नहीं करता हूं काहेसे कि मन्त्रियों और प्रधानों और सेनापतियों के पापकर्म करके भी राजाही को ताड़ना होवेगी ताते उनको पापसे वर्जितकरे इसी पर एक धर्मज्ञ राजाने अपने प्रधानको ओर पाती लिखी थी कि भाग्यवान् प्रधान वही होताहै जिसकेराज्य करके प्रजा सुखी रहती है और जिस राजाकी प्रजा धर्महीन होजावे और दुःख को प्राप्तहोवे वह राजाभी मन्दभागी होताहै तातें तुझको सचेत होना उचितहै जब तू अचेत होकर भोगोंमें लम्पट होवेगा तब तेरी सेना भी प्रजाको दुःखदा यक और लम्पट होजावेगी और अधिक भोगी पुरुष पशुकी नाईं होताहै कि वह पशु हरेतृण को खाकर बड़ा स्थूल होताहै बहुरि उसके शरीरकी स्थूलताही उसके दुःख और नाश का कारण होती है इसीपर महापुरुष ने भी कहा है कि जिस राजाका कोई प्रधान पापकर्मी होवे और राजा उसका ताड़ना न करे तब उस पापका फल राजाको लगताहै ताते राजाको इसप्रकार जानना चाहिये कि माया में आसक्तहोकर परमार्थ से विमुखहोना बड़ी मूर्खता है और यह जितने मेरे मन्त्री और प्रधानहैं सो सब अपने प्रयोजनाके अर्थी हैं और अपने मनो रथों के निमित्त मेराधर्म नष्ट किया चाहते हैं सो जब मैं इनके वशीभूत होकर धर्म्म से विमुख रहूंगा तब मैं निस्सन्देह नरकगामी होऊंगा सो जब इस प्रकार विचारकर देखिये तो यह सब मेरे शत्रु हैं ताते जो राजा अपने मन्त्रियों और सेनाको पापसे वर्जित न करे तब इसका दृष्टान्त यहहै कि जैसे कोई अपने स्त्री

पुत्रादिकों को पापकर्मों में लगावे और उनके पाप का भागीहोवे पर यह जो धर्म्मकी मर्य्याद सन्तों ने कही है सो इसका पालन वही पुरुष करताहै जिसने अपने शरीर को विचार के संयुक्त दृढ़ कियाहै और शरीर को धर्म्मनीति विषे रखना यहहै कि बुद्धिके ऊपर क्रोध और भोगों को प्रबल न होनेदेवे पर बहुत लोग तो ऐसे होते हैं कि अपने मनोरथ पूर्ण करनके निमित्त यत्न करते हैं और बुद्धिको भी इन्हीं कामों में लगाये रहते हैं सो जिसने बुद्धिरूपी देवताको क्रोध रूपी राक्षस के हाथ बांधदिया है ऐसे पुरुष से किसीप्रकार धर्म की नीति नहीं होसक्ती प्रजाके ऊपर तात्पर्य्य यह कि प्रथम विचाररूपी सूर्य्य हृदय में उत्पन्न होताहै फिर उसका प्रकाश इन्द्रियादिकों में वर्तमान होता है और इससे पीछे वही प्रकाश सब प्रजाके ऊपर उजियारा करताहै ताते जो पुरुष ऐसे सूर्य बिना प्रकाशकी आशा रखतेहैं सो अयोग्यहैं इसीकारण कहाहै कि धर्म्मकी बुद्धिसे विचार उपजताहै और परमबुद्धि उसका नामहै जो सब क़ानूनों के भेदको समझै और इसबातको विचारकरके देखे कि मैं धर्म और विचार मर्याद का त्याग किस निमित्त करता हूं सो जब नानाप्रकार के भोजनों के निमित्त विचार की मर्य्यादको त्यागकरे तब ऐसे जाने कि खानपानकी अभिलाषा तो पशुओं का स्वभावहै काहेसे कि जिसको खान पान की अधिक तृष्णाहै वह यद्यपि देखने मात्रमें मनुष्य भासताहै तोभी आहारविषे पशुओं के समानहै बहुरि जो सुन्दर वस्त्रों के निमित्त धर्म का त्याग करे तो शृंगार बनावना स्त्रियों का कामहै और जो अपने क्रोधके निमित्त धर्म्म को त्यागता है तो सिंहों और भेड़ियों की नाईं होताहै और जब लोगों की मान्यता के निमित्त विचार की मर्य्याद को त्याग किया तोभी बड़ी मूर्खता है काहे से कि जब विचार करके देखिये तो सबलोग अपने प्रयोजन के अर्थी हैं और अपने भोगों के निमित्त इसकी सेवा करते हैं सो इसकी परीक्षा यहहै कि जब उनका स्वार्थ भंग होताहै तब सब इसके शत्रु होजाते हैं और इसके शत्रुओं की सेवा में सावधान होते हैं ताते प्रसिद्ध हुआ कि इसके सम्बन्धी और मित्र और टहलुवे और सबही लोग अपने स्वार्थ के होते हैं और बुद्धिमान् पुरुष वही है जो ऐसे भेद को भली प्रकार समझै और पदार्थोंकी स्थूलता को देखकर अभिमानी न होवे पर जिस पुरुष को ऐसा समझ उत्पन्न नहीं हुई वह बुद्धिहीन कहाताहै और जिस पुरुष के बुद्धिही नहीं

वह विचार की मर्यादा में सावधान भी नहीं होसक्ता और जो विचार से रहित है वह निस्सन्देह नरक का अधिकारी होताहै इसीकारण सन्तजनोंने कहाहै कि सर्व शुभगुणोंका मूल बुद्धिहै ६ बहुरि दशवीं युक्ति यहहै कि राजाओं में अवश्यही अभिमान अधिक होता है और अभिमान करके क्रोध उत्पन्न होता है सो क्रोधही इसकी बुद्धि का परमशत्रु है तातें राजा को इसप्रकार चाहिये कि प्रथम क्रोध के विघ्नों को पहिंचाने बहुरि जब अकस्मात् किसी अवसर में क्रोध उपजने लगे तब यत्न करके अपने स्वभाव को दया और सहनशीलता विषे दृढ़करे और यों भी जाने कि सहनशीलता सन्तों का धर्म है और क्रोध करना असुरों का स्वभाव है तातें जब कोई पुरुष वचन करके राजा की अवज्ञा करता है तब ऐसे समय उसके ऊपर अवश्य क्रोधही किया चाहताहै सो राजा को ऐसे अवसरमें इसप्रकार समझना चाहिये कि जब दुर्वचन कहनेवाला पुरुष सत्य कहताहै तो उसका उपकार मानना प्रमाण है और जो झूठ कहताहै तो अधिक उपकार जानना प्रमाणहै काहेसे कि जब उसके वचन को सुनकर सहनशीलता होवेगी तब उसके शुभ कर्मोंका फल इसको प्राप्त होवेगा इसीपर एक वार्त्ता है कि किसीने महापुरुष से कहाथा कि अमुक पुरुष ऐसा बलवान् है कि जिसके साथ युद्ध करताहै तिसको गिराय देताहै तब उन्होंने कहा कि जिसने अपने क्रोधको जीताहै उसीको बलवान् कहा जाताहै और मनुष्योंके पकड़ने और गिरानेवाले को बली कहना अयोग्यहै और योंभी कहाहै कि धर्मवान् पुरुषका लक्षण यहहै कि यद्यपि क्रोधके योग्य कोई पुरुष होवे तो भी विचार की मर्यादाको त्याग न करे और अनुचित वचन न कहे और जब किसीपर प्रसन्न होवे तो भी यथार्थ को भुलाय न देवे यद्यपि समर्थ होवे तो भी अपनी मर्यादासे उल्लंघित न होवे इसीपर एक सन्तने कहाहै कि जबलग किसी पुरुष के धैर्य और क्रोधकी परीक्षा करके भली प्रकार न देखिये तबलग उसके ऊपर प्रतीति करनी अयोग्य है इसीपर एक वार्त्ता है कि एक राजपुत्र पढ़ने के अर्थ पाठशाला को जाताथा सो एक दुष्ट आकर उसको दुर्वचन कहने लगा तब राजपुत्रको टहलुवा क्रोधवान् होकर उस दुष्टके मारने को उद्यत भया तब राजपुत्रने अपने टहलुवे को वर्जित किया और उस दुष्टसे कहने लगा कि हे भाई हम में तो ऐसे अवगुण हैं कि तू उनको जानताही नहीं पर तुझको कुछ अर्थ

होवे तो प्रसिद्ध कहै बहुरि यह वचन सुन कर वह दुष्ट लज्जित हुआ। तब राजपुत्रने अपने गले का वस्त्र और सहस्र रुपया उसको दिया तब वह पुरुष लेकर इसप्रकार कहनेलगा कि निस्सन्देह तू महापुरुषकी सन्तानहै बहुरि उसी राजपुत्रकी एक और वार्त्ता है कि एक समय दोवार अपने टहलुवेको पुकारा और वह टहलुवा चुप साध रहा बहुरि उसके निकट जाकर कहनेलगा कि मैंने तुझ को दोवार बुलाया और तैंने सुना भी नहीं तब टहलुवेने कहा कि मैंने सुना तो था पर तुम्हारी सहनशीलता विचारकर निर्भय हो रहाथा कि इस अवज्ञा करके ताड़ना न करेंगे तब वह राजपुत्र कहनेलगा कि हमारे ऊपर यह भी महाराज का बड़ा उपकार है कि मेरा टहलुवा तक मेरे क्रोध से निर्भय हुआ है॥ बहुरि किसी और सन्तके टहलुवेने गृहके पशुका पाँव तोड़डाला था तब सन्तने कहा कि तैंने इस बेचारे को क्यों दुःखदिया है बहुरि टहलुवा कहनेलगा कि तुम्हारे धैर्य और क्रोधकी परीक्षा के निमित्त यह अवज्ञा मैंने करी है तब सन्तने कहा कि मैं सहनशीलता करके कोपही को लज्जावान् करूंगा इतना कहकर उस मोल लियेहुये टहलुवे को मुक्त करदिया बहुरि उसी सन्त को कोई दुष्ट दुर्वचन कहनेलगा था तब सन्तने कहा कि मेरे और भगवत् के मध्यमें कितनीही कठिन घाटी हैं सो जब मैं उनमें उल्लंघित हुआ तो तेरे दुर्वचनों का भय कुछ नहीं और जब मैं उनको न लांघसका तब जैसा तू कहताहै तिससे भी मैं नीचहूं इसीपर महापुरुषने कहा है कि बहुते पुरुष क्षमा और सहनशीलता करके महागम्भीर पदको पावते हैं और यद्यपि गृहस्थ धर्म विषे वर्त्तते हैं तोभी महाशूरमा विरक्तचित्त कहावते हैं बहुरि यों भी कहा है कि जो विचार के मर्याद से रहित होकर क्रोधके वशीभूत होते हैं सो निस्सन्देह नरकगामी होते हैं और जो कोई समर्थ होकर अपने क्रोधको दमन करलेते हैं उन के हृदय को महाराज परमानन्द करके पूर्ण कर देता है तात्पर्य यह कि जिस राजा की बुद्धि धर्म विषे स्थित होती है तिसको जितने मैंने वचन और युक्तियां वर्णन करीहैं इतनीही बहुत हैं और जिसका हृदय ऐसे उपदेश करके कोमल न होवे तब जानिये कि भगवत्स्वरूप उसकी मनोनिष्ठा कुछ नहीं अर्थ यह कि वचन करके भगवत् को सत्य कहना और है और हृदयमें भगवत् को सत्य जानना और है क्योंकि जो पुरुष तन और दंड करके धनको उपजाके और पापोंविषे निश्शङ्क होकर

वर्ते तब क्योंकर जानिये कि उसने भगवत्‌को प्रकट सत्य जानाहै ताते धर्मात्मा पुरुष वही है जो सर्वदा विचारकी मर्य्याद विषे स्थितरहै ॥

इति, व्यवहारखण्डनाम द्वितीयप्रकरण समाप्तम् ॥

तीसराप्रकरण ॥

प्रथमसर्ग ॥

मनके यम और कठोर स्वभावों के उपचार के वर्णन में ॥

प्रथम विभाग भलेस्वभावों की स्तुति में ॥ ताते जान तू कि महाराजने भी भले स्वभावों करकेही महापुरुष की प्रशंसा करीहै और महापुरुषने भी कहाहै कि भगवतने मुझको भले स्वभावों के पूर्ण करने के अर्थ इस जगत् विषे भेजा है और योंभी कहा है कि परलोक में महाउत्तम पदार्थ भला स्वभावही होवेगा बहुरि एक पुरुषने महापुरुष से पूछा कि धर्म्म क्याहै महापुरुषने कहा कि भला स्वभावही धर्म्म है ऐसेही एक और पुरुषने भी पूछा कि उत्तम करतूत क्याहै तब उन्होंने कहा कि भलास्वभाव सब करतूतों से उत्तमहै ॥ बहुरि एक और पुरुष ने महापुरुष से कहाथा कि मुझको कुछ उपदेश करिये तब उन्होंने कहा कि जिसस्थान विषे तू होवे तहांही भगवत् के भय संयुक्त रहो बहुरि जब कोई तेरे साथ बुराई करे तब तू उसके साथ भलाईही कर और सब जीवों के साथ भले स्वभावों सहित मिलापकर और महापुरुषने योंभी कहाहै कि जिसको भगवत् ने भला स्वभाव दिया है और जिसका मस्तक प्रसन्नता सहित खुलारहताहै वह नरकों की अग्नि में नहीं जलता और महापुरुष से किसी ने कहा था कि अमुकी स्त्री दिनको व्रत रखती है और रात्रि को जागरण करती है और सर्वदा भजन में सावधान है पर उसका स्वभाव बुराहै कि पड़ोसियोंको दुर्वचन करके दुखावती है तब महापुरुष ने कहा कि निस्सन्देह वह स्त्री नरकको प्राप्तहोवेगी ॥ और योंभी कहाहै कि बुरास्वभाव भजनको इसप्रकार नाशकरताहै जैसे मधु को खटाई बिगाड़ देती है बहुरि महापुरुष महाराजके आगे यों प्रार्थना करते थे कि हे महाराज! अपनी दयाकरके जैसे तैंने मेरा शरीर सुन्दरबनाया है तैसेही मेरा स्वभाव भी भलाकर और यों भी कहते थे कि मुझको भलास्वभाव और नीरोगता देवो बहुरि किसीने महापुरुष से पूछा कि भगवत् जो कुछ इस जीवको

देताहै सो तिनमें भला पदार्थ क्याहै तब उन्हों ने कहा कि भला स्वभाव सब पदार्थों से विशेष है ॥ बहुरि एक और सन्तने भी कहाहै कि मैं एकबार महापुरुष के सङ्गया तब उन्होंने कहा कि मैंने एक बड़ा आश्चर्य्य देखा है कि एक पुरुष मुझको गिराहुआ दृष्टि आयाथा और भगवत् और उसके बीच में बड़ा पटलथा पर भला स्वभाव जो उसके हृदय में आया तिसने उस सब पटल को दूरकरदिया और उस पुरुषको भगवत् के साथ मिलाय दिया और योगी कहा है कि यह पुरुष भले स्वभावों करके बिना कष्टही ऐसी अवस्था को प्राप्त होतेहैं जो बड़े तप और जाग्रत् करके कोई उस अवस्थाको प्राप्त होवे सो भले स्वभाव करके यत्न बिनाही मनुष्य पावता है पर इस भले स्वभावकी पूर्णता महापुरुषही में पाई जाती है इसी पर एक वार्त्ता है कि एक ठौर में महापुरुष बैठे तब बहुत स्त्रियां निडर होकर ऊंचेस्वर से शब्द करने लगीं बहुरि जब बड़ा उमर उनके सङ्गी आये तब वे स्त्रियां चपलताको छोड़कर मौनहो बैठीं तब उमर कहनेलगे कि हे पुरुषाओ! तुमने महापुरुष का भय न किया और मुझको देखकर मौनहो बैठीं तब उन्होंने कहा कि महापुरुष का स्वभाव अति कोमल है और तुम्हारा स्वभाव उनसे कठोर है ताते हम तुममें डरती हैं बहुरि महापुरुष उमर से कहने लगे कि हे उमर! तुमको जब माया न देखकर भी तेरे तेजके आगे भागजावे और ठहर न सके तब औरोंकी क्या चली इसप्रकार कहकर उनकी मनोहार करतेभये और प्रसन्न किया बहुरि एक और सन्त थे सो संयोग करके किसी पुरुष के साथ मार्ग में सङ्गीहुये बहुरि जब उससे बिछुड़े तब रोवने लगे तब लोगोंने पूछा कि तुम किस निमित्त रोवतेहो तब उन्हों ने कहा कि यह पुरुष जो मुझसे बिछुड़ाहै सो इसका बुरा स्वभाव इसके साथही रहा और दूर न हुआ ताते मैं रुदन करताहूं ॥ और मुबारक निवाड़ेने भी कहाहै कि फकीरी भले स्वभावका नामहै ताते जिसका स्वभाव भलाहै सो उत्तम फकीर है और एक और सन्तने भी कहाहै कि कठोर स्वभाव ऐसा पापहै कि इसके होते हुये कोई शुभ गुण भी लाभदायक नहीं होता और कोमल स्वभाव ऐसा गुण है कि इस करके सर्व पापों का नाश होजाता है और कोई अवगुण विघ्न नहीं करसक्ता २ ॥ दूसरा विभाग भले स्वभावों के वर्णनमें ॥ ताते जान तू कि इनके स्वभावके निर्णय में बहुत प्रकारके वचन आये हैं पर भले स्वभावों की पूर्णता किसी ने नहीं कही जैसे

किसी ने कहा है कि मस्तक प्रसन्न रखनाही भला स्वभाव है और किसीने कहा है कि सहनशीलताही भला स्वभाव है सो इसकी नाई और भी बहुत वचन हैं पर यह सब भले स्वभाव के अङ्ग हैं पूर्ण स्वभाव भला इसी का नाम नहीं ताते मैं भले स्वभावकी पूर्णता को प्रकटकरके कहताहूं सो ऐसे जान तू कि इस मनुष्यको दो पदार्थों के सम्बन्ध से उत्पन्न कियाहै सो एक शरीर है जो स्थूल नेत्रों करके देखा जाताहै और दूसरा जीव है सो उसको बुद्धि करके पहिचानसक्ते हैं सो शरीर और जीवकी सुंदरताई भी है और कुरूपता भी है पर शरीरकी सुंदरता को स्थूल रूपसुन्दर कहते हैं और जीवकी सुंदरताई भले स्वभाव करके होती है पर स्थूल रूपवान् भी उसीको कहते हैं जिसके नेत्र और मस्तक और नाक कान मुख और अवर सब अङ्ग और उदर समान होते हैं तैसेही जीवकी पूर्ण सुन्दरताई भी तबहीं कहीजाती है जब इसी पुरुषमें चार गुण समान पायेजावें सो एक विद्या है दूसरा भोगों का जीतना तीसरा क्रोध का जीतना चौथा विचार सो विचार इन तीनों में वर्तावे पर प्रथम जो विद्या कहीथी तिसका अर्थ बूझहै और विशेषता इसकी यहहै कि बूझकरके सत्य और असत्य को सुगमही पहिचान लेवे बहुरि वचन और करतूति की भलाई और बुराई के भेदको समझे और योंभी जाने कि यह प्रतीति झूठी है और यह सत्य है सो जब वचन और करतूति और निश्चयको भलीप्रकार जानताहै तब इसके हृदयमें अनुभव उत्पन्न होताहै सो अनुभव सर्वगुणों का मूलहै जैसे महाराज ने भी कहा है कि जिस पुरुषको अनुभव प्राप्त हुआ है तिसको सब गुण प्राप्त होते हैं और दूसरा भोगोंका जीतना यह है कि भोग भी इसके ऊपर प्रबल न होवें और बुद्धिकी आज्ञानुसार वर्तें और विचार की आज्ञा माननी इसको सुगम होवे बहुरि तीसरा क्रोध का जीतना यह है कि क्रोध भी विचारकी आज्ञानुसार होकर उसकी आज्ञामें वर्ते और विचारकी आज्ञाको वर्जनकरके किसीको दुखावे नहीं २ बहुरि चौथा जो विचारहै सो यहहै कि विद्या का बल इन तीनों में वर्ते अर्थ यहहै कि भोग और क्रोधको वशीकार करे और विद्या को समान राखे और इनको धर्मशास्त्रकी आज्ञा लिये वर्तावे काहे से कि क्रोध शिकारी कुकुरकीनाई है और भोग घोड़ेकीनाई है और बुद्धिरूपी सवार है सो कभी ऐसा होता है कि घोड़ा सवारसे प्रबल होजाताहै और कभी आज्ञा लिये चलताहै तैसेही कुकुरभी कभी आज्ञा लिये चलता है और कभी आज्ञा के

विपर्यय होताहै पर जबलग घोड़ा और कुक्कुर सवारकी आज्ञा में न होवें तब लग सवार को शिकार हाथ नहीं लगता और सदा यह भय रहता है कि कहीं घोड़ा प्रबल होकर मुझको गिराय न देवे अथवा कुक्कुर ही फाड़डाले ताते विचारका काम यह है कि इन को वशमें करे और इनको बुद्धि और धर्मकी आज्ञा में विचरावे सो क्रोधके ऊपर कभी भोगोंको प्रबल करके क्रोधके वेगको अपमान के द्वारे हटावे और कभी क्रोधको भोगोंपर प्रबल करके मानका लालच देकर भोगोंकी अभिलाषाओं के वेगको मिटावे इसप्रकार इन दोनोंको अपने आधीन राखे सो जिस मनुष्य में ये चारों लक्षण समान होते हैं तिसको सम्पूर्ण भले स्वभाववाले कहते हैं और जब कोई लक्षणहोवे और कोई न होवे तब उस को सम्पूर्ण भला स्वभाव नहीं कहाजाता जैसे कोई पुरुष सुन्दर होवे पर उस के नेत्र अथवा नाक अथवा और कोई अंग कुरूपहोवे तो उसको पूर्ण रूपवान् नहीं कहते ताते जानतू कि इन लक्षणोंकी सुन्दरताईभी है और कुरूपताभीहै सो सुन्दरता समानता में होती है और कुरूपता दो प्रकार करके होती है एक मर्य्याद से अधिकहोने में और दूसरे मर्य्याद से अल्प होनेमें और योंभी है कि जिस मनुष्यमें एक स्वभाव बुराहोताहै तब उस करके और भी अनेक बुरेस्वभाव उत्पन्न होते हैं पर इन लक्षणोंकी मर्य्याद जो कहीथी सो इसप्रकार है कि प्रथम जब विद्याही मर्य्याद से अधिक होतीहै तब नाना प्रकारकी मलीनता विषे भी पसर जाती है ताते चपलताई और चतुराई उत्पन्न होती है फिर अभिमानी होजाताहै और जब विद्या मर्य्यादसे थोड़ी होतीहै तब मूर्खता और जड़ता को प्राप्त होताहै बहुरि जब विद्याही मर्याद अनुसार होतीहै तब उससे विचार और सुमति और शुद्धसङ्कल्प और उत्तम बूझ उपजती है तैसेही जब क्रोधका बल अधिक होताहै तब अभिमान और अहङ्कार और दुर्वचन और बदावना और अपनी स्तुति करनी और निश्शङ्क होकर आपको भयानक स्थान में डालना इत्यादिक अवगुण उत्पन्नहोते हैं और जब यह क्रोधही मर्य्यादसे अल्प होताहै तब निर्मानता और पराधीनता और कपट इत्यादिक बुरे स्वभाव उपजते हैं बहुरि जब क्रोधभी मर्य्याद के अनुसार होताहै तब इसका चित्त दृढ़ होताहै और पुरुषार्थ और धैर्य और सहनशीलता और नम्रता और उपरतीनाई अनेक शुभगुणको पावताहै इसीप्रकार जब भोगोंका बल अधिक होताहै तब तृष्णा

और अशुद्धता और कृपणता और ईर्षा उपजती है और लोभकरके धनवानों के अपमान को सहताहै और निर्द्धनों का निरादर करताहै इत्यादिक अनेक पापलक्षण उत्पन्न होते हैं बहुरि जब सर्वथा भोगोंसे रहितहोता है तब आलस कादरता अस्थिरता उपजती है और भोगोंका बल मर्य्याद अनुसार होवै तब संयम धैर्य संतोष भाव यह सब उत्पन्न होते हैं ताते विद्या और क्रोध और काम जो वर्णन किये हैं सो इनके दोदो किनारे हैं एक अधिकता दूसरा न्यूनता सो यहदोनों निंद्यहैं ताते इनकी मर्य्यादही विशेषकही है पर इनकी मर्य्याद बालसे भी सूक्ष्म और कठिनहै और उत्तम मार्ग भी यही है जैसे परलोकमें पुल सरात अर्थात् वैतरणीका उतरना कठिन कहाहै तैसेही इनकी मर्य्याद में वर्तना भी कठिन है ताते जो पुरुष इसलोक में इनकी मर्य्याद अर्थात् समानता विषे वर्तताहै वह पुलसरात से परलोक में निर्भय रहताहै इसीकारणसे श्रीमहाराजने भी सब स्वभावों में समानताही प्रमाण कही है और उन पुरुषोंकी प्रशंसा करी है जो कृपणता और फ़ज़ूली से रहित है और महापुरुषने भी कहाहै कि न तो ऐसी कृपणता करिये जो किसीको कुछ न दीजे और न ऐसी फ़ज़ूली करिये जो सबकुछ एकही बारमें लुटादीजे और आप निर्द्धनताई को प्राप्त हूजिये ताते जानतू कि हृदयकी सुन्दरताई सम्पूर्ण तबही होती है जब यह सबगुण मर्य्याद के अनुसार होते हैं जैसे शरीर करके सुन्दर भी तबही होताहै जब सब अंग सुंदर और समान होते हैं पर इसहृदय की सुन्दरता और कुरूपता विषेभी मनुष्य चार प्रकारके होते हैं सो एक ऐसे मनुष्यहैं कि उनमें सम्पूर्ण शुभगुण पाये जावें तब उनको सम्पूर्ण सुन्दर कहाजाता है और सब जीवोंको ऐसे महापुरुष की आज्ञाविषे वर्तना उचितहै पर ऐसा पूर्ण सुन्दर कोई महापुरुष और संतहीहोता है जैसे शरीर के पूर्ण सुन्दरभी एकयूसुफही हुये हैं तैसे हृदयका पूर्णसुन्दर भी कोई विरला होताहै १ और दूसरे पुरुष ऐसे होते हैं कि उनमें सब स्वभाव बुरेही पाये जातेहैं और हृदय उनका महाकुरूप और कठोर होताहै पर ऐसे पुरुष जगतमें न होवें तो भलाहै काहेसे कि वह मनमुख असुरोंकी नाईं है और असुरों को जो कुरूप कहाहै सो शरीर करके कुरूप नहीं कहा केवल सेवकही के स्वभावोंकी बुराई करके कुरूप कहाहै २ और तीसरे मनुष्य ऐसे हैं कि हृदय उनदोनों प्रकार के मनुष्यों के मध्यहै पर उत्तम सुन्दरताई के अधिकहै ३ और चौथे भ

कारके मनुष्यभी यद्यपि उनदोनोंके मध्यहैं पर ते कुरूपता के बहुत निकटहैं सो जैसे शरीर करके भी सम्पूर्ण सुन्दर और कुरूप कोई बिरलाही होताहै पर मध्यम भाव विषे बहुत होते हैं हृदयकी सुन्दरता और कुरूपताभी इसीप्रकारहै ४ ताते सबको यही पुरुषार्थ करनाचाहिये कि जो हृदयकी पूर्ण सुदरताको न पहुँचसके सम्पूर्ण सुन्दरताके निकट जो पदहै तिसको पहुचे अर्थात् जब सब शुभगुणोंको प्राप्त न होसके तो भी कुछ शुभगुणोंको तो प्राप्तहोंवे सो जैसे शरीरकी सुन्दरता और कुरूपता अपारहै तैसेही हृदयकी सुन्दरता और कुरूपताभी अपारहै काहे से कि शुभगुणोंकी सुदरता एक वस्तुका नाम नहीं तोभी मूल इनका विद्या और भोगोंका जीतना और क्रोधका जीतना और निबारहै और अवर शुभगुण इन की शाखा हैं ३॥ अथ तीसरे विभागमें यह वर्णन होगा कि पुरुषार्थ करके निस्सन्देह भले स्वभावोंको प्राप्त होसक्ते हैं॥ ताते जान तू कि कोई पुरुष ऐसे कहते हैं कि जैसे शरीरका स्वरूप नहीं उलटसक्ता जैसे आदिमें उत्पन्न हुआ है तैसाही रहताहै अर्थात् लम्बा पुरुष छोटा नहीं होसक्ता और छोटा यत्न करके लम्बा नहीं होता तैसेही हृदयका स्वरूप भी नहीं उलटता ताते जिसका स्वभाव बुरा है वह यत्न करके भला नहीं होता सो यह कहना इनका प्रमाण नहीं काहेसे कि वह भूल करके कहते हैं क्योंकि जो उनका कहना प्रमाण होता तो उपदेश और समझावना सिखावना सतजनोंका सब मिथ्या होताहै जैसे महापुरुषने भी कहा है कि अपने स्वभावोंको भलाकरो ताते जानाजाताहै कि स्वभावोंका उलटावना असंभव नहीं इसकारणसे कि महाकठोर पशुभी यत्न करके कोमल होजाते हैं और वह मृग जो मनुष्योंको देखकर भयवान् होकर भागजाते हैं सो भी प्यार करके मनुष्यों के साथ बिना पकड़े चले जाते हैं ताते स्वभाव का उलटावना शरीर के उलटावने की नाई नहीं ताते सर्व कार्य दो प्रकार के होते हैं सो एक कार्य ऐसे हैं कि मनुष्योंके यत्न करके सिद्ध नहीं होते जैसे खजूर के बीजसे सेब का वृक्ष मनुष्यके यत्नसे नहीं होता पर इतना कार्य मनुष्य के आधीनहै कि खजूर के बीजको यत्न करके खजूर का वृक्ष करसक्ता है तैसे यह भी मनुष्यके आधीन नहीं कि खाना पीना आदिक जो शरीरके भोगहैं सो सर्वथा इनसे मुक्त होसके पर इतना कार्य मनुष्यसे होसक्ताहै कि यत्न करके क्रोध और भोगोंको मर्यादके अनुसार करलेवे सो यह बात निस्सन्देह है पर इसमें इतना भेदहै कि कोई पुरुष

ऐसे होते हैं जिनका स्वभाव उलटना कठिन होताहै और एक ऐसे होते हैं कि उनको सुगम होताहै पर कठिनता भी इनको दो कारण से होती है सो एक यह है कि जिस मनुष्यका स्वभाव आदि उत्पत्ति विषे यही मलन होता है वह भी कठिनता करके उलटताहै और दूसरा यह है कि जिस स्वभाव में चिरकाल पर्य्यन्त वर्त्तता होताहै वह भी सुगम नहीं उलटना और प्रबल होजाता है बहुरि सर्व मनुष्य स्वभावके उलटने में चार प्रकारके होते हैं एक ऐसे हैं कि प्रथम तो यद्यपि निर्मलही कोरेकागजकी नाईं हैं और उन्होंने सत्य और असत्यको अभी पहिचानाही नहीं और किसी भले और बुरे स्वभाव में वर्त्तमान भी नहीं हुये सो ऐसे मनुष्य उपदेशके उत्तम अधिकारी हैं कि वह सुगमही भले स्वभावको अंगीकार करलेते हैं सो ऐसे पुरुष को कोई उपदेश करनेवाला सिखावे और उनको बुरे स्वभावके विघ्नोंको समझावे तब वह सीधे मार्ग विषे चलें सो आदि जन्म अवस्था में सभी बालक ऐसे होते हैं पर माता पिता उनको बुरे मार्ग में डालते हैं और मायाकी तृष्णा में उनको लगाते हैं और कुछ भली बुद्धि नहीं सिखाते ताते वह खेलने और खानेकी वासना में निश्शंक होकर वर्त्तते हैं सो उनके धर्मके नाश होनेका पाप माता और पिताको होता है सो इसी कारण करके महाराजने भी कहाहै कि जो पुरुष अपने मन और सम्बन्धियों को पाप कर्म से वर्जते हैं और नरककी अग्निसे बचाते हैं वह पुरुष धन्य है १ और दूसरे मनुष्य ऐसे हैं कि उन्होंने यद्यपि अभी भले बुरेका निश्चय कुछ नहीं किया पर भोग और क्रोधमें कुछ काल वर्त्तमान हुये हैं तो भी इतना जानते कि ये स्वभाव भले नहीं सो ऐसे पुरुषोंका कार्य्य कठिनता से होताहै काहे से कि इनको दो यत्न चाहिये हैं एक बुरे स्वभावों का दूर करना दूसरे भले स्वभावों का बीज उनके हृदय में बोवना पर जब यह पुरुष श्रद्धा और पुरुषार्थ संयुक्त होवे तब तुरतही भलाईको प्राप्त होसक्ते हैं और उनका बुरा स्वभाव नाश होजाताहै २ और तीसरे मनुष्य इस प्रकार के हैं कि उनका स्वभाव पापों में दृढ़ हुआहै और यों भी नहीं जानते कि यह बुरे स्वभाव हैं और उनकी दृष्टि में पाप कर्म सुन्दर होकर भासते हैं सो ऐसे पुरुषों का स्वभाव उलटना महाकठिन होताहै ताते ऐसा कोई विरला होता है जो अपने पाप स्वभाव का त्याग करे ३॥ और चौथे मनुष्य ऐसे हैं कि पापकर्म करके बड़ाई करते हैं और भला जानते हैं और करणें

है कि हम इतनी मदिरा पान करजाते हैं और कामादिक भोगों विषे हम को इतना बलहै सो ऐसे पुरुष भलाई के उपदेश को अंगीकार नहीं करते पर जिस किसी पर अकस्मात् भगवत्की की दया होजावे तिसे की दूसरी बात है और उसका स्वभाव बुरा दूर होजाता है सो इस भगवत् दयामें मनुष्य का बल और यत्न कुछ नहीं चलता ४॥ और चौथे विभाग में भले स्वभावके प्राप्त होनेका उपाय वर्णन करते हैं॥ ताते जान तू कि जो कोई पुरुष यों चाहे कि मेरा बुरा स्वभाव दूर होवे तब इसका उपाय यह है कि अपने स्वभावके अनुसार न वर्ते काहे से कि भोगों का नाश करना विपर्यय हुये विना सिद्ध नहीं होता क्योंकि विरोधी पदार्थ अपने विरोधीही से दूर होता है जैसे क्रोधरूपी रोग की औषध सहनशीलता है और अभिमानरूपी रोगकी औषध नम्रता है और कृपणता की उदारता औषध है और इसीकी नाईं सर्व रोगोंकी औषध उसकी विरोधी वस्तु है ताते जो कोई पुरुष शुभ कर्तृतिकी साधनामें आपको लगावे तब उसका स्वभाव सहजही भला होजाताहै और धर्मशास्त्र में जो शुभकर्म करनेकी आज्ञा है इसका कारण यह है कि शुभकर्मकरके हृदयका स्वभाव शुभ होताहै सो जो कुछ यह पुरुष प्रथम यत्नकरके करताहै तिसके हृदयका स्वभावभी उसीके अनुसार दृढ़ होजाता है जैसे आदि में बालक पढ़ावनेवाले और चटशाला से भय करके भागता है पर जब उसको दण्ड करके पढ़ने में लगावते हैं तब तिसका वही स्वभाव बनजाता है बहुरि जब बड़ा होताहै तब सम्पूर्ण रहस्य विद्याही को समझताहै और विद्या के रस को छोड़ नहीं सक्ता इसी प्रकार जब कबूतर शतरंज जुआ खेलने का स्वभाव पकड़ता है तब ऐसा स्वभाव होजाता है कि सब सुख माया के और अवर जो कुछ समग्र रखताहै सो उसी में खर्च करताहै और उसका त्याग नहीं करसक्ता ताते उसके स्वभाव के विपर्यय भी बहुत स्वभाव हैं पर जब उन स्वभावों में वर्त्तमान होता है तब ऐसा दृढ़ होजाताहै कि उन करके दुःख और दण्ड को सहना भला जानता है जैसे बहुत मनुष्य जिनका चोरी करना दृढ़ स्वभाव होगयाहै वह नानाप्रकार के दण्ड और हाथ कटाने पर भी धैर्य धरते हैं पर चोरी नहीं छोड़सके और उस दण्डके सहनेमें अपनी विशेषता मानते हैं इसीप्रकार हिजड़े अपनी निर्लज्जता करके ही परस्पर प्रसन्नहोकर उसकी अधिकता पर बड़ाई करते हैं ताते जो विचारकरके देखिये तब

नाऊ और श्वपच भी आपस में ऐसी बड़ाई करते हैं जैसे विद्यावान् और जो गुणीलोग बड़ाई करते हैं सो यह सब स्वभाव के वर्त्तने का फलहै कि यह ऐसा ही दृढ़ होजाता है जैसे किसी का स्वभाव मिट्टी खाने का होता है और उसमें रोग और मृत्यु होने का भय भी उसको होता है तौभी उसको त्याग नहीं कर सक्ता तातें यही प्रसिद्धहै कि जो कुछ स्वभाव के विपर्ययहै वहभी बहुत कालके वर्त्तमान होने करके दृढ़होजाताहै फिर जो कुछ इस मनुष्य के हृदय के स्वभाव अनुसारहै वहतो इसका जीवन रूपहै जैसे आहार और जल शरीरका जीवन रूपहै पर जब यह पुरुष अपने शुद्ध स्वभावको ग्रहणकरै तब वह स्वभावतो सुगमही दृढ़ होजाताहै सो तैसेही भगवत्का पहिचाननना और भजन और काम क्रोधका आधीन करना सो यह मनुष्यके हृदय के स्वतः स्वभाव हैं इस कारण करके कि यह मनुष्य भी देवतों की नाईं उत्पन्न हुआहै जैसे देवतों का आहार भगवत् का पहिचानना और बूझ है तैसे मनुष्यों के हृदय का आहार भी और जीवनरूप यही है पर इस मनुष्य का स्वभाव जो भोगों में अधिक दृढ़ हुआ है इसकारण करके उसमें नहीं रुचि करता सो उन भोगों करके इनका हृदय रोगी होगयाहै जैसे रोगी पुरुष अपने दुःखदायक आहारमें प्रीति करता है और सुख दायक आहारको बुरा जानकर त्याग करताहै तातें प्रसिद्ध हुआ कि जो पुरुष भगवत्की पहिचान और भजनके विना अन्यथा पदार्थों को प्रियतम जानताहै वह रोगीहै सो महाराजने भी इसीप्रकार कहाहै कि मनमुखों का हृदय रोगी है और जो पुरुष भगवत् की ओर आयाहै वही अरोग है और जैसे शरीर के रोग करके मृत्युका भय होताहै तैसे हृदय के रोगी होने करके भी परलोक में बुद्धि के नाश होनेका भय होताहै सो जैसे शरीर के रोग से भी तब छूटता है जब अपने स्वभाव से विपर्यय कटु औषधि खावै और वैद्यकी आज्ञा विषे वर्त्तै तैसे हृदयके रोगका उपाय भी यहीहै कि अपनी वासना और मन के स्वभाव से विपर्ययहोवे जैसे सन्तजनों और शास्त्रों ने कहाहै कहेमे कि सन्तजन हृदय के वैद्य हैं सो प्रयोजन यहहै कि जैसे शरीर के रोगोंका वैद्यक है तैसे हृदय के रोगोंका भी वैद्यक है और दोनों का एकही स्वभाव है जैसे शरीर के वैद्यक में गरमी की औषध शरदी कहीहै तैसे जिस पुरुषको अभिमान का रोग प्रकट होवे तिसको यत्नकरके दीनस्वभाव करना चाहिये कि उसकी आरोग्यता यही

है और जिस पुरुषका अत्यन्त दीन स्वभाव होवे उसको यत्न करके गम्भीर स्वभाव करलेना उचितहै ताते जान तू कि सब शुभगुण तीनप्रकार करके प्राप्त होते हैं सो एक यहहै कि वह पुरुष आदि उत्पत्तिमेंही गुणवान् होताहै सो यह बात भगवत् कृपा करके होतीहै जैसे किसी पुरुषको आदि उत्पत्ति से ही उदार अथवा नम्र भगवत् उत्पन्नकरे सो ऐसे पुरुषभी बहुत होतेहैं १ और दूसरे मनुष्य इसप्रकारके हैं कि वह यत्नकरके शुभ करतूतों के साधन में दृढ़होते हैं तब उनका स्वभावभी सहज स्वाभाविकही शुभ होजाता है २ और तीसरे मनुष्य ऐसे होते हैं कि वह जब भले स्वभाव और शुभ करतूतिवालों को देखते हैं और उनका संग करते हैं तब उनका स्वभाव सहजही शुभ होजाता है और यद्यपि उनको ऐसी बूझ भी नहीं होती तोभी भलाई को प्राप्त होते हैं ३ पर जिस पुरुषको यह तीनों पदार्थ इकट्ठे मिलें कि आदि उत्पत्ति से भी शुभ गुणोंवाला होवे और उसकी करतूतिभी भली होवे और संगतिभी उसको भली प्राप्तहोवे तब वह पुरुष पूरा भाग्यवान् होताहै और जिस मनुष्यमें यह तीनों पदार्थ न होवें कि आदि उत्पत्तिमेंभी उसके स्वभाव नीच होवें और करतूति भी बुरी करे और संगति भी कुसंगियों की होवे वह पूराभाग्यहीन होताहै सो इन भाग्यवान् और भाग्यहीन दोनों में बड़ा भेदहै कि किसीको कोई पदार्थ प्राप्त होताहै और कोई नहीं होता सो जितना किसी में शुभगुण पायाजाताहै तितनाही भाग्यवान् कहाताहै और जितना अवगुण होताहै उतना मन्दभागी है ताते भगवत्ने भी कहाहै कि जो पुरुष अल्पमात्र भी सुकृत करता है तिसको अवश्यही उसका फल प्राप्त होताहै और जो किंचित् भी बुराई करता है वह उतनाही दुःख भोगता है ताते जान तू कि सब करतूति इन्द्रियोंके साथ होती है और उन में प्रयोजन यही है कि हृदय का स्वभाव बुराई से उलटकर सीधाहोवे काहे से कि परलोक में जीवही जाताहै और शरीर यहांही रहजाता है ताते चाहिये कि जब जीव परलोक में जावे तब निर्मल और सुन्दर होकर जावे तो भगवत् के दर्शन का अधिकारी होवे और शुद्ध दर्पण की नाईं निरावरण होकर अपने हृदय में भगवत् की सुन्दरता को देखे सो वह सुन्दरताई कैसी है कि उसको देखकर स्वर्गोंके सुखभी तुच्छ और तुच्छ भासते हैं और यद्यपि परलोक में शरीरके साथभी सम्बन्ध होताहै तो भी कर्ता और भोक्ता यह जीवही है और शरीर उसके अधीन है ताते जान तू कि

शरीर और जीव भिन्न रहें काहे से कि जीव की उत्पत्ति सूक्ष्म और अनादि और शरीर आधिभौतिक है सो यद्यपि शरीर और जीव भिन्न हैं तौभी इनका परस्पर सम्बन्ध है सो जो भली करतूति शरीर से होती है तिसका प्रकाश हृदय में जाय पहुँचता है और वही प्रकाश उत्तम भागों का बीज होता है और जो करतूति बुरी शरीर के साथ होती है तिसका अंधकार हृदय को पहुँचता है और वही अन्धकार मन्दभागों का बीज होता है सो इसी सम्बन्ध के निमित्त जीव को आधिभौतिक लोक में उत्पन्न किया है कि यह जीव शरीर को कारीगरी की नाई बनावे और इस करके सम्पूर्ण भले स्वभावों को शिकार करे जैसे लिखना जो है सो कारीगरी बुद्धि की है पर तौभी करतूति लिखने की हाथों करके ही सिद्ध होती है ताते जब कोई चाहे कि मेरे अक्षर लिखने में सुन्दर होवें तब इसका उपाय यह है कि यत्न करके अक्षर सुन्दर लिखे और हाथों की हथेली को बनावे तब उसके हृदय में सुन्दर अक्षरों की मूर्ति दृढ़ होवे सो जब मूर्ति हृदय में दृढ़ होती है तब उसी के अनुसार अंगुली अक्षर को लिखती है तैसेही प्रथम इस मनुष्य की करतूति भली होती है तब इसके हृदय में भला स्वभाव दृढ़ होता है फिर उस भले स्वभाव के अनुसार करतूति सहजही भले होते हैं ताते निस्सन्देह यही प्रसिद्ध हुआ कि बीज सब भलाई का यह है कि प्रथम यत्न करके शुभकर्म करे और शुभकर्मों का फल यह है कि हृदय में भला स्वभाव दृढ़ होवे और फिर भले हृदय के स्वभाव का प्रकाश शरीर में पहुँचता है तिसकरके स्वाभाविकही प्रीति संयुक्त भले करतूति होने लगते हैं सो जीव और शरीर के सम्बन्ध का भेद यही है कि शरीर के करतूति का गुण हृदय में प्रवेश करता है और हृदय के स्वभाव का प्रवेश शरीर में पहुँचता है सो इसी कारण करके जो करतूति अचेतना और अज्ञानता के साथ होती है वह निष्फल और व्यर्थ होती है काहे से कि उस का गुण अथवा अवगुण हृदय में प्रवेश नहीं करता ताते ऐसे जान तू कि जिस मनुष्य का गरमी का रोग गरम औषध खाने करके मिटे तिसको योग्य न चाहिये कि गरम औषध खाये जाय जो गरमी ही अधिक होकर रोगरूप होजावे ताते गरमी की औषध भी जो मर्यादा है तिसके अनुसार सहजही फलदायक होता है इस प्रकार जानना चाहिये कि औषध के सेवन का प्रयोजन यह है कि शरीर का स्वभाव समान होवे और गरमी अथवा सरदी अधिक न होवे सो जब यह पुरुष

जाने कि मेरे शरीरका स्वभाव समान हुआहै तब आगे औषध का त्यागकरे और स्वभाव के निमित्त आहार पथ्य भी समानही खावे और समानताही को अरोगता जाने तैसेही हृदय के स्वभावों के भी दो दो किनारे हैं एक अधिक होना दूसरा न्यून होना सो यह दोनों निन्द्य हैं ताते इनका प्रयोजन समानताहै जैसे कृपण को उचित है कि धनको परमार्थ में खर्चै और जबलग उस के हृदय में ऐसकी सुगमता न होवे तबलग यत्न करके खर्च करे और जब उस को अधिकारी प्रति देना सुगम हुआ तो ऐसे भी न चाहिये कि सर्वही खर्च देना रहै सो यह भी निन्द्य है सो जैसे शरीर के स्वभाव की मर्य्याद विपर्य्यय विप्र प्रसिद्ध है तैसे हृदय के स्वभावों की भी सन्तजनों के वचनों करके समझी जाती है ताते चाहिये कि सन्तजनोंकी आज्ञानुसार वर्ते और जिस पदार्थका संग्रह करना कहाहै तिसका संग्रह करे और जिस का देना प्रमाण कहाहै उसे देवे तब जानिये कि यह पुरुष समानताको प्राप्त हुआहै पर जबलग इस मनुष्य की शुभकर्मों में स्वाभाविक रुचि नहीं और यत्न करके करताहै तबलग जानिये कि अभी रोगी है पर भलाहै कि यत्न करके औषध का अंगीकार करताहै इस का रोग दूर होवेगा इसीकारण करके महापुरुषने भी कहाहै कि महाराज की आज्ञाको प्रीति संयुक्त अंगीकार करो और महाराजकी आज्ञा पालन करने में हठ और धैर्य भी करना भला होताहै ताते जान तू कि जो पुरुष विचार करके धनका संग्रह करता है वह कृपण नहीं कहाजाता काहेसे कि कृपण वह होता है जिसकी प्रीति धन के संग्रह में स्वाभाविक अधिक होवे तैसेही जो पुरुष यत्न करके धनको खर्च करताहै वह सम्पूर्ण उदार नहीं कहाजाता ताते सम्पूर्ण उदार वही है जिस को धनका देना सुगम होवे सो इस पुरुषको ऐसे चाहिये कि सब स्वभाव इसके स्वाभाविकही भले होवें यत्न और हठ दूर होजावे और सम्पूर्णता इस मनुष्यकी यही है कि सब करतूति और स्वभाव इसके सन्तजनों के वचनों के अनुसार होवें और इसको अपनी अभिलाषा कुछ न रहे और सन्तजनोंकी आज्ञा माननी इसको सुगम होवे तब जानिये कि इसका रोग दूर हुआहै सो भगवतने भी महापुरुष से इसीप्रकार कहाहै कि इस पुरुष का धर्म तबही सम्पूर्ण होवेगा जब तेरी आज्ञामें स्वाभाविक प्रसन्नता सहित वर्ते सो यह जो आगे बखान किया है सो निश्चय भी एक शुभ गोप्य है पर यह गोप्य इस प्रकारों सम्पूर्ण

कहा नहीं जाता तौभी कुछ सूचनामात्र कहते हैं सो ऐसे जान नु
तुष्य भाग्यवान् तब होताहै जब इसका स्वभाव देवतों की नाईं नि
काहेते कि मनुष्य की उत्पत्ति भी देवतोंकी नाईं शुद्धरूपहै और इस
परोक्ष्मी है और स्थान इसकी देवलोक है ताते जो स्वभाव स्थूल इस
यह पुरुष अपने साथ परलोक मे लेजाता है तब उस करके देवतों के
दूर होता है ताते चाहिये कि जब यह पुरुष देवलोक में जावे तब देवतो
भावों के संयुक्त जावे और कोई स्वभाव इस विषे जगत् का न होवे
जगत् का इस प्रकार होताहै कि जिस पुरुषको धन संचनेकी तृष्णा
के साथ परचा हुआहै और जिसको धन खर्चने में प्रीति है
परचा हुआ है तैसेही जिस को मान की इच्छाहै वह भी
हुआ है और जिसको दीनता और नम्रता विषे अधिक
लोगोंके साथ परचा हुआहै और देवता जो हैं वह
के साथ आसक्त नहीं हैं और केवल भगवत्के प्रेममें ऐसे
किसी ओर नहीं देखते ताते चाहिये कि मनुष्य के हृदय
और लोगोंसे छूटाहुआ होवे और इन सबसे शुद्ध और
मनुष्य जो यह शरीरधारी है तो शरीरके सब स्वभावों
तौभी चाहिये कि इनकी मर्य्याद और समानता विषे
पुरुष समानता विषे दृढ़ हुआ तब इस प्रकार जानिये
मुक्त हुआ अर्थात् कोई स्वभाव भी इस पर प्रबल नहीं
और उष्णता से रहित कदाचित् नहीं रहसक्ता
और शीत उष्ण की अपना अधिकता नहीं होते
हुआहै चाहिये कि जब गर्मी और शर्दी
शीतल और उष्ण कुछ नहीं कहा जाता
मर्य्याद और समानता कही है जो इसी कारण
मनुष्यकी दृष्टि सदैव समानता विषे रहे और
तब इसका विष सर्वदा
[illegible] कि एक सुक्ष्म से [illegible] और

तदपि सब जप तप और भजनके अभ्यासका प्रयोजन यही है कि श्रीरामजी को एक पहिचाने और सर्व विषे उन्हीं का देखे और उन्हीं को चाहे उन्हीं का दास होवे और कोई इच्छा हृदयमें न फुरे सो जब इस मनुष्यकी ऐसी अवस्था होवे तब जानिये कि सम्पूर्ण मला स्वभाव इस को प्राप्त हुआ और मानुषी स्वभाव दूर होकर स्वस्वरूपको प्राप्तहुआ और महाराजको पहुँचा अब ऐसे जान तू कि यद्यपि यत्न और पुरुषार्थ इसके साधनका बडा कठिनहै तो भी जो सद्गुरु इसका वैद्य होवे और इसका औषध भली प्रकार करे तब यत्न और पुरुषार्थ करना मननविषे इसको सुगम होजाताहै सो भली प्रकार औषध करना यहहै कि जिज्ञासु को प्रथमही तत्त्वज्ञान का उपदेश न करे काहे से कि जिज्ञासु को आदि अवस्थामें ऐसा बल नहीं होता जैसे प्रथम बालकको जब पाठशालामें भेजिये और उससे कहिये कि तुझको विद्या के पढ़ने करके बड़ाई और मान प्राप्त होवेगा सो वह बालक बडाई और मान के सुखको समझताही नहीं कि बड़ाई और मान कैसे होते हैं ताते चाहिये कि प्रथम बालकसे ऐसे कहे कि अब तू चटशाल विषे जा और जब पढ़कर आवेगा तब तुझको गेंद दण्डा देवेंगे अथवा बुलबुल चिड़िया देवेंगे तब तू प्रसन्न होकर खेलियो तब वह बालक इस लोभ करके चटशालमें जाताहै बहुरि जब उससे कुछ बडा होवे तब कहिये कि जब तू खेलनेका त्याग करे और विद्या पढ़े तब तुझको सुन्दर वस्त्र देवेंगे बहुरि जब उससे भी बड़ा होवे तब कहिये कि विद्या पढ़ने करके बड़ाई और मान प्राप्त होवेगा और सुन्दर रेशमीवस्त्रका पहरना स्त्रियोंका स्वभावहै बहुरि जब सम्पूर्ण विद्या पढ़लेवे और बुद्धि उसकी उज्ज्वल होवे तब उससे कहिये कि इस जगत् की बड़ाई और मान निर्मूलहै अर्थात् मृत्युके समय नष्ट होजाती है बहुरि उस से पीछे जो अविनाशी पद सच्ची बादशाही और अमर है तिसका उपदेश करे तैसेही प्रथम जिज्ञासुको शुद्ध निष्कामता का यत्न नहीं होता ताते चाहिये कि सद्गुरु प्रथम उससे इस प्रकार कहे कि अब तू शुद्ध करतूति विषे पुरुषार्थ कर क्योंकि शुद्ध करतूति करके जगत्में तेरी बड़ाई होवेगी और लोग तुझको भजनवान् जानेंगे तब इस बड़ाईकी अभिलाष करके धन और भोगोंसे निवृत्त करे बहुरि जब जिज्ञासु धन और भोगोंकी अभिलाषसे रहित होवे और इसी वैराग्य का अभिमान इसके हृदय में फुरे तब चाहिये कि सद्गुरु उसके अभिमान को

कहा नहीं जाता तौभी कुछ सूचनामात्र कहते हैं सो ऐसे जान तू कि यह मनुष्य भाग्यवान तब होताहै जब इसका स्वभाव देवतों की नाईं निर्मल होवे काहेसे कि मनुष्य की उत्पत्ति भी देवतोंकी नाईं शुद्धरूपहै और इस जगत में परदेशी है और स्थान इसका देवलोक है ताते जो स्वभाव स्थूल इस जगत का यह पुरुष अपने साथ परलोक में लेजाता है तब उस करके देवतों के सम्बन्ध से दूर होता है ताते चाहिये कि जब यह पुरुष देवलोक में जावे तब देवतों के स्वभावों के संयुक्त जावे और कोई स्वभाव इस विषे जगत् का न होवे सो स्वभाव जगत्का इस प्रकार होताहै कि जिस पुरुषको धन सचनेकी तृष्णाहै वहभी धन के साथ परचा हुआहै और जिसको धन खर्चने में प्रीति है वहभी धनके साथ परचा हुआ है तैसेही जिसको मान की इच्छाहै वह भी लोगों के साथ परचा हुआ है और जिसको दीनता और नम्रता विषे अधिक अभिलाषा है वह भी लोगोंके साथ परचा हुआहै और देवता जो हैं वह किसीप्रकार धन और लोगों के साथ आसक्त नहीं हैं और केवल भगवत्के प्रेममें ऐसे मग्नहैं कि अन्यथा किसी ओर नहीं देखते ताते चाहिये कि मनुष्य के हृदय का सम्बन्ध भी धन और लोगोंसे टूटाहुआ होवे और इन सबसे शुद्ध और निर्लेपहोवे पर यद्यपि मनुष्य जो यह शरीरधारी है सो शरीरके सब स्वभावों से रहित नहीं रहसक्ता तौभी चाहिये कि इनकी मर्य्याद और समानता विषे स्थित होवे सो जब यह पुरुष समानता विषे दृढ़ हुआ तब इस प्रकार जानिये कि अब सब स्वभावों से मुक्त हुआ अर्थात् कोई स्वभाव भी इस पर प्रबल नहीं है जैसे प्राणी जो शीत और उष्णता से रहित कदाचित् नहीं रहसक्ता पर जब समान भावमें रहताहै और शीत उष्णकी अथवा अधिकता नहीं होती तब मानों दोनों स्वभावों से वह मुक्तहै काहेसे कि जल गरमी और सरदी दोनोंसे रहितभी नहीं पर उसको शीतल और उष्ण कुछ नहीं कहाजाता ताते सन्तजनों ने जो सब स्वभावों में मर्य्याद और समानता कही है सो इसी कारण कही है ताते चाहिये कि इस मनुष्यकी दृष्टि सदैव समानता विषे रहे और सब स्वभावोंके बन्धनोंसे मुक्त होवे तब इसका चित्त सर्वकाल भगवत्विषे लीनहोवे सो महाराजने भी इसीप्रकार कहाहै कि एक मुझको स्मरण करो और अपर सब विसारो सो सबका बीज मन्त्र यहीहै पर यद्यपि इस मनुष्यको शुद्ध परमपद विषे स्थित होना कठिनहै

तदपि सब जप तप और भजनके अभ्यासका प्रयोजन यही है कि श्रीरामजी को एक पहिचाने और सर्व विषे उन्हीं को देखे और उन्हीं को चाहे उन्हींका दास होवे और कोई इच्छा हृदयमें न फुरे सो जब इस मनुष्यकी ऐसी अवस्था होवे तब जानिये कि सम्पूर्ण भला स्वभाव इस को प्राप्त हुआ और मानुषी स्वभाव दूर होकर स्वस्वरूप को प्राप्तहुआ और महाराजको पहुँचा अरु ऐसे जान तू कि यद्यपि यत्न और पुरुषार्थ इसके साधनका बड़ा कठिनहै तो भी जो सद्गुरु इसका वैद्य होवे और इसका औषध भली प्रकार करे तब यत्न और पुरुषार्थ करना भजनविषे इसको सुगम होजाताहै सो भली प्रकार औषध करना यहहै कि जिज्ञासु को प्रथमही तत्त्वज्ञान का उपदेश न करे काहे से कि जिज्ञासु को आदि अवस्थामें ऐसा बल नहीं होता जैसे प्रथम बालकको जब पाठशालामें भेजिये और उससे कहिये कि तुझको विद्या के पढ़ने करके बड़ाई और मान प्राप्त होवेगा सो वह बालक बड़ाई और मान के सुखको समझताही नहीं कि बड़ाई और मान कैसे होते हैं ताते चाहिये कि प्रथम बालकसे ऐसे कहे कि अब तू चटशाल विषे जा और जब पढ़कर आवेगा तब तुझको गेंद दण्डा देवेंगे अथवा बुलबुल चिड़िया देवेंगे तब तू प्रसन्न होकर खेलियो तब वह बालक इस लोभ करके चटशालमें जाताहै बहुरि जब उससे कुछ बड़ा होवे तब कहिये कि जब तू खेलने का त्याग करे और विद्या पढ़े तब तुझको सुन्दर वस्त्र देवेंगे बहुरि जब उससे भी बड़ा होवे तब कहिये कि विद्या पढ़ने करके बड़ाई और मान प्राप्त होवेगा और सुन्दर रंगमी वस्त्रका पहरना स्त्रियोंका स्वभावहै बहुरि जब सम्पूर्ण विद्या पढ़लेवे और बुद्धि उसकी उज्ज्वल होवे तब उससे कहिये कि इस जगत् की बड़ाई और मान निर्मूलहै अर्थात् मृत्युके समय नष्ट होजाती है बहुरि उस से पीछे जो अविनाशी पद सच्ची बादशाही और अमर है तिसका उपदेश करे तैसेही प्रथम जिज्ञासुको शुद्ध निष्कामना का बल नहीं होता ताते चाहिये कि सद्गुरु प्रथम उससे इस प्रकार कहे कि अब तू शुद्ध करतूति विषे पुरुषार्थ कर क्योंकि शुद्ध करतूति करके जगत्में तेरी बड़ाई होवेगी और लोग तुझको भजनवान् जानेंगे तब इस बड़ाईकी अभिलाष करके धन और भोगोंसे निवृत्त करे बहुरि जब जिज्ञासु धन और भोगोंकी अभिलाषसे रहित होवे और इसी वैराग्य का अभिमान इसके हृदय में फुरे तब चाहिये कि सद्गुरु उसके अभिमान को

इस युक्ति करके दूसरे कि जिज्ञासुको भिक्षा मांगने की आज्ञा करै चतुर्थ जो इच्छा भी जगत् उस का आश्रय करै तब जिज्ञासु को नीच टहलमें लगावै पर्यंत मल मूत्रके स्थानको शुचि करावै इसीप्रकार जिज्ञासु को जैसा रोग होवै तैसाही उपचारकरे और रोगनके गर्ने करके सब रोगोंको दूर करै क्योंकि जबलग जिज्ञासुमें सम्पूर्ण बल नहीं होता तबलग मान और आदर के आश्रय करिके ता और भजन को अङ्गीकार करताहै सो और सब दुष्टस्वभाव भी बिन्दु ही नाईं है और मानरूपी अजगर सर्प है ताते मानरूपी अजगर और सर्प स्वभावों को भक्षण करताहै और मानका स्वभाव सब स्वभावोंके पीछे दूर होताहै ४॥ और पावक विभागमें मान की रोग और अवगुणों का वर्णन होवेगा॥ ताते ऐसे जानु कि तन और इन्द्रियों की आरोगता इसकरके जानी जाती है कि जिस कार्य के निमित्त जो जो इन्द्रिय उत्पन्न हुई है तिसी कार्यको सावधान होकर सदैव करै जैसा नेत्र भलीप्रकार देखै चरण भली प्रकार चलै तब जानियें कि नेत्र और चरण आरोग्य हैं तैसे हृदयकी आरोग्यता तबैही जानी जाती जब इस हृदयका जो स्वत स्वभाव है और जिस निमित्त जीवको उत्पन्न किया है तिसी कार्यमें निर्यन्त सावधान होवे और अपने स्वतःस्वभाव में दृढ होवे सो यह सावधानता दो कारणों कर है प्रकट होती है एक श्रद्धा दूसरे वैराग्य ताते श्रद्धा ऐसी चाहिये कि भगवत् बिना और किसी पदार्थ में प्रीति न होवे काहे से कि जैसे शरीरका आहार अन्न है तैसे भगवत्की प्रीति और पहिचान हृदय का आहार होवे सो जिस पुरुषकी क्षुधा मन्द होती है वह रोगी होता है ऐसे जिस मनुष्य के हृदयमें भगवत्की प्रीति न होवे तिसका हृदय रोगी और निर्बल होताहै ताते महापुरुषने भी इस प्रकार कहा है कि जब लग पुत्र और पिता और धन व्यवहार और सम्बन्धियों अथवा और किसी के साथ तुम्हारी प्रीति है तब लग तुम यह जानो कि तब मेरी आज्ञा आन पहुंचे गी और शरीर छूटने का समय आवेगा तब तुम अधिकारी भी होवोगे॥ वहुरि यनकी आरोगता यह है कि जितने शुभ कर्म भगवत्ने इस मनुष्यको मेरा योग्य कहे हैं तिनको सुगमही करै और उन कर्मोंके करने में इसको यत्न कष्ट न कराता है और शुभकर्महीसे इसको स्वाद सिद्धि उत्पन्न होवै सो ऐसेही महापुरुषने भी कहा है कि भगवत्का भजन मेरे नेत्रोंकी पुतली है अर्थात् महाप्रियतम है॥ ताते जो पुरुष श्रद्धा और यत्न अपने में न

देखे तब जाने कि मेरा हृदय रोगी है और जिसने अपने रोगको पहिचाना उस को चाहिये कि उस रोगके उपचारमें सावधान होवे और ऐसेभी बहुत पुरुष होते हैं कि उनका हृदय तो रोगी है और वह आपको अरोग जानते हैं सो इसका कारण यहहै कि यह मनुष्य अपने अवगुणों के देखनेमें अन्धाहै अर्थात् अपने अवगुणको आप नहीं देखसक्ता पर जो कोई अपने अवगुणको देखाचाहे तिस के चार उपायहैं सो प्रथम यह कि जिज्ञासु ऐसे सद्गुरु के निकट बैठे जो सर्व धर्मोंका ज्ञाताहोवे और वह अपनी दयाकरके जिज्ञासुके अवगुणको लखावे सो ऐसे सद्गुरु इस समयमें दुर्लभ पाये जाते हैं १ ताते दूसरा उपाय यहहै कि कोई मित्र अपनी रक्षा निमित्त करे और वह मित्र ऐसाहोवे जो इस के अवगुणको छुपावे नहीं और ईर्षा करके अधिक भी न कहे सो ऐसा मित्र भी कोई होता है जैसे दाऊत्ताई नामी सन्त से लोगों ने कहा कि तुम हमारे निकट बैठते क्यों नहीं हो तब उन्हों ने कहा कि मैं ऐसे पुरुषोंकी संगति कैसे करूं जो मेरे अव-गुणको प्रकटकरके न कहैं और छुपाय राखैं २ और तीसरा उपाय यहहै कि जो कोई इस पुरुषका वैरीहोवे सो वचनकोसुने काहेसे कि वैरी की दृष्टिभी सर्वदा इसके अवगुणों परही होती है सो यद्यपि वह वैरभाव करके अधिक भी कहता है तौभी उसके वचन में कुछ सत्यभी होताहै ३ और चौथा उपाय यहहै कि जब किसी मनुष्यमें कोई अवगुण देखे और वह अवगुण इस को बुरालगे तब आप भी उस अवगुणको त्यागकरे और यों जाने कि जैसे इस आचरण करने यह पुरुष बुरा भासताहै सो ऐसे मैं भी ऐसे स्वभाव करके बुरा होऊंगा ताते उसका त्याग करे जैसे एकनामी सन्त से लोगों ने पूछा कि ऐसा भला व्यवहार तुमने किससे सीखाहै तब उन्हों ने कहा कि यह भला व्यवहार मैंने इसप्रकार सीखा है कि जब किसी पुरुषमें मैंने अवगुण देखा और मुझको बुरा भासा तब मैंने उस अवगुण का त्याग किया ४ ताते जान तू कि जो मनुष्य महामूढ़ होता है वह अपनेको विशेष जानताहै और जो पुरुष विशेष बुद्धिमान् होताहै सो आपको बुरा जानता है जैसे उमरने एक सन्तसे पूछा था कि महापुरुषने तुमसे कपटियों के लक्षण कहे हैं सो तुम भलीप्रकार जानते हो ताते मुझसे खोलकर कहो कि मुझमें कपटियों का कौन लक्षण है तब मैं अपने अवगुण को पहिचानूं ॥ ताते सब किसी को चाहिये कि अपने अवगुण के पहिचानने का उपायकरे काहे से

कि जबलग अपने रोगको न पहिचानिये तबलग उपचार भी उसका नहीं है। सकल और सर्व ओषधियों का मूल यहहै कि अपनी वासनासे विपर्यय होना सो महाराजने भी योंहीं आज्ञा की है कि अपने मनको वासनासे विपर्ययकरो तब उत्तम सुख स्थान में तुम्हारा निवासहोगा और महापुरुषने भी जिसमय गर्नमुखों को युद्ध करके जीता तब अपने संगियों से कहा कि अब हम छोटी लड़ाई तो जीतआये अब बड़ी लड़ाई में आय प्राप्तहुये हैं तब संगियों ने पूछा कि बड़ी लड़ाई क्याहै तब उन्होंने कहा कि मनके साथ युद्ध करना यह बड़ी लड़ाई है और योंभी कहाहै कि अपने मनको दुःख से बचावो अर्थात् महाराज की आज्ञा का उल्लंघन करके मनको उसकी वासना अनुकूल आहार मत दो काहेसे कि परलोकमें यह मनही तुम्हारा शत्रु होवेगा और सब इन्द्रियां तुमको धिक्कार करेंगी॥ और इसतवमरी सन्तने भी कहाहै कि कोई पशु कठोर भी अजीत मनके समान नहीं और सिरिसकत संतने भी कहाहै कि चालीस वर्षसे मन मेरा मधुके साथ रोटी खानेकी इच्छा करता है पर मैंने अबलग अंगीकार नहीं किया॥ और इब्राहीम खवासने भी कहाहै कि मैं एक पहाड़पर चलाजाता था तब मुझको अनार खाने की इच्छाहुई तब मैं एक अनार तोड़कर खाने लगा सो वह खट्टा निकसा तब मैं उस को छोड़कर आगे को चला तहां एक पुरुष पड़ाहुआया जिसको मैंने देखा कि उसको बहुत माखी डस रही हैं तब मैंने उसको बहुत नमस्कार किया तब उसने मेरा नाम लेकर मुझको बुलाया तब मैंने कहा कि तुमने मुझको क्योंकर पहिचाना बहुरि उन्होंने कहा कि जिसने भगवत् को पहिचाना है उससे कुछ गुप्त नहीं रहता तब मैंने उनसे पूछा कि मैं देखता हूं कि महाराज के साथ तुम्हारा मिलाप है तासे तुम महाराज के आगे प्रार्थना क्यों नहीं करते कि जो माखियों को दूर करें और तुम को यह माखी दुःख न देवें तब उन्हों ने कहा कि तेरा भी तो महाराज के साथ मिलापहै तासे तू प्रार्थना क्यों नहीं करता जो तेरी अनार की अभिलाषा दूर करें काहेसे कि अनार की वासना करके हृदय को दुःख पहुंचता है और माखियों के डसने से दुःख शरीर को होता है तासे जान तू कि यद्यपि अनार का खाना पाप नहीं तो भी बुद्धिमान् यों जानते हैं कि वासना के भोग पवित्र अथवा अपवित्र यह दोनों समान हैं और निन्द्य हैं काहे से कि जब पापादिक मार्गों से महाराज

भरजा जावे और कार्य्य निर्वाहमात्र पर न ठहरायां जावे तो यह मन भोग वासना करके पापों विषे वर्त्तने लगता है इसी कारण से बुद्धिमानों ने पापरहित भोगों को त्याग किया है तब इस यत्न करके वासना से मुक्तहुये हैं सो ऐसेहीं उमर ने भी कहा है कि सत्तरबार मैंने पापरहित भोगों का त्याग किया है इस भय करके कि मन मत्त मेरा पाप भोगों में प्रवेशकरे और योंभी है कि जब मन रजिस्री भोगों में प्रीति संयुक्त बनता है तब इसी संसार को स्वर्ग जानता है और मरने को दुःख जानता है और इसी करके बुद्धि अचेत होती है और यद्यपि कुछ भजन और प्रार्थना करता है तो भी उसके मुख्य स्वादको नहीं पाता ताते जब इस मनको पापरहित भोगों से भी वरज रखिये तब निर्बल और अधीन होताहै और इस लोकके सुखों से भागा चाहता है और परलोक के सुख की श्रद्धा करने लगताहै सो जब यह मन दुःख और अधीनता संयुक्त भगवत की नाम लेवे तब इतना स्वाद और फलदायक होता है जो सुख में सौ बार नाम लेवे तौभी उसके समान नहीं होता ताते मन का दृष्टान्त बाज की नाईं है अर्थात् जब बाज पक्षी को पकड़ते हैं तब प्रथम नेत्र उसके मूंद कर घर में रखते हैं और यत्न करके उसको उडने के स्वभावसे बन्द करते हैं बहुरि तिसके पीछे उसको थोड़ा २ आहार देते हैं तब बाज उस पालनेवालेसे मिलाप प्यार करने लगताहै और आज्ञाकारी होताहै बहुरि जब उसको उड़ावते हैं तब प्यार करके फिर आताहै तैसेही जबलग इस मनको सर्व्व वासनाओं के स्वभावों से भिन्न न करिये तबलग इसको भगवत् में प्रतीति नहीं उपजती और जबलग नेत्र कानों रसना और सब इन्द्रियों को रोके नहीं और मौन और एकान्त और जाग्रत् और मौनकरके इस मन को दण्ड न देवें तबलग मनको प्यार भगवत् विषे नहीं होता सो यह यत्न करना मनको प्रथम कठिन होताहै जैसे बालकको माताको दूध त्यागना कठिन होताहै पर जब माता उसको यत्न करके दूध पीनेसे छुड़ाती है तब वह बालक ऐसा होजाता है कि जो उसको यत्न करके वह दूध दीजिये तो भी नहीं पीता ताते जान तू कि तप करना यही है कि जिस पदार्थ में इस पुरुष को अधिक प्रीति होवे और उसकी प्राप्ति में बहुत प्रसन्नता होवे तब उसी पदार्थ को त्यागदेवे और जो संसार इसपर प्रसन्न होवे तिसको विपर्य्यय करे यही उपाय नपडेहै ताते जिस पुरुषको मान बड़ाई में अधिक प्रीति होवे वह

मानका त्यागकरे और जिसकी प्रीति धनके संग्रहमें होवे वह धनका त्यागकरे और इसकी नाई जिस पदार्थ को अपने सुखका स्थान भगवत् बिना जानता होवे तब चाहिये कि यत्नकरके उस पदार्थका त्यागकरे और उस पदार्थ के साथ सम्बन्धकरे जो कदाचित् इससे दूर न होवे और जो सामग्री मरने के समय इससे दूर होनेवाली है तिसको पुरुषार्थ करके आगेही त्यागकरे सो सदैव इसका सङ्गी एक महाराजही है और कोई नहीं जैसे महात्मा दाऊदको आकाशवाणी हुईथी कि हे दाऊद! सङ्गी तेरा एक मेंहीं हूं ताते तू मेरेही साथ मिलाप कर और महापुरुषने भी कहाहै कि मुझसे भगवत्के मुख्य पार्षद ने इसप्रकार कहाहै कि गाया के जिस पदार्थके साथ तू प्रीति करताहै वह निस्सन्देह तुझसे दूरहोवेगा ॥ अब छठे विभाग में भले स्वभावों के लक्षण वर्णन होवेंगे ॥ ताते जान तू कि भगवत्ने भले स्वभावों के लक्षण इसप्रकार कहे हैं कि निस्सन्देह ऐसे जिज्ञासु संसार से मुक्त हुये हैं जो त्याग और भजन और शुक्र संयुक्त हैं और गौंभी कहा है कि मेरी प्रीतिवाले मनुष्य ऐसे हैं जो सर्व व्यवहारों में धैर्य के साथ वर्तते हैं और जो कपटियोंके लक्षण हैं सो सबही बुरे स्वभाव हैं जैसे महापुरुष ने कहाहै कि प्रीतिवानोंकी श्रद्धा भजन और तपमें होती है और मनमुखों की श्रद्धा आहार और भोगों में हद होती है ॥ और ज्ञानिमनागी सन्तने कहा है कि गुरुमुख का हृदय विचार और आश्चर्य में रहता है और मनमुख आशा और तृष्णा विषे आसक्त रहताहै बहुरि गुरुमुख सब संसार से निराश रहता है और एक महाराजही की आशा रखता है और मनमुख सब लोगों की आशा रखताहै एक महाराज से निराश रहताहै और गुरुमुख धनको धर्मपर निवछावर करताहै और बिमुख अपना धर्मही धनपर निवछावर करताहै बहुरि गुरुमुख भजन करताहै और भयभयुक्त रहताहै और मनमुख पाप करता है और निडर होकर हँसता है गुरुमुख की प्रीति एकान्त बिषे होती है और मनमुखकी प्रीति जगत् के मिलाप में होती है गुरुमुख यद्यपि सुकृतबीज बोयताहै तोभी डरता रहता है कि मेरी खेती विघ्नकरके नष्ट न होजावे और मनमुख शुभ बीज बोवता ही नहीं और फलकी आशा करता है ॥ और सन्तजनों ने इसप्रकार से भी कहा है कि भले स्वभाव के लक्षण यह हैं कि मनुष्य लज्जावन्त और निर्लोभ और सुगन्धित होवे और सत्य बोले वचन थोड़ा कहे और भजन बहुत करे

निष्पाप होवे संयमीहोवे सब किसीका भलाचाहै और सबका सुखदायक होवे दयावान, गंभीर, धीर,सन्तोषी, धन्यवाद करनेवाला, सहनशील, निर्लोभहोवे दुर्वचन और धिक्कार किसीको न कहै निन्दा रहित होवे किसी के वचनका छिद्र न ढूंढे वचन शुभ बोले किसी कार्य्य में उतावली न करे हृदय में क्रोधकी अग्नि न राखे ईर्षा न करे मस्तक प्रसन्न राखे मित्रता और वैर प्रसन्नता और क्रोध सब जिसका केवल धर्महीके निमित्त होवे पर ऐसे जान तू कि स्वभाव की भलाई सहनशीलतामेंही विशेष होती है जैसे महापुरुष को जब मनमुखों ने दुःखदिया और दाततोडे तब उन्होंने महाराजसे प्रार्थनाकी कि हे महाराज! तू इनके ऊपर दयाकर काहेसे कि यह मुझको जानतेही नहीं और इब्राहीम अदहमनामी संत एक वनमें चलेजाते थे तब एक सिपाही उनको मिला और उसने पूछा कि तू कौन है तब इन्होंने कहा कि मैं गुलामहूं बहुरि सिपाही ने पूछा कि बस्ती कहा है तब इन्होंने श्मशानकी ओर सयनकरी तब सिपाही ने कहा कि मैं बस्ती को पूंछताहूं तब फिर इब्राहीम ने कहा कि बस्ती तो यही है तब सिपाही ने उनके शिरमें लाठीमारी और रुधिरबहनेलगा और उनको खैंच कर नगरमें लेआया तब लोगोंने देखकर सिपाहीसे कहा कि हे मूर्ख! तू जानता नहीं कि यह इब्राहीम अदहम है तब वह सिपाही घोड़ेपरसे उतरकर इब्राहीम जी के चरणोंपर गिरपड़ा और कहनेलगा कि मैंने भूलकर यह अपराध किया तुम क्षमाकरो तब लोगोंने सिपाही से पूछा कि तूने किस निमित्त इनको मारा तब उसने कहा कि मैंने इनसे पूछाथा कि तू कौनहै सो इन्होंने कहा कि मैं गुलामहूं तब इब्राहीमजी बोले कि मैंने तो सत्य कहा है क्योंकि मैं भगवत् का गुलामहूं यह बात निस्सन्देहहै बहुरि सिपाहीने इब्राहीमसे कहा कि भला जब मैंने तुमसे पूछाथा कि बस्ती किधर है तब तुमने श्मशान को क्यों बताया तब इब्राहीमजी बोले कि यहभी हमने सत्यकहा काहेसे कि लोग नित्यप्रति श्मशानही विषे आवते हैं बहुरि नगर उजड़ते जाते हैं और श्मशान बसताजाता है ताते बस्ती यही है फिर सिपाहीने कहा कि जब मैंने तुमको माराथा तब तुम ने मेरे ऊपर क्रोध हृदयमें कियाहोगा तब इब्राहीमजी बोले कि मैं महाराजके आगे प्रार्थनाकरके तेराभला और कल्याण चाहा क्रोध नहीं किया बहुरि सिपाही ने पूछा कि तुमने मेरा भला किस निमित्त चाहा तब उन्होंने कहा कि मुझको

मानका त्यागकरे और जिसकी प्रीति धनके सग्रहमें होवे वह धनका त्यागकरे और इसकी नाईं जिस पदार्थ को अपने सुखका स्थान भगवत् बिना जानता होवे तब चाहिये कि यत्नकरके उस पदार्थका त्यागकरे और उस पदार्थ के साथ सम्बन्धकरे जो कदाचित् इससे दूर न होवे और जो सामग्री मरने के समय इससे दूरहोनेवाली है तिसको पुरुषार्थ करके आगेही त्यागकरे सो सदैव इसका सङ्गी एक महाराजही है और कोई नहीं जैसे महात्मा दाऊदको आकाशवाणी हुईथी कि हे दाऊद! सङ्गी तेरा एक मैंहीं हूं तातें तू मेरेही साथ मिलापकर और महापुरुषने भी कहाहै कि मुझसे भगवत्के मुख्य पार्षद ने इसप्रकार कहाहै कि गाया के जिस पदार्थके साथ तू प्रीति करताहै वह निस्सन्देह तुझसे दूरहोवेगा॥ अब छठे विभाग में भले स्वभावों के लक्षण वर्णन होवेंगे ॥ तातें जान तू कि भगवत्ने भले स्वभावों के लक्षण इसप्रकार कहे हैं कि, निस्सन्देह ऐसे जिज्ञासु संसार से मुक्त हुये हैं जो त्याग और भजन और शुकुर संयुक्त हैं और यों भी कहा है कि मेरी प्रीतिवाले मनुष्य ऐसे हैं जो सर्व व्यवहारों में धैर्य्य के साथ वर्तते हैं और जो कपटियोंके लक्षण हैं सो सबही बुरे स्वभाव हैं जैसे महापुरुष ने कहाहै कि प्रीतिवानोंकी श्रद्धा भजन और तपमें होती है और मनमुखों की श्रद्धा आहार और भोगों में दृढ़ होती है ॥ और हातिमनामी सन्तने कहा है कि गुरुमुख का हृदय विचार और आश्चर्य्य में रहता है और मनमुख आशा और तृष्णा विषे आसक्त रहताहै बहुरि गुरुमुख सब संसार से निराश रहता है और एक महाराजही की आश रखता है और मनमुख सब लोगों की आशा रखताहै एकमहाराज से निराश रहताहै औरगुरुमुख धनको धर्मपर निवछावर करताहै और विमुख अपना धर्महीं धनपर निवछावर करता है बहुरि गुरुमुख भजन करताहै और भयसंयुक्त रहताहै और मनमुख पाप करता है और निडर होकर हँसता है गुरुमुख की प्रीति एकान्त विषे होती है और मनमुखकी प्रीति जगत् के मिलाप में होतीहै गुरुमुख यद्यपि सुकृतबीज बोवताहै तोभी डरता रहता है कि मेरी खेती विघ्नकरके नष्ट न होजावे और मनमुख शुभ बीज बोवताही नहीं और फलकी आशा करता है ॥ और सन्तजनों ने इसप्रकार से भी कहा है कि भले स्वभाव के लक्षण यह हैं कि मनुष्य लज्जावन्त और निर्दोष और शुभचित्त होवे और सत्य बोले वचन थोड़ा कहे और भजन बहुत करे

निष्पाप होवे सयमीहोवे सब किसीका भलाचाहे और सबका सुखदायक होवे दयावान, गंभीर, धीर, सन्तोषी, धन्यवाद करनेवाला, सहनशील, निर्लोभहोवे दुर्वचन और धिक्कार किसीको न कहे निन्दा रहित होवे किसी के वचनका छिद्र न ढूंढे वचन शुभ बोले किसी कार्य में उतावली न करे हृदय में क्रोधकी अग्नि न राखे ईर्षा न करे मसन्न प्रसन्न राखे मित्रता और वैर प्रसन्नता और क्रोध सब जिसका केवल धर्महीके निमित्त होवे पर ऐसे जान तू कि स्वभाव की भलाई सहनशीलतामेंही विशेष होती है जैसे महापुरुष को जब मनमुखों ने दुःखदिया और दांततोडे तब उन्होंने महाराजसे प्रार्थनाकी कि हे महाराज! तू इनके ऊपर दयाकर काहेसे कि यह मुझको जानतेही नहीं और इबराहीम अदहमनामी संत एक वनमें चलेजाते थे तब एक सिपाही उनको मिला और उसने पूछा कि तू कौन है तब इन्होंने कहा कि मैं गुलामहूं बहुरि सिपाही ने पूछा कि बस्ती कहां है तब इन्होंने श्मशानकी ओर सयनकरी तब सिपाही ने कहा कि मैं बस्ती को पूछताहूं तब फिर इबराहीम ने कहा कि बस्ती तो यही है तब सिपाही ने उनके सिरमें लाठीमारी और रुधिरबहनेलगा और उनको खैंच कर नगरमें लेआया तब लोगोंने देखकर सिपाहीसे कहा कि हे मूर्ख! तू जानता नहीं कि यह इबराहीम अदहम है तब वह सिपाही घोड़ेपरसे उतर कर इबराहीम जी के चरणोंपर गिरपड़ा और कहनेलगा कि मैंने भूलकर यह अपराध किया तुम क्षमाकरो तब लोगोंने सिपाही से पूछा कि तूने किस निमित्त इनको मारा तब उसने कहा कि मैंने इनसे पूछाथा कि तू कौनहै सो इन्होंने कहा कि मैं गु- लामहूं तब इबराहीमजी बोले कि मैंने तो सत्य कहा है क्योंकि मैं भगवत् का गुलामहूं यह बात निस्सन्देहहै बहुरि सिपाहीने इबराहीमसे कहा कि भला जब मैंने तुमसे पूछाथा कि बस्ती किधर है तब तुमने श्मशान को क्यों बताया तब इबराहीमजी बोले कि यहभी हमने सत्यकहा काहेसे कि लोग नित्यप्रति श्म- शानही विषे आवते हैं बहुरि नगर उजड़ते जाते हैं और श्मशान बसताजाता है ताते बस्ती यही है फिर सिपाहीने कहा कि जब मैंने तुमको माराथा तब तुम ने मेरे ऊपर क्रोध हृदयमें कियाहोगा तब इबराहीमजी बोले कि मैं महाराजके आगे प्रार्थनाकरके तेराभला और कल्याणचाहा क्रोध नहीं किया बहुरि सिपाही ने पूछा कि तुमने मेरा भला किस निमित्त चाहा तब उन्होंने कहा कि मुझको

यह निश्चय दृढ़है कि सहने में बड़ा फल होताहै सो जब मैंने जाना कि जो दण्ड सहने करके मुझको तो फलहोगा परन्तु तुझको मेरे कारके इसका पाप लगेगा याते मैंने तेराभी भला चाहा ॥ और एक उसमानहैरीनामी सन्तथे सो वह एकसमय किसी गलीमें चलेजातेथे तब किसीने अचानक छतपरसे उनके ऊपर राख थालभरके डालदी तब वह सन्त वस्त्र अपने झाड़कर महाराज का शुकुर करनेलगे बहुरि लोगोंने कहा कि यह शुकुरका कौन स्थानथा तब उन्हीं ने कहा कि मैं अग्निमें जलावने योग्य था पर महाराजने राखपरही दयाकरके निबेरा करदियाहै ताते मैं शुकुर करताहूं बहुरि इन्हीं उसमानहैरी की एक और वार्ता है कि किसीपुरुषने प्रसाद पावनेके निमित्त इनका निमन्त्रण कियाथा सो जब अपने घर लेगया तब भीतर घरमें परीक्षा के कारणकरके पैठने न दियातब यह फिर चले बहुरि इनको उस पुरुषने पुकारलिया तब फिर आये बहुरि उसने भीतर पैठतेहुये बरजा तब फिर निकसचले इसीप्रकार उस पुरुषने बहुतबार इन का निरादरकिया और फिर फिर बुलाया सो जब वह पुरुषबुलावै तब चलेआवें और जब बरजे तब निकसचलें तब उस पुरुषने कहा कि हे महात्माजी । मैं आप की परीक्षा लेताथा सो निस्सन्देह आप उत्तमजन हैं तब उन्होंने कहा कि यह जो स्वभाव तैंने मेरे विषे देखाहै सो यह तो कूकुरोंका भी स्वभाव है कि जब कूकुरको बुलाइये तब आवता है और जब बरजिये तब फिर जाता है ताते इस स्वभाव की कहा विशेषताहै ॥ बहुरि एक और सन्तथे उनका त्यागरागया और सबलोगोंमें उनकी बड़ाई प्रसिद्धथी सो जब वह हम्माम अर्थात् स्नानके स्थान में स्नानकरने को जातेथे तब हम्मामका टहलुवा हम्मामको खाली करदेताथा अर्थात् लोगोंको दूरकरके तिनको स्नान करावताथा बहुरि एकदिन वह स्ना नको गयेथे और टहलुवा लोगोंको दूरकरके किसी कार्य्यको गयाथा और वह हम्माममें अकेलेही रहेथे तब एक पुरुष जंगली वहां आया और उसने इनको देखकर जाना कि हम्मामका टहलुवा यही है तब उस जंगली पुरुषने इनको अपनी टहलमें लगाया और आप स्नान करनेलगा और जैसी टहल वह इन से करावताथा तैसीही यह करतेरहे बहुरि जब वह टहलुवा आया और जंगली पुरुषका बोलना उसने सुना तब टहलुवा भयवान् होकर निकसगया बहुरिजब जंगलीपुरुष गया और यह सन्तभी स्नान करके बाहर आये तब लोगोंने कहा

कि टहलुआ भयवान् होकर भागगया है तब उस सन्तने कहा कि टहलुआ क्यों डरता है यह अवज्ञा टहलुवेकी न थी मेरे गरीबही की अवज्ञा थी काहेसे कि मेरे शरीरको मार श्याम टहलुवों की नाईं है बहुरि एक और सन्त थे सो सीवनेकी क्रिया करके अपना निर्वाह करते थे सो एक मनमुख उनसे अपने वस्त्र सिलवाकर जब मजदूरी दे देताथा तब खोटाही रुपया देताथा और वह लेलेतेथे बहुरि एक दिन आप किसी कार्य्यको गये थे और टहलुआ वहां बैठाथा तब वह मनमुख उस टहलुवेको खोटा रुपया देनेलगा टहलुवे ने नहीं लिया तब वह सन्त अपने घर आये तब टहलुवेने वह बात कही तब उन्होंने टहलुवेसे कहा कि तूने रुपया क्यों नहीं लेलिया आगे कई वर्ष से वह पुरुष मुझको खोटाही रुपया देतारहा है परमैंने उससे प्रसिद्ध करके नहीं कहा कि तू खोटा रुपया क्यों देता है तातें मैं उससे लेकर धरती विषे गाड़देताहूं इस विचारसे कि कोई और पुरुष न ठगाजावे और एक आवेस करनी नाम करके एक सन्त थे सो वह जब नगर में जाते तब बालक उनको पत्थर मारते थे तब वह बालकों से कहतेथे कि मेरे छोटे २ पत्थर मारो काहेसे कि जो मेरी टांगों में से रुधिर निकलेगा तो मैं भजन विषे खड़ा न होसकूंगा और एक कोई मूर्ख किसी सन्तको दुर्वचन कहनेलगा था और वह मार्ग में चलेजाते थे सो यह मूर्ख भी उनके संग में दुर्वचन कहता जाता था और यह सन्त मौन होकर सुनतेहुये जातेथे सो जब सम्बन्धियोंके स्थानके निकट पहुंचे तब खड़ेहोगये और उससे कहनेलगे कि तुमको जो कुछ और भी कहना होवे सो सब हमको यहां ही कहलो काहेसे कि तेरे दुर्वचन जब मेरे सम्बन्धी सुनेंगे तब तुझको दुःख देवेंगे और मालिकदीनार नामी सन्त से किसी स्त्रीने कहाथा कि तू कपटी है तब उन्होंने कहा कि मेरा नाम यही था पर इस नगरके लोग जानते न थे सो तैंने अब प्रसिद्ध किया है ताते जान तू कि सम्पूर्ण भले स्वभाव के लक्षण यही हैं जो इन सन्तजनों के लक्षण वर्णन किये गये सो यह स्वभाव उनको प्राप्त हुये हैं जिन्हों ने पुरुषार्थ करके मन के स्वभावोंको दूर किया है और हृदयको शुद्ध कियाहै ताते भगवत् बिना और कुछ नहीं देखते और जो कुछ देखते हैं तिस का प्रेरक भगवत्‌हीको जानते हैं ताते चाहिये कि जो पुरुष आपने में यह लक्षण न देखे वह अभिमानी होकर यों न जाने कि मुझको भला स्वभाव प्राप्तहुआ है अब सप्तम विभाग में यह वर्णन

होवेगा कि माता पिता बालकों को इसप्रकार सिखावें ॥ ताते जान तू कि बालकभी माता पिता के पास महाराजकी थाती है और बालकका हृदय प्रबल मणिकी नाईं शुद्ध होताहै और कोमल होताहै और जो कुछ उसको सिखाइये तिसका अधिकारी है और हृदय उसका शुद्ध भूमिकी नाईं है जो कुछ बीज उसमें बोइये वह उगआवता है सो जब शुभबीज बोइये तब इसलोक और परलोककी भलाई को प्राप्त होता है और तब माता पिता भी और गुरुभी उसके पुण्यमें साक्षी हैं और जब बालकके हृदय में अशुभबीज बोइये तब भाग्यहीन होताहै और फिर जो कुछ पापकर्म वह करताहै तिस विषे भी माता पिता और सिखावनेवाले परलोकमें साथी हैं सो महाराजनें भी कहाहै कि अपने मन और सम्बन्धियों को नरककी अग्निसे बचाओ ताते बालकों को इस नरककी अग्नि से बचावना स्थूल अग्निकी रक्षासे अधिक प्रमाणहै सो नरककी अग्निसे बचावना इस प्रकार होता है कि बालक को भयसंयुक्त राखे और उसको भले गुण सिखावे और कुसंग से रक्षाकरे कि कुसंग करके सब्बे विघ्न उत्पन्न होते हैं ताते प्रथमही बालकको राजसी भोजन और वस्त्रका स्वभाव न डाले काहेसे कि वे राजसी स्वभावहैं सो जब इनका अभ्यास होजायगा तब पीछे भोगों बिना रह न सकेगा ताते चाहिये कि बालक के प्रतिपाल करनेवाली दाई भी भली होवे और आहारभी शुद्ध पावनेवाली होवे काहे से कि बालक जैसा दूध पीवता है तैसाही गुण अथवा अवगुण उसमें प्रवेश करता है और जब बालककी जिह्वा खुले तब प्रथम भगवत्का नामही सिखावे बहुरि जब ऐसा होवे कि बुरे कार्य से लज्जाकरे तब जानिये कि भलाहोगा और इसके ऊपर बुद्धि का प्रकाश प्रकाहै तब चाहिये कि वही लज्जा उसके विषे बढ़ावे और जब कुछ बुरा कार्य करे तब उसको ताड़ना करे और बरजे सो प्रथमही बालक को खानेकी तृष्णा उत्पन्न होती है ताते चाहिये कि उसको खानेकी युक्ति सिखावे सो युक्ति यह है कि जब भोजन खाने लगे तब प्रथम महाराज का नाम लेवे और धैर्य संयुक्त खावे और अपनी दृष्टि किसी और के भोजनकीओर न करे बहुरि कभी कभी बालक को रूखी रोटी भी खिलावे जिसमें बालकका स्वभाव रसों में अधिक न होवे और बहुत खानेकी उसको निषेधता सुनावे कि आहार बहुत खाना पशुओं और मूर्खों का कामहै और जो बालक भय संयुक्त होवे तिसकी प्रशंसा करे

तब उसकी विशेषता सुनकर यह बालकभी उस स्वभाव को ग्रहण करेगा और वस्त्र श्वेत पहिरनेकी स्तुतिकर समझावें और रंगीन और रेशमी वस्त्रकी निंदा करे और कहे कि ऐसे वस्त्र सुन्दर पहिरना स्त्रियों का काम है अथवा अभिमानियों का पहरावा है और शरीर का शृङ्गार बनावना नाचनेवालों और हिजरोंका काम है भले पुरुषोंका स्वभाव ऐसा नहीं होता और जो बालक रेशमीवस्त्र और रजसी स्वभाववाला होवे तिसकी सङ्गति से अपने बालक की रक्षा करे काहेसे कि ऐसी संगति करके बालककी बुद्धि का नाश होता है और भोगोंकी वासना उत्पन्न होती है तातें जिन बालककी रक्षा बुरी संगति से नहीं करते तब वह बालक क्रोधी और निर्लज्ज और चोर और झूठा और निडर हो जाता है सो वह स्वभाव उसका चिरकालपर्यन्त भी दूर नहीं होता बहुरि जब बालक चटशाला विषे जावे तब भगवंतके वचन उसको पढ़ावे और सन्तोंकी रहनि और वर्तावनेका इतिहास पढ़ावे और जिस विद्यामें स्त्रियों का शृङ्गार और उनकी प्रीति वर्णन होवे तिससे बरजे और पाठक ऐसे की संगति बालक को न करावे जो इस प्रकार कहे कि ऐसी विद्याके पढ़ने से बुद्धि चतुर होती है सो वह पढ़ानेवाला असुरकी नाईं है कि बालकके हृदयमें पापोंका बीज बोवना चाहता है बहुरि जब वह बालक कोई सुकृत करे अथवा कोई भलास्वभाव उसमें प्रकट होवे तब उसकी प्रशंसा करे और कुछ बालकको देवे कि उसकरके बालक प्रसन्न होवे और जो कुछ बुराई करे तो प्रथम एक दोवार देखकर चुप हो जावे काहेसे कि बालक ढीठ न होजावे और जब ढीठ होता है तब प्रकटही बुराई करने लगता है बहुरि जब बालकका स्वभाव बुराई विषे अधिक होवे तब एकान्तमें उसको ताड़ना करे और कहे कि यह बुराई फिर मतकरना काहेसे कि जब तू फिर करेगा तो लोग देखेंगे और तू अपमानताको प्राप्त होवेगा और पिताको चाहिये कि अपना भय उससे दूर न करे अर्थ यह कि पिता के होतेहुये बालक निर्लज्ज होकर न वर्ते व बालकको दिनमें बहुत न सुलावे जिस में आलसी न होजावे व रात्रिको भी कोमल शय्यामें सोने न देवे जो शरीर बालकका दृढ़ होवे और दिनमें दोघड़ी पर्यन्त खेलनेकी भी छुट्टी देवे जिसमें बालक का चित्त अत्यन्त सकुचा न रहे काहेसे कि सारे दिनके परिश्रमसे चित्त को मूर्च्छा प्राप्त होती है और बालक को ऐसा स्वभाव सिखावे कि सब किसी को नम्रता सहित और दीनता सहित प-

पाग करे और अन्तर किसी बालकपर बड़ाई करके बड़ावे नहीं और किसी बालकमें कुछ लेवे नहीं और सोनो सिखावे कि नाक और मुखका मैल किसी के सन्मुख न डालो और किसी पुरुषकी ओर पीठ न करे ममर्सयुक्त बैठे और हाथ तले हाथधरके न बैठे कि यहभी लक्षण आलसियों का होता है और बहुत बोले भी नहीं और किसी कार्यमें भगवत्की सौगन्द न करे और बुलाये बिना बोले नहीं, और जो कोई उससे बड़ाहोवे उसका अनादर न करे और उसके आगे होकर न चले और दुर्वचन और धिक्कार से अपनी जिह्वा को रोके रहे और जब बालक को पढ़ावनेवाला दण्डदेवे तब बहुत ज़ोर पुकार न करे काहेसे कि सहना पुरुषों का कामहै और पुकार करना स्त्रियोंका कामहै और जब बालक सात वर्ष का होवे तब उस को स्नान और भजन प्यार करके सिखावे और जब दशवर्षका होवे और नियम में कुछ अवज्ञा करे तब उसको ताड़ना देवे और चोरी और झूठ और अशुद्ध आहारकी बुराई उसको सिखावे सो जब बालक को इसप्रकार सिखाइये तब किशोर अवस्था में सब कर्तृतों के भेद को अपनी बुद्धि करके सुगम समझता है तब चाहिये कि उससे कहे कि भोजन करने का प्रयोजन यह है कि इसपुरुषको भजन करने का बल होवे और इसजगत में जीवने का प्रयोजन यह है कि परलोक मार्गका तोशा बनावे काहेसे कि जीवन थोड़ा है और मृत्यु इसको अचानक ही ग्रसलेती है तातें बुद्धिमान् पुरुष वही है जो इसलोकमें परलोकका तोशा बना लेवे कि इसकरके उत्तम सुख और भगवत् की प्रसन्नता को पावे तातें पुण्य और पाप करके जो नरक और स्वर्ग और सुख दुःखकी प्राप्ति होती है सो भलीप्रकार बालक को समझावे सो जब प्रथम बालक को भली प्रकार सिखाया जाता है तब वह वचन उसके हृदय में पुतलीकीनाई दृढ़ होजाता है और जो प्रथमही न सिखाइये तो फिर पीछे उसको सद उपदेश दृढ़ नहीं होता जैसे लवनी अर्थात् ऊसरकी मट्टीकी भीतिपर लेप नहीं ठहरता सो इसीपर सुहैल तस्तरी नामी एक सन्तकी कथा है कि उन्होंने इसप्रकार कहा है कि जब मैं तीन वर्ष का था तब रात्रि में पिता को भजन करते देखता था सो एकसमय उन्होंने मुझसे कहा कि हे पुत्र! जिस भगवत्ने तुझको उत्पन्न किया है तिसका तू भजन क्यों नहीं करता तब मैंने कहा कि भजन किसप्रकार करूं तब तिनाने कहा कि रात्रिको सोवने के समय यों कहलिया कर तीनवार कि महाराज मेरे साथ है

और महाराज मुझको देखता है और महाराज मेरा अन्तर्यामी है सो कई रात्रि में नित्यप्रति इसी प्रकार कहता रहा फिर पिताने कहा कि अब यह वचन सात बार रात्रिको कहाकर तब में सातबार कहनेलगा फिर ग्यारहबार कहने को कहा सो कुछ दिन में ग्यारह बार कहता रहा तब इस करके मेरे हृदय में कुछ स्वाद सुख आनेलगा बहुरि जब एक वर्ष बीता तब पिताने कहा कि जो मैंने तुमको यह सिखाया है सो इसी को दृढ़ करले और मरने पर्यंत न बिसारना कि यही भजन इसलोक और परलोक में तेरा सहाय होवेगा सो कितने ही वर्ष पर्यंत में इसी प्रकार कहता रहा तब मेरे हृदय में और अधिक रहस्य प्रकट हुआ फिर पिताने कहा कि हे पुत्र! महाराज जिस के साथ होवे और मदैव जिसके साथ होकर उसको देखतारहै और जिसके हृदय का अन्तर्यामी होवे सो वह पुरुष पाप क्योंकर करे ताते तुमको भी चाहिये कि तू पाप कर्म कदाचित् न करे बहुरि उससे पीछे मुझको चटशाला में भेजा तब मैंने अपने चित्त में विचार किया कि पढ़ने में लगने करके कहीं मेरा चित्त पसर न जावे ताते मैंने पाठक के साथ वचन करलिया कि मैं तीन घड़ी पर्यंत पढूँगा और पीछे अपने भजन में स्थित होऊंगा इसीप्रकार में उस पाठकके पास पढ़नेलगा और सम्पूर्ण कुरान मैंने पढ़े बहुरि जब सात वर्ष का हुआ तब सदैव दिन को व्रत करनेलगा और रात्रिको आहार करता रहा बहुरि जब बारह वर्ष का हुआ तब मेरे हृदय में एक प्रश्न आया और उस प्रश्न का उत्तर नगर में किसीसे न दियागया बहुरि पिता की आज्ञा लेकर बैसरेनामी नगर में आया पर वहां भी उस प्रश्न का उत्तर किसी ने न दिया बहुरि मैं एक और नगर में हबीब नामी बड़े भजनी सन्त के पास गया तब उन्होंने उत्तर देकर मेरे संशय को निवृत्त किया तब कई वर्ष मैं उनके निकट रहा और मुझ को उनकी संगति में बहुत लाभ प्राप्त हुआ बहुरि मैं अपने नगर तुस्तर में आया और एकान्त रहकर भोजन इस प्रकार करनेलगा कि एक दिरम के जब मोल लेकर उसी में एक वर्ष पर्यंत भोजन करता था और रात्रि के समय एकबार किंचित् भोजन करलेता था बहुरि तीन दिन पीछे खानेलगा उससे पीछे सातवें दिन फिर पचीसवें दिन खानेलगा सो बीस वर्ष मैं इसी अवस्था में रहा और सम्पूर्ण रात्रि विषे जागरण करता रहा सो इन बातों का प्रयोजन यह है कि जैसा अभ्यास वाले अवस्था में होता है वह निस्सन्देह दृढ़ होजाता है ७ ॥

और अष्टम विभाग विषे युक्तियां जिज्ञासु के अभ्यास और यत्न की वर्णन होवेंगी कि जिसप्रकार जिज्ञासु आदि धर्म के मार्ग विषे चलना है॥ ताते जानना कि जो पुरुष भगवत् के दर्शन को प्राप्त नहीं हुआ सो तब इसकारण भोग नहीं हुआ कि प्रथमही उस मार्ग विषे चला नहीं और जो कोई उस मार्ग में नहीं चला उसका कारण यहहै कि उसने मार्ग को नहीं खोजा और न खोजने का हेतु यह कि उसको बूझही न थी और प्रतीति भी उनकी दृढ़ न थी काहेते कि जिस पुरुष ने यह जाना है कि इस लोक के सुख दुःखदायक और नाशवान् हैं और परलोकका सुख निर्मल और नित्यहै उस पुरुषको परलोकमार्ग की अभिलाषा प्रकट होतीहै क्योंकि नीच पदार्थ को त्यागकर उत्तम पदार्थ को ग्रहण करना कठिन नहीं होता जैसे कोई पुरुष माटीका बासन देवे और उसको सोनेका बासन उसके बदले में प्राप्तहोवे तब उस पुरुषको माटीका बासन देना कठिन नहीं होता, ताते प्रसिद्ध हुआ कि परलोक मार्ग विषे विमुख होना प्रतीतिकी हीनता करके होती है और प्रतीति की हीनता इसकारण करके होती है कि विचारवान् और वैराग्यवान् पुरुष इसकालमें दुर्लभहैं कि जिनकी संगति और उपदेश इतरजीव धर्ममार्ग को प्राप्त होवें इसी से इतर संसारी जीव अपनी भलाई में विमुख रहते हैं और जो कोई विद्यावान् पुरुष पायाभी जाताहै उसके ऊपर मायाकी प्रीति प्रबल होती है और वैराग्य से हीन होताहै सो जिस पुरुषकी प्रीति मायाकी तृष्णा विषे होवे वह और जीवोंको मायाका त्याग क्योंकर कराता है और उसका उपदेश लोगों के हृदय में क्योंकर दृढ़ होगा कि जिसको सुनकर परलोक मार्ग विषे चलें काहेसे कि परलोकमार्ग और इसलोकमें परस्पर बड़ा विरोध है जैसे पूर्व दिशा और पश्चिम दिशामें अंतराय है कि जितना पूर्व दिशा को जावे उतनाही पश्चिम दिशासे दूर होताहै ताते जिस पुरुषको परलोक की श्रद्धा प्रकट होवे तिसकी ऐसी अवस्था होती है कि जैसी ऊपर वर्णन हुई सो महाराजने यों कहाहै कि जिस पुरुषको परलोककी श्रद्धा उत्पन्न हुईहै और उसके मार्ग विषे यत्न और कर्त्तव्य करताहै सो धर्मात्मा पुरुष वही है और यत्न करना जो महाराज ने कहाहै सो तिस यत्न को भी जानना चाहिये कि वह यत्न क्याहै ताते हमको आगे नवें विभागमें कहनेहैं॥ नवांविभाग धर्ममार्ग के यत्न की युक्ति वर्णनमें॥ ताते जानतू कि यत्न करना यहहै कि धर्मके मार्ग विषे म-

तने का उद्यमकरने। और कितनी युक्ति ऐसी हैं कि जब जिज्ञासु प्रथम उनको जानलेवे और वर्त्तनकरे तब पीछे धर्ममार्गमें चलने का अधिकारी होताहै बहुरि उससेपीछे अपनी रक्षा करनेवाले गुरुदेवका भरोसाकरे और दृढ़होकर उसका अंचल पकड़े बहुरि गुरू कोट है तिसकी ओटमें जिज्ञासु स्थित होवे सो प्रथम जो कहाहै कि कई युक्तिका निर्वाह करे तब जिज्ञासु धर्ममार्ग का अधिकारी होताहै सो उनमें प्रथम युक्ति यहहै कि भगवत् और इस जीवके विषे जो परदे और आड़ पड़ी है तिसको दूरकरे जिससे मनमुखों के संग में उसकी गिनती न होवे जैसे महाराज ने कहाहै कि मैंने मनमुखों के आगे और पीछे परदे डालदिये हैं अर्थ यह कि आपसे उनको दूर कियाहै सो वह चार परदे हैं जिन करके जीवको पटल हुआहै एक १ धन दूसरा २ मान तीसरा ३ वेप चौथा ४ पाप सो धनको इसप्रकार परदा कहाहै कि धन विषे चित्त लम्पट रहताहै और जबलग चित्त निस्संकल्प न होवे तबलग धर्ममार्ग विषे चल नहीं सक्ता ताते चाहिये कि धनके संग्रह का त्यागकरे और किंचित् निर्वाहमात्र राखे पर उसमें चित्तको आसक्त न करे और जो यह पुरुष असंग्रही होवे और आकाशी वृत्ति करके उसका आहार होवे तब वह तो सुखेनही धर्ममार्ग विषे चलताहै बहुरि मानके परदे को इसप्रकार दूरकरे कि जहांपर इसका आदर और मानहोवे तिस स्थान को त्याग जावे और ऐसे स्थान विषे जाय रहे कि जहां इसको कोई पहिचाने नहीं काहेसे कि जब इस पुरुषको जगत् विषे मान प्राप्त होता है तब यह पुरुष इस जगत्के मिलाप विषे सुख जानकर आसक्त होताहै और जो कोई जगत्के मिलापको सुख जानता है भगवत्को नहीं पहुँचता २ और वेपको जो परदा कहा है सो इस कारण करके है कि जब यह पुरुष देखा देखी करके किसी मत और पन्थको ग्रहण करता है तब औरोंके मतको खण्डन करता है और अपने मतकी स्तुति करताहै ताते उस पुरुषके हृदयविषे साचा वचन प्रवेश नहीं करता ताते चाहिये कि जितने मत और पंथहैं सभोंको बिसारे और भगवत्की एकता पर प्रतीति करे और चित्तको एकता विषेही दृढ़करे और एकता की दृढ़ता का लक्षण यह है कि भगवत् बिना और किसी का भरोसा न करे और किसी के अधीन न होवे सो जो पुरुष अपने मनकी वासना के अनुकूल चलता है वह वासनाहीका दासहै औरवासनाही उसका भगवत्है सो जिस पुरुषने यों जाना

है कि भगवत् एकहै और भगवत्की आज्ञा विपेही चलना विशेष है तब जो पुरुष अपनी मुक्तिके निमित्त भजन करताहै और भजनके बाद विवाद किसी नहीं पचता ३ और चौथा परदा जो पाप कहाहै सो जीवको महाकठिन पड़ता है ताहै काहेसे कि जिसे पुरुषको रंगभांत पापकर्मों विषे दृढ़ होता है उसका हृदय अन्धकार करके मलीन होजाताहै सो जिसका हृदय मलीन हुआ तिसको भगवत् प्रत्यक्ष नहीं भासता ताते अशुद्ध जीविका भी महापापहै और शुद्ध जीविका करके हृदय ऐसा उज्ज्वल होताहै कि जैसा किसी कर्म करके नहीं होता इसी कारण करके तपका मूल यही है कि अशुद्ध आहार का त्याग करे और जीविका अपनी शुद्धकरे और जो पुरुष चाहे कि जैसे शुभ करतूत संतजनों के वर्णनकिये हैं तैसे करतूतके किये बिनाही मेरे गुप्त भेद खुलें तब इसका दृष्टान्त यह है कि जैसे कोई पुरुष यह चाहे कि मैं विद्याके पढ़े बिनाही शास्त्र के अर्थों का ज्ञाता होजाऊं सो यह बात किसीप्रकार हो नहींसक्ती ताते जिसने यह चारों परदे दूर किये हैं वह भजनका अधिकारी होताहै बहुरि तिससे पीछे जिज्ञासुको गुरुकी अपेक्षा होतीहै काहेसे कि गुरु बिना इसजीवको धर्मका मार्ग नहीं खुलता क्योंकि भगवत्का मार्ग अतिगुह्य है और संसारी वासनाका मार्ग प्रकट है बहुरि सच्चा मार्ग एकहै और झूठेमार्ग अनेकहैं ताते निस्सन्देह प्रसिद्ध है कि ऐसा मार्ग सद्गुरु बिना प्राप्त नहीं होता सो जिज्ञासुको ऐसा चाहिये कि जब सद्गुरु साथमिलें तब अपने कार्य सद्गुरुको अर्पे और अपनी बुद्धि और बल का त्यागकरे ताते जब इसको सद्गुरु कुछ आज्ञाकरे और इसको कुछ संशय आवे तौभी योंजाने कि यह मेरीही बुद्धि की मलीनताहै और मेरा कल्याण सद्गुरुकी आज्ञाविषेहै और जब इसको फिर संशय आवे तब जैसे जिज्ञासुओंने आगे सद्गुरुओंकी आज्ञामानी है और अपनी बुद्धिके संशय दूरकिये हैं तिनके चरित्रोंको स्मरणकरे काहेसे कि सन्तजनोंने ऐसे भेदको बूझाहै कि जिज्ञासु अपनी बुद्धिकरके उस भेदको पाय नहींसक्ता जैसे जालीनूसनामी एक महावैद्य हुआहै सो तिस समय में किसी पुरुषके दाहिने हाथकी अंगुली में पीड़ा हुई और अवर जितने वैद्य थे तिन्होंने उस अंगुली पर औषध लगाई पर वह पीड़ा दूर न हुई पहुरि जालीनूसने बायें कांधेपर औषध लगाई तब और वैद्यों ने कहा कि अंगुलिया में पीड़ा होवे और कांधेपर औषध लगाईजाते सो यह

कैसा सयानप है और जालीनूस के ओपर लगाने करके अंगुलीकी पीड़ा दूर होगई सो जालीनूसने यों जानाथा कि इस अंगुली की नाड़ीके मूलमे रोगरहा है और सब नाड़िया पीठ और शीश से निकल कर शरीर विषे पसरती हैं सो दाहिने ओरकी नाड़ी बायें ओर जाती है और बायें ओरकी नाड़ी दाहिने ओर को जाती हैं पर इस भेदको और वैद्य समझते न थे और जालीनूसही जानता था सो इस दृष्टान्तका तात्पर्य यहहै कि किसीप्रकार जिज्ञासु सद्गुरुकी आज्ञा विषे चले और अपनी उक्ति और संशय न लावे और एक सन्तने कहाहै कि मैं अपने सद्गुरु के पास था सो एक स्वप्न मैंने देखा और उस को सद्गुरु के आगेकहा तब उन्होंने स्वप्नको सुनकर हृदयमें मेरेसाथ रोपकिया और एकमास पर्यंत मुझसे न बोले सो मैं इसका कारण समझता न था बहुरि उन्होंनेही कहा कि वह स्वप्न जो तैंने कहाथा सो यहथा कि मैंने तुझसे कोई कार्य करना कहा था और तूने कहा कि यह कार्य किस निमित्त करावतेहैं तबमैंने जाना कि जाग्रतमें जब मेरी आज्ञामें तुझको संशय न होता तब तू स्वप्नविषे भी संशय न लावता ताते मैंने तुझको शिक्षाके निमित्त और मेरे वचनमें सर्वप्रमाण लावनेके अर्थ रोप कियाथा सो जब इस प्रकार जिज्ञासु सद्गुरु की आज्ञा मानने में दृढ़ होताहै तब प्रथमही सद्गुरु उसको कोटमें स्थित करते हैं काहेतेकि जिज्ञासुको कोई विघ्न न लागे सो वह कोट की चार भीति हैं एक मौन दूसरी क्षुधा तीसरी एकांत चौथी जाग्रत् काहे से कि क्षुधा करके भोगों का बल क्षीण होताहै और जाग्रत करके हृदय उज्ज्वल होताहै और मौन करके वाद विवाद की विक्षेपता दूर होती है और एकान्त करके जगत्के मिलापका कुसंग और भयंग दूरहोता है और नेत्र और श्रवणभी रोके जाते हैं इसीपर सुहेलनामी सन्तनेभी कहाहै कि जो आगे सन्तहुये हैं वह इन चारों लक्षणों करकेही हुयेहैं सो जब जिज्ञासु स्थूल पदार्थ विषे पसरनेसे सकुचा तब आगे सूक्ष्ममार्गकी आदि यहहै कि उस मार्ग में कठिन घाटियां हैं सो प्रथम तिनको काटना है और चित्त में जितने मलिनी स्वभावहैं सोई कठिनघाटी हैं जैसे धन और मनकी तृष्णा और भोगोंकी वासना और दम्भ और अभिमान और गरूर इनकी नाई जो मलिन स्वभाव हैं सो सर्व अशुभ करतूतों के बीज हैं ताते इनको दूर करना चाहिये क्योंकि स्थूल पदार्थों में इनहीं करके पसरना होता है सो प्रथम जब इन को दूर किया तब हृदय शुद्ध

होवेगा ताते सम्पूर्ण अशुभ वासना को नाश करे और जिस प्रकार सद्गुरुकी आज्ञा होवे उसी प्रकार पुरुषार्थ करे काहे से कि सब जीवों का आकार भिन्न भिन्न है और अपने अधिकार को यह पुरुष अपने आप करके नहीं पहिंचान सके ताते सद्गुरुकी आज्ञा करके हृदय शुद्ध होता है बहुरि जब हृदयरूपी धरती शुद्ध हुई तब उसमें महाराजका भजनरूपी बीजबोवे सो प्रथम जब आन संकल्पों से रहित हुआ तब एकान्त ठौर विषे बैठे और सदैव श्रीराम राम मन और जिह्वा से कहे बहुरि तिसकेपीछे जिह्वा का बोलना ठहर जाताहै और वह नाम मनही विषे फुरने लगता है बहुरि मनभी ठहर जाताहै और श्रीनाम का अर्थ हृदय में प्रबल होताहै सो अर्थकारूप यह कि जिस विषे वचन और बाणी नहीं पहुँचती काहे से कि मन विषे स्मरण भी बाणी और अक्षरों करके होता है सो बाणी और अक्षरभी अर्थरूपी फलकी त्वचा हैं ताते चाहिये कि नामका अर्थही हृदय में स्थित होवे सो ऐसा दृढ़होवे कि उस में मन को यत्न न करे और अर्थरूपी कमल पर मनरूपी भँवरहोवे अर्थात् यत्न करकेभी उससे दूर न होवे जैसे शिवलीनामी एक सन्त ने अपने जिज्ञासु से कहाथा कि जब तू मेरे पास आवे और तेरे हृदय में भगवत् बिना और सकल्प फुरे तब तेरा आवना व्यर्थ होवेगा ताते जब जिज्ञासु ने संकल्परूपी कंटकों से हृदयरूपी धरती शुद्ध करी औरभजनरूपी बीज को उसमें बोया तब आगे इसके करतूतका बल नहीं चलता ताते भगवत्की दया का आश्रय करे और यों जाने कि देखिये इस बीज का फल कैसा होताहै और अधिक करके तो यहहै कि यह बीज निष्फल नहीं होता इसीपर महाराजने भी कहाहै कि जो पुरुष परलोकसम्बन्धी बीज बोता है उसको मैं निस्सन्देह अधिक फल देताहूं और जब जिज्ञासु इस अवस्था को पहुँचता है तब अकस्मात् कभी ऐसा भी होताहै कि भगवत् की माया करके इसके हृदय में झूठे संकल्प आनफुरते हैं और किसी को नहीं भी फुरते सो जिसका हृदयशुद्ध होताहै तिसे पुरुषके देवतों और ईश्वरों का रूप प्रत्यक्ष भासने लगताहै बहुरि यह भी है कि उनका सुन्दर स्वरूप स्वप्नविषे देखे अथवा प्रत्यक्ष देखे बहुरि ऐसी ऐसी अवस्था प्रकट होतीहै कि उनका बखान नहीं कियाजाता और उनके वर्णन करने में कुछ लाभ भी सिद्ध नहीं होता काहेसे कि धर्म के मार्ग विषे चलने करके फलप्राप्त होताहै और मार्गकी वार्ता करके

स्थानको पहुँच नहींसक्ता ताते जिज्ञासु की भल्लाई है इसमें होती है कि इस अवस्था के ऐश्वर्यों को आगेही श्रवण नाकरे काहेसे कि ऐश्वर्यों का आशा करके भी विशेषता को प्राप्तहोनाहै ताते मेरे कहनेका प्रयोजनयहहै कि जिज्ञासु ऐसी अवस्था विषे संशयवान न होवेकाहे सो कि बहुत पण्डित भी ऐसे होते हैं कि उनको अवस्था के प्राप्त होनेमें प्रतीति नहीं होती ताते जिस अवस्थाका बखान मैंने किया है सो जिज्ञासु तिस विषे संशय न लावे और दृढ़ प्रतीति करे॥

दूसरा सर्ग॥

आविआहार और कामकी निवृत्ता के वर्णन॥

ताते जान तू कि यहउदर भी सरोवर की नाईंहै अर्थ यह कि जैसे सरोवर से प्रवाह निकसते हैं वैसेही उदर की पुष्टता करके सब इन्द्रियों को बलपहुंचता है तिससे अपने अपने विषयको ग्रहण करती हैं इस करके प्रसिद्ध हुआ कि सब जीवों पर आहार का विषय अतिप्रबल है और प्रकटता इसकी यह है कि जब उदर पुष्ट होता है तब कामकी अभिलाषा उत्पन्न होती है और काम की अभिलाषा तब पूर्ण होती है जब धनका संग्रह होताहै बहुरि धनकी उत्पत्ति के निमित्त ईर्षा और वैरभाव और क्रोध और कपट और अभिमान आदिक अवगुण उपजते हैं ताते आहारकी अधिकता विषे आसक्त होना सबपापों की मूल है और आहार का संयम करना सब शुभगुणों का बीजहै सो मैं भिन्न भिन्न करके तिसका बखान करूंगा॥ प्रथमप्रकट करनी स्तुति आहार के संयम की॥ इसीपर महापुरुष ने कहा है कि भूख और तृषा को अङ्गीकार करके अपने मन के संग युद्ध करो तब उत्तमफलको प्राप्तहोवोगे और भगवत्के निकट संयम के समान और कर्तव्य विशेष कोई नहीं ताते जो पुरुष अपने उदर को अतिपुष्ट करता है तिसको सुक्षमदेश की ओर मार्ग नहीं सुनता और किसी ने महापुरुष से पूछाथा कि उत्तम पुरुष कौन है तब उन्हों ने कहा कि जिस पुरुषको आहार संयमसहित होवे और वचन भी संयमसहित होवे और नग्नताके ढकने मात्र वस्त्रकोपहरे और इसीपर सन्तुष्ट रहे सो यह मनुष्य महाउत्तम कहावता है बहुरि योंभी कहा कि आहार और वस्त्रोंको संयमसहित अङ्गीकार करनाभी महापुरुषोंका लक्षणहै और योंभी कहाहै कि जिस पुरुषका आहार संयमसहित है और दिवसभी विचार के अभ्यास में रहे वह भगवत्का प्रियतम है और जिस

पुरुष का आहार और निद्रा मर्यादा से अधिक है तिह भगवत् से विमुख रहता है और योगी कहता है कि अपने हृदय को भूख करके करो सो आहार की अधिकता करके हृदय मृतक होजाता है जैसे अधिक जल करके खेती मृतक होजाती है तात्पर्य यह है कि निद्रा निमित्त अग्नि राजसी आहार मुख्य कारण होता है और अधिक आहार को ग्रहण करके नाना प्रकार की वासना उपजती है ताते चाहिये कि इन नाशी भोगों को जिसमें जले और स्नान और भजन का अवकाश रोका न जावे इसीपर [illegible] नामी महापुरुष ने भी कहा है कि जब तुम अपने शरीर को भूखा और नग्न राखो तब निस्सन्देह भगवत् के दर्शन को प्राप्त होवोगे और महापुरुष ने भी कहा है कि जैसे शरीर के सब अंगों में रुधिर भरे हुए हैं तैसेही सब शरीर विषे [illegible] की चंचलता भी व्याप रही है ताते भूख करके [illegible] के मार्गों को रोको तब स्वाभाविक ही मन का निग्रह होवे और जैसन नामी महात्मा ने कहा है कि तुम कदाचित् ऐसा मत गर्व करो कि हम भूखे रहेंगे सो यह गर्व करना अयोग्य है काहे से कि महाराज भूख और अपमान तो अपने मित्रों को देते हैं अर्थात् प्रेम हुवे जिज्ञासु जनों पर भेजते हैं ताते तुम ऐसे भाग्यवान जीवों को हम की प्राप्ति होती है तात्पर्य यह है कि सब संतों ने विचार करके देखा है और यह निश्चय किया है कि इस लोक और परलोक विषे सुख देने को संयम के समान कोई पदार्थ नहीं और आहार की अधिकता के समान दुःखदायक भी कोई नहीं ॥ अथ प्रकट किये लाभ संयम के ॥ ताते जान तू कि जैसे औषध की कडुवाई बिना औषध का लाभ नहीं तैसेही संयम विषे जो शरीर को कष्ट होता है सो कष्ट बिना कुछ भी लाभ नहीं है ताते आहार के संयम विषे दश लाभ प्रसिद्ध हैं प्रथम लाभ यह है कि संयम करके हृदय शुद्ध और प्रकाशित होता है और आहार की पूर्णता करके हृदय अन्ध होता है और जब कुछ विचार करने लगता है तब ऐसी विस्मरणता को प्राप्त होता है कि उसकी बुद्धि भटक जाती है और आगे विचार नहीं कर सकता है इसीपर महापुरुष ने कहा है कि अपने हृदय की प्रीति और मौन से सजीव अर्थात् चैतन्य करो और भगवत् काके शुद्ध करो और योगी ने कहा है कि संयमी पुरुष का हृदय उज्ज्वल होता है और विचार की पूर्णता होती है इसीसे शिबली नामी महात्मा ने कहा है कि जिस दिन आहार का संयम मैं करता हूं उस दिन मेरे हृदय में नवीन विचार और अनुभव की युक्ति आय स्फुरती है।

बहुरि हृदय भागी यह है कि संयम करके भजन और प्रार्थना के गहरे भोगको पावता है और आहारकी पुष्टता करके हृदय कठोर होजाता है तातें यद्यपि कुछ भजन भी करता है तो भी हृदय में उसका सुख स्वाद नहीं प्रकट होता इसीपर जुनैद मननें भी कहा है कि जिसका उदर आहारसे भरपूर है तिसको भजन और प्रार्थना का आनन्द नहीं प्राप्त होता है २, बहुरि तीसरा लाभ यह है कि संयम करके दीनता और नम्रता उपजती है और आहारकी पुष्टता करके अचेतता और अहंकार बढ़ता है सो अहंकार ही नरक के द्वारा है कहते हैं कि जबलग यह मनुष्य आपको आधीन और दीनता देखे तबलग भगवत की सामर्थ्यता और प्रभुता को नहीं पहिं- चानता है इसी प्रकार वार्ता है कि जब महापुरुष को भगवत ने मोखे सब पृथ्वी के खजाने समर्पण करे और इस प्रकार कहा है कि तुम इनको यथेच्छ भोगो तब इन्होंने विनती करी कि हमको इन पदार्थों की अभिलाषा कुछ नहीं और मैं यही चाहता हूं कि कभी आहार की प्राप्ति होवे और कभी भूखा ही रहूं तो भला है कहते हैं कि भूख विषे धैर्य और सहनशीलता करूंगा और आहारकर के तेरे उपकार को पहिचानूंगा ३, बहुरि चौथा लाभ यह है कि जिसको भूख रहती है तिसको दुखित पुरुषों पर दया उपजती है और जब अतितृप्त होता है तब अर्थी जनोंको विसार देता है और परलोक का दुःख भी विस्मरण होजाता है बहुरि जब भूखा रहता है तब परलोक के दुःखको भी स्मरण करता है सो परलोक के दुःखोंका स्मरण करना भी अर्थी जनोंपर दयालु होना परम सुखोंका द्वारा है इसीपर युसु- फ़ नामी महापुरुष से किसीने पूछाथा कि सब पृथ्वी के खजाने तो तुम्हारे अधि- राज में प्राप्त हुये हैं फिर तुम भूखे काहेको रहते हो तब उन्होंने कहा कि जो अति उदर पूर्ण होने से मुझको भूखे याचकों का विस्मरण होजावे तो इसमें मेरा अति अकाज होवेगा तातें संयम और भूखको मैंने अंगीकार किया है ४, बहुरि पांचवां लाभ यह है कि मनका निग्रह करना सब शुभगुणोंका मूल है और मन के वशवर्ती होना सब दुर्भागों का बीज है सो जैसे कठोर अश्व भी संयम बिना आधीन नहीं होता तैसेही मन भी संयम बिना वशी नहीं होता सो मनको भोगों से रहित करना ही परमलाभ है कहते हैं कि पापों का मूल भोग है और भोगों का मूल आहार की पुष्टता है इसीपर जुन्नूनमिस्री ने कहा है कि मैंने जिस दिन उपवास नहीं किया है उस दिन निश्चय करके मुझसे कुछ पाप हुआ अथवा पाप की मनसा

हुई है ताते यह वार्त्ता प्रसिद्ध है कि आहारके संयम करके व्यर्थ बचन और कर्म की प्रबलता दूर होजाती है और जो पुरुष आहार का संयम नहीं करता उसी उपर वाद विवाद निन्दा स्तुति और काम की प्रबलता होती है बहुरि जब मनु य इन्द्रियोंको विकारों से रोकराखे तब नेत्रोंको नहीं रोकसक्ता और जब नेत्रों को भी रोक राखे तब चित्तके संकल्पका निग्रह नहीं करसक्ता और संयम करके स्वाभाविकही मन और सब इन्द्रियां निर्बल होजाती हैं ५ बहुरि छठवां लाभ यह है कि आहार के संयम करके निद्रा भी क्षीण होजाती है सो भजन और सुमिरन और विचारका बीज रात्रि का जागरण है और जो पुरुष अपने उदरको पुष्ट करता है तब निद्राकी मूर्च्छा करके मृतककी नाईं होजाता है और स्वप्नभी मलिन देखता है ताते सतजनोंने यों कहा है कि मनुष्यकी उत्तम पूंजी आयुर्बल है और रत्न सरूपी रत्न है काहे से कि आयुर्बल करकेही परलोकके लाभको पायसक्ता है अधिक निद्रा करके आयुर्बल क्षीण होजाती है और संयम करके निद्रा का भय दूर होता है ताते संयमही उत्तमपदार्थ है इसकरके कि आहारकी पुष्टता करके प्रमादिक स्वप्नभी बनजाता है तब मन और शरीर मलिन होजाता है ताते भजन विषे सावधान नहीं होसक्ता ६ बहुरि सातवां लाभ यह है कि संयमी पुरुष का समय भी व्यर्थ नहीं बीतता और उसको व्यवहार की विशेषताभी अल्प होती है बहुरि जिस पुरुषको आहारकी अधिक अभिलाषा है तिसकी आयुर्बल भोजन की सामग्री विषेही बीतजाती है और सर्वदा शरीरके मलिनपने विषे रहता है और आयुर्बल समान पदार्थको व्यर्थ खोवना यही मूर्खता है इसी कारणसे सिद्धपुरुष जनोंने यवके सतुवा मात्र सन्तोष किया है और सर्वसंजात्रों से मुक्तरूप हैं इसी पर एक संतने कहा है कि अधिक आहार करके पञ्चगुणों का नाश होता है सो प्रथम तो भजनका रहस्य नहीं आवता १ दूसरे वचनोंका स्मरण नहीं रहता २ तीसरे दया क्षीण होजाती है ३ चौथे आलस उपजता है ४ पांचवें भोगों की प्रबलता होती है ५ छठे सर्वदा खाने और मलत्यागने की इच्छाविषे रहता है ६।७ बहुरि आठवां लाभ यह है कि संयमकरके शरीर आरोग्य रहता है तो वैद्योंकी अधीनता और ओषधियों की कटुता से छुट जाता है इसी पर यह आचार्यों और वैद्योंने यही सिद्धान्त दृढ़ किया है कि सर्वरोगों का बीज आहारकी अधिकता है और जिस करके विषे सबही लाभ हो और किंचिन्मात्र दोष न होवे

सो आहारका संयमहै और एक बुद्धिमान् ने कहाहै कि सर्व आहारों विषे अ नरका भोजन महापथ्य है और कठोर अन्न अत्यत कुपथ्यहै पर जब अनारही अधिक भोजनकरै तो भी खेद को पावता है और जब कठोर अन्नको अल्पअं- गीकार करै तब नि खेद रहता है ८ बहुरि नवां लाभ यह है कि सयमी पुरुष को जीविकामी अल्प चाहती है और धनकी अधिक तृष्णासे मुक्त रहता है सो सब विघ्न और पाप और विक्षेप तृष्णाही से उपजते हैं काहे से कि जिसको नाना प्रकारके रसों और अधिक भोजनों की अभिलाष होवे तिसकी सर्व आयुर्बल धनकी उत्पत्ति विषेही बीत जाती है और धनका उपजावना पापों विना कठिन है इसीपर एक बुद्धिमान्ने कहाहै कि मैं तो अपने मनोरथ को इस प्रकार पूर्ण करताहूं कि प्रथमही मनोरथोंकी कामनाको त्याग देताहूं ताते निश्चिन्त और सुखेनारहताहू ९ बहुरि दशवांलाभ यहहै कि सयमी पुरुषका हृदय उदार होता है इसकरके कि संयमी पुरुष को ऐसेही समझ रहती है कि जिस पदार्थ करके उदर पुष्ट करते हैं सो पदार्थ मलिनता को प्राप्त होजाता है और जो पदार्थ भग- वत्के निमित्त दान करते हैं वह निस्सदेह महाराज के हाथों विषे पहुंचता है इसी पर एक वार्त्ता है कि एकबार महापुरुष ने किसी धनवान् को देखा था सो तिसका शरीर बहुत स्थूलथा तब उस को देखकर कहने लगे कि जितना कुछ तैंने उदर विषे डाला है तितना जो तू भगवत्अर्थ देता तो भलाथा १०॥ अथ प्रकट करनी युक्ति आहार के सयम की ॥ ताते जान तू कि प्रथम जिज्ञासु को पापसे रहित आहार किया चाहिये बहुरि जैसे आहारकी अधिकता निंद्यहै तै- सेही एकबारही अल्प करदेना भी निन्द्य है ताते चाहिये कि शनै शनै करके आहारको घटावे सो जब इसप्रकार करके क्रमसे आहार को घटावे तो शरीरभी सुखी रहता है पर उत्तम पुरुषों की अवस्था तो यहहै कि प्राणों के निर्वाहमात्र भोजन करते हैं पर आहारकी अधिकता और अल्पताका भी शरीरों और स- मय और क्रिया के अनुसार भिन्न भिन्नही अधिकार होताहै ताते सबों का ता- त्पर्य यहहै कि अत्यन्त पुष्ट होकर भोजन न करै क्षुधा शेष बनीरहने देवै और क्षुधाको लक्षण यहहै कि भोजन करने के पीछेभी इतनी रहजावे क्षुधा कि रूखे भोजन को भी अंगीकार किया चाहे इसीपर सुहेलनामी सन्तने भी कहा है कि यद्यपि सर्व संसार पापरूप होजावे तो भी प्राणमात्र को शुद्ध जीविकाही प्राप्त

होती है अर्थ यह कि [illegible] शरीर के [illegible] [illegible] पुरुषों [illegible] [illegible] जो [illegible] [illegible] अनुकूल [illegible] होजाता है [illegible] संसार के [illegible] शरीर के [illegible] पुरुषों [illegible] [illegible] अनुसार [illegible] [illegible]

की दूध पान करनेकी इच्छा हुई सो तुरत उन्होंने चालीस दिन पर्य्यंत अंगीकार न किया तिससे यह कि ग्रन्थकर्त्ता के मार्ग विषे चलते वाले जिज्ञासुओं को ऐसे लक्षण हुये हैं और जो ऐसे पद को प्राप्त न होसके तो भी प्राप्त हुये कि कुछ ओरों से न्यून रहे और अधिक [illegible] और धीरे धीरे आसक्ति [illegible] अंगीकार न करे और धीरे धीरे [illegible] कि आहार के करने [illegible] होजाता है अर्थात् [illegible] और मन का और [illegible] ताके ध्यान [illegible] और [illegible] कि [illegible] और प्रतीत होवे [illegible] मर्य्यादा विषे स्थित हुआ तब [illegible] की अपेक्षा नहीं रहती इसी कारण से [illegible] जिज्ञासु को [illegible] और [illegible] करते हैं और अपि [illegible] कि [illegible] सुख [illegible] और [illegible] समता [illegible] ऐसी [illegible] जिससे [illegible] और [illegible] जिज्ञासु को विक्षेपता होवे और [illegible] पूर्ण भी [illegible] और [illegible] इस [illegible] स्वभाव देवतों की नाईं होने [illegible] कि [illegible] खेद भी नहीं होता और अधिक आहार का बोझ भी नहीं होता [illegible] ऐसी समानता विषे [illegible] स्थित नहीं होय [illegible] और [illegible] करके [illegible] जब [illegible] स्वभाव दूर होवे तब पीछे समता को प्राप्त होता है इसी कारण से जिज्ञासुजनों ने [illegible] अपने मन [illegible] और वैराग्य [illegible] विषे [illegible] है और सदैव [illegible] मन के [illegible] को जिज्ञासु [illegible] पूर्ण पद को प्राप्त हुये [illegible] विषे स्थित हुये [illegible] स्वभाव [illegible] भोजन [illegible] उनको ग्रहण [illegible] और [illegible] कदाचित् अंगीकार न करते थे तब [illegible] से [illegible] कि [illegible] स्वभाव [illegible] और [illegible] स्वभाव [illegible] हुआ है [illegible] विधि निषेध का विचार करते हैं ताते विधि को अंगीकार करते हैं और निषेध को त्याग करते [illegible]

मैं ज्ञानकरके ग्रहण त्यागके बन्धनसे मुक्त हुआहूं ताते मेरी समझ यहहै कि मैं महाराज के गृह विषे अभ्यागतहूं और सब विश्व महाराजका गृह है और जो कोई वस्तु कोई देताहै वह महाराजही की ओरसे और महाराजहीकी प्रेरणा से है ताते जो कुछ मुझ को महाराज देता है वही अङ्गीकार करलेताहूं और जब कुछ नहीं देता तबभी प्रसन्न रहताहूं इसी कारणसे मैं किसी पदार्थको चाहताभी नहीं और किसीका निषेधभी नहीं करता पर यह अवस्था जो महाउत्तम और दुर्लभहै सो मूर्खोंके गिरनेका स्थानभी यही है अर्थ यह कि मूर्खलोग इसवचन को सुनकर आपको ज्ञानी मान लेते हैं और कहते हैं कि हमको ग्रहण त्यागका बन्धन कुछ नहीं रहा पर अवस्था उनकी ऐसी नीच होती है कि उन में रंचक मात्रभी वैराग्यका चिह्न नहीं होता औरसर्वदा विषयों विषे आसक्त रहते हैं ताते प्रसिद्ध हुआ कि जिनका मन सर्व बन्धनों से मुक्त हुआहै सो ऐसे ज्ञानवानों से भी सहजही साधना रहजाती है और जो महा अज्ञानी हैं सो वहभी आप को ज्ञानवान् जानकर साधन और यत्न का त्याग कर देते हैं पर मारूफकरखी की जो वार्त्ता मैंने कही है सो उनकी ऐसी परमउत्तम अवस्थाथी कि जब कोई उनको हाथोंकरके खुवावताथा तोभी वह उसको महाराजही की ओरसे समझ करके शीतलचित्त और निर्खेद रहते थे तात्पर्य यह कि जिनके चित्त गम्भीर ऐसे हैं तिनहीं को ऐसे वचन शोभितहैं और बायजीदआदिक जो सन्तहुये हैं तिन्होंने अपने मनको यत्न से दूर नहीं किया काहेसे कि मनके स्वभावों से कदाचित् निर्भय न होतेथे पर यह वार्त्ता महाकठिनहै कि मनके वशीकार होकर आपको ज्ञानवान् जानना बहुरि वैराग्य के और अभ्यास का त्याग करना सो यह बड़ी मूर्खताई है ॥ अथ प्रकट करना स्थूल भोगोंके त्याग विषे विघ्नों और उपाय विघ्नों के निवृत्त करनेका ॥ ताते जान तू कि अल्पबुद्धि जीवोंको भोगोंके त्याग विषे दो विघ्न आन उपजते हैं सो प्रथम यहहै कि जब यह मनुष्य भोगोंका कुछ त्याग करताहै और उसके त्यागमें समर्थ नहीं होसक्ता तब एकान्त विषे उनको भोग लेता है और इसप्रकार चाहता है कि लोग मुझ को भोगता न देखें तो भलाहै सो एकान्त विषे लम्पट होताहै और दूसरा यह कि जब मनुष्य आपको वैसाही दिखावताहै तो यहभी केवल लम्पटता है और यह दोनों प्रकार के पुरुष अपने चित्त विषे ऐसा अनुमान करते हैं कि जब हम लोगों में

हुरायकर भोगोंको अङ्गीकार करेंगे तब इसलोक विषे लोगों की भलाई होवेगी इसकरके कि प्रथम तो निन्दा से बचेंगे और दूसरे भोगों विषे दीठ होकर न वर्तेंगे सो यद्यपि उनको मन ऐसे सिखावताहै तौभी विचार करके देखिये तो केवल दम्भ है काहेसे कि जिन पुरुषों का हृदय वैराग्य और सन्तोष करके शुद्ध हुआहै तिनके ऐसे लक्षण वर्णन विषे आये हैं कि वह लोगोंके देखते में खान पान आदिक पदार्थों को अपने गृह विषे ले आतेथे और फिरउन पदार्थों को गुप्त भगवत् अर्थ दे डालते थे सो यह परमसाचे हृदयवालों की अवस्थाहै और यद्यपि ऐसा करतूत करना मनको महाकठिन होताहै पर निष्कामताकी परीक्षा भी यही है कि ऐसे करतूत विषे संकोच न आवे और जबलग ऐसी अवस्था प्राप्त न होवे अर्थात् मनको इसप्रकार वर्त्तना सुगम और निर्यत्न सहजस्वभाव न होजावे तबलग जानिये कि मान और कपटसे मुक्त नहीं हुआ बहुरि जिस पुरुष के हृदय विषे मानकी कामनाहै उसका सब करतूत और भजन मानही के निमित्त होताहै और वह मानही का दासहै पर जो पुरुष आहारादिक भोगों का संयम करके मानकी अभिलाषा विषे आसक्त होजावे तब उस का दृष्टान्त यह कि जैसे कोई पुरुष मेघकी बूंदोंसे भागकर पनालेके नीचे जाय बैठे सो ऐसा पुरुष मूर्खही कहाताहै ताते जब जिज्ञासु अपने विषे मानकी अभिलाष देखे तब चाहिये कि लोगोंके देखतेहुये अल्पमात्र रसादिक के भोजन को अङ्गीकार करलेवे पर तृष्णा करके अधिक न खावे तब इस विषे मान की क्षीणता होती है और भोगों सेभी मुक्त रहेगा ॥ अथ प्रकट करना कामादिक विघ्नोंका ॥ ताते जान तू कि कामादिक अभिलाषको जगत् की उत्पत्ति के निमित्त मनुष्यों पर प्रबल कियाहै पर जितनी इसकी अभिलाष अति प्रबल होवे तितनेही इसविषे विघ्न भी उपजते हैं और वह चित्त को अत्यन्त आवरण करतेहैं इसीपर एक वार्त्ता है कि महात्मा सुमानायी महापुरुषने कलियुग से पूछा कि तेरा अधिक निवास किस जगहमें होताहै तब उसने कहा कि जहांपर स्त्री और पुरुष एकान्त विषे मिल के बैठते हैं तहांही मेरा अधिक निवासहै ताते तुझको चाहिये कि एकान्त विषे स्त्रियोंसे मिलाप मतकर काहेसे कि ऐसे स्थान विषे मैं निश्शंक होकर उत्पात और विघ्न डालताहूं पर कैसे मनुष्य ऐसे मूर्ख होतेहैं कि कामादिक भोगों के निमित्त बलदायक औषधों का सेवन करते हैं सो मिल

[illegible] है कि जैसे कोई हिन्दुओं और [illegible] के [illegible]
[illegible]
[illegible] को [illegible] करता है [illegible]
[illegible]
[illegible] और [illegible]
कि [illegible] को [illegible]
की [illegible] है [illegible]
[illegible] नेत्रों [illegible]
देखने [illegible] होता है [illegible]
को [illegible]
[illegible] और [illegible]
[illegible] उसको [illegible] होता है [illegible]
[illegible] नहीं [illegible]
[illegible] कि महात्मा [illegible]
[illegible] उपदेश किया [illegible]
कि [illegible]
[illegible] कहा है कि [illegible]
[illegible]
[illegible] उसके [illegible] भजन [illegible]
है कि जैसे [illegible] और [illegible]
[illegible] अपने [illegible] नाम के [illegible] उसको [illegible]
कि [illegible] लिये और [illegible]
[illegible] तो [illegible]
[illegible] और [illegible]
[illegible] है [illegible]
[illegible] और [illegible] कि [illegible]
[illegible] और [illegible]
[illegible]

विरक्तरहे तिसको भी कोई दोष नहीं लगता सो यह किसी विरले पुरुषमे होसक्ताहै इसीपर एक सन्त ने कहाहै कि, जिज्ञासुजन जिस प्रकार रूपवान् लड़कों से भयकरते हैं तैसे गरजते सिंहसे भी भयवान् नहीं होते ॥ अथ कामके बलको तोड़ने की महिमाका प्रकट करना ॥ ताते,जान तू कि जितनी जिस भोगकी प्रबलता अधिक होती है उतनीही उसके बलको तोड़नेकी विशेषताभी अधिक होती है सो यह वार्त्ता प्रसिद्ध है कि कामकी अभिलाषा महाप्रबलहै और इस विषे विचरना मलिनहै और केते पुरुष जो इस भोगसे रहित होते हैं सो अधिक तो ऐसे होते हैं कि वह कामके वेगको लज्जावानी और दण्ड अथवा असमर्थता करके रोके रहते हैं ताते उनको कुछ अधिक फल नहीं होता काहेसे कि लोगों से भयकरके सकुचे रहते हैं और भगवत के भय करके उससे रहित नहीं हुये और जब असमर्थता अथवा लज्जा करके पापसे रहित होवे तो भी भला है काहेसे कि दुःख भोगनेका परलोक में अधिकारी तो नहीं होता पर जिसको पापसे रक्षा करनेवाला और कोई हेतु न होवे और केवल भगवत् के भयकरके पापकर्म्मों को त्यागदेवे तब उनको अधिक फलही प्राप्त होताहै इसीपर एक वार्त्ता है कि युसुफनामी एक सन्त अतिसुन्दर हुये हैं सो उनको जुलेखा नामी स्त्रीने मिलाप करके मोहित करना चाहा पर वह कामके बलको भलीप्रकार तोड़कर उससे मिलाप न करतेभये तब उत्तम पदवी को प्राप्तहुये बहुरि एक और वार्त्ता है कि दो प्रीतिमान् किसी देशको चलेजाते थे तब मार्ग विषे एक भाई किसी कार्य्य के निमित्त नगरमें गया और दूसरा आसन पर बैठरहा बहुरि दैवसंयोग करके एक स्त्री सुन्दर आयकर उसको चपलता दिखावने लगी तब वह प्रीतिमान् नीचे को शीश करके रोनेलगा ताते वह स्त्री लज्जावती होकर चली गई बहुरि जब दूसरा प्रीतिमान् आया तब पूछनेलगा कि हे भाई तू क्यों रोताहै तब प्रथम तो उसने अपने वृत्तान्त को प्रकट न किया पर जब अतिदीन होकर उसने पूछा तब उसने वार्त्ता को खोलकर कहा बहुरि वह वार्त्ता सुनकर वह प्रीतिमान् भी रोनेलगा तब पहले भाई ने पूछा कि तू क्यों रोने लगा तब उसने कहा कि मेरे रोनेका प्रयोजन यह है कि जैसे तुमने आपको स्त्री के छलसे बचायाहै तैसे मैं आपको बचा नहीं सक्ता बहुरि जब रात्रि विषे शयन करने गये तब स्वप्न विषे उनको आकाशवाणी हुई कि तुमने युसुफकी नाईं आपको ब

धीर दृष्टांत कहते हैं कि जैसे कोई विरक्त अर्थात् जीवनमुक्त के आगे कोई स्त्री नाचे तो उन
के इसमें कुछ निषेध नहीं देखा सो ऐसा जो मनुष्य महा वैराग्यवान होता है वैसेही
श्री मुनि ऐसे पंथ कामों को देखते हैं इनके आपको दोष नहीं आता है सो महा मूढ है
कामदेव से विकार उपजाने की विधि जो है तिनको समझेवा जो मनुष्य है वह
मर्दन है सो उसमें काम का लेश नहीं है तिनको निषेध है और यह बात जिनकी बुद्धि है
कि इसमें काम की प्राप्ति नहीं है तिनकों विषय ऐसा न करे सो निःसंदेह है कि स्त्री
की मूर्ति सेवना होवे सो काम की उत्पत्ति के अर्थ न होवे क्योंकि इन्द्रियों का
संयम नहीं है इस प्रकार नेत्रों की दृष्टि जो किसी रूपवान स्त्री पर पड़े तब नेत्रों को
देखने से ये प्रगट हैं इस प्रकार कामविकार सुगम होता है और जिन नेत्रों
को सुन्दर स्त्री के देखने का ही अभ्यास है उनका चित्त बहुत ही सत्संग
में ठहरता है तो कहते हैं अर्थात् जैसे कोई स्त्री और पुरुष का
संग है तो प्रथम दृष्टि से सम्बन्ध होकर उसको निषेध करना सुगम होता है क्योंकि
मन उसके पीछे जाता है तब किसी प्रकार से पकड़ा नहीं जाता वैसेही मन को निषेध करना
नेत्र का मार्ग है सो इसमें एक दृष्टांत है कि महात्मा सूरदासजी ने भी नेत्रों
के मार्ग ही से ... वाले ... पुत्रको उपदेश किया था
कि ... और ... सन्मुख ... स्त्री के सन्मुख आना
अयोग्य है ... महापुरुष ... स्त्री का देखना ऐसा है
जैसे ... मिला हुआ ... जो पुरुष स्त्री के नेत्र
की ... उसके चित्त विषे भजन ... उपजता है यह रीति भी कहते
हैं कि जैसे ... होता है तैसेही ... भी
... जो पुरुष अपने नेत्रों को रोक ... उसको चाहिये
कि ... के शरीर के ... देखे भी नहीं
जो होते ... गृहस्थ ... भोला है पर यह तो मैंने
स्त्रियों के संग की निन्दा कही है ... और देखना भी वर्जित
है ... देखने की अभिलाषा ... है तिसकी
... नहीं ... कि जैसे
... पुरुष ... और उस
... जो पुरुष ... देखे ... सो ...

विरक्तरहै तिसको भी कोई दोष नहीं लगता सो यह किसी विरले पुरुषमे होसक्ताहै इसीपर एक सन्त ने कहाहै कि जिज्ञासुजन जिस प्रकार रूपवान् लड़कों से भयकरते हैं तैसे गरजते सिंहसे भी भयवान् नहीं होते ॥ अथ कामके बलको तोड़ने की महिमाका प्रकट करना ॥ ताते जान तू कि जितनी जिस भोगकी प्रबलता अधिक होती है उतनीही उसके बलको तोड़नेकी विशेषताभी अधिक होती है सो यह वार्त्ता प्रसिद्ध है कि कामकी अभिलाषा महाप्रबलहै और इस विषे विचरना मलिनहै और केते पुरुष जो इस भोगमे रहित होते हैं सो अधिक तो ऐसे होते हैं कि वह कामके वेगको लज्जाग्लानी और दण्ड अथवा असमर्थता करके रोके रहते हैं ताते उनको कुछ अधिक फल नहीं होता काहेसे कि लोगों से भयकरके सकुचे रहते हैं और भगवत के भय करके उससे रहित नहीं हुये और जब असमर्थता अथवा लज्जा करके पापसे रहित होवे तो भी भला है काहेसे कि दुःख भोगनेका परलोक में अधिकारी तो नहीं होता पर जिसको पापसे रक्षा करनेवाला और कोई हेतु न होवे और केवल भगवत् के भयकरके पापकर्म्मों को त्यागदेवे तब उनको अधिक फलही प्राप्त होताहै इसीपर एक वार्त्ता है कि यूसुफनामी एक सन्त अतिसुन्दर हुये हैं सो उन को जुलेखा नामी स्त्रीने मिलाप करके मोहित करना चाहा पर वह कामके बलको भलीप्रकार तोड़कर उससे मिलाप न करतेभये तब उत्तम पदवी को प्राप्तहुये बहुरि एक और वार्त्ता है कि दो प्रीतिमान् किसी देशको चलेजाते थे तब मार्ग विषे एक भाई किसी कार्य्य के निमित्त नगरमें गया और दूसरा आसन पर बैठरहा बहुरि दैव संयोग करके एक स्त्री सुन्दर आयकर उसको चपलता दिखावने लगी तब वह प्रीतिमान् नीचे को शीश करके रोनेलगा ताते वह स्त्री लज्जावती होकर चली गई बहुरि जब दूसरा प्रीतिमान् आया तब पूछनेलगा कि हे भाई तू क्यों रोताहै तब प्रथम तो उसने अपने वृत्तान्त को प्रकट न किया पर जब अतिदीन होकर उसने पूछा तब उसने वार्त्ता को खोलकर कहा बहुरि वह वार्त्ता सुनकर वह प्रीतिमान् भी रोनेलगा तब पहले भाई ने पूछा कि तू क्यों रोने लगा तब उसने कहा कि मेरे रोनेका प्रयोजन यह है कि जैसे तुमने आपको स्त्री के दुःखसे बचायाहै तैसे मैं आपको बचा नहीं सक्ता बहुरि जब रात्रि विषे शयन करते भये तब स्वप्न विषे उनको आकाशवाणी हुई कि तुमने यूसुफकी नाईं आपको ब-

चाया है ताने तुम धन्यहो बहुरि एक और वार्त्ता है कि तीन मनुष्य एकमार्ग विषे चले जातेथे सो जब रात्रिहुई तब मेघकी रक्षाके निमित्त एक पहाड़की क न्दरा विष जायरहे दैवयोग करके पहाड के शृङ्गमें एक बड़ा पत्थर आय गिर और पहाड़की कन्दरा के द्वारको रोकलिया तब तीनों मनुष्य व्याकुल हुये ब हुरि यही विचार किया कि अपने २ पुण्यको स्मरण करके भगवत्से प्रार्थना करें तब एक पुरुषने कहा कि हे महाराज! मैं तेरी आज्ञा जानकर माता पिताकी अधिक सेवा करताथा सो एकदिन माता के निमित्त दूधका कटोरा भरलायाथा तब उस समय विषे मेरी माता सोयगई थी ताने मैं हाथमें कटोरा लिये खड़ारहा और आहार भी न किया सो हे अन्तर्यामी! तू तो इस वार्त्ताको जानताहै ताते हमको निकसनेका मार्ग करदे तब कुछ कन्दरा के द्वारसे वह पत्थर सरका पर बाहर आनने योग्य मार्ग न खुला बहुरि दूसरे ने कहा कि हे महाराज! तू इस वार्त्ताको जानताहै कि एक मजदूरकी मजदूरी मेरे पास रहगईथी सो मैंने उसी मजदूरी की बकरी मोलली बहुरि उस अजाका इतना परिवार बढ़ा कि मैंने उ सही के मोल से बहुत पशु लिये सो जब चिरकाल के पीछे वह मजदूर आया तब मैंने वह सब धन उस को देदिया सो जो यह वार्त्ता सत्यहै तो हमको मार्ग देहु तब वह पत्थर हिलकर कुछ और भी द्वारसे हटा बहुरि तीसरे पुरुषने कहा कि हे महाराज! अमुकी स्त्री के साथ मेरी अधिक प्रीतिथी और वहमुझको प्राप्त न होती थी सो जब दुर्भिक्षकाल करके उसके सम्बन्धी दीन हुये तब मैंने उस को धनका लोभ देकर अपने अनुकूल किया बहुरि जब मैं उस के निकट गया तब उसने कहा कि तू भगवत् से नहीं डरता तब हे महाराज! मुझको तेरा त्रास आया और तुझको व्यापक और सर्वदर्शी जानकर उस का त्याग किया सो जो यह वार्त्ता सत्य है तो हमको मार्ग देहु तब वह पत्थर कन्दरा के द्वारसे दूर हुआ और वह तीनों बाहर निकस कर दुःखसे मुक्तहुये ॥ अथ प्रकटरूपनिषे धता स्त्रियों और लड़कों को कुदृष्टि देखने की ॥ ताते जानि तू कि प्रबल होते हुये कामको तोड़ना महाकठिन है इस कारण से चाहिये कि प्रथमही नेत्रोंको परदृष्टि से रोके इसी पर एक सन्तने कहाहै कि स्त्रिया के वस्त्र देखने करके भी काम उपजताहै ताते इनके दर्शनका देखना भी जिज्ञासु को योग्य नहीं बहुरि स्त्रियों के साथ बोलना और उनके वचनोंको सुनना और जहां उनका निवास

होवे तहा जाना और उनसे हास्यादिक करना सो यह सब व्यवहार निन्द्य है तात्पर्य यह कि कामका कारण रूपहै ताते रूपसों अभिलाष करके दृष्टि करनी अयोग्यहै और जब अभिलाष बिनाही मार्ग विषे अथवा किसी और ठौर विषे अचानकही किसी पर दृष्टि जापडे तब यह देखना पाप नहीं पर फिर दूसरीवार उसको प्रीति करके देखना निस्सन्देह पापहै इसीपर महापुरुष ने भी कहाहै कि प्रथम स्वाभाविक दृष्टि पड़नी है और दूसरीवार देखना दण्डका कारण प्रयोजन यह कि स्त्री पुरुषका मिलाप सर्वथा विघ्नोंका बीजहै बहुरि केते ऐसे स्थान हैं कि वहां अवश्यही स्त्रियों का मिलाप होताहै सो वह स्थानही निन्द्यहै जैसे राग नाचके ठौर अथवा विवाहादिक अथवा तमाशे और मेलेकी ठौरमें जिज्ञासुको जाना प्रमाण नहीं बहुरि योंभी चाहिये कि स्त्रियोंके वस्त्र अथवा हारमालाको धारण न करे और न सूघे और उनकी किसी वस्तुको अंगीकार न करे और प्रीति करके कुछ देवे भी नहीं इसीपर महापुरुष ने भी कहाहै कि स्त्रियोंके साथ मधुर वचन न बोलो काहे से कि जब मार्गविषे भी किसी स्त्री अथवा लड़केका मिलाप होताहै तब मनविषे यही सकल्प फुरताहै कि इसको अवश्यही देखना चाहिये पर जिज्ञासुको यही पुरुषार्थ चाहिये कि मनके साथ युद्ध करे और यों कहे कि इस देखने करके मुझको पापहोगा और भगवत् से विमुख होऊंगा ऐसेही विचार करके मनको वर्ज राखे तो भलाहै ॥

तीसरा सर्ग॥

अधिक बोलन के विघ्न के वर्णन में ॥

तावे जान तू कि यह रसना भी भगवत्ने महाआश्चर्यरूप बनाई है काहेसे कि देखने में तो एक मासका टुकड़ा है पर जो कुछ धरती और आकाश विषे सृष्टि है तिन सब पर रसनाका प्रवेश होताहै और जितने पदार्थ अरूपहैं तिन का भी वर्णन करती है ताते यह रसनाही बुद्धिकी मन्त्री कही है अर्थ यह कि जैसे कोई पदार्थ बुद्धिकी पहिचान से बाहर नहीं तैसेही रसना भी सर्व पदार्थों को वर्णन करती है और अवर इन्द्रियों का धर्म ऐसे नहीं कि जो सर्व कार्यों विषे प्रधान होवें जैसे नेत्र केवल आकारही को देखसक्ते हैं और श्रवण केवल शब्दही के सुनने को समर्थ हैं ऐसेही और इन्द्रिया भी एक एक कार्यको ग्रहण करती हैं पर यह रसना ऐसी है कि नेत्रों और श्रवणों और अवर सर्व

अगों के भेदको वर्णन करनी है जैसे जीवकी चैतन्यता सर्व्व अगों विषे पसर रही है तैसेही रसना भी जीवोंके सर्व्व सकल्पों को प्रकट करती है बहुरि जैसे वचन का उच्चारण रसना करती है तैसाही पूर्वोक्त हृदय को भी पहुँचता है जब अधीनता और वियोगका वचन उचारती है तब हृदय कोमल होजाताहै और नयनों के मार्ग से आंसू चलने लगते हैं और जब प्रसन्नता और किसी की स्तुति वर्णन करती है तब स्वाभाविकही उसकी अभिलाष उपज आती है तात्पर्य्य यह कि जब रसना विषे झूठ और मलिन अक्षरोंका उच्चारण होताहै तब हृदय भी मलिन होजाताहै और जब शुभ वचनका उच्चारण करनेलगती है तब हृदय सात्त्विकी भावको प्राप्त होताहै इसीपर महापुरुषने भी कहाहै कि जबलग मनुष्य का हृदय शुद्ध नहीं होता तबलग इसका धर्म्मभी दृढ़ नहीं होता और जबलग रसना सूधी और सची नहीं होती तब लग हृदय भी शुद्ध नहीं होता ताते रसनाके पापों और विघ्नोंसे भय करना धर्म्मकी दृढ़ता का कारण है इसी कारण से हम प्रथम तो मौनकी विशेषता कहेंगे बहुरि रसना के विघ्न जो झूठ और निन्दा और विवाद और दुर्वचन आदिक पाप हैं सो तिनका वर्णन करेंगे और इनके उपायभी भिन्नभिन्नकरके कहेंगे ॥ अथ प्रकट करना परत्व मौनका ॥ ताते जान तू कि इस बोलने में इतने पापहैं कि उनसे अपनी रक्षा करनी महा कठिनहै ताते सबों विषे मौनही विशेष उपाय है सो मनुष्यको चाहिये कि कार्य बिना वचन न कहै इसीपर सतोंने कहाहै कि जिनका आहार और निद्रा और वचन सयम सहित होताहै वह निस्सन्देह सिद्ध पदवी को पातेहैं इसीपर महाराजने भी कहाहै कि अधिक बोलने विषे कदाचित् भलाई नहीं होती ताते केवल किसी के उपकार अथवा दानदेने अथवा विरुद्धनिवृत्त करनेके निमित्तही वचन कहना भला है इसीपर महापुरुष ने भी कहा है कि जिसको रसना और उदर और काम इन्द्रियकी उपाधि से भगवतने बचाया है सो मुक्तरूप है बहुरि एक श्रीमान् ने महापुरुष से पूछा कि विशेषकर्तव्य कौन है तब उन्होंने मौन करके कहा कि मौनही विशेष कर्तव्य है बहुरि योगी कहाहै कि मौन और कोमलस्वभाव सुगम भजन है और योगी कहाहै कि जब कोई अधिक बोलता है तब उसका हृदय कठोर होताहै सो पापोंका रूपहै और जो पापरूप हुआ सो अग्नि विषे जलने का अधिकारी है इसी पर एक वार्त्ता है कि एक सभा विषे

कुछ वचनविलास होताथा और एक प्रीतिमान् मौनकरके बैठ रहाथा तब सबों ने उससे पूछा कि तुम क्यों नहीं बोलते तब उन्होंने कहा कि जब झूठ कहूं तब भगवत से डरताहूं और जब सत्य कहूं तब तुममें भयवान् होताहूं ताते जान तू कि मौन की विशेषता इस कारण करके कही है कि बोलने करके अनेक पाप उपजतेहैं और रसना सर्वदा व्यर्थ वचनों विषे आसक्त रहती है बहुरि न बोलने विषे कुछ यत्नभी नहीं होता और मनभी प्रसन्नता को पाताहै बहुरि गुण और दोष वचनके विचारने महाकठिन है इसीकारण से कहाहै कि मौन करके सर्व क्लेशोंसे मुक्त रहताहै और पुरुषार्थ और एकाग्रता भी बढ़ती है और भजनविषे सुगम स्थित होता है ताते जानतू कि वचन चार प्रकार का है सो एक तो विघ्न रूपहै जैसे निन्दा और झूठ १ और दूसरा ऐसाहै कि उसविषे गुण दोष मिला हुआहै जैसे प्रयोजन बिना किसीकी व्यथा पूछनी आनहुरि तीसरा वचन गुण और दोषसे रहितहै सोऽयह व्यर्थ वादहै पर इसविषे यह बड़ी हानि है कि समय व्यर्थ बीत जाता है ३ और चौथा वचन यह है कि जो सर्वथा गुणरूप है जैसे किसीके सुखके निमित्त वचन कहना ४ ताते इन चारप्रकार के वचनों विषे तीन निन्द्यहैं और जिज्ञासु को चौथाही अंगीकार करना योग्यहै पर जो पुरुष मौन विषे स्थितहै सो सर्व विघ्नोंसे मुक्त होताहै स्वाभाविकही पर जितने रसनाके विघ्न हैं सो सब कोई पहिचान नहींसक्ता इसीकारणसे मैं सर्व विघ्नोंको भिन्न २ करके कहताहूं सो पन्द्रह विघ्न प्रसिद्धहैं प्रथम विघ्न यहहै कि जिस वचन विषे तेरा कार्य कुछ न होवे सो वह बोलना भी महानिन्द्यहै अर्थयह कि जिस विषे व्यवहार और परमार्थकी सिद्धता कुछ न होवे उस बोलने करके सतोगुणकी शोभा नष्ट होजाती है जैसे किसी सभाविषे जायकर ऐसे वर्णनकरे कि मैं अमुक देश विषे इसप्रकार गयाथा बहुरि उन नगरों और पहाड़ों और खान पान और बागोंकी बातें करनेलगे सो यद्यपि वह कहना सत्यही होवे तौभी इसको व्यर्थवचन कहतेहैं ताते इसका भी त्याग कियाचाहिये काहेसे कि ऐसे वचनों विषे तेरा कार्य कुछ नहीं सिद्धहोता अथवा जब किसी से प्रयोजन बिना पूछे तौभी व्यर्थ है पर व्यर्थ उसको कहते हैं जिस विषे अवगुण कुछ न होवे और कार्य कुछ न होवे पर जब किसीसे ऐसे पूछे कि तैंने व्रत राखाहै अथवा नहीं सो जब वह कहै कि मैं व्रतीहूं तब अभिमानी होताहै और जो कहै कि मैं व्रती नहींहूं तो झूठा होता

है अथवा लज्जा करके न करिये तिनाही आपको धनी कहे तौ भी पापी होताहै सो यह अभिमान और पाप उसको तेरे पूछने करकेही लगताहै ताते ऐसे पूछ नाही अयोग्यहै अथवा जब किसी से इस प्रकार पूछे कि तू कहां से आता है और कहां जाता है और क्या करताहै सो जब उसको प्रसिद्ध कहना न होवे सो झूठ कहदेवे तौभी तेरे सम्बन्ध करके पापी होताहै इसीपर एक वार्ता है कि एक वार लुकमान नामी हकीम महात्मा दाऊदनामी महापुरुषके पास गयाथा तो वह आगे लोहेकी कवच बनाते थे बहुरि लुकमान के चित्तविषे पूछने की मनसा हुई कि तुम यह क्या बनाते हो परन्तु भय और धैर्य करके नहीं पूछा सो जो वह कवच को बनाचुके तब गले विषे डालकर कहनेलगे कि यह युद्ध के समय भला पहरावाहै तब लुकमान ने ऐसे जाना कि यह मौन उत्तम पदार्थ है परन्तु तिसविषे कोई प्रीति नहीं करता बहुरि जब यह मनुष्य किसीसे कार्य बिना कुछ पूछताहै कि मैं लोगों के भेदको प्रकटजानूं और उनसे वचन करके मित्रताई का सम्बन्ध करूं सो यह सबही बुद्धि की हीनताहै ताते इसका उपाय यहहै कि कान को निकट देखे और ऐसे जाने कि एकबार भी श्रीरामनाम लेना बड़ा धन है सो जब मैं ऐसे खजाने को वाद विवादोंविषे व्यर्थ खोऊंगा तब मेरी बड़ी हानि होवेगी सो यह उपाय बूझकरके होताहै और करतूत करके इसप्रकार उपाय होता है कि एकान्त विषे जायरहे सो इस करके भी वाद विवाद से मुक्त होता है तात्पर्य यह कि जब एक वचनकरके निर्वाह होसके तब दो वचन कहे इसीपर एक प्रीतिमान् ने कहाहै कि जो मेरे हृदयविषे महामधुर वचन भी फुरताहै तौ भी मैं उच्चारण नहीं किया चाहताहूं कि कभी मैं अधिक बोलनेवाला न होजाऊं बहुरि महापुरुष ने भी कहाहै कि भलापुरुष तिसको कहते हैं जो धनकी थैली की गांठ तो खोले और रसना को बन्धन विषे राखे ॥ बहुरि दूसरा विघ्न मिथ्या और पाप संयुक्त वचन बोलना है जिसमें स्त्रियों की बातें और दुराचारी मनुष्यों के व्यवहार को प्रकट करना सो ऐसे वचन सबही पापरूप हैं इस करके कि प्रथम व्यर्थ विवादका जो निर्णय कियाथा सो यह बोलना उसकी नाईं नहीं अर्थात् उससे भी अधिक नीच है इसीपर महापुरुष ने भी कहाहै कि जब यह पुरुष निश्शंक होकर बोलता है और उस वचन की बुराई को नहीं जानता तब उसी बोलने करके नरकगामी होताहै और जब भय संयुक्त बोलता है और विचार

करके इस भेद को समझताहै तब निसन्देह परमानन्द को पाताहै २ बहुरि तीसरा विघ्न यहहै कि जब कोई पुरुष वचन कहै तब उसके वचनको विपर्यय करदेना सो यह भी महानिंद्य है और बहुते पुरुषों का ऐसाही स्वभाव होता है कि जब कोई कुछ बोलता है तब शीघ्रही इसप्रकार कहनेलगते हैं कि यहवार्ता ऐसी नहीं है सो विचार कर के देखिये तो इसका यह अर्थ होता है कि तू मूर्ख और झूठाहै और मैं बुद्धिमान् और साचाहूं तातें प्रसिद्ध हुआ कि ऐसे वचन करके क्रोध और अहङ्कार जो महामलिन स्वभाव हैं तिन की वृद्धता होती है इसीपर महापुरुष ने भी कहा है कि जो पुरुष किसी के वचनको विपर्यय न करे और व्यर्थवाद से भी रहितहोवे तब वह परमसुखको पावता है और इस की विशेषता इस निमित्त कही है कि भले बुरे वचनको सहना धैर्य करके महा कठिन है और यों भी कहाहै कि इस पुरुषका धर्म तबही दृढ़ होताहै कि यद्यपि आप साचाभी होवे तोभी किसी के वचन को उलटावेनहीं और वचन उलटाना इसको कहते हैं कि जब कोई कहै कि यह अनार खट्टा है और तू कहै कि मीठाहै अथवा जब कोई कहै कि अमुक नगर यहां से पांचकोस है और तू कहे कि पांच नहीं षट् कोसहै सो यह महापाप है काहेसे कि उसके वचन का खण्डन करना होताहै और उसके दोषको प्रकट करना होताहै और वचन कहे बुरावना इसी का नामहै तातें सर्व प्रकार जिज्ञासुको मौनही चाहिये है पर जब परस्पर एक दूसरे के मतको निषेध करतेहैं तब यह तो झगड़ाहोताहै पर जब किसीपुरुषविषे श्रद्धा देखिये तब एकान्तविषे उसको उपदेश करना भलाहै और जब श्रद्धाहीनहोवे तब मौनही विशेष है इसीपर महापुरुष ने कहाहै कि जब यह पुरुषमतों और पन्थों के झगड़ोंविषे आरूढ़ होताहै तब शीघ्रही आत्मधर्मोंसे भ्रष्ट होजाताहै तात्पर्य यह कि योग्य अयोग्य वचनको सुनकर मौनकर रहना बड़ापुरुषार्थ है इसीपर एक वार्ता है कि एक जिज्ञासु जगत् को त्यागकर एकान्त विषे स्थित हुआथा तब किसी बुद्धिमान्ने उससे पूछा कि तू लोगोंविषे क्यों नहीं आता तब उसने कहा कि मैं जगत्के झगड़े से आपको बचाया चाहताहूं बहुरि उस बुद्धिमानने कहा कि जब तू लोगोंविषे भी और उनके भले बुरे वचन सुनकर धैर्यकर और बोलनेसे रहितहो तब यह पुरुषार्थ बड़ाहै बहुरि कई पुरुष ऐसे होते हैं कि यह अपने मान के निमित्त दूसरेके पक्षको निषेध करते हैं और कहते हैं कि यहभी धर्मकी दृढ़-

चाहे सो यह बड़ी मूर्खताहै ३ बहुरि चौथा विघ्न यहहै कि धनके निमित्त किसी के साथ झगड़ा करना और राजाओं के दरबार में जाकर पुकार करनी इसी पर सन्तजनोंने कहा है कि,जब यह मनुष्य धनके लोभ करके किसी के साथ झगड़ा करताहै तब ऐसी विशेषताको पाताहै कि जैसी विशेषता और किसी अवगुण करके नहीं होती काहेसे कि ऐसे झगड़ेका निर्वाह कठोर वचन और असत्य विना नहीं होता ताते जिज्ञासु जन पुरुषार्थ करके मूलही से ऐसे व्यवहार को त्याग करते हैं ४ बहुरि पांचवा विघ्न मुख से दुर्वचन बोलनाहै इसीपर महापुरुषने कहा है कि कुछलोग नरक विषे महादुःखी होवेंगे और पुकार करेंगे और नरकी पूछेंगे कि ये महापापी कौन हैं तब देवता कहेंगे कि ये मनुष्य सर्वदा दुर्वचनही बोलते थे और दुराचारके वचनों विषेही इनकी प्रीतिथी और महापुरुषने योंभी कहाहै कि अपने माता पिताको गाली मतदो तब किसीने पूछा कि अपने माता पिता को कौन गाली देता है तब महापुरुष ने कहा कि जब कोई मनुष्य किसी दूसरेके माता पिताको दुर्वचन बोलताहै तब वहभी इस के माता पिताको दुर्वचन कहने लगता है जब विचार करके देखिये तब इसने अपने माता पिताको आपही दुर्वचन बोलाहै ताते चाहिये कि जब अवश्यही किसी मलिन क्रियाका नामलेना होवे तोभी सैनसे कहे और प्रसिद्ध वर्णन न करे ५ बहुरि छठवां विघ्न यहहै कि किसीको धिक्कार करना सो यहभी महानिंद्य है यद्यपि किसी पशु और जड़ पदार्थ को धिक्कार करिये तौभी बुराहै इसी पर महापुरुष ने कहाहै कि प्रीतिमान् किसी को धिक्कार नहीं करते बहुरि एक और प्रीतिमान्ने भी कहाहै कि जब यह मनुष्य धरती अथवा और किसी पदार्थको धिक्कार करताहै,तब वह पदार्थ ऐसे कहताहै कि हम दोनों में जो विशेष भगवत्से विमुख और पापी है उसीको धिक्कारहै और जब इसप्रकार कहे कि समस्त अपकर्मियों और जीवों के समुदायकों को धिक्कारहै और किसी जाति पांति पंथका नाम लेकर न कहे तो ऐसे कहना प्रमाण है पर तौभी जो विचार करके देखिये तो अपकर्मियों को धिक्कार करने से भगवत्का नाम लेनाही विशेषहै ६ बहुरि सातवां विघ्न यह है कि रूप और शृङ्गार के व्यवहार की कविता करनी और स्त्रियों की स्तुति करनी सो यहभी अयोग्यहै काहेसे कि ऐसी कविता विषे अधिक तो झूठ होताहै बहुरि कहने और सुननेवालेका हृदय चपल होता

है।परं गर्व मानसे रहित होकर भगवंत् और सन्तजनों की स्तुति वर्णन करे तो प्रमाण है बहुरि धार्ति विना हाँसी है सो हाँसी से महापुरुषने जिज्ञासुजनों को वर्जी है।पर जब अकस्मात् किसी के प्रसन्न करनेके निमित्त हाँसीका प्रसंग कहे तो निन्द्य नहीं परं यह भी तब प्रमाण है जब हाँसीका स्वभाव अधिक न होजावे और झूठभी न कहै और किसीके हृदयको खेद भी न होवे क्योंकि जब हाँसीका स्वभाव अधिक होता है तब इसी मनुष्य की आयुर्बल व्यर्थ ही बीत जाती है और हृदय अन्ध होजाता है बहुरि गम्भीरता भी नष्ट होजाती है और हाँसीसे अकस्मात् तमोगुण भी उपजआता है इसी कारणसे सन्तजनों ने अधिक हाँसीसे वर्जा है ऐसे ही महापुरुषने भी कहा है कि जैसे मैं भगवंत्की बड़ाई और बेपरवाहीको जानता हूं सो जब तुम भी जानो तब हाँसीसे रहित होकर रुदन नहीं करते रहो।बहुरि किसी भीतिमान् ने किसी और भीतिमान् से कहा था कि नरकों के दुःखको तू निस्सन्देह जानता है तब उसने कहा कि जानता हूं बहुरि उसने पूछा कि तू ऐसा भी जानता है कि नरकों मे छूटूंगा तब उसने कहा कि यह तो मैं नहीं जानता बहुरि उन्होंने कहा कि जब ऐसे हुआ तब प्रसन्नता और हाँसी तुमको क्योंकर आती है इसी कारण मे एक जिज्ञासुजन चालीस वर्षपर्यंत हँसनेसे रहित रहे और परलोकके भयको स्मरण करतेरहे हैं इसीपर एक सन्तने कहाहै कि जो पुरुष पापकरकेइस लोकविषे हँसता है सो निस्सन्देह नरकों विषे अधिक रोतारहेगा।बहुरि एक सन्तने योंभी कहा है कि जैसे स्वर्गविषे रोना आश्चर्य है तैसेही संसारविषे हँसनाभी आश्चर्य है क्योंकि यह मनुष्य तो इतना भी नहीं जानता कि मैं परलोक विषे नरकको प्राप्त होऊंगा अथवा स्वर्गको इसी पर एक सन्तने कहाहै कि भगवत्के भय करके हाँसी से रहित होना कठिन है क्योंकि हाँसी करके क्रोध उपजता है और क्रोध करके अनेक अवगुण उपजते हैं इसी कारणसे महापुरुषकी सर्व आयुष भर में जीवों की प्रसन्नताके निमित्त कुछ अल्पही हाँसीकी वार्ता वर्णन हुई है जैसे एकबार एक वृद्धा स्त्रीसे कहनेलगे कि कोई वृद्धमनुष्य स्वर्गको प्राप्त न होवेगा तब वहस्त्री रोनेलगी बहुरि उससे कहा कि तू रोवे मत क्योंकि जब कोई मनुष्य स्वर्गविषे जाताहै तब प्रथम उसको युवा करलेते हैं बहुरि एक स्त्री महापुरुष से आकर कहनेलगी कि तुमको प्रसाद पानेके निमित्त मेरे पतिने बुलायाहै तब उनसे कहा कि तेरा पति वही,

है जिसके नेत्रों विषे सफेदी है बहुरि वह स्त्री कहनेलगी कि उसके नेत्रों विषे तो सफेदी नहीं है तब उससे हँसकर कहनेलगे कि सफेदी से रहित तो किसीके भी नेत्र नहीं होते बहुरि एकबार मार्ग विषे चले जातेथे तब एक वृद्धासी कहने लगी कि मुझ को ऊंटपर चढ़ादो तब महापुरुष ने कहा कि तुझको ऊंटके पुत्र पर चढ़ादूं तब उसने कहा कि ऊंटके पुत्रपर तो मैं नहीं चढ़ूंगी कि वह मुझको गिरा देवेगा तब हँसकर कहनेलगे कि ऐसा ऊंट तो कोई नहीं होता जो ऊंटका पुत्र न होवे तात्पर्य यह कि महापुरुषों का हँसना और बोलना सबही विचारके अनुसार होताहै और गुणसे रहित नहीं होता पर जब कोई उनको देखकर ऐसाही स्वभाव करलेवे और उनके भेद को समझ न सके तब निस्सन्देह पापी होता ८ बहुरि नवा विघ्न यहहै कि किसीको उपहास करके डुलावना और उसके कर्मोंके छिद्रको प्रकट करके लोगोंको हँसानाहै सो यहभी महानिंद्य है इसीपर महाराजने कहाहै कि किसी के छिद्रको देखकर न हँसो काहेसे कि कदाचित् वह तुमसे भला होजावे और तुम उससे भी नीचगतिको प्राप्त होजावो बहुरि महापुरुषने भी कहाहै कि जब कोई अभिमान सहित किसी का अवगुण देखकर हँसता है तब मरनेसे आगेही अवश्यमेव उस अवगुणको प्राप्त होताहै ९ बहुरि दशवां विघ्न यहहै कि अपने वचनका निर्वाह न करना सो यहभी महापापहै इसीपर महापुरुषने भी कहाहै कि जो पुरुष वचन झूठा करे और वचनका निर्वाह न करे अथवा किसीकी वस्तु चुरायलेवे तब वह कपटी कहाताहै और वह यद्यपि जपतप और व्रतभी करता होवे तौभी भगवत्से विमुख होताहै इसीपर संतजनोंने कहाहै कि किसीके साथ वचन करना भी ऋणकी नाईं है ताते उससे विपर्य्यय न हूजिये तो भला है बहुरि धर्मशास्त्र विषे भी यों कहाहै कि जैसे किसी को कुछ देकर फेरलेना अयोग्य है तैसेही वचन देकर निर्वाह न करना अयोग्य है १० बहुरि ग्यारहवां विघ्न यहहै कि झूठ बोलना और झूठीदुहाई करना सो यहभी महापाप है इसीपर महापुरुष ने कहाहै कि झूठकरके इस मनुष्य की प्रारब्ध घटजाती है और यौंभी कहाहै कि सौदागरी विषे झूठ बोलना और झूठी शपथ करनी महा नीचताहै और इसीपाप करके सौदागर अर्थात् वनिज व्यवहारी भी नरकगामी होवेंगे बहुरि यों भी कहा है कि झूठा मनुष्य व्यभिचारी से भी बुराहै काहेसे कि व्यभिचारी तो अकस्मात् छल करके होजाता है और झूठ बोलना मनमें

की मलिनता करके होताहै पर ऐसे जानतू कि झूठकी निषेध इसकरके कही है कि झूठ बोलने करके हृदय अन्ध होजाता है और जब झूठकी मनसा न होवे और अकस्मात् किसी कार्य्य के निमित्त बोलना चाहिये तो झूठ बोलना भी प्रमाण है तात्पर्य्य यह कि जब झूठ की मनसा न होवे और किसी की भलाई अथवा रक्षा के निमित्त बोलता होवे तो हृदय अन्धा नहीं होता जैसे कोई अनाथ किसी तामसी मनुष्यके भय करके छिपाहोवे और इसने देखा होवे बहुरि जब वह तामसी मनुष्य इस से पूछे कि अमुक कहां है तब सत्य बोलने से झूठ बोलना विशेषहै अथवा जब दो मनुष्यों विषे परस्पर विरोधहोवे और इसके झूठ बोलने करके उनका विरोध निवृत्त होवे तो भी झूठ कहना निन्द्य नहीं अथवा जब किसी का अवगुण देखिये और दूसरा कोई उसके अवगुण को पूछे तौभी उसको गुप्त रखना भलाहै अथवा जब कोई तामसी मनुष्य किसी का धन पूंछे तौभी प्रसिद्ध कहना योग्य नहीं तात्पर्य्य यह कि यद्यपि झूठ कहना अयोग्य है तौभी विचार की मर्य्याद विषे देखे कि जब झूठ कहने करके किसीकी रक्षा होती है अथवा कोई बड़ा विघ्न दूर होताहै तब झूठ कहने करके दोष कुछ नहीं होता पर जब अपने मान और धन के निमित्त झूठ बोले तो निन्द्य है बहुरि ऐसे भी जान तू कि जब जिज्ञासु जनोंने इस प्रकार देखा है कि अमुक कार्य्य झूठ बिना सिद्ध नहीं होता तब उन्होंने ऐसा यत्न किया है कि जिस वचनविषे झूठ का अक्षर न आवे और वह पुरुष कुछ औरका औरही समझलेवे तब ऐसाही वचन उन्होंने बोलाहै जैसे एक श्रीमान् चिरकाल के पीछे राजा के निकट गया था तब राजा ने पूछा कि तुम चिरकाल करके क्यों आये हो तब उस श्रीमान्ने कहा कि जिस दिनसे मैं तुम्हारे पाससे गया हूं सो मैंने जिस दिनसे अपना पग धरती से तबहीं उठाया है जब भगवत् ने मुझ को नीरोगता दीनी है तातें राजा ने जाना कि इन को कुछ रोग हुआ होवेगा और इन्होंने इसप्रकार कहा था कि जब भगवत् ने मुझको नीरोगता का बल दिया तबहीं मेरा शरीर चलने फिरनेको समर्थ हुआ है सो इसवार्ता विषे कुछ सन्देह नहीं बहुरि एक श्रीरामानुरागी थे सो उन्होंने अपने शिष्यको समझा दियाथा कि जब मैं एकान्त विषे भगवद्भजन करने लगूं और कोई पुरुष मुझ को आकर पूछे तब तू धरती पर लकीर खेंचकर उससे कह देना कि यहां तो नहीं है

मेंपुनिःजम ऐसे पूछें कि कहा गये थे तब ऐसेंकहना कि किसी ठाकुरद्वारे गि थेगये सो उन्होंने गृह विषेही ठाकुरद्वारा भी बनाय राखा था बहुरि एक और भी निभारन् एक धर्मज्ञ राजाके प्रधानहोकर किसी देशकी पालनाको गयेथे सो जब अपने गृहविषे आये तब उनसे स्त्री कहनेलगी कि तुम हमारे निमित्त क्या लायेहो तब उन्होंने कहा कि मेरे साथ एक रक्षक और भी था ताते मैं कुछ ले नहीं आया सो उनके कहने का तात्पर्य यहहै कि अन्तर्यामी भगवत् मेरे साथ था और स्त्रीने यों जाना कि राजाने कोई रक्षक भेजाहोगा पर इसप्रकार जान लो कि ऐसा वचन बोलनाभी तब प्रमाण है जब किसी कार्यका निर्वाह ऐसे वचन बिना न होसकै और जो सर्वथा ऐसेंही स्वभाव में कहलेवे तो अयोग्य है काहे से कि यद्यपि यह वचन सत्य है तोभी औरोंको धोखा देना प्रमाण नहीं और एक महापुरुषने ऐसा कहाहै कि भगवत् की झुठाई करनी महापाप है अरु जब ऐसे कहै कि भगवान् जानता है कि यह वार्ता ऐसीही है पर जब वह वार्ता तैसी न होवे तब इसप्रकार कहना तौ बड़ापाप है १८ बहुरि उन्नीसवां विघ्न निन्दा है सो यह निन्दा ऐसी प्रबल है कि शरण्यही पुन्य किसीसे होजाती है पर जिन की भगवत् रक्षाकरै सो विरला जनहीं मुक्त होता है इसीपर महाराज ने कहा है कि निन्दा करनी ऐसी बुरी है जैसे कोई बन्धुका मांस भक्षण करे बहुरि महा पुरुषोंने भी कहा है कि निन्दा व्यभिचारसे भी बुरी है काहेसे कि जब व्यभि चारका त्यागकरै तब शीघ्र भगवत् उसको मुक्त करता है और निन्दाके पाप से तबहीं छूटताहै कि जिनपुरुषकी निन्दा करीहोवे सो जब उसहीसे क्षमा करावे बहुरि एक मीतिगार ने कहा है कि मैंने महापुरुष से उत्तम उपदेश पूछाथा तब उन्होंने कहा कि किंचिन्मात्र सुकृतकोभी अपप न जानना यद्यपि किसी प्यासे को एक कटोराभर जल देवे तोभी भगवत्का उपकार जान और सर्व मनुष्यों के साथ प्रसन्न मुखकरि बहुरि किसीकी निन्दा भी न करना और निन्दा का नाम है कि यद्यपि तू सत्यहीकहै पर जिस वचनको सुनकर किसीका हृदय खेदित होवे तब उसहीको निन्दा कहते हैं जैसे तू कहै कि अमुक पुरुष लम्बा है अथवा अति श्याम है अथवा गन्दहष्टी है सो यह सब निन्दा है अथवा जब ऐसे कहै कि यह नीच जाति अथवा दासीसुत है अथवा कठोर है अथवा बहुत बोलनेवाला है अथवा चोर है अथवा भजन में हीन है अथवा वाणी अशुद्ध

पढ़ता है अथवा पवित्र नहीं रहता अथवा कृपण है अथवा व्यवहार अशुद्ध करता है अथवा अवयसी है अथवा सोवता बहुत है अथवा वस्त्र सुन्दर पहरता है अथवा अधिक चपल है यह सबही निन्दा है तात्पर्य यह कि यद्यपि सत्य ही बचन होवे परन्तु जिस बचनको सुनकर उसका मन तपायमान होवे तब इस ही का नाम निन्दा है इसी पर महापुरुष की स्त्री ने कहा है कि एक बार मैंने इसप्रकार कहाथा कि अमुकी स्त्री ठिंगनी है तब महापुरुष मुझ से कहने लगे कि तुमने उसकी निन्दा करी है ताते मुख से थूक डालो बहुरि जब मैंने थूका तब मेरे मुख से रुधिर निकसा और कितने स्थूल बुद्धिवाले इस प्रकार कहते हैं कि अपकर्मियों की बुराई करनी निन्दा नहीं काहे से कि उनकी निषेधता करने से धर्म की वृद्धि होती है सो यह वार्त्ता अपोरप है इस करके कि जिज्ञासु को सर्वथा आपने मार्ग की ओर दृष्टि रखनी प्रमाण है ताते किसी को मद्यपानी और दुराचारी कहना योग्य नहीं अथवा जब कोई ऐसाही संयोग अवश्यही होवे तब कहिये पर कार्य बिना कहना अयोग्य है और योंभी जानना चाहिये कि निन्दा केवल रसना करके ही नहीं होती हाथ और नेत्रों करके भी निन्दा होती है जैसे नेत्र अथवा हाथ अथवा और किसी अंगकी सैनकरके दिखावे कि अमुक मनुष्य ऐसा है तब यह भी पापहै और जब किसी का नाम न लेवे और योंही कहदेवे कि किसी पुरुषने ऐसा कर्म्म कियाहै तब यह निन्दा नहीं कहाती पर केते विद्यावान् और तपस्वी तो महापुरुषों की निन्दा करते हैं और कहते हैं कि हमने निन्दा नहीं करी जैसे अपनी सभा विषे बैठकर वार्त्ता करते हैं कि यह माया महा छलरूप है और इसके छलों से मुक्त होना महा कठिन है इसी कारण से यद्यपि अमुक पुरुष महाउत्तम था तौभी अमुक छल करके छलागया और इस विषे आसक्त होगया और उसको क्या कहिये हम भी छलेहुये हैं और यह माया ऐसीही विघ्नरूपहै सो इसका अभिप्राय यह होता है कि अपनी निन्दा करके औरों की निन्दा करता है सो यह बड़ी मूर्खता है बहुरि जब कोई उनके आगे आकर कहे कि अमुक पुरुष ऐसे अपकर्म विषे स्थितहुआ है तब आश्चर्यवान् होकर कहते हैं कि भगवत् रक्षाकरे और यह तो बड़ी असमर्थ वार्त्ता हुई कि अमुक पुरुष गुणवन्त भी छलको प्राप्त हुआहै सो इस बचन का प्रयोजन यह हुआ कि निन्दा करनेवाला पुरुष प्रसन्न होकर उसके कर्म्म को वर्णन

करे और सबलोगों में भलीप्रकार श्रवणकरे अथवा इस प्रकार कहना कि हे भाई सर्वथाकर भगवत् से भय करना चाहिये और अभिमान करना अयोग्य है काहे से कि अमुक श्रेष्ठ पुरुष को कैसा छल प्राप्त हुआहै कि भगवत्ही उसकी रक्षा करे सो यद्यपि मुखसे ऐसाही कहना है तोभी उसका प्रयोजन यह है कि उसके छल को लोग भी जानें सो ये सबही निन्दा हैं और यह ऐसा महाकपट है कि पाखण्ड करके आपको अनिन्द्य ही दिखाता है तातें इसको दोपाप लगते हैं एक तो निन्दा होती है और दूसरे कपटवन्त होता है और वह मूर्ख ऐसा जानता है कि मैंने निन्दा नहीं करी और यह वार्त्ता प्रसिद्ध है कि निन्दा के करनेवाले और सुननेवाले दोनों समान पापी होते हैं पर जब निन्दा सुननेवाले के चित्तविषे ग्लानि हुदरहे और निन्दक को वर्जनेकी सामर्थ्य न रखताहोवे तोभी निन्दा सुनने के दोषसे मुक्त रहताहै तातें जिज्ञासु को इसप्रकार उचित है कि निन्दक को प्रसिद्ध वरजे बहुरि जिसप्रकार मुखसे निन्दा करनी परम पाप है तैसेही हृदय करके भी निन्दा करनी पापरूप है सो हृदय करके निन्दा इस प्रकार होती है कि किसी के दोष को चित्त विषे स्मरण करना सो यह भी बड़ा पाप है इसीपर महापुरुषों ने भी कहा है कि परद्रव्य चुराना और किसी का घात करना और किसी के ऊपर बुरा अनुमान करना सो यह तीनों महापाप हैं पर जब अकस्मात् तेरे चित्त विषे ऐसा संकल्प फुरआवे और तू उसको मलिन जानकर निवृत्तकरे तब इस करके तुझको पाप नहीं लगता पर इसकी परीक्षा यह है कि जब किसी के दोष का संकल्प तेरे चित्त विषे फुरे अथवा किसी से श्रवणकरे तब उन दोषों को दृढ़ नहीं और उन फुरनों को हृदय विषे ही लीन करदेवे बहुरि ऐसे जाने कि जैसे मेरे मन विषे अनेक पाप उपजते रहते हैं तैसेही और मनुष्य भी पापसे रहित नहीं होसके और जिसप्रकार मैं अपने अवगुणों को छिपाया चाहता हूं तैसेही औरों के अवगुण भी प्रसिद्ध करने प्रमाण नहीं और जब मैं किसी के छिद्रको प्रकट जानूंगा तब मुझको क्या लाभ होगा पर जब किसी के अवगुण को निस्संदेह जाने तब एकान्त विषे उसको नम्रता सहित उपदेशकरे और किसी के आगे उसका छिद्रवर्णन न करे बहुरि ऐसे जान तू कि निन्दा की अभिलाषा भी इस मनुष्य के हृदय को बड़ा रोग है तातें इसका उपाय करना अवश्य ही प्रमाण है और उपाय इसका औषधरूप करके है सो एक उपाय साहरे संयोग (के

इही निन्दाको नाश करताहै सो यह उपाय भी दोप्रकार करके होताहै प्रथम तो जो वचन निन्दाकी निषेधता विषे महापुरुषोंने कहे हैं उनका बारंबार वि-चारकरे और ऐसे जाने कि निन्दा करनेवालेके सब शुभ करतूतोंका फल उस-की ओर जाताहै जिसकी निन्दा करताहै और निन्दक मनुष्य सुकृतहीन रह जाताहै इसीपर महापुरुषने कहाहै कि जैसे सूखे तृणोंको अग्नि भस्म करडा-लती है तैसेही निन्दाकरके सब सुकृत शीघ्रही नष्ट होजाते हैं १ और दूसराप्रकार यह है कि अपने अवगुणोंका विचार करे और ऐसे जाने कि जिस प्रकार मैं अवगुणों के वशीभूत हूं तैसेही और मनुष्य भी अवगुणों से रहित नहीं होसक्ते काहेसे कि महाराज की माया अति प्रबलहै बहुरि जब अपने विषे कोई अव-गुण न देखे तब ऐसे जाने कि अपने अवगुणों का न देखनाही बड़ा अवगु-णहै और जो यह पुरुष अवगुण से रहित और गुणवन्तही होवै तो भगवत्‌का उपकार जानकर धन्यवाद करे और निन्दासे दुःखित होवे बहुरि ऐसे जाने कि जब मैं किसीकी निन्दा करूंगा तब यह भी भगवत्‌की निन्दा होती है काहे से कि सब किसीका उत्पन्न करनेवाला भगवत्‌है सो जैसे कारीगरीकी निन्दा कर-नेसे कारीगर की निन्दा होती है तैसेही मनुष्योंकी निन्दा करके भगवत्‌हीकी निन्दा होती है २ सो यह दोनों प्रकार निन्दा के दूर करने के समस्त उपायहैं बहुरि दूसरे निन्दाके दूरकरने के भिन्न भिन्न उपाय ये हैं कि प्रथम जिज्ञासु अ-पने हृदयविषे विचारकरे कि मैं निन्दा किस कारण करताहूं सो निन्दाके आठ कारण हैं और सबके भिन्न भिन्न उपायहैं प्रथम कारण यहहै कि जब यह पुरुष किसीपर कोप करताहै तब उसकी निन्दा किया चाहताहै सो जब ऐसा होवे तब जिज्ञासु इसप्रकार विचारकरे कि बिराने कोपके निमित्त आपको नरकगामी करना बड़ी मूर्खताहै और जब अन्नोप्रकार देखिये तो उसके निमित्त अपने ऊपर क्रोधकरना होताहै इसीपर महापुरुषने कहाहै कि जब यह पुरुष भगवत् के निमित्त अपने क्रोधको क्षमा करलेताहै तब उसके ऊपर महाराज दयालु होते हैं १ बहुरि दूसरा कारण यहहै कि जब किसीको निन्दा करता देखताहै तब उसकी प्रसन्नता के निमित्त यह भी निन्दा करने लगताहै तब इसका उपाय यह है कि ऐसा जाने कि मैं लोगोंकी प्रसन्नता के निमित्त भगवत्‌को अप्रसन्न कर-ताहूं सो यह भी बड़ाहै तातें जिज्ञासु को चाहिये कि निन्दक पुरुषोंको देख

करके अभिमान होवे और उनकी संगतिका त्याग करे ॥ बहुरि तीसरा कारण यह है कि जब इस पुरुषको कोई छिद्र प्रकट होताहै तब अपने छिद्रका दोष औरों पर रखताहै और आपको बचाया चाहताहै सो यह भी अयोग्य है ताते ऐसा जानना प्रमाण है कि भगवत् का क्रोध मेरी चतुराई करके नष्ट न होवेगा और जिस अपमान से मैं डरताहूं तिस अपमान से भगवत् का क्रोध महा तीक्ष्ण है और अपने दोषका दोष औरों पर देनाही भगवत् के क्रोधका बीज है पर और अपने अवगुण छिपाने के निमित्त औरों के अवगुण वर्णन करे तब यह भी दूषताहै जैसे कोई कहे कि अमुक पुरुष अशुद्ध जीविका करताहै और अमुक राजधान्य लेताहै ताते मैं भी इसको अंगीकार करताहूं सो ऐसा जाननेवाला पुरुष महामूर्ख है काहेसे कि जिस मनुष्य का कर्म मलिन होताहै तिसको देख कर आप भी मलिनता विषे प्रवर्तना अयोग्य है जैसे कोई अग्नि माहिं आपको जलावे तब उसके पीछे जलना तो इसको प्रमाण नहीं तैसेही पापीको देखकर पाप करना अयोग्य है ॥ बहुरि चौथा कारण यह है कि अपनी स्तुतिके निमित्त औरों की निन्दा करते हैं जैसे कोई कहे कि अमुक पुरुष वचनको नहीं समझता और अमुक पुरुष पाखण्डका त्याग नहीं करता सो इसका अर्थ यह हुआ कि मैं बुद्धिमान्हूं और पाखण्ड से रहित हूं सो यह भी अयोग्य है ताते ऐसा जानना चाहिये कि बुद्धिमान् पुरुष तो इस मेरे कपटको भी सही जान लेवेगा और मेरी निष्कमता पर प्रतीति न करेगा और जो आपही मूर्ख है तिसकी प्रीति प्रतीति करके मुझको क्या लाभ होवेगा ताते यह भी बुद्धिकी हीनताही है कि भगवत् के निकट आप को लज्जा अपमान करना और पराधीन जीवों के निकट अपना मान बढ़ावना ॥ बहुरि पांचवां कारण यह है कि ईर्षा करके भी निन्दा होती है अर्थात् जब किसी पुरुषका धन और मान अधिक होताहै तब ईर्षा करनेवाला पुरुष उसकी बड़ाई को देख नहीं सकता ताते उसके अवगुणों को ढूंढ़ने लगताहै और उनके विषे दृढ़ होताहै पर ऐसा नहीं जानता कि मैं अपने आपही पीड़ा करताहूं काहेसे कि इसलोक विषे ईर्षाकी अग्नि विषे जलता रहताहै और परलोक विषे भी निन्दा आदिक पापों करके दुःखी होवेगा और ऐसा पुरुष दोनों लोकके सुखसे अभाग रहताहै पर इतना भी नहीं समझता कि भगवत् की आज्ञा करके जिसको धन और मान प्राप्त हुआ है सो मेरे ईर्षा करके उसकी हानि क्योंकर होवेगी ॥

बहुरि छठवा कारण यहहै कि हांसी के स्वभावकरके भी निन्दा होजाती है और हाँसी करनेवाला पुरुष ऐसा नहीं जानता कि जितना मैं किसी को हास्य करके लज्जावान् करता हू तितना मैं भी भगवत् के निकट लज्जित होऊंगा और जब ऐसा जाने कि निन्दा और हास्यकरके परलोकविषे मेरी ऐसी गति होवेगी तब कदाचित् ऐसे कर्मको अंगीकार न करे ६ बहुरि सातवा कारण यहहै कि जब किसी से कुछ अवगुण होवे तब इसका हृदय सात्त्विकी स्वभाव करके सहजही शोकवान् होजाता है और उसकी वार्त्ता करतेहुये उसका नाम किसी के आगे मुखसे निकस जावे तब यह भी निन्दा होती है ताते ऐसा जानना प्रमाण है कि यद्यपि दयाकरके जो हृदय कोमल हुआहै तिससे उसके विषे अवगुणको नहीं चाहता तो भी प्रसिद्ध नाम लेने करके इसदया सम्बन्धी करतूत के फलसे अप्राप्त रहता है ७ बहुरि आठवा कारण यहहै कि यद्यपि धर्महीं के निमित्त किसी का अवगुण नहीं देखसके पर जब आपको शुद्ध जानकर उस के छिद्रको देख कर आश्चर्यवान् होवे और ऐसा जाने कि अमुक पुरुष ने यह अवज्ञा क्योंकर करी ताते विस्माद होकर उसकी आश्चर्यता विषे उसका नाम लोगों के सामने कहे तब यह भी अयोग्य है और निन्दा के निकट जा पहुँचना है ताते चाहिये कि किसी का अवगुण देखकर आश्चर्यवान् न होवे और नम्रता विषे स्थित रहे ८॥ अथ प्रकट करना इसका कि निंदाभी कितने कारणों करके प्रमाणहै॥ ताते जानहु कि निन्दा भी झूठ की नाईं महापाप है इसीकारण से आवश्यक कार्य बिना निंदा करना प्रमाण नहीं होता ताते मैं उन कार्योंको कुछ वर्णन करताहू जिन करके निन्दा भी प्रमाण होती है सो प्रथम कार्य यह है कि जब किसी ने इसको दुखाया होवे और अथवा कुछ धन हरलिया होवे और इसको जिसके आगे पुकार करनी होवे तब यह भी निन्दा किये बिना सिद्ध नहीं होता पर तौभी जिस पुरुषमे सहायता कुछ न होयके तब दुःख देनेवाले की वार्त्ता तिसकों कहनी अयोग्य है १ बहुरि दूसरा कारण यहहै कि जब किसी स्थान विषे कुछ पाप होता देखे और ऐसा जाने कि जो इस पाप को प्रसिद्ध न करेगा तो अधिकही बढ़ता जावेगा तब किसी ऐसे ऐश्वर्यवान्से कहना प्रमाण है कि जिसके भय करके वहपाप नष्ट होजावे २ बहुरि तीसरा कारण यहहै कि जब कोई धर्मका विषयी शास्त्रवादी अथवा किसी आचार्यकी मर्यादा करता होवे तो उसके

अवगुणको प्रसिद्ध करना योग्य है काहेते कि उसकी संगति करके धर्मके का अकार्य होताहै इसीपर महापुरुषने कहा है कि तीन प्रकारके मनुष्योंकी निन्दा करनी पाप नहीं एक अन्यायी राजा दूसरा संतजनोंकी मर्यादामें विपरीत मार्गचारी और तीसरा प्रसिद्ध दुराचारी क्योंकि इनकी क्रिया कुछ गुप्त नहीं होती ताते इनकी वार्ता प्रसिद्ध करनी कुछ निंदा नहीं ३ बहुरि चौथा कारण यह है कि जब किसीकानाम ऐसाही प्रसिद्ध लोगलेतेहोवें कि सूरदास अथवा मन्ददृष्टी अथवा बधिर अथवा कुष्ठी सो ऐसे पुरुष का इसी प्रकार नाम लेना निन्दा और पाप नहीं और वह भी अपना नाम सुनकर अप्रसन्न नहीं होता पर जब उसको भी किसी और नाम करके बुलाइये तो गलाहै ४ बहुरि पांचवां कारण यहहै कि जितने लोग प्रसिद्धही निर्लज्जहैं जैसे हिजड़े और नर्तक और मद्यपानी जो लाज से रहितहैं सो यहभी अपनी करणीकी वार्ता सुनकर बुरा नहीं मानते ताते जब किसी प्रयोग करके इनकी वार्ता चले तब इनका नाम भी निंदा नहीं और निंदा का अर्थ यहहै कि जिस वचनको सुनकर किसीका हृदय तपायमान होवे ५ ताते प्रीतिमान्को चाहिये कि जब इससे कुछ ऐसी अवज्ञा होवे तब शीघ्रही उसे क्षमाकरावे औरअपने पापोंका पुरश्चरण करलेवे इसीपर महापुरुष ने कहाहै कि इसीलोकमें अपने पाप क्षमाकरावो काहेसे कि परलोक विषे जब इस जीवको अधिक दण्ड होवेगा तबइसके पास पुरश्चरण की कुछ सामग्री न होवेगी और एक वचन विषे ऐसाभी आयाहै कि जिस पुरुषकी इसने निन्दाकी होवे तब उसके निमित्त भगवत्के आगे प्रार्थना करके उसका क्षमाकरावे पर कैते पुरुषोंने यही दृढ़ कियाहै कि जिसकी निन्दा कीहोवे उससे क्षमा करानेकी कुछ अपेक्षा नहीं भगवत्हीके आगे प्रार्थना करनी विशेषहै सो यहवार्ता भी ऐसेहै काहेसे कि भगवत्के आगे प्रार्थना करनी तबही फवी है जब वह मनुष्य जीवता न होवे अथवा दूर होवे पर जब उसका मिलाप होसके तब नम्रता और दीनता सहित उससे क्षमाकरावनी तो भला है और जब वह क्षमा न करे तब उसीका पाप होताहै १५ बहुरि मैंरजानिये यह है कि किसीके वचन रागद्वेष सहित और बुरा होकरनी आ यहभी बड़ापाप है इसी पर महापुरुष ने कहाहै कि चुगलीकरनेवाला पुरुष स्वर्गविषे सुखी नहीं होगा और ऐसा कहाहै कि तुम जानतेहो कि बुरा मनुष्य कौनहै इसीपर एक

वार्ता है कि एकसमय एक देशमें दुर्भिक्ष हुआथा, तब महात्मा मूसा और उस देशकेलोग, मिलकर भगवत्से प्रार्थना करनेलगे तब महात्मा मूसाको आकाश वाणीहुई कि तुम्हारे देशविषे एक चुगलहै तिसके पापकरके मेघ नहींवर्षता तब महात्मा मूसाने पूछा कि वह चुगल कौनहै तब आकाशवाणी हुई कि हे मूसा! मैं तो चुगलको अपना शत्रु जानताहूं ताते मैंही उसकी चुगली क्योंकर करूं कि अमुक चुगलहै और इसका उपाय यह है कि तुम सब लोगोंको चुगलीसे विवर्जितकरो तब शीघ्रही वर्षा होनेगी बहुरि इन्होंने ऐसेही किया तब बड़ा मेघ वर्षा और दुर्भिक्ष दूरहुआ एक और भी वार्ता है कि एक प्रीतिमान् दो सहस्र कोश चलकर एक बुद्धिमान् के निकट गया और वहां जाकर यह वार्ता पूंछी कि आकाश से विशाल क्या है १ और धरती से भारी क्याहै २ और पाथरसे कठोर क्या है ३ और अग्नि से अधिक तीक्ष्ण क्या है ४ और बर्फसे शीतल क्याहै ५ और समुद्रसे उदार क्याहै ६ और जिस बालकके माता पिता मुयेहोवें तिससे अधिक निर्मान और दुःखी कौनहै ७ तब उस बुद्धिमान् ने कहा कि सत्य वचन आकाशसे भी विशालहै १ और निर्दोष मनुष्यको दोष लगाना यह पाप धरतीसे भी भारी है २ और मनमुखोंका हृदय पाथरसे भी कठोर है ३ और ईर्षा अग्निसे भी तीक्ष्ण है ४ बहुरिभाव और सहन शीलता बर्फसे भी शीतल है ५ और संतोषवान् समुद्र से भी अतिउदार है ६ और चुगली करनेवाला मनुष्य माता पिताहीन बालक से भी अधिक निर्मान होवेगा ७ पर चुगली का अर्थ यहहै कि वचन अथवा कर्म अथवा सैन करके किसीके छिद्रको किसी और के आगे प्रकट करना और उसका हृदय दुखावना सो यह महापापहै ताते जिज्ञासु को चाहिये कि किसीका परदा उघारे नहीं अथवा जब कोई ऐसाही अवश्य कार्य्य होवे तब प्रकट करना भी प्रमाण होता है ताते जब कोई आयकर तुझसे ऐसे कहे कि अमुक पुरुष तेरा बुरा चेतता है अथवा दुर्वचन कहता है तब तुझको इसप्रकार समझनाचाहिये कि प्रथम तो चुगल और दुराचारी झूठे होते हैं ताते उसपर प्रतीति करनी अयोग्यहै १ और दूसरा प्रकार यह कि जब अधिकार देखिये तब उसको चुगलीसे विवर्जित करिये २ और तीसरा यह कि चुगली करनेवाले पुरुष के साथ मित्रता न करिये ३ और चौथाप्रकार यह कि जब किसीके अवगुणकी वार्ता सुनिये तब देखे बिना मलीन अनुमान करना

अतिनिंद्यहै ४ बहुरि पारसभागमें यहहै कि किसीको छिद्रसुनकर उसको दूसरी से न कहे कि यह वार्त्ता सत्यहै अथवा झूंठ है ५ और छठवां प्रकार यह है कि चुग़ली करनेवाले पुरुषकी वार्त्ता भी किसीसे न कहै कि यह चुग़ली खानेवाला है ताते उसके छिद्रको भी गम्भीरता करके छिपाय लेवे ६ तात्पर्य यह कि यह पट् युक्तिया सब किसीको चाहिये है इसीपर एक वार्त्ता है कि एक बुद्धिमान्से किसीने आकर कहा कि अमुक पुरुष तुम्हारी निंदा करताहै तब उसबुद्धिमान् ने कहा कि यद्यपि तू हमारे दर्शनको आयाहै तौभी तीन अवगुण तैंने अवश्य किये हैं सो एक तो मुझको उसके ऊपर क्रोधवान् किया दूसरे मेरे चित्तको विक्षेपताही तीसरे तू आप भी चुग़ली करनेवाला हुआ इसीपर हसनबसरी मैंने ने भी कहा है कि जब कोई मनुष्य आयकर तुझको किसीकी चुग़ली सुनावै तब निस्सन्देह ऐसाजान कि तेरीवार्त्ता भी औरों को जाय सुनावैगा ताते उस को अपना शत्रु और निन्दक जानकर उसकी संगतिको त्यागकर सर्वोपरि यह कि चुग़ली करनेवालेसे केते जीवोंका घातहोताहै इसीपर एक वार्त्ता है कि एक पुरुषने एकदास मोल लियाथा तब दासके बेचनेवाले ने कहदिया कि इस विषे और अवगुण कोई नहीं पर कुछ एक चुग़ली और वाक्य तेज करताहै सोउ दाम लेनेवालेने कहा कि इतने अवगुणका सिवाय क्याहै बहुरि जब वह दास उसके गृह विषे रहनेलागा तब उसकी स्त्रीसे कहा कि तुम्हारा पति और विवाह किया चाहिताहै और तुम्हारे साथ विपरीति चित्त हुआहै ताते इसका उपाय यह है कि जब तुम्हारा पति शयनकरे तब एक बाल उसके कण्ठका मुझको काटकर लादेना तब मैं मंत्र पढ़ूंगा जिसकरके सर्वथा तेरेही साथ उसकी प्रीति अधिक होवेगी बहुरि उस दासने अपने स्वामीसे कहा कि तुम्हारी स्त्रीकी प्रीति किसी और पुरुषके साथ हुईहै ताते तुमको मारना चाहती है पर जब तुम रात्रिके समय शयन करो तब सचेत रहना बहुरि जब रात्रिहुई तब वह गृह विषे आकर शयनकर रहा और अन्तर से जागताथा तब वह स्त्री उस्तुरा लेकर अपने पति के पास बाल काटने आई और उसके पतिने ऐसा जाना कि यह मुझ को मारती है ताते क्रोधवान् होकर स्त्रीको मारनेलगा बहुरि तब स्त्रीके संबंधि योंने सुना तब वे आकर उस पुरुषको मारनेलगे बहुरि स्त्री और पुरुष के संबंध नियों विषे बड़ा युद्ध हुआ और २ सौ ऐसे मनुष्यों का घातहुआ १२ बहुरि

चौदहवां विघ्न यहहै कि दो शत्रुओंविषे वाक्य छलें करना और अपने ठौर दोनोंको मित्र होय दिखावना सो यह चुगली से भी बड़ा पापहै इसीपर महापुरुष ने भी कहाहै कि इसलोक विषे जिसका स्वभाव वाक्य छलने का होताहै उसकी परलोकविषे दो जिह्वा होवैंगी ताते महादुःखको भोगेगा इसी कारणसे बुद्धिमानको चाहिये कि जब दो शत्रुओंका मिलापकरे तब दोनों की वार्त्ता सुनकर मौन कररहै अथवा यथार्थ वचन कहदेवे तो भला है पर एककी वार्त्ता दूसरे से कहनी अयोग्य है और कपट करके एक दूसरे को मित्रहोय दिखावना भी बुरा है १४ बहुरि पन्द्रहवां विघ्न स्तुति है काहेसे कि एक स्तुति के कहने से षट् पाप और उपजते हैं सो दो पाप श्रोताको लगते हैं और चार पाप वक्ताको होते हैं सो वक्ताको प्रथम पाप यहहोता है कि जब अधिकार से अधिक किसीकी स्तुति करता है तब निस्सन्देह झूठ होताहै १ और दूसरा पाप यह कि जब प्रीतिबिना किसीकी स्तुति करता है तब कपट होताहै २ बहुरि तीसरा पाप यह कि जिसके गुणकी ज्ञाता न होवे उसकी स्तुति करनी भी अयोग्य है जैसे कोई कहै कि अमुक पुरुष वैरागी है अथवा शुभकर्मी है पर जब उसके गुणोंको पहिचानताही न होवै तब ऐसे कहना भी मिथ्यावाद होताहै ३ बहुरि चौथापाप यह कि जब किसी तामसी मनुष्य की स्तुति करे और वह अपनी स्तुति सुनकर प्रसन्न होवे और प्रसन्न होकर तमोगुण विषे दृढ़ होजावे तब यहभी प्रमाण नहीं इसीपर महापुरुषने कहाहै कि जब कोई तामसी पुरुषकी स्तुति करताहै तब उसके ऊपर भगवत् कोपवान् होताहै ४ बहुरि अपनी स्तुति सुननेवालेको दोपाप प्रसिद्ध होते हैं सो प्रथम यहहै कि जब यहपुरुष अपनी स्तुति श्रवण करताहै तब स्वाभाविकही अभिमानी होजाता है १ और दूसरा पाप यहहै कि जब अपने गुणों और विद्याकी बड़ाई सुनताहै तब आगे शुभ करतूत से थकित होजाताहै और ऐसा जानता है कि मैं परमपदको प्राप्त हुआहूं इसीपर महापुरुष ने कहाहै कि तीक्ष्ण शस्त्रकर प्रहार करना भलाहै पर सम्मुख होकर किसीकी स्तुति करनी भली नहीं काहेसे कि जब यह पुरुष अपनी महिमा सुनता है तब इसको मन इसको अपने स्थानसे गिराय देता है पर जो बुद्धिमान्हैं सो आपको पहिचाननेवाला होता है ताते जब वह अपनी स्तुति सुनता है तब अधिक आधीनचित्त होजाताहै २ तात्पर्य यह कि जब कहने और सुननेवाला इन षट् पापोंसे

रहित होवे तब स्तुति करनी भी प्रमाण होती है और अपने मुखसे अपनी स्तुति करनी तो महानीचता है और धर्मशास्त्र विषे भी निंद्य कही है ताते जिज्ञासु को चाहिये कि जब कोई इसकी स्तुति करे तब अपनी महिमा सुनकर अभिमानी न होवे, और ऐसे जाने कि जबलग मैं परलोक के दुःखसे मुक्त न होऊं तबलग मूर्ख और श्वानभी मुझसे भले हैं ताते चाहिये कि अपनी स्तुति सुनकर लज्जावान् होवे और अपनी नीचता को वर्णन करे, इसीपर एक वार्त्ता है कि कोई पुरुष एक सन्त की स्तुति करनेलगा तब वह सन्त आधीनचित्त होकर भगवत् के आगे प्रार्थना करके कहने लगा कि हे महाराज ! यह पुरुष तो मुझको नहीं जानता और तू भली प्रकार सब कुछ जानता है ताते तूही मुझको क्षमाकर, बहुरि एक और सन्त की किसीने स्तुति करी थी तब वह सन्त कहनेलगा कि हे महाराज ! यह जो मेरी बड़ाई करता है सो इसका दण्ड मुझको न देना और यह जो मेरे अवगुणों को नहीं जानता सो अवगुणभी तूही दूरकर और जैसा यह मुझको जानता है सो अपनी दया करके इससे विशेष मुझको कर, बहुरि एक पुरुष ऐसा था कि उसके हृदय विषे प्रीति प्रतीति कुछ न थी पर सम्मुख आकर एक सन्तजन की कपट सहित स्तुति करनेलगा तब उस सन्तने कहा कि जैसे तू मुखसे कहता है तिससे हम अति नीच हैं और जैसा तू हृदय विषे जानता है तिससे हम निस्सन्देह अधिक हैं ५ ॥

चौथा सर्ग ॥

क्रोध और ईर्षा और शान्ति के वर्णन में ॥

ताते जान तू कि यह क्रोध भी महा मलीन स्वभाव है और क्रोध का बीज अग्नि है पर यह क्रोधरूपी ऐसी अग्नि है कि केवल हृदय को जलानेवाली है और क्रोध करके ऐसी विकलता उपजती है कि फिर कभी शान्तिको प्राप्त नहीं होता और सब करतूतों का फल शान्ति है इसीपर एक जिज्ञासु ने महापुरुषों से पूछाथा कि भगवत् के कोपसे क्योंकर मुक्त होऊं तब उन्होंने कहा कि जब तू किसी पर क्रोधवान् न होवे तब तू महाराजके कोपसे मुक्त होवेगा बहुरि उस जिज्ञासु ने पूछा कि मुझको कोई ऐसी करतूत बताओ जिस विषे क्रिया तो थोड़ी होवे और फल जिसका विशेष होवे तब उन्होंने कहा कि नम्रता सहित होनाही अधिक फलदायक है और क्रिया इस की थोड़ी है और महापुरुषों

योंभी कहा है कि जैसे गहद को खटाई बिगाड़ देती है तैसेही क्रोध करके धर्म नष्ट होजाता है तात्पर्य्य यह कि यद्यपि अत्यन्त निष्क्रोध होना कठिन है तोभी जिज्ञासुको यह तो अवश्यही चाहिये कि यत्न करके क्रोध का सहारना करे और जिन पुरुषों ने क्रोध को धैर्य्य करके जीता है तिनकी भगवत्ने भी प्रशंसा करी है और योंभी कहा है कि विचारकी मर्य्याद से रहित होकर क्रोध करना भी नरक का द्वार है ताते अपने क्रोध को भक्षण करनाही सर्व आहारों से विशेष है बहुरि कई एक सन्तजनोंने मिलकर यही सिद्धान्त दृढ़ कियाहै कि क्रोधके समय धैर्य्यवान् होना और लोभके अवसरविषे संतोष करना सर्व करतूतों से विशेष है इसीपर एक वार्त्ता है कि एक बड़े ऐश्वर्यवान् सन्त थे सो कोईदुष्ट आकर उन को दुर्वचन कहनेलगा पर वह अपना शीश नीचे करके मौन कररहे बहुरि उस दुष्टसे कहनेलगे कि तू हमको क्रोधवान् किया चाहता है और मनके छलविषे डारना चाहता है सो मैं तो ऐसा न करूंगा पर ऐसा जान तू कि भगवत्ने यह क्रोध भी इस निमित्त रचा है कि मनुष्य का शस्त्र होवेगा और इस शस्त्र करके शत्रुओं का नाश करेगा और शरीर की रक्षा विषे सावधान होवेगा जैसे भूख और प्यास इस निमित्त रची है कि जल और आहारको सेवकर शरीर की पुष्टता होवे ताते प्रसिद्ध हुआ कि चाह और क्रोध दोनों इस मनुष्यके शस्त्रहैं पर जब मर्य्यादसे अधिक बढ़ते हैं तब यह दोनोंही दुःखदायक होते हैं ताते जब क्रोधरूपी अग्नि हृदयविषे प्रबल होतीहै तब इसका धुआं सर्व शरीरविषे पसर जाताहै बहुरि बुद्धि और विचारको अन्धकार करलेताहै ताते भलाई और बुराईको नहीं पहिंचानता इसीकारण से कहाहै कि क्रोध बुद्धि का शत्रु है और महामलीन स्वभाव यही है पर जब यह क्रोध मूलही से नष्ट होजावे तब कुमार्ग और पापकर्मों की ग्लानि दूर होजाती है ताते चाहिये कि यह क्रोध मर्य्यादही पर रहै अधिक न होवे और अत्यन्त शून्य भी न होजावे और सर्वदा धर्मकी मर्य्यादविषे वर्ते तो भलाहै तात्पर्य्य यह कि जैसे आगे पीछे वर्णन किया कि अत्यन्त निष्क्रोध होना भी कठिन है पर तोभी कई अवसरोंविषे ऐसा लीन होताहै कि जानाही नहीं जाता सो इसका बखान यह है कि क्रोध का कारण मनोरथ है जब इस की प्रियतम वस्तुको कोई लिया चाहताहै तब शीघ्रही क्रोध उपज आता है और जिस पदार्थ विषे इसका मनोरथ कुछ नहीं होता तिसके छुड़ाने विषे क्रोध भी

नहीं उपजता, यद्यपि जबलग यह जीव देहाभिमानी है तबलग आहार और वस्त्र और स्थान के प्रयोजन से मुक्त नहीं होसकता इसी कारण से जब कोई इन पदार्थों को हरलेना चाहता है तब निस्सन्देह इसको क्रोध उपजता है वाते यदि दृढ़ हुआ कि प्रयोजन ही बन्धन रूप है और प्रयोजन से रहित होना ही मुक्त है इसी कारण से जब जिज्ञासु पुरुषार्थ करके पदार्थों की तृष्णा को घटावे और पुनः मानादिकों की अभिलाष से रहित होवे तब क्रोध भी स्वाभाविकही घटजाता है जैसे कोई प्राणी पुरुष का सन्मान नहीं करता तब उसको अवश्यही क्रोध उपजता है और जब कोई निर्मान पुरुष के आगे होकर चले अथवा अधिक आदर न करे तो भी वह तिसको बुरा नहीं लगता है सो यद्यपि लोगों की अवस्था विशेष कुछ होता है तोभी धन और मान की अधिकता विषे क्रोध भी अधिक होता है तात्पर्य यह कि पदार्थ के वैराग्य और यत्न और अभ्यास करके क्रोध ही क्षीण हो जाता है पर मूलही से नष्ट नहीं होता और जब क्रोध विचार की मर्यादा से अधिक न होवे तब उसका दोष भी कुछ नहीं इसीपर महापुरुषने कहा है कि मैं भी और मनुष्यों की नाईं क्रोध करता हूं अथवा कुछ ताड़ना देता हूं तो भी मेरे हाथ से दुःख उत्पन्न नहीं होता और वह क्रोध भी उसकी भलाई के निमित्त करता हूं और एक और सन्तने भी कहा है कि जब मैं क्रोधवान् होता हूं तब भी मेरी जिह्वा से यथार्थ वचन निकसता है पर ऐसे जान तू कि जिनने पुरुषों को ऐसी अवस्था भी होती है कि सब कार्यों का कर्ता भगवत् ही को देखते हैं तब इसकारणे भी क्रोध क्षीण होजाता है जैसे कोई इस पुरुष के पाथर मारे तब यह पाथर पर रंचक मात्र भी क्रोधवान् नहीं होता और उस दुःख का कारण पाथर को नहीं जानता अथवा जब राजा किसी पुरुष के मारने के निमित्त चिट्ठी लिखदेवे तब उस पुरुष को कलम पर क्रोध कुछ नहीं उपजता काहे से कि कलम को राजा के हाथमें पराधीन देखता है तैसेही जिन पुरुषों ने भगवान् के सामर्थ्य को निश्चय जाना है तब वे सर्व जीवों को पराधीन देखते हैं और सबका प्रेरक भगवत् को जानते हैं तो किसी पर क्रोध नहीं करते इस करके कि यद्यपि कर्मों का कारण यत्न है और यत्न का कारण श्रद्धा है पर इस मनुष्य की श्रद्धा इसके आधीन नहीं वह श्रद्धा भगवत् ही की प्रेरणा से उपजती है इसी कारण से भक्तजनों ने कहा है कि यह मनुष्य भी पत्थर और कलम की नाईं पराधीन है और यत्न से कर्म करना यह मनुष्य ही का दिखाता है

तौभी आप करके समर्थ कुछ नहीं सो जिन पुरुषों की ऐसी समझ दृढ़ हुई है तब वे किसीपर रोष नहीं करते और क्रोधवान् भी नहीं होते और यद्यपि दुःख करके दुःखीभी होते हैं तौभी उनको क्रोध नहीं उपजता काहेसे कि दुःख और है और क्रोध और है, जैसे अज्ञानकरी किसीका पशु मरजावे तब शोककरके वह दुःखी तो होता है पर किसीपर क्रोध नहीं करता पर इसप्रकार सर्व जीवोंको पराधीन देखना और सर्वदा ऐसीसमझ विषे स्थित रहना महाकठिन है काहेसे कि यद्यपि कभी बिजली की नाईं इस अवस्थाका चमत्कार होता है तौभी स्थूलता की प्रबलताकरके बहुरि विक्षेप होजाता है पर जब ऐसी अवस्थाको प्राप्त न होवे तौभी कितने जिज्ञासुओंका अभ्यास परमार्थ विषे ऐसा दृढ़ होता है कि उनको कदाचित् क्रोध नहीं फुरता जैसे एक सन्तको किसीने दुर्वचन कहाथा तब उन्होंने इसप्रकार कहा कि जो मैं परलोक के दुःख से निवृत्त हुआ तब तो तेरे कहनेका भय कुछ नहीं और जब मैं परलोकविषे दुःखको प्राप्तहुआ तो तेरे कहनेसे भी अधिक नीचहूं तब तेरे कहनेका क्या संशयहै बहुरि एक और संतको किसीने दुर्वचन कहाथा तब उसने कहा कि मेरे परम सुखविषे कितनेही कठिन घाटियां हैं और मैं उनसे उल्लंघित हुआ चाहताहूं सो जब मैं उन घाटियों से उल्लंघित हुआ तो तेरे कहनेका मुझको भय कुछ नहीं और जब मैं उनसे उल्लंघित न हुआ तब जैसा तू मुझको कहताहै सो इससे भी मैं अधिक नीचहूं बहुरि एक और सन्तको कोई दुर्वचन कहताभया तब उन्हों ने कहा कि हे भाई! जितने हमारे अवगुण हैं सो तेरे जानने से अतिगुप्तहैं और अमर्यादहैं तात्पर्य यह कि जिज्ञासु वैराग्य और अभ्यास विषे ऐसे लीन हुये हैं कि उनको क्रोध की चिन्तवनीही कुछ नहीं रही जैसे एक प्रीतिमान् से किसी स्त्रीने कहाथा कि तू बड़ा कपटीहै तब वह कहनेलगा कि तैंने मुझको भलीप्रकार पहिंचानाहै बहुरि एक और प्रीतिमान् को किसीने दुर्वचन कहाथा तब वह कहनेलगा कि जो तू सत्य कहताहै तो यह अवज्ञा भगवत् हमको क्षमाकरे और जब तू झूठ कहता है तब मुझको भगवत् सहायतादेवे ताते प्रसिद्ध हुआ कि इसीते वैराग्य करके क्रोध जीताजाताहै और जब किसी पुरुषको ऐसी दृढ़ता होवे कि क्रोधसे रहित होने को भगवत् प्रियतम रखताहै तब वह भी भगवत्की प्रसन्नता के निमित्त क्रोध से रहित होताहै जैसे किसी मनुष्यका कोई प्रियतम होवे और उस प्रियतमका

,पिता अथवा पुत्र उसको दण्डकरे और भी वहमनुष्य ऐसा जाने कि मेरा पिता गही मुझको ताड़ना करताहै तब उसको पितेको अधिककरनेकरके ताड़नाम द् नहीं कुछ नहीं भासता और रंचकमात्र भी क्रोधवान् नहीं होता ताते जिज्ञासु को चाहिये कि किसी ऐसेही कार्य्यविषे लीनहोकर क्रोधसे रहितहोवे और जब ऐसा पुरुषार्थ न होसके तोभी चाहिये कि क्रोधको प्रबलता को क्षीणकरे अर्थ यह कि यद्यपि क्रोधको मूलही से नष्ट न करसके तौभी यत्न करके बुद्धि और सन्तजनों की मर्य्यादसे उल्लंघन होनेदेवे काहेसे कि यह क्रोधही निस्सन्देह बहुत जीवोंको नरकगामी करता है और अनेक विघ्नोंको कारकहै ताते इसको जीतनेका उपाय करना अवश्यही प्रमाणहै पर इसका उपाय भी दोप्रकार कहा है सो एक तो ऐसा उत्तमहै कि क्रोधको निर्मूलि यत्न करके हृदयको शुद्धकरदेना है और दूसरा उपाय मध्यमहै सो यत्न करके क्रोधको निर्बल करना है पर उत्तम उपाय यह है कि प्रथम क्रोधके कारणों को विचार और उसको मूलहीसे उखाड़डाले सो क्रोधके कारण चार हैं प्रथम कारण अभिमान है कि अभिमानी पुरुष किसीकेही वचन और निरादर करके क्रोधवान् होजाताहै ताते इसको उपाय दीनता है काहेसे कि सबही जीव भगवत् के उत्पन्न कियेहुये हैं और एक समान हैं और जो किसीको विशेष कहाजाताहै तो शुभ गुणोंकरके विशेषता होती है सो अभिमान करना महापापिन स्वभाव है और दीनताका कारणहै २ बहुरि दूसरा कारण क्रोधका यहहै कि हास्यरस से भी क्रोध उपजता है सो इसका उपाय यहहै कि जिज्ञासु सर्वदा परलोकके कार्य्य विषे तत्परहोवे और शुभगुणोंके पानेको विचार राखे और वाद विवाद हास्य से भिन्नरहे और मनको ऐसे समझावे कि जो कोई किसीको इसलोक विषे हँसताहै सो पर लोक विषे उससे भी लज्जित करते हैं ३ बहुरि तीसरा कारण यह है कि जब कोई इसकी निन्दा करता है अथवा इसपर कुछ दोष लगाताहै सो भी दोनोंओर से क्रोध उपजता है सो इसका उपाय यहहै कि आपको निर्दोष न जाने और इसप्रकार समझे कि मैं तो अवगुणोंकरके आपूर्ण हौं किसीपर क्रोधवान् क्यों होताहौं और यद्यपि मेरे विषे अवगुण कोई नहीं पर किसीको निन्दाको सुझको सन्ताप क्याहै ४ बहुरि चौथा कारण क्रोधका तृष्णा और ईर्षा है काहेसे कि जो कोई मनुष्य से जब कोई पदार्थ देनेवाले याचना मांगताहै सो जो न मिले तो

होताहै और जब कोई लोभी पुरुषको धनको ही न देवे तोभी दुःखको प्राप्त होता है सो यह सबही मलिन स्वभावहै और इसका उपाय यहहै कि तृष्णा केविघ्नको पहिचाने कि तृष्णावान् पुरुष इसलोक विषे भी दुःखी रहताहै और परलोक विषे भी नरकों को भोगताहै ताते चाहिये कि तृष्णाको हृदय से दूरकरे और ऐसे मलिन स्वभावों के साथ विरुद्ध करके आत्मधर्म विषे सावधान होवे॥ ४ बहुरि पाचवां कारण यहहै कि क्रोधवानों की संगति से भी क्रोध उपजताहै और वह मनुष्य ऐसे मूर्ख होते हैं कि क्रोधकी अधिकता को अपना पुरुषार्थ समझते हैं और इसप्रकार कहते हैं कि हमने ताड़ना करके अमुक पुरुषको जीतलिया और अमुक सन्तने एकही शापकरके अमुक मनुष्यको भस्म करडाला उसका धन और गृह सबही नष्ट करदिया बहुरि ऐसे कहते हैं कि बलवान् पुरुषों का लक्षण यही है कि जो उनके सम्मुख बोलताहै तिसका नाश होताहै पर ऐसे कहनेवाले मनुष्य ऐसे मूर्ख हैं कि जिस क्रोधको सन्तजनों ने कुकुरोंका स्वभाव कहाहै सो तिसको पुरुषार्थ और बड़ाई जानते हैं और सहनशीलता जो महापुरुषों का लक्षण है तिसको बलहीनता कहते हैं सो यह मलिन मनकी प्रकृति है कि बुराईको बलकरके सुन्दरकर दिखाताहै और शुभगुणोंको कुरूपकर दिखाताहै पर जो बुद्धिमान् पुरुष है सो तिसप्रतिद्ध इसप्रकार समझता है कि जब क्रोधही का नाम पुरुषार्थ होवा तब स्त्रियों और रोगी और वृद्ध पुरुषों को तो अधिक क्रोध होवाहै ताते जगत् विषे इन्हीं की विशेषता होती तात्पर्य यह कि अपने क्रोधको जीतनाही पुरुषार्थ है और महापुरुषों का लक्षण भी यहीहै बहुरि क्रोधवान् पुरुष जंगली मनुष्यों की नाई हैं अर्थात् यद्यपि देखने में मनुष्य भासते हैं तोभी सिंह और व्याघ्रों का स्वरूपहैं ताते तू विचार करके देख कि महापुरुषों के लक्षणोंका नाम पुरुषार्थ है कि पशुओं और मूर्खों के स्वभावका नाम पुरुषार्थ है॥ अगर यह जो उपाय मैंने पचकारण निवारणवाला वर्णन किया है सो यह उत्तम उपाय है काहेते कि इस करके क्रोध मूलही से नष्ट होता है और अधम उपाय यह है कि इस करके क्रोधरूपी कोप हृदय पनहीन होजाता है पर मूल हीसे दूर नहीं होता सो यह उपाय भी कुफरूरी मिठाई और टरूपी कटुता के मिलाप करके औषध जो बनाई जाती तिस करके होता है काहेते कि सबही भले स्वभाव धर्म और कानून की युक्तता करके होते हैं पर कुफ यह है कि

पिता अथवा पुत्र उसको दण्डकरै और भी वहमनुष्य ऐसा जानै कि मेरा मित्र तबही मुझको ताड़ना करताहै तब उसको प्रीतिकी अधिकताकरके तीड़नाका दुःखही कुछ नहीं भासता और रंचकमात्र भी क्रोधवान् नहीं होता तातें जिज्ञासु को चाहिये कि किसी ऐसेही कार्य्यविषे लीनहोकरके क्रोधसे रहितहोवै और जब ऐसा पुरुषार्थ न होसके तोभी चाहिये कि क्रोधकी प्रबलता को क्षीणकरै और यह कि यद्यपि क्रोधको मूलही से नहीं निकालसकै तौभी यत्न करके बुद्धि और सन्तजनों की मर्य्यादमे उल्लङ्घन नहीं होनेदेवे काहेसे कि यह क्रोधही निस्सन्देह बहुत जीवोंको नरकगामी करता है और अनेक विघ्नोंका कारणहै तातें इसके जीतनेका उपाय करना अवश्यही प्रमाणहै पर इसका उपायभी दोप्रकार कहा है सो एक तो ऐसा उत्तमहै कि क्रोधको नखशिख पर्य्यन्त चूर करके हृदय को शुद्धकरदेता है और दूसरा उपाय मध्यमहै सो यत्न करके क्रोधको निर्बल करता है पर उत्तम उपाय यह है कि प्रथम क्रोधके कारण को विचारै और उसको मूलहीसे उखाड़डाले सो क्रोधके कारण चार हैं प्रथम कारण अभिमान है कि अभिमानी पुरुष किञ्चित्ही वचन और निरादरकरके क्रोधवान् होजाताहै तातें इसका उपाय दीनता है काहेसे कि सबही जीव भगवत् के उत्पन्न कियेहुये हैं और एक समान हैं और जो किसीको विशेष कहाजाताहै तो शुभ गुणोंकरके विशेषता होती है सो अभिमान करना महामलिन स्वभाव है और नीचताका कारणहै ॥ बहुरि दूसरा कारण क्रोधका यहहै कि हास्यरस से भी क्रोध उपजता है सो इसका उपाय यहहै कि जिज्ञासु सर्व्वदा परलोकके कार्य्य विषे स्थितहोवे और शुभगुणोंके पानेका विचार राखे और वादविवाद हास्य से विरक्तरहै और आपको ऐसे समझावे कि जब कोई जीवोंको इसलोकके विषे हँसताहै तब पर लोक विषे उसको भी लज्जित करते हैं ॥ बहुरि तीसरा कारण यहहै कि जब कोई इसकी निन्दा करता है अथवा इसपर कुछ दोष रखताहै तोभी दोनों ओर से क्रोध उपजता है सो इसका उपाय यहहै कि आपको निर्दोष न जाने और इसप्रकार समझे कि मैं तो अवगुणोंकरके भरपूर हूं तातें किसीपर क्रोधवान् क्यों होताहूं और यद्यपि मेरे विषे अवगुण कोई नहीं तब किसीकी निन्दाका मुझको भय क्याहै ॥ बहुरि चौथा कारण क्रोधका तृष्णा और लोभ है काहेसे कि लोभी मनुष्य से जब कोई एकदाम हरलेताहै अथवा मांगताहै तोभी क्रोधवान्

होताहै और जब कोई लोभी पुरुषको अन्न कौड़ी न देवे तौभी दुःखको प्राप्त होता है सो यह सबही मलिन स्वभावहैं और इसका उपाय यहहै कि तृष्णा के विघ्नको पहिचाने कि तृष्णावान पुरुष इसलोक विषे भी दुःखी रहताहै और परलोक विषे भी नर्क दुःखों को भोगताहै ताते चाहिये कि तृष्णाको हृदय से दूरकरे और ऐसे मलिन स्वभावों के साथ विरुद्ध करके आत्मधर्म्म विषे सावधान होवे ॥ ५ ॥ बहुरि पांचवां कारण यहहै कि क्रोधवानों की संगति से भी क्रोध उपजताहै और वह मनुष्य ऐसे मूर्ख होते हैं कि क्रोधकी अधिकता को अपना पुरुषार्थ समझते हैं और इसप्रकार कहते हैं कि हमने ताड़ना करके अमुक पुरुषको जीतलिया और अमुक सन्तने क्रोधही से शाप करके अमुक मनुष्यको भस्म करडाला उसका धन और गृह सबही नष्ट करदिया बहुरि ऐसे कहते हैं कि बलवान् पुरुषों का लक्षण यही है कि जो उनके सम्मुख बोलताहै तिसका नाश होताहै पर ऐसे कहनेवाले मनुष्य ऐसे मूर्ख हैं कि जिस क्रोधको सन्तजनों ने कुकरों का स्वभाव कहाहै सो तिसको पुरुषार्थ और बड़ाई जानते हैं और सहनशीलता जो महापुरुषों का लक्षण है तिसको बलहीनता कहते हैं सो यह मलिन मनकी प्रकृति है कि बुराईको बदलकरके सुन्दरकर दिखाताहै और शुभ गुणोंको कुरूपकर दिखाताहै पर जो बुद्धिमान् पुरुष हैं सो तिनप्रति इसप्रकार समझाता है कि जब क्रोधही का नाम पुरुषार्थ होता तब स्त्रियों और रोगी और वृद्ध पुरुषों को तो अधिक क्रोध होताहै ताते जगत् विषे इन्हीं की विशेषता होती तात्पर्य्य यह कि अपने क्रोधको जीतनाही पुरुषार्थ है और महापुरुषों का लक्षण भी यहीहै बहुरि क्रोधवान् पुरुष जंगली मनुष्यों की नाईं है अर्थात् यद्यपि देखने में मनुष्य भासते हैं तोभी सिंह और व्याघ्रों का स्वरूपहै ताते तू विचार करके देख कि महापुरुषों के लक्षणोंका नाम पुरुषार्थ है कि पशुओं और मूर्खों के स्वभावका नाम पुरुषार्थ है ॥ मग यहजो उपाय मैंने पञ्चप्रकारण निवारणवाला वर्णन किया है सो यह उत्तम उपाय है काहेते कि इसप्रकार के क्रोध मूलही में नष्ट होता है और अन्य उपाय यह है कि इस प्रकार के क्रोधरूपी कुरोग कुछ मनहीन होजाता है पर मूलहीमे दूर नहीं होता सो यह उपाय भी बूझनी मिठाई और हृदरूपी कटुता के मिलाप करके औषध जोंसमाई जाने जिस करके होता है काहे से कि सबही भले स्वभाव बूझ और करतन की एकभूता करके होते हैं पर बूझगट है कि

जितने वचन क्रोध की निन्दा और सहनशीलता की विशेषता विषे आये हैं सो वारंवार उनका विचार करे और आपको इसप्रकार समझावे कि जैसे तू प्रबल होकर अनाथ पर क्रोध करताहै सो इसमें अधिक भगवत् तेरे ऊपर पूजा है तांते जब तू किसी के ऊपर क्रोध करेगा तब तेरे ऊपर भगवत् भी क्रोधवान् होवेगा इसीपर एक वार्ता है कि महापुरुष के टहलुवेने कुछ अवज्ञा कर्याथी तब महापुरुषने उस से कहा कि जो परलोक का भय न होता तो तुझ को ताड़ना करता बहुरि इसप्रकार समझे कि मैं इस निमित्त क्रोधवान् होता हूं कि जो भगवत् की इच्छानुसार कार्य्य हुआहै और मेरी इच्छानुसार नहीं हुआ सो यह तो महाराज के साथ विरुद्ध होता है पर जब ऐसी बूझकरके भी क्रोधका बल क्षीण न होवे तब इसी संसारके प्रयोजन को विचारे और इसप्रकार क्रोधको खण्डन करे कि जब मैं किसी पर क्रोध करूंगा तब वह भी मेरे साथ विरुद्ध किया चाहेगा और अपने शत्रुको अल्प जानना न चाहिये और क्रोधके समय जो मनुष्योंका स्वरूप कूकुर की नाई होजाताहै सो तिस भयानक आकारको स्मरणकरे तातें चाहिये कि ऐसे मलिन स्वभावको त्याग कर क्षमा और धैर्य्य जो सन्तजनों के स्वभाव और लक्षण हैं तिनको ग्रहणकरे और जगत् के मनको त्यागकर महाराजही की प्रसन्नता को चाहे सो इसप्रकार आप को समझावना ही परमब्रह्म है और क्रोधके जीतने का उपायहै पर करतूत करके इसप्रकार उपाय होताहै कि जब क्रोधकी अधिकता देखे तब मुख से ऐसा कहे कि हे भगवन् इस क्रोधरूप दुष्टसे मेरी रक्षाकर बहुरि जो क्रोधकी प्रबलताके समय खड़ा होवे तो बैठजावे और जब आगेही बैठा होवे तब शयन कर रहे अथवा शीतल जल से स्नान करलेवे तब स्वाभाविकही क्रोधका बल क्षीण होजाताहै इसीपर महापुरुष नेभी कहाहै कि जब इस मनुष्य पर क्रोध प्रबलहोवे तब चाहिये कि महाराज को दण्डवत् करे और अपने मस्तकको धरती पर राखे बहुरि इसप्रकार विचार करे कि मैं धरतीही से उत्पन्न हुआहूं तातें मुझ को क्रोध करना प्रमाण नहीं तात्पर्य्य यह कि जब कोई इसको दुखावे अथवा दुर्वचन कहे तब प्रथम तो क्षमाकरनी विशेष है औ जब देखे कि अवश्यही कुछ कहनेहीका अवसर है तब थोड़ाही उत्तर देवे और यद्यपि कठोर वचन कहे तोभी झूठ न बोले पर जिज्ञासु को इस प्रकार प्रमाण नहीं कि दुर्वचन के उत्तर आपभी दुर्वचन करे

औरनिंदा करनेवाले की आप भी निन्दाकरे सो यह सहनशीलता नहीं होती इसीपर एक वार्त्ता है कि एक प्रीतिमान्‌को कोई दुष्ट दुर्वचन कहतायाऔर महापुरुषभी पास बैठेहुयेथे बहुरि जब वह प्रीतिमान्‌ उस दुष्टसे कुछ बोलनेलगा तब महापुरुष उठ खड़े हुये बहुरि उस प्रीतिमान्‌ने पूंछा कि हे स्वामीजी! जब वह दुष्ट मुझको दुर्वचन कहता था तब तो आप बैठे रहे और जब मैं बोलनेलगा तब किस निमित्त उठ चले तब महापुरुषने कहा कि जबलग तू मौनकर रहा था तब लग तेरे निमित्त देवता उसको उत्तर देतेथे और जब तू बोलने लगा तब क्रोधरूपी असुर आवता भया ताते असुरों की संगति का त्यागना प्रमाण है बहुरि महापुरुषनेयोंभी कहाहै कि मनुष्यों की अवस्था भगवत्‌ने भिन्न भिन्न रची है इसीकारण से केते मनुष्य चिरकाल करके क्रोधवान् होतेहैं और चिरकाल करके ही प्रसन्न होते हैं और केते पुरुष शीघ्रही क्रोधवान् होते हैं और शीघ्रही प्रसन्न होजाते हैं सो महाउत्तम जन हैं पर ऐसे जान तू कि जब क्रोधको विचार और धैर्य करके लीन करलेवे तो यह तो महाविशेष है और जब यह पुरुष किसी संयोग अथवा अपनी निर्बलता करके क्रोध न करे और हृदय विषे क्षोभवान् रहे तब इस करके चित्तविषे क्रोधकी गांठ पड़जाती है सो यह महानिन्द्य है इसीपर महापुरुष ने कहा है कि जिज्ञासुजन हृदय विषे क्रोधकी गांठ नहीं रखने वाले प्रसिद्ध हुआ कि यह गांठभी क्रोधकी सन्तानहै और इस क्षोभकी गांठके आठ पुत्र और हैं सो सब धर्म के नाशक हैं सो प्रथम ईर्षा है जो अपने शत्रुका सुख देखकर तपायमान होताहै १ और दूसरा वैरभाव है कि जब अपने शत्रु को कोई दुःख देवे तब प्रसन्न होकर उस दुःखका बखान करताहै २ बहुरि तीसरा यहहै कि क्रोधकरके उसके साथ राम राम भी नहीं करता ३ और चौथा यहहै कि अपने शत्रुको ग्लानि सहित देखताहै ४ और पांचवां उसको दुर्वचन बोलताहै ५ और छठवां उसके छिद्र को लोगों में प्रसिद्ध करता है ६ और सातवां उसका घात चितवताहै ७ और आठवां उसके किसी कार्य्य विषे सहायता नहीं करता और यद्यपि उसका ऋणी होवे तोभी दीर्घता करके विमुख रहताहै पर जब कोई ऐसा ही बुद्धिमान्‌ होवे कि इन विकारों से आपको बचाय रखे तोभी शत्रु का उपकार करना तो महाकठिन होताहै बहुरि प्यार और मिलाप और सहायता और उसकी भलाईका वर्णन नहीं करसक्ता ८ सो यह सबही स्वभाव चित्तको मलिन

करनेवाले हैं इसी परऐक वार्ता है कि एक मनुष्य महापुरुष की रसोई करनेवाला था सो महापुरुष की स्त्री को दुर्वचन कहता भया बहुरि महापुरुष की स्त्री के पिता उस रसोइया के घर नाना वस्त्रादिक की सीमि जेने ये सो लेय जहां ते सुन्ता कि मेरी पुत्री को इसने दुर्वचन कहा है तिन कोधयुक्त महाराज की दुहाई देकर कहते भये कि फिर मैं तेरी जीविका की सुधि न लेऊंगा सो जब महापुरुष ते सह वार्ता सुनी तब कहने लगे कि मुझको भगवत ने इसप्रकार आज्ञा करी है कि जब कोई तुम्हारी अवज्ञा करे तब तुम क्षमा करो और दुहाई करके इसप्रकार न कहो कि महाराज में इसके साथ भलाई न करूंगा वार्ता यह है कि जिसके कारण इस पुरुष का जीवन होता था तिस का हित चाहिये कि यह भाव हुआ और जिस कारण कोष करके क्रोधी वचन उसके साथ भाव और भलाई करें महात्मा सो यह उत्तम पुरुषों की अवस्था है और जब शत्रु के साथ भलाई न करे और बैर करना तो भी इस महात्मा चाहिये कि शत्रु को किसी प्रकार दुखावे नहीं सो यह मध्यम पुरुषों की अवस्था है और शत्रु के साथ दुःख करना यह जो संसारी जीवों का कर्म है और महानीच अवस्था है ताते प्रसिद्ध हुआ कि शत्रु के साथ भलाई करनी विशेष है और महाउत्तम करत रहे और जो ऐसा न हो सके तो क्षमा करनी विशेष है इसी पर महापुरुषों ने भगवत की दुहाई देकर कहा है कि दान देने करके धन की क्षीणता कदाचित् नहीं होती और सर्व दोष क्षमा करनेवाले पुरुष को अंतर बाहर निर्विघ्न हो प्राप्त होती है और क्षमा करने वाले पुरुष के ऊपर महाराज भी निस्सन्देह क्षमा करते हैं बहुरि महापुरुष की स्त्री ने भी कहा है कि मैंने महापुरुष को अपने निमित्त दण्ड करते हुये कदाचित् नहीं देखा परन्तु जब केवल धर्म ही का प्रयोजन होता था तब वाकरता भी करते थे बहुरि यों भी कहा है कि मैंने लोक परलोक विषे उत्तम कर्म यही देखा है कि वैरी के साथ भलाई करनी और दुःख देनेवाले को सुख देना और महापुरुष ने कहा है कि जो भेरे अर्थ करके मलके होते हुये किसी की अवज्ञा को क्षमा करते हैं सो सर्वदा मेरे निकटवर्ती हैं और मुझको अधिक प्रिय लगते हैं इसी पर एक वार्ता है कि एक संत की समीपी किसी चोर ने पैदायली थी तिस निमित्त संत रुदन करते लगे बहुरि लोगों ने पूछा कि तुम धन के निमित्त रोते हो तब उसने कहा कि मुझको धन का शोक तो कुछ नहीं पर मैं इस निमित्त रोता हूं कि जब परलोक में उस अनाथ चोर को पकड़कर दण्ड करेंगे तब वह बिचारा क्या उत्तर देवेगा ताते मैं

दयाकररीतिहूं बहुरि महाप्रभि दाऊदको आकाशवाणी हुई थी कि जब यह पु-
रुष अपने शत्रुकी अवज्ञाको क्षमा करताहै और नम्रतामे दृढ़होताहै तब इस
के सर्वविघ्न नष्ट होजातेहैं ताते चाहिये कि जब कोई तापजनेतो तब शीतल
चित्तहोरहे और दुःख देनेवाले पुरुषपरभी उपकार करै तबही निर्वैरहो
जाताहै इसीपर महापुरुषने अपनी स्त्रीसे कहाथा कि जिसको भगवत्ने भाव
और दयाका लक्षण दियाहै सो लोक और परलोकके सुखको भोगताहै और
जो पुरुष भाग्यहीनहै वह इसलोक और परलोकके सुखसे अभाव रहताहै ॥ अथ
प्रकट करनी ईर्षाके विघ्नोंका ॥ जानो जानतू कि क्रोधसे शत्रु उत्पन्न होताहै और
क्रोधही की गांठमे ईर्षा उपजतीहै सो ईर्षा भी जीवके धर्मको नाश करनेवाली
है इसीपर महापुरुषने कहाहै कि जैसे लकड़ियोंको अग्नि भस्मकर डालतीहै
तिसेही ईर्षा शुभ करतूतोंको जलादेतीहै बहुरि योंभी कहाहै कि दोषदृष्टि और
ईर्षासे मुक्तहोना इस पुरुषको महाकठिनहै पर इसका उपाय यहहै कि जब किसी
पर दोषदृष्टि उपजे तब उसके छिद्रको ढूंढ़ो नहीं और जिसके साथ कुछ ईर्षा
उपजने लगे तब रसना और हाथोंको अपने कर्मों से बचाय रखिये बहुरि महा-
पुरुषने अपने मित्रसे इस भांति कहाहै कि अब मैं तुम्हारे विषे ईर्षाकी
अधिकता देखताहूं सो ईर्षा करके आगेभी बहुत मनुष्योंका नाश हुआहै
ताते मैं भगवत्की दुहाई देकरके कहताहूं कि जबलग इस मनुष्यका धर्म दृढ़
नहीं होता तबलग और मुक्तिको नहीं पावता और जबलग सर्व मनुष्योंके साथ
भाव और प्रीति नहीं रखता तबलग इसका धर्मही दृढ़ नहीं होता इसीपर महा-
राजने कहाहै कि ईर्षा करनेवाला पुरुष भगवत्का विमुखहै कि जिसको मैं कुछ देता
हूं सो तिसका शत्रु होताहै और जिसप्रकार जीवोंकी मैंने रचना रचीहै सो
तिसको भला नहीं जानता और महापुरुषनेभी कहाहै कि षट्प्रकारके पुरु
मृहि स्वभाव करके स्वाभाविकही नरकके विषे चले जावेंगे सो राजा अन्याय क
रके १ और सिपाहीलोग कठोरता करके २ और धनवान् अभिमान करके ३ और
व्यवहारी लोग छल करके ४ और जगतके लोग मूर्खता करके ५ और विद्यावान्
ईर्षा करके नरकगामी होवेंगे ६ बहुरि एक भक्तने कहाहै कि मैं किसी की ईर्षा
नहीं करता काहेसे कि जब मैं परलोकके विषे मुक्तको प्राप्त हुआ तब यह स्वर्ग
सुख तिलमात्र है जो इसकी ईर्षा करूं और जब मुझको नरकगामी होना

है तब संसारों के सुखों को भोगकर कब लग सुखी होऊंगा ॥ अब प्रकट करना रूप ईर्षा का ॥ ऐसा जान तू कि जब किसी मनुष्य को सुख प्राप्त होवे और उसके सुखको देखकर तपायमान होवे और उसके सुखको नाश हुआ चाहे तब इसही का नाम ईर्षा है सो यह महामलिन स्वभाव है काहे से कि भगवत् की आज्ञा के साथ विरुद्ध होता है और यह बड़ी मूर्खता है कि तुझ को कुछ लाभ न होवे और दूसरे की हानि चाहे सो यह हृदय की मलिनता का लक्षण है ॥ और जब तू किसीका सुख देखकर अप्रसन्न होवे और उसी के समान हुआ चाहे तब इसका नाम अभिलाषा कहते हैं सो यह अभिलाषा जो धर्मकार्यों विषे होवे तब निस्सन्देह सुखका कारण है और जब भोगों के निमित्त होवे तब यह भी अपवित्र है इसीपर महापुरुष ने कहा है कि जिज्ञासु को ईर्षा करनी अयोग्य है ॥ अब इस प्रकार प्रमाण है कि जब किसी सात्त्विकी मनुष्य को शुभ करतूत विषे वर्तते देखे अथवा किसी को उदारता सहित देखे तब ऐसे चाहे कि मैं भी किसी प्रकार इस की नाईं होऊं सो यद्यपि यह पुरुष निर्धन है तो भी सात्त्विकी श्रद्धा करके भगवत् की उदारता के फलको पाता है ऐसाही जब कोई धनवान् अपने धनको पापों विषे लगाता होवे और कोई निर्धन उसको देखकर इस प्रकार चाहे कि जो मेरे पास धन होता तो मैं भी ऐसाही भोग भोगता सो ऐसी मनसा करके दोनों समान पापी होते हैं तात्पर्य यह है कि किसी की सम्पदा और सुखको देखकर ग्लानि करनी प्रमाण नहीं पर जब कोई अधर्मी राजा होवे अथवा कोई दुराचारी होवे और उसके सुखको देखकर दोषदृष्टि आवे तो प्रमाण है काहे से कि उस की सामर्थ्य के नाश होने करके पापों का नाश होता है सो इसका लक्षण यह है कि जब वह अधर्मी राजा अथवा वह दुराचारी उस पाप का त्याग करे तब उसकी सम्पदा को देखकर प्रसन्न होवे और दोषदृष्टि न राखे तब जानिये कि यह ईर्षा नहीं और यद्यपि यह ईर्षा ऐसी है कि स्वाभाविकही उस मनुष्य के हृदय विषे आन फुरती है और अपने यत्न करके इससे दूर नहीं होसकी पर जब यह पुरुष उस ईर्षा के संकल्प को महामलिन जाने और भयवान् होवे तब उस फुरने के होने करके ऐसा पाप नहीं लगता पर जब ऐसा साक्षीरूप होवे कि जो इसके शत्रु का सुख दुःख इसही के हाथ होवे तो भी उसको दुःखने का यत्न न राखे ॥ अब प्रकट करना उपाय ईर्षा का ॥ तातें जान तू कि ईर्षा भी एक दीर्घ रोग है और

इस रोगरूपको केवल इंदनही कोदुख होताहै ताते इसका उपाय भी बूझ और करतूतिके सम्बन्धकरके होसक्ताहै सो बूझ यहहै कि ईर्षाकरके लोक और परलोकविषे अपनी हानिको जाने पर इसलोक विषे इस प्रकार हानि होती है कि ईर्षा करनेवाला पुरुष सर्वदा चिन्तावान् रहता है और दुखी रहताहै और यद्यपि अपने मन विषे शत्रुका दुख चितवता है तोभी प्रथम तो आपही चिन्ताकरके जलने लगताहै ताते प्रसिद्ध हुआ कि यह ईर्षा महादुखरूपहै और महामूर्खताईकाहै मेतकि अपनेही क्रोधकरके आपको जलाताहै और शत्रुकी हानि कुछ नहीं करसक्ता इस करके कि सब किसीका सुख दुःख महाराज की आज्ञा के अधीनहै और जिस प्रकार भगवत्ने उसके सुखकी मिति राखी है सो इसके संकल्प करके न बढ़ती है न घटती है ताते प्रसिद्ध हुआ कि ईर्षा करनेवाले मनुष्य को इसीलोक विषे ईर्षा दुख देतीहै बहुरि परलोक विषे इस प्रकार दुखदायकहै कि ईर्षा करनेवाला पुरुष भगवत्की आज्ञामें विरोध करता है और भगवत् ने जो पूर्णज्ञान के साथ जीवों की प्रारब्ध रची है तिससे विमुख होताहै ताते ईर्षा करके महाराज की प्रतीति से हीन होता है बहुरि सर्व जीवोंका भी बुरा चितवताहै इसी कारण से सन्तजनों ने कहाहै कि ईर्षाकरनी मनमुखनी है और जब विचार करके देखिये तब जिसकी ईर्षा करताहै सो तिसको यह लाभ होताहै कि उसकी ईर्षा करनेवाला शत्रु इसीलोक विषे पड़ा जलता है और उसकी हानि कुछ नहीं होती बहुरि जिसकी तू ईर्षा करता है तिसको धर्मका लाभ इसप्रकार होताहै कि उसने तो तुझको नहीं दुखाया और तू उसका दुख चितवताहै ताते तेरे शुभकर्मों का फल उसीको होवेगा और उसके पापोंका फल तुझको भोगना पड़ेगा ताते जब तू विचार करके देखे तब तू इसप्रकार जाने कि तू जो उसके लौकिक सुखका नाश चाहताहै सो तेरे निमित्त करके उसके लौकिक सुखभी दूर नहीं होते और तेरी ईर्षाके सम्बन्धकरके उसको परलोकविषे भी सुख अधिक होताहै और तू इसलोकविषे भी दुखी रहताहै और परलोकके दुःखोंका बीज बोता है ताते तू अपने तिसविषे जानता है कि मैं अपना मित्र हूं और उसको शत्रु है पर जब भलीप्रकार देखे तब उसका मित्रहै और अपना शत्रु है ताते तू अपने आपही को पड़ा दुःखी करताहै और परलोकविषे सुखसे भी अप्राप्त रहता है और जो पुरुष ... की मर्यादा और सुखको देखकर ईर्षा नहीं करते और प्रसन्न होतेहैं

सो यहां भी सुखी हैं और परलोकविषे भी सुखी होवेंगे इसीपर महापुरुषने कहा है कि उत्तम पुरुष वही है जो किसीको शुभ उपदेश देदावे अथवा विद्यावानों से उपदेश सुनकर अंगीकारकरे अथवा उनको प्रसन्न राखे सो ईर्षा करनेवाला इन तीनों गुणों से अप्राप्त रहताहै ताते ईर्षा करनेवाले का दृष्टान्त यहहै कि जैसे कोई अपने शत्रुको पत्थर मारे पर इसका शत्रु तो उस पत्थरकी चोट से बच जावे और वह पत्थर उलटकर इसीके नेत्रमें लगे ताते इसका नेत्र अन्ध होजावे बहुरि अधिक क्रोध करके और पत्थर उसको मारे तब उसके चोटकर लगनेसे इसका दूसरा नेत्र भी अन्ध होजावे बहुरि और पत्थरमारे तब इसप्रकारके मी इसी का शीश फूटे तो ऐसेही बारंबार आपको घायल करतारहे और वह शत्रु इस को देखकर हँसतारहै तैसेही ईर्षा करनेवाला पुरुष अपने आपहीको दुःखी करताहै और शत्रुकी हानि कुछ नहीं करसका बहुरि जब हठ और यत्न करके शत्रु को डुबावे और उसकी निन्दाकरे तब वह तो अभिक दुःखकारी होताहै पर वृक्षका उपाय जो मैंने कहाथा सो यही है कि जिसते ईर्षाको हलाहल विष की नाईं जानाहै वह अन्यपही तिसका त्याग करताहै बहुरि करतूति करके इस प्रकार उपाय होताहै कि जिस सम्बन्ध करके ईर्षा उपजती है तिसको यत्न करके अपने हृदय से दूरकरे सो ईर्षा का बीज अभिमान और वैरभाव और मानकी प्रीतिहै ताते चाहिये कि जिज्ञासु ऐसे मलिन स्वभावों को मूलहीसे दूरकरे तब ईर्षाका बीजही नष्टहोजावे बहुरि एक यहभी उपायहै कि जब ईर्षाकरके किसी की निन्दा किया चाहे तब उसकी स्तुतिकरे और जब उसको हानि किया चाहे तब सहायता करे और जब अभिमान का अंकुर उपजने लगे तब दीनता को अंगीकारकरे सो यह भी उत्तम उपायहै कि जिसके साथ कुछ वैरभाव होवे तब सब प्रकार उसकी भलाई वर्णनकरे तो स्वाभाविकही ईर्षा दूर होजाती है पर यह मन ऐसा शत्रुहै कि जब यह पुरुष सहनशीलता करता है तब मन इसप्रकार कहने लगताहै कि जब तू सहनशील होवेगा तब लोगतुझको निर्बल जानेगा इसीकारण से कहा है कि यद्यपि मनके स्वभावको विपर्यय करना उत्तम उपायहै पर अति कठिन है अर्थात इसविषे धैर्य करना अति कठिन है पर जब जिज्ञासु की बुद्धि स्थिर होना यत्न दृढ़ होवे कि ईर्षा और क्रोध तो लोक और परलोकमें दुःखजाने और इनको त्याग करके परमसुखकी प्राप्ति देखे तब वह मन

बिनाही इस औषधी को अंगीकार करताहै काहेसे कि यद्यपि सर्व औषधी कटु और कमैली होतीहैं तौभी बुद्धिमान् पुरुष कटुताके निमित्त औषधीका त्याग नहीं करते और जो रोगी मूर्खता करके कटुताके निमित्त औषधीको त्याग देवें तब वह शीघ्रही मृत्युको प्राप्तहोताहै बहुरि ऐसा जान तू कि यह मनुष्य अपने यत्नकरके शत्रु और मित्र को समान नहीं करसक्ता काहेसे कि यह जीवहै और पराधीनहै पर तौभी इसको इतना अवश्यही चाहिये कि जो मन से ईर्षा और क्रोधको दूर न करसके तो वचन और कर्मकरके तो वैरभाव न करे और बुद्धिविषे भी इस स्वभावको मलिन जाने बहुरि इसप्रकार चाहे कि जो यह मलिनस्वभाव मेरे हृदयसे दूरहोवे तो भला है जब जिज्ञासुजन ऐसे पुरुषार्थ को प्राप्त होवे तब जानिये कि मनके संकल्प करके इसको कछुक पकड़ न होवेगी काहेसे कि इस की श्रद्धाविषे मलिनता कुछनहीं और जीवत्व करके अकस्मात् कुछेक संकल्प फुर आताहै सो वहभी विचारके बल करके दूर होजावेगा पर केते पुरुष इसप्रकार कहतेहैं कि यद्यपि हृदयविषे ईर्षाकी बुराई न जाने पर जब वचन और कर्म करके वैरभाव न करे तब मनके संकल्पों करके इसको परलोक में पकड़ कुछ नहीं होती सो यह अयोग्यहै काहेसे कि यह ईर्षा तो मनहीका कर्म है सो जब यह किसी को सुख देखकर तपायमान होवे और दुःख देखकर प्रसन्नहोवे तब इससे अधिक पाप क्याहै तातें इस पापसे तबहीं छूटे जब इस स्वभावको मलिन जाने और सर्व प्रकार इससे मुक्तहुआ चाहे तब मनसा करके वह मलिन संकल्प दूर होजाताहै पर शत्रु और मित्रकी सम्पूर्ण समानता तबहीं होती है जब इस पुरुषको एकता की अवस्था प्राप्तहोजावे अर्थ यह कि सर्व जीवोंको पराधीन देखे और सर्व कर्मोंका कर्त्ता भगवतही को जाने सो यह अवस्था महा दुर्लभ है और यद्यपि किसी समयविषे बिजलीवत् चमत्कार दिखातीहै तौभी सर्वदा स्थिर नहीं रहती और जिन्हों ने ऐसे परमपद विषे स्थिति पाईहै ते भी विरलेही सन्तजन हैं ॥

पांचवांसर्ग ॥

मायाकी प्रीति और तृष्णाकी निषेधता के वर्णन में ॥

तातें जान तू कि यह माया सर्व विघ्नों का मूल है और इसकी प्रीति सर्व पापोंका बीज है बहुरि यह माया कैसी है कि भगवत् के मिलनेवालों की वैरिणी है और जो महाराज से विमुख हैं तिनकी भी शत्रु है पर भगवत् के मिलनेवालों की

इस प्रकार की रीति है कि उन के प्रति आपको सुन्दर कर दिखाती है और नाना प्रकार के छलों को पसारती है इसी कारणसे वे निरन्तर संतोषित और इस के त्याग ने विषे यत्न करते रहते हैं और आपको बचाया चाहते हैं बहुरि भगवत् विमुखों की शत्रु इस प्रकार है कि प्रथम तो उनको अपने ऊपर रिझावती है और जब अधिक प्रमाद करके मोहित होते हैं तब उनको भी त्याग जाती है और व्यभिचारिणी स्त्री की नाईं यत्र तत्र भटकती फिरती है और अपने प्रियतमों को सर्वदा दुःख देती है बहुरि जब इसके साथ प्रीति करनेवाले मनुष्य परलोक विषे जाते हैं तब महाराज के कोप को देखते हैं ताते जिस बुद्धिमान् ने इस के छलों को भली प्रकार समझ कर इसका त्याग किया है वह इसके विघ्नों से छूटता है इसीपर महापुरुष ने भी कहा है कि यह माया महाछलरूपा है और भगवत् ने जो संतजनों को संसारविषे भेजा है और नानाप्रकार के शास्त्र और वचन उत्पन्न किये हैं सो तिनका प्रयोजन यही है कि जीवों को मायाकी प्रीतिसे निवर्तन करें और इस के छलों और विघ्नों को प्रसिद्ध करके दिखावें तब यह जीव मायासे विरक्तचित्त होकर परलोकमार्ग के यत्न विषे सावधान होवें इसीपर एक वार्ता है कि एक समय महापुरुष अपने प्रियतमों सहित चले जाते थे तब एक मृतक पशु को देखा और कहने लगे कि मैं भगवत्की दुहाई करके कहता हूं कि जैसे यह मृतक पशु ऐसा कुचील है कि इसकी ओर कोई देखताही नहीं तैसे यह माया संतजनों के आगे इससे भी अधिक कुचील है काहेसे कि जो भगवत्के दरबार विषे इस माया को कुछभी विशेषता होती तो मनुष्यों को एक कणमात्र भी न मिलती बहुरि महापुरुष ने कहा है कि इस माया को धिक्कार है और इस की जो सामग्री है तिनको भी धिक्कार है और एक वही पदार्थ धिक्कार से रहित है जो केवल भजनही के निमित्त अंगीकार करिये बहुरि यों भी कहा है कि जिसने माया को अपना प्रियतम किया है वह परलोक से विमुख हुआ है और जिसने परलोक के सुखों को प्रियतम किया है वह माया के भोगों में विरक्त होता है ताते चाहिये कि नाशवन्त पदार्थों का त्याग करो और सत्यस्वरूप की प्रीतिविषे सावधान होवो बहुरि एक प्रीतिमान् ने कहा है कि एकबार एक सन्त ने जल माँगाथा तब लोगों ने उनको मधुयोग आनदिया सो जब पान करनेलगे तब ऐसा रुदन किया कि उनको देखकर सब ही लोग रुदन करनेलगे और कोई पूछ न सके कि तुम क्यों रोते हो बहुरि जब

मौन करी। तब प्रियतमों ने पूछा। कि तुम्हारे रुदन का कारण कौन था। तब उन्होंने
कहा कि एक बार महापुरुष ध्यान में बैठे थे और हाथों करके किसीको हटाते थे
पर मुझको कुछ दृष्टि न आया तब मैंने पूछा कि तुम किसको हटाते थे तब उ-
न्होंने कहा कि यह माया बारंबार मेरे पास आती है और मैं उसको दूर करता
हूं पर यह माया इस प्रकार कहती है कि तुम तो मेरे हाथों से बचेहो परन्तु तु-
म्हारे पीछे होवेंगे वह आपको बचा न सकेंगे तातें इस आपत्ति को देखकर डरा हूं
इस निमित्त कि मत मुझको चलते को निमित्त लोह माया। यही रुदन भी कर भीति
मिली होवे तब मैं क्या करूंगा बहुरि महापुरुष ने यों भी कहा है कि यह माया
निधन घर है और निर्धन का धन है सो जो प्रीति इसके मूर्ख होई इसको कर्षण से संचय
करते हैं और इसको नाश नहीं करते हैं जो विद्याहीन हैं और इसके निमित्त यत्न
वही करते हैं जो धर्म से रहित हैं तातें जो पुरुष प्रभात समय उठकर मायाही के
कार्यों विषे दृढ़ होवत है यह भगवत से विमुख है और मायाधारी जीवों विषे ४
लक्षण अवश्यही होते हैं सो प्रथम तो उसकी चिन्ता कदाचित् दूर नहीं होती १
और दूसरे जिगरों विषे ऐसा आसक्त रहता है कि कदाचित मुक्त नहीं होता २
और तीसरे सर्वदा अवश रहता है ३ चौथे उसकी आशा कदाचित पूर्ण नहीं
होती ४ इसी पर शकहोरा सन्तने कहा है कि एकबार मुझसे महापुरुषने कहा
कि तू माया की सम्पूर्णता को देखा चाहता है इतना कहकर मुझको कुचील ठौर
विषे लेगये सो तहां पशुओं और मनुष्यों के अस्थि पड़ेथे और चिथड़ा और पु-
रातन वस्त्रों के टुकड़े भी पड़ेहुये थे तब उनको देखकर कहने लगे कि हे भाई जिन
जो मनुष्यों के शिर देखते हो सो तुम्हारी नाईं यह भी तृष्णा और इच्छा करके
पूर्ण थे सो अब इनके हाड़ों पर त्वचा भी न रही और यह गीदड़ी भक्षण होजाते हैं
और वह नाना प्रकार के व्यञ्जन जो मीठे लगते थे और यत्न करके प्राप्त होते थे
सो अब सबही विष्ठा का रूप हुये हैं बहुरि अनेक भांति के वस्त्र सबही पुरातन
होकर भस्म होते जाते हैं बहुरि जिन घोड़ों और हाथियों पर सवार होकर फिरते
थे सो तिनके भी हाड़ही शेष रहगये हैं सो माया का सम्पूर्ण आदि अन्त यही
है बहुरि यों भी कहा है कि परलोक विषे केते पुरुष जप तप करनेवाले भी नरक-
गामी होवेंगे काहेसे कि जब माया के पदार्थों को देखते थे तब अधिक उत्साह
करके अंगीकार करते थे बहुरि एकबार महापुरुष अपने प्रियतमों से कहने लगे कि

आपको भ्रमण करनेवाला पुरुष कोनहीं ताते जो पुरुष मायाकी तृष्णा करताहै सो आपको भिन्न किया चाहताहै और जो पुरुष मायामें विरक्त होता है और आशा तृष्णाको धारतनहीं तब उसके हृदयविषे भगवत् अनुभवकी विद्या प्र- गटवनाहै और पढ़े विनाही उसकी बुद्धि उज्ज्वल होतीहै और यथार्थ के मार्ग को प्रकट देखताहै और महापुरुष ने योंभी कहाहै कि मायिक पदार्थोंका स्मरण भी न करो सो जिस माया की वार्त्ता करनीही अयोग्य हुई तब उसके साथ प्रीति करनी और उसकी उत्पत्ति के निमित्त यत्न करना किसे प्रमाण होवे इसी पर महात्मा ईसा महापुरुषने कहाहै कि मायाको अपना स्वामी न बनाओ तो तुमको यह माया अपना दास न करे अर्थ यह कि मायाके साथ अधिक प्रीति न करो तब इसके जंजाल विषे बद्धयमान न होवोगे बहुरि उस पदार्थ को संचो कि जिसके खर्चनेविषे तुमको कदाचित् भय न होवे और योंभी कहाहै कि यह माया और परलोक ऐसे हैं जैसे एक पुरुषके दो स्त्री होवें अर्थ यह कि जब एक प्रसन्न होती है तब दूसरी दुःखित होतीहै तैसेही जब यह पुरुष मायाविषे सावधान होताहै तब परलोक से विमुख होताहै और जब परलोक के मार्गविषे सावधान हुआ चाहताहै तब मायाके साथ विरोध करताहै बहुरि अपने प्रियतमों से योंभी कहाहै कि मैं तुम्हारे देखतेही इस मायाको धरती पर डालताहूं ताते तुमभी इस को अंगीकार न करो काहेसे कि प्रथम तो यह माया ऐसी है कि सब पाप इस की प्रीति करके होते हैं बहुरि जबलग इसका त्याग न करिये तबलग परलोक के सुखोंको पाय नहीं सक्ता ताते इस माया की प्रीतिसे बाहर निकसो और इस के कारणों की सम्पूर्णता विषे दृढ़ न होवो बहुरि ऐसे जानो कि सर्व पापोंका मूल मायाकी प्रीति है और सर्व भोगों का फल शोक और दुःखहै बहुरि जैसे जल और अग्निका मिलाप नहीं होता तैसेही भगवद्भक्ति और मायाकी प्री- ति किसी प्रकार इकट्ठी नहीं होती इसी कारण से सन्तजन मायासे विरक्तहुये हैं बहुरि एकवार्त्ता है कि एक दिनविषे बहुत मेघ और बिजुली का चमत्कार होना भया तब ईसाजी मेंहसे रक्षाके निमित्त स्थान को ढूंढनेलगे सो वहां एक त- म्बूको देखा परं जब तम्बूविषे जाय प्राप्तहुये तब वहां एक सुन्दर स्त्री देखी बहुरि वहां से तुरन्तही निकसके पहाड़ की कन्दरा विषे गये सब आगे एक सिंह बैठाहुआ देखा तब भगवत् के आगे प्रार्थना करनेलगे कि हे महाराज मेरे वास

किसी को विश्राम का स्थान दिया है एक मेरेलिये मेराही स्थान कोई नहीं तब आकाशवाणी हुई कि हे ईसा! मैंने तुमको कुसंगसे बचायाहै याते तेरा विश्राम स्थल मेरीदया है इसीपर एक और वार्ता है कि जब सुलेमानजी महापुरुष का ऐश्वर्य अधिक हुआ और सब पशु मनुष्य देवता परी उनकी आज्ञा मानने लगे तब किसी तपस्वीने उनसे कहा कि तुम को भगवत्ने बड़ा ऐश्वर्य दिया है तब उन्होंने कहा कि मेरे ऐश्वर्यमें एकवार श्रीरामनाम लेना विशेषहै काहे से कि सुवागन के नामका उच्चारण स्थिर रहेगा और मेरा ऐश्वर्य सदाही नहीं रहेगा बहुरि एक और वार्ता है कि नूहनामी महात्मा की आयुष सहस्रवर्ष की हुई है सो जब मरनेको भये तब देवतों ने पूछा कि तुमने इतनी आयु में संसारको किसप्रकार देखा है तब उन्होंनेकहा कि जैसे सराय के एक दरवाजे विषे होकर अन्दर चलेजावें और दूसरे द्वारसे निकल जावें सो ऐसे इतनी आयुर्वेल विषे जगत् का जीवना मैंनेही देखाहै बहुरि ईसा महापुरुष ने लोगों ने पूछा कि जिसकरके हम भगवत्के प्रियतम होवें सो यह लक्षण कौनहै तब उन्होंने कहा कि जब तुम माया के प्रियतम न होगे तब स्वाभाविकही भगवत्के प्रियतम होवोगे सो माया के विषय विषे सन्तजनों के ऐसेही वचन बहुतहैं जैसे एक नामी सन्तने कहाहै कि जिन पुरुषों ने इन षड्भेदों को जानाहै वह स्वाभाविकही नरकोंसे मुक्त होवेंगे और परम सुखको पावेंगे सो प्रथम तो जिसने भगवत् को पहिंचानाहै भलीप्रकार वह निस्सन्देह उसके भजन विषे सावधान होता है १ और जिसने मन को जानलिया है वह निस्सन्देह मन के साथ विरुद्धही करता है और उसकी आज्ञा नहीं मानता २ बहुरि जिसने सत्य को इसप्रकार समझाहै कि यथार्थ वस्तु यहीहै वह सत्यहीके पदार्थको अङ्गीकार करताहै ३ और जिसने झूठको झूठही पहिंचानाहै वह सर्वदा उसका त्याग करता है ४ बहुरि जिसने माया के आदि अन्तको भलीभांति देखाहै वह स्वाभाविकही इसके सुखोंको विषम जानता है और विरक्त होताहै ५ और जिसने परलोक के सुखकी अधिकता विचार देखी है वह सर्वदा परलोकमार्ग के यत्न विषेही स्थित होताहै ६ इसीपर एक बुद्धिमान् ने कहाहै कि जो मायाका पदार्थ तुमको प्राप्त होताहै सो तुमसे आगेभी किसी को प्राप्त हुआ है और तुमसे पीछे भी किसी और के पास जावेगा याते ऐसे पदार्थ को पायकर प्रसन्न क्यों होताहै काहेसे

किइस संसारविषे मानपाने कि पै अधिक लोग कायहीं कुछ नहीं वर्ते इन
खानपानिके निमित्त तू अपना नाश क्यों करता है और तुझको इसप्रकार चा
हिये कि मायाके सबभोगोंमें वैराग्यवान होवे तब परलोक में निर्मल अनन्त सुखों
की प्राप्ति करके उसधनको पावना होवे काहेसे कि इस संसार के सुखोंकी पूंजी
वासना और तृष्णा है और तिसका फल इसका कुम्भीपाक नरक है बहुरि एक सन्तने
किसी जिज्ञासु ने कहाथा कि मेरे हृदय से मायाकी अभिलाष दूर नहीं होती
तातें मैं कौन उपाय करूं तब तिसा सन्तने कहा कि प्रथम तो मायाकी उत्पत्ति
धर्म सहित कर बहुरि शुभ अर्थ उसको खर्च कर तब इसप्रकार करनेसे तेरी
मायाकी प्रीति नष्ट होजावैगी सो यह उपाय उन्होंने इस निमित्त कहाथा कि
धर्म सहित धनकी उत्पत्ति और शुभ अर्थ खर्च करनेके सहजहीं विरक्त
होजाता है इसीपर एक सन्तने कहा है कि जब माटीका बासन स्थिर रहनेवाला
होवे और स्वर्णका बासन शीघ्रही नष्ट होनेवाला होवे तब बुद्धिमानों को चा
हिये कि स्थिरता के विचार से माटीके बासनको ही अंगीकार करें और नश्वर
स्वर्ण को त्यागदेवें सो यह माया तो माटीकी नाईं है और नाश क्षण विषे परि
णामको पाती है बहुरि परलोकका सुख स्वर्णकी नाईं निर्मल और अविनाशी
है तातें जब परलोकके अविनाशी सुखोंको त्यागकरै मायाके क्षणभंगुर भोगों
को अंगीकार करिये तब बड़ी मूर्खता है इसीपर एक और सन्तने कहा है कि
हम मायाके विरक्तसन्तजनों से कहते हैं कि परलोक विषे मायाके प्रीति करनेवालों
को इसप्रकार कहेंगे कि जिस मायाके भोगोंको निन्द्य कहाहै सो यह पुरुष उस
हीके चिन्तनवान है और एक महात्मा ऋषीश्वरने कहा है कि इस संसार विषे सबही
मनुष्य परदेशी हैं और जितनी मायाकी सामग्री है सो सब पराई है तातें परदे
शीको तो एकदिन चलना होवेगा और सब सामग्री पदार्थ रहजावेंगे बहुरि
लुकमानने अपने पुत्रसे कहा है कि जब तू मायाके सुखको त्यागकर परलोक
के सुखको अंगीकार करेगा तब लोक और परलोकका सुख तुझको प्राप्त होवेगा
और जब मायाके निमित्त परलोकको त्याग करेगा तब दोनों लोकों विषे तेरी
हानि होवेगी अमीररजाने फुर्मान नामी सन्तने कहा है कि जब मायाके सर्व
सुख संपदा सहित तुझको प्राप्त होवें और परलोक विषे कुछ उसका हिसाब देना
पड़े तौभी मु[illegible] ऐसे भोगोंमें लज्जा आती है जैसे मुर्दे [illegible]

से अरुचि रखते हो इसीपर हमन बसरी सन्तने उमर अब्दुलअजीज को पाती लिखाथा कि कालको आयादेखो काहेसे कि जिसके मस्तक पर मरना लिखाहै सो अवश्यही आवेगा तब उन्होंने उत्तर में लिखा कि हमको तो अन्तकाल का दिनही सर्वदा दृष्टि आताहै और यह ससार अनहुआही भासता है बहुरि इस प्रकार भी सन्तजनों ने कहा है ये मनुष्य मरनेको भी सत्य जानते हैं और फिर प्रसन्न होते हैं सो यह बड़ा आश्चर्य है बहुरि जो पुरुष नरकको सत्य जानता है और संसारमें हँसता भी है सो यह भी बड़ा आश्चर्य है बहुरि यह भी बड़ा आश्चर्य है कि यह मनुष्य माया की सामग्री के परिणामको सदाही देखता है और इसीको विशेष जानकर वर्धमान भी होताहै बहुरि जो पुरुष भगवत्को सबका प्रतिपालक जानता है और फिर जीविका की चिन्ता विषे चिन्तित रहता है सो यह भी बड़ा आश्चर्य है ऐसेही एक और सन्तने भी कहाहै कि इस ससार विषे ऐसा निर्विघ्न पदार्थ कोई नहीं जिस करके प्रथम प्रसन्न हूजिये और पीछे शोक न आवे तात्पर्य्य यह कि दुःखसे रहित निर्मल सुख इस संसार विषे नहीं उत्पन्न हुआ इसीपर हसन बसरी ने कहा है कि इस मनुष्यको अन्तकाल विषे तीन पश्चात्ताप अवश्यही होते हैं सो प्रथम यह कि जिस मायाको यत्न करके बटोरा था तिसको भलीप्रकार भोग न लिया १ बहुरि दूसरा यह कि मनके मनोरथ सबही पूर्ण न हुये २ और तीसरा यह कि परलोक मार्ग का तोशा न बनालिया ३ इसीपर इब्राहीम अदहम नामी सन्त ने किसी से पूछा था कि तू स्वप्नके पैसेको प्रियतम रखता है कि जाग्रत्की मोहर को विशेष जानता है तब उसने कहा कि मैं जाग्रत् की मोहरको अधिक प्रियतम रखताहूं बहुरि इब्राहीम कहनेलगे कि तू झूठ कहता है काहेसे कि यह माया स्वप्नका पैसाहै और परलोकका सुख जाग्रत्की मोहरहै सो मायाही के साथ तेरी अधिक प्रीति है ताते तू झूठ बोलताहै बहुरि एक और सन्तने कहाहै कि बुद्धिमान् पुरुष वही है जो माया के त्यागने से आगेही मायाका त्याग करे और मृत्युके आगेही मृतक हो रहे बहुरि परलोक विषे जाने से आगेही परलोकका तोशा बनानेसे बहुरि योंभी कहाहै कि इस मायाकी अभिलाषही भगवत् से अचेत कर डालती है तब इसके प्राप्त होनेकी मलिनता क्या वर्णन करिये बहुरि एक और सन्तने कहाहै कि जो पुरुष मायाके भोगों को प्राप्त हुआ चाहे तब इसका दृष्टान्त यह है कि जैसे

किइस संसारविषे भोगनकी भ्रमतादिकसे अधिक मेरो कामहीं कुछ नहीं ताते इम खानपान के निमित्त तू अपना नाश क्यों करता है क्योंकि तुमको इसप्रकार चाहिये कि थाय कैसे भी भोग भोग्नेनी रहे तब परलोक में जाकर अनन्त सुखों की प्राप्ति करके उस धनको पावना होवे काहे ते कि इस संसार के सुखोंकी पूंजी थोसनी और थोड़ी ही आराम मिड़्स का कुभोग कैन्नरके है बहुरि एक सन्त से किसी जिज्ञासु ने कहा था कि मेरे हृदय से मायाकी अभिलाषा दूर नहीं होती ताते में कौन उपाय करूं तब उस सन्त ने कहा कि प्रथम तो माया की उत्पत्ति धर्म्म सहित कर बहुरि शुभ अर्थ उस को खर्च करो तब इसप्रकार स्वाभाविक ही मायाकी प्रीति नष्ट होजावेगी सो यही उपाय उन्होंने इसनिमित्त कहा था कि धर्म सहित धनकी उत्पत्ति और शुभ अर्थ खर्च करने से सहज ही वैराग्य होजाता है इसी पर एक सन्त ने कहा है कि जब माटी का बासन स्थिर रहनेवाला होवे और स्वर्ण का बासन शीघ्र ही नष्ट होनेवाला होवे तब बुद्धिमान् को चाहिये कि स्थिरता के निमित्त माटी के बासन को ही अंगीकार करे और नश्वर स्वर्ण को त्याग देवे पर यह माया तो माटी की नाई है और परलोक स्वर्ण विषे स्थिरता को पाती है बहुरि परलोक का सुख स्वर्ण की नाई निर्मल और अविनाशी है ताते जब परलोक के अविनाशी सुखों को त्यागकर माया के क्षणभंगुर भोगों को अंगीकार करिये तब बड़ी मूर्खता है इसी पर एक और सन्त ने कहा है कि इस माया के चिन्तसे भय करो काहे ते कि परलोक विषे माया के प्रीति करनेवालों को इसप्रकार कहेंगे कि जिस माया के भोगों को निन्द्य कहा है सो यह पुरुष उनही के प्रियतम है और एक यह सन्त यों कहते हैं कि इस संसार विषे सब ही मनुष्य परदेशी हैं और जो यह सब धन सामग्री है सो सब पराई है ताते परदेशियों को अवश्य ही चलना होवेगा और सब सामग्री यहां ही रह जावेगी बहुरि लुकमान ने अपने पुत्र से कहा है कि जब तू माया के सुख को त्यागकर परलोक के सुख को अंगीकार करेगा तब लोक और परलोक का सुख तुझ को प्राप्त होवेगा और जब माया के निमित्त परलोक को त्याग करेगा तब दोनों लोकों विषे तेरी हानि होवेगी इसी कारण से फुजैल नामी सन्त ने कहा है कि जब माया के सब सुख भोग से रहित मुझको प्राप्त होवें और परलोक विषे कुछ उन का दण्ड देना भी न पड़े तो भी मुझको इन भोगों में लज्जा आती है जैसे तुम मृतक पशु

से अरुचि रखते हो इसीपर हसन बसरी सन्तने उमर अब्दुलअजीज को पाती लिखाथा कि कालको आयादेखो काहेसे कि जिसके मस्तक पर मरना लिखाहै सो अवश्यही आवेगा तब उन्होंने उत्तर में लिखा कि हमको तो अन्तकाल का दिनही सर्वदा दृष्टि आता है और यह ससार अनहुआही भासता है बहुरि इस प्रकार भी सन्तजनों ने कहा है ये मनुष्य मरनेको भी सत्य जानते हैं और फिर प्रसन्न होते हैं सो यह बड़ा आश्चर्य है बहुरि जो पुरुष नरकको सत्य जानता है और संसारमें हँसता भी है सो यह भी बड़ा आश्चर्य है बहुरि यह भी बड़ा आश्चर्य है कि यह मनुष्य माया की सामग्री के परिणामको सदाही देखता है और इसीको विशेष जानकर बंधमान भी होताहै बहुरि जो पुरुष भगवत्‌को सबका प्रतिपालक जानता है और फिर जीविका की चिन्ता विषे चिन्तित रहता है सो यह भी बड़ा आश्चर्य है ऐसेही एक और सन्तने भी कहाहै कि इस ससार विषे ऐसा निर्विघ्न पदार्थ कोई नहीं जिस करके प्रथम प्रसन्न हूजिये और पीछे शोक न आवे तात्पर्य्य यह कि दुःखसे रहित निर्मल सुख इस संसार विषे नहीं उत्पन्न हुआ इसीपर हसन बसरी ने कहा है कि इस मनुष्यको अन्तकाल विषे तीन पश्चात्ताप अवश्यही होते हैं सो प्रथम यह कि जिस मायाको यत्न करके बटोरा था तिसको भलीप्रकार भोग न लिया १ बहुरि दूसरा यह कि मनके मनोरथ सबही पूर्ण न हुये २ और तीसरा यह कि परलोक मार्ग का तोशा न बनालिया ३ इसीपर इब्राहीम अदहम नामी सन्त ने किसी से पूछा था कि तू स्वप्नके पैसेको प्रियतम रखता है कि जाग्रत्‌की मोहर को विशेष जानता है तब उसने कहा कि मैं जाग्रत् की मोहर को अधिक प्रियतम रखताहू बहुरि इब्राहीम कहनेलगे कि तू झूठ कहता है काहेसे कि यह माया स्वप्नका पैसाहै और परलोकका सुख जाग्रत्‌की मोहरहै सो मायाही के साथ तेरी अधिक प्रीति है तातें तू झूठ बोलताहै बहुरि एक और सन्तने कहाहै कि बुद्धिमान पुरुष वही है जो माया के त्यागने से आगेही मायाका त्यागकरे और मृत्युके आगेही मृतक हो रहे बहुरि परलोक विषे जाने से आगेही परलोकका तोशा बनालेवे बहुरि योंभी कहाहै कि इस मायाकी अभिलाषही भगवत् से अचेत कर डालती है तब इसके प्राप्त होनेकी मलिनता क्या वर्णन करिये बहुरि एक और सन्तने कहाहै कि जो पुरुष मायाके भोगों को कर तृप्त हुआ चाहै तब इसका दृष्टान्त यह है कि जैसे

जैसे लकड़िया डालकर अग्नि को बुझाया चाहे तब निस्सन्देह मूर्ख कहावताहै
तैसेही माया के साथ सन्तुष्ट होना असम्भवहै इसीपर अलीनामी सन्तने कहाहै
कि सर्व स्थूल भोगों का सार यह षट् भोगहैं खाना१ पीना२ पहरना३ सूंघना४
सवारी५ स्त्रियों का सङ्ग६ सो यह सब इसप्रकार मलिनहैं कि प्रथम सर्व रसों
में मधु श्रेष्ठहै सो वह माखीका थूकहै१ और सर्व पान करने के पदार्थों में जल
विशेषहै सो सब किसी को समान प्राप्त होताहै२ बहुरि पहरना रेशमका अति
कोमलहै सो वह भी कीड़ों की लारसे उपजताहै३ और सर्व सुगन्धियोंमें उत्तम
कस्तूरी है सो मृगों का रुधिरहै४ बहुरि स्त्रियादिक भोग तो प्रसिद्धही मलिन
हैं५ और घोड़ों पर चढ़ना ऐसाहै जैसे अङ्गों को चीर कर स्थित करिये६ बहुरि
एक और सन्त ने कहाहै कि हे मनुष्यो! तुमको भगवत् ने परमपदकी प्राप्तिके
निमित्त उत्पन्न कियाहै सो जब यह प्रतीतिही तुमको दृढ़ नहीं तब निस्सन्देह
मन्तमुखहो और जब प्रतीतिभी रखतेहो और अचेतना करके निडर होरहेहो तब
निस्सन्देह मूर्ख होतेहो ॥ अथ प्रकट करता अर्थ मायाकी मलिनताका ॥ तातें
जान तू कि महापुरुष ने कहा है कि यह माया महानिन्द्यहै और इसकी सर्व
सामग्री भी निन्द्यहै पर वही पदार्थ निन्द्य नहीं जो केवल भगवत्ही के निमित्त
अङ्गीकार करिये तातें इस भेद को अवश्यही पहिचानना चाहिये कि इस माया
विषे निन्द्य क्याहै और ग्राह्य क्याहै तात्पर्य यह कि सबही पदार्थ तीन प्रकार
के हैं सो एक तो केवल मायारूपहैं जैसे पाप और भोग अर्थ यह कि जबलग
यह पुरुष इनका त्याग न करे तबलग निर्मल कदाचित् नहीं होता काहेसे कि
अचेतता और प्रमादताका कारण इन्द्रियादिक भोग और तमोगुणी कर्म हैं
बहुरि दूसरे ऐसे पदार्थ हैं जो देखनेमात्र भगवत्के निमित्त भासते हैं पर सका
मताकरके यह भी मायारूप कहाते हैं जैसे ज्ञान व भजन भोगोंका त्याग ये तीनों
परलोकविषे भी सुख देनेवाले हैं पर जब इस पुरुष की मनसा निष्काम होवे और
जब हृदय विषे मान आदिकों का प्रयोजन होवे तब यह निश्चय स्थूल भोग। सो
भी निन्द्यहै काहेसे कि कपट और पाखण्ड इसीका नामहै और बहुरि तीसरा प्र
कार यहहै कि देखनेविषे मनका भोग भासताहै और अन्तरमें परमार्थ का प्रयो
जन होताहै सो ऐसे पदार्थों को निन्द्य नहीं कहा जाता जैसे शरीरके निर्वाह
मात्र आहार करना अथवा शुद्ध जीविका उत्पन्न करनी सो मनसा की निष्का

मतो करके यह सवही कर्म्म निर्मल होजाते हैं इसीपर महापुरुषने कहाहै कि जो मनुष्य अपने भोगोंके निमित्त धनको सञ्चय करता है वह परलोक विषे अपने ऊपर अपर्वत्रको कोधवान् देखेगा परजन इस निमित्त व्यवहार करैगा कि इतने उद्यम करके लोगोंसे वेमोहताज होऊँगा और अचिंत होकर भजनविषे सावधान होऊंगा तब पिछलोंके विषे इसका मस्तक पौर्णमासीके चन्द्रमाके समान उज्ज्वल होवेगा तात्पर्य यह कि वासनाके भोगोंका नाम मायाहै जिस विषे परलोकके मार्गका सम्बन्ध कुछ न होवे परन्तु जिस क्रिया विषे परमार्थकी मनसा होवे तब उसको माया मात्र नहीं कहते जैसे तीर्थयात्री तीर्थों के मार्ग विषे घास और जल करके और सवारी के घोड़े और ऊंटकी खबर लेना है तोभी उसकी यह क्रिया तीर्थयात्रा के निमित्त होती है इसी पर महाराजने भी कहा है कि मनकी वासना का नाम माया है ताते जो पुरुष अपनी वासना से विरक्त हुआ है वह मायासे विरक्त कहाता है इस करके यह प्रसिद्ध हुआ कि सर्व सामग्री तीन प्रकार की होती है सो एक तो आहार दूसरा वस्त्र तीसरा स्थान है सो शरीर कार्य्यको निर्वाह करने योग्य है और जब इस पुरुषकी मनसा निष्कामहोवे तब इतनी सामग्री कार्य्य मात्र नहीं होता १ और दूसरे नानाप्रकार के इन्द्रियादिक भोगहैं सो इन करके कदाचित् तृप्ति नहीं होती और परलोक के मार्ग विषे भी इनका सम्बन्ध कुछ नहीं ताते जिस पुरुषने प्राणोंकी रक्षाके निमित्त सामग्रीको अंगीकार कियाहै वह निस्सन्देह मुक्तरूप है और जो मनुष्य इन्द्रियादिक भोगों विषे पसराहै सो परम नरकोंको प्राप्त होवेगा २ तीसरे प्रकार यहहैं कि शरीरके निर्वाहमात्र और इन्द्रियादिक भोगों के मध्य भावविषे स्थितहोना सो विचारकी सूक्ष्म दृष्टिकर देख सकाहै अन्यथा नहीं जाना जाता पर उसका देखना यह है कि जिस पदार्थ की इनको अत्यन्त अपेक्षा न होवे और यह पुरुष अपने मन विषे ऐसा जाने कि यह पदार्थ मुझ को अवश्यही चाहियेहै ताते अंगीकार करलेवे तब निस्सन्देह परलोकके दण्डका अधिकारी होता है इसीकारण से जिज्ञासु जनोंने अपने शरीर को यत्न विषे रक्खा है और स्थूल सामग्री को अल्पही अंगीकार किया है तब उन की वासनाओं से मुक्त हुये हैं पर सर्व वैरागियों के मुखिया अवैश करनी नामी भक्त हुये हैं उन्होंने भी अपने आपको इसप्रकार संसार से विरक्त किया है कि सबलोग उनको बाबरा जान।

थे और वह प्रभात समय नगरसे बाहर निकस जातेथे और प्रहर रात्रि व्यतीत हुये बहुरि आते थे और बेर और खजूरोंके फल जो स्वाभाविकही गिरपड़ते थे सो तिनको चुनकर आहार करतेथे और कुछ भगवत् अर्थ देतेथे बहुरि गलियों के चीथड़े चुनकर धोते थे और उसही की गुदड़ी बनाकर ऊपर ओढ़ते थे सो उनकी ऐसी अवस्था देखकर लोगोंको बावरे भासतेथे और जब बालक उनको पाथर मारतेथे तब वह कहते थे कि मेरे छोटे छोटे पाथरमारो काहेसे कि घायल होकर भजनसे रहित होजाऊंगा इसीकारणसे महापुरुषने यद्यपि उनको स्थूल नेत्रों करके देखा न था तौभी सर्व्वदा उनकी प्रशंसा करतेथे बहुरि उमर और अलीनामी अपने प्रियतमों को महापुरुष ने आज्ञादी कि तुम आवेशकरनी के दर्शनको जाना और मेरे गले का जामा उनको पहुँचाना कि उनकी अशीष और प्रार्थना करके मेरी संप्रदाय के अनन्त मनुष्यों को भगवत् मुक्तकरेंगे बहुरि आवेशकरनी की अवस्था का चिह्न भी उनको बतादिया सो जब महापुरुषका शरीर छूटा तब उमर और अली उनके दर्शनको गये और उपदेश के निकट जाकर पूछनेलगे कि करनदेश का कोई पुरुष यहां है तब एक पुरुष ने कहा कि मैं करन नगर का वासीहूं बहुरि उससे पूछा कि तू आवेशकरनीको जानताहै तब उसने कहा कि हां मैं जानताहूं पर वह तुम्हारे पूछनेका अधिकारी तो नहीं काहे से कि वह तो महा बावरासाहै और किसीके साथ मिलाप भी नहीं रखता सो जब उमरने यह बात सुनी तब रोनेलगे और कहने लगे कि हम उसहीको ढूंढ़ते हैं इस करके हमने महापुरुष के मुखसे सुनाहै कि उनकी दया करके असंख्य जीवोंका उद्धार होवेगा इसीपर हरमनामी सन्तने कहाहै कि मैं भी आवेशकरनी की महिमा सुनकर एकबार उनके दर्शन को गया था तब वह करन नगर विषे नदीपर स्नान करतेथे तब मैंने उनको अचानकही पहिचान कर दण्डवत् किया और उनकी अवस्था देखकर मेराचित्त बहुत कोमलहुआ तब वह मुझसे इसप्रकार पूछनेलगे कि हे हमनके पुत्र हरम! तुम कुशल सहितहो और यहां क्योंकर आयेहो तब मैंने कहा कि तुमने मिले विनाही मुझको और मेरे पिताको क्योंकर पहिचाना तब उन्होंने कहा कि मुझको भगवत् ने लखायाहै और प्रीतिमानों के हृदय शरीर के मिलाप विनाही एक दूसरेको पहिचान लेते हैं बहुरि मैंने आधीन होकर कहा कि मुझको महापुरुषकी कुछ वार्ता सुनाओ

तब इसप्रकार कहनेलगे कि मैंतो उनका दासहूं और इस शरीर करके मैंने उन को देखाही नहीं बहुरि मैं अपने चित्त के अभ्यास विषे परचाहूं ताते मुझको पण्डितों की नाईं कहने सुनने की इच्छा भी नहीं बहुरि मैंने कहा कि तुमहीं मुझको कुछ उपदेश करो तब मेरा हाथ पकड़कर कहनेलगे कि इस मनरूपी असुरसे भगवतही रक्षाकरे इतना कहकर रोनेलगे बहुरि ऐसा कहा कि बड़े बड़े आश्चर्यरूप सन्त और महापुरुष सबही मृत्युको प्राप्तहुये हैं ताते हम और तुम भी मृतकरूपही हैं पर उत्तम यही है कि सन्तजनों के मार्गको अंगीकार करो और एकक्षण भी मरनेके भयसे अचेत न होवो और औरलोगोंकोभी यथार्थ वचन कहो बहुरि कदाचित भी साधुसंगविषे त्याग नाकरो काहेते कि सन्तों के संग बिना अपने धर्म से भ्रष्ट होजावोगे और जान भी न सकोगे सो ऐसे कहकर चलदिये औरमुझको अपने साथ ठहरने न दिया तात्पर्य यह कि जिन्होंने मायाके छलोंको पहिंचानाहै सो तिनके ऐसे लक्षण हुयेहैं और जिज्ञासु जनों का मार्ग यही है अरु जब तू ऐसे पदको प्राप्त न होसके तब इतना तो अवश्य कर कि शरीर के निर्वाहमात्रसे अधिक भोगों के विषे लम्पट न हो ताते दुःखोंसे मुक्त रहे॥

छठवां सर्ग॥

धनकी तृष्णा और कृपणता के निषेध और उपायके वर्णन में॥

ताते जान तू कि इस मायारूपी वृक्षकी शाखा बहुतहैं सो एक शाखा इसकी धन और सम्पदाहै बहुरि मान और बड़ाईभी इसीकी शाखाहै ऐसेही और भी अनेक शाखाहैं पर यह धन बहुत विघ्नोंका कारणहै इसीपर महापुरुषने भी कहाहै कि इस धनरूपी घाटी से उतरना कठिनहै काहेते कि शरीरके व्यवहार साथ भी इसका सम्बन्धहै और परलोक मार्गका तोशाभी यही धन होताहै अर्थ यह कि आहार और वस्त्र और स्थानकी प्राप्तिभी इसही करके होती है ताते शरीरके निर्वाहमात्र इसका उत्पन्न करना अवश्यही चाहिये और जब धनकी उत्पत्ति न करिये तब केवल निर्धनता विषे धैर्य नहीं होसका बहुरि जब धन की प्राप्ति होती है तब नानाप्रकारके भोगों विषे आसक्त होजाता है सो यह भी अनेक पापोंका बीज है पर निर्धन पुरुषों की भी दो अवस्था होती हैं सो एक तृष्णावान् है और एक सन्तोषी होते हैं बहुरि तृष्णावान् पुरुषों की भी दो अ

वस्थाहैं कि एकमनुष्य धनकी उत्पत्तिके निमित्त व्यवहार करलेते हैं और एक और पुरुषोंकी आशा रखते हैं पर और पुरुषों की आशा करने से व्यवहार करना विशेषहै तैसेही धनवानोंकीभी दो अवस्थाहैं सो एक कृपणताहै और एक उदारताहै पर उदारताभी दो प्रकारकी होती है सो एक उदारता विचारके अनुसार है और एक उदारता मर्य्यादसे रहित है ताते विचारके अनुसार उदारता विशेषहै और दूसरी निन्द्यहै परन्तु यह परस्पर मिलीहुई है और इनका पहिचानना महाकठिन है तात्पर्य यह कि धन करके अनेक विघ्नभी होते हैं और सुपथ कर्मोंका बीज भी यही है ताते अवश्यही चाहिये कि यह पुरुष धनके विघ्नों और लाभोंको पहिचाने और पहिचानकर भलीप्रकार विघ्नोंका त्यागकरे और लाभको अंगीकार करे ॥ अथ प्रकट करनी निषेधता धनकी प्रीतिकी ॥ इसीपर महाराजने कहाहै कि जिसको धन और संतान आदिकोंकी प्राप्ति होतीहै वह निस्सन्देह भजन से विमुख होताहै बहुरि महापुरुषनेभी कहाहै कि जैसे जलकरके वनस्पति और तृणादिक शीघ्रही उत्पन्न होते हैं तैसेही धन करकेभी शीघ्रही हृदयविषे कपट उपजि आवता है बहुरि महापुरुषसे किसीने पूछाथा कि सर्व सृष्टि विषे नीच मनुष्य कौनहै तब उन्होंने कहा कि धनके साथ प्रीति करने वाले अतिनीचहैं काहेसे कि नानाप्रकार के रसोंको भोगते हैं और अनेकभांति के सुन्दर वस्त्र पहिरते हैं और स्त्रियादिकों के रूपके साथ बन्धवान् होते हैं और बड़े बड़े घोड़ों और हाथियों पर आरूढ़ हुआ चाहते हैं ताते उनकी आशा कदाचित पूर्ण नहीं होती और सर्वथा माया की सामग्री विषे आसक्त रहते हैं ताते मायाही को भगवत्की नाईं पूजते हैं और जो कुछ किया करते हैं सो मायाही के निमित्त करते हैं इसीकारणसे मैं तुमको उपदेश करताहूं कि ऐसे मनुष्योंके साथ कदाचित् मिलाप मतकरो बहुरि महापुरुषने यों भी कहाहै कि यह माया सबही मायाधारियों को अर्पो दो कहदेसे कि जो पुरुष माया के साथ शरीर के निर्वाहसे अधिक अंगीकार करताहै वह उसके नाशका हेतुहै और यह जानता भी नहीं और यों भी कहाहै कि यह अज्ञानी मनुष्य सर्वदा यों ही कहते हैं कि यह धन मेराहै और सम्पदा मेरी है परन्तु इतना नहीं जानते कि शरीर के आहार और नग्नता के ढाकने से अधिक मेरा क्याहै ताते इसका अपना धन वही है जो किसी को भगवत् अर्थ देके तब वह नाम परलोक विषे इसका संगी होताहै

भर्वदा इसीपर किसीने महापुरुष से पूछाथा कि मेरे पास परलोक का तोशा कुछ नहीं ताते मैं क्या यत्न करूं तब महापुरुषने कहा कि जब कुछ अन्न का सग्रह रखनाहोवे तब भगवत् अर्थ देवो काहेसे कि भगवत् अर्थ देना इसका सदा संगी होताहै और योभी कहाहै कि इस मनुष्य के ३ मित्र हैं सो एक मित्र तो जीवने से उपरान्त कुछ नहीं रहता १ दूसरे मित्र श्मशानपर्यन्त संगी होते हैं २ और तीसरे मित्र परलोकपर्यन्त निर्वाह करते हैं ३ अर्थ यह कि जितनी धनकी सामग्री है तिसकी मित्रता जीवनेपर्यन्त है और जितने सम्बन्धी लोग हैं सो शरीरको श्मशान तक पहुंचाते हैं बहुरि इस मनुष्य के जो कर्म हैं सो परलोकपर्यंत संगी होते हैं और जब यह मनुष्य मृत्यु होजाताहै तब और लोग कहने लगते हैं कि इसकी सामग्री पीछे क्या रही है और देवता इसप्रकार कहते हैं कि इसने आगे क्या कुछ भेजाहै इसीपर ईसा महात्मा के शिष्यों ने पूछाथा कि तुम जलपर किस करके सूखेही चले जाते हो और हमारे विषे ऐसी सामर्थ्य क्यों नहीं है तब उन्होंने कहा कि मैं रुपये और स्वर्ण को माटी की नाईं जानताहूं और तुम इसको उत्तम पदार्थ मानते हो ताते मेरी और तुम्हारी अवस्था विषे इतनाही भेद है इसीपर एक वार्त्ता है कि अबूदर्दा नामी सन्त को किसी भगवत्विमुख ने दुखाया था तब वे कहने लगे कि हे महाराज ! तू इसको अरोगता और बड़ी आयुष और बहुत धन दे तात्पर्य यह कि उन्होंने ये सब ही दुःख के कारण समझ लिये थे काहेसे कि जिसको ऐसी सम्पदा प्राप्त होती है तब वह प्रमादी करके परलोक से अचेत होजाताहै और उसकी बुद्धि नष्टता को पाती है इसीपर हसनबसरी ने कहाहै कि जिस मनुष्य ने रुपे और स्वर्ण को अधिक प्रियतम कियाहै उसको परलोक विषे भगवत् लज्जावान् करताहै और यहियानामी सन्त ने कहाहै कि यह सोना और चांदी बिच्छू और सांपों की नाईं है ताते जबलग इसका मन्त्र न जानो तबलग इनका स्पर्श न करो और जब मन्त्र सीखे बिना इनपर हाथ डालोगे तब निस्सन्देह उनके विष करके मृतक होवोगे सो मन्त्र इसका यहहै कि पुण्य धनकी उत्पत्ति पापसे रहित होवे और धर्म के मार्ग विषे दियाजावे बहुरि जब एक सन्तका शरीर छूटने लगा तब उनसे एक प्रीतिमान्ने कहा कि तुमने अपनी सन्तान के निमित्त कुछ धन नहीं रक्खा सो इस वार्त्ता का कारण क्याहै तब उन्हों ने कहा कि मेरे पुत्रों का जो प्रारब्ध है सो

मैंने और किसीको नहीं दीनी और जो और की प्रारब्ध है वह इनको किसी प्रकार प्राप्त नहीं होती और यह वार्त्ता भी प्रकटहै कि जो मेरेपुत्र धर्म के अधिकारी होवेंगे तो भगवंतहीं इन को प्रतिपाल भली प्रकार करेंगे और जो धर्म से हीनहुये तो मुझको इनकी चिन्ताही कुछ नहीं बहुरि एक और संत बड़े धनवान् हुये हैं सो सर्वदा अपनी सम्पदा भगवत् अर्थ देतेथे तब किसीने उनसे कहा कि कुछ धन अपनी सन्तान के निमित्त भी राखो तब उन्होंने कहा कि मैं धनको भगवंतके निकट अपने निमित्त रखताहूं और पुत्रोंकी प्रारब्ध करने वाला भगवंत है बहुरि यहियानामी संतने कहाहै कि मृत्यु के समय धनवान् पुरुषको दोदुःख अवश्यही लगते हैं सो एक तो उसकी सर्वसम्पदा दूरहोतीहै और दूसरे धर्मराय के दण्डका अधिकारी होताहै पर ऐसे जान तू कि यद्यपि यह धन महानिंद्य है तोभी कुछ इसविषे विशेषता कहीहै काहेसे कि यह धनरूपी पदार्थ उपाधि और भलाई दोनोंका बीजहै इसीपर महापुरुष ने कहाहै कि यह धन भी उत्तम पदार्थ है पर बुद्धिमान् और धर्मात्मा पुरुषोंको और योभी कहा है जब यह मनुष्य अत्यन्त निर्द्धन होताहै तब निस्सन्देह महाराज से विमुख होजाता है काहेसे कि जब अपने सम्बन्धियों और आपको भूखसंयुक्त अधीन देखता है तब ऐसा जानताहै कि भगवंतने यह किसी अनीति करीहै कि पापी मनुष्योंको धन दियाहै और सात्त्विकी मनुष्य ऐसे दुःखित किये हैं कि उनको एकदाम भी हाथ नहीं आता जिस करके भूख का निवारण करें बहुरि ऐसा अनुमान करताहै कि जब भगवंत मेरे दुःखको नहीं जानता तब अन्तर्यामी क्योंकर हुआ और जब दुःखी जानता हो और देनहीं सक्ता तब पूर्ण समर्थ क्योंकर हुआ और जब समर्थ होकर नहींदेता तब दया और उदारता सेहीन जाना जाताहै और जब इसनिमित्त नहींदेता कि परलोक विषे सुखी करूंगा तब ऐसे जाना जाताहै कि दुःख दिये बिना सुख देनेको समर्थ नहींहोसक्ता ताते प्रसिद्ध है कि निर्द्धन पुरुष कोधवान् होकर ऐसा भी कहने लगता है कि समय विपरीत हुआहै और लोग अन्धहुयेहैं जो अनधिकारियों को पदार्थ और धन देते हैं तात्पर्य यह कि सन्तोष बिना यह मनुष्य इसप्रकार भगवंत से विमुख होताहै और अपने भले बुरेको पहिचान नहीं सक्ता ताते ऐसा पुरुष कोई दुर्लभ होताहै जो निर्द्धन होकर भी प्रतीति करके उसही विषे अपनी भलाई जाने

पर ऐसे मनुष्य बहुत होते हैं जो निर्द्धनताई विषे, व्याकुल होजाते हैं इसीकार-
ण से भगवत् ने यह धन भी जीवके छिद्रों को छिपानेवाला बनाया है और
शरीर के निर्वाहमात्र सग्रह करना सन्तजनों ने भी प्रमाण कहाहै ताते प्रसिद्ध
हुआ कि इसप्रकार करके यह धन भी केवल निंद्य नहीं बहुरि इसही धन विषे
एक यह भी लाभहै कि सर्व जिज्ञासुओं की अभिलाष परलोक के सुखपाने की
होती है सो परलोक का सुख तबहीं प्राप्त होताहै जब प्रथम तीन पदार्थ प्राप्तहोवें
सो एक तो विद्या और कोमल स्वभाव और इसकी स्थिति मन विषे होती है १
और दूसरा पदार्थ शरीर के विषे पायाजाता है सो वह आरोग्यता और जीव-
नाहै २ बहुरि तीसरा पदार्थ शरीर से बाहर पाया जाता है सो वह प्राणों की
रक्षा के निमित्त शुद्ध जीविकाहै ३ पर जब इस पुरुषकी श्रद्धा निष्काम होवे तब
इन पदार्थों करके परलोक के सुखको पायसक्ता है सो जिस पुरुषने इसप्रकार
निश्चय जाना है वह धनको कार्य्यमात्र अंगीकार करता है, और अधिक धन
की सामग्री को हलाहल विषकी नाईं जानता है सो इस वचनका अर्थ यही है
जो कहाहै, कि उत्तम पुरुषों को धनभी लाभदायक होताहै इसी पर महापुरुषने
कहा है कि जो पुरुष धनको धर्मके निमित्त प्रियतम रखताहैवह धर्मही को प्रिय-
तम रखताहै, और जो पुरुष अपनी वासनाके अनुसार धनको प्रियतम जानताहै
वह अपनी वासनाही का दास है और उसने इस मनुष्य जन्म के तात्पर्य को
नहीं समझा ताते महामूर्ख है इसी पर इब्राहीम मतने कहा है कि हे महाराज !
मेरी, और मेरे प्रियतमों की प्रेतपूजासे रक्षाकर अर्थ यह कि सोना चांदी प्रेतरूप
हैं, और सबही लोग संयुक्त इस को पूजते हैं ताते तू मेरे हृदय मे इसकी प्रीति
को दूरकर॥ अथ प्रकट करने लाभ और विघ्न धनके॥ ऐसे जान तू कि यह
धन सर्प की नाईं है अर्थ यह कि जैसे विष और मणि दोनों सर्पही मे उपजते
हैं तैसेही धन विषे भी गुण दोष पाये जाते हैं सो जबलग विष और मणि के
स्वरूपको भिन्न भिन्न करके न कहिये तबलग वचनका तात्पर्य परमसिद्ध नहीं
होता ताते मैं धनके गुण और दोष भिन्न भिन्न करके कहता हूं पर धनके लाभ
दो प्रकारके प्रसिद्धहैं सो एक तो समारी लाभहै कि भगवान् पुरुष जगत् विषे
बड़ाई को पावताहै और इत्यादिक अवर जो स्थूल लाभहैं सो प्रगटही प्रसिद्धहैं
बहुरि दूसरे धर्म के मार्ग विषे जनके लाभहैं सो सकल तीनहैं एक तो जो

शरीर की जीविका होती है और जितने शुभकर्म हैं सो वह शरीर के सम्पन्न होने से सिद्ध होते हैं ताते सर्व शुभ कर्मों का बीज शुद्ध जीविका है पर जब जीविका की चिन्ता रहती है तब उस मनसे भजन और अभ्यास कुछ नहीं होसक्ता तातें जब इस पुरुष की मनसा धर्म के मार्ग की होवे तब जीविका का संग्रह सम, नाम उसही मार्ग का तोशा होता है इसीपर एक साखी है कि संत के पास कुछ अनाज निष्पाप व्यवहार का आयाथा सो वह संत उस अनाज की मुष्टिभर के कहने लगे कि इस शुद्ध जीविका को मैं निरुद्यमियों के भरोसे से विशेष जानता हूं पर इस भेद को सोई पुरुष समझता है जिसको अपने हृदय की शुद्धता और अशुद्धता की बूझ होती है और तबहीं यह जानता है कि शुद्ध जीविका करके इसप्रकार हृदय विषे खेद रहता है और और लोगों की आशा दूर होजाती है और भजन विषे एकाग्रता दृढ़ होती है १ बहुरि दूसरा लाभ धर्ममार्ग संबंधी धन का यह है कि और जीवों को दान देता है तो भी इस पुरुष को भलाई प्राप्त होती है पर धन का देना भी चारप्रकार का है सो प्रथम यह है कि अर्थी और मांगिकी मनुष्यों की पूजा करनी तब उनकी प्रसन्नता करके व्यवहार और परमार्थ के सुख को प्राप्त होता है १ और दूसरा प्रकार देने का यह है कि मित्रों और संबंधियों के साथ भाव करना और सर्व कार्यों विषे उदार चित्त होना सो यह भी धन करके होता है २ बहुरि तीसरा यह कि जितने ही पुरुष इस को आगार से मंदे और जब उनको कुछ न देवे तब निन्दा करने लगते हैं जैसे ब्राह्मण च भाट व के प्रीतम होते हैं सो इन को देना भी बड़ा उपकार है काहेते कि यह सब निंदा करने से छूटते हैं ३ बहुरि चौथा प्रकार यह है कि यह मनुष्य सब क्रिया अपनी आपही कर नहीं सक्ता ताते कैसे पुरुषों के साथ व्यवहार का संग्रह होता है सेवा अपनी सेवा करनेवालों को देना भी विशेष है काहेते कि जब यह पुरुष अपनी क्रिया से निश्चिन्त होता है तब भजन विषे सावधान रहता है और यद्यपि अपने भाग की क्रिया आपही करनी विशेष है तो भी जिस जिज्ञासु का चित्त अनेक अभ्यास विषे दृढ़ होता है तब उसको स्थूल क्रिया को अन्यतो आ प्रकार सहे रह ॥ ४ ॥ २ बहुरि तीसरा लाभ धन का धर्ममार्ग संबन्धी यह है कि धन करके और भी बड़े बड़े पुण्यकार्य होते हैं जैसे कूप और ताल और पुलों का बनाना अथवा अभ्यागतों के निमित्त धर्मशाला और ठाकुरद्वारे बनाने सो इत्यादिक पुण्यस्थान ऐसे उत्तम

हैकि इन्हों करके चिरंकाल पर्यन्त अमित्यजीवोंको सुख होताहै पर इनकी सि-
द्धताभी धनकरके होतीहै ॥ अथ प्रकटकरते विघ्न धनके ॥ ताते जानतू कि इस
धन विषे केते विघ्न तो स्थूलहैं और केते ऐसेहैं कि धर्म्मके मार्गसे विमुखकरते
हैं सो यह विघ्नभी तीनप्रकारकेहैं प्रथम यह जो धनकरके भोगोंकी प्राप्ति और
पापक्रिया सुखेन होतीहै सो इस जीवका मन तो आगेही से ऐसा चपलहै कि
सर्वदा विषयों और पापोंकी ओर दौड़ता रहताहै और जब सन्मानादिक बड़ाई
को पावताहै तब शीघ्रही पापों विषे जाय गिरताहै और बुद्धिकी शुद्धता नष्ट
होजातीहै बहुरि जब भोगों और पापोंसे हठकरके आपको बचाया चाहै तोभी
बड़ापुरुषार्थ चाहिये काहेसे कि सम्पदा विषे विरक्त रहना महाकठिन है १ बहुरि
दूसरा विघ्न यहहै कि यद्यपि धनवान्पुरुष ऐसा विचारवान् होवे कि पाप कर्मोंसे
बचायेराखे तोभी खानपान और वस्त्रादि भोगों से मुक्त नहीं होसक्ता काहे से कि
ऐसा वैराग्य महा दुर्लभ है जिसकरके सम्पदा विषेही आपको संयम साथ राखे
जैसे धनअन्न के होतेहुये भी रूखा अनाज खावे अथवा सुन्दर वस्त्रोंके होतेहुये
ही कमली आदिक पहरे ताते जब ऐसे वैराग्यको प्राप्त नहीं होता तब शरीरका
स्वभाव अधिक भोगोंके साथ मिलजाताहै और राजसी व्यवहार का त्याग नहीं
करसक्ता बहुरि अधिक भोगोंकी उत्पत्ति पापसे रहित होनी कठिनहै इसीकार
ण से भोगीपुरुष अज्ञानकही पापोंके समुद्रविषे बहजाता है और इस संसार
के जीवने को स्वर्गवत् जानता है ताते परलोक के मार्ग से विमुख रहताहै और
जिसको भोगोंकी तृष्णा होती है वह धनके निमित्त नानाप्रकारके पाखण्ड क-
रताहै और राजाओं का निकटवर्ती हुआ चाहता है तब अनेक शत्रु और ईर्षा
करनेवाले उपज आवते हैं और परस्पर वैरभाव विषे दृढ़ होजाताहै सो ऐसे कर्म
सबही पाप रूपहैं तातेयह कि रजोगुणी बीजसे अवश्यही तामसी वृक्ष उप-
जताहै इसीपर महापुरुषने भी कहाहै कि मायाकी प्रीति सर्व पापों का कारणहै
और ऐसा महानरक है कि इसका अन्त कोई किन् नहीं आवता २ बहुरि तीसरा
विघ्न धनका यहहै कि यद्यपि धनवान् पुरुष भोगों और पापोंसे रहित भी होवे
और सर्वथा वैराग्य संयुक्त रहे और विचार की मर्यादा के साथ खर्चे करे तो भी
धनकी रक्षाके संकल्प विषे ऐसा लीन होजाताहै कि भजन और अभ्यास कर
नहीं सक्ता सो सर्व शुभकर्मों का बीज भगवत्भजन और भीतिहै और प्रीति इस

रूप यहहै कि भगवतसे इतर सर्वपदार्थों से विरक्त होने पर ऐसी अवस्था तब प्राप्त होती है जब और सर्व संकल्पों से मुक्त होताहै और धनवान् की विशेषता इस प्रकारहै कि जब अधिक सामग्री रखताहै तबतो सहजही व्यवहार पसरताहै पर जब और सामग्री कुछ न राखे और केवल सोना आदीही धरती विषे दाबराखे तौभी उसको सर्वदा यही संकल्प रहताहै कि ऐसा न होवे जो कोई पुरुष गोपन देखलेवे और अचानकही चुराय लेजावे तब मैं क्याकरूं तात्पर्य यह कि भगवान्का हृदय किसीप्रकार निस्संकल्प नहीं होता और चिंताका समुद्र होजाता है इसीपर संतजनों ने कहाहै कि जैसे जलविषे सूखा रहना असम्भव है तैसेही मायाविषे निर्लेप रहना कठिन है ताते मैंने धनके लाभ और विघ्न सबही प्रकट किये हैं पर जब बुद्धिमानों ने भलीप्रकार विचार करके देखाहै तब यही निश्चय किया है कि शरीर के निर्वाहमात्र शुद्धजीविका का संग्रह करना अमृतरूप है और इससे अधिक संपदा निस्संदेह विष रूपहै ॥ अथ प्रकट करने विघ्न तृष्णा के ॥ ताते जान तू कि यह तृष्णारूपी स्वभाव महानिंद्य है काहे से कि लोभी मनुष्य व्यवहार विषे भी अनादर को पावताहै और सदैव लज्जावान् रहताहै बहुरि इस लोभसे औरभी अनेक अवगुण उपजते हैं जैसे कपट और पाखण्ड और धनवानों की आधीनता विषे आसक्त रहना है और उनके अपमान को सहताहै और उनके झूठ को सत्य कहताहै सो इसमनुष्य को भगवत् ने प्रथम ही तृष्णा सहित उत्पन्न कियाहै पर यह तृष्णा संतोष बिना कदाचित दूर नहीं होती इसीपर महापुरुष ने कहा है कि यद्यपि इसमनुष्य को दो बँगले स्वर्ण से पूर्ण करदेवे तब तीसरेको चाहताहै ताते मृत्युही इसको तृप्तकरती है और और किसी पदार्थ करके तृप्त नहीं होता बहुरि योंभी कहाहै कि धनकी तृष्णा और जीवनेकी आशा कदाचित् पूर्ण नहीं होती ताते उत्तम पुरुष यही है जिसको धर्ममार्ग की बूझ प्राप्त हुई है और शरीर के निर्वाहमात्र शुद्धजीविका पर संतोष करता है और योंभी कहा है कि जबलग यह मनुष्य अपनी सर्व प्रारब्ध नहीं भोगता तबलग निस्संदेह मृत्यु नहीं होता ताते तृष्णाका त्यागकरो और संतोष सहित जीविका को उत्पन्न करो, और अधिक भोगों से विरक्त होवो और जो वार्ता अपने अर्थ हितलगती है वह औरों के अर्थ भी चाहो तब पूर्णिमान् होवोगे बहुरि एकबार महापुरुषने कुछ जिज्ञासुजनों को यह उपदेश किया था

कि भगवत् से इतर किसी को न पूजो और उसीकी आज्ञा विषे सावधान होओ और और किसी से याचना भी न करो सो जिन को महापुरुष ने यह उपदेश कियाथा उनकी ऐसी अवस्था हुईहै कि जब घोड़ेपर सवार होते और चाबुक हाथ से गिरपड़ता तब किसी को इसप्रकार न कहते थे कि हमको चाबुक उठा दो ताते आपही घोड़ेपर से उतरकर उठा लेते थे बहुरि मूसानामी महापुरुष ने कहा है ओ भगवत्के आगे इसप्रकार प्रार्थना करीथी कि हे महाराज! तेरी सर्व सृष्टि विषे अति धनवान् कौनहै तब आकाशवाणी हुई कि जिसपुरुष को यथा प्राप्ति विषे सन्तोष है सोई अति धनवान् है बहुरि बिनती करी कि हे महाराज! न्याय करनेवाला उत्तम कौनहै तब आकाशवाणी हुई कि जिसने अपने ऊपर न्याय किया है सोई उत्तम न्याय करनेवाला है इसी पर एक जिज्ञासु जन रूखी रोटी को जल के साथ भिगोकर खालेते थे और इसप्रकार कहते थे कि जिस ने ऐसी जीविका पर संतोष किया है वह सब संसार से अचाह रहता है और इब्न-मसऊद नामी सन्तने भी कहा है कि एक देवता सदैव जगत् विषे पुकारकर कहता है कि हे मनुष्यो! जो कुछ जीविका तुम्हारे शरीर के निर्वाह मात्र है सो तुमको वही विशेष है काहेसे कि इससे जितनी अधिक सामग्री होती है उससे प्रमाद और अचेतता उपजती है इसीपर एक और सतने कहाहै कि यह उदर तेरा सर्व मलिनता का घरहै ताते तू इस उदर की तृष्णा के निमित्त नरकगामी क्यों होताहै इसीपर महाराजने भी कहाहै कि हे मनुष्य! जब मैं तुझको अधिक धन देऊं तौभी आहारही करके तेरी तृप्ति होवेगी पर जब मैं तुझको आहारमात्रही देता रहूं और व्यवहार की विशेषता और परलोक का दण्ड धनवानों के शीशपर डारूं तब तेरे ऊपर इससे बड़ा उपकार कौन है और एक बुद्धिमान् ने कहाहै कि तृष्णावान् के समान दुःख सहनेवाला कोई नहीं और संतोषी के समान सुखी कोई नहीं और ईर्षा करनेवालेके समान चिन्तावान् कोई नहीं और वैराग्यवान् के समान सुखेनचित्त कोई नहीं और जो विद्यावान् करनीसे रहित होवे तिसके समान पश्चात्ताप करने योग्य और कोई नहीं इसी पर एक वार्ता है कि एक बधिकने एक ममोला चिड़ियाको फँसायाथा तब ममोले ने कहा कि जब तू मुझको मारकर भक्षण करेगा तौ भी तेरी तृप्ति न होवेगी ताते मैं तुझ को तीन उपदेश करताहूं सो तीनों करके तुझको अधिक लाभ होवेगा पर एक

वचन तेरे हाथ मेंही कहूंगा। बहुरि जब मुझको छोड़ेगा और मैं वृक्षके ऊपर जा बैठूंगा तब दूसरा वचन कहूंगा। और तीसरा वचन पहाड़ पर बैठकर कहूंगा तब बधिकने कहा कि बहुत भला मेरे प्रथम वचनको कह तब ममोला बोला कि जिस कार्य का समय बीत जावे तब उसके ऊपर पश्चात्ताप न करना। तब बधिक ने ममोले को छोड़ दिया और वृक्षके ऊपर जा बैठा तब बधिकने दूसरा वचन पूछा तब ममोलेने कहा कि असम्भव वार्त्तापर प्रतीति न करना इतना कह कर ममोला पहाड़पर जा बैठा और कहने लगा कि हे अभागी जो तू मुझको मारता तो मेरे उदरसे दो लाल निकसते और एक २ लाल दोदो मासे के प्रमाण भारी था सो जब तू उनको पावता तब ऐसा धनी होता कि कदाचित् निर्धनताको न देखता बधिकने जब यह वार्त्ता सुनी तब हाहाकार करके हाथ मलने लगा और बड़े पश्चात्तापको प्राप्त हुआ और इसप्रकार कहने लगा कि अब तीसरा वचन कह तब ममोले ने कहा कि तूने तो यह दोनों उपदेश भी बिसार दिये अब तीसरा सुन कर क्या करेगा काहेसे कि मैंने तुमसे कहा था कि बीतगये कार्य का पश्चात्ताप न करना और असम्भव वार्त्तापर प्रतीति न करना सो यह बड़ा आश्चर्य है कि मेरा शरीर ही दो मासेभर नहीं होवेगा तब चार मासेके लाल मेरे उदरमें क्योंकर समाते इतना कह कर ममोला उड़गया। सो इस वार्त्ताका तात्पर्य यह है कि लोभी मनुष्य होनी और अनहोनी वार्त्ताका विचार नहीं करता और लोभकरके अन्धा होजाता है इसीपर एक सन्तने कहा है कि इस मनुष्यके गले में विषयरूप लोभ की जेवड़ी रूप है और लोभ ही पांवों की बेड़ी है फिर जब तू लोभ को दूर करे तब तेरे गले से जेवड़ी और पांवसे बेड़ी टूट जावे और तू मुक्त होजावे॥ अब प्रकट करना उपाय हृदयका कि निवृत्त करने का॥ जाने जान तू कि तृष्णा की औषध इल्म और [illegible] कड़वा और मूर्खकी मिठाई अमृतरूपी तीक्ष्णता के साथ मिली हुई होती है सो जब मानसी रोगोंके सर्व उपायोंमें निर्मल नाहीं औषध मिलती है तब यह रोग दूर होजाते हैं तातें तृष्णा की औषध पांचप्रकारकी होती है प्रथम यह है कि अपने कार्य को घटावे [illegible] आहार और मोटे वस्त्र रक्खे तब इतने मात्र जीविका तृष्णासे रहित उत्पन्न होसकी है परन्तु जब नाना प्रकार के रसों और सुन्दर वस्त्रों की चाह रक्खे तब कदाचित् तृष्णा नहीं छूटती इसीपर महापुरुष ने भी कहा है कि जिस पुरुष का व्यवहार संयम के साथ है वह निर्धन कदाचित् नहीं होता और योगी ने भी कहा

है कि यह तीन लक्षण सर्व जीवों को मुक्त करनेवाले हैं सो प्रथम तो यह है कि गुप्त और प्रकट विषे सात्त्विक का भय करना और दूसरा यह है कि विचार की मर्यादा के अनुसार कार्य और अपने भावविषे विचरना और तीसरा यह कि सम्पदा और आपदा विषे समता सहित जीविका करनी इसी पर एक वार्ता है कि अबूदरदा नामी सन्त एकवार खजूरों के वृक्ष गिरे हुये चुनते थे और इसप्रकार कहते थे कि यथा योग्य जीविका विषे प्रसन्न रहना भी बड़ा पुरुषार्थ है १ बहुरि दूसरा उपाय तृष्णा के घटावने का यह है कि जब इस पुरुष को एक दिन की जीविका प्राप्त होवे तब दूसरे दिन की चिन्ता न करे पर यह मनुष्य इस प्रकार संशय उपजावता है कि अभी तो हमको बहुत जीवना है और कदाचित् कल्ह को दिन कुछ नहीं प्राप्त होवेगा तो अब ही उद्यम करके संग्रह कर लीजिये सो यह मन तेरा ऐसा मूढ़ है कि आगली चिन्ता करके आज ही दुःखी किया चाहता है और निर्धनताई के भय से अब ही तुझको निर्धन करता है और जब ऐसा संकल्प फुरे तब जिज्ञासु को इसप्रकार विचार किया चाहिये कि यह जीविका तृष्णा करके अधिक नहीं होती काहेसे कि प्रारब्ध तो महाराज की रची हुई है सो इस जीव को अवश्य ही आन पहुंचती है और योगी है कि जब अगले दिन जीविका न पहुंचे तो भी इसकी उत्पत्ति के विषे जितना विलम्ब आज होता है सो उतना ही कल्ह होवेगा ताते अब ही क्यों चिन्तावान् हूजिये इसी पर एक वार महापुरुष इब्नमसऊद के घर गये थे तब इब्नमसऊद को चिन्तावान् देखकर कहने लगे कि तुम शोक और चिन्ता मत करो काहेसे कि तुम्हारी प्रारब्ध तुमको अवश्य ही प्राप्त होवेगी इसी पर महाराजने भी कहा है कि भगवान् को भक्त बिना ही जीविका प्राप्त होती है इसी पर सिफ़यान सौरी ने कहा है कि तुमको तृष्णा से रहित होना ही विशेष है काहे से कि कोई संतोषवान् भूख करके दुःखी नहीं हुआ इस कारण कि भगवत् सर्व जीवों को उनके ऊपर दयालु करदेता है ताते पापियों को बिना ही उसकी प्रतिपाल होती है इसीपर एक और महापुरुषने कहा है कि जो मेरी प्रारब्ध है सो मुझको यत्न बिना ही प्राप्त होवेगी और जो मेरी प्रारब्ध नहीं सो सिद्धों मनुष्यों और देवतों के यत्न करके भी प्राप्त न होवेगी ताते जीविका के निमित्त मेरा यत्न और अन्वेषण क्या लाभ आवेगा २ बहुरि तीसरा उपाय यह है कि जब इसपुरुषको निराश होने विषे यत्न चाहता है तब ऐसे जानना प्रमाण कि जब किसी की आशा करूंगा तब मेरा

और खेदमें होजावेगा और मैं निर्लज्जताको भी प्राप्त होऊंगा और भगवत्से भी विमुख रहूंगा पर जब मैं निराशता विषेही धैर्य करूंगा तब निस्संदेहलाभ को प्राप्त होऊंगा तात्पर्य यह कि निराशता विषे धैर्य करना लोभके अप्राप्त हुए तिसे सर्व प्रकार विशेष है इसीपर महापुरुषने कहाहै कि प्रीतिमान्की बड़ाई यही है जो सन्तोष करके सर्व पदार्थ से अचाह रहना है ऐसेही अली सन्त ने कहा है कि जिसके साथ कुछ तेरा प्रयोजन है तब तू उसीका दासहै और जिसका प्रयोजन तेरे साथहै सो निस्संदेह यह तेराही दासहै और जिस पदार्थ से तू अचाहहै तब तुझको उसकी आधीनता नहीं रहती है बहुरि चौथा उपाय यह है कि जिज्ञासु प्रथम अपने हृदय विषे ऐसे विचार कर देखे कि मैं तृष्णा और लोभ किस निमित्त करताहूं पर जब मैं अहङ्कार के निमित्त करूं तब यह तो वृषभों और गर्दभों का कामहै, और जो कामादिकों के निमित्त तृष्णा करताहूं तो शूकर और पक्षी चिड़िया मुझसे अधिक भोगीहैं अथवा जब नाना प्रकारके वस्त्रादिक के निमित्त यत्न करताहूं तब केते तामसी मनुष्य भी मुझसे अधिक धनवान् हैं तात्पर्य यह कि जब इसप्रकार विचारकरके तृष्णा को दूर करे तब सर्वसंसार मे उत्तम अवस्था को पावे और सन्तजनों के पदको प्राप्त हुवे ॥ बहुरि पांचवा उपाय तृष्णाके घटाने का यहहै कि बारबार धनके विघ्नों को विचारे और इसप्रकार जाने कि धनवान् पुरुष इसलोक विषे भी डरता रहता है और परलोक विषे भी दण्डका अधिकारी होता है ताते जिज्ञासुको चाहिये कि सदैव आपसे अधिक निर्द्धनोंको देखतारहे और धनवानोंकी ओर न देखे तब भगवत् के उपकारको प्रकट जाने पर यह मन ऐसा शत्रु है कि सर्वदा इस मनुष्य को भटकावता रहताहै और ऐसा कहता है कि अमुक तो ऐसा धनवान्है और अमुक विद्यावान् तो किसी धनमें भगनहीं करता ताते तू क्यों त्यागकरता है सो इस प्रकार का उपाय यहहै कि आपसे विशेष अवस्थावाले को परमार्थ सम्बन्धमें देखे तब अपनी नीचताको प्रकट जाने और अभिमान से रहितहोवे और व्यवहार विषे आपसे अधिक निर्द्धनोंकी ओर देखे तब भगवत् के उपकार को ज्ञाताहोवे ॥ अथ प्रकट करनी महिमा उदारताकी ॥ ताते जान तू कि जैसे निर्द्धनताई विषे जिज्ञासुको सन्तोष चाहिये तैसेही धन और सम्पदा विषे प्रीतिमान् को उदारता विशेषहै और कृपणताको दूर करनाही भलाईका कारणहै

इसीपर महापुरुषने कहाहै कि उदारतारूपी वृक्षकी मूल स्वर्ग विषे है और शाखा इसलोक विषे है तातें उदार पुरुष उसही शाखाको पकड़कर अवश्यही स्वर्गको प्राप्त होताहै ऐसेही नरक विषे कृपणतारूपी वृक्षकी मूल है और शाखा इसलोक विषे है सो कृपण मनुष्य उसही शाखाको पकड़कर अवश्यही नरकको प्राप्त होताहै और यों भी कहाहै कि दो लक्षण भगवत्को अधिक प्रियतम हैं एक कोमल स्वभाव और दूसरा उदारता ऐसेही दो लक्षण निश्चयकरके भगवत्से विमुख करते हैं एक रूखा स्वभाव और दूसरा कृपणता तुम्हारे यों भी कहाहै कि उदार पुरुषके अवगुणको न देखो काहेसे कि उदार पुरुषको जब कुछ अवसर रुकजावै तब भगवत्ही उसकी सहाय करताहै और यों भी कहाहै कि उदार पुरुष भगवत्का निकटवर्ती है और परमसुख भी उसको निकट है और लोगोंके चित्तविषे भी प्रियतम लगताहै और नरकों से दूर है ऐसेही कृपण मनुष्य भगवत्के सुख से दूर है और लोगोंके चित्तसेभी दूर है और नरकोंसे निकट है इसीकारणसे कृपण मनुष्य यद्यपि भजनवान् होवे तोभी उससे क्रियाहीन उदार पुरुषको भगवत् अधिक प्रियतम रखताहै काहेसे कि कृपणता महामलिन स्वभाव है और यों भी कहाहै कि जिन पुरुषोंको परमपदकी प्राप्ति हुई है सो जप तप और व्रतकरके नहीं हुई वह हृदयकी शुद्धता और दया और उदारता करके उत्तमपद विषे स्थित हुए हैं इसीपर अलीवाथी सन्तने कहाहै कि जब तुझको सम्पदा प्राप्त होनेलगे तब उदारता सहित खर्चकर काहेसे कि दानकरके सम्पदा दूर न होवेगी और जब वह भी सामग्री तुझसे दूर होनेलगे तब भी निश्शंक होकर दे काहेसे कि वह तो आपही चलीजाती है और जब तू खर्चने की मनसा करेगा तब दूसरा अधिकारी होगा इसीपर एक वार्त्ता है कि कोई पुरुष अपने मनोरथ की पाती लिखकर हसननामी सन्तके निकट आया तब हसनजीने पाती के पढ़े बिनाही उससे कहा कि जितना कुछ तुझको चाहिये सो मांगले बहुरि किसीने पूछा कि तुमने पाती क्या नहीं पढ़ी तब वह कहने लगे कि जब मुझको पाती पढ़ने में ढील लगती और भगवत् मुझसे पूछता कि तैने अर्थीका अर्थ पूर्ण करने विषे इतनी देर क्यों लगाई तब मैं क्या उत्तर कहता इसीकारणसे मैंने पाती नहीं पढ़ी इसीपर एक और वार्त्ता है कि कोई धनवान्ने पचासहजार रुपया महापुरुषजीके भेंट कियाथा तब उन्होंने वह सब धन बांटदिया बहुरि जब धनवान्ने

की समय हुआ तब रूखाही भोजन खानेलगीं तब दासीने कहा कि जो तुम अपने निमित्तभी एक दो पैसा रखलेती तो क्याहोता तब उन्होंने कहा कि जब तू आगे मुझको स्मरण करानी तो तुझको भी उसमेंसे देदेती इसीपर एक और वार्त्ता है कि एक दिन अलीनामी सन्त रुदन करनेलगे तब किसीने पूछा कि तुम क्यों रोतेहो तब उन्होंने कहा कि सातदिन व्यतीतहुये हैं कि हमारे घर कोई अभ्यागत नहीं आयाहै ताते इसी निमित्त मैं रोताहूं बहुरि एक और वार्त्ता है कि एक प्रीतिमान्‌ने अपने मित्रसे कहाथा कि मुझको दोसौ रुपया देनाहै तब उस मित्रने दोसौ रुपये उसको आन दिये और पीछे रुदन करनेलगा तब उसकी स्त्रीने कहा कि जब तुम को श्रद्धा देनेकी न थी तब प्रथमही न देते जो अब रुदन करतेहो तब उन्होंने कहा कि मैं धनके निमित्त नहीं रोता पर इसनिमित्त रोताहूं कि मैं मित्रकी व्यथा से इतनी अचेत क्योंरहा जो उसको मांगना पड़ा सो मैंने यह मित्रकी बड़ी अवज्ञा करीहै ॥ अथ प्रकट करनी निषेधता कृपणता की ॥ ताते जान तू कि महाराज ने भी इसप्रकार कहाहै कि जिनको धनरूपी पदार्थ प्राप्तहुआ है और वह कृपणता करते हैं तब वह धनही उन को विघ्नदायक होता है और अन्तसमय विषे वही सम्पदा उनके गलेकी जंजीर होती है इसी पर महापुरुष ने भी यह कहा है कि कृपणता से सदैव दूर रहो काहे से कि इस कृपणता ने आगे भी बहुत लोगोंका नाशकिया है और जिनके ऊपर कृपणता प्रबल हुई है तिन्होंने निश्शंक होकर जीवोंका घातकिया है और अशुद्ध जीविकाको शुद्धकर जानाहै और योंभी कहाहै कि तीनस्वभाव इस जीवकी बुद्धि को नाश करनेवाले हैं सो प्रथम तो कृपणता है और दूसरा अशुद्ध वासनाके अनुसार वरतावि करना और तीसरा आपको विशेष जानकर अभिमान करना इसीपर एक वार्त्ता है कि दो पुरुषोंने कुछ धन महापुरुष से मांगाथा सो जब महापुरुषने उनको दिया तब वे अधिक प्रसन्नहुये बहुरि महापुरुष ने उमर की ओर दृष्टिकरिके कहा कि ये लोग अधिक विनती करके मुझसे मांगते हैं ताते मैं इनको कुछ देताहूं पर जब भलीप्रकार देखिये तब यह स्वांगताका द्रव्य उन को अग्निकी नाईं जलानेवाला है तब उमरने पूछा कि जब तुम इस द्रव्यको अग्निरूप जानतेहो तब उनको किस निमित्त देतेहो तब महापुरुषने कहा कि मैं उनकी अधिक दीनता देखकर भयवान् होताहूं और इनसे भी भयकरताहूं

कि कहीं मैंही कृपण न होजाऊं और मेरी कृपणता करके महाराज अप्रसन्न होजावें बहुरि एक और वार्त्ता है कि कोई पुरुष भगवत् के आगे इसप्रकार प्रार्थना करताथा कि हे महाराज! मेरे पापको तू क्षमाकर तब महापुरुषने उसको देखकर कहा कि तेरा पाप क्या है तब उसने कहा कि मेरा पाप अतिदीर्घ है और मुखसे कहा नहीं जाता बहुरि महापुरुष ने कहा कि तेरा पाप दीर्घ है कि पृथ्वी दीर्घ है तब उसने कहा कि मेरा पाप दीर्घ है बहुरि महापुरुषने कहा कि तेरापाप अधिक है अथवा आकाश अधिक है तब उसने कहा कि मेरापाप अधिक है बहुरि महापुरुषने कहा कि तेरापाप बड़ाहै अथवा महाराज की दया बड़ी है तब उसने कहा कि महाराजकी दया तो निस्सन्देह अमितहै तब महापुरुष ने कहा कि तू अपने पापको प्रसिद्ध करके कह तब उस पुरुषने कहा कि मैं अधिक धनवान्हू पर जब किसी याचकको आया देखताहू तब कृपणताकी अग्नि करके जलने लगताहू यह वार्त्ता सुनकर महापुरुषने कहा कि मुझसे दूरहो काहेसे कि यद्यपि तू सर्व आयुभर तीर्थोंपर स्थित होवे और रात्रि दिन भजन करता रहे बहुरि इतना रुदनकरे कि तेरे नेत्रों के जल करके बड़े प्रवाहचलें पर जबलग कृपणता का त्याग न करेगा तबलग नरकोंके दुःखसे न छूटेगा काहे से कि यह कृपणता मनमुखता है और अग्निरूप है और योंभी कहा है कि सदैव दो देवता भगवत् के आगे पुकार करके कहते हैं कि हे महाराज! धनको जोड़नेवालों की सम्पदा नष्टकर और उदार पुरुषोंको अधिक सम्पदादे बहुरि एकबार एक संतने शैतान से पूछाथा कि तू प्रियतम किसको रखताहै और शत्रु किसको जानता है तब उसने कहा कि मैं कृपण तपस्वीको प्रियतम रखताहूं काहे से कि वह तप और कष्टकरके दुःख खींचता है और कृपणता करके फल उसका नष्ट होजाताहै बहुरि राजसीपुरुष उदारको अपना शत्रु जानताहू काहेसे कि वह शरीर करके भी सुख भोगताहै और मैं डरताहू कि उदारता करके उसके ऊपर भगवत् क्षमा करे और अपनी दया करके उसको वैराग्य प्राप्त करदेवे ॥ अथ निरूपण परम उदारता का ॥ तातें जान तू कि एक उदारता है और एक परमउदारता है सो उदारता यहहै कि जिस पदार्थ की हमको अपेक्षा न होवे उसको भगवत् अर्थ उठादेवे और परमउदारता यहहै कि जिस पदार्थकी हमको अति अपेक्षा होवे और वह पदार्थ किसी और अर्थी को उठादेवे और ऐसेही परमकृपणता यहहै

कि यद्यपि उसको कुछ अपने शरीर की प्रयोजन हुवे तोभी खर्च नहीं करता और अपने मनोरथ को भी और मनुष्योंकी आज्ञा करके पूर्ण न किया होवे और अपने धनकी गांठको खोल नहीं सके और महापुरुष ने इसप्रकार कहा है कि जो पुरुष अपने अर्थको और दृष्टि न करे और औरके अर्थको पूर्ण करे तब उसके ऊपर भगवत् अतिप्रसन्न होताहै इसपर एकवार्ता है कि एक प्रीति मानिके घर कोई अभ्यागत आया था और उनके घरमें भोजन अल्पथा तब उन्हों ने दीपकको बुझादिया और मिलकर भोजन करनेको बैठे पर आप कुछ नहीं खातेथे और ऐसी रीति हाथ भोजन विषे डालते थे इसकरके कि यह अभ्यागत तृप्तहोकर खावे तब उनको यह प्रीति सुनकर महापुरुषने कहा कि तुम्हारी परम उदारता पर भगवत् अतिप्रसन्न होगा और मूसा महर्षिको भी आकाशवाणी हुई थी कि जो पुरुष सम्पूर्ण आयुष विषे एकवार भी अपने अर्थको त्याग करके और का अर्थ पूर्ण करता है तब मैं उसके साथ लेखा नहीं करता इसपर एक वार्ता है कि एक बड़ा धनी और उदार प्रीतिमान् अटन करता हुआ खजूर के बागमें जा निकसा तब उसके सामने बाग के रखवाले की दो रोटी आई वहांही उसी समय विषे एक कुकुर उसी बागमें आ निकला तब उस रखवाले ने एक रोटी उस को डालदी सो उस कुकुर ने वह शीघ्रही खाली तब उस रखवाले ने दूसरी भी डालदी तब यह आश्चर्य देखकर उस रखवाले से प्रीतिमान् ने पूछा कि तुमको पास कितना भोजन आता है तब उसने कहा कि जितना तुमने देखाहै तितनाही आताहै वहांरि प्रीतिमान्ने कहा कि तैने सबही किस निमित्त डालदिया तब उसने कहा कि यहां आगे में कुकुर कोई न था और यह दूर से आया है तातें मैंने ऐसी मनसा करी कि यह कुकुर भूखा न रहै तब उस प्रीतिमान्ने कहा कि लोग मुझको अपनेही उदार कहते हैं यह रखवाला तो मुझसे भी परमउदारहै इतना कहकर उस प्रीतिमान् ने उस बाग और रखवाले को मोल लेकर मुक्त करदिया और वह बाग भी उस रखवालेही को देदिया वहांरि एक और वार्ता है कि एकजाम्रत मनके गृहविषे कुछ अभ्यागत आयेथे और उनके घरमें भोजन अल्पथा तातें उन्होंने रोटियों के टूक करडाले और दीपक बुझा करके भोजन करने के निमित्त एकत्र होकर बैठे वहांरि जब एक घड़ी के पीछे दीपक उन्होंने जलाया तब भोजन सब ज्यों का त्यों धरा देखा और किसी ने

अंगीकार किया तात्पर्य यह कि सबने परम उदारता करी और योंही सिवे
मन सों करते भये कि हमारे मित्र तृप्त होकर जावें और हम को भूखा रहना मान्य
है इसी प्रकार के गृहस्थों में कहते हैं कि एकवार बड़े युद्ध में अबुल एवं नृप बहुत
लोग घायल हुये थे और मेरा भाई भी उन्हीं विषे घायल पड़ा था तब मैं उसके
निमित्त जल की पात्र भरकर लेगया सो जब मैं उसको जल देने लगा तब एक
और घायल ने कहा कि मुझको जल पिलादो तब मेरे भाई ने कहा कि प्रथम
इसी को पिलादो बहुरि जब मैं उसके निकट गया तब एक और ने जल मांगा
तब उस घायल ने भी कहा कि प्रथम उसी को जल देओ सो जब मैं उसके नि-
कट पहुंचा तब उनके उसका शरीर छूटगया बहुरि जब मैं उनके निकट आया तब
उस घायल और मेरे भाई के भी प्राण छूटगये प्रयोजन यह कि सबही ने अपने
जीने से भी अन्य मित्रों का जीना विशेष जाना और बशरहाफी नाम भी मनुष्य एवं
परमेश्वरदर्शी हुये हैं कि जब उनका शरीर छूटनेलगा तब एक अयाची ने आकर या-
चना करी और उनके पास कुछ न था तब उन्होंने अपने गले का वस्त्र उतार
दिया और फिर और किसी का वस्त्र मांगकर गले में पहरा बहुरि एक मुहूर्त के
पीछे शरीर का त्याग किया तब बुद्धिमानों ने कहा कि बशरहाफी जिस प्रकार इस
लोक विषे आये थे तैसेही परलोक विषे गये अर्थ यह कि जैसे नग्न जन्मे थे
तैसेही असंग्रह होकर गमन करते भये ॥ अथ उदारता कृपणता मर्याद निरू-
पण ॥ हे प्रीति जान तू कि बहुत पुरुष आपको उदार जानते हैं और वह और
लोगों के मत विषे कृपण होते हैं ताते इस भेद को अवश्य ही पहिचानना चाहिये
काहेसे कि यह कृपणतारूपी दीर्घरोग है और जबलग ऐसे रोग को पहिचानिये
नहीं तबलग इसका उपाय क्योंकर करिये और यह बात भी प्रसिद्ध है कि अ-
र्थियों के अर्थको सब कोई पूर्ण नहीं करसक्ता सो जब इसी को नाम कृपणता होवे
तब सबही कृपण होते हैं पर ऐसा नहीं काहेसे कि विचार की दृष्टि विषे जिस वस्तु
को देना प्रमाण होवे उसको जो पुरुष न देवे तब वह कृपण कहाजाता है और
जो पुरुष विचार के सहित सुगमही न देवे तब वह भी कृपण ही कहाजाता है और जो
पुरुष भोजन के निमित्त वस्तु लेता हुआ मोल का विवाद करे अथवा मनुष्यों को
आहार और वस्त्र संकुचन करके देवे अथवा याचकको देखकर अपने आहारको छि-
पायलेवे सो यह प्रसिद्ध कृपणता है काहेसे कि कृपणता का अर्थ यही है कि

जिस पदार्थका देना प्रमाणहै और जब वह वस्तु दे न सके तब जानिये कि यह कृपणहै इसकरके कि भगवतने यह धन व्यवहारके निमित्त उत्पन्न किया है सो जबलग इस भेदको न जाने और धनको इकट्ठा करताजावे तब यह कृपणताका लक्षण है बहुरि धनका देना प्रमाण यों है कि जिसप्रकार धर्मशास्त्र विषे कहाहै अथवा जिस करके भाव और दया प्रकटहोवे और धर्मशास्त्र विषे जो दशांश का देना अवश्यही कहा है सो यह संसारी जीवोंका अधिकार है काहे से कि यह अल्पबुद्धि मनुष्य इससे अधिक कुछ नहीं देसके वाले विचारवानों के मत विषे यहभी कृपणताहै पर भावके निमित्त जो धनका देना कहाहै सोइसका भी अधिकार भिन्न भिन्नहै जैसे एक वस्तु निर्द्धनोंको देनी योग्यहै और वही वस्तु धनवानों को देनी भली नहीं लगती अथवा अर्थियों को देनी प्रमाण है और मित्रको देनी निन्दहै अथवा सम्बन्धियों को देनी अयोग्य है और और लोगों को देनी अयोग्य नहीं अथवा कोई पदार्थ स्त्रियोंको देना विशेष है और पुरुषों को देना निन्द्यहै तात्पर्य यह कि यद्यपि धनका संचनाभी व्यवहार विषे विशेषहै पर जब संचने से अधिक प्रयोजन आन प्राप्तहोवे तब उस संचनेसे देना विशेष है और जबलग देनेका अधिक प्रयोजन न होवे तबलग धनका रखना प्रमाणहै और जो कृपण मनुष्यहै यह इस मर्यादाविषे स्थित नहीं होसक्ता जैसे कोई किसी के गृह विषे अभ्यागत आवे तब भाव और प्रीतिकरके उसका प्रतिपाल करना धनके संचने से विशेषहै पर जब अपने चित्तविषे यह अनुमान करलेवे कि मैंने तो आगेही दशांश दियाहै और उसके भावसे विमुख रहे सो यह प्रसिद्ध कृपणता व नीचताहै अथवा जब पड़ोसी इसका निर्द्धनहोवे और इसके पास अन्न बहुत होवे सो जब उसे क्षुधादेखकर कुछ न देवे तब यहभी कृपणताहै पर जबलग यथाशक्ति और दयाभाव संयुक्त देतारहे और इस पुरुष के पास धन इससेभी अधिकहोवे तौभी परलोककी भलाई के निमित्त ऐसे कार्य करने के योग्य है कि कूप और ताल और पुल और ठाकुरद्वारेआदिक जो धर्मके स्थानहैं और जिन करके चिरकालपर्यन्त अर्थीजीवों को सुख प्राप्त होतारहै सो तिनके बनाने विषे धनको लगावे पर जब ऐसे कार्य भी न करे तब संसारीजीवों के मत विषे कृपण नहीं कहाजाता और विचारवानों के मत विषे यह भी कृपणता है तात्पर्य यह कि जब शास्त्र के अनुसार और भाव के अनुसार देतारहे तब कृपणता से मुक्त

होताहै पर उदार तबही कहाजाता है जब उसका देना बढ़ताजावै सो यहभी धनकी मर्य्यादके अनुसार भिन्नभिन्न अधिकार होताहै पर जिसको देना सुगम होवै सो वह उदार कहाता है और जो पुरुष कठिनता करके देवे सो कृपण है अथवा जो मनुष्य यश और मानके निमित्त दानकरे अथवा प्रति उपकार की इच्छा राखे तोभी उदार नहीं काहेसे कि उदारता निष्काम देने का नाम है पर प्रयोजन से रहितहोना इस जीव से कठिन है काहे से कि प्रयोजन बिना देना भगवतही का काम है पर जब स्वर्ग अथवा मनकी कामनाके निमित्त देवे तब संसारी जीवों के मत विषे वह भी उदार है और संतजनों के मत विषे उदारता यह है कि निष्काम होकर जीव और शरीर सर्वस्व भगवत् अर्थ अर्पे देवे और महाराज की प्रीति विषे ऐसा मग्नहोवे कि अपने शरीर और जीवके देने को कुछ वस्तुही न जाने और अपने आपके देनेही करके आनन्दवान् होवे ॥ अथ उपाय कृपणता निवारण निरूपण ॥ तातें जान तू कि कृपणता का उपाय बूझ और करतूति के सम्बन्ध करके होताहै सो बूझ यह है कि प्रथमही कृपणता के कारण को पहिचाने काहेसे कि जिस रोगका कारण जाना नहीं जाता तब उसका उपाय भी नहीं करसक्ता सो कृपणता का कारण भोगों की प्रीति है सो धनबिना इन्द्रियों के भोग सिद्ध नहींहोते १ और दूसरा कारण जीनेकी अधिक आशाहै २ इस करके कि जब यह मनुष्य ऐसा जाने कि मुझको कुछ दिनों अथवा श्वासके उपरान्त मरनाहै तब स्वाभाविकही धनकी प्रीति क्षीण होजावे पर जिसको कुछ संतानें होती है तब उसका हृदय मरनेके समय भी नहीं खुलता काहेसे कि मोह करके पुत्रोंका जीनाभी अपने जीने की नाईं जानता है तातें कृपणताकी गांठि दृढ होजाती है इसीपर महापुरुषने कहाहै कि यह संतानही कृपणता और मोहका कारण है पर जो पुरुष भोगों के निमित्त धनको प्रियतम राखे अथवा धनकी प्रीतिकरके जिसको अधिक भोगोंकी अभिलाष उपजआवे तब उसको तो अधिक जीनेकी आशाकरके धन और सम्पदाके संचनेकी वासना दृढ होजाती है पर एक ऐसे कृपण पुरुष होते हैं कि वह केवल चांदी सोने हीको प्रियतम रखते हैं और जब रोगी होते हैं तब अपने शरीरका उपचार भी नहींकरते और दर्वाराभी नहीं देसक्ते और उनके मनमें यही प्रियतमताहै कि चांदी सोनाही हमारे निकट रहारहे और यद्यपि ऐसाभी जानते हैं कि जब हम

गयेगे, तब इनगोंसोंकि यह भगवन हमसे शत्रुही होजावेंगे, तौभी कृपणताकरके नाश नहीं करसकैंगे, और जो यह ऐसा होवे, कि इसका उपाय करना बहुत कठिन होता है पर जब मैंने कृपणता के कारण को जाना तब इसप्रकार समझना चाहिये कि भोगों की प्रीति का उपाय, समझ, है ताते जब यह पुरुष संतोष करके भोगों का त्याग करता है तब स्वाभाविकही धनकी प्रीति क्षीण होजाती है, और अधिक जीने की आशा का उपाय यह है कि सदैव मृत्यु को चेतता रहे, और अपने सम्बन्धियों की ओर विचार करके देखे कि मेरी बाई यह भी जनको सचतेथे और मरते से बचते थे बहुरि अचानक ही पश्चात्ताप संयुक्त मृत्यु को प्राप्त हुये, और वह धन सबही उनके शत्रु ले गये बहुरि पुत्रों की निर्धनता के भयकरके जो कृपणता होती है सो, तिस का उपाय यह है कि सर्वजीवों का उत्पत्ति और पालन कर्त्ता भगवत्‌ही को जाने और इसप्रकार समझे कि जिसके अदृष्ट विषे भगवत् ने निर्धनता लिखी है वह मेरी कृपणता करके किसी प्रकार धनवान न होवेगा और जब मेरी सम्पदा अधिक शेष रहेगी, तौभी व्यर्थही नष्ट होजावेगी और जो इनकी प्रारब्ध विषे भगवत्‌ने धन सम्पदा रची है तब मेरी सम्पदा बिनाही उनको धन प्राप्त होवेगा, और यह वार्त्ता भी प्रसिद्ध है, कि कैसे पुरुष पिता की सम्पदा बिनाही धनवान् हुए जाते हैं और कैसे पुरुषों को पिता का धन भी अधिक प्राप्त हुआ तौभी निर्धन होगये हैं ताते इसप्रकार विचारकरे कि जो मेरे पुत्र भगवत् के आज्ञाकारी हुये तो उनको भगवत् की प्रसन्नताही बहुत है, और जो भगवत् की आज्ञा से विमुख हुये तब उनको निर्धनताही विशेष है, काहेसे कि निर्धनता करके अनेक पापों से बचेंगे ॥ बहुरि जिसने धन कृपणता की निन्दा और उदारता की विशेषता विषे सन्तजनों के अर्थ कहे भी तिनका बारंबार विचार और ऐसा जाने कि कृपण मनुष्य यद्यपि धनवान् होवे तौभी निश्चय ईह नरकगामी होवेगा ताते जो धन और सम्पदा महाराज की अप्रसन्नता और नरकों का कारण है सो तिस धन करके मुझको क्या लाभ होवेगा, बहुरि कृपण मनुष्यों की ओर देखे कि कृपण मनुष्य सबही अप्रसन्न कैसे अभिमान युक्त होते हैं और सब कोई उनका निरादर करता है ताते जब मैं भी कृपणता करूंगा तब इसप्रकार ही सबलोगों के अप्रसन्नता को प्राप्त होऊंगा, तो मुझ को जो आप कृपणता की [illegible]

तब करतूति करके इसप्रकार उपाय होताहै कि जिससमय इस मनुष्य के हृदय विषे कुछ दया दान की श्रद्धा फुरे तब उसी समय श्रद्धाको पूर्णकरे और उस सात्त्विकीसंकल्पको व्यर्थ न डाले इसीपर एक वार्त्ता है कि एक सन्त मल त्यागनेके स्थानविषे गयेथे उसीसमय विषे एक याचकने आकरकहा कि मुझको कुछ देवो तब उन्होंने उसी स्थानसे अपने अंगका वस्त्र उतारकर अपने सेवक को डारदिया और इसप्रकार कहा कि यह वस्त्र इस याचकको देदो बहुरि जब उसस्थानसे बाहरनिकसे तब टहलुवेने कहा कि तुमने इतना धैर्य्य क्यों नहींकिया कि जब बाहर निकसते तब उठायदेते तब उन्होंने कहा कि मैं इस वार्त्तासे डरा था कि अब तो मेरे हृदय विषे देनेका संकल्प फुराहै पर जब और संकल्प उपजकर इस श्रद्धाको गिरायदेवे तब मेरा अकाज होवेगा पर यह वार्त्ता भी निस्सन्देह है कि धनके दिये बिना किसीप्रकार कृपणता दूर नहींहोती जैसे प्रियतमके बिछुरे बिना प्रेमीका मोह नहीं छूटता तैसेही धनकी प्रीतिको दूरकरने का उपाय यही है कि धनका त्यागकरे ताते जब विचारकरके देखिये तब इस धनको समुद्र विषे डालदेना भी कृपणतासे विशेषहै और धनका संग्रह महानिन्द्यहै पर कृपणताको दूरकरनेका एक उत्तम उपाय यह भी है कि अपने मनको यश और मानका लालच देवे और उदारता विषे सावधान होवे अर्थ यह कि मनकी अभिलाषा करके धनकी तृष्णा को घटावे बहुरि जब धनकी तृष्णासे मुक्तहोवे तब यत्न करके मानकी अभिलाषा को भी दूरकरे सो इसका दृष्टान्त यह है कि जैसे प्रथम बालक को माताके दूधसे वर्जित किया चाहते हैं तब उसको किसी और खानपान का लालच देकर पुचकार रखते हैं बहुरि जब वह दूध उसको बिसरण होजाताहै तब उसको उस खानपानका भी अधिक लालच नहीं रहता तैसेही एक यह भी भला उपाय है कि एक स्वभाव की अधिकता करके दूसरे स्वभाव को घटावे और पीछे उस स्वभावकी अधिकताको भी दूर करदेवे जैसे किसी के वस्त्रमें रुधिर लगाहोवे तब चाहिये कि प्रथम उसको मूत्रसे धोवे बहुरि जब रुधिरका दाग दूर होजावे तब शुद्ध जल करके मूत्रकी अपवित्रता को भी दूर करदेवे तैसेही जब मानकी अभिलाषा विषे कल्यायमान न होजावे तब मानकरके कृपणता को दूरकरना विशेष है पर जब और भांतिकरके देखिये तब यह वार्त्ता भी प्रसिद्ध है कि यद्यपि मान विषही आगार होकर कृपणताको दूर

करे है तौभी कृपणता को सन्तजनों ने मानसे अत्यन्त कोमल है काहेसे कि कृपणता और मान दोनों यद्यपि मन के स्वभाव हैं पर तौभी इस विषे इतना भेद है कि जैसे एक स्वप्न का भोग होवे और एक स्वप्न विषे मल का स्थान पावे सो यद्यपि जाग्रत् की अपेक्षा करके दोनों ही मिथ्या हैं पर स्वप्न विषे उस मलिन स्थान से भोग विशेष है तातें प्रसिद्ध हुआ कि मानके वास्ते करके उदारता निन्द्य नहीं इस करके अभिमान और दिखलावा भजन विषे निस्सन्देह निषिद्ध कहे हैं व्यवहार विषे नहीं तात्पर्य यह कि कृपण को मानधारी उदारता पर दोष रखना प्रमाण नहीं काहेसे कि कृपणता की मलिनता से मानसहित उदारता करनी ही उत्तम है तातें जिस पुरुष को कृपणता के दूर करने की इच्छा होवे तिसको चाहिये कि जबलग उदारता का स्वभाव दृढ़ न होजावे तबलग यत्न करके भी धनको देवे तातें केते सन्तजनों ने इस प्रकार भी किया है कि जिज्ञासु को जब देखते थे कि एक स्थान विषे आसक्त होगया है तब उस स्थानसे और स्थानविषे स्थित करतेथे और फिर उस स्थानकी सामग्री भी अर्थियों को उठादेते थे और जब देखते थे कि इस भी [illegible] किसी नये वस्त्र विषे आसक्त हुई है तब वह वस्त्र भी किसी याचक को दिलवा देतेथे इसीपर एक वार्त्ता है कि एक प्रीतिमान् महापुरुष के पास पांव का जूता ले आया था सो उन्होंने पहनलिया फिर जब भजन करनेलगे तब उसी जूते की ओर दृष्टि गई तब ऐसा कहनेलगे कि मेरा पुराना जोड़ाही लेआओ तातें प्रसिद्ध हुआ कि धनके त्याग बिना धनका मोह नहीं छूटता सो जबलग इस पुरुष का हाथ खुलाहुआ नहीं होता तबलग हृदय भी नहीं खुलता इस करके कि जब यह मनुष्य निर्धन होता है तब उदार और खुला हृदय रहता है और जब आगे पास कुछ धन इकट्ठा होजाता है तब संचने के रस विषे बन्धायमान होजाता है और ऐसा कृपण होता है कि मानो नहीं कमाया और जो पदार्थ इसके पास नहीं होता तो [illegible] उससे निर्मोह रहता है इसीपर एक वार्त्ता है कि एक राजा के आगे किसी पुरुष ने रत्नों का जड़ा हुआ कटोरा भेंट रक्खा था तब राजा ने उस कटोरे को देखकर एक बुद्धिमान् से पूछा कि यह [illegible] तब उस बुद्धिमान् ने कहा कि यह कटोरा शोक और निर्धनता [illegible] काहेसे कि जब टूट जावेगा तब इसके समान और कटोरा पाया न जावेगा सो इसही निर्धनताई करके तुमको शोक

होवेगा और जब यह कटोरा तेरे पास न था तब तू निर्धनताई और शोक से मुक्तथा सो दैव संयोग कर वह कटोरा टूटगया और राजाको अधिक शोक प्राप्त हुआ तब कहनेलगा कि उस बुद्धिमान्‌ने सत्य कहाथा॥ अथ प्रकटकरने मन्त्र धन के॥ ताते जान तू कि यह धन सर्प की नाईहै कि इस विषे विष और अमृत दोनों पायेजाते हैं ताते मैने पीछे भी वर्णन किया है कि मन्त्रके सीखे विना धन रूपी सर्पको हाथ लगाना प्रमाण नहीं है पर जब कोई ऐसा कहे कि केते सन्त जन आगे भी हुये हैं सो जब धनका रखना अयोग्य होता तो वे किस निमित्त रखते सो इसका दृष्टान्त यह है कि जैसे कोई बालक किसी सपेरेके हाथ में सर्प को देखे और इसप्रकार कहे कि यह पुरुष सर्प को कोमल जानकर पकड़ताहै ताते वह बालक भी सर्पपर हाथडाले तब शीघ्रही नष्टहोजावे सो धनरूपी सर्पके मन्त्र पांचहैं एक यहहै कि प्रथम धनके कार्य्यको पहिंचाने सो धनकी उत्पत्तिका कारण यह है कि इस नरके शरीर के खानपान और वस्त्रका कार्य्य सिद्धहोताहै और शरीर इन्द्रियोंका स्थानहै औरइन्द्रिया बुद्धि की टहल करनेवाली हैं और बुद्धिका काम यह है कि इन्द्रियों करके भगवत्‌की कारीगरी को देखकर महाराज की सामर्थ्यता को पहिंचाने सो भगवंत्‌ की पहिंचान करके जीवात्मा शुद्ध होताहै ताते जिस पुरुष ने इस भेद को समझाहै वह कार्य्यमात्रही धनको रखताहै और अधिक आसक्त नहीं होता १ बहुरि दूसरा मन्त्र यहहै कि प्रथम धन की उत्पत्ति छल और पाप से रहित करे और विचार की मर्यादा अनुसार करे २ बहुरि तीसरा मन्त्र यहहै कि शरीर के कार्य से अधिक संग्रह न करे और जब कोई अर्थी देखे तब कृपणता करके उससे दुराय न राखे अथवा जब अधिक उदारता न करसके तबभी मर्यादा के अनुसार दानदेवे ३ बहुरि चौथा मन्त्र यह है कि अपनी जीविका संयम के साथ करे और अधिक भोगों के विषे धन को खर्च न करे काहेसे कि संयम सहित जीविकाकरनी निर्दोष व्यवहारमेंभी विशेष है ४ बहुरि पांचवां मन्त्र यहहै कि धनके संचने और खर्च करनेविषे मनसा शुद्ध राखे और शुद्ध मनसा यह है कि जब किसी पदार्थ को अङ्गीकार करे तब उस करके अनित्य भजनविषे दृढ़होने की भावना राखे और जब किसी पदार्थ का त्याग करे तब भी मायाकी सामग्रीसे निरन्तर होने के निमित्त त्याग करे तात्पर्य्य यह कि सर्वथा अपने चित्तको निरन्तर भगवान्‌के मार्ग विषे सावधान राखे अनन्त

पुरुष इस भेदको समझकर धन को रखता है तब उसको धन के संग्रह करके दोष नहीं होता और धनका विष उसको स्पर्श नहीं करता इसीपर अलीसन्त ने कहा है कि जब कोई पुरुष सर्व पृथ्वी के धनको सग्रहकरे और सर्वमनसा उससे शुद्धहोवे तब निश्चय निर्दोषही रहता है और वह वैरागीहै और जब कोई पुरुष केवल असग्रही होवे पर मनसा उसकी निष्काम न होवे तब वह वैराग्यवान् नहीं कहाजाता ताते चाहिये कि जिज्ञासुका हृदय सर्वथा भगवत्के भजन की ओर सम्मुख रहे तब उसकी क्रिया सफल होती है और उसका भोजन करना और मल त्यागनाभी पुण्यरूप होता है काहे से कि यह सबही क्रिया शरीर को चाहियेहैं और धर्मके मार्ग विषे शरीरका सम्बन्धहै ताते शुद्ध मनसाकरके सर्व कर्म फलदायकहोते हैं पर बहुत मनुष्य अवेतता करके धनरूपी सर्प के मर्मों को जान नहीं सके और मनकी शुद्धताकोभी नहीं पहिंचानते अथवा जब जानतेभीहैं तब करतूति विषे दृढ़ नहीं होते ताते उनको यही विशेषहै कि धनकी अधिकता का त्यागकरें काहे से कि यद्यपि यह पुरुष धनकी अधिकता करके भोगोंकी अधिकता विषे आसक्त न होवे तोभी संचने और रखने की विशेषता को पावता है इसीपर एक वार्ता है कि एक प्रीतिमान् महापुरुषके शिष्यथे और उनके पास धनभी बहुत था सो एकबार उनके वनिज व्योपारकी सम्पदाय मा देशसे लेकर लोग आये और उन्होंके शब्दका नगर में बड़ाशोर हुआ तबवह शोर सुनकर आयशा महापुरुषकी स्त्रीने कहा कि महापुरुषने सत्य कहाथा सो यही वार्ता किसी ने उस प्रीतिमान् को सुनाई तब वह अधीन होकर आयशाके निकट आये और पूछनेलगे कि महापुरुषने क्या कहाथा तब आयशा ने कहा कि एकबार महापुरुष ने इसप्रकार कहाथा कि जबहमने सूक्ष्म दृष्टिकरके ध्यान विषे स्वर्ग को देखा तब केते वैराग्यवान् वहां दृष्टिआये पर हमने स्वर्गविषे धनवान् जाता हुआ कोई नहीं देखा पर सब वैराग्यवानों के पीछे एक अमुक प्रीतिमान चला जाताथा सो चलने को समर्थ न होताथा ताते यत्न करके गिरता गिरता स्वर्ग विषे जाय प्राप्त हुआ सो जब यह वार्ता उन प्रीतिमान् ने सुनी तब प्रसन्न होकर सब ऊंट और जो कुछ उनके ऊपर वस्तुथी सो अर्थियोंको उदारता की और जेते दास संग थे सो सब मुक्त करदिये और ऐसा कहनेलगे कि मैंभी किसी प्रकार वैराग्यवानों के साथ जाय पहुँचू तो भलाहै इसीपर एक और भी

।तमानूने कहाहै कि जब मैं तीनसहस्र रुपया।पापसे रहित नित्यप्रति उत्पन्नकरूं और उसको धर्महीके अर्थ खर्च करूं और भजन स्मरण विषे भी सावधान रहूं तोभी मैं धनकी विशेषता को नहीं चाहता तब किसीने पूछा कि तुम ऐसे निर्दोष धनको क्यों नहीं चाहते तब उन्होंने कहा कि यद्यपि मैं अपनी बुद्धि के अनुसार ऐसी शुद्धता करूं तोभी मुझसे परलोक विषे पूछेंगे कि तैंने यह धन क्योंकर उत्पन्न किया था और किसप्रकार लगाया था सो मैं अपने विषे इतने प्रश्नोंके उत्तरोंकी सामर्थ्य नहीं देखता इसीपर महापुरुषने कहाहै कि जिनपुरुषों ने पापसहित धन उपजाकरके पापों विषे खर्चा है सो वे भी नरकगामी होवेंगे और जिन्होंने पापरहित धन उत्पन्न करके भोगों विषे लगायाहै ते भी नरक को प्राप्त होवेंगे और जिन्होंने पापकृत धन दान किया होवेगा ते भी नरक ते न छूटेंगे बहुरि जिसने पाप से रहित धन उपजाया होवेगा और धर्मही के अर्थ लगाया होवेगा तब उसको परलोक विषे स्थित करके विचार करेंगे कि मत भजनसे विमुख रहाहोवे अथवा अधिक भोगों विषे विचरा होवे अथवा दानकरके अभिमानी हुआ होवे अथवा किसी सम्बन्धी और निर्धन पड़ोसीकी सुरति न लीहोवे अथवा निविसयुक्त महाराज के उपकार का धन्यवाद न किया होवे इसी प्रकार धनवान् से एक एक वार्त्ता पूछेंगे सो जब कुछ अवज्ञा हुई होवेगी तब निस्सन्देह ताड़ना होवेगी बहुरि महापुरुषने कहाहै कि मैंने इसी निमित्त निर्धनताई को अङ्गीकार कियाहै कि और लोगभी निर्धनताई को भला जानें बहुरि एकवार महापुरुष अपनी पुत्री के द्वारपर एक भीतिमान के साथ जाय खड़े हुये और पूछनेलगे कि हम भीतर आवें तब पुत्रीने कहा बहुत अच्छा पर मेरे अङ्गपर वस्त्र थोड़ाहै तब महापुरुषने अपना वस्त्र उतारकर भीतर डालदिया बहुरि जब भीतरगये तब कहनेलगे कि हे पुत्री ! तेरी क्या अवस्था है तब पुत्रीने कहा कि मैं रोग और भूख करके अति आतुरहूं और आहारमात्र भी हाथ कुछ नहीं लगता वामे अब मेरे विषे भूख सहनेकी सामर्थ्य नहीं तब महापुरुषने कहा कि हे पुत्री ! तू अधैर्य न कर मुझको भी तीनदिन भूखेही व्यतीत हुये हैं सो यद्यपि मैं ईश्वर महाराज से मांगूं तो निस्सन्देह मुझको प्राप्तहोवे पर मैंने मायारूपी सुखों से विरक्त होकर परलोकही के सुखों को अङ्गीकार किया है तातें मैं किसी पदार्थ की चाहना नहीं करता बहुरि पुत्री के शीश पर हाथ रखकर कहनेलगे कि

तू इसही वैराग्य करके मन विषे उत्तम होवेगी और परमसुख को पावेगी ताते धैर्य धरकर भगवत् का धन्यवाद कर इसीपर एक और वार्ता है कि ईसा महात्मा के साथ एक पुरुष मार्ग विषे संगी हुआथा और तीन रोटी उन के पास थीं सो जब चलते हुये नदी के तीरपर प्राप्त हुये तब दोनों पुरुषों ने दो रोटी भोजन करीं बहुरि जब ईसाजी नदी की ओर गये तब दूसरे पुरुष ने तीसरी रोटी भी खाली सो ईसाजी ने आकर पूछा कि तीसरी रोटी किसने ली है तब उसने कहा कि मैं नहीं जानता बहुरि जब आगे चले तब एक मृग मिला सो उसको मारकर दोनों ने भोजन कियो और फिर भगवत् का नाम लेकर ईसाजी ने उसको सजीव कर दिया और संगी से कहने लगे कि जिस महाराज की तैंने इतनी सामर्थ्य देखी है सो तिस की दुहाई करके कहो कि तीसरी रोटी कहां है बहुरि उसने कहा कि मुझ को कुछ खबर नहीं फिर वहां से आगे चले तब आगे एक नदी आई सो उस पुरुष का हाथ पकड़कर सूखेही पार उतर गये बहुरि ईसाजी ने कहा कि जिस महाराज की सामर्थ्य करके तू सूखाही उतर आया है सो तिसको अन्तर्यामी जान कर कहो कि तीसरी रोटी कहां है तब उस पुरुष ने कहा कि मैं तो नहीं जानता बहुरि जब आगे गये तब वहां बहुतसा रेत इकट्ठा किया और भगवत् का नाम लेकर उसको स्वर्ण कर दिया तब उस स्वर्ण के तीन भाग करके ईसाजी ने इस प्रकार कहा कि एक भाग मेरा और एक भाग तेरा और एक भाग उसका जिसने तीसरी रोटी खाई है तब वह पुरुष लोभ करके कहने लगा कि वह रोटी तो मैंनेही खाई थी तब ईसाजी ने कहा कि सोने के तीनों ढेर तूहीले ऐसा कहकर चले गये और वह पुरुष वहांही बैठ रहा बहुरि दो पुरुष और वहां आन प्राप्त हुये और यह मनसा करने लगे कि इस पुरुष को मारकर सब सोना हमहीं ले जावें तब आधा आधा बांट लेवें सो यही बात मानकर एक पुरुष नगर विषे गया कि मैं तुम्हारे निमित्त भोजन ले आऊं बहुरि उसने चित्त विषे धरा कि मैं उस से सोने के दो किस निमित्त दें ताते रोटियों के विषे विष मिला लाया और वह दोनों पुरुष जो सोने के ढेरपर बैठे थे तिन्होंने यह मनसा धारी थी कि जब वह पुरुष भोजन लेकर आवै तब उसको मारडालें और तब धन हमहीं बांटलेवें बहुरि जब वह पुरुष आया तब उन्होंने शीघ्र ही मारडाला और फिर वह मिलकर भोजन करनेलगे तब विष के प्रवेश करके वहभी मृतक हुये और सोने के ढेर तीनों वहांही

पड़ेरहे बहुरि, जब ईसाजी फिर उसीमार्ग आये तो देखा कि सोने के ढेर योंही पड़े हुये हैं और तीनपुरुष मृत्यु को प्राप्तहुये हैं तब अपने और भिपतर्गों से कहा कि यह माया ऐसीही छलरूपहै ताते भययुक्त इसका त्यागकरो तात्पर्य यह कि यद्यपि पुरुष बुद्धि और बल संयुक्त होवे तौभी अधिक धनका अंगीकार न करे तो भलाहै काहेसे कि बहुतसे सर्प पकड़नेवाले पुरुष सर्पही के डसने करके मृतक होते हैं जिसके ऊपर भगवत् अपनी सहायता करे और उसको सर्व विघ्नोंसे बचायलेवे तब उसकी वार्त्ता वचनसे अगोचर है ॥

सातवांसर्ग ॥

मान बड़ाई की प्रीतिके उपाय के वर्णन में ॥

॥ ताते जान तू कि मान और बड़ाई और अपनी स्तुतिकी प्रीतिकरके बहुत से लोगोंकी बुद्धिका नाश हुआहै और मानही की प्रीति करके बैरभाव और और अनेक पापों विषे आसक्त होते हैं काहेसे कि जब मानकी अधिक प्रीति बढ़ती है तब धर्मके मार्ग से भ्रष्ट होजाता है और उस पुरुषका हृदय झूठ और कपट विषे यही वर्द्धमान होताहै इसीपर महापुरुष ने कहाहै कि धन और मानकी प्रीति कपटको इसप्रकार बढ़ाती है कि जैसे खेती को जल शीघ्रही वृद्धि करलेता है इसीपर अलीसन्तने भी कहाहै कि सर्वसंसार को दो अवगुणों ने नाश किया है सो एक वासनाके अनुसार भोगोंविषे विचरना और दूसरे मान की प्रीतिविषे आसक्तहोना ताते इन दो विघ्नोंसे कोई विरलाही छूटताहै जो मान और स्तुतिकी चाह न करे और मायाके भोगों से विरक्तरहे इसीपर महाराज ने भी कहा है कि परलोक की भलाई उसही को प्राप्तहोती है जिसको मान और बड़ाई की अभिलाष कुछ न होवे और महापुरुष ने कहाहै कि जिन पुरुषोंकी अवस्था बाहर से कुचील भासती है और लोग उनको बावरा जानकर उनका वचन नहीं सुनते और धनवान्भी उनका आदर नहीं करते पर हृदय उनका भगवत्के प्रेम करके ऐसा उज्ज्वल है कि उन ही दया करके सब लोगों को आनन्द प्राप्त होती है सो परमसुख के वही अधिकारी हैं और यौंभी कहा है कि इस संसार विषे एक ऐसे पुरुष होतेहैं कि जब निर्भिमान सुखपावें सब कोई पुरुष उनको एक पैसाभी नहींदेता पर जब महाराज से बैकुण्ठको चाहकरैं तौभी उनको सुगमही प्राप्त होताहै इसीपर उमरनामी सन्तने कहा है कि मैंने एक प्रीतिमा-

को एक रात और दिन रोते देखा तब मैंने उससे पूछा कि तू क्यों रोता है तब उसने कहा कि मैंने महापुरुष के मुख से इसप्रकार सुना है कि थोड़ा कपट भी गर्व सूक्ष्म है और भगवत् ऐसे बैरागियों को प्रियतम रखता है जो आपको प्रगट पावेंही नहीं और कोई उनको पहिचान भी नहीं सका पर हृदय उनका महाउज्ज्वल है और सब अन्धेरों से मुक्त हुये हैं इसीपर इब्राहीम अदहम सन्त ने कहा है कि जिसको इन्द्रियादिक भोग और अपनी स्तुति प्रिय लगती है सो ऐसा मनुष्य धर्म के मार्ग विषे सच्चा नहीं कहा जाता है इसीपर एक और सन्त ने कहा है कि सच्चे पुरुष का चिह्न यह है कि आपको किसी प्रकार लखावे नहीं इसी पर इब्न नवमरी सन्त ने कहा है कि जिस पुरुष की बुद्धि दृढ़ नहीं होती और लोग उसका सन्मान करते हैं तब उसका हृदय स्थिर नहीं रहता बहुरि एक बार अयुबनामी सन्त मार्ग विषे चले जाते थे सो बहुत पुरुष उनके लगचले तब कहने लगे कि भगवत् इस वार्त्ता को भलीप्रकार जानता है कि मैं अपने हृदय विषे जगत के आदर को भला नहीं जानता और इस आदर को देखकर भगवत् के भय करके संकुच जाता हूं इसीपर सिफयान सौरी सन्त ने कहा है कि पुरातनों ने भारी वः रखनेवाले को वस्त्र भी निन्द्य कहा है अर्थ यह कि जिस वस्त्र नवीन अथवा पुराने करके यह मनुष्य कुछ विशेष पावे सो ऐसा वस्त्र रखना अयोग्य है और जिनको को इसप्रकार विचरना प्रमाण है कि कोई इनकी वार्ता न जाने इसीपर बशर हाफी सन्त ने कहा है कि मानधारी पुरुष लोक और परलोक विषे मंद होता है॥ अथ प्रकट करना रूप मान का॥ तातें मान तू जि जिसे धनमान का अर्थ यह है कि सम्पदा और धन की सामग्री उसके पास होती है तैसेही ऐश्वर्यमान का अर्थ यह है कि लोगों के चित्त उसके वशीकार होवें और उसकी शक्ति सब हृदयों विषे प्रवेश करती है सो जिनका हृदय इसके आधीन हुआ सब उनका शरीर और धन भी इसही के अधिकार होता है बहुरि और हृदय किसही के अधीन होता है कि जिसकी भलाई और पूर्णता पर इसकी प्रतीति होती है सो भलाई और पूर्णता विद्या और परहेजगारी करि होती है अथवा स्वरूप करि ऐश्वर्य करके भी इस निमित्त बड़ाई होती है कि सबलोग मान और ऐश्वर्य को विशेष जानते हैं और ऐश्वर्य यह कि जबतक मनुष्य किसी के मुख अवलोकन मनुष्य को निश्चय करता है तब ताकी गति अहंकार हृदय इसके [illegible]

ताते चित्तकी प्रसन्नतासहित उसकी आज्ञाको मानताहै और रसना करके उस की महिमा करताहै और शरीर करके उसकी सेवा विषे सावधान होता है जैसे टहलुवा सर्वप्रकार अपने स्वामी के अधीन होताहै तैसे यह भी उसके अधीन होजाता है पर जब विचारकरके देखिये तो और टहलुवे भय करके स्वामी की टहल करते हैं और गुणकी प्रतीतिवाला प्रीतिसंयुक्त उसके अधीन होता है ताते मानका अर्थ यह है कि लोगोंके चित्त इसके वशीकार होवें पर इस मनुष्य को तीनकारणों करके धनकी अभिलाष से मानकी प्रीति अधिक होती है सो प्रथम कारण यह है कि धन भी मनोरथों की पूर्णताई के निमित्त प्रिय लगताहै और मानरूपी पदार्थ ऐसाहै कि मानधारी मनुष्यों को स्वाभाविकही धन प्राप्त होता है और जब कोई नीच पुरुष धन करके मानको प्राप्तकिया चाहे तब नहीं होता १ और दूसरा कारण यह है कि धनको चोर और राजदण्डआदि अनेक भय होते हैं और मानी को ऐसे विघ्न नष्ट नहीं करसके २ बहुरि तीसरा कारण यहहै कि धनकी उत्पत्ति बड़े यत्नों करके होती है और मान यत्न बिनाही बढ़ता जाता है काहे से कि जब एक पुरुष की प्रतीति दृढ़हुई होवे तब उसके मुख से महिमा सुनकर देश देशान्तरों विषे यश और मान पसर जाताहै अधिक और लोगों के चित्त वशीकार होजाते हैं ताते धन और मान एक तो इस निमित्त जीवको प्रिय लगते हैं कि इन करके सर्व मनोरथोंकी पूर्णता होती है और दूसरे मनुष्यों का यह भी स्वभाव है कि यद्यपि ऐसा जाने कि मैं अमुक देशमें पहुँचूंगाही नहीं तो भी देशान्तरपर्यन्त अपना मान चाहता है सो इसका भेद यहहै कि इस मनुष्यका हृदय देवतोंकी नाईं उत्तम जानहै और ईश्वरका प्रतिबिम्ब है जैसे महापुरुषने कहा है कि ये सर्व्वजीव महाराज की सत्तारूप हैं ताते प्रसिद्ध हुआ कि सर्व्व प्रकार इस जीवका सम्बन्ध भगवत्ही से साथ है उसीकारणसे यह भी अपनी बड़ाई को चाहताहै सो जिस मनुष्य विषे कुछ सामर्थ्यता होती है तब स्वाभाविकही उसके हृदय विषे अपने ऐश्वर्य्यकी अभिलाष आन फुरती है जैसे फिर औनताभी एक राजा भगवद्विमुख ने कहाथा कि मैं सर्व जगत् का ईश्वर हूं सो यह स्वभाव सर्व मनुष्योंका भयाहै और ईश्वर का अर्थ यह है कि मेरे समान और कोई नहीं काहे से कि जिसका कोई विरोधी अथवा समान होता है तब उसका ऐश्वर्य्य खण्डित होजाता है जैसे सूर्य्य की पूर्णताई

को एक दिन ज्ञौर विषे रोते देखा तब मैंने उससे पूछा कि तू क्यों रोता है तब उसने कहा कि मैंने महापुरुष के मुख से इसप्रकार सुना है कि थोड़ा कपट भी अनर्थरूप है और भगवत् ऐसे वैरागियों को प्रियतम रखता है जो आपको जनावते ही नहीं और कोई उनको पहिचानते भी नहीं सकता पर हृदय उनका सदाही उज्ज्वल है और सघन अंधेरी रातों में मुक्त हुये हैं इसीपर इब्राहीम अदहम संत ने कहा है कि जिसको इन्द्रियादिक भोग और अपनी स्तुति प्रिय लगती है सो ऐसा मनुष्य धर्म के मार्ग विषे सचा नहीं कहा जाता है इसीपर एक और संतने कहा है कि सच्चे पुरुष का चिह्न यह है कि आपको किसी प्रकार लखावे नहीं इसी पर हसन बसरी संतने कहा है कि जिस पुरुष की बुद्धि दृढ़ नहीं होती और लोग उसका सन्मान करते हैं तब उसका हृदय स्थिर नहीं रहता बहुरि एकवार अयूबसामी संत मार्ग विषे चले जाते थे सो बहुत पुरुष उनके संग चले तब कहने लगे कि भगवत् इस वार्ता को भलीप्रकार जानता है कि मैं अपने हृदय विषे जगत के आदर को भला नहीं जानता और इस आदर को देखकर भगवंत के भय करके सकुच जाता हूं इसीपर सिफयां सौरी संतने कहा है कि प्रतञ्जनों ने धार्मिकों को खानेवाले को वचभी निंद्य कहा है अर्थ यह कि जिस वस्त्र नवीन अथवा पुराने करके यह मनुष्य कुछ विशेष भासे सो ऐसा वस्त्र रखना अयोग्य है और जिज्ञासु को इसप्रकार विचरना प्रमाण है कि कोई इसकी वार्ता न जनावे इसीपर अयू रहाफी संतने कहा है कि मानधारी पुरुष लोक और परलोक विषे भ्रष्ट होजाता है॥ अथ प्रकटकरना रूप मानका॥ तातें जान तू कि जैसे धनवान्का अर्थ यह है कि सम्पदा और धन की सामग्री उसके पास होती है तैसे ही ऐश्वर्यवान् का अर्थ यह है कि लोगों के चित्त उसके वशीकार होवेहैं और उसकी शक्ति सर्व हृदयों विषे प्रवेश करती है सो जिनका हृदय इसके अधीन हुआ तब उनका शरीर और धन भी इसही के वशीकार होताहै बहुरि यह हृदय जिसही के अधीन होता है कि जिसकी भलाई और पूर्णता पर इसकी प्रतीति होती है सो भलाई और पूर्णता विद्या और मनोरम भाव करके होती है अथवा रूप व ऐश्वर्य करके भी इस निमित्त बड़ाई होती है कि सबलोग मानें और ऐश्वर्य को विशेष जानते हैं तात्पर्य यह कि जबही मनुष्य किसीके सूक्ष्म अथवा स्थूल गुण को निश्चय करता है तब स्वाभाविकही इसका हृदय उसके अधीन होजाता है

ताते चित्तकी प्रसन्नतासहित उसकी आज्ञाको मानताहै और रसना करके उस की महिमा करताहै और शरीर करके उसकी सेवा विषे सावधान होता है जैसे टहलुवा सर्वप्रकार अपने स्वामी के अधीन होताहै तैसे यह भी उसके अधीन होजाता है पर जब विचारकरके देखिये तो और टहलुवे भय करके स्वामी की टहल करते हैं और गुणकी प्रतीतिवाला प्रीतिसंयुक्त उसके अधीन होता है ताते मानका अर्थ यह है कि लोगोंके चित्त इसके वशीकार होवें पर इस मनुष्य को तीनकारणों करके धनकी अभिलाप से मानकी प्रीति अधिक होती है सो प्रथम कारण यह है कि धन भी मनोरथों की पूर्णताई के निमित्त प्रिय लगताहै और मानरूपी पदार्थ ऐसाहै कि मानवारी मनुष्यों को स्वाभाविकही धन प्राप्त होता है और जब कोई नीच पुरुष धन करके मानको प्राप्तकिया चाहे तब नहीं होता १ और दूसरा कारण यह है कि धनको चोर और राजदण्डआदि अनेक भय होते हैं और मानी को ऐसे विघ्न नष्ट नहीं करसक्ते २ बहुरि तीसरा कारण यहहै कि धनकी उत्पत्ति बड़े यत्नों करके होती है और मान यत्न बिनाही बढ़ता जाता है काहे से कि जब एक पुरुष की प्रतीति दृढ़हुई होवे तब उसके मुख से महिमा सुनकर देश देशांतरों विषे यश और मान पसर जाताहै अधिक और लोगों के चित्त वशीकार होजाते हैं ताते धन और मान एक तो इस निमित्त जीवको प्रिय लगते हैं कि इन करके सर्व मनोरथों की पूर्णता होती है और दूसरे मनुष्यों का यह भी स्वभाव है कि यद्यपि ऐसा जाने कि मैं अमुक देशमें पहुँ-चूंगाही नहीं तो भी देशान्तरपर्यन्त अपना मान चाहता है सो इसका भेद यहहै कि इस मनुष्यका हृदय देवतोंकी नाईं उत्तम जानहै और ईश्वर का प्रति-बिम्ब है जैसे महापुरुषने कहा है कि ये सर्वजीव महाराज की सत्तारूप है ताते प्रसिद्ध हुआ कि सर्व प्रकार इस जीवका सम्बन्ध भगवत्‌ही से मानहै इसीका-रणसे यह भी अपनी बड़ाई को चाहताहै सो जिस मनुष्य विषे कुछ सामर्थता होती है तब स्वाभाविकही उसके हृदय विषे अपने ऐश्वर्यकी अभिलाप आ-न फुरती है जैसे फिर औननामी एक राजा भगवद्विमुख ने कहाथा कि मैं सर्व जगत् का ईश्वर हूं सो यह स्वभाव सर्व मनुष्योंका प्रबलहै और ईश्वर का अर्थ यह है कि मेरे समान और कोई नहीं काहे से कि जिसका कोई विरोधी अथवा समान होता है तब उसका ऐश्वर्य खण्डित होजाता है जैसे सूर्य की पूर्णताई

इसकारण करके प्रसिद्ध है कि उसकीनाईं औरकोई नहीं और सबही मैंजीव उसके आश्रित हैं तैसेही सबे अङ्गों करके पूर्ण एक भगवतही है और सभी विषे उसही की सत्ता भरपूर है और वह सर्वदा सत्यस्वरूप है ताते उसकी सत्ताबिना कोई पदार्थ सत्य नहीं भासता इसीकारणसे कहाहै कि सर्व पदार्थ उसहीका प्रतिबिम्बहै और उसहीके आश्रितहैं जैसे धूप सूर्य्यको आश्रित होती है इस करके प्रसिद्ध हुआ कि सबका ईश्वर एक महाराजहै जो इस मनुष्यका भी यही स्वभावहै कि सर्वथा अपने ऐश्वर्य्य और पूर्णताई को चाहताहै और यही इच्छा करताहै कि सब कोई मेरे अधीन होवे पर अविद्या और शरीर के सम्बन्धसे ऐसी सामर्थ्य को प्राप्त नहीं होसक्ता चैतन्यताके अंशके संयोग करके इस विषे भी ईश्वरका स्वभाव फुरता है पर तो भी मलिन अहङ्कार और विकारों करके अत्यन्त पराधीन होरहाहै ताते सर्व पदार्थों को अपने अधीन करसकता नहीं सक्ता और जीवकी पराधीनता इसप्रकारहै कि एक सृष्टि तो इसकी बुद्धि और बलसे अगोचर है जैसे आकाशकी पुरियां देव तारामंडल और भूत प्रेतआदिकी जीव और पाताल विषे जो सृष्टिहै बहुरि पर्वतों और समुद्रों विषे जो नानाप्रकारकी रचनाहै सो महाराजहीने रची है सो इनपर मनुष्यकी सामर्थ्यता किसी प्रकार नहीं पहुँचती पर यद्यपि यह मनुष्य इस सामर्थ्यता से हीनहै तो भी अपने स्वभाव करके यह यत्न करता है कि मैं इन सृष्टियों के भेदको पहिचानूं जैसे कोई शतरंजका खेल न जाने तो भी इसप्रकार चाहता है कि मैं शतरंजकी गोटोंको तो पहिचानूं और जीत हारका ज्ञाता होजाऊं सो यह जाननेकी अभिलाषा भी प्रबलता और ऐश्वर्य्य का अंगहै बहुरि दूसरी सृष्टि ऐसी है कि उसपर इस मनुष्य का बल वर्त्तमान होता है जैसे वनस्पति और पशुआदिक जो जो धरती पर रचनाहैं सो तिनको अपने वशीकार करलेता है और सर्व पदार्थों से उत्तम जो मनुष्यों के हृदयहैं सो तिन को भी अपने अधीन किया चाहताहै और अपनी सामर्थ्यताके वृद्ध होनेको प्रियतम रखताहै सो मानका अर्थ यही है कि यह मनुष्य परमेश्वरका अंशहै ताते यह भी अपना ऐश्वर्य्य चाहताहै पर इसविषे अविद्या यहहै कि धनकरके अपनी असमर्थता जानताहै ताते धन और मानको प्रियतम रखता है पर जब कोई इसप्रकार कहे कि जब मान और ऐश्वर्य्य की अभिलाष का स्वभाव इसकरके फुरताहै कि यह जीव महाराज का अंशहै और परमेश्वर

के साथ इनका सम्बन्ध है तब इस करके प्रसिद्ध हुआ कि मान और बड़ाई की चाह करनी भी अयोग्य नहीं काहेसे कि ईश्वरकी पूर्णताई विद्या और समर्थताई करके होती है सो जैसे विद्याको जानना होना विशेष है तैसेही धन और मान जो समर्थताईकी कारण है सो इनकी अभिलाष करनी भी विशेष हुई तब इसका उत्तर यह है कि यद्यपि बूझ और समर्थता इस मनुष्य की पूर्णताई है और यही गुण महाराजके भी हैं पर तौभी इस मनुष्य को भगवत्ने उत्तम बूझकी ओर चलनेकी मार्ग दिया है और ऐश्वर्यकी ओर मार्ग नहीं दिया काहेसे कि जिस समर्थता करके भगवत् सर्व्व ब्रह्माण्डों को उत्पन्न और स्थित करता है सो तिस समर्थताको यह जीव अपने यत्न करके पाय नहीं सक्ता और बूझरूपी पदार्थ ऐसा है कि उसकी वृद्धिकरके यथार्थज्ञानको पहुंचाता है पर धन और मान का जो फल है सो इसकी वृद्धिके साथ समर्थताईकी पूर्णता को नहीं पाता और यद्यपि धन और मानकी शक्ति करके आपको यह पुरुष बलवान् जानता है तौभी यह स्थूलबल स्थिर नहीं रहता काहेसे कि धन और मानका सम्बंध इन्द्रियादिक पदार्थोंके साथ होता है ताते मृत्यु के समय इससे दूर होजाते हैं और जो पदार्थ मृत्युके समय दूरहोवे सो तिस को सत्तास्वरूप नहीं कहते ताते उसकी प्राप्ति विषे तीव्रता समय व्यतीत करना मूर्खता है पर वह बल जो इसका सर्वदा संगी रहता है सो यह है कि जिस पदार्थकरके बूझकी प्राप्ति होवे काहेसे कि बूझ का सम्बन्ध केवल हृदयहीके साथ है और हृदय सत्यस्वरूप है ताते बूझवान् पुरुष इन्द्रियादिक देहको त्याग जाता है तब बूझका प्रकाश सदैव उसके साथ रहता है और उसही प्रकाश करके महाराज के दर्शन को देखता है और आनन्द को पावता है सो वह आनन्द ऐसा है कि उसके निकट स्वर्गादिक सुखभी तुच्छ भासते हैं इसी कारण से कहा है कि बूझका सम्बन्ध महाराजही के स्वरूप और उस के गुणके साथ होता है ताते पूर्ण बूझका परिणाम कदाचित् नहीं होता तात्पर्य यह कि नाशवन्त पदार्थका भाव कदाचित् नहीं होता और जो सत्यस्वरूप है सो तिसका अभाव नहीं होता पर यह विद्या कि जिसका सम्बन्ध स्थूल पदार्थों के साथ है सो तिसका मोलही कुछ नहीं जैसे व्याकरण और ज्योतिषादि विद्या हैं सो यह नष्ट होते हैं और व्याकरणादिक की विशेषता भी इस करके होती है कि उससे यह पुरुष वचनों के अर्थों का विवेक होवे और यथार्थ वेत्ता

होकर भगवत्के स्वरूपको पहिंचाने और भगवत् मार्ग विषे जो कठिन प्रापियाँ हैं सो तिनको उल्लंघन करनेके यत्नको समझे तात्पर्य्य यह कि जिस पदार्थ का परिणाम और नाशताहोवे सो तिसकी बूझभी नाशवंत होतीहै और अविनाशी बूझ भगवत्की पहिंचानहै सो परिणाम और नाशतासे रहित है पर जिस पुरुपको जितनी बूझ प्राप्त होतीहै सो वह तितनाही भगवंत्के निकट पहुँचताहै ताते यह बूझ भी यथार्थ रूपहै और यथार्थ सामर्थ्य यहहै कि जिसके बलकरके भोगोंके बंधनसे मुक्तहोवे काहेसे कि जिस पुरुपका हृदय भोग वासना विषे बंधवान् है वह वासनाहीका दासहै और वासनाही की प्रबलता इसकी हीनता है और वासनासे मुक्तहोना इस जीवकी पूर्णताई है और सम्पूर्णताई करके यह जीव देवतों के निर्मल स्वभावको पहुँचताहै और परिणामसे रहित होताहै ताते इस जीवकी पूर्णताई यथार्थ ज्ञान और भोगोंसे विरक्त होती है सो अविनाशी रूपहै और धनवान्की पूर्णताई नाशवन्त है सो प्रसिद्ध हुआ कि सबही मनुष्य अपनी पूर्णताईको जानतेही नहीं और अपनी हीनताको पूर्णता जानकर पड़े ढूंढ़ते हैं और सर्व्वदा दुःखी रहते हैं और मूर्खता करके स्थूल पदार्थों की ओर सम्मुख हुये हैं और वास्तवमें जो इनकी पूर्णताई है सो तिससे सर्वदा विमुख हैं इसीकारणसे अपनी हानिकी ओर चलेजाते हैं पर ऐसे जान तू कि यह मान भी धनकी नाईं सर्व्वदा निंद्य नहीं अर्थ यह कि जैसे जीविकामात्र धनका संग्रह भी प्रमाणहै तैसेही कार्यमात्र मानभी लाभदायक होताहै और जब धन और मानकी अधिकता विषे इस मनुष्यका हृदय आसक्त होवे तब निस्सन्देह परलोकके मार्ग मे दूर रहजाताहै सो मानका कार्य्य यहहै कि मनुष्यको सेवक और मित्र सहायक और राजा रक्षाकरनेवाला अवश्यही चाहिये सो यह सब तबहीं सिद्ध होते हैं जब उनके हृदय विषे इसकी कुछ मानता होवे और इसको भला जानें ऐसेही जब पढ़ानेवाले के हृदयमें विद्यार्थीका मान कुछ न होवे तब उसको पढ़ावेही नहीं और जब विद्यार्थी के हृदय में पढ़ानेवालेका मान कुछ न होवे तब उससे विद्या पढ़ न सके ताते प्रसिद्ध हुआ कि कार्य्यमात्र मानका संग्रह भी अयोग्य नहीं पर इस मानकी प्राप्तिभी चारप्रकार करके होतीहै सो दो प्रकार निंद्यहैं और दोप्रकार प्रमाण हैं पर वह दोप्रकार निंद्य यह है कि एक तो अपने हृदय के भजनका दिखलाना करके मानको ढूंढ़ना और आप को

भजनवान् दिखावना सो यह केवल दम्भ है काहेसे कि भजन भगवत् का निष्काम चाहिये सो जब भजन के सम्बन्ध करके मानकी प्राप्ति चाहे तब अयोग्य है १। औरदूसरा प्रकार यहहै कि जिस विद्याको यह पुरुष जानता न होवे और मान के निमित्त आपको उसका वेत्ता होय दिखावे तब यह भी अयोग्यहै जैसे विदेश विषे जायकर कहे कि मैं ब्राह्मणहूं अथवा उत्तम जातिहूं अथवा अमुक व्यवहार की विद्या जानता हूं पर जब वास्तव में न होवे और मान के निमित्त झूठ कहदेवे तब यह ऐसे होताहै कि जैसे कोई पाप और छल के साथ धनकी उत्पत्ति करे ४ बहुरि दो प्रकार जो मानके निमित्त प्रमाण कहेथे सो यहहै कि जिस क्रियाविषे छलभी न होवे और भजन का दिखलावा भी न होवे तब उस क्रिया को प्रकट दिखावे और व्यवहार के कार्य्य विषे अपने मान को वृद्ध कर लेवे तब यह वार्त्ता अयोग्य नहीं १ बहुरि दूसरा प्रकार यहहै कि अपने पापको छुपायकर अपना मान राखे और यह मनसा होवे कि जब मेरा अवगुण प्रसिद्ध होवेगा तब लोग मेरी निन्दा करेंगे तब मैं दीठ होजाऊंगा सो इसप्रकार अपना मान रखना प्रमाण है पर इस निमित्त पापको न छुरावे कि मुझको लोग साधु सन्त जानें २॥ अथ प्रकट करना उपाय मानकी प्रीतिका॥ ताते जान तू कि जब मानकी प्रीति अधिक बढ़ती है तब यह भी हृदय विषे दीर्घरोग उपजता है बहुरि इस रोगके निवृत्त का उपाय किया चाहिये काहेसे कि जब प्रथमही इसका उपाय न करिये तब कपट दम्भ झूंठ पाखंड वैरभाव ईर्षा इत्यादिक और भी अनेक पाप उपजते हैं ताते चाहिये कि धन और मानका इतनाही संग्रहकरै जिस करके धर्मके मार्गका निर्वाह होवे और अधिक आसक्त न होवे तब ऐसा बुद्धिमान् पुरुष रोगी नहीं होता काहेसे कि वह धन और मानको प्रियतम नहींरखता और उस की मनसा यह होती है कि इन करके निश्चिन्त होकर भजन विषे सावधान होऊं पर जिस पुरुष को मानही की अभिलाष बढ़ती है तब उसके चित्त की चितवनि सर्वदा लोगों की ओर रहती है कि यह लोग मुझको किसप्रकार जानते हैं और क्या कहते हैं और मुझपर कैसी प्रतीति रखते हैं ताते ऐसे रोग का उपाय करना अवश्यही प्रमाण है पर इसका उपाय भी बूझ और करतूति करके होताहै सो बूझ यहहै कि मानके विघ्नों का विचारकरे कि लोक और परलोक विषे मानी पुरुष दुःखी रहताहै सो इस लोक का दुःख यह है कि मानकी

अभिलाषा करनेवाला पुरुष सर्वदा जगत् की मान और मनोहार विषे सदवार रहताहै सो जब मान प्राप्त नहीं होता तब निर्लज्जताको पाताहै और जब प्राप्त होताहै तबके ते शत्रु ईर्षा करनेवाले उपजिआवते हैं और यह भी उनको मारने के निमित्त वैरमार्ग विषे दृढ़ होताहै और शत्रुओंके छलसे डरता रहताहै ताते उसकी मनसा शुद्ध कदाचित् नहीं होती बहुरि जब शत्रुओं पर पूर्बली होताहै तौभी यह बड़ाई स्थिर नहीं रहती और क्षणमें विषे दूर होजातीहै काहेसे कि मान और बड़ाईका सम्बन्ध लोगों के मनके साथ होताहै सो लोगों का मन समुद्र की लहरवत् क्षण क्षण विषे परिणाम को पावता है तात्पर्य यह कि जिस बड़ाईका मूल संसारी जीवोंकी मन होवे वह बड़ाई ही कुछ वस्तु नहीं होती काहे सेकि जब किंचित्‌भी उस करि उनके चित्त विषे स्फुरता है तब वह बड़ाई नष्ट होजाती है पर यह मान जो किसी देशके राजसम्बन्ध करके होताहै सो यह तो महातुच्छरूप है काहेसे कि जब राजा के हृदय विषे किंचित्‌भी चितवनि विपरीत फुरे तब अपने प्रधानको दूर करदेता है और उसकी मानता नष्ट होजाती है ताते प्रसिद्ध हुआ कि गानी मनुष्य इस लोक विषे सदैव इसप्रकार दुःखी रहताहै और अल्पबुद्धि जीव इस वार्ताको नहीं पहिंचानते और जिनके बुद्धिरूपी नेत्र खुले हैं सो आपही इसप्रकार देखलेते हैं कि जब इस मनुष्यको उदय अस्तपर्यंत निष्कंटक राज्य होवे और सबही लोग उसको प्रणाम करें तो भी यह प्रसन्नता कुछ वस्तु नहीं काहेसे कि जब यह मृत्यु होताहै तब सबही सामग्री दूर होजाती है और अल्पकाल विषे वह आपही नहीं रहता और उसकी प्रजाभी नहीं रहती सो जिसप्रकार पहिले बड़े चक्रवर्ती राजा आगेभी स्वप्न होगये हैं और कोई उनका स्मरण भी नहीं करता तैसेही यहभी स्वप्न होजावैगा ताते कुछ दिनकी प्रसन्नताके निमित्त अमर राज्यको नाश करना बड़ी मूर्खता है इस करके कि जिस पुरुष का हृदय स्थूल बड़ाई विषे बध्यमान होताहै सो तिसके हृदयमें भगवत् की प्रीति दूर होजाती है और जो मनुष्य भगवत्‌की प्रीति बिना आनकी प्रीतिके साथ बांधा हुआ परलोक विषे पहुँचताहै तो निश्चयही दोषि है सा का अधिकारी होताहै सो मानको दूर करनेका ज्ञानकरके यही उपाय है और करतूति के साथ दोप्रकार करके उपाय होताहै सो प्रथम यहहै कि जिस देश विषे इसकी मान प्रतिष्ठा होवे उस देशको त्याग जावे और वहां जायरहे जहां इसको कोई पहिचानेही नहीं

सोभ्यह भी उत्तम उपायहै काहेसे कि जबआपने नगर विषे एकान्तठौर बैठताहै तब लोग उसको त्यागी जानकर अधिक मान करते हैं ताते मानके रस विषे आसक्त होजाताहै और जब कोई उसकी निन्दा करताहै तब दुःखी होताहै और अपने दूषणके उतारने के निमित्त झूठसे भी नहीं डरता ॥ बहुरि दूसरा उपाय यह है कि ऐसे आचारविषे वर्ते जिसकरके लोगोंकी प्रतीति दूर होजावे पर पापकी को अङ्गीकार न करे काहेसे कि केतेमूर्ख पापोंविषे वर्तते हैं औरइसप्रकार कहते हैं कि हमने तो मानके दूर करने के निमित्त इस कर्मको अङ्गीकार कियाहै सो महयाचार्य अयोग्यहै ताते जिज्ञासु को इसप्रकार वर्तना चाहिये कि जिसे करके पापकर्मसेभी दूरहै और लोगोंकी प्रतीति भी नष्टहोजावे जैसे एक सन्तके दर्शनको एक राजा आयाथा सो जब उन्हींने राजाको आते देखा तब रोटी और मूली हाथमें लेकर नहे २ ग्रास खानेलगे बहुरि जब राजाने इसप्रकारदेखा तब कहनेलगा कि यहतो तृष्णावानहै ताते वह राजा अपने गृहको लौटगया बहुरि एक और सन्तकी भी अधिक मानता हुईथी ताते जब वहसन्त स्नानके स्थान से स्नान करके निकसे तब किसी और का वस्त्र पहरकर द्वारेपर ठाढ़े होरहे बहुरि जब लोगोंने देखा कि यह तो चोरहै तब उनको अधिक ताड़नाकरी। ऐसेही एक औरभी सन्तकी अधिक मानताथी तब उन्होंने एक शीशे में शरबत डालकर अपने निकट रखलिया और थोड़ा २ पीते रहे ताते लोगोंने जाना कि यह तो मदिरापान करते हैं सो मानके दूर करनेके निमित्त जिज्ञासुजनोंने ऐसेही उपाय किये हैं॥ अथ प्रकट करना उपाय अपनी स्तुतिकी प्रीतिका॥ ताते जानतू कि बहुत पुरुषों को जगत् की स्तुति विषे अधिक प्रीति होतीहै और सर्वदा अपनी महिमाको चाहते हैं सो यद्यपि शास्त्रोंकी मर्यादा में विपरीत कर्महोवे तो भी स्तुतिके निमित्त करलेते हैं और जो शुभ कर्मभी होवे पर उस विषे लोग निन्दा करने होवें तोभी नहीं करसक्ते सो यह भी दीर्घरोग है और जब इसरोग के कारणोंको न पहिचानिये तबलग इसका उपचार करना कठिन होताहै ताते स्तुति की अभिलाषाके कारण चार हैं सो प्रथम यहहै कि मनुष्य अपनी बड़ाई को चाहताहै और अपनी हीनतापर ग्लानिरखताहै ताते जब कोई इसकी स्तुति करताहै तब निस्सन्देह अपनी बड़ाई को समझता है और आनन्दित होताहै काहेसे कि अपनी महिमा सुनकर अपना ऐश्वर्य निश्चय जानता है और

ऐश्वर्य्य इसको अधिक प्रियतम लगताहै बहुरि जब निंदा सुनताहै तब अपनी हीनता को प्रत्यक्ष देखताहै ताते दुःखी होताहै इसीकारण से जब स्तुति अथवा निन्दा किसी बुद्धिमान् पुरुष के मुख से श्रवण करता है तब अधिक शोकवान् और अप्रसन्न होताहै काहेसे कि उसके यथार्थ वचन पर इसको अधिक प्रतीति होती है और जब मूर्ख के मुख से सुनता है तब उसके वचनमें प्रतीतिही नहीं रखता ताते शोक और प्रसन्नता भी अल्प होती है १ बहुरि दूसरा कारण यहहै कि स्तुति करनेवालों को अपना सेवक देखताहै और ऐसा जानताहै कि इसके हृदय विषे मेरे गुण की प्रतीतिहै ताते आपको स्वामी जानताहै इसीकारण से जब अपनी महिमा किसी श्रेष्ठके मुखसे सुनताहै तब अधिक प्रसन्न होताहै और जब नीच पुरुष के मुखसे श्रवण करता है तब ऐसा आनन्दवान् नहीं होता २ बहुरि तीसरा कारण यहहै कि जब किसी को अपनी स्तुति करता देखताहै तब योंभी जानता है कि यह मेरी महिमा सुनकर और लोग भी मुझपर प्रतीति करेंगे और मेरे वशीकार होवेंगे इसीकारणसे जब सभाविषे अपनी महिमा श्रवणकरे तब अधिक प्रसन्न होताहै और जब एकांत ठौर विषे सुनताहै तब ऐसा हर्षवान् नहीं होता ३ बहुरि चौथा कारण यहहै कि स्तुति करनेवालेको अपने बलके अधीन जानताहै और यद्यपि उसको अपना सेवक न जाने तोभी इस प्रकार समझताहै कि यह पुरुष भय अथवा प्रयोजन करके मेरी स्तुति करता है सो यह वार्ता भी इसको अधिक प्रियतम है ताते आपको बड़ा जानकर प्रसन्न होताहै इसीकारणसे जब उसका वचन सांचाभी न जाने और उसके वचनको कोई प्रमाणभी न करे बहुरि वह प्रतीति के साथभी स्तुति न करे और प्रयोजन और भयकरके भी न कहता होवे केवल उपहास करके इसकी स्तुतिकरे प्रीतिका कारण कोई न देखे तब प्रसन्न नहीं होता ४ पर जब तैंने इस रोगके कारणोंको पहिचाना तब इसका उपाय भी सुगमही समझेगा बहुरि जब पुरुषार्थ करेगा तब इस रोगको दूर करडालेगा ताते प्रथम कारण जो कहा है कि स्तुति करनेवाले के वचनकरके अपनी बड़ाईको निश्चयकरके प्रसन्न होताहै सो उसका उपाय यह है कि इसप्रकार विचारकरे कि यद्यपि यह पुरुष बूझ और वैराग्य अथवा और किसी शुभ गुणकरके मेरी स्तुति करताहै और इसका वचन भी यथार्थ है तोभी तुझको भगवत्के उपकार पर प्रसन्न होना प्रमाण है काहेसे कि यह शुभ गुण

तुझको महाराजहीने दिये हैं सो किसीकी स्तुति निन्दाकरके बढ़ते घटते नहीं बहुरि जब कोई मनुष्य इस प्रकार इसकी स्तुति करें कि तू धनवान् है अथवा महाराजा है अथवा किसी और स्थूलपदार्थ का वर्णन करे तब इस वार्त्तापर तो प्रसन्न होनाही अयोग्य है काहेसें कि यह सब सामग्री नाशवान् है और जो प्रसन्न भी होवें तो जिस महाराजकी दातहै तिसके उपकारको निश्चय जानकर हर्षित होवे पर जब विचारकर देखिये तब अपनेगुणोंपर प्रसन्न होनाभी प्रमाण नहीं काहेसे कि इस वार्त्ताको कोई पुरुष नहीं जानता कि अन्तकाल विषे मेरा निर्वाह क्योंकर होवेगा और जबलग इस वार्त्ताको न जाने कि परलोकविषे मेरी कैसी गति होवेगी तबलग जिज्ञासुको प्रसन्नहोना कदाचित् प्रमाण नहीं बहुरि जब कोई मनुष्य इसको गुणवान् कहे और यह पुरुष ऐसाजाने कि यह गुण मेरे विषे ही कोई नहीं तब ऐसी स्तुति पर प्रसन्नहोनाभी महामूर्खता है सो इसका दृष्टान्त यह है कि जैसे कोई कहे कि अमुक पुरुष का शरीर और सर्व अङ्ग सुगन्धता करके भरपूर है और मल मूत्र की दुर्गंधि कुछ नहीं पर वह पुरुष जब ऐसा जानताहोवे कि मेरे तो सर्वाङ्ग विषे विष्ठा मूत्र थूक आदिक कुचीलताहै और उस की स्तुति सुनकर प्रसन्नहोवे तब महामूर्ख कहाताहै बहुरि मान और बड़ाई के निमित्त जोइसको अपनी स्तुति प्रियलगती है सो इसका उपाय मैंने आगेही वर्णन किया है पर जब कोई तेरी निन्दाकरे तब उसके ऊपर क्रोध करना और अप्रसन्न होनाही महामूर्खताहै काहेसे कि जब वह सत्य कहता तब वह देवता है और जब झूठ कहताहै तब असुर है और जब वह निंदक अपने झूठको भी न जाने तब पशु अथवा गर्दभ है तात्पर्य यह कि सत्य कहनेवाले को अपना गुरुदेव जानि ताते उसका वचन सुनकर ग्लानि न करिये और अपने अवगुण पर शोकवान् हूजिये बहुरि जो मनुष्य असुर गर्दभहोवे तब उसके वचनको सुन कर प्रतीति करनाही अयोग्यहै पर जब कोई तेरे स्थूल पदार्थकी निन्दाकरे कि धनहीनहै अथवा निर्धनहै तोभी अप्रसन्नहोना प्रमाण नहीं काहेसे कि यह तो सन्तजनों के निकट बड़ाई है बहुरि इसप्रकार विचार करनाभी विशेष है कि जिस पुरुषने तेरा अवगुण तुझसे प्रकट करके कहा है सो यह कहनाभी तीन प्रकारसे बाहर नहीं ताते जब उसने यथार्थ और दया संयुक्त कहा है तब उसका उपकार जानिये काहेसे कि जब कोई तुझसे कहै कि तेरे वस्त्र विषे सर्प है तब उस सर्प

लखानेवाले का निस्सदेह यह उपकार होताहै तैसेही अवगुणोंका दुःख सर्पके डसनेसे भी तीक्ष्णहै इस करके कि अवगुणों करके बुद्धिका नाश होताहै ताते दोपके लखानेवालेको मित्र जानिये जैसे तू किसी राजाके निकट जानेकी मनसाकरे और कोई पुरुष तुझको लखाय देवे कि तेरा वस्त्र मलिनता से भरा है प्रथम इसको धोयले सो जब तू उसका वचन मानकर अपना वस्त्र धोलेवे तो तुझको उसका उपकार जानना प्रमाण है काहेसे कि जब तू दुर्गन्धभरे वस्त्रसहित राजाके निकट जाता तब उसकी सभा विपे निस्संदेह लजायमान होता। १ बहुरि दूसरा प्रकार यह है कि जब निंदाकरनेवाले पुरुषने ईर्षा करके तेरा अवगुण प्रसिद्ध कियाहै तौभी उसने अपने धर्मकी हानिकरी है पर तेरी हानि तो कुछ नहीं काहेसे कि जब तू उसका वचन सुनकर सहनशील होवेगा तब तुझको धैर्य्यकी बडाई प्राप्तहोवेगी अथवा यद्यपि उसने झूंठ कहा है और तेरे विपे वह अवगुण नहीं तौभी और अवगुण तो तेरे विपे अधिकहैं ताते यहभी भगवत्का उपकार जानना चाहिये जो महाराजने तेरे वे अवगुण प्रकट नहींकिये और निन्दक के शुभ गुणोंका पुण्यभी तुझको प्राप्तहोवेगा। और जो पुरुष तेरी स्तुति करताहै सो विचार करके देखिये तो तेरा दुःखदायक होताहै काहेसे कि वह स्तुति सुनकर तू अभिमानी होवेगा ताते तू मूर्खता करके अपने दुःख की वार्त्तापर प्रसन्न होताहै और अपनी भलाई विपे शोकवान् होताहै सो जिसकी ऐसी अवस्था होवे तब जानिये कि वह पुरुष स्थूलताकोही देखता है और गुप्त भेदको नहीं पहिंचानता और जो पुरुष बुद्धिमान् होताहै वह स्थूलता की ओर नहीं देखता और उसके अन्तर के भेदको समझताहै तात्पर्य यह कि जबलग इसपुरुषकी आशा सर्व जगतमे दूर नहीं होती तबलग स्तुति और मानका रोग नष्ट नहींहोता॥ अथ प्रकटकरना भेद सर्व मनुष्योंकी अवस्थाका कि स्तुति और निन्दा विपे सबही पुरुष एक समान नहीं होते॥ ताते जान तू कि स्तुति और निन्दा विपे भी जीवोंकी चारप्रकारकी अवस्था होती हैं जो अपनी स्तुति सुनकर प्रसन्न होते हैं और स्तुति करनेवाले का उपकार जानते हैं ऐसेही निंदा सुनकर क्रोधवान् होते हैं और निंदकको दुखाया चाहते हैं सो यह अवस्था महानीचहै १ बहुरि दूसरी सात्त्विकी मनुष्योंकी अवस्थाहै सो यहहै कि यद्यपि हृदय विपे स्तुति निंदाको समान नहीं जानते तौभी बाह्य व्यवहार विपे निंदक और

महिमा करनेवालेके साथ सम वर्तते हैं २ बहुरि तीसरी अवस्था विचारवानों की यहहै कि स्तुति और निंदाको मन वचन कर्म करके समान रखते हैं ताते निंदा सुनकर प्रसन्न भी नहीं होवे और ईर्षा क्रोधभी नहीं करते बहुरि स्तुतिको भी विशेष नहीं जानते काहेसे कि उनका हृदय स्तुति और निन्दासे विरक्तही रहताहै सो यह उत्तम अवस्था है पर केते अल्पबुद्धि जीव इसप्रकार जानते हैं कि हम इसही पदको प्राप्तहुये हैं सो जबलग अपने हृदयकी परीक्षा न कर देखिये तबलग उनका कहना झूठ होताहै सो परीक्षा यह है कि जब निंदक उनके पास बैठरहे तो भी ग्लानि न करे अथवा जब वह किसी कार्य्यकी सहायता चाहे तब स्तुति करनेवालेकी नाईं उसकी सहायताकरे और प्रियतमराखे बहुरि जैसे स्तुति करनेवाले का चित्तविषे स्मरण करते हैं तैसेही जब निंदक के मिलाप विषे चिरकाल होजावे तब प्रीतिसहित उसको भी यादकरे अथवा जब कोई निंदकको दुखावे तब जिसप्रकार स्तुति करनेवाले के दुःखकरके दुःखी होवाहै तैसेही निन्दक के दुःखकरके शोकवान्‌होवे सो यह अवस्था महाकठिन है कि जिसप्रकार स्तुति करनेवाले के अवगुण को नहीं विचारता तैसेही निंदकका अवगुण देखकर भी क्रोधवान्‌ न होवे पर अभिमानी मनुष्य ऐसेही कहते हैं कि हम धर्महीके निमित्त क्रोध करते हैं और उस निन्दकके दोषको दूर किया चाहते हैं सो यह भी मनका छल है काहेसे कि और भी केतेपुरुष अपकर्म करते हैं और अवरों की निन्दाकरने लगते हैं सो जबलग उनको देखकर ऐसी ग्लानि न करे तबलग जानिये कि उनका क्रोध करना भी अपनी वासना के अनुसारहै पर ये तपस्वी लोग ऐसे सूक्ष्म छलोंको कब पहिचानसक्ते हैं ताते विचारविना सबही यत्न उनके व्यर्थ होते हैं ३ बहुरि चौथी अवस्था उत्तम पुरुषों की है सो यह है कि स्तुति करनेवाले को अपना शत्रु मानते हैं और निन्दकको प्रियतम रखते हैं काहेसे कि निन्दक के वचन से अपने दोषको पहिचानते हैं बहुरि उस दोषके निवृत्त करने की श्रद्धा विषे सावधान होवे हैं इसीपर महापुरुष ने कहा है कि जो पुरुष दिन को व्रतराखे और रात्रि विषे जागताहै और नानाप्रकार के यत्नकरे पर जबलग स्तुतिसे विरक्त न होवे और अपनी महिमाको बुरी न जाने और निन्दकको प्रियतम न राखे तबलग उसका सर्व किया व्यर्थ होती है सो जब इस वचन के अर्थ को विचार करके देखिये तब ऐसे पदको प्राप्त होना महाकठिन है काहेसे कि

जीवोंको दूसरी अवस्था भी कठिन होती है कि जो स्तुति करनेवाले और नि न्दकको हृदय विषे समान न जाने तो दोनों के साथ बाह्य करतूत विषे तो भेद न राखे और मनुष्य तो सर्व्वदा अपनी स्तुति करनेवालों को प्रियतम रखते हैं और उनके कार्य्योंकी सहायता करते हैं और निंदकको दुखाया चाहते हैं ताते बाह्य क्रिया विषे भी पापी होते हैं और हृदयकी समता तो दुर्लभ है पुनि या चौथी अवस्था जो निन्दक को मित्र और प्रशसक को शत्रु जानने की कही है सो इस अवस्था को पहुँचना अतिही कठिन है पर इसको वही पावता है जो अपने मनका विरोधी होवे और सर्व्वदा अपनी वासना के साथ युद्ध करे तावे जब किसी के मुखसे अपना अवगुण सुने तब प्रसन्न होवे और निन्दक की बुद्धि को ऐसे उज्ज्वल देखे कि इसने मेरे दोषको किसप्रकार ढूंढ़लिया और ऐसेही प्रसन्न होवे जैसे अपने शत्रुका अवगुण सुनकर प्रसन्न होताहै सो ऐसा जिज्ञासु जन भी कोई विरला होताहै इसीकारण से कहाहै कि जो कोई सब आयुपर्य्यन्त यत्न और पुरुषार्थ करताहै तौ भी स्तुति निंदाको समान करना कठिन है ताते जान तू कि जब यह पुरुष अपनी महिमाको प्रियतम रखता है और निन्दापर ग्लानि रखताहै तब यह अभिलाष ऐसी प्रबल होती है कि अपनी स्तुतिके निमित्त भजन विषे भी दम्भ किया चाहता है और जब देखताहै कि अमुक पाप करके मेरी स्तुति होवेगी तब पापकी शङ्का भी नहीं करता तात्पर्य्य यह कि जबलग मान और स्तुति की वासना का बीज मूलही से नष्ट न होवे तबलग शीघ्रही पापकर्मों विषे आसक्त होजाताहै पर जब बाह्य क्रिया विषे मित्र और शत्रु के साथ समान बर्ते और मनबचन कर्मकरके निंदकको दुखावे नहीं और उस का गुनाही चिंत वन करतारहे और हृदय विषे शत्रु मित्रकी समता न करसके तौ भी पापी नहीं होता काहेसे कि इस जीवका ऐसाही स्वभाव है अपने स्वभाव से दूर होना महाकठिन है ताते सन्तजनों ने इसप्रकार कहा है कि जब स्थूल पापों से रहित होवे तौभी विशेष है इसकरके कि सबही लोग बहुत से अपकर्म्म स्तुतिकी प्रीति और निन्दाकी ग्लानि के निमित्त करते हैं और सर्व्वदा उनके चित्तकी वृत्ति इसी अभिलाष विषे बंधायमान रहती है कि किसी प्रकार हमारी स्तुति लोग करें ताते मनकी वासना करकें अपकर्म्मों विषे विचरने लगते हैं इस करके प्र सिद्ध हुआ कि सर्व्व मनुष्यों को लोगोंका सम्मान और मनोहर करना नि य

नहीं पर मान के निमित्त कपट और दम्भ करना निन्द्यहै और इ लोक का बीज है ॥

आठवां सर्ग ॥

दम्भके निषेध और उपायके वर्णनविषे ॥

तातें जान तू कि भगवत् भजन विषे दम्भ करना महापापहै और महाराज की ओरसे विमुखता है ताते इसके समान और कोई रोग नहीं काहे से कि वेष-धारियोंकी मनसा सर्वदा यही रहती है कि किसीप्रकार लोग हमारा भजन देखें और हमको भजनवान् जानें सो जिस भजन विषे ऐसी कामना होतीहै उसको भगवत् भजन नहीं कहते और यह केवल जगत्ही की पूजा होती है अथवा जब कुछ भजनकी कामना भी होवे तो भी दम्भके साथ मिश्रित होजातीहै सो भगवत् भजन विषे दम्भका मिश्रित होना भी मनमुखताहै इसीपर महाराजने कहाहै कि जिस पुरुषको मेरे दर्शनकी प्रीति है उसको चाहिये कि मेरे भजन विषे और लोगोंकी पूजाको मिश्रित न करे अर्थ यह कि दम्भसे रहित होवे और यों भी कहाहै कि जो लोग अचेतना और दम्भसहित मेरा भजन करते हैं सो परलोक विषे पश्चात्ताप करेंगे इसी पर महापुरुष से किसी ने पूंछा था कि इस जीवकी मुक्ति क्योंकर होवे तब उन्होंने कहा कि जब यह पुरुष दम्भ से रहित होकरके भगवत् की आज्ञा विषे सावधान होवे तब शीघ्रही मुक्तिको पाताहै और योंभी कहा है कि परलोक विषे किसी मनुष्य से पूछेंगे कि तैंने भगवत् भजन किसप्रकार कियाहै तब वह कहेगा कि मैंने धर्म के निमित्त शीशदियाथा बहुरि आकाशवाणी होवेगी कि यहपुरुष झूठ कहताहै काहेसे कि इसने आपको शूरमा जनानेके निमित्त शीश दियाथा तब वह भी नरकगामी होवेगा बहुरि एक और पुरुषसे पूंछेंगे कि तैंने महाराजकी आज्ञा क्योंकर मानी है तब वह कहेगा कि मैंने भगवत् अर्थ अपनेधनको दान किया है बहुरि आकाशवाणी होवेगी कि यह भी झूठे कहताहै काहेसे कि इसने अपनी उदारताके प्रसिद्ध करने को दान दिया था ताते वह भी नरकगामी होवेगा बहुरि एक और पुरुष से पूछेंगे कि तैंने किसप्रकार भजन कियाथा तब वहकहेगा कि मैंने बड़े यत्न करके महाराजके वचनों को पढ़ाहै तब आकाशवाणी होवेगी कि यह भी झूठ कहताहै काहे से कि इसने आपको विद्यावान् जनानेके निमित्त पाठ किया था ताते उस को भी नरक विषे डारेंगे बहुरि एक और पुरुष से कहेंगे कि मैंने तुमको-

पृथ्वी का राज्य दियाथा सो तैंने प्रजाकी पालना क्योंकर करी तब वह कहेगा कि मैंने शास्त्रोंकी मर्य्यादसहित न्याय कियाथा बहुरि आकाशवाणी होवेगी कि यह भी झूंठ कहताहै काहेसे कि इसने धर्म्मात्मा जनाने के निमित्त न्याय कियाहै ताते वह भी नरक विषे पड़ेगा और महापुरुष ने योंभी कहाहै कि प्रीतिमान् को और कोई विघ्न ऐसा मलिन नहीं करता जैसा दम्भ करके शीघ्रही मलिन होजाताहै बहुरि परलोक विषे मनुष्योंको इसप्रकार आकाशवाणी होवेगी कि हे पाखण्डियो! तुमने जिनके दिखानेके निमित्त मेरा भजन कियाहै सो अब भजन का फलभी उन्हीं सबसे मागो और महापुरुष ने योंभी कहाहै कि हे प्रियतमो! दम्भरूपी नरक से आपको बचाओ और महाराज के आगे विनती करो कि हे भगवन्! इस दम्भरूपी क्लेश से तू हमारी रक्षाकर इसीपर महाराजने कहाहै कि जिन पुरुषोंने मेरे भजन विषे लोगों की पूजाको मिलाया है अर्थात् दम्भ कियाहै सो मुझसे अतिदूर हैं और मैं उनका भजन लोगोंको समर्पण करदेताहूं काहेसे कि मुझको किसीके साथ मिश्रित होनेकी अपेक्षा नहीं इसीपर महापुरुषने कहाहै कि तिस करतूत को भगवत् प्रमाण नहीं करता जिस विषे रंचकमात्रभी दम्भ होताहै इसीपर उमरनामी सन्तने एक पुरुषको देखाथा कि शीश नीचे किये बैठा है तब कहनेलगे कि हे भगवन्! तू इसकी टेढ़ी ग्रीवाको सीधीकर काहेसे कि एकाग्रता हृदय विषे होती है शीशकी कुटिलता किये तो एकाग्रता प्राप्त नहीं होती बहुरि एक संतने किसी पुरुष को सभाविषे रोते देखा था तब उससे कहा कि जब तू अपने गृह विषे ऐसाही रुदनकरता तब अधिक विशेषता को पाता इसीपर अलीनामी संतने कहाहै कि दम्भी मनुष्यके दो लक्षण प्रसिद्ध हैं प्रथम यह कि जब अकेला होताहै तब अलसाय जाताहै और जब लोगों को देखताहै तब प्रसन्नतासहित भजन करताहै बहुरि जब अपनी महिमा सुनताहै तब सब क्रिया विषे अधिक सावधान होताहै और जब निन्दा सुनताहै तब शिथिल होजाताहै बहुरि एक जिज्ञासुने किसी सन्तसे पूछाथा कि जो पुरुष दान देने विषे कुछमनसा निष्कामीरावे और कुछ जगत्की स्तुति के लिये दानदेवे तब उसकी क्या अवस्था होती है तब उन्हों ने कहा कि वह मनुष्य भगवत् से विमुखहोताहै काहेसे कि सब करतूतें केवल निष्कामही चाहियें बहुरि उमर सन्तने एक पुरुष की अवस्था कुछ रुरी थी तब उससे कहनेलगे कि तूभी मुझको

इस अवज्ञाका दण्ड दे तब उसने कहा कि मैंने भगवत् के और तुम्हारे निमित्त तुमको क्षमा किया बहुरि उसने कहा कि तू भगवतही के निमित्त क्षमाकर अथवा मेरे निमित्त क्षमाकर पर दोनोंके सम्बन्ध करके क्षमाकरना काम नहीं आता तब उसने कहा कि मैंने भगवतही के निमित्त तुमको क्षमाकिया इसीपर फुजैल सतने कहाहै कि आगे जिज्ञासुजन दम्भ विना शुभकर्म करते थे और इससमय विषे लोग शुभकर्म किये विनाही दम्भ करते हैं बहुरि एक और सतने कहाहै कि जब यह पुरुष दम्भकरताहै तब भगवत् इसप्रकार कहताहै कि देखो यह मेरा जीव मेरेही साथ किसप्रकार हास्य करताहै इसीपर महापुरुष ने कहा है कि सात पुरियों के सात देवता रक्षकभी भगवतही ने बनाये हैं सो जब इस मनुष्य के शुभ कर्मोंकी पत्री प्रथमपुरीपर पहुँचती है तब उसपुरीका देवता कहता है कि इसकी सबही क्रिया निष्फलहैं काहेसे कि यह पुरुष लोगों की निंदा करता था ताते मैं निंदकके शुभकर्मको प्रमाण नहीं करता बहुरि और पुरुष जो निंदासे भी रहित होताहै सो तिसके कर्मोंकीपत्री दूसरीपुरी तलक पहुँचती है तब उसका देवता कहताहै कि इसके करतूत इसही के मुखपर डालदो काहेसे कि इसने शुभकर्म करके अपनी प्रशंसा करी है ताते मैं इसके कर्म को प्रमाण नहीं करता बहुरि किसी और पुरुषकी पत्री तीसरी पुरीपर पहुँचती है कि उस विषे दान जप तप व्रत आदिक शुभकर्म होते हैं तब उसका देवता कहताहै कि इसके सबही करतूत अभिमान करके निष्फलहुये हैं बहुरि एक औरकी पत्री चौथी पुरीपर्यंत पहुँचती है तब यह देवता कहता है कि इसने विद्या और शुभकर्मों विषे लोगों की ईर्षाकरी है ताते मैं इस क्रियाको नहींमानता बहुरि एक औरकी पत्री पांचवींपुरी पर पहुँचती है तब यह देवता कहताहै कि इसने दुखियों और अनाथों पर दया नहीं करी और मुझको भगवत्की आज्ञा इसप्रकारहै कि यद्यपि सुकर्मी मनुष्यहोवे तोभी तू दयाहीन पुरुषका करतूत प्रमाण न करना बहुरि एक और की पत्री छठीं पुरीपर पहुँचती है तब यह देवता कहताहै कि इसने स्मरण भजन लोगोंकी स्तुति के निमित्त कियाहै अथवा परलोककी कामना रखताहै ताते मैं इसके कर्मोंको भी नहीं मानता बहुरि एक औरकी पत्री सातवीं पुरी पर पहुँचती है सो उसके कर्मोंका तेज सूर्यकीनाईं प्रकाशित होताहै तब उसको देखकर यह देवता कहताहै कि इसके हृदय विषे सूक्ष्म अहंकारहै और कर्मोंका

कर्त्ता आपको जानताहै ताते मैं इसकी क्रियाको प्रमाण नहीं करता तात्पर्य यह कि जिसका कर्म केवल निष्काम और सर्वे मलिनतासे रहित होताहै तब उस का करतूत सातोंपुरीको उल्लङ्घकर भगवत्के निकट पहुँचताहै और गोहाराजे उस को प्रमाण करतेहैं अन्यथा सबही कर्म निष्फलहोतेहैं॥ अब प्रकटकरना स्वरू दम्भका॥ ताते जाननातू कि दम्भका अर्थ यहहै कि आपको बैरागी और भजन वान् दिखावना और बेपकरके जगत्का मिलाप मदोना और अपनी विशेषता प्रकटकरनी और अपने ऊपर लोगोंकी प्रतीति बढ़ाती सो ऐसा दम्भ पांचप्रकार का होताहै प्रथम तो शरीरकरके दम्भकरतेहैं जैसे बदनकारंग पीला करके अ पनी आंख लखानी अथवा देहको दुर्बल करता और भृकुटी चढ़ाकर आपको भयावन दिखाना बहुरि ऊंचा शब्द न बोलना कि मैं ऐसा गम्भीर हूं और अ धर सूखे रखने कि मैं अनीहू सो जब ऐसी क्रिया लोगोंके छलने के निमित्त करे तब जानिये कि केवल दम्भी है १ बहुरि दूसरा प्रकार यहहै कि वस्त्र मलीन अथवा मलिन अथवा अल्प अथवा पुरातन पहिरने और आपको तपस्वी जनावना अथवा मृगछाला आदिक अम्बर ओढ़ने सो इनकी वृत्ति ऐसी होतीहै कि जब कोई इनको किसी संयोग के साथ यत्नकरके कहे कि अमुक वस्त्र पहिरो तब ल ज्जाके निमित्त पहिरें ही नहीं और एक ऐसे कपटी होते हैं कि महीन वस्त्रों को फाड़कर बहुरि सिलायलेते हैं इसकरके कि धनवान् और राजालोग भी हमारा सन्मानकरें और निरादर न करें और यद्यपि उनके वस्त्रोंसे मोटा वस्त्रका हुआ होवे तोभी पहिर नहीं सके इसकरके कि हमारी कोई निन्दा न करे और इतना नहीं जानते कि ऐसी क्रियाकरके हमलोगोंकी पूजा करते हैं २ बहुरि तीसरा प्रकार दम्भका वाणी है सो सदैव अधर हिलायकर आपको भजनवान् दिखाना और मौनकरके एकाग्रही दिखाना अथवा नानाप्रकार शास्त्रोंका बखान करना और आपको बुद्धिमान् जनाना अथवा शीतलस्वास निकालके आप को प्रेमी लखाना अथवा पिछले सन्तोंकी वार्ता प्रकटकरनी इसकरके कि मैंने बहुत संतजनोंका सत्सङ्ग कियाहै सो यह केवल पाखंड होताहै ३ बहुरि चौथा प्रकारको दम्भ भजन विषे होताहै कि लोगोंके देखते दीर्घ बहुत टेकना अथवा शीश नीचे करके बैठना और किसीकी ओर दृष्टि न करनी अथवा जगत् को दिखाकर दानदेना और मार्ग विषे धैर्य सहित चलना ४ बहुरि पांचवां प्रकार

दम्भका यहहै कि अपने शिष्य मंडा अधिक दिखावे और अपने ऐश्वर्य को आपही सभा विषे प्रकट करना कि अमुक राजा हमारा सेवक है और अमुक धनवान् हमारा पुजारी है और जब किसीके साथ विरुद्ध करताहै तब इसप्रकार कहने लगताहै कि तेरा गुरुदेव कौनहै और तेरे मिलापी कौन हैं मैंने तो इतने वर्षपर्यंत बड़े बड़े महापुरुषोंकी सेवाकरी है तात्पर्य यह कि दम्भीमनुष्य अपने मानके निमित्त घटे फटे खेमताहै और एकही चोलेका आहार करताहै अथवा निराहार बनी रहताहै सो यह सबही करतूति महापापों का रूपहै काहेसे कि जप तप मन भजन भगवत्‌ही के निमित्त करनाचाहिये पर जब ऐसे कर्मों विषे मान और बड़ाई की कामनाहोवे तब जानिये कि केवल पाखण्डहै तातें चाहिये कि जब अपना मान वृद्ध करनेकी मनसा राखे तब व्यवहारके कार्य्य करके अपनी बड़ाई लखावे सो इसको पाप नहीं कहते जैसे ज्योतिष् वैद्यक व्याकरण इत्यादिक और विद्या को प्रकट करना पापरूप नहींहोता पर मानके निमित्त आपको वैरागी और भजनवान् दिखाना अयोग्य हैं अथवा जब स्नान और उज्ज्वल वस्त्र करके शरीर को शुद्ध करलेवे तौभी दम्भ नहीं कहाताहै काहे से कि प्रीतिमानोंकी सभा विषे किसी को ग्लानि न आवे तब यह भी शुद्धमनसा होती है और महापुरुष भी ऐसे आचारों विषे विचरे हैं और भजन विषे जो दिखलावा निंद्य कहाहै सो यह भी दो कारणों से अयोग्यहै प्रथम यह कि जब इस पुरुषकी मनसा सकामहोवे और आपको निष्कामी करदिखावे तब यह भी कपट होता है काहे से कि जब लोग इसकी सकामता को प्रकटजाने तब बड़ाई नहीं करते १ बहुरि दूसरा कारण यह है कि भजन स्मरण और शुभकर्त्तूति केवल भगवत्‌ही के निमित्त करने चाहिये पर जब ऐसी क्रिया जगत् के दिखलाने के निमित्तकरे तब यह भी भगवत् के साथ उपहास करना होताहै सो इसका दृष्टान्त यहहै कि जैसे कोई पुरुष किसी मंडली के राजाके सन्मुख खड़ाहोवे और आप को केवल उसका टहलुआ ही दिखावे पर मनसा इसकी यह होवे कि मैं राजा के सुन्दरदासको देखनाहूं तातें इसके नेत्र और मुख उस दास की ओर अटके रहें तब निस्सन्देह राजा के साथ हास्यकरना होता है ऐसेही जो मनन स्मरण परमेश्वर के निमित्त करनाचाहिये है और वह मन दास की ओर लोगों को दिखानेलगे तब ईश्वर का नाम केवल करता है और इन दासों को जानता है कि

वह पुरुष दण्डवत् प्रणाम भगवत् को नहीं करता। जगतही की वन्दना करता है काहे से कि उसकी मनसा जगत् के दिखाने विषेही दृढ़ होती है तातें जो मनुष्य शरीर करके तो भगवत्की वन्दना करे और मन उसका जगत्की वन्दना विषे स्थितहोवे तब निस्सन्देह विमुख होताहै॥ अथ प्रकटकरना भेद दम्भकी अवस्थाका॥ तातें जानें तू कि दम्भ विषेभी इसप्रकार भेद होताहै कि एक दंभ अतिदीर्घ है और एक अल्पहै सो दीर्घदंभ यहहै कि जिसकी मनसा केवल दम्भ ही की होवे अर्थात् जब अकेलाहोवे तब भजन स्मरण कुछ न करे और लोगों विषे सावधान होकर भजन विषे स्थित रहे तब ऐसा पुरुष भगवत् के कोपका भागी होताहै और यद्यपि उसकी कुछ अल्पमात्र पुण्य की मनसाभी होवे पर जब एकान्त विषे कुछही भजन न करे तौभी प्रथम दम्भी की नाईं होताहै बहुरि जिस पुरुष के हृदय विषे पुण्यकी मनसा ऐसी प्रबल होवे कि एकान्त विषेभी मूलही से अलसाय न जावे पर जब लोगों को देखे तब प्रसन्नता सहित भजन करे और भजन करना उसको सुगम होजावे तब इतने दम्भ करके सबही फल उसका व्यर्थ नहीं होता पर जितनी दम्भ की मनसा भजन विषे मिली है उतनाही दण्ड का अधिकारी होताहै अथवा उसका पुण्य क्षीण होजाताहै बहुरि जब दम्भ और पुण्यकी मनसा समहोवे तौभी भजन का फल कुछ नहीं होता काहेसे कि पुण्यकी श्रद्धाको दंभकी मनसा व्यर्थ करडालती है १ बहुरि दूसरा भेद यहहै कि भगवत् पर जिस पुरुषकी प्रतीति कुछ न होवे और यद्यपि शरीर करके भजन स्मरण करता रहे तौभी वह महाकपटी कहाताहै और अत्यन्त विमुखहै काहे से कि हृदय विषे प्रतीतिसे रहित है और वाक्य विषे प्रीति प्रतीति गयुक्तहो दिखाताहै सो ऐसा पुरुष सर्वदा नरकोंका वासी होवेगा अथवा जिस पुरुषकी प्रतीति परलोक और संतजनोंकी मर्य्यादा पर कुछ नहीं और यद्यपि शरीर करके दंभके निमित्त शास्त्रोंकी मर्य्यादही विषे विचरताहै तौभी नरकोंका अधिकारी होताहै २ बहुरि तीसरा भेद दम्भमनुष्य के प्रयोजन विषे होताहै जैसे कोई पुरुष भजनविषे मानका प्रयोजन राखे बहुरि मान करके भोगों और पापों विषे आसक्त होजावे सो यह भी महानिंद्य है अथवा जब आपको वैरागी और उदार इस निमित्तही दिखावे कि लोग मुझको त्यागी जानकर अर्थियों और सात्त्विकी मनुष्यों की सेवा के निमित्त धन देवें और जब वह उस धनको

प्राप्त होवे तब अपने शरीरके अर्थ लगायलेने तब यह भी महापापहै अथवा जब कथाकीर्तिन की सभा विषे जाय बैठे कि किसी रूपवान् मनुष्य को जायदेखूं अथवा उसके साथ प्रीति बढ़ाऊं तब इसकी नाईं और भी अपकर्मोंका प्रयोजन परमदुःखों का बीज है और अपराधरूप है काहेसे कि उसने भगवद्भजन को पापोंका मार्ग बनाया है अथवा जब किसीका कुछ दूषण जगत् विषे प्रसिद्ध होजावे तब उस दूषणको दूर करनेके निमित्त वैरागी और उदासहोकर दिखाना भी महानिन्द्य है और यह सबही प्रयोजन महातामसी हैं पर जिसको राजसी प्रयोजन होवे जैसे दम्भ करके अपने शरीर और कुटुम्बका प्रतिपाल कियाचाहे तो भी भगवत्के कोपका अधिकारीहोताहै अथवा जब मानकेनिमित्त मार्गविषे धैर्य और सकुचसहित चले और शीतल श्वास निकाले और हास्य से रहित होवे बहुरि ऐसा कहे कि इस जीवको अचेत होनेका ठौर इस संसार विषे कहां है काहेसे कि सबही मनुष्य काल के मुख विषे चलेजाते हैं अथवा जब कोई पुरुष किसीकी निन्दा करनेलगे तब आपको निन्दासे रहित दिखाने के निमित्त इस प्रकार कहे कि औरों के अवगुण देखने से अपना अवगुण देखना अधिक विशेषहै सो यद्यपि यह सब करतूति सात्त्विकी हैं पर जिसकी मनसा सात्त्विकी न होवे और राजसी और मान के निमित्त ऐसे कर्मकरे तब निस्सन्देह अन्तर्यामी महाराज की ओरसे विमुख होताहै काहेसे कि भगवत् इसके हृदय को जाननेवालाहै ताते उसकेसाथ छलकरना यही विमुखता है और अल्पबुद्धि जीव ऐसे भेदोंको पहिचान नहीं सकते इसकारके कि दम्भ तो ऐसा महासूक्ष्महै कि जितने बुद्धिमान् और पण्डितभी इसको पाय नहीं सकते ताते सूने तपस्वियों की कथा यथार्थ है ॥ अथ प्रकटकरनी सूक्ष्मता दम्भकी ॥ ताते जान तू कि यह तो प्रकट दम्भ है कि लोगों के देखते भजनकरे और जब अकेलाहोवे तब सनुसायजावे और इससे सूक्ष्मदम्भ यहहै कि एकान्त विषे भी भजनके नियमको सम्पूर्ण करे पर जब लोगों को देखे तब प्रसन्नता करके यह नियम उसको सुगमहोजावे सो यह भी दम्भस्थूलहै और इससे सूक्ष्मदम्भ यह है कि लोगों को देखकर यद्यपि प्रसन्न भी न होवे पर उसके अंतर ऐसा गुप्त दम्भहोताहै जैसे चकमक पत्थर विषे अग्नि गुप्तहोती है और यह दम्भ तब प्रकटहोताहै जब लोगन विषे [illegible] जाती है और आपको ऐश्वर्यवान् देखता है इस करके प्रसिद्ध हुआ कि यद्यपि

ऐसे पुरुषकी क्रियामें आगे दम्भ न भासता था तौभी उसके अन्तर सूक्ष्मरूप दम्भ था ताते जब इस मानके रसको दोषदृष्टिकरके बुरा न जाने तब अवश्यही दम्भ प्रकट उपज आताहै और यद्यपि मुखसे अपनी स्तुति नहीं करता तौभी लोगों विषे आपको भक्तिवान् दिखावता है बहुरि हृदयकी स्थिरता और गम्भीरता और नायवको लखाय प्रगट करताहै यह एक दम्भ इससे भी अधिक सूक्ष्म है कि यद्यपि लोगोंकी मानता करके हर्षवान् भी न होवे तौभी दम्भसे रहित नहीं होसक्ता काहेसे कि जब कोई प्रथमही उसको प्रणाम न करे अथवा अधिक आदर न करे अथवा प्रसन्नतासहित उसका कार्य न करे अथवा व्यवहार विषे और लोगोंसे उसको अधिक न देवे तब वह पुरुष आश्चर्यवान् होताहै कि यहलोग मुझको जानतेही नहीं सो जब उससे भगवद्भजन दम्भसे रहित किया होता तब इसप्रकार आश्चर्यवान् न होता तात्पर्य यह कि जबलग करतूतिका होना और न होना इसको समान न होजावे तबलग दम्भ दूर नहीं होता अर्थ यह कि दम्भ हृदयमें तबही नष्टहोताहै जब अपने करतूतिकी विशेषता न जाने जैसे कोई पुरुष किसीको एक रुपया देकर सहस्ररुपयेकी वस्तु लेवे तब वह उस एक रुपयेके देनेको कुछ विशेष नहीं जानता और किसीपर उपकार भी नहीं रखता तैसेही जो पुरुष कुछदिन भगवद्भजन करके अविनाशी राज्यको प्राप्तहोवे तब वह भजनका उपकार किसी मनुष्यपर नहीं रखता और अपने हृदय विषे भी अभिमानी नहीं होता अरु जब शुभकर्म करके लोगोंसे सन्मान चाहे और निरादर विषे आश्चर्यवान् होवे तब यह दम्भ चींटीके चलनेसे भी अधिक सूक्ष्म है अर्थात् सम्पूर्ण विचार बिना लखा नहीं जाता इसीपर अलीमुर्तजा ने कहा है कि वैरागी लोगोंको परलोक विषे इसप्रकार ताड़ना होवेगी कि तुमको लोगोंने व्यवहार विषे मोलसे अधिक वस्तु दी है और हाथ जोड़कर तुम्हारे कार्यों विषे सावधान हुये हैं और सबकिसीने तुमको प्रथमही दण्डवत् कियाहै ताते तुम्हारी करतूति केवल निष्काम नहीं हुई और तुमने शुभकर्मों के फल को संसार विषेही भोगलिया ॥ ऐसा कोई विरला ही पुरुष होताहै जो सर्व जगत्को त्यागकर भजन विषे स्थितहोवे और संसारके मिलापरूपी विघ्नसे डरताहै बहुरि जब कोई उसको आदर और दण्डवत् करे तब सकुचजावे और ऐसाही पुरुष दम्भसे छूटता है इसीकारण से जिज्ञासुजनोंने अपने शुभकर्म को इसप्रकार छुपाया है जैसे और जन चोरी और व्यभिचारको

दुराय रखते हैं, और उन्होंने इस वार्त्ता को निस्सन्देह कहि जाना है कि परलोक विषे निष्कामता बिना कोई करतूति अंगीकार न करेंगे जैसे किसीने सुना होवे कि अमुक देश विषे खोटा सोना चांदी नहीं चलता और वहां के लोग खोटे को अंगीकार करते हैं सो वह पुरुष जब उस नगर विषे आने की मनसा रखता है तब खोटे सोने चांदी को अपने संग लेता है और खोटे को वहांहीं डाल जाता है तैसेही जो पुरुष अपने कर्मों को इस लोक विषे निष्कामता सहित शुद्ध न करलेवे तब परलोक विषे अधिक दुःखी होवेगा और सब करतूति उसके व्यर्थ जावेंगे और अपने निष्काम कर्म के बिना और किसी की सहायता न पहुंचेगी सो निष्कामता का अर्थ यह है कि जैसे यह पुरुष पशुओं के आगे निष्काम कर्म भजन आदि करता है और उनकी ओर इसकी सुरत कुछ नहीं पसरती तैसेही मनुष्यों विषे भी दम्भ से रहित होवे पर जबलग पशु और मनुष्य का देखना इसको समान न होवे तबलग यह केवल निष्काम नहीं कहा जाता बहुरि जब इसको कोई भजन करता देखे अथवा सोता देखे और आहार करता देखे तो भी इन कर्मों विषे जगत का देखना समान होवे अर्थ यह कि जैसे आहार और निद्रा किसी को दिखाने की मनसा नहीं करता और जो कोई देख भी लेवे तब प्रसन्न भी नहीं होता तैसेही भजन विषे भी समान स्थित रहे इसी पर महापुरुषों ने भी कहा है कि रंचकमात्र भी दिखलाना विमुखता है काहे ते कि दम्भी मनुष्य भगवद्भजन विषे लोगों को साक्षी किया चाहता है और अन्तर्यामी के जानने पर सन्तुष्ट नहीं होता ताते पराधीन जीवों को दिखाया चाहता है इसी कारण से महापुरुषों ने दम्भी मनुष्य को विमुख कहा है तात्पर्य यह कि जबलग लोगों के देखने विषे इसको प्रसन्नता होती है तबलग दम्भ से रहित शुद्ध नहीं होता पर जब भगवत् के उपकार जानकर प्रसन्न होवे तब इसको दम्भ नहीं कहते सो यह मनसा तीन प्रकार की होती है प्रथम यह कि जिसने अपने भजन को गुप्त किया था और उसकी मनसा बिना भगवत् ने प्रकट कर दिया बहुरि उसके अवगुण जो थे सो महाराज ने प्रकट न किये ताते जिज्ञासु जानता है कि मेरे ऊपर भगवत् ऐसा दयालु है कि मेरे छिद्र को तो छिपा रखता है और भलाई को प्रकट करता है ताते महाराज की दया और उपकार को जानकर प्रीति भाव प्रसन्न होता है १ बहुरि दूसरा प्रकार प्रसन्नता का यह है कि जिज्ञासु ऐसे विचारता है कि जिस भगवान् ने इस संसार विषे मेरे भज-

गुणोंको छिपायाहै सो अपनी करुणा करके परलोकविषे भी प्रसिद्ध न करेगा और क्षमा करलेवेगा॥ बहुरि तीसरा प्रकार यह है कि जब इसके शुभकर्मको देखकर और लोग भी शुभक्रिया विषे दृढ़होवें तब वहभी बड़भागी होवेंगे सो इस करके भी प्रसन्नहोना प्रमाणहै पर अपने मान के निमित्त हर्षवान् न होवे और जो पुरुष इसके सुकर्मको देखकर सात्त्विकी आचार विशेष दृढ़हुआहै सो तिसकी जिज्ञासा और प्रतीति को पहिचानकर प्रसन्न न होवे सो इसकी परीक्षा यहहै कि जब वह जिज्ञासुजन और किसी उत्तम पुरुषकी अवस्था को देखकर उसकी भी संगतिकरे और महाराजकी आज्ञाविषे सावधानहोवे तोभी इस पुरुषको ऐसीही प्रसन्नता आवे जैसी अपने संगकी जिज्ञासा समय देखकर प्रसन्नता होती है॥ अथ प्रकटकरना इसका कि दम्भकरके किसप्रकार शुभकर्मोंका फल व्यर्थ होजाताहै॥ ताते जान तू कि दम्भ भजनके आदि विषे भी होताहै और मध्यभी होताहै और अन्तभी होताहै बहुरि जब भजन के आदि विषे दम्भकी मनसा होवे तब उस दम्भकरके शीघ्रही भजन व्यर्थ होजाताहै काहेसे कि निष्कामिताका स्थान इस जीवकी मनसाहै सो जब प्रथमही दम्भकरके मनसा अशुद्ध हुई तब स्वाभाविकही निष्कामता नष्ट होजाती है पर भजनके आदि जिस की मनसा शुद्धहोवे और भजनके करतेहुए लोगोंको देखकर भजन अधिक करे तब अधिक भजन करनेका फल नष्ट होताहै पर मूलही मे सब फल व्यर्थ नहीं जाता इसकरके कि प्रथम तो उसकी मनसा शुद्धथी बहुरि जब निष्कामता सहित भजन के नियम को पूराकरे और पीछे से कुछ दम्भकी मनसा फुरआवे ताते उस भजनको प्रसिद्धकर बैठे तब इसकरके भजनका फल नष्ट नहीं होता पर दम्भके सम्बन्धकरके कुछ दण्डका अधिकारी होताहै पर इस वचनके निर्णय विषे कितने बुद्धिमानों ने योंभी कहाहै कि जब यह पुरुष अपने शुभकर्मको सम्पूर्ण करके पीछे प्रकटकरे तब उसको फल कुछ नहीं होता जैसे इब्नमसऊद नामी सन्तके निकट किसी ने इसप्रकार कहाथा कि मैं नित्यप्रति इतना पाठ करताहूं तब उन्होंने कहा कि तुझको उस पढ़नेका फल इतना नहीं होवेगा बहुरि महा पुरुष के निकट भी किसीने ऐसे कहाथा कि मैं व्रतीहूं तब उन्होंने कहा कि तू व्रती भी नहीं और अव्रतीभी नहीं अर्थ यह कि अन्नकरके भूखा रहता है और अपने मुखसे प्रसिद्ध करके व्रतको फल नष्ट करडालताहै सो इब्नमसऊद और महापुरु-

को भी वचन यथार्थ है पर इसका प्रयोजन यह है कि उन्होंने इसप्रकार जानाथा कि पाठक और श्रोता दोनों प्रथमही दम्भसे रहित न थे ताते उनके फल को व्यर्थ कहा काहेसे कि जब प्रथम इसका भजन दम्भकी मनसासे रहितहोवे और पीछे अकस्मात् कुछ दम्भ होजावे तब इस करके भजन का सबही फल व्यर्थ होना कठिनहै पर जब भजनके मध्य विषे दम्भकी मनसा ऐसी दृढ़ होजावे कि भजन की मनसा को जीतलेवे तब भजन का फल सबही नष्ट होता है और जिसकी मनसा निष्काम होवे और लोगों को देखकर कुछ प्रसन्नता फुर आवे तब वह भजन निष्फल नहीं होता पर दम्भके निमित्त कुछ पापी होताहै॥ अथ प्रकट करना उपाय दम्भके दूर करने का॥ ताते जान तू कि यह दम्भरूपी रोग महाप्रबल है इसके निवृत्त करनेका उपाय भी अवश्यही करनाचाहिये और बड़े धैर्य और पुरुषार्थ बिना इसका उपाय हो नहीं सक्ता काहे से कि इस दम्भका स्वभाव मन की वृत्तिके साथ मिश्रित होरहाहै इस करके कि यह मनुष्य बाल अवस्थासे लेकर सब किसीको ऐसाही देखताहै कि सर्वसंसार आपको भलाही दिखाया चाहता है और सब करतूति जीवों के इसही निमित्त होते हैं ताते बालअवस्थामेंही इस मनुष्य का यही स्वभाव दृढ़ होजाताहै और शनैःशनैः करके ऐसा बढ़जाता है कि इस रोगकी बुराई को भी नहीं जानसक्ता और इसी स्वभाव की अधिकता विषे अचेत होजाताहै इसीकारण से इस दम्भरूपी रोगका दूरकरना महाकठिन पड़ाहै और इस रोगसे रहित भी कोई विरलाही होताहै ताते सब किसी को इस का उपाय करना योग्यहै पर इसका उपाय भी दो प्रकारका होताहै सो एक ऐसा है कि दम्भको मूलही से नष्ट करडालताहै सो यह भी बूझ और करतूति के सम्बन्ध करके होताहै पर बूझ इसकी यह है कि दम्भ के विघ्नको पहिंचाने यहांतक कि यों भी जाने कि यद्यपि दम्भके समय मुझको प्रसन्नता होती है तोभी परलोक विषे इस दम्भके निमित्त ऐसी ताड़ना होवेगी कि मैं उसको सह न सकूंगा सो जिसने इस वार्ताको निश्चय पहिंचानाहै तिसको दम्भका त्याग करना सुगम होजाता है जैसे किसी पुरुषने ऐसे जाना होवे कि इस मधुविषे हलाहल विष मिलाहुआहै सो यद्यपि उसको मधुके भोजन करनेकी अधिक तृष्णाभी होवे तोभी सुगमही त्याग देताहै तैसेही जिसको परलोक का भय प्रबल होगा सोभी दम्भको अंगीकार न करेगा और यद्यपि सब किसीको दम्भ विषे धन और मानका प्रयोजन

होताहै तौभी इसकी ग्रामता के तीन मूलहैं प्रथम यह कि दम्भ करके जगत् की स्तुतिको चाहताहै और दूसरे निंदा के भयकर के दम्भ करताहै और तीसरे जगत् की पूजा विषे आशा रखताहै ताते जिज्ञासुको चाहिये कि प्रथम स्तुति की अभिलाषा को हृदयसे दूर करे और ऐसा जाने कि जब मैं भजन विषे दम्भ करूंगा तब परलोक विषे प्रसिद्ध ही मेरा अपमान होवेगा और इस प्रकार कहेंगे कि हे दम्भी हे कपटी हे महापापी तैंने भगवद्भजन को जगत् की स्तुति के निमित्त बेचा है और तू ऐसा निर्लज्ज है कि तुझको इस नीति से लज्जा भी नहीं आई कि तैंने जगत् को प्रसन्न किया और भगवत् की अप्रसन्नता का भय न किया बहुरि जगत् की निकृष्टता को अंगीकार किया और महाराज की दृष्टि का भय न किया ताते प्रसिद्ध हुआ कि तैंने जगत् के मान को भगवत् के मानसे विशेष जाना है और महाराज के कोप को अल्प जानकर के जगत् की स्तुति को अंगीकार किया है ताते तेरे समान निर्लज्ज और कोई नहीं सो जब बुद्धिमान् इस अपमान को विचार करताहै तब भलीप्रकार जानताहै कि परलोक विषे संसार की स्तुति मेरे किसी काम न आवेगी काहेसे कि यद्यपि भगवद्भजन सर्व पापों का बीज है तो भी दम्भ करके पापों का बीज होजाताहै बहुरि जब मैं दम्भ से रहित होऊंगा तब सन्तजनों का संगी होऊंगा और दम्भ करके अन्तर यही मिलमुखों का संगी होऊंगा और जिस जगत् की प्रसन्नता के निमित्त दम्भ करताहूं सो जगत् की प्रसन्नता भी मुझको कदाचित् प्राप्त नहीं होती काहेसे कि जब एक पुरुष की प्रसन्नता होती है तब दूसरा अप्रसन्न ही रहताहै और जब एक मनुष्य स्तुति करता है तब दूसरा निंदा करनेलगता है बहुरि जब सब कोई इसकी स्तुति करें तो भी इसकी प्रारब्ध और आयुष् और लोक और परलोक की भलाई किसी के हाथ विषे नहीं ताते ऐसे पराधीन जीवों की स्तुति के निमित्त अपने चित्त को विक्षिप्तता देनी बड़ी मूर्खता है और दुःखों का कारण है ताते चाहिये कि यह पुरुष बारम्बार इसीप्रकार विचार करे तब स्तुति की अभिलाषा का मूल हृदय से नष्ट होजाय बहुरि जगत् की आशा को दूर करने के निमित्त ऐसा जाने कि प्रथम तो जगत् की आशा फल हीन होती है अरु यदि जो कुछ प्राप्त भी होताहै तो इसके ऊपर बड़ा उपकार करते हैं और महाराज की प्रसन्नता भी दूर होजाती है बहुरि मनुष्यों के हृदय भी भगवत् की आज्ञा बिना कोमल और वश कोई नहीं होते ताते जिसने भगवत् को

प्रसन्नकिया है तब स्वाभाविकही सर्व्व जीवों के चित्त उसके अधीन होजाते हैं और जिसने भगवत्को प्रसन्न नहीं किया तब जगत् विषे उसके अवगुणही प्रसिद्ध होते हैं ताते सब कोई उसका त्याग करदेताहै बहुरि जगत्की निंदाके भय को दूर करने का उपाय यहहै कि आपको सर्व्वदा इसप्रकार समझावे कि जब मुझको भगवत्ने प्रमाणकिया तब लोगोंकी निन्दाकरके मेरी हानि कुछ नहीं होती और जब महाराजके निकट मेरा निरादरहुआ तब इनकी स्तुति भी लाभदायक न होवेगी और जो पुरुष निष्काम होकर जगत् की ओर हृदय न देवै तब सर्व मनुष्यों के हृदय विषे महाराजही उसकी प्रीति और प्रतीतिको दृढ़ करताहै और जब ऐसा न करे तब शीघ्रही लोग इसके छलको पहिंचान लेतेहैं और जिस निन्दा से भयवान् होताहै सो अवश्यही निन्दाहीको प्राप्त होताहै और भगवत् की प्रसन्नता से भी विमुख रहता है बहुरि जब भली प्रकार विचार करै और पुरुषार्थ करके निष्कामता विषे दृढ होवै तब जगत् की मनोहार से मुक्त रहै और चित्त उसका प्रकाशमान होवे और भगवत् की सहायता पाकर निष्कामता के आनन्द को पावै पर कस्तूति करके इसप्रकार उपाय होताहै कि भजन और दान आदिक शुभकर्म्मों को ऐसा गुप्तराखै जैसे आपने अपकर्मों को छुपाताहै और अन्तर्य्यामीही के जानने पर सन्तुष्ट रहै सो यद्यपि प्रथम यह करतूति कठिन होताहै परन्तु यत्न और पुरुषार्थ करके शीघ्रही सुगम भी होजाता है तब निष्कामता और भजन के रहस्य को प्राप्तकर परमानन्द को पावता है बहुरि ऐसी अवस्था उसको प्राप्त होती है कि यद्यपि लोगों के समूह उसको देखने रहें तोभी उसकी सुरत लोगों की ओर नहीं परन्तु सो यह ऐसा उपायहै कि इस करके दम्भका बीजही नष्ट होताहै १ बहुरि दूसरा उपाय ऐसाहै कि उस करके दम्भका बल क्षीण होता है और मूलही से दूर नहीं होता सो यहहै कि जब यह पुरुष भजन विषे स्थित होता है तब इसके चित्त में यह संकल्प आन उपजता है कि मेरे भजन को लोगों ने जानाहै अथवा अब जानेंगे २ बहुरि इसही संकल्प की अधिकताकरके यह अभिलाष दृढ़होजाती है कि जब लोग मुझको भजनवान् जानेंगे तब मेरे ऊपर विशेष प्रतीति करेंगे ताते इस दम्भके संकल्प और अभिलाषा विषे मनन्य करते ऐसे चाहना है कि लोग मेरे भजन को जानें तो भलाहै ३ पर निश्चय करि ऐसे अवसर विषे प्रथमही यह संकल्प

यत्नकरके दूरकिया चाहिये सो आपको इसप्रकार समझावे और वारंवार यह विचारकरे कि जगत्का जानना मेरे किस कामका है और लोगों के जानने करके मेरा कौनकार्य्य सिद्धहोगा काहे से कि जगत्को उत्पन्न करनेवाला भगवत् सर्व्वजीवों का अन्तर्य्यामी है ताते उसकाही जानना मुझको विशेष और लाभदायक है इसकरके मेरा कोई कार्य्य लोगों के हाथ नहीं पर जब लोगोंने विशेषही जाना और महाराजके निकट मुझको ताड़नाहुई तब इनकी मानता मेरीरक्षा क्योंकर करेगी सो जब यह विचार जिज्ञासुके हृदय विषे दृढ़होताहै तब दम्भके ऊपर शीघ्रही इसकी दोषदृष्टि उपज आती है अर्थात् दम्भको निश्चय करके बुराजानताहै और यह दोषदृष्टिही दम्भकी प्रीति के सम्मुख आन स्थित होतीहै बहुरि जैसे दम्भकी प्रीति इस जीवको लोगोंकी ओर खींचती है वैसेही दोषदृष्टि उसको विवर्जित किया चाहती है सो जिस संकल्प का बल अधिक होता है वही संकल्प इसके मनको अधीन करलेता है पर दम्भके संकल्प और दम्भकी अभिलाष और लोगोंकी मानताकी मनसा जो ऊपर वर्णन हुई सो इन तीनों के सम्मुख तीनों शुभ गुण आते हैं सो प्रथम यह बूझ है कि जिसकरके दम्भकी बुराई को जानताहै १ और दूसरा गुण दोषदृष्टि है सो यह भी बूझहीसे उपजती है जिसकरके उस दम्भ विषे इस जीवको ग्लानि दृढ़ होती है २ बहुरि तीसरा गुण यहहै कि आपको दम्भकी मनसासे और संकल्पोंसे वर्जितराखना ३ पर जब दम्भरूपी रोग ऐसा प्रबल हुआहोवे कि उस समय विषे बूझही दिखाई न देवे और ग्लानि भी प्रकट न होसके अर्थ यह कि यद्यपि आगे आपको इस ने समझाकर बहुत वर्जा होवे तौभी उस समय विषे वह बूझ स्थित न रहे तब स्वाभाविकही मनकी वासनाके अधीन होजाताहै जैसे कोई आपको क्रोधसे आगे सहन शीलता विषे स्थित करता रहे और क्रोधके विघ्नों को विचारताहै पर जब क्रोधका अवसरआवे तब तमोगुणकी प्रबलता विषे सबही बिसरि मन जावे तैसेही उस दम्भकी बुराई को जब विचार करके समझताहै तौभी वासना के बलकरके दोषदृष्टि नहींउपजती और जो दोषदृष्टिभी स्थितहोवे तो पुरुषार्थ की हीनता करके अपने स्वभाव को दूर नहीं करसक्ता और दम्भकी प्रीति विषे आसक्त होजाताहै ताते जगत्की स्तुतिको प्रीति सयुक्त सुना चाहताहै इसीकारणसे कैसे पण्डित योगी जानते हैं कि हम यह वचन दम्भके निमित्त कहते हैं

तौभी उसवचनका त्याग नहीं करसक्ते और दम्भ विषेही बद्धवान् रहते हैं तात्पर्य यह कि जेती इसपुरुषको दोषदृष्टि उपजती है तेताही दम्भके त्याग विषे समर्थ होताहै और दोषदृष्टि इसमनुष्य विषे बूझकी मर्य्यादके अनुसार उपजती है बहुरि बूझका बल इसमनुष्य विषे इतनाही दृढ़होताहै जितनी प्रतीति भगवत्के ऊपर राखता है सो यह शुभ गुण भगवत्की सहाय आकरके प्राप्तहोतेहैं तैसेही दम्भकी अधिकता मायाके भोगोंकी प्रीतिकरके होतीहै और भोगोंकी प्रीतिका प्रेरक मन और बासनाहै बहुरि इस मनुष्य का चित्त इन दोनों विरोधी सेनाकी खैंच विषे सर्वदा स्थितहै पर जैसी इस जीवकी वृत्ति और स्वभाव अधिक होता है और जिस पदार्थ की ओर इसकी प्रीति है तब उसही स्वभाव और वृत्तिको अंगीकार करताहै अर्थ यह कि जिस मनुष्यकी वृत्ति भजन के समय आगेही निर्मल होतीहै तब वह पुरुष भजन विषे भी निर्दम्भ रहताहै और जिसके ऊपर आगेही रज तमका स्वभाव प्रबल होताहै सो भजनके समयविषे भी दम्भ और मानकी ओर बहजाताहै पर भगवत्की नेत और आज्ञा इन सर्व कार्योंसे परेहै अर्थ यह कि महाराजकी आज्ञाके भेद को अपनी बुद्धि करके कोई जान नहीं सक्ता तातें जैसी भगवत्की आज्ञा होनीहै सो तिसही ओर खैंच लेजाती है किसी को दिव्य स्वभावोंविषे स्थितकरती है और किसीको मलिन स्वभावोंविषे डाल देती है बहुरि ऐसे जान तू कि जब तैंने दम्भकी खैंचको विपर्ययकिया तब हृदय विषे दोषदृष्टि करके उसको बुराजाना पर जब इससे उपरान्त कुछ दम्भका सङ्कल्प तेरे चित्तमें शेष रहजावे तब इसकरके तुझको पाप नहींहोता काहेसे कि अकस्मात् सङ्कल्प इस जीवका स्वत स्वभावहै और यह मनुष्य स्वत स्वभाव को दूर नहीं करसक्ता तातें सन्तजनों ने भी इसप्रकार कहाहै कि अपने मलिन स्वभावको प्रथम मलिन जानिये बहुरि पुरुषार्थके अनुसार उससे विपर्यय किया चाहिये तब नरकोंमे इस जीवकी रक्षाहोवे पर उन्होंने ऐसा नहीं कहा कि सर्वदा अपने स्वभावोंसे अपनी समर्थता करके मुक्तहूजिये काहेसे कि यहबार्ता दोनों ही कठिनहै तातें जब तैंने सतजनों की आज्ञा मानकर यथाशक्ति अपना पुरुषार्थ किया तब निस्सन्देह शनैःशनै करके वह स्वभाव तेरे वशीभूत होजावेगा सो तुझको इतनाही करतव्य करनीयहै कि जैसे तुझको दम्भादिक अवगुणों की प्रीति है और उनके निमित्त उद्यम करताहै तैसेही इनको मलिन जानकर यथा

शक्ति इनके त्यागने का उपाय करे तब इसही करतूति विषे तेरी भलाई है इसी पर महापुरुष के पियनगोंने इसप्रकार बिनती करीथी कि जब हमारे चित्तविषे कुछ मलिन संकल्प फुरताहै तब हम ऐसे दुःखित होते हैं कि जो हमको कोई गिराय कर पाताल विषे डालदेवे तोभी हम उस समय के दुःखसे इसको सुगम जानते हैं तब महापुरुष ने कहा कि जब तुमको ऐसी दोषदृष्टि प्राप्तहुई है तब तुम निश्चय जानो कि धर्म और प्रतीतिका उत्तम लक्षण यहीहै और संकल्पोंका मु करनेवाला भगवंतहै तातें इसही की शरणलेवो इसकरकेभी सिद्ध हुआ कि धर्म का चिह्न दोषदृष्टि है और जिसको दोषदृष्टि प्राप्त हुईहै तिसके मलिन संकल्प स्वाभाविकही नष्टहोजाते हैं काहेसे कि रुचि और प्रीति करके संकल्पकी अधिकता होती है और दोषदृष्टि करके संकल्प क्षीण होजाताहै पर इसविषे एक और भी भेदहै कि जिसको मनके स्वभावों से विपर्य्यय होवेका बल प्राप्तहुआहै तब ऐसी अवस्था करके भी माया इसको छल आनलेती है सो उस छलकास्वरूप यह है कि इस पुरुष को मलिन संकल्पों के निषेध करने विषेही परचाय रखती है और भजनकी एकाग्रता को प्राप्तहोने नहीं देती और संकल्पों के विरुद्ध विषेही बांध छोड़ती है सो यहभी अयोग्यहै पर यह अवस्थाभी चारप्रकारकी होती है प्रथम यह कि अपना सबही समय संकल्पों के विरुद्ध विषेही खोना और भजन से विमुख रहना १ और दूसरी अवस्था यहहै कि मलिन संकल्पों के निषेधविषे कुछ काल बितावना बहुरि उसको झूठा करके भजन में स्थितहोना २ और तीसरी अवस्था यहहै कि झूठे संकल्पकी ओर चित्तही नदेना और उसके निषेध विषे भी अपनी आयुर्बल व्यर्थ न करनी और भजनके रहस्य विषेही स्थित रहना ३ बहुरि चौथी अवस्था यह है कि झूठे संकल्प को देखतेही तीक्ष्ण वैराग्यसहित उससे दूरहोना और भजनकी एकाग्रता विषे चित्तकी वृत्तिको लीन करलेना सो यह उत्तम अवस्थाहै काहेसे कि यह अवस्था छलको भी छल देनेवाली है इस करके कि ऐसा पुरुष आपनो छलसे मुक्तरहताहै और छलको देखकर इस प्रकार तीक्ष्ण दौड़ना है कि छलको लज्जावान् करके फिरभी अपने कार्य्य विषे जाय सावधान होताहै ४ सो इसका दृष्टान्त यहहै कि जैसे चारपुरुष विद्या पढ़ने जायँ और कोई और पुरुष ईर्षा करके उनको निवर्जित किया चाहै सो जब ईर्षा करनेवाला पुरुष प्रथम विद्यार्थी को मिले और उसको पढ़नेके नि

मित्त जाने से मार्ग में रोके और वह विद्यार्थी ऐसा होने कि उस शत्रु के वचन को न माने पर पढ़ने की समय वैरीसे विरुद्ध करने विषेही बितावे तब वह तो पढ़ने से दूरही रहजाता है बहुरि जब दूसरे पुरुषको वह बाधक शत्रु रोके तब वह उसको झूठा करले के निमित्त कुछ ढील लगावे पर वहांही अटक न रहे बहुरि शत्रुको निषेध करके विद्याञ्जाय पढ़े बहुरि जब वह शत्रु तीसरे पुरुष को मिट-काया चाहे तब वह शत्रुकी ओर हृदयदी न देवे और उसको दुःखदायक जान कर अपने मार्ग विषे चलाजावे बहुरि चौथा पुरुष ऐसा होवे कि शत्रुको मार्ग में देखकर तीक्ष्ण भगिजावे और विद्या पढ़ने के कार्मविषे जाय स्थित होवे सो जब विचार करके देखिये तब दो पुरुषों से तो शत्रुने अपना मनोरथ पूर्ण किया और तीसरे पुरुषसे उसको प्राप्त कुछ न हुआ बहुरि चौथे पुरुषसे शत्रुको प्राप्ती कुछ न हुआ और लज्जावान् होकर उलटा पश्चात्ताप करने लगा कि जब मैं इसको विद्या पढ़ने से विवर्जित न करता तब यह शीघ्रही दौड़कर विद्या पढ़ने की ओर न जाता ताते बलीपुरुष यही है तैसेही दृढ़ पुरुषार्थ उसही जिज्ञासुका कहाजाताहै जो सकल्पोंके विरुद्ध विषेभी आसक्त न रहे और शीघ्रही भजनके रहस्यमें लीन होजावे॥ अब प्रकट करना इसका कि ऐसे कार्य करके भजनको दिखलाना भी प्रमाणहै॥ ताते जान तू कि जैसे भजनकी गुप्तता विषे यह लाभ प्रसिद्धहै कि दम्भसे मुक्तरहताहै तैसेही भजन की प्रकटता विषे भी यह बड़ा लाभ है कि भजनवान् को देखकर और लोगभी भजन विषे स्थित होते हैं और उन की श्रद्धा सात्त्विकी क्रियाओं वृद्धहोती है इसीपर महाराजने कहाहै कि जब शु-द्धमनसा सहित प्रकट दानदेवे तौभी विशेषहै और जो पुरुष गुप्त दानदेवे वह भी उत्तम है इसीपर महापुरुषनेभी कहाहै कि जब यहपुरुष सात्त्विकी कर्मकी नीव दृढ़रखताहै और उस कर्मको देखके और मनुष्यभी शुभक्रिया विषे लगतेहैं तब प्रथम पुरुषको अपने करतूतिका फलभी प्राप्त होताहै और २ मनुष्योंके फलका भाग भी पावता है जैसे तीर्थयात्री को देखकर और लोग भी तीर्थकी मनसा करते हैं और जो पुरुष रात्रिविषे ऊंचेस्वरसे भजन करताहै सर्व उसकी धुनि सु-नकर बहुत मनुष्योंकी निद्रा दूरहोजाती है तो इसप्रकारके कर्मो करके दूसरोंको भी सुकृति का लाभ होताहै और इसको अपनी सुकृति का फल और दूसरोंकी करतूतिका भाग प्राप्त होताहै और इनकर्मोंके अर्थ विशेष सावताहै तातपर्य.

कि जिसकी मनसा दम्भसे रहित होवे और और जीवों के निमित्त भजन और शुभकर्म को प्रकटकरे तब यह भी उत्तम अवस्थाहै पर जिसके हृदय विषे दम्भ की वासना उपजआवे सो उसका भजन व्यर्थ होताहै और शुद्ध वासना करके जो भजन करताहै उसहीका भजन और करतूति सफल होताहै और महापुरुष ने भी ऐसा कहा है कि भजनकरो पर हृदय विषे दम्भकी वासना न करो गुप्त मनसा करके भजनकरो और ऐसा भी कहाहै कि दम्भकी मनसाकरनी मूर्खोंका काम है और गुप्तभजन परदे साथ जो करते हैं सो सब फलदायक होताहै जैसे धरतीमें बीजबोवते हैं सो जो धरतीमें दबाहुआ होताहै वही उगताहै और बाहर जो दाना होताहै सो नहीं उपजता पर जिसके मन विषे खोटी वासना धनआदिक की होती हैं तब उसको और जीवोंके कल्याणके निमित्त भजनको प्रकट करना लाभदायक नहीं होता काहेसे कि प्रथम तो दम्भ करके इसकी मनसा मलिन होती है और इसीकारण से और जीवोंको भी इसके भजन और उपदेश का प्रवेश नहीं होता ताते ऐसे पुरुषको गुप्त भजनकरना विशेषहै पर प्रकट भजन करनेवाले को इसप्रकार चाहिये कि अपने हृदय को भलीप्रकार देखतारहै और दम्भकी वासनासे रहितहोवे काहेसे कि केते पुरुषोंके हृदयमें दम्भकी प्रीति गुप्त होती है और अपने चित्तविषे इसप्रकार अनुमान करलेतेहैं कि हम जगत् के कल्याण के निमित्त भजनको प्रकटकरते हैं बहुरि दम्भकी प्रीतिकरके अपने धर्मको नष्ट करते हैं सो ऐसे पुरुषार्थहीन पुरुषों का दृष्टांत यह है कि जैसे कोई मनुष्य नदीविषे तैरनेलगे और तैरनेकी विद्याको जानता न होवे तब अवश्य ही जलके प्रवाह विषे डूबजाताहै अथवा और किसीको उस प्रबल प्रवाहसे निकासा चाहे तब उसको भी अपने संगही डुबावता है और बलवान् पुरुषों का दृष्टांत ऐसाहै कि जैसे कोई तैरने की विद्या विषे चतुरहोवे तब वह आपभी तैर जाताहै और और मनुष्यों को भी तैरायलेता है सो यह सन्तजनों की अवस्था है पर सब किसी को ऐसा नहीं चाहिये कि महापुरुषों की अवस्था को देखकर यह भी अभिमानी होवे और दम्भसे रहित होकर अपने भजनको गुप्त न राखे तब निस्सन्देह उसका अकाज होताहै बहुरि जो पुरुष जगत्के कल्याणके निमित्त भजन को प्रकट करता है सो तिसकी परीक्षा यह है कि जब कोई उसको ऐसा कहे कि तू अपने भजन को प्रसिद्ध न कर इसकरके कि लोगोंको कल्याण,

र्थका उपदेश करनेवाला अमुक वैराग्यवान् प्रकट है ताते उसकी सगति करके इनको अधिक लाभहोवेगा और तुझको भी गुह्य भजनकरने विषे अधिकलाभ है सो जब वह पुरुष यह वार्त्ता सुनकर भी भजनको प्रकटही कियाचाहे तब ऐसा जानिये कि अपने मान और ऐश्वर्य्यको चाहता है और अर्थके फलकी मनसा सें हीनहै बहुरि एक ऐसे पुरुषहोते हैं कि भजनके नियमको पूर्णकरके लोगों विषे इसप्रकार कहनेलगतेहैं कि हमने क्या करतूति कियाहै सो इस वचनकरके भी मनको प्रसन्नता होती है ताते चाहिये कि अपनी स्तुतिकी रसनाको सकुचायराखे अर्थ यह कि जबलग मान अपमान और निन्दा स्तुति इसको समान न होवे तबलग किसी प्रकार अपनी बड़ाई को प्रकट न करै बहुरि जब मानकी अभिलाषा मूलही से इसके हृदयसे दूर होजावे तब उसको अपनी स्तुतिकरके भी दोष नहीं लगता और उसके वचन सुनकर केते जीवों की मनसा शुभकर्मनि विषे दृढ़ होती है सो केते बलवान् पुरुषों ने इस प्रकार अपनी विशेषता को वर्णन कियाहै जैसे एक सन्तने कहा है कि मैंने भगवत्का भजन संकल्प सहित कदाचित् नहीं किया और जो वचन मैंने महापुरुषों के मुख से सुना है सो तिसको यथार्थही जानकर निश्चय किया है इसीपर उमरनामी सन्तने भी कहा है कि जब मैं प्रभात समय उठताहूं तब मुझको किसी सुगम और अगम कार्य्य विषे भय नहीं होता इसकरके कि देखिये मेरी भलाई किस कार्य्य में होवेगी ऐसेही इबनमसऊद सतने कहाहै कि जब जैसा अवसर मेरे ऊपर आताहै तब उसको मैं अपनी वासनाके अनुसार कदाचित् विपर्यय नहीं किया चाहता और सिफयासौरी सन्त जब मृत्यु होने लगे थे तब उनके सम्बन्धी रुदन करने लगे तब उन्होंने ऐसा कहा कि मेरे मृत्यु होनेपर रुदन न करो काहेसे कि जिस दिनसे मैंने महाराजके मार्ग विषे चरण राखाहै तब से मैंने पापकर्म नहीं किया इसीपर एक और सन्तने कहाहै कि जिसप्रकार भगवत्की आज्ञा हुई है उससे मैंने विपर्यय वासना नहीं करी पर निर्बल मनुष्यको इसप्रकार नहीं चाहिये कि उनको देखकर यह भी अभिमानी होजावे बहुरि महाराजने करतूतों विषे ऐसे भी गुह्यभेदहैं कि उनको अपनी बुद्धिकरके पहिचान नहीं सके और केते क्रियों विषे ऐसी गुह्य भलाई होती है कि हम उसको जानतेही नहीं जैसे दम्भ करके दम्भी मनुष्यका अकाज होजाताहै पर तौभी उसको देखकर केते जीवोंकी वृत्ति

सात्त्विकी आचरण विषे दृढ होजावाहै और अपनी शुद्धमनसा करके दूसरे पुरुषको भी निष्काम जानते हैं ताते वह भी निष्कामता विषे दृढहोते हैं ॥ अ आज्ञादेनी अपने पापको छिपानेकी ॥ ताते जान तू कि भजनके प्रकट करने में तो निस्सन्देह दम्भ होताहै पर अपने अवगुणोंका छिपाना भी सन्तजनों मे प्रमाण कहाहै और इसको दम्भ नहीं कहते काहेसे कि अपने पापको दुराने विषे पांच प्रकार की विशेषता प्रसिद्धहै प्रथम यह कि पापकर्म को देखकर लोग निन्दा करते हैं और जब इसपुरुष की वृत्ति निन्दास्तुति विषे आसक्त होती है तब भजन से बिमुख रहताहै-१ बहुरि दूसरी विशेषता यह है कि निन्दा सुनकर इस मनुष्य का हृदय अप्रसन्न होता है और निन्दास्तुति को सम जानना महाकठिनहै ताते ऐसी अवस्था को प्राप्तहोना भी महाकठिनहै, बहुरि निन्दा के भय करके भजन करना निष्कामही विशेष होता है और निन्दा के भय करके निंद्य कर्मोंको दुरावना अयोग्य नहीं इसकरके कि यद्यपि यह पुरुष लोगोंकी स्तुति से विरक्त होसक्ता है तोभी निन्दा विषे धैर्य करना महाकठिन है २ बहुरि तीसरी विशेषता यहहै कि जब किसी का मलिन कर्म प्रसिद्ध होताहै तब उसको देखकर और लम्पट मनुष्य भी ढीठ होजाते हैं और शङ्कासे रहित होकर निंद्य आचार विषे विचरने लगते हैं सो इस मनसा करके अपने पाप को दुरावना भी विशेष है पर जब अपने पापको इस मनसा करके दुरावे कि ये लोग मुझ को बैरागी और भजनवान् जानें तब यह पाप अयोग्य है ३ बहुरि चौथी विशेषता यहहै कि लज्जा करके अपने अवगुणों को दुरावै तोभी भलाहै काहेसे कि सर्व मनुष्योंसे लज्जा करनी इसजीवको प्रमाण कहीहै पर जब कोई इसप्रकार कहे कि लज्जा और दम्भ एकहै तब ऐसे नहीं काहेसे कि लज्जा और है और दम्भ और है पर जब कोई पुरुष ऐसा होवे कि उसका अन्तर बाह्य एक समान होवे तब यह अवस्था महाउत्तमहै और यह अवस्था उनहीको प्राप्तहोनी है जिसके हृदये विषे भी पापकी मनसा न फुरे और जब कोई पुरुष पापकर्म करके इसप्रकार कहै कि जब भगवत् मेरे पापको जानताहै तब मैं और जीवों से किस निमित्त दुरावों सो यह बड़ी मूर्खता है काहेसे कि महाराज नेभी शुभ मार्गको छिपानाही विशेष कहाहै ४ बहुरि पांचवीं विशेषता यहहै कि जब इसका अवगुण इसलोक विषे प्रसिद्ध न हुआ तब महाराजको दयालु जानकर इसप्रकार

समझै कि उसकी दयाकरके परलोक विषे भी मेरा अवगुण प्रसिद्ध न होवेगा ताते अपने पापको डरायकर महाराज की दयाके ऊपर शुद्धआशा राखे तब यही बड़ी विशेषता है ५॥ अथ प्रकट करना इसका कि दम्भके भयकरके शुभ कर्म्मोंका त्यागकरना प्रमाणहै अथवा नहीं ॥ ताते जान तू कि सब शुभकर्म तीन प्रकारके कहे हैं सो प्रथम यह कि एक कर्म का सम्बन्ध केवल भगवत् के साथ होताहै जैसे भजन और व्रत और साधन जो जिज्ञासुजन करते हैं १ और दूसरा यह कि उन कर्म्मोंका सम्बन्ध लोगों के साथ अवश्यही होताहै जैसे राजनीति की मर्य्याद विषे विचरना और देशों की पालना और रक्षा करनी २ बहुरि तीसरा कर्म्म इसप्रकार है कि उसका सबन्ध लोगों के साथभी होताहै और लोगों विषे उसका प्रवेश भी पहुँचता है और कर्म्म करनेवाले को भी उसका गुण प्राप्त होताहै जैसे कथा कीर्त्तन और शुभकर्म्म जो व्रत भजन आदिकहैं ३ तब दम्भके भयकरके इनका त्यागकरना प्रमाण नहीं पर जब ऐसे कर्मों विषे किसी पुरुषको अचानकही दम्भका संकल्प फुरआवे तब चाहिये कि उस मलीन फुरना को विचार करके निवृत्तकरै और भजन की शुद्ध मनसाको हृदय विषे दृढ़ करै बहुरि लोगों के देखने के निमित्त भजनको बढ़ावे घटावे नहीं और जिसप्रकार आगेही भजन करताहोवे तैसेही करतारहे तो भला है अथवा जब भजनकी मनसा कुछही न रहे और दम्भका सकल्प अत्यन्त दृढ़ होजावे तब यह तो भजनही नहीं कहाजाता पर जबलग इस पुरुषकी शुद्धमनसाका बीज स्थितहोवे तबलग ऐसे कर्म्मोंका त्याग न करे इसीपर फुजैलनामी सन्तने कहा है कि लोगोंकी दृष्टिके भयकरके शुभकर्म्मों को त्यागदेनाही दम्भ है और जो पुरुष जगत्को दिखावनेके निमित्तही भजन करै तब वह तो निस्सन्देह मनमुख होताहै पर यह मनरूपी दुष्ट ऐसा शत्रुहै कि जब और छलकरके भजनका त्याग नहीं करायसक्ता तब ऐसा सङ्कल्प आन उपजावता है कि जब तू भजन करताहै तब और लोग तुझको देखते हैं तब यह केवल दम्भहोता है ताते तू भजनही का त्यागकर पर जब तू मनकी आज्ञा मानकर धरतीको गोदे और उसविषे बैठकर भजनकरै तौभी तुझको इसप्रकार कहेगा कि लोग तुम्हारे भजनवान जानते हैं ताते तेरा भजन करना प्रमाण नहीं सो इसका उपाय यह है कि मनसे इस प्रकार विचारकर कहिये कि लोगोंकी ओर निहारनी बुद्धिकी पहचानना और इस

सात्त्विकी आचरण विषे दृढ़ होजाती है और अपनी शुद्धमनसा करके दम्भी पुरुषको भी निष्काम जानते हैं ताते वह भी निष्कामता विषे दृढ़होते हैं ॥ अरु आज्ञादेनी अपने पापको छिपानेकी ॥ ताते जान तू कि भजनके प्रकट करने में तो निस्सन्देह दंम्भ होताहै पर अपने अवगुणोंका छिपाना भी सन्तजनों ने प्रमाण कहाहै और इसको दम्भ नहीं कहते काहेसे कि अपने पापको दुराने विषे पांच प्रकार की विशेषता प्रसिद्धहै प्रथम यह कि पापकर्म को देखकर लोग निंन्दा करते हैं और जब इसपुरुष की वृत्ति निन्दास्तुति विषे आसक्त होती है तब भजन से विमुख रहताहै १ बहुरि दूसरी विशेषता यह है कि निन्दा सुनकर इस मनुष्य का हृदय अप्रसन्न होता है और निन्दास्तुति को सम जानना महाउत्तमहै ताते ऐसी अवस्था को प्राप्तहोना भी महाकठिनहै बहुरि निन्दा के भय करके भजन करना निष्कामही विशेष होता है और निन्दा के भय करके निंद्य कर्म्मोंको दुरावना अयोग्य नहीं इसकरके कि यद्यपि यह पुरुष लोगोंकी स्तुति से विरक्त होसक्ता है तौभी निन्दा विषे धैर्य करना महाकठिन है २ बहुरि तीसरी विशेषता यहहै कि जब किसी का मलिन कर्म्म प्रसिद्ध होताहै तब उसको देखकर और सम्पद मनुष्य भी ढीठ होजाते हैं और शङ्कासे रहित होकर निन्द्य आचार विषे विचरने लगते हैं सो इस मनसा करके अपने पाप को दुरावना भी विशेष है पर जब अपने पापको इसी मनसा करके दुरावे कि मै लोग मुझको वैरागी और भजनवान् जानें तब यह वार्ता अयोग्य है ३ बहुरि चौथी विशेषता यहहै कि लज्जा करके अपने अवगुणों को दुरावे तौभी भलाहै काहेसे कि सर्व मनुष्योंसे लज्जा करनी इसजीवको प्रमाण कही है पर जब कोई इसप्रकार कहे कि लज्जा और दम्भ एकहैं तब ऐसे नहीं काहेसे कि लज्जा और है और दम्भ और है पर जब कोई पुरुष ऐसा होवे कि उसका अन्तर बाह्य एक समान होवे तब यह अवस्था महाउत्तमहै और यह अवस्था उसहीको प्राप्तहोती है जिसके हृदय विषे भी पापकी मनसा न फुरे और जब कोई पुरुष पापकर्म करके इसप्रकार कहे कि जब भगवत् मेरे पापको जानताहै तब मैं और जीवों से किस निमित्तदुरावों सो यह बड़ी मूर्खता है काहेसे कि महाराज नेभी गुह्य वार्ताको छिपानाही विशेष कहाहै ४ बहुरि पांचवीं विशेषता यहहै कि जब इसका अवगुण इसलोक विषे प्रसिद्ध न हुआ तब महाराजको दयालु जानकर इसप्रका

समझे कि उसकी दयाकरके परलोक विषे भी मेरा अवगुण प्रसिद्ध न होवेगा ताते अपने पापको दूरायकर महाराज की दयाके ऊपर शुद्धआशा राखे तब यही बड़ी विशेषता है ५॥ अथ प्रकट करना इसका कि दम्भके भयकरके शुभ कर्म्मोंका त्यागकरना प्रमाणहै अथवा नहीं ॥ ताते जान तू कि सब शुभकर्म्म तीन प्रकारके कहे हैं सो प्रथम यह कि एक कर्म्म का सम्बन्ध केवल भगवत् के साथ होताहै जैसे भजन और व्रत और साधन जो जिज्ञासुजन करते हैं १ और दूसरा यह कि उन कर्म्मोंका सम्बन्ध लोगों के साथ अवश्यही होताहै जैसे राजनीति की मर्य्याद विषे विचरना और देशों की पालना और रक्षा करनी २ बहुरि तीसरा कर्म्म इसप्रकार है कि उसका सबन्ध लोगों के साथभी होताहै और लोगों विषे उसका प्रवेश भी पहुँचता है और कर्म्म करनेवाले को भी उसका गुण प्राप्त होताहै जैसे कथा कीर्त्तन और शुभकर्म्म जो व्रत भजन आदिकहैं ३ तब दम्भके भयकरके इनका त्यागकरना प्रमाण नहीं पर जब ऐसे कर्मों विषे किसी पुरुषको अचानकही दम्भका संकल्प फुरआवे तब चाहिये कि उस मलीन फुरना को विचार करके निवृत्तकरै और भजन की शुद्ध मनसाको हृदय विषे दृढ़ करै बहुरि लोगों के देखने के निमित्त भजनको बढ़ावे घटावे नहीं और जिसप्रकार आगेही भजन करताहोवे तैसेही करतारहे तो भला है अथवा जब भजनकी मनसा कुछही न रहे और दम्भका संकल्प अत्यन्त दृढ़ होजावे तब यह तो भजनही नहीं कहाजाता पर जबलग इस पुरुषको शुद्धमनसाको बीज स्थितहोवे तबलग ऐसे कर्म्मोंका त्याग न करे इसीपर फुजेलनामी सन्तने कहा है कि लोगोंकी दृष्टिके भयकरके शुभकर्म्मों को त्यागदेनाही दम्भ है और जो पुरुष जगत्को दिखावनेके निमित्तही भजन करै तब यह तो निस्सन्देह मनमुख होताहै पर यह मनरूपी दुष्ट ऐसा शत्रुहै कि जब और छलकरके भजनका त्याग नहीं करायसका तब ऐसा सङ्कल्प आन उपजावता है कि जब तू भजन करताहै तब और लोग तुझको देखते हैं तब यह केवल दम्भहोना है ताते तू भजनही का त्यागकर पर जब तू मनकी आज्ञा मानकर घरोंको छोड़े और उसविषे बैठकर भजनकरै तोभी तुझको इसप्रकार कहेगा कि लोग तुझको भजनवान जानते हैं ताते तेरा भजन करना प्रमाण नहीं सो इसका उपाय यह है कि मनको इस प्रकार विचारकर कहिये कि लोगोंकी ओर विचारी दृष्टिकरी पनाहना और इस

ही भयकरके भजनका त्यागकरना सो यहभी केवल दम्भहै ताते लोगोंका देखना और न देखना मुझको एक समानहै काहेसे कि मुझको भजनके स्वभाव विषेही स्थितहोना विशेष है और मैं इसप्रकार जानताहूं कि मुझको कोई नहीं देखता तातें दम्भके भयकरके भजनको त्याग करनेका दृष्टान्त यह है कि जैसे कोई अपने टहलुवेसे कहे कि अमुक अनाजको अमनिया करले और वह टहलुवा ऐसा जानकर अनाजको शुद्ध न करे कि जो इस अनाजविषे अकस्मात् अमनिया करने के पीछे भी कोई रोड़ी अथवा काकर रहजावे तब यह भली प्रकार शुद्ध न होवेगा ताते मैं मूलही से अनाज शुद्धकरनेका उद्यम नहीं करता तब उससे उसका स्वामी ऐसे कहता है कि हे मूर्ख ! जब तैंने मूलही से शुद्ध करनेका उद्यम न किया तब क्या वह अनाज शुद्ध होजावेगा अर्थात् अत्यन्त अशुद्ध रहेगा तैसेही इसजीवको भगवत् ने निष्काम कर्मकी आज्ञा करी है और जब दम्भके भय करके शुभकर्म्मही न करे तब निष्काम क्योंकर होवेगा काहे से कि निष्कामता शुभकर्मों विषेही स्थितहोती है और इब्राहीम सतकी वार्त्ता इस प्रकार सुनीहै कि सर्वदा अपनी कुटी विषे पोथीका पाठकरते रहते थे बहुरि जब और किसीको द्वारेपर आता देखते थे तब पोथीको उलटाय रखते थे सो इसका तात्पर्य यहहै कि वे इसवार्त्ता को निश्चय जानते थे कि जब कोई पुरुष हमारे मिलने को आया है तब उसके साथ अवश्यही कुछ वचन वार्त्ता करनीहोवेगी ताते पोथीको उलटाय रखनाही विशेषहै और इब्नबसरी ने इस प्रकार कहाहै कि जब जिज्ञासुजनोंको महाशोक के प्रेम करके रुदन आताथा तब निष्कामपुरुष अपने मुखको छुपायलेते थे इसकरके कि हमारे त्यागने चलने को और लोग न देखें सो यह वार्त्ताभी प्रमाण है काहेसे कि गुप्त रुदनकरनेसे प्रकट रोना कुछ विशेष नहीं होता और उन्होंने भी लोगोंके निमित्त रुदनका त्याग नहीं किया पर अपनी प्रीतिके प्रवाहको गुप्त करलियाहै और जब कोई पुरुष ऐसाहोवे कि मार्ग विषे कांटा और पत्थर देखकर उठावे नहीं इसकरके कि लोग मुझको दयावान् जानेंगे सो यह अत्यन्त पुरुषार्थ की हीनता है काहे से कि ऐसा पुरुष लोगोंके देखने से अपने चित्त विषेही भयवान् होता रहताहै और इसीही संकल्प की अधिकता करके गमन नहीं करसक्ता सो यह अवस्था कुछ विशेष नहीं होती ताते चाहिये कि प्रीतिमान् अपने हृदय से दम्भ का निवारण करे और भजन

को त्याग न देवै तौ भला है बहुरि दूसरा कर्म जो इसप्रकार वर्णन किया कि अवरसेंही उसका सम्बन्ध लोगों के साथ होताहै जैसे राजनीति और देशोंकी पालना करनी सो जब यह पुरुष राजनीति विषे धर्म और विचार की मर्यादि संयुक्त विचरै तब यह भी उत्तम भजन होता है और जब धर्म से हीन होजावे तब इसही को महापाप कहा है ताते जिस पुरुष को ऐसी प्रतीति दृढ़ न होवे कि मेरा मन राजनीति विषे विचारकी मर्यादि सहित न विचरेगा तब उसको राज्यादिक व्यवहार को अंगीकारकरना प्रमाण नहीं काहे से कि जब राजधर्म विषे अनीति सहित विचरे तब महाअपराध को प्राप्त होताहै और यह राज्यव्यवहार नेम और व्रतोंकी नाईं नहीं काहे से कि भजन के नियम और व्रतों विषे इसमनको मूलहीसे कुछ प्रसन्नता नहीं भासती पर लोगोंके देखनेकरके प्रसन्नताको पाताहै और राजव्यवहार विषे सर्व भोग और मानादिकों की अधिकता होती है ताते इस जीवका मन शीघ्रही बुद्धिरहित होजाताहै इसी कारण से कहाहै कि राजनीति विषे कोई विरलाही पुरुष विचार की मर्यादमें स्थितरहता है और यह अवस्था उसही को प्राप्त होती है जिसने आगेही अपने मनकी परीक्षा करलीहोवे पर यद्यपि यह मन राजधर्म से आगेही दिखावे कि मैं जगत् की पालना विषे भलीप्रकार विचरूंगा और भोगों विषे आसक्त न होऊंगा तौभी जिज्ञासुजन को भय औ दोषदृष्टि करनी विशेष है काहे से कि मन पहिले मन का कहा न होवे और जब सिंहासन पर जाय बैठे तब स्थित न रहे ताते स्थिर बुद्धि बिना ऐसे व्यवहारको अंगीकारकरना प्रमाण नहीं इसीपर अबूबक्र सन ने एक अपने मित्रपी से कहाथा कि जब तुझको दो पुरुषों विषे मुखिया करें तौभी अंगीकार न करना बहुरि जब महापुरुषने पीछे अबूबक्रको सर्व देशोंका राज्य प्राप्तहुआ तब उस मित्रपीनिगमान् ने कहा कि तुम मुझको तो वर्जित करते थे फिर तुमने राज्यको क्यों अंगीकार किया तब उन्हों ने कहा कि मैं तुमको तो अबभी वर्जित करताहूं काहेसे कि जो पुरुष सिंहासन पर बैठकर न्याय न करें तब वह महाराज के दरबारसे विमुखहोताहै पर अबूबक्रजी ने जो उसको राज्यसे वर्जित कियाथा और आप राज्यको अंगीकार किया तो इसका दृष्टान्त यह है कि जैसे कोई पुरुष अपने पुत्रको इसप्रकार कहे कि तू जलके प्रवाहविषे प्रवेश न कर काहेसे कि तब तू तैरनेको जाना बिना नहीं निकस सकेगा तब जौ

ही डूबजावेगा पर जब वह पुरुष आप तैरनेकी विद्या जानताहोवे तब उसको तो नदीका भय कुछ नहीं होता और सुगमही उल्लंघन होजाता है बहुरि जब वह बालकभी उसको देखकर नदीके प्रवाह विषे प्रवेशकरे तब वह तो निस्सन्देह डूबजाता है तैसेही जो पुरुष राजव्यवहार विषे विचारकी मर्य्यादा सहित न विचरे तब दण्डका अधिकारी होता है ताते ऐसे पुरुषको राजधर्म का अंगीकार करना अयोग्यहै पर जो कोई ऐसा विचारवान्होवे कि जब कोई और पुरुष भलीप्रकार न्याय करनेवाला आवे तब उसके साथ ईर्षा और वैरभाव न करे और उसको देखकर अधिक प्रसन्नहोवे और इस भयसे रहितहोवे कि इसके राज्यकरके मेरा राज्य नष्टहोवेगा तब जानिये कि इसने धर्मही के निमित्त राज्यको अंगीकार कियाहै २ बहुरि तीसरा कर्म इसप्रकारका कहाहै कि लोगोंको शुभमार्ग का उपदेश करना और वचन वार्ताकरके जीवोंका संशय निवारण करना सो यद्यपि यह कर्म भी अधिक विशेषहै तौभी इस विषे मनको दीर्घ प्रसन्नता प्राप्त होती है और दम्भका प्रवेश अधिक होजाताहै और यद्यपि गोनिके सम्बन्धकरके यह कर्म भी राजधर्मके निकटहोताहै तौभी इस विषे इतना भेद प्रकटहै कि शुभ मार्ग विषे उपदेश सुननेवालेको भी लाभदायकहै और कहनेवाले को भी गुण दायक होताहै सो राजका व्यवहार इसप्रकार नहीं होता पर जब किसी को इस धर्म विषे दम्भकी मनसा उपजआवे तौभी विचारकरके इसका त्याग करना प्रमाण है पर केते जिज्ञासुजनोंकी ऐसी अवस्थाहुई है कि जब उनसे कोई पुरुष प्रश्नोत्तर पूछताथा तब इसप्रकार कहते थे कि अमुक बुद्धिमान्से पूछलो काहेते कि हम इस वार्ताको भलीप्रकार नहीं जानते इसीपर बशरहाफी सन्तने पोथियों का सन्दूक धरती विषे गाड़दियाथा और कहनेलगे कि मैं अपने हृदय विषे उपदेशरूपी भोगकी अभिलाषा देखताहूं ताते मैंने वचन वार्ताको त्याग दियाहै और जब मैं अपने हृदयको इस अभिलाष से रहित देखता तब मुझको उपदेश करना प्रमाणहोता ऐसेही और सन्तजनों ने भी कहा है कि उपदेश करना भी मनका भोगहै काहेसे कि जिस पुरुष के हृदय विषे मान और बड़ाई की प्रीति होवे तब उसको जगत् का मुखिया होनाभी अयोग्य है इसीपर उमर सन्त से किसी प्रियतमने पूछाथा कि जो तुम आज्ञादेवो तो मैं लोगों को शुभमार्ग का उपदेश करूं तब उन्हों ने कहा कि जो इस उपदेश करने करके तेरे हृदय विषे

मानकी अधिकता होजावे और बड़ाई का पवन तुझको उड़ालेजावे तब तेरा अकाज होवेगा ताते मेरे चित्त विषे यही भय आता है इसी पर इब्राहीम सन्त ने भी कहाहै कि जब तू अपने हृदय विषे बोलने की अभिलाष देखे तब तुझ को मौनकरना विशेषहै और,जब मौनको अधिक देखे तब वचन वार्त्ता करनी विशेषहै पर मेरे चित्त विषे इसप्रकार भासताहै कि उपदेश करनेवाला पुरुष अपने हृदय विषे विचार कर देखे और इस वार्त्ता को भलीप्रकार करे कि जब सात्त्विकी मनसा और दम्भका सकल्प दोनों मिलेहुये होवें तब उपदेश का त्याग न करे और यत्नकरके सात्त्विकी मनसाको दृढ़करे और दम्भ के सकल्पका निवारणकरे काहेसे कि उपदेशका करना भी व्रत और भजनके नेमकीनाई कुछ दम्भके,सकल्प करके त्यागना प्रमाण नहीं पर शुद्ध मनसाके बीज को पुष्टकरे और दम्भही निवृत्त किया चाहिये बहुरि जब राजधर्म विषे कुछ भी मनसा की मलिनता होवे तब राजव्यवहार को त्यागदेना प्रमाण है काहे से कि राज-नीति विषे मान और भोगों की अधिकताकरके शीघ्रही मलिनता बढ़जाती है और शुद्धमनसाका बीज तत्कालही नष्ट होजाता है इसीकारण से जब अबूहनीफा सन्त को राजाका प्रधान करनेलगे थे तब उन्हों ने कहा कि मैं प्रधानता का अधिकारी नहीं बहुरि राजा ने कहा कि तुम तो सम्पूर्ण विद्यावानहो और नीति अनीतिके विचारने योग्यहो ताते तुमहीं उत्तम अधिकारीहो तब उन्होंने कहा कि जब मैं सत्यकहताहूं तब निस्सदेह अधिकारी न हुआ और जब झूठ कहताहूं तब झूठा मनुष्य राजनीति का अधिकारी नहीं होता तात्पर्य्य यह कि यद्यपि ऐसे कहकर उन्होंने राजधर्मका अंगीकार न किया पर सर्व आयुष् पर्यंत लोगोंको धर्मका उपदेश करतेरहे और वचन वार्त्ताका त्याग नहीं किया बहुरि जब उपदेश करनेवाले के हृदयविषे कुछ भी धर्मकी मनसा न रहे और सर्वथा दम्भकी अधिकता विषे आसक्त होजावे तब उसको उपदेशका त्याग करनाही विशेष कहा है पर जब वह पुरुष मुझसे पूछे कि मैं उपदेश करता रहूं अथवा त्यागदूं तब मैं इस प्रकार विचार की दृष्टिकरके देखूं कि जब उसके वचन विषे लोगोंको धर्मके मार्गका लाभ कुछ न होवे जैसे फकीश्वरों की चतुराई अथवा मत और पन्थोंका विवाद वर्णन होवे अथवा सभागी जीवोंको भगवत्की दया का बखानकरके सुनावे और पापोंविषे उनको निश्शक करे तब उसको

वचन वार्त्ताका त्याग करनाही प्रमाण कहाहै काहेसे कि उसके मौनी रहने विषे लोगोंको गुण होवेगा और वह भी दम्भ और मानसे मुक्त रहेगा बहुरि जिसका वचन धर्मकी मर्य्यादा अनुसार होवे और लोग उसको निष्काम जानकर धर्म का अंगीकार करें तब मैं ऐसे पुरुषको उपदेश करने के त्यागकी आज्ञा न देऊंगा काहेसे कि यद्यपि उपदेश करने विषे दम्भकी मनसा करके उसको अवगुणही होताहै पर बहुत पुरुषों को उसके वचन सुनकर धर्मकी प्राप्तिहोती है और जब वह पुरुष उपदेशको त्यागदेवे तबी उसको तो प्रसिद्धही गुण व लाभहै पर और बहुत मनुष्योंकी हानिहोती है ताते ऐसे जान तू कि सहस्र पुरुषोंका लाभ एक पुरुषकी हानिसे विशेषहै इसी कारणसे तो एक उपदेश करनेवाले दम्भीको सहस्र जिज्ञासुओं पर निछावर किया चाहना इसीपर महापुरुषने कहाहै कि जिज्ञासु जनोंको सकामी पंडितोंसे भी धर्मही की प्राप्तिहोती है और वह पंडित अपने धन और मानादिके प्रयोजनही को पाते हैं ताते ऐसे पुरुषोंको इतनीही आज्ञा करू कि तुम शुभ उपदेशका त्याग न करो पर यथाशक्ति दम्भहीको निवृत्त करने में तुम्हारी भलाई है और पुरुषार्थ करके निष्काम श्रद्धा विषे दृढ़होवो प्रथम आपही उत्तम उपदेशको अंगीकार करो और भगवत्के भय विषे स्थितहोवो बहुरि और लोगों को उपदेश करके भगवत्का भय दो पर जब कोई इसप्रकार प्रश्न करे कि उपदेश करनेवालेकी मनसा शुद्ध और निष्काम क्योंकर जानिये तब इसका उत्तर यहहै कि शुद्ध मनसा तबही जानी जासकी है जब इस पुरुषकी श्रद्धा यहीहोवे कि किसी प्रकार ये मनुष्य भगवत् के मार्ग को अंगीकार करें और माया से विरक्त होवें सो यह केवल दयाहोती है पर जब कोई ऐसा पुरुष और भी आय प्रकटै कि उसके उपदेश करके जीवों को धर्म का अधिक लाभ होवे और लोग उसपर विशेष प्रतीति राखें तब चाहिये कि इसकरके यह पुरुष अधिक प्रसन्नहोवे सो इसका दृष्टांत यहहै कि जैसे कोई मनुष्य अन्धकूप विषे गिरपड़े और कोई पुरुष दया करके उसको बाहर निकासा चाहे पर जब दूसरा पुरुषभी उसके निकासने विषे आय सहाय करे तब प्रथम पुरुषको निस्सन्देह प्रसन्नता प्राप्तहोती है तैसेही जब उपदेश करनेवाला मनुष्य और किसी विवेकी जनको देखकर प्रसन्न न होवे तब जानिये कि यह पुरुष उपदेश करके आपको पुजाया चाहताहै और भगवत् के मार्ग विषे लगाया नहीं चाहता बहुरि गुरु

मनसाका दूसरा लक्षण यहहै कि जब सभा विषे वचन वार्त्ता करतेहुये धनवान् अथवा राजालोग आय प्राप्तहोवें तौभी यथार्थ वचनका त्याग न करै और उनका ऐश्वर्य देखकर सकुच न जावे और अपने स्वभावके अनुसार यथार्थ वचनही पर दृष्टिराखै तब जानिये कि इस पुरुषकी मनसा निष्कामहै तात्पर्य यह कि उप-देश करनेवाला पुरुष प्रथमही ऐसे लक्षणोंको अपने चित्तविषे विचारकर देखै सो जब ऐसा चिह्न आप विषे कोई न जानै तब निश्चय इसप्रकार करै कि मैं शुद्ध मनसासे हीनहूं और मेरे चित्त विषे प्रकटही दम्भ है और जब इसप्रकार देखै कि मुझको इस दम्भ विषे दोष दृष्टि आती है तब जानिये कि इसके हृदय में शुद्ध मनसा का बीज भी प्रकट है ताते पुरुषार्थ करके निष्काम श्रद्धाको बढ़ावै और दम्भसे रहितहोवै बहुरि ऐसे जान तू कि इसजीवको कैसे अवसरों विषे भजन करतेहुये और मनुष्यों के मिलाप करके प्रसन्नता भी प्राप्त होती है परउसको दम्भ नहीं कहते सो प्रसन्नता यह है जैसे जिज्ञासुजन के हृदय विषे अकस्मात् कुछ संशय उपजआवे और उसही संशय करके भजन विषे विक्षेपता आन प्राप्तहोवे बहुरि जब किसी और सात्त्विकी मनुष्यको देखै तब वह संशय निवृत्त होजावे और चित्तकी वृत्ति प्रसन्नता सहित भजन विषे दृढ़होवे तब वह दम्भ नहीं कहा जाता जैसे कोई पुरुष अपने गृह विषे आलस्यनिद्रा को त्याग न सके अथवा सम्बन्धियों के वचन सुनताहुआ विक्षेपता को प्राप्तहोवे बहुरि जब अपने गृह से निकलकर कथाकीर्त्तनकी ठौर विषे जाय बैठे तब शीघ्रही भजनकी रुचि और प्रसन्नता उपज आतीहै और वह सबही विक्षेपता दूर होजाती है काहेसे कि वि-राने स्थान विषे निद्राकी अधिकता भी नहीं रहती और भजनवालों को देखकर यह भी जाग्रत् और भजन विषे दृढ़ होजाता है जैसे धनी और तपस्वी पुरुषों को देखकर इसको भी तपकी रुचि उपजआती है तात्पर्य यह कि ऐसी प्र-सन्नता और भजनकी अधिकता सात्त्विकी संगति के प्रवेशकरके दृढ़ होजाती है और इस क्रियाको दम्भ कर्म नहीं कहते पर यह मन ऐसे अवसर विषे भी इसप्रकार संशय आन डालता है कि यह कर्म तुम दम्भके प्रसंग करके करता है ताते यह तेरा कर्म फलदायक न होगा सो इसहीका नाम मनका छल कहते हैं काहेसे कि इस मनुष्यके हृदय विषे संशय डालकर शुभकर्म से भी निवृत्त किया चाहताहै ताते जिज्ञासुको चाहिये कि विचारकरके इसप्रकार जाने कि

निस्संदेह दंभ के आशय करके होताहै और एक कर्म सात्त्विकी संगति के प्रवेशकरके होताहै सो इन दोनों को अवश्यही भिन्न किया चाहिये पर इनकी भिन्नताका चिह्न यहहै कि जब लोग इसको न देखें और यह पुरुष उनको देखताहोवे तब ऐसे स्थानविषे प्रसन्नतासहित भजनकरना उनकी संगतिका गुण है और जब परस्पर एक दूसरे को देखतेहोवें तौभी विचारकरके दम्भ और सात्त्विकी संगति के प्रवेशको भिन्नकरै बहुरि शुद्धमनसा करके दम्भकी अभिलाष को दूरकरे और संशय से रहित होकर भजन विषे स्थितहोवे काहे से कि इस मनुष्यका यह भी स्वभाव है कि जब किसी पुरुषको भय या प्रीति संयुक्त रुदन करताहुआ देखता है तब इसका चित्त भी कोमल होजाता है और वही वचन सुनकर रुदन करनेलगता है सो यद्यपि एकान्त ठौर विषे ऐसे नहीं होवे तौभी इस कर्मको दंभ नहीं कहते काहेसे कि रुदन करनेवाले को देखकर अवश्यही इसकाचित्त द्रवीभूत होहीजाता है पर इस विषे भी इतना भेद है कि आंसू का चलना हृदयकी कोमलता करके होताहै और ऊंची पुकार करनी अथवा धरती पर गिरपड़ना दम्भका कारण है तातें चाहिये कि जब अकस्मात् ऊंची पुकार मुखसे निकलजावे अथवा धरतीपर गिरपड़ाहोवे तब शीघ्रही सचेतहोकर प्रीति के प्रवाह को सकुचायलेवे और जिसके चित्त विषे यह संशय आन उपजे कि मत यह लोग मुझको इसप्रकार कहैं कि इसके चित्त विषे वास्तव प्रीति कुछ नहीं तातें तुरन्तही सचेतता को प्राप्तहुआ है सो जब ऐसा जानकर ऊंचेस्वर से पुकार करतारहै अथवा धरतीपर गिरारहै तब निस्सन्देह दम्भी होता है तात्पर्य यह कि सबही शुचि कर्म दम्भकरके भी होते हैं और सात्त्विकी संगति करके भी उनकी रुचि उपजआती है तातें जिज्ञासुजन सदैवकाल अपने मनकी ओर देखतारहै और दम्भ के भयसे रहित न होवे इसीपर महापुरुष ने कहा है कि शुभ कर्मों विषे नानाप्रकार करके दंभकी मनसा उपजआती है तातें जब अपने मन विषे दम्भकी अभिलाषाको देखे तब इसप्रकार विचार करकेजाने कि भगवत् मेरे अन्तरकी मलिनताको प्रकटही जानता है तातें जब मैं अशुद्ध मनसा करूंगा तब निस्संदेह महाराज के दण्डका अधिकारी होऊंगा ऐसेही जानकर दम्भको निवृत्तकरै और इस वचनको चित्त विषे स्मरणकरै जैसे महापुरुषने कहाहै कि जिस एकाग्रता विषे दम्भकी अभिलाषा मिलीहोवे तब उस एकाग्रतामें भगवत्

ही रक्षाकरै सो इसका अर्थ यह है कि मन तो चपलहोवे और बाहरके अंगों करके आपको भजनवान् दिखावै तब वह केवल दंभी कहाता है बहुरि ऐसे जान तू कि भजन और हृदयकी एकाग्रताबिषे तो अवश्यही निष्काम होना चाहिये और दंभको दूरकरना प्रमाण है पर ऐसेही और भी कैसे सात्त्विकी कर्म हैं कि जब उनसे उत्तम फलों को प्राप्तहुआ चाहे तौभी निष्काम होना विशेषहै जैसे किसी मित्र अथवा किसी अर्थीके मनोरथ को पूर्णकरै तब इसप्रकार निष्काम होवै कि बहुरि उससे उपकार और अपनी स्तुति की चाह न करै अथवा जब किसी को विद्यापढावे तब ऐसी अभिलाषा न करै कि यह विद्यार्थी मेरे आगे आवेगा अथवा टहलकरेगा अथवा मेरेपीछे चलेगा सो ऐसी मनसाभी सकाम होतीहै और धर्मके लाभको निष्फल करडालतीहै पर जब इसको मनसा सेवा करानेकी न होवे और वह आपही टहल सेवा करता रहै तौभी उत्तम वार्त्ता यह है कि उसकी सेवा पूजाको अंगीकार न करै और जब इसकी मनसा बिनाही वह पुरुष प्रीति संयुक्त आपही सेवा करै बहुरि जब वर्जन करिये तौ भी त्याग न देवै तब विद्या पढानेवाले का लाभ निष्फल नहीं होता पर जब अभिमानसे रहित होवे और आपको स्वामी न जानै तब दोनोंपुरुषों को अपनी शुद्धभावना का फल प्राप्त होता है सो यद्यपि यह वार्त्ता निस्सन्देह है पर कैसे विद्यावानों ने अपने विद्यार्थी की पूजामें अधिक भय कियाहै जैसे एक विद्यावान् दैव संयोगपाकर कूपविषे गिराथा तब केते पुरुष मिलकर रस्सीमें डालि करके उस को बाहर निकालने लगे तब उसने कूपमेंही भगवत् की दुहाई देकर कहा कि हे भाई! जिसने मुझसे कुछ विद्या पढ़ी होवे सो यह इस रस्सी में हाथ न लगावै ताते उनका प्रयोजन यहथा कि किसी प्रकार मेरी निष्कामता का फल नष्ट न होवे ऐसेही एक और पुरुष सिफ्यानसौरी सन्तके पास कुछभेट लेआयाथा जब उन्हों ने अंगीकार न किया बहुरि उस पुरुषने कहा कि मैंने तो तुम्हारे मुखसे वचनवार्त्ता कुछ नहीं सुनी तुम इस पूजाको अंगीकार क्यों नहींकरते तब उन्हों ने कहा कि तेराभाई सर्वदा यहां आकर वचन वार्त्ता सुनताहै और मैं इसकारण डरताहूं कि मन तेरी पूजालेकर मेरा चित्त उसके साथ अधिक प्रीतिकरै तब यह वार्त्ता अयोग्य है बहुरि एक और पुरुषभी सिफ्यानसौरीजी के पास दो थान मो-टा के भेंटको लायाथा और इसप्रकार कहनेलगा कि मेरा पिता तुम्हारा विद्यार्थ

निस्संदेह दंभ के आशय करके होताहै और एक कर्म सात्त्विकी संगति के प्रवेशकरके होताहै सो इन दोनों को अवश्यही भिन्न किया चाहिये पर इनकी भिन्नताका चिह्न यहहै कि जब लोग इसको न देखें और यह पुरुष उनको देखताहोवे तब ऐसे स्थानविषे प्रसन्नतासहित भजनकरना उनकी संगतिका गुण है और जब परस्पर एक दूसरे को देखतेहोवें तौभी विचारकरके दम्भ और सात्त्विकी संगति के प्रवेशको भिन्नकरै बहुरि शुद्धमनसा करके दंभकी अभिलाष को दूरकरे और संशय से रहित होकर भजन विषे स्थितहोवे काहे से कि इस मनुष्यका यह भी स्वभाव है कि जब किसी पुरुषको भय या प्रीति संयुक्त रुदन करताहुआ देखता है तब इसका चित्त भी कोमल होजाता है और वही वचन सुनकर रुदन करनेलगता है सो यद्यपि एकान्त ठौर विषे ऐसे नहीं होवे तौभी इस कर्मको दंभ नहीं कहते काहेसे कि रुदन करनेवाले को देखकर अवश्यही इसकाचित्त द्रवीभूत होहीजाता है पर इस विषे भी इतना भेद है कि आंसू का चलना हृदयकी कोमलता करके होताहै और ऊंची पुकार करनी अथवा धरती पर गिरपड़ना दम्भका कारण है ताते चाहिये कि जब अकस्मात् ऊंची पुकार मुखसे निकलजावे अथवा धरतीपर गिरपड़ाहोवे तब शीघ्रही सचेतहोकर प्रीति के प्रवाह को सकुचायलेवे और जिसके चित्त विषे यह संशय आन उपजे कि मत यह लोग मुझको इसप्रकार कहें कि इसके चित्त विषे वास्तव प्रीति कुछ नहीं ताते तुरन्तही सचेतता को प्राप्तहुआ है सो जब ऐसा जानकर ऊंचेस्वर से पुकार करतारहे अथवा धरतीपर गिरारहे तब निस्सन्देह दम्भी होता है तात्पर्य यह कि सबही शुचि कर्म दंभकरके भी होते हैं और सात्त्विकी संगति करके भी उनकी रुचि उपजआती है ताते जिज्ञासुजन सदैवकाल अपने मनकी ओर देखतारहे और दम्भ के भयसे रहित न होवे इसीपर महापुरुष ने कहा है कि शुभ कर्मों विषे नानाप्रकार करके दंभकी मनसा उपजआती है ताते जब अपने मन विषे दंभकी अभिलाषाको देखे तब इसप्रकार विचार करकेजाने कि भगवत् मेरे अन्तरकी मलिनताको प्रकटही जानता है ताते जब मैं अशुद्ध मनसा करूंगा तब निस्सन्देह महाराज के दण्डका अधिकारी होऊंगा ऐसेही जानकर दंभको निवृत्तकरै और इस वचनको चित्त विषे स्मरणकरै जैसे महापुरुषने कहाहै कि जिस एकाग्रता विषे दंभकी अभिलाषा मिलीहोवे तब उस एकाग्रतामें भगवत्

ही रआकरै सो इसका अर्थ यह है कि मन तो चपलहोवे और बाहरके अंगों करके आपको भजनवान् दिखावै तब वह केवल दंभी कहाता है बहुरि ऐसे जानें तु कि भजन और हृदयकी एकमनाविषे तो अवश्यही निष्काम होना चाहिये और दम्भको दूरकरना प्रमाण है पर ऐसेही और भी किसे मोरिसी कर्म है कि जब उनके उत्तम फलों को प्राप्तहुआ चाहे तौभी निष्काम होना विशेषहै जैसे किसी मित्र अथवा किसी अर्थीके मनोरथ को पूर्णकरै तब इसप्रकार निष्काम होवे कि बहुरि उससे उपकार और अपनी स्तुति की चाह न करै अथवा जब किसी को विद्यापढावै तब ऐसी अभिलाषा न करै कि यह विद्यार्थी मेरे काम आवेगा अथवा टहल करेगा अथवा मेरेपीछे चलेगा सो ऐसी मनसा भी सकाम होतीहै और धर्मके लाभको निष्फल करडालतीहै पर जब इसकी मनसा सेवा कराने की न होवे और वह आपही टहल सेवा करता रहे तौभी उत्तम वार्त्ता यह है कि उसकी सेवा पूजाको अंगीकार न करै और जब इसकी मनसा बिनाही वह पुरुष प्रीति संयुक्त आपही सेवा करे बहुरि जब चंचित करिके तौ भी त्याग न देवे तब विद्या पढानेवाले का लाभ निष्फल नहीं होता पर जब अभिमानसे रहित होवे और आपको स्वामी न जाने तब दोनों पुरुषों को अपनी शुद्धभावना का फल प्राप्त होता है सो यद्यपि यह वार्त्ता निस्सन्देह है पर केने विद्यावानों ने अपने विद्यार्थी की पूजामें अधिक भय कियाहै जैसे एक विद्यावान् दैव संयोगपाकर कूपविषे गिराथा तब केते पुरुष मिलकर रस्से डाल कर उस को बाहर निकालने लगे तब उसने कूपमेंसेही भगवत् की दुहाई देकर कहा कि हे भाई! जिसने मुझसे कुछ विद्या पढी होवे सो वह इस रस्सी में हाथ न लगावे ताते उनका प्रयोजन यहथा कि किसी प्रकार मेरी निष्कामता का फल नष्ट न होवे ऐसेही एक और पुरुष सिफ़यांसौरी सन्तके पास कुछ भेट ले आयाथा जब उन्हों ने अंगीकार न किया बहुरि उस पुरुषने कहा कि मैंने तो तुम्हारे मुखसे वचनवार्त्ता कुछ नहीं सुनी तुम इस पूजाको अंगीकार क्यों नहीं करते तब उन्हों ने कहा कि तेराभाई मरेदा यहां आकर वचन वार्त्ता सुनताहै और मैं इस कारण डरताहूं कि मन मेरी पूजालेकर मेराचित्त उसके साथ अधिक प्रीति करै तब यह वार्त्ता अयोग्य है बहुरि एक और पुरुषभी सिफ़यांसौरीजी के पास दो थान माहर के गंठुये लायाथा और इसप्रकार कहनेलगा कि मेरा पिता तुम्हारा मित्रथा

निस्संदेह दंभ के आशय करके होताहै और एक कर्म सात्त्विकी संगति के प्रवेशकरके होताहै सो इन दोनों को अवश्यही भिन्न किया चाहिये पर इनकी भिन्नताका चिह्न यहहै कि जब लोग इसको न देखें और यह पुरुष उनको देखताहोवे तब ऐसे स्थानविषे प्रसन्नतासहित भजनकरना उनकी सगतिका गुण है और जब परस्पर एक दूसरे को देखतेहोवें तौभी विचारकरके दम्भ और सात्त्विकी सगति के प्रवेशको भिन्नकरै बहुरि शुद्धमनसा करके दंभकी अभिलाष को दूरकरै और संशय से रहित होकर भजन विषे स्थितहोवे काहे से कि इस मनुष्यका यह भी स्वभाव है कि जब किसी पुरुषको भय या प्रीति संयुक्त रुदन करताहुआ देखता है तब इसका चित्त भी कोमल होआता है और वही वचन सुनकर रुदन करनेलगता है सो यद्यपि एकान्त ठौर विषे ऐसे नहीं होवे तौभी इस कर्मको दंभ नहीं कहते काहेसे कि रुदन करनेवाले को देखकर अवश्यही इसकाचित्त द्रवीभूत होहीजाता है पर इस विषे भी इतना भेद है कि आंसू का चलना हृदयकी कोमलता करके होताहै और ऊंची पुकार करनी अथवा धरती पर गिरपड़ना दम्भका कारण है ताते चाहिये कि जब अकस्मात् ऊंची पुकार मुखसे निकलजावे अथवा धरतीपर गिरपड़ाहोवे तबशीघ्रही सचेतहोकर प्रीति के प्रवाह को सकुचायलेवे और जिसके चित्त विषे यह संशय आन उपजे कि मत यह लोग मुझको इसप्रकार कहैं कि इसके चित्त विषे वास्तव प्रीति कुछ नहीं ताते तुरन्तही सचेतता को प्राप्तहुआ है सो जब ऐसा जानकर ऊंचेस्वर से पुकार करतारहै अथवा धरतीपर गिरारहै तब निस्सन्देह दम्भी होता है तात्पर्य यह कि सबही शुचि कर्म दंभकरके भी होते हैं और सात्त्विकी सगति करके भी उनकी रुचि उपजआती है ताते जिज्ञासुजन सदैवकाल अपने मनकी ओर देखतारहै और दम्भ के भयसे रहित न होवे इसीपर महापुरुष ने कहा है कि शुभ कर्मों विषे नानाप्रकार करके दम्भकी मनसा उपजआती है ताते जब अपने मन विषे दमकी अभिलाषाको देखे तब इसप्रकार विचार करकेजाने कि भगवत् मेरे अन्तरकी मलिनताको प्रकटही जानता है ताते जब मैं अशुद्ध मनसा करूंगा तब निस्संदेह महाराज के दण्डका अधिकारी होऊंगा ऐसेही जानकर दंभको निवृत्तकरै और इस वचनको चित्त विषे स्मरण करै जैसे महापुरुषने कहाहै कि जिस एकामता विषे दम्भकी अभिलाषा मिलीहोवे तब उस एकाग्रताने भगवत्

ही रक्षाकरै सो इसका अर्थ यहहै कि मन तो चंचलहोवे और बाहरके अंगों करके आपको भजनवान् दिखावै तब वह केवल दंभी कहाता है बहुरि ऐसे जान तू कि भजन और हृदयकी एकतावि जो अवश्यही निष्काम होना चाहिये और दंभको दूरकरना प्रमाण है पर ऐसेही और भी कैसे सारी की कर्म हैं कि जब उनके उत्तम फलों को प्राप्तहुआ चाहे तोभी निष्काम होना विशेषहै जैसे किसी मित्र अथवा किसी अर्थीके मनोरथ को पूर्णकरै तब इसप्रकार निष्काम होवे कि बहुरि उससे उपकार और अपनी स्तुति की चाह न करै अथवा जब किसी को विद्या पढ़ावै तब ऐसी अभिलाषा न करै कि यह विद्यार्थी मेरे काम आवैगा अथवा टहलकरेगा अथवा मेरेपीछे चलेगा सो ऐसी मनसाभी सकाम होतीहै और धर्मके लाभको निष्फल करडालती है पर जब इसकी मनसा सेवा कराने की न होवे और वह आपही टहल सेवा करता है तोभी उत्तम वार्ता यह है कि उसकी सेवा पूजाको अंगीकार न करै और जब इसकी मनसा बिनाही वह पुरुष प्रीति सयुक्त आपही सेवा करै बहुरि जब वर्जित करिये तो भी त्याग न देवे तब विद्या पढ़ानेवाले का लाभ निष्फल नहीं होता पर जब अभिमानसे रहित होवे और आपको स्वामी न जानै तब दोनोंपुरुषों को अपनी शुद्धभावना का फल प्राप्त होता है सो यद्यपि यह वार्त्ता निस्सन्देह है पर कैसे विद्यावानों ने अपने विद्यार्थी की पूजामें अधिक श्रम कियाहै जैसे एक विद्यावान् दैव संयोगपाकर कूपविषे गिराथा तब कैसे पुरुष मिलकर रस्से डालकर उस को बाहर निकालने लगे तब उसने कूपमेंही भगवत् की दुहाई देकर कहा कि हे भाई। जिसने मुझसे कुछ विद्या पढ़ी होवे सो वह इस रस्सी में हाथ न लगावे ताते उनका प्रयोजन यहथा कि किसी प्रकार मेरी निष्कामता का फल नष्ट न होवे ऐसेही एक और पुरुष सिफ़यानसौरी मन्त्रके पास कुछ भेट ले आयाथा जब उन्हों ने अंगीकार न किया बहुरि उस पुरुषने कहा कि मैंने तो तुम्हारे मुखसे वचनवार्त्ता कुछ नहीं सुनी तुम इस पूजाको अंगीकार क्यों नहीं करते तब उन्हों ने कहा कि तेराभाई सदैव यहां आकर वचन वार्त्ता सुनता है और मैं इसकारण डरताहूं कि मन तेरी पूजानेकर मेराचित्त उसके साथ अधिक प्रीतिकरै तब यह वार्त्ता अयोग्य है बहुरि एक और पुरुषभी सिफ़यानसौरी के पास रो थान सोना के गोहूं ले लायाथा और इसप्रकार कहनेलगा कि मेरा पिता तुम्हारा मित्रथा

था, और वह शुद्धही व्यवहार, करताथा सो यह धनभी शुद्ध वृत्तिकरके उपजा या, हुआहै ताते तुम इसको अंगीकार करो तब मिश्रयोगीजी ने उस धनको लेराया बहुरि जब वह पुरुष अपने गृहविषे गया तब इन्होंने अपने पुत्रके हाथ सबही धन उसकी ओर भेजा और इसप्रकार कहला भेजा कि मेरी और तेरे पिता की प्रीति भगवत्के निमित्त थी ताते अबतू धनरूपी पटल काहेको डालता है बहुरि जब उनकापुत्र अपने गृहविषे आया तब अधैर्य होकर पितासे कहने लगा कि तुम्हारा हृदय पाथर से भी अधिक कठोर है काहेसे कि हमारा कुटुम्ब भी बहुतहै और अत्यन्त निर्द्धनताईको भी तुम सर्वदा देखतेहो पर हमारे ऊपर तुमको दया नहीं उपजती तब उन्हों ने कहा कि तुझको खान पानादिक सुख चाहिये और मैं परलोक की ताडना से डरता हूं ताते मेरे हृदय विषे ऐसी सामर्थ्यता नहीं कि तुमको सुखेन राखूं और उस दंडको अपने शीशपर धरू इसी प्रकार विवेकी जनको चाहिये कि अपने सेवक से सेवापूजाकी आशा न राखे और भगवतही की प्रसन्नता को चाहै, बहुरि अपना भजन साधन भी सेवकके आगे प्रकट न करै काहे से कि इसको भगवत् के निकट सन्मान और आदर चाहिये है और और लोगोंका सन्मान इसके किसीकाम न आवेगा बहुरि जब माता पिता की सेवाकरे तोभी भगवतही की प्रसन्नता चाहे और उनके निकट अपनी विशेषताको दिखावै नहीं तात्पर्य यह कि सर्व शुभकर्मों विषे इसजीव को ऐसी निष्कामता प्रमाण है कि भगवत् की प्रसन्नता बिना और कुछ प्रयो जन न राखे ॥

नवांसर्ग ॥

अभिमान अहंकार के उपायके वर्णन में ॥

ताते जान तू कि अभिमान और आपको विशेष जानने का स्वभाव महा निंद्य है काहेसे कि जब विचारकर देखिये तब अभिमानी मनुष्य भगवत्का शरीक हुआ चाहताहै इसकरके कि ऐश्वर्य और बड़ाई भगवत्हीको शोभित है और अभिमानी अपना ऐश्वर्य बढ़ाताहै इसीकारण से महाराजके वचनोंविषे अभिमानकी अधिक निषेधता वर्णनहै और महापुरुषने भी कहाहै कि जिसके हृदय विषे रञ्चकमात्रभी अभिमान होताहै सो आत्मसुख को नहीं पाता और योंभी कहाहै कि अपनी बड़ाई जनावनेहारे मनुष्यको पापियोंकीनाईं चाहता

होवेगी इसीपर एक वार्त्ता है कि एकबार सुलेमाननामी महापुरुषने अपनी सेना को इकट्ठा किया तब कई लाख मनुष्य और देव परी पक्षी भूत आदिके जीव आन प्राप्तहुये बहुरि सबों को पवनके वेगसाथे उड़ाकर आकाश में लेगये और देवतोंकी पुरियों के ऊपरजाय स्थितहुये बहुरि आ ने ही त न कर के उनको धरती पर लेआये और समुद्रों के तलें पर्यंत प्रवेश करगये तब सुलेमानजी को आ- काशवाणी हुई कि जबै तुमको रंचकमात्र भी अपने वनका अभिमान होता तो मैं तेरी सर्व सेनाको तेरे साथही रसातल विषे लीन करडालता इसीपर महापुरुष नेभी कहा है कि परलोक विषे अभिमानी मनुष्यों का आकार चींटीके समान होवेगा अर्थ यह कि निर्माण करने लोगों के चरणोंतले मर्दन होजावेंगे और योंभी कहा है कि नरकों विषे एक महाकुम्भीनरक है और अत्यन्त भयानकरूप है सो महापापी और अभिमानी मनुष्य उसही नरक विषे पड़े जलेंगे ऐसेही सुलेमानसंतने भी कहा है कि जिस पापको कोई शुभकर्तृनि नष्ट नहीं करसक्ता सो अभिमानहै और महापुरुषने भी कहा है कि जो मनुष्य बड़ाई करके अपने वस्त्रको धरतीपर घसीटताहै और लटक चलताहै तब उसकी ओर भगवत् कदा- चित् दयादृष्टि करके नहीं देखता इसीपर एकवार्त्ता यहभी वचनों विषे आई है कि कोई पुरुष महासुन्दर वस्त्र पहिनकर अपनी ओर देखताथा और बड़ाई करके लटक लटक चलताथा तब इसी पापकरके भगवत् के कोप से धरती विषे लीन होगया और योंभी कहते हैं कि प्रलयकाल पर्यन्त ऐसेही रसातलों के नीचे चलाजावेगा इसीपर इब्नवासामन्तने अपने पुत्र को लटकलटक चलता देखा था तब उससे पुकारकर कहनेलगे कि हे पुत्र ! तू क्याकोई जानता है कि मैं किसे की सन्तान है तेरीमाता तो मैंने कुछ रुपयेका मोल लीथी और मैं जो तेरा पिता हूं सोमहाअधम और नीच हूं ऐसेही एक और सन्तने किसी अभिमानी पुरुष को लटक चलते देखाथा सो उसको जब वर्जित किया तब वह कहनेलगा कि तुम मुझको नहीं जानते बहुरि उन्होंने कहा कि मैं तो तुमको जानता हूं कि आदि तेरी मलिनवस्तुकी बूंदहै और अन्तको मरकर मृतक होगा ऐसेही मध्यकाल विषेभी मूत्रकी और विष्ठा की पोट उठानेवाला है ॥ अब भगवत् की स्तुति सम्पूर्ण हुई ॥ महापुरुषनेभी इसप्रकार कहाहै कि जिस मनुष्यने नम्र ताको अंगीकार कियाहै सो तिसको अवश्य ही भगवान्ने बड़ाई दीन्ही है और

योंभी कहा है कि सर्व मनुष्यों के गले विषे महाराजने रस्सी डाली है सो जो पुरुष दीन होताहै तब देवते उसकी रस्सी को आकाशकी ओर खींचतेहैं और कहते हैं कि हे महाराज! तुम इस को उत्तमगति देहु और जो पुरुष अभिमान करताहै तब देवते उसकी रस्सी को अधोगति की ओर खींचते हैं और इसप्रकार विनती करते हैं कि हे भगवन्! तू इस मनुष्य को महानीच गतिको प्राप्तकर तात्पर्य उत्तम पुरुष वही है कि सामर्थ्यता सहित दीनता और गरीबी को अंगीकार करे और अपने धनको सात्त्विकी वृत्तिकरके उपजावे और शुभही अर्थ विषे लगावे और अनाथों पर सर्वदा दयारक्खे बहुरि विवेकी जनों के साथ सर्वदा प्रीति और मिलापराखे इसीपर एक सन्तने कहाहै कि एकबार महापुरुष हमारेगृहमें आयेथे तब हमने उन के व्रत खोलनेके निमित्त दूध और मधुका शर्बत करलिया बहुरि उन्होंने जब शर्बतकारस चाखा तब कटोरा धरतीपर धरदिया और शर्बतको पान न किया और इसप्रकार कहनेलगे कि यद्यपि मैं इस शर्बतके पान करनेको पाप नहीं कहता पर यह वार्ता निस्सन्देह है कि जब यह पुरुष भगवत् के भयकरके गरीबीको अंगीकार करताहै तब भगवत् उसको बड़ाई देताहै और प्रसन्न रखताहै और जो पुरुष अभिमान करके वर्तता है तब महाराज उसको लज्जावान् और नीचकरते हैं ऐसेही जो पुरुष खानपानका व्यवहार संयमसाथ करताहै सो सारे जीवों के आधीन कदाचित् नहीं होता और जो पुरुष मर्यादसेरहित वर्तता है सो सर्वदा निर्द्धनताई और अपमानको प्राप्त होताहै बहुरि जो पुरुष भगवत् का स्मरण अधिक करताहै तब उस के साथ भगवत् भी अधिक प्रीति करताहै इसीपर एकवार्त्ताहै कि एकबार किसी कुष्ठीपुरुषने महापुरुषके द्वारेपर आयकर याचनाकरी और महापुरुष आरोमसे भोजन करतेथे तब उस याचकको भीतर बुलाय लिया सो जब वह कुष्ठी वहां आया तब सबही लोग उसकी कुचीलताई देखकर अपने वस्त्रों को सकुचानने लगे और महापुरुष उसको अपने आसन पर बैठायकर भोजन करावनेलगे तब एक महापुरुषके सम्बन्धी ने उसपर ग्लानि दृष्टि देखी सो कुछ कालसे पीछे उसही कुष्ठके रोगकरके मृत्युको प्राप्तहुये और महापुरुषने योंभी कहाहै कि एकबार मुझको महाराजने इसप्रकार आज्ञाकरी कि तू दास हुआ चाहताहै अथवा आचार्य और राजा होना चाहताहै तब मैंने आधीन होकर कहा कि मुझको अपना दासकरिये इसीपर मूसानामी महापुरुष

को आकाशवाणी हुईथी कि मैं उसही पुरुषके भजनको प्रमाण करताहूं जो य-
द्यपि बड़ाई संयुक्त होवे तौभी सर्वदा मेरे आधीन रहै और मेरे जीवों के साथ
अभिमान न करै और अपने चित्तको सदैव मेरे भयविषे राखै बहुरि एकक्षणभी
मेरेभजनसे अचेत न होवे और मेरी प्रीति करके भोगों से आपको बचावगासे
इसीपर महापुरुषने कहा है कि उदारताका कारण वैराग्य है और इस मनुष्यके
हृदयका निश्चयही सर्व सम्पदाका कारणहै ऐसेही ईशा महापुरुषने कहाहै कि
दीनता और नम्रतावान् पुरुष इसलोकविषे भी सुखीरहते हैं बहुरि परलोकविषे
भी ऊंची पदवीको प्राप्तहोवेंगे और जिनका चित्त मायामें विरक्तहै सो महाउत्तम
पुरुषहैं और भगवत् का दर्शनभी उनहीं को प्राप्त होताहै और जो पुरुष इसलोक
विषे जीवोंके विरुद्धको दूर करते हैं सो तिनको परमसुखकी प्राप्ति होवेगी इसीपर
महापुरुषने कहाहै कि जिसको भगवत्ने शरीरकी अवस्था और मार्ग दिखाया
है और जिसका स्वभाव महाकोमल है बहुरि ऐसे गुणोंसंयुक्त जिसका हृदय
निरहंकार है सो निस्सन्देह भगवत् का प्रियतमहै बहुरि महापुरुषने एकबार
अपने प्रियतमोंको इसप्रकार कहाथा कि मुझको तुम्हारे हृदयविषे भजनका रह-
स्य नहीं दृष्टि आवता सो इसका कारण कौन है तब प्रियतमोंने पूछा कि भजन
का रहस्य क्याहै तब महापुरुषने कहा कि भजनका रहस्य दीनता और गरीबी
है और योंभी कहाहै कि जब दीनपुरुषको देखो तब दीनताकरो और जब अ-
भिमानी पुरुषको देखो तब तुमभी बड़ाई करो उनकेसाथ अर्थ यह कि उनके आगे
आधीन न होवो तब वह भी अपनी नीचताको प्रसिद्ध जानै इसीपर महापुरुष
भी स्त्रीनेभी कहाहै कि सर्व शुभकर्मोंमें विशेष गरीबी और नम्रताहै और तुम
ऐसे विशेष कर्मों से अचेत हुयेहो बहुरि फुजेल सन्तने कहाहै कि यद्यपि कोई
बालकही यथार्थ वचन कहै तब उसको अङ्गीकार करलेनाही गरीबीका चिह्न है
और एक और सन्तने ऐसे कहाहै कि जब तू निर्धनों को देखकर आपको उन
सेभी नीच हो जिसमें तब जानिये कि तू धनादिक पदार्थोंके अभिमानसे रहित
है और जब [illegible] उसके आगे आधीन होवे तब प्रसिद्ध होवे कि
[illegible] ऐसे कुछ नहीं और ऐसा महापुरुष ने भी
[illegible] को अनेक प्रकारके सुख दिये हैं और
[illegible] सब में उनको सर्वदा

चेदारनाही रहेगा और तू सदैव सुखीहोवेगा इसीपर एके और सन्तने एक राजा प्रते इसप्रकार उपदेश कियाथा कि हे राजन् तू दीनता और गरीबी विषे स्थित होतब यह गरीबी तुम को राज्य की बड़ाई से भी श्रेष्ठ है बहुरि राजाने कहा कि यह वचन तुमने बहुत उत्तम वर्णन किया है परन्तु कुछ और भी उपदेश मुझको सुनावो तब वह सन्त कहनेलगा कि जिसपुरुष को चित्त धनविषे निष्काम है और बड़ाई विषे नम्रता सहित रहे और सुन्दरताई विषे कामादिक के विकार से निष्पाप रहे तब उसको महाराज की सभा विषे विशुद्ध आचरणवाला मानते हैं सो जब राजाने ऐसे वचन सुने तब इसही उपदेश को कागज पर लिखलिया बहुरि सुलेमानपैग़म्बर अपनी राज्य के समय विषे इस प्रकार विचरते थे कि मसकीन धनवानों के साथ कुछ अल्पही वचन वार्ता करते थे और गरीबों की सभा विषे आप बैठते थे और मुख से यह वचन वर्णन करते थे कि मैं भी अनाथ और गरीब हूं और यह लोग भी गरीब हैं बहुरि हसन बसरी ने इसप्रकार कहा है कि जब आपसे सब मनुष्यों को विशेष देखे तब जानिये कि इस विषे नम्रता का चिह्न प्रकट हुआ और मालिकदीनार सन्त ने ऐसे कहा है कि जब कोई सभा विषे आयकर इस प्रकार कहे कि जो सबसे नीच मनुष्य है सो बाहर आवे तब मैं ही सबसे आगे उठकर खड़ाहोऊं काहेसे कि मैं आपको महाअधम और नीच जानता हूं परन्तु जब यह वार्ता मुबारिक नामी सन्त ने सुनी तब कहने लगे कि इसही प्रवृत्ति करके मालिकदीनार की विशेषता प्रसिद्ध है इसीपर एकवार्ता है कि किसी पुरुष ने शिबली सन्त के निकट आकर इसप्रकार कहा था कि तुम आपको क्या कुछ जानते हो तब उन्होंने कहा कि जैसे अक्षरों के ऊपर बिन्दु होता है सो मैं उससे भी आपको लघु जानता हूं बहुरि जब जुनैद नामी सन्त ने यह वचन सुना तब कहनेलगे कि महाराज उनके अहङ्कार को दूर करेगा भला काहे से कि अब भी आपको कुछ जानते हैं और केवल अहंकार से रहित नहीं हुये बहुरि एक पुरुष ने निज़ामी सन्त से पूंछाथा कि मुझको कुछ उपदेश करो तब उन्होंने कहा कि जब कोई धनवान् पुरुष होकर अधीन चित्त होवे तब यह बड़ी सुन्दरताई है पर जो पुरुष निर्धन होवे और भगवत् का आश्रय करके धनवानों का आधीन न होवे तब यह उससे भी अधिक सुन्दरताई है सो इसीपर एक और सन्त ने कहा है कि जब कोई उत्तम मनुष्य वैराग्यवान् होता है तब

दीनता और गरीबी को आपीकोरकरना है और जो नीच पुरुष कुछ भैराग्यवान् होताहै तब अभिमानीहोजाता है इसीप्रकार बायजीद सन्तने कहाहै कि जबलग यह मनुष्य किसीको आपसे नीच जानता है तब निस्सन्देह अहङ्कारी जानाजाताहै और जुनैद सन्तने एक बार आपनी सभाविषे इसप्रकार कहाथा कि जब मैने इस वचनको सुना न होता कि कलियुगविषे नीच मनुष्यही उपदेश करनेवाले और मुखिया होवेंगे तब मैं सभा विषे उपदेश कदाचित् न करता और जुनैदजी ने यों भी कहाहै कि ज्ञानवान् पुरुषों के निकट आप को दीन जानना अहंकार होताहै अर्थ यह कि दीनजाननाभी आपको कुछ प्रसिद्ध करनाहोता है और अहंकार से रहित पुरुष आपको कुछ नहीं जानता बहुरि एक जिज्ञासु जनकी ऐसी अवस्था हुईहै कि जब आँधेरी अथवा बिजली का चमत्कार अथवा कोई और विघ्न होनेलगता था तब वह पुकार करके अपने शीश पर हाथ मारते थे और इसप्रकार कहते कि मेरेही पापों करके जीवोंको दुखप्राप्त होताहै बहुरि सुलेमानी सन्त के निकट आकर कुछ पुरुष उन की स्तुति करनेलगे थे तब सुलेमान ने कहा कि आदि हमारी बीर्य है और अन्त को भूमरूप होवेंगे बहुरि उसते पीछे ताड़ना जोयमदंडको यमलोक विषे प्राप्तहोवेंगे सो जब उसदुःख से हमारी मुक्ति हुई तब कुछा विशेषपना प्राप्त होवेगी और जब उसही दुःख विषे लीनरहे तब हम परमनीचों से भी नीचरहेंगे॥ अब प्रकट करना रूप अभिमानका और प्रसिद्ध करने विघ्न उसके॥ ताते जानि तू कि यद्यपि प्रथम अभिमान का स्वभाव हृदय विषे उपजता है पर इसका प्रवेश सर्वअंगों पर प्रकट भी होता जाता है सो अभिमानका अर्थ यहहै कि और मनुष्योंमें आपको विशेष जानना और अपनी बड़ाई प्रकटकर दिखावनी बहुरि इसी बड़ाई की वायु जब किसी के हृदय विषे चलने लगती है तब उसकरके अधिक प्रसन्न होताहै और अभिमानभी इसहीका नामहै इसीते महापुरुषने भी कहाहै कि अभिमानरूपी वायु के वेगसे भगवत्की रक्षा कहीहै कि जिस मनुष्य के मनविषे अभिमान का प्रवेश होताहै तब और लोगोंको आपसे नीच जानताहै और इसप्रकार समझताहै कि यह सब मनुष्य मेरे दासकी नाईं हैं और मैं इनका स्वामी हूं अथवा जब अभिमानकी प्रबलता होतीहै तब यों भी जानताहै कि यह लोग मेरी सेवा के अधिकारी नहीं और लोगों से कहताहै कि तुम्हारा मेरी सेवा और टहलका

अधिकारी क्व होसकता है जैसे यह राजा लोगभी अपने सिंहासन के निकट किसी को दण्डवत् करने नहीं देते और पत्री विषे किसीको अपना गुलाम भी नहीं लिखसकते इस करके कि अमुक पुरुष हमारी सेवाका अधिकारी क्व हो सकता है अथवा जब कोई अधिकारी ऐश्वर्य्यवान् होवे तब उसको अपने निकट आवने देते हैं और कुछ वचन वार्त्ता करते हैं नहीं तो और सम्पूर्ण मनुष्यों पर मस्तक सकुचित रखते हैं सो यह उनका अभिमान ऐसा वृद्ध हुआ है कि यहां राजसे भी अधिक ऐश्वर्य्य अधिक किया चाहते हैं काहे से कि सर्व ईश्वरों का ईश्वर जो भगवान् है सो सब जीवों पर सदा दयाकी दृष्टिसे देखता है और सब किसी की दीनता को सुनता और प्रमाण करता है और अभिमानी मनुष्य ऐसे नहीं करता पर जिसका ऐश्वर्य ऐसा भव तु नहीं होता तो भी अभिमानी मनुष्य सबों से आगे चला चाहता है अथवा ऊंचे स्थान पर स्थित हुआ चाहता है और सर्व मनुष्यों से सन्मान और आदर की अभिलाषी रखता है बहुरि जब कोई उस को यथार्थ उपदेश सुनावता है तो भी अंगीकार कर नहीं सकता और उलटा क्रोधवान् होता है बहुरि जब आप किसीको उपदेश करने लगता है तब क्रोध और ताड़ना संयुक्त वचन कहता है और सर्व मनुष्यों को पशुवत् देखता है इसी पर महापुरुष से किसीने इसप्रकार पूछा था कि अभिमानी पुरुषका लक्षण क्या है तब उन्होंने कहा कि जो पुरुष यथार्थ वचन के आगे अपने शिरको नम्र न करे और सर्व जीवों पर ग्लानिदृष्टि देखे तब उसको अभिमानी कहते हैं सो यह दोनों स्वभाव जीव और भगवान् विषे महा पटल हैं काहे से कि इन करके सबही अपलक्षण उपजते हैं और सब गुणों से अभाव रहता है ताते जिस पुरुष विषे बड़ाई और अभिमान की प्रबलता होती है तब वह किसीको अपने समान हुआ नहीं चाहता और किसीके आगे मस्तक नहीं नवावता सो यह चिह्न भी निर्मानों का नहीं होता इस करके कि ऐसा पुरुष ईर्षा करके अपने क्रोध को शांत नहीं कर सकता बहुरि निंदा और कपट आदिक स्वभावों से भी रहित नहीं होसकता जब कोई उसका आदर नहीं करता तब हृदय विषे क्रोध की गांठ दृढ़ करलेता है और सदैवकाल अपनी बड़ाई और ऊंचता को दिखावता रहता है ताते झूठ और कपट दम्भ विषे आसक्त होजाता है और सर्व प्रकार पापको विशेष किया चाहता है और जब कोई उसके दर्शनको नहीं आवता तब प्रसन्न नहीं रहता उसी को-

रण से इसलोक विषे भी दुःखी रहता है और परलोक के सुखको भी नहीं पावता काहेसे कि जबलग यह पुरुष अपने आपको विस्मरण नहीं करता तबलग इस को धर्मकी गंध भी प्राप्त नहींहोती इसीपर एक सतने कहाहै कि जब तू आत्म सुखकी सुगंधिको सूंघा चाहताहै तब सर्व मनुष्यों से दीनहो और दासभाव को अंगीकारकर बहुरि जब कोई विचारकी दृष्टिकरके देखे तब इस वार्त्ताको प्रसिद्ध जाने कि जब दो अभिमानी पुरुषोंका मिलाप आपस विषे होताहै तब दुर्गंधि मान पसरती है और हृदय उनका कूकरोंकी नाईं दुःखदायक होजाता है बहुरि स्त्रियोंकी नाईं अपना शृङ्गार बनावने विषे मग्नहोते हैं और प्रीतिमानोंके मिलाप विषे जो रहस्य और प्रसन्नता परस्पर उपजती है सो अभिमानी मनुष्यों को कदाचित् प्राप्त नहीं होती इस करके जब तू किसी प्रीतिमान् को देखे तब उत्तम वार्त्ता यह है कि अपने आपको त्यागकर उसही विषे लीनहोजावे और सर्वथा दासभावको प्राप्तहोवे तात्पर्य्य यह कि तू उसकी बड़ाई विषे समाप्त होजावे अथवा वह तेरे विषे समायजावे तब दूसरा भाव कुछ न रहे और एकमेव होकर दोनों भगवन्त विषे लीनहोवो और अपने आपकी चितवनी मिटावो तब तू परमसुखको प्राप्तहोवे सो पूर्ण एकता इसहीका नामहै और परमसुख भी यही है और जबलग अभिमानके संयोग करके द्वैत दूर नहीं होता तबलग यह पुरुष एकता के सुख रहस्य को कदाचित् नहीं पावता अभिमान का रूप और उसके विघ्न ऐसेही प्रकट वर्णन किये हैं॥ अथ प्रकट करने भेद अभिमान की अवस्था के॥ ताते जान तू कि एक अभिमान अतिप्रकट और दीर्घ है और एक अवस्था अभिमानकी उससे कुछ क्षीण होती है सो इनका भेद इस करके प्रसिद्ध जाना जाताहै कि एक पुरुष ऐसे अभिमानी होतेहैं कि आप से भिन्न और ईश्वर नहीं मानते जैसे फ़रऊन और नमरूद ऐसे विमुख हुये हैं कि उन्हों ने आपहीको भगवन कहायाहै और उनका निश्चय इसप्रकार हुआहै कि जब कोई और भगवत् होता तो प्रत्यक्षही दृष्टि आवता ताते हमहीं जगत्के ईश्वरहैं और इसी कारण से उन्होंने इसप्रकार जाना है कि जब हमहीं भगवन् हुये तब हम भजन किसका करें सो यह अभिमान महादीर्घ है काहेसे कि सबही देवता और आचार्य और सन्तजन तो आप को भगवन् नहीं मानते और आपको दास जानकर महाराजकी सेवाविषे लीनहुये हैं ताते ऐसा अभिमान महानिंद्य

है। बहुरि दूसरी अवस्था अभिमान की यहहै कि एक पुरुष यद्यपि एमे नते हैं कि हम भगवत् के उत्पन्न कियेहुये हैं पर तौभी सन्तजनों पर ग्लानि रखते हैं और इसप्रकार कहते हैं कि अमुक सन्त की जाति नीचहै अथवा वा कुल नीच है ताते हम उसको आगे मस्तक क्योंकर नवावें अथवा ऐसे ज हैं कि सन्तजन भी हमारी नाईं शरीरधारी हैं और खान पान आदिक हमारी निषे वर्तमान हैं ताते हमको इनका दासहोना अयोग्यहै पर ऐसे प्यभी दो प्रकार के होते हैं सो एकतो अभिमान के प्रबल करके सन्तजनों विशेषता को जानतेही नहीं और विचार से रहित होते हैं जैसे महाराज ने कहा है कि अभिमानी मनुष्यों को यथार्थ की बूझ का मार्ग कदाचित् खुलता ताते सन्तजनों के लक्षणों को देख नहीं सके बहुरि एक मनुष्य ऐसे होते हैं कि यद्यपि अपने चित्त विषे सन्तजनों की बड़ाई को मानते हैं तौभी दासभाव को ग्रहण नहीं करसके सो यहभी उनकी बुद्धि की हीनताहै बहुरि तीसरी अवस्था अभिमान की यहहै कि यद्यपि सन्तजनों को तो भा विशेष जानते हैं पर और जीवों पर अपनी बड़ाई प्रकट दिखावते हैं और लोगोंपर ग्लानि दृष्टि देखते हैं ताते किसी के यथार्थ वचन को अंगीकार न करसके और आपही को स्वामी जानते हैं तो यद्यपि अभिमान प्रथमकी दो अवस्थाओं से कुछ क्षीणहै पर तौभी दो कारणों करके यह प्रबल है और परम दु की खानि है सो प्रथम कारण यहहै कि ऐश्वर्य और बड़ाई का अधिक एकही महाराज है और मनुष्य तो गरीब दीन और पराधीन हैं सो इसको प का अधिकार क्या कर प्राप्त होसका पर जब अभिमान करके आपको ऊंच गर्वजाने तब यही प्रसिद्ध होताहै कि भगवत् का शरीक हुआ चाहताहै सो का दृष्टान्त यहहै कि जैसे कोई नफ़र राजा का टहलुआ होकर राजाके सिं सनपर जाय बैठे और अपने शीशपर छत्र चमर ढुराया चाहे तब तू विचार क देख कि वह टहलुआ कैसे दंड का अधिकारी होताहै इसीपर महाराजने भी कहा कि गर्व और बड़ाई मुझहीको शोभती हैं काहेसे कि मैं किसी के पराधी नहीं पर जो पुरुष पराधीन होकर ऐसा शरीक हुआ चाहे सब में सीमा उल्लं नकरताहै ताते प्रसिद्ध हुआ कि हराम नमकहार महाराजके बिना किसी म प्यको किसी जीव पर अभिमान करना प्रमाण नहीं बहुरि दूसरा कारण या

कि अभिमान करके यथार्थ वचन को अंगीकार करना कठिन होजाता है इसी कारणसे जब दो पुरुष आपस विषे धर्ममार्गका प्रश्नोत्तर करने लगते हैं और एक पुरुष सत्यही वचन कहताहै तौभी अभिमानी मनुष्य उसको प्रमाण नहीं करसक्ता ईर्षा करके कि मेरी मान घटजावेगी सो यह चिह्न मनमुखों और कप-टियोंकाहै काहेसे कि जब कोई इसको इसप्रकारकहे कि तू भगवत्से नहीं डरता और यथार्थ वचनका नतकार करताहै तौभी अभिमान करके अपने झूठे वचन को गिराय नहीं सक्ता और प्रमाणही मानता है ताते महापापी होताहै इसीपर इब्नमसऊद सन्तने कहा है कि जब कोई इस मनुष्यको ऐसे कहे कि तू महा-राजको त्रासकर और वह पुरुष इसप्रकार कहनेलगे कि तू मुझको क्यों डरा-वताहै काहेसे कि तुझको तो अपनाही कार्य करना चाहिये है सो यह वचनही महापाप है ताते जान तू कि जिसप्रकार शैतानको धिक्कारहुई है और उसका वृत्तांत भगवत्ने अपने वचनों विषे कहाहै सो उसका तात्पर्य यही है कि तुझ को अभिमानका विघ्न पूर्व्व आनपड़े अर्थात् शैतानको जब आज्ञाहुई कि मनु को शीश नवावो तब उसने कहा कि मैं तेजतत्त्वसे उत्पन्न हुआहूं और मनु पृथ्वीतत्त्वसे हुआहै ताते मैं इसके आगे शीश क्योंकर नवाऊं प्रयोजन यह कि उसको अभिमानने ऐसा विमुख किया कि भगवत्की आज्ञाको न मानतामया और मस्तक नीचा न किया ताते महाराजने उसको धिक्कार करी और सदैव कालके वियोगको प्राप्तहुआ यो अर्थ प्रकट करने कारण अभिमानके और उपाय उनके निवृत्त करनेका॥ ताते जान तू कि जब यह मनुष्य अपने विषे कोई गुण देखताहै और वह गुण इसको और मनुष्यों विषे नहीं भासता तब उसही गुण के सम्बन्ध करके अभिमान करने लगता है सो अभिमान के उत्पन्न होने के सात कारण [illegible] हैं पर प्रथम जो अभिमानका कारण [illegible] है कि विद्या-वान् मनुष्य आप को विद्यासंयुक्त देखता है तब [illegible] पुरुषों को पशुवत् जानताहै ताते उसके ऊपर अभिमान प्रबल होजाताहै और अभिमानकी प्रब-लताका लक्षण यह है कि लोगों से सेवा पूजा और [illegible] चाहता है [illegible] तब [illegible] [illegible] होताहै अथवा जब किसी के [illegible] पूजा प्रमोद को [illegible] तब उनके [illegible] [illegible] करता है और [illegible] जानताहै कि मैं भगवत्का [illegible] हूं और

है॥ बहुरि दूसरी अवस्था अभिमान की यहहै कि एक पुरुष यद्यपि ऐसे जानते हैं कि हम भगवत् के उत्पन्न कियेहुये हैं पर तोभी सन्तजनों पर ग्लानि रखते हैं और इसप्रकार कहते हैं कि अमुक सन्तकी जाति नीचहै अथवा उसका कुल नीच है तातें हम उसके आगे मस्तक क्योंकर नवावें अथवा ऐसे जानते हैं कि सन्तजन भी हमारी नाईं शरीरधारी हैं और खान पान आदिक व्यवहारों विषे बन्धवान् हैं तातें हमको इनका दासहोना अयोग्यहै सो ऐसे मनुष्यभी दो प्रकार के होते हैं सो एकतो अभिमानके प्रबल करके सन्तजनों की विशेषता को जानतेही नहीं और विचार से रहित होते हैं जैसे महाराज ने कहा है कि अभिमानी मनुष्यों को यथार्थ की बूझ का मार्ग कदाचित् नहीं खुलता तातें सन्तजनों के लक्षण को देख नहीं सक्ते बहुरि एक मनुष्य ऐसे होतेहैं कि यद्यपि अपने चित्त विषे सन्तजनों की बड़ाई को समझतेहैं परन्तु तोभी दासभाव को ग्रहण नहीं करसक्ते सो यहभी उनकी बुद्धिकी हीनताहै॥ बहुरि तीसरी अवस्था अभिमान की यहहै कि यद्यपि सन्तजनों को तो आपसे विशेष जानते हैं पर और जीवों पर अपनी बड़ाई प्रकट दिखावते हैं और सब लोगोंपर ग्लानि दृष्टि देखते हैं तातें किसी के यथार्थ वचन को अङ्गीकार नहीं करसक्ते और आपहीको स्वामी जानते हैं सो यद्यपि अभिमान प्रथम दोनों अवस्थासे कुछ क्षीणहै पर तोभी दो कारणों करके बड़ा प्रबल है और परम दुःखों की खानि है सो प्रथम कारण यहहै कि ऐश्वर्य और बड़ाई का अधिकारी एकही महाराजहै और यह मनुष्य जो महादीन और पराधीन है सो इसको इसका अभिमान क्योंकर प्राप्त होसक्ता है पर जब अभिमान करके आपको कुछ समर्थ जानता तब यही प्रसिद्ध होताहै कि भगवत् का शरीक हुआ चाहताहै सो इस का दृष्टान्त यहहै कि जैसे कोई चक्रवर्ती राजा का टहलुआहोकर राजाके सिंहासनपर जाय बैठे और अपने शीशपर छत्र चँवर लगायाचाहे तबतू विचार करदेख कि यह टहलुआ कैसेदण्ड का अधिकारी होताहै इसीपर महाराजने भी कहा है कि समर्थता और बड़ाई दुपट्टे और ओढ़नी हैं कारण कि मैं किसी के पराधीन नहीं पर जो पुरुष पराधीन होकर मेरा शरीक हुआ चाहे तब मैं शीघ्रही उसको नष्ट करताहूं तातें प्रसिद्ध हुआ कि उत्पन्न करनेहार महाराज से बिना किसी मनुष्य को किसी जीव पर अभिमान करना प्रमाण नहीं बहुरि दूसरा कारण यहहै

कि अभिमान करके यथार्थ वचन को अंगीकार करना कठिन होजाता है इसी कारणसे जब दो पुरुष आपस विषे धर्ममार्गका प्रश्नोत्तर करने लगते हैं और एक पुरुष सत्यही वचन कहताहै तौभी अभिमानी मनुष्य उसको प्रमाण नहीं करसक्ता इसी करके कि मेरा मान घटजावैगा सो यह चिह्न मनमुखों और कपु-टियोंकाहै काहेसे कि जब कोई इसको इसप्रकार कहै कि तू भगवत्से नहीं डरता और यथार्थ वचनका तिरस्कार करताहै तौभी अभिमान करके अपने झूठे वचन को निरोध नहीं सक्ता और प्रमाणही मानता है तासे महापापी होताहै इसीपर कुर्आनमजीदमें सन्तने कहाहै कि जब कोई इस मनुष्यको ऐसे कहै कि तू महा-राजका भयकर और वह पुरुष इसप्रकार कहनेलगे कि तू मुझको क्यों डरा-वताहै काहेसे कि तुझको तो अपनाही कार्य्य करना चाहिये है सो यह वचनही महापाप है ताते जान तू कि जिसप्रकार शैतानमें को धिक्कारहुई है और उसको पूर्वोक्त भगवत्ने अपने वचनों विषे कहाहै सो उसका तात्पर्य यही है कि तुझ को अभिमानका विघ्न प्रकट आनपड़े अर्थात् शैतानको जब आज्ञाहुई कि मनु को शीश नवावो तब उसने कहा कि मैं तेजतत्त्व से उत्पन्न हुआहूं और मनु पृथ्वीतत्त्वसे हुआहै ताते मैं इसके आगे शीश क्यों कर नवाऊं प्रयोजन यह कि उसको अभिमानने ऐसा विमुख किया कि भगवत्की आज्ञाको न मानतभया और मस्तक नीचा न कियो ताते महाराजने उसको धिक्कार करी और सदैव कालके वियोगको प्राप्तहुआ ॥ अब प्रकट करने कारण अभिमानके और उपाय उनके निवृत्त करनेका ॥ ताते जान तू कि जब यह मनुष्य अपने विषे कोई गुण देखताहै और वह गुण इसको और मनुष्यों विषे नहीं भासता तब उसही गुण के सम्बन्ध करिके अभिमान करनेलगता है सो अभिमान के उत्पन्न होने के सात कारण मानेहैं पर प्रथम तो अभिमानका कारण विद्या है काहेते कि विद्या-वान् मनुष्य आपको विद्यासंयुक्त देखता है तब विद्याहीन पुरुषों को पशुवत् जानताहै ताते उसके ऊपर अभिमान प्रबल होजाताहै और अभिमानकी प्रब-लताका लक्षण यहहै कि लोगों से सेवा पूजा और मान बड़ाईकी आशा रख-ता है [illegible] वह लोग इसप्रकार नहीं करते तब [illegible] और [illegible]-वान् होताहै अथवा [illegible] ऊपर अहंकार रखताहै और ऐसे जानताहै कि मैं भगवत्का निकटवर्ती हूं और

वियाकरके अपना मुक्तहोना समझताहै और और लोगोंको ऐसे नहीं जानता अथवा इसप्रकार देखताहै कि यह लोग मेरीसेवा और प्रसन्नता करके नरकों मे बचेंगे इसीपर महापुरुषने कहाहै कि यह वियाभी निस्सदेह अभिमानका का रणहै और विचारकी दृष्टि विषे ऐसे वियावान् को मूर्ख कहना विशेष है काहेसे कि यथार्थ बुद्धिमानों के मत विषे वियावान् उसही को कहते हैं जो परलोक के मार्गकी कठिनताईको जानै और उसही के भयविषे स्थितहोवै काहेसे कि जिसने इस भेद को भलीप्रकार समझा है वह सर्व्वदा विकारों से दूर रहताहै और अपने बलकी हीनताको देखकर भयवान् होताहै और योंभी समझता है कि यह वियाही मुझको परलोक विषे अधिक ताड़ना का कारण होवेगी इसकारे कि जब जाननेवाले मनुष्यसे कोई कार्य्य बिगड़ताहै तब उसको अजान पुरुष से भी अधिक दण्ड होताहै ताते इसप्रकार समझनेवाला मनुष्य कदाचित् अभिमानविषे आसक्त नहींहोता पर जिस वियावान्को अभिमानकी अधिकता होजाती है तब इसके भी दो कारण प्रकटहैं प्रथम यह कि वह पुरुष निवृत्त मार्ग की वियाको पढ़तेही नहीं सो निवृत्त विया यह है कि जिस करके भगवत् को और आपको पहिचानै बहुरि जीव और भगवत् विषे जो पटल है सो तिसको भलीप्रकार समझै ताते यह विया ऐसी है कि भीति और दीनता को बढ़ावने वाली है और अभिमान को नष्टकरडालती है पर वैद्यक ज्योतिष और व्याकरण और कोषआदिक वियाको पढ़ै अथवा परस्पर मतों के विवाद विषे स्थित होवे तब ऐसी ऐसी वियाकरके अवश्यमेव अभिमान उपज आवता है बहुरि यह विया अन्तकाल विषेही नष्ट होजाती है काहेसे कि यह विया भी स्थूल है और स्थूलताकोही दृढ़ करनेवाली है ताते इसकरके जीवको भयनहीं उपजती और भयबिना इस मनुष्यका हृदय अन्ध होजाताहै ऐसेही पुरातन कथा और कविता आदिक जितनी विया है सो यद्यपि यह लोग इनकी नीचता को नहीं जानते पर जब तू विचार करके देखै तब इस वार्त्ता को प्रसिद्ध कर जाने कि यह सबही विया अभिमान का बीजहै और ईर्षा और वैरभाव को बढ़ावनेवाली है ताते इसकरके प्रेम भीतिका अंकुर नहीं उपजता और मान बड़ाईकी वायु इसके मन विषे दृढ़होजाती है १ बहुरि दूसरा कारण वियाके अभिमान का यहहै कि यद्यपि निवृत्ति वियाहीपढ़ै और धर्ममार्गकी सूक्ष्मताईकोभी समझै तोभी जिस

पुरुषकी मनसा प्रथमही मलिन होती है तब वह ऐसी विद्याको पढ़करभी अभिमानी होताहै काहे से कि ऐसे पुरुषकी कामना विद्या पढ़कर करतूति करने की नहीं होती अपनी बड़ाई के निमित्तही विद्याको पढ़ताहै तातें वचन वार्ताहीको अपना पुरुषार्थ जानताहै सो यद्यपि यह विद्या निर्मलहै पर उसकी मलिन मनसाविषे प्रवेशकरके विद्याभी मलिन होजाती है जैसे कोई पुरुष महारोगी होवे पर जबलग प्रथम यत्न करके उसके मैल को दूर न करिये और आगेही रोगके निवृत्त करने की औषध उसको दीजिये तब उसके शरीर विषे वह औषध भी रोगही का स्वभाव ग्रहण करती है अथवा जैसे आकाश से निर्मल जलही मेघ बरसते हैं पर जब जल कटुक औषधियों को पहुँचताहै तब कटुताही बढ़ावताहै और जब ऊखआदिक मिष्ट खेती विषे प्रवेशकरताहै तब मिष्टताकी वृद्धि होती है और जब कंटकों के वृक्षों को पहुँचताहै तब कांटेही बढ़तेजाते हैं और कमलादि फूलों विषे जायकर सुगन्धही बढ़ावताहै इसीपर महापुरुषने कहाहै कि कलियुगविषे एक ऐसे मनुष्य होवेंगे जो रातिदिन निवृत्त शास्त्रों का पाठ करेंगे और कोई उनके निकट न जाय सकेगा इसकरके कि सर्व्वदा यही वचन कहते रहेंगे कि हमारी नाईं पाठ कौन करताहै और जैसे हम सर्व्व वचनोंका अर्थ समुझते हैं इसप्रकार कौन समझसक्ताहै पर ऐसे पुरुष निस्सन्देह नरकों का ईंधनहोवेंगे और ऐसेही उमरसन्तने कहाहै कि धर्मसे रहित विद्यावान् न होवो काहे से कि करतूति बिना विद्या का गुण कुछ नहीं होता और अभिमानही बढ़जाताहै इसी कारणसे आगे जो महापुरुष के प्रियतमहुये हैं सो उन्हों ने दीनताहीको अंगीकार कियाहै और सदैव काल अभिमान से डरते रहे हैं जैसे एकबारहदीनामी सन्तको सब लोग मिलकर विशेष स्थान विषे बैठाने लगे तब उन्होंने कहा कि मुझ को इस स्थानपर बैठना प्रमाण नहीं काहे से कि इतनेही आदरकरके मेरे चित्त विषे यह संकल्प फुर आयाहै कि मैं और मनुष्यों से विशेषहूं तात्पर्य यह कि जब ऐसे उत्तम पुरुषभी अभिमानके संकल्पसे रहित नहीं हुये तब मन्दबुद्धि जीव अभिमान से क्योंकर मुक्त होसक्ते हैं और ऐसे समय विषे निरभिमान पण्डितों को कहां पायसक्ते हैं काहेसे कि ऐसा विद्यावान् भी कोई विरला होताहै जो अभिमान की मलिनताको पहिचानकर इसका त्यागकरै पर बहुत पण्डित तो ऐसे पायेजाते हैं कि वह अभिमानही को अपनी विशेषता जानते हैं और

इसप्रकार कहनेलगते हैं कि मैं अमुक पुरुषकी सेवा जाननाहूं और उसको और फल देखना हूं ताते सर्वदा इसही अभिमान विषे मदवान् रहते है और जिन विचारवानोंने ऐसे मलिन स्वभाव की नीचता को भलीप्रकार पहिचाना है सो तिनके तौ कहनेही उत्तम गुननहै और उनकी संगतकरिके जीवों की भलाई मोक्ष होती है ४ बहुरि दूसरा कारण अभिमान का तप और वैराग्यहै कहिये कि वैरागी और तपस्वी और अतीतजन भी अभिमानसे रहित नहीं होसक्ते और ऐसे जानते हैं कि सर्वजीवों को हमारी सेवा और दर्शन विषे भलाई प्राप्तहोवेगी ताते अपने तपका उपकार और जीवों पर रखते हैं अथवा इसप्रकार जानते हैं कि गृहस्थलोग और मायाधारी जीव सबही डूबे हुये हैं और हम विषे हमही मुक्तहोवेंगे बहुरि जब कोई ऐसे तपस्वी जनको दुखावै और दैवसंयोग करके उ, सको भी कुछ दुःख प्राप्तहोजावे तब ऐसे जानता है कि मेरीही शक्तिकरके और सिद्धताकरके इसको दुःख प्राप्तहुआहै इसीपर महापुरुष ने कहाहै कि जो पुरुष अभिमानकरके इतर जीवोंको नीचदृष्टि जानताहै सो निस्सन्देह आपही नष्ट होताहै कहिये कि किसीपर दोषदृष्टि देखताही महापापहै बहुरि,जब कोई इस की सेवा पूजा भगवत् अर्थकरे और इसको प्रसन्न कियाचाहै और यह पुरुष अ भिमान करके उसका निरादर करे तब यह भय होता है कि मत महाराज इसकी विशेषता उसही पुरुषको देवे और अभिमानी पुरुष शुभगुणोंके फलोंसे अप्राप्त रहजावे इसीपर एक साखी है कि एक नगरके निकट बड़ा तपस्वी रहताथा और उसी नगरमें एक बड़ा अपकर्मी रहताथा पर वह तपस्वी ऐसाथा कि उसके शी- शपर सर्वदा बादलों की छाया रहतीथी ऐसा शक्तिमान् था बहुरि वह अपकर्मी मनुष्य जो आधीन होके उसके निकटआया और उसको निर्दोष जानकर यह मनसा करतागया कि इसकी संगति करके मैं भी पापों से मुक्तहोऊंगा और वह तपस्वी इसप्रकार विचार करनेलगा कि मेरे समान तो तपस्वी कोई नहीं और इसके समान अपकर्मी भी कोई नहीं ताते यह पुरुष मेरी संगति का अधिकारी नहीं है [illegible] पापी ने उसको बैठने न दिया और कठोर वचन कहे [illegible] निरादर [illegible] बहुरि जब वह पुरुष [illegible] और [illegible] [illegible] वैसा [illegible] की छाया उसके शीशपर [illegible] गई और [illegible] पुरुषको आकाशवाणी हुई कि तपस्वी मनुष्यका तप तो अभिमानकरके नष्ट

ही व्यर्थहुआहै और शुद्ध भावनाकरके अपकर्मी के पाप सबही नष्टहुये हैं ताते तुम मेरा यही संदेशा दोनों पुरुषोंको पहुँचावो जिसकरके तपस्वीका अभिमान और अपकर्मी की निराशता दूरहोजावे बहुरि एक और वार्त्ता है कि दैवयोग करके एक तपस्वी के शीश में किसी पुरुषका पाँव लगगयाथा तब वह तपस्वी क्रोधवान् होकर कहने लगा कि भगवत् की दुहाई है कि यह अवज्ञा महाराज तुमको क्षमा न करेगा तब आकाशवाणी हुई कि हे तपस्वी ! तू जो मेरे क्षमा करने और न करानेके लिये निःशङ्क होकर दुहाई करताहै ताते मैंभी अपनी दुहाई करके कहताहूं कि तुमपर कदाचित् क्षमा न करूंगा और दयाकरके अवज्ञा करनेवाले के सब पाप क्षमा करलूंगा तात्पर्य यह कि जब कोई मनुष्य तपस्वी जनको दुखावता है तब वह ऐसेही अनुमान करलेतेहैं कि महाराज इस अवज्ञा को क्षमा न करेगा इसी कारणसे जब क्रोधवान् होते हैं तब शीघ्रही शाप देने लगते हैं सो यह बड़ी मूर्खताहै काहेसे कि आगे केते निगुरों ने सन्तजनों को प्रकटही दुखायाहै और उन शत्रुओंको कुछभी दुःख प्राप्त नहीं हुआ और उलटा उनका हृदय शुभमार्ग की ओर आयाहै पर यह मूर्ख अभिमान करके आपको विशेष जानताहै इसकारके जो ऐसामनुष्य अपने शत्रुपर क्रोधवान् होताहै तब प्रकटही कहनेलगताहै कि मेरी अवज्ञाकरके तेरा धर्म और धन और कुल सब ही नष्ट होजावैगे अथवा जब अकस्मात् उसको दुःखी देखता है तब ऐसे जानताहै कि मेरेही कोप करके इसको कष्ट प्राप्त हुआहै सो मूर्ख तपस्वियोंकी ऐसी अवस्था होती है और बुद्धिमान् वैरागीजनों का लक्षण यह है कि जब किसी प्रजाको विद्वान् देखते हैं तब वह इसप्रकार समझते हैं कि हमारेही पाप करके इसको खेद प्राप्त हुआहै तात्पर्य यह कि जिज्ञासुजन वैराग्य विषे भी भयवान् रहते हैं और जो बुद्धिहीन तपस्वी होते हैं सो यद्यपि शरीरकरके कष्टनिवृत्ति करते हैं तोभी उनका हृदय अभिमान करके अन्तरसे मलिन रहताहै और इसमलिनतासे डरतेही नहीं पर जब यथार्थ दृष्टि करके देखिये तब जो पुरुष किसी प्रकार आपको विशेष जानताहै सो निस्सन्देह अपने तप को सबनके फलको व्यर्थ करता है काहे से कि अभिमान के समान खोटे और कर्म कोऊ नहीं इसी पर एक वार्त्ता है कि एकबार महापुरुष के प्रियतम किसी पुरुष की प्रशंसा करते थे सो महापुरुष ने जब उसको देखा तब कहनेलगे कि इसविषे तो मुक

को दम्भ का चिह्न दृष्टि आवता है यह सुनकर स्तुति करनेवाले श्रीनिमान् विस्मित होगये तब महापुरुष ने उस पुरुष को अपने निकट बुलायकर इसप्रकार पूछा कि तू इन लोगों में आपको विशेष जानता है कि नहीं तब उसने कहा कि मैं आप को विशेष तो जानता हूं सो यह अभिमान का चिह्न महापुरुष ने हृदय के प्रकाश करके उस विषे प्रकटही देखलिया था और लोगों ने उसको भली प्रकार नहीं जानाथा ताते यह अभिमानरूपी विघ्न विद्यावानों और तपस्वियों के विषे निस्सन्देह अधिक होताहै और इस विषेभी मनुष्य की अवस्था तीनप्रकारकी होती है सो एक पुरुष ऐसे हैं जो यद्यपि हृदयकरके अभिमानसे रहित नहीं होसक्ते तौभी यत्नसहित दीनता और गरीबी को अंगीकार करते हैं और कर्मों विषे भी दासभावको लिये रहते हैं ताते व्यवहार और वचन करके उन विषे किसीप्रकार अभिमान नहीं दृष्टि आवता सो इसका दृष्टांत यहहै जैसे कोई पुरुष मूलही से वृक्षको काट न सके पर उसकी शाखा सबही काटडाले तो भी उसको बलवान् कहते हैं बहुरि दूसरे पुरुष ऐसे होते हैं कि वचनकरके अपनी बड़ाई नहीं वर्णन करते और सर्व प्रकार आपको नीच कहते हैं पर उनके हृदय का अभिमान कर्मोंविषे प्रकट भासताहै जैसे विशेष स्थानपर बैठना और सबसे आगे है चलना अथवा किसीकी ओर दृष्टि न करनी वा भृकुटी चढ़ाये रखनी सो सबही अभिमानके लक्षणहैं पर यह पुरुष ऐसे नहीं जानते कि क्रिया और करतूति भृकुटी चढ़ावने विषे तो नहीं होती काहेसे कि यह तो हृदयके अंगहैं और इनका प्रमाण जो सर्वइन्द्रियों पर वर्तमान होताहै सो दासभाव और दीनता और सर्वजीवों पर दयाहै इसीकारणसे यद्यपि महापुरुष विद्या और वैराग्य करके सर्व मनुष्यों से विशेषथे पर उनके समान नम्र और कोमलस्वभाव किसी विषे पाया नहीं जाता ताते सर्व जीवों की ओर प्रसन्नता और दयाकी दृष्टि से देखतेथे और सदैव काल अपना मस्तक झुका रखतेथे इसही करके महाराजने भी उनकी स्तुति करीथी कि तेरा स्वभाव अतिकोमल और प्रसन्नवदन है ताते तुझसे कोई मनुष्य भयवान् होकर दूर नहीं हुआ चाहता २ और तीसरे मनुष्य ऐसे होते हैं कि अपने मुखसे अपनीही स्तुति वर्णन करते हैं बहुरि अपनी सिद्धता और अवस्था वर्णन करते हैं और इसप्रकार कहने लगते हैं कि अमुकत पुरुष क्या है मैंतो सर्वदा दिन विषे इस स्मरण और इतना पाठ करताहूं और

रात्रि विषे जागरण करताहू अथवा जब किसी को भजन करता देखता है तब उससे विशेषही नियम किया चाहताहै ऐसेही विद्यावान्भी कहते हैं कि अमुक पुरुष क्या विद्या पढ़ा होवेगा हमतो इतनी विद्या जानते हैं और प्रश्न उत्तरविषे दूसरे को निर्वचनही किया चाहते हैं अथवा आप झूठही कहतेहोवें तो भी अपने वचन को निगाय नहीं सके और सभा विषे नूतन वचन चतुराई संयुक्त उच्चारण करते हैं और अपनी बड़ाई को प्रसिद्ध किया चाहते हैं सो यह सबही तपस्वी और विद्यावान् अभिमानसे रहित कब होसके हैं पर जिन्हों ने अभिमानको भलीप्रकार निन्द्य जानाहै तब वह प्रीति और नम्रता विषे ही स्थित होते हैं जैसे महापुरुषने भी कहाहै कि जब तू आपको नीच जानेगा तब मेरे निकट तेरी बड़ाई होवेगी और जबलग तू आपको विशेष जानताहै तबलग तू मेरे निकट अतिनीच है पर जिसने इस भेदको नहीं समझा सो विद्यावान् भी महामूर्ख है बहुरि तीसराकारण अभिमानका उत्तमकुलहै जैसे ब्राह्मण और उत्तमजनोंकी सन्तान जो होती है सो यद्यपि विद्यावानों और वैरागीको देखें तोभी अभिमान करके उनको अपना टहलुवा जानते हैं अथवा तबभी वह अपने अभिमानको प्रकट नहीं करते पर कोधके अवसर विषे आपही प्रसिद्ध है आवताहै जैसे एक सन्तने किसीको क्रोधवान्होकर दासीसुत कहाथा सो जब यह वार्त्ता महापुरुषने सुनी तब उनसे कहतेभये कि भगवत्के निकट दासीसुत और रानीसुतकी विशेषता कुछनहीं ताते तुम अभिमानी न होवो यह वचन सुनकर वह सत उसके पगगये और उसके चरण अपने मस्तकपर रखकर अपनी अवज्ञाको क्षमा कराया तात्पर्य यह कि जब उन्होंने अभिमान के वचनको निन्द्य जाना तब ऐसी नम्रताको अंगीकार करते भये ऐसेही दो मनुष्य महापुरुषके निकट विवाद करनेलगेथे कि मैं तो अमुकका पुत्र और अमुक का पौत्रहूं और तू कौन नीच है जो मेरे सम्मुख वचन बोलताहै ऐसेही नवपीढ़ी पिता पितामह पर्यंत वर्णन करगया तब महापुरुषको आकाशवाणीहुई कि इसके नवो पितामह आगेही नरकविषे जलतेहैं और यहभी उनके निकटजाइ जलेगा तातें इससे कहो कि तू इतना मान क्यों कर करता है काहेसे कि जो तू कुलका मान करेगा तब विष्ठाके कीटकी नाईं महाहीन गतिको प्राप्तहोवेगा बहुरि चौथा कारण मानका रूपहै पर यह रूप और शृङ्गारका बनावना स्त्री विषे अधिक होताहै तैसे ना-

यशानागी महापुरुषकी स्त्री ने कहाथा कियह भी ठिंगनी है ताते इसवचन सें यही अभिमान सिद्ध होताहै कि मेरा शरीर इससे दीर्घ है बहुरि पांचवां कारण अभिमानका यह है इसकरके कि जब धनवान् पुरुष किसी निर्धन पर क्रोधवान् होताहै तब इसप्रकार कहने लगताहै कि मैं इतनाधन और सामग्री रखताहूं तब तू कौन नीच है जो मेरे समान बोलताहै जब मैं चहूं तब तेरे समान केते दास मोल लेआऊं बहुरि छठा कारण अभिमानका यह है ताते धनवान पुरुषभी निर्बल मनुष्यको देखकर अवश्यही अभिमानी होताहै और सातवां कारण अभिमानका यह है कि सम्बन्धियों और विद्यार्थी और टहलुवे और आश्रित सेवकोंसे अभिमान करताहै तात्पर्य यह कि जिस पदार्थ को यह मनुष्य विशेष जानता है सो तिस पदार्थ को पाकर अवश्यही अभिमानी होताहै अर्थात् यद्यपि वह पदार्थ नीचही होवे तौभी अपनी बूझ विषे उसको उत्तम जानकर बड़ाई लिया चाहताहै जैसे दुसरेभी अपनी निर्लज्जतापर अभिमान करते हैं पर अभिमान की उत्पत्ति के कारण श्रेष्ठ यहीसात हैं बहुरि अभिमान का प्रकट होनाभी और भेष्यावकरके होताहै अथवा दंभके निमित्तभी यह मनुष्य आपको विशेष कर दिखावता है अथवा प्रश्नोत्तर के विवाद विषे भी अभिमानका चिह्न भास आवताहै पर जबतेंने अभिमानके कारणों को भलीप्रकार पहिचाना तब इसके निवृत्त करने के उपायभी अवश्यही समझने चाहिये हैं और रोगके कारणको पहिचान कर उसका दूरकरनाही रोगको नष्ट करताहै ॥ अथ प्रकट करना उपाय अभिमान के निवृत्त करने का ॥ ताते जान तू कि जिस अभिमान का अंगभी आत्महननमें अभाव करनेवाला होवे सो ऐसे अभिमानरूपी रोगका उपाय करना अवश्यही प्रमाणहै और यह रोग ऐसा प्रबल है कि इसकी रचना ते रहित कोई विरलाही पुरुष होताहै पर इसके दूरकरनेका उपायभी दोप्रकार काहै सो एक उपाय ऐसाहै कि यह मूलहीसे सर्वप्रकारके अभिमानको दूर करदेवता है और दूसरा उपाय यह है कि उसमें अभिमान के कारणोंको पहिचानकर भिन्न भिन्न उनको निवृत्त करना होताहै सो यह दोनों उपाय बूझ और करनी करके मिलकर सिद्ध होते हैं सो प्रथम और यह है कि अपने के ऐश्वर्य को पहिचाने और ऐसेजाने कि बड़ाई का अधिकारी एक परमात्मा ही है बहुरि अपने को ऐसा समझे कि मेरे समान नीच और कुचील और पराधीन और मूर्ख कौन

नहीं है सो यह उपाय ऐसा विशेषहै कि अभिमानके रोगको मूलही से काटडा लताहै ताते इसजीवकी नीचता के पहिचानने को एकही वचन बहुत है जैसे महाराज ने कहाहै कि इस मनुष्यका आदि वीर्य्य है सो इस वचन का अर्थ इस प्रकार जानना चाहिये कि इस मनुष्य के समान और नीचवस्तु कोई नहीं काहे से कि प्रथम तो इसका नाम रूपही कुछ प्रकट न था बहुरि रज और वीर्य्य जो पृथ्वी और जलका विकारहै सो इनके सम्बन्धमे शरीरकी उत्पत्ति रची है पर जब भलीभांति देखिये तो रज और वीर्य्य के समान और मलिनता क्या है बहुरिउस से पीछे मासका आकार प्रकट होताहै सो जिस विषे नेत्र और श्रवण और बुद्धि आदिक चैतन्यताही कुछ नहीं होती ताते वह पाथरकी नाई जड़रूप मासताहै अर्थ यह कि जो अपने आपही से अचेतहोवे तब और किसी पदार्थको क्योंकर पहिचाने ताते भगवत् ने अपनी समर्थता करके उसही मास को सर्व इन्द्रिय और बुद्धि दीनी है सो यहवार्त्ता प्रसिद्ध है कि इन्द्रिय और बुद्धि भी चैतन्यता जल और पृथ्वीका धर्म नहीं पर यह सबही आश्चर्य महाराजने उत्पन्न किये हैं इसकरके कि यह मनुष्य भगवत्‌की बूझ और बल को पहिचाने और अभिमान के निमित्त तो इसको ऐसे अंग और ऐसाबल भगवत्ने नहीं दिया सो इसमनु- ष्यकी आदि तो यही है पर जब विचारकरके देखिये तब यह अवस्था इसजीवको लज्जावान् करनेवाली है ताते यहां अभिमानका ठौर कौनहै बहुरि मध्यअवस्था मनुष्यकी यहहै कि जब सर्वगुण और सर्व इन्द्रियों संयुक्त होकर इससंसार विषे आया तोभी महादीन और पराधीनहै सो जब इसजगत् विषे आइकर यहजीव स्वेच्छित होता तोभी इसको अभिमानका अधिकार होना काहे से कि अब करके ऐसे जानताहै कि मैं आपही करके उत्पन्न हुआहूं पर इससंसार विषे भूख प्यास शीत उष्ण दुःख चिन्ता आदिक जो अनेक विकार हैं सो सबही इस जीवके ऊपर प्रबल किये हैं ताते एकक्षण भी इनके दुःखते रहित नहीं होसकता सो यह सबही फल ऐसे हैं कि वर्णन विषे नहीं आते बहुरि इस जीव के रोगोंका उपचार कटु औषधियोंविषे राखाहै और शरीरके भोगोंविषे रोगोंकी उत्पत्ति रची है सो जब वासना अनुसारसुखोंको भोगताहै तब अवश्यही दुःखी होताहै तात्पर्य यह कि इस जीवका कोई कार्य्य इसकी चाह अनुसार नहीं रचाहै ताते जब किसी पदार्थको जानना चाहताहै तब नहीं जानसका और जब अपने मनकी रुको

विस्मरण कियाचाहे तब तिसको समर्थ नहींहोता इसकारके प्रसिद्ध हुआ कि यह मनुष्य सर्व अंगों और वचनयुक्त भयाहुआ यद्यपि है तौभी महादीन और पराधीन और अत्यन्त नीचहै बहुरि इस मनुष्यकी अन्त अवस्था यहहै कि जब मृतक होताहै तब नेत्र श्रवण वचन रूप आदिक गुण कोई नहीं रहता और शरीर मृतक मलीन रहजाता है ताते सब कोई उस को देखकर ग्लानि करते हैं बहुरि इसही दुःख विषेभी नहीं छूट सक्ता काहेसे कि जब परलोक विषे पहुँचता है तब अनेक प्रकारके भयानक रूप देखताहै बहुरि दण्डका अधिकारी होताहै और अपनी सर्व आयुर्बलके अपकर्म देखकर लज्जावान् होताहै और ऐसा इसप्रकार पूछते हैं कि अमुक आहार और औरभी कर्तूति और गहना तैंने किस निमित्त कियाथा ताते तबका उत्तर न दे सो जब भूठा होताहै तब महा नरकों विषे प्राप्त होताहै और उससमय विषे इसप्रकार कहने लगताहै कि जो मैं कूकर शूकर अथवा माटी होता तो भलाथा काहेसे कि पशुओं को परलोकका दण्ड तो नहीं होता ताते जिस पुरुषने इसप्रकार जड़पदार्थ और पशुओं में भी आप को नीच जानाहै वह बड़ाई और अभिमान विषे क्योंकर आसक्त होगा इसप्रकार कि जब पृथ्वी और आकाशके रेणु इस मनुष्यकी नीचता और पापों को पहिंचानकर रुदन करें तौभी इस जीवके दुःखोंका अन्त कदाचित् नहीं आता सो इसका दृष्टान्त यहहै कि जैसे किसी चोरको कोई कोतवाल पकड़कर बंदीखाने विषे डाले और उस चोरको शूली चढ़ने का भय होवे तब वह अभिमान क्योंकर करताहै तैसेही यह सब मनुष्य पापरूपी चोरीकरते रहते हैं और संसार रूपी बन्दीखाने विषे बँधेहुये हैं बहुरि नरकोंका भय शूली चढ़नेकी नाईं है सो जिसपुरुषने इस भेदको भलीप्रकार समभाहै तब यह जानताहै अभिमानरूपी रोगकी सूरतसे नष्टकर डालताहै काहेसे कि ऐसा मनुष्य आपको सबसे नीच जानता है पर कर्तूति करके अभिमानका उपाय इसप्रकार होताहै कि सब सन्तजनका दास भावसे। अलीराम की इसकरके कि भगवद्भजनका आरम्भ नम्रता और दीनताहै जैसे अरबदेशके लोग अभिमानकरके मस्तक किसीके आगे नीचा न करतेथे ताते महापुरुष ने उनको धरती पर माथा टेकना प्रमाण कहाथा सो जिज्ञासुजनको ऐसेही चाहिये कि जो अभिमानके स्वभावके अनुसार कोई कर्म करे तो उससे विरुद्ध होकर विचरे यह अभिमानरूपी रोग ऐसा

प्रवर्तहै कि नेत्र और रसना और रव और शरीरके सर्व अङ्गों विषे प्रकट होताहै ताते चाहिये कि जिज्ञासुजन पुरुषार्थ करके सर्व अङ्गा विषे दासभावको ग्रहण करें जैसे यहभी अभिमानका चिह्नहै कि मानी पुरुष अकेला नहीं चलसक्ता ताते नम्रतावान् पुरुषको चाहिये कि ऐसे न करे इसीकरके हसनबसरी मन कि-सीको अपने पीछे चलने नहीं देतेथे और इसप्रकार कहतेथे कि लोगोंके आगे चलने विषे इस जीवका मन स्थिर नहीं रहता ऐसेही अब्दुल्ला मलन ने कहाहै कि जितना इस मनुष्य को लोगों के साथ मिलाप अधिक होताहै उतनाही भ-गवत्के मिलापसे दूर रहताहै इसीकारणसे जब महापुरुष मार्ग विषे चलतेथे तब कभी प्रियतमों के मध्य विषे चलेजातेथे और कभी आप पीछे होकर प्रियतमों को आगे करलेतेथे बहुरि जब उनके आगे लोग उठखड़े होते तब उनको इसविषे ग्लानि उपज आती थी और वर्जित करते थे इसीपर आलीसना ते कहाहै कि जब कोई नरकगामी मनुष्यको देखना चाहे तब उसको देखे जो आप तो बैठा होवे और लोग उसके आगे खड़ेहो रहें बहुरि यहभी अभिमानका लक्षणहै कि आपसे विशेष पुरुष के दर्शन को न जायसके और दीन पुरुषको निकट बैठने न देवे इसी कारणसे महापुरुष सब किसी से भावयुक्त मिलते थे अथवा जब कोई रोगी मनुष्य अपवित्र होताथा तब उसको निकट बैठायकर भोजन करातेथे बहुरि जो अभिमानी मनुष्य होता है वह अपनी क्रिया भी आप नहीं कर-सक्ता और महापुरुष आपही अपने घर की सब क्रिया करलेतेथे इसी पर एक वार्ता है कि एक भगवद्भक्त राजा के घर विषे एक मित्र आया था सो रात्रि के समय विषे जब दीपक बुझनेलगा तब उस मित्रने दीपक विषे तेल डालनेकी मनसा करी तो राजाने कहा कि महमान से टहल कराना भली नहीं ताते तुम बैठे रहो बहुरि उस मित्रने कहा कि टहलुवे को जगाऊं तब राजा ने कहा कि टहलुवाभी अबहीं सोया है इतना कहकर आपही उठकर दीपक विषे तेलडाला बहुरि वह मित्र कहनेलगा कि तुम आपही उठे तब राजाने कहा कि जब मैं बैठा था तबभी राजाथा और अबभी राजाहूं तान गेरा गया तो कुछनहीं इसीकारण से अबूहरेरा भक्त जो राज्य करतेथे तो भी जीविकाके निमित्त लकड़ियों का बोझा बाजारविषे बेंचलेतेथे बहुरि अभिमानी मनुष्यों का यह भी स्वभावहै कि सुन्दर वस्त्र पहिरे विना घरसे बाहर नहीं निकलते पर अली इमिमत राजधर्म विषेभी

छोटाही जामा पहिरतेथे तब किसीने कहा कि तुम इनकी कामना करो। कारनेसे तब उन्होंने कहा कि इसप्रकारके आना जिसकी मगनहोनाहै और इस क्रियाको देखकर और जिज्ञासु जनभी मैयगविषे रहेंगे और निर्धन पुरुषोंका मनोभी दूर रहताहै ऐसेही एक और हरिभक्तराजा जब राजपुत्रथे तब सहस्र रुपयेका प-टराना पहिरतेथे और उसको भी थोड़ा कहतेथे बहुरि जब आप राज्य करनेलगे तब दो रुपये का एक पहरावा पहिरकर भी इसप्रकार कहते थे कि जो इससे भी अधिकथोड़ा पहिरिये तो भलाहै तब किसीने कहा कि आगे तो तुम सुन्दर वस्त्रों की इतनी अभिलाषा करतेथे और अब किसनिमित्त थोड़ा पहिरतेहो तब उन्हों ने कहा कि भगवत्‌ने मेरामन रसग्राही बनायाहै ताते जिस वस्तुविषे कुछ सुख देखताहै तब उसीकी ओर दौड़ताहै अर्थ यह कि आगे स्थूलभोगों को देखकर और उनको विशेष जानकर प्रीति करता था अब सबसे सूक्ष्मकी अभिलाष कर-ताहै पर सर्वथा ऐसे नहीं कहाजाता कि सुन्दर वस्त्रोंकरही अभिमान होताहै काहे ते कि केते पुरुष पुरातन वस्त्र पहिरकर अभिमान करते हैं और आप को वैरागी-जानते हैं इसीसे ईसा महापुरुषने कहाहै कि पुरातन वस्त्र पहिरेहुये वै-राग्य नहीं प्राप्तहोता ताते जब तुम्हाराहृदय भगवत्‌के भयकरके कोमलहोवै तब उज्ज्वल वस्त्र के पहिरने करके भी दोष कुछ नहीं होता तात्पर्य यह कि जिस पुरुषको नम्रता और दीनताकी चाहहोवै तब महापुरुषों के आचरणों को भली प्रकार जानै और उनकी नम्रता पहिचानकर यह भी नम्रताही को अंगीकारकरै सो महापुरुष का ऐसाही स्वभावथा कि अपने घरमें आपही भोजते थे और गृहविषे झाड़आदिक क्रिया करते थे और जब उनका टहलुआ थकित होताथा तब उसके अंग चापदेतेथे बहुरि धनवान् और निर्धन और बालक वृद्धको देख-कर प्रथमही प्रणाम करतेथे और ऊंच नीच तथा सुन्दर कुरूपविषे भेद न रखतेथे और जब कोई उनसे भाव करके प्रसाद पाने को कहताथा तब उसकी थोड़ी बहुत वस्तुको ग्लानिबिना ग्रहण करते थे ऐसेही अतिकोमल और उदार और प्रसन्नरहना यहलक्षण भ रहित थे बहुरि भगवत्‌के भय करके संकुचे हुये थे पर मस्तक कठोर न रखतेथे और प्रयोजन बिना अधीनचित्त थे और सबमें अति उदारथे और सब जीवोंपर दया रखते थे और सर्वदा अपने शीशको झुका रखतेथे ताते जो पुरुष अपनी भलाईको चाहता हुआचाहै तब महापुरुषके आचार

अनुसार विचरै १ बहुरि दूसरा उपाय जो अभिमानका भिन्न भिन्न विचार करके कहाया सो यह है कि प्रथम अपने अभिमानके कारण को पहिंचाने सो जब उत्तम कुल का अभिमान फुरे तब ऐसा जाने कि मेरा तो कुल रज और वीर्य्य है काहे से यहशरीर इनहीं से उत्पन्न है ताते माता इसकी रक्त है और पिता वीर्य्य है और माटी इसकी पितामह है सो यह सबहीपदार्थ महाअपवित्र और तुच्छ है ताते विचारवान्को ऐसाही जानकर अभिमानका निवृत्त करना योग्यहै काहे से कि जब कोई नाऊ वा कुम्हार का पुत्रहोवे तब वह उनकी नीच क्रियाको देख-कर अभिमानी कदाचित् नहींहोता पर जबविचारकर देखिये तब यह मनुष्यभी रज और वीर्य्यकी सतानहोकर काहे को मान करताहै सो इसका दृष्टान्त यह है जैसे कोईपुरुष आपको ब्राह्मण कहावे और दो मानी जानकर कहैं कि यह तो नाऊका पुत्र है तब यह वचन सुनकर कैसा लज्जावान् होता है तैसेही जिस ने अपने शरीरकी उत्पत्तिको भलीप्रकार जानाहै वह कदाचित् मानी नहींहोता॥ अथ रूपाभिमानोपाय ॥ बहुरि दूसरा कारण अभिमान का रूपहै ताते जो मनुष्य अपने रूपका अभिमान करै तब उसको चाहिये कि अपने शरीरकी मलिनताको पहिंचाने और शरीरके सर्वअंगोंविषे जो दुर्गंध भरपूरहै सो तिसका विचारकरै कि यह शरीर ऐसा मलिनहै जो यह मनुष्य नित्यप्रति अपनी मलि-नताको दोबार धोताहै और उस मलिनताके देखने व सूंघनेका बल नहींरखता सो इस के शरीरका रूप उसही के आश्रितहै और इसकी उत्पत्तिभी रज और वीर्यकर हुईहै इसीपर नाऊमनने किसी पुरुषको मंडना देखाया तब उसने कह-नेलगे कि जिसपुरुष ने अपने उदरकी मलिनताको पहिंचानाहै वह इसप्रकार कभी लटकपटकरकर नहींचलता काहेसे कि यह शरीर मल मूत्रके स्थानमेंभी म-लिनहै और मल मूत्रके स्थानों में भी इसहीकी मलिनताकरके मलिनता होती है बहुरि यह मनुष्य रूपका जो अभिमान करताहै सो इसने अपनारूप आपतो नहीं बनाया और कोई पुरुष आपकरके कुरूपभी नहीं होसक्ता ताते ग्लानि और अभिमान करना व्यर्थ है बहुरि यह रूप ऐसा क्षणभंगुरहै कि एकहीरोग अथवा फोड़े करके कुरूप होजाताहै ताते इसका अभिमान करना बड़ी मूर्खताहै ॥ अथ बलाद् ॥ पर जब बलका अभिमान फुरै तब इसप्रकार विचारै कि जब एकनाड़ी विषे पीड़ा उपजती है तब महानिर्बल और दीन होजाता है बहुरि मानी और

मच्छड़ और कीड़े के काटने से भी आपको बचा नहीं सकता ऐसा जब यह मनुष्य अधिक धनी होवे तो भी कुत्ता और गर्दभ और हस्ती और ऊंट इससे अधिक धनी होते हैं ताते ऐसे तीन पदार्थ का अभिमान करना वृथा है ॥ अथ ऐश्वर्यम् ॥ बहुरि जब धन और दास और दासी अथवा राज्य का अभिमान करे तब यह तो सबही पदार्थ इसके शरीरसे बाहर हैं ताते इनको चोर आदिक छिन ले जाते हैं और राज्यभी क्षणविषे नष्ट होजाता है तब उससमय विषे कैसी अग्निवत् ताप प्राप्त होता है बहुरि कैसे विमुख लोगभी इससे अधिक धनी और राजा होते हैं ताते ऐसे धन और राज्यका अभिमान करना वृथा है काहे से कि जितने पदार्थ तुमसे भिन्न हैं ते तेरे कदाचित् नहीं होवें ताते तू जितने पदार्थों का अभिमान करता है सो सबही मिथ्या है ॥ अथ विद्या ॥ पर जब दूसरा प्रकार देखिये तब इसमनुष्यको विद्या और तपके अभिमानका अधिकार होता है काहे से कि सूक्ष्मदृष्टि विषे भलीप्रकार करके यह दोनों सर्व इसही के पुरुषार्थ से पैदा होते हैं जो भगवत् के निकट प्राप्त करनेवाले हैं और भगवत्ही के गम्य हैं ताते यह बात बड़ी कठिन है कि विद्यावान् होकर अभिमानसे रहित रहे पर इस अभिमान के दूर करने का उपाय भी जो करता होवे सो प्रथम तो इसप्रकार जाने कि परलोक विषे विद्यावान् को पकड़ और भय अधिक होता है काहेसे कि जब अज्ञान पुरुष से कोई कार्य बिगड़ जाता है तो उसका इतनी ताड़ना नहीं करते और सुजान को अधिक होती है ताते कहते हैं हीन विद्यावानों के निमित्त विषे जो वचन आये हैं सो [illegible] विचारके ऐसे भगवानने कहा है कि जो पुरुष हीन विद्यावान गर्दभ की नाईं है जो [illegible] पुस्तकों का भार उठाता है और उनकी विद्यावान् [illegible] कुत्ते की नाईं है काहेसे कि ज्ञान मलिन स्वभाव को त्याग नहीं सका ताते गर्दभ और कुत्तेसे अधिक नीच की नाईं जो उनकी [illegible] कि जब यह पुरुष परलोक के [illegible] सुख न होवे तब [illegible] पदार्थ भी इसकी [illegible] कितनेही [illegible] है कि जो इस पशु मृग और [illegible] और [illegible] भी [illegible] तात्पर्य यह कि परलोक [illegible] विषे [illegible] होता है तब [illegible] उसको अभिमान नहीं उपजता [illegible] देखता है तब ऐसे समझता है कि [illegible] मुझसे [illegible] है [illegible]

बुराईको भलीप्रकार नहीं पहिचाना ताते इसको अधिक ताडना न होवेगी ब- हुरि जब किसी अधिक विद्यावान् को देखताहै तब ऐसे जानताहै कि यहभी मुझसे विशेषहै इसकरके कि जिनभेदको यह समझताहै सो तिसको मैं नहीं जानता ऐसेही जब वृद्धपुरुषको देखताहै तब ऐसे जानता है कि इसने भगवद्भ- जन मुझसे अधिक किया होवेगा और बालक को देखकर कहताहै कि इसने पाप मुझसे अल्प किये होंगे ताते ऐसा पुरुष अपकर्मी को देखकर भी अभि- मानी नहीं होता काहेसे कि जो यह अन्तकाल विषे शुभकर्मी होजावे और मैं उससमय विषे अपकर्मी होजाऊं तो क्या आश्चर्य है बहुरि दूसरा उपाय यहहै कि इसप्रकार विचारकरै कि यह बड़ाई महाराजहीको शोभती है और ऐसे समर्थ महाराज का साम्हीहोना बडी मूर्खता है इसीकारण से भगवत् ने सर्व जीवों को यही आज्ञा करी है कि जब तुम आप को नीच जानोगे तब मेरे निकट उत्तम होवोगे ताते सर्व सन्त जो नम्रतावान् और दीन चित्तहुये हैं सो ऐसेही समझ कर उनका अभिमान दूरहोगया है॥ अथ तप॥ बहुरि तपस्वीकोभी इसप्रकार चाहिये कि यद्यपि विद्यावानको वैराग्यसेरहित देखै तौभी उसके ऊपर ग्लानि न करै और ऐसेजानै कि जो यह उत्तम विद्याही इसको भला करलेवे तब इसविषे क्या आश्चर्य है ऐसेही जब विद्याहीन को देखै तब इसप्रकार समझै कि मैं तो इसकी अवस्था को नहीं जानता ताते जब यह मुझ से भी अधिक भजनवान् होवे तब मुझको इसपर अभिमान करना क्योंकर प्रमाण है ऐसेही जब किसी अपकर्मी को देखै तब इसप्रकार समझै कि यह तो प्रकटही पापकरता है और मेरे चित्त विषे भी अनेक पापों के सङ्कल्प उपजतेहैं ताते यह वार्त्ता निस्सन्देहहै कि जिसके अन्तर पापोंकी चितवनीहोवे और निष्पापहोइ दिखावै तब यह प्र- कट पाप करनेवाले से अधिक नीच होताहै बहुरि एक पाप ऐसेहूभी होतेहैं कि वह अनेक जप तपोंका नाशकर डालते हैं और एक गुण ऐसा बलवान् होताहै जो अनेक पापों को दूर करदेताहै तात्पर्य यह कि यथार्थही इस रीति देखिये तो अभिमान करना बड़ी मूर्खताहै इसीकारण से महापुरुष और तपवान और बुद्धिमान पुरुष अभिमानसे रहित हुयेहैं॥ अब अहङ्कार की चिकित्सा अरदास की और प्रसिद्ध निर्वाहनेके उपाय लिखते हैं॥ ताते जानना कि सुन्दर रीतों और अ- शुभ कर्मों का निज स्वरूप यह है जो महापुरुषोंने कहाहै कि तीन स्वभाव इस

म खड़ और शीश के काटने मे भी आपको मनार नहीं मका अथवा जब यह मनुष्य ग़ारीर वाला होवे तौ भी बूआ और गर्दभ और ऊंट और इनसे अधिक नीहने हैं ताते ऐसे नीच पदार्थ का अभिमान करना क्याहै॥ अथ ऐश्वर्य॥ यद्यपि जब धन और दास और स्वामी अथवा राज्य का अभिमान करे तब यह सो सबही पदार्थ इसके शरीर से बाहर हैं ताते धन को चोर आदिक फिर दूर करडालते हैं और राज भी क्षणविषे नष्ट होजाताहै सब उसमेंप विषे फेरी अधीनता ही प्राप्त होतीहै यद्यपि कैन विषुम लोगभी इससे अधिक धनी और राजा होते हैं ताते ऐसे धन और राज्य का अभिमान करना क्या है काहे से कि जितने पदार्थ तुझसे भिन्न हैं ते तेरे कदाचित नहीं होते ताते तू जितने पदार्थों का अभिमान करताहै सो सबही मिथ्याहै॥ अथ विद्या॥ पर जब गुनानताको होविषे तब इस मनुष्यको विद्या और तप के अभिमानका भारी भार होताहै काहे से कि इह नरहि विषे भलीप्रकार इनके यह दोनों कर्म इसहीके पुरुषार्थ मे ऐसे उपगरें जो भगवत् के निकट प्राप्त करानेवाले हैं और भगवन्‌में लीनहैं ताते नरचारी महाकठिनहै कि विद्यावान होकर अभिमानसे रहित रहे पर इस अभि- मानके दूर करने का उपाय भी दो प्रकार का होताहै प्रथम तो इसप्रकार जाने कि परलोक विषे विद्यावान् को पकड़ और भय अधिक होताहै काहेसे कि जब अ- ज्ञान पुरुष से कोई कार्य्य बिगड़जाता है तब उसको इतनी ताड़ना नहीं करने और सुजान को अधिक होती है ताते कुरानविषे हीन विद्यावानों के निमित्त विषे जो वचन आये हैं सो तिनका विचार करे जैसे भगवानने कहाहै कि कुरानविषे हीन विद्यावान् गर्दभ की नाई है जो गर्दभ पुस्तकों का भार उठाताहै और उनकी विशेषता का नहीं जानता अथवा कुत्ते की नाई है काहेसे कि गर्दभ ने धन स्वभाव को त्याग नहीं सका ताते गर्दभ और कुत्ते से अधिक नीच कौन है जो उनकी समझाईसे प्रगटहै कि जब यह बड़ा परलोकके ज्ञानवान् पुरुष न होवे तब जड़पदार्थोंसे इसमें विशेष है इसीकारणसे फिर नबी की जीवनियों में कहा है कि जो इस पर्दा मुख और पापहोते और परलोक के दुःखने मुझे सो भी मना था तात्पर्य यह कि परलोक का भय जिसके हृदय विषे स्थित होताहै तब स्वभाव- विषे ही गर्व अभिमान नहीं उपजता साथ जब किसी अज्ञान को देखता है तब यों समझताहै कि यह भी मुझसे विशेष है काहेसे कि इसने जो पाप भी

बुराईको भलीप्रकार नहीं पहिचाना ताते इसको अधिक तोड़ना न होवेगी बहुरि जब किसी अधिक विद्यावान् को देखताहै तब ऐसे जानता है कि यहभी मुझसे विशेषहै इसकरके कि जिसभेदको यह समझताहै सो जिसको मैं नहीं जानता ऐसेही जब वृद्धपुरुष को देखताहै तब ऐसे जानता है कि इसने भगवद्भजन मुझसे अधिक किया होवेगा और बालक को देखकर कहताहै कि इसने पाप मुझसे अल्प किये होवेंगे ताते ऐसा पुरुष अपकर्मी को देखकर भी अभिमानी नहीं होता काहेसे कि जो यह अन्तकाल विषे शुभकर्मी होजावे और मैं उससमय विषे अपकर्मी होजाऊं तो क्या आश्चर्य है बहुरि दूसरा उपाय यहहै कि इसप्रकार विचारकरै कि यह बड़ाई महाराजहीको शोभती है और ऐसे समर्थ महाराज का साझीहोना बड़ी मूर्खता है इसीकारण से भगवान् ने सर्व जीवों को यही आज्ञा करी है कि जब तुम आप को नीच जानोगे तब मेरे निकट उत्तम होवोगे ताते सर्व सन्त जो नम्रतावान् और दीन चित्तहुये हैं सो ऐसेही समझकर उनका अभिमान दूरहोगया है॥ अथ तप ॥ बहुरि तपस्वी कोभी इसप्रकार चाहिये कि यद्यपि विद्यावान्को वैराग्यसेरहित देखै तौभी उसके ऊपर ग्लानि न करै और ऐसेजानै कि जो यह उत्तम विद्याही इसको क्षमा करालेवे तब इसविषे क्या आश्चर्य है ऐसेही जब विद्याहीन को देखै तब इसप्रकार समझै कि मैं तो इसकी अवस्था को नहीं जानता ताते जब यह मुझ से भी अधिक भजनवान् होवै तब मुझको इसपर अभिमान करना क्योंकर प्रमाण है ऐसेही जब किसी अपकर्मी को देखै तब इसप्रकार समझै कि यह तो प्रकटही पापकर्ता है और मेरे चित्त विषे भी अनेक पापों के सङ्कल्प उपजतेहैं ताते यह वार्ता निश्चयहुईहै कि जिसके अन्तर पापों की चितवनी होवे और निरापदाड़ दिखावे तब वह प्रकट पाप करनेवाले से अधिक नीच होताहै बहुरि एक पाप ऐसेभी होतेहैं कि वह अनेक जप तपों का नष्टकर डालते हैं और एक गुण ऐसा बलवान् होताहै जो अनेक पापों को दूर करदेताहै तात्पर्य यह कि यथार्थ दृष्टि करि देखिये तो अभिमान करना बड़ी मूर्खताहै इसीकारण से महापुरुष और सन्तजन और बुद्धिमान् पुरुष अभिमानसे रहित हुयेहैं॥ अथ प्रकट ॥ विवेका अहङ्कार की और दृष्टि न विचारने उसके विषे ॥ ताते जानतु कि नर्क विषे और अशुभ कर्मों का मूल अहङ्कार है इसीते महापुरुषों कहाहै कि जौन स्वभाव इस

जीवके महा दुःखदायक हैं सो एक कृपणता दूसरा वासना की प्रबलता तीसरा
अहङ्कारहै बहुरि महापुरुषने अपने शिष्यको से इसप्रकार कहाथा कि यद्यपि तुम
पापकर्म नहीं करते होगे मैं इसकरके डरताहूं कि तुम अहङ्कारी न होजावो सब
महा नीचता को प्राप्त होवोगे कहतेहैं कि अहङ्कार सबही पापोंसे बुराहै इसीपर
इब्नमसऊद सन्तने कहाहै कि भगवत्की दयासे निराशता और आपको देख
कर अहङ्कारी होकरके यह मनुष्य विमुख होजाताहै कहतेहैं कि अहङ्कारी और
निराश पुरुष के हृदय मे प्रीति और पुरुषार्थ दूर होजाता है इसीपर एक और
सन्तने कहाहै कि जब मैं सारीरात्रिपर जागरण करके भजन करताहूं और प्र-
भात समय उठकर अहङ्कारी होऊं तब इससे मैं यह बार्ता विशेष जानताहूं कि
यद्यपि मैं सर्वरैन सोरहूं पर प्रभात समय आधीनचित्त और लज्जावान् होकर
रहूं तो भलाहै ताते जानतू कि इस अहङ्कार से जैसेविघ्न उपजते हैं सो एक तो
अभिमानहै कि आपको सबसे विशेष जानताहै बहुरि अपने अवगुणोंको नहीं
जानता अथवा ऐसे जानता है कि सुकृत हूं बहुरि भगवद्भजन से सन्तोष
जाताहै और यद्यपि कुछ जप तपभी करताहै तो भी उसके विघ्नों को नहीं वि-
चारता ताते भगवत् के भयसे रहित होताहै बहुरि ऐसे जानताहै कि भगवत्के
निकट कुछ विशेषहूं और भजन स्मरण जो भगवत्की लाजसे सो तिसको अ-
पना पुरुषार्थ समझताहै और अहङ्कारसे सत्य उत्तर किसीसे पूछ नहीं सक्ता
बहुरि जब उसको कोई यथार्थ बचन कहताहै तोभी अङ्गीकार नहीं करता ताते
मूर्ख और नीचही रहताहै॥ अब अहङ्कार का स्वरूप वर्णन करता॥ ताते जानतू
कि विद्या और शुभकर्मों के पदार्थों कि जेते गुणहैं सो सबही महाराज श्री
दातारके हैं जो पुरुष ऐसे गुणों को पाय करके भगवत्को और दृष्टि रखताहै और
अपने आपको कुछ नहीं जानता तब पुरुष अहङ्कारसे रहित रहाजाताहै और
जो मनुष्य किसी गुणको प्राप्तहोकर अपना पुरुषार्थ जानताहै और उस करके
मगन होताहै तब इसहीकानाम अहङ्कारहै और अब अपनी स्तुतिका विशेष
जानकरके किसी पदको प्राप्त हुआचाहै और आपको उसका अधिकारी जाने
सब इसहीका नाम मनोरथ है यह कि अहङ्कार और पराभव और जानताहै और
यथार्थ को नहीं जानता इसी पर महापुरुष ने कहाहै कि जब तुम प्रीति अपनी
कहताहै अहङ्कारी होतो तब इसके महत्वको विचारो कि यह अहङ्कार ....।

अवज्ञा देखनेरहो काहेसे कि अविद्याका मूल अहङ्कार है जिस करके आपको शरीर और वर्णाश्रम और कर्मोंका कर्त्ता जानता है सो भगवत् और इस जीव विषे यही अहङ्कार पटलहै ॥ अथ प्रकट करना उपाय अहङ्कार का ॥ ताते अहङ्कार रूपी रोग का कारण केवल अज्ञान है ताते इसका उपाय भी केवल ज्ञान है और बूझहै सो बूझ यहहै कि जब कोई पुरुष रात्रि दिवस विद्या और वैराग्य विषे स्थित होवे और इस करतूति करके कुछ अहङ्कार करे तब मैं उससे इस प्रकार कहूं कि यद्यपि तू आपको कर्त्ता जानकर अहङ्कारी होताहै तौभी तेरा कर्म तेरे पुरुषार्थ के आश्रित नहीं काहेसे कि तुझको महाराजने करतूति करने का शस्त्र बनायाहै जैसे लिखारी के हाथ विषे कलम होतीहै अथवा जैसे दरजी के हाथ विषे सुई होतीहै सो लिखना और सीवना कलम और सुई की करतूति नहीं काहेसे कि वह दोनों पराधीनहैं बहुरि जब तू ऐसे कहे कि कर्मोंका कर्त्ता मैंहूं काहेसे कि मेरीही श्रद्धा और बलकरके कर्म सिद्ध होते हैं तब इसका उत्तर यहहै कि जिस श्रद्धा और बल करके कर्म सिद्ध होते हैं सो तू कहां से लायाहै और कुछ इस वार्त्ताको भी जानताहै कि जिस चाह और उद्यमके आधीन होकर तू कर्मों विषे लगताहै सो तिस चाहको तेरे ऊपर किसने प्रेराहै और श्रद्धारूपी रस्सी तेरेगले विषे डालकर तुझको करतूतिकी ओर किसने चलाया है ताते जान तू कि यह चाह और श्रद्धाही महाराजका दूतहै सो जिस पुरुषको जैसी आज्ञा होती है तब वह किसीप्रकार उलटाय नहीं सक्ता ताते प्रसिद्ध हुआ कि श्रद्धा और पुरुषार्थ और और जेते गुणहैं सो सबही महाराजकी दातहै पर तू जो किसी गुण का अहङ्कारी होता है सो यह बड़ी मूर्खता है काहेसे कि तेरे वशकरके कोई कार्य सिद्ध नहीं होता ताते तुझको किसी गुण का अहङ्कारी होना प्रमाण नहीं बहुरि जब तू प्रसन्नहोवे तौभी भगवत्के उपकारको जानकर प्रसन्न और आश्चर्यवान् होना प्रमाणहै इसकरके कि बहुत मनुष्यों को धर्म के मार्गसे अचेत कियाहै और उनका पुरुषार्थ अकर्मों विषे लगताहै और तुझ को महाराजने अपनी दयाकरके सात्विकी श्रद्धारूपी दूतको प्रेराहै ताते दयाकरके तुझको अपनी ओर खींचताहै सो यह भागवतरोग उपकारहै जैसे कोई राजा किसी मार्ग एक टहलुवेको हेतु सहित अपनी दयाकरके सिरोपाव और नाना पदार्थ देवे तब उसको अपने स्वामीका उपकार मानताही प्रमाण होता

है और अपने उस अहङ्कारी होना अर्थात् यह चाहिये कि उसको अविद्या से
निवृत्ति [illegible] मानहुं है पर जब यह अहङ्कारी करे कि भगवान ने मुझको अधि
कारी जानकर [illegible] है तब उससे पूछिये कि तुझको अधिकार किसने
दिया है ताते अधिकार और [illegible] ऐसे प्रपञ्च
तुझको भगवान् घोड़ा दिया और पीछे उस घोड़े का [illegible] देवे और इस प्रकार तू
अहङ्कारी होवे कि मुझको [illegible] इस निमित्त आपहु अहै कि मैं घोड़ा रखता
था सो यह अहङ्कार रखना मूर्खता है चाहिये कि यह घोड़ा भी उसीने दिया है
और [illegible] उसही की कृपा ते है ताते तू व्यर्थ अहङ्कारी होता है तैसेही जब
यह मनुष्य इस प्रकार अहङ्कारी होता है कि मुझको भगवान ने माना यह इस
निमित्त किया है कि मैं उसको प्रियतम रखता था तब उससे कहिये कि तेरे हृदय
विषे प्रीति किसने उपजाई है बहुरि जब यह ऐसे कहे कि मेरे हृदयविषे प्रीति
इस प्रकार से उत्पन्न हुई थी कि मैंने उसके स्वरूप को [illegible] पहिचाना था तब
उससे कहिये कि यह पहिचान भी तुझको किसने दीनी तात्पर्य यह कि जो सर्व
गुणों का दाता भगवान ही हुआ तब सो प्रकार उसही का उपकार जानना
विशेष चाहिये कि तुझको भी उसहीने उत्पन्न किया है बहुरि श्रद्धा और पुरुषार्थ
आदिक गुण भी तेरे विषे उसहीने उत्पन्न किये हैं ताते तू भी करके कुछ भी नहीं
और तेरे आश्रय भी कोई कार्य नहीं भया परन्तु भगवान के हाथ विषे तू भी ए
शस्त्रवत् है बहुरि जब तू इस प्रकार कहे कि जब मैं किसी कर्म को करता नहीं
तब इसके कर्मों का [illegible] ताते [illegible] प्रसिद्ध जाना जा
ता है कि [illegible] पुरुषार्थ [illegible]
[illegible] कि [illegible] नहीं
और [illegible] कि [illegible]
नहीं होना था [illegible] और [illegible] तब तू इस
प्रकार जानता है कि [illegible] कि तू
इस प्रकार [illegible]
[illegible] कि इस
[illegible] इस का [illegible]
[illegible] और [illegible]

न होवे बहुरि जब दयाकरके खजानची तुझको कुंजी देवे तब तू उसके तालेको खोलकर अधिक सम्पदा जो प्राप्त होवे सो यद्यपि वह सम्पदा तैंने अपने हाथोंकरके लीन्दी है तौभी, अधिक उपकार कुंजी देनेवाले का होनाहै और तेरे कर्मकी बड़ाई कुछ नहीं होती तैसेही तेरे सर्व कर्मोंकी कुंजी महाराजकी वस्त्रशीणहै तो चाहिये कि तू सर्वप्रकार उसही का उपकार जानकर प्रसन्न होवे जो वसही महाराजने अपनी दयाकरके तेरे अधिकार बिना तुझपै शुभकर्म कराया है और पापीजीवों को भलाई रूपी खजानेमे अप्राप्त राखाहै सो उनकी अवज्ञा बिनाही अपनी आज्ञानुसार उनको अशुभ मार्गों विषे डालाहै तात्पर्य यह कि जिसने सबका प्रेरक महाराजहीको पहिचानाहै तब वह कदाचित् अहंकारी नहीं होता पर यह बड़ा आश्चर्य है कि जब सुजान मनुष्य निर्द्धन होताहै तब इस प्रकार आश्चर्य करने लगता है कि अमुक मूर्ख को इतनी सम्पदा प्राप्तहुई है और मुझ ऐसे बुद्धिमान्को कुछ प्राप्त नहीं होता सो वह ऐसे नहीं जानता कि यह विद्यारूपी पदार्थ जो मेरेपास है सो यह भी तो भगवत् की बड़ी दातहै पर जब महाराज विद्या भी मूर्ख धनी को देता तब भगवत् का ऐश्वर्य और नीति कुछ खण्डित तो नहीं होतीथी ताते यह विद्यावान् ऐसेही आश्चर्यकरताहै जैसे रूपहीन स्त्रीको देखकर रूपवती स्त्री आश्चर्यकरै कि इस कुरूपाको इतने भूषण मिलेहैं और मुझ रूपवतीको कोई भूषण नहीं प्राप्तहुआ पर मूर्खता करके इतना नहीं जानती कि जब रूप और भूषण दोनों उनही को मिलते तब भगवत् की समर्थता विषे क्या विपरीतता होती बहुरि जैसे राजा किसी चाकरको घोड़ा देवै और एकको एक गुलाम देवे पर जब घोड़ेवाला चाकर आश्चर्यवान होवे कि घोड़ा तो मैं रखता हूं और राजा ने दूसरे चाकर को गुलाम किस निमित्त दिया है सो यह बड़ी मूर्खता है इसी पर एक वार्त्ता है कि दाऊद महात्मा ने इसप्रकार अहंकार कियाथा कि हे महाराज! मैं तेराभजन नागीरात्रि करता हूं और सर्व दिनों विषे व्रती रहताहूं तब उनको आकाशवाणी हुई कि हे दाऊद! तैंने ऐसा पुरुषार्थ करा मेरे बिना पाया है ताते अब मैं एकक्षण तुझको अपनी सहायता से दूर रखता हूं तब उसीसमय विषे उनसे एक ऐसा पाप हुआ कि उसकी ग्लानता करके और उसकी लज्जामानी करके सर्व आयुपर्यन्त रुदन करते रहे बहुरि अयूब महात्मा ने भी ऐसेही अहंकार कियाथा कि हे महाराज! जितना कष्ट तैंने

मेरे ऊपर भेजा है सो मैं कितनेही वर्षों से तुमही विषे धैर्य्यकर रहा हूं तब उनको
भी बड़े भयानक शब्द के साथ आकाशवाणी हुई कि तू मेरी दया बिना ऐसा
धैर्य्य रहा से ले आया यह वचन सुनकर अर्जुन जी भयवान् हुये और अपने
शीशपर धूलि डालकर कहनेलगे कि हे महाराज ! सब कुछ तेरीही दयाकरके प्राप्त
होताहै ताते मैंने अपने अहंकारका त्यागकिया इसीपर महाराज ने कहाहै कि
जो मेरीदया न होती तो कोई मनुष्य शुद्धात्माको न पहुंचता बहुरि महापुरुषों ने
भी कहाहै कि कोई पुरुष ज्ञानी करतूति करके मुक्तिको नहीं पाता तब किसीने
पूछा कि क्या तुमभी अपने पुरुषार्थ करके मुक्त नहीं हुये तब उन्होंने कहा कि
मैं भी महाराज की दयाका भरोसा रखताहूं ताते प्रसिद्ध हुआ कि जिन्होंने इस
भेदको भलीप्रकार समझा है सो वह कदाचित् अहंकारी नहीं होते बहुरि ऐसे
जान तू कि ऐसे मनुष्य मूर्खता करके उस पदार्थ पर अहंकारी होते हैं कि जिस
पदार्थ का सम्बन्ध उनके साथही कुछ नहीं जैसे धन और रूप और उत्तमकुल
सो इस पर अहंकारी होना महामूर्खता है ताते ऐसे मनुष्य जो धनवान् और
राजाओं के कुलका अभिमान करते हैं सो उनके पिता पितामह को परलोक
विषे ऐसी नीचगति होती है कि जब यह अहंकारी प्रसिद्ध देखें तब अधिक लज्जा
वान् होवें और कितनेही तो उत्तम कुल के आश्रय गर्व करने लगते हैं कि
हमको पापही स्वर्ग नहीं करने पर वे बुद्धिहीन इतना नहीं जानते कि यद्यपि
हमारे पिता पितामह निष्पाप हुये हैं पर जब हमने पाप किये तब हमारा और
उनका क्या सम्बन्ध रहा काहे से कि यह सन्तजन तो वैराग्य और नम्रताकरके
विशेष हुये हैं कुछ कुल की बड़ाई करके तो विशेष नहीं हुये ताते जिन्हों ने नीच
कर्मों को अङ्गीकार किया है सो यह यद्यपि महापुरुषों की सन्तान होवें तो भी
नरकों के कीट होवेंगे इसीकारणसे महापुरुष ने भी कुल के अभिमान से वर्जित
किया है और ऐसे कहा है कि हम सबही मनुष्य जाति हैं और मनुष्य का मूल
माटी है बहुरि महापुरुष ने अपनी पुत्री से कहाथा कि हे बेटी ! तू शुभकर्मों
विषे सावधान रह काहेसे कि परलोक विषे मेरे आश्रय करके कुछ न होवेगा सो
यद्यपि श्रीमान् और महापुरुषों के सम्बन्धी भी उनकी दयाका आसरा रखते
हैं पर जब पापकर्मी अधिक होजावें तब स्नेह सम्बन्ध का नाश होजाता है
इसीपर महापुरुष ने कहाहै कि मैं और सन्तजनों के आश्रय तीन

पापोंविषे निश्शंक विचरना ऐसेहै जैसे किसी वड़े वैद्यका पुत्र रोगीहोवे और पिता के वैद्यक की वड़ाई जानकर कुपथ्य का त्याग न करे सो वड़ी मूर्खता है काहेसे कि जब कुपथ्यकी अधिकता करके असाध्य रोग होजावे तब पिताकी वैद्यकी उसके किसकाम आवेगी अथवा जो धर्मज्ञ राजाहोवे तब उसके निकट कोई मंत्री और प्रधानभी अवज्ञावान् के दोषको क्षमाकराय नहीं सक्ता काहे से कि वह तो आपही यथायोग्य न्याय करताहै तैसेही यह पापही भगवत्के कोप का वचनहै और इसपाप को तू अल्प जानताहै ताते जो पुरुष निश्शंक होकर पापों विषे आसक्त होताहै तब किसी सबंध और कुलके आश्रय करके दुःखसे नहीं छूटता तात्पर्य यह कि यद्यपि जिज्ञासु जनको सन्तजनोंका भरोसाहै तो भी भगवत् की वेपरवाही से डरतेरहते हैं और जो पुरुष उदास हुआ तब उसके चित्त विषे अहङ्कार कदाचित् फुरता नहीं॥

दशवासर्ग॥

अज्ञानता और भ्रम और छलके उपायके वर्णन में॥

ताते जानतू कि जो पुरुष आत्मसुख से अप्राप्त रहताहै सो तिसका कारण यहहै कि वह मार्ग विषेही नहींचला और शुभमार्ग विषे न चलने का कारण यहहै कि उसने शुभमार्ग को जानाही नहीं अथवा चलही न सका पर चलने की असमर्थता भोगोंकी वंधवानी कर होती है काहेसे कि भोगों विषे वँधाहुआ पुरुष विषय वासनाको विपर्य्यय नहीं करसक्ता और अज्ञानताका कारण यहहै कि जिस मनुष्यको सन्तजनोंके वचन की पहिचान और श्रवण नहींहोती तब वह स्वाभाविकही अज्ञान रहताहै अथवा भ्रम करके कुमार्ग विषे चलने लगताहै अथवा कोई ऐसा छल आन प्राप्त होताहै जो इसको शुभमार्गसे गिराय देताहै पर भोगोंकी बंधवानी जो इसजीवको शुभमार्ग विषे चलने नहीं देती सो तिसका उपाय मैंने पीछे वर्णन कियाहै जैसे मान धन की प्रीति और काम क्रोध आदिक जितने मलिन स्वभाव हैं सो यह सबही धर्ममार्ग विषे कठिन घाटियां हैं ताते यह मनुष्य इनसे उल्लंघित नहीं होसक्ता अथवा जबतक घाटीसे उतरताहै तब दूसरी अथवा तीसरी विषे अटक जाताहै पर ऐसेही जबतक सब घाटियों से उल्लंघित न होवे तबतक परमपदको नहीं प्राप्तहोता बहुरि अज्ञानता जो इस जीवके शुभमार्ग का कारणहै सो यह भी तीन प्रकारकी होतीहै प्रथम

सो केवल अज्ञानता और अचेतता है और सर्वथा भी इनहीं का नाम है कि संतजनोंके वचनके श्रवण मनन होता भी बुद्धि न जानेपर इसका दृष्टान्त यह है जैसे कोई पुरुष मार्गमें भी मानाही रहताहै सो यह बात प्रसिद्ध है कि जब लग उसको कोई आय कर जगावे नहीं तब लग वह ठगियोंका साथी नहीं होता और अंधता मृत्यु होताहै १ बहुरि दूसरा प्रकार अज्ञानताका भ्रमहै अर्थ यह कि जैसे कोई पुरुष पूर्वदिशा को जाना चाहे और भूलकर पश्चिम दिशाकीओर चलाजावे तब यह बात निस्सन्देह है कि जितनाही शीघ्र वेगकर दौड़ताहै उतनाही अपने मार्ग से दूर होताहै सो इसको घोर भ्रम कहते हैं पर जब अपने मार्गसे बायें दाहिने होजावे तब इसकानाम गौण भ्रमहै २ बहुरि तीसरी अज्ञानताकानाम स्मरणहै सो इसका दृष्टान्त यह है कि जैसे कोईपुरुष तीर्थयात्राको चले और मार्गके संबंध निमित्त शुद्ध सोना साथ घरसे उठालेवे बहुरि मार्गमें तब किसी नगरमें उस धनका [illegible] तब वह सब खोटाही निकसे पर वह पुरुष आगे उसको खरा जानकर प्रसन्नहोताथा और जब उसको खोटे हो प्रसिद्ध जानता है तब पश्चात्ताप करने लगताहै और तीर्थयात्रा से अपूर्ण रहजाताहै साइसीपर महाराज ने कहाहै जिन पुरुषों ने इसलोक विषे जप तप आदिक [illegible] बहुत किये हैं पर हृदय उनका शुद्ध और निष्पाप नहीं हुआ सो जब परलोक विषे जाकर अपनी करतूतके फलसेरहित देखेंगे तब अत्यंत पश्चात्ताप करेंगे और परमहानि को प्राप्त होवेंगे सो इसकी हानिका दृष्टान्त यह है कि जिस पुरुष ने गुणकीकी क्रिया भी न की होवे और किसी मनकरके किया भी सोना कमा न लेवे बहुरि जब उसको फलोंका पश्चात्ताप न होवे तब ऐसाही पुरुष जोदर्श नेत्रि को पावते और अपने स्वरूप सम्बंधि निरंतर मर्यादाकी क्रियाका शौकना विषे और वैराग्य. सो जप तप विषे करके न प्राप्त होवे तब तिनकी उनोंकी गतिन विषे [illegible] बहुरि तबपु [illegible] भी [illegible] करोंके [illegible] [illegible] कि [illegible] [illegible] [illegible] और [illegible] [illegible] और [illegible] [illegible] है [illegible] [illegible] [illegible] है कि [illegible] [illegible] [illegible] पाताहै [illegible] [illegible] सो [illegible]

उपायभी जिज्ञासुको जानना चाहिये काहेसे कि प्रथम सीधे मार्गको जानना प्रमाणहै बहुरि पुरुषार्थसे उसी मार्गमें चलना चाहिये सो जिस पुरुषको पहिचान और पुरुषार्थ प्राप्तहुआहै तब उसको परमपद पहुँचने मे संशय कुछ नहीं रहता इसीपर एक महात्मा महाराजके आगे प्रार्थना करतेथे कि हे महाराज! प्रथम तो मुझको यथार्थके मार्गकी पहिचानदे बहुरि दयाकरके उसही कर्मका पुरुषार्थ दे २ ताते अब मैं इस सर्गविषे अजानताका उपाय वर्णनकरताहूं॥ अथ प्रकट करना उपाय प्रथम अजानता और मूर्खताका॥ ताते जानतू कि बहुत मनुष्य अजानता करकेही भगवत्से दूररहे हैं पर अजान उसको कहते हैं कि जिसको परलोकके सुख दुःखकी सुधि कुछ न होवे काहेसे कि जिसको परलोककी बूझ प्राप्त होती है तब वह ऐसे मार्ग विषे आलस्य नहीं करता इसकरके कि जब यह मनुष्य किसी वार्ता विषे हानि देखताहै तब दुःखको अंगीकार करके भी उससे दूर रहताहै पर परलोकके सुख दुःखकी जो बूझहै सो तिसको सन्तजनकी समझके प्रकाश करके देखताहै अथवा उनके वचनों करके जानसक्ताहै अथवा विद्यावानोंके वचन सुनकर भी इस जीवको भले बुरेकी पहिचानहोती है जैसे कोई पुरुष मार्गविषे सोताहोवे तब उसका उपाय यही है कि कोई जाग्रत् पुरुष उस को जगायदेवे तब अपने देशकोजाय पहुँचे सो जाग्रत् पुरुष सन्तजनहैं अथवा उनके वचनों के जाननेवाले विद्यावान् हैं इसीकारण से महाराज ने सन्तजनों को जगत्विषे भेजाहै कि जीवोंको अजानतारूपी निद्रासे सचेतकरावें और इस प्रकार जीवोंको सुनावें कि महाराजने सर्व जीवोंको नरक के किनारे पर स्थित कियाहै ताते जो पुरुष मन की वासनाके अनुसार स्थूल भोगोंकी ओर सन्मुख होवेगा तब वह निस्सन्देह नरकों विषे गिरपड़ेगा और जो पुरुष मनकी वासना से विपर्यय विचारेगा तब वह परम सुखको प्राप्त होवेगा ताते प्रसिद्ध हुआ कि यह स्थूल भोग नरकों विषे डालनेकी जंजीरहैं और परम सुखके मार्ग विषे कठिन घाटी है इसीपर महाराजने भी कहाहै कि मैंने स्वर्गको दुःखों के साथ लपेटरक्खाहै और नरकोंकी अग्निको मैंने इन्द्रियादिक भोगोंकेसाथ लपेटाहै पर जेते मनुष्य वनों और जंगलों और पर्वतों विषे रहनेवाले हैं सो सबही अजानताकी निद्रा विषे सोयेहुये हैं काहेसे कि उनविषे ऐसा विद्यावान्‌भी कोई नहीं होता जो उनको यथार्थ वस्तुकी समझावे इसीकारण उत्तम भक्तों ने मार्गविषे

चलनेकी। यत्नहीं नहीं करते तासे मनुष्योंको कहते हैं कि विषयासक्तों की संगति
से दूर रहनेवाले पुरुष ऐसेहैं जैसे ज्ञानवान। फिर सुन होवें बहुरि [illegible] [illegible]
शांति वचन वार्ता सुनानेहारे पंडित रहते हैं तौभी वे पंडित मतवाले। और सोभी
होते हैं सो तिनके वचन सुनकरभी अचेतता दूर नहीं होती कारण कि जो पुरुष
आपही योगनिद्रा विषे सोता होवे वह और किसीको क्योंकर जगावनेके बहुरि
ऐसे वियावान् तो ऐसे होते हैं कि यद्यपि वचन शास्त्रोंके कहते हैं तौभी जीवों
के कल्याणका उपदेश नहीं करते नानाप्रकारकी चतुराई और अर्थ सहित इति
हासोंका उच्चारण करते हैं अथवा ऐसे वचन कहते हैं कि इस मनुष्यको गृहस्थ
आश्रमही विशेष है अथवा भगवत्की दयाका वर्णन करके जीवोंका भय दूर कर
देते हैं सो ऐसे वचन सुननेहारे मनुष्योंकी अवस्था वा अज्ञान पुरुषोंसे भी नहीं रहो
जाती है तासे इसका दृष्टान्त यह है कि जैसे कोई मनुष्य सोते हुये पुरुषको जगा
करके ऐसा मद्यपान करावे कि जो उसको महाउन्मत्त करदेवे तासे उसकी निद्रा
महाघोर होजाती है कारण कि जब मद्यपान किये बिना सोता हुआथा तब कोई
ही वचनकर सचेत होता और मद्यपान करके ऐसा अचेत होताहै कि [illegible]
ढोलों [illegible] भी उसकी निद्रा नहीं खुलती। ऐसेही जब अज्ञान पुरुष ऐसी संगति
विषे बैठताहै तब उसका यही निश्चय दृढ होजाताहै कि हमारे पापोंका महा
राजको क्या स्मरण होवेगा और उसको [illegible] करना कब होसी है कारण
कि वह तो परम दयालु है ऐसे जानकर पापोंके करनेमें निडर होजाते हैं सो
इस प्रकारके उपदेश करनेहारे भी जीवोंके धर्मको नष्ट करते हैं कारण कि यह
दृष्टान्त है जैसे कोई अज्ञान वैद्य सन्निपातीको गरम् औषधि देवे तब वह रोगी
तत्काल मृत्यु होताहै ऐसेही भगवत्की कृपा और दयाका जो उपदेश है सो यह
भी इसप्रकारके मनुष्योंको कल्याण करता नहीं प्रत्युत वह जो अधिक पापों पर
निडर हुआहै। और जिसका [illegible] पापोंका त्याग न करे तब वहभी
भगवत्की दयाके वचन सुनकर निश्चिन्त [illegible] होता है और पापों में [illegible]
[illegible] [illegible] और इस मनुष्य [illegible] [illegible] जिसके
[illegible] अधिक [illegible] [illegible] [illegible]
[illegible] और [illegible] [illegible] [illegible]
[illegible] [illegible] [illegible] मनुष्यको [illegible] वचन सुनाने

ऐसे है जैसे कोई पुरुषके कटेहुये अङ्गपर लोन लगावै तब अवश्यही पीड़ा अधिक होती है इसीकारणसे कहाहै कि आत्मज्ञान के उपदेश करनेहारे पण्डित और महाराजकी दया सुनानेहारे विद्यावान् विषयी जीवोंको अधिक नष्टकर डालते हैं और जीवोंका धर्म्म नष्ट करते हैं पर जिस उपदेश करनेहारेका वचन धर्म्मकी मर्य्यादके अनुसार होवै और उसकी करतूति वचनों से विपर्य्यय होवै तिसके उपदेश करके भी जीवोंकी अचेतता दूर नहीं होती सो इसका दृष्टान्त यह है जैसे कोई पुरुष मिठाईका थाल आगे रखकर भोजन करताजावै और मुखसे इसप्रकार कहै कि इस मिठाई विषे हलाहल विषहै ताते इस भोजनकी अभिलाष न करो तब उसका वचन सुनकर लोगोंकी तृष्णा दूर नहीं होती काहेसे कि प्रथम तो उसको रुचि सहित भोजन करते देखते हैं बहुरि ऐसे जानते हैं कि यह पुरुष अपनेही खानेके निमित्त हमको विषकरके सुनाताहै तैसेही तृष्णावान् पण्डितके वचन सुनकर जीवों के हृदयसे मायाकी प्रीति दूर नहीं होती पर जिस विद्यावान्का वचन और करतूति एक समानहोवै तिसके उपदेश करके निस्सन्देह अचेतताकी नींदसे जीव सचेत होते हैं ताते जब ऐसे मनुष्यका ऐश्वर्य्य जगत् विषे प्रसिद्ध होवै तब सब किसी को लाभदायक होताहै तात्पर्य्य यह कि यह सबही मनुष्य मूढताकी निद्रा विषे सोतेहुये हैं और सहस्रों पुरुषों विषे कोई एकही जागताहै जो परलोककी भलाई बुराईको भली प्रकार पहिंचाने पर यह अज्ञानतारूपी रोग ऐसा कठिनहै कि जो आपकरके इसका उपाय नहीं होसक्ता काहेसे कि अचेत पुरुष तो अपनी अज्ञानताही को नहीं जानता ताते उसका उपाय कैसे करसके इसी कारण से कहाहै कि अज्ञानी जीवोंका उपाय ज्ञानी पुरुषों की दयाकरके होता है जैसे बालकको प्रथम माता पिता और धाया सचेत करते हैं तैसेही अचेत मनुष्य विद्यावानों के उपदेश करके सचेत होते हैं पर इस समय विषे जो वैराग्यवान् विद्यावान् दुर्लभ पाये जाते हैं ताते अज्ञानतारूपी रोगने सर्व जगत्को घेरलियाहै और यद्यपि कोई मनुष्य परलोककी वार्त्ता मुख से कहताहै तौभी उसके हृदयविषे भय और त्रास कुछ नहीं होती सो भयसे रहित कहनेकरके कुछ विशेषता नहीं प्राप्त होती ॥ और [illegible] भ्रमका और उपाय भ्रमके दूर करनेका ॥ ताते जान तू कि [illegible] मनुष्यों ने भ्रम [illegible] औरका औरही निश्चय करलियाहै इसीकारणसे [illegible] मार्गसे दूरहै और

विपरीत निश्चयही उनको पतन हुआहै सो यद्यपि ऐसे मत और पक्ष भी अनेक हैं परंतु मैं पारसभाग में अधिक वर्णन करताहूं तब उनके अनुसार औरभी समझे जांयगे प्रथम प्रकार निश्चय यहहै कि कोई पुरुष परलोकको ही नहीं मानते और इसप्रकार कहते हैं जब यह मनुष्य मृत्यु होताहै तब मूलही से नष्ट होजाताहै जैसे पृथ्वी पर घास सूखजाती है अथवा जैसे दीपक बुझजाताहै ऐसे जानकर उन्होंने धर्म और वैराग्यको डालदियाहै और सुखेन जीवने कोही [illegible] करते हैं बहुरि वह ऐसे जानते हैं कि आचार्यों लोगोंकी मर्यादा [illegible] के निमित्त परलोक का भय वर्णन कियाहै अथवा उन्होंने अपनेमानके निमित्त जीवोंको त्रास दियाहै ताते प्रसिद्ध इसप्रकार कहते हैं कि नरकोंका भय मनुष्यों को ऐसे कहाहै जैसे माता पिता बालकको डांटते हैं कि जब तू विद्या न पढ़ेगा तब तुझको [illegible] डालदेंगे पर जब भाग्यहीन [illegible] को विचारके देखें तोभी विशेष है कि जब यह बालक विद्या से रहित होकर मूर्ख होवेगा तब वह मूर्खता [illegible] तैसेही बुद्धिमान न इसप्रकार समझा है कि भगवत्के वियोगका [illegible] परलोकों में भी अधिक दुःख प्राप्त है सो भगवत् का वियोग वासना के अधिक कारण होताहै ताते यह [illegible] बहुत मनुष्यों के चित्त विषे दृढ़ होगये हैं इस कारण करके यद्यपि पण्डितों परलोकका [illegible] नहीं करते तोभी उनको [illegible] विषे परलोकका न मानना पुष्ट होजाताहै परंतु [illegible] के कारणों विषे आगेही उत्पन्न होते हैं और बहुतों को भी [illegible] है पर जब उनके हृदय विषे परलोक की प्रतीति दृढ़ होती तब वासना के आधीन होकर पापों विषे न [illegible] सो परलोक के [illegible] मार्ग भी तीन कहे हैं प्रथम तो उत्तम मार्ग यह है कि जो महापुरुष अपने अनुभव की दृष्टि करके नरक स्वर्ग और [illegible] अवस्था प्रत्यक्ष देखते हैं और यद्यपि यह [illegible] इन्द्रियादिक व्यवहार विषे [illegible] तोभी इनका हृदय [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

परलोकके जानने का यहहै कि युक्ति सहित मनुष्यका यथार्थ स्वरूप पहिचाने और एसे जाने कि यह जीवात्मा क्या वस्तु है तब इसप्रकार समझावे कि यह चैतन्यरूप अविनाशी है और शरीर इसका घोड़ाहै ताते शरीरके नाश होने करके जीवका नाश नहीं होता सो यह मार्ग भी अति दुर्लभहै और कठिनहै पर यह मार्ग भी यथार्थ विद्याकी प्रतीति करके प्राप्त होताहै २ बहुरि तीसरा मार्ग यहहै कि सन्तजनों और विद्यावानों की सगति करके भी इस बूझका प्रकाश प्राप्त होताहै सो यह सर्व जीवों का अधिकारहै पर जो पुरुष पूर्ण सद्गुरु और वैराग्य सयुक्त विद्यावानों की सगतिसे दूर हुआ है तब वह भी निस्सन्देह मन्दभागी रहता है और सन्त सगति करके जो परलोक की बूझ प्राप्त होतीहै सो इसका दृष्टान्त यहहै जैसे बालक अपने माता पिताको प्रकट देखे कि जब अचानकही सर्पको देखते हैं तब भयवान् होकर भागजाते हैं सो केतेबार ऐसे देखने करके वह बालक भी सर्पसे डरने लगताहै और यद्यपि बूझकरके सर्प के विष को नहीं जानता तौभी स्वाभाविकही सर्प को देखकर भाग जाता है ताते सन्तजनों का देखना ऐसाहै जैसे कोई पुरुष देखे कि अमुक पुरुषको सर्पने डसाथा ताते वह शीघ्रही मृतक होगया सो यह परम निश्चयहै बहुरि विद्यावानों का देखना ऐसे है जैसे कोई पुरुष वैद्यक की युक्तिकरके सर्प के विषका स्वभाव पहिचाने और मनुष्य के शरीरकी कोमलताई को भी भलीप्रकार समझे कि इसके शरीर विषे इसप्रकार सर्पका विष प्रवेश करजाताहै तब इसकरके भी सर्प के डसनेका दुःख प्रत्यक्ष जानाजाताहै सो यह मध्यम निश्चय कहाताहै बहुरि सन्तजनोंकी सगति विषे जो परलोकका भयउत्पन्न होताहै सो यह माता पिता की सगति के समानहै जो देखने करके बालक को सर्प से डर उपजता है और यह सर्व जीवोंका उत्तम अधिकारहै पर यह कनिष्ठ निश्चयहै ३। १ बहुरि दूसरे प्रामिक बुद्धि ऐसे होते हैं कि यद्यपि परलोक की प्रतीति से केवल रहित नहीं होते और प्रसिद्ध ननकार भी नहीं करते पर इसप्रकार कहते हैं कि परलोककी वार्ता को भली प्रकार समझा नहीं जाता ताते इस ससार के सुख प्रत्यक्ष और परलोक का सुख सशय विषे है सो प्रकट सुख जो ससार के हैं सो निश्चित त्यागा नहीं जाता पर यह उनका मनन केवल मूर्खता का मतहै और भूल की कहते हैं कहिये कि मतिमानों की दृष्टि विषे परलोक अति प्रकट है और इस

संसार के सुख दुःख सम्पूर्ण नहीं ताते उनको इसप्रकार समझना योग्य है कि जैसे शास्त्रों विषे अल्प करके भी सुख का त्यागना विशेष होता है और दुःखको अंगीकार करते हैं जैसे ओषधि का कटुक रस विषे होता है पर उस सुख की आशा करके सहते हैं कटु ओषधि को खाते हैं अथवा जैसे धनका नाश समय विषे होता है पर ऐसे पुरुष लाभकी आशा के निमित्त समुद्रों और पर्वतों विषे फिरते हैं और दीर्घ दुःखों को सहते हैं अथवा जब तुझको क्षुधा व्याप्त होवे और कोई पुरुष ऐसे कहे कि इस अन्न विषे सर्पने मुख डालदिया है तब अन्न का स्वाद तो अल्प है और सर्प का विष अल्प विषे होता है ताते तू उस अन्नको किस निमित्त त्याग देता है सो इसका प्रयोजन यह है कि यद्यपि अन्नका स्वाद अल्प है पर उसका त्यागना दुर्लभ है और यद्यपि सर्प का विष अल्प विषे है तौभी उसका दुःख अति दीर्घ है इसी कारण से अल्प करके भी सहज पदार्थ का त्यागना सुगम होता है तैसेही इस संसार के सुख थोड़े दिन के हैं और जब बीत जाते हैं तब स्वप्नवत भासते हैं और परलोक का सुख दुःख अविनाशी है ताते सदैव के दुःखने हारकर संसार सुखों का त्यागना विशेष नहीं और जो तेरे बुद्धिके अनुसार परलोक का सुख दुःख सत्य भासता है तौभी तुझको इसप्रकार समझना चाहिये जैसे तू आदि अन्त इस संसार विषे न था और न होवेगा तैसे मध्य विषे भी आप को न हुआ जान और परलोक का दुःख जब तू यथार्थ जानता है तब तो वैराग्य करके ऐसे पावहु जैसे निस्सन्देह सुख होवेगा और बहुरि जो अविवेकी बुद्धि ऐसे हैं कि यह यद्यपि परलोक को सत्य जानते हैं तौभी इसप्रकार कहते हैं कि संसार का सुख नकद है अबही और परलोक का सुख दुःख उधारही नाईं है ताते नकद पदार्थ उधार से विशेष होता है पर यह मूर्ख इतना नहीं जानते कि उधार से नकद की विशेषता तबही होती है जब दोनों की मर्यादा एक समान होवे और जब समान न होवे तब तो उधारही भला होता है काहे से कि व्यवहार का देना लेना इसी प्रकार से सिद्ध होता है पर जो पुरुष व्यवहारों को भी न समझ सके तब यह केवल अविवेक बुद्धि कहाता है और बहुरि जो अविवेक बुद्धि होते हैं सो परलोक के सुख दुःख को यथार्थ मानते हैं परंतु सुखों की मर्यादा को [illegible] अतिही समझ होते हैं और उनके निमित्त इसप्रकार अनुमान करते हैं कि जैसे भगवत् ने इसको यहां [illegible] सुख दिये हैं

लोक विपे भी ताडना न करेगा काहेसे कि वह महाराज परम दयालुहै और उसने हमको अधिक प्यारा जानाहै ऐसे जानकर ढीठ और निडर होजाते हैं ताते उनको इसप्रकार समझाया चाहिये है कि जैसे किसीपुरुषको पुत्र अति प्रियतम होवे और एक उसका दास होवे और वह पुरुष अपने पुत्रको सर्वदा पाधाकी ताड़ना विपे रखता होवे और टहलुवेको कुछ कहैही नहीं बहुरि वह टहलुवा ऐसे अनुमानकरे कि मुझको स्वामी पुत्रसेभी अधिकप्यारा जानताहै इसकरके कि मुझको कुछ कहताही नहीं और पुत्र को सदैव ताडना विपे रखता है सो ऐसे उसका जानना मूर्खताहै काहेसे कि पुत्रको भीनिमयुक्त शुभगुण सिखाया चाहताहै और टहलुवेकी ओर चित्तही नहीं देता तैसेही भगवत्‌भी अपने प्रियतमों को मायाके भोगोंमे विरक्त रखताहै और मनमुखों को अधिक भोग भोगाताहै ताते आमिकबुद्धि जो वैराग्यादिक साधनोंसे आलसी होताहै सो ऐसाहै जैसे कोई पुरुष बीजही न बोवे तब उसकी खेती क्योंकर सफल होवेगी तैसे ही जो पुरुष इन्द्रियादिक भोगोंका त्याग न करे तब परमानन्दको कैसे प्राप्त होवेगा ५ बहुरि पांचवें आमिकबुद्धि ऐसे कहते हैं कि भगवत् सर्वजीवोंपर परम दयालुहै और उस विपे कृपणता का अंशही पाया नहीं जाता ताते अपने सुखको कब दुरायरखताहै और हमारे कर्मोंकी ओर कब देखताहै पर यह मूर्ख ऐसे नहीं जानते कि यहराजुष्य पृथ्वी विपे एकदाना बोवताहै और उससे सहस्रदाने उत्पन्न होते हैं सो जिस महाराजने ऐसे संयोग तुझको बनादिये हैं तब इससे अधिक कृपा क्याहै तैसही कुछदिन साधन करके इसजीवको अविनाशी पदकी प्राप्ति होतीहै सो यही भगवत् की परम कृपाहै और जब कृपाका अर्थ यह है कि बोये विनाही खेती वृद्धिहोजावे तब नानाप्रकारके उद्यम और व्यवहार किसनिमित्त करताहै ताते चाहिये कि तू केवल निश्चयहो बैठे काहेसे कि महाराज तो परम कृपालुहै तेरे उद्यम विनाही तुझको लाभ देवेगा और महाराज ने तो ऐसे भी कहाहै कि सर्वजीवोंका प्रतिपालक मैं हूं सो जब यह प्रतीति तेरे हृदयविपे दृढ़ नहीं तब शुभकर्मों विपे क्यों आलस्य करताहै काहेसे कि साधन विना सिद्धि की चाहना ऐसे है जैसे कोई गृहस्थ विना भनानर्की उत्पत्ति चाहै तो यह बड़ी मूर्खताहै और भगवत्‌को कृपालु जानने का अर्थ यह है कि प्रथम विधि संयुक्त उद्यम करे बहुरि विनाशी रक्षाके निमित्त भगवत्‌का भरोसा करे तब उसको

शुभकर्म करते हैं और जो पुरुष भगवत्‌का भजन नहीं करता सुमार्गमें विघ्न होवे तब वह निश्चय है प्रीतिकी दृष्टि है पर कई मनुष्य मायाके पदार्थोंको देखकर प्रीतिवान होते हैं तिन पुरुषोंने मगतृष्णा रूपाके भ्रमको भ्रम करके उलटा पहिचानाहै सो महाअज्ञान होते। भगवान्‌ने भ्रमसे वर्णन किया है और इसप्रकार भगवान् कहाहै कि जब कोई शुभ कर्म किया करेगा तो उत्तमपद को प्राप्त होवेगा और जो पुरुष अशुभकर्म करेगा सो दुःखी फलको पावेगा ताते सुचेत होकर इसबातको श्रवण करो और किसी वस्तु को देखकर प्रीतिवान् न होवो और संसारके आश्रय अशुभ कर्म न करो॥ अथ मनुष्य कर्मों का और उपाय कर्मों से रहित होने का॥ ताते जान तू कि बहुत पुरुष कर्मों की शुद्धता और अशुद्धता का भलीप्रकार नहीं पहिचानते इसी कारण से अपने कर्मोंको निश्चिन्त जानकर बेपरवाह होते हैं और विघ्नोंसे निर्भय रहतेहैं सो तिनको महाहृदा कहाजाताहै ताते कि उनको विवेकरूपी प्रकाश प्राप्त नहीं हुई ताते कर्मोंकी न्यूनता वा अधिकता कछु नहीं पहिचानते और कोई ऐसे पुरुष हैं कि कोई एक पुरुष बड़े पापोंविषे निश्चिन्त रहता है सो ऐसे कर्मों और मनकी स्थिति भी गिनती विषे नहीं आती पर मोही भ्रान्ति लोग चारप्रकार के होते हैं विद्यावान् १ तपस्वी २ अनीतज्ञान ३ धनवान ४ सो प्रथम जो विद्यावान् इस प्रकार भूलेहुये हैं कि वह अपनी सर्व आयुर्दा विद्याके पढ़ने विषेही बितावते हैं और सब इन्द्रियों को पापोंसे रोक नहीं सके और अपने निश्चयविषे ऐसा अनुमान करते हैं कि हम इस विद्याही करके परलोक के दुःखोंसे मुक्त होवेंगे और हमारी पूजनता पावेंगे और लोग भी इसमें मोहित सो इनका दृष्टान्त ऐसे है जैसे कोई पुरुष रोगी वा अतिशय रोग करके अन्नपान करने वाला और जो औषधों को भलीप्रकार विचार करके तिनके वा औषधों को नहीं जानकर अंगीकार न करी तब औषधों के लिखने और विचार करने करके उसका रोग क्या दूर होताहै इसीवास्ते भगवान्‌ने कहाहै कि भला मनको साधनाहै अर्थात् धर्म ताते कारणको भी छालके जो मन और इन्द्रियोंको विकारसे शुद्ध करे तौ क्या नहीं कहा कि विद्या के बड़ाई के विषे विद्या पढ़नेवाले सभी इस लोक मो जब पर दुःख विषे तारोंको तिनका दुःख कुरक पदारथ देखिके सब छाने हैं विचारके और वा जो यह ताते विचारा और न गम ने देखा

रहित पण्डितों को गर्दभ की भाँति कहा है इस करके कि यद्यपि पुस्तकों का भार अपनी पीठपर लिये फिरता है पर उनके तात्पर्य से अचेत है और योंभी कहाहै कि करतूतिहीन विद्यावान् निस्सन्देह नरकोंकी अग्नि विषे जलेंगे बहुरि इस प्रकार कहेंगे कि हमने लोगोंको धर्म्मका उपदेश किया है और आप उन धर्म्मों से विमुख रहेहैं ताते इसी नीचगति को प्राप्तहुये हैं इसीपर एक सन्त ने कहाहै कि अज्ञान पुरुषको परलोक विषे एकगुणा पश्चात्ताप होगा और करतूतिहीन विद्यावानों को उनसे दशगुणा पश्चात्ताप होवेगा काहे से कि यह तो जानबूझकर विमुख हुये हैं बहुरि एक और विद्यावान् ऐसे होते हैं कि यद्यपि स्थूल नियम धर्म्म विधिसंयुक्त करते हैं पर अपने हृदयसे मलिन स्वभावों को दूर नहीं करते और सर्वदा दम्भ ईर्षा मानकी अभिलाष विषे आसक्त हैं सो ऐसे वचनोंको नहीं विचारते कि जैसे कहाहै कि जिनके अंतर रंचकमात्र दम्भ और अभिमान होताहै वह परमसुखको कदाचित् नहीं प्राप्तहोता और ईर्षारूपी अग्नि इस जीवके धर्मको घासकी नाईं जलादेती है और महाराजने इसप्रकार भी कहाहै कि मैं सदैव तुम्हारे हृदय की ओर देखताहूं और स्थूल करतूतों की ओर नहीं देखता तातें ऐसे विद्यावानों का दृष्टान्त यहहै जैसे कोई पुरुष काटों के वृक्षको मूलही से नष्ट न करे और उसके पत्रों को तोड़तारहै तब वह काटे कभी दूर नहीं होते तैसेही मलिन कर्मोंका बीज बुरे स्वभावहैं ताते इनको हृदय से निर्मूल किया चाहिये और जिसका अन्तर अशुद्ध होवे और बाहरसे आप को शुद्ध कर दिखावे तब वह ऐसे होताहै जैसे कोई पुरुष मन्दिरके ऊपर दीपक जगायराखे और भीतर उस घरके अँधेरारहै बहुरि एक और विद्यावान् ऐसे होतेहैं कि यद्यपि उन्होंने हृदय की शुद्धताको भली प्रकार समझाहै पर अभि मानके छलकरके आपको पापों से रहित जानते हैं अथवा इसप्रकार अनुमान कर लेते हैं कि हमारा मान सद्धर्म की दृढ़ता का कारण है काहेसे कि हमारी बड़ाई देखकर धर्म्महीन मनुष्य लज्जावान् होते हैं और अभिमानोंकी सिद्धि धर्म विषे होतीहै ताते अपने रजोगुणी स्वभावको गजभी नहीं जानते पर यह मूर्ख ऐसे विपरीत बुद्धि हैं कि इन्होंने सन्तजनों के वैराग्य और नम्रता का विस्मरण किया और इतना नहीं समझते कि उनके वैराग्य करके धर्म की प्रसिद्धि होती थी ऐसही ईर्षा और दम्भको भी इसप्रकार मानते हैं कि हमारे दम्भ करके मा

बुद्धिमान् कहते हैं और जो पुरुष भगवत् पर प्रतीति ही न करे अथवा शुभकर्मों विषे दृढ़ न होवे तब वह निस्सन्देह आमिकबुद्धि है पर कैसे मनुष्य मायाके पदार्थोंको देखकर आमिकविष हुये हैं व ऐसे पुरुषोंने भगवत्की कृपाके अर्थको भ्रम करके उलटा पहिंचानाहै सो महाराजने दोनों प्रकारके भ्रमसे वर्णितकिया है और इसप्रकार आज्ञाकरी है कि जब कोई शुभ करतूति करेगा सो उत्तमफल को प्राप्तहोवेगा और जो पुरुष अशुभकर्म करेगा सो बुरेही फलको पावेगा ताते सुचेत होकर इसवार्त्ताको श्रवणकरो और किसीपदार्थ को देखकर आमिकबुद्धि न होवो और मेरीदयाके आश्रय अशुभ कर्म न करो॥ अब प्रकट करना छलों का और उपाय छलों से रहित होने का॥ तातें जान तू कि बहुत पुरुष कर्मों की शुद्धता और अशुद्धता को भली प्रकार नहीं पहिंचानते इसी कारण से अपने कर्मको निर्विघ्न जानकर हर्षवान् होते हैं और विघ्नोंमें निर्भय रहते हैं सो तिसको छलाहुआ कहाजाताहै कोहेसे कि उनको विवेकरूपी भराकी प्राप्त नहीं हुई ताते कर्मोंकी स्थूलता पर चलेगये हैं बहुरि यह छल भी ऐसे अगिन है कि कोई एक पुरुष सद्धर्मों विषे निर्विघ्न रहता है सो ऐसे पंथों और मतोंकी गिनती भी गिनती विषे नहीं आती पर तौभी सबही लोग चारप्रकार के होते हैं विद्यावान् १ तपस्वी २ अनीतजन ३ धनवान् ४ सो प्रथम तो विद्यावान् इस प्रकार छलेहुये हैं कि वह अपनी सर्व आयुष् विद्याके पढ़ने विषेही बितावते हैं और सब इन्द्रियों को पापोंसे रोक नहीं सके और अपने चित्तविषे ऐसा अनुमान करते हैं कि हम इस विद्याही करके परलोक के दुःखों से मुक्त होवेंगे और हमारी प्रसन्नता पायकर और लोग भी दुःखसे छूटेंगे सो इनका दृष्टान्त यह है जैसे कोई पुरुष रोगी रात्रि दिन वैद्यक का अभ्यास करे रोगों और औषधियों को भली प्रकार विचार करके लिखलेवे पर औषधियों को कड़वी जानकर अंगीकार न करे तब औषधियों के लिखलेने और विचार करने करके उसका रोग कब दूर होताहै इसीपर महाराज ने कहा है कि अपना मनको वासनासे पवित्र करो ताते परमसुखको सोई पाताहै जो मन और इन्द्रियों को विकार से शुद्ध करै पर ऐसे तो नहीं कहा कि विकारों से शुद्ध होने की विद्या पढ़नेवाले सुखी होवेंगे सो जब यह पुरुष विद्यावानोंकी निरसता सुनकर प्रसन्न होताहै तब इन्द्रियहीन विद्यावानों की नीचता को क्यों नहीं विचारता जैसे महाराज ने वेदक

रहित पण्डितों को गर्दभ की भाँति कहा है इस करके कि यद्यपि पुस्तकों का भार अपनी पीठपर लिये फिरता है पर उनके तात्पर्य से अचेत है और योगी कहाहै कि करतूतिहीन विद्यावान् निस्सन्देह नरकोंकी अग्नि विषे जलेंगे बहुरि इस प्रकार कहेंगे कि हमने लोगोंको धर्म्मका उपदेश किया है और आप उन कर्म्मों से विमुख रहेहैं ताते इसी नीचगति को प्राप्तहुये हैं इसीपर एक सन्त ने कहाहै कि अजान पुरुषको परलोक विषे एकगुणा पश्चात्ताप होगा और करतूतिहीन विद्यावानों को उनसे दशगुणा पश्चात्ताप होवैगा काहे से कि यह तो जानबूझकर विमुख हुये हैं बहुरि एक और विद्यावान् ऐसे होते हैं कि यद्यपि स्थूल नियम धर्म्म विधिसंयुक्त करते हैं पर अपने हृदयमें मलिन स्वभावों को दूर नहीं करते और सर्वदा दम्भ ईर्षा मानकी अभिलाष विषे आसक्त हैं सो ऐसे वचनोंको नहीं विचारते कि जैसे कहाहै कि जिनके अन्तर रञ्चकमात्र दम्भ और अभिमान होताहै वह परमसुखको कदाचित् नहीं प्राप्तहोता और ईर्षारूपी अग्नि इस जीवके धर्मको घासकी नाईं जलादेती है और महाराजने इसप्रकार भी कहाहै कि मैं सदैव तुम्हारे हृदय की ओर देखताहूं और स्थूल करतूतों की ओर नहीं देखता ताते ऐसे विद्यावानों का दृष्टान्त यहहै जैसे कोई पुरुष काँटों के वृक्षको मूलही से नष्ट न करे और उसके पत्रों को तोड़तारहे तब वह काँटे कभी दूर नहीं होते तैसेही मलिन कर्मोंका बीज बुरे स्वभावहैं ताते इनको हृदय से निर्मूल किया चाहिये और जिसका अन्तर अशुद्ध होवे और बाहरसे आप को शुद्धकर दिखावे तब वह ऐसे होताहै जैसे कोई पुरुष मन्दिरके ऊपर दीपक जगायराखे और भीतर उस घरके अँधेराहै बहुरि एक और विद्यावान् ऐसे होतेहैं कि यद्यपि उन्होंने हृदय की शुद्धताको भली प्रकार समझाहै पर अभि मानके छलकरके आपको पापों से रहित जानते हैं अथवा इसप्रकार अनुमान कर लेते हैं कि हमारा मान सद्धर्म की दृढ़ता का कारण है काहेसे कि हमारी बड़ाई देखकर धर्म्महीन मनुष्य लज्जावान् होते हैं और अभिमानोंकी ओर धर्म विषे दृढ़ीहै ताते अपने रजोगुणी स्वभावको शत्रुभी नहीं जानते पर यह मूर्ख ऐसे विपरीत दृष्टि हैं कि इन्होंने सन्तजनों के वैराग्य और संयम को विस्मरण किया और इतना नहीं समझते कि उनके वैराग्य करके धर्म की पुष्टि होती थी ऐसेही ईर्षा और दम्भको भी इसप्रकार मानलेते हैं कि हमारे दम्भ करके मा

त्रिशरी कर्मोविषे जीवोंकी रुचि अधिक होतीहै बहुरि जब राजसभाविषे जाते हैं तब ऐसे जानते हैं कि हमारी संगति करके इनका भला होताहै पर जब यथार्थ विचारकरके देखें तब ऐसे जानें कि मायामें विरक्त होनाही धर्मकी वृद्धिताहै सो जिसके राजसीस्वभावको देखकर और जीवोंका चित्त चपलहोवे तब जानिये कि ऐसे पुरुषका न होनाही धर्मकी वृद्धिताहै, और इनकी संगतिकरके उलटी धर्मकी हानि होती है इसीकारणसे ऐसे जाननेहारे विद्यावान् मंत्री बनेहुये होतेहैं बहुरि एक ऐसे विद्यावान्‌हैं जो निवृत्ति विद्याहीसे अभ्यासरहे हैं जिस विद्याविषे वैराग्य और निष्कामताका और भगवत्‌का पहिचानना और अपना पहिचानना और धर्ममार्ग के विघ्नोंका पहिचानना वर्णन होताहै सो तिसको पढ़तेही नहीं और अपनी सर्व आयुष पर्यों के विवाद और चतुराईकी विद्या विषे व्यर्थ खोते हैं और इतना नहीं जानते कि विद्याका तात्पर्य यहहै कि मायासे विरक्त होना और तृष्णाको त्यागकर संतोष करना और दम्भ को छोड़कर निष्काम होना बहुरि अचेतनता को दूर करके भय और वैराग्य विषे स्थित होना पर जो पुरुष ऐसे वचनोंको नहीं विचारते और चतुराईके सन्मुख हुये हैं सो सबही महामूर्ख हैं बहुरि केते विद्यावान् धर्मशास्त्र और राजनीतिके व्यवहारको पढ़ते रहते हैं और इतना नहीं समझते कि यह विद्या तो जगत् की मर्यादा ठहरावनेहारी है और परलोक मार्गकी विद्याही भिन्नहै काहेसे कि जितने धर्मशास्त्रकी मर्याद अनुसार जगत् विषे निर्दोषहै सो संतजनों के मत विषे पापहैं बहुरि यह प्रवृत्ति पण्डित जो पाप पुण्यका बखान करतेहारे हैं सो यह कर्मों की स्थूलता को देखते हैं और संतजन हृदयकी ओर देखते हैं जैसे कोई पुरुष किसीसे कुछ मांगलेवे तब जगत्‌विषे इसको पाप नहीं कहते पर जब विचारकरके देखिये तब यह मांगलेनाभी ऐसे होताहै जैसे कोई अनीति करके किसीको लाठीमारे और धन हरलेवे तैसेही मांगना भी लज्जारूपी लाठीके मारनेकी नाईं है इसी प्रकार स्थूल विद्या पढ़नेहारे पुरुष ऐसे सूक्ष्मभेदोंको कब समझतेहैं ताते इनका सम्पूर्ण करना अधिक विस्तार होताहै बहुरि तपसी इसप्रकार छलेहुये हैं कि यह शरीरकी शुद्धताके निमित्त भजन से विमुख रहते हैं और जब किसीको स्थूल शुद्धतामें हीन देखते हैं तब ग्लानिकरके कठोर वचन कहते हैं और मनुष्यनी-निकासे नहीं त्यागमत है सो यहभी महामूर्खता है और यद्यपि आपको पवित्र

फर दिखावते हैं तोभी संतजनोंके मत विषे महाभ्रष्ट हैं इसीपर उमरसन्त ने कहाहै कि मैंने केतिकुबार अशुद्ध आहारके भय करके शुद्ध जीविका को भी त्याग कियाहै तात्पर्य यह कि सतजनोंने जीविकाकी शुद्धता विषे अधिक यत्नकिया है और स्नानादिक क्रिया विषे आसक्त नहीं हुये सो इन मूर्खों ने उनके आचार को विस्मरण कियाहै और शरीरही की शुचिता विषे यथवान् हुये हैं ताते जो पुरुष अपनी जीविका शुद्ध न करे और स्थूल पवित्रता विषे दृढ़हैं तब निस्सं-देह उसको झूठा जानिये बहुरि एक और तपस्वी ऐसे पाठक होते हैं कि उनके चित्तकी वृत्ति सर्वथा अक्षरों के विषे आसक्त रहती है और लगमातोंकोही सु-धारते रहते हैं पर इस बातों को नहीं जानते कि वचनों के पाठ विषे और उनके अर्थोंमें चित्तको एकत्र किया चाहिये है बहुरि एक ऐसे पाठक होते हैं कि उन की मनसा अधिक पाठकरने की होती है और अर्थ से अचेत रहते हैं सो ऐसे नहीं समझते कि पढ़ने का तात्पर्य भले बुरे की पहिचान है ताते चाहिये कि भयके वचनों विषे भयवान् होजावें और महाराज की दयाके वचनों विषे आ-शावन्तहोवें और उसकी बड़ाई के बखान विषे अधीन चित्त होजावें तब इस का पाठकरना सफल होताहै पर यह मूर्ख रसनाके हलावनेही को पुरुषार्थ जा-नते हैं सो अर्थ की पहिचान बिना ऐसे पाठ विषे लाभ कुछ नहीं होता जैसे कोई पुरुष अपने स्वामीकी पत्रीको बारबार पढ़ताहै और उस विषे जो कार्य लिखा होवे सो कुछ न करे तब निस्सन्देह दण्डका अधिकारी होता है बहुरि केते मनुष्य व्रत और तीर्थों के अटन विषे अधिक पुरुषार्थ करते हैं और इन्द्रियों को पापकर्मों से वर्जित नहीं करते और वह सर्वदा आप को पुजावने की मनसा रखते हैं बहुरि एक ऐसे तपस्वी होते हैं जो खान पान और वस्त्रादिकों का संयम करते हैं पर मानके रसका त्याग नहीं करसके और लोगों के मिलाप विषे प्रसन्नहोते हैं सो इस भेद को नहीं पहिचानते कि मनका विघ्न सबलोगों से अधिक दुःखदायक होताहै पर मानी मनुष्य तो अपनी बड़ाई के निमित्त सर्व-दा अधिक यत्न करते हैं और यद्यपि स्थूल नियम धर्म विषे अधिक सावधान हैं पर हृदय की शुद्धता को पहिचानतेही नहीं ताते अभिमान और ईर्षा और दम्भ विषे आसक्त रहते हैं और महाराजके जीवोंसे ईर्षा करते रहते हैं और लोगों से युद्ध बुद्धी बड़ी रखते हैं सो इतना नहीं जानते कि क्रोध स्वभाव का

के संगमही शुभकर्मों का नाश होजाताहै और सर्व तपोंका फल फोगलताई है पर यह भाग्यहीन तो अपने जप तपका उपकार लोगोंपर रखते हैं और ग्लानि करके आपको लोगोंसे सकुचाय रखते हैं पर जब यह पुरुष महापुरुषके वैराग्य और कोमलताई को भलीप्रकार पहिंचानें तब इनका अभिमान निवृत्त होजावै सो वह तो कुचील पुरुष से भी ग्लानि नहीं करतेथे और सर्व जीवोंपर दयाकी दृष्टिसे देखते थे सो उनके स्वभावसे विपर्यय होनाही भाग्यकी हीनता है और सर्व छलों का रूप है बहुरि अतीतजनों को इस प्रकार छलाहुआ कहा है कि सब लोगों से इनमें अधिक अभिमान होताहै काहे से कि जितनीही किसी पदार्थकी विशेषता होती है तब उसकी पहिंचाननाभी उतनाही कठिन होताहै और जो पुरुष उसकी पहिंचानमें अचेतहै वह निस्सन्देह छलाजाताहै ताते प-रमार्थ के मार्गविषे उत्तम अतीत उसीको कहते हैं जिसमें तीन लक्षण पायेजावें सो प्रथम लक्षण यहहै कि जिसने अपने मनको जीताहै बहुरि मन और भोगों के रसमें निरसहुआ है और विचारकी मर्यादा बिना किसी स्वभावकी प्रबलता नहीं करती जैसे कोई राजा अपने शत्रुको जीतकर वशीकार करलेवै तब उस शत्रुकी प्रजा और सेनाभी उसी राजाके आधीन होजाती है बहुरि दूसरा लक्षण यहहै कि जिनके मनमें लोक परलोक की चितवनी दूर होजावे अर्थ यह कि इन्द्रिय और सङ्कल्पके देशसे उल्लंघित होकर परमपदविषे स्थितहोवे काहेसे कि जितने पदार्थ इन्द्रिय और सङ्कल्प करके सिद्ध होते हैं सो तिनमें पशुभी इनके समानहैं और यह स्थूलपदार्थ इन्द्रियोंके भोगोंका नाशहै सो स्वर्गविषे भी यही स्थूल भोग पाये जाते हैं इसकरके कि स्वर्गभी इन्द्रियों और सङ्कल्पका देशहै ताते उत्तम अतीत वहीहै जिसके चित्तविषे इन्द्रियों और सङ्कल्पके ग्राह्य पदा-र्थोंकी सत्ता न रहै जैसे अमृतपान करनेहारे को पामरका स्वादु कुछ नहीं भासता पर जैसे ग्रामके अधिकारी पशु हैं तैसेही स्वर्गकेभी अधिकारी मूर्ख हैं २ बहुरि तीसरा लक्षण यहहै कि जिसका चित्त महाराजही के शुद्धस्वरूप विषे लीनहोवे अर्थ यह कि दिशा और स्थान और अहङ्कार की कुछभी फुर न रहै जैसे नेत्र राग और शब्दसे अचेत होते हैं तैसेही उसको सर्व पदार्थ विस्मरण होजावें ३ सो जिस विषे यह तीनलक्षण सम्पूर्ण पायेजावें तब जानिये कि उसको अतीतजनोंका पद प्राप्त हुआहै और उसकी अवस्था वचनसे अगोचरहै॥

ती है पर जिज्ञासु के समझावने के निमित्त सन्तजनों ने इस अवस्था को जीव और ब्रह्मकी एकता कहाहै बहुरि जिस मनुष्यकी बुद्धि दृढ़नहीं होती वह इस भेदको समझ नहीं सक्ता काहेसे कि जब ऐसे पदको वचन करके सिद्ध किया चाहै तब शास्त्रों और लोककी मर्य्याद नहींरहती ताते इस आनन्दको अनुभव करके पायसक्ताहै सो उत्तम अतीतजनोंकी अवस्था यही है पर अब तू भेषधारियों के छलोंको पहिचानकरके देख कि केते पुरुष गुदड़ी और आसनको वेष बनायलेते हैं और वचनभी सन्तजनोंकी नाईं सूक्ष्मही कहते हैं बहुरि आपको स्थिर चित्तकर दिखावते हैं जैसे दृढ़ आसन करके शीशको नीचाकर बैठते हैं और किसी सङ्कल्प के वेग विषे शीशको हलावने लगते हैं और अपने चित्त विषे ऐसा अनुमान करलेते हैं कि हमने पावने योग्य पदार्थ को पाय लियाहै सो इनका दृष्टान्त यहहै जैसे वृद्ध स्त्री सिपाहीकी नाईं वस्त्र पहरलेवे और वीर क्रियाको जानतीही नहीं कि शूरमा किसप्रकार परस्पर पुकारकर, शस्त्र प्रहार करते हैं तब वह स्त्री संग्राम के समय अवश्यही लज्जावान् होती है और राजा उसके कपटको पहिचानकर अधिक ताड़ना करताहै काहेसे कि इसकीनाईं और कोई कपट न करै तैसेही भगवत् भी वेषधारियों के कपटको उघार देताहै और अधिक ताड़ना करताहै बहुरि केते मनुष्य ऐसे नीच होतेहैं जो स्थूल वेष और संयम भी नहीं करसक्ते ताते महीन वस्त्र फाड़कर गुदड़ी बनावते हैं और ऐसे जानते हैं कि रंगीन वस्त्रोंका पहरनाही वैराग्यहै पर इतना भेद नहीं समझ सकते कि प्रथम अतीतजनोंने रंगीन वस्त्रों की मर्य्याद इस निमित्त राखी है कि जो वारंवार धोवनेका खेद न होवे अथवा उन्हों ने भगवत्के विरह करके श्याम वस्त्र पहर लिये हैं और शोकवानों के आचारको ग्रहण कियाहै पर यह मूर्ख तो महाराजके विरह और शोकसे अभावहैं ताते इनको रंगीन वस्त्रोंकरके क्या लाभ होवेगा इसकरके कि ऐसे असमर्थभी तो नहीं जो पुरातन वस्त्रोंको सीवते सीवते गुदड़ी होजावे इसीकारण से नवीन वस्त्र फाड़ते हैं और उसकी गुदड़ी बना कर पहरते हैं बहुरि एक और पुरुष ऐसे मन्दबुद्धि हैं कि उनके विषे पापों के त्यागनेकी समर्थता भी नहीं और भजन स्मरण विषेभी आलसी हैं बहुरि अभिमान करके आपको दीन भी नहीं मानते ताते भोगों की तृष्णा करके इस प्रकार कहते हैं कि उत्तम वस्तुतो हृदय की एकाग्रता है और स्थूल कर्मों की

विशेषता कुछ नहीं सो हमारा चित्त सर्वदा भजनविषे लीन रहताहै इसीकारण से हमको स्थूलकर्मों की अपेक्षा कुछ नहीं और मननशीलों ने जो स्थूलकर्मों की विशेषता कहीहै सो विषयी जीवों का अधिकार है और हमारा मन तो विषय वासना से मुक्तहुआ है ताते हमको पापका भय कुछ नहीं होता बहुरि जब तपस्वीजनों को देखते हैं तब इसप्रकार कहते हैं कि यह तो व्यर्थ कष्ट भोगने हारे और विद्यावानों को देखकर कहते हैं कि यह भी भरनोत्तर विषे भूलेहुये हैं और यथार्थ बूझने अभावहै पर इसप्रकार कहनेहारे पुरुष निस्सन्देह राजदण्डके अधिकारी हैं काहेसे कि ऐसे मूर्ख उपदेश करके कदाचित् नहीं समझते बहुरि एक और पुरुष ऐसे होतेहैं जो विषयों से विरक्त होकर विधिसंयुक्त साधन करते हैं और चित्तकी वृत्तिको सकुचायकर भजन विषे स्थिन होतेहैं तब अन्तर्मुखके अभ्याससे उनकी ऐसी अवस्था होती है कि भविष्य वार्ताको प्रत्यक्ष देखने हैं और उनको देवतों और ईश्वरों के आकार प्रकट भासते हैं सो यद्यपि यह अवस्था सांचहोती है पर स्वप्नकी नाईं अकस्मात् दूरभी होजाती है और वह पुरुष इतनी शक्ति पायकर ऐसे अभिमानी होतेहैं कि हमको चौदहों लोककी खबर प्राप्तहुईहै और इसप्रकार जानते हैं कि उत्तम अवस्था सन्तजनों की यही है पर जब यथार्थ दृष्टिकर देखिये तब उन्होंने भगवत्के आश्चर्य भेदोंका एक मात्र भी नहीं देखा और अभिमान करके तुच्छ ऐश्वर्य्यको पायकर अधिक प्रसन्न होते हैं और अपनी बड़ाईको प्रसिद्ध कियाचाहते हैं बहुरि मान और बड़ाई के सम्बन्ध करके उनके मनकी वृत्ति पसरने लगतीहै और वह जानतेही नहीं सो यह छल अतिदीर्घ है और इसका पहिचानना भी कठिन है ताते जिज्ञासु को चाहिये कि किसी शक्ति और सिद्धतापर प्रतीति न करै और अपने मनकी वासना के विपर्य्यय करने विषे सावधान होवे बहुरि जब मनके स्वभाव उनके विचारके अधीन होजावें किसी स्वभावकी वृद्धिभी न रहे तब हमको उत्तम अवस्था जानें इसीपर एक सन्तने कहा है कि जलोंपर चलना और आकाश विषे उड़ना और आगम की खबरदेनी भी सिद्धता कुछ नहीं और उत्तम सिद्धता यहहै कि इस जीवका मन सन्तजनोंकी आज्ञानुसार होजावै अर्थ यह कि जब विचारकी मर्य्याद बिना किसी स्वभाव विषे आसक्त न होवे तब इस अवस्था पर प्रतीति करनी योग्यहै और और सबही ऐश्वर्य्य छलरूपहैं काहेसे कि ये ।

असुरों को भी तप करके आगमकी खबर हुई है और उन्होंने नाना प्रकार की शक्तिको पायाहै पर उनके मनकी मलिनता दूर नहीं हुई ताते प्रतीति योग्य अवस्था यह है कि इस जीवके मनकी वासना सर्वथा दूर होजावे और विचार की मर्य्यादा आनि स्थित होवे इसीकारण से कहाहै कि जब तू सिंहोंपर सवार न होसके तौभी संशय कुछ नहीं पर क्रोधरूपी कूकुरको जो अधीन करे तो विशेपहै और जब तैंने अपने अवगुणोंको पहिचाना तब इसको आगमकी खबर से भी विशेपज्ञान ऐसेही जब तू इन्द्रियों और संकल्पके देशसे उल्लंघितहोवे तब जलों पर चलने और आकाश विषे उड़ने से भी इस अवस्था को विशेष जान बहुरि जब तू सिद्धि करके एक रात्रिविषे सहस्र योजनोंका पथ न काटसके तो भी संशय न कर काहेसे कि जब तू संसार के भोगों और जंजालों से उल्लंघित हुआ तब तैंने सहस्रयोजनों के पथको पीछे डालाहै और जब तू एक चरण साथ पर्वत पर चढ़ न सके तो भी शोकवान् न होहु इस करके कि जब तैंने पापमें उत्पन्न हुये प्रेमका त्याग किया तब पहाड़के लघने से विशेपहै पर इस प्रकारके छलों का बखान सम्पूर्ण करना अधिक विस्तारकर होताहै ताते धनवान् भी अनेकप्रकार छलेहुये हैं काहेसे कि केते पुरुष धनको प्रथम पापोंकरके उपजावते हैं बहुरि उस ही धनकरके कूप और ताल और पुल बनाते हैं और इसी कर्मको अपना पुरुषार्थ जानते हैं सो उत्तमवार्त्ता यहहै कि जिस मनुष्यका धन पाप अपना छल साथ लीजिये तब वह धन तिसहीको फेरदेना विशेपहै पर यह अभिमानी पुरुष अपने मानके निमित्त ऐसे नहीं करते ताते छलेहुये कहेजाते हैं बहुरि एक और धनवान् ऐसे होते हैं जो शुद्ध व्यवहार करके धनको उपजावते हैं और उस करके नानाप्रकारके धर्मस्थान बनवाते हैं पर उनके चित्त विषे मान और दम्भकाही प्रयोजन होताहै ताते स्थानोंके द्वारपर अपना नाम लिखते हैं और जब कोई उन से कहै कि भगवत् अन्तर्यामी है तुम अपना नाम काहेको लिखावतेहो तब इस का त्याग नहीं करते सो यह प्रसिद्धही लक्षण दम्भकाहै क्योंकि अर्थी को एक पैसाभी नहीं देसक्ते और मानके निमित्त कितने सहस्रकाया खर्चते हैं इसकरके कि अर्थीका माथा ईर्ष्याके पार्कनाई नहींनचा उसके उपर अपना नाम लिख सकें बहुरि एक और धनवान् ऐसे होते हैं जो दम्भ और मानके प्रयोजन बिनाही धर्मस्थान बनाते हैं पर उनमें नानाप्रकारकी चित्रकारी करते हैं सो महमी यदी

मूर्खताहै काहेसे कि जब भजनके स्थानविषे अधिक चित्रकारी होती है तब प्रथम तो उसको देखकर लोगोंके चित्त बहुत विक्षेपताको प्राप्त होते हैं बहुरि और लोग भी देखकर चाहते हैं कि ऐसे गृह हम भी बनावैं सो इस करके यह दोनों पाप प्रसिद्ध जगत्में होते हैं और चित्रकारी करावनेहारे पुरुष इस भेदको नहीं जानते इसीपर महापुरुषने कहा है कि भजन के स्थानों विषे चित्रकारी करना और पोथियों पर स्वर्ण लगावना बड़ी अज्ञताहै काहेसे कि इस करके भजनकी एकाग्रता और वचनों के अर्थ से शून्य रहजाते हैं सो भजन का मूल यह है जो इसका मन मायासे विरक्त होकर स्थिर होजावै पर जिस स्थानको देखकर चित्तकी चपलता अधिक होवै तब जानिये कि उसने भजन के स्थानको उजाड़ किया है और मन्दबुद्धि जीव ऐसे भेदको पहिचान नहीं सके बहुरि एक और धनवान ऐसे होते हैं जो आपको उदार जनावने के निमित्त यज्ञ और क्षेत्र सदाव्रत करके अतीतोंको अपने द्वारपर इकट्ठा करते हैं इस करके कि नगरों विषे हमारी उदारता की बड़ाई होवेगी सो ऐसे पुरुष सर्वथा मान और दम्भकरके छलेहुये होते हैं काहेसे कि गुप्त तो भूखेको एक रोटीभी नहीं देसके और प्रसिद्ध स्थानों विषे नानाप्रकार के यज्ञ और दान करते हैं इसीपर एक वार्त्ता है कि किसीने बशरहाफी संतसे कहाथा कि सहस्र रुपया मेरे पास हैं पर मैं इसको तीर्थों के मार्ग विषे खर्चना चाहताहूं तब उन्होंने पूछा कि तू तीर्थों पर भगवत् की प्रसन्नता के निमित्त जाताहै अथवा तमाशा देखने के निमित्त चला है तब उस पुरुषने कहा कि मुझको भगवत्की प्रसन्नताही की प्रीतिहै यह सुनकर उन्होंने कहा कि तू यह धन किसी ऋणी अथवा धनहीन कुटुम्बी को देडाल तब उसके हृदयकी प्रसन्नता सहस्र तीर्थोंके फलसे विशेष है बहुरि उस पुरुषने कहा कि मुझको तीर्थयात्राकी रुचि अधिक है तब उन्होंने कहा कि तेरा धन पापोंकरके उपजाहुआ जाना जाता है तातें जबलग तू अशुभ मार्ग विषे न खर्चेगा तबलग तेरे मनको शान्ति न आवैगी बहुरि एक और धनवान् ऐसे कृपण होते हैं कि यद्यपि द्रव्य तो अभ्यागतकोभी अपनी स्तुति और टहल कराय लेते हैं और इतर अर्थीको नहीं देसके सो ऐसा दान निष्फल होताहै काहेते कि उसके धनका स्वाद और स्तुतिकी कामना यह [illegible] है और दान देनेवाला पुरुष मूर्खता करके ऐसे जानताहै कि मैंने शास्त्रकी मर्याद अनुसार [illegible] अंगीकार किया है पर इसकी

युक्ति समझे विना धनको व्यर्थही खोते हैं और झूठाही अभिमान करते हैं बहुरि एक और धनवान् ऐसे कृपण होते हैं जो दशवां अंशभी नहीं देसक्ते ताते धन को इकट्ठा करके अपने पास रखते हैं और भजन स्मरण विषे रात्रिदिन सावधान रहते हैं पर उनको पैसा खर्चना कठिन होता है और वह आपको भजनी जानते हैं सो तिसको दृष्टान्त यह है जैसे किसी के शीशविषे पीड़ाहोवे और चरणों पर औषधका लेपकरे तब ऐसी औषधकर उसकी पीड़ा कब दूरहोती है तैसेही कृपण तपस्वी जो विपरीत बुद्धिहैं सो इतना भेद नहीं समझ सकते कि हमारे हृदयविषे कृपणता का रोग प्रबलहै अथवा अधिक आहार का रोग प्रबलहै ताते व्रत और संयम करके आहार को घटावते जाते हैं और दया दान रूपी जो कृपणताकी औषध है तिसको अंगीकार नहीं करते पर यह जेते छल मैंने वर्णन किये हैं और और भी जो नानाप्रकार के छलहैं सो धनवान् पुरुष इन से रहित नहीं होसक्ते अथवा जिसको कुछ धर्म की बूझ प्राप्तहुई होवे सब ऐसाही पुरुष इन छलोंसे मुक्तहोताहै और मेरे कहने का तात्पर्य यह है कि जिज्ञासुजन मन के छलों और भजनके विघ्नोंको भलीप्रकार पहिंचानें तब हृदय विषे उसके निष्काम प्रीति भगवत्की प्रबलहोवे और छलों से आपको बचाय राखे और शरीर के कार्य्यमात्रसे अधिकमायाकी प्रीतिसे विरक्तहोवे और सर्वथा अपनी मृत्युको निकटदेखे और परलोक मार्गके तोशे विना किसी पदार्थ विषे आसक्त न होवे और जिस पुरुषके ऊपर भगवत्की सहायता होती है तब उसको यह वार्ता सुगम होती है अन्यथा नहीं होसक्ती ॥

इति निषेधप्रकरण नाम तृतीयप्रकरणसमाप्तम् ॥

चौथा प्रकरण ॥

प्रथम सर्ग ॥

त्यागके वर्णनमें ॥

ताते जान तू कि जिज्ञासु की आदि अवस्था पापोंका त्यागहै और धर्मके मार्ग विषे सर्व मनुष्यों को आरम्भही त्यागकी अपेक्षा होती है काहेसे कि यह मनुष्य प्रथमही निष्पाप नहीं होता सो केवल निष्पाप और निर्मल देवने कहे

है और सर्वथा पापरूप असुर हैं ताते प्रसिद्ध हुआ कि भगवत् के भयकरके पापों का त्याग करना मनुष्यही का अधिकार है और सर्व आयुपर्यन्त पापों विषे आसक्त रहना असुरों का लक्षण है सो जिस पुरुषने पापों की मनसा का त्याग किया है और व्यतीतहुये पापों के पुनःस्मरण विषे सावधान हुआ है सो उत्तम मनुष्य वही कहावताहै पर प्रथम इसजीव की उत्पत्ति नीच और मलिन है क्योंकि आदि उत्पत्ति विषे भगवत् ने इसके ऊपर भोगोंको भेजाहै और भोगोंकी शत्रु जो बुद्धिहै सो वह पीछे किशोर अवस्था विषे प्रकट होती है ताते भोगोंने बालक अवस्था विषेही हृदयरूपी गढ़को घेरलियाहै और मनका स्वभाव इनही के साथ मिलाहुआ है बहुरि जब निर्मल बुद्धि प्रकट होतीहै तब इस जीव को अवश्यही भोगों के त्याग और पुरुषार्थ की अपेक्षा होती है इसी कारणसे कहाहै कि प्रथम सर्व मनुष्योंका अधिकार पापोंका त्यागहै और जिज्ञासुकी आदि अवस्था यही है सो त्याग का अर्थ यह है कि अशुभ मार्गकी ओर से अपने मुखको फेरना और शुभ मार्ग विषे सन्मुख होना ॥ अथ प्रकट करनी महिमा त्यागकी ॥ ताते जान तू कि भगवत्‌ने सर्व मनुष्यों को त्यागही विशेष कहा है और इसप्रकार आज्ञा करी है कि जिस पुरुष को मुक्त होने की इच्छा होवे तब चाहिये कि सर्व पापों का त्यागकरे और महापुरुषने कहाहै कि भगवत इस जीव के त्यागको अन्तकालपर्यन्त प्रमाण करता है और जब इस मनुष्यसे कुछ पाप होजावे तो उसका पश्चात्ताप करनाही त्यागहै और योंभी कहाहै कि जिस स्थानविषे विषयी जीव इकट्ठे होवें और नानाप्रकारके भोजन भवन करें सो तिस स्थानविषे कदाचित् स्थित न होवो काहेसे कि ऐसे ठौरविषे अवश्यही इस जीव का धर्म नष्ट होजाताहै ताते नरकों का अधिकारी होताहै और जो पुरुष उस स्थान को त्याग देताहै सो निश्चय धर्मदृढ़ रहताहै और जो पुरुष पापकर्म करके आपको बुरा मानताहै तब तिसपुरुषको भी वह पाप छूट जाता है और योंभी कहा है कि जिनसे इसलोकमें दिन विषे कुछ पाप होजावें और रात्रिमें आपको बुरा जानकर त्यागे तब भगवत् वह त्याग प्रमाण करते हैं और क्योंकि हरिके द्वारके ऊपर बन्द नहीं होता जबलग सूर्य पश्चिम विषे नहीं उदय होता तबलग खुलाही रहताहै और योंभी कहाहै कि जो पुरुष पाप करके आपको बुरा जाने और उसका त्याग करे तब निःसन्देह उसकी मुक्ति

उत्तमहोती है क्याहेसे कि पापकर्म करकेउसको त्यागदेना ऐसेहै जैसे किसीने पाप कियाही न होवै पर पापों का त्यागकरना यही है कि फिर उस पापकी संगताही न करै और योंभी कहा है कि त्यागी पुरुष भगवत् का अतिप्रियतमहै और त्यागी जनको देखकर भगवत् अधिक प्रसन्न होताहै और जो पुरुष पाप कर्म करके आपको क्षमाकराया चाहता है सो भगवत् निस्सन्देह तिसपर क्षमा करताहै पर जो पुरुष मन्मथ के विषे सर्वदा दृढ़ होताहै और मन्मथके त्यागने की श्रद्धाही नहीं रखता सो ऐसा पुरुष सर्वदा सतजनों की सहायतासे दूर रहताहै इसीपर एक वार्त्ताहै कि इब्राहीम सन्तने किसी पापीको देखकर ग्लानि करीथी तब उनको आकाशवाणी हुई कि तू इसके ऊपर ग्लानि ना कर क्याहेसे कि जब यह मेरे भयकरके पापकर्मों का त्याग करेगा तबही मैं इसके त्यागको प्रमाण करूंगा और जब आपको भूला जानकर मेरे आगे दीनचित्त होवेगा तौभी मैं उसको क्षमा करूंगा इस करके कि मेरा नाम दीनदयालु है ॥ अथ प्रकट करना अर्थ त्यागका ॥ ताते जान तू कि त्यागसे आगेही जिज्ञासु के चित्तविषे धर्मका प्रकाश प्रकट होताहै तब उस प्रकाश करके पापको हलाहल विषवत् जानता है बहुरि ऐसे जानता है कि मैंने इस विष को बहुत अङ्गीकार किया है और मरने के निकट प्राप्त हुआ हूं ऐसे जानकर अपने चित्तविषे अधिक भयवान् होताहै और पश्चात्ताप करने लगताहै जैसे किसी मनुष्यने मूर्खता करके मधुकेसंग विष खायलियाहोवै बहुरि जब विषका निश्चय करे तब अधिक त्रासको पावताहै और यत्न करके वमनकिया चाहताहै और वमनहीके उपचारविषे सावधान होताहै वैसेही जिज्ञासु जनको यह बूझ प्राप्तहोती है कि मैंने जितने भोगों को मीठे जानकर प्रीतिसयुक्त भोगाहै सो सभी विष पापरूपी थे तिस करके ताते भय और पश्चात्ताप की अग्नि विषे जलने लगताहै और उसी अग्नि करके भोगवासना जलजाती है बहुरि जैसे पापकर्म आगे किये थे सोतिनके पुनरावरणकी वासना करताहै ताते रजोगुण तमोगुणी पहरावेसे दूर करताहै और सात्त्विकी धर्मका पहरावा पहरताहै जिससे पीछे जो आगे विषयी जीवोंकी संगति करताथा सो अब ज्ञानवानोंकी संगतिको ग्रहण करताहै ताते यह कि त्यागका रूप भय और त्रासहै और पुन इसका धर्मका प्रकाश है बहुरि पापोंका पुनस्मरण करना इसकी व्यवस्थाहै बहुरि सर्व इन्द्रियों को पापों से रोकना

रखना और भगवत् भजनविषे सावधान होना इनका फलहै ॥ अथ प्रकट करना इसका कि त्यागकरना सर्व मनुष्योंका अधिकार है और सबको सब समय विषे, त्याग करना प्रमाण है ॥ ताते जान तू कि प्रथम तो इस मनुष्यको प्रतीति की हीनताका त्याग करना कहाहै और यद्यपि लोगोंके मुखसे,सुनकर यह भी भगवत्के ऊपर प्रतीति करताहै पर हृदयकरके उसमे अचेतहै ताते चाहिये कि उस अचेतता,का त्यागकरे और धर्मके अर्थको भलीप्रकार पहिचाने सो धर्म का पहिंचानना विद्याकी अधिकता करके नहीं कहा ताते धर्मकी दृढ़ता का लक्षण यह है कि सर्व,कर्मोंविषे धर्म और विचारकी मर्य्यादा अनुसार विचरे और सतजनों की आज्ञाको प्रीतियुक्त प्रमाणकरे और अपने मनकी वासना का आज्ञाकारी न होवे ताते जानिये कि जिस पुरुषकी करतूति मलिन होवे तिसकी प्रतीतिही दृढ़ नहीं काहेसे कि जिस पुरुषने पापोंको विषरूप जाना है वह ऐसी दुःखदायक वस्तुको क्योंकर अंगीकार करताहै पर इस मनुष्य से पाप कर्म तबहीं होताहै जब भोगोंकी प्रीति विषे प्रथमही इसकी,प्रतीति रुष्ट हो जावे अथवा शुद्ध बुद्धिका प्रकाश वासनाके अंधकारविषे छिपजावे तात्पर्य यह, कि प्रथम इसमनुष्यको प्रतीतिकी,हीनताका त्यागकरना प्रमाण कहाहै बहुरि इन्द्रियों के पापकर्म का त्यागकरना चाहिये है और जब इन्द्रियों करके पापोंसे रहित हुआ तब मान और दम्भ और ईर्षा और अभिमान आदिक,जो हृदय के मलिन स्वभाव हैं सो तिनका त्याग करना भी अवश्यही प्रमाणहै काहेसे कि यह बुरे स्वभाव बुद्धिके आवरण करनेहारे हैं और सर्व पापकर्मोंके बीजहैं ताते चाहिये कि सम्पूर्ण स्वभावोंको अपने वशीकार करे सो यह साधना भी बड़े पुरुषार्थ करके सिद्ध होती है बहुरि इससे पीछे जिज्ञासु को व्यर्थ चितवनी,और मनके संकल्पों का त्याग करना प्रमाण कहा है और महाराज के भजन से जो किसीसमय विषे अचेत होताहै सो तिस अचेतता को दूरकिया चाहिये है इस करके कि एक क्षणभी भगवत् का बिसारना सर्व विघ्नों का बीजहै बहुरि यह मनुष्य सर्वदा भगवत् भजनही करे और भगवत् भजनकी अवस्था विषे बड़े भेदहैं अर्थ यह कि एक भजन स्थूलहै और एक सूक्ष्म है और एक उससे भी अतिसूक्ष्म होताहै ऐसेही सूक्ष्मता से अधिक सूक्ष्मता चली जातीहै ताते चाहिये कि स्थूलता को त्यागकर सूक्ष्मही की ओरहोवे किसी स्थान और अवस्था

पर अटक न रहै काहेसे कि उत्तम पदको त्यागकर नीचपदविषे अटकरहना भी हानिका कारणहै ताते पूर्ण पदके मार्गविषे जितने और स्थानहैं सो सबोंका त्याग करनाही प्रेमकी दृढ़ताहै इसीपर महापुरुषनें कहाहै कि मैं एकदिन विषे सत्तरवार आपको भूला जानताहूं और उस अवस्थाका त्याग करके महाराजके आगे दीन होताहूं सो इसका अर्थ यहहै कि उनकी अवस्था क्षण क्षणविषे बढ़तीजातीथी और और पदविषे स्थित होतेथे सो जब एक पदको त्यागकर दूसरे पदविषे पहुँचतेथे तब प्रथमपदको अपनी अवज्ञा जानतेथे और आपको भूला जानकर क्षमा करावने लगतेथे सो इस अवस्थाका दृष्टान्त यहहै कि जैसे कोई पुरुष प्रथम पांचपैसेकी मजदूरी करताहोवे तब उसी विषे प्रसन्नहोताहै बहुरि जब ऐसे जानताहै कि अमुकव्यवहारकरके इतनेही कालमें पांचरुपये प्राप्तहोते हैं तब शोकवान् होकर प्रथम मजदूरीको त्यागदेताहै और दूसरे व्यवहारको ग्रहणकरताहै तब पांचरुपये पायकर प्रसन्नहोता है बहुरि जब इसप्रकार जानताहै कि रत्नों का व्यवहार करके एकदिन विषेही सहस्रों रुपये का लाभहोताहै तब दूसरे व्यवहारको भी त्यागदेता हैं और रत्नों के व्यवहारही को अङ्गीकार करता है सो इसी पर सन्तजनोंने कहा है कि जिज्ञासु की आदि अवस्था के जेते शुभकर्म हैं सो ज्ञानवानों के निकट वही पापरूप हैं पर जब कोई इसप्रकार प्रश्नकरे कि यद्यपि प्रतीतिकी हीनता और पाप और अचेतता तो अवश्य त्यागकरने के योग्यहै काहेसे कि जबलग इनका त्याग न करे तब निस्सन्देह पापी होताहै और ऊंच पदको त्यागकर ऊंचपद विषे स्थितहोने को विशेष कहनाभी प्रमाणहै पर उत्तम पुरुषोंने जो ऊंचपद विषे ठहरने को अवज्ञा कहाहै सो तिसका कारण क्याहै ताते इसका उत्तर यहहै कि योग्य और अयोग्य कर्म भी दोप्रकारके कहे हैं सो प्रथम तो संसारीजीवों को स्थूल पापों का त्यागकरना प्रमाण कहा है इसकरके कि अल्पबुद्धि भी नरकों से मुक्तहोवें बहुरि दूसरी भलाई और बुराई जिज्ञासुओं का आधार है और संसारीजीव उस अवस्था विषे स्थित हो नहींसक्के सो यह है कि यद्यपि ज्ञानीजनोंको नरकों का दुःख तो कदाचित् नहीं होता पर जब अपने से उत्तम अवस्थावालों को देखते हैं तब अपनी न्यून अवस्थापर शोकवान् होते हैं और इसप्रकार कहते हैं कि हमने ऐसा पुरुषार्थ क्यों न किया इसी कारण से कहा है कि उत्तम अवस्था से अप्राप्तरहना और न्यूनपद विषे स्थितरहना भी

आयोग्य है ताते चाहिये कि जिज्ञासुजन पुरुषार्थ करके किसी पदार्थसे प्रसन्न
न रहें और उत्तमसे उत्तम पदवीकी ओर चलाजावें सब ऐसे गुण में युक्तहोवें
इसीपर सन्तजनोंने कहाहै कि परलोक विषे सब किसीको पश्चात्ताप होवेगा
पापीमनुष्य तो अपने पापों को देखकर पश्चात्ताप करेंगे और भजनवान् इस
प्रकार कहेंगे कि हमने अधिक भजन क्यों न किया ऐसे जानकर बुद्धिमान
पुरुष परमार्थके मार्गविषे आलस नहीं करते और यथायोग्य भोगोंहीको लेते
जाते हैं और पापसहित भोगोंको अंगीकार नहीं करते इसीपर किसीने महा
पुरुषसे पूछाथा कि तुम तो निष्पापहो ताते तुम निद्रा और आहार का इतना
संयम क्यों करतेहो तब उन्होंने कहा कि मेरे भाई महापुरुष मुझसे आगे गये
हैं और उन्होंने पुरुषार्थ करके उत्तम पदको पाया है ताते मैं भी इसीप्रकार चा
हताहूं कि संसारके सुखोंमें आसक्त होकर उनसे पीछे न रहूं तो भलाहै और कुछ
दिन जो जगत् का जीवना है सो वैराग्य त्याग विषेही व्यतीत करूं इसीपर
एक साखी है कि एकबार एक महापुरुष पत्थरको शीश तलेरखकर सोयरहेथे तब
माया मनुष्यरूप धारकर उनसे कहनेलगी कि हे सन्तजी तुम माया को त्याग
करके बहुरि पश्चात्तापको प्राप्तहुयेहो इसी करके कि पत्थरको शीश तले रख
सुखसे नींदलिया चाहतेहो तब यह सुनकर उन्होंने पत्थर को उठाकर फेंका और
कहनेलगे कि मायाके सुखोंके साथ अटकाथा तू तो तात्पर्य यह कि जिसप्रकार
जिज्ञासुजन परलोकके लाभ करके परमवैराग्य विषे स्थितहुये हैं सो गंभीर
जीव उस अवस्थाको कब पावते हैं ताते तू अपने चित्तविषे ऐसा अनुमान न
करे कि उन्होंने यह सब स्पष्टही किया है और इसरीति करके इसी मार्गको
अंगीकार कर और सत्पुरुषोंके पुरुषार्थकी परीक्षा न कर काहेते कि उनका मा
र्गही निराले इसीकरके प्रसिद्धहुआ कि यह महापुरुष परमपद और गिरि कन्दरा
विषे स्थितहुये अपेक्षासे रहित नहीं होसकता इसीपर एक सन्तने कहाहै कि जब
यह मनुष्य किसी पदार्थकी ओर प्रीतिसहित देखता है तब निस्संदेह उसका
संयम न्यून होता है और यह प्रीति अन्तकाल विषे उसको अत्यन्त दुःखदा
यक होती है पर यह बड़ा आश्चर्य है कि यह पुरुष स्वभावसे सामग्रीको
आगेभी अपनी आयुको खोता है और मृत्युके आगमनको नहीं जानता और
विचार करके देखिये तब जितना हम मनुष्यके समान आगे स्पष्ट है ताते

जाते हैं ताते सर्वकाल इसको रुदनही करना प्रमाण है और यद्यपि इस समय विषे अचेतता करके रुदन नहीं करता तब परलोक विषे ह्वै खिन्न होकर अभिरुन्दी होवता है गा क्योंकि देखे कि यह आयुरूपी पदार्थ अमोलहै और इसी करके परम पदको प्राप्तहोने सक्ता है सो भोगों की प्रीति विषे व्यर्थही चलीजाती है और यह मूर्ख मर्यंदा इससे अचेतहै पर यह मनुष्य तबहीं सुचेतहोता है जब इसको सुचेतताका लाभ कुछ न होवेगा इसीपर महाराजने कहाहै कि जब यह मनुष्य अंतकाल विषे यमगणोंको देखताहै तब ऐसे जानताहै कि मेरे चलनेका समय आयाहै और अविवेकी पश्चात्ताप करके रुदन करने लगताहै पर उस पश्चात्ताप करके फल कुछ नहीं होता बहुरि यमगणों से इसप्रकार कहताहै कि एकदिन अथवा एक घड़ी मुझको अवकाश देवो तब मैं कुछ भजन करलेवों तब वह यमगण ऐसे कहने लागतेहैं कि आगे महाराजने तुझको दिन और पहर बहुत दियेथे पर अब तो तेरी आयुष पूर्ण होचुकी और कोई पल घड़ी शेष नहीं रही बहुरि जिब यह प्राणी निराश होताहै तब निराशता करके धर्महीन होजाताहै और दुःखोंका अधिकारी होताहै और जिसके ऊपर श्रीरघुनाथजी सहायता करतेहैं जब उसका धर्म्म नष्ट नहीं होता ताते परमसुखोंको पावताहै इसीपर सत जनोंने कहाहै कि भगवत् दोबार इस मनुष्य के साथ वचन करताहै सो प्रथम तो गर्भ विषे इसप्रकार आज्ञा करताहै कि हे मनुष्य मैंने तुझको भजन स्मरण का अधिकारी बनाया है और आयुरूपी पदार्थ तुझको दियाहै ताते तुझको चाहिये कि भलीप्रकार मेरे भजनविषे सावधानहोवे और मेरीवस्तु को पापों विषे न लगावे बहुरि दूसरीबार मृत्युसमे पीछे इसप्रकार पूछता है कि हे मनुष्य जब तूने मेरे दिये पदार्थोंको शुभकर्मों विषे लगायाहै तब उसके फलको प्राप्त हो और जब तूने यह पदार्थ पापों विषे लगायेहैं तब नरकोंके दुःखोंको भोग ॥ ॥ अरु मर्याद रखना इसका कि जब यह मनुष्य युक्तिपूर्वक त्याग करता है तब इस को भगवत् प्राप्तिसे प्रमाण करता है ॥ ताते जान तू कि जब तैंने युक्ति अनुसार पापों का त्याग किया तब उसके प्रमाणहोने विषे संशय न कर और इस वार्ताको भलीप्रकार विचार करके देख कि मेरा त्याग युक्ति अनुसार है अथवा युक्ति से रहित है सो जिस पुरुष ने इस भावके भेदको भलीप्रकार पहिचाना है वह शुभ दृष्टि और वेदके सम्बन्धको भी जिसने समझाहै और भगवत् के ज्ञानको

इस जीवका सम्बन्ध है सो तिसको भी भलीप्रकार पहिंचानाहै तब उसको इस वार्ता विषे संशय कुछ नहीं होता कि भोग और पाप आचरण करनेहारे हैं और इनका त्यागकरना महाराज की निकटताका कारण है इस करके कि इस जीव की उत्पत्तिका कारण निर्मल स्वरूप है ताते जब इसका हृदय दर्पणकी नाईं जंगालसे रहित होवे तब इस विषे महाराज के शुद्धस्वरूप का प्रतिबिम्ब भासे सो जब यह पापकर्म करताहै तब हृदयरूपी दर्पण मलिन होजाताहै और जब शुभकर्म विषे स्थितहोताहै तब वह प्रकाश पापों के अन्धकारको दूर करडालता है सो इस जीव के हृदयपर रज तमरूपी अन्धकार और सात्त्विकी प्रकाश सर्वदा ही वर्त्तमान रहते हैं पर जब पापों का अन्धकार अधिक होजावे और यह पुरुष भगवत् का भयकरके पापोंको त्यागदेवे तब निस्सन्देह इस अन्धकार को उसका प्रकाश नष्ट करडालता है और हृदयरूपी दर्पण निर्मलहोता है पर जिस को चित्त पापों के अन्धकार करके ऐसा मलिन होजावे कि इसकी बुराई को समझ न सके तब ऐसे पुरुषको त्यागरूपी उपाय कदाचित् नहीं होता और यद्यपि मुखसे इस प्रकार कहता है कि मैंने भोगों का त्याग कियाहै तौभी उसका कहना व्यर्थ होता है काहेसे कि जैसे वस्त्रको जल और साबुन साथ धोइलीजै तब वह शीघ्रही उज्ज्वल होइ आवताहै पर जब वस्त्रके धोवने की वार्ताही करता रहै तब कदाचित् निर्मल नहीं होता इसी पर महापुरुषने कहाहै कि जब तुझसे कुछ पापहोजावे तब उसके पीछे शीघ्रही भला कर्मकर जो वह बुराई नष्टहोजावे और जब तेरे पाप इतनेहोवें कि जा जिकना करके आकाशको छिपालेवें पर जब तू श्रीराघवजी का भयकरके उनका त्यागकरै तौभी उस त्यागको श्रीजानकीनाथ अपनी दया करके प्रमाण करलेते हैं और यौंभी कहाहै कि केते मनुष्य पापही के सम्बन्ध करके स्वर्गको पावे हैं तब किसीने पूछा कि हे महापुरुष! यह मनुष्य पाप करके परमसुखका अधिकारी क्योंकर होसक्ता है तब उन्होंने कहा कि प्रथम जिससे कुछ अवज्ञा होजावे और फिर वह आत्मग्लान होकर उसका त्यागकरै और भय करके अपनी अवज्ञाको विस्मरण करै और सर्वदा अधीन भिखारी होवै तब वह निस्सन्देह परमसुख का अधिकारी होताहै और यौंभी कहाहै कि जैसे जलकरके मैल दूरहोजाताहै तैसेही शुभकर्म करके अशुभ कर्मों का नाश होताहै इसीपर एक वार्ता है कि जिससमय शैतानको निकासाहै तौ तब

क्रोध करके कहने लगा कि हे महाराज ! तेरी दुहाई करके कहताहूं कि जबलग यह मनुष्य मृत्यु न होवेगा तबलग इसके हृदयमें मैं बाहर न निकसूंगा बहुरि महाराजने कहा कि मैं भी अपनी बड़ाई की दुहाई करके कहताहूं कि जबलग इस मनुष्य का शरीर न छूटेगा तबलग मैंभी त्याग के द्वारेको बन्द न करूंगा इसीपर एकसंतने भी कहाहै कि सब महापुरुषोंको श्रीरामजीने इसप्रकार आज्ञा करी है कि तुम पापी मनुष्यों से हमारी ओरसे कहो कि जब तुम ग्लानि और अपमानकर पापोंका त्यागकरोगे तब मैं सबपाप तुम्हारे क्षमाकरके तुमको अपनायलूंगा और धर्मात्मा पुरुषों को इसप्रकार भयदेवो कि जब मैं यथार्थन्याय करूं तब वह भी दण्डके अधिकारी होवेंगे और एक और संतने भी कहाहै कि रसना करके भगवत् के उपकार को कोई गिन नहीं सक्ता ताते चाहिये कि जिज्ञासुजन रात्रिदिन अपने अवगुणों को क्षमा कराता रहे तो महाराज अपनी दयाकरके इस जीवके पापोंको क्षमा करताहै इसीपर एक वार्त्ता है कि एक तामसी मनुष्यने एक तपस्वी से पूछाया कि मैंने पाप बहुत किये हैं और निन्यानवे मनुष्योंका घात कियाहै सो जब इससे आगे पापोंका त्यागकरूं तब भगवत् क्षमाकरेगा कि नहीं तपस्वी ने कहा कि तू क्षमाका अधिकारी नहीं काहेसे कि तू महापापी है यहवचन सुनकर वह निराश हुआ और उस तपस्वीको मारि डाला बहुरि एक विद्यावान् से पूछताभया कि मैंने सौ मनुष्यों का घातकिया है पर जब मैं आगे को पापों से रहित होऊं तब महाराज मेरी अवज्ञाको क्षमा करेगा कि नहीं करेगा तब उस बुद्धिमान्ने कहा कि जिस नगर विषे तू रहता है सो सबही तामसी मनुष्य तहां रहते हैं ताते जब तू इनकी संगति को त्याग कर अमुक नगरमें सात्त्विकी संगति विषे जायरहे तब तेरा त्याग प्रमाण होवेगा बहुरि वह पुरुष पाप कर्मों को त्यागकर अपने नगरको छोड़ चला और महाराजकी इच्छा करके मार्ग विषेही शरीर उसका छूटगया तब यमगण और श्रीरामपार्षद उसका जीव लेने को आये और अपनी अपनी ओर खैंचनेलगे तब उनको आकाशवाणी हुई कि यह पुरुष एकहाथ प्रमाण अपने नगरकी भूमि से श्रीराम भक्तोंके नगरकी पृथ्वीपर अधिक आयाहै ताते यह मुक्ति का अधिकारी है तात्पर्य यह कि यद्यपि शरीरधारी मनुष्य सर्वदा पापोंसे रहित नहीं होसक्ते पर जब अणुमात्र भी शुभकर्मों विषे इच्छा रागे अधिक होवे औ पापों की

अभिलाषा हीन होवे तोभी मुक्तिका अधिकारी होताहै ॥ अब प्रकट करनाभेद लघु दीर्घ पापोंका ॥ ताते जानना कि एक लघु पापहै और एक दीर्घ पाप कहे हैं पर जब इस मनुष्य से अकस्मात् लघु पाप होजावे और उस पाप विषे अधिक न विचरे तब त्याग करके वह पाप सुगमही क्षमा होजाताहै इसी पर महापुरुष ने कहा है कि जब तुम दीर्घ पापों से रहित होवो तब लघु पाप तुम्हारे मैं क्षमाकरलूंगा ताते दीर्घ पापों का पहिचानना अवश्यही प्रमाण हुआ सो इस निर्णय विषे भी विद्यावानों ने बहुत वचन कहे हैं पर मेरे चित्त विषे इसप्रकार भासताहै कि चार दीर्घ पाप तो मन विषे होते हैं सो प्रथम यह कि भगवत् और परलोककी प्रतीतिकी हीनता करनी १ और दूसरा यह कि पापों विषे दोषदृष्टि न करनी २ बहुरि तीसरा यह है कि भगवत की दया से निराश होना ३ और चौथा दीर्घ पाप यह है कि महाराजकी बेपरवाही का भय न करना और आप को निष्पाप जानकर निडरहोना ४ बहुरि चार दीर्घ पाप रसना विषे कहेहैं सो एक तो झूठी साक्षीदेनी १ और दूसरा लोभके निमित्त झूठी दुहाई देनी अथवा केवल झूठ बोलना २ बहुरि तीसरा यह कि पुत्र पुत्र कहकर किसी मनुष्य को दुःख देना ३ और चौथा महापाप निन्दा है ४ और दो दीर्घ पाप उदर विषे होते हैं सो एक तो निषिद्ध और कठोर आहार करना १ और दूसरा महापाप यहहै कि अनाथोंको दुःखपहुंचा अथवा हानकरके अपनी जीविका करनी २ बहुरि काम इन्द्रिय विषे व्यभिचारही महापापहै और दो दीर्घ पाप हाथोंकर होतेहैं सो एक तो मनुष्यका घात करना १ और दूसरा किसीकी वस्तु चुराय लेनी २ बहुरि चरणों विषे दीर्घ पाप यहहै कि संग्राम कर्त्तोंकी ओर गमन करना और सर्वशरीर विषे महापाप यहहै कि माता पिताकी सेवासेरहित होना सो मेरे कहनेका तात्पर्य यहहै कि इत्यादिक दीर्घ पापों विषे जिज्ञासु जनको अधिक भय करनाचाहिये और योंभी जानना चाहिये कि यद्यपि भजनके निश्चय विषे इसमनुष्यसे कुछ अवज्ञा होजावे तब महाराज उसको क्षमा करदेतेहैं पर जब इसको किसी प्रकार का पैसा देनाहोवे तब वह पैसा दिये बिना कदाचित् न छूटेगा इसीपर संतजनों ने कहाहै कि सब पाप क्षमा होनेके ही हैं पर जो मनमुखता और अहंकारी होताहै ताते जो कदाचित् यह मनुष्य इस पापका त्याग न करे वह स्वर्ग का अधिकारी कदाचित् नहीं होता १ और दूसरे पाप छूटे होवे हैं कि जैसे,

भगवत्के भजन वा पाठके नियमोंविषे कुछ अवज्ञा होवे सो इस अवज्ञाको दीनता करके भगवत् क्षमाकर लेताहै २ और तीसरा पाप यहहै कि लोगोंको किसीप्रकार दुखाना सो इस पापको भगवत् क्षमा कभी नहीं करता ताते इसका पुरश्चरण यही है कि उस दुखी पुरुषसे क्षमाकरावे वा जिसका धन हरलिया होवे तब उसहीको फेरदेवे और किसी पुरुषको धर्म्म से विमुख न करे काहे से कि अभयताके वचन सुनाकर लोगोंको निश्शंक करनाभी महापाप है ३॥ अथ प्रकट करना इसका कि केते कारणों करके लघुपाप भी दीर्घ होजाते हैं॥ ताते जान तू कि यद्यपि लघुपापोंके क्षमाहोनेकी जिज्ञासुजनको आशा होती है पर केतेही कारण करके लघुपापभी दीर्घ होजाते हैं सो इनका क्षमा कराना कठिन होताहै सो प्रथम यह कि जिस पापकर्म का स्वभाव चिरकालपर्यंत दृढ़ होजावे तब वह भी वृद्धताको पाताहै जैसे सुन्दर वस्त्र पहरने अथवा रूपवानों के मुखसे राग सुननेका स्वभाव दृढ़ होजावे तो रजोगुणकी प्रबलता करके इसका चित्त मलिन होजाता है और शीघ्रही तमोगुण उपज आता है जैसे सदैवकाल के भजन करने विषे निस्सन्देह हृदय उज्ज्वल होजाताहै तैसेही नित्य प्रतिके पाप करके अवश्यही हृदय अन्ध होजाताहै इसीपर महापुरुषने कहा है कि यद्यपि किंचित् मात्रही शुभ कर्म्म होवे पर जब उसको सदैव करतारहै तब वह भी अधिक विशेष होजाताहै जैसे पाथरपर शनैः शनैः जल की बूंद पड़तीरहै तब पाथर विषे भी छिद्र होजाताहै पर जब उसके ऊपर इकट्ठाही जल एकबार बहजावे तब पाथर में रंचकमात्र भी छिद्र नहीं होता ताते चाहिये कि जब जिज्ञासुजन से कोई लघुपाप होजावे तब आपको भूला जानकर पश्चात्ताप करे और आगेको उसकी गंनासे रहित होवे तब निस्सन्देह वह पाप क्षमा होजाताहै इसीपर सन्तजनोंने कहा है कि भय और पश्चात्ताप करके दीर्घ पापभी लघु होजाताहै और स्वभावकी दृढ़ता करके लघुपाप भी दीर्घताको पावताहै १ पुनः दूसरा कारण यह है कि जब यह पुरुष अपने पापको थोड़ा जानता है तब वह पाप भी बढ़जाताहै और अपने पापको दीर्घ जानताहै तब वह पाप घटजाता है काहे से कि अपने पापको दीर्घ जानना भय और प्रतीति करके होताहै ताते इस पुरुषका हृदय प्रकाशको पावता है और पापके प्रवेश का अवकाश नहीं होता पनेहो अपने पापको अल्प जानना अचेतना और भोगों की प्रीति करके होताहै तात्पर्य यह

अभिलाषा हीन होवे तौभी मुक्तिका अधिकारी होताहै॥ अथ प्रकट करनाभेद लघु दीर्घ पापोंका॥ ताते जानतू कि एक लघु पापहै और एक दीर्घ पाप कहे हैं पर जब इस मनुष्य से अकस्मात् लघु पाप होजावे और उस पाप विषे अधिक न विचरै तब त्यागकरके वह पाप सुगमही क्षमा होजाताहै इसी पर महापुरुष ने कहा है कि जब तुम दीर्घ पापों से रहित होवो तब लघु पाप तुम्हारे में क्षमाकरलेगा ताते दीर्घ पापों का पहिचानना अवश्यही प्रमाणहुआ सो इस निर्णय विषे भी विद्यावानों ने बहुत वचन कहे हैं पर मेरे चित्त विषे इसप्रकार भासताहै कि चार दीर्घ पाप तो मन विषे होते हैं सो प्रथम यह कि भगवत् और परलोकपर प्रतीतिकी हीनता करनी १ और दूसरा यह कि पापों विषे दोषदृष्टि न करनी २ बहुरि तीसरा यह है कि भगवत् की दया से निराश होना ३ और चौथा दीर्घ पाप यह है कि महाराजकी वेपरवाही का भय न करना और आप को निष्पाप जानकर निडरहोना ४ बहुरि चार दीर्घ पाप रसना विषे कहेहैं सो एक तो झूठी साक्षदेनी १ और दूसरा लोभके निमित्त झूठी दुहाई देनी अथवा केवल झूठ बोलना २ बहुरि तीसरा यह कि मंत्र यंत्र पढ़कर किसी मनुष्य को दुःख देना ३ और चौथा महापाप निन्दाहै ४ और दो दीर्घ पाप उदर विषे होते हैं सो एक तो निषिद्ध और कठोर आहार करना १ और दूसरा महापाप यहहै कि अनाथोंको दुखायकर अथवा छलकरके अपनी जीविका करनी २ बहुरि काम इन्द्रिय विषे व्यभिचारही महापापहै और दो दीर्घ पाप हाथोंकर होतेहैं सो एक तो मनुष्यका घातकरना १ और दूसरा किसीकी वस्तु चुरायलेनी २ बहुरि चरणों विषे दीर्घ पाप यहहै कि अशुभ कर्मोंकी ओर गमन करना और सर्वशरीर विषे महापाप यहहै कि माता पिताकी सेवासेरहित होना सो मेरे कहनेका तात्पर्य्य यहहै कि इत्यादिक दीर्घ पापों विषे जिज्ञासुजनको अधिक भय करनाचाहिये और योंभी जानना प्रमाणहै कि यद्यपि भजनके नियम विषे इसमनुष्यसे कुछ अवज्ञा होजावे तब महाराज उसको क्षमा करलेताहै पर जब इसको किसी पुरुष का एकपैसा देनाहोवे तब वह पैसा दिये बिना कदाचित् न छूटेगा इसीपर सन्तजनों ने कहाहै कि सब पापकर्म्म तीनप्रकार के हैं सो एक तो मनमुखता और प्रतीतिकी हीनताहै ताते जबलग यह मनुष्य इस पापका त्याग न करे तबलग क्षमाका अधिकारी कदाचित् नहीं होता १ और दूसरे पाप ऐसे होते हैं कि जैसे

भगवत्के भजन वा पाठके नियमविषे कुछ अवज्ञा होवै सो इस अवज्ञाको दीनता करके भगवत् क्षमाकर लेताहै २ और तीसरा पाप यहहै कि लोगोंको किसीप्रकारे दुखाना सो इस पापको भगवत् क्षमा कभी नहीं करता ताते इसका पुरश्चरण यही है कि उस दुःखी पुरुषसे क्षमाकरावे वा जिसका धन हरलिया होवे तब उसहीको फेरदेवे और किसी पुरुषको धर्मसे विमुख न करै काहेसे कि अभक्ताके वचन सुनाकर लोगोंको निश्शंक करनाभी महापाप है ३॥ अर्थ प्रगट करना इसका कि केते कारणों करके लघुपाप भी दीर्घ होजाते हैं॥ ताते जान तू कि यद्यपि लघुपापोंके क्षमाहोनेकी जिज्ञासुजन को आशा होती है पर केतेही कारण करके लघुपापभी दीर्घ होजाते हैं सो इनका क्षमा कराना कठिन होताहै सो प्रथम यह कि जिस पापकर्म का स्वभाव चिरकालपर्यंत दृढ होजावे तब वहभी वृद्धताको पाताहै जैसे सुन्दर वस्त्र पहरने अथवा रूपवानोंके मुखसे राग सुननेका स्वभाव दृढ होजावे तो रजोगुणकी प्रबलता करके इसका चित्त मलिन होजाता है और शीघ्रही तमोगुण उपज आता है जैसे सदैवकाल के भजन करने विषे निस्सन्देह हृदय उज्ज्वल होजाताहै तैसेही नित्य प्रतिके पाप करके अवश्यही हृदय अन्ध होजाताहै इसीपर महापुरुषने कहा है कि यद्यपि किंचित् मात्रही शुभ कर्मभी होवे पर जब उसको सदैव करतारहै तब वह भी अधिक विशेष होजाताहै जैसे पाथरपर शनैःशनैः जल की बूंद पड़ती रहै तब पाथर विषेभी छिद्र होजाताहै पर जब उसके ऊपर इकट्ठाही जल एकवार बहजावे तब पाथर में रंचकमात्र भी छिद्र नहीं होता ताते चाहिये कि जब जिज्ञासुजन से कोई लघुपाप होजावे तब आपको भूला जानकर पश्चात्तापकरे और आगेको उसकी मनसासे रहित होवै तब निस्सन्देह वह पाप क्षमा होजाताहै इसीपर संतजनोंने कहा है कि भय और पश्चात्ताप करके दीर्घ पापभी लघु होजाताहै और स्वभावकी दृढता करके लघुपाप भी दीर्घताको पावताहै १ बहुरि दूसरा कारण यह है कि जब यह पुरुष अपने पापको थोड़ा जानता है तब वह पाप भी बढ़जाताहै और अपने पापको दीर्घ जानताहै तब वह पाप घटजाता है काहेसे कि अपने पापको दीर्घ जानना भय और प्रतीति करके होताहै ताते इस पुरुषका हृदय प्रकाशको पावता है और पापके प्रवेश का स्वभाव नहीं होता ऐसेही अपने पापको अल्प जानना अचेतना और भोगों की प्रीति करके होताहै तात्पर्य यह

कि, सर्व कर्मोंका प्रेरक इसका मनहै सो जिसकर्म विषे, इस मनकी वृत्ति यथमात्र होती है तब उसही पर आवेश अधिक होजाताहै इसीपर सन्तजनों ने कहाहै कि प्रीतिमान् पुरुष किंचित् पापको भी पर्वतकी नाईं जानताहै और ऐसा जानताहै कि जब यह पाप मुझसे हुआ तब मैं इसके नीचे दब जाऊंगा और मनमुख अपने पापोंको माखीकी समान तुच्छ जानताहै ताते वह पाप उस से कदाचित् नहीं छूटता, इसी पर एक महापुरुषको आकाशवाणी हुई थी कि तुम अपने पापोंको थोड़ा न देखो और ऐसे जानो कि हम इस पाप करके कैसे महाराज से विमुखहुये हैं ताते जो पुरुष महाराज की समर्थता और बेपरवाही को अधिक समझताहै तब वह थोड़े पापकोभी अधिक जानताहै काहेसे कि, सर्व पापों विषे महाराजका कोप छिपाहुआहै २ बहुरि तीसरा कारण यहहै कि जो पुरुष पापकर्म करके प्रसन्नहोवे और उसको बड़ा पदार्थ जानकर बड़ाई करे तब वह पापभी बढ़ता जाता है जैसे कोई मूर्ख मनुष्य इसप्रकार कहताहै कि हमने कैसा छलकरके उसका धन हरलिया बहुरि सभा विषे दुर्वचन और हास्य करके उसको कैसा लज्जावान् किया ताते जो मनुष्य अपनी बड़ाई ऐसे पाप करके करते हैं तब इस करके जानाजाताहै कि उनका हृदय मलिन होगया है और उसही पाप करके मृत्युको पावेंगे ३ बहुरि चौथा कारण यहहै कि जिस पुरुषका पाप जगत् विषे प्रसिद्ध होवे और वह ऐसे जाने कि मेरे ऊपर भगवत् दयालु है ताते उसकर्मका त्याग न करे तो भी उस पापसे कदाचित् नहीं छूटता ४ बहुरि पांचवां कारण यहहै कि जब यह पुरुष किसी विद्यावान् अथवा श्रेष्ठ पुरुष को पाप कर्म करता देखताहै तोभी ढीठ और निश्शङ्क होजाताहै और इसप्रकार कहताहै कि अमुक विद्यावान् सुंदर वस्त्र पहरताहै और राजसभा विषे जाताहै और उनकाधन अङ्गीकार करताहै सो जब यह कर्म बुराहोता तब वह काहेको करता ऐसे जानकर यह भी पापों विषे वर्तताहै निश्शङ्क और ऐसे और केते लोग भी अपने धर्मसे भ्रष्ट होजाते हैं ताते सबका पाप उसी विद्यावान् को लगताहै काहेसे कि प्रथम पापकी नींव उसही ने राखी है इसीपर एक वार्ता है कि एक विद्यावान् प्रथम पापकर्म विषे आसक्तथा बहुरि उसने पापोंका त्याग किया तब उसको आकाशवाणी हुई कि मैंने तेरे पाप तुझको क्षमाकिये पर तेरा कहना और वचन करके और केते मनुष्य जो पाप विषे आसक्त हुये हैं सो तिन

को, क्योंकि सभ ऐसाही करनेलगेगा, इसी कारणसे सतजनों ने कहाहै कि विद्यावानों को और लोगोंसे अधिक भय होताहै काहेसे कि उनका पाप सहस्रगुणा बढ़जाताहै और सत्कार्यभी सहस्रगुणा होताहै तातें विद्यावान् को चाहिये कि प्रथम तो पापकर्महीं न करै और जब अकस्मात् होजावे तब उसको प्रकट न करै और शरीर के व्यवहार विषेभी संयमसहित विचरै तो भलाहै काहेसे कि उसको देखकर और लोगभी असेत न होवें इसीपर एक संतने कहाहै कि आगे मैं हँसने खेलनेकी शङ्का न करताथा पर जब मेरा ऐश्वर्य्य जगत् विषे प्रकट हुआहै तब मैं देखता हूं कि मुझको, कार्य्य विना मुसक्यानभी प्रमाण नहीं तात्पर्य्य यह कि और मनुष्यों का छिद्र प्रकट करना तो भला नहीं पर विद्यावान् के छिद्र को छुपावना अधिकही विशेषहै और सतजनोंने योंभी कहाहै कि जिस पुरुषके मृत्यु होनेसे पीछे उसका पाप शेष न रहजावे तब वह मनुष्यभी उत्तम कहावताहै और जिसका पाप सहस्रों वर्षपर्य्यन्त पीछे चलाजावे सो तिसकी गति महानीच होती है अर्थ यह कि जिसके पापको देखकर और लोगभी पापों विषे निश्शङ्क होवें सो तिसका पाप दीर्घकालपर्य्यन्त चलाजाता है ॥ अथ प्रकट करनी युक्ति त्यागकी ॥ तातें जान तू कि त्यागका मूल यह है कि पापोंसे त्रासमान होना और फल इसका सात्त्विकी श्रद्धाहै और त्रासका लक्षण यहहै कि अपने पापों को देखकर सर्वदा दीनचित्त और शोकवान् और भजन करतारहे काहे से कि जिस पुरुषको अपना मरना निकट भासताहै सो पश्चात्ताप और रोवनेसे रहित कब होसक्ताहै अथवा जिसको कोई लोभी वैद्य इसप्रकार कहै कि इसरोग करके तेरापुत्र अबहीं मृत्यु होताहै तब उसको कैसी चिन्ताकी अग्नि जलाने लगती है तैसेही यह वार्त्ता प्रसिद्ध है कि बुद्धिका नाश होना पुत्रके मरने से अधिक दुःखदायकहै और सतजनोंके वचन लोभी वैद्यके वचनोंसे अधिक सत्यसहित हैं और शरीरके नाश का कारण जो रोगहै सो पापरूपी रोग इसकी बुद्धि के स्थूल रोगसेभी शीघ्रही नाश करनेवाला है जो पुरुष ऐसे वचनों से तत्काल त्रासमान न होवे तब जानिये कि उसकी भक्तीनिश्चय दृढ़ नहीं अथवा उसने पापों के विघ्नोंको भलीप्रकार समझाही नहीं और जिस पुरुषकी बुद्धि तीक्ष्ण होती है सो तिसके हृदयविषे शीघ्रही विचार उपजआताहै और भयरूपी अग्नि अधिक होतीजाती है पहुरि इसी अग्नि करके पापोंका अन्धकार नहीं रहता

और हृदय उसका उज्ज्वल होइआताहै इसीपर सन्तजनोंने कहाहै कि त्यागी पुरुषों की संगति करनी विशेषहै काहे से कि उनका हृदय निर्म्मल और स्थिर होताहै और जितनाही इस मनुष्यका हृदय उज्ज्वल होताहै उतनाही पापों से ग्लानि करनेलगताहै और भोगोंकी प्रसन्नताको भय और पश्चात्ताप नष्ट कर डारताहै तब उसका त्याग प्रमाण होताहै इसीपर एक पुरुषने महाराज के आगे प्रार्थना करीथी कि हे अन्तर्य्यामी! मेरे त्यागको अंगीकार कर तब उसको आकाशवाणी हुई कि यद्यपि तेरे निमित्त सब सृष्टि प्रार्थना करै पर जबलग तेरे चित्तसे भोगोंकी अभिलाषा दूर न होवै तबलग तेरे त्यागको कदाचित् प्रमाण न करूंगा ताते जान तू कि यद्यपि इस मनुष्यको भोग और पाप मीठेकी नाई लगते हैं पर त्यागीपुरुष उनको ऐसे जानता है जैसे मधुविषे हलाहलाविष मिला हुआ होवै अर्थ यह कि जब कोई उसको अकस्मात् खाकर दुःखी होता है तब स्वाभाविकही उसको देखकर ग्लानि करताहै और उसके रोम त्रास करके खड़े होइआते हैं ताते उस मिठाई की अभिलाषा नष्ट होजाती है ऐसेही जिज्ञासुजन को चाहिये कि सब पापों विषे भगवत् के कोपरूपी विषको प्रसिद्ध देखे बहुरि सात्त्विकी श्रद्धा जो फल त्यागकी कहीथी सो इसका सम्बन्ध भी तीन लक्षणों के साथ होताहै प्रथम तो जिस समय विषे सब पापोंसे विरक्त होताहै और करणीय कर्मों विषे सावधान रहताहै १ बहुरि दूसरा लक्षण इसका यहहै कि आगे भी यही श्रद्धा करताहै कि मैं यह पापकर्म कदाचित् न करूंगा और भगवत्को अन्तर्यामी जानकर त्यागके निर्वाहकी मनसा रखताहै बहुरि एकांत और शुद्ध जीविकाको अंगीकार करता है तात्पर्य्य यह कि जबलग सर्वपापों और भोगों की अभिलाषा से विरक्त न होवे तबलग सम्पूर्ण त्यागी नहीं कहाजाता इसी पर संतजनों ने कहा है कि जिसके ऊपर किसी भोगकी प्रबलता होवे तब चाहिये कि सातबार यत्न और हठकरके उसका त्याग करै तब वह कठिनताई दूर होजाती है २ बहुरि सात्त्विकी श्रद्धाका लक्षण तीसरा यह है कि व्यतीत हुये पापों के पुरश्चरण विषे सावधान होवे और इस बातको भली प्रकार पहिचाने कि मुझमें भगवत् की अवज्ञा क्या क्या हुई है सो भगवत्की अवज्ञा दो प्रकारकी होती है प्रथम तो करणीय कर्मों से विमुख होना दूसरे पापकर्मों विषे आसक्त रहना ताते चाहिये कि बालक अवस्थासे लेकर जिस जिस निषिद्ध

अचेतहुआ होवे अथवा दशवन्ध न दिया होवे अथवा अधिकारी विना दशवन्ध दिया होवे तब सवोंका पुरश्चरण ऐसेकरे कि भजन और दानकी अधिकता बढ़ावे बहुरि पापोंका पुरश्चरण इसप्रकारकरे कि शीलकम्भवस्थापर्यन्त जोजो दीर्घपाप कियाहोवे तब उसको स्मरण करके भयमयुक्त भगवान् से क्षमाकरावे बहुरि अपने शरीरपर तप और यत्न अधिक रावे ऐसेही लघुपापोंकी पुरश्चरण इसप्रकार करे कि जब अधिक बोला होवे तब मौनविषे स्थिररहे और जब अशुभ ओर दृष्टिकरी होवे तब लज्जा करके नेत्रोंको मूदराखे ऐसेही सर्वोविषे विपर्यय भावको अङ्गीकार करे तब विकारों की अशुद्धता दूर होजावे इसी पर महापुरुष ने कहा है कि दुष्कृत के पीछे सुकृतकरो तब वह सुकृतही मेटदेवेगी ताते विषयीराग सुनने का पुरश्चरण यह है कि सतजनों के वचन सुनता रहे और जब किसीके सम्मुख निश्शङ्क बोला होवे तब सयकाभय और सन्मानकरे तात्पर्य यह कि पापकर्म करके जितनाही इसका हृदय मलिन होजाता है उतनाही पुरश्चरण करने से मलिनता दूरहोजाती है ताते चाहिये कि जब इसने मायाके पदार्थों की ओर प्रसन्नता की दृष्टिकरी होवे तब यत्न और कष्टोंको अङ्गीकारकरे काहेसे कि भोगोंकी अभिलाष करके इसका हृदय बधमानी होजाता है बहुरि ग्लानि और यत्न को अंगीकार करने करके वह बधमान दूरहोता है इसीपर सतजनोंने कहा है कि जब सात्त्विकी मनुष्यों के चरणों विषे कांटा चुभजाता है तब भी उसके पापोंको क्षीण करता है और महापुरुषने भी कहा है कि शोक और चिन्ता करके भी केते पापोंका पुरश्चरण होजाता है पर जब तू इसप्रकार कहे कि शोक और चिन्ता तो इसके पुरुषार्थ करके नहीं होती ताते इसके पापोंका पुरश्चरण क्योंकर कहिये तब इसका उत्तर यह है कि जिस संयोग करके इसपुरुषका हृदय मायाके पदार्थोंसे विरक्तहोवे तब उसको निस्सन्देह भला जानिये सो यद्यपि इसके पुरुषार्थकरके भाव होवे अथवा महाराजकी आज्ञापाकर अकस्मात् होजावे पर यह संयोग अवश्यमेव इस जीवके कल्याणका कारण बहुरि जब इसने किसीको दुखाया होवे अथवा किसीका धन हरलिया होवे अथवा किसीकी निन्दाकरी होवे तब चाहिये कि स्मरण करके सबसे क्षमाकरावे और जिसका धन देना होवे सब उसको धनही देवे और जिसका घात किया होवे तब उसके सबन्धियों को अपना शरीर अर्पणकरे पर यह पापी गताही और,

बजारियों को कठिन होती है काहे से कि इनके व्यवहारों का सम्बन्ध बहुत पुरुषों के साथ होताहै ताते जब इनका पुरश्चरण न होसके तब वैराग्य औरि भगवत् भजन विषे यही अधिक दृढ़होवे और जिस पुरुषसे कोई पाप नित्यप्रति होवाहै तब शीघ्रही उसका पुरश्चरण करता रहै तोभलाहै इसीपर सन्तजनों ने कहाहै कि जब यह मनुष्य पापकर्म करके उसको त्यागदेवे अर्थात् त्यागने की मनसाकरे और उसके दुःख से भयवान् होवे और भगवत्‌की दयाका आशावन्तहोवे बहुरि यथाशक्ति दानदेवे और साधुसंगति विषे आपको स्थितकरे तब इतने कर्मों करके पापोंकी क्षीणता होजाती है पर जब भय और प्रीति बिना मुखसे त्राहि त्राहि करतारहै तब इस कहनेका लाभ कुछ नहींहोता काहे से कि लाभ का कारण भय और पश्चात्ताप और हृदय की कोमलताई है पर जब कुछ भयसंयुक्तभी श्रीराघवजी का नाम लेवे और प्रार्थना करके क्षमा कराताही रहे तो भी निन्दा और वाद विवाद से मुक्त रहता है ताते यह भला कर्म है इसीपर एक जिज्ञासुजन ने अपने सद्गुरु से पूछाथा कि जब मैं मुखसे श्री रामराम कहताहूं तब मेरा मन एकत्र नहीं होता तब उन्होंने कहा कि तू यहभी श्रीरामजी का उपकारजान काहेसे कि एकइन्द्रिय तो तेरी शुभमार्गविषे स्थित हुई है ताते रघुनाथजी की सहायता करके पर्नैश्शनै करके मनभी एकत्र होय जावेगा पर यह मन ऐसा कपटी है कि जब जिज्ञासुजनको भजनविषे स्थित हुआ देखता है तब इसप्रकार कहताहै कि हृदयकी एकत्रता बिना श्रीराम नाम लेना व्यर्थ होताहै ताते तू भजनही को त्यागदे पराएक तो ऐसे उत्तम मनुष्य होते हैं जो मनको इसप्रकार करके उत्तर देते हैं कि हे भाई तैंने यथार्थ कहा ताते मैं अब हृदयको भी एकत्र करलेताहूं तब यह भजन सफल होवेगा सो यह उत्तर ऐसा है कि मनके छलको नष्ट कर डालता है बहुरि एक मध्यम पुरुष इसप्रकार मनको कहते हैं कि यद्यपि मैं हृदय को एकत्र नहीं करसकता तौभी वाद विवाद और आलस निद्रासे श्रीराम नाम लेनाही विशेषहै ताते मैं इसका त्याग क्योंकर करूं जैसे शराफीके व्यवहारसे राज्य करना विशेषहै पर जबलग राज्यप्राप्त न होवे तबलग शराफीको त्यागकर चाण्डालका व्यवहार करना सोभी भला नहीं बहुरि एक ऐसे मनुष्य नीच होते हैं कि वह मनका कहना मानकर भजन को त्याग देते हैं और ऐसे जानते हैं कि चित्त की एकत्रता बिना भजन विषे क्या

लाभ होताहै ताते हमने जो भजनका त्याग कियाहै सो यह भी बुद्धिमानोंका कर्म है पर जब विचारकरके देखिये तब वह मनके अधीन होकर भजन से विमुख हुयेहैं ताते परमभाग्यहीन हैं॥ अब प्रकट करना उपाय त्याग के प्राप्त होने का॥ ताते जान तू कि जो पुरुष पापों का त्याग नहीं करते और सर्वदा भोगों विषे आसक्त हैं सो प्रथम इसके कारणको पहिंचानना चाहिये कि उनके हृदय विषे त्यागकी श्रद्धा क्यों नहीं उपजती सो त्यागकी मनमासे वर्जित करनेहारे पांच कारणहैं और सबके भिन्नभिन्न उपायहैं ताते प्रथम कारण यहहै कि जिन के हृदय विषे परलोक की प्रतीति नहीं होती अथवा संशयवान् होवेहैं तब वह भी पापोंका त्याग नहीं करते सो तिनका उपाय मैंने तृतीय प्रकरणके अंत प्रा- णिक बुद्धियोंके सर्ग विषे प्रसिद्ध करके कहाहै १ और दूसरा कारण यहहै कि जिनके हृदय करके भोगों की अधिक प्रबलता होतीहै तब वह भी त्याग नहीं करसक्ते इसीकारणसे परलोक के दुःखका स्मरण नहीं करते सो बहुत मनुष्योंको तो भोगोंकी प्रीतिने घेरलिया है इसीपर महापुरुष ने कहाहै कि जब भगवत् ने नरकोंको उत्पन्न कियाथा तब देवतों से पूछा कि यह कैसा दुःखरूपहै तब देवतों ने कहा कि हे महाराज! जो पुरुष इनके दुःखोंको श्रवण करेगा तब भयकरके सर्वप्रकार इससे आपको बचाया चाहेगा बहुरि महाराज ने नरकों के चारोंओर भोग उत्पन्न किये तब देवतोंने कहा कि हे महाराज! कोई पुरुष इनकी अभिलाषा से छूट न सकेगा ताते हम डरते हैं कि भोगोंकी प्रीतिकरके बहुतही मनुष्य नरकगामी होवेंगे बहुरि भगवत्‌ने स्वर्गको उत्पन्न किया तब उसको देखकर देवता कहनेलगे कि हे महाराज! जो इसकी महिमा सुनेगा तब वह अवश्यही उसही को प्राप्त हुआ चाहेगा बहुरि महाराजने स्वर्ग के मार्ग विषे बड़े यत्न और दुःख उत्पन्न किये तब देवतोंने कहा कि हे महाराज! कोई विरलाही पुरुष ऐसे दुःखों को सहकर स्वर्ग की ओर आवेगा और अधिक मनुष्य तो भयकरके विमुख होजावेंगे ताते प्रसिद्ध हुआ कि भोगों की प्रीति नरकका मार्गहै और स्वर्ग का मार्ग दुःखों का सहना है २ बहुरि तीसरा कारण यहहै कि यह मनुष्य जग में आयकर भोगोंको प्रसिद्ध देखताहै और परलोक को उधार जानताहै ताते भो- गोंके साथ अधिक प्रीति करताहै और परलोक का सुख स्मरण नहीं करता सो यहभी बुद्धिकी हीनताहै ३ बहुरि चौथा कारण यहहै कि यद्यपि यह मनुष्य

कछुक त्यागभी मनसा रखता है तो भी अचेतता करके ढीलाही रहता है और जब कोई भोग इसको प्राप्त होताहै तब इस प्रकार कहताहै कि अब तो इस भोग को भोगलेवों फिर इसका त्याग करलेऊगा ४ और पांचवां कारण यह है कि जिस मनुष्यने भगवत्‌की दयाको श्रवणकिया होताहै तब अपने चित्तविषे ऐसा अनुमान करलेताहै कि मुझको भगवत् क्षमाकरलेवेगा पर जो मनुष्य भोगोंको नक़द जानताहै और परलोकको उधार देखता है सो तिसका उपाय यह है कि जिस समयमें अवश्य आवना है सो तिस को निस्सन्देह आया जाने काहे से कि जो अभी इसकी मृत्यु आनवे तो परलोक नक़द होजावे और स्थूलभोग स्वप्न होजावें बहुरि भोगों की प्रीति का उपाय इसप्रकार जानना प्रमाणहै कि जब मेरे चित्त विषे भोगोंके त्यागने की सामर्थ्यही नहीं तब मैं नरकों के दुःख सहने को क्योंकर समर्थ होऊगा ताते जिसप्रकार रोगी मनुष्यकी रुचि यद्यपि किसी भोगविषे अधिक होतीहै तौभी वैद्यकी आज्ञानुसार उसको त्याग देताहै तैसेही जिज्ञासु जनको चाहिये कि भगवत् और सतजनोंकी आज्ञानुसार यत्न सहित भोगोंको त्यागदेवे तो भलाहै बहुरि जो पुरुष पापोंके त्यागविषे ढीलकर ताहै तिसको ऐसे समझना योग्यहै कि जब काल्हही मेरी मृत्यु आवै तब मैं क्या करूंगा काहेसे कि जीवना तो मेरेहाथ नहीं इसीपर सन्तजनों ने कहा है कि जिनपुरुषोंने त्यागविषे ढीलकरी है सो परलोकविषे दुःखित अधिकहोकर पुकार करेंगे ताते चाहिये कि यह मनुष्य पुरुषार्थकरके शीघ्रही भोगों का त्याग करै और जब इस निमित्त ढीलाहोवे कि अब भोगोंका त्यागना कठिनहै तब सोजाने कि काल्हभी आजकी नाईं कठिन होवेगा ताते ढीलकरनेहारे पुरुष का दृष्टान्त यह है जैसे कोई बुद्धिमान् किसी पुरुषको कहै कि तू जबइस वृक्षके मूलको जड़हीं उखाड़डाले तो भलाहै बहुरि वह पुरुष ऐसे कहै कि अबतो मैं निबलहूं और इस वृक्षका मूल दृढ़ है ताते मैं इसको एक वर्ष पीछे उखाडूंगा तब उसको समझाना चाहिये कि हे मूर्ख ! वर्षसे पीछे तू तो अधिक निबलहोवेगा और यह वृक्ष अधिक दृढ़ होताजावेगा तैसेही सर्वदाकाल भोगों के स्वभाव प्रबलहोतेजातेहैं और तेरी बुद्धिकाबल क्षीण होताजाताहै इसीकारण से जो तू शीघ्रही त्यागका उद्यमकरै तो भलाहै बहुरि जो पुरुष भगवत् को दयालु जानकर पापों का त्याग न करै सो तिसको ऐसे समझना विशेषहै कि भगवत्की दया तो तेरे अधीन नहीं और

जब तेरा धर्मही पापोंकी प्रबलता करके नष्टहोजावै तब निस्सदेह अतकाल प-श्चात्तापको प्राप्तहोवैगा इसीपर सतजनोंने कहाहै कि धर्मरूपी वृक्ष तबहीं वृद्ध होताहै जब उसको भजनरूपी जलसे सींचिये और जब भजनरूपी जल इसको न पहुँचे तब निस्सदेह धर्मरूपी वृक्षही नष्टहोजाता है ताते संतजनों के आवने का प्रयोजनभी जगत्में येही है कि जीवोंको पापोंकाफल जो दु खहै सो प्रसिद्ध करके दिखावें तात्पर्य्य यह कि भगवत्की दयाके आश्रित होकर पापोंविषे वि-चरना बड़ी मूर्खताहै और इसका दृष्टान्त यहहै जैसे कोई पुरुष अपना सर्व्वस्व लुटायदेवै और चित्तविषे यह आशाराखे कि मुझको स्वाभाविकही वनविषे धन का खज़ाना मिलजावैगा अथवा कोई धनवान् मेरे गृह विषे आकर मरजावैगा तब उसका धन मेरेही पासरहैगा सो यद्यपि अकस्मात् ऐसा सयोगभी होजाता है पर अपना धनलुटाकर ऐसी आशाकरके निश्चिन्तहोना बड़ीमूर्खताहै बहुरि ऐसे जान तू कि केते मनुष्य इसप्रकार रहते हैं कि जबलग सम्पूर्ण पापों का त्याग न करै और किञ्चित्ही पापों का त्याग करै तबलग उसको त्यागी नहीं कहते जैसे कोई दुराचार का त्यागकरै और मदपान का त्याग न करसकै तब उसको त्यागी क्योंकर कहिये काहेसे कि पापकर्म तो सबही निंद्यहैं और त्या-गने योग्य हैं पर मेरे चित्त विषे इसका उत्तर इसप्रकार भासता है कि जिसने दुराचारको मदके पीवनेसे अधिक बुरा जाना है अथवा ऐसे समझा है कि मद पानकरने से दुराचारभी होताहै ताते मदका पीवनाही अधिक निंद्यहै सो जि-सने अधिक बुराई का त्याग किया तब उसका त्याग प्रमाण होताहै जैसे कोई पुरुष इसप्रकार जाने कि निंदाकरके जीवों का हृदय दुखता है और मद करके अपने चित्तकी चपलता होतीहै ताते निन्दाको त्यागदेवै और मदसेरहित न होसकै तोभी इसका त्याग प्रमाण है काहे से कि जितनेही अधिक पापकर्म करताहै उतनाही उसको दण्ड भी अधिक होताहै और यह भी प्रमाणनहीं कि जब एक पापकर्म का त्याग न करसकै तब जिस पापका त्याग करसका होवै तिसकाभी न करै तात्पर्य्य यह कि जितनाही पापकर्म से रहित होवै तितनाही भलाई को पावता है पर सम्पूर्ण पाप त्यागी उसी को कहते हैं जो सर्व पापोंसे रहितहोवै और सम्पूर्ण त्यागी होने का अर्थ यह है कि [illegible] करके प्रथम दोर्ग पापोंका त्याग करनाचाहिये बहुरि सर्व्वथा निष्पापहै इस करके कि इस गउ

ध्यमें सर्व पापोंका त्याग एकहीबार नहीं होसक्ता तातें चाहिये कि तू क्रमकरके त्यागही के मार्ग विषे चलाजावे तब शीघ्रही सम्पूर्ण त्यागको पावताहे ॥

दूसरा सर्ग ॥

संतोष और धन्यवादके वर्णन में ॥

ऐसे जान तू कि यद्यपि मूलधर्म का त्याग है पर त्याग भी सन्तोषके बिना सिद्ध नहीं होता और कोई शुभ करतूति करनी और किसी पापका त्याग करना भी सिद्ध नहीं होता तातें इसीपर महापुरुषने भी कहाहै कि संतोष आधा धर्म है और किसी पुरुष ने महापुरुषसे पूछा था कि धर्मकारूप कैसा है तब उन्होंने कहा कि संतोषही धर्म्म है सो विशेषता संतोषकी इसकारणसे है कि महाराज ने अपने वचनों विषे संतोषकी बहुत प्रशंसा करी है और जो जो उत्तमपद हैं सो सबही संतोषकरके सिद्धहोने कहे हैं और धर्मके मार्ग विषे अगवानी भी संतोषहीको कहा है और योंभी कहा है कि संतोषवालों के अभिनिकट हूं और मेरी सहायता और दया और उत्तम कृपाभी संतोषवालोंको प्राप्त होती है यह तीनों पदार्थ इकट्ठे किसी को प्राप्त नहीं होते और योंभी कहा है कि उनहीं के पाप क्षमा होते हैं और परलोक विषे पापियों के पाप भी वही क्षमा करावते हैं और भगवत् का मार्गभी उनहीं को प्राप्त हुआहै जिनके हृदय में संतोष है और इस कारण करकेभी संतोषकी विशेषताहै कि भगवत्ने संतोषको आप प्यारा किया है अर्थ यह कि किसी विरले भक्त को प्राप्त किया है इतर जीवों को नहीं दिया और ऐसेही महापुरुष ने भी कहाहै कि जिसपुरुष को शुभ अंगों विषे विश्वास और सन्तोष प्राप्त हुआ है उस से कहदो कि निर्भय होवे यद्यपि भजन और तप बहुत नहीं करता तो भी सन्तोषवाला पुरुष निर्भय है और महापुरुष ने अपने प्रियतमोंसे इसप्रकार कहाहै कि जैसा तुम्हारा निश्चयहै सो जब उसीविषे संतोष करो और दृढ होवो तब इस बातको मैं बहुत प्रियतम राखूंसो यद्यपि जितना भजन तुम सबही करतेहो तितना भजन और तप एक एकही करो तो भी जब तुम्हारे विषे संतोष की दृढता देखूं तब अधिकही प्रियतम राखूं पर मैं डरताहूं कि मेरे पीछे तुम्हारे ऊपर माया बन पावेगी तब तुम परस्पर युद्ध करोगे और जो देवता तुम्हारी सहायता करते हैं सोभी विरुद्ध करेंगे कहेंगे कि तुम्हारे विषे सन्तोषकी दृढता नहीं भासती और योंभी कहाहै कि जो कोई सन्तोष करता है

और पुण्यकी आशारखताहै सो निस्सन्देह पूर्ण पुण्यको प्राप्त होताहै ताते तुम संतोष करो काहे से कि पदार्थ जो तुम्हारे निकट हैं सो नाश को पावेंगे अर्थ यह कि मायाकी सामग्री नाश होवेंगी और जो कुछ महाराज के निकट है सो स्थिरहै और सत्य पदार्थ है और योंभी कहाहै कि संतोष परलोक का खज़ाना है और योंभी कहते थे कि संतोष का जो पुरुष स्वरूप होता तो उदार होता और योंभी कहते थे कि संतोषवाले पुरुष महाराजके प्रियतम हैं और एक महात्मा को आकाशवाणी हुई थी कि मेरे स्वभावकी नाईं तूभी अपना स्वभावकर सो मेरा स्वभाव एक यहहै कि मैं संतोष करनेवालाहू और एक महापुरुषने कहाहै कि जबलग तू अपनी वासनासे संतोष न करेगा तबलग जिस पदको तू चाहताहै तिस पदको प्राप्त न होवेगा और एक जमातको देखकर महापुरुषने उनसे पूछा कि तुम वैष्णवहो तब उन्होंने कहा कि हम वैष्णवहैं बहुरि महापुरुषने कहा कि तुम्हारी वैष्णवता का चिह्न क्याहै तब उन्होंने कहा कि हम सुख विषे धन्यवाद करते हैं और दुःखों विषे सन्तोष करते हैं और श्रीरामरजाय विषे प्रसन्न रहते हैं तब महापुरुषने उनसे कहा कि तुम निस्सन्देह वैष्णवहो और योंभी कहाहै कि जैसे शरीरके अंगोंविषे शिर उत्तमहै तैसेही सर्व शुभगुणोंविषे सन्तोष उत्तम है ताते जिसपुरुष विषे संतोष नहीं तिसका धर्मभी दृढ़ नहीं ॥ अथ प्रकट करना रूप संतोषका ॥ ऐसे जान तू कि संतोष करना मनुष्यका स्वभावहै काहेसे कि पशुवों विषे संतोषकी सामर्थ्य नहीं सो पशु अतिनीचहैं और देवतों को संतोष की अपेक्षाही नहीं क्योंकि वह आगेही से शुद्ध हैं और भोगों से मुक्त हैं और पशु भोगों के वन्धन विषे पराधीनहैं कि उनके हृदयमें और कुछ नहीं भासता ताते पशु भोगरूप हैं और देवता भगवत् के प्रेम विषे लीन हैं और कोई पदार्थ उनको विक्षेप देनेहारा नहीं जिसके दूरकरने विषे संतोष करें ताते संतोष करना मनुष्यही का अधिकारहै काहेसे कि आदि उत्पत्ति विषे मनुष्यभी पशुकी नाईं होताहै सो इस कारण करके होताहै कि प्रथम खान पान और खेलना और सुन्दरताई का वनावना मनुष्यपर प्रबल होताहै बहुरि किशोरअवस्थाविषे देवतों का प्रकाश आइ प्रकट होताहै सो उसकरके भलाई बुराई के फलको पहिंचानता है सो प्रयोजन यह है कि महाराज दो देवता मनुष्यकी रक्षाके निमित्त भेजतेहैं सो एक देवता मनुष्यको मार्ग दिखावताहै अर्थ यह कि उस देवता का प्रकाश

जब मनुष्य विषे प्रकट होताहै तब उसी प्रकाश करके कर्मों के फलको पहिचानताहै और कानूनिकी विशेषता विधिसयुक्त देखताहै बहुरि उसी प्रकाश करके आपको और महाराजको पहिचानताहै और योंभी जानताहै कि यह भोग सब अन्तमें नाशको पावेंगे यद्यपि इसकाल विषे रमणीक भासते हैं तौभी निनाश रूपहैं और सुख इनका वेगही विरसहोजाताहै और परिणाममें इनका परमदुःखहै सो चिरकाल पर्य्यन्त रहताहै पर यह बूझ पशुओं को प्राप्त नहीं होती इस बूझ का अधिकारी केवल मनुष्यही है सो केवल इसबूझ करकेभी कार्य्य सिद्धि नहीं होती काहेसे कि यद्यपि ऐसेभी जानै कि यह पदार्थ मेरी हानि करनेहाराहै पर जबलग इसके त्यागनेका बल न होवे तबलग इसजानने करके लाभ कुछ नहीं होता जैसे रोगी जानताहै कि यह रोगमुझको दुःखदेताहै परजबलग उसरोगके दूर करने की समर्थता न होवे तबलग रोगी को सुख नहीं प्राप्तहोता ताते श्री ज्ञानकीनाथजूकी दयाकरके दूसरा देवता मनुष्य को बलदेताहै और सहायता करताहै जैसे प्रथम देवताकेप्रकाशकरके इसपुरुषने जानाथा कि यह पदार्थ मुझ को दुःखदायक है तैसेही दूसरे देवता के बलकरके उसपदार्थ का त्यागकरताहै और जैसे मनुष्यको प्रथम भोग भोगनेकी इच्छाथी तैसेही उनभोगोंको त्यागने की इच्छा आन फुरती है और ऐसे चाहताहै कि भोगोंके दुःखसे मुक्तहोकर सुखी होवों ताते भोग भोगने की जो इच्छाथी सो आसुरीसेनाथी और भोगों की निवृत्ति करनेहारी जो इच्छाहै सो देवतों की सेनाहै सो भोगोंके भोगनेकी इच्छाका नाम वासनारूपहै और भोगोंके दूरकरने की इच्छाकानाम धर्मरूप है सो इनदोनों सेनाविषे सदा विरोध और लड़ाई रहती है काहेसे कि असुरोंकी सेना कहती है कि इन भोगोंको भोगिये और देवतों की सेना कहती है कि इन का त्याग करिये सो यह मनुष्य इनदोनों सेनाकी खैंचविषे रहता है पर जब यह पुरुष धर्मकी दृढ़ताविषे अपने चरण ठहरावे और भोगवासना से लड़ाई विषे मानवान होवे सो इसी मानवानता का नाम मनोजहै और जब भोगों को वशी करके और उनपर समर्थता पावे तब इसी का नाम परम जीतहै और जबलग इनकी लड़ाई विषे रहताहै तिसीकानाम मनकायुद्ध कहते हैं ताते सन्तोष इसी का नामहै कि धर्मकी दृढ़ताविषे अपने चरण ठहरावे और भोगोंकी वासनाके सम्मुखहोकर स्थिरहोवे सो जहां यह दोनों सेना नहीं होतीं तहां सन्तोष भी नहीं

होता इसीकारण करके कहाहै कि देवतों को भी सन्तोषका अधिकार नहीं और पशुवों और बालकोंविषे सन्तोषकी समर्थता नहीं ताते जान तू वह दोनों देवता मनुष्य की रक्षाके निमित्त महाराजने किये हैं सो तिनका नाम चित्र और गुप्त है ताते जिसको श्रीरामजीकी दयाकरके बूझका अर्थ खुलताहै और युक्तिकरके तात्पर्य्य को समझताहै वह ऐसे जानताहै कि कारण बिना कोई पदार्थ उत्पन्न नहीं होता ताते बूझवान् देखताहै कि प्रथम बालकको बूझ और पहिचान कुछ नहीं होती जो कर्म के फलको विचारै और सन्तोष की श्रद्धा और बल भी नहीं होता बहुरि किशोरअवस्था विषे बूझ और बलके कारण यह दोनों देवताहैं सो बूझ और उत्पन्न करते हैं पर बूझ सबका मूलहै काहेसे कि प्रथम यही होतीहै बहुरि श्रद्धा और यत्न और करतूति उसके फलफलहैं ताते वह देवता जो इस मनुष्य को मार्ग दिखाताहै सो विशेष और उत्तम है इसी कारण करके उसका स्थान दाहिने ओर कहा है कि तेरी रक्षाकरता है सो रक्षा इसप्रकार करताहै कि तुझको शुभमार्ग दिखाता है सो जब तू उसके वचन की ओर श्रवण राखै तब उससे बूझ और पहिचान तुझको प्राप्त होती है और जब तू उसकी ओर सावधानहोवै तब यही सावधानता उस देवता पर तेरा उपकार होता है काहे से कि उसके वचनों को तैंने व्यर्थ न किया और इसी सावधानता को वह देवता तेरी भलाई लिखताहै और जब तू उस देवता के वचन से विमुखहोवै जो उसकी ओर सावधान न होवै तब तू भी पशुवों के समान होवेगा क्योंकि बूझ और करतूति के फलकी पहिचानसे निष्फल रहेगा सो यह तेरी विमुखताको वह देवता बुराई लिखताहै वैसेही वह दूसरा देवता जो तुझको भोगों के दूरकरनेका बल देताहै सो जब तू उसके अनुसार पुरुषार्थकर तब इसी तेरे पुरुषार्थको वह देवता भलाई लिखताहै और जब उससे विपर्यय करतूति करै तब यही बुराई होती है सो यह दोनों अवस्था तेरे ऊपर वह देवते लिखते हैं सो यह लिखना तेरे हृदय विषेही है पर तेरे जानवने से गुप्तहै काहेसे कि वह देवते और उनका लिखना इस जगत्की नाईं आधिभौतिक नहीं सो इनको नेत्रों करके देखनहींसक्ता पर जब मृत्युका समय आवताहै तब यह स्थूल नेत्र मुंदजाते हैं और परलोकके देखने वाले नेत्र खुलजाते हैं तब उनका लिखा प्रत्यक्षही पाया जाताहै और परलोक विषे अपने कर्मोंको विस्तार सहित देखताहै अर्थ यह कि विशाल पर्यन्त न

रके स्वर्गविषे इ सुख भोगनाहै सो हमने और ग्रन्थोंविषे तिसका निर्णय बहुत कहा है और यहां मेरे कहने का प्रयोजन यहहै कि सन्तोष बड़ा होताहै जहां परस्पर दोनों सेनाओं का विरोध होताहै सो एक देवतोंकी सेनाहै और एक असुरोंकी सेनाहै सो यह दोनोंविषे ही सेना इस मनुष्यके हृदयविषे इकट्ठी रहती हैं ताते प्रथम चरण धर्म्म विषे रखना यही है कि इनकी लड़ाई विषे सावधान होवे काहेसे कि आदिही बालक अवस्थाविषे आसुरीसेनाने हृदयरूपी गढ़को वशीकार करलियाहै और देवतोंकी सेना पीछे किशोरअवस्था विषे प्रकटहोती है सो जबलग यह पुरुष दैत्यों की सेनाको वशीकार न करे तबलग उत्तम भोगोंको प्राप्त नहीं होता और जबलग पुरुषार्थ करके युद्ध न करे और इसी युद्ध विषे सन्तोष न करे तबलग भोगोंकी सेना वशीकार नहीं होती और हृदयरूपी गढ़ दुष्टोंसे नहीं छूटता ताते जो पुरुष इस लड़ाई विषे सावधान नहीं हुआ वह पुरुष ऐसेहै जैसे अचेत राजा होवे जो अपना देश शत्रुओं को अर्पदेवे और लुटवावे पर जब यह भोग इसपुरुष के वशीकारहोवें और विचारकी आज्ञाविषे बर्ते तब जानिये कि इसकी सम्पूर्ण जीतहुई है सो ऐसा कोई विरलाही होताहै और बहुत पुरुषों की अवस्था ऐसी होतीहै कि कभी उनकी जीत होतीहै और कभी हारहोती है अर्थ यह कि कभी भोग प्रबल होते हैं कभी धर्म्म की प्रबलता होती है पर संतोषकी दृढ़ता बिना इसगढ़की कदाचित् जीत नहीं होती॥ अब प्रकट करना इसका कि सन्तोष को जो आधाधर्म कहा है सो किसप्रकारहै और प्रकटकरना आधाधर्म किसप्रकारहै॥ तातेजान तू कि धर्म एकपदार्थका नाम नहीं सो धर्मके लक्षण और शाखा बहुत हैं जैसे महापुरुषनेभी कहाहै कि धर्म के अनेक द्वारहैं पर सबोंसे विशेष यहहै कि श्रीरामजीको एक पहिचानना और एकमांही विषे चित्तको स्थिरकरना और तीसरा द्वारा धर्मका यहहै कि पापोंका त्याग करना सो यद्यपि धर्म्मके लक्षण बहुतहैं पर मूल सबके यह तीन पदार्थहैं एक बूझ १ दूसरा तिसकी अवस्था २ तीसरा करतूति ३ सो इनतीनों बिना कोई लक्षण धर्म्मका सिद्ध नहीं होता जैसे त्यागका मूल यहहै कि पापोंको विपरीत जानना सो यह बूझहै और अवस्था यहहै कि आगे जो पाप कियाहोवे तिस का पश्चात्ताप करना सो यह शाखाहै और फल यहहै कि पापोंका त्यागकरना और भजन विषे सावधान होना सो यह त्यागकी फलतानि है ताते बूझ और स-

मस्था और करतूति यह तीनों धर्म्म के रूपहैं पर इन तीनों विषे बूभ विशेषहै काहेसे कि यह बूभ सबकी मूलहै सो चित्तकी अवस्था भी बूभहीं करके रहती है और अवस्थाके अनुसार करतूति प्रगट होतीहै ताते बूभ वृक्षकी नाई है और चित्तकी अवस्था उसकी शाखाहै और अवस्था के अनुसार जो करतूति होतीहै सो सब फलहै ताते निस्संदेह धर्म दो पदार्थोका नाम हुआ सो एक बूभ दूसरा करतूति सो सन्तोष बिना सिद्ध नहीं होती इस प्रकार सन्तोष को आधा धर्म कहाहै और संतोषकेभी दो भेदहैं सो जब विषयोंके त्यागविषे सतोष करिये तब इसका नाम संतोषहै और जब क्रोधको सतोषकर सहिये तब इसका नाम धैर्यहै और व्रतकरने विषे भोगोंका संयम होताहै ताते व्रतकरना आधा सतोषकहाहै और जब संपूर्ण दृष्टि करतूति की ओर करिये कि करतूति के करने विषे कठिनाई अधिकहै और सतोष बिना करतूति सिद्ध नहीं होती तब सम्पूर्ण धर्म सन्तोषही से सिद्ध होताहै पर जबलग यह पुरुष वासना के विरुद्ध विषे है तबलग भोगों के त्याग और दुःखके सहने विषे सन्तोषही चाहिये है और योंभी कहाहै कि धर्मवान् पुरुषकी करतूति इसप्रकार होती है कि दुःखविषे सतोष करना और सुख विषे धन्यवाद करना सो इसप्रकारकर देखिये तो आधाधर्म धन्यवाद हुआ और आधाधर्म सन्तोष हुआ ऐसेही महापुरुषने भी कहाहै कि धर्म के दो भागहैं सो एक भाग संतोषहै और एक धन्यवाद है और जो कठिनाईकी ओर देखिये कि सतोष करना बहुत कठिनहै तब सम्पूर्ण धर्म संतोषही से सिद्ध होता है॥ अर्थ प्रगट करना इसका कि सर्व अवस्था और सर्वकाल विषे सन्तोषही चाहिये॥ ताते जानतू कि यह मनुष्य दो अवस्थासे रहित कदाचित् नहींहोता सो एक इष्टहै और दूसरी अनिष्ट है सो इन दोनोंविषे सन्तोष चाहिये है पर इष्ट विषे सन्तोष करना यहहै कि सम्पदा भोग मान आरोग्यता स्त्री पुत्र और और इसकी नाई जो पदार्थ हैं सो इन विषे सन्तोष करना बहुत कठिनहै काहेसेकि जब यहपुरुष अन्तरमुखहोवे और भोगोंको सत्यजाने और इनविषे प्रसन्नहोकर बैठे तब इसजीवको निपुनता और अचेतता प्राप्त होती है इसीकारण से सन्त जनोंने कहाहै कि निर्धनता विषेपदै रहीये कि निर्धनता विषे सन्तोष सुगमहै है और धन और सम्पदा विषे सन्तोष करना कठिनहै ताते ऐसा पुरुष दुर्लभहै जो सर्व सम्पदा विषे सन्तोष करे और महापुरुषने उनके निरद्दमन्ति

जब हमारे पास सम्पदा कुछ न थी तब भोगोंसे सन्तोषकिया जाताथा और अब बहुत मायाकरके सन्तोष नहीं किया जाता सो ऐसेही महाराजनेभी कहाहै कि धन और मान और सन्तान तुम्हारे धर्मको विघ्न करनेहारे हैं और इनहीने तुम को पटलडालाहै सो मेरे कहनेका तात्पर्य्य यहीहै कि जो सर्व भोगहोवें तो उन विषे सन्तोषकरना कठिनहै काहेते कि भोगोंकी प्राप्ति विषे सन्तोष तब होताहै जब हृदयकी निर्लेपताका बल अधिकहोवे और सुखों विषे सन्तोष करना यहहै कि मायाके पदार्थों विषे हृदय मग्नमान न होवे और इनको देखकर प्रसन्न न होवे और योंजाने कि ये पदार्थ कुछ दिन मेरेपासहैं फिर दूर होजावेंगे तातें सुखोंको सुख न जाने काहेते कि ये भोग श्रीरामजी से विमुख करनेहारे हैं तातें जब इस प्रकारजानै तब जो जो सुख इसको महाराजने दियेहैं सो तिनके धन्यवाद विषे दृढ़होवे तब महाराजकी ओर सम्मुख होताहै सो इसका धन्यवाद करना यहहै कि धन और तन और सब सुख श्रीरामहेतु लगावे सो यह धन्यवादभी संतोष के साथ सिद्धहोताहै और दूसरी अवस्था जो अनिष्ट कही थी सो, वह तीन प्रकारकी होतीहै सो एक यह कि यह पुरुष अपने पुरुषार्थ करकेहै और अपने आधीन है जैसे भजन करना और पापोंका त्याग करना १ और दूसरी अवस्था इसके पुरुषार्थ करके नहीं होती भगवत् की आज्ञाकरके होतीहै जैसे रोग और विपत्ति सो यह इसके बलकरके नहीं होती २ और तीसरी अवस्था यहहै कि प्रथम तो उस विषे इसको बलनहीं चलता पर पीछे इसके आधीन होताहै जैसे कोई पुरुष इसको हतावे सो उसका हटावना इसके आधीन नहीं पर उस के साथ बदला न लेना इसके आधीन होताहै ३ सो प्रथम अवस्था जो इसके आधीन कही थी कि भजनकरना और पापोंका त्यागना सो इस विषे निस्सन्देह संतोष चाहिये काहेसे कि भजन तप व्रत दान यह सब संतोष बिना सिद्ध नहीं होते और इनके आदि मध्य अन्त विषे सन्तोषही चाहिये सो भजन के आदि में योंचाहिये कि भजन विषे सावधान और मलिनता से रहित करै और दृष्टिको समेटराखे और मनको संकल्पों से शुद्धकरे बहुरि भजनके अन्त संतोष इस प्रकार किया चाहिये कि किसी के आगे अपना भजन प्रकट न करै और अभिमानसे रहितरहवे और यह तो निस्सन्देह प्रसिद्धहै कि संतोष बिना पापों का त्याग नहीं होता काहेसे कि जिस भोगकी जितनी तृष्णा बढ़तीहै उतना

पाप विषे सुगमही वर्त्तमान होताहै और उसविषे सन्तोष करना कठिन होताहै जैसे जिह्वाकरके जो पाप होताहै सो उस विषे सन्तोष नहीं कियाजाता काहे से कि जिह्वाका बोलना बहुत सुगमहै और यत्नसे रहितहै सो जब अधिक बोलनेका स्वभाव दृढ़ होजाताहै तब ऐसा कठिन होताहै कि जो यत्नकरके भी नहीं छूटता और बहुत बोलनाभी अविद्याकी सेनाका भटहै और बहुत बोलनेवाला पुरुष जानताहै कि मेरे वचन सुनकर लोगप्रसन्न होते हैं ताते बहुत बोलनेका त्याग नहींकरसकता और मौन करना उसको कठिन होताहै इसकारण करके बहुत बोलनेहारे पुरुषोंका उपाय यही है कि प्रथम जगत्के मिलापका त्यागकरे और एकांत विषे रहे तब अधिक बोलने के पापसे मुक्तहोता है अन्यथा नहीं १ और दूसरी अवस्था यहहै कि वह प्रथम महाराजकी आज्ञा करके होती है और पीछे उस विषे इस पुरुषका भी बलहोताहै जैसे कोई पुरुष इसको शरीर अथवा वचन साथ दण्डदेवे तब उसका बदला करना इसीके बलकरके होगा ताते इस विषे भी सन्तोष चाहिये जिसकरके उससे बदला न लेवे और जो बदलाकरेभी तो मर्यादसे अधिक न लेवे सो यह वार्त्ता इसके आधीनहै इसीपर एक सतने कहाहै कि जबलग हमने लोगोंके दुखावने विषे सन्तोष न किया तबलग हमको सम्पूर्णधर्म प्राप्त नहींहुआ और महाराजनेभी महापुरुषसे कहाथा कि जो कोई तुमको दुखावे तब तुम उसका बदला न करो और मेरा भरोसाकरो बहुरि योंभी कहाहै कि जो कोई पुरुष तुमको दुर्वचन कहे तबतुम इस विषे सन्तोष करो और उनकी संगति का त्यागकरो और योंभी कहाहै कि मैं जानताहूं कि दुर्जनोंके वचनोंकरके तेरा हृदय अप्रसन्न होवेगा पर तू मेरे भजन विषे प्रसन्नहो और उन कीओर चितही न दे सो इसीपर महापुरुषकी वार्त्ता है कि एकसमय कुछ धन लोगोंको बांटकर देतेथे तब किसी दुष्टने कहा कि यह धनको भगवत् अर्थ और विचार साथ नहीं बांटते सो जब यह वचन महापुरुष ने सुना तब उनका माथा कुछ लाल होजाभया और बहुरि कहनेलगे कि अगले महापुरुष बड़ेधन्यथे काहेते कि उनको इससेभी अधिक लोग दुखावतेथे और वह सब सहलेते थे और महाराजने कहाहै कि जब कोईपुरुष तुमको दुखावे तब तुम सहनशील होवो तो भलाहै और जो बदलालेना करो तो मर्याद अनुसारकरो अधिक न करो और ऐसा महापुरुषने अपने मित्रजनोंसे कहाथा कि यद्यपि आगे किसी जोगिशास्त्रमें योगी

कहाहै कि जो कोई किसीका हाथ काटे तब उसकाभी हाथ काटिये और जो किसी के नेत्रों वा कानोंको दुखावे तब उसकेभी नेत्रोंको और कानोंको दुःख दीजिये सो इसवचनकोभी मैं झूठा नहींकहता पर मैं तुमको इसप्रकार उपदेश करताहूं कि बुराईके बदले बुराई न करो और जो तुमको दाहिने ओर मारे तो बावां अंग भी उस की ओर राखो और जो कोई तुम्हारी पाग उतार लेवे तब तुम उसको जामाभी देदो और जो कोई तुमको बेगार पकड़कर एककोस लिजावे तब तुम आपही दोकोस चले जाओ और महापुरुषने कहाहै कि जोकोई तुमको कुछ भाव करके न देवे तब तुम उसको भावसंयुक्त देवो और जो कोई तुम्हारे साथ बुराई करे तब तुम उसके साथ भलाईही करो सो सच्चे पुरुषोंका संतोष यही है २ और तीसरी अवस्था यहहै कि उसके विषे मनुष्यका बल कुछ नहीं चलता जैसे किसीका पुत्र मरजावे अथवा धन नष्ट होजावे अथवा कोई शरीर का अंग कटजावे सो इसको आकाशीदुःख कहते हैं सो इसविषेभी संतोष करना बहुत कठिनहै और जो इनविषे संतोष करे तब उसको उत्तम फल प्राप्त होताहै ऐसेही एक सन्तने भी कहाहै कि सन्तोष तीन प्रकारकाहै सो प्रथम यह कि संतजनों की आज्ञानुसार भजन विषे दृढ़ होवे तब इस पुरुष को अधिक फल होताहै १ और दूसरा संतोष यहहै कि जो पदार्थ सतजनोंने निषेधकहे हैं सो तिन विषे न वर्ते और संतोष करके उनका त्यागकरे तब पूर्व फलसेभी द्विगुण फलको पाता है २ और तीसरा संतोष यहहै कि जो महाराज की इच्छा करके कोई दुःख अ-थवा संकट आइ प्राप्त होवे तब तिसको संतोष करकेसहे तो त्रिगुण फलको प्राप्त होताहै ३ इसे कि दुःखविषे संतोष करना सांचेही पुरुषोंका कामहै २ इसीकारण करके महापुरुष भी महाराजके आगे प्रार्थना करते थे कि हे महाराज! मुझको ऐसा निश्चयदो कि जिस करके जगत् के दुःखों को मैं प्रसन्न होकर सहौं और महापुरुष ने योंभी कहाहै कि यह महाराज का वचनहै कि जिस पुरुष को मेरी आज्ञाकरके कोई कष्टहोवे और वह पुरुष धैर्य्य करसहै और किसी के आगे उस दुःखको प्रसिद्धकरके न कहै तब उसको मैं सदैव कानकी अगेरावा देताहूं और जो उसका शरीर मृतभी होजावे तोभी मैं उसके ऊपर दया करताहूं और दाऊद सन्तने महाराज के आगे प्रार्थना करीथी कि हे महाराज! जिसको तू दुःख भेजता है और वह पुरुष प्रसन्न होकर सहै तब तू उसको कैसा फल देताहै

तब महाराजने कहा कि उसको मैं पत का सिरोपाव देताहूं जो किसी विघ्न करके उसका धर्म्म खण्डित नहीं होता और महाराजनें यों भी कहाहै कि जिसमनुष्य कोमैं दुःख भेजताहूं और वह पुरुष उस विषे प्रसन्न होकर सन्तोष करता है तब मैं उसके अपकर्मों का लेखा नहीं करता और योंभी कहाहै कि जिसके नेत्रकी ज्योति मैं हरलेऊं और वह पुरुष प्रसन्नरहै तब मैं उसको अपना दर्शन प्राप्त करताहूं और एक सन्तसे किसी जिज्ञासुने यह वचन लिख लिया था कि अपने स्वामीकी आज्ञा विषे सन्तोष करना विशेषहै सो जब उस जिज्ञासुको कोई संकट प्राप्त होताथा तब उसी काग़ज़ को पढ़कर संतोष विषे दृढ होताथा और इसी पर एक और भी वार्ता है एक माई मार्ग विषे गिरपड़ी थी और उसके पावके अँगूठे का नख उतरगया और रुधिर चलने लगा तिसी समय वह माई प्रसन्न होकर हँसने लगी तब लोगोंने पूछा कि दुःखके समय तू क्योंकर हँसी तब उस माईने कहा कि संतोष के फलकी प्रसन्नताने मेरा दुःख भी भुला दिया ताते मुझ को खेद दुःख नहीं भासा ऐसेही महापुरुष ने भी कहाहै कि महाराज की बड़ाई जाननी यहहै कि जो कुछ दुःख और कष्ट इसको आय प्राप्त होवे तब उस पुरुषको चाहिये कि लोगों के आगे प्रसिद्ध न करे और प्रसन्न रहै और एक सन्तने यों भी कहाहै कि दुःख करके रुदन करने अथवा मुखका रंग पीत होने विषे संतोष दूर नहीं होता काहे से कि दुःख विषे रुदन और मुखका फिरना अवश्यही होता है पर संतोष तबहीं दूर होताहै जब ऊँचे पुकार करके रोवे अथवा मुखसे भगवत् की निन्दा करे कि महाराजने मुझको कैसा दुःख दियाहै सो इसीपर महापुरुष की वार्ता है कि जब महापुरुष का पुत्र मृतक हुआ था तब उन के नेत्रों में कुछ आंसू भरआये तब प्रियतमोंने उनसे कहा कि रुदन करना तुम किसी ने वर्जित किया है सो तुम किस निमित्त रोवतेहो तब महापुरुष ने कहा कि यह रोना नहीं यह दयाहै सो दया करके मेरा हृदय कोमल हुआहै और दया करनेहारे पर महाराज भी दया करते हैं और एक सन्तने यों भी कहाहै कि जो किसी का कोई सम्बन्धी मरे तब शोक के वस्त्र न पहिरै और किसीप्रकार अपने शोक को जनावे नहीं तब सम्पूर्ण सन्तोष होता है और जब अपना मुख पीटे और शोक का पुकार करे और ऊंचे पुकारकर रोवे तब इस करके सन्तोष दूर होजाताहै ताते यों जानना चाहिये कि यह सबही जीव श्रीरामजी के हैं और श्रीरामजी के वरजम

किये हैं और मृतसी श्रीरामहीकी आज्ञाकर होते हैं ताते शोककरना व्यर्थ है इसी पर एक स्त्रीका वृत्तान्त है कि उस माईका एक पुत्रथा सो मृत्युको प्राप्त हुआ और पति उसमाई का कहीं गयाथा सो जब घर आया तब पूंछनेलगा कि तेरा पुत्र जो रोगीथा सो अब उसका क्या हाल है तब स्त्री ने कहा कि आज बहुत विश्राममें है ऐसे कहकर पतिको भोजन करवाया और आप भी भोजन किया बहुरि पतिसे कहनेलगी कि मेरी अमुकवस्तु पड़ोसी ने मांगलीथी पर जब मैं मांगतीहूं तब आगेसे वह शोर करती है और देतीनहीं तब पतिनेकहा कि वह महामूर्ख है जो बिरानीवस्तु मांगलेवे और देने केसमय पुकारकरती है बहुरि स्त्री ने कहा कि तुम्हारा पुत्रभी महाराजकी थातीथी सो अब अपनी वस्तु महाराज ने संभारलीनी है ताते शोककरना भलाए नहीं तब पतिने कहा कि इसीप्रकार निस्सन्देह है जब हमारेपास था तबभी महाराजकी थातीथी और अब भी उसीने संभार लिया है बहुरि इनके सन्तोषकी वार्ता जब महापुरुषने सुनी है उनदोनों को बधाईदीनी और कहा कि भगवन्त की इच्छा तुमको मीठी लगी है और इसी करके महाराज ने तुमको भी प्रियतम किया है और मैंने ध्यानविषे देखा है कि उत्तम सुखविषे तुम्हारा निवास हुआ है ताते निस्सन्देह यही मोसिद्ध हुआ कि सर्व अवस्था और सर्वकालविषे जिज्ञासु को सन्तोषही चाहिये काहेते कि यद्यपि सर्व त्यागकरके एकान्त विषे जायरहै और सर्वभोगोंसे मुक्तहोवे परन्तु वहां भी सन्तोष चाहिये इस करके कि जब एकान्त ठौरविषे बैठताहै तबभी नानाप्रकार के संकल्प फुरनेलगते हैं तब उनसंकल्पों करके भजनविषे विक्षेपताहोती है और समय व्यर्थ होता है और आयुरूपी जो इस मनुष्य की पूंजी है सो जब यह पूंजी इसकी व्यर्थगई तब इसकारके मनुष्यकी परमहानि होती है ताते इसका उपाय यह है कि आपकी भजनविषे दृढ़ावै और सन्तोष विषे दृढ़होवे तबसंकल्पों से मुक्तहोवे पर जबलग इसपुरुषका हृदय भजनविषे एकत्र न होवे तबलग आत संकल्पों से नहीं छूटता सो इसी कारण से महापुरुषने कहाहै कि जो पुरुष जुवा और अ- रोगहोवे और शुभाशुभ क्रियासे रहितहोकर बैठारहे तब वह भगवन्त की ओर से विमुखहोना काहेते कि यद्यपि इन्द्रियों कर निष्कर्म हुआहै पर मनकरके संक- ल्पोंसे रहित नहीं होसका ताते जानिये कि निष्कर्म नहीं हुआ क्योंकि मन उसका संकल्पविषे आसक्त रहताहै और अविद्या उसके निकटहै औरबुद्धि उस

भी संकल्पोंका प्रहहोती है सो जो भजनकी दृढ़ताकरके संकल्पोंको दूर न कर सके तब चाहिये कि सेवा अथवा किसी शुभक्रिया विषे इन्द्रियों को लगावे और ऐसेपुरुषको एकान्त विषे बैठना प्रमाण नहीं सो जिसके हृदयविषे भजनका बल न होवे तब चाहिये कि शरीर करके शुभक्रियाविषे स्थितहोवे तो भलाहै॥ अथ प्रकट करना उपाय सन्तोष के प्राप्त होनेका॥ ताते जानतू कि सन्तोष के द्वारे बहुतहैं और सबद्वारों विषे कठिनता करकेही सन्तोषहोताहै ताते सन्तोषके प्राप्त होने के उपायभी अनेकहैं परन्तु सर्व उपायोंका मूल ये दो हैं एकविद्या दूसरेकर्तूत सो बुरे स्वभावों का जो दुःखरूपी कहाहै सोभ्रम संतोषकरके सिद्ध होते हैं पर यहांभी मैं एक दृष्टान्तकरके प्रकट करताहूं ताते जानतू कि संतोषका अर्थ आगे यही कहाहै कि भोगोंकी वासनाको विरुद्ध करना और शुभ वासना विषे सावधान होना और इनदोनोंकी लड़ाई विषे सतोष करना सोइनको दृष्टान्त यहहै जैसे किसीपुरुषके दो पहलवान होवें और यह पुरुष मांगे कि एक पहलवान प्रबलहोवे और दूसरे को निर्बलकिया चाहे तब इसका उपाय यही है कि जिसको निर्बल किया चाहताहै तिसकी सहायता नहीं करता और बलदायक आहारभी उसको नहीं देता ताते वह निर्बल होजाताहै तैसेही जो पुरुष कामके बलको तोड़ न सके तब तिसका उपाय यहहै कि प्रथम काम उपजानेहारे आहारोंका त्यागकरे और दिनको व्रतरखे और जब रात्रिको भोजनकरे तब अभिलावे और आधा भूखारहे और आहारभी रूखाकरे बहुरि दूसरा उपाय यहहै कि सुन्दररूप देखने करके भी काम उत्पन्न होताहै ताते चाहिये कि एकान्तठौर छिपैठे और जहां सुन्दरस्त्री और लड़काहोवें तहां न जावे और नेत्रोंको सुन्दररूप देखनेसे रोकराखे और तीसरा उपाय यहहै कि मनके संकल्पोंको विचारकर दृढ़ राखे और यों जाने कि यह शरीर रुधिर मांस विष्ठा मूत्र और और मलादिकोंका घरहै ताते कामका सुख महामलिनहै सो ऐसे वचनों करके मनको समझावे क्योंकि यह मन कठोर पशुकी नाईं है ताते इसको कष्टदेना प्रमाणहै जैसे कठोर पशुको इसप्रकार घास और पानी देवें कि वह पशु भूखा भी न मरे और अधिकशक्तिभी न होवे तब वह पशु दृढ़करके कोमल होजाताहै तैसेही आहार और नेम और संकल्पों के रोकनेकरके कामका बल क्षीण होजाताहै बहुरि इसपुरुषको चाहिये कि भजनरूपी वासनाको दो प्रकारका बलदेवे सो एक यहहै कि संतोष

के फलका लाभ मनको समझावै और जिन पुरुषोंने भोगोंका त्याग कियाहै उन के वचनोंको पढ़ै सो जब इसप्रकारकरके मनीति दृढ़होती है तब यह पुरुष जानता है कि भोगोंकोसुख क्षणमात्रहै और इनके त्यागनेका सुख अविनाशीहै याते ऐसे ज्ञान करके धर्मकी वासना प्रबल होजाती है बहुरि दूसरा यहहै कि शनैः शनैः करके भोगोंकी प्रवृत्तिको विपर्यय करै सो इसका दृष्टान्त यहहै कि जैसे कोई पहलवान चाहै कि मेरा बल अधिक होवे तब प्रथम शरीरको आहारकरके पुष्ट करताहै बहुरि बलवान् कार्य्य करताहै तब क्रमकरके बल उसका बढ़जाताहै और जो आपसे निर्बलहोवें प्रथम उसकेसाथ जोरावयामी करताहै तब इसकरकेभी बल अधिक होताहै और बलवान् कार्य करने करके भी बल अधिक होताहै तैसेही सन्तोषके प्राप्त होनेका उपाय भी इसीप्रकारहै कि जब शनैःशनैः करके भोगवासनाको विपर्यय करै तब पीछे सब वासनाओं के दूर करनेको समर्थ होजाताहै और सन्तोषकी विद्या जो कहीथी सो बलदायक आहारकी नाईहै सो इसकरके भी संतोष दृढ़ होताहै ॥ अथ धन्यवादकी महिमा धन्यवादकी ॥ याते जान तू कि धन्यवाद उत्तम पदार्थहै और अति प्रियतमहै याते धन्यवादके सम्पूर्णरूपको प्राप्तहोना कठिनहै इसीपर महाराजनेभी कहाहै कि मेरे सृष्टिविषे धन्यवादकरने हारे कमहैं और योंभी कहा है कि मुक्तिदायक लक्षण दो प्रकारके होतेहैं सो एक लक्षण भगवत्मार्गका साधनहै जैसे त्याग और संतोष और वैराग्य और समृह और अपने मनके साथ विरुद्ध करना सो यह सबही परमपदके साधनहैं और परमपद इनसे परेहै पर इनलक्षणों करके प्राप्त होताहै बहुरि दूसरे लक्षण ऐसे हैं कि वह लक्षण आपही सुखरूप है और इस पुरुषके सदैव काल संगीहैं और वह किसी पदके साधन नहीं जैसे प्रेम और एकता और भरोसा और धन्यवादभी इनहीं विषे है सो यह पदार्थ परमपद रूपहै याते धन्यवादका वर्णन पोथीके अन्त में कहता था पर इसकारण करके यहां कहाहै कि संतोषके साथ धन्यवाद का सम्बन्ध है और धन्यवाद की बड़ाई बहुत विशेषहै और धन्यवादही भजनहै इसीपर महाराजने भी कहाहै कि धन्यवाद का करनाही भजन है और यों भी कहा है कि तुम मेरा भजन करो तब मैं तुम्हारा स्मरण करूं बहुरि योंभी कहाहै कि मेरा धन्यवाद करो मनमुखता मतकरो इसीपर महापुरुषने भी कहा है कि जो पुरुष भोजन खाकर धन्यवाद करै तब प्रेम करने को प्राप्त होताहै

ऐसा फल संतोषके व्रत करनेहारे को होवे और योगी कहते हैं कि परलोक विषे महाराज कहेंगे कि धन्यवाद करनेहारे जीव कहां हैं और जिन्हों ने धन्यवाद किया होवे वे उठ खड़े होवें तब धन्यवाद करनेहारे उठेंगे और उनके ऊपर महाराज अतिप्यार और दयाकरेंगे बहुरि महाराज की महापुरुषकोभी आज्ञाहुई थी कि अपने प्रियतमों से कहो कि बहुत धन इकट्ठा न करो तब यही वचनसुनकर एक प्रियतमने महापुरुषसे पूछाथा कि फिर इकट्ठा क्या करें तब महापुरुषने कहा कि जिह्वा श्रीसीताराम जपनेहारी और हृदय धन्यवादकरनेहारा और मित्र सत्संगी जो भजनकीयुक्ति सिखावे और मायाके जंजालोंसे काढ़कर भजनविषे दृढ़ करावे और भगवत्मार्ग विषे लगावे सो यह तीनों इकट्ठे करो बहुरि एक और सन्तनेभी कहा है कि धन्यवादकरके भरोसा प्राप्त होताहै और एकसंतने कहाहै कि मैंने एकदिन महापुरुषकी धर्मपत्नी से पूछा कि कोई आश्चर्यवार्त्ता महापुरुष की मुझको सुनाओ तब उन्हों ने कहा कि महापुरुष की वार्त्ता सबही आश्चर्य रूपहैं पर एक दिन उन्हों ने संध्याकालका भजनकिया और सारीरात्रिभर खड़े रोतेरहे तब मैंने कहा कि तुम्हारे पाप तो भगवत्ने सबही क्षमाकिये हैं अब तुम किस निमित्त रोतेहो तब महापुरुषने कहा कि मैं महाराजका धन्यवाद करकेही रोताहूं और महाराज ने मुझको इसप्रकार आज्ञा करी है कि सोते जागते बैठते उठते भजन विषेही दृढ़रहो और जो कुछ धरती आकाश विषे मैंने रचना बनाई है तिसको देखकर आश्चर्यवान् भतहोवो बहुरि यह जो अवस्था तुमको दीनी है तिसका धन्यवादकरो और धन्यवादही के प्रेमकरके रुदनकरो भयकरके न रोवो इसी पर एक वार्त्ता है कि एक समय में कोई एक महापुरुष हुये थे सो किसी पहाड़में जाय निकसे तब एक पत्थरको उन्हों ने रोतेदेखा तब उस पत्थर से पूछा कि तू क्यों रोताहै तब वह पत्थर महाराजकी आज्ञाकरके बोलताभया कि जबसे मैंने सुनाहै कि महाराजने यों कहाहै कि पत्थर और मनुष्योंको मैं नरक विषे डालकर जलाऊंगा तब से मैं रोताहूं बहुरि उन महापुरुष ने महाराज से प्रार्थनाकरी कि हे महाराज ! इस पत्थरको अभय करो सो यह प्रार्थना महाराज ने मानकर उसको अभयकिया बहुरि दूसरीबार वह महापुरुष वहां आये तब फिरभी उसको रुदन करते देखा तब पूछा कि तू अब क्या रोता है नरक से तो अभय होचुका तब उस पत्थर ने कहा कि आगे तो मैं भय करके रोताथा और

अन धन्यवाद करके रोताहै ताते जान तू कि मनुष्योंका हृदय पत्थरसे भी कठोर है पर जब उस पत्थर की नाईं कभी भय करके रोवे और कभी प्रेम करके रुदन करे तब कोमल हृदय होताहै अन्यथा नहीं होता ॥ अथ प्रकटकरना रूप धन्यवादका ॥ ताते जान तू कि धर्मकामूल तीनपदार्थ आगे कहेथे एक बूझ दूसरी अवस्था तीसरा करतूति सो यह तीनों धर्म्म के मूलहैं पर प्रथम बूझ है और बूझ से अवस्था उत्पन्न होती है और अवस्था से करतूति प्रकट होतीहै सो धन्यवाद की बूझ यह है कि जितने सुख और पदार्थ श्रीराघवजी ने हमको दिये हैं सो उनकी दयाकरके जाने और अवस्था धन्यवाद की यह है कि महाराज के उपकारकी प्रसन्नता हमके हृदय विषे होवे और करतूति यह है कि वह पदार्थ उसी की ओर लगावे जिस करके महाराज प्रसन्नहोवें सो धन्यवादकर्त्ताका सम्बन्ध बुद्धि और जिह्वा और इन्द्रियों के साथ होताहै सो जबलग भलीप्रकार इस सम्बन्ध को पहिंचाने नहीं तबलग सम्पूर्ण धन्यवाद नहीं करसक्ता और जबलग सम्पूर्ण सुख महाराज की ओर से न जाने तबलग सम्पूर्ण बूझ धन्यवाद की नहीं प्राप्तहोती जैसे राजा किसी को शिरोपावदेवे और वह पुरुष यों जाने कि प्रधानकी प्रसन्नताले मुझको शिरोपाव मिलाहै तब ऐसे जाननेकरके पूर्ण धन्यवाद राजाका नहीं हुआ अर्थ यह कि उसकी प्रसन्नता राजाके शिरोपाव देनेपर न हुई पर जब इसप्रकार जाने कि मुझको राजा के आज्ञापत्र करके शिरोपाव मिलाहै और पत्र कलम और मसीकरके लिखाहोताहै सो पत्र और कलम और स्याहीको वसीला जानने करके धन्यवाद खंडित नहीं होता काहेसे कि कागज और कलम और स्याही आपकरके सिद्ध नहीं होते केवल पराधीन होतेहैं जैसे खजानची किसी को राजाकी आज्ञाकरके कुछदे तब खजानची का उपकार नहीं होता खजानची राजाकी आज्ञा के वशीभूत होता है आप करके देनेको समर्थ नहीं होता ताते कलम और खजानची पराधीनता विषे समानहैं तैसेही सर्वसुख जो श्रीजानकीनाथ महाराज ने इस मनुष्य को दियेहैं और अन्न आदिक जो अनन्त पदार्थ जीवों के सुख और जीवनके हेतु पृथ्वीपर प्रकट किये हैं सो जब उनकी उत्पत्ति वर्षाकरके जाने और वर्षा मेघसे जाने और जहाजोंका निर्विघ्न चलना पवनकरके जाने तब इस करके महाराज का केवल धन्यवाद नहीं होता पर जब यों जाने कि इन्द्र मेघ पवन सूर्य चन्द्रमा नक्षत्र और और

इनकी नाईं जो सर्व देवताहैं सो सब श्रीरामहीकी शक्तिकरके चलते हैं और यह सब उसके हाथकी कलमहै आप करके समर्थ कुछ नहीं तब ऐसे जानने करके धन्यवाद पूराहोता है ताते जब कोई मनुष्य तुझको कुछदेवे और तू उसी मनुष्यसे जाने तब यह मूर्खता होती है और इस करके धन्यवाद खण्डित होताहै पर जब यों जाने कि इस मनुष्य ने यह पदार्थ मुझको तब दियाहै जब महाराजने उसकी ओर अपना प्यादा भेजाहै और जिस प्यादे ने बरतम दिखाया है सो वह प्यादा श्रद्धाहै जो उस मनुष्यके अन्तर विषे भेरी है और उस पुरुषने जिस करके यों जानाहै कि लोक परलोकविषे मेराभला तब होवेगा जबमैं इस पुरुषको अपना पदार्थ देऊंगा ताते उसने अपने प्रयोजन करके दियाहै और लोक अथवा परलोक विषे अपना भला चाहाहै ताते उसने आपही को दियाहै और किसी को नहीं दिया सो जब इसप्रकार देखिये तब महाराजही ने दियाहै और महाराजने किसी प्रयोजन करके नहीं दिया केवल अपनी दया करके दियाहै। सो जब तुमने ऐसा जाना कि सबही मनुष्य महाराजके खजानची हैं और महाराजही की आज्ञा करके देते हैं तब ऐसे जानने करके धन्यवाद पूर्ण होताहै और महाराज की ओर तू सम्मुख होताहै इसीपर महाराजसे मूसा महापुरुष ने पूछाथा कि हे महाराज। तुमने आदिमें मनु महाराज को उत्पन्न कियाथा और नानाप्रकारके सुख उनको दिये तब उन्होंने आपका धन्यवाद किसप्रकार किया तब महाराजने कहा कि उसने सबसुखों को मेरी ओरसे जाना और और किसी की ओर अपना हृदय न दिया सो इसकरके उसका धन्यवाद पूर्ण हुआ ताते जान तू कि धर्मकेद्वारे बहुत कहे हैं सो प्रथम यहहै कि श्रीरामको निर्लेप और अकर्त्ता जानना और सर्व स्वभावोंसे रहित और संकल्पसे परे जानना १ और दूसरा द्वारा यहहै कि महाराजको एक जानना और ऐसा जानना कि श्रीरामजीकी नाईं और कोई नहीं २ और तीसरा द्वारा यहहै कि सर्व पदार्थोंके उत्पन्न करनेहारे श्रीरामहैं और पुनि ज्ञानकरभी वहीहैं ताते सर्वप्रकार महाराजका धन्यवादहै सो ऐसे जानना विशेष है ३ इसीपर महापुरुषने भी कहाहै कि महाराजको निर्लेप और अकर्त्ता जानने करके दशभाग भलाई होती है और जब यों जाने कि महाराज एकहै और उसकी नाईं और कोई नहीं तब बीसभाग भलाई होती है और महाराजको सर्व पदार्थों का कर्त्ता जानकर धन्यवाद करने विषे

तीसभाग मलाई होतीहै सो यह जो तीन वचन हैं इनके केवल पढ़ने से फल प्राप्त नहीं होता पर जब इनका अर्थ चित्तविषे दृढ़होवे तब निस्सन्देह फलप्राप्त होताहै सो धन्यवादकी क्रिया यही है और इस जानने करके जो प्रसन्नता उत्पन्न होती है सो धन्यवाद की अवस्था भी यही है जैसे कोई पुरुष किसी मनुष्य से कोई पदार्थ अथवा सहायता पावे तब उसके ऊपर प्रसन्न होताहै सो प्रसन्नता तीनप्रकारकी है जैसे कोई राजा किसी दास को घोड़ा देवे और वह दास इस करके प्रसन्न होवे कि मुझको भला पदार्थ प्राप्त हुआहै काहेसे कि मुझको घोड़ा अवश्यही चाहिये था और मैं घोड़े बिना दुःखीथा सो अब घोड़ा पायकर सुखी होऊंगा तब यह प्रसन्नता राजाके उपकारकी नहीं होती काहेसे कि जब उस दास को वनविषे दैवयोग करके प्राप्त होजाता तबभी ऐसाही प्रसन्नहोता १ बहुरि दूसरी प्रसन्नता यहहै कि राजा जिसको घोड़ा देवे वह पुरुष इसकरके प्रसन्नहोवे कि मेरेऊपर राजा दयालु हुआहै ताते मुझको अपनी दयाकरके औरभी अनेक पदार्थ देवेगा सो यह प्रसन्नता पदार्थ देनेहारेके ऊपर होतीहै उस पदार्थके प्रयोजनकी प्रसन्नता नहीं ताते जब उस पुरुषको वनविषे घोड़ा प्राप्त होता तब ऐसा प्रसन्न न होता काहेसे कि राजासे एक घोड़ा पायकर नानाप्रकारका आशावन्त होताहै और प्रसन्न होताहै सो यहभी धन्यवाद है पर सकामीहै ताते सम्पूर्ण धन्यवाद नहीं २ और तीसरी प्रसन्नता यहहै कि जिस दासको राजा घोड़ा देवे वह इसकरके प्रसन्न होवे कि मैं इसघोड़ेपर सवारहोकर राजाको प्राप्त होऊंगा और उसके साथ रहूंगा और टहल करूंगा सो यह प्रसन्नता सम्पूर्ण धन्यवादकरके होती है ३ तैसेही श्रीजानकीश महाराजने जो इस मनुष्यको सुख दिये हैं सो उन सुखोंकरके आपको सुखी मानकर प्रसन्नहोवे तब महाराज का धन्यवाद नहींहोता और जब इसकरके प्रसन्नहोवे कि जिसमहाराजने दयाकरके इतने सुख मुझको दिये हैं सो औरभी सुख देवेगा और सुखकी प्राप्तिको महाराजकी दया जाने और और सुखों की आशाकरे तब यहभी सकामी धन्यवाद होताहै बहुरि जो पुरुष इस करके प्रसन्न होवे कि यह सर्वसुख महाराजकी दासी और मेरे धर्म का वसीला है काहेसे कि सुखको पायकर मैं क्रिया और भजन विषे दृढ़ होऊंगा और सर्व पदार्थोंको महाराजके अर्थ लगाऊंगा और इसकरके महाराजके दर्शनको प्राप्त होऊंगा सो इस करके प्रसन्न होना सम्पूर्ण धन्यवादहै

और सम्पूर्ण धन्यवादका लक्षण यहहै कि जिस पदार्थ को देखकर इसको मोह उत्पन्न न होवे तिस पदार्थ को विपत्ति जाने और जब वह पदार्थ दूरहोवे तब सुख और भलाई जाने और उसके दूरहोने विषे धन्यवादकरे और जो पदार्थ भगवत् के मार्ग विषे सहायता न करे तिसको देखकर शोकवान् होवे प्रसन्न न होवे इसीपर शिवलीभक्तने कहाहै कि महाराजके उपकारका धन्यवाद यहहै कि सुख-दानी महाराज को देखे सुखकी ओर दृष्टि न राखे और जिसके नेत्र सुन्दररूप देखते और जिह्वा स्वादोंको और इन्द्रिया अपने २ भोगोंको चाहतीहोवें सो ऐसे विषयी पुरुषको विचार नहीं होता और विचार बिना संतोष सिद्ध नहींहोता और सन्तोष बिना धन्यवाद नहीं होसक्ता बहुरि धन्यवाद का करतूत इसप्रकार है कि वह मन और जिह्वा और शरीर के साथ सम्बन्ध रखताहै सो मनकरके धन्यवाद का करतूत यह होताहै कि सर्व सृष्टिका भला चाहे और किसीके धन और मान को देखकर ईर्षा न करे और जिह्वाका करतूत यों होताहै कि सर्वअवस्था और सर्वसमय विषे धन्यवाद का उच्चारणकरे और सुखदेनेहारे महाराज पर चित्तकी प्रसन्नता प्रकटकरे इसीपर एकवार्त्ता है कि किसी पुरुष से महापुरुष ने पूछा कि तुम्हारा क्या हालहै तब उसने कहा कि कुशलहै बहुरि महापुरुषने कहा कि तेरा क्या हालहै फिर भी उसने कहा कि बहुत सुख है और महाराज का धन्यवाद है तब महापुरुष ने कहा कि मेरा फिर फिर पूछने का प्रयोजन यही है कि महाराज का धन्यवाद प्रकटहोवे ताते मनुष्यों को ऐसे चाहिये कि जब कोई इससे पूछे कि तेरा क्या हालहै तब धन्यवादही का उत्तर देवे तो दोनों पुरुष उत्तम फलको प्राप्त होते हैं और जब कोई किसीसे दुःख पूछे और कहनेहारा अपना दुःख और ग्लानि वर्णनकरे तब दोनों पापीहोते हैं ताते यद्यपि यह पुरुष दुःखी भी होवे तो भी महाराज का धन्यवादही वर्णन करे काहेसे कि यह सबही लोग पराधीन हैं और इनके हाथ कुछ नहीं सो तिनके आगे महाराजकी निंदा करनी ऐसे अगाण होवे ताते सर्वप्रकार प्रकट और गुप्तमें भी धन्यवाद करना विशेष है काहेसे कि यद्यपि यह जीव नहीं जानसक्ता पर महाराज की दृष्टिविषे उसकी दुःखमें इसकी भलाई होवे तो आश्चर्य नहीं ताते धन्यवाद करना भलाहै और जो धन्यवाद न करसके सो सन्तोषकरे बहुरि धन्यवाद की करतूति शरीर करके इसप्रकार होती है कि सर्व इन्द्रियां जिस निमित्त इसको महाराजने दीनी हैं तिनको उसी अर्थ

विषे लगावे तब स्वामी की प्रसन्नता को प्राप्तहोता है सो यद्यपि इसकी भलाई बुराई से महाराज निर्लेप हैं पर जीवकी भलाई को देखकर महाराज भी प्रसन्न होते हैं जैसे राजा अपने दासपर दयालुहो और वह दास राजा से दूर देशमें रहताहोवे सो राजा उसकेपास घोड़ा और खर्च भेजे जिसकरके वह दास इसकेपास आवे तब मैं उसकी बड़ी पदवीकरूं सो राजा को उस दास का दूर और निकट होना समानहै पर केवल उसही का सुख चाहता है और राजाको अपना प्रयोजन कुछ नहीं पर जब वह दास उस घोड़े पर सवारी करके राजाकी ओर आवे तब जानिये कि उसने राजाका सम्पूर्ण धन्यवाद कियाहै और जब घोड़ेपर सवार होकर राजाकी ओर से पीठकरके चले तब निस्सन्देह राजासे दूर होता है और उसी घोड़े करके दूसरी दिशाको जावे तब राजा से विमुखहोता है बहुरि जब यों करे कि घोड़े पर चढ़े नहीं और व्यर्थही छोड़देवे तो भी मनमुख होता है पर यद्यपि उस दूसरी दिशाजानेहारे की नाईं नहीं तो भी राजाको प्राप्त नहीं होता तैसेही इस मनुष्य को इन्द्रिय और नानाप्रकार के सुख जो महाराज ने दिये हैं सो जब यह पुरुष उनको धर्म के मार्ग विषे लगावे तब इसकरके भगवत्के निकट पहुँचताहै और सम्पूर्ण धन्यवाद को प्राप्त होता है और जब इन्द्रियों को पाप कर्मों विषे लगावे तब महाराजसे दूर होताहै और मनमुखता को प्राप्तहोता है और जब इन्द्रियों को पाप और धर्मविषे न लगावे और शरीरके सुखोंविषे आसक्त होवे तो भी मनमुख होताहै ताते सम्पूर्ण सुखों का धन्यवाद तब होताहै जब प्रथम महाराजकी आज्ञाको पहिचाने और उसी आज्ञा विषे इन्द्रियों को लगावे सो ऐसी अवस्था महाकठिनहै और सूक्ष्महै काहेसे कि सब कोई इसको पहिचान भी नहींसक्ता कि महाराज इस करके प्रसन्न होता है और इन्द्रियां और सर्व पदार्थ इसको किस निमित्त दिये हैं ताते प्रथमही यों जानना चाहिये कि सर्व सृष्टि और सकल पदार्थ महाराज ने कार्य बिना नहीं उत्पन्न किये सो जब इन सबके प्रयोजन को समझे तब धन्यवाद का अधिकारी होताहै ॥ अब प्रकट करना रूप मनमुखता का ॥ ताते जान तू कि मनमुखता यहहै कि पदार्थ के प्रयोजन को न समझना और जिस कार्य के निमित्त यह पदार्थ उत्पन्न हुये हैं तिस से विपर्ययमें लगाना और जिस प्रकार महाराज की आज्ञा हुई है सो जब उसी आज्ञा विषे इदर्तें तब धन्यवाद होता है और अन्यथा कार्य विषे लगावो

करके मनमुखहोताहै और भगवत्की आज्ञाका समझनाभी सम्पूर्ण विद्या विना नहीं होता सो विद्या यहहै कि भगवत् ने जो पदार्थ दियेहैं सो भगवत्के भजन विषे लगावते और भजन विषे दृढ तब होताहै जब बुद्धिके नेत्र खुलतेहैं ताते यथार्थ के मार्ग विषे चलताहै और अनुभव करके सर्व पदार्थों के तात्पर्य को समझता है तब धन्यवाद का अधिकारी होताहै और जिस जिस कार्यके निमित्त भगवत्ने पदार्थ उत्पन्न किये हैं सो इनका समझना भी कठिन है यद्यपि अपनी बुद्धिके अनुसार सब कोई कछुक समझताहै पर सब भेदोंको समझना कठिनहै जैसे सब कोई जानता है कि वर्षा खेती के निमित्त होतीहै और खेती आहारके निमित्तहै और सूर्य करके रात्रि और दिन प्रकट होताहै सो रात्रि बिश्रामके निमित्त बनाईहै और दिन व्यवहार के निमित्त बनायाहै ऐसेही इसकी न्याईं जो बहुत पदार्थ और भी प्रकटहैं सो तिनका ज्ञान सर्व मनुष्यों को प्रसिद्ध है पर सूर्य विषे रात्रि दिवस बिना और भी केते कार्यहैं कि उनका ज्ञाता किसी को नहीं और आकाश विषे जो तारामण्डलहैं सो तिनकी बात भी कोई नहीं जानता और योंभी नहीं जानता कि उनकी उत्पत्तिका भेद क्या है जैसे सर्व कोई जानता है कि हाथ ग्रहण करने को उत्पन्न किये हैं और नेत्र देखनेके निमित्त कियेहैं पर यों नहीं जानसक्ता कि नेत्रोंके साथ पलके किस कारणको बनायेहैं और योंभी नहीं जानता कि जिगर और तिल्लीको किस निमित्त उत्पन्न कियाहै काहेसे कि यह भेद सूक्ष्म है और एक ऐसे भेदहैं कि वह सूक्ष्म से भी अतिसूक्ष्म हैं ताते उनको कोई विरला बुद्धिमान् समझता है और इनका बखान करना भी बहुत विस्तार है ताते मैं तात्पर्य को प्रकट करके कहताहूं कि मनुष्य को भगवत्ने अपनी बूझ और पहिचानके निमित्त उत्पन्न कियाहै ताते चाहिये कि परलोक को जाने और शरीर और इन्द्रियों को भगवत् मार्ग विषे लगावे और परलोकही का चिन्तवन चित्त विषे दृढकरे और हृदय विषे यों न जाने कि भगवत्ने सर्व पदार्थ मेरेही निमित्त उत्पन्न किये हैं काहेसे कि जब यों जानता है तब जिस पदार्थ विषे अपना लाभ नहीं देखताहै तो कहता है कि यह पदार्थ किस कार्यको उत्पन्न कियाहै और इसके उत्पन्न होनेका भेद क्याहै और कहताहै कि मक्खी और चींटीके उत्पन्न होनेका कारण क्याहै सो यह बड़ी मूर्खता है काहेसे कि ऐसेही मक्खी और चींटी भी कहते हैं कि मनुष्य काहेको

उत्पन्न हुआहै और इसके उपजने विषे क्या लागाया जो इसको जताइ भासता है और व्यर्थही भटकता फिरताहै ताते जैसा अनुमान मूर्खोका करताहै वैसाही मनुष्य भी करताहै पर जब भलीप्रकार विचार करके देखिये तो श्रीरामचन्द्रजीकी दया सर्व विषे पूर्णहै और समानहै ताते महाराजकी समर्थता ऐसी है कि जो पदार्थ जिसप्रकार चाहियेथा उसीप्रकार उत्पन्न कियाहै जैसे पशु और मृग और खानि और और जो स्थावर जंगम सर्व सृष्टिहै सो अपनी दयाकेसाथ भलीप्रकार बनायेहैं और जो कुछ इनको चाहिये था सो सबही दियाहै जैसे शिर और हाथ पाव और सुन्दरताई सो सबही को दिया है काहेते कि महाराजके निकट कोई पदार्थ ऐसा नहीं जो न होवे और कृपणता भी नहीं जो न देवे ताते सब किसीको सुन्दर और सम्पूर्ण करके बनाया है और जो पदार्थ उत्पन्न न किया सो उत्पत्तिका अधिकारी न था जैसे अग्नि विषे शीतलता उत्पन्न नहींहुई सो अग्नि विषे उष्णताही चाहियेथी और जल विषे शीतलताही चाहियेथी ताते जलको अग्नि पर विरोधी करके बनाया है सो इनके विरुद्ध विषेही प्रयोजनहै जैसे अग्नि विषे उष्णताका प्रयोजनहै तैसे जल विषे शीतलता भी प्रयोजनहै और दोनोंही चाहिये हैं सो जब अग्निकी उष्णता दूर होजावे तब अपने कार्य को समर्थ नहीं होसक्ता ताते जान तू कि जो पदार्थ उत्पत्तिका अधिकारीथा सो उत्पन्न कियाहै और जो उत्पत्तिका अधिकारी न था सो नहीं किया जैसे माखीको लघु बनायाहै सो माखीको बड़ाईका अधिकार था ताते उसका अधिकार उसको भी दियाहै काहेते कि श्रीरामचन्द्रजी की दया विषे कृपणता नहीं ताते अपनी परमउदारता करके माखीको भी जीव और बल और इन्द्रिय और सर्व अङ्ग सुन्दर दियेहैं बहुरि मुख और हाथ पाव नेत्र और नाक शिर और आदिके

है बहुरि हाथी को भी भाड़लेती है सो मेरे कहने का प्रयोजन यह है कि भगवत्की दया केवल मनुष्यपर नहीं सर्व विषे भरपूरहै ताते कीट पतंग और अवर जीवोंको जो कुछ चाहियेथा सो सबको दियाहै और जो कुछ हस्ती को दिया सो और कोभी दियाहै और इन को मनुष्यके निमित्त नहीं किया जैसे मनुष्यको इनके निमित्त नहीं किया तैसे सब किसी को अपने अपनेही निमित्त किया है काहेसे कि उत्पत्तिके आदिमें महाराजके साथ मनुष्यका सम्बन्ध न था जो उस करके मनुष्यही उत्पन्न होनेका अधिकारी होता और न होते सो यों नहीं काहे से कि श्रीरघुवंद्रजू की दया समुद्रकीनाईं भरपूरहै और सर्वपदार्थ उसही विषे हैं ताते मनुष्य भी उसी विषे हैं और अवरभी अनेक पदार्थ उसही विषे हैं पर इस विषे इतना भेदहै कि उत्तम पदार्थपर नीचपदार्थ निछावर कियाचाहिये है और जो कुछ धरतीपर सृष्टिहै सो तिसविषे मनुष्य उत्तमहै इसी कारणसे और जीव मनुष्यके टहलुवे बनाये हैं सो यद्यपि ऐसेभी हैं पर तोभी समुद्रों विषे ऐसे जीव उत्पन्न किये हैं कि उनको परम दयाकरके सर्वप्रकार सुन्दर बनाया है और उन से मनुष्यका कुछ प्रयोजन सिद्ध नहीं होता और सब मनुष्य उनकी सुन्दरताई को पहिंचानभी नहीं सके बहुरि वही पहिंचानताहै जो समुद्रोंकी क्रियाका वेत्ता होवे सो मेरे कहनेका प्रयोजन यह है कि तू सर्वथा यों न जाने कि भगवत् ने सबकुछ मेरे निमित्त बनायाहै और जिस विषे अपने कार्यकी सिद्धता न देखे तब यों न कहे कि यहपदार्थ काहेको उत्पन्न कियाहै सो जब तैंने यों जाना कि मकोड़ा मेरे वास्ते उत्पन्न नहीं हुआ तैसेही चन्द्र सूर्य तारे और देवता भी तेरे अर्थ नहीं बनाये यद्यपि इनकरके तुम्हारे कार्यभी सिद्धहोते हैं पर केवल तुम्हारे निमित्त उत्पन्न नहीं किये जैसे माखी यद्यपि तेरे शरीरकी दुर्गंधिको चूस लेती है और दुर्गन्धताको घटाती है पर माखीको केवल इसी कारण नहीं बनाया और जो तू यों जाने कि सबकुछ मेरेही निमित्त सिरजाहै तब इसका दृष्टान्त यहहै जैसे माखी अपने चित्तविषे जाने कि यह मिठाई हलवाई लोग मेरेही अर्थ करते हैं सो यद्यपि उनकी मिठाई करके माखीको भी आहार प्राप्तहोताहै पर वह हलवाई अपने व्यवहार विषे ऐसा मगन है कि माखी उसके स्मरण विषे भी नहीं होती तैसेही तू भी जानता है कि सूर्य मेरेही अर्थ नित्यप्रति उदय होते हैं और सूर्य भगवत् की आज्ञा विषे ऐसे मगनहोते हैं कि तुझको स्मरण किसीभी नहीं लाते

उत्पन्न हुआहै और इसके उपजने विषे क्या मायाथा जो इसको उत्पन्न कियागया है और व्यर्थही भटकता फिरताहै ताते जैसा अनुमान पक्षीको करताहै तैसाही मनुष्य भी करताहै पर जब भलीप्रकार विचार करके देखिये तो श्रीपरमात्माकी दया सर्व विषे भरपूरहै और समानहै ताते महाराजकी मगरबेश एसी है कि जो पदार्थ जिसप्रकार चाहियेथा उसीप्रकार उत्पन्न कियाहै जैसे पशु और पक्षी और खानि और और जो स्थावर जंगम सर्व सृष्टिहै सो अपनी दयाकेसाथ भलीप्रकार बनायेहैं और जो कुछ इनको चाहिये था सो सबही दियाहै जैसे शिर और हाथ पांव और सुन्दरताई सो सबही को दिया है काहेतें कि महाराजके निकट कोई पदार्थ ऐसा नहीं जो न होवे और कृपणता भी नहीं जो न देवे ताते सब किसीको सुन्दर और सम्पूर्ण करके बनाया है और जो पदार्थ उत्पन्न न किया सो उत्पत्तिका अधिकारी न था जैसे अग्नि विषे शीतलता उत्पन्न नहीं हुई सो अग्नि विषे उष्णताही चाहियेथी और जल विषे शीतलताही चाहिये थी ताते जलको अग्नि पर विरोधी करके बनाया है सो इनके विरुद्ध विषेही प्रयोजनहै जैसे अग्नि विषे उष्णताका प्रयोजनहै तैसे जल विषे शीतलता का प्रयोजनहै और दोनोंही चाहिये हैं सो जब अग्निकी उष्णता दूर होजावे तब अपने कार्य को समर्थ नहीं होसक्ता ताते जान तू कि जो पदार्थ उत्पत्तिका अधिकारीथा सो उत्पन्न कियाहै और जो उत्पत्तिका अधिकारी न था सो नहीं किया जैसे माखीको तरीसे बनायाहै सो माखीको तरीहीका अधिकार था ताते उस का अधिकार उस को भी दियाहै पहिये कि श्रीजानकीजीवनजू की दया विषे कृपणता नहीं ताते अपनी परमउदारता करके माखीको भी जीव और मन और इन्द्रिय और सर्व अङ्ग सुन्दर दियेहैं पहुरि पंख और हाथ पांव नेत्र मुख नाक शिर और आहारके पचने का स्थान और मल त्यागने का स्थान और और भी जो कुछ उसको चाहियेथा सो सबही दियाहै परन्तु कुछ नहीं राखा पहुरि उसको नेत्रभी चाहियेथे और शिर उसका छोटाथा ताते पलकों के उठाने का अधिकारी न था इसी कारण से माखी के नेत्र पलकोंविना बनाये हैं और पलकोंकी उत्पत्तिका प्रयोजन यहहै कि यह धूरिसे नेत्रों की रक्षा करते हैं जैसे दर्पणको सिकलीगर शुद्ध करताहै तैसेही पलक नेत्रों को शुद्ध करते हैं सो माखीके नेत्र पलकोंसे रहित थे ताते उसको दो हाथ अधिक दिये हैं जो उनसे नेत्रोंके मर्दन करके शुद्ध करे

हैं बहुरि हाथों को भी भाड़लेती है सो मेरे कहने का प्रयोजन यह है कि भगवत्की दया केवल मनुष्यपर नहीं सर्व विषे भरपूरहै ताते कीट पतंग और इतर जीवोंको जो कुछ चाहियेथा सो सबको दियाहै और जो कुछ इनको दिया सो और कोभी दियाहै और इनको मनुष्यके निमित्त नहीं किया जैसे मनुष्यको इनके निमित्त नहीं किया तैसे सब किसी को अपने अपनेही निमित्त किया हैं काहेसे कि उत्पत्तिके आदिमें महाराजके साथ मनुष्यका सम्बन्ध न था जो उस करके मनुष्यही उत्पन्न होनेका अधिकारी होता और न होते सो यों नहीं काहेसे कि श्रीराघवेंद्रजू की दया समुद्रकीनाईं भरपूरहै और सर्वपदार्थ उसही विषे हैं ताते मनुष्य भी उसी विषे हैं और इतरभी अनेक पदार्थ उसही विषे हैं पर इस विषे इतना भेदहै कि उत्तम पदार्थपर नीचपदार्थ निछावर किया चाहिये है और जो कुछ धरतीपर सृष्टिहै सो तिसविषे मनुष्य उत्तमहै इसी कारणसे और जीव मनुष्यके टहलुवे बनाये हैं सो यद्यपि ऐसेभी हैं पर तोभी समुद्रों विषे ऐसे जीव उत्पन्न किये हैं कि उनको परम दयाकरके सर्वप्रकार सुन्दर बनाया है और उन से मनुष्यका कुछ प्रयोजन सिद्ध नहीं होता और सब मनुष्य उनकी सुन्दरताई को पहिंचानभी नहीं सक्के बहुरि वही पहिंचानताहै जो समुद्रोंकी विद्याका वेत्ता होवे सो मेरे कहनेका प्रयोजन यह है कि तू सर्वथा यों न जाने कि भगवत् ने सबकुछ मेरे निमित्त बनायाहै और जिस विषे अपने कार्यकी सिद्धता न देखे तब यों न कहै कि यहपदार्थ काहेको उत्पन्न कियाहै सो जब तैंने यों जाना कि मकोड़ा मेरे वास्ते उत्पन्न नहीं हुआ तैसेही चन्द्र सूर्य तारे और देवता भी तेरे अर्थ नहीं बनाये यद्यपि इन करके तुम्हारे कार्यभी सिद्ध होते हैं पर केवल तुम्हारे निमित्त उत्पन्न नहीं किये जैसे माखी यद्यपि तेरे मांसकी दुर्गंधि को चूस लेती है और दुर्गन्धता को घटाती है पर माखी को केवल तेरी हितकारता नहीं करती और जब तू यों जाने कि सबकुछ मेरेही निमित्त कियाहै तब इस का दृष्टान्त यहहै जैसे माखी अपने चित्तविषे जाने कि मीठी मिठाई हलवाई लोग मेरेही अर्थ करते हैं सो यद्यपि उनकी मिठाई करके माखीको भी आहार प्राप्तहोताहै पर वह हलवाई अपने व्यवहार विषे ऐसा मग्न है कि माखी उसके स्मरण विषे भी नहीं होती तैसेही तूभी जानता है कि सूर्य मेरेही अर्थ नित्यप्रति उदय होते हैं और सूर्य भगवत् की आज्ञा विषे ऐसे मग्नहोते हैं कि तुझको स्मरण विषेभी नहीं लाते

जाते जानत् कि सूर्यको क्योंरे निमित्त नहीं बनाया है यही। सूर्यके प्रकाशसे ये नेत्रभी प्रकाशित होते हैं पर योगी लोग निमित्त नहीं बनाया वही सूर्य की उपमा करके धरतीको सबगात समान होताहै तब जगतको देखता है और जिस विषे नानाप्रकारके आहार उत्पन्न होते हैं और जिसमें पदार्थोंके उत्पन्न होनेका भेद वर्णन किया निही नाना गर्भ के युक्त ईश्वरभार्ग प्रकटिये कहताहू जैसे ये नेत्रहैं सो इनको कामोंको बनाये हैं प्रथम लागोंको कि नेत्रों करिके देखे रहि समरूपव्यवहार निःशेष होताहै और पृथ्वीपर्यन्तके विषे कि नामान का सो इनको देख कर गम्भीर नहीं बड़ाई और सर्वपृथ्वी और पृथिवीको पहिचाने पर करे जो इन नेत्रों करके परमेश्वरको देखे तब यह तेरा देखना ही भगवत् के मनवांछित मनमुखी होती है यही नेत्रों का देखना सूर्य करके सिद्ध होताहै और सूर्य धरती और आकाश विषे होता है पर जबतक नेत्रों करके कुदृष्टि देखे तब धरती और आकाश और सूर्य और नेत्र इन सबपदार्थों की मनमुखी होतीहै इसीपर महापुरुषने भी कहाहै कि जब यह मनुष्य पाप करने लगता है तब इसको धरती और आकाशभी धिक्कार करते हैं बहुरि धान और गावें तुमको महाराजने इस निमित्त दिये हैं कि इनकरके खानापीना स्नानादिक क्रिया सिद्धहो सो जो तू इनकरके पापकर्म करे तब यह सभी मनमुखी होती है काहे से कि महाराज की प्रसन्नता निवारे करके होती है और विचार देखें कि उत्तमपदार्थको उत्तमकार्य विषे लगाना और नीचपदार्थको नीच विषे लगाना यह और दोनों हाथों सो एक इनमें से प्रबल और उत्तमहै सो दाहिना हाथहै और बायां हाथ निर्बल और नीचहै ताते चाहिये कि उत्तम हाथ से उत्तम कार्य करिये और नीच हाथ से नीच कार्य करिये तब विचार पूर्ण होताहै और जब ऐसे न करे तब पशुओं की नाई मूर्ख होताहै जैसे मूर्खका थूकके शुद्धस्थान विषे डारे और नेत्र मूढ़ नेत्रों की मनमुखी होती है और जो किसी वृक्षको जाना अपने कारण तोड़े सो प्रयोजन बिना तोड़े ही यहभी मनमुखता होतीहै काहेते कि महाराजने जो वृक्ष बनाये हैं सो निर्मल करके फल फूल आदिक ऊपजाये हैं और वृक्षों की शाखा इनके कारण बनाये हैं पर कोई प्रयोजन बिना तोड़ा सो यहभी मनमुखी होती है और जब तुम्हारे किसी काम का प्रयोजन होय तब उसका काटनाभी प्रमाण है काहेसे कि तुम्हे महाराज उसके बड़ाई दियाहै

मंहुरि इस विषे एक और भी संदेह है कि जब वह वस्तु किसी दूसरे पुरुषका होवे तब भी तुमको क्रोडना प्रमाण नहीं यद्यपि इस विषे तेरा प्रयोजन भी होवे काहेसे कि जिसकी वह वस्तु है तिसका भी कार्य तेरे प्रयोजनसे विशेष है तब भली प्रकार विचार करके देखिये तब भी किसी मनुष्य का अधिक कुछ नहीं काहेसे कि महाराजने यह माया थारकी नाई बनाई है और इसलिये सर्वपदार्थ भोजनकी नाई है और सर्व जीव उसके ऊपर अभ्यागत हैं पर वह भोजन किसी एक पुरुषके दाखे विषे नहीं होता और यद्यपि ग्रास भिन्न २ सबही लेते हैं तो भी वह भोजन सबहीका साझा है पर जब कोई पुरुष ग्रासको अपने हाथ विषे लेवे तब दूसरे पुरुषको यह भी नहीं चाहिये कि उसके हाथसे ग्रासको छीनलेवे तैसेही सर्वजीवों की भिन्न ग्रासकी नाई है अधिक कुछ नहीं ताते किसी की वस्तुको हरलेना भी प्रमाण नहीं और योंभी प्रमाण नहीं कि उस थालसे भोजन लेकर गुप्तस्थान विषे रखता जावे सो इस निमित्त जो किसी और के हाथमें न आवे तैसेही इस मनुष्यको भी प्रमाण नहीं कि प्रयोजनसे अधिक धनका संचय करे और खजाना इकट्ठा करके धर रखे और जिनको चाहता है तिनको न देवे तो यह भी अयोग्य है पर यह वचन भी जगत विषे प्रसिद्ध नहीं कहलाता काहेसे कि जब किसीका प्रयोजन भी प्रत्यक्ष नहीं जानाजाता पर जब यों कहिये कि कार्य से अधिक संचयकरना अयोग्य है और जिनको उसका विशेष प्रयोजन है तिनसे बचाकर रखना प्रमाण नहीं तब सब कोई निडर होकर एक दूसरेकी वस्तु लेवे और कहे कि तेरे पास अधिक है और मुझको चाहिये है ताते इस वचनको प्रमाण लिये भी प्रसिद्ध नहीं कहा क्योंकि इसका समझना कठिन है पर अधिक धन रखना महाराजने भी वर्जित किया है और विचार विषे भी अयोग्य है तैसेही अनाजका संचना भी अयोग्य है काहेसे कि अनाज जीवों का जीवन है और जो पुरुष यह मनसा करके अनाजको इकट्ठा करे कि जब महंगा होवेगा तब बेचेंगे तब उस को महाराज भी धिक्कार करते हैं काहेसे कि जिनको चाहिये तिनको नहीं देना और अपने लोभके निमित्त इकट्ठा करके रखना सो यह भी महानिंद्य है तैसेही और स्वर्णका इकट्ठा करना भी अयोग्य है काहेते कि इनको महाराजने दो कार्यों के निमित्त उत्पन्न किया है सो प्रगट है कि सर्व पदार्थों का मोल निर्णय करके मर्यादा करें और इनके बिना जाना नहीं जाता कि घोड़ेका भाव

कराइए और दामका मोल कराइए और कपड़ेका मोल कराइए सो इन पदार्थोंको एक दूसरे के हाथ बेच नहीं सक्ता सो जब किसी पुरुष को किसी वस्तुका प्रयोजनहोवे तब मोललिये बिना लेनादेना सिद्ध नहींहोता ताते महाराजने चांदी सोना कराया है सो इसको इकट्ठा करके दाबरखना ऐसाहै जैसे कोई धर्मवान राजा को कैदकरराखे ताते निस्सन्देह पापी होता है और जब कोई पुरुष सोने चांदी के बासन बनावे तब ऐसे होताहै जैसे कोई श्रेष्ठ पुरुष को नीचटहल बिषे लगावे अथवा राजासे मजूरी करावे काहे से कि बासन माटी और काष्ठ और और धातुके भी होते हैं ताते चांदी सोने अयोग्यहै॥२ और दूसरा कार्य यह है कि रूपा सोना दुर्लभ पदार्थ बनाये हैं काहेसे कि इन करके सर्व पदार्थ प्राप्तहोते हैं इसी कारण से इनको सब कोई प्यारा रखता है और सबका व्यवहार इनही करके सिद्ध होताहै और जब बिचार करके देखिये तब बस्त्र और अन्नआदि पदार्थ खाने पीने शीत उष्णके कार्य करते हैं पर एक दूसरे का कार्य नहीं कर सक्ते जैसे बस्त्रसे क्षुधा प्यास और अन्नसे शीत उष्ण दूर नहीं होसक्ते और सोना चांदी करके सब कुछ प्राप्त होताहै ताते जगत् बिषे इनकी बड़ाई और दुर्लभता है ताते जान तू कि जो कुछ प्रभु ने बनाया है सो प्रयोजन बिना नहीं बनाया पर इसबिषे ऐसे गुप्तभेदहैं कि उनको कोई नहीं पहिचानसक्ता कोई बिरले संत ही पहिचानते हैं और एक ऐसेभेदहैं कि उनको बुद्धिमान् पहिचानते समझते हैं और जीव नहीं समझते पर जब अज्ञानी पुरुष किसी वृक्षकी शाखा कार्य बिना तोड़े अथवा कोई और कार्य बिचार से बिपर्य्यय करे तब मैं उसपर ऐसा दोष नहीं रखता काहेसे कि वह मूर्ख है और पशुकी नाई जीवहै पर बुद्धिमान् जिज्ञासु को यही चाहिये कि अज्ञानियों की नाईं न बर्ते और सर्वक्रिया बिचारके साथही और परलोक के मार्ग बिषे सावधान होवे और सर्व कार्यों के भेद को पहिचाने तब देवतों के स्वभाव को पावेगा और जब यों न करे तब पशुओं के स्वभावको प्राप्तहोताहै॥ अथ प्रकट करना रूप मुक्ता॥ ताते जान तू कि भगवत् ने जो कुछ इस मनुष्यके निमित्त उत्पन्न कियाहै सो सर्व पदार्थ चारप्रकार के हैं सो एक पदार्थ ऐसेहैं कि वह इसलोक और परलोक बिषे सुखदेनेहारे हैं सो ज्ञान और भक्ति समान हैं सो सदा सुखही है १ बहुरि दूसरे पदार्थ ऐसेहैं कि इसलोक और परलोक बिषे दुःखदायक हैं सो मूर्खता और बुरा स्वभाव है

सो परमदुःख यही है १ और तीसरे पदार्थ ऐसे हैं जो इसलोक विषे सुखरूप भी भासते हैं और परलोक विषे दुःख देनेहारे हैं सो यह माया के भोगहैं कि मूर्ख इन को सुख जानते हैं और बुद्धिमान् इनको दुःख जानकर त्यागदेते हैं ऐसे कोई क्षुधावन्त पुरुष होवे और विष मिलाहुआ शहद उसको प्राप्त होवे सो जब वह मूर्खता करके विषका मधुविषे नहीं जानताहै तब उस को सुख जानकर भोगताहै और जब विषको मधु विषे पहिचानताहै तब दुःख जानकर उसका त्यागकरताहै तैसेही मायाके सुखोंको मूर्ख सुख जानते हैं और बुद्धिमानों ने दुःखजानकर त्याग दियाहै ३ और चौथे प्रकार के पदार्थ ऐसे हैं कि इसलोक विषे दुःख भासतेहैं और परलोकविषे सुख रूपहैं सो तप और वैराग्य और भोगोंसे विपर्यय होताहै सो मूर्ख इनको दुःख जानते हैं और बुद्धिमानोंके निकट यही परमसुख है जैसे कटुई औषध को बुद्धिमान् रोगी प्रसन्न होकर अंगीकार करताहै और मूर्ख कटुआ जानकर त्याग देताहै परन्तु इस जगत् विषे सर्व पदार्थ आपस विषे मिलेहुये हैं अर्थात् उन विषे बुराई भलाई दोनों का सम्बन्ध होताहै पर जिस पदार्थ विषे लाभ अधिक होवे और हानि अल्प होवे तिसको भला जानिये सो यह भी अधिकार प्रति होताहै पर शरीर के कार्य्यमात्र जो धनहै सो तिसविषे लाभ बहुतहै और हानि थोड़ी है और प्रयोजन से अधिक जो धनहै सो तिस विषे लाभ अल्पहै और हानि अधिकहै सो बहुत मनुष्योंका अधिकार ऐसाही होताहै परन्तु कोई पुरुष ऐसे भी होते हैं कि उनको थोड़ाधन भी दुःख देताहै काहे से कि जब उन के धन कुछ नहीं होता तब तृष्णासे रहित होते हैं और जब थोड़ा धन भी उनको प्राप्त होताहै तब बहुत धनकी तृष्णा करनेलगते हैं और एक ऐसे भी ज्ञानवान् पुरुष होते हैं जिनको बहुत धन भी दुःख नहीं देता काहे से कि वह धनके प्रयोजनवालों को देनेको समर्थ होते हैं और विचारके विना मनको नहीं लगाते ताते प्रसिद्ध हुआ कि एकही पदार्थ किसीको सुखदायक होताहै और किसी को दुःख देताहै सो अपने २ अधिकार प्रति होताहै बहुरि तिस पदार्थको सुखदायक जानिये सोभी तीनप्रकार के होते हैं सो प्रथम वह जो आदि विषे सुखदायक होते हैं १ दूसरे अन्तकाल विषे सुख देनेहारे हैं २ और तीसरे आदी सुन्दर होते हैं और सुन्दर होते हैं ३ और जिन पदार्थों को बुरा जानिये सो भी तीनप्रकार के होते हैं अथवा आदिमें दुःखदायक होते हैं १ अथवा

करादे और दासका मोल करादे और कपडेका मोल करादे सो इन पदार्थोंको एक दूसरे के हाथ बेच नहीं सक्ता सो जब किसी पुरुष को किसी वस्तुका प्रयोजनहोवे तब मोलकिये बिना लेनादेना सिद्ध नहींहोता ताते महाराजने चांदी सोना बनाया है सो इसको इकट्ठा करके दाबरखना ऐसाहै जैसे कोई धर्मवान् राजा को कैदकरराखे ताते निस्सन्देह पापी होता है और जब कोई पुरुष सोने चांदी के बासन बनावे तब ऐसे होताहै जैसे कोई श्रेष्ठ पुरुष को नीचटहल विषे लगावे अथवा राजासे मजूरी करावै काहे से कि बासन माटी और काष्ठ और और धातुके भी होते हैं ताते चांदी सोने अयोग्यहैं १ और दूसरा कारण यह है कि रूपा सोना दुर्लभ पदार्थ बनाये हैं काहेसे कि इन करके सर्व पदार्थ प्राप्तहोते हैं इसी कारण से इनको सब कोई प्यारा रखता है और सबका व्यवहार इनहीं करके सिद्ध होताहै और जब विचार करके देखिये तब वस्त्र और अन्नआदि पदार्थ खाने पीने शीत उष्णके कार्य करते हैं पर एक दूसरे का कार्य नहीं कर सक्ते जैसे वस्त्रसे क्षुधा प्यास और अन्नसे शीत उष्ण दूर नहीं होसक्ते और सोना चांदी करके सब कुछ प्राप्त होताहै ताते जगत् विषे इनकी बड़ाई और दुर्लभता है ताते जान तू कि जो कुछ प्रभु ने बनाया है सो प्रयोजन बिना नहीं बनाया पर इसविषे ऐसे गुप्तभेदहैं कि उनको कोई नहीं पहिचानसक्ता कोई विरले संत ही पहिचानते हैं और एक ऐसेभेदहैं कि उनको बुद्धिमान् पंडितही समझते हैं और और नहीं समझते पर जब अज्ञानी पुरुष किसी वृक्षकी शाखा कार्य बिना तोड़े अथवा कोई और कार्य्य विचार से विपरीत करे तब वो उसपर ऐसा दोष नहीं रखता काहेसे कि वह सूर्ख है और पशुकी नाईं नीचहै पर बुद्धिमान् जिज्ञासु को नहीं चाहिये कि अज्ञानियों की नाईं न बर्ते और सर्वक्रिया विचारके साथकरे और परलोक के मार्ग विषे सावधान रहे और सर्व कार्यों के भेद को पहिचाने तब देवतों के स्वभाव को पावेगा और जब यों न करे तब पशुओं के स्वभावको प्राप्तहोताहै॥ अब प्रकट करना रूप सुमरण॥ ताते जान तू कि भगवत्ने जो कुछ इस मनुष्य के निमित्त उत्पन्न कियाहै सो सर्व पदार्थ चारप्रकार के हैं सो एक पदार्थ ऐसेहैं कि वह इसलोक और परलोक विषे सुखदेनेहारे हैं सो ज्ञान और भजन समान हैं सो सोई सुखदाई है १ और दूसरे पदार्थ ऐसेहैं कि इसलोक और परलोक विषे दुःखदायक हैं सो मूर्खता और बुरा स्वभाव है

सो परमदुःख यही है ४ और तीसरे पदार्थ ऐसे हैं जो इसलोक विषे सुखरूप भा-
सते हैं और परलोक विषे दुःख देनेहारे हैं सो यह मायाके भोग हैं कि मूर्ख इन
को सुख जानते हैं और बुद्धिमान् इनको दुःख जानकर त्यागदेते हैं ऐसे काहू
क्षुधावन्त पुरुष होवे और विष मिलाहुआ शहद उसको प्राप्त होवे सो जब वह
मूर्खता करके विषको मधु विषे नहीं जानताहै तब उसको सुख जानकर भोगताहै
और जब विषको मधु विषे पहिचानताहै तब दुःख जानकर उसका त्याग करता
है तैसेही मायाके सुखोंको मूर्ख सुख जानते हैं और बुद्धिमानों ने दुःखजानकर
त्याग दियाहै ३ और चौथेप्रकार के पदार्थ ऐसे हैं कि इसलोक विषे दुःख भा-
सते हैं और परलोकविषे सुख रूप हैं सो तप और वैराग्य और भोगोंसे विपर्यय
होताहै सो मूर्ख इनको दुःख जानते हैं और बुद्धिमानोंके निकट यही परमसुख
है जैसे कडई औषध को बुद्धिमान् रोगी प्रसन्न होकर अंगीकार करताहै और
मूर्ख कडुआ जानकर त्याग देताहै पर इस जगत् विषे सर्व पदार्थ आपस विषे
मिलेहुये हैं अर्थात् उन विषे बुराई भलाई दोनों का सम्बन्ध होताहै पर जिस
पदार्थ विषे लाभ अधिक होवे और हानि अल्प होवे तिसको भला जानिये सो
यह भी अधिकार प्रति होताहै पर शरीर के कार्यमात्र जो धनहै सो तिसविषे
लाभ बहुतहै और हानि थोड़ी है और प्रयोजन से अधिक जो धनहै सो तिस
विषे लाभ अल्पहै और हानि अधिकहै सो बहुत मनुष्योंका अधिकार ऐसाही
होताहै पर कोई पुरुष ऐसे भी होते हैं कि उनको थोड़ाधन भी दुःख देताहै काहे
से कि जब उन के धन कुछ नहीं होता तब तृष्णासे रहित होते हैं और जब
थोड़ा धन भी उनको प्राप्त होताहै तब बहुत धनकी तृष्णा करनेलगते हैं और
एक ऐसेभी ज्ञानवान् पुरुष होते हैं जिनको बहुत धन भी दुःख नहीं देता काहे
से कि वह धन के प्रयोजनवानों को देनेको समर्थ होते हैं और विचारके विना
धनको नहीं लगाते ताते प्रसिद्ध हुआ कि एकही पदार्थ किसीको सुखदायक
होताहै और किसी को दुःख देताहै सो अपने २ अधिकार प्रति होताहै पुनि
जिस पदार्थको सुखदायक जानिये सोभी तीनप्रकार के होते हैं सो प्रथम वह जो
आदि विषे सुखदायक होवे हैं १ दूसरे अन्तकाल विषे सुख देनेहारे हैं २ और
तीसरे आदही सुखरूप होवे हैं और सुन्दर होते हैं ३ और जिन पदार्थोंको दुःखजा-
निये सो भी तीनप्रकार के होते हैं अथवा आदिमें दुःखदायक होते हैं १ अथवा

पीछे दुःख होवे है जैसे अपरा आगम अंके यह पदार्थ नीरस और मलिन होजावे है फिर जो पदार्थ अबभी सुखरूप और पीछे भी सुखरूप होवे और मनरञ्जन भि होवे सुन्दर और प्रिय होवे सो बुद्धि और अनुभवसे ओ पापयुक्त रूपभी पदार्थ है इसके [illegible] नहीं क्योंकि [illegible] अन्तःकरण विषे जो तुम्हारे सो मूर्खता है कहदेवे कि मूर्खता करके आदिही दुःख होजावे और अन्तभी दुःखपावे और दुर्बलता वा पदार्थ [illegible] सो मूर्खता विषे आदि ही यह दुःख प्रसिद्ध है कि जब मूर्ख मनुष्य [illegible] कि जिस पदार्थ को न जाने और जानने को समर्थ नहीं होसक्ता तब निस्सन्देह दुःखको प्राप्त होता है और मूर्खता करके जो कुछ करता है सो कुरूपता प्रकट [illegible] नहीं मानती पर मूर्खता जाके चित्त विषे अधिक होजाता है सो अन्तमें कुरूपता [illegible] प्राप्त होती है और दुर्बलता के साथ जो कार्य किया जाता है सो निश्चय करके अन्तभी महा दुःख प्राप्त होता है क्योंकि कोई पदार्थ ऐसा भी होता है जो प्रथम उत्पन्न विषे सुख प्राप्त होवता है और पीछे वही दुःखदायक होता है जैसे कोई [illegible] हाथ को [illegible] होवे और [illegible] करके सर्पके विषे हाथ की [illegible] पदार्थ ऐसे भी होते हैं कि जिस उनको एक [illegible] विषे तो सुखसहित है और [illegible] देखिये तो दुःखरूप है जैसे किसी पुरुष का [illegible] तब वह पुरुष [illegible] होकर और [illegible] जल विषे डालने लगता है और [illegible] कि किसी [illegible] सो [illegible] और [illegible] तो जल विषे डालने के धनका नाश होता है और जब [illegible] और देखिये तो [illegible] का [illegible] जाने इस जगत् विषे जितने सुख हैं सो [illegible] जो प्रपंच [illegible] हैं जैसे भोजन और कामादिक भोग हैं सो यह सुख पदार्थ हैं और बहुत मनुष्य इसहीको सुख जानते हैं और जो [illegible] करते हैं सो [illegible] के निमित्त करते हैं और [illegible] सो [illegible] की बुद्धि थोड़ी है कि [illegible] भोग तो पशुओं को भी प्राप्त होते हैं और [illegible] भोग पशुओं विषे मनुष्यों से अधिक पाये जाते हैं और [illegible] और [illegible] भी [illegible] विषे मनुष्यों से [illegible] सुख विषे जाते हैं सो [illegible] मनुष्य और पशुओं [illegible]

नहीं ॥ बहुरि दूसरा सुख मान और बड़ाई है जो क्रोध और अहंकारकी प्रबलता करके होती है और यद्यपि कामादिक भोगसे यह सुख विशेष है तो भी नीचहै काहेसे कि इस विषे भी केते पशु शरीक हैं जैसे सिंह और चीते भी बड़ाई की तृष्णा रखते हैं और अपनी प्रबलता को चाहते हैं ॥ बहुरि तीसरा सुख विद्या और अनुभव और भगवत्की कारीगरीका सहित जानना है सो परमसुख यही है और उन दोनों सुखसे विशेष है ताते यह सुख किसी पशु विषे पाया नहीं जाता काहेसे कि विद्या और बूझ देवतों का लक्षण है अथवा भगवत् का गुण है ताते जिस मनुष्य विषे बूझ और ज्ञानका रहस्य ऐसा होवै कि विद्या और सुख को सुख न जाने तब सम्पूर्ण मनुष्य वही कहा जाता है और जिस मनुष्यको विद्या और ज्ञानका रहस्य कुछ न होवै वह मनुष्य पशुकी न्याईं नीच है और रोगी है अर्थ यह कि जैसे रोगीको मरना निकट होता है तैसे उस पुरुषको बुद्धिका नाश निकट है पर बहुत पुरुष ऐसे भी होते हैं कि उन में कुछ स्वाद विद्या और अनुभवका होता है और कुछ स्वाद मान और भोगोंका भी होता है पर जिनको बूझ और ज्ञानका रहस्य प्रबल होता है तिनको सर्व विषय स्वर्गपर्यंत महानिरस होजाते हैं और जिसको विषयों का रस प्रबल होता है तिसको विद्या और बूझ का रस कुछ नहीं आवता और महा नीच अवस्थाको प्राप्त होता है ताते इस पुरुष को यही पुरुषार्थ करना प्रमाण है कि भोगों के रससे विद्या के रसको पदार्थ सो संतजनों ने भी यों ही कहा है कि परम भाग्यवान् वही पुरुष होता है जिसकी भली करतूति अधिक होवै और यही परलोक विषे सुखी होता है सो इस वचनका अर्थ यही कि भोगोंके रससे बूझका रस अधिक होवै तब सुखको प्राप्त होता है ॥ प्रश्न मनन करना इसका कि जिसको सुख चाहिये है सो सुखों विषे भी यह भेद है ताते जानिये कि पूर्ण सुख परलोक का ही जानना है और यह परलोक का ही मार्ग है इसमें आपको आपही सुखदायक है और किसी और पदार्थ के आश्रय को निर्धा-रणी है सो कहिये कि यहां आपही मागसुखरूप है और यह परलोक भी सत्य है सार संयमों करके सिद्ध होती है सो अर्पण यह है कि जैसा संचा ऐसी होवै कि ना-श कदाचित् न पाया जावै और महा आनन्द ऐसा होवै कि उसविषे शोकका प्रवेश कदाचित् न होवै बहुरि ऐसा सम्भव ऐसी होवै कि सब [illegible] मनसे गरीब होवै और सामर्थ्य ऐसी होवै कि निज विषे [illegible] जानना और पदार्थ नाश न होवै सो

यह सम्पूर्ण सुख श्री सीताराम जू के दर्शन करके प्राप्त होते हैं और इस सुखका परिणाम कदाचित् नहीं होता याते सांचा सुख यही है और सदा एकरस है बहुरि और जो पदार्थ हैं सो तिनको इस निमित्त सुख कहते हैं कि वह इस परमसुखके साधन हैं पर परम सुख यही है जो आपने आप करके प्रियतम होवे और उसमें किसी और सुखके निमित्त अपेक्षा न होवे और जिस सुखको किसी और पदार्थ के निमित्त चाहा जाता है तिसको पूर्णसुख नहीं कहा जाता इसीपर महापुरुषने भी कहा है कि पूर्णसुख परलोककी भलाई है सो यह वचन महापुरुषने तब कहा था जब लड़ाई विषे नास्तिकों से संकट को प्राप्त हुये थे और जब शत्रुओं को जीत आये और प्रतापप्रसन्न और बहुत लोग धर्म रीति के जिज्ञासु हुये और धर्म पूछनेलगे और आप सवार हुये चले जाते थे तब भी कहने लगे कि सांचा सुख परलोकका है सो उनके कहने का प्रयोजन यह था कि हमारा मन मायाके पदार्थों को देखकर प्रसन्न नहीं और दुःख को देखकर दुःखी नहीं होता बहुरि इसीपर एक और भी वार्ता है कि एक पुरुष महाराजके आगे प्रार्थना करके कहता था कि हे महाराज! मुझको सम्पूर्ण सुख देवो तब महापुरुषने सुनकर पूछा कि तू सम्पूर्ण सुखको जानता है कि क्या है तब उसने कहा कि मैं तो भलीप्रकार नहीं जानता याते तुमही कहो तब महापुरुषने कहा कि सम्पूर्ण सुख परलोक की भलाई का नाम है याते जान तू कि जो पदार्थ परलोककी भलाई का द्वारा न होवे तिस विषे उसको सुख नहीं कहते हैं और यह सुख परमपद प्राप्त होता है और जो पदार्थ परलोककी भलाई के सहायक हैं और इस लोक विषे पाये जाते हैं सो सोलह पदार्थ हैं चार मनके भीतर हैं और चार शरीर विषे हैं और चार शरीर से बाहर हैं और चार इन सबके विषे हैं सो प्रथम जो मनके भीतर हैं तिनमें से पहला यथार्थ निश्चय की विद्या है १ और दूसरी वर्तने की विद्या है २ तीसरा संयम है ३ और चौथा विचार है ४ पर प्रथम निश्चयकी विद्या यह है कि श्रीरघुनन्दन स्वामी के स्वरूप को पहिचानना और उनके गुणों को समझना और भक्तजनों के स्वरूप पहिचानने १ बहुरि वर्तने की विद्या यह है कि भक्तिमार्ग विषे जितने पदार्थ हैं सो तिनको पहिचाने और जो परलोक मार्गका रोकनेवाला अन्तरायगतन है तिसको अंगीकार करे और जितने शुभगुण हैं सो उस मार्ग की सीढ़ी हैं सो तिनको पहिचाने और उसी मार्ग विषे चले २ बहुरि संयम यह है कि लोभ और क्रोधके

प्रबलता को दूरकरे ३ और विचार यहहै कि जब सर्व भोगोंका त्यागकरताहै तब शरीर नाश को प्राप्त होजावेगा और जब भोगवासना और क्रोध की प्रबलता होगी तब मनमुखता होतीहै तातें चाहिये कि इनको त्यागभी न करे और अधिक प्रबलभी न होने देवे तातें इनको विचार की तराजू विषे तोल राखे ४ के यह चारों विद्या तब प्राप्तहोती हैं जब प्रथम शरीर विषे जो चार सुखहैं सो तिनको प्राप्तहोवें सो शरीरके सुख यहहैं एक आरोग्यता १ दूसरा बल २ तीसरा सुन्दरताई ३ चौथा आयुर्बल है ४ सो परलोककी भलाई के सहायक आरोग्यता और बल आयुर्बल तो निस्सन्देह हैं और प्रत्यक्ष हैं काहेतें कि विद्या और करतूति और औरजो शुभगुण हैं सो इनके बिना प्राप्त नहीं होते पर सुंदरताई विषे प्रयोजन कुछ अल्पमात्र है जैसे धन और मान भी कार्य्यमात्र प्रमाण कहे हैं तैसेही सुन्दरताई भी है सो भगवत्मार्ग विषे इनकी अधिकता विशेष नहीं पर कार्य्यमात्र कछुक चाहते हैं और इसलोक के कार्य्य को सिद्ध करनेहारे हैं और यों भी है कि जो पदार्थ इस लोक विषे सुखदायक होता है और जब इस पुरुष की मनसा भलीहोवैहै तब उसकरके परलोक विषे भी सुखहोता है काहेते कि इस लोककी करतूति परलोककी खेतीहै अर्थ यहकि जो यहां बोवताहै सो परलोक विषे भोगताहै और यह सुन्दरताई इसकारण भली कही है कि यह भी हृदयकी सुन्दरताई का लखावनेहारीहै तातें इस मनुष्य को चाहिये कि जिसप्रकार शरीर को सुन्दर बनावताहै तैसेही हृदयको भी शुभगुणों करके सुन्दरकरे इसीपर महापुरुषने भी कहाहै कि हृदयको कुरूप न राखे तातें जानतू कि मैंने ऐसी सुन्दरताई प्रमाण नहीं कही कि जिसको देखकर काम उत्पन्न होवे और हृदय मलिनहोवे काहेते कि यह सुन्दरताई स्त्रियों विषे अधिक होतीहै तातें इस वचन का तात्पर्य यहहै कि सुन्दर पुरुष वही है जिसको देखकर ग्लानि न आवे और जिसका मस्तक प्रसन्नतासहित खुलाहुआहोवे और समान डीलहोवे और शरीर को दुर्गन्ध और मलिनता से शुद्ध राखे तो यहभी शरीर की उत्तमताईहै और शरीर से बाहर जो चार पदार्थ विशेष कहे हैं सो एक तो धन १ दूसरा मान २ तीसरा कुटुम्ब ३ चौथा उत्तम कुल ४ सो धन मान मैं तो इतनाही प्रमाणहै जिस करके परलोक मार्गकी शुद्धताको पावे काहेतें कि जब इसके पास भरपूर नहीं होता तब सारी आयु [illegible] विषे ही बितावताहै तातें निरा

और कानूनि की मिद्धता को नहीं पहुँच सका इसीकारण कर धनकी विशेषता कही है कि इस करके शुभ कार्य्यविषे निसन्कल्प होकर लगताहै और तब धन भी इसका मित्ररूप होताहै २ बहुरि मानकी इस निमित्त ही प्रमाण कहा है कि जिस पुरुष का मान कुछ नहीं होता सो वह भी निरादर करके दुःखी रहता है और अपने शत्रुओं से निर्भय नहीं होसका ताते उसका हृदय विक्षेपता विषे रहता है और शुभ कार्य्य उससे कोई नहीं होसका ताते धन और मान को जो निन्द्य कहाहै सो इनकी अधिकाईही निन्द्य है और विघ्नरूपहै और कार्य्यमात्र सुखदायक और निर्विघ्न है इसीपर महापुरुष ने भी कहा है कि जो पुरुष प्रात समय उठे और उसको किसीका भय न होवे बहुरि एक दिनका आहार भी उसके पास होवे तब जानिये कि पूर्ण पदार्थ उसके पास है ताते जान तू कि निर्भय होना और आहारमात्र संग्रह रखना धन और मानके बिना सिद्ध नहीं होता ऐसेही महापुरुषने कहाहै कि जिस पुरुषकी मनसा शुद्धहोतीहै उसका धनभी मित्र होताहै २ बहुरि तीसरा जो टहलुवा कहाहै सो टहलुवा इस कारण करके चाहिये है कि टहलुवे करके भी शरीरकी बहुतसी क्रिया से छूटताहै और भजन विषे सावधान होताहै और जब सब क्रिया अपनी आपही करने लगताहै तब इसका समय इसी क्रियाविषे बीतताहै ३ बहुरि कुलको जो भला कहाहै सो तिसका प्रयोजन यहहै कि किसी राजा अथवा किसी महतका कुल ऐसेनहीं होताहै जिसका पुत्र विद्यावान् और भक्ति की होताहै तब उस पुरुष विषे भी सात्त्विकी गुण का प्रवेश होताहै ताते इसप्रकार उत्तमकुल भी भगवत्के मार्गकी सहायता करताहै पर वह चार पदार्थ जो इन चारपदार्थों को सिद्ध करते हैं सो यहहैं कि प्रथम भगवत्का मार्ग जानना १ और दूसरा मार्ग २ और तीसरा बल ३ और चौथा भगवत्की सो जब यह चारों इकट्ठे होतेहैं तब उसीको सहायता कहते हैं काहे से कि सहायता का अर्थ यहहै जो भगवत्की नेम और रीतकी सहायता करनेहारा और मिलाप होवे तब सहायता इसीका नाम है १ प्रथम जो भगवत्के मार्ग की पहिचान कहीहै सो यह पहिचान सब किसीको अवश्य चाहिये काहेते कि जो पुरुष परलोक की मर्यादा की महिमा जाने और उसके सुमार्ग व कुमार्गको पहिचान न करे तब उसको लाभ कुछ नहीं होता ताते प्रसिद्ध हुआ कि सब जीवके सर्व कार्य प्रथम और पहिचान करके सिद्ध होतेहैं इस बिना सिद्ध नहीं

होते इसीपर संतजनों ने कहाहै कि भगवत् ने सर्व जीवोंपर दो उपकार कियेहैं सो प्रथम यहहै कि सर्व जीवोंको उत्पन्न कियाहै १ और दूसरा यह कि सब को अपनी अपनी क्रियाकी बूझ दीनी है २ सो बूझ भी तीन प्रकारकीहै प्रथम यह कि भले और बुरेको पहिचानना सो भगवत्ने यह बुद्धि सर्व मनुष्यों को दीनी है पर कोई तो भले बुरेको अपनी बुद्धिके अनुसार समझता है और कोई संत जनोंके वचनों करके समझताहै ऐसे महाराजने भी कहाहै कि सम्पूर्ण मनुष्यों को उनके भोगोंकी भलाई और बुराई की पहिचान मैंने दीनी है पर जो इससे विमुख हैं सो जानबूझकर अन्धे हुये हैं १ पर जिस पुरुषको बूझ प्राप्त नहीं भई तिसका कारण यहहै कि वह ईर्षा और अभिमान और व्यवहार के जंजाल विषे बधायमान हुआहै और इस करके सन्तजनोंके वचनों को श्रवण भी नहीं करता ताते इस बूझमे शून्य रहताहै पर तौ भी भले और बुरेकी पहिचानका बीज सर्व मनुष्यों विषे पाया जाताहै १ बहुरि दूसरी बूझ यहहै कि वह बूझ शनैं शनैं करके धर्मके मार्ग विषे यत्नकरके प्राप्तहोती है और उसको अनुभवका मार्ग खुल जाताहै इसीपर महाराज ने भी कहाहै कि जो पुरुष दृढ होकर पुरुषार्थ करता है तिसको मैं अपना मार्ग दिखावताहू सो इस वचन विषे यही भेदहै कि महाराज ने अपना मार्ग दिखावना कहा है पर अपने आप प्रयत्न बिना मार्ग दिखावना नहीं कहा ताते तीसरी बूझ इससे भी विशेष है सो उसका प्रकाश संतजनों के हृदय और अवतारों विषे प्रकट होता है और इस बूझकरके महाराज का दर्शन होताहै पर इस बूझको अपनी बुद्धि और यत्नकरके पहुँच नहीं सकता और यह बूझही जीवनरूप है बहुरि दूसरी जो श्रद्धा कही थी सो यहहै कि जो कुछ बूझ करके जानाथा सो तिसके मार्गविषे चलनेकी मनसा प्रकट होतीहै जैसे बालक जब किशोर अवस्था को प्राप्त होताहै तब धनके संग्रह और व्यवहार को भली प्रकार समझताहै पर जब बुद्धिके अनुसार करै तब उसको श्रद्धावान् कहते हैं और व्यवहार की क्रिया समझकर भलीप्रकार से न करै तब उसको श्रद्धाहीन कहतेहैं बहुरि-बल यहहै कि जिस पदार्थको जाना और उसकी श्रद्धाभी उत्पन्न हुई तब उसके प्राप्त होनेके यत्न विषे बलकरके सर्व इन्द्रियोंको प्रवेश करावै और तत्काल अपने प्रयोजन को प्राप्तहोवै बहुरि भगवत्की मेहर जो कहीथी सो यह है कि उस मनुष्य के हृदय विषे मेहर करके सहायता पहुँचती है और बुद्धि उ

उत्पन्न होती है और सर्व इन्द्रियोंको शुभ मार्ग विषे चलानेका बल प्रकट होता है और यह सहायता ऐसी है कि जैसे कोई पुरुष किसीको परस्पर मार्ग दिखावे और कुमार्गों से हटावे तैसेही भगवत् की सहायता करिके मनुष्य के हृदय विषे पापरूपी भय उपजता है और शुभमार्ग प्रसिद्ध होकर भासता है सो जान तू कि यह जो सोलह पदार्थ मैंने कहे हैं सो सबही इसलोक विषे प्राप्त होते हैं और परलोक के सहायक हैं और इनका परस्पर सम्बन्ध भी है यद्यपि इन विषे ऐसे और पदार्थोंका सम्बन्ध भी मिलता है तब परलोककी भलाईको पहुँचाते और यह पुरुष साधनरूपको पहुँचता है और श्रीभगवानजीके दर्शन सो देखता है सो श्रीरघुनन्दन स्वामी ऐसे हैं जो सर्व जीवोंको मार्ग दिखावनेहारे हैं और सर्व पुरुष सहायता भी वही करते हैं ॥ अब इसका प्रकट करना कि भगवत् का धन्यवाद किस कारण नहीं कियाजाता है ॥ सो जान तू कि दो कारण करके यह मनुष्य भगवत् का धन्यवाद नहीं करता सो प्रथम यह है कि सर्व जनके ऊपर उपकार अगणित हैं और इस जीवको महाराजने अनेक सुख दिये हैं कि कोई मनुष्य उनको पहिचानभी नहीं सकता इसी पर महापुरुषने भी कहा है कि जितने उपकार और सुख श्रीरघुनन्दन स्वामी ने दिये हैं सो गिनती करके गिने नहीं जासक्तेहैं और यह जीव उनका जाननेहारा नहीं याते यह बातें प्रसिद्ध हैं कि जब कोई पुरुष किसी के उपकारको न जाने तब उसका धन्यवादभी नहीं करि सकता जैसे यह श्वास भी सुखरूप है और जिस पवन करि यह मनुष्य श्वास को साथ लेता है सो यह भी भगवत्‌की कृपा है फिर तिसी पवन करके इन्द्र स्थानको सुख प्राप्त होता है और जठराग्नि की उष्णता सेट होती है और यों भी है कि जब इस प्रकार पवन का रोकना होजावे तब निस्सन्देह मनुष्य [illegible] मरता है पर यह मनुष्य इसे सुखको सुखरूप नहीं जानता और ऐसे महाराज के उपकार अनन्त हैं पर तिनको नहीं जानता बहुरि इस श्वासके उपकारको भी तब जानता है जब किसी मलिन स्थान अथवा [illegible] गरम उष्ण स्थान विषे जापहुँचता है और वहां इस का श्वास रुकजाता है तब पवनकी शोभा जानताहै और श्वास के सुखको पहिचानता है तैसेही जब नेत्रोंकी दृष्टि सम्पूर्ण होती है तब इसका भी सुख उपकार और सुख नहीं जानता पर जब नेत्रों विषे कुछ पीड़ा उपजे दृष्टि मन्द होजावे तब जानता है कि यह नेत्र ऐसे सुखरूप हैं और

जिसकी ओषधियों कर नेत्रोंका दुःख दूर होता है तब उसका बड़ा उपकार जान ताहै सो ऐसे मनुष्यका दृष्टान्त यह है कि जैसे किसी पुरुषका टहलुवा बुरा होताहै तब वह टहलुवा अपने स्वामी की टहलविषे सावधान रहताहै और जब उस को दर्पदम्भ करिये तब मूर्खता करके अचेत होरहताहै और टहलभी कुछ नहीं करता तैसे यह मनुष्य भी जबलग दुःखको प्राप्त नहीं होता तबलग महाराज के उपकार को नहीं जानता ताते इसका उपाय यह है कि अपने चित्त विषे श्रीजानकीनाथ के उपकारों का स्मरण करता रहे और बिसारे नहीं पर यह उपाय भी किसी बुद्धिमान्से होसकताहै और इतरजीवों को यों चाहिये है कि जहां रोगी होवें अथवा बन्दीखाने अथवा मृतकोंके स्थानविषे जावे और उनके दुःखकोदेखे और चित्तविषे ऐसे जाने कि यह सब मृतक योंही चाहते हैं कि जो हमको एक दिनभी मनुष्यतन फिर मिलजावे तो हम अपने पापोंका पुरश्चरण करलेवें पर इनको एकदिन भी जीवना नहींप्राप्तहोता और मुझको केते दिन आयुर्बलको प्राप्त हुये हैं पर मैं इस उपकारको जानताही नहीं सो यह मेरी बड़ी मूर्खता है ॥ बहुरि दूसरा कारण बेसमुझता का यह है कि यह मनुष्य उन उपकारों को भी नहीं जानता जो पदार्थ महाराज ने सर्व जीवों को दिये हैं और सब किसीको सुगमही प्राप्त होरहे हैं जैसे प्राण और नेत्र और सूर्य और ऐसे औरभी इन की नाईं अनेक पदार्थ हैं सो इनके सुखको सुख नहीं जानता और केवल धनहीको सुखरूप जानता है अथवा उस पदार्थको सुख नहीं जानताहै जो और किसी के पास न होवे और इसीको प्राप्त होवे सो यहभी बड़ी मूर्खताहै कहिये कि जो पदार्थ सुखरूपहोवे और भगवत्ने अपनी परमउदारता करके सर्व जीवोंको प्राप्त किया होवे तब इसकरके उस पदार्थका सुख तो दूर नहींहोता पर जब यह पुरुष विचार करदेखे तब इसको भगवत्ने ऐसे सुखभी बहुत दिये हैं जो और किसी के पास नहीं और केवल इसीको दिये हैं जैसे सब कोई योंही जानता है कि मेरी नाईं और किसीकी बुद्धि नहीं और मेरे स्वभाव की नाईं और किसीका स्वभाव भला नहीं इसीकरके सब मनुष्यों को मूर्ख और अपलक्षणी कहता है ताते प्रसिद्ध हुआ कि अपनी बुद्धि और स्वभाव को भला जानता है सो जब ऐसे हुआ तब चाहिये कि अपने स्वामी के उपकार का धन्यवाद करे और और किसी के अवगुणों को न देखे पर कहिये कि जगत्विषे ऐसा मनुष्य कोई नहीं कि जिसविषे

उत्पन्न होती है और सबै इन्द्रियोंको शुभ मार्ग विषे चलनेका बल प्रकट होता है और यह महात्मा ऐसी है कि जैसे कोई पुरुष किसीको प्रत्यक्ष मार्ग दिखावे और कुमार्ग से बचावे वैसेही भगवत् की महाप्रसन्नताके मनुष्य के हृदय विषे पापकर्मोंका भय उपजता है और शुभमार्ग प्रसिद्ध होकर भासता है तातें जान तू कि यह जो मैंने सब पदार्थ तेरे आगे कहे हैं सो सबही इसलोक विषे प्राप्त होते हैं और परलोक के सहायक हैं और इनका परस्पर सम्बन्ध भी है परन्तु इन विषे ऐसे और पदार्थोंका सम्बन्ध भी मिलता है तब पालना करी भगवान्‌को पहुँचते हैं और यह पुरुष पालनेवालेको पहुँचता है और श्रीविश्वनाथके दर्शनको देखता है सो श्रीरघुनन्दन स्वामी ऐसे हैं जो सब जीवोंको मार्ग दिखावनेहारे हैं और सबै पुरुषार्थदाता भी वही करते हैं॥ आगे इसका प्रकट करना कि भगवत् का धन्यवाद किस कारण नहीं कियाजाता है॥ तातें जान तू कि दो कारण करके यह मनुष्य भगवत् का धन्यवाद नहीं करसक्ता सो प्रथम यह है कि महाराजके उपकार अपरिमित हैं और उस जीव को महाराजने इतने सुख दिये हैं कि यह मनुष्य उनको गिनती करनेभी नहीं सकता इसी पर महापुरुषने भी कहा है कि जितने उपकार और सुख श्रीरघुनन्दन स्वामी ने दिये हैं सो किसी प्रकार गिने नहीं जाते हैं और यह जीव उनको जानताही नहीं तातें यह वार्ता प्रसिद्ध है कि जब कोई पुरुष किसी के उपकारको न जाने तब उसका धन्यवाद भी नहीं कर सकता जैसे यह पवन भी सुखरूप है और जिस पवन को यह मनुष्य श्वास कि नाम लेता है सो यह भी महासुखरूप है काहेसे कि इसी पवन करके हृदयरूपको सुख प्राप्त होता है और जठराग्नि की उष्णता शान्त होती है और यह भी है कि जब इस प्रकारका पवन न चलता होवै तब निस्सन्देह मरण होजाता है ऐसा पावना है पर यह मनुष्य उसे सुखको सुख नहीं जानता और ऐसे महाराज के उपकार अनन्त हैं पर तिनको नहीं जानता परन्तु इस पवनके उपकार को भी तब जानता है जब किसी मलिन स्थान अथवा दुर्गन्ध अथवा उष्ण स्थान विषे जायकर रहता है और वहां इसका श्वास बन्द होजाता है तब पवनकी शीतलताई और उष्णताके दुःखको पहिचानता है ऐसेही जब नेत्रोंकी दृष्टि सम्पूर्ण होती है तब इसका भी सुख अपार और सुख नहीं जानता पर जब नेत्रों विषे कुछ पीड़ा अथवा दृष्टि मन्द होती है तब जानता है कि यह नेत्र ऐसे सुखरूप हैं और

जिसकी औषधियोंकर नेत्रोंका दुःख दूर होता है तब उसका बड़ा उपकार जानताहै सो ऐसे मनुष्यका दृष्टान्त यहहै कि जैसे किसी पुरुषका टहलुवा बुरा होताहै तब वह दास होकरके अपने स्वामीकी टहलविषे सावधान रहताहै और जब उसको दासपनकरिये तब मूर्खता करके अचेत होरहताहै और टहलभी कुछ नहीं करता तैसे यह मनुष्य भी जबलग दुःखको प्राप्त नहीं होता तबलग महाराज के उपकारों को नहीं जानता ताते इसका उपाय यहहै कि अपने चित्त विषे श्रीजानकीनाथ के उपकारों का स्मरण करता रहे और बिसारे नहीं पर यह उपाय भी किसी बुद्धिमान्से होसक्ताहै और इनजीवों को यों चाहिये है कि जहां रोगी होवें अथवा बन्दीखाने अथवा मृतकोंके स्थानविषे जावे और उनके दुःखकोदेखे और चित्तविषे ऐसे जाने कि यह सब मृतक योंहीं चाहते हैं कि जो हमको एक दिनभी मनुष्यतनु फिर मिलजावे तो हम अपने पापोंका पुरश्चरण करलेवें पर इनको एकदिन भी जीवना नहींप्राप्तहोता और मुझको केते दिन आयुर्बलको प्राप्त हुयेहैं पर मैं इस उपकारको जानताही नहीं सो यह मेरी बड़ी मूर्खता है ॥ बहुरि दूसरा कारण मनमुखता का यह है कि यह मनुष्य उन उपकारों को भी नहीं जानता जो पदार्थ महाराजने सर्व जीवों को दिये हैं और सब किसीको सुगमही प्राप्त होरहे हैं जैसे प्राण और नेत्र और सूर्य और ऐसे औरभी इन की नाईं अनेक पदार्थहैं सो इनके सुखको सुख नहीं जानता और केवल धनहीको सुखरूप जानता है अथवा उस पदार्थको सुख नहीं जानताहै जो और किसी के पास न होवे और इसीको प्राप्तहोवे सो यहभी बड़ी मूर्खताहै कि इसे कि जो पदार्थ सुखरूपहोवे और भगवत्ने अपनी परमउदारता करके सर्व जीवोंको प्राप्त किया होवे तब इसकरके उस पदार्थका सुख तो दूर नहींहोता पर जब यह पुरुष विचार करदेखे तब इसको भगवत्ने ऐसे सुखभी बहुत दियेहैं जो और किसी के पास नहीं और केवल इसीको दियेहैं जैसे सब कोई योंही जानता है कि मेरी नाईं और किसीकी बुद्धि नहीं और मेरे स्वभाव की नाईं और किसीका स्वभाव भला नहीं इसीकरके और मनुष्यों को मूर्ख और अपनेआपको चतुर कहता है ताते प्रसिद्ध हुआ कि अपनी बुद्धि और स्वभाव को भला जानता है सो जब ऐसे हुआ तब चाहिये कि अपने स्वामी के उपकार का धन्यवाद करे और और किसी के अवगुणों को न देखे और यों जाने कि जगत्‌विषे ऐसा मनुष्य कोई नहीं कि जिसके

अवगुण न होवे बहुरि जितनी मलिनता और अवगुण इस जीवविषे पायेजाते हैं सो यह आपही जानता है और कोई नहीं जानसक्ता सो भगवत् ने अपनी दया करके गुप्त करराखेहैं और प्रकट नहींकिये बहुरि जैसे कोई मुर्खपुरुष इसके हृदय विषे गुप्त हैं सो ऐसे मलिन होतेहैं कि जब कोई और भी उनको जाने तब अधिक निरादर और अपमान को प्राप्तहोवे सो यहभी श्रीरघुनन्दन स्वामीका यह उपकारहै जो और कोई नहींजानता और यह उपकार महाराजने सब किसी पर कियाहै ताते इसका भी धन्यवाद करना प्रमाणहै और जो पदार्थ इसकेपास न होवे तब उसकी अभिलाषा करनी अयोग्य है काहेसे कि यह महाराजका धन्यवाद नहीं होता और निस्सन्देह गनमुखी होती है ताते ऐसे जानना योग्य है कि मेरेसाथ महाराजने ऐसे उपकार कियेहैं जिनका मैं अधिकारी न था और महाराजने मेरेऊपर सबप्रकार दयाकरी है सो इसीपर एक वार्ता है कि एक पुरुष किसी संतजन के पास आया था और अपनी निर्धनता को प्रकट करनेलगा तब उस सन्तने कहा कि जब तू विचारकर देखे तब तू निर्धन तो नहीं काहेसे कि जब कोई पुरुष तुझको दशसहस्र रुपयादेवे और तेरे नेत्रोंको निकालदेवे तो तू देवेगा तब उस पुरुषने कहा कि मैंतो यह नहीं चाहता बहुरि सन्त ने कहा कि भला जब तेरीबुद्धि अथवा श्रवण अपना हाथ पांव दूरकीजे तब तू पचास सहस्र करालेवेगा तब उसने कहा कि मैं योंभी नहीं करसक्ता तब सन्तने उस को कहा कि पचास सहस्रकी सामग्री जो तेरे पास है तू आपको निर्धन क्यों मानता है और मनकी चिन्ता क्यों करता है और योंभीहै कि जब किसीसे कहिये कि तू अपनी अवस्था को अमुक पुरुषकी अवस्था के साथ बदललेवे तो सब कोई नहीं करता और इस करके प्रसिद्ध होताहै कि अपनी अवस्थाको विशेष जानताहै सो जब इसकी अवस्था विशेष हुई तब चाहिये कि इसकरके भी धन्यवादकरै और अपने स्वामी के सन्मुख होवे॥

नते हैं ताते पात्रप्रकार करके दुःख विषे धन्यवादकरना प्रमाणहै सो प्रथम यह है कि दुःख इसको शरीर विषे होताहै अथवा धन विषे होताहै पर जबलग इस का धर्म अरोग है तबलग इसको धन्यवाद करनाही विशेष है जैसे एक पुरुष सुहेलनामी सन्त के पास आकर कहने लगा कि मेरे घर एकचोर आयकर सब सम्पदा चुरायलेगया तब सन्तने कहा कि दुर्वासनारूपी चोर जब तेरे हृदय विषे आय पड़ता और तेरे धर्म को चुरायलेता तब तू क्या करता ताते तू धन्यवाद कर १ बहुरि दूसरा कारण यहहै कि जो कोई पुरुष सहस्र लकड़ी मारनेका अधिकारी होवे और उसको बीस लकड़िया मारकर छोड़दीजिये तब उसको भी धन्यवाद करना प्रमाण होताहै तैसेही ऐसा दुःख कोई नहीं कि जिससे अधिक दुःख न होवे ताते चाहिये कि जब कोई दुःख इसको प्राप्त होवे तब यों जाने कि जब मुझको इससे भी अधिक दुःख होता तब मैं क्या उपाय करता ताते धन्यवादही करना विशेष है जैसे एक सन्त बहुत सत्सगी प्रेमियों के संग नगरकी गलों विषे चलेजातेथे तब किसीने उनके ऊपर कोठापरसे राखकाधार डालदिया तब यह सन्त अपने वस्त्र झाड़कर धन्यवाद करनेलगे बहुरि किसीने पूछा कि तुम धन्यवाद क्यों करतेहो तब उन्होंने कहा कि मैंतो अग्नि विषे जलावनेका अधिकारीथा पर श्रीजानकीनाथने अपनी दयाकरके राखपरही निबेरा करदिया है ताते मैं धन्यवाद करताहूं २ बहुरि तीसरा कारण यहहै कि इस मनुष्यको जो दुःख होताहै सो इसी के पापकरके होताहै और जब वह दुःख इसलोक विषे न होवे तब परलोक विषे इस जीवको अधिक दुःख प्राप्त होताहै इसीपर महाराजने भी कहाहै कि इसलोकके दुःखसे परलोकका दुःख अतिकठिन है ताते इसप्रकार भी धन्यवाद करना प्रमाणहै जो इसलोक विषे अल्प दुःख भोगनेकरके परलोक के बड़े दुःखसे छूटताहै इसीपर महापुरुषने भी कहाहै कि जिस पुरुषको इसलोक में कुछ दुःख भोगावने हैं तब वह परलोक के दुःखसे मुक्त होताहै काहे ते कि दुःखही करके इस जीवके सम्पूर्ण पापोंका पुरश्चरण होताहै और जब यह पुरुष दुःख भोगनेकरके निष्पाप होजाता है तब परलोक विषे फिर दूसरा नहीं प्राप्त होताहै जैसे कोई वैद्य किसी रोगीको कड़वी औषध पिलावे अथवा उसका रुधिर निकासे सो यद्यपि प्रथम इस करके दुःखी होताहै तोभी इस रोगी को धन्यवाद करना प्रमाण है काहेते कि अल्पमात्र दुःख भोगन करें बड़े कष्ट से

प्रकारसे जानताहै कि दूसरे चौथा कारण यहहै कि यह दुःख जो भोगता है सो इसके प्रारब्ध विषे लिखा हुआथा और यह दुःख आगले ही जानाथा सो। जब उस दुःख का अवसर तेरे ऊपर आया और तू दुःखको भोगकर इससे उत्तीर्ण हुआ सो भी निस्सन्देह धन्यवाद करना। प्रमाण है जैसे एक सन्त महापुरुष चले जाते थे तब अकस्मात् मार्गमें गिरपड़े पीछे उठकर धन्यवाद करनेलगे, तब लोगों ने पूछा कि यह धन्यवाद करनेका समय कौनसा था तब उन्होंने कहा कि महाप्रभु की आज्ञा अवश्यही होती है सो किसीप्रकार अन्यथा नहीं होती मेरा इस मार्गविषे गिरपड़ना भी लेख विषे लिखा हुआथा और अब मैं उससे सो मानो उत्तीर्ण हुआहूं तातें धन्यवाद करताहूं ५, और पांचवां कारण यहहै कि इसलोक विषे दुःख और कष्ट भोगने करके परलोक विषे पुण्य प्राप्त होताहै सो भी दोप्रकार है एक तो यहहै कि जैसे सन्तजनों के वचनों विषे आयाहै कि दुःख भोगने करके इस जीवके पाप क्षीण होते हैं और पुण्यको प्राप्त होताहै दूसरे इसप्रकार यहहै कि मूल सर्वपापों का माया की प्रीतिहै क्योंकि जिस मायाकी प्रीतिकरके भोगोंको सुखरूप जानताहै और इस संसारके जीवने को स्वर्ग करके मानताहै और परलोकविषे जाने को बन्दीखाना समझताहै पर जब इसपुरुषको इस जगत् विषे दुःख प्राप्त होताहै तब इसके मनसे मायाकी प्रीति नष्ट होजातीहै और इसमायाको बन्दीखाना जानकर निकला चाहताहै और उसको परमेश्वर का स्मरण होता रहताहै इसवास्ते यों जानतू कि यह सब दुःख ... और माता और पिता बालकको उपदेश देकर ... देते हैं, पर जब वह बालक बुद्धि मान् होजाता है तब उस पिताके उपदेश को भला जानताहै और धन्यवाद करताहै क्यों से कि उसी उपदेश करके बालक गुणवान होताहै तैसेही इसजीवको रोगादिक निमित्त महाप्रभु भी दुःखरूपी उपदेश भेजता है और इसीकारण करके जिज्ञासु हैं आगे बुद्धिमान् पुरुष दुःख विषे भी धन्यवाद करते हैं और सन्तों ने कहाहै कि महाप्रभु जो अपने प्रीतिमानों को दुःख भेजतेहैं सो मानो उनके साथ [illegible] करते हैं कि [illegible] तुमको [illegible] तुम देखो जैसे [illegible] कि [illegible] को और [illegible] होगा [illegible] बहुत भोजन [illegible] भी [illegible] है कि कोई पुरुष महापुरुष [illegible] करनेलगा कि [illegible]

और मेरेभी चोर लेगये तब महापुरुषने कहा कि जिसका धन चोर लेजावे अथवा जिसका तन रोगी होवे तब उसको अधिक भलाई प्राप्त होती है बहुरि महापुरुषने योंभी कहाहै कि भगवत् जिसको अपना प्रियतम कियाचाहताहै तब प्रथम उसके ऊपर दुःख भेजताहै और योंभी कहाहै कि बहुतस्थान सुखके ऐसेभी हैं कि यह पुरुष अपने यत्नकरके उनको नहीं पहुँचसक्ता और महाराज दुःखको भोगाने करके तहां पहुँचाते हैं बहुरि एकबार महापुरुष आकाशकी ओर देखकर कहनेलगे कि मैं भगवत् की नेतको देखकर आश्चर्यवान् हुआहूं कि जब महाराज इसजीवको सुख देते हैं और यह पुरुष उसकरके भी प्रसन्न होताहै तब इसको भलाई प्राप्तहोती है और जब महाराज की आज्ञा करके दुःखी होवे और यह पुरुष धैर्य उसमें करे तौभी भलाईको प्राप्त होताहै अर्थात् सम्पत्ति में धन्यवाद और विपत्ति में धैर्य दोनों करके जीवकी भलाई है और महापुरुषने योंभी कहाहै कि सुख भोगनेहारे पुरुष परलोक विषे यों कहेंगे कि जो मृत्युलोक विषे हमारा शरीर नखों करके कटता तो भलाया काहेसे कि जिन्होंने मृत्युलोक में दुःख सहाहै उनको परलोक विषे उत्तम सुख प्राप्त होते हैं और जब इसलोकके सुख भोगनेहारे उन स्थानोंको देखेंगे तब कहेंगे कि हम भी यहां दुःखही भोगते तो यहां सुखके स्थानोंको प्राप्तहोते इसीपर एक सतने महाराजसे विनय करी कि हे महाराज! तुम मनमुखोंको नानाप्रकारके सुख देतेहो और आस्तिकी मनुष्यों को दुःख भोगातेहो सो यह क्या कारणहै तब महाराजने कहा कि यह सबही जीव मेरे हैं और दुःख सुखभी मेरे कियेहुये हैं पर जब आस्तिकी मनुष्योंविषे कुछ पाप देखताहूं तब चाहताहूं कि मृत्यु के समय यह पुरुष विशुद्ध निर्लेप होकर मेरे निकट प्राप्तहोवे ताते उसको मृत्युलोकमेंही दुःख भोगायकर उसके पापोंका प्रायश्चित्त करलेताहूं और जो नास्तिकी मनुष्यहै सो उस विषे जब कोई गुण होताहै तौभी उसको शरीरके सुखोंकी कांक्षा होती है ताते मैं उसको शरीर के सुख भोगाताहूं और उसकी पर्णमासी पूर्ण करताहूं बहुरि जब वहपुरुष परलोक विषे जाताहै तब महाराज भी भोगी होताहै काहेसे कि फिर उसके पास कोई उस विषे गुणवाला सो उस पुरुषका बदला उसने मृत्युलोक विषे भोगलियाहै और उसके अवगुणही शेष रहते हैं ताते महापापको भोगताहै और जब महाराजने यह वचन महापुरुषसे कहा कि जो कोई पुरुष शुभ कर्म करताहै सो निश्चय पड़ाही बुराई देखताहै

सुखहोताहै ३ बहुरि चौथा कारण यहहै कि यह दुःख जो भोगता है सो इसके प्रारब्ध विषे लिखाहुआथा औरयह दुःख अवश्यही जाताथा सो जब उस दुःख का अवसर तेरे ऊपर आया और तू दुःखको भोगकर उससे निवृत्त हुआ तौभी निस्सन्देह धन्यवाद करना प्रमाण है जैसे एक सन्त सवार हुये चलेजाते थे तब अकस्मात् सवारीसे गिरपड़े बहुरि उठकर धन्यवाद करनेलगे तब लोगों ने पूछा कि यह धन्यवाद करनेका समय कौनथा तब उन्होंने कहा कि महाराज की आज्ञा अवश्यही होती है सो किसीप्रकार अन्यथा नहीं होती ताते इस सवारीपर से गिरपड़ना मेरे लेख विषे लिखा हुआथा और अब मैं उसको भोगकर उससे निवृत्त हुआहूं ताते धन्यवाद करताहूं ४ और पांचवां कारण यहहै कि इसलोक विषे दुःख और कष्ट भोगने करके परलोक विषे पुण्य को प्राप्त होताहै सो भी दोप्रकार है प्रथम यहहै कि जैसे सन्तजनों के वचनों विषे आयाहै कि दुःख भोगने करके इस जीवके पाप क्षीण होते हैं और पुण्यको प्राप्त होताहै बहुरि दूसराप्रकार यहहै कि मूल सर्वपापों का माया की प्रीतिहै काहेसे कि मायाकी प्रीतिकरके भोगोंको सुखरूप जानताहै और इस संसारके जीवनेको स्वर्गकर मानताहै और परलोकविषे जानेको बन्दीखाना समझताहै पर जब इसपुरुषको इस जगत् विषे दुःख प्राप्त होताहै तब दुःखकरके संसारकी प्रीति नष्ट होजाती है और इससंसारको बन्दीखाना जानकर निकला चाहताहै और उसको संसारसे मृत्यु होना सुखरूप भासताहै ताते जान तू कि यह सर्वदुःख ऐसे हैं जैसे माता और पिता बालकको दण्ड देकर बुद्धि सिखावते हैं पर जब वह बालक बुद्धिमान् जानताहै तब उस सिखाने को भला जानताहै और धन्यवाद करताहै काहेसे कि इसी दण्ड करके बालकको अनेक गुण प्राप्त होते हैं तैसेही इस जीवके सिखाने के निमित्त महाराज भी दुःखरूपी दण्ड भेजताहै और दुःख जो जीवको बुद्धि सिखाताहै ताते बुद्धिमान् पुरुष दुःख विषे भी धन्यवाद करते हैं जैसे सन्तजनों ने कहाहै कि महाराज जब अपने प्रीतिमानों को दुःखरूप भेजताहै तब मानो उनके साथ वचन करताहै कि मैं इससे पीछे तुमको अनेकसुख देऊंगा जैसे कोई उत्तमवैद्य रोगीके साथ वचन करे कि जब तू अमुक आहारका त्याग करे और जब तेरा रोग दूर होगा तब तुझको मैं बहुत भोजन खिलाऊंगा सो इसऊपर एकवार्त्ता है कि कोई पुरुष महापुरुषके पास आकर कहनेलगा कि मेराधन

और सामग्री चोर लेगये तब महापुरुषने कहा कि जिसका धन चोर लेजावे अथवा जिसका तन रोगी होवे तब उनको अधिक भलाई प्राप्त होती है बहुरि महापुरुषने योंभी कहाहै कि भगवत् जिसको अपना प्रियतम किया चाहताहै तब प्रथम उसके ऊपर दुःख भेजताहै और योंभी कहाहै कि बहुतस्थान सुखके ऐसेभी हैं कि यह पुरुष अपने यत्न करके उनको नहीं पहुँचसक्ता और महाराज दुःखको भोगाने करके तहां पहुँचाते हैं बहुरि एकवार महापुरुष आकाशकी ओर देख-कर कहनेलगे कि मैं भगवत् की नेत्रको देखकर आश्चर्यवान् हुआहूं कि जब महाराज इसजीवको सुख देते हैं और यह पुरुष उसकरके भी प्रसन्न होताहै तब इसको भलाई प्राप्तहोती है और जब महाराजकी आज्ञाकरके कुछ दुःखहोवे और यह पुरुष धैर्य उसमें करे तोभी भलाईको प्राप्त होताहै अर्थात् सम्पत्ति में धन्य-वाद और विपत्ति में धैर्य दोनों करके जीवकी भलाई है और महापुरुषने योंभी कहाहै कि सुख भोगनेहारे पुरुष परलोक विषे यों कहेंगे कि जो मृत्युलोक विषे हमारा शरीर नखों करके कटता तो भलाथा काहेसे कि जिन्होंने मृत्युलोकमें दुःख सहाहै उनको परलोक विषे उत्तम सुख प्राप्त होते हैं और जब इसलोकके सुख भोगनेहारे उन स्थानोंको देखेंगे तब कहेंगे कि हम भी यहां दुःख ही भोगते तो यहां सुखके स्थानोंको प्राप्तहोते इसीपर एक सतने महाराजसे विनयकरी कि हे महाराज! तुम मनमुखोंको नानाप्रकारके सुख देतेहो और सात्त्विकी मनुष्यों को दुःख भोगातेहो सो यह क्या कारणहै तब महाराजनेकहा कि यह सबही जीव मेरे हैं और दुःख सुखभी मेरे किये हुये हैं पर जब सात्त्विकी मनुष्योंविषे कुछ पाप देखताहूं तब चाहताहूं कि मृत्युके समय यहपुरुष विशुद्ध निर्लेप होकर मेरे नि-कट प्राप्तहोवे ताते उसको मृत्युलोकमेंही दुःख भोगायकर उसके पापोंका शुद्धीक-रणकरताहूं और जो तामसी मनुष्य हैं सो उन विषे जब कोई गुणहोताहै तोभी उसको शरीरके सुखोंकी कामना होती है ताते मैं उसको शरीरके सुख भोगाताहूं और उसकी कामना पूर्ण करताहूं बहुरि जब वहपुरुष परलोक विषे जाताहै तब महाइ सदा भागी होताहै काहेसे कि कोई किंचिन्मात्र भी उस विषे गुणथा सो उस गुणका बदला उसने मृत्युलोक विषे भोगलियाथा और आगे अवगुणही प्र-रहेथे ताते सदाकालको भोगताहै और जब महाराजने यह वचन महापुरुष को बताया कि जो कोई पुरुष बुराई करताहै सो निश्चय करके बुराई पावताहै

तब एक महापुरुषके प्रियजनने भगवान्‌होंका पूछा कि हे महाराज हे स्वामी! ऐसे दण्डसे कैसे छूटेंगे तब महापुरुषने कहा कि सात्त्विकी मनुष्योंको जो रोग होता है सो इसही दण्डकरके उनके पाप क्षमाहोते हैं और परलोकके दुःखों से छूटता है जैसे एक महापुरुषके पुत्र का शरीर छूटा था तब उनके हृदय में कुछ शोक आया तब महाराजकी आज्ञा करके दो देवता मनुष्य का रूपधरकर आय खड़े हुये और उनकी सभामें झगड़ा करनेलगे तब एकने कहा कि मैंने धरतीविषे बीज बोयाथा सो इसने मेरी खेती खूंदडारी है बहुरि दूसरे पुरुषने कहा कि इसने बीज मार्ग विषे बोया था और बायें दाहिने और उसके कहीं मार्ग न था ताते यह खेती अवश्य लथाड़ीगई है तब उन महापुरुषने प्रथम पुरुषसे कहा कि तू जानता न था कि मार्ग विषे खेती नहीं बोनी चाहिये काहेसे कि पथी जनोंसे मार्ग खाली नहीं रहता बहुरि उसपुरुष ने कहा कि क्या तू नहीं जानताहै कि सर्व मनुष्य कालके मार्ग विषे हैं और मृत्युको प्राप्तहोते हैं ताते पुत्रके मरनेकरके शोकवान् क्यों होताहै तब उन महापुरुषने जाना कि मैं भूलाहूं और श्रीरघुनन्दन स्वामी की ओर प्रार्थना करके उस भूल को क्षमा करावनेलगे और ऐसेही एक और सन्तथे सो जब उन्होंने अपने पुत्रको मरतदेखा तब कहनेलगे कि हेपुत्र! तू आगे चलता है परन्तु इस बातको प्रिय रखताहूं काहेसे कि मैं इसकरके तेरे तराजूविषे तोला जाऊंगा अर्थात् मेरे धैर्यकी परीक्षा होवेगी तब पुत्रने कहा कि हेपिता जी! मैं भी योंही चाहताहूं जैसे तुम चाहते हो बहुरि एक और सन्तसे किसीने कहा कि तुम्हारी पुत्री मृतहुई है तब उन्होंने कहा कि जब हमारे पास थी तब भी रघुनन्दन स्वामी की थी और अबभी उन्हींकी ओरगई है बहुरि यह कहकर भजन करनेलगे और कहतभये कि स्वामीकी यही आज्ञाहै कि तुम सर्वअवस्था विषे भजन और धैर्यविषे दृढ़होवो और मेरी सहायता चाहो और एक सन्तने कहाहै कि महाराज चारप्रकारके पुरुषोंसे चार महात्माओंका न्यायनिबेर परलोक विषे करेंगे प्रथम धनवानोंसे पूछेंगे कि तुम सुलेमानकी नाईं धन और राज्यविषे क्यों नहीं बर्ते १ और दूसरे यूसुफकी साख देकर रूपवानोंकी परीक्षा करेंगे २ बहुरि तीसरे वैरागियोंसे पूछेंगे कि ईसाकीनाईं तुम त्यागी और निःस्पृह क्यों न हुये ३ और चौथे रोगी और दुःखियोंको अय्यूबकी साख देकर पूछेंगे और उनसे धैर्यकी परीक्षा करेंगे ४ याते धन्यवादकी क्रियाका योजना इतनाही बहुतहै॥

तीसरासर्ग॥

भय और आशाका वर्णन॥

ताते जान तू कि भय और आशा दोनों जिज्ञासुके परहैं अर्थ यह कि सर्व शुभ गुणोंको और उत्तम गतियों को इनहीं करके पहुँचताहै काहेसे कि भक्ति मार्ग विषे जितने उपाय और साधनहैं सो शुद्ध आशा बिना कदाचित् सिद्ध नहीं होते और जेते इन्द्रियादिक भोगहैं सो सर्व्वदा इस जीवको छलनेहारे हैं ताते श्रीजानकीनाथ के भय बिना इनका त्यागना महाकठिनहै इसी कारणसे सर्व सन्तोंने भय और आशा की विशेषता कही है सो आशारूपी वाग जिज्ञासुको महाराजकी ओर खैंचती है और भयरूपी कोडा किसी स्थानविषे अटकने नहीं देता ताते मैं शुद्ध आशाका बखान करूंगा। बहुरि भयका स्वरूप वर्णन करूंगा ताते जान तू कि भगवत्की आशा सहित भजनकरना अधिक विशेष है काहेसे कि इस करके भगवत् की प्रीति उत्पन्न होती है और महाराजकी प्रीतिही उत्तम अवस्था है और भय करके भजन करना इसके समान नहीं होता काहेसे कि भयका कारण दुःखहै ताते भयकरके प्रीतिनहीं उपजती इसीपर महापुरुषने कहाहै कि मनुष्यको मरने के समय भगवत् की आशाही लाभदायकहै और महाराजने भी कहाहै कि जैसा कोई मुझको जानताहै मैं भी उसके साथ तैसाही वर्त्तताहूं और महापुरुष ने एक प्रीतिमान् को मृत्युके समय कहाथा कि अब तेरे चित्त विषे क्या अवस्था है तब वह कहताभया कि मैं अपने पापों को देखकर भयवान् होताहूं और महाराज की दयाका आसरा रखताहूं यह वचन सुनकर महापुरुष ने कहा कि जिसको श्रीसीतारामजी अभय किया चाहते हैं तिसको ऐसे अवसरविषे अपना भय और आशा देते हैं इसी पर एक महात्माको आकाशवाणीहुई थी कि मैंने तेरे और तेरे परमप्यारे पुत्रविषे इसनिमित्त वियोग डालाहै सो तैने कहाथा कि इसको कहीं भेदिया न मारजावे और भाई इसके अचेतहोजावें तो तैंने चित्तविषे उनकाभयकिया और मेरी रक्षाका आसरातुझ को न आया इसी कारण से मैंने तुझको सजा दीन्हीं है इसी पर एक महात्मा ने एकपुरुषको देखाथा कि अपने पापोंकी अधिकता करके श्रीजानकीनाथ की दयासे निराश हुआ था तब उसको महात्माने कहा कि तू निराश मतहो क्या तू ऐसे कि मेरे पापों में स्वामीकी दया घटि सकीहै और महापुरुषने अपने शिष्यों

मे एकबार ऐसे कहाया कि जैसे मैंने महाराजकी येगवाही को जानाहै सो जब तुमभी जानो तब न्यूनता देवदेवहो और अधिक भयवान् होवो यह वचन सुन कर सबही वियतग रुदन करनेलगे तब महापुरुष को आकाशवाणी हुई कि तुम मेरे जीवों को इतना क्यों डराते हो इनको मेरी दयाके वचन सुनावो और दाऊद महात्माको भी आकाशवाणी हुई थी किन्तु जेसमान भीतिकर और मेरा मनुष्यों के हृदयमें भी मेरी भक्तिदृढ़कर ऐसी कहाकि जब तू इनको मेरी दया के वचन सुनावेगा तब निस्सन्देह मेरे साथही प्रीति करेंगे इसीपर एक वार्ता है कि एक तपस्वी अपनी सभाविषे लोगोंको अधिक ताड़ना के वचन सुनाता था और भयवान् करता था तब उसको आकाशवाणी हुई कि जैसे तू मेरे जीवों को मेरी दयासे निराश करताहै तैसेही मैं भी तुझको परलोक विषे निराश करूंगा ॥ अथ मूर्ख करना रूप आशाका ॥ तातें जान तू कि एक शुद्ध आशाहै और एक आशा अशुद्ध है सो केवल मूर्खता और छलहै पर अल्पबुद्धि जीव इस भेदको नहीं समझसके ताते जो पुरुष धरती को कोमल करके शुद्ध बीज बोवे और समय अनुसार जल सींचता रहे बहुरि कण्टकों को दूरकरे और सर्व विघ्नों की रक्षाके निमित्त भगवत् का आसरा करे तब इसका नाम शुद्ध आशाहै और जब धरती कोमलही न करे अथवा बीजही भला न बोवे अथवा समय अनुसार जल डालेही न देवे और ऐसेही वृद्धि होनेकी आशाराखे तब इसका नाम मूर्खता और छलहै तैसेही जो पुरुष हृदयविषे दृढ़ प्रतीति राखे और ग्लानि का भाव से नितभी शुद्ध करे और भजन करे ॥ जन्मपर्यन्त निरन्तर ऐसेही करे और ना ना प्रकार के पापा के कर्मों से भगवत्की दया चाहै तब इस के सन्तानों ने शुद्ध आशा कहा है तात्पर्य यह कि महाराज का आज्ञाभी करे और कदाचित् कर्मों से रहित भी न होवे जानै कि कदाचित् कर्मों से रहित होजानै निराशता का लक्षण है और जिस पुरुष की प्रतीति दृढ़ न होवे अथवा भी रामभजन विषे सावधान न होवे और चित्तविषे भक्तिकी आशाराखे तब इसका नाम केवल मूर्खता है इसीपर महापुरुषने कहा है कि जो मूर्ख अपने मनरूपी मनाके अनुसार वर्त्तताहै और महाराजकी कृपाकी आशा राखताहै सो मूर्ख है जो कोई इस मनुष्य का कर्म पापों से भरा जब तक करै इनने कृपा तब मेरी दासी दयाका आसरा रखना प्रमाण है इसीपर महापुरुषने कहा है कि मनो

चितवनी के साथ धर्मकी दृढ़ता नहीं प्राप्तहोती ताते जो पुरुष पापों का त्याग करै तब उस त्यागके प्रमाण होनेका आशावन्त रहै अथवा जो पुरुष पापों का त्याग न करसके पर अपने अवगुणों को देखकर शोकवान् होवै और चित्तविषे यह आशाराखै कि मुझसे भगवत् पापोंका त्यागकरावै तब यहभी शुद्ध आशा कहाती है पर जब पापोंको देखकर शोकवान्भी न होवे और त्याग किये बिना आपको बख्शायाचाहे तब इसकानाम मनहीका छलहै यद्यपि मूर्ख मनुष्य इस को शुद्ध आशा कहते हैं पर विचारवानोंने मनविषे इसकानाम व्यर्थ चितवनी है इसीपर एकसन्तने कहा है कि जो पुरुष नरकोंका बीजबोवै और स्वर्ग की आशाराखे सो महामूर्ख है और एक प्रीतिवान् ने महापुरुषसे पूछा था कि मन्द- भागियों का लक्षण क्याहै और भाग्यवानोंका लक्षण क्याहै तब उन्होंने कहा कि जब तू प्रभात समय उठताहै तब तेरे चित्तकी अवस्था क्याहोती है तब उस पुरुषनेकहा कि मैं भले कर्म और भलेमनुष्योंको प्रियतम रखताहूं बहुरि शुद्ध कर्म को प्रतीति संयुक्त फल सहित देखताहूं और शीघ्रही अङ्गीकार करलेताहूं और जब मुझसे शुभकर्मका अवसर चूकजाताहै तब शोकवानहोताहूं तब महापुरुष ने कहा कि भाग्यवानों के लक्षणभी यहीहैं और जिनकी अवस्था इनसे विप- र्ययहै सो मन्दभागी कहाते हैं॥ अथ प्रकट करना उपाय शुद्ध आशाके प्राप्त होने का॥ताते जान तू कि यह आशारूपी औषध के अधिकारी दो मनुष्य होते हैं प्रथम तो जिसने अधिक पाप कियेहोवें और निराशता करके ऐसे जाने कि मेरात्याग प्रमाण न होवेगा सो तिसकोभी भगवत्की दयाका आसरा चा- हिये १ और दूसरा अधिकारी वहहै जो अतिन साधिये आपको नाशकरता होवे तब उसको भी भगवत्की आशा सुखदायक होती है २ पर आशारूपी औषध सारे मनुष्योंका अधिकार नहीं और उनको दुःखरूप विषकी नाईं है बहुरि यह आशाभी दो प्रकार करके प्राप्त होती है सो प्रथम तो दृष्टकी प्रतीति है सो वि- चार करके भगवत्की दया को पहिचाने और जिस जिस प्रकार महाराजने सर्व जीवोंको आश्चर्यरूप बनाया है सो तिनको भी भलीप्रकार समझे और ऐसे जाने कि महाराजके बिना कोई मनुष्य कुछ नहीं समझता ताते भगवत्के उप- कारोंका देखाहोवे तब भयभी उसको भगवान् की कृपाके ऊपर अनीति उपज आवती है पर देखें कि भगवत्ने इसको साहो पदार्थ भी दिये हैं और केवल दया

मे पकार ऐसे कहाथा कि जैसे मेरे महाराजकी बेपरवाही को जानताहै सो जब तुमभी जानो तब सर्वदा रोवतेरहो और अधिक भयवान् होवो यह वचन सुन कर सबही प्रियतम रुदन करतेभये, तब महापुरुष को आकाशवाणी हुई कि तुम मेरे जीवों को इतना क्यों डरावते हो इनको मेरी दयाके वचन सुनावो और दाऊद महात्माको भी आकाशवाणी हुई थी कि तू मेरेसाथ प्रीति कर और मनुष्यों के हृदयमें भी मेरी भक्ति दृढ़ कर इसी करके कि जब तू इनको मेरी दया के वचन सुनावेगा तब निस्सन्देह मेरे साथही प्रीति करेंगे इसीपर एक वार्ता है कि एक तपस्वी अपनी सभाविषे लोगों को अधिक त्रास के वचन सुनाता था और भयवान् करताथा तब उसको आकाशवाणी हुई कि जैसे तू मेरे दासों को मेरी दयासे निराश करताहै तैसेही मैं भी तुझको परलोक विषे निराश करूंगा ॥ अथ प्रकट त्रासों रूप औषधी का ॥ तातें जान तू कि एक शुद्ध आशा है और एक आशा अशुद्ध है सो केवल मूर्खता और छलरूप है पर अल्पबुद्धि जीव इस भेदको नहीं समझसके ताते जो पुरुष धरती को कोमल करके शुद्ध बीज बोवे, और समय अनुसार जल सींचता रहे बहुरि कण्टकों को दूर करे और पशु पक्षियों की रक्षा के निमित्त भगवत् का आसरा करे तब इसका नाम शुद्ध आशा है और जब धरती कोमलही न करे अथवा बीजही भला न बोवे और समय के अनुसार जल जहां न देवे और खेतों के वृद्धि होनेकी आशा राखे तब इसका नाम मूर्खता और दगा है तैसेही जो पुरुष हृदयविषे दृढ़ प्रतीति राखे और शुभ कर्म भजन करे [illegible] शुद्ध करे और [illegible] पूर्व [illegible] करता रहे और नानाप्रकार के मायाके छल [illegible] रक्षा चाहे तब इसको [illegible] जानो [illegible] शुद्ध आशा करे कि [illegible] महाराज का आसरा करे और [illegible] कर्मों में रहित भी न होवे [illegible] रहित होवाहै निराशता का [illegible] और जिन पुरुषों [illegible] नहीं दृढ़ न होवे तथा भी भगवद्भजन विषे सावधान न होवे और [illegible] विषे [illegible] आशा राखे सब इसका नाम छल और मूर्खता है इसीपर महापुरुषने कहा है कि जो मूर्ख अपने मनकी मनसाके अनुसार वर्त्तताहै और महाराजकी दयाकी आशा राखताहै सो महामूर्ख है जो [illegible] इस मनुष्य का [illegible] जब यह [illegible] तब [illegible] दयाकी आसरा राखना अपराध है इसीपर महापुरुषने कहाहै कि [illegible]

नहीं करता तब महापुरुष ने कहा कि ऐसेही यथार्थ है काहेसे कि श्रीजानकी जीवनके समान उदार और दयालु और कोई नहीं और महाराजने भी कहाहै कि मैंने जीवोंको सुख और लाभ देनेके निमित्त उत्पन्न किया है और इनको इस निमित्त तो नहीं उपजाया कि मैं इनकरके किसी सुख और लाभको प्राप्त होऊं और योंभी कहाहै कि मेरे कोपसे मेरी दया अति बड़ीहै ताते जिसपुरुष की प्रतीति मुझ बिना और किसी पदार्थपर नहीं होती सो नरकों के दुःखको नहीं देखता इसीपर महापुरुषने कहाहै कि भगवत अपने जीवों पर पिता और माताते भी अधिक दयालुहै काहे से कि सर्व मनुष्यों और पशुओंविषे जेती दया वर्तमान है सो महाराज के दयारूपी समुद्र की एक बुन्दहै और योंभी कहा है कि श्रीराम पतितपावन हैं इस करके कि पुण्यवान् तो स्वाभाविकही सुखके अधिकारी होतेहैं और योंभी कहाहै कि परलोक विषे दो पापी मनुष्य महाराज के सम्मुख आवेंगे तब उनको आज्ञाहोवेगी कि मैं किसीके ऊपर अन्याय नहीं करता ताते तुम अपने अशुभ कर्मोंके अनुसार नरकों विषे जाओ तब वह दोनों पापी बंधेहुये नरककी ओर चलेंगे पर एक दौड़ता जावेगा और एक ढीलाहोकर चलेगा तब उनको फिर आज्ञा होवेगी कि तू ढीला क्यों चलताहै और तू क्यों दौड़ताहै तब एक पुरुष कहेगा कि हे महाराज! तेरी आज्ञासे विमुखहोने करके मैं नरकगामी हुआ हूं ताते दौड़ताहूं कि अब तो आज्ञा से विमुख न होऊं और दूसरा पुरुष इसप्रकार कहेगा कि मैं तेरी दयाका आसरा रखताहूं सो इसी कारण से ढीला चलताहूं कि अबहीं हम पर क्षमा करताहै यह वचन उनके सुन कर महाराज प्रसन्नहोवेंगे और इसप्रकार कहेंगे कि तुम्हारी भावना निर्मल है ताते मैंने तुम दोनोंको मुक्तकिया बहुरि एक बार एक भक्तने महाराजके आगे बिनती करी थी कि हे महाराज! मुझको पापोंसे क्षमाकरो तब आकाशवाणीहुई कि तेरीनाई सबही पुरुष निष्पाप हुआ चाहते हैं पर जब सब ही निष्पाप होवें तब मेरी दया और क्षमा काहेपर प्रगट होवे तात्पर्य यह कि भगवत्की दया और क्षमाके वचन और भी अनेक हैं पर जिसपुरुषके हृदयविषे भयही प्रबलताहोवे सो तिसको ऐसे वचनोंका विचार लाभदायक होताहै और जो पुरुष आयेहुए भोगों विषे आसक्त और अचेत होवे सो तिसको भगवत् का भय और वैराग्यका धारणा अंगीकार करना प्रमाण है इसीपर एक भक्तने कहाहै

करके सुन्दरताई के निमित्तभी जैसे पदार्थ दिये हैं सो देखिये उसकी दया सर्व सृष्टिविषे व्यापकहै मच्छर और मकोड़ोंको भी उसने आश्चर्यरूप बनायाहै और सबको अपने व्यवहार की बुद्धि दीनीहै ताते जो पुरुष ऐसे महाराजके उपकारोंको पहिचानताहै सो कदाचित् उससे निराश नहीं होता और ऐसे जानताहै कि भगवत्की कृपा अपारहै १ बहुरि दूसरा उपाय यहहै कि जब अपनी बुद्धि करके महाराजके उपकारोंको जान न सके तब भगवत् और सन्तजनों के वचनोंका विचारकरे जैसे महाराजनेभी कहाहै कि मैं अत्यन्त दयालु कृपालु हूं और महापुरुषनेभी कहाहै कि जब इसलोक विषे आस्तिकी मनुष्योंको कुछ रोग आवताहै तब उनके पापोंका दूरकरण होताहै ताते नरकों के दुःखसे वह मुक्त रहते हैं और योंभी कहाहै कि जब इस मनुष्यसे कुछ अवज्ञा होतीहै और आपको बुरा जानकर क्षमा कराया चाहताहै तब महाराज प्रसन्न होकर देवतों से इसप्रकार कहतेहैं कि यह मनुष्य धन्यहै इसकारके कि मुझको अंतर्यामी जानकर भयवान् हुआहै ताते इसको क्षमा करूंगा और योंभी कहाहै कि जब इस मनुष्यसे कुछ पापकर्म होताहै और दीनचित्त होकर उसको क्षमा कराया चाहताहै तब देवता उस पापको लिखतेही नहीं अथवा उस दुष्कृत का दूरकरण होजाताहै और योंभी कहाहै कि जबलग यह पुरुष अपने पापको क्षमा कराने से थकित न होवे तबलग महाराज भी क्षमा करते रहते हैं और थकित कदाचित् नहीं होते इसीपर एक प्रीतिमान् ने महापुरुषसे पूछाथा कि मैं यथाशक्ति भजन स्मरण तो करताहूं पर मेरे पास धन कुछ नहीं ताते दया दानके पुण्यसे अभाव रहताहूं सो हे स्वामीजी ! परलोक विषे मेरीगति कैसे होवेगी तब महापुरुष हँसकरके कहनेलगे कि तू सन्त जनोंकी सभा विषे साथ होवेगा पर जब चित्तको ईर्षा और अभिमान से शुद्ध राखे बहुरि रसनाको झूठ और निन्दासे विवर्जित करे और नेत्रों को कामादिक दृष्टिसे रोके और किसीकी ओर ग्लानि करके न देखे तब तू निस्संदेह परमसुखको पावेगा बहुरि उस प्रीतिमान् ने पूछा कि परलोकविषे जीवों के पाप पुण्यका न्याय कौन करेगा तब महापुरुष ने कहा कि सबका न्याय आप भगवत्ही करेगा यह वचन सुनकर वह पुरुष अधिक प्रसन्न हुआ और हँसकरके कहनेलगा कि जब न्याय करनेहारा पुरुष उदार और दयावान् होताहै तब अधिक तो क्षमा और दयाही करताहै और न्याय कम करता

नहीं करता तब महापुरुष ने कहा कि ऐसेही यथार्थ है काहेसे कि श्रीजानकी जीवनके समान उदार और दयालु और कोई नहीं और महाराजने भी कहाहै कि मैंने जीवों को सुख और लाभ देनेके निमित्त उत्पन्न किया है और इनको इस निमित्त तो नहीं उपजाया कि मैं इनकरके किसी सुख और लाभको प्राप्त होऊं और योंभी कहाहै कि मेरे कोपसे मेरी दया अति बड़ी है ताते जिसपुरुष की प्रतीति मुझ बिना और किसी पदार्थपर नहीं होती सो नरकों के दुःखको नहीं देखता इसीपर महापुरुषने कहाहै कि भगवत् अपने जीवों पर पिता और माताते भी अधिक दयालुहै काहे से कि सर्व्व मनुष्यों और पशुओंविषे जेती दया वर्त्तमान है सो महाराज के दयारूपी समुद्र की एक बुन्दहै और योंभी कहा है कि श्रीराम पतितपावन हैं इस करके कि पुण्यवान् तो स्वाभाविकही सुखके अधिकारी होतेहैं और योंभी कहाहै कि परलोक विषे दो पापी मनुष्य महाराज के सम्मुख आवेंगे तब उनको आज्ञा होवैगी कि मैं किसीके ऊपर अन्याय नहीं करता ताते तुम अपने अशुभ कर्म्मोंके अनुसार नरकों विषे जावो तब वह दोनों पापी बंधेहुये नरककी ओर चलेंगे पर एक दौड़ता जावेगा और एक ढीलाहोकर चलेगा तब उनको फिर आज्ञा होवैगी कि तू ढीला क्यों चलताहै और तू क्यों दौड़ताहै तब एक पुरुष कहेगा कि हे महाराज! तेरी आज्ञासे विमुखहोने करके मैं नरकगामी हुआ हूं ताते दौड़ताहूं कि अब तो आज्ञा से विमुख न होऊं और दूसरा पुरुष इसप्रकार कहेगा कि मैं तेरी दयाका आसरा रखताहूं सो इसी कारण से ढीला चलताहूं कि अबहीं हम पर भला करताहै यह वचन उनके सुनकर महाराज प्रसन्नहोवेंगे और इसप्रकार कहेंगे कि तुम्हारी भावना निर्मल है ताते मैंने तुम दोनोंको मुक्तकिया बहुरि एक बार एक मनुष्यने महाराजके आगे बिनती करी थी कि हे महाराज! मुझको पापोंसे क्षमाकरो तब आकाशवाणीहुई कि तेरीनाई सबही पुरुष निष्पाप हुआ चाहते हैं पर जब सब ही निष्पाप होवें तब मेरी दया और क्षमा कहांपर प्रगट होवै तात्पर्य्य यह कि भगवत्की दया और कृपाके वचन और भी अनेक हैं पर जिसपुरुषके हृदयविषे भगरी भर तहोवै सो तिसको पेसे वचनोंका विचार लाभदायक होताहै और जो पुरुष आगेही भोगोंविषे आसक्त और अचेत होवे सो तिनको भगवत् का भय और वैराग्यही मार्ग अंगीकार करना चाहिये इसीपर एक मनो रथहै

करके सुन्दरताई के निमित्तभी जेते पदार्थ दिये हैं सो ऐसेही उनकी दया करके सृष्टिविषे प्रगटहै गन्धर्व और मनोहराकोभी उसने आश्चर्यरूप बनायाहै और सबको अपने २ व्यवहार की बुद्धि दीनीहै ताते जो पुरुष ऐसे महाराजके उपकारोंको पहिचानताहै सो कदाचित् उससे निराश नहीं होता और ऐसे जानताहै कि भगवत्की कृपा अपारहै १ बहुरि दूसरा उपाय यहहै कि जब अपनी बुद्धि करके महाराजके उपकारोंको जान न सके तब भगवत् और सन्तजनों के बचनोंका विचारकरे जैसे महाराजनेभी कहाहै कि मैं अत्यन्त दयालु कृपालुहूं और महापुरुषनेभी कहाहै कि जब इसलोक विषे भास्तिकी मनुष्योंको दुखरोग आवताहै तब उनके पापोंका प्रायश्चित्त होताहै ताते नरकों के दुखसे यह मुक्त रहते हैं और योंभी कहाहै कि जब इस मनुष्यकी कुछ अवज्ञा होतीहै और आपको भूला जानकर क्षमा कराया चाहताहै तब महाराज प्रसन्न होकर देवतों से इसप्रकार कहतेहैं कि यह मनुष्य अपनेहि इस करके कि मुझको अन्तर्यामी जानकर सचवान हुआहै ताते इसको क्षमाकरूंगा और योंभी कहाहै कि जब इस मनुष्यसे कुछ पापकर्म होताहै और दीनचित्त होकर उसको पश्चात्ताप चाहताहै तब देवता उस पापको लिखतेही नहीं अथवा उस दुष्कृतका प्रायश्चित्त होजाताहै और योंभी कहाहै कि जबलग यह पुरुष अपने पापको क्षमाकराने से पवित्र न होवे तबलग महाराजभी क्षमाकरते रहतेहैं और थकित कदाचित् नहीं होते इसीपर एक श्रीमान् ने महापुरुषसे पूछाथा कि मैं यथाशक्ति भजन स्मरण तो करताहूं पर मेरे पास धन कुछ नहीं ताते दया दानते पुण्यसे अभाव रहताहूं सो हे स्वामीजी! परलोक विषे मेरीगति कैसे होवेगी तब महापुरुष हँस करके कहनेलगे कि तू सन्त जनोंकी सभा विषे वास होवेगा पर जब दिलको ईर्षा और अभिमान से शुद्ध राखे बहुरि रसनाको झूठ और निन्दासे विवर्जित करे और नेत्रोंको कामासक्त दृष्टिसे रोके और किसीको ग्लानि करके न देखे तब तू निस्सन्देह परमसुखको पावेगा बहुरि उस श्रीमान्ने पूछा कि परलोकविषे जीवों के पाप पुण्यका न्याय कौन करेगा तब महापुरुष ने कहा कि सबका न्याय आप भगवत्ही करेगा यह बचन सुनकर वह पुरुष अधिक प्रसन्न हुआ और हँसकरके कहनेलगा कि जब न्याय करनेहारा पुरुष उदार और दयावान होताहै तब अधिक तो क्षमा और दयाही करताहै और अधिक ताड़ना

नहीं करता तब महापुरुष ने कहा कि ऐसेही यथार्थ है काहेसे कि श्रीजानकी जीवनके समान उदार और दयालु और कोई नहीं और महाराजने भी कहाहै कि मैंने जीवों को सुख और लाभ देनेके निमित्त उत्पन्न किया है और इनको इस निमित्त तो नहीं उपजाया कि मैं इनकरके किसी सुख और लाभको प्राप्त होऊं और योगी कहाहै कि मेरे कोपसे मेरी दया अति बड़ीहै ताते जिसपुरुष की प्रतीति मुझ बिना और किसी पदार्थपर नहीं होती सो नरकोंके दुःखको नहीं देखता इसीपर महापुरुषने कहाहै कि भगवत् अपने जीवों पर पिता और माताते भी अधिक दयालुहै काहे से कि सर्व मनुष्यों और पशुवोंविषे जेती दया वर्त्तमान है सो महाराज के दयारूपी समुद्र की एक बुन्दहै और योगी कहा है कि श्रीराम पतितपावन हैं इस करके कि पुण्यवान् तो स्वाभाविकही सुखके अधिकारी होतेहैं और योगी कहाहै कि परलोक विषे दो पापी मनुष्य महाराज के सम्मुख आवेंगे तब उनको आज्ञाहोवेगी कि मैं किसीके ऊपर अन्याय नहीं करता ताते तुम अपने अशुभ कर्मोंके अनुसार नरकों विषे जावो तब वह दोनों पापी बांधेहुये नरकको और चलेंगे पर एकदौड़ता जावेगा और एक ढीलाहोकर चलेगा तब उनको फिर आज्ञा होवेगी कि तू ढीला क्यों चलताहै और तू क्यों दौड़ताहै तब एक पुरुष कहेगा कि हे महाराज! तेरी आज्ञामे विमुखहोने करके मैं नरकगामी हुआ हूं ताते दौड़ताहूं कि अब तो आज्ञा से विमुख न होऊं और दूसरा पुरुष इसप्रकार कहेगा कि मैं तेरी दयाका आसरा रखताहूं सो इसी कारण से ढीला चलताहूं कि अबहीं हम पर क्षमा करताहै यह वचन उनके सुनकर महाराज प्रसन्नहोवेंगे और इसप्रकार कहेंगे कि तुम्हारी भावना निर्मल है ताते मैंने तुम दोनोंको मुक्तकिया बहुरि एक बार एक मनुष्यने महाराजके आगे विनती करी थी कि हे महाराज! मुझको पापोंसे बचाकर सब आकाशवाणीहुई कि तरीनाई सबही पुरुष निष्पाप हुआ चाहते हैं पर जब सब ही निष्पाप होवें तब मेरी दया और क्षमा क्योंकर प्रगट होवे तात्पर्य यह कि भगवत्की दया और कृपाके वचन और भी अनेक हैं पर जिसपुरुषके हृदयविषे भयही प्रबलताहोवे सो जिसको ऐसे वचनोंका विचार लाभदायक होताहै और जो पुरुष आगही मोगों विषे आसक्त और अचेत होवे सो जिसको भगवत् का भय और वैराग्यका धारणे अंगीकार करना उचित है इसीपर एक मनने कहाहै

कि जब कोई इस प्रकार कहै कि परलोक विषे एकही पुरुष नरकगामी होवेगा तब पुरुषों को यह करना योग्य है कि वह पुरुष मैं हीं न होऊं और जब कोई इस प्रकार कहै कि परलोक विषे एकही मनुष्य उत्तमपद का अधिकारी होगा तब भगवत् की कृपा आशा करके यह जानना है कि जो महाराज मुझ ही को परमपद का अधिकारी करै तो कृपा आश्चर्य है ताते बुद्धिमानों के हृदय विषे आशा और भय समान होते हैं ॥ श्लोक [illegible] ॥ [illegible] ॥ ताते जान तू कि श्री रघुनन्दन स्वामी का भय उत्तम औषध है बहुरि इसकी विशेषता और फलभी अधिक है और कारण इसका ज्ञान है इसलिये महापुरुष ने कहा है कि सर्व शुभगुणों की कुंजी भगवत् का भय है बहुरि संयम और वैराग्य इसका फल है इस करके कि भय बिना भोगों का त्याग नहीं होता और भोगों के त्याग बिना परमार्थ के मार्ग विषे चल नहीं सक्ता और योगी कहते हैं कि परलोक विषे सर्व जीवों को इस प्रकार भगवत् की आज्ञा होवेगी कि मैंने जबसे तुमको उत्पन्न किया है तबसे तो मैं तुम्हारे सब वचन सुनता रहा हूं पर अब एक वचन मेरा भी सुनो कि मैं तुम्हारी करतूति तुमको प्रसिद्ध कर दिखाता हूं काहे से कि तुमने मनकल्पित दोषों को विशेष करके पूजा है और मेरे स्मरण से विमुख हुए हो सो मनमानी लोगों [illegible] ताते मैं अब पापियों और वैष्णवों की विशेषता प्रकट करता हूं जैसे [illegible] सब वैरागी और गफलत पुरुषों को मुक्ति को प्राप्त होवेंगे और महाराज [illegible] कहा है कि दो निर्भयता और दो भय किसी मनुष्य के हृदय विषे सदा [illegible] नहीं होता अर्थ यह कि जो इस संसार विषे मुझसे डरता है तब मैं उसका परलोक विषे अभय करता हूं और जो संसार विषे अभय रहता है सो परलोक विषे दीर्घ भय का पावता है और पैगम्बर ने भी कहा है कि [illegible] भगवत् का [illegible] जिसके [illegible] हाथी है और जिसको भगवत् का भय [illegible] नहीं सर्व पदार्थों से डरता रहता है ताते [illegible] बुद्धिमान [illegible] जिसको भगवत् का भय अधिक है और जो [illegible] भय [illegible] सो निश्चय [illegible] और [illegible] और भगवत् [illegible] भगवत् [illegible] और [illegible] कि [illegible] और [illegible] और [illegible] कि [illegible] और [illegible] करते [illegible] और सो

पुरुष एकान्त विषे भगवत् का भजन करके भयभयुक्त होवे सो परलोक की तपनि विषे भगवत्की छाया तले रहेगा उसीपर एक सतने कहाहै कि जिसदिन मुझको भगवत्का भय अधिक हुआ है तिसदिन मैने अवश्यही उत्तम बूझको पायाहै और एक और सतने कहाहै कि जैसे दो सिंहोंकी झपटविषे आयाहुआ किसी प्रकार नहीं छूटता तैसेही भगवत् की आशा और भयकरके जिज्ञासु के पाप शीघ्रही नष्ट होजाते हैं और एक और सन्त ने भी कहाहै कि जैसे यह मनुष्य निर्धनता से डरता है पर जब ऐसेही नरकों का भयकरता तब निस्संदेह परमसुख को प्राप्त होता क्योंकि जो पुरुष इसलोक विषे महाराजका भयकरता है सो परलोक विषे अभय होवेगा और हसनबसरी सन्तने कहाहै कि जिस संगति विषे तुमको भगवत् भय उपजै सोई संगति करो तब परलोक विषे निर्भय होवोगे और जिनके बचन सुनकरके तुम्हारा भय दूरहोजावे तिनकी संगतिको दुःखदायक जानो इसी पर आयशाने महापुरुष से पूछाथा कि महाराज ने जो यह बचन कहाहै कि जो करतेहैं और डरते हैं सो इसका क्या अर्थ है तब महापुरुषने कहा कि जिज्ञासुजन भजन और दानादिक शुभकर्म करतेहैं और चित्त विषे भयवान् रहते हैं कि मत यह हमारा कर्म प्रमाण न होवे और एक सन्तने भी कहाहै कि भगवत् के भय संयुक्त रुदनकरो और जो स्वाभाविकही तुमको रोना न आवे तब यत्नकरके भी चित्तको कोमलकरो॥ अथ प्रकटकरना रूपभय का॥ जाते जान तू कि भयरूपी अग्नि इस मनुष्य के हृदय विषेही प्रकट होतीहै पर इसका कारण विद्या और बूझहै जब इस मनुष्यको परलोकके दुःखकी बूझ प्राप्त होती है और स्थूल भोगोंको अपनी हानिका कारण जानताहै तब स्वाभाविकही भयरूपी अग्नि उपज आती है पर यह बूझ भी दोप्रकार होती है प्रथम तो जिसको अपनी पराधीनता और अवगुण प्रत्यक्ष भासते हैं और भगवत्के उपकारों को जानता है तब स्वाभाविकही भयवान् होताहै जैसे किसी पुरुष ने राजासे बहुत बख्शीश पाई होवे बहुरि जब उसमे चोरी और कृतघ्नतादिक अवज्ञा होजावे और ऐसे जाने कि मेरा यह धन उगना न जाने कैसा है और मेरी अवज्ञाको क्षमाकरनेहारा भी और कोई नहीं और राजा का स्वभाव महा तेजस्वी है तब ऐसे जानकर अवश्यही उसका हीर भय उपजता है १ बहुरि दूसरी बूझ यहहै कि जिसने श्रीगुरुनामीके ऐश्वर्य और बेपरवाहीको ऐसी

प्रकार पहिचानाहै सो तिसकोही अधिक भय होताहै जैसे कोई पुरुष अचानक
ही सिंहके निकट जायपहुँचे तब स्वाभाविकही भय युक्त होजाताहै तो
यद्यपि उसका डरना अपराध निमित्त नहीं होता पर सिंहकी प्रबलता और अ
पनी निर्बलताको देखकर कम्पायमान होताहै तैसेही जिसने महाराजके ऐश्व
र्यको ऐसे समझाहै कि जो सर्व ब्रह्मण्डोंको नाश करडारें तौभी उसका कुछ
घटता नहीं और जब सबको नरकों विषे डारदेवें तौभी उसको कुछ दोष नहीं
लगता और यद्यपि उसको कृपालु दयालु कहतेहैं तौभी उसका शुद्धस्वरूप
कृपा और कोपसे परेहै और सर्व स्वभावों से निर्लेपहै तातें ऐसे जानने करके
यह पुरुष सर्वदा भयविषे स्थित होताहै और यद्यपि संतजन सर्व पापोंसे निर्दोष
हैं पर महाराज के ऐश्वर्य का भय उनको भी होताहै इसी पर महापुरुष ने भी
कहाहै कि जिसको भगवत् की पहिचान अधिक है सो तिसको अधिकही भय
होताहै और महाराज ने भी कहाहै कि जिसने मुझको नहीं जाना सो मुझसे
निडर होताहै और दाऊद महात्मा को भी आकाशवाणी हुई थी कि हे दाऊद
मुझसे ऐसा भयवान् हो जैसे और मनुष्य सर्पसे और गर्ज और सिंहसे भय
वान् होते हैं तातें भयका कारण यही मुख्य है बहुरि इसका फल शरीर विषे हो
जाताहै और सर्व इन्द्रियों विषे भी प्रकटहोताहै पर हृदय विषे भयका लक्षण यहहै
कि उसको सर्वभोग विरस होजातेहैं जैसे सिंहके निकट गयाहुआ खाने पी
ने विषे भोगोंकी चपलता नहीं रहती और कम्पायमान भयवान् होकर दीन निरा
श्रय एकत्र होजाताहै अथवा उसको यही भय होताहै कि देखिये मुझको कैसी
ताड़ना होवेगी इसी कारण से अभिमान ईर्षा तृष्णा आलस्य कुछ नहीं रहता
बहुरि भयका लक्षण शरीर और इन्द्रियोंविषे इसप्रकार होताहै कि प्रथम तो श
रीर क्षीण और दुर्बल होजाताहै और इन्द्रियां भी पापों विषे प्रवेश नहीं करतीं
और शुभकर्मों विषे सावधान होतीहैं पर भयकी अवस्था विषे भी भेदहै
कि जब पापरूप भोगों से आपको परहेज करे तब उसको त्यागी कहते हैं और
जब राजसी भोगों से रहितहोवे तब वैरागी कहाजाताहै और जब शास्त्रोक्त कर्मों
विषे आरूढ़ न होवे तब उसको साधु पुरुष कहाजाताहै पर जो पुरुष सिद्धि
अवस्था को प्राप्त होवेगा और पुरुषार्थ की प्राप्ति करसकताहै बहुरि भोगोंकी
प्राप्तिविषे अनेक दोषजानके उन उनका त्याग करताहै और ऐसा मान करके

नहीं कहते काहेते कि जो पुरुष किसी पदार्थ से भयवान् होताहै तब फिर उस की अङ्गीकार नहीं करता जैसे किसीको अपने वस्त्रविषे सर्प दृष्टिआवे तब शीघ्र उस को डारदेताहै और मुखसे त्यादित्याादि करने नहीं लगता इसीपर एक सन्तसे किसीने पूछाथा कि भयवान् का लक्षण क्याहै तब उन्होंने कहा कि जैसे रोगी मरने के भयकरके सर्व भोगों को त्याग देताहै तैसेही भयवान् पुरुष वहहै जो परलोक के भयकरके सर्व सुखोंको विष जाने ॥ अब प्रकट करना भेद भयकी अवस्थाका ॥ तातें जानतू कि भयकी तीन अवस्थाहैं सो एक अतितीक्ष्ण है १ और दूसरी समानहै २ और तीसरी अतिनिर्बलहै ३ पर सर्व विषे समान अवस्था विशेषहै काहेसे कि निर्बल करके इस जीवका कार्य्य कुछ नहींहोता और यद्यपि कोई पल भर्ही उसकरके सचेतहोताहै पर तौभी शीघ्रही अचेत होजाता है और तीक्ष्ण भय इसका नामहै कि भयकी प्रबलता करके निराश और बरापर होजावे और शरीर की मृत्युको जाय पहुँचे इसीकारण से यह दोनों अवस्था निषेधहैं कि इनकरके पापोंका त्याग और शुभकर्म्मों की दृढ़ता नहीं होती और इसे निमित्तभी भयकी अधिकता नहींचाहिये कि भयका सुख ज्ञान और भरोसे और प्रेमकीनाईं नहीं काहेसे कि भरोसा आदिक लक्षण सबही सुखरूपहैं और भय इनकी प्राप्ति के निमित्त चाहिये है इसी कारण से कहाहै कि भयका कारण पराधीनता और अजानताहै इसकरके कि असमर्थता और अजानता के अभाव बिना भय नहीं उपजता ताते महाराज को निर्भय स्वरूप कहा है कि उस विषे अजानता और असमर्थता का अवगाह नहीं पायाजाता पर भगवत् मार्ग की साधनाके निमित्त इसजीवको अवश्यही भय चाहिये और अनेक पुरुषोंको भय ही सुचेत करताहै जैसे बालक और पशु किसीप्रकार भयबिना सुचेत नहीं होते ताते निर्बल भयका दृष्टान्त यह है कि जैसे पाधा बालक को वस्त्रकरके मारे वा पशु को अंगुली करके मार्गविषे चलाया चाहे तब बालक और पशुकी अचेतता रंचक भी दूर नहीं होती और तीक्ष्ण भयका दृष्टान्त यह है जैसे बालक और पशुको ऐसा मारता है कि उसका अवगाह करजावे अथवा मृत्युको प्राप्त होजावे सो जैसे यह दोनों प्रकार की ताड़ना निष्फल होती है तैसही तीक्ष्ण और निर्बल भयकरके इस जीवका कार्य्य कुछ नहीं होता और जब यह पुरुष भयकी समान अवस्थाको पाताहै तब पापोंसे दूर भागताहै और शुभकर्मोंकी

प्रकार पहिंचानाहै सो तिसकोभी अधिक भय होताहै जैसे कोई पुरुष अचानक ही सिंहके निकट जायपहुँचे तब स्वाभाविकही भय सयुक्त कांपने लगताहै सो यद्यपि उसका डरना अवश्य निमित्त नहीं होता परंतु सिंहकी प्रबलता और अपनी निर्बलताको देखकर कम्पायमान होताहै वैसेही जिसने महाराजके ऐश्वर्यको ऐसे समझाहै कि जो सर्व ब्रह्मण्डोंको नाश करडारे तौभी उसका कुछ घटता नहीं और जब सबको नरकों विषे डारदेवै तौभी उसको कुछ दोष नहीं लगता और यद्यपि उसको कृपालु दयालु कहतेहैं तौभी उसका शुद्धस्वरूप कृपा और कोपसे परेहै और सर्व स्वभावों से निर्लेपहै ताते ऐसे जानने करके वह पुरुष सर्वदा भयविषे स्थित होताहै और यद्यपि संतजन सर्व पापोंसे निर्दोष हैं पर महाराज के ऐश्वर्य्य का भय उनको भी होताहै इसी पर महापुरुषों नेभी कहाहै कि जिसको भगवत् की पहिंचान अधिक है सो तिसको अधिकही भय होताहै और महाराज नेभी कहाहै कि जिसने मुझको नहीं जाना सो मुझसे निडर होताहै और दाऊद महात्मा को भी आकाशवाणी हुई थी कि हे दाऊद मुझसे ऐसा भयवान् हो जैसे और मनुष्य मेघकी घोर गर्जे और सिंहसे भयवान् होते हैं ताते भयका कारण यही बूझ है बहुरि इसका फल हृदय विषे उपजताहै और सर्व इन्द्रियों विषे भी प्रकटताहै पर हृदय विषे भयका लक्षण यहहै कि उसको सर्वभोग विरस होजातेहैं जैसे सिंहके निकट राजाके कठिन बंदीखाने विषे भोगोंकी चपलता नहीं रहती और अत्यन्त भयवान् होकर दीनचित्त और एकत्र होजाताहै अथवा उसको यही भय होताहै कि देखिये मुझको कैसी ताड़ना होवेगी इसी कारण से अभिमान ईर्षा तृष्णा अनेकता कुछ नहीं रहती बहुरि भयका लक्षण शरीर और इन्द्रियोंविषे इसप्रकार होताहै कि प्रथम तो शरीर क्षीण और दुर्बल होजाताहै और इन्द्रियां भी पापों विषे प्रवेश नहीं करतीं और शुभकर्म्मों विषे सावधान होती हैं पर भयकी अवस्था विषे भी यहा भेदहै कि जब पापकृत भोगों से आपको बचाय राखे तब उसको त्यागी कहते हैं और जब राजसी भोगों से रहितहोवे तब वैरागी कहाताहै और जब सात्त्विकी भोगों विषे आसक्त न होवे तब उसको साचा पुरुष कहाजाता है पर जो पुरुष किसी अवसर तो रुदन करनेलगे और मुखसे भी आदिजाहि करताहै बहुरि भोगोंकी प्राप्तिविषे अनेकहोजावे तब उसको सगय बुद्धि कहते हैं और इस का नाम कम,

नहीं कहने काहे मे कि जो पुरुष किसी पदार्थ से भयवान् होताहै तब फिर उस को अङ्गीकार नहीं करता जैसे किसीको अपने वस्त्रविषे सर्प दृष्टिआवे तब शीघ्र उसको डारदेताहै और सुखमें व्याधिव्याधि काने नहीं लगता इसीपर एक सन्तसे किसीने पूछाथा कि भयवान का लक्षण क्याहै तब उन्होंने कहा कि जैसे रोगी मरने के भयकरके सर्व भोगोंको त्याग देताहै तैसेही भयवान् पुरुष वहहै जो परलोक के भयकरके सर्व सुखोंको विष जाने ॥ अथ प्रकट करना भेद भयकी अवस्था का ॥ तातें जानतू कि भयकी तीन अवस्थाहैं सो एक अतितीक्ष्ण है १ और दूसरी समानहै २ और तीसरी अतिनिर्बलहै ३ पर सर्व विषे समान अवस्था विशेषहै काहेसे कि निर्बल करके इस जीवका कार्य्य कुछ नहीं होता और यद्यपि कोई पल घड़ी उसकरके सचेतहोताहै पर तौभी शीघ्रही वचेत होजाता है और तीक्ष्ण भय इसका नामहै कि भयकी प्रबलता करके निराश और पराधीन होजावे और शरीर की मृत्युको जाय पहुँचे इसीकारण से यह दोनों अवस्था निषद्धहैं कि इनकरके पापोंका त्याग और शुभकर्मों की दृढ़ता नहीं होती और इसी निमित्तभी भयकी अधिकता नहींचाहिये कि भयका गुण ज्ञान और भरोसे और प्रेमकी नाईं नहीं काहेसे कि भरोसा आदिक लक्षण सबही सुखरूपहैं और भय इनकी प्राप्ति के निमित्त चाहिये है इसी कारण से कहाहै कि भयका कारण पराधीनता और अज्ञानताहै इसकरके कि असमर्थता और अज्ञानता के आधीन भय नहीं उपजता तातें महाराज को निर्भय स्वरूप कहा है कि उस विषे अज्ञानता और असमर्थता का अवतार नहीं पायाजाता पर भगवत् मार्ग की साधनाके निमित्त इसजीवको अवश्यही भयचाहिये और अचेत पुरुषोंको भय ही सुचेत करताहै जैसे बालक और पशु किसीप्रकार भयविना सुचेत नहीं होते तातें निर्बल भयका दृष्टान्त यह है कि जैसे पाधा बालक को थप्पड़ मारे और अथवा पशुको अंगुली धरके मार्गविषे चलाया चाहे तब बालक और पशुकी अचेतता रञ्चक भी दूर नहीं होती और तीक्ष्ण भयका दृष्टान्त यह है जैसे बालक और पशुको ऐसा मारे कि उसका अंगही कटजावे अथवा मृत्यु को प्राप्त होजावे सो जैसे यह दोनों प्रकार की ताड़ना निष्फल होती है तैसेही तीक्ष्ण और निर्बल भयकरके इस जीवका कार्य्य कुछ नहीं होता और जब यह पुरुष भयभी समान अवस्थाको पाताहै तब पापोंसे डरने लगताहै और शुभकर्मोंकी

श्रद्धा उपजती है ताते बुद्धिमान् पुरुष समान भयविषेही स्थितहोते हैं और जब भयकी अधिकता होने लगती है तब भगवत्का आसरा चितवते हैं और जब भयकी निर्बलता होती है तब भगवत् की बेपरवाही को स्मरण करते हैं पर जो पुरुष भयसे रहित होवे और आपको बुद्धिमान् कहावे तब जानिये कि उसकी बुद्धिही मन्द है और झूठाही अभिमान करता है जैसे कोई मनुष्य वैद्यक पढ़े विना आपको वैद्य कहावे तब वह केवल झूठाही कहाताहै तैसेही भयविना और विद्या सबही झूठी है काहेसे कि सर्वविद्या का मूल अपना और भगवत् का पहिंचाननाहै अर्थात् अपने अवगुणोंको भलीप्रकार देखना और भगवत्को सर्व गुणनिधान, समर्थ और बेपरवाही जानना ताते जिस पुरुष ने अपनी अधीनता और भगवत् की समर्थता को भलीप्रकार समझाहै सो,तिसके हृदय विषे अवश्य भयही उपजताहै इसीपर महापुरुष ने कहाहै कि प्रथम इस जीवको भगवत्की बड़ाई और बेपरवाही को पहिंचानना प्रमाणहै बहुरि उसी महाराज का दासहुआ चाहिये कि सर्वदा आपको दीन पराधीन देखताहै सो जिस पुरुषने इस भेदको भलीप्रकार समझाहै तब वह भयसेरहित क्योंकर होवेगा ॥ अब प्रकट करने भेद भयके ॥ ताते जान तू कि यद्यपि भयका उपजना किसी त्रास करके होताहै पर वह त्रासभी भिन्न भिन्न भावकरके उपजती है केते पुरुष नरकों के त्रासकरके भयवान् होते हैं और केते पुरुषों को अपने अवगुणोंका भयहोता है और ऐसे जानताहै कि मन पापों के त्यागकिये विना शरीर छूटजावे तो हमारा अकाज होवेगा और किसीको यह भयहोताहै कि भगवत् मेरे सकल्पोंका अन्तर्यामी है ताते जब मुझसे कुछ अवज्ञाहोजावे और उसकी अप्रसन्नताको प्राप्तहोऊं तब अविनाशी दुःखविषे दुःखितहूंगा तात्पर्य यह कि इस मनुष्यको जिस जिस प्रकार भय उत्पत्तिहोवे तब चाहिये कि उसीके उपाय विषे सावधान होवे जिसको अपने मलिनस्वभावका भयहोवे कि मत मैं अपने मनके अधीन होकर पापों विषे आसक्त होजाऊं सो तिसको चाहिये कि मलिन स्वभावसे विपर्य्यय होकर भलेस्वभाव विषे विचरे और जो पुरुष महाराज को अन्तर्यामी जानकर भयवान् होवे तब चाहिये कि मलिन मकरों से अपने हृदयको शुद्ध राखै पर जिज्ञासुजनों को अधिक भय यही होताहै अन्तकालपर्य्यन्त मेरे धर्म का निर्वाह होवे अथवा न होवेगा और इससे भी विशेष त्रास यह है कि देखिये

महाराज ने मेरे भाग्य विषे क्या लिखा है काहे से कि जैसा जैसा महाराज ने जिस जिस के भागों विषे लिखा है सो कदाचित उलटता नहीं इसी कारण से कितने पुरुष प्रथम पाप कर्मों विषे आसक्त होते हैं और भगवत् की आज्ञा करके पीछे उनकी अवस्था निर्मल होजाती है और कैसे मनुष्य प्रथम चिरकाल पर्य्यन्त सात्त्विकी कर्म्म करते रहते हैं और पीछे उनकी बुद्धि विपरीत होजाती है और कुमार्ग को अंगीकार करते हैं तातें भाग्यवान् वही है जिसको महाराज ने आदिही संकेत विषे भाग्यवान् किया है और अति मन्दभागी वही है जिसको आदि संकेत विषे भाग्यहीन रचा है इसकारणसे बुद्धिमानोंको आदिसंकेत की भय होताहै सो यह भी महा विशेष है काहे से कि जिसको अपने पापोंका भय होता है सो वह पापों के त्यागने करके निडर और अभिमानी होजाताहै और महाराजकी बेपरवाहीका जो भयहै सो कदाचित् दूर नहीं होता इसकारणे कि यद्यपि भगवत्ने सतजनों को उत्तम अवस्था विषे स्थित कियाहै और दुर्बुद्धियों को अधोगति विषे डाराहै पर जब विचार करके देखिये तो जगत् की उत्पत्तिके आदि में किसी ने भगवत् की अवज्ञाभी नहीं करीथी और किसी ने सेवाकरके उसको रिझायाभी न था तातें कारण बिना जिसपर वह दयालु हुआ है तिसको भलामार्ग दिखायाहै और कारण बिनाही किसीको पापोंकी अभिलाषा विषे आसक्त कियाहै सो जैसा जैसा किसीको महाराजने लखायाहै तैसा ही उसने लखाहै जिसको स्थूल भोग सुखरूप दिखाये हैं सो वह उनका त्याग नहीं करसका और जिसको विषरूप लखाये हैं सो तिसने उन को अंगीकार नहीं किया जिसके नेत्रों को उसने मूंदा है सो दुखको भी दुख नहीं जानसका और जिसके नेत्रोंको प्रभुने खोला है सो वह दुखके मार्ग विषे चल नहीं सका तातें धर्मी और पापी दोनों पराधीनहैं और भगवत्की आज्ञानुसार पुण्य पाप को ग्रहणकरते हैं महाराजने जिसको मन्दभागी कियाहै सो अधोगतिको प्राप्त होताहै और जिसको भाग्यवान् कियाहै सो परमसुखको पाताहै तात्पर्य यह कि जिस महाराज को किसी का भय नहीं और जिसप्रकार चाहता है तैसेही कर लेता है और जिसके हुक्मको कोई नहीं फेरसका सो ऐसे महाराज से डरना भयवान् होना मुनासिब है इसी पर दाऊद जीको आकाशवाणी हुईथी कि जैसे गरजते सिंहको देखकर भय उपजताहै तैसेही मुझसे भयवान होना चाहिये कि

जब किसीको सिंह मारता है तब सिंहको भय कुछ नहीं आवता और किसी अवज्ञाके सम्बन्ध करकेभी नहीं मारता और जब छोड़देवे तोभी किसीगुण अवगुणकरके नहीं छोड़ता ताते उसका मारना और छोड़ना कारण बिनाही कहा है तैसेही जिसने महाराजकी बड़ाई और तेजको इसप्रकार समझाहै सो कदाचित् निर्भय नहीं होता ॥ अब प्रकट करना भेद अन्तकालका ॥ ताते जान तू कि बहुते भयवान् पुरुष अन्तकालके भयकरके डरते हैं सो इसका कारण यह है कि अन्तका समय महाकठिन होताहै और इसमनुष्यका मन क्षण क्षण विषे चलायमान है ताते जाना नहीं जाता कि उस समय विषे इसीका चित्त किसे स्वभाव विषे स्थितहोवेगा इसीपर एकबुद्धिमान्ने कहाहै कि जब मैं पचास बर्ष पर्यन्त किसी के संगहोऊ और उसकी अवस्थाको देखतारहूं बहुरि जब वह पुरुष एकघड़ी मुझसे दूर होजावे तबभी मैं उसकी अवस्थाकी साखी न देऊं काहेसे कि इसमनुष्यके मनकी वृत्ति महाचपलहै ताते जाना नहीं जाता कि एकघड़ी के अन्तकालविषे कैसे स्वभावको प्राप्तहोवेगा इसीपर एकसन्तने महाराज की दुहाई करके कहाहै कि किसी पुरुषको अन्तकालके भयसे निडर होना प्रमाण नहीं इसकरके कि देखिये उससमय धर्मका निर्वाह होवेगा अथवा न होवेगा और सुहेल सतने कहा है कि जिज्ञासुजन अन्तकाल के भय से श्वास श्वास विषे डरतेरहते हैं बहुरि एक सन्त मृत्युके समय रोनेलगे थे तब लोगोंने उनसे कहा कि तुम्हारे पापोंसे भगवत्की बड़ाई और दयालुता अति बड़ी है ताते तुम रुदन मतकरो तब उन्हों ने कहा कि यद्यपि मैं जानता हू कि जिस समय विषे मेरी प्रतीति भलीप्रकार स्थितहोगी तब मैं पापोंको देखकर भयवान् न होऊं पर मैंतो इतना भी नहीं जानता कि अन्तपर्यन्त मेरे धर्मका निर्वाह क्योंकर होवेगा और सुहेलसन्तने कहाहै कि प्रीतिमान्को मनमुखताका भय रहताहै अर्थ यह कि ज्ञानवान् अहंकारके फुरनेकोभी मनमुखता जानते हैं और ऐसे मनमुखी से डरते रहते हैं काहेसे कि अहंकार और कपट अन्तकाल विषे इसकी प्रतीति को नष्ट करडालते हैं इसीपर इसनिबसरी सन्तने कहाहै कि मनके सङ्कल्पों और शरीरकी क्रियाको भिन्नभावका दिखानाही कपटहै ताते अन्तकाल विषे ऐसे पुरुषकी अवस्था स्थिर नहीं रहती पर मृत्युके समय जो इस जीवका सम्बन्ध परमात्माहै सो इसके भी बहुत कारणहैं और इनका विस्तार प्रकटकरना प्रमाण

नहीं ताते मैं दो कारणोंको प्रसिद्ध कहताहूं प्रथम तो जिसने सन्तजनोंकी स-र्य्यादसे बिपर्य्यय क्रिया ग्रहण कीनहै और अपनी सर्व आयुष् मनमतके मार्ग बिषे बिताई है और उस मार्गको कुछभी नहीं जानताहोवे सो जब उसकी मृत्यु का समय आता है तब उसके कपाट खुल जाते हैं और अपनी कियाको मृषा जानने लगताहै ताते उस अवस्थाके बिपर्ययमात्र बिषे यद्यपि कुछ अल्पमात्र आगे भगवतकी प्रतीति होती है पर उससमय वह भी निःसंदेह निश्चल जानौहै काहेसे कि वह प्रतीति आगेही निर्बलथी और जो पुरुष अनेक शास्त्रों के मतों को पढ़ता सुनता है सो तिसका निश्चय अवश्यही स्थिर नहीं रहता और जिन पुरुषोंकी बुद्धि यद्यपि थोड़ी है पर सन्तजनोंके वचनों की यथार्थ जानकर दृढ़ प्रतीतिकर लेताहै तब उसका निश्चय अन्तकाल बिषेभी नहीं लेता इसीकारण से महापुरुषने अधिक शास्त्र पढ़नेसे वर्जित कियाहै और भोले मनकी प्रतीति को उन्होंने बिशेष कहाहै बहुरि दूसरा कारण यहहै कि जिस मनुष्यकी प्रीति भोगोंबिषे अधिक होती है तिसके हृदयबिषे भी भगवत्की प्रतीति दृढ़ नहीं होती ताते जब अन्तकाल बिषे स्थूल पदार्थोंका बियोग होता देखताहै और इसकी इच्छा बिनाही इसको परलोककी ओर लिजातेहैं तब ऐसी दीर्घ ताड़ना और भोगोंके बियोग करके वह निर्बल प्रतीति भी दूर होजातीहै जैसे किसी पुरुषकी प्रीति पुत्रकेसाथ अल्पहोवे और वह पुत्र पिताकी अधिक प्यारी वस्तुको लेलिया चाहै तब उस पुत्रके साथ पिताकी अल्प प्रीतिभी नहीं रहती और विरुद्ध उपजा आताहै और जो पुरुष भगवत्की अधिक प्रीति करके आगेही सर्व पदार्थोंसे बिरक्त हुआहै सो तिसको अन्तकालका भय नहीं होता काहेसे कि उसको भो-गोंका बियोग सुखरूप भासताहै और उसकी प्रीति सूक्ष्मपद बिषे अधिक होती है ताते उसको शरीर के नष्ट होने बिषे ग्लानि नहीं होती और अन्तकालकी भलाई का लक्षण यही हैं पर जो पुरुष ऐसे चाहै कि अन्तके अवसर बिषे मेरे चित्तकी वृत्ति अडोल रहे तब चाहिये कि प्रथम तो सन्तजनोंकी मर्य्यादसे वि-परीत निश्चय को अङ्गीकार न करे और उनके यथार्थ वचनों पर दृढ़ प्रतीति राखे बहुरि और सर्व पदार्थों से बिरक्त होकर भगवत्ही की प्रीतिबिषे स्थितहोवे पर मायाके पदार्थों से बिरक्त तबहीं होनाहै जब प्रथम धर्मकी मर्य्यादको ग्रहण करे और पापोंसे रहितहोवे और भगवत्की प्रीति इस करके अधिक होती है कि

जब किसी को सिंह मारना है तब सिंहको भय कुछ नहीं आवना और किसी अवस्थाके संबन्ध करकेभी नहीं मारता और जब छोड़देवे तो भी किसीगुण अ-वगुणकरके नहीं छोड़ता तातें उसका मारना और छोड़ना कारण बिनाही कहा है तैसेही जिसने महाराजकी बड़ाई और तेजको इसप्रकार समझाहै सो कदा-चित निर्भय नहीं होना ॥ अब प्रकट करना भेद अन्तकालका॥ तातें जान तू कि बहुतें भयवान् पुरुष अन्तकाल के भयकरके डरते हैं सो इसका कारण यह है कि अबका समय महाकठिन होताहै और इसमनुष्यका मन क्षण क्षण विषे चलायमान है तातें जाना नहीं जाता कि उस समय विषे इसीका चित्त किस स्वभाव विषे स्थितहोवेगा इसीपर एकबुद्धिमान्ने कहाहै कि जब मैं पचास वर्ष पर्य्यन्त किसी के संगहोऊं और उसकी अवस्थाको देखतारहूं बहुरि जबवह पुरुष एकघड़ी मुझसे दूर होजावे तबभी मैं उसकी अवस्थाकी साखी न देऊं काहेसे कि इसमनुष्यके मनकी वृत्ति महाचपलहै तातें जाना नहीं जाता कि एकघड़ी के अन्तकालविषे कैसे स्वभावको प्राप्तहोवेगा इसीपर एकसन्तने महाराज की दुहाई करके कहाहै कि किसी पुरुषको अन्तकालके भयसे निडर होना प्रमाण नहीं इसकरके कि देखिये उससमय धर्मका निर्वाह होवेगा अथवा न होवेगा और सुहेल सतने कहा है कि जिज्ञासुजन अन्तकाल के भय से श्वास श्वास विषे डरते रहते हैं बहुरि एक सन्त मृत्युके समय रोनेलगे थे तब लोगोंने उनसे कहा कि तुम्हारे पापोंसे भगवत्की बड़ाई और दयालुता अति बड़ी है तातें तुम रुदन मतकरो तब उन्होंने कहा कि यद्यपि मैं जानता हूं कि जिस समय विषे मेरी प्रतीति भलीप्रकार स्थितहोगी तब मैं पापोंको देखकर भयवान् न होऊं पर मैंतो इतना भी नहीं जानता कि अन्तपर्य्यन्त मेरे धर्मका निर्वाह क्योंकर हो-वेगा और सुहेलसन्तने कहाहै कि भीतिमान्को मनमुखताका भय रहताहै अर्थ यह कि ज्ञानवान् अहंकारके फुरनेकोभी मनमुखता जानते हैं और ऐसे मनमुखी से डरते रहते हैं काहेसे कि अहंकार और कपट अन्तकाल विषे इसकी प्रतीति को नष्ट करडालते हैं इसीपर हसनबसरी सन्तने कहाहै कि मनके संकल्पों और शरीरकी क्रियाको भिन्नभावका दिखानाही कपटहै तातें अन्तकाल विषे ऐसे पु-रुषकी अवस्था स्थिर नहीं रहती पर मृत्युके समय जो इस जीवका सम्बन्ध ब-दलजाताहै सो इसके भी बहुत कारणहैं और इनका विस्तार प्रकटकरना प्रमाण

नहीं ताते मैं दो कारणोंको प्रसिद्ध कहताहूं प्रथम तो जिसने सन्तजनोंकी म-र्य्यादसे विपर्य्यय क्रिया ग्रहण कीनहे और अपनी सर्व आयुष् मनमतके मार्ग विषे विताई है और उस मार्गको झूठाभी नहीं जानताहोवे सो जब उसकी मृत्यु का समय आता है तब उसके कपाट खुल जाते हैं और अपनी क्रियाको झूठ जानने लगताहै ताते उस अवस्थाके विपर्ययभाव विषे यद्यपि कुछ अल्पमात्र आगे भगवतकी प्रतीति होती है पर उससमय वह भी निस्सन्देह निकल जातीहै काहेसे कि वह प्रतीति आगेही निर्बलथी और जो पुरुष अनेक शास्त्रों के मतों को पढ़ता सुनता है सो तिसका निश्चय अवश्यही स्थिर नहीं रहता और जिन पुरुषोंकी बुद्धि यद्यपि थोड़ी हैं पर सन्तजनोंके वचनों की यथार्थ जानकर दृढ़ प्रतीतिकर लेतेहैं तब उसका निश्चय अन्तकाल विषेभी नहीं खेता इसीकारण से महापुरुषने अधिक शास्त्र पढ़नेसे वर्जित कियाहै और भोले भावकी प्रतीति को उन्होंने विशेष कहाहै बहुरि दूसरा कारण यहहै कि जिस मनुष्यकी प्रीति भोगोंविषे अधिक होती है तिसके हृदयविषे भी भगवत्की प्रतीति दृढ़ नहीं होती ताते जब अन्तकाल विषे स्थूल पदार्थों का वियोग होता देखताहै और इसकी इच्छा विनाही इसको परलोककी ओर लिजातेहैं तब ऐसी दशामें ताड़ना और भोगोंके वियोग करके वह निर्बल प्रतीति भी दूर हो जातीहै जैसे किसी पुरुषकी प्रीति पुत्रकेसाथ अल्पहोवे और वह पुत्र पिता की अधिक प्यारी वस्तुको लिया चाहे तब उस पुत्रके साथ पिताकी अल्प प्रीतिभी नहीं रहती और विरुद्ध उपज आताहै और जो पुरुष भगवत्की अधिक प्रीति करके आगेही सर्व पदार्थोंसे विरक्त हुआहै सो तिसको अन्तकालका भय नहीं होता काहेसे कि उसको भो-गोंका वियोग सुखरूप भासताहै और उसकी प्रीति सूक्ष्मपद विषे अधिक होती है ताते उसको शरीर के नष्ट होने विषे ग्लानि नहीं होती और अन्तकाल की भलाई का लक्षण यही है पर जो पुरुष ऐसे चाहे कि अन्त के अवसर विषे मेरे चित्तकी वृत्ति अडोल रहे तब चाहिये कि प्रथम तो सन्तजनोंकी मर्य्यादसे वि-परीत निश्चय को अङ्गीकार न करे और उनके यथार्थ वचनों पर दृढ़ प्रतीति राखे बहुरि और सर्व पदार्थों से विरक्तहोकर भगवत्ही की प्रीतिविषे स्थितहोवे पर मायाके पदार्थों से विरक्त तबहीं होनाहै जब प्रथम धर्मकी मर्य्यादको ग्रहण करे और पापोंसे रहितहोवे और भगवत्की प्रीति इस करके अधिक होती है कि

जो भिन्न जनों की संगति और भगवत् भजनविषे सावधान होवे और कुमार्गों का त्यागकरे पर जिसके हृदय से मायाकी प्रीति दूर न होवे सो अन्तकाल के भयसे किसीप्रकार मुक्त नहीं होता ॥ अथ प्रकटकरना उपाय भयकी प्राप्तिका ॥ ताते जानना कि प्रथम जिज्ञासु जन को धर्मके मार्गों की बूझ प्राप्त होती है और उसही बूझ करके भगवत्का भय प्राप्तहोताहै बहुरि भयकरके त्यागभी योग्यता और संतोष उत्पन्न होते हैं और संतोष करके निष्कामता और भगवत् के भजन का रहस्य बढ़ता जाताहै ताते प्रसिद्ध हुआ कि सर्व शुभगुणों का कारण भगवत् का भयहै और भयकी प्राप्तिके मार्ग तीनहैं प्रथम तो उत्तम मार्ग विद्या और बूझहै इस करके कि जिसने महाराज के ऐश्वर्य और तेज और बेपरवाही को भलीप्रकार समझा है और जीवोंकी पराधीनता कोभी जानाहै विपर्यय ... और सामर्थ्यवान् सब बिना किसी कारण के केवल श्रीमहाराजकी आज्ञा ... है तब उसको अवश्य यही भय उपज आताहै जैसे सिंहके निकट ... भयरूप होजाताहै इसी पर सन्तजनोंने कहाहै कि जिस मनुष्यको महाराज ... विक बूझ होती है तैसाही उसको अधिकभय उपजता है और ... रुदन करतेथे तब उनको आकाशवाणी हुई कि तुम काहेको रोतेहो ... मैंने अभय कियाहै तब महापुरुषने विनती करी कि हे महाराज ! ... समझ नहीं सक्ता ताते इसीनिमित्त रोताहूं कि मत यहभी परीक्षा होवै ... आकाशवाणी हुई कि ऐसेही यथार्थ है ताते मेरे भयकरके रोतेरहो ... अचेत न होवो बहुरि एकवार संतमुखों की लड़ाई विषे महापुरुषकी भय ... गारीगई थी तब महापुरुष भययुक्त होकर प्रार्थना करनेलगे कि हे ... आस्तिकी मनुष्यों की सहायता करनेहारे तुमहीहो उससमय विषे ... प्रियतमने कहा कि तुम धैर्य करो इसकारी कि महाराज ने जो ... होनी कहीहै सो भगवत् सर्वदा अपने वचनों का निर्वाह करनेहारे ... सूक्ष्म दृष्टिकरके देखिये तो उससमय विषे उसकी अवस्था महाराज ... दिते महापुरुषके ऊपर ... दियी और महापुरुषने ... ... करि समझायाथा कि जब ... जीते न करी तब उसको भय ... यद्यपि उसने आपही ... यह वचनभी परीक्षाही के निमित्त हो ... तथा आश्चर्य है कि हेमें कि उसके ... और ... के भेदों को कोई पुरुष जान

नहीं सक्ता १ बहुरि दूसरा मार्ग भयकी प्राप्तिका यहहै कि भयवानोंकी संगति करके भी अवश्यही भय उपजता है जैसे माता पिताको सर्प से डरता देखकर बालक भी सर्पसे डरने लगता है पर यह जो भयवानोंकी संगति विषे भय उपजता है सो पृथा बूझके भयसे न्यून है काहे से कि जैसे बालक देखादेखी करके सर्पसे डरने लगता है तैसेही जब किसी मन्त्रवाले सपेरे के हाथ विषे सर्प देखता है तब वह भी सर्प को पकड़ा चाहता है ताते चाहिये कि जबलग इस मनुष्यकी बूझ दृढ न होवे तबलग अचेत पुरुषोंकी संगति न करे और निडर विषयवानों का संग तो कदाचित्‌ही न करे २ बहुरि तीसरा मार्ग यहहै कि जब भयवान्‌ पुरुषोंकी संगतिको पाय न सके तब भयवानोंकी अवस्था और उनके बचनों को श्रवण करे और अपने चित्त विषे ऐसे जाने कि जब ऐसे बुद्धिमान्‌ और वैराग्यवान्‌ पुरुष डरतेरहे तब हमको अवश्यही भय चाहिये इसीपर महापुरुषने कहाहै कि जब मुझको आकाशवाणी होनेलगती है तब भय करके मेरा शरीर कांपता है कि देखिये महाराजकी मुझको कैसी आज्ञा होवेगी और जब दाऊद रोनेलगेथे तब उनके अश्रु प्रवाह से पृथ्वी पर घास उपज आई थी और दाऊदजीने महाराजके आगे यों प्रार्थना करीथी कि हे महाराज ! मेरे पापोंको मेरे हाथों पर लिखदो तब मैं अपनी अवज्ञाको सर्वदा देखतारहूं सो भगवत्‌ने ऐसेही किया तब वह अपने हाथोंको देखकर सर्वक्रिया विषे रोतेरहे और जब जलपान करनेलगते तब आंसू के जलसे कटोरा भरजाताथा बहुरि एकबार दाऊद ने योंभी कहाथा कि हे प्रभो ! तुम मेरे रोनेकी ओर नहीं देखते तब आकाशवाणी हुई कि तू अपने रोनेकी प्रार्थना करताहै और अपना स्वरूप तुझको विस्मरण होगयाहै इसकरके कि मैंतो ऐसा बेपरवाहहूं कि जब मैंने आदि मनु को उत्पन्न कियाथा तबै सबही देवता उसके दास करदियेथे और औरभी नानाप्रकारकी बख्शीसें उसको दीन्हींथी और उसको अपना प्रधान बनायाथा पर जब उससे एकही अवज्ञा हुई तब उसको शीघ्रही अपने द्वारसे गिरादिया तातें जो कोई मेरी आज्ञा मानता है तब मैंभी उसकी आज्ञा करताहूं और जो पुरुष मुझसे विमुख होताहै तब अवश्य ही वो क्रोधको देखताहै ताते जब तू मेरेही सम्मुख होवे तब मैं तुझको मुक्त करूंगा बहुरि दाऊदजीका रुदन सुनकर सहस्र मनुष्यों के शरीर छूटजातेथे और केते मूर्च्छा को प्राप्त होते थे और यहिया सन्तकी प्रभाहै कि जब उनकी बाल-

अवस्था थी तब बालक उनको खेलने के निमित्त बुलाते और वह बालकों से इस प्रकार कहते थे कि मुझको भगवत् ने खेलने के निमित्त तो नहीं उत्पन्न किया बहुरि महाराज के भयकरके इतना रुदन करते थे कि उनके कपोलों का मास आसुओंकरके गलगया था और एक महापुरुषके प्रियतम ऐसे थे कि जब पक्षीको देखते तब भयकरके कहतेथे कि जो मैंभी पक्षी होता तो भला था और एक सन्त ऐसे कहते कि जो मैं वृक्ष होता तोभी कैसे पापों से मुक्त रहता और एक सन्त जब भयके वचन सुनतेथे तब अचानकही गिरपड़तेथे और मूर्छित होजाते थे और आयशा इसप्रकार कहती थी कि मैं मूर्छाही से उत्पन्न न होती तोभी इस अचेतता के जीवने से विशेष था और एक और सन्त जब भजन करने को बैठते थे तब उनके मुख का रङ्ग पीत होजाता था तब किसी ने पूछा कि भजनके समय तुम्हारी ऐसी अवस्था किस निमित्त होजाती है तब उन्होंने कहा कि श्रीरामनाम स्मरण के समय महातेजवान् अखिल ब्रह्माण्डनायक श्री रामजीके सम्मुख होना होताहै ताते मेरा चित्त भयवान् होजाताहै इसीपर एक सन्तने कहाहै कि शुभस्थान पायकर अभिमानी न होवो काहे से कि किंचित् अवज्ञाकरके बड़े बड़े महात्माओं को उत्तम पदसे गिराय दियाहै और भजनकी अधिकता का भी अभिमान न करो काहेसे कि कैसे पुरुषों ने कैसे लाख बरस पर्यंत जप तप किया और अभिमान करके धिक्कारके अधिकारी हुये बहुरि विद्या करकेभी अभिमानी न होवो काहेसे कि एक विद्यावानने सर्व विद्या अधिकही पढ़ीथी पर एक विमुख राजाके सङ्ग रहने करके महाराजने उस को कूकुरकी नाईं कहाहै और अपने द्वारसे विमुख किया बहुरि सन्तजनों के दर्शन करने करके भी अभिमान न करो इस करके कि कैसे गनमुख महापुरुष के सम्बन्धी महापुरुष को देखते रहे हैं पर उनको भगवत्की प्रीति प्राप्त नहीं हुई और एकसन्तने कहा है कि मैं सर्वदा उठकर अपने मुख को देखता हूं इस भयकरके कि पापों करके मेरा मुख श्याम न होगया होवे और एक सन्त चालीस वर्षपर्यन्त हँसे न थे और संसार विषे जब दुर्भिक्ष काल अथवा कोई और विघ्न प्रकटता था तब वह ऐसे कहते थे कि मेरेही पापों करके जीवों को दुःख होता है और इसनबसरी सन्तसे किसी ने पूछाथा कि तुम्हारी क्या अवस्था है तब उन्होंने कहा कि वह समुद्र विषे जिसकी नौका टूटजावे तब उसकी क्या अवस्था कहिये अर्थ यह

कि मेरी भी ऐसेही अवस्था है इसीकारण से हसनवसरी सर्वदा ऐसे शोकवान् रहतेथे जैसे कोई राजाके बंदीखाने विषे बांधाहुआ पुरुष दुःखित होवे पर अब विचार करके देखना चाहिये कि ऐसे उत्तमपुरुष तो इसप्रकार डरतेरहते हैं और तुझको किंचित् भय भी नहीं उपजता सो इसका यह कारण नहीं कि तू निष्पापहै और वह पापीथे ताते ऐसे जानाजाताहै कि तू अतिमलिनता और मूर्खता और पापोंकी अधिकता करके निडरहै और वे सब बूझकी अधिकता करके सर्वगुणों संयुक्त होकर भी भयवान् रहे हैं बहुरि जब कोई इसप्रकार प्रश्न करे कि सन्तजनों के वचनों विषे भय और आशाकी स्तुति तो अधिक है पर इन दोनों विषे विशेष क्या है जिसकी प्रबलता रहनी चाहिये तब इसका उत्तर यहहै कि भय और आशा दोनों औषधहैं और औषध को एक दूसरेसे विशेष नहीं कहाजाता काहेसे कि जैसा किसीको रोगहोताहै तब उसीके अनुसार उसका उपाय कियाजाता है और जिस उपाय करके रोगका नाश होवे तब उसको वही औषध विशेष होता है और मैंने आगे वर्णन किया है कि भय और आशा जिज्ञासुजन के मार्गके साधनहैं और इन दोनोंसे उत्तम अवस्था यहहै कि यह मनुष्य सर्वदा श्रीजानकीवल्लभजू के प्रेमविषे लीनरहै और भूत,भविष्य वर्तमान के प्रेक्षककी ओर दृष्टिराखे कालकी स्मृति भी न रहै सो जिसको ऐसी अवस्था प्राप्तहुई है तिसको भय और आशा पटल होते हैं पर यह अवस्था महादुर्लभहै और सब जीवों का अधिकार इसप्रकार है कि जिसको मरनेका समय निकट होवे तब चाहिये कि महाराजकी दयाकी आशा अधिक राखे इसकरके कि शुद्ध आशा करके प्रीति उपजती है और जो पुरुष भोगों विषे आसक्तहोवे तिसको भय की प्रबलता चाहिये है और जो पुरुष शुद्धबुद्धि और वैराग्य संयुक्त होवे तब उसको भय और आशा दोनों समान चाहियेहैं बहुरि भजन और शुभ प्रवृत्ति के समय विषे आशाकी अधिकता विशेषहै काहेसे कि शुद्ध आशा प्रीति का कारण है और प्रीति करके भजनका रहस्य अधिक होताहै और पापकर्मके समयविषे भयकी अधिकता सुखदायकहै बहुरि खान पानआदिक जेते शरीर के व्यवहारहैं सो तिनविषे भी भयसंयुक्त विचरना प्रमाण है तात्पर्य यह कि भय और आशाका गुण मनुष्योंकी वृत्तिके अनुसार प्रकट होताहै और ऐसे नहीं कहसक्ते कि सर्वथा भयही विशेष है अथवा आशाही विशेष है ॥

चौथा सर्ग॥

निर्द्धनता और वैराग्य का वर्णन॥

तातें जान तू कि धर्म्म के मार्गका मूल अपना और भगवत्का पहिंचानना है बहुरि माया और परलोक का पहिंचानना है सो आपको पहिंचानकर अपने आपका त्यागनाहै और श्रीजानकीनाथकी ओर सम्मुखहोना प्रमाणहै बहुरि ऐसेही माया को छलरूप जानकर त्यागना और परलोक की ओर सावधान होना है ताते सर्व शुभगुणोंका फल यहीहै कि इसका अपना आपा श्रीरामजू विषे लीनहोजावे और मायाके पदार्थों मे विरक्तहोकर परलोकके अविनाशी सुख विषे स्थितहोवे काहेसे कि मायाकी प्रीति इस जीवकी बुद्धिको नाश करती है और जो पुरुष इससे विरक्त हुआहै सो मुक्तरूपहै ताते मैं प्रथम तो निर्द्धनता की विशेषता कहताहूं॥ अथ फकीरी अर्थात् निर्द्धनता निरूपण॥ ऐसे जान तू कि जिस पुरुषको किसी पदार्थकी चाहहोवे और वह पदार्थ उसके पास न होवे उस को फकीर अर्थात् निर्द्धन पुरुष कहते हैं सो जब इस भांतकरके देखिये तो सब ही मनुष्य सम्पदासे रहित हैं और निर्द्धन हैं काहेसे कि प्रथम तो इसको अपना जीवना चाहिये और जीवने के सम्बन्ध विषे खान पानआदिक और भी अनेक पदार्थ चाहते हैं सो इतने पदार्थ में कोई वस्तु इसके हाथ विषे नहीं और यह म नुष्य इन सबके अधीनहै ताते प्रसिद्ध हुआ कि यह सबही जीव अतिनिर्द्धन और दीनहैं और सर्वोपरि धनी एक श्रीअवधचन्द्र महाराज हैं काहेसे कि धनी उसको कहते हैं जो और किसी के अधीन न होवे अपने आपकरि सन्तुष्ट होवे सो ऐसा धनी एक श्रीरामही है और सबही निर्द्धन हैं इसीपर महाराज ने कहाहै कि मैं एकही धनीहूं और तुम सबही निर्द्धनहो और ईसा महापुरुष ने काहाहै कि मैं आपकरके अत्यन्त पराधीनहूं और मेरे सर्वकार्यों की कुंजी महा राजही के हाथहै ताते मैं अतिनिर्द्धनहूं पर ज्ञानवानों के मतविषे भी यही मुक्त उसको कहते हैं जो अपनी ममता से रहित होवे और सर्वकार्यों विषे आपको पराधीन जानें बहुरि कैसे पुरुष इसप्रकार कहते हैं कि जब यह मनुष्य भजन स्म रण भी करे तब केवल असमर्थही कहाता है काहेसे कि जिसने शुभकर्म को अं गीकार किया तब उसके फलका अधिकारी होताहै ताते उसको समर्थ से हीन नहीं कहसके सो ऐसे वचन का कहना मनमतियों का धर्म है और सन्तजनों

की बीज है बहुरि यद्यपि ऐसे पुरुष आपको बुद्धिमान जानते हैं तो भी मन के अधीन होकर धर्ममार्ग से बिगड़ जाते हैं और अशुभ अर्थको शुभ अर्थों विषे लपेटकर वर्णन करते हैं इस करके कि अल्पबुद्धि जीव हमको बुद्धिमान जानें और वह मूर्ख इतना नहीं समझते कि जब भजन अथवा शुभ कर्मों करके माथाभारी होते हैं तब चाहिये कि भगवत्से भी भिक्षुक हूजिये काहे से कि जिसको मार्गवित्‌की आसरा है सो सर्व पदार्थों का धनी होता है तातें संग्रह से रहित जब गुरुरूप कहिये जो निरभिमान होकर भजन विषे सावधान होवे इसी पर एक महापुरुष ने कहा है कि भगवत्‌ का भजन भी मेरे बल करके नहीं होता और वह आपही मुझसे भजन करता है और इस मार्ग विषे जो मैंने असंग्रह का वर्णन किया है सो यहां निर्धनता की बात आई है तातें मैं निर्धनता का निर्णय कहता हूं सो ऐसे जान तू कि निर्धनता दो प्रकार की होती है प्रथम तो जो अपने पुरुषार्थ करके धनको त्याग देवे सो यह वैराग्य कहाता है १ और दूसरे जिसको धन प्राप्त ही न होवे सो उसको निर्धन कहते हैं परं निर्धन मनुष्य भी तीन प्रकार के होते हैं सो जिसको धन के संचने की अभिलाषा है और धन उसको प्राप्त नहीं होता तब वह तृष्णावान् कहाता है १ और जो पुरुष धन के निमित्त यत्न और याचना करे और जब उसको कोई कुछ देवे तब प्रसन्न होकर अंगीकार करे और जो न देवे तो भी प्रसन्न रहे सो तिसको सन्तोषी कहते हैं २ और जिस पुरुष को धन की अभिलाषा भी न होवे और यद्यपि उसको धन की प्राप्ति भी होवे तो भी अंगीकार न करे सो वैराग्यवान् कहाता है ३ और जिस पुरुष को धन की अभिलाषा है और उसको प्राप्त कुछ न होवे तो भी विशेष है परं सन्तोषी जनों की विशेषता तो निस्सन्देह है ॥ अथ प्रकट करता परम सन्तोषी निर्धन का ॥ तातें जान तू कि महापुरुष ने भी ऐसे कहा है कि भगवत्‌ सन्तोषी निर्धन को अधिक प्रियतम रखता है और यों भी कहा है कि जो है प्रियतम सो ऐसा ही पुरुषार्थ करो जिस करके निर्धनता करके परलोक विषे जावो और धनवान् मृतक न होवो और एकबार महापुरुष को आकाशवाणी हुई थी कि जब तू चाहे तब मैं तेरे निमित्त सब ही पहाड़ सोने के कर दूं तब महापुरुष ने बिनती करी कि मैं इस बात को नहीं चाहता काहे से कि माया निर्धनों का धन है और निघरा घर है और इसके संचनेहारे महामूर्ख हैं बहुरि ईसा महापुरुष ने मार्ग विषे किसी को सोता देखा था तब उससे य-

हुये भये कि उस्कार भगवत् का भजनकर तब उस पुरुषने कहा कि तू मुझ से क्या कहता है मैंने माया तो मायाधारियों को सौंपदी है तब उन्होंने कहा कि जब तैंने ऐसे किया है तब अचिन्त होकर सोरह और मूसा महापुरुष को आकाशवाणी हुई थी कि जब निर्द्धनता तेरे निकट आवै तू उसको प्रसन्न होकर अंगीकारकर और महापुरुषने कहाहै कि जब मैंने ध्यान विषे स्वर्गको देखा था तब वहां अधिक तो निर्द्धन दृष्टि आयेथे और नरकों विषे धनवानही विशेष देखेथे और योंभी कहाहै कि अमुक सन्त मेरे सब प्रियतमोंसे पीछे उत्तमपदको प्राप्तहोवेगा इस करके कि वह अधिक धन रखताहै यह वार्त्ता सुनकर उस संत ने केते सहस्रभार संयुक्त ऊंट अर्थियों को उठायदिये मझुरि जब महापुरुषने सुना तब प्रसन्नहुये और कहनेलगे कि उसने अपना भलाकिया और योंभी कहाहै कि भगवत् जिसको अपना प्रियतम करताहै तब उसके सम्बंधियों और धनको दूर करदेता है और उसके ऊपर नानाप्रकार के दुःख भेजताहै और एक महापुरुषने कहाहै कि धनवान् धनकरके स्वर्गको पावेंगे और निर्द्धन सुखसेही स्वर्ग को प्राप्तहोवेंगे और एक महापुरुष ने महाराज के आगे प्रार्थना करीथी कि हे प्रभो! इस जगत् विषे तेरे प्रियतम कौनहैं जो मैं भी उनके साथ प्रीति करूं तब उन को आकाशवाणी हुई कि जो निर्द्धनता विषे संतोष संयुक्त रहते हैं सोई मेरे प्रियतम हैं और महापुरुषने कहाहै कि परलोक विषे निर्द्धनों को भगवत् इसप्रकार कहेंगे कि हे मेरे प्रियतमो मैंने तुमको नीचजानकर निर्द्धन नहीं किया पर अपनी प्रसन्नता देनेके निमित्त धनसे बचाइरक्खा है इस करके कि भोगों और पापोंसे तुम्हारी रक्षाहोवे ताते जिस जिसने तुमको कुछ खान पान दिया है तिनको अपने साथ लेकर मुक्त के स्थानों विषे जावो और योंभी कहाहै कि निर्द्धनों के साथ प्रीतिकरो और यथाशक्ति उनकी सेवाकरो इस करके कि ऐसे पुरुष उत्तम भाग्यवान् होते हैं और योंभी कहाहै कि जिन्होंने निर्द्धनों की सेवाका त्याग कियाहै और धनके संचनेविषे आसक्त हुये हैं सो तिनके ऊपर चार विघ्न प्रवृत्त होआवते हैं एक दुर्भिक्ष १ और दूसरा राजदण्ड २ तीसरा भोगों की अधिकता ३ चौथा रोग ४ और एक सन्तने कहाहै कि जो पुरुष निर्द्धनों को निर्द्धनता के निमित्त नीचजाने और धनवानों के साथ प्रीति करे सो तिस की दर्शन मि-थ्याहै और सिफयासंतने यह स्वभावथा कि निर्द्धनों को अपने निकट बैठा-

थे और धनवानों को सबोंसे पीछे बैठाते थे औ एक सज्जनने अपने पुत्रको इसप्रकार कहाथा कि हे पुत्र! निर्द्धनों को भला निरदृष्टि से न देखना काहेसे कि तेरा और उनका भगवत् एकही है और एक सतने कहाहै कि जैसे यह मनुष्य निर्द्धनता से डरताहै सो जब ऐसेही नरकोंसे भयवान्हहोता तब दोनोंसे अभय रहता और जैसा पुरुपार्थ मायाके काय्यों विषे करता है सो जब ऐसा पुरुपार्थ आत्मसुख के निमित्त करता तब परलोक विषे सुखी रहता और जैसे लोगोंसे संकोच करताहै सो जब ऐसेही अन्तर्यामी महाराजसे संकोच करता तब दोनों ओर सम्मुखहोता और किसी पुरुषने चार सहस्र रुपया एक सन्तको आनदिया था तब उन्होंने अंगीकार न किया बहुरि जब उसने अधिक विनती करी तब कहतेभये किन्तु मुझको कछुक धनकरके निर्द्धनों की समाजसे दूरकिया चाहताहै सो मैं ऐसा तो न करूंगा और महापुरुषने आयशासे कहाथा कि जब तू परलोक विषे मेरे संग उत्तम पदको चाहती है तो निर्द्धनोंकी नाईं जीवन व्यतीतकर और जबलग तेरा वस्त्र अत्यन्त पुराना होजावे तबलग तिसको उतारकर नवीन मत पहर और धनवानों की संगतिका त्यागकर और योंभी कहाहै कि जिस पुरुषको धर्मके मार्ग की प्रीतिहै और अल्पमात्र जीविका विषे संतोष सहित अपना समय विताताहै सो पुरुष धन्यहै और योंभी कहाहै कि हे निर्द्धनो! निर्द्धनता को विशेष पदार्थ जानकर प्रसन्नहोवो तब तुम्हारी निर्द्धनता सफल होवे सो यद्यपि इसवचन विषे इसप्रकार भासता है कि तृष्णावान् निर्द्धन को कुछ फल प्राप्त नहीं होता पर और वचनों विषे ऐसेही प्रसिद्ध है कि और निर्द्धन भी मूलही से निष्फल नहीं काहेसे कि निर्द्धनता करके केते पापों से उनकी रक्षा होती है बहुरि यह वार्त्ता निस्सन्देह है कि संतोपी निर्द्धनको अधिक फल होता है इसीपर महापुरुष ने कहा है कि सन्तोपी निर्द्धनों के साथ प्रीतिकरनी उत्तम सुखकी कुञ्जी है इस करके कि ऐसे पुरुष भगवत् के निकटवर्ती हैं और योंभी कहा है कि परलोक विषे सबलोग यही पश्चात्ताप करेंगे कि जो संसार विषे हमको जीविकामात्र धन प्राप्त होता तो भलाथा और ईसा महापुरुष को आकाशवाणी हुई थी कि अधीन हृदयों विषेही मेरा निवास है सोतें तू मुझको यहांही पावेगा और एक सन्तने कहा है जो पुरुष धनकी अधिकता करके प्रसन्न नहीं होता और आयुर्बल के घटने करके शोकवान् नहीं

हते भये कि उत्कर भगवत् का भजनकर तब उस पुरुषने कहा कि तू मुझ से क्यों कहता है मैंने माया तो आयाधारियों को सौंपदी है तब उन्होंने कहा कि जब तैंने ऐसे किया है तब अचिन्त होकर सोरहु और मूसा महापुरुष को आकाशवाणी हुईथी कि जब निर्द्धनता तेरे निकट आवै तू उसको प्रसन्न होकर अंगीकारकरे और महापुरुषने कहाहै कि जब मैंने ध्यान विषे स्वर्गको देखा था तब वहां अधिक तो निर्द्धन दृष्टि आयेथे और नरकों विषे धनवानही विशेष देखेथे और योंभी कहाहै कि अमुकसन्त मेरे सब प्रियतमों सेपीछे उत्तमपदको प्राप्तहोवेगा इस करके कि वह अधिक धन रखताहै यह वार्त्ता सुनकर उस संत ने केते सहस्रभार संयुक्त ऊंट अर्थियों को उठाय दिये बहुरि जब महापुरुषने सुना तब प्रसन्नहुये और कहनेलगे कि उसने अपना भला किया और योंभी कहाहै कि भगवत् जिसको अपना प्रियतम करताहै तब उसके सम्बंधियों और धनको दूर करदेताहै और उसके ऊपर नानाप्रकार के दुःख भेजताहै और एक महापुरुषने कहाहै कि धनवान् यत्न करके स्वर्गको पावेंगे और निर्द्धन सुखसेही स्वर्ग को प्राप्तहोवेंगे और एक महापुरुष ने महाराज के आगे प्रार्थना करीथी कि हे प्रभो इस जगत् विषे तेरे प्रियतम कौनहैं जो मैं भी उनके साथ प्रीति करूं तब उन की आकाशवाणी हुई कि जो निर्द्धनता विषे सन्तोष संयुक्त रहते हैं सोई मेरे प्रियतम हैं और महापुरुषने कहाहै कि परलोक विषे निर्द्धनों को भगवत् इसप्रकार कहेंगे कि हे मेरे प्रियतमो मैंने तुमको नीच जानकर निर्द्धन नहीं किया परं अपनी बख़शीस देनेके निमित्त धनसे बंचितकराथा है इस करके कि भोगों और मायों से तुम्हारी रक्षाहोवे ताते जिस जिस ने तुमको कुछ खान पान दियाहोवे तिनको अपने साथलेकर सुखके स्थानों विषे जावो और योंभी कहाहै कि निर्द्धनों के साथ प्रीति करो और यथाशक्ति उनकी सेवाकरो इस करके कि ऐसे पुरुषउत्तम भाग्यवान् होते हैं और योंभी कहाहै कि जिन्होंने निर्द्धनों की संगतिका त्याग कियाहै और धनके संचने विषे आसक्तहुये हैं सो तिनके ऊपर चार विघ्न अवश्यही आवते हैं एक दुर्भिक्ष १ और दूसरा राजदण्ड २ तीसरा भोगों की अभिलाषा ३ चौथारोग ४ और एक सन्तने कहाहै कि जो पुरुष निर्द्धनों को निर्द्धनता के निमित्त नीचजाने और धनवानों के साथ प्रीति करे सो तिसको सर्वदा धिक्कारहै और सिफयानसन्तका यह स्वभावथा कि निर्द्धनों को अपने निकट बैठाते

थे और धनवानों को सभों से पीछे बैठाते थे और एक सज्जनने अपने पुत्रको इसप्रकार कहाथा कि हे पुत्र! निर्द्धनों को ग्लानिदृष्टि से न देखना काहेसे कि तेरा और उनका भगवत् एकही है और एक संतने कहाहै कि जैसे यह मनुष्य निर्द्धनता से डरताहै सो जब ऐसेही नरकोंसे भयवान्होता तब दोनोंसे अभय रहता और जैसा पुरुषार्थ मायाके कार्यो विषे करता है सो जब ऐसा पुरुषार्थ आत्मसुख के निमित्त करता तब परलोक विषे सुखी रहता और जैसे लोगोंसे संकोच करताहै सो जब ऐसेही अन्तर्यामी महाराजसे संकोच करता तब दोनों ओर सम्मुखहोता और किसी पुरुषने चार सहस्र रुपया एक सन्तको आनदियाथा तब उन्होंने अंगीकार न किया बहुरि जब उसने अधिक बिनती करी तब कहतेभये कि तू मुझको कछुक धनकरके निर्द्धनोंकी समाजसे दूरकिया चाहताहै सो मैं ऐसा तो न करूंगा और महापुरुषने आयशा से कहाथा कि जब तू परलोक विषे मेरे संग उत्तमपदको चाहती होतो निर्द्धनोंकी नाई जीवन व्यतीतकर और जबलग तेरा वस्त्र अत्यन्त पुराना होजावे तबलग तिसको उतारकर नवीन मत पहर और धनवानों की संगतिका त्यागकर और योंभी कहाहै कि जिस पुरुषको धर्मके मार्ग की प्रीतिहै और अल्पमात्र जीविका विषे संतोष सहित अपना समय बिताताहै सो पुरुष धन्यहै और योंभी कहाहै कि हे निर्द्धनो! निर्द्धनता को विशेषपदार्थ जानकर प्रसन्नहोवो तब तुम्हारी निर्द्धनता सफल होवे सो यद्यपि इसवचन विषे इसप्रकार भासता है कि तृष्णावान् निर्द्धन को कुछ फल प्राप्त नहीं होता परंतु और वचनों विषे ऐसेही प्रसिद्ध है कि और निर्द्धनभी मूलहीसे निष्फल नहीं काहेसे कि निर्द्धनता करके केतेक पापों से उनकी रक्षा होती है बहुरि यह वार्ता निस्सन्देह है कि संतोषी निर्द्धनको अधिक फल होता है इसीपर महापुरुष ने कहा है कि सन्तोषी निर्द्धनों के साथ प्रीतिकरनी उत्तम सुखकी कुञ्जी है इस करके कि ऐसे पुरुष भगवत् के निकटवर्ती हैं और योंभी कहा है कि परलोक विषे सबलोग यही पश्चात्ताप करेंगे कि जो संसार विषे हमको जीविकामात्र धन प्राप्त होना तो भलाथा और ईसा महापुरुष को आकाशवाणी हुई थी कि अधीन हृदयों विषेही मेरा निवास है ताते तू मुझ को वहांही पावेगा और एक सन्तने कहा है जो पुरुष धनकी अधिकता करके प्रसन्न नहीं होता और भोगों के घटने करके शोकवान् नहीं

होता सो महापुरुष है और एक श्रीतिमान् को किसीने लवण साथ रोटी खाते देखा था तब उससे पूछा कि तुमने केतनी दिन जो विकी के ऊपर संतोष किया है तब वह श्रीतिमान् कहते भये कि जिसने परलोक के सुख को त्यागकर माया को अंगीकार किया है सो तिसने इससे भी अधिक ग्रास पर संतोष किया है और एक वार एक सन्त को स्त्री ने सभा विषे इस प्रकार आइ कहा था कि आज तो तेरे गृह विषे आहार मात्र ही कुछ नहीं और यातु महाप्रसन्नचित्त बैठा है तब उन्होंने कहा कि हमारे शरीर विषे एक पापी महा कठिन है ताते कदाके ही उससे उपजवलित होते हैं और भारी रीतें पहले में इतना सुनकर वह स्त्री प्रसन्न होकर घर को चलीगई ॥ अथ प्रकट करना विचार पूर्वपक्ष का ॥ ताते जान तू कि केते बुद्धिमानों ने भारी भी इस प्रकार प्रश्नोत्तर किये हैं कि धनवान उदार विशेष है अथवा निर्द्धन संतोषी विशेष है पर मेरे चित्त विषे इस प्रकार भासता है कि निर्द्धन संतोषी विशेष है काहेसे कि निर्द्धन संतोषी के स्वभाव सन्तोष हुए रहते हैं और शरीर के दुःखों को देखकर सर्वदा विरक्तचित्त होता जाता है और भगवद्वहि की प्रीति को बढ़ावता है ताते मृत्यु के समयभी और किसी पदार्थ के साथ उसका मोह नहीं रहता और धनी पुरुष यद्यपि उदार और सात्त्विकी होवे तोभी नानाप्रकार के सुखों को भोगता है इसी कारण से विरक्तचित्त नहीं होसकता बहुरि भजन स्मरण के नियम विषेभी धनवान् पुरुष विक्षेपसहित रहता है और संतोषी निर्द्धन का चित्त स्वाभाविकही दीन और एकत्र रहता है पर जब धनी और निर्द्धनी पुरुष दोनों दुष्पीवान होवें तब दोनों धनके अर्थी कहावते हैं और उसी विषे बंधायमान हैं और जब सूक्ष्म दृष्टि करके देखिये तब भगवत् से अचेत होनाही निंद्य है सो किसी को धन करके अचेतता होती है और किसी को निर्द्धनताही पटल डारती है ताते सन्तजनों ने जीविकामात्र को भी निन्द्य नहीं कहा प्रसन्नता करके जिस विषे भगवत् के भजन में इसका चित्त स्थिर रहे सोई उत्तम पदार्थ है बहुरि धनवान्भी जो सात्त्विकी और उदार होवे और निर्द्धन पुरुष को कुछ धनकी अभिलाषा होवे तब दोनों की अवस्था परस्पर निकट होती है इस करके कि यद्यपि सुखों के भोगने करके धनवान् का चित्त मलिन होजाता है पर उदारता करके उसको निर्मलताई भी प्राप्त होती है बहुरि जैसे निर्द्धन पुरुष का हृदय तृष्णा करके मलिन होता है तैसेही दुःखों के सैंचने करके उसको निर्मलताई भी प्राप्त होती है तात्पर्य यह कि

मलिनता, तथभाग्यकी को कहते हैं और निर्धनता का नाम ही निर्मलता है इसी कारणसे जिस धनवानको होना और न होना धनका समान होवे और अर्थियों के निमित्त ही धनको सञ्चय करता होवे और चित्त उसका सर्व पदार्थोंसे विरक्त होवे सो निस्सन्देह सबसे उत्तम है जैसे आयशा को तीस सहस्र रुपया किसी ओर से भेंट आया था तब उन्होंने एकही दिन विषे अर्थियोंको बांटदिया और अपने निमित्त एकपैसा भी न राखा सो यह अवस्था महाउत्तम है पर जब धनवान् और निर्धन दोनोंके चित्त की वृत्ति समान होवे तब निर्धनता ही विशेष है काहेसे कि जब निर्धन पुरुष एकबार श्रीराम कहता है तब दीनताकरके ऐसा प्रसन्नचित्त होता है कि धनवान्का गत बहुत भजन और केवे दान करके भी ऐसा प्रीति नहीं होता इस हेतु करके कि धनवान्का चित्त पदार्थोंकी प्रसन्नताकरके कठोर होजाता है और भजनरूपी बीज कठोर चित्त विषे उपजता ही नहीं तातें जिस पुरुष का चित्त किसी पदार्थ विषे आसक्त न होवे और भी नित्यही भजनमें स्थित रहे सो निस्सन्देह महाराजकी निकटता को पाता है पर जो कोई ऐसा अनुमान कर लेवे कि धनविषे निर्लेप हैं नहीं सो यह बड़ी ग़लती है काहेसे कि परीक्षा किये बिना अभिमान करना निरर्थक है सो परीक्षा इसकी यह है कि जैसे आयशा ने एकही बार ही धनको बांटदिया और उनके चित्त विषे सञ्चय करनेका सङ्कल्प ही न फुरा पर जब इस अवस्थाका प्राप्त होना सुगम होता जब सर्वजन और भी धनी धन धनका सङ्ग्रह काहेको करते और वैराग्यकी वृत्ति विषे क्यों न रहते इसीपर एक महापुरुषने कहा है कि धनवानों की ओर दृष्टि न करो क्योंकि उनकी सम्पत्ति की दृष्टि तुम्हारे धर्मको नाश करेगी और भजनकी प्रसन्नता दूर होजावेगी इस कारणसे कि दोनों ओर की प्रीति एक हृदय विषे समाय नहीं सकती तातें एक वस्तु सत्य है और एक असत्य है सो जिसका चित्त आप्रवश वस्तु विषे तत्पर हुआ सो सत्य पदार्थ की ओर से विमुख होता है और जैसेही असत्य वस्तु से निर्मोह रहता है तबही सत्य स्वरूपकी ओर सम्मुख होता है इसीपर एक सन्तसे किसी ने कहा था कि मेरा कुटुम्ब बड़ा है और मैं अत्यन्त निर्धन हूं तो तुम मेरे निमित्त भगवत्से प्रार्थना करो तब उन्होंने कहा कि जिस समय विषे तेरे कुटुम्ब आहार के निमित्त रुदन करनेलगें और तेरा चित्त अत्यन्त आधीन और दीन होवे तब तू मेरे निमित्त प्रार्थना किया कर काहेसे कि ऐसे समय विषे तेरी आधीनता भरी प्रार्थना

से अधिक सफल होवेगी ॥ अथ प्रकटकरनी युक्ति निर्द्धनताकी ॥ ताते जान तू कि निर्द्धनताभी इस युक्तिकरके सफल होतीहै कि चित्त जिसका प्रसन्नरहे और किसी के आगे अपना दुःख वर्णन न करे प्रथम तो महाराजका उपकार जान कर प्रसन्न होवे और इसप्रकार समझे कि श्रीरामजी निर्द्धनता अपने भक्तों को देते हैं और जब ऐसी प्रसन्नता को प्राप्त न होसके और निर्द्धनता करके दुःखित होवे तौभी महाराजकी आज्ञाविषे ग्लानि न करे सो यहवार्त्ता प्रसिद्धहै कि दुःख करके दुःखित होना भिन्नहै और ग्लानि करनी भिन्नहै जैसे रुधिर कढ़ावनेहारा पुरुष पीड़ाकरके दुःखितहोताहै पर रुधिर काढनेहारेपर ग्लानि नहीं करता तैसे ही जो पुरुष निर्द्धनता विषे दुःखितहोवे और रागरजाय जानकर उस दुःखविषे अपना कल्याण समझे तो यहभी विशेष अवस्थाहै बहुरि जो पुरुष रामरजायको न समझे और निर्द्धनताके दुःखविषे ग्लानिकरे अथवा प्रभुकी दयापर प्रतीति ही न करे तब यह वार्त्ता अयोग्यहै और इसकरके निर्द्धनता फलदायक कभी नहीं होती ताते चाहिये कि सर्वसमय और सर्व अवस्था विषे भगवत्का उपकार जाने और इसप्रकार समझे कि भगवत्की करतूति निष्फल कभी नहीं होती व सर्वदा फलदायकहै ताते उसकी करतूति विषे ग्लानिकरनी प्रमाण नहीं और चाहिये कि रसना करके भी अपनी निर्द्धनता का बखान न करे और धैर्यकरके गुप्तराखे इसीपर एकसन्तने कहाहै कि एक निर्द्धनताभी दुःखोंका कारण होती है सो तिसका लक्षण कठोरता और ग्लानिहै बहुरि एक निर्द्धनता सुखदायक होतीहै तिसकालक्षण कोमलताई और धन्यवादहै और सतजनों ने योंभी कहा है कि अपनी निर्द्धनता विषे दूसरी युक्ति यह चाहिये कि धनवानोंकी संगति कदाचित् न करे और धनके निमित्त उनके आगे दीन न होवे और उनका ब हुत आदरभी न करे इसीपर एकसतनेभी कहाहै कि जो पुरुष अतीत होकर ध नवानोंकी संगति करे तब जानिये कि कपटी है और जब राजाओंकी निकटता को चाहे तब उसको बटमार जानिये २ बहुरि तीसरी युक्ति यहहै कि यथाशक्ति अपनी अभिलाषाओंको सकुचायकर दानभीकरे इसीपर महापुरुषने कहाहै कि जिस पुरुषके पास दो पैसे होवें और एकपैसा किसी अर्थीको उठायदेवे तब ध नवान्के सहस्र रुपयेके देनेसे भी अधिक विशेषहै बहुरि दान लेनेकी युक्ति यह है कि सकाम और अशुद्ध पूजाको अङ्गीकार न करे और शरीरके निर्वाह से

अधिकभी न लेवे पर जब और अर्थियोंके निमित्तलेवे तब यहभी प्रमाणहै काहे से, कि भक्तहीं पूजाका अङ्गीकार करना और भगवत्के निमित्त अर्थियों को, पहुँचाना यह साचे पुरुषोंकी अवस्था है और जिस विषे ऐसी समर्थता न होवे तब उस को चाहिये कि दान देनेहारे से इसप्रकार कहे कि तूही किसी अधिकारीको देदे पर दान देनेहारे की अवस्थाको विचारना अधिक प्रमाण है कि यह पुरुष मुझको भावकरके देताहै अथवा किसी कामना और मानके निमित्त देता है सो जब वह पुरुष भाव करके देवे और लेनेहारे पर उपकार भी न राखे तब उसीकी पूजा अङ्गीकार करनी विशेष है पर तो भी जेती उसकी श्रद्धाहोवे तिससे अधिक अङ्गीकार न करे इसीपर एकवार्ता है कि एक पुरुषने एकसन्त के आगे पचास रुपये पूजाके राखे थे और ऐसा कहने भये कि जब कोई भाव करके याचना बिनाही कुछ आनिदेवे तब उसका निरादर करना प्रमाण नहीं, यह वचन सुनकर सन्त ने एक रुपया काढलिया और उनचास रुपये उसके फेर दिये ऐसेही एक और पुरुष हसनबसरी के पास कुछ धन लेआयाथा तब उन्होंने अङ्गीकार न किया और कहनेलगे जो पुरुष धर्मका, उपदेश करनेहार होवे और किसी की पूजाको अङ्गीकारकरे तब उसकी निष्कामता नष्ट होजाती है और भगवत्के दर्शन को नहीं पावता पर यह वचन उन्हों ने इसनिमित्त कहा था, कि वह पुरुष उनका ऐश्वर्य्य देखकर पूजा देताथा और उसके हृदय विषे निष्काम प्रीति न थी बहुरि एक और सन्तजन को एक मित्र कुछ भेंट देनेलगा तब उन्हों ने ऐसे कहा कि जब यह वस्तु देने करके तेराभाव अधिक बढ़े तब मैं इसको अङ्गीकार करताहूं और जब इसवस्तुके देने करके तेरी प्रतीति भाव घटजावे तब मैं इसवस्तु को अङ्गीकार नहीं करता तूही किसी अधिकारी को देदे इसीकारण से सिरुया सन्त किसीकी पूजा नहीं लेनेथे और इसप्रकार कहतेथे कि जब मैं इनकी पूजाविषे केवल निष्कामता देखूं तब इनकी पूजाका निरादर न करूं पर जब लोग किसीको कुछ देने लगतेहैं तब अपनी उदारता मर्थन करने लगते हैं और उसके ऊपर अपना उपकार राखते हैं ताते सतजनोंने निष्काम मित्रोंकी पूजाही का अंगीकार कियाहै और उपकार राखनेहारे पुरुषों की पूजासे विरक्तरहे हैं इसीपर बशरसंतने कहाहै कि मैं और किसीसे कुछ नहीं मागता पर सिरीं सतसे मागभीलेताहू इसकरके कि जब वह किसीको कुछ देते

है तब वह आपिके प्रसन्न होते हैं सो त्यों यह है कि जब कोई इसको मान और दिखलावे के निमित्त देवे तब उसको अंगीकार न करे इसी पर एक वार्ता है कि एक सन्त ने किसी की भिक्षा को न अंगीकार किया था तब लोग कहने लगे कि तुमने इसका निरादर क्यों किया तब वह कहते भये कि हमने तो इसके ऊपर दया कीनी है क्योंकि यह संसारी जीव जब किसी को कुछ देते हैं तब पीछे अपनी बड़ाई वर्णन करने लगते हैं इसी कारण से इनका धन भी व्यर्थ होता है और फल भी नष्ट होजाता है पर जब कोई प्रसन्नता के निमित्त इसको कुछ देवे तब न होवे तब उसका अंगीकार न करे और जब आप अत्यन्त दुःखी होवे तब नकार भी न करे और यों भी कहा है कि जब कोई इसकी याचना बिना ही भाव प्रीति करके कुछ देवे और यह पुरुष उसका अभिमान करके निरादर करे तब भगवत् उसके ऊपर ऐसा ताड़ना करता है कि उसको लोगों से याचना करावता है और यह उनसे देवे भी नहीं इसी पर एक वार्ता है कि सिरी सन्त ने कुछ धन एक सन्त के पास भेजा था तब उन्हों ने अंगीकार न किया तब सिरी ने कहा कि तुम अंगीकार के बिना मुझसे भय क्यों नहीं करते यह मन समझ कर तब वे लेने लगे और ऐसे कहते भये कि एक दिन की जीविका मेरे पास है ताते तुम इस धन को अपने निकट राखो जब वह जीविका पूर्ण होवेगी तब मैं तुमसे मांग लेऊंगा ॥ और याचना की निषेधता प्रकट करनी ताते जाननी योग्य है महापुरुषों ने कहा है कि याचना करनी महा मलिन है ताते अत्यन्त प्रयोजन बिना इसी विषे न विचरना योग्य है और इसकी मलिनता तीन प्रकार की जाननी योग्य है प्रथम तो याचना करने से त्यागी की निन्दा प्रकट होती है और इस करके भगवत् के उपकार का कृतघ्नी होता है जैसे कोई दास अपने स्वामी बिना और किसी से कुछ मांगे तब वह स्वामी भी निरादर पाता है ताते अत्यन्त प्रयोजन बिना याचना न करे दूसरी मलिनता यह है कि याचना करके अपनी निर्मलता होती है और जिज्ञासु जनों को यह वार्ता प्रमाण नहीं कि भगवत् बिना लोगों के आगे लोभ के निमित्त आपको निरादर करे परन्तु जब अत्यन्त प्रयोजन होवे तब निष्काम भाव से याचना करनी भी योग्य है ताते प्रमाण होते हैं इसका के देकर पुरुष निष्काम को भिक्षा देने करके ग्लानि नहीं करता और इसके और प्रकार भी नहीं देखता परन्तु तौ भी होने याचना करनी महा अयोग्य है ॥

बहुरि दूसरी मलिनता यह है कि जिसके आगे याचना करिये सो तिसको दुःखा-वना होता है काहेसे कि जब उसका चित्त देने करके प्रसन्न न होवे और लज्जा अथवा भयसों कछु देवे तब उसका हृदय दुःखित होता है ताते चाहिये कि यद्यपि अवश्यही मांगना होवे तोभी प्रसिद्ध याचना न करे और सैन करके अर्थात् आंखों इसारा दिखावे तो भलाहै इसकरके कि जब देनेहारे पुरुषको मनसा देनेकी न होवे तब लज्जा और संकोच करके न देवे और जब प्रसिद्धही मांगना होवे तब एक पुरुषकी ओर दृष्टि करके न कहे और सभाविषे सभोंसे कहे ताते जिस की इच्छा होवेगी सो देवेगा परन्तु किसी और अर्थी के निमित्त प्रसिद्ध भी मांगि लेवे तब यहभी प्रमाण है तात्पर्य यह कि जब कोई पुरुष लज्जा और अपमानके भय करके इसको कछु देवे तब उसके दानका अंगीकार करना अयोग्य है काहेसे कि यह भी दण्ड करके लेना होता है सो यद्यपि स्थूलबुद्धि जीव इसभेदको नहीं समझते पर विचारवान् बुद्धि करके हृदयकी ओर देखलेते हैं कि लज्जासहित दानदेना दण्डकी नाईं होता है इसकरके प्रसिद्ध हुआ कि अत्यन्त प्रयोजन विना याचना करनी महानिंद्य है और मांगना उसहीका अधिकार है जो केवल निर्धन और दीन होवे और कोई व्यवहार न करसक्ता होवे पर जिज्ञासु जनको यहभी चाहिये कि जब नीतिकाकी अधिकही अपेक्षा होवे तब आसन अथवा बासन अथवा वस्त्र को बेंचलेवे और अपने वश चलते याचना न करे इसीपर महापुरुषने कहाहै कि जो पुरुष कुछ संग्रह होते भी किसीसे कुछ मांगता है सो निस्सन्देह नरकोंका अधिकारी होता है ताते जब विचार करके देखिये तब शरीरके निर्वाहमात्र तीनही पदार्थ इसको चाहिये हैं सो कुछ आहार जिस करके प्राण बने रहैं १ बहुरि एताही वस्त्र जिसकरके नग्नता दूरहोवे २ और शीत उष्ण वर्षाकी रक्षाके मात्र स्थान ३ सो जिसने इस भेदको समझाहै वह जिस तिस प्रकार अपने शरीरका निर्वाह संयमसहित करलेता है पर जो पुरुष नाना प्रकारके भोजनों और शृंगारोंके निमित्त याचना करे सो तो निस्सन्देह पापी होता है॥ अब तापसोंकी प्रतीत अवस्थाका भेद प्रकट करना॥ ताते जान तू कि अतीत जनोंकी अवस्था तीन प्रकारकी है सो एक तो ऐसे उत्तम हैं जो कि-सीसे कुछ मांगते भी नहीं और जब कोई उनको कुछ देवे तोभी नहीं लेवे सो केवल अनाहारूप हैं बहुरि दूसरे पुरुष ऐसे हैं जो याचना नहीं करते पर जब

कोई श्रद्धा सहितदेवे तब अगीकार करलेते हैं सो यह भी परम सुखके अधि कारी होते हैं २ और तीसरे ऐसे प्रीतिमान् पुरुष हैं कि जब अत्यन्त प्रयोजन होवे तब याचनाभी करलेते हैं पर भोगों के निमित्त कदाचित् नहीं मागते सो यह भी सात्त्विकी जनोंकी अवस्थाहै पर प्रथम दो अवस्थासे अल्पहै ३ इसी पर इबराहीम ने एक सिद्धसे पूछाथा कि तैंने बलखके अतीतों को किसप्रकार देखाहै तब उसने कहा कि उनकी उत्तम अवस्थाहै काहेसे कि जब कुछ पावते हैं तब भगवत् का धन्यवाद करते हैं और जब कुछ नहीं पावते तब संतोषकर रहते हैं यह वचन सुनकर इबराहीम ने कहा कि यह तो कूकुरों की अवस्था है बहुरि उस सिद्धने पूछा कि तुमने अतीतों की अवस्था कैसी देखी है तब इबरा हीम कहतेभये कि जब उनको कुछ प्राप्त नहीं होता तब धन्यवाद करते हैं और जब कुछ पावते हैं तब उदारता करते हैं यह वार्त्ता सुनकर उसने मस्तक टेका और कहनेलगा कि सांचे पुरुषोंकी अवस्था यही है बहुरि एक और वार्त्ता है कि एक सन्तको किसीने मांगतादेखाथा तब वह सशयवान् होकर जुनेदसे पूछता भया कि यह तो याचना करनेहारे नहीं ताते इनके मागने के विषे क्या प्रयो जनहै तब जुनेदने कहा कि इनके मागनेकी ओर देखकर ग्लानि न कर काहे से कि यह मागने विषे भी लोगों का कल्याण करते हैं और इनके हृदय की दृष्टि सर्वदा भगवत्की ओरही होताते इनका मांगना भी कल्याणदायक ही है तात्पर्य यह कि सांचे पुरुषों की ऐसी अवस्था हुई है और उनका हृदय ऐसा मिलहुआ है कि कहे बिनाही एक दूसरे के सकल्प को पहिचानलेते थे और जिसीपुरुष को ऐसी अवस्था प्राप्त नाहोवे तब चाहिये कि ऐसे पदकी अभि लाषाको हृदय विषे दृढकरे बहुरि जब प्रीति और श्रद्धासे हीनहोवे तब उनकी अवस्थापर प्रतीतिही दृढराखे तो भला है ॥ अथ प्रकट करना परलै और अर्थ योग्यका ॥ ताते जान तू कि जैसे ग्रीष्मऋतु विषे किसी पुरुषके पास बर्फ होवे तब उसको शीतलताके निमित्त वह बर्फ प्रियतम होताहै पर जब कोई उसको अधिक स्वर्ण देकर मोललिया चाहे तब धन करके उसको बेंचनेताहै और अ पने शीतल जलके पीनेकी अभिलाषाको त्यागदेता है और यों जानताहै कि यह बर्फ क्षणक्षण विषे गलताजाताहै और स्वर्णकरके मेरेकेते कार्य पूर्णहोवेंगे तैसेही जिस पुरुषने इसप्रकार समझाहै कि इससंसारके सुख क्षणक्षण विषे परि

रामको पाते जाते हैं और मृत्युके समय कुछही न रहेंगे ताते आत्मसुख की प्रीति करके संसारके सुखोंको शीघ्रही त्यागदेताहै और उसकी दृष्टि विषे सबही भोग तुच्छ भासते हैं सो इसही अवस्थाको वैराग्य कहते हैं पर वैरागीकी परीक्षा दो प्रकारकी होती है प्रथम तो जिसने पुरुषार्थ और निष्काम प्रीति करके धन और मान आदिक पदार्थोंको त्याग दियाहै और सर्व भोगोंसे विरक्त होकर महाराज की ओर सावधान हुआ है तब यह भी उत्तम वैरागी कहाता है १ और जो पुरुष आदि विषे धन कुछ नहीं रखता तब उसके वैराग्य की परीक्षा यह है कि जो उस को धन आदिक पदार्थ प्राप्त होवें तो अङ्गीकार न करे तब उसके वैराग्य का चिह्न प्रकट होताहै २ पर जो पुरुष ऐसी परीक्षा किये विना आपको वैरागीजाने सो महा मूर्खहै काहेसे कि भोगों की प्राप्ति विना इसका मन स्वाभाविकही सकुचा रहता है और जब भोगों की प्राप्ति होतीहै तो महाचपलता को पाता है बहुरि एक यह भी वैराग्य की परीक्षा है कि जैसे धन आदिक पदार्थों का त्याग करता है तैसे मानरस से भी विरक्त होवे इस करके कि वैरागी तिसको कहते हैं जिसकी प्रीति भगवत्भक्ति विना और किसी पदार्थविषे कुछ न होवे पर रामभक्तिके निमित्त स्थूल सुखोंको त्याग करना बहुत लाभदायकहै इसीपर महाराजने कहाहै कि जब तुम तन और धन मेरे अर्थ लगावो तब मैं परम सुखरूप अपनी भक्ति तुमको प्राप्तकरूं ताते हे जिज्ञासुजनो ! इसकरके तुम को अधिक प्रसन्नहोना प्रमाणहै कि यह व्यवहार बहुत लाभदायकहै और जो पुरुष अपने मानके निमित्त अथवा किसी और अर्थकरके धन आदिक पदार्थों का त्यागकरे तब उसको वैरागी नहीं कहते और स्वर्गके सुखकी चाह करके जो पुरुष संसार के सुखोंको त्यागताहै सो ज्ञानवानों के निकट यह भी कुछ पुरुषार्थ नहीं काहे से कि श्रीरामभक्त जैसे इससंसार के सुखको तुच्छ जानते हैं तैसेही स्वर्ग के सुखों को भी तुच्छरूप जानते हैं काहेसे कि स्वर्ग विषे भी इन्द्रियादिकही भोगहैं ताते उनको भी विरस समझते हैं और इन्द्रियादिक भोगों विषे आसक्त होना पशुवोंका धर्म है इसीकारणसे ज्ञानवान् श्रीजानकीवल्लभजी के शुद्धस्वरूप प्राप्तिविना और किसी पदार्थ करके सन्तुष्ट नहीं होते और सर्व पदार्थोंको कुछ वस्तुही नहीं जानते ताते ज्ञानवान् धनका त्यागभी नहीं करते और जो कुछ संग्रह भी रखते हैं तोभी अधिकार अनुसार खर्च करदेते हैं जैसे

पिछले केते सन्तोंकी अवस्था हुईहै कि वह केती पृथ्वीका राजभी करतेथे और धन भी अधिक रखतेथे पर उनका चित्त किसी पदार्थ विषे आसक्त न था तात्पर्य यह कि ज्ञानवान्के पास लाखों रुपयेहोवें तौभी वैरागी है और ज्ञानहीन पुरुष यद्यपि एक पैसा भी न रखता होवे तौभी वैरागी नहीं कहलाता तातें उत्तम अवस्था यहहै कि इसपुरुषका चित्त सर्व पदार्थों से निर्मोहहोवे और किसी पदार्थके ग्रहण अथवा त्यागकी इच्छाही न करे और किसी पदार्थसे प्रीति और विरोध भी न करे काहेसे कि जैसे प्रियतम पदार्थ चित्तसे कदाचित् नहीं बिसरते तैसेही विरोधी पदार्थ भी विस्मरण नहीं होते और उत्तम अवस्था यही है कि इस पुरुषके हृदय से सबही पदार्थ विस्मरण होजावें और जैसे समुद्रके जलविषे किसीको कृपणता नहीं होती तैसेही धन विषे भी उदारचित्त होवे और धनका होना न होना इसको समान होजावे सो यद्यपि यह उत्तम अवस्थाहै पर सबों के गिरनेका अधिकार भी यहीहै अर्थ यह कि जिस पुरुषसे धनका त्याग नहीं होसक्ता तब वह ऐसाही अभिमान करलेताहै कि मैं धनके हर्ष शोकसे रहितहूं पर इसकी परीक्षा यह है कि जब उसका धन कोई अधिकारी लेजावे अथवा और किसी विघ्न करके नष्ट होजावे और उसका चित्त समानताविषे न रहे तब जानिये कि झूठाही अभिमान करताहै और उसका चित्त धनसे निरक्त नहीं हुआ तब उसका अधिकार यह है कि पुरुषार्थ सहित धनका त्याग करे तौ माया के विघ्नोंसे मुक्तरहे इसीपर एक वार्त्ताहै कि एक त्यागी जनको किसीने कहाथा कि तुम वैराग्यवान्हो तब उन्होंने कहा कि वैरागी तो अमुक सन्तजीको कहो कि वह सर्व पदार्थोंका संग्रह रखतेहैं और हृदय उनका निर्लेप है और मेरे पास तो धन ही कुछ नहीं तातें मेरा वैराग्य क्योंकर जानाजावे बहुरि एक विद्यावान्ने ईर्षा करके कहाथा कि अमुक सन्त तो जुलाहेका पुत्रहै और हमारे मनको प्रसन्न नहीं करती तब एक और प्रीतिमान्ने कहा कि हमतो इतना नहीं जानते कि वहजुलाहाहै अथवा कौनजातिहै पर इतना जानते हैं कि माया उनके सन्मुख आती है और वह मायाको त्याग और पीठदेते हैं और हम सदैव काल मायाको ढूंढ़ते हैं सो हमको प्राप्त नहीं होती बहुरि मायाका सुख नर्कके समान तुच्छहै और आत्मसुख स्वर्गके समानहै सो नर्कको स्वर्गके साथ जैसाहा लना कुछ बड़ी बात नहीं और सब बुद्धिमान् यह काम करसक्ते हैं तैसेही माया के सुखों को आत्म

मुख परा निछावर करना प्रमाणहै पर जब विचारकरके देखिये तो नर्क और स्व-र्गविषे थोड़ाही भेद है और माया के सुख और आत्मसुखविषे अधिक से अधिकही भेद है इस करके कि आत्मसुख के निकट माया का सुख कुछ वस्तुही नहीं पर थोड़ीबुद्धि मनुष्य इस वार्त्ता को नहीं समझते कारण ये कि प्रथम तो इनकी प्रतीति ही निर्मल है बहुरि दूसरा कारण यह कि माया के भोगों इन्द्रियों के विषे प्रकटही दृष्टि आवते हैं और तीसरा कारण यह है कि यद्यपि सन्त-जनों के वचन सुनकर भोगों के त्याग की कुछ श्रद्धा भी उपजती है तो भी अ-चेतता करके ढील करते रहते हैं और कहते हैं कि अब तो इस भोग को भोगलें बहुरि इसको त्यागदेवेंगे पर अधिक भोगों की प्रीति की प्रबलता है जो प्रकट सुख का त्यागकरना कठिन है॥ अब वैराग्य की स्तुति प्रकट करनी ॥ तो तू जानतू कि जैसे माया की प्रीति करके इस जीव की बुद्धि का नाश होता है तैसेही माया का त्यागना मुक्ति का कारण है इसपर संतजनों ने कहा है कि जो पुरुष चालीस दिन पर्यंत भोगों से विरक्त होता है तब निस्सन्देह उसके हृदय में अनुभव का प्रकाश प्रकट होता है और महापुरुषने भी कहा है कि जब तू भगवत् का प्रियतम हुआ चाहि-हता है तो माया के पदार्थों से विरक्त होजा और किसी ने महापुरुष से पूछा था कि प्रीतिमानों के लक्षण क्या हैं तब उन्होंने कहा कि जिसका चित्त माया से विरक्त हो-वे और स्वर्ण माटी जिसको समान होजावे तब उसको प्रीतिमान् कहते हैं और यों भी कहा है कि भगवत् के प्रकाश करके जिसका हृदय निर्मल है तब उसका चित्त छलरूप संसार से विरक्त होजाता है और अविनाशी स्थान की प्रीति विषे सावधान होता है और मरने से आगेही परलोक का तोशा बनाता है और महा-पुरुषने यों भी कहा है कि हे प्रीतिमानो! भगवत् की लज्जा करो तब प्रियतमों ने पूछा कि क्या आगे से हम लज्जा नहीं करते हैं बहुरि महापुरुषने कहा कि जब तुम्हारे हृदय विषे लज्जा होती तब जीविका से अधिक धन का संचय क्यों करते और जिन मन्दिरों विषे तुम को नित्य रहनाही नहीं वो प्रीति संयुक्त उनको क्यों बनाते हो बहुरि यों भी कहा है कि जिसने भगवत्ही को सत्य स्वरूप जाना है और और पदार्थों को नाशवन्त समझा है सो आत्मसुख का अधिकारी होता है तब एक प्रियतमने पूछा कि भगवत् को सत्य स्वरूप जानने विषे पटन्तर क्या है कि केते पुरुष सन्तजनों की नाईं निवृत्त वचन कहते हैं और करतूत उनके गदा

मलिनहै और योंभी कहाहै कि जिसका चित्त मायासे विरक्त हुआहै उसके हृदयविषे अनुभवका प्रकाश उपजता है तातें सुखसेही परमपदको पाताहै बहुरि ईसा महापुरुषसे लोगोंने पूछाथा कि जो तुम आज्ञाकरो तो तुम्हारेनिमित्त एक घर बनावैं तब उन्होंने कहा कि जलके प्रवाहपर मेरा घर बनाओ बहुरि लोगों ने पूछा कि जलके प्रवाहपर मन्दिर क्योंकर बनाइये तब उन्होंने कहा कि संसारका जीवना जलके प्रवाहवत् है तातें इसविषे घर बनाना बड़ी मूर्खताहै इसी पर एक सन्तने भी कहा है कि वैराग्यवान् का अल्प भजनभी और लोगों के अधिक भजन से विशेष होता है और सुहेल सन्त ने कहा है कि जबलग यह मनुष्य भूख और नग्नता और निर्धनता और अपमान से निर्भय नहीं होता तबलग इसका करतूत कदाचित् शुद्ध नहींहोता ॥ अथ प्रकटकरना भेद वैराग्यकी अवस्था का ॥ तातें जान तू कि वैराग्यकी तीनि अवस्था हैं सो प्रथम यहहै कि जिसने स्थूल मायाका त्याग किया है और चित्त विषे मायाको रमणीक जानताहै और यत्न और हठकरके अंगीकार नहीं करता सो विषयको कनिष्ठ वैरागी कहतेहैं १ बहुरि दूसरी अवस्था यहहै कि चित्तविषेभी माया को रमणीक नहीं जानताहै पर अपने वैराग्यको विशेष समझताहै कि मैंने बड़ा वैराग्य कियाहै सो यह मध्यम अवस्था कहाती है २ बहुरि तीसरी अवस्था यह है जो वैराग्य से भी वैरागीहोवे अर्थ यह कि अपने वैराग्यका भी अभिमानी न होवे जैसे कोई पुरुष राजाके निकट जानेकी मनसाकरे और उसको राजासे बखशीसकी आशाहोवे और राजाके द्वारपर कूकुर भूकनेलगे तब रोटीका टूक कूकुरको डारदेवे बहुरि आपको उससे बचायकर राजाके निकट जावे और उत्तम बखशीस उसको प्राप्त होवे तब वह पुरुष अपने चित्तविषे रोटीके डारनेको कुछ वस्तुही नहीं जानता तैसेही भगवत्के दर्शनकी प्रीतिविषे मायाका त्यागकरना महातुच्छ वार्त्ता है काहेसे कि उस सुखके निकट मायाका सुख रोटीके ग्राससेभी तुच्छ है इस करके कि माया के सुख सबही परिणामी हैं और औरसुख परिणामसे रहित है तातें नाशवान् और अविनाशी सुखका सम्बन्ध किसीप्रकार नहीं मिलता इसीपरे बायजीदको किसीने कहाथा कि अमुक पुरुष अपने वैराग्यकी स्तुति करताहै तब उन्होंने कहा कि उसने किसमें वैराग्य कियाहै बहुरि वह पुरुष कहता भया कि उसने सर्व मायाको त्यागाहै तब बायजीदजी ने कहा

कि माया तो कुछ वस्तुही नहीं ताते इसके त्यागने विषे क्या पुरुषार्थ है काहेसे कि त्याग तो किसी वस्तुका होताहै ताते माया के त्याग का अभिमानी होना क्या है पर यह जो वैराग्यको वैराग्य वर्णन कियाहै सो सबसे उत्तम अवस्था है ३ बहुरि वैराग्यकी उत्पत्ति भी तीन कारण करके होतीहै सो केते पुरुष तो नरकोंके भयकरके माया के भोगोंका त्यागकरते हैं १ और केते पुरुष परलोकके सुख निमित्त भोगोंको त्यागते हैं २ और कोई पुरुष ऐसे निष्कामी होतेहैं कि उनको नरकोंका भयभी नहीं होता और किसी सुखकी आशाभी नहींरखते पर केवल भगवत्‌की प्रीति विषे ऐसे लीनहोते हैं कि लोक परलोककी सत्ता उनके हृदयसे दूर होजातीहै ताते महाराज के दर्शन बिना आन पदार्थकी ओर देखने विषे उनको लज्जा आवतीहै जैसे किसी पुरुषने राबिआबाईके आगे बैकुण्ठकी स्तुति करीथी तब उन्होंने कहा कि घरवाला पुरुष घरसे विशेष होताहै अर्थ यह कि भगवत्‌के दर्शन के निकट बैकुण्ठका सुखक्याहै ३ तात्पर्य यह कि जिसको आत्मसुख का साक्षात्कार हुआहै वह स्वर्गादिक सुखोंको ऐसे जानताहै जैसे राज्यसुखके निकट बुलबुलके खेलका सुख तुच्छ होताहै पर यह वार्त्ता प्रसिद्ध है कि बालकोंको राज्यसुखसे बुलबुलका खेल अधिक प्रियतमलगताहै काहेसे कि बालकों की बुद्धि अतिसामान्य होतीहै ताते राज्यके सुख को समझही नहीं सकते तैसेही जिस पुरुषको भगवत् बिना और पदार्थ प्रियतम लगते हैं सो तिसकीबुद्धि भतिनी रहे और ज्ञानवानोंकी दृष्टिविषे वहभी बालकहीहै काहेसे कि उत्तमबुद्धि और पुरुषार्थ नहीं प्राप्त हुआ तात्पर्य यह कि वैराग्यवानों की भिन्न२ अवस्थाहोती है पर सम्पूर्ण वैरागी तिसहीको कहते हैं जो शरीरके निर्वाहसे जेते अधिक भोगहैं तिन सबोंसे विरक्त होवे जैसे धन मान निन्द्रा आहार और वस्त्र उपदेश वालोगोंके मिलापआदिक जेते मनके भोगहैं सो सबही मायारूप हैं और त्यागनेयोग्यहैं इसीपर एकमन्तनेभी कहाहै कि बुद्धिमानोंने वैराग्यके वचन बहुत कहे हैं पर मैं उसहीको वैराग्य जानताहूं जो जिस पदार्थसे भगवत्‌मे विक्षेप प्राप्तहोता होवे सो तिसहीका त्यागदेना उत्तम वैराग्यहै ताते प्रीतिमान् वही है जिसके चित्तविषे श्रीरामरूप बिना और किसी पदार्थकी प्रीति न होवे इसी कारणसे महियासन्न टाटका चोला पहरतेथे काहेसे कि वस्त्रकी कोमलताकरके स्पर्शका भोग होताहै तब माता ने यत्नकरके रूईका वस्त्र पहराया कि टाटकरके

तिनका शरीर कृश होगयाथा बहुरि आकाशवाणी हुई कि हे यहिया तैंने मुझको त्यागकरि भोगों को अङ्गीकार कियाहै यह वचन सुनकरि यहिया रोवने लगे और फिर उसही टाटको पहिरलिया परन्तु यह ऐसा कठिन वैराग्य है कि सबकोई इस अवस्था विषे स्थित नहीं होसक्ता तातें जेताजेता किसीने यथाशक्ति भोगों को त्यागाहै सो तेताही लाभको पावताहै ॥ अथ प्रकट करनी मर्यादा वैराग्यकी ॥ तातें जान तू कि संसार एक महाअगाधकूप है और संसारी जीव सबही इसकूप विषे पड़ेहैं परन्तु जब निश्चयकरि देखिये तब इसको शरीर के निर्वाहमात्र एते पदार्थ अवश्यही चाहियेहैं जैसे आहार वस्त्र स्थान गृहकी सामग्री धन मान सो तिन्हों से प्रथम आहार की अपेक्षा शरीर को अधिक होती है तातें चाहिये कि प्रथमतो आहार की वस्तु का विचारकरे सो उत्तम वैराग्यवानों का आहार बनके फल मूल होवाहै काहेते कि उदर पूर्ण इन करकेभी होताहै बहुरि और जेते नीच अन्न हैं सो तिनका आहार इनसे राजसी है बहुरि कणक और चावलें आदिक जेते अन्न हैं सो महाराजसी हैं और जब मैदा और घृत और मिष्टान्नादिकों का आहार करे तब वैराग्यही नष्ट होजाताहै और आहार का प्रमाण जिज्ञासुजनों को एता चाहिये कि जो अधिक क्षुधा न होवे और अधिक भूखेभी न रहे बहुरि अधिक संचय करताभी अयोग्य है काहेतें कि वैराग्यका मूल निराशता है और तृष्णा का मूल आशा की वृद्धि है सो जिस पुरुषकी आशा दीर्घ होती है तिससे वैराग्य नहीं होसक्ता और महापुरुष भी संबन्धियों के निमित्त एक वर्षकी जीविका रखावतेथे परन्तु अपने निमित्त कुछ संचय नकरलेये बहुरि वैराग्यवान् को योगी चाहिये कि भोजनके निमित्त तर्कारियों को बहुत न ढूंढे और साग अथवा खटाई के साथ रोटी खालेवे और जब नानाप्रकार के व्यञ्जनों विषे आसक्त होवे तबभी वैराग्य नष्ट होजाताहै बहुरि वैरागीको रात्रि दिन विषे एकही बार आहार करना प्रमाण है और जब दो दिनमें एकबार खावे तो अतिही भला है पर जब एकही दिन विषे दोबार खावे तब इस लोकका वैराग्य नहीं रहता तात्पर्य यह कि जब कोई पुरुष वैराग्यकी वार्ता अथवा कथा चाहे तब महापुरुष और उनके मिलापियों की वार्ता श्रवण करे उनके गृह विषे कैयेदिन दीपक न जलता था और वृक्षके फलों बिना और कोई आहार न होता था और ईसाजी नेभी कहाहै कि जिसपुरुष को भगवत् सुखकी प्रीति होवे तिसको

सेवकी रोटीअोर घरती प्रसोना विशेप होवैदुरिवैरागी को पहिरावा भीऐसेही निदिमे इस करके कि जो पुरुप दो महिरावे रखता है सो मैरागी नहींहोत अोर महिरावेकी अर्थ्यहहै कि एक कफिरा और एक मोला अथवा एकजादर भी रावे तो भी प्रमाण है परंतोभी विशेप तो कम्बलादिकी वस्त्रका पहिरनहि अथवा रुईका चमहरेनी मोटाही भलाहै और बनारसीन और कोमल वस्त्रपाहिरा जोहैतब वैरागीन्नहीं रहता इसीपर संतजनोंने कहाहै कि जो पुरुपनानाप्रकारे केवस्त्रोंको पहरवाहैतिवा भगवत्सें विमुख होताहै इसीकारणसें कबहू महापुरुप के वस्त्र मैला ऐसे होजाते थे जैसे तेलीकावस्त्र होताहै और एकबार कोई पुरुष सुन्दर वस्त्र महापुरुपके निकट ले आया था तब उन्होंने उसकी प्रसन्नताके निमित्त प्रथम तो पहरलिया बहुरि शीमही उतारकरकहनेलगे कि यह वस्त्र अमुके पुरुपको देवो और मुझको वही पुरातन गुदड़ी भली है काहेमे कि यह वस्त्र मेरे चित्तको विक्षेपता देताहै और एक पीत्रोंका जोड़ा भी अतिसुन्दर किसीने आनि राखाथा उसको पहिरकर कहतेभये कि मुझको वही पुराना जोड़ा आनदेवो इस करके कि मेरे नेत्रोंविषे यह जोड़ानया सुन्दर भासवाहै और भवनकी एकाग्रताविषे प्रतिबंधक है और उमर सन्तके जोजापर चौदह थेगली लगीहुईथी और एकसितने अपने जोलेकी बाँह जेती कुछ अधिकथी सो हाथसे फाड़डारी थी और कहनेलगे कि महाराजका धन्यवादहै और योंभी कहतेभये कि मैं छोटा जोला इसीनिमित्त पहरताहू कि जो धनवान भी मर्मादविषे निम्रे और निर्धनों के चित्तकी संकुचता दूरहोवे और एक प्रीतिमान् एक सन्त के निकट पुरातन वस्त्र पहिरकर गयेथे तब उन्होंने पूंछा कि तुमने ऐसे पुरातन वस्त्र क्यों पहिरे हैं तब वह प्रीतिमान मौनकररहे बहुरि उन्होंने कहा कि तुमने इसवचन का उत्तर क्यों नहीं दिया तब वह प्रीतिमान् कहतेभये कि इसवचनकेउत्तरविषे अपना वैराग्य जनावता होताहै अथवा निर्धनता प्रकटकरती होतीहै सो यहदोनोंप्रकार अयोग्य हैं तातें मैं मौनकररहाहू और एक सन्तको किसीने कहाथा कि तुम उज्ज्वल वस्त्र क्यों नहीं पहरतेहो तब उन्होंने कहा कि हमको उज्ज्वलवस्त्रकेसाथ क्या प्रयोजनहै और एक राजाका भक्त रात्रिविषे टाटको पहिरकर भजन करते रहतेथे बहुरि दिनविषे और वस्त्र पहिरकर अपनी राजनीतिविषे सावधान होते थे बहुरि शरीरधारी मनुष्यको शीतोष्ण की रक्षा के निमित्तमात्रकी अपेक्षा

होती है पर उत्तम वार्त्ता यहहै कि जिज्ञासुजन स्थान बांधिकर न रहे और किसी निरदावे ठौर विषे काल व्यतीत करलेवे अथवा शरीरके निर्वाह मात्र एक कुटी अथवा कोठरी करलेवे पर चित्रशाला और गचकारीके मन्दिरों विषे निवास न करे और जो पुरुष अपने स्थानको चित्रकारी करके सुन्दर बनावताहै वह वैरागी नहीं कहावता काहेमे कि स्थानका प्रयोजन शीतोष्णकी रक्षा है ताते चाहिये कि प्रयोजन बिना और कार्योंविषे आसक्त न होवे इसीपर सन्तजनोंने कहाहै कि नानाप्रकारके मन्दिर बनावने भी जीवनेकी आशा की दीर्घताका लक्षणहै इसीपर एक वार्त्ताहै कि एक प्रीतिमान्ने अपने गृहपर ऊँचा बँगला बनवायाथा सो जब महापुरुषने वह बँगला देखा तब उस प्रीतिमान् से बोलना छोड़दिया बहुरि जब उस प्रीतिमान् ने इस वार्त्ता को जाना कि मेरेओर बँगले के निमित्त दृष्टि नहीं करते तब उसने वह बँगला गिराइदिया तब उसको महापुरुषने प्रसन्न चित्त होकर बुलाया और महापुरुषने योंभी कहाहै कि जिसको भगवंत् अपनी ओरसे विमुखकिया चाहताहै तिसका धन मन्दिरोंके बनावनेविषे खर्च करावता इसीकारण से महापुरुष ने अपनी आयुष् पर्यन्त चाहकरके कोई मन्दिर न बनायाथा और एकवार अपने नगर विषे चलेजातेथे वहां एक प्रीतिमान् गृहको बनावता था तब उससे पूछने भये कि तुम क्या करते हो बहुरि उसने कहा कि हमारा घर गिरपड़ा था ताते उसको भलीप्रकार बनाया चाहताहूं तब महापुरुष कहनेलगे कि उत्तम वार्त्ता तो यहहै कि अविनाशी गृहकी ओर प्रीति कीजे और योंभी कहाहै कि कार्य जो कुछ मनुष्य करताहै और उसविषे खर्च करता है तिसका परलोक में फल मिलता है पर अधिक मन्दिरोंका बनावना अत्यंत निष्फल होताहै और ऐसे पुरुषको परलोकविषे भी ताड़ना होती है इसीकारण से नूह महात्माने तृणकी कुटी बनाइ लीनीथी जब किसीने कहा कि तुमभी जो ईंट माटीका घर बनाइ लो तो इसमें क्या दोषहै बहुरि उसको कहतेभये कि जिसको अन्त मरना है तिसको ऐसे घरके साथ क्या प्रयोजन है सो नवशतवर्ष उनकी आयुष् हुईथी और योंभी कहा है कि जब यह मनुष्य ऊंचा मन्दिर बनावता है तब देवता इस प्रकार कहते हैं कि हे मूर्ख ! तुझको तो पृथ्वी में समावनाहै ताते आकाश की ओर काहे को चलाआवता है इसी पर एक सन्त ने कहाहै कि जो सुन्दर मंदिर बनाइकर मरजाते हैं सो तिनको मुझको आश्चर्य

नहीं आवता पर उनपर आश्चर्य्य आवता है जो इसबार्त्ताको देखते हैं और भय मानकर समझते नहीं और बहुरि मन्दिरों को बनावते हैं और इस मनुष्य को गृहकी सामग्री भी कुछ अवश्य चाहती है पर उत्तम वैरागी वह है जो कुछ ही न राखे जैसे ईसा महापुरुष प्रथम एक कंघी और एक करवा राखते थे सो जब उन्होंने एक पुरुष को ऐसे देखा कि वह हाथोंसे केश और डाढ़ीको बनावताथा और हाथही से जल पीताथा तब इन्होंने कंघी और करवाभी फेंकदिया और कहनेलगे कि यह तो दोनों पदार्थ मेरे सगथे ताते जिज्ञासुको जो किसी वासनकी अधिकही अपेक्षा होवे तो काष्ठ अथवा माटीका पात्रराखे और जो पुरुष धातुका पात्र रखताहै तिसका वैराग्यहीन होजाताहै इसीकारणसे विचारवानोंने ऐसे यत्न कियाहै कि उन्होंने एकही पात्रसे केतेकार्य्य करलिये हैं और कोई पुरुष एक सतके गृहविषे आयाथा तब उसने घरमें कुछ सामग्री न देखी ताते पूछता भया कि तुमने अपना घर ऐसा शून्य किस निमित्त कियाहै तब उन्होंने कहा कि हमारा एक घर और है ताते सर्व सामग्री उसीघर विषे इकट्ठी करतेजाते हैं यह कि सर्व सामग्री कामकरके परलोकका तोशा बनावते हैं बहुरि उस पुरुषने कहा कि जबलग इस ससार विषे जीवना है तबलगः कुछ सामग्री तो अवश्यही चाहती है तब उन्होंने कहा कि हमको भगवत् दयाकरके ससार विषे न राखेगा और एक दिन महापुरुष अपनी पुत्री के घर गयेथे सो दरवाजे के दरपर परदे में रूपेकी कुण्डी देखतेभये ताते ग्लानि करके वहांसे चलेआये और भीतर न गये बहुरि जब पुत्रीने यह वार्त्ता सुनी तब दरका परदा और रूपे की कुण्डी किसी अर्थीको उठायदी सो जब महापुरुषने सुना तब पुत्रीपर प्रसन्न भये और आयशाजी ने इस प्रकार कहा है कि महापुरुष सर्वदा दोहरे बस्त्रपर सोवतेथे सो मैंने एक रात्रिको चारतह करके बिछादिया बहुरि प्रभातसमय उठकर कहनेलगे कि मुझको सारी रैन घोरनिद्रा रही है ताते फेर कभी बस्त्रको चार पर्त करके न बिछावना बहुरि एकबार किसी ओरसे बहुतधन आयाथा सो महापुरुषने एकही दिनविषे बांटदिया और छ रुपये शेष रहगये ताते विश्राम नहीं किया और रात्रिभर चित्त को चैन न पड़ा बहुरि जब वहभी किसी अर्थीको देडारे तब निश्चिन्त होकर सोये और हसनबसरी ने कहाहै कि मैंने सत्तर वैराग्यवानों को देखाहै पर वह सबही एक एक बस्त्र रखते थे और धरतीही पर सोइ

रहते थे बहुरि उसीतिनका ओढ़लेते थे बहुरि शरीरधारी मनुष्यों को धन और मानकी अपेक्षाभी अवश्यही होतीहैसो मैंने तीसरे प्रकरणविषे इनसब वचनों को भलीप्रकार विस्तारकरके कहाहै कि धन और मानकी अधिकता तो हलाहल विषहै पर जब कार्य के निर्वाहमात्र इनको अंगीकारकीयेजाँय तब भी अमृतके समान होजाते हैं काहेसे जिस पदार्थ करके धर्म के मार्गकी सहायता होवे तिसको भी धर्मरूपही कहते हैं ताते जो पुरुष स्थूल पदार्थोंको कार्यमात्र अंगीकार करता है और भोगोंके निमित्त अधिकता को नहीं चाहता सो पुरुष मुक्तस्वरूप है काहेसे कि उसका हृदय तो सर्व पदार्थों से विरक्त रहता है और जिसकी प्रीति मायाके साथ अधिक होती है सो यद्यपि परलोक विषे जाताहै तौभी उसका हृदय भोगोंकी ओर खिंचा रहताहै ताते उसको अधोगति कहते हैं और जो पुरुष इससंसार को मलत्यागनेकी नाईं जानताहै सो जब मृत्युको पावताहै तब ऐसे समझताहै कि भलाहुआ जो मलिनस्थान से मेरी मुक्तिहुई ताते मायाके हेतीका दृष्टान्त यहहै कि जैसे कोई पुरुष विरानेघरकी जंजीरसाथ अपने बालोंको दृढ़ बांधे बहुरि जब घरवाला पुरुष आइकर उसको बाहर निकासीचाहै तब उसके केश उखड़ते हैं और रुधिर निकसताहै और दुखित होता है तैसेही भोगीमनुष्य जब इस संसारको त्यागजाता है तब भी उसका हृदय आसक्त करके व्याकुल रहता है ताते एक महात्मा ने कहा है कि जैसे संसारीजीव सम्पदा पाइकर प्रसन्न होते हैं तैसेही विचारवान्पुरुष आपदा विषे प्रसन्न होते हैं परन्तु यह बड़ा आश्चर्य है कि संसारीजीव उन विचारवान्पुरुषों को बावरा जानते हैं और वह सन्तजन भी संसारीजीवों को मूर्ख मानके सँभाने देखते हैं तात्पर्य यह कि विचारवान् आपदाको सुखरूप इस निमित्त जानते हैं कि दुःखों करके उस मनुष्यका हृदय संसार से विरक्त होताहै और किसी स्थूल पदार्थविषे आसक्त नहीं रहता ॥ अथ पांचवें सर्गविषे निष्कामता और सचाईका वर्णन ॥ ताते जान तू कि बुद्धिमानों ने इसवार्त्ता को प्रत्यक्ष देखाहै कि जगत् सबही नाश हुआहै और कोई विरला शुभकर्मीही बचाहै और शुभकर्मीभी सबही नाश हुये हैं विरला कोई विद्यावानही बचाहै और विद्यावान् भी सबही नाशहुये ताते कोई निष्काम पुरुषही बचाहै तात्पर्य यह कि निष्कामता बिना सबही कर्म दुःखरूपहैं पर निष्कामता और सचाई जो है सो मनसाकी शुद्धता बिना कोई

पाय नहीं सक्ता और जो पुरुष मनसाही के भेदको न जाने सो तिसको निष्कामता क्योंकर प्राप्त होवे इसी कारणसेंमैं प्रथम विभाग विषे मनसाकी रूप वर्णन करताहूं बहुरि दूसरे विभाग विषे निष्कामता वर्णन करूंगा और तीसरे विभाग विषे सचाईका वर्णन होवेगा॥ अथ प्रथम विभाग विषे मनसाके निर्णय में॥ तातें प्रथम तो मनसा की विशेषताको समझना चाहिये इसकरके कि सर्व करतूतोंका जीव मनसाहै और भगवत् भी मनसाही की ओर देखताहै इसीपर महापुरुषने कहाहै॥ कि भगवत् तुम्हारे धन और शरीर और कर्मोंकी ओर नहीं देखता केवल हृदयही की ओर देखताहै काहेसे कि मनसाका स्थान हृदयहै और करतूतोंको मैर्फ मनसाहीहै बहुरि यों भी कहाहै कि जैसे किसीकी मनसा है तैसाही उसको फल शीघ्र होनाहै और यों भी कहाहै कि जब मनुष्य कुछ शुभकर्म करताहै और देवते उसको लिखते हैं तब उसको आकाशवाणी होती है कि अमुक कर्म इसकी चिट्ठी मे दूर करदेवो काहेसे कि इसने वह कर्म मेरे निमित्त नहीं किया और अमुक कर्म कियेबिना ही लिखलेवो काहेसे कि इसने उस कर्म की दृढ़मनसा करीथी बहुरि यों भी कहाहै कि एक धनवान् पुरुष ऐसे होते हैं जो विचारकरके मायाखर्च करते हैं और एक पुरुष उनको देखकर ऐसी मनसा करते हैं कि जब हमारे पास भी धनहोवे तब हम भी ऐसेही खर्च करें तातें मनसा करनेहारोंको भी प्रथम पुरुषकी नांईं उत्तम फलकी प्राप्ति होती है बहुरि एक ऐसेही बुद्धिहीन हैं जो पापों विषे धनको लगावते हैं और एक और पुरुष उनको देखकर ऐसी मनसा रखते हैं कि जब हम भी धनको पावते तब इसी प्रकार खर्च करते तातें यह भी दोनों पुरुष पापों विषे समान हैं काहेसे कि मनसा दोनोंकी समानहै इसीपर एक वार्त्ता है कि एक प्रीतिमान् रेतके ढेरपर जाय बैठाथा और उस देश विषे बहुती दुर्भिक्षथा तब वह प्रीतिमान् दया करके कहनेलगा कि जब ऐसाही ढेर मेरा अन्न का होता तब मैं सबही भूखालोंको बांटदेता बहुरि उसको आकाशवाणी हुई कि तेरा दान सिफल हुआ और मैंने तेरी मनसाहीको प्रमाण किया और महापुरुषने भी कहा है कि जिसकी मनसा और पुरुषार्थ मायाके ही निमित्त दृढ़ होतीहै सो तिसका हृदय सदा असन्तुष्ट रहताहै और अन्तकाल विषे भी उनकी प्रीति मायाही की ओर रहती है बहुरि जिसकी मनसा और पुरुषार्थ भगवत्के मार्ग विषे दृढ़ होतीहैं सो तिसका हृदय भी सर्वदा सन्तुष्ट रहताहै और अन्तकाल

विषे भी विरक्त होकर संसारको त्यागताहै इसीपर सन्तजनोंने कहाहै कि प्रथम मनसाकी विद्याका पढ़ना प्रमाणहै और पीछे करतूति करना प्रमाणहै काहे मे जो पुरुष किसीसे कुछ उधार लियाचाहै और चित्तविषे यह मनसा करे कि मैं फिर इसको न दूंगा सो निस्सन्देह चोरहै और एक जिज्ञासुने ऐसे कहाथा कि मुझको ऐसी विद्या पढ़ाओ जिस करके मैं किसी शुभकरतूति से रहित न होऊं तब उन्होंने कहा कि जब शुभकर्म्म का अवसरहोवे तब उसी क्रिया विषे दृढ़ होवे और जब करतूतिका समय न होवे तब भली मनसाविषे सावधानरहो ताते किसी समयविषे पुण्यके फलसे अप्राप्त न होवेगा इसीपर एक और सन्तने भी कहा है कि परलोक विषे भी सबको मनसाके अनुसार सुख दुःख प्राप्ति होवेगी और एक महात्मा का वचन है कि आत्मसुख की प्राप्ति शरीर के करतूति कर नहीं होसक्ती ताते उसका पावना शुद्ध मनसा करके होता है काहे से कि जैसे आत्मसुख सूक्ष्म और अनतहै तैसेही शुद्ध मनसाभी सूक्ष्म और अनतसे रहित है ॥ अथ प्रकट करना रूप मनसाका ॥ ताते जानतू कि सर्व करतूतोंका बीज बूझ और श्रद्धा और बलहै जैसे यह मनुष्य जबलग किसी आहारको नहीं देखता तबलग उसको पावता भी नहीं और यद्यपि उसको देखताहै तौभी श्रद्धा बिना अङ्गीकार नहीं करता और यद्यपि श्रद्धाभी होवे तौ भी हाथ और मुखके हलाये बिना खाय नहीं सक्ता तात्पर्य यह कि सर्व कर्मोंकी सिद्धता बूझ और श्रद्धा और बलकरके होती है पर बल श्रद्धाके अधीन है और श्रद्धाही बलको करतूतिविषे सावधान करती है बहुरि श्रद्धा बूझके अधीन नहीं काहेसे कि यह मनुष्य जेते पदार्थोंको जानताहै उन सबकी श्रद्धा नहीं रखता पर यह वार्ताभी निस्सन्देह है कि बूझ बिना श्रद्धाका कुछ रूपभी प्रकट नहीं होता काहेसे कि प्रथम जिस पदार्थ को जानेही नहीं सो तिसकी श्रद्धा क्योंकर करे तो इसभाव करके श्रद्धाको बूझके अधीन कहसके हैं पर जब बूझ और श्रद्धा और बल एकत्र होते हैं तब इसहीको दृढ़मनसा कहते हैं सो करतूतिकी सिद्धता उसी मनसाकरके होती पर वह मनसा जो करतूतिको प्रेरती है सो कबहूं केवल होतीहै और कबहूं मिश्रितभी होतीहै सो इसका दृष्टान्त यहहै जैसे कोई पुरुष अचानक सिंहको देखे तब उसकी मनसा केवल भागने विषे होती है अथवा जब कोई ऐश्वर्य्यवान मनुष्य किसीके गृह विषे आवे तब उसके सन्मान के निमित्त सोमही

उठखड़ा होताहै सो यह केवल मनसा कहाती है १ और मिश्रित मनसा तीन प्रकारकी होती है प्रथम तो यह है कि वे दोनों मनसा कार्यको समर्थ होती हैं जैसे निर्द्धन सम्बन्धी किसीसे कुछ मागे तब उसको अवश्यही देताहै सो अथवा सम्बन्ध के निमित्त देताहै अथवा निर्द्धन और अर्थी जानकर देना है ताते इस का नाम मिश्रित मनसाहै १ बहुरि दूसराप्रकार यह है कि दोनों मनसा निर्बल होती हैं जैसे सम्बन्धी निर्द्धन होता तौभी उसको कुछ न देता और जब वह केवल निर्द्धनही होता और सम्बन्धी न होता तौभी उसको कुछ न देता पर जब निर्द्धनता और सम्बन्ध दोनों इकट्ठे आनिहुये तब इसका मन देने को समर्थ हुआ २ सो प्रथमप्रकार का दृष्टांत यहहै कि जैसे दो बलवान् पुरुष किसी पाथर को उठाने लगें और दोनों पुरुष ऐसे बली होवें कि जब पृथक् पृथक् उसपाथर को उठावते तो उठाय सक्तेथे पर मिलके उठाने कर सुगमही उठाय सक्ते हैं बहुरि दूसरे प्रकारका दृष्टान्त यहहै जैसे दो पुरुष ऐसे निर्बलहोवें कि पृथक् पृथक् पत्थरको उठाय न सकें और परस्पर मिलकर उठाइ लेवें २ बहुरि तीसरा प्रकार यह है कि मनसाविषे एक मिलौनी सबल होतीहै और एकनिर्बल होतीहै पर दोनों के मिलाप करके सुगमताई होजाती है जैसे कोई पुरुष रात्रि विषे प्रीति संयुक्त भजन करता होवे और कोई और पुरुष उसको देखे तब वह भजन उसको सुगम होजाता है ताते इसका दृष्टान्त यहहै जैसे कोई पुरुष अपने बल साथ भी पाथर को उठायसक्ता होवे पर जब निर्बल मनुष्य भी उसको हाथ लगा देवे तब उसका उठावना कुछ सुगम होजाताहै सो यह सबकी भिन्न भिन्न अवस्था है ३ तात्पर्य्य यह कि तू मनसाकी केवलता और मिलौनीको भी जाने और करतूतों का प्रेरक मनसाही को पहिंचाने अब इससे आगे ऐसे जान तू कि महापुरुष ने भी इसप्रकार कहाहै कि प्रीतिमानों की शुद्ध मनसा करतूति के करनेसे भी विशेषहै सो इस वचनका अर्थ यह नहीं कि श्रद्धाहीन करतूति से मनसा विशेषहै काहेसे कि यह वार्त्ता तो प्रकटहै कि शुद्ध श्रद्धा बिना करतूति निष्फलहोतीहै और शुद्ध मनसा करतूति बिना भी फलदायक है ताते महापुरुष के वचन का प्रयोजन यहहै कि करतूति शरीर करके होतीहै और मनसाका सम्बन्ध केवल हृदयहीके साथ होताहै इसीकारण से मनसाको कर्मसे विशेष कहाहै जो शरीर की करतूति विषे भी हृदयहीके स्वभावका उलटावना प्रयोजन होताहै और हृ-

दयकी मनसा विषे जिज्ञासुका प्रयोजन ऐसा नहीं होता जो शरीरके स्वभावको उलटाइ करि सीधा कीजिये पर जबलग मनसा अनुसार शरीरका सम्बन्ध नहीं मिलता तबलग करतूति प्रकट नहीं होती इसी कारण सें अल्पबुद्धि जीव ऐसे जानते हैं कि मनसा करतूतों के निमित्त चाहती है पर जैसे सभी प्रकार बिचार करोकेंद्रिसि तब करतुति विषे भी मनसाही उलटावनेका प्रयोजन है काहेसे कि शुद्ध मनसा करके जीवका हृदय शुद्ध होताहै और परलोकविषे भी इसी रीति कोजानाहै ताते उत्तम भागों और मन्दभागों का अधिकारी भी जीव है और यद्यपि परलोक के सुखदु ख विषे शरीरका सम्बन्ध भी होताहै तोभी यह शरीर जीवको अधीन होनेसे तीर्थयात्रा के मार्ग विषे घोड़ा भी जातरस नाहि ऐसए घोड़ेको तीर्थयात्रा का फल कुछ नहीं होता और फलका अधिकारी मनुष्यहै तैसे हृदयके स्वभाव की उलटावना सर्व कर्मोंका फल है कि मायाके पदार्थों की ओरसे हृदयके मुखको फेरना और भगवत्की ओर सन्मुख होना सोई हृदयका मुख श्रद्धाहीका नामहै ताते जिसकी श्रद्धा मायाके पदार्थों विषे प्रवर्तमानहै तिसका मुख मायाही की ओर है पर आदि उत्पत्ति विषे इस जीवको मायाही की अभिलाषा अधिक होती है बहुरि जिसके हृदय विषे भगवत् के दर्शनकी श्रद्धा उत्पन्न हुई तब जानिये कि उसका मुख उलटकर महाराज की ओर सीधा हुआ है ताते प्रसिद्ध हुआ कि सर्व कर्मों का प्रयोजन हृदयकी मनसा उलटावनाहै जैसे मस्तक टेकने विषे यह प्रयोजन नहीं होता कि शीशको धरती पर राखिये पर इसविषेभी यही प्रयोजन होताहै कि इसजीवका हृदय अभिमान से उलटकर दीनताको ग्रहणकरे ऐसेही भगवत्को बड़ा कहने विषे भी रसना को हिलावनेका प्रयोजन नहीं होता ताते बड़ा कहने विषे भी यही प्रयोजनहै कि यह मनुष्य अपनी बड़ाई का त्यागकरे और भगवत् की बड़ाई जानकर उसके अधीन होवे ऐसेही सर्व शुभकर्मोंका फल यही है कि जिज्ञासुजन अपनी वासनाको त्यागकर संतजनों की आज्ञाकारी होवे इसप्रकार कि दासको अपने प्रकार अपना आपा दूरकरनाही प्रमाण है तातें इस मनुष्य विषे भगवत्नेयह स्वभाव उत्पन्न कियाहै कि जब इसको निर्मल विषे किसी कर्मकी श्रद्धा उपजे और शरीर करके भी यहो करतूति करेतब तब वही मर्यादा हृदय विषे दृढ़होजातीहै जैसे कि पुरुषके मन विषे किसी अनाथ बालक पर दया आन उपजे फिर उसके

ऊपर नम्रीभूत कर हाथ फेरता है तब वह दुआ मनविषे दृढ़ और सूरति भी होजावी है ब्रह्म जैसा कि चिह्न किया जो होता है पीछे कि जो सुरति अरु ध्यान ऐसे कर्म करता है तब वह अन्तर्वृत्ति भी दृढ़ता करके पवित्र होती है ताते शुद्ध मनसा यह है कि भलाई की चाहना करनी बहुरि शरीर की करतूति रूपी सेवा दृढ़ करनेहारी नमस्कार आदिक होती है इस करके प्रसिद्ध हुआ कि सर्व शुभ गुणों की मूल मनसा है और करतूति का फल भी मनसा की दृढ़ता है इसी कारण से महापुरुषों ने कहा है कि शरीर की करतूति से मनसा विशेष है काहे से कि मनसा का निवास हृदय विषे दृढ़ होता है और शरीर की करतूति हृदय से भिन्न है ताते जब मनसा साथ मिलकर करतूति का प्रवेश हृदय विषे होय हुये तब करतूति भी सफल होती है और जो मनसा बिना अचेत करके होता है सो निस्सन्देह अफल सी रहित होती है और करतूति बिना शुद्ध मनसा कदाचित् व्यर्थ नहीं होती इसका दृष्टान्त यह है कि जैसे किसी के उदर विषे पीड़ा शूल की होवे तब उसको कहा है कि औषध खावे जो उदर में पहुँच कर पीड़ा को दूर करे पर जब वह बाहर उदर की ओर औषध का लेपन करे कि इसी का प्रवेश भीतर उदर को होकर गुण करेगा सो यद्यपि औषध के लेपन में भी गुण होता है परन्तु जो औषध खाई जाती है तिसका गुण भीतर पहुँच कर निस्सन्देह अधिक ही होता है तैसे ही शरीर की करतूति बाहिर लेपन की नाईं है और हृदय की मनसा औषध खाने की नाईं है ॥ अब प्रगट करना इसका कि केते सुकर्मों करके इस मनुष्य को मनसा गुनी नहीं होती है और केते सुकर्म अन्तर मनसा करि गुणहीन होते हैं ताते जानना कि सन्तजनों के वचनों विषे इस प्रकार सो आया है कि जब इस जीव के हृदय विषे भलाई का संकल्प फुरता है तब देवता उसी सङ्कल्प को निहचै लिखते हैं और जब शरीर करके वही कर्म करता है तब एक का पाप लिखते हैं और जब मन के कर्म को भी मनसा ही करता है तब भी एक भलाई लिखते हैं चाहे उस भलाई को नहीं भी करे और जब मनसा करके बुराई करता है तब भी भलाई लिखते हैं परन्तु वचन सन्तों के ने पुरुषों ने इस प्रकार से कहा है कि इस मनुष्य के हृदय विषे अन्तर मलिनता सर्व रूप फुरते हैं तिन करके इसको दोष कुछ नहीं लगता पर ऐसे जानने होंगे पुरुष भूले हैं कहते हैं कि शरीर का भी सङ्कल्प जीव है और पुण्य पाप का अधिकारी भी नहीं है इसी पर महाराज ने कहा है कि तुम ने भी मनसा है सो मनविषे तुम्हारे है सो गुप्त राखो अथवा प्रगट करो पर तिसका फल तुम को अवश्य ही प्राप्त होवेगा

और योंभी कहाहै कि भगवत्मुखके कहनेको नहीं प्रमाण करना और हृदयकी की मनसाको मानताहै और यह बार्त्ताभी प्रसिद्धहै कि अभिमान कपट अहंकार ईर्षा दम्भादिक जेते मलिन स्वभावहैं सो सबही इस जीवके बन्धन करनेहारे हैं और यह पाप सबही मनके संकल्प करके होतेहैं सो ऐसे पापोंके होतेहुये मनुष्यको निर्बन्ध क्योंकर कहिये ताते इस बचन का तात्पर्य्य यहहै कि इस जीवके संकल्पका फुरनाभी चारप्रकारका होताहै सो दोप्रकारका फुरना इसके पुरुषार्थ करके होताहै और दोप्रकारका फुरना इसके अधीन नहीं इसीकारणसे पराधीन फुरनेका इसको दोष कुछ नहीं लगता और पुरुषार्थसहित फुरना बंधनरूप होता है जैसे कोई पुरुष मार्ग विषे जाताहै और अनजानकही पीछेसे कुछ शब्द सुन लेवे बहुरि जब पीछे नेत्रकरके देखे तब उसको स्त्री दृष्टिआवे सो तिसको तुच्छ फुरना कहते हैं और इस फुरनेकरके मनुष्यको दोष कुछ नहीं लगता काहेसे कि यह स्वाभाविक दृष्टिहै बहुरि जब दूसरीबार कुछ रुचिकरके देखे तोभी कुछ पाप नहीं कहाजाता काहेसे कि यह भी मनका स्वभावहै और इसी जीवके ऊपर प्रबलहै ताते भगवत् बख्श लेताहै पर जब निलज्ज होकर तीसरीबार उसके रूप और अङ्गोंको देखनेलगे और उसी संकल्प विषे दृढ़होवे तब वही संकल्प बंधन का कारण होताहै काहेसे कि यद्यपि उस देखनेको बुराई जानताहै तोभी त्याग नहीं करसक्ता बहुरि चौथा संकल्प उसको कहते हैं जो उस पापकर्मकी बुराई भी बिसारणहोजावे और कामकी अभिलाषाविषे मनसा दृढ़करे तब यह संकल्प सम्यक् बंधन रूप होजाताहै तात्पर्य्य यह कि प्रथम दो प्रकारका फुरना पराधीन और अकस्मात् होताहै ताते निर्दोष कहाजाताहै इसी कारणसे जिज्ञासुजन को चाहिये कि भगवत्के भयकरके मनके संकल्पको होने न देवे और हठकरके आपको नाशभी न करे काहेसे कि विचार और भगवत्की प्रार्थनाकरके शनैः शनैः मनके स्वभावको दूर करना विशेषहै इसीपर एक प्रीतिमान्ने महापुरुषसे पूंछाथा कि मैं कामादिक संकल्पकी विक्षेपतासे दुःखित होकर आपको नपुंसक कियाचाहताहूं तब उन्होंने कहा कि नपुंसक होनेसे व्रत और तपकरके शरीरको निर्बल करना विशेष है बहुरि वह प्रीतिमान् कहताभया कि मेरा मन लोगोंके मिलाप से विक्षेपताको पावताहै ताते किसी पहाड़की कन्दराविषे निवासकिया चाहताहूं तब उन्हों ने कहा कि मेरे मतविषे एकान्त रहने से साधुसंगति मि-

रहना विशेषहै सो इसका प्रयोजन यहहै कि जबलग इस मनुष्यके हृदय विषे पापकर्मकी मनसा दृढ़ न होवे तबलग मनके स्वाभाविक फुरनेकरके पापी नहीं होता पर जब वही सङ्कल्प दृढ़ होजावे अथवा उस पापकी मनसाकरे तब निस्संदेह पापी होता है यद्यपि भगवत् के भयबिना अपने मान अथवा लोगों के सङ्कोच करके वह कर्म न करे तौभी पापसे रहित नहीं होता और ताड़ना का अधिकारी होता है काहे से कि ताड़नाका अर्थ यह नहीं कि इसके पापकरके भगवत् को क्रोध उपजताहोवे और इसको दण्डदेवे सो ऐसे नहीं इसकरके कि महाराज क्रोधकरने और दण्ड देनेसे निर्लेपहै पर जब इस मनुष्यके हृदयविषे पाप की मनसा दृढ़ होती है तब आपही भगवत् की ओरसे विमुख होताहै और वही विमुखता इस जीवके मन्द मार्गोंका बीजहै जैसे मैंने पीछेभी वर्णन कियाहै कि जब इस जीवकी श्रद्धा स्थूल पदार्थों विषे बधायमान होती है तब हृदयकी निर्मलता और भगवत्के दर्शनसे इसको पट न होजाताहै सो धिक्कार और भगवत् के क्षोभका अर्थ यही है कि उसकी प्रीतिसे विमुख होना और अन्य पदार्थोंकी प्रीति विषे आसक्त रहना सो यह मलिन स्वभाव इसी जीवके मनहीं से उत्पन्न होता है और सर्वदा इसके सग रहता है ऐसेही भला स्वभाव भी इसके मनसे उपजता है ताते सन्तजनों ने कहाहै कि इस मनुष्यके भले कर्मपर ईश्वरको प्रसन्नता भी कुछ नहीं उपजती और इसके पापकरके उसको क्रोधभी नहीं उपजता पर जिज्ञासुको समझावने के निमित्त बुद्धिमानों ने इस प्रकार कहाहै कि भले कर्म विषे भगवत् प्रसन्न होता है और पापियों के ऊपर कोप करताहै सो जिसने इस भेदको भलीप्रकार समझाहै तिसको यह वार्ता प्रत्यक्ष दृष्टि आवती है कि जब हृदयकी मनसा पापकर्मविषे दृढ़हुई तब वही मनसा हृदयको मलिन करदेती है इसीपर महापुरुषने कहाहै कि जब दो मनुष्य क्रोधयुक्त एक दूसरे को मारा चाहतेहैं बहुरि एक पुरुष माराजाताहै और दूसरा जीवताहै तब दोनों नरकगामी होते हैं काहेसे कि जो पुरुष मृत होगया है सो तिसकी मनसा भी शत्रुके मारनेविषे दृढ़थी ताते जब उसका बल पहुँचता तबवह भी दूसरेको मारता सो इन सर्व वचनों और युक्तियों करके प्रत्यक्ष मनसाही की प्रबलताहै पर जब इसके हृदयविषे पापका संकल्प उपजे और भगवत् के भय करके वह कर्म न करे तब देवता उसकी भलाई लिखते हैं इस करके कि उस संकल्पका उठना

होवेगा सो यहभी बुद्धि की हीनता कहावनी है तैसेही सन्तजनोंने भी जिस विद्यार्थी की मनसा मलिन देखी है तिसको उन्हों ने पढ़ायाही नहीं तात्पर्य यह कि भली मनसाकरके पाप कर्म भली नहीं होना इसकरके कि भलाई तिस को प्राप्त है जो सन्त जनों की आज्ञानुसार कर्महोवे १ बहुरि दूसरा कर्म सात्त्विकी कहाहै सो इस विषेभी दो भेदहैं प्रथम तो सात्त्विकी कर्मका मूल मनसाकी शुद्धताकरके दृढ़ होताहै १ और दूसराभेद यहहै २ कि जिसकी शुद्धमनसा अधिकबढ़तीजावे तिसका एक कर्मही दशगुण भलाईको पावताहै जैसे कोई पुरुषभली मनसाकरकर धर्मशाला आदिकस्थानविषे जावे तब एक तो उसका वहां जानाही भलाई होता है १ बहुरि दूसरी भलाई यहहै कि जब एकनियम भजनका पूर्ण करलेताहै तब दूसरे नियमकी वाञ्छा करता है सो यह वार्ता निस्सन्देहहै कि भजनके नियमकी वाञ्छा करनाही भजनहै २ और तीसरी भलाई यहहै कि ऐसे स्थानविषे जाय सर्व इन्द्रियों को रोकबैठनाहै सो यहभी उत्तम अनुष्ठान है ३ और चौथी भलाई यहहै कि सर्व कार्यों के सङ्कल्पोंको सकुचावताहै और चित्तको एकत्र करके भगवद्भजन विषे सावधान होताहै ४ और पाचवीं भलाई यहहै कि कुसंगी मनुष्यों के मिलापसे मुक्त रहता है ५ और छठी भलाई यहहै कि किसी मनुष्यको उपदेश करके पापकर्मसे बरज रखताहै और उसको भलाई का मार्ग दिखाताहै ६ बहुरि सातवीं भलाई यह है कि जब किसी प्रीतिमान्को देखताहै तब उसके साथ मिताई करताहै ७ आठवीं भलाई यहहै कि शुभस्थान विषे बैठने करके भगवत्का भय उपजताहै ताते किसी अपकर्मकी चितवनीभी नहीं करता ८ तात्पर्य यह कि जब जिज्ञासुजनकी मनसा किसी शुभ करतूत विषे विधिसंयुक्त दृढ़ होती है तो सबही करतूत अधिकसे अधिक बढ़ता जाता है बहुरि तीसरे कर्म राजसी जो कहेथे सो शरीरका व्यवहार है ताते बुद्धिमान् को चाहिये कि शरीरके व्यवहार विषे भी पशुओं की नाईं अचेतहोकर न विचरे और किसीसमय भलाईसे रहित न होवे इसकरके कि शरीरकी क्रिया विषे मग्न होकर भली मनसासे अचेतहोनाभी बड़ी हानिहै काहेसे कि परलोक विषे सर्व व्यवहारोंका लेखा होवेगा और ताड़ना करेंगे सो जिसकी मनसा व्यवहारविषे मलिन होवेगी तिसको दण्ड देवेंगे और जिसकी मनसा शुद्ध है सो मुक्तिका अधिकारी होवेगा बहुरि जिसकी मनसा शुद्ध और मलिनभी न होवेगी तिस

को यही पढा विग्रहे कि उसकी आयुर्बल व्यर्थही जाती नहींहै और मनुष्य जन्म विषे उसने परम पदको प्राप्त न किया और भगवंत की आज्ञा से विमुख हुआ इसीपर महाराजने भी कहाहै कि यह आयुर्बलरूपी प्रवाह सर्वदा चलाजाताहै सो यह समय मैंने तुमको इसनिमित्त दियाहै कि तुम इस नाशवन्त समयविषे शुद्ध मनसा करके अविनाशी पदको प्राप्तहोवो ऐसेही महापुरुष ने भी कहाहै कि जब यह मनुष्य नेत्रोंविषे अंजन डारताहै अथवा मृत्तिका के साथ हाथ धोवताहै अथवा हाथ पसारकर किसी के वस्त्रको देखताहै सो परलोक विषे ऐसे कर्मोंका हिसाब होवेगा और इसप्रकार पूछेंगे कि तैंने अमुककर्म किस मनसा करके कियाथा इसीकारण से सन्तजनों ने कहाहै कि प्रथम सब किसी को मनसाकी विद्यापढ़नी प्रमाणहै पर व्यवहार के कर्मों विषे जिसप्रकार मनसाकी शुद्धता कही है सो यह विद्याभी अपार है जैसे वस्त्रोंको सुगन्ध लगावनी भी कुछ पापनहीं पर जब आपको बड़ा जनावनेकी मनसा न होवे और स्त्रीआदिकों के चित्तको चपल करनेकी मनसा न होवे बहुरि अपने चित्त विषे यही मनसा राखे कि जब किसीको सुगन्ध पहुँचेगी तब उसका चित्त प्रसन्न होवेगा ऐसेही अपने शरीरके मैलको इस निमित्त धोवे कि मुझको देखकर ग्लानि किसीको न आवे इसप्रकार जिसका चित्त निर्मल होताहै सो सर्व कर्मों विषे निर्मल मनसाही को बढ़ावताहै ताते उसका आहार और व्यवहार और लोकोंका मिलाप और और सबही कार्य्य भलाई का कारण होते हैं कहेंगे कि जिसकी मनसाशुद्धहै तिसकी क्रिया कदाचित् भी भलाईसे रहित नहीं होती जैसे किसी सन्तने एकवार उलटा जामा पहिराथा बहुरि जब उसको सीधा करनेलगे तब चित्त विषे विचारतेभये कि यह वस्त्र तो मैंने शीतनिवारण के निमित्त पहिराहै सीधा क्योंकरूं बहुरि एक सन्त किसीके गृहविषे मजूरी करते थे तब भोजनके समय कुछ लोग उनके दर्शनको आये सो तिनाने उन सन्तने ऐसेनहिं कहा कि तुम भी प्रसाद पावो जब सम्पूर्ण प्रसाद आप पाइचुके तब कहने लगा कि मैंने इस निमित्त तुमको भोजनका सत्कार नहीं किया कि जब मैं दूसरों कर भोजन न पावता तब मजूरी न करसका और मालिकका ऋणी रहता तात्पर्य यह कि जिज्ञासुजनों ने खानपान आदिक व्यवहारों विषे भी ऐसे शुद्ध मनसाकीनी है सो उस करके उत्तम फलों को प्राप्तहुये हैं और मनसा रहित नहीं किये॥

अथ पूकट करना इसका कि शुद्ध मनसा अपने पुरुषार्थ करिके उपजाय नहीं सक्ता। ताते जान तू कि जब यह मनुष्य मनसाकी विशेषताको सुनता है तब चित्त विषे ऐसा अनुमान करलेता है कि मैंभी भगवद्भजन के निमित्त भोजन करताहू और जीवों के कल्याण निमित्त वचन वार्ता करताहू ताते मेरी मनसा शुद्ध है पर जब विचार करके देखिये तब इसकी मनसा करके केवल मनहीं का संकल्प होता है काहे से कि मनसा दृढ अभिलाषा और भगवत् की खैंच को कहते हैं सो जब इस जीवके हृदय विषे भलीप्रकार करके उत्पन्न होतीहै तब प्रबल होकर मनुष्यकी करतूत विषे प्रेरती है जैसे किसी पुरुषको राजाका प्यादा खैंचलेजावे तैसेही मनसा बलकरके शरीर को करतूत विषे सावधान करती है सो ऐसी दृढ़ता तबहीं उपजती है जब प्रथम किसी कार्य्य विषे इस की प्रीति प्रबल होती है और जबलग ऐसी प्रबल प्रीति और खैंच न होवे तबलग मनुष्यका कहना व्यर्थ होता है जैसे कोई पुरुष तृप्तहोकर भोजनको और कहै कि मैंने अल्प आहारकी मनसाकीनी है तब उसका कहना व्यर्थ होताहै ताते जिस जिस पुरुषका धर्म्म प्रमाण निर्बलहोवे वह सन्तजनों के वचनोंको विचारकर शुभ कर्मोंकी विशेषताको समझे और बहुरि भगवत्की प्रसन्नताके निमित्त सात्त्विकी करतूत विषे दृढ़होवे तिसका नाम शुद्ध मनसा है पर जिसका चित्त भोगों विषे बध्यमान होवे तब ऐसे पुरुषके मन विषे परलोक मार्गकी मनसाका उपजनाही कठिनहै और यद्यपि मुखसेभी कहै कि मैं शरीरका व्यवहार शुद्धमनसा सहित करताहू तौभी उसका वचन कहनेमात्र होताहै जैसे कोई क्षुधितपुरुष कहै कि मैं क्षुधानिवारणे की मनसा निमित्त भोजन करताहू तब ऐसी मनसाही निष्फल कहाती है काहेते कि आहार तो सब कोई क्षुधानिवारण निमित्तही खाता है ताते ऐसे वचन कहनेविषे क्या फल होताहै तात्पर्य्य यह कि शुद्ध मनसा इस जीवके संकल्पकरके नहीं उपजती और वह मनसा भगवत्की प्रेरणाहै सो तुझको करतूतविषे सावधान करतीहै पर उस करतूतका सम्बन्ध तेरे पुरुषार्थके साथभी निस्सन्देहहै इसकरके कि पुरुषार्थ बिना करतूत सिद्ध नहींहोता ताते प्रसिद्ध हुआ कि श्रद्धाका उपजना तेरे अधीन नहीं जिसप्रकार भगवत् चाहताहै सो तैसेही श्रद्धा इसजीवके हृदय विषे उपजाताहै पर श्रद्धाकी उत्पत्तिका मार्ग प्रीतिहै इसकरके कि जब किसी कार्यविषे तेरी प्रतीति दृढ़होती है तब निस्सन्देह

उस पदार्थकी प्राप्तिके निमित्त तुमको श्रद्धा उपजआती है और तुमको सर्वथा वही पदार्थ प्रियतम भासताहै सो जिन पुरुषोंने इस भेदको भली प्रकार समझा है तिन्होंने जिससमय विषे अपने चित्त विषे शुद्ध मनसा न देखी तब वह कर्मों कियाही नहीं काहेसे कि यद्यपि वह करतूत भ माहीं होवे तोभी शुद्ध मनसा विना फलदायक नहीं होती। इसी कारण से एक सन्त किसी समय विषे विपन वार्त्ता करतेथे और किसी समय मौनकर रहतेथे नहुरि जब उनसे कोई पूछ करता तब कहते कि जब मेरे चित्त विषे शुद्ध मनसा उपजेगी तब मैं तुमको उत्तर दे ऊंगा। और एक और सन्तनेभी कहाहै कि मैं अमुक रोगीको पूछने के निमित्त जाना चाहताहूं और एक मास व्यतीत होगयाहै पर अभी मैं अपने चित्त विषे मनसा की शुद्धता नहीं देखता ताते वहां नहीं जाता तात्पर्य यह कि जबलग अपने धर्मके मार्ग विषे इसकी प्रीति और प्रतीति दृढ़ न होवे तबलग शुद्धम नसा उपजतीही नहीं यद्यपि कुछ शुभकर्म करताहै ताते बुद्धिमान् पुरुषपालोक के दुःखोंको विचारकरके स्मरण करताहै और भगवत्के आगे प्रार्थना करने लग ताहै तब महाराजकी दयाकरके अचानकही शुद्ध मनसा उपजआती है बहुरि वही मनसा दृढ़ होजाती है तब वह करतूत भी सुगम होजाती है सो जो पुरुष मनसा के भेदको भलीप्रकार समझता है तिसको यह वार्त्ता प्रत्यक्ष समझ आती है सो जब शुद्ध मनसा विना जाग्रत् और भजनकरिये तिससे सोय रहना विशेषहै पर जब सोनेविषे यह मनसा होय कि प्रभात समय निद्रा और आलस्य रहितहोकर भजन करूंगा तब जाग्रत्से विशेष होगा ऐसेही जब भजनकी अधिकता विषे हृदय चंचल होजावे तब चाहिये कि एक दोघड़ी प्रमाण अधिकी वचन वार्त्ताविषे परचावे पर मनसा यहीराखे कि जब हृदयका श्रम दूरहोजावेगा तब स्वस्थचित्त होकर भजन विषे लीनहोऊंगा इसीपर एक सन्तने कहा है कि जिस क्रिया विषे चित्तको परवश्य करके रोक रखते हैं तब अवश्यही हृदय अचित होकर मूर्छित होजाता है ताते उस क्रियाको त्यागकर चित्तका श्रम दूरकरना और फिर उसी करतूतविषे चित्तको मोरु लाना ऐसे है जैसे कोई वैद्य किसी रोगीको बलवान् आहार पुष्प देवे कि जब इसके शरीर विषे बल होवेगा तब औषधको भलीप्रकार पचावेगा अथवा जैसे युद्ध विषे कोई शूरमा पुरुष मारने वाले के आगेसे भागजाते बहुरि जब शत्रु उसके पीछे आवे तब जबावदी उ-

सको मारलेवे जैसेंही धर्म के मार्ग विषे जिज्ञासु जन सदैव अपने मनके साथ युद्ध करते हैं और ऐसेही दाव खेलते रहते हैं सो मैथ्यापिस्थून विद्या पढनेहारे सहित ऐसे भेदको समझ नहीं सकते पर ज्ञानवान् निर्मल मित्र प्रकारसे यही मनिन्तेहैं महुरि जिनके नेत्र मनसाही को कर्तुति को प्रेरक जानो तब ऐसेभी जानो कि किसी पुरुषकी करतूति नर्कको भय करके होती है और कोई स्वर्गों की आशा के निमित्त शुभकर्म करते हैं सो जो पुरुष स्वर्ग के निमित्त शुभ करतूति करता है वह भी इन्द्रियोंका गुलाम है अर्थ यह कि इन्द्रियादिक भोगोंकोही चाहता है और जो पुरुष नरकों के भय करके जपतपकर्म करता है सो भी बुरेगुलामकी नाई है अर्थ यह कि ताड़ना किये बिना अपने स्वामी की सेवा नहीं करता यह दोनों पुरुष भगवन्त से विमुख हैं और भगवतको वही मनुष्य प्रियतम लगते हैं जिनकी क्रिया केवल भगवतही की प्रसन्नता के निमित्त होवे और नरक स्वर्गकी आशा कुछ न राखें सो तिसको निष्काम भक्त कहते हैं जैसे कोई प्रेमीपुरुष अपने प्रियतमके साथ प्रीति करता है तब उसको रूपे और सोनेकी कामना कुछ नहीं होती और जिसके सोने रूपेका लोभ है तिसको प्रेमी नहीं कहते क्योंकि जब भली प्रकार देखिये तब सोना रूपाही उसका प्रियतम है तैसेही भगवतके दर्शन और स्वरूपके साथ जिस की अधिक प्रीति नहीं तिसके चित्तमें ऐसी निष्काम मनसा कभी नहीं उपजती और जिसकी प्रीति भगवतही के स्वरूप में है तिसका चित्त सर्वदा महाराजके दर्शनमें लीन रहता है और विचारके नेत्रों के साथ सदैव महाराजको देखता है महुरि शरीरकरके करतूति इस निमित्त करता है कि मेरे प्रियतमने इसप्रकारकी आज्ञा करी है तातें मुझको अवश्य ऐसे करणी यही है इसकरके कि जैसे चित्तको भगवत् दर्शन में लगाना प्रमाण है तैसेही शरीर भी अपने प्रियतमकी टहल में लगाया चाहिये है ऐसे जानकर प्रेमी पुरुष यथार्थ महाराजके दर्शन विषे चित्तको ठहराता है और एकत्र होकर उसही को देखता है महुरि पापकर्मों का त्यागभी इस निमित्त करता है कि इन करके मुझको प्रियतम के दर्शन में विघ्न और विक्षेपता होवेगी सो जिसके चित्त में ऐसी समझ दृढ़ हुई है तिसको ज्ञानवान् यथार्थ वेत्ता कहते हैं इसीपर एक प्रीतिमान् को आकाशवाणी हुई थी कि और सब मनुष्य मुझसे आन पदार्थ मांगते हैं और एक बायजीद मुझसे मुझही को मांगता है और शिबली सन्तने भी कहा है कि एकबार मेरे मुखसे यह बचन निकसा

था कि स्वर्ग के सुखसे अप्राप्त रहना बड़ी हानि है तब भगवत् ने मुझको ताड़ना करके कहा कि तूने मेरे दर्शनसे अप्राप्त रहनेको बड़ी हानि क्यों न कहा और स्वर्गकी ओर हृदय क्यों दिया ॥ अब दूसरे विभाग विषे निष्कामताका स्वरूप और स्तुति पर्यंत होवेगी। निष्कामताकी स्तुति ॥ ताते जान तू कि इस प्रकार महाराजने कहा है कि तुझको मैंने निष्काम भजनही के निमित्त आज्ञा कीनी है और योंभी कहा है कि जिस पुरुषको मैं अपना प्रियतम किया चाहता हूं तिसके हृदय विषे निष्कामता स्थित करता हूं बहुरि महापुरुष ने भी एक प्रीतिमान् से ऐसे कहाथा कि जब तू निष्काम करतूतिको तब तेरा थोरा कर्मभी बहुत बड़ा होजावे और दम्भको जो मैंने निंद्य कहा है सो तिसका कारण भी यही है कि दम्भ करके निष्कामता नष्ट होजाती है और दम्भकी निन्दाही निष्कामता की स्तुति है इसी कारणसे एक सन्त अपने ततुही त्वानुतगारको ऐसे कहतेथे कि हे मन! तू निष्कामहो तब मुक्तिको पावेगा और एक और सन्तो ने कहा है कि धन्य वेह पुरुष है जिनकी सर्व आयुविषे एक सकृणामी निष्काम हुआ है जिस करके उनने चाह कुछ नहीं करी बहुरि अयूबसन्त ने कहा है कि मनसा के उपजनेसे भी मनसाको निष्काम रखना अतिकठिन है। इसीपर एक वार्त्ता है कि एक प्रीतिमान् ने तीर्थयात्रा के मार्ग विषे एक डोल मोललियाथा कि इसकरके अपनी क्रिया मार्ग में करूंगा बहुरि आगे बेचलूंगा तब अमुक नगरविषे कुछ लाभभी प्राप्त होवेगा तब रात्रिके समय स्वप्न विषे उनको दो देवता दृष्टि आये और इस प्रकार यात्रियों के नाम लिखने लगे कि अमुकपुरुष तमाशा देखने आयाहै और अमुकपुरुष दम्भके निमित्त आयाहै बहुरि तब प्रीतिमान्की ओर देखकर कहतेभये कि यह सौदागरीको आयाहै तब उस प्रीतिमान् ने कहा कि तुम भलीप्रकार देखो मेरे पास तो सौदागरीकी कुछ वस्तुही नहीं साथ भगवत् की दुहाई करके कहताहूं कि मेरी मनसा निष्कामहै तब देवतोंने कहा कि तैंने डोल लाभके निमित्त लियाहै बहुरि उसने कहा कि मेरी मनसा तो व्यवहारकी न थी पर अकस्मात् मैंने लेलियाथा यह वार्त्ता सुनकर एक देवता दूसरे से कहता भया कि ऐसे लिखो कि यह घर से तीर्थयात्रा की मनसा धरकर चला और मार्ग विषे इसने डोलभी लियाहै आगे जिसप्रकार महाराजकी आज्ञा होवेगी सो करेंगे इसी कारणसे सन्तजनोंने कहाहै कि एक निष्काम कर्म रर

केभीअविनाशी सुखको पायसक्राहै पर एक घड़ीपर्यंत निष्कामरहना अति दुर्लभहै औरयों भीकहाहै कि विद्यारूपी बीजहै और करतूति उसकी खेतीहै और निष्कामतारूपीजल है तातें मुक्तिरूपी फल उत्पन्न होताहै इसी पर एक और वार्त्ताहै कि एक नगर विषे किसी प्रीतिमान्‌ने सुनाथा कि वहां लोग अमुक वृक्षको परमेश्वरमानकर पूजतेहैं तब उसने यह मनसाकरी कि मैं उस वृक्षको काटडारूं तो भलाहै बहुरि जब शस्त्रलेकर चला तब मार्ग विषे उसको कलियुग आनमिला और कहनेलगा कि तुम महाराजके भजन विषे स्थित होवो वृक्षके काटनेंसे तुमको क्या लाभ होगा तब प्रीतिमान्‌ने कहा कि वृक्षको काटना हीमेरा भजनहै बहुरि कलियुग कहतामया कि मैं तो तुमको जानें न दूगा ऐसे कहकर आपसमें लड़नेलगे तब कलियुगको प्रीतिमान्‌ने गिरादिया बहुरि कलियुगने कहा कि एक वचन मेरा औरभी सुनो कि तुमको महाराजनें वृक्ष काटनेकी आज्ञा नहीं करी और महाराजा जब उसवृक्षको काटना चाहता तब किसी महापुरुषको आज्ञा करता तातें तुम क्यों इस संकल्प विषे आसक्त हुयेहो बहुरि प्रीतिमान्‌ने कहा कि मैंतो निस्सन्देह उस वृक्षको काटूंगा ऐसे कहकर फिर लड़नेलगे और फिरभी प्रीतिमान्‌ने उसको गिरादिया तब कलियुगने कहा कि एक और वचन मेरा सुनि लो आगे जो तुम्हारी इच्छा होवेगी सो कीजियो कि जो तुम वृक्ष काटनेका त्याग करो तौ तुमको प्रभात समय नित्यप्रति पांच रुपये प्राप्त हुआ करेंगे तातें तुम्हारी जीविका सुखमें होवेगी और भगवत्‌अर्थ भी दीजियो यह वचन सुनकर प्रीतिमान्‌नें विचार किया कि यह भी तो भली बात है बहुरि जब घरमें गये तब पांच रुपये उनको प्राप्त हुये पर दूसरे दिन कुछ न पाया तब क्रोधवान् होकर वृक्षको काटनेचले बहुरि मार्ग विषे कलियुगने उनसे कहा कि अब कहां चले मैं तो तुमको जानेन दूंगा ऐसे कहकर परस्पर लड़ाई करनेलगे तब कलियुगने प्रीतिमान्‌को गिरायदिया बहुरि प्रीतिमान्‌ने आश्चर्य होकर पूछा कि आगे तो मैं तेरे ऊपर प्रबलथा अब तैंनें मुझको कैसे गिरायदिया तब उसने कहा कि प्रथम तुम्हारी मनसा निष्कामथी तातें तुम प्रबलथे और अब मायाके निमित्त क्रोधवान् हुयेहो तातें मैंने तुमको जीतलिया और तुम्हारा बल क्षीण होगयाहै ॥ अथ निष्कामता स्वरूप निरूपण ॥ तातें जानतू कि जब इस पुरुषकी मनसा केवल शुद्ध होती है तब उसको निष्काम कहते

है और जिसकी गति मिश्रित होती है तिसको सकाम कहते हैं॥ मिश्रित सकाम इसको कहते हैं जैसे कोई पुरुष भगवत् के निमित्त व्रत रखे पर उसके चित्त विषे यह मनसा भी होवे कि व्रत के प्रभाव करके मेरा शरीर स्वस्थ रहेगा अथवा रसोई करनेका खेद न होवेगा अथवा जीविका की प्राप्ति होवे बहुरि ऐसे गुलाम को मुक्त करनेका जो पुण्य कर्म है सो जब इस मनसा करके गुलाम को छोड़े कि मैं इसके दुःखमय बन्धन से छूट जाऊंगा तब यह भी मिश्रित मनसा कहाती है बहुरि जैसे कोई पुरुष रात्रि को जाग करके भजन करता रहे परंतु यह भी मनसा रखे कि जाग्रत् काल मेरे मन को चोरों का भय न होवेगा बहुरि जैसे कोई तीर्थों को पुण्य के निमित्त जावे और उस को यह भी मनसा होवे कि परदेश जाने करके मेरा शरीर आरोग्य होवेगा अथवा नाना प्रकार के नगरों को देखूंगा अथवा कोई दिन गृहस्थी के जंजाल से छूटूंगा अथवा कोई इस निमित्त व्रत रखे कि मेरी जीविका सुख से होवेगी अथवा क्रिया करने से मेरे धन की रक्षा होवेगी अथवा जगत् विषे मेरा आदर होवेगा अथवा लोगों के मार्ग चलने पार्तों विषे प्रकाश होगा अथवा इस निमित्त विद्या होवे कि मेरे आगे लोग होवेंगे अथवा इस निमित्त स्नान करे कि रोग से शरीर शुद्ध होवेगा अथवा इस कामना करके दान देवे कि याचकों की निंदा से छूटेगा अथवा रोगी की पूछने जावे कि रोगी स्वस्थ हुआ मुझको पूछने आवेगा अथवा जगत् विषे मेरी बड़ाई प्रसिद्ध होवेगी सो यह सब भी कर्म सकाम के मिश्रित हैं और दशों के साथ की क्रियाओं ने इसके मार्ग विषे विस्तार करके कहा है कि अहंकार अथवा अनेक कामना निष्काम की कोई प्राप्ति करता है और निष्काम गति कहते हैं जिस विषे मन में आसक्ता कुछ नाहीं और केवल भगवत् ही के निमित्त होवे और किसी सांसारिक ने महात्मा से पूछा कि निष्काम क्या है सो उन्होंने कहा कि एक भगवत् ही को अपना स्वामी जानकर उसकी आज्ञा विषे स्थित होना ही निष्कामता है तात्पर्य यह कि जबलग यह मनुष्य मन के स्वभावों में दूर न होवे तबलग निष्काम होना कठिन है इस निमित्त कोई सन्त महात्माने कहा है कि निष्कामता के समान कोई कठिन अधिकार और दूसरा नहीं इस करके कि आज्ञा में बहुत करके हृदय विषे मिश्र कामना का उपजना पैदा है जैसे विष्ठा रुधिर के पुनसे मद्ध्य निकलता है अर्थ यह कि विष्ठा और रुधिर ... सो ... भगवत् ही का कामहै और

किसी मनुष्य के यत्नकरके नहींहोसक्ता इसीपर महाराजने भी कहा है कि मैंने जीवोंके प्रतिपाल करनेको विष्ठा और रुधिरमेंसे दूधको उत्पन्नकियाहै ताते जिज्ञासु जनको चाहिये कि माया के सर्वपदार्थों से अपने चित्तको विरक्त करे और सर्वप्रकार भगवतही की प्रीति को बढ़ावे तब स्वाभाविकही इसकी सर्व करतूति अपने प्रियतमकी प्रसन्नताके निमित्तहोवें सो जिस पुरुषकी ऐसी अवस्थाहुई है तिसका आहार और व्यवहार और मलत्यागनाभी भगवतही के निमित्त होता है अर्थ यह कि मनकी वासनानुसार उसका कोई कर्म्म नहीं होता और जिसके हृदयमें मायाकी प्रीति प्रबलहै सो भगवत्के भजन में निष्कामहो नहींसक्ता इस करके कि जिसपदार्थ विषे इस जीवकी प्रीति होती है और जैसा जैसा इसका स्वभाव होताहै तब शरीरकी करतूति भी उसही प्रीति और स्वभावको बढ़ावती है जैसे कि जिसको मान और बड़ाईकी प्रीतिहै तिसके सबही कर्म मानके निमित्त होते हैं पर उपदेश और वचन बार्त्ताकी क्रिया विषे निष्कामहोना अत्यंत कठिन है काहेसे कि ऐसे कर्म्मोंका सम्बन्ध लोगोंके साथ अधिक होताहै इसी कारणसे मानकी कामना मिश्रित होजातीहै पर कबहू तो मानकी कामना अधिक होती है और कभी धर्मकी कामना प्रबल होजाती है ताते मन आदिक संकल्पके दूरकरने विषे बहुरि विद्यावान् भी समर्थ नहीं होते और अल्पबुद्धी जीव मूर्खता करके आपको निष्कामही जानते हैं इसी कारणसे अभिमानी होकर अपने अवगुणोंको देखतेही नहीं इसीपर एक संतने कहाहै कि मैंने यथार्थ दृष्टिकरके देखा तब मैं तीसवर्ष के भजनको व्यर्थही जानताभया इस करके कि तीस वर्षपर्यन्त मैंने सबलोगों से आगे खड़ेहोकर भजन किया था बहुरि एक दिन विषे अकस्मात् मुझको कुछ विलंबहोगया ताते लोगोंके पीछे स्थितहोने करके मेरामन लज्जायमान होनेलगा तब तिस्सदेह मैंने जाना कि वह प्रसन्नता और रहस्य मुझको मुखिया होनेकर उपजाताथा तात्पर्य्य यह कि निष्कामता रूपी पदार्थका समझनाही महाकठिन है ताते स्थित होना तो अतिही दुर्लभहै और निष्कामता विना जेते सात्त्विकी कर्म यह मनुष्य करताहै तेतेही निस्सन्देह व्यर्थ होते हैं और भगवत उनको रंचमात्र भी प्रमाण नहीं करता इसीकारण से सन्तजनों ने कहा है कि यद्यपि बुद्धिमान् पुरुष अल्पमात्रही भजन स्मरणकरे तोभी मूर्ख मनुष्यों के केते वर्षों के भजनसे अधिक लाभदायक होताहै इसकरके

कि मूर्ख मनुष्य कानूनों के विघ्नोंको नहीं जानता ताते उसकी मनसा मान और स्भादिक स्वभावों विषे मिलजाती है और वह उस कर्मको निष्कामही जानताहै और ऐसे नहीं समझता कि भजन विषे और कामना करनी ऐसे है जैसे स्वर्ण विषे और धातुकी मिलौनी होवे ताते जो पुरुष सराफी नहीं जानता सो अवश्यही छलाजाता है और कोई उत्तम सराफही आपको खोटेसे बचाय रखताहै काहेसे कि मूर्ख तो सोनेको पीलेहीरंग करके पहिचानता है तैसेही भजन विषे जो सकामनारूपी खोट है सो यहभी चारप्रकार का होताहै एक प्रकटहै १ और एक अतिप्रकट है २ एक सूक्ष्महै ३ और एक सूक्ष्मसे भी अतिसूक्ष्म है ४ ताते मैं इसको युक्तिसंयुक्त प्रकटकर कहताहूं सो प्रथम तो जब यहपुरुष भजनकरने लगताहै और अधिक लोगोंको अपने निकट देखताहै तब इसके मन विषे यह संकल्प आन फुरताहै कि भजनके नेमको जब विधिसंयुक्त सम्पूर्ण कीजे तो भलाहै तब लोग मेरे ऊपर ग्लानि न लावें सो यह दम्भ अतिप्रकटहै १ बहुरि दूसरा प्रकार यहहै कि जब इसदम्भको पहिचानकर त्याग करताहै तब मन इस प्रकारकी रीतिकर संकल्प उठावताहै कि जब यह लोग तुझको भलीप्रकार भजन करता देखेंगे तब इनको भी भजन की प्रीति और दृढ़ता उपजेगी ताते उस भजन के पुण्यका लाभ तुझको भी होवेगा सो यह संकल्प ऐसा छल रूप है कि इस विषे अवश्यही छलाजाताहै और ऐसे नहीं जानता कि और लोगों के भजनकी पुण्य इसको तबही होती है जब इसकी एक मिना उनके विषेजाय प्रवेश करे अन्यथा नहीं होती काहेसे कि जब इसमनुष्यका चित्त एकाग्र न होवे और और लोग इसको निष्काम और एकाग्रचित्त जानकर भजनविषे प्रीतिको और दृढ़ होवें तब उनको तो निस्सन्देह भलाई प्राप्तहोती है पर सकामी पुरुष जो आपको निष्कामी दिखाताहै सो अपनी वासना और दम्भरूपी रस्सी साथ बांधाही रहताहै ताते यहभी प्रकट दम्भ कहीताहै २ बहुरि सूक्ष्मदम्भ तीसरा यहहै कि जिसने इसवार्त्ताको जानाहोवे कि एकान्त और लोगों विषे एकसाही भजन करना विशेषहै पर जब एकान्तमें भलीप्रकार भजन कर नसके और लोगों विषे विधि संयुक्त करै तब यहभी कपट होताहै अथवा ऐसे जानकर एकान्त विषे ही भजनके नियमको भलीप्रकार नम्रकरके पूर्ण करै कि जो लोगों विषे भी ऐसाही भजन करूंगा ताते दम्भी न होऊंगा सो एक यह सूक्ष्म दम्भहै काहेसे कि इस

उसको अपना दम्भही एकांत विषेभी लज्जामान करताहै कि जब एकांत और लोगों विषे विपरीतभाव करूंगा तब निस्सन्देह पाखण्डी होऊंगा पर इस दम्भ का चिह्न लखा नहीं जाता और आपको निष्कामी जानकर वह पुरुष एकान्त विषेभी दम्भही करता है ३ बहुरि चौथा दम्भ इससे भी सूक्ष्म है कि जिसने ऐसेभी जाना होवे कि अन्तर बाह्यलोगों के निमित्त एकाग्र चित्त होना लाभदायक नहीं होता ताते मन उसको इसप्रकार छलदेता है कि जिस भगवत्का तू भजन करता है सो परम ईश्वरों का ईश्वर है ऐसे महाराज की बड़ाई और तेजको स्मरणकर भयवान् होवो और उसके सम्मुख सकुचकर स्थित होवो यह संकल्प धारकर जो पुरुष मनकी वृत्ति को रोकता है तिसको इस निमित्त दम्भी कहते हैं कि जिसके चित्त में एकान्त विषे ऐसा संकल्प न उपजे और लोगों विषे इस संकल्प को बढ़ायकर एकग्रहोवे कि लोग मुझको स्थिर चित्त जानें ताते वहभी दम्भी कहाताहै पर यह दम्भ अतिसूक्ष्म है बहुरि लोगों को देखकर भगवत्की बड़ाई को स्मरण करनाभी व्यर्थ होताहै इसपर सन्तजनोंने कहाहै कि जब लग यह पुरुष भजनके समय पशुओं और मनुष्यों के देखने विषे भेद जानताहै तब लग केवल निष्काम नहीं होता और शुद्ध निष्काम वही पुरुषहै जिसको पशु और मनुष्यका देखना समानभासे तात्पर्य यह कि जिसको ऐसे सूक्ष्मोंकी पहिचान नहीं भासहुई सो जप तप विषेभी व्यर्थही कष्टको खेंचता है ४ ताते यों जान तू कि जब दम्भ और मानकी मनसा भजनकी मनसासे प्रबलहोवे तब वह भजनभी खेददायक होताहै और जब दोनों मनसा समानहोवें तब लाभ हानि कुछ नहीं होती अर्थ यह कि हृदयकी अवस्था ज्योंकी त्यों रहती है बहुरि जब भजनकी मनसा प्रबलहोवे तब कुछ लाभही होताहै यद्यपि सन्तजनोंके वचनों विषे इसप्रकार आयाहै कि सकामी पुरुषोंको भगवत् इसप्रकार कहेगा कि जिस के निमित्त तुमने जप तप कियाहै फलभी उसीसे मांगो पर मेरे चित्त विषे यह वचन दोनों मनसा की समानता पर भासता है इस करके कि जब शुभ और अशुभ मनसा समान होती है तब उसका पुण्य पाप कुछ नहीं होता और जिन वचनों विषे कामनामयी करतूतिको खेदका कारण कहाहै सो केवल दम्भही की मनसाप्रति कहाहै पर जिसकी मनसा प्रथमही धर्म के निमित्त होवे और पीछे कुछ दम्भकी मनसा मिलजावे तब उस की करतूति मूलही से व्यर्थ नहीं होती

यद्यपि निष्काम कर्म के समान फलको नहीं पावता और अत्यन्त निष्फलभी नहीं होता सो इस वचनको दो युक्तियोंकर समझ सकते हैं प्रथम तो युक्तिकी शुक्ति यह है कि भगवत्‌की ओरसे विमुख होनाही परम दुःख है और यही सजा भी यही है और मनसा की निष्कामताही इस जीवको उत्तम भागोंका बीज है तैसेही मायाके पदार्थोंकी प्रीति मन्दभागों का बीज है ताते दोनों मनसाकी समानता ऐसे है कि जैसाही शुद्ध मनसा इस जीवको भगवत् के निकट खैंचती है तैसाही स्थूल कामना इसको उस पदसे दूर डारती है ताते उसकी अवस्था ज्योंकी त्यों रहजाती है और लाभ हानि कुछ नहीं पावता जैसे कोई रोगीपुरुष शीतल और उष्णदायक औषध समानही खावे तब उसका रोग ज्योंका त्यों रहता है पर जब शीतल औषध अधिक खावे तब उसकी गरमी क्षीण होजाती है औ जब उष्णदायक औषध को खावे तब शरदी क्षीण होती है तैसेही पाप की अधिक मनसा हृदयको मलिन करलेती है और शुद्ध मनसा हृदयका निर्मल करती है रंचकमात्रभी दोनों मनसा व्यर्थ नहीं होतीं जैसे रंचक पथ्य और रंचक कुपथ्य भी शरीरविषे रोग और आरोग्यता उपजावताहै पर यथार्थ नीति की तराजू विषे इनकागुण और अवगुण तोल सकते हैं इसीपर भगवानने भी कहाहै कि जो पुरुष राईके समान भलाई करताहै वहभी निस्सन्देह उसके सुख को भोगता है और जो पुरुष एक राई सम बुराई करता है सो तिसके दुःखरूपी फलको भी अवश्यही पाताहै इसी कारणसे जिज्ञासुजनको चाहिये कि यत्न करके सात्त्विकीही श्रद्धाको बढ़ावे और स्थूलकामना का जिस तिसप्रकार क्षीण करे बहुरि दूसरी युक्ति यह है कि जैसे तीर्थयात्रा विषे यात्री पुरुष मार्ग विषे सौदागरी भी करलेवे तौभी उसकी यात्रा निष्फल नहीं होती यद्यपि निष्कामता करके अधिक फलको पावताहै पर यहभी सुतही से निष्फल नहीं होती तैसेही कछुक संकल्पकी मिलौनी करके भजनका सम्पूर्ण फल नष्ट नहीं होता औ इसवार्त्ताको भी सब कोई पुराण गावताहै कि हैसे कि मनसे उसकी मनसा शुद्ध है और जब ऐसे न होवे तब केवल निष्काम करमुनि इसजीवसे होनाही कठिन है इसकारण कि जबलग सर्वथा देहाभिमान से मुक्त न होवे तबलग सात्त्विकी कर्मोंविषे भी मे [illegible] भजन भजनभी कुछ [illegible] ताते इसका उपाय यही है कि सात्त्विकी श्रद्धाके बीज [illegible] ने न [illegible] माने सुने और सज्जनों के

निर्बल करना है तब पुरुषार्थ करके निष्कामना को भी प्राप्त होनाहै॥ अथ तीसरी विभाग सचाई का वर्णन ॥ ताते जानतू कि सचाई और निष्कामिता एकही रूप है पर जो पुरुष निष्कामी अवस्था को पावताहै तिसको सांचा कहते हैं इसीपर महाराजने भी कहाहै कि परलोकविषे सबजीवोंसे सांचहीकी दृढ़ता पूछेंगे और किसीने महापुरुष से पूछाथा कि मनुष्य की उत्तम अवस्था क्याहै तब उन्होंने कहा कि वचन और करतूति की सचाईही को उत्तम अवस्था कहाहै इसीकारण से जिज्ञासुको सचाई की अर्थ पहिचाननी अवश्यही प्रमाणहै ताते सचाईरूपी पदार्थ के पांच लक्षण प्रसिद्धहैं जिसको यहां पांचे लक्षण प्राप्तहुये हैं सो यथार्थी पुरुष कहाताहै प्रथम तो जिह्वा की सचाई है जो झूठ कभी न कहे अर्थात् अतीत बातों विषे भी झूठ वर्णन कदाचित् न करे और आगेको भी किसीके साथ झूठा वचन न करे और वर्त्तमान कालविषे भी सांचही बोले इसकरके कि जैसा वचन जिह्वा से बोलिये हृदय भी तैसाही स्वभाव पकड़ता है ताते चाहिये कि अवश्यही कार्य बिना झूठ कदाचित् न कहे पर जब किसीका विरुद्ध दूरकरना होवे तोभी युक्तिकरके ऐसा वचन बोले जिसविषे झूठा अक्षर न आवे अथवा जब सांची मनसाकरके ऐसे कार्य विषे झूठही बोले तोभी प्रमाण है बहुरि जब भगवत्के आगे बिनय करे तोभी सांचाही बचन उचारे अर्थ यह कि जब मुखमे इसप्रकार कहे कि हे भगवत् मेरामुख तेरीही दयाकी ओरहै अथवा जब ऐसे कहे कि मैं तेरा दासहूं और तुम्हहीको पूजताहूं बहुरि जब हृदयकरके लोगोंकी ओर मुख राखे और जबलग अपनी वासनाका आज्ञाकारी और गुलाम है तबलग की बिनयभी झूठी होतीहै काहेते कि जबलग सर्व मायाके बंधनोंसे मुक्त न होवे तबलग भगवत्का पुजारी और दासनहीं होना और मुक्तहोना यहहै कि अपने आपसे भी मुक्त होवे अर्थ यह कि भगवत् बिना और किसी पदार्थको न चाहे बहुरि महाराजहीकी आज्ञा बिषे सदैव प्रसन्न रहै तब जानिये कि भगवत्का सांचा सेवक है॥ और दूसरा लक्षण सांचका मन विषे होताहै कि जिसपदार्थको अङ्गीकार करे तिसमें सांचही की मनसा राखे और और किसी कामनाके साथ मिश्रित न करे सो निष्कामता का अर्थ भी यही है पर निष्कामना और सांच को इस निमित्त एक कहते हैं कि जिसपुरुषके करतूति विषे दम्भकी मनसा होती है सो झूठाहै काहेसे कि जैसा वह पुरुष आपको बाहरसे देखावता है तैसा हृदय

विषे नहीं होता ॥ ३ ॥ बहुरि तीसरा लक्षण साचेका यह है कि जब प्रथम साहिरी मनसा धारकर किसी कर्मको अंगीकार करे जैसे धर्म के निमित्त राजाहोने अथवा ऊर्ध्वलोकके निमित्त धनपाये तब उस अवस्था विषे भी वही मनसा दृढ़रहै मान और भोगोंकी अभिलाषा करके विचलित न जावे सो ऐसा पुरुष निस्सन्देह साचा कहावताहै जैसे एक महात्माने कहाहै कि अमुक मतने सन्मुख उपदेश करनेसे मुझको अपना मरना सुगम भासताहै अर्थ यह कि आपसे विशेष पुरुष के आगे अपनी विशेषता प्रमाण नहीं ताते इस मतंत विषे महात्मा फ़क़ीरों की मैनसाकी दृढ़ता मुखकरहोती है कि मन वचन कर्मकरके उनको यथार्थकी मर्याद प्रियतमथी और अपनी वासनासे रहितथे सो वासनासे रहित पुरुष और वासना सन्धार्यमान विषे महा भेदहोताहै ॥ ४ ॥ बहुरि चौथा लक्षण साचेका यहहै कि जो गुण उसके अन्तर न होवे तिसको बाहरभी दिखावे नहीं इसकरके कि जिस पुरुषकी क्रिया और होती है और हृदयका स्वभाव और होवे विपर्यय होताहै वहभी निस्सन्देह झूठाहै ताते अन्तर बाहर एक होनाही परम साच है और साचे पुरुषों का हृदय बाह्यकी क्रियासे भी अतिनिर्मल होताहै और क्रिया भी उनकी भलीही होतीहै इसीप्रकार एक पुरुष ने भी प्रार्थना करीथी कि हे महाराज मेरे अन्तर को मेरी क्रियासेभी विशेष करो और बाहरकी क्रियाभी भलीही देहु ॥ ५ ॥ बहुरि पांचवां लक्षण साचका यहहै कि जेते धर्ममार्ग के गुणहैं जैसे वैराग्य संतोष और भय और प्रेम इत्यादिक जो सब भले स्वभाव हैं सो तिन करके पूर्ण होवे सो यद्यपि जिज्ञासु विषे यह गुण अधिक अथवा थोरा निस्सन्देह होतेहैं पर जब लग सम्पूर्ण न होवें तबलग पूरा साचा नहीं कहाजाता जैसे अधिक भयका लक्षण यहहै कि भयवान् पुरुषका मुख पीत होजाताहै और कम्पायमान होताहै बहुरि भूख प्यास और नींद भी उसकी दूर होजाती है तैसेही भगवत् भयकरके जिस पुरुषकी ऐसी अवस्था हुईहै तिसको साचा भयवान् कहतेहैं ॥ जब कोई मनुष्य ऐसे कहे कि मैं पापों से डरताहूं और पापोंका त्याग न करे तब उसका डरना भी मिथ्या होताहै ऐसेही सर्व शुभगुणों की परिपक्वता विषे बड़ा भेदहै पर जिन विषे यह पांचों लक्षण पूर्ण होवें तिसकी अवस्था अपने वारि फीरमानैं होती है ॥ [illegible]

[illegible]

छठवां सर्ग॥

अपने मनके हिसाब और ध्यानके वर्णनमें

तातें जान तूं कि महाराजने भी ऐसे कहा है कि मैं परलोकविषे यथार्थ न्याय करूंगा और किसी पर अन्याय न करूंगा और भगवत्ने सर्व जीवों के प्रति इसीकारण से यह आज्ञा कीनी है कि तुम इसी संसारविषे अपने मनका हिसाब आपही करो बहुरि महापुरुषों ने भी कहा है कि बुद्धिमान् पुरुष वही है जिसकी समय इसप्रकार बीते एक समयविषे अपनी जीविकाको उत्पन्न करे और एक समय अपने मनका हिसाब करे बहुरि एक समय अपने शरीरकी क्रिया विषे बितावे और एक समय भगवत्के आगे अधीन चित्त होकर विनती करे ऐसेही आरम्भ करके जिसकी आयुष व्यतीत होवे सोई बुद्धिमान् विशेष है इसी पर एक सन्तने कहा है कि परलोकविषे तुम्हारे कर्म्मों का हिसाब करेंगे तातें तुम आगेही अपना हिसाब करो इसी कारणसे विचारवान् पुरुषों ने इसप्रकार निश्चय किया है कि हम इस संसार विषे शुभगुणों की सौदागरी के निमित्त आये हैं और यह मन हमारा साझी है बहुरि जब सौदागरी करचुके तब लाभको प्राप्त हूजिये ऐसे समझ करके उन्हों ने मनको अपना साझी बनाया है सो जैसे कोई पुरुष सौदागरी करने लगता है तब प्रथम तो साझी के साथ युक्ति ठहरावता है बहुरि उसकी ओर ध्यान रखता है उससे पीछे हिसाब करता है जब कुछ साझीने बुरा किया होता है तब उसको दंड देता है बहुरि उसके ऊपर यत्न रखता है और सिखावने के निमित्त झिड़क देता है तैसेही विचारवान् पुरुष भी अपने मन के साथ यही सौदा मर्यादा रखते हैं सो युक्ति इसप्रकार ठहरावते हैं कि जैसे व्यवहार का साझी सर्व कार्यों की सहायता करनेहारा होता है तैसे ही सदाका भी वही होता है इसीकारणसे उसके साथ युक्ति कीजाती है कि तू इसप्रकार रहना और अमुक कार्य करना तब तेरा मेरा निर्वाह होवेगा वैसेही मनके साथभी युक्ति ठहरावनी अवश्यही प्रमाण है कहिये कि व्यवहार का लाभ नाशवान् है और शुभगुणों के धर्मका लाभ सत्यस्वरूप है और बुद्धिमान् पुरुषों के निकट नाशवन्त पदार्थ कुछ वस्तुही नहीं होता इसीपर विचारवानों ने कहा है कि नाशवन्त सुख से अविनाशी दुःख भी भला है इसकरके कि उसका वियोग नहीं होता बहुरि यह श्वासरूपी रत्न ऐसा अमोल है कि इनकरके अविनाशी पदको प्राप्त होता है तातें

इनको विचारकरके व्यतीतकरना प्रमाणहै और बुद्धिमान् पुरुष वही है जो प्र-भातसमय उठकर कुछकाल चित्तको निश्चलकरके और इसीविचारमें सावधान होकर मनको समझावे कि हे मन! मेरे पास इस आयुके कुछही दिन उत्तम धन हैं और जो श्वास बीत जाताहै सो किसीप्रकार नहीं आता बहुरि इन श्वासोंको भगवत्ने गिनरक्खाहै उसमें न बढ़ने हैं न घटने हैं और जब यह आयुष्य अचेत-ताविषे बीतगई तब भजनस्मरण कुछ न होवेगा इसीकारणसे चेतनेकासमय और भजनका अवसर यही है सो इस जगत्‌विषे जीवना थोड़ाहै और परलोकविषे कुछ कालभी न होइसकेगा ताते समझो तेरे पुरुषार्थ को दिनहै जो तुमको महाराजने आयुरूपी पदार्थ दियाहै बहुरि जो अबही तेरे मृत्युका समय आजावे और तब तू एकदिन मांगे कि मैं इस एकदिनमें कुछ भजन स्मरण करलेउँ तो एकपलभी तेरे हाथ न आवेगा और पश्चात्ताप विषे पड़ा रहेगा ताते इसीसमय को उत्तम पूंजी जानकर वृथा न खोवो तो भलाहै और ऐसेही समझो कि आजही मेरीमृत्यु पहुँची थी परन्तु एकदिन गुरुको मांगे मिलाहै इस हेतुसे कि आयुरूपी पूंजीको वृथा खोवना और परमपद से अप्राप्त रहने के समान और हानि नहींहै इसीपर सन्तजनों ने कहाहै कि जब परलोकविषे इस मनुष्य के कर्मों का विचार करेंगे तब एक एक घड़ीकी क्रियाको भिन्न भिन्न देखेंगे सो जिस घड़ी विषे इसने भला कर्म किया होवेगा तब वह घड़ी प्रकाशमान निकसेगी और उस पुरुष को भी अधिक प्रसन्नता उपजेगी और उस घड़ी की शीतलता नरकों की अग्नि के बुझाने को समर्थ होवेगी बहुरि जिसघड़ी इसने पाप किया होवेगा वह घड़ी महाअँधेरी और मलिन निकसेगी और महादुर्गन्ध प्रकट होवेगी सो उस दुर्गन्धमें सबही नाक मूँदेंगे ताते उस पुरुषको ऐसीलज्जा और भय उत्पन्न होवेगा कि उसका वर्णन नहीं कियाजाता बहुरि जिस घड़ी विषे पाप और पुण्य कुछ न किया जावेगा आलस प्रमाद अथवा व्यर्थ सोवने में व्यतीत होवेगी सो घड़ी न अँधेरी निकसेगी न प्रकाशित पर उसको देखकर यह मनुष्य अधिक पश्चात्ताप करेगा जैसे किसी को बड़े खजाने को प्राप्त करना था और उसने आलस करके उस खजाने विषे जाना छोड़ दिया ऐसेही आयुके व्यर्थ खोवनेकरके प्राणी महादुःखी होवेगा इसीप्रकार सब आयुरूपी घड़ीकों भिन्न २ करके देखेंगे ताते चाहिये कि जिज्ञासुजन ऐसेही सदैवकाल अपने मन

को समझावै कि आजही उस लेखेका दिनहै इसीकारणसे एक घड़ीभी अचेत होकर व्यर्थ खोवनी अयोग्य है और जब तू अबहीं सचेत न होवेगा तब परलोक विषे बड़े खेद और पश्चात्तापको देखेगा इसीपर सन्तजनोंने कहाहै कि यद्यपि भगवत्ने अपनी दयाकरके तेरे पाप क्षमाकिये तौभी तू महापुरुषोंकी अवस्था से अप्राप्त रहेगा सो यह भी तुझको अधिक पश्चात्ताप होवेगा तातें चाहिये कि तू सब इन्द्रियोंको भगवत्के भजन विषे लगावे तो भलाहै और अपकर्मों से रोक राखे तब तेरी रक्षाहोवेगी इसीपर सन्तजनोंने कहाहै कि जबै इन्द्रियों के साथ अपकर्म करताहै तब इसीद्वारे यह मनुष्य नरकों विषे जाय प्रवेश करता है इसकरके कि एक एक इन्द्रिय विषे नरकका द्वारा छिपाहुआहै तातें एक एक इन्द्रियके पापोंका विचारकरके लज्जावान् होवै और अपनेमनको भी त्रासदेवै कि जब तैं ने सन्तजनों की आज्ञासे विपर्य्यय कर्मकिया तब मैं तुझको अधिक दण्ड देऊंगा सो यद्यपि यह मन अत्यन्त कठोरहै पर तौभी उपदेशका अधिकारी भी यही है तातें जब भलीप्रकार इसको समझाइये तब प्रयत्नकरके सीधेमार्ग विषे लगताहै नित्यप्रति यह युक्ति जिज्ञासुजनको करतूति से आगेही दृढ़ करनी प्रमाणहै इसीपर महाराजने भी कहाहै कि मैं तुम्हारे मनके सङ्कल्पोंका अन्तर्यामी हूं तातें सर्वदा मेरे भयविषे स्थितहोवो और महापुरुषने कहा है कि उत्तम पुरुष वही है जो सदैव अपने करतूतिका विचार करताहै और उसी क्रियाको अंगीकार करे जो परलोक विषे इसको दुःखदायक न होवे और योंभी कहाहै कि जिसकर्म का फल अवश्य तेरे आगे आवताहै तब उसको प्रथमही विचार देख तातें भले कर्मको अंगीकारकर और बुराईको त्यागदे इसीप्रकार नित्यप्रति अपने मनके साथ प्रभातसमय ऐसीयुक्तियां अवश्यही ठहरानी योग्य हैं पर जिसका मन आगेही शुद्धहुआहै तिसको किसीयुक्तिकी अपेक्षा नहीं होती॥ अब इसके आगे मनकी ओर दृढ़होकर ध्यानकिया चाहिये॥ सो ध्यानका अर्थ यहहै कि जैसे साझीको पूंजीदेकर युक्तिस्थापन करते हैं तब पीछे उसकी ओरसे अचेतहोना प्रमाण नहींहोना तैसेही मनकीओर भी पल पल विषे ध्यानरखना विशेषहै इसी करके कि जब जिज्ञासुजन मनकी ओरसे एकक्षण भी अचेत होताहै तब मन मर्य्यादको त्यागकर अपनेही स्वभाव विषे चढ़िजाताहै आलस और भोगों के प्रमादकरके उन्मत्त होरहताहै तातें मनकी ओर ध्यानरखना यही है कि भगवत्

को अपने करनूतोंका ज्ञाताजाने कि लोग मेरी वार्ताको जानते हैं और महाराज मेरे हृदयका अन्तर्यामी है सो जिसने इस भेदको भलीप्रकार समझा है और जिसके चित्त विषे यही दृढ़ निश्चय हुई है तब उसके अन्दर और बाहर की क्रिया दोनों निर्मल होती हैं इसकरके कि जिसपुरुषने महाराजको अन्तर्यामी जानाहै सो ऐसे महाराजके सम्मुख पापकर्म करे तब यह भी बड़ी ढीठता और हृदय की कठोरता है इसीपर भगवत्ने भी कहाहै कि तुम मुझको अन्तर्यामी नहीं जानते ताते महाढीठ हो बहुरि एक प्रीतिमान् ने महापुरुष से पूछाथा कि मैंने पाप बहुत किये हैं पर जो अब मैं पापोंका त्यागकरूं तब मेरात्याग प्रमाण होवेगा अथवा न होवेगा तब महापुरुष ने कहा कि अब भी तेरात्याग प्रमाण होताहै बहुरि उस प्रीतिमान्ने कहा कि जब मैं पापकर्म करताथा तब महाराज मुझको देखताथा महापुरुषने कहा कि देखताथा इस वचनको सुनकर उस प्रीतिमान्ने ऊर्ध्वश्वासभरी हायकरी बहुरि शरीरको त्यागदिया और महापुरुष स्वामी कहाहै कि भगवत्को साक्षात् सम्मुख जानकरके और जब ऐसे न जानसको तब इसप्रकार समझो कि भगवत् हमको देखताहै ताते जब तैंने भगवत्को सर्व अवस्था और सर्वसमय विषे अन्तर्यामी जाना तब तेरा कार्य सुफलभया पर इससे भी उत्तम अवस्था यहहै कि तूही मैं तू भगवत्का दर्शन प्राप्तहोवे और उसी स्वरूपके आनन्द विषे लीनहोवे इसीपर एक वार्ता है कि एक सन्त अपने सब जिज्ञासियों विषे एक प्रीतिमान् को अधिक प्रियतम रखताथा इसीकारणसे और जिज्ञासियों को ईर्षा उत्पन्नहुई कि हमसे क्या अवगुणहै और उसमें कौन गुण अधिकहै सो जब उस सन्तने इस वार्ताको जाना तब उनकी परीक्षाके निमित्त सबके हाथ विषे एक एक कुक्कुट देदिया और इसप्रकार आज्ञाकरी कि जहां तुम को कोई न देखे तहां इसको लीनकर लेआओ तब सब जिज्ञासु एकान्तस्थल में जाकर कुक्कुटों को लीनकर लेआये और जिस जिज्ञासु के साथ सन्त की अधिक प्रीति थी सो जिज्ञासु जीवता लेआया तब उससे सन्तजनोंने कहा कि तैंने कुक्कुटको क्या नहींमारा बहुरि वह जिज्ञासु कहताभया कि जिस स्थान विषे कोई देखनेवाला न होवे सो ऐसा स्थान मैंने कोई नहीं देखा अर्थ यह कि भगवत सर्वस्थानों विषे देखताहै ताते इसी परीक्षाकर सन्तने उस जिज्ञासु की विशेषताको समझा कि यह सर्वदा महाराज को अपने निकट जानता है इसी कारण से इसमें

अवस्था उत्तमहै और मुझको भी अधिक प्रियतम लगता है बहुरि एक और प्रीतिमान्ने जुनेदसन्तसे पूछाथा कि मैं अपने नेत्रोंको स्त्रीकी दृष्टिसे रोक नहीं सक्ता ताते इसका उपाय क्याहै तब उन्होंने कहा कि जब तू किसीकी ओर देख नेलगे तब उससे भी अधिक अपनीओर भगवत्को देखताजान ताते भयकरके स्वाभाविकही तेरे नेत्र रोकेजावेंगे अन्यथा न रोकसकेंगे इसीपर महाराजने भी कहाहै कि जो पुरुष अकस्मात् पाप कर्मकी चितवनी करते हैं बहुरि मेरी बड़ाई को स्मरणकरके उस कर्म को त्यागदेते हैं सो निस्सन्देह परमसुखको पावतेहैं इसीपर एक औरवार्त्ताहै कि एकसन्तने मार्ग में एक चरवाहाको बकरीचरावते देखा तब उससे कहनेभये कि तू एक बकरी बेंचताहै तब अजापालने कहा कि मैं तो इनका चरावनेहाराहूं और इनकास्वामी औरहै बहुरि वह सन्त उसको कहने लगे कि इनकास्वामी अब तो यहां नहीं देखताहै ताते उससे ऐसे कहदेना कि एक बकरी को भेड़िये ने मारडाला तब अजापालने कहा कि जो बकरियों का धनी नहीं देखता तो श्रीरामतो सबकुछ देखते और जानते हैं यह वचन सुन कर वह सन्त रुदन करनेलगे और बकरियों के धनीको बुलाकर उसी दासको मोल लिया बहुरि उस दासको मुक्त करदिया फिर उससे ऐसे कहतेभये कि जैसे इस वचन ने तुझको यहां मुक्तकराया है तैसेही परलोक विषे भी तुझको यह वचन नरकों से बचावेगा तात्पर्य यह कि मैंने जिस ध्यानकी स्तुतिकरी है सो ध्यान भी दोप्रकार का है पर उत्तम ध्यान यथार्थी पुरुषों का यही है कि उनका हृदय भगवत् की बड़ाई विषे लीनहोता है और उसकी समर्थता पहिंचानकर सर्वदा सकुचे रहते हैं ताते उनकामन और किसीपदार्थ की ओर देखही नहींसक्ता सो जिसको ऐसा ध्यान प्राप्तहुआहै तिसकी इन्द्रियां भी स्वाभाविकही सकुचजाती हैं और यत्न बिनाही भोगोंकी अभिलाषा उसको नहीं रहती तब पापकर्मों विषे क्योंकर विचरे इसीपर महापुरुष ने कहाहै कि जो पुरुष प्रातसमय उठकर महाराजकी ओर दृढ़चित्त और सावधानहोवे तिसके सबकार्य्य आप महाराज सिद्ध करदेते हैं सो ऐसे सन्तजन इसी ध्यान विषे ऐसे लीनरहते हैं कि किसीकी वार्त्ताही नहीं सुनते और किसी को देखतेही नहीं यद्यपि नेत्र उनके खुलेरहते हैं तो भी चित्त उनका सर्वदा स्थिरहोताहै इसीपर एकसन्तसे किसीने पूछाथा कि तुम तो अब बाजारके मार्गसे चले आवतेहो पर किसीको तुमने बाजारविषे देखाभी

को अपने करतूतोंका ज्ञाताजाने कि लोग मेरी बाह्यक्रियाको देखते हैं और महाराज मेरे हृदयका अन्तर्यामी है सो जिसने इस भेदको भलीप्रकार समझा है और जिसके चित्त विषे यही दृढ़करके उत्पन्नहुई है तब उसके अन्दर और बाहर की क्रिया दोनों निर्मल होती हैं इसकरके कि जिसपुरुषने महाराजको अन्तर्यामी जानाहै सो ऐसे महाराजके सम्मुख पापकर्म करे तब यह भी बड़ी ढीठता और हृदय की कठोरता है इसीपर भगवत्ने भी कहाहै कि तुम मुझको अन्तर्यामी नहीं जानते ताते महाढीठ हो बहुरि एक प्रीतिमान् ने महापुरुष से पूछाथा कि मैंने पाप बहुत किये हैं पर जो अब मैं पापोंका त्यागकरूं तब मेरात्याग प्रमाण होवेगा अथवा न होवेगा तब महापुरुष ने कहा कि अब भी तेरात्याग प्रमाण होताहै बहुरि उस प्रीतिमान्ने कहा कि जब मैं पापकर्म करताथा तब महाराज मुझको देखताथा महापुरुषने कहा कि देखताथा इस वचनको सुनकर उस प्रीतिमान्ने ऊंचेस्वरसे हायकरी बहुरि शरीरको त्यागदिया और महापुरुषने याभी कहाहै कि भगवत्को साक्षात् सम्मुख जानकरपूजो और जब ऐसे न जानसको तब इसप्रकार समझो कि भगवत् हमको देखताहै ताते जब तैंने भगवत्को सर्व अवस्था और सर्वसमय विषे अन्तर्यामी जाना तब तेरा कार्य्य सुफलभया पर इससे भी उत्तम अवस्था यहहै कि तूही सदैव भगवत्का दर्शन प्रकटदेखे और उसी स्वरूपके आनन्द विषे लीनहोवे इसीपर एक वार्त्ता है कि एक सन्त अपने सर्व जिज्ञासुओं विषे एक प्रीतिमान्को अधिक प्रियतम रखताथा इसीकारण से और जिज्ञासुओं को ईर्षा उत्पन्नहुई कि हमसे क्या अवगुणहै और उसमें कौन गुण अधिकहै सो जब उस सन्तने इस वार्त्ताको जाना तब उनकी परीक्षाके निमित्त सबके हाथ विषे एक एक फल देदिया और इसप्रकार आज्ञाकरी कि जहां तुमको कोई न देखे तहां इसको छीलकर लेआवो तब सब जिज्ञासु एकान्त वन में जाकर फलको छीललेआये और जिस जिज्ञासुके साथ सन्तकी अधिक प्रीतिथी सो बिनाछीला लेआया तब उससे सन्तजनों ने कहा कि तैंने फलको क्यों नहींछीला बहुरि वह जिज्ञासु कहताभया कि जिस स्थान विषे कोई देखनेहारा न होवे सो ऐसा स्थान मैंने कोई नहीं देखा अर्थ यह कि भगवत् सर्वस्थानों विषे देखताहै ताते इसी परीक्षाकरके सन्तने उस जिज्ञासुकी विशेषताको लखाया कि यह सर्वदा महाराज को अपने निकट जानता है इसी कारण से इसभी

अवस्था उत्तमहै और मुझको भी अधिक प्रियतम लगता है। बहुरि एक और प्रीतिमान्‌ने जुनेदसन्तसे पूछाथा कि मैं अपने नेत्रोंको स्त्रीकी दृष्टिसे रोक नहीं सक्ता ताते इसका उपाय क्याहै तब उन्होंने कहा कि जबतू किसीकी ओर देखनेलगे तब उससे भी अधिक अपनीओर भगवत्‌को देखताजान ताते भयकरके स्वाभाविकही तेरे नेत्र रोकेजावेंगे अन्यथा न रोकसकेंगे इसीपर महाराजने भी कहाहै कि जो पुरुष अकस्मात् पाप कर्मकी चितवनी करते हैं बहुरि मेरी बड़ाई को स्मरणकरके उस कर्म को त्यागदेते हैं सो निस्सन्देह परमसुखको पावते हैं इसीपर एक औरवार्त्ताहै कि एकसन्तने मार्ग में एक चरवाहाको बकरीचरावते देखा तब उससे कहनेभये कि तू एक बकरी बेंचताहै तब अजापालने कहा कि मैं तो इनका चरावनेहाराहूं और इनकास्वामी औरहै बहुरि वह सन्त उसको कहने लगे कि इनकास्वामी अब तो यहां नहीं देखताहै ताते उससे ऐसे कहदेना कि एक बकरी को भेड़िये ने मारडाला तब अजापालने कहा कि जो बकरियों का धनी नहीं देखता तो श्रीरामतो सबकुछ देखते और जानते हैं यह वचन सुन कर वह सन्त रुदन करनेलगे और बकरियों के धनीको बुलाकर उसी दासको मोल लिया बहुरि उस दासको मुक्त करदिया फिर उससे ऐसे कहतेभये कि जैसे इस वचन ने तुझको यहां मुक्तकराया है तैसेही परलोक विषे भी तुझको यह वचन नरकों से बचावेगा तात्पर्य्य यह कि मैंने जिस ध्यानकी स्तुतिकरी है सो ध्यान भी दोप्रकार का है पर उत्तम ध्यान यथार्थी पुरुषों का यही है कि उनका हृदय भगवत् की बड़ाई विषे लीनहोता है और उसकी समर्थता पहिचानकर सर्वदा सकुचे रहते हैं ताते उनकामन और किसीपदार्थ की ओर देखही नहींसक्ता सो जिसको ऐसा ध्यान प्राप्तहुआहै तिसकी इन्द्रियां भी स्वाभाविकही सकुचजाती हैं और यत्न बिनाही भोगोंकी अभिलाषा उसको नहीं रहती तब पापकर्मों विषे क्योंकर विचरे इसीपर महापुरुष ने कहाहै कि जो पुरुष प्रातसमय उठकर महाराजकी ओर दृढ़चित्त और सावधानहोते तिसके सर्वकार्य्य आप महाराज सिद्ध करदेते हैं सो केते सन्तजन इसी ध्यान विषे ऐसे लीनरहते हैं कि किसीकी वार्त्ताही नहीं सुनते और किसीको देखतेही नहीं यद्यपि नेत्र उनके खुलेरहते हैं तो भी चित्त उनका सर्वदा स्थिरहोताहै इसीपर एकसन्तसे किसीने पूछाथा कि तुम तो अब बाजारके मार्गसे चले आवतेहो पर किसीको तुमने बाजारविषे देखाभी

है तब उन्होंने कहा कि मैंने तो किसीको नहीं देखा और एकमन्त अचानक किसी स्त्रीपर हाथरख बैठेथे तब लोगोंने पूछा कि तुमने यह कर्म क्यों किया तब वह कहतेभये कि मैंने इसको भीत जानाथा ताते मेरा हाथ इसके ऊपर निश्शङ्क पड़ा इसीपर एक हरिभक्तने कहाहै कि मैंने एकवार अमुकमन्तको नगरमें बाहर बैठा देखाथा तब मैंने उसके निकट जाके कुछ वार्त्ता पूछनेकी मनसाकरी तो आगेही उसने कहा कि और वार्त्ता के कहने सुनने से श्रीराम भजनही विशेषहै बहुरि मैंने पूछा कि प्रथम मनुष्यों विषे उत्तम कौनहै तब उन्होंने कहा कि जिसको श्रीरामजी आप विशेषकरें सोई उत्तम पुरुषहै बहुरि मैंने कहा कि तुम यहा अकेलेही रहतेहो तब उन्होंने कहा कि श्रीराम सर्वदा मेरेसंगी हैं बहुरि मैंनेकहा कि सुखका मार्ग कौनहै तब आकाशकी ओर दृष्टि करके उठखड़ेहुये और कहने लगे कि हे म-हाराज ! बहुत लोग अपनी ओर परचाइकर तुमसे निक्षेप डारते हैं इतना कहकर आगे को चलेगये और शिवलीसन्तने भी अमुक सन्तको देखाथा कि उनके शरीर का एकरोमभी हलता न था और श्रीरामरूप अनूपके ध्यान विषे मग्नथे तब शिवलीजी ने पूछा कि तुमने ऐसा ध्यान किससे सीखाहै तब वह कहतेभये कि मैंने बिल्लीको चूहाके बिलपर इससेभी अधिक स्थिर देखाथा ताते मैंने यह ध्यान उससे सीखाहै और एक और सन्तने कहाहै कि मैंने अमुक नगरविषे एक युवा और एकवृद्ध दो पुरुष महाएकाग्रचित्त सुनेथे ताते मैं उनकेदर्शनको गया और उन को देखकर तीनबार प्रणामकरी पर वह कुछ न बोले बहुरि मैंने भगवत् की दुहाई देकर कहा कि मेरेसाथ राम राम तो करो तब युवा पुरुषने ऊंचा शीश करके कहा कि इससंसार विषे जीवना अल्पहै और अल्पसे भी अल्पशेष रहाहै ताते इसी थोड़े समय विषे अधिक लाभको प्राप्त करनेवो पर ऐसे जाना जाता है कि तुमको अपने कार्यकी खबर कुछ नहीं इसी कारणसे हमारे साथ राम राम करके परचा चाहता है इतना कहकर बहुरि उसने अपने शीशको नीचा कर लियो तिस समय विषे मैं भी भूखा प्यासा था पर मुझको भूख प्यास भुलायगई और मेरी सब सुरति उन्हीं विषे जाइरही ताते मैं रात्रिपर्यन्त उनके पास खड़ा रहा बहुरि ऐसे कहा कि मुझको कुछ उपदेश करो तब युवासन्त कहतेभये कि हम दुखारे लोगहैं इस कारणसे हमारी रसना उपदेशकी अधिकारी नहीं इतना कहकर बहुरि मौन करगहे ऐसेही तीनदिनपर्यन्त मैंने देखा कि उन्हों ने निद्रा

और आहार न किया तब मैंने भगवत की दुहाई देकर कहा कि मुझको कुछ उपदेश सुनावो। बहुरि उसने कहा कि जिसके देखने करके तुझको भगवत चित्तमें आवे तिसही की संगतिकर इसकारके कि जिसकी करतूतिही उपदेशको और जिसकी ताड़ना बिनाहीं तुझको भय उत्पन्न होवे तिसही की संगति करनी विशेषहै सो यथार्थी पुरुषों की अवस्था यही है कि सर्वदा उनके चित्त की वृत्ति श्रीरघुनन्दनके स्वरूप विषे लीन रहती है १ बहुरि दूसरी अवस्था जिज्ञासु जनोंके ध्यानकी यहहै कि भगवत को अन्तर्यामी जानकर मलिन संकल्पोंसे सकुचे रहते हैं पर तिनके चित्तकी वृत्ति महाराजके रूप विषे लीन नहीं रहती इसी कारणसे इन्द्रियादिक व्यवहारके संकल्पसे सम्पूर्ण मुक्त नहीं होते सो इस को दृष्टान्त यह है कि जैसे कोई पुरुष अपने घर विषे नग्न होकर कोई कार्य्य करता होवे और अचानकही कोई बालक आजावे तब वह पुरुष सचेत होकर वस्त्रको ओढ़ताहै पर अत्यन्त विस्मयवान् नहीं होता बहुरि उत्तम पुरुषों के ध्यान का दृष्टान्त यहहै कि जैसे अकस्मात् किसी के घरमें राजा आवे और आगे वह पुरुष नग्नही बैठा होवे तब राजा को देखकर उसकी सुधि बुधिही भूल जाती है और उसके तेज करके मूर्च्छित होरहता है तैसेही ज्ञानवान् पुरुष महाराज के ऐश्वर्य्य को देखकर विस्मय को प्राप्त हुये हैं और उन विषे मनकी चपलता कुछ नहीं रही पर जिज्ञासुजनके सबही संकल्प नष्ट नहीं हुये ताते उसकी वृत्ति कभी स्थिर होती है और कभी विक्षेप पावती है इसी कारणसे चाहिये कि जिज्ञासु सर्वदा अपने मनकी ओर ध्यान राखे और सर्व करतूतों से दो प्रकार की दृष्टिमें देखता रहे सो एक दृष्टि यह है कि करतूति विषे प्रारंभही मनके संकल्प को विचार करके पहिचाने कि यह मनसा मेरे चित्त विषे किस निमित्त फुरी है ताते जब वह मनसा सात्त्विकी और निष्कामी होवे तब उसको सम्पूर्ण करे और जब मान अथवा भोगोंकी कामनाका संकल्प उपजा होवे तब धैर्य्य करंरहे और महाराज को निकट जानकर बुरे कर्म्म से लज्जावान् होवे बहुरि अपने मनको धिक्कार करे कि यह संकल्प तैंने किस निमित्त किया और इस करके तुझको क्या लाभ होवेगा बहुरि सतजनोंने जो परलोक विषे पापकर्मों की ताड़ना कही है तिसको स्मरण विषे लेआवे सो सर्व कर्मोंके आदिमेंही ऐसीही दृष्टि रखनी सर्वदा प्रमाणहै कि संकल्पके फुरनेकी ओर ध्यान करके प्रथमही उसको विचार

लेने इसीपर महापुरुषने कहाहै कि यह मनुष्य जैसे कर्म करता है सो परलोक विषे देखता सर्व करतूतों को भिन्न भिन्न करके पूछते हैं और तीनप्रकारके वचन करके इस जीवको त्रास दिखावते हैं कि अमुक कर्म तैंने क्यों किया १ और किसप्रकार किया २ और कौनकी मनसा साथ किया ३ सो प्रथम वचनका अर्थ यहहै कि कर्म तो भलाही तुझको करणीय था और तैंने अपने मनकी वासना करके प्राप्त क्यों किया १ बहुरि जब उसने वह कर्म वासनाके निमित्त न किया होवे तब इसप्रकार पूछते हैं कि यद्यपि तैंने कर्म तो मालिककी क्रिया होवे पर तैंने इस करतूतिको यत्न और विचार करके विधिसंयुक्त सम्पूर्ण नहीं किया है अथवा मूर्खतासहित विनायुक्ति कियाहै इसकरके कि सर्व कर्मोंकी युक्ति भिन्न२ होतीहै ताते तैंने कर्म का निर्वाह क्योंकर किया २ बहुरि जब उस पुरुषने वह करतूति विधिसंयुक्त कियाहोवे तब इसप्रकार पूछते हैं कि शुभ कर्म तो केवल निष्कामही करना था सो अब वह करतूति तैंने दम्भके निमित्त किया है अथवा केवल निष्काम मनसा के साथ किया है इससे कि जब मनसा तेरी निष्काम थी तब इस काल में उसके उत्तम फलको पावेगा और जो किसी और कामनाके हेतु कियाहै तो उस कर्मके फलमें अप्राप्त रहेगा और तुझको तो ऐसी आज्ञा हुईथी कि महाराज निष्काम कर्महीको प्रमाण करते हैं ३ सो जिसने इसभेदको भलीप्रकार समुझाहै वह एकक्षणभी मनकी ओरसे अचेत नहीं होता और पुरुषार्थ करके अशुभ सङ्कल्प के बीजहीको निर्मूल करताहै बहुरि जोपुरुष ऐसे न करे तब शी. घ्रही अशुभ सङ्कल्प विषे स्थूल पदार्थों की अभिलाषा उत्पन्न होती है और पीछे उसी विषयकी मनसा दृढ़होजाती है बहुरि उसी मनसाका प्रवेश सर्व इन्द्रियों पर आन फैलताहै इसीपरसे महापुरुषने भी कहाहै कि जब तुम्हारे हृदयविषे किसी पापकर्मका सङ्कल्प फुरे तब प्रथमही भगवत् के भय के साथ उसको दूरकरना चाहिये पर योंभी जान तू कि केते सङ्कल्प मनकी वासनाके अनुसार फुरते हैं और केते सङ्कल्प शुद्धवृत्ति विषे उपजते हैं सो उनके पहिंचानने की विद्या भी महा कठिन और दुर्लभहै ताते जिस मनुष्य विषे ऐसी बूझ और पुरुषार्थ की दृढ़ता न होवे तिसको वैरागी और विचारवान् पुरुषोंकी सङ्गति विषे रहना भलाहै कि उनके प्रकाशकरके इसका हृदयभी निर्मल होताहै और जो विद्यावान् मायाकी तृष्णा विषे आसक्त होवे तिसकी संगति कदाचित् न करे काहेसे कि उनका

शनहीं इसके धर्मका नष्टकरनाहै इसीपर दाऊदजीको आकाशवाणी हुईथी कि हे दाऊद! जो विद्यामान् मायाकी प्रीतिविषे आसक्तहोवे तिसके साथ वचनवार्त्ता भी न कर इसकरके कि ऐसा पुरुष तेरे हृदयते मेरी प्रीतिको नष्टकर डारेगा क्याहैसे कि ऐसे मनुष्य जीवोंके धर्मका नाश करनेको बटपारहैं और महापुरुषने भी कहाहै कि जो पुरुष शुद्ध अशुद्ध वार्त्ताका मथनहीं नीक्षणदृष्टि करके देखता है और लोगोंकी प्रसन्नता के समय विषे जिसकी बुद्धि प्रमादको नहीं पाती तिसको भगवत् अपना अधिक प्रियतम रखताहै इसकरके कि जिसने वर्त्तमान अरु सरको शराफकी नाईं उज्ज्वलबुद्धि के नेत्रों करके पहिंचाना और फिर पुरुषार्थ की दृढता करके जिसने मलिन स्वभावकी प्रबलताको गिराइदिया सो ऐसामनुष्य परम भाग्यवान् कहाताहै पर बुद्धि और पुरुषार्थका ऐसा सम्बन्धहै कि जिस विषे पुरुषार्थ की दृढता नहीं होती तिसकी बुद्धिभी प्रवृत्ति के अवसर विषे भली प्रकार यथार्थको नहीं पहिचानती इसपर महापुरुषने भी कहाहै कि जिस मनुष्यने पापकर्मको अंगीकारकिया तब जानियें कि उसकी बुद्धिही नष्ट हुई है और एक और महात्मा ने भी कहाहै कि प्रसिद्ध यथार्थ को अंगीकार करना प्रमाणहै और प्रसिद्ध झूठको त्यागदेना, विशेषहै बहुरि जो वार्त्ता आपकरके समभी न जावे सो किसी बुद्धिमान्से पूछकर उसका ग्रहण न त्याग किया जावे तो भलाहै और जिज्ञासुको दूसरी दृष्टि करतूति के समयविषे इसप्रकार रखनी प्रमाणहै कि सबही कर्म तीन प्रकार के होते हैं राजसी १ तामसी २ सात्त्विकी ३ पर सात्त्विकी कर्मों विषे ऐसा ध्यान राखिये कि उनको निष्कामता और हृदयकी एकाग्रताके साथ सम्पूर्ण करिये १ बहुरि तामसी कर्मों विषे ध्यान यहहै कि भगवतके त्रासकरके पापकर्मों को त्यागदेवे और जो आगे कियाहोवे तिसका पुरश्चरण २ और राजसी कर्मों विषे ध्यान करना ऐसे है कि शरीरके सर्व व्यवहारका निर्वाह संयम और युक्तिके साथ कीजिये और सर्व पदार्थोंका दाता श्रीरामहीको जानिये और अपने चित्तविषे यही विचारकरके समझे कि सर्व अवसर विषे अन्तर्यामी महाराजके सम्मुख वर्तता है ऐसे जानकर बैठने और चलने और बोलने और सोवनेके समयभी निर्भय होकर न विचरे और चाहिये कि भोजन करने के समयभी विचारसे रहित न होवे सो उससमय श्रीजानकीनाथ के उपकार का विचारना इसप्रकार योग्यहै कि महाराजने अपनी दयाकरके एक आहार विषेभी अमित

कीगिगरी रची हैं प्रथम जो अनोजका आकार और रङ्ग और सुगन्ध और स्वाद कैसा अनूपबनायाहै बहुरि इसमनुष्यके शरीर विषे भिन्न भिन्न अङ्ग किसप्रकार रचे हैं जिन करके आहारको अङ्गीकार करताहै जैसे हाथ मुख दांत कंठ हृदय उदर नाभि इत्यादिक जो अङ्ग आहारको धारते हैं और पचावने हैं और मलको उतारते हैं सो यह सबही उस महाराजकी आश्चर्य्य कारीगरी है ताते ऐसे आश्चर्यों को विचारनोही उत्तम भजन है पर यह अवस्था बुद्धिमानों की होती है और एक ऐसेभी उत्तम पुरुष होते हैं जो कारीगरीको देखकर कारीगरकी ओर ध्यान रखते हैं बहुरि उसके स्वरूपकी सुन्दरता और समर्थताविषे चित्तको लीन करते हैं सो यह अवस्था साने ज्ञानवानोंकी प्रकट है बहुरि एक जिज्ञासु नाना प्रकार के भोजनोंको ग्लानिकी दृष्टिके साथ देखते हैं और इसप्रकार चाहते हैं कि जो हम किसी भांति ऐसे बन्धनों से मुक्तहोवें तो भलाहै इसकरके कि इसी शरीर के बंधनों विषे हमारा चित्त बन्धायमान होरहाहै सो यह अवस्था वैराग्यवानोंकी होती है बहुरि एक और मनुष्य आहारादिकोंको अभिलाषाके नेत्रों के साथ देखने हैं और यही चाहने हैं कि अमुक भोजन अंगीकार करिये और अमुक विधि करके अमुक भोजन खाइये तब अधिक स्वादिकहोनाहै बहुरि जब रसोई किसी विधिसे हीन होजाती है तब रसोई करनेहारेपर क्रोध करते हैं सो यह अचेत पुरुषों की अवस्थाहै पर शरीरके व्यवहारों विषे जीवोंकी ऐसी भिन्न भिन्न अवस्था होती हैं ताते चाहिये कि कोई समय विषे ऐसे ध्यानसे अचेत न हूजिये अब इससे आगे अपने कर्मका हिसाब किया चाहिये कि जिस समय करतूति करचुके तब जिज्ञासुजन एकान्त ठौरविषे बैठकर अपनेकर्मोंका लेखाकरें और दिनके सर्व करतूतों को विचारकरनेलगे और हानि और पूजीको भलीप्रकार पहिचाने सो जैसे सात्त्विकी कर्मसन्तजनोंने इसमनुष्यको कथणीय कहे हैं यह तो इसी जीव की पूजी है और निष्कामपदका पावना परमलाभहै और पापकर्मों विषे विचरनाही बड़ीहानिहै इसीकारणसे जैसे व्यवहारके साझीकेसाथ लेखा करते हैं कि मत वह पुरुष कुछ धन चुरायलेवे तो बुरा है तैसेही जिज्ञासुजन भी अपने मन का सदैवही लेखा करना रहे इसकरके कि यहमनभी महाचतुर चोरहै और सब करके अपनेराजसी तामसी मनोरथको सात्त्विकीरूप दिखावताहै ताते तू इसको भलाई जानताहै और पीछे उसका फल बुराई निकसती है इसीकारणसे शरीर

के खानपान आदिक कर्म्मोंका लेखा करना अवश्यही प्रमाण है सो लेखा इस प्रकार होताहै कि हे मन। तैंने अमुककर्म्म किसनिमित्त कियाथा और क्योंकर कियाथा बहुरि जब ऐसे हिसाब विषे देखिये कि मेरे मनने अमुककर्म अन्यथा कियाथा तब उसको दण्डदेवे इसीपर एक हरिभक्तने अपनी सर्वआयुष्का लेखा कियाथा कि मेरी आयुष् साठिवर्षकी व्यतीतहुई सो यद्यपि मैंने एक एकदिन विषे एक एकही पापकिया होवेगा तौभी इक्कीस सहस्र २१००० पाप इकट्ठेहुये होवेंगे और मैंने तो एकही दिनविषे सहस्रों पाप कियेहैं ताते मेरी क्योंकर मुक्ति होवेगी ऐसे कहकर गिरपड़े और शरीर को छोडदिया पर यह मनुष्य इस निमित्त अचेत रहताहै कि अपने कर्म्मोंका लेखा कभी नहींकर देखता और जब हिसाब करके एक एक पापका एक एक पत्थरही गृहविषे डारतारहै तब थोडेही दिनविषे वहघर पत्थरोंकरके भरजावे बहुरि जो चित्रगुप्त भी पापोंके लिखनेकी मजूरी मांगें तब तुरन्त इसका धन सबही लेजावें पर यह मनुष्य ऐसा दुर्बुद्धीहै कि जो आलस और अचेततासहित केतिकबार श्रीराम नाम लेताहै तो माला की मणियों के साथ गनती करता रहताहै कि आज मैंने एतेनामलिये हैं और सारादिन व्यर्थवचनोंमें वादविवाद बोलताहै सो इनकी गनती कभी नहींकरता पर जब अपने बोलनेका लेखाकरके देखे तब सहस्रों वृथा वचन गनती में आवें और ऐसे कर्म्मकरके जो अपने मुक्तहोनेका भरोसा रखता है सो यह उससे भी अधिक मूर्खताहै इसीकारण से उमरमन्न ने कहा है कि परलोक विषे तो देवता तुम्हारे कर्मोंका हिसाब करेंगे ताते तुम आगेही अपनी करतूतोंको विचारकरके देखो और भलीप्रकार इनका लेखाकरो और यही सन्त आप भी अपने चरणोंमें चाबुक मारकर रात्रि के समय कहते थे कि हे मन। आजतैंनें अमुक बुरा कर्म्म क्योंकिया इसीपर एक वार्त्ता है कि एकसन्तने शरीरकी मृत्युके अवसरविषे ऐसे कहाथा कि अमुक सन्तसे अधिक मेरा कोई प्रियतम नहीं ऐसे कहकर बहुरि कहतेगये कि मैंने यह वचन भूलकरके कहा है काहेसे कि मुझको अपना मनही अधिक प्रियतम है तात्पर्य्य यह कि उन्होंने ऐसेसमय विषे अपने एक वचन का भी हिसाब करलिया बहुरि उसी वचनका पुरश्चरण किया और अपराध क्षमा कराया और एक सन्तने कहाहै कि उमरसन्तको मैंने एकबार एकान्त ठौरविषे स्थित देखा सो वह आपको इसप्रकार कहतेथे कि हे मन। तुझे सर्वसन्त मुखिया

और श्रेष्ठ कहते हैं ताते मैं महाराजश्री तुम्हारे ईश्वर कहताहूं कि तुमही अन्तर्यामी महाराजका भयङ्कर अथवा दण्ड और त्रासका आशावन्तहो इसी पर एक महात्मानें कहाहै कि जब यह मन सात्त्विकी भावमें स्थितहोताहै तब आपको ताड़नाकरके समझानेताहै कि तैंने अमुककर्म क्यों किया और अमुक आहार क्योंखाया ताते प्रसिद्ध हुआ कि करततिके पीछे जिज्ञासुजनको अपने कर्मका लेखा करना भी अवश्य प्रमाण है ॥ अथ मनको दण्ड देनेका वर्णन ॥ ताते जान तु कि यद्यपि तैंने अपनें आगे मनका हिसाब करलिया परन्तु जब अनका अवगुण देखकर इसको दण्ड न देवे तब उलटा ढीठ होजावेगा और उपदेशादिके वशीकार न करसकेगा इसीकारणसे चाहिये कि यह मन जैसाही पापकरै तैसाही इसको दण्ड दीजिये जब कुछ अशुद्ध आहार अंगीकार कियाहोवे तब भूख और संयमकी ताड़ना दीजिये और जब कभी कुदृष्टि किया होवे तब नेत्रों को मूंदकर ध्यान विषे स्थित हूजिये ऐसेही सर्व इन्द्रियोंसे पापों का पुरश्चरण करके मनको दण्ड दीजिये इसकरके कि आगे भी जिज्ञासुजनोंने इसी प्रकार कियाहै जैसें एक श्रीतिमान्‌ने किसी स्त्रीकीओर हाथ पसारा था ताते उसने अपने हाथको अग्नि विषे डारकर जलादिया बहुरि एक भजनानन्दी सर्वदा एकान्त कोठरी विषे बैठे रहतेथे सो संयोग पाइकर उसीमार्गमें कोईस्त्री आनिकसी तब उस भजनीने अपना पांव कोठरी में बाहरराखा और उसको देखनेकी मनसाकरी बहुरि सचेतहोकरि महाराजका त्रास करतेभये और उस पापका पश्चात्ताप करके आपको वखशावनेलगे बहुरि जो चरण कोठरीके द्वारसें बाहरगया था तिसको भीतर न लिया और कहनेलगे कि इस मेरे पांवने पापकर्मकी ओर गमन कियाहै ताते इसको कोठरी विषे लेआवना प्रमाण नहीं ऐसेही उनका चरण द्वारे से बाहर शीतकालकी बरफकरके गिरपड़ा इसीपर एक श्रीनिवान्‌ने कहाहै कि एकरात्रि विषे मुझको कोभिक स्वप्न होयाया बहुरि जब जागा तब मैंने स्नानकी मनसाकरी पर शीतकालकी अधिकताको देखकर मेरेमनने आलस किया कि दिनहुये नदीजल विषे स्नान करियेगा तिससमय मैंने गुदड़ीसहित स्नान किया और अपनेही ऊपर उस गुदड़ीको सुखाया और मैंने यहीविचार किया कि जो मन ऐसा भगवत् धर्मसे विमुखहोवे तिसको ऐसीही सजादेनी योग्यहै ऐसेही एक और श्रीनिवान्‌ने भी किसी स्त्रीकी ओर कुदृष्टि करी थी

बहुरि सचेत होकर अश्रुपात करते लगे और भगवत्‌की दुहाई दे कर यही दृढ़ता राखी कि अब इसमें आगे शीतल जल न पिऊंगा और इसी ताड़ना विषे मनको दुःखित करूंगा ताते वह दशवर्षपर्यंत जीवते रहे परन्तु शीतल जल कभी पान न किया बहुरि एक और जिज्ञासु ने सुन्दर मन्दिरको देखकर ऐसे पूछाथा कि यह घर किसने बनाया है फिर आपको समझावने लगे कि इसघरके साथ तो तेरा प्रयोजनही कुछ नहीं ताते तू काहेको पूछता है इसी कारण से उन्हों ने मनकी ताड़ना के निमित्त एक वर्षपर्यन्त व्रत राखा और एक सन्त अपने खजूरके बाग विषे बैठे भजन करतेथे सोवृक्षोंकी सुन्दरता को देखकर विक्षिप्तचित्त होतामया और वचनों का पाठ उनको भूलगया बहुरि जब सचेत हुये तब वह बाग सबही दानकरदिया और एकबार एक सन्त किसी पुरुषके मिलने के निमित्त गये थे सो जब उसके घरमें जाइ पहुँचे तब उसके पुत्र ने कहा कि वह तो सोते हैं यह वचन सुनकर उन्होंने कहा कि दिनके तीसरे पहर में सोवने का समय कौन है इतना कहकर चलेदिये और उस पुरुषका पुत्र इनके पीछे लगचला तब मार्ग विषे उनको ऐसे कहते जाते देखा कि हे मन! तू मर्यादसे हीनहै इसकरके कि तू बिराने सोवने का समय काहे को विचारता है और इस वार्त्ता विषे तेरा प्रयोजन क्याहै ताते मैं तुझको दण्ड देनेके निमित्त एक वर्षपर्यंत तकिया शीशतले न राखूंगा ऐसे कहते और रुदन करते चले जातेथे बहुरि ऐसे कहतेथे कि हे मन! तू भगवत् से क्यों नहीं डरता ऐसेही एक और भजनवान् भी अकस्मात् अधिक सो रहाथा ताते रात्रि के भजन का नेम उससे खण्डित हुआ इसी कारणसे उसने अपने साथ यह वचन किया कि मैं एक वर्षपर्यन्त रात्रि विषे नींद न करूंगा बहुरि एक प्रीतिमान् भी नग्न होकर तसकाकड़ों पर पड़े लोटते थे और इस प्रकार कहते थे कि हे मन मेरे! तू दिन विषे मृतक वालनेहारा और रात्रि में मृतक समान सो रहताहै ताते मैं अनाथ तेरी वचन से कब छूटूंगा तब अचानक कोई महापुरुष वहां आ निकले और उससे कहते भये कि तैंने ऐसा कष्ट काहे को धाराहै तब उस प्रीतिमान्‌ने कहा कि मेरा मन अत्यन्त प्रबलहै और मुझको कभी नहीं छोड़ता यह वचन सुनकर महापुरुषने कहा कि निस्सन्देह तू परमसुख का अधिकारी है और अपने मित्रों से कहनेलगे कि तुमभी इससे कुछ असीशमागो तब महापुरुषके सब मित्रजन उससे असीश मांगतभये और वह प्रीति

मान् भगवत् के आगे उनके निमित्त प्रार्थना करनेलगे कि हे महाराज! तू इन सबको वैराग्यदे और यथार्थ के मार्ग से इनको दूर न कर जाते परमसुखको प्राप्त होवें बहुरि एक और जिज्ञासुकी दृष्टि भी ऊँचे मन्दिरपर जाइ पड़ीथी तहां स्त्री के रूपको देखा तब वह भयवान् होकर यह दृढ़ता करतेभये कि मैं जन्मपर्यंत आकाशकी ओर कभी न देखूंगा और एक और हरिभक्त भी नित्यप्रति रात्रि के समय दीपक जगावते थे और उसकी शिखापर अपनी अँगुरी रखकर ऐसे कहतेथे कि तैंने अमुक दिन विषे अमुक कर्म क्यों कियाथा और अमुक आहार क्यों खाया तात्पर्य यह कि जिनको अपने मन पर दोषदृष्टि उपजी है तिन्होंने इसप्रकार मनको ताड़ना विषे राखाहै और उन्होंने मनको ऐसा कुटिल जानाहै कि जब इसको कठिन सज़ा न दीजिये तब हमारे धर्मको नाश करेगा॥ अथ यत्न निरूपण ॥ ताते जान तू कि जिन पुरुषोंने भजनविषे मनको आलस करता देखा है तब उन्होंने मनके ऊपर भजनके नेमकी अधिकताही का यत्न राखाहै जैसे उमरके पुत्रमें जब भजनका नेम एकभी खण्डित होताथा तब उस रात्रि विषे दिनपर्यन्त सोवता न था और भजनही करता रहताथा बहुरि एकवार उमरजीका भी एक नेम खण्डितहुआ तब केते सहस्र रुपया दानकिया सो ऐसेही जिज्ञासुजनोंकी साखी बहुतहैं और तात्पर्य यह कि जब इसे मनुष्य का मन रुचि सहित श्रीराम नाम स्मरण विषे सावधान न होवे तब चाहिये कि किसी दृढ़ भजनवान् की संगति विषे रहे ताते उसको देखकर इसके हृदय विषे भी प्रीति उत्पन्नहोवे इसीपर एक हरिभक्तने कहाहै कि जब मेरा मन भजन विषे कुछ आलस करता है तब मैं अमुक भजनवान् की ओर देखताहूं सो उनकी अवस्था के देखने करके सात दिनपर्यन्त मेरी श्रद्धा नूतन होरहती है पर जो ऐसे पुरुषोंकी संगतिको पाय न सके तब चाहिये कि उनके वचन और अवस्था को श्रवण करे अथवा नित्यप्रति पाठकरता रहे तो भला है इसी कारणसे मैंभी कुछ साखी कथा भजनानन्द पुरुषों की वर्णन करताहूं जैसे दाऊदसन्त अनाज की रोटी नहीं सेंकतेथे और आटा भिगोकर पानकरलेतेथे सो इसप्रकार कहते थे कि जेता विलम्ब रसोई करनेमें लगताहै सो मैं तितनी देरमें केते वचनों का पाठकरलेताहूं ताते ऐसा समय व्यर्थ क्या खोऊं बहुरि एक पुरुष ने उनसे कहा कि जिस मन्दिरमें तुम बैठेहो तिसकी लकड़ी टूट गई है तब उन्होंने कहा कि

मैं बीसवर्ष मोयहांही रहताहूं पर मैंने इसकी ओर कभी नहींदेखा इसकरके कि प्रयोजन बिनी देखना भी निंद्य है बहुरि एक और श्रीरामानुरागी भी किसी स्थानविषे बैठेथे और उन्होंने तीन पहरपर्यन्त किसी ओर दृष्टि न करी तब लोगोंने पूछा कि तुम नेत्र खोलकर नहीं देखते तब वह कहते भये कि श्री रामजीने नेत्रोंको इसनिमित्त उत्पन्नकियाहै कि आश्चर्य्य कारीगरी को देखकर कारीगरका विचारकरैं और उस की समर्थता पहिचानकर विस्मित होवें बहुरि, जो पुरुष विस्मय और विचार के साथ दृष्टि न करे तिसका देखनाही पाप होता है और एकसन्तने कहाहै कि मैं अपना जीवना तीन पदार्थोंकरके प्रियतमरखता हूं सो एकतो शीतकालकी दीर्घ रात्रियोंमें महाराजके आगे दण्डवत्करना १ और दूसरा ग्रीष्मऋतुके दिनों विषे व्रतकरके भूख औ प्यास सहनी। २ बहुरि तीसरा पदार्थ यहहै कि जिनपुरुषों के वचन रसीले यथार्थ वस्तुको लखावनेहारे हैं सो तिनकी संगति करनी ३ बहुरि एक और यत्नवान् जिज्ञासु को लोगों ने कहाथा कि तुम मनकेऊपर ऐसा कठिन कष्ट क्यों रखतेहो तब वह कहने लगे कि अपने मनके साथ मेरीअधिक प्रीति है तातें इसको ऐसे यत्नों कर के नरकों की आंचसे बचाया चाहता हू बहुरि लोगों ने कहा कि तुम अपने यत्नकरके मन को नरकों से बचाय सकोगे तब वह कहनेलगे कि मैं यथाशक्ति यत्न सर्वदा करता रहताहू इस करके कि परलोक विषे मुझको यह पश्चात्ताप न होवे कि मैं ने होते बल भलाकर्म क्यों न करलिया इसीपर जुनैद सन्तने कहाहै कि मैंने सिरीसह-शा यत्न करनेहारा कोई नहीं देखा उनकी नब्बेवर्षकी आयुष् हुईथी पर शरीर के मृतकहुये विना उन्होंने धरतीपर लम्बा आसन न किया तातें मैं उनकी अवस्था को देखकर महाविस्मितहू बहुरि हरीरीसन्त एक वर्षपर्यंत बोले न थे और चरण पसारकर सोयेभी नहीं औ तकिया लगाकर बैठेभीनहीं तब एकसन्तने उनको कहा कि तुमने ऐसे यत्न का निर्वाह क्योंकर किया तब वह कहतेभये कि श्रीरा-मजीने मेरेहृदयकी श्रद्धा देखके शरीरकोभी पुरुषार्थदिया है बहुरि किसीने एक रामभक्तको रुधिर के आंसू रोवते देखाथा तातें उनसे पूछा कि तुम ऐसारुदन क्यों करते हो तब उन्होंने कहा कि मैं आगे केती आयुष् अपने पापोंपर रुदन करता रहाहू पर अब इस निमित्त रुधिर के आंसू रोवना हू कि जो आंसू सकाम निकसे होवेंगे सो वह मेरा रोवनाही निष्फल हुआ होवेगा और दाऊदजीसे भी

लोगोंने कहाथा कि जो तुम दाढ़ी और केश अपनेमें कभी करो तब क्या पापहोवे तब उन्होंने कहा कि जो मुझको धर्मका कोई कुछ न होवे तो इसी कियामें परवार ह्यापर में ऐसा अधिकार तो कदाचित् न करूंगा बहुरि आवेशकरनी संतने ऐसा नियमकियाथा कि एकरात्रि में तो दिनपर्यंत श्रीजानकीजीवनको दण्डवत् करते रहतेथे और एकरात्रि में आदिहोकर स्मरण करतेथे और एकरात्रिमें श्रीरा मनाम रटतेरहतेथे ऐसेही सर्व आयुषको व्यतीत करतेभये बहुरि एक सन्त का शरीर भजनकी अधिकता करके क्षीण होगयाथा तातें माता ने उनसे कहा कि तू कुछदया तौ अपने ऊपरभी कियाकर तब वह कहनेलगे कि मुझको श्रीराम जीकी दया चाहिये है इस कारणसे कुछ यत्न करताहूं कि किसीप्रकार अविनाशी सुखको प्राप्तहोऊं और एक सन्तने कहाहै कि मैं आवेशकरनी केदर्शनको गया था और वह भजन विषे स्थितथे तातें मैं उनको नमस्कारके युक्तबाप न सका ऐसे ही तीन दिन बीतगये कि उन्होंने निद्रा और आहार कुछ न किया बहुरि चौथे दिन उनकेनेत्रों विषे कुछ ऊन आई तब सचेत होकर कहनेलगे कि हे महाराज! मैं डरता हूं सपमहीन और नेत्र अधिक निद्राग्रसित हैं तेरी रक्षा चाहताहूं यह वचन सुनकर मैंने ऐसा विचार किया कि मुझकोतो इनका इतनाही उपदेश बहुत है बहुरि एक और सन्तने चालीस वर्षपर्यंत लम्बा आसन न कियाथा इसी कारण से उनके नेत्रोंसे कालाजल चलनेलगाथा पर पड़ा मनोसथा चालीसवर्षपर्यंत अपनेहीं सुवनिवासी कोभी जतावने न भये और भजनका नियम कभी खण्डित न किया बहुरि एकसन्तने कहाहै कि मैं एकबार रात्रिकेसमय राबिआजीके पास गयाथा और वह अपने भजन विषे मग्नथीं तातें मैंभी भजनकरनेलगा ऐसेही सवेरेतक बीतगई बहुरि जब दिन हुआ तब कहनेलगीं कि हे महाराज! हम को ऐसा पुरुषार्थ दियाहै सो तिसके उपकारका धन्यवाद कैसे करिये बहुरि ऐसे कहते भई कि इस उपकार के धन्यवाद निमित्त भी रचना मगाया है वार्त्ता यह कि भलेसंतपुरुषों की ऐसीही अवस्था हुईहै तातें चाहिये कि जब भ गवद्भक्त अपने विषे ऐसा पुरुषार्थ न देखे तब उनके वचनोंको सुने और आपकी नीचताको पहिचाने तब इस के हृदय विषे भी भलाई की अवस्था उपजे और मनके ऊपर सावधानता करनेको समर्थ होवे ॥ अथ मनके अधिकदेने के वर्णन ॥ तो जान तू कि इस मनकी आदिउत्पत्ति विषे महाराजने यही स्वभाव रचाहै जो

अपनी भलाई से दूर भागताहै और बुराईको प्रीतिसंयुक्त अंगीकार करताहै अर्थ यहहै कि भगवत्के भजनसे आलसी होताहै और भोगोंको भोगा चाहताहै और तुमको इसप्रकार चाहिये हैकि मनको इस स्वभावसे उलटकरके सीधाकरो और कुमार्ग से बरजकर सुमार्गकी ओर लगावो मोयह कार्य बनहीं मिथ्याहोताहै जब मनके साथ कठोरताकरिये और कुष्ठ्यरूपी रखिये पर मनको समझावना इस निमित्त प्रमाण कहाहै कि इस मनको महाराज ने समझौतेका अधिकारी बनायाहै ताते यद्यपि यह मन अत्यन्त कुटिल है परन्तु जब किसी कार्य विषे निः संदेह अपनी भलाई देखताहै तब उस विषे प्रीति संयुक्त सावधान भी होताहै और यद्यपि यह कार्य अत्यन्त कठिन होवे तौभी उसके खेदको सहकर सम्पूर्ण क्रिया चाहताहै पर यह मूर्खता और अचेनताही इस मनको पड़ा पटलहुआहै ताते जब तू मनको अचेतता की नींद में भली प्रकार सचेत करे और सन्तजनों के वचनरूपी दर्पण इसको दिखावै तब अपनी भलाई को अंगीकार करै जैसे इसीपर महाराजने कहाहै कि निरूपनरहा जिज्ञासु जनोंको मेरे वचनों का विचारना लाभदायक होवाहै ताते तुमको चाहिये कि मनको भली प्रकार समझावै और कभी इसको शीशपरसे ताड़ना दूरन करे और इसको ऐसे कहे कि हे मन तू आपको तो महाचतुर जानता है और जब कोई तुझे मूर्ख कहताहै तब उस पर क्रोधवान होताहै पर तेरे समान और मूर्ख कौन है इस करके कि ऐसे समय विषे तू हँसी और खेल विषे परचा हुआहै जैसे किसी पुरुष को पकड़ने के निमित्त बड़ा लश्कर आइ उतरा होवे और उनके दूत उसको बाँधने लगें वह इस मूर्खता और अचेतता करके ऐसे दुःखको न जाने और हँसी खेल विषे मगन होरहाहै सो तिसके समान बुद्धिहीन कौन होताहै तैसेही तेरे मनुष्य मृतकहुयेहैं सो तेरे पकड़नेहारा लश्करहै और श्मशान भूमिविषे तुमको ले जाया चाहते हैं बहुरि नरक और स्वर्गभी तेरेही निमित्त रचाहै और योभी नहीं जानसकता कि मत आजही तेरी मृत्यु का दिनहोवे तौ इसविषे भी आश्चर्य है इसकारके कि जिस कार्य को अवश्यही होवना होवे तिसको आयाही हुआ जानिये और कालने किसीकेसाथ ऐसा वचन नहीं कियाकि मैं अमुक दिन अथवा अमुक ऋतु विषे तेरा आहार करूँगा काहेसे कि अचानकही सबको आन पकड़ताहै और इस मनुष्य को इसकी कुछ चितवनीही नहींहोती ताते जब तू ऐसे भयानक काज

के आवनेसे आगेही सचेत न होवे तब इसमे बड़ी मूढ़ता क्याहै और हे मन! तू जो सर्वदा पापकर्मों विषे आसक्तरहताहै सो जब तू भगवत्को अन्तर्यामी नहीं जानता तब तो निस्सन्देह निपुणहै और जब उस को अन्तर्यामी जानकर बहुरि पापक्रिया चाहता है तब महाढीठ और निर्लज्जहै क्योंकि महाराजके देखने करके तुझको त्रासनहीं आवता और हे मन! जब तेरा टहलुवा तेरी आज्ञासे विपर्य्यय कर्म करताहै तब तू उस के ऊपर कैसे कोपवान् होताहै तैसेही तू भगवत् के कोपसे त्रास क्यों नहीं करता सो जब तू ऐसे जाने कि मैं परलोकके दण्ड को सहसकूंगा ताते अबही एक अँगुरीको अग्निपर रखदेख अथवा एक मुहूर्त ग्रीष्मऋतुकी धूप विषे स्थिराहो तब अपनी निर्बलता और अधीरता को भली प्रकार जाने अथवा तू यह अनुमान करताहोगा कि मुझको पापकर्मों करके सजा न होवेगी तब संतजनों के वचनों से विमुखहै और महाराजने मुख्य पाप लखाने के निमित्त संतजनों को इस संसारविषे भेजाहै और यह आज्ञा कीन्ही है कि बुरा करनेहारे मनुष्य बुरेफलको भोगेंगे सो तू इनसबै वार्त्ताओं को झूठ जानकर निडर होताहोगा तो यह भी तेरीही जड़ताहै और मूर्खताहै बहुरि जब तू ऐसे जाने कि श्रीरामजी दयाल कृपाल हैं इस कारण से मुझ को सजा न देवेंगे तब यह भी विचार करके देख कि असंख्य जीवों को नानाप्रकार के रोग और दुःखों को भोगावते हैं और जो पुरुष खेती नहीं बोता सो अनाज क्यों नहीं काटता बहुरि तू इन्द्रियादिक सुखोंके निमित्त यत्न क्यों करता है और मायाकी प्राप्तिकेनिमित्त उद्यम क्यों उठावताहै बहुरि जब तू ऐसेकहै कि तुम्हारा वचन तो यथार्थ है पर मैं वैराग्यादिक साधनों के दुःखोंको नहीं सहसकता तब तू इस वार्त्ता को नहीं समझता कि जो पुरुष बड़े कष्टको नहीं सहसकता तिसको चाहिये कि थोड़ाही दुःख सहकर दीर्घ दुःख से अपनी रक्षाकरे तैसेही जिन्हों ने जप तपरूपी दुःख को अंगीकार किया है ते नरकों के बड़े कष्ट से छूटते हैं और जिन्होंने इस दुःखका सहारना नहीं किया ते मनुष्य चिरकालपर्यन्त नरकों की अग्नि विषे जलेंगे ताते जब तू अब इस स्वल्प दुःखको नहीं सहसकता तब परलोक विषे अधिक दुःखोंको कैसे सहैगा बहुरि जब तू दुःखोंसे डरताहै तब माया की प्राप्तिके निमित्त बहुत यत्न और बड़े खेद क्यों खैंचताहै और शरीरकी आरोग्यताके निमित्त लोभी वैद्योंकी आज्ञा मानकर सब स्वाद खाद्यको त्यागदेता

है हे मूर्ख! तू इस वार्त्ता को नहीं जानता कि इस शरीरके रोगसे नरकोंका दुःख अति दीर्घ है और इस शरीरके कछुक जीवने से परलोक विषे चिरकाल पर्यन्त रहनाहै बहुरि जब ऐसे कहे कि मैं अपने चित्त विषे पापोंके त्यागनेकी मनसा रखताहूं पर अमुक कार्य सम्पूर्ण करके धर्ममार्ग विषे चलूंगा तब तुझको येती समझणी नहीं आवती कि जब अचानकही तुझको काल मारलेवे और पापों के त्यागनेमें अप्राप्त रहजावे तब क्या पुरश्चरण करेगा ताते जाना जाताहै कि पश्चात्तापविषे पड़ाजलेगा और जब तू ऐसे जाने कि अब तो पापोंका त्यागना कठिनहै और कल्हि कुछ सुगम होजावेगा तब यहभी बड़ी मूर्खताहै काहेते कि, तू जेती ढील करताहै तेताही पापों और भोगों का त्यागना कठिन होताजाता है पर जब तू ऐसे चाहे कि मैं अन्तकाल के विषे भजन करलूंगा सो इसका दृष्टान्त यह है जैसे कोई पुरुष पहाड़की घाटीपर चढ़ने के समय अनाज अथवा घीव देवे तब घोड़ा उस घाटी पर चढ़ नहीं सक्ता और बलवान् भी नहीं होता अथवा जैसे कोई पुरुष परदेश विषे विद्या पढ़ने के निमित्त जावे और वहां पर जाकर अनमाइ रहे इस करके कि मैं जब अपने नगर को चलने लगूंगा तब जाती बार विद्याभी पढ़लूंगा बहुरि जब इतना न जाने कि एक दो दिन विषे तो विद्या का पढ़ना होही नहीं सक्ता और कितने कालकरके उसका पढ़ना सम्पूर्ण होताहै ताते ऐसा अजान और आलसीपुरुष विद्याहीनही रहताहै तैसेही यह मनभी अनेक विकारों करके भरपूरहै सो जबलग इसको यत्नकी यन्त्री विषे डारकर चिरकाल पर्यंत शुद्ध न करिये तबलग भगवत्की प्रीति और उसके दर्शन के देखनेका अधिकारी नहीं होसक्ता ताते जब ऐसाही बड़ा यत्नकरके सर्व घाटियों को उतरजावे तब परमपदको जाइ पहुँचे पर जब यह आयुर्बल वृथाही बीतगई तब अन्तकाल विषे भजनमें क्योंकर स्थित होवेगा इसीपर बुद्धिमानों ने कहाहै कि यौवनको वृद्धताके आगे और सम्पदा को आपदासे आगे और अरोगता को रोगके आगे बहुरि सावकाशीको विक्षेपता के आगे और मरनेसे आगे जीवने को बड़ा पदार्थ जानिये पर हे मन! तू ग्रीष्मऋतु विषे अपने देह के निमित्त शीतकालकी ऋतुके कार्यों के उद्यम उठावता है और श्रीरामजी को दयाल जानकर ऐसे मनोरथको नहीं त्यागता बहुरि आलस करके त्याग और भजनका कार्य महाराजकी दया पर रखताहै सो इस आलस्य का कारण यह है

कि परलोक के दुःख सुख विषे तुझको प्रतीतिही नहीं पर इस विमुखता को तू हृदय विषे गुप्तही रखताहै सो इसकरके तू सदैव कालके दुःखोंको प्राप्त होवेगा बहुरि जब तू यथार्थ बूझ बिना मुक्तहुआ चाहे तब इसका दृष्टान्त यह है जैसे कोई पुरुष वस्त्र बिना शीतकाल की गरदी से आपको बचाया चाहे तो असंभव है काहेसे कि श्रीरामजी की दयाका अर्थ यहहै कि महाराज ने जैसे शरद्ऋतु की गरदी रची है तैसेही गरदीके दूरकरनेको वस्त्र बनाये हैं पर जब तू महाराज की दयाके अर्थको न समझे तब तेरीही मूढ़ता प्रकटहै बहुरि तू ऐसेभी न जान कि तेरे पापों करके श्रीराम क्रोधवान् होते हैं और तुझको इसीकारण से सजा देते हैं सो ऐसे नहीं काहेसे कि तेरे पापोंकरके नरकोंकी अग्निका बीज यहांही बढ़ताजाताहै जैसे कुपथ्य करके शरीरविषे रोग उपज आवताहै सो जिसप्रकार शरीर का रोग वैद्यकी अप्रसन्नता कर नहीं उपजता तैसेही परलोकका दण्डभी महाराजके कोपकरके नहीं होता पर तेरा चित्त जो स्थूल पदार्थोंकी अभिलाषा विषे बधायमान हुआहै सो यही सर्व दुःखोंका बीजहै बहुरि जब नरक स्वर्गपर प्रतीति कुछ नहीं तौभी इतना तो जानताहै कि अवश्यही मरना है और मृत्यु के समय सर्व भोग तुझसे दूरहोजावेंगे ताते तू उनके वियोगकरके जलता रहेगा सो तू जेताही स्थूल पदार्थों विषे अधिक प्रीति दृढ़ करेगा तेताही अधिक दुःख को प्राप्त होवेगा ऐसे जानकर सचेतहो और संसार के सुखोंको भलीप्रकार देख कि जो उदय अस्त पर्यन्त तेरी आज्ञा बनै और सब लोग तुझको दण्डवत् करें तौभी थोड़े दिनों पीछे तू और तेरे पूजनेहारे स्वप्न होजावेंगे और कोई तुझको स्मरण विषेभी न लावेगा जैसे पूर्वले चक्रवर्ती राजाओंको कोई जानताही नहीं ताते इस संसार का सुख यद्यपि तुझको कुछ प्राप्तभी होताहै तौभी महामलिन और दुःखों के साथ मिलाहुआ है और तू मूढ़ता करके इसके ऊपर अविनाशी सुखको बेचता है जैसे कोई उत्तम रत्न देकर माटी का टूटा बासन लेवे सो महा मूढ़ कहावताहै तैसेही इससंसारका सुख माटीके बासनकी नाईं है और नाशहोते इसको टूटाजानिये बहुरि जब इसकीप्रीति करके अविनाशी रत्नको खोवेगा तब दीर्घ पश्चात्ताप को देखेगा तात्पर्य यह कि जिज्ञासु जन सर्वदा ऐसेही मनको झिड़की देतारहै तब पुरुषार्थ करके मनको सीधे मार्ग विषे चलावे और कुमार्ग से वरजे राखै ॥

सातवांसर्ग ॥

विचारके निरूपणका वर्णन ॥

ताते ऐसे जान तू कि महापुरुषने ऐसे कहाहै कि एक वर्ष के भजनमें एक घड़ीका विचार उत्तमहै और महाराजने भी अपने वचनों विषे विचारहीको विशेष कहाहै सो यद्यपि सबकोई विचारकी विशेषताको सुनता और मानताहै पर तौभी विचारका अर्थ विरलाही कोई समझताहै और इस वार्त्ताको भी कोई नहीं जानता कि विचारने योग्य वस्तु क्याहै और विचारनेका प्रयोजन क्याहै और विचारका फल क्याहै इसीकारण से ऐसे भेदोंका खोलना अत्यन्त प्रमाणहुआ ताते मैं प्रथम विचारकी स्तुतिकरूंगा बहुरि विचारका स्वरूप वर्णनकरूंगा तिससे पीछे विचारका प्रयोजन और जिस वस्तु विषे विचारकरना योग्यहै तिसको प्रसिद्धकरके कहूंगा ॥ अथ स्तुति विचारकी ॥ ताते जान तू कि एकरात्रि विषे महापुरुष भजन करतेहुये रोवनेलगे तब आ ईसाने कहा कि तुम्हारे पाप तो महाराजने क्षमा किये हैं फिर तुम किस निमित्त रोवतेहो तब महापुरुष कहतेभये कि मुझको इसप्रकार महाराजकी आज्ञाहुई है कि जेते आकाश और पृथ्वीकी उत्पत्ति विषे मैंने आश्चर्य रचे हैं और जिसप्रकार रात्रि दिनकी भिन्नता बताई है सो इनको भलीभांति विचारकरके देखो ताते मैं महाराज की कारीगरी को विचारकरके विस्मितहुआहूं और रुदनकरताहूं इसकरके कि जो पुरुष ऐसे वचनों का नित्यप्रति पाठकरे और विचारकरके न देखे सो मन्दबुद्धी कहावताहै बहुरि ईसा महापुरुषको लोगोंने कहाथा कि तुम्हारे समान और कोई मनुष्य उपजाहै तब उन्होंने कहा कि जिसका बोलना सबही भजनहोवे और मौन जिसका विचार संयुक्तहोवे और दृष्टिजिसकी भय संयुक्तहोवे सो मुझसे भी विशेष है बहुरि महापुरुषने भी कहाहै कि अपने नेत्रोंको भी भजन से अभाग न राखो तब प्रीतिमानोंने पूछा कि नेत्रोंको किसप्रकार भजन विषे लगाइये बहुरि महापुरुषने कहा कि भगवत्वाक्य पोथीको पढ़ना और चित्त विषे उसको विचारना बहुरि महाराज की कारीगरीको देखकर विस्मयवान् होनाही नेत्रोंका भजन है ताते इसीपर दाराई सतने कहाहै कि इस संसार विषे विचारसंयुक्त विचरने करके पर लोकके दुःखोंसे मुक्तिहोती है और परलोकके विचारकरके अनुभवरूपी फल प्राप्त होताहै और हृदय सुरजीत होताहै बहुरि एकसमय एकरात्रि विषे अपने मन्दिर

विषे स्थितथे और आकाशसे नक्षत्रोंका आश्चर्य देखकर विचार करतेथे और रोवतेथे ऐसेही मूर्च्छितहोकर पडोसीके घरमें गिरपडे तब पड़ोसीने चोर जानकर तलवार पकड़लीनी बहुरि जब उसने उनको पहिंचाना तब पूछनेलगा कि तुमको यहां किसने गिराइ दिया तब उन्होंने कहा कि मुझको गिरने की भी खबर कुछ नहीं पर मैं तारागणका आश्चर्य देखकर विस्मित होरहाहूं॥ अथ प्रकट करना स्वरूप विचारका॥ ताते जान तू कि बूझका खोजनाही विचारका अर्थ है इसकरके कि जो वस्तु लखी न जावे तिसका पहिंचानना उसके खोजनेकरके ही होताहै सो बूझका खोजना इसभांति करते है कि प्रथम दो प्रकारकी बूझको परस्पर इकट्ठाकरिये तब उनमें तीसरी बूझ तुरन्त उपज आवती है जैसे स्त्री और पुरुषके मिलापकरके पुत्रका उपजना होताहै तैसेही प्रथम जो दोप्रकारकी समझ कही है सो मूल कीनाई दोनों है और तीसरीबूझ उनका फल उत्पन्नहोता है बहुरि जब तीसरी बूझ के साथ और बूझ मिलती है तब उनके संयोग करके चौथीबूझ प्रकट होती है इसीप्रकार बूझकी मिलौनी करके विद्याकी वृद्धि होती है पर इसीरीतिसे जो बूझको प्राप्त नहींकरसक्ता सो तिसका कारण यह है कि वह पुरुष प्रथम दोप्रकारकी बूझको नहीं जानता सो इसका दृष्टांत यहहै कि जैसे किसी पुरुषके पास पूंजीही न होवे तब व्यवहार क्यों करके बहुरि जो पुरुष प्रथम दो प्रकारकी बूझको जानता भी होवे पर आपुस विषे उनको मिलाइ न जाने सो तिसका दृष्टान्त यहहै जैसे कोई मनुष्य पूंजी रखताहोवे और व्यवहारकी क्रियाको न जाने तौभी लाभ से अभाव रहता है तैसेही जो पुरुष दोनों बूझोंको आपुस विषे मिलाइ न जाने तब तीसरीबूझ जो उनका फलहै सो तिसको पाइ नहीं सक्ता पर इसका बखान करना भी अधिक विस्तार होताहै तैसे मैं संक्षेपकरके एक दृष्टांत वर्णन करताहूं जैसे कोई पुरुष इस संसारके सुखोंसे परलोकके सुखकी विशेषता को समझ्याचाहै तब प्रथम इस वार्त्ताको पहिंचाने कि नाशवन्त वस्तु भली है अथवा अविनाशी वस्तु भली है बहुरि यों भी पहिंचाने कि इस संसारका सुख अविनाशी है अथवा परलोकका सुख अविनाशी है ताते जिसने इन दो मूलोंको भलीप्रकार समझाहै तब स्वाभाविकही तीसरीबूझ उपज आवती है कि इस संसारके सुखसे परलोकका सुख विशेष है अथवा जैसे कोई इस भेदको समझ्याचाहै कि यह जगत् बनाहै अथवा उत्पत्तिवाला है तब प्रथम

तो यह विचारकरे कि यह जगत् परिणामी है अर्थात् एकरस है बहुरि प्रेम जाने कि परिणामीवस्तु अनादि नहीं होती ताते सुगमही तीसरी बूझ यही प्रकट होती है कि यहजगत् उत्पन्नकिया हुआहै और धनी किन्नहीं तात्पर्य यह कि बूझका खोजना दोप्रकारकी समझका प्रथम इकट्ठाकरना है सो इसमार्ग बिना विचारकी वृद्धि नहीं होती बहुरि यों भी जानना चाहिये कि जैसे घोड़ा और घोड़ीके संयोगसे घोड़ाही होताहै और स्त्री पुरुषके मिलापसे मनुष्य उत्पन्न होताहै तैसे ही जब प्रथम दो प्रकारकी व्यवहारिक बूझ बटोरिये तब तीसरी भी व्यवहारकी समझ उपजती है और परमार्थकी बूझको इकट्ठीकरिये तब उसके संयोग विषे परमार्थका ज्ञान उत्पन्न होताहै ॥ अर्थ प्रकटकरना प्रयोजन विचारका ॥ ताते जान तू कि इसमनुष्यकी उत्पत्ति अज्ञानरूपी अंधेरे में हुईहै इसीकारण से अवश्यही इसको प्रकाशकी अपेक्षा होती है इसकरके कि जब विचाररूपी प्रकाश के साथ मूर्खतारूपी अंधेरे से बाहर निकसे तब अपने आत्मधर्म के कार्य्यों में सावधान होवे और इसभेदको समझे कि मुझको कर्त्तव्य क्याहै अर्थ यह कि इससंसारमें आसक्तहोना भलाहै अथवा धर्ममार्गको अंगीकार करना भलाहै बहुरि देहाभिमान विषे बद्धयमान होना सुखरूपहै अर्थात् श्रीरामजी की शरण विषे मेरा कल्याणहै सो ऐसी पहिचान विचार के प्रकाशबिना और किसी प्रकार प्राप्त नहीं होती इसीपर महापुरुषने कहाहै कि प्रथम महाराजने सर्वजीवोंको अंधकार विषे उत्पन्न कियाहै बहुरि सबों के ऊपर अपना प्रकाश डाराहै सो जैसे कोई मनुष्य अंधेरे करके दुःखितहोवे और उसको प्रसिद्धमार्ग दृष्ट न आवे तब वह यत्नकरके प्रकाश के निमित्त चकमक पाथरको ठोकताहै जिससे अग्निकी चिनगारी निकसती है तब उसके साथ दीपक जगायलेता है बहुरि दीपकके प्रकाशकरके उस पुरुषकी अवस्थाही उलट जाती है और सर्व पदार्थोंको भली प्रकार देखलेताहै मार्ग और कुमार्गको भी प्रत्यक्ष पहिचानताहै बहुरि उसीमार्ग विषे चलने लगताहै तैसेही जिज्ञासुजनको चाहिये कि प्रथम दोप्रकारकी बूझको आपुस विषे मिलावे इसकरके कि उसका मिलावनाही चकमक ठोकने की नाईं है बहुरि उनके मिलापकरके जो तीसरी बूझ उपजती है सो निस्सन्देह अग्निवत् है और जब बूझका प्रकाश उदय होताहै तब मनुष्यके चित्तकी श्रद्धा उलट जाती है बहुरि श्रद्धाके उलटने करके कर्त्तव्य भी उलटजाती है तब इसने

जाना कि आत्मसुख अविनाशी है और संसार के भोग नाशवन्त हैं तब स्वाभाविकही संसार के भोगों की ओर पीठ देता है और आत्मसुख की ओर सम्मुख होताहै ताते प्रसिद्ध हुआ कि विचार विषे तीन प्रयोजन प्रकट हैं प्रथम तो यथार्थ का पहिंचानना १ और दूसरा चित्त की अवस्था का उलटना २ बहुरि तीसरा करतूतों का उलटावना ३ अर्थ यहहै कि अपकर्मों को त्यागकर भली करतूति करनी पर उलटावना कर्मों का चित्त की श्रद्धा के आधीन है और चित्त की श्रद्धा यथार्थ की पहिंचान करके उलटती है बहुरि यथार्थ की पहिंचान विचार करके प्राप्त होती है इसी कारण से विचार को सर्व शुभ गुणों का मूल और कुञ्जी कहा है ॥ अथ प्रकट करना अवकाश विचार का ॥ ताते जान तू कि विचार के अवकाश अपार हैं इसकरके कि प्रथम तो विद्या और बूझनी अनन्त प्रकारकी होती है और विचार सबों विषे वर्त्तता है और जिस विचारका सम्बन्ध धर्मके मार्गके साथ कुछ नहीं तिसके खोलने विषे मेरा प्रयोजनभी कुछ नहीं और जिसविचारका सम्बन्ध धर्महीके साथहै तिसकाभी पारावार कुछ नहीं पायाजाता पर जिज्ञासुके समझाने के निमित्त संक्षेप करके कुछ वर्णन करूंगा सो धर्ममार्ग तिसको कहते हैं जिस मार्गकरके यह मनुष्य श्रीसीतारामजी के दर्शनको प्राप्तहोवे ताते इस मनुष्य का विचार अधिक तो श्रीराम विषे चाहिये है अथवा अपने आप विषे चाहिये पर महाराज विषे विचार करना इसप्रकारहै कि प्रथम तो महाराजके स्वरूप और गुणों का विचारकरना अथवा उनकी कारीगरीका विचार करना सो आप विषे विचारना यहहै प्रथम तो अपने मलिन स्वभावोंका विचारना जिनकरके इसजीवको महाराज की ओरसे पटन होताहै सो तिनके दूरकरनेका उपाय विचारना जैसे मैंने विकार निषेध प्रकरणविषे विस्तार सहित वर्णन कियाहै अथवा जिन शुभ गुणोंकरके श्रीरामजीकी प्रसन्नता प्राप्त होतीहै तिन विषेभी विचारकरना प्रमाणहै ताते प्रसिद्ध हुआ कि धर्ममार्ग विषे चार स्थान विचारके प्रकटहैं सो इनका दृष्टान्त यहहै कि जैसे किसीप्रेमीका विचार और चिन्तन प्रियतमसे बाहर कदाचित् नहीं होता और जिसका चिन्तन प्रियतमबिना और किसीपदार्थविषे फुरनेलगे तब जानिये कि उसका प्रेमही निर्बलहै काहेसे कि जब प्रेमकी प्रबलता होतीहै तब और किसीवस्तुकी सुरति नहीं रहती ताते प्रेमी पुरुषका विचार और सङ्कल्प अधिकतो प्रियतमके दर्शन और

सुन्दरता विषे रहताहै अथवा उसकी लीला और गुणोंका चिन्तवन करता रहता है और यद्यपि उसकी सुरति अपने विषेभी फुरतीहै तौभी ऐसेही गुणोंका स्मरण करताहै जिनकरके प्रियतमकी प्रसन्नता और रीझ प्राप्तहोवे इसीकारणसे उन गुणोंको प्राप्त कियाचाहताहै अथवा ऐसे अवगुणों का विचार भी करताहै जिन करके प्रियतमका वियोग और अप्रसन्नता होती है ताते उनको दूरकिया चाहताहै तात्पर्य यह कि यद्यपि प्रेमी पुरुष को विचारके स्थान चारही हैं पर तौभी चारों का मूल प्रियतम और प्रेमी दोनोंका अवकाश मुख्य है तैसेही भगवत् और भक्तों के प्रेमका भी मार्ग यहीहै॥ अथ प्रथम अवकाश विचारका॥ ताते जान तू कि प्रथम तो प्रीतिमान् को यही विचारकरना योग्यहै कि मेरेविषे बुरे स्वभाव और बुरी करतूति कौनहैं ताते विचारकरके आपको उनसे शुद्धकरे सो एकपाप स्थूल है १ और एकपाप सूक्ष्महै २ सो यद्यपि यहभी अमितहैं जो गन नहींसकते तौभी जेते अपकर्म शरीर और इन्द्रियोंके साथ होते हैं तिनको स्थूलपाप वर्णन किया है और मनके स्वभाव मलिन सबही सूक्ष्म पाप कहे हैं सो एक२ पापके विचार विषेभी तीनप्रकार का बल बर्तताहै प्रथम यह कि अमुक स्वभाव अथवा कर्म बुराहै व भलाहै इसकरके कि यह बार्ताभी विचार बिना जान नहीं सकता १ और दूसरा प्रकार यहहै कि जिस क्रिया और स्वभावको बुरा जाना तब इसभांति विचारकरे कि अमुक अवगुण अथवा अपकर्म मेरे विषे है व नहीं काहेसे कि मन के स्वभावोंको भी दृढ़ विचार बिना पहिचान नहीं सक्ता २ बहुरि तीसरा प्रकार विचारके बलका यहहै कि जब अपने अवगुण को निश्चय किया तब उसके दूर करने का उपायकरे ३ ऐसेही जिज्ञासुजन नित्यप्रति प्रातसमय एकत्रहोकर इस विचार विषे सावधान होवे प्रथम तो स्थूलपापों का विचार इसप्रकार किया चाहिये कि एक एक इन्द्रिय की क्रिया को भिन्न भिन्न विचारे सो रसनाका विचार इस भांतिकरे कि बोलना तो मुझे अवश्यही होवेगा पर किसीप्रकार झूठ और निन्दासे रहित हूजिये तो भलाहै ऐसेही जब देखिये कि मेरी जीविका अशुद्ध है तब उसके त्यागने का उपाय विचारे इसी प्रकार सर्व्वे इन्द्रियों के कर्मों को भिन्न भिन्न स्मरणकरे बहुरि जेते भजनके नियम और भली करतूतिहैं तिनमें दृढ़ विचार सहित सावधान होवे और ऐसे जाने कि यह रसना मुझको भजन के निमित्त और मिष्ट बोलने के अर्थ महाराजने दीनी है ताते चाहिये कि रसनाको

भजन विषे लगावों और सर्व मनुष्यों के साथ मीठा बोलों और नेत्र इसनिमित्त दिये हैं कि महाराज की कारीगरी को देखकर उस कारीगर को पहिचानों अथवा संत महापुरुष भक्तजनों का दर्शन करों और पापकर्मियों को ग्लानि की दृष्टि साथ देखूं ताते मुझको उनकी संगति का प्रवेश न होवे तब नेत्र की उत्पत्ति का फल प्राप्त होवे और महाराज ने धन को जीवों के सुख के निमित्त रचा है ताते चाहिये कि मैं धन को अर्थियों के अर्थ लगाऊं और यद्यपि मुझको भी इस वस्तु की अपेक्षा आवश्यक ही है तो भी चाहिये कि पुरुषार्थ करके अपने अर्थ का त्याग करूं ऐसे ही निरन्तर जिज्ञासु जन को विचार करना प्रमाण है इस करके कि कदापि एक घड़ी के विचार विषे ऐसा शुद्ध संकल्प इसको उपज आवे जो उस करके सब आयुर्बल के पापों से रहित होजावे और परा भक्ति का अधिकारी होवे इसी कारण से महापुरुष ने कहा है कि सर्व आयुष पर्यन्त के भजन से एक घड़ी का विचार विशेष है अर्थ यह कि विचार का लाभ इसको सर्वदा सुखदायी और सहायक होता है बहुरि जब इन कर्मों का विचार करचुके और बाह्य के शुभ कर्मों का विचार भी करचुके तब हृदय के सूक्ष्म स्वभावों की ओर दृष्टि करे कि मेरे चित्त में कौन कौन मलिन वासना है बहुरि जैसे धैर्य सन्तोष आदिक मोक्षदायक शुभकर्म हैं सो तिन को प्राप्त होने का उपाय विचारे पर ऐसे सम्पूर्ण गुणों और अवगुणों का बखान भी अपार है ताते मैं कछु क संक्षेप करके कहता हूं कि कृपणता अभिमान अहंकार और ईर्षा क्रोध आहार की अधिकता व्यर्थ बोलना धन और मान की प्रीति या जानता कठोर स्वभाव आदिक विकारों को विचार करके दूरि किया चाहिये ऐसे ही लालच का त्याग और दुःख विषे धैर्य करना और महाराज के उपकारों का धन्यवाद करना बहुरि महाराज की भय और आशा की समानता विषे स्थित होना और माया के पदार्थों से विरक्त होना भजन विषे निष्कामता करनी सर्व जीवों के साथ कोमल स्वभाव रखना सत्यता और भरोसा महाराज की प्रीति विषे सन्तोष आदिक जेते शुभगुण हैं सो सब ही आत्मा विषे विचार दीना यत्न चाहिये यतना है पर यह विचार तिनके हृदय विषे उपजता है जिसने ऐसे शुभ गुणों के भेद को भलीप्रकार समझा होवे सो मैंने उसी मोक्षदायक प्रकरण विषे कहा है ताते जिज्ञासु को चाहिये कि शुभ और अशुभ गुणों के नाम अपने पास लिख राखे बहुरि जब एक अवगुण को दूर करचुके तब दूसरे के जीतने में दृढ़ होवे और जब

एक गुणको प्राप्त करलेवे तब दूसरे गुणके पावनेका पुरुषार्थकरे पर किसी पुरुष पर कोई स्वभाव प्रबल होताहै किसीपर कोई बलवान् होताहै इसीकारणसे चाहिये कि प्रथम प्रबलस्वभावके दूरकरनेका यत्नकरे जैसे कोई विद्यावान् वैराग्य सयुक्तहोवे तब उसको मानकी अभिलाषाका दूरकरना विशेषहै इसकरके कि विद्या और वैराग्य की प्राप्ति करके मानका हेतु अवश्यही प्रकट होआवता है बहुरि मानके हेतुकरके किसी का वचन नहीं सहसक्ता और अपनी विशेषता को लखाया चाहता है तब चित्त विषे क्रोध और ईर्षा का अंकुर उपजने लगताहै सो यद्यपि ऐसे स्वभाव महासूक्ष्मरूप हैं पर तौभी निस्सन्देह मार्गों की हीनताका बीजहै ताते विद्यावान्को चाहिये कि नित्यप्रति मानहीके दूरकरनेका विचारकरे और जगत्की स्तुति निन्दासे विरक्तहोकर समतापदकी प्रीति विषे दृढ़होवे इस करके प्रसिद्ध हुआ कि अपने अवगुणों और शुभ गुणोंका विचारकरनाभी अमित है सो वचनकरके सम्पूर्ण नहीं कहसक्ते १ अथ द्वितीय अवकाश ॥ ताते जान तू कि विचारका अवकाश दूसरा भगवत्है सो एक तो श्रीरामजूके शुद्ध स्वरूपका विचारहै और दूसरा श्रीरामजूकी विचित्ररचना और शक्तिका विचारनाहै सो यद्यपि उत्तम विचार और चिन्तन श्रीसीतारामजी महाराजके सुन्दर गौर श्यामस्वरूप और गुणोंका होताहै पर यह जो अल्पबुद्धिजीवहैं सो महाराजके स्वरूपका विचार कर नहींसक्ते ताते धर्मशास्त्रविषे स्वरूप का विचार वर्जित कियाहै सो महाराजके स्वरूपका विचार कुछ गुप्तताके कारण कठिन नहीं पर उसका विचारना इसकरके कठिन है कि जीवके बुद्धिरूपी नेत्र महामन्द हैं और महाराजका स्वरूप परम प्रकाशवानहै ताते उसको देख नहींसक्ते और मूर्च्छाको प्राप्त होते हैं जैसे चिमगोदरकी दृष्टिकी मन्दता करके सूर्य के प्रकाश विषे आइ नहीं होसक्ती बहुरि जब सूर्यका प्रकाश अस्त होताहै तब रात्रि विषे तारामण्डल के किंचित् प्रकाश करके नेत्रों को खोलती है तैसेही देहाभिमानी मनुष्य भी महाराजके शुद्ध स्वरूपको देख नहींसक्ते तब उसका विचार क्योंकर करें पर जो सत्पुरुष हैं सो उत्तम अवस्थावाले हैं और तिन्होंने प्रकटही सुन्दर स्वरूपको देखाहै पर सदा एकरस वहभी नहीं देखसक्ते और उनकी बुद्धिभी थकित होजाती है जैसे यह मनुष्य सूर्य को भलीप्रकार देखसक्ते हैं पर अधिक देखने करके इनकी भी दृष्टि मन्द होजाती है तैसेही महाराजकी छवि अपारके

विचारने विषे भी यही भय होताहै, विस्मय और आश्चर्य करके बावरा होजाताहै इसी कारण से जिसप्रकार सन्तजन महाराजके सर्वगुणोंका भेद जानते हैं सो इतर जीवोंको खोलकर सुनावतेही नहीं और महाराजने भी उनको यह आज्ञा कीन्ही है कि सर्वजीवों को अधिकारके अनुकूल उपदेशकरो और जिसप्रकार उनकी बुद्धि महाराजके कुछ भेद को समझसके तैसेही समझावो ताते ऐसे कहो कि महाराज अन्तर्यामी है और सबकुछ देखते सुनते बोलते हैं बहुरि जो कुछ किया चाहते हैं सो करलेते हैं तात्पर्य यह कि अल्पबुद्धि जीव इतना भी इस निमित्त समझते हैं कि इनविषे भी सुनना बोलना देखना कुछ पायाजाताहै पर इनसे जब इसप्रकार कहिये कि महाराज का बोलना मनुष्यों की नाईं नहीं काहेसे कि उनका वचन शब्द और अक्षरोंसे रहित अखंडहै तब इस बातको नहीं समझसके अथवा जब ऐसे कहिये कि महाराजका स्वरूप मनुष्योंकी नाईं नहीं इसकरके कि महाराजका न कोई कारण है न वह किसी के कारण हैं बहुरि न किसी स्थान के ऊपर स्थित हैं न किसी स्थान के मध्यमें रहते हैं और न किसी दिशा विषे कहसके हैं बहुरि जगत्से न्यारेभी नहीं और जगत्के साथ कुछ सम्बन्ध भी नहीं रखते ऐसेही संसार से बाह्य भी नहीं और संसार विषेभी नहीं सो जब यह अल्पबुद्धि जीव ऐसे सूक्ष्म वचन सुनते हैं तब इनकी पहली प्रतीति भी नष्ट होजाती है ताते भगवत्हीका नतकार करनेलगते हैं इसकरके कि महाराज को भी अपनी नाईं समझा चाहते हैं और उनकी बड़ाईको जानतेही नहीं काहेसे कि यद्यपि महाराज को सब से बड़ा कहते हैं तौभी चित्त विषे किसी बड़े भूपतिकी नाईं समझते हैं और ऐसे जानते हैं कि परमेश्वर भी भूपों की नाईं सिंहासन पर बैठकर सृष्टि का कार्य करता होगा और यौंभी निस्सन्देह जानते हैं कि भगवत्के भी मनुष्योंके समान स्थूल शरीर हाथ पांव शीश होवेगा इसकरके कि जब हमारे हाथ पांव न होवें तब हम अंगहीन और दुःखी होते हैं तैसेही जब परमेश्वरके शरीर नेत्र आदिक इन्द्रिय न होवें तब वह भी अंगहीन रहता है सो ऐसी स्थूलबुद्धिसे भगवत्का करके इस करके कि जैसे मासीके हृदयविषे ऐसीही बुद्धि होती है तब वह भी इसप्रकार कहती है कि जैसे मेरे पांव और पंख हैं तैसेही महाराजके भी पंखहोवेंगे काहेसे कि मैं तो इनकरके सुखसे इच्छाचारी उड़ती हूं और जब मेरा उत्पन्न करतेहारा ऐसा भोगिसर न

होवे तब यह अयोग्य वार्त्ता होती है तैसेही यह मनुष्यभी महाराजके ऊपर अ-
पना अनुमान रखते हैं इसीकारणसे धर्मशास्त्र विषे निर्गुण स्वरूपके विचार से
वर्जा है और सन्तजनोंने भी इसप्रकार प्रसिद्ध नहीं कहा कि महाराज इस सं-
सारसे व्यतिरिक्तहै अथवा मिलाहुआहै ताते उन्होंने भी इतनाही वर्णन कियाहै
कि महाराजके स्वरूपकी नाईं और कोई वस्तुही नहीं जिसकरके उसको सम-
झायसकिये पर वह परेश महाराज सब कुछ देखने और सुनने और जाननेहारा
हैं और समर्थ है सो यद्यपि ऐसे कहाहै तौभी इस जगत्में जिसप्रकार देखना
सुनना जानना महाराजका है तिसका भेद प्रसिद्ध वर्णन नहीं किया इसकरके
कि स्थूलबुद्धि मनुष्य ऐसे भेदों को समझ नहींसक्ते तात्पर्य्य यह कि परात्पर
स्वरूपके विचारनेका अधिकारी कोई विरला सन्तही होताहै और इतर जीवोंकी
बुद्धि उसके स्वरूपमें पहुँच नहीं सक्ती ताते सबही जीवोंका अधिकार यहहै कि
महाराजकी विचित्र रचनाका विचारकरके उसकी बड़ाई और समर्थताको पहिं-
चानें काहेसे कि जेतेपदार्थ स्थूल सूक्ष्म उत्पन्नहुये हैं सो महाराजही के प्रकाश
का प्रतिबिम्बहैं पर इसका दृष्टान्त यहहै जैसे कोई पुरुष दृष्टिकी मन्दताकरके सूर्य
को देख न सके तब चाहिये कि उसकी धूपको देखकर उसके तेजकी अधिकता
को पहिंचाने तैसेही रचनाकी विचित्रताका विचारनाभी महाराजकी बड़ाई को
लखावताहै ॥ अथ तृतीय अवकाशनिरूपण ॥ ताते जान तू कि सब सृष्टि म-
हाराजही की रचनाहै और सबही आश्चर्य्यरूप है सो जब विचारकरके देखिये
तब सब पृथ्वी और आकाशके जेते अणुहैं ते सब अपने उत्पन्न करनेहारे की
महिमा को लखावते हैं और कहते हैं कि ऐसी समर्थता और ऐसी परमविद्या
परमेश्वरहीको शोभती है और उसकी स्तुति ऐसी अपारहै कि जो सातोंसमुद्र
स्याहीहोवे और सब बनस्पति लेखनीहोवें और पृथ्वी आकाश विषे जेते जीवहैं
सो लिखनेलगें और आयुषभी उनकी अमितहोवे तौभी महाराजकी आश्चर्य-
ताका अन्त कदाचित् नहीं आवता पर सर्व्व सृष्टि भी महाराजने दोप्रकारकी
रची है सो एक सूक्ष्महै और एक स्थूलहै बहुरि सूक्ष्म सृष्टि जो लीनशक्ति है सो
तिसका विचार नहीं होसक्ता और जो सृष्टि स्थूल कही है वह भी दो प्रकारकी
रचना है एक तो हमारी दृष्टिमें अगोचर है जैसे देवता और उनके स्थान और
भूत प्रेतादिक जो जीवहैं सो इनका विचारना भी महाकठिनहै ताते दूसरी सृष्टि

जो हमारी दृष्टि विषे आवती है तिसका मैं कुछ वर्णन करताहूं सो देखनेमें आकाश और पृथ्वी सूर्य्य चन्द्रमा नक्षत्र आवते हैं बहुरि पृथ्वी के ऊपर जो पहाड़ और वनस्पति और नदी और नगर और मनुष्य आदि जेते जीव हैं सो सबही आश्चर्य्यरूप बनाये हैं बहुरि आकाश विषे जो बादर और बर्फ और ओला और बिजुली और इन्द्रधनुष् आदिक जेती रचनाहै सो सबोंविषे विचारका मन वर्ततांहै इसकरके कि सर्व पदार्थोंको महाराज ने कौतुकरूप रचाहै ताते मैं संक्षेप करके कछुक इनका वर्णन करूंगा काहेसे कि यह सब पदार्थ महाराज की शक्ति को जनावनेहारे हैं और तुझको इसप्रकार आज्ञा हुई है कि तू मेरी रचना को विचारकी दृष्टिके साथ सर्वदा देख और मेरी बड़ाई को पहिंचानकर विस्मित हो पर प्रथम तो महाआश्चर्य्यरूप भगवत् ने तुझ को बनाया है और तेरे समान तुझको और कोई निकट भी नहीं सो जब तू आपको विचारे तबमेरी सामर्थताको और बड़ाईको तुरतही पहिंचान लेवेगा ताते तुझको प्रथम तो अपनी आदिका विचार करना प्रमाणहै कि मैं इस संसार विषे कहांसे आयाहूं सो जब विचार करके देखिये तो रज औ वीर्य्यही तेरी उत्पत्ति का कारण है बहुरि क्रम करके मांस का पुतरा होताहै और बढ़ता जाताहै तिससे पीछे उसी मांस विषे भिन्नभिन्न अंग उपजते हैं जैसे मांस त्वचा नाड़ी मेद अस्थि केश उत्पन्नहोतेहैं बहुरि तेरे अंगों का आकार भिन्न भिन्न भांति रचा है जैसे शीश हाथ पांव अंगुरी नासिका कान दांत और नेत्र बनाये हैं और केते और अंग तेरे शरीरके भीतर रचेहैं जैसे उदर नाभि हृदय और अनेक इसभांतिके जो अंगहैं सो सबका आकार और गुण और मर्य्याद भिन्न भिन्न करके रची है बहुरि एक एक अंग विषे अनेक सम्बन्ध मिलाये हैं जैसे नेत्र कि देखने में इनका आकार थोड़ाही भासताहै सो तिनको सात परदे मिलाकर बनायाहै और एकएक परदेका भिन्न भिन्न गुणहै सो जब एक परदेको कुछ खेद पहुंचताहै तब तेरी दृष्टि मंद होजाती है पर जब नेत्रोंहीकी आश्चर्यताको विस्तार करके कहिये तो केतेपत्र और पोथी लिखेजावें बहुरि जब तू अपने शरीरके अस्थिपंजरोंकी ओर देखे तब यहभी बड़ा आश्चर्यरूपहैं प्रथम तो शरीरकी दृढ़ता इन्हीं करकेहोतीहै और जल की बूंदसे ऐसे कठोर अस्थि कपोंका रचेहैं बहुरि इन को भिन्न २ मर्य्याद सहित उपजायाहै और भिन्न २ गुणोंकेहेतु निपजायेहैं बहुरि अस्थिपंजरों को शरीरका खंभा बनायाहै और

और अंग उनके ऊपर ठहराये हैं और जब सारे शरीरविषे एकही हाड होता तब यह मनुष्य नवने विषे दुःखीहोता और जब भिन्नहोते तब खड़ा न होसक्ता ताते पीठ और ग्रीवा और गोड़ोंके हाड़ोंको मोहरेदार उत्पन्न कियाहै और एक दूसरे विषे मिलाय राखेहैं इस करके कि यह पुरुष नवने और चलने और खड़ेहोनेको समर्थहोवे बहुरि अस्थियोंके मोहरेपर नाड़ी लपेटी हैं और उनको भलीप्रकारे दृढ़ कियाहै सो एकही शीशको पचपने अस्थि मिलाकर बनायाहै ऐसेही केते दांतों के शीश तीक्ष्ण कियेहैं और केतों के शीश चौड़े बनाये हैं ताते एकदांत अनाज को काट डारतेहैं और एक निकारके पीसडारते हैं बहुरि शरीरविषे तीन सरोवर रचेहैं सो शीशरूपी सरोवर से नाड़ी के प्रवाह कन्धों विषे पसरते हैं और कन्धों के मार्गसे सर्व शरीरमें प्रवेश करते हैं ताते इन्द्रियोंको बलपहुँचताहै और अपने २ कार्यों को सावधान होती हैं ऐसेही दूसरा सरोवर जठरहै सो तिसके नाड़ीके मार्ग कर सर्व इन्द्रियों को आहार पहुँचता है और तीसरा सरोवर हृदय स्थानहै सो इनकी नाड़ियों करके सर्व शरीर सजीव होताहै ऐसेही तू अपने शरीरके एक एक अंगको विचारकरके देख कि महाराज ने इनको कैसी युक्तिकर रचाहै और इनमें कैसे कैसे भेद और गुण राखेहैं जैसे यह नेत्र कैसे कौतुकरूप रचेहैं और धूरकी रक्षाके निमित्त इनके ऊपर प्याली रखीहै सो इस विषेभी बड़ा आश्चर्य यहहै कि देखनेमें नेत्रोंका आकार अल्पमात्र भासता है और पृथ्वी आकाश पर्यन्त सर्व पदार्थ इनकी दृष्टि विषे समाइ जातेहैं ऐसेही श्रवणोंविषे कड़वा जल राखाहै इस करके कि इनमें कोई कीड़ा प्रवेश न करजावे बहुरि इन का आकार सीपकी नाईं रचाहै ताते शब्दको इकट्ठा करके भीतर पहुंचाइ देते हैं पर जब ऐसेही मुख और हाथ पांव अथवा और अंगों की आश्चर्यता का बखान करिये तो बड़ा विस्तार होताहै तात्पर्य्य यह कि जब किसी प्रकार तुझ को ऐसे विचारका मार्ग खुले तब तू उत्पन्न करनेहारे महाराज की बड़ाई और समर्थता और दया और उसकी बूझको भलीप्रकार पहिचाने काहेसे कि महाराज ने नखशिखपर्यन्त आश्चर्यरूपही रचाहै पर जब तू किसी मनुष्य की लिखी हुई मूर्तिको देखताहै तब उसकी सुन्दरता देखकर विस्मयवन्त होता है और लिखनेहारेकी स्तुति करताहै बहुरि ऐसेभी जानताहै कि महाराजने वीर्य की बूंदसे तेरे शरीरविषे कैसी अनूप चित्रकारी रचीहै और यहभी बड़ा आ-

स्वर्य है कि शरीरके अंगोंकी चित्रकारी का चितेरा और तिसनि दृष्टि आवती पर तू भगवत्की बड़ाई को विचारकर आश्चर्यवान् नहीं होता उसकी परमवृक्ष और पूर्ण समर्थता को देखकर तू चाकर नहीं होता और की परम दयाको भी तू कदाचित् नहीं पहिचानता काहेसे कि जब गर्भ विषे तुझको आहारका अधिकारी देखा और ऐसे भी जाना कि जो मुख इसका खुलता है तो इसके मुख विषे रुधिर प्रवेश करेगा ताते इसका होवेगा इसकारण से ऐसे विषम स्थान विषे तुझको नाभि मार्ग से आहार पाया और पूर्ण अनुग्रहके साथ तेरी प्रतिपाल कीनी है बहुरि जब तू गर्भसे बाहर निकसा तब महाराजने नाभिके मार्गको तत्कालही मूंददिया तेरे मुखको आहारके निमित्त खोलदिया और तिसपर भी तेरे शरीरकी वा देखकर तेरी माताके स्तनों विषे दूध उत्पन्न किया और उसको तेरा बनाया बहुरि स्तनों का गोश इसप्रकार छोटा किया कि तू उसको मुख कर सुखसे ही चूसलेवे और छिद्र उनका अत्यन्त सूक्ष्म बनाया इस इकट्ठा दूधका प्रवाह तुझको खेद न देवे और थोड़ा २ तेरे कंठविषे चला बहुरि तेरी माताके उदर विषे ऐसा धोबी स्थितकिया जो सर्वदा रुधिरको दूधकरके भेजता है और तेरी माताके चित्तविषे ऐसी प्रीति उत्पन्न कीनी है जब तू एक घड़ीभी भूखा रहता है तब उसके हृदयका विश्राम दूरहोजाता है बहुरि जबलग तू दूध पीवनेही का अधिकारी था तबलग तेरे दांत उत्पन्न नहीं इसकरके कि मत्तानता सहित जननी के स्तनोंको काट न डारे और जब देह अनाजका अधिकारी हुआ तब भगवत्पाकर आपही दांत उपजआये ताते तू कठोर आहारोंकाभी भक्षण करलेता है परन्तु जो तेरी मूर्खता और की हीनता है सो इसकी मर्यादाभी कुछ पाईनहीं जाती इसकरिके कि यह ऐसी वार्त्ताको तू समझता और प्रत्यक्ष देखता है तौभी उपासना करनेसे राजकी बड़ाईको पहिचानिकर विस्मयको नहीं पावता बहुरि उसकी अधिक सुन्दरता को विचारकर उसके साथ तू प्रीतिभी नहीं करता ताते इसप्रकार श्रीरामजी की रचना को अपने विषे न देखे सो महाअन्धे पशुओं की नाईं बुद्धिहीन है और इस मनुष्य विषे जो श्रीरामजी ने शुद्ध का अधिकार रखा है सो तिसको उसने व्यर्थ खोया बहुरि जो आहार और

ई बिना और कुछ नहीं जानता सो निस्सन्देह ज्ञानरूपी बाग के तमाशे से साथ रहताहै तातें जिज्ञासुजनके समझनेको विचारका वर्णन इतनाही बहुत इसकरके कि जब एक मनुष्योंही की आश्चर्यताका बखान करिये तबजेता कुछ मैंने कहाहै सो तिससे भी लाख गुणा अधिकहै बहुरि ऐसेही महाराजने धरती भी कौतुकरूपरची है और इसी धरतीपर और भी अनेक आश्चर्य उत्पन्न किये हैं सो जबतू अपने आपका विचार करचुके तब चाहिये कि धरतीके आश्चर्यों का विचार करै सो श्रीमहाराज ने इस प्रकार धरती को तेरे निमित्त ऐसा दीर्घ बिछौना बिछायाहै कि तू जिसदिशा विषे चलाजावे तिसीका अन्त नहीं पावता बहुरि इस धरती को पहाड़रूपी मेखोंके साथ दृढ़ करके ठहराया है और महाकठोर पत्थरोंसे प्रवाह प्रकटाये हैं कि भलीप्रकार सर्वदा पृथ्वीपर चलते रहते हैं सो वही प्रवाह इस प्रकार धैर्य्य से बाहर निकसते हैं कि जब एकहीबार उछल पड़ते तब धरती को डुबाइलेते ताते उनको कठिन पत्थरों के तले ठहराइ रखा है ऐसेही तू भलीभांति विचारकर देख कि यह मलिन माटी बसन्तऋतु विषे किसप्रकार प्रफुल्लित होती है और मेघोंकी वर्षा के साथ क्योंकर सजीवहो-जाती है कि इसी अँधेरी माटीविषे अनन्तप्रकारके रंगीन फूल उपजते हैं काहेसे कि भिन्न भिन्नही फूलहैं और भिन्न भिन्नही उनके गुण और रंगहैं और एक दूसरे से अतिसुन्दर हैं ऐसेही जब वृक्षों की ओर देखिये तब उनकोभी रूप और सुगन्ध और फल और गुण न्यारेही न्यारे रचे हैं बहुरि जिसे घासको तू कुछ वस्तुही नहीं जानता सो घास तृणों विषे भी अनन्त गुण और लाभ उत्पन्न किये हैं और सबोंके भिन्न भिन्न रसहैं एक कडुवे हैं एक मीठे हैं एक तीक्ष्णहैं और एक रोगोंको उत्पन्न करते हैं और एक दुःखोंको दूरिकरनेहारे हैं ऐसेही एक तृण शरीरके जीवनरूपहैं और एक महाविषरूपहैं किन्हींका स्वभाव शीतल है किन्हींका उष्णदायक स्वभावहै बहुरि एक वाईरोग को बढ़ावते हैं और एकदूर करडारते हैं ऐसेही एक निद्रा को बढ़ावते हैं एक नींद को क्षीणकरलेते हैं एक प्रसन्नता उपजावते हैं और एक शोकनाश करते हैं बहुरि एक घास पशुओंका आहार बनाये हैं और एकतृणोंको पक्षियोंका आहारकियाहै और एकमृगोंकी जीविका रचेहैं तात्पर्य यह कि बनस्पतिकी जातिही प्रथम तो अगणितहैं बहुरि एक एक वृक्ष तृण फूलों विषे असंख्य गुणरखेहैं ताते जब तू एक चित्तहोकर इन

का विचारकरे तब महाराजकी पूर्ण समर्थताको प्रसिद्ध पहिंचाने अपना उन्हा बड़ाईविषे तेरी बुद्धि लीनहो जावै ऐसेही श्रीरामजी ने जो कैसे उत्तम पदार्थ पहाड़ोंविषे उत्पन्नकिये हैं सो तिनकाभी बखान नहीं करसक्ते जैसे चांदी सोना हीरा लाल पन्ना आदिक जो मनुष्योंका शृंगारहै सो सबोंकी खानि पर्वतोंमें राखी है बहुरि लोहा और तांबा और कली आदिक धातु जो बासनों के निमित्त रची हैं सो इनकी उत्पत्तिका कारण भी पहाड़ हैं ऐसेही गंधक हरताल शिंगरफ आदिक जो अनेक गुणदायक पदार्थ हैं सो यह भी पहाड़ों विषे प्रकट किये पर यह लवण जिसको तू सबसे नीचे जानताहै सो सर्व भोजनोंको स्वादु करके होताहै जाते जिसदेश विषे एक लवणही न होवे तब उसदेशविषे सर्व व्यंजन रसहीन होजावें और लोगों को रोग बढ़जावे इस करके कि लवण के केते रोगों का नाश करना है इसप्रकार तू विचार करके श्रीरामजी की दया भलीभांति समझ कि तेरे निमित्त प्रथम तो नानाप्रकार के भोजनकिये हैं उनके स्वाद और गुणके निमित्त जलके अंशसे लवण उत्पन्न कियाहै सो का बखान करना भी अपार है पर इस पृथ्वीके ऊपर अनेक प्रकारके जीव जो जाये हैं सो यहभी महाआश्चर्यरूप हैं एक उड़ते हैं और एक पैरोंसे चलते हैं एक तिर्यग्योनिहैं कि उनका चलना उर और उदरके साथ होताहै बहुरि कई के दोदो चरणहैं केते चार चरणवाले हैं ऐसेही केते चौबीसचरणोंकरके चलते हैं बहुरि जब तू पक्षियों और पृथ्वीके कीटोंकी ओर ध्यानकरके देखै तब उनकी भी भिन्न भिन्न रूपहैं और न्यारी न्यारी चालहै और एक दूसरे से सुन्दर बना हैं और जो जो जिसको अपेक्षा थी सो सबही दीनी है बहुरि सबको उनके अपने आहारका मार्ग दिखायाहै और अपने अपने पुत्रोंकी प्रतिपाल सिखाई है और अपने घोंसला और घरबनावने की बुझभी दी है जावे तू मकोड़ा की ओर दृष्टि करके देखै ना समयको पहिंचानकर अपने आहार को क्योंकर इकट्ठा करताहै और अपने बिल विषे अनाजके कणरखताहै जो भली विधि से जिसका अंकुर न होवे ऐसेही मकड़ी की ओर जब तू भलीप्रकार देखै तब जानैगा कि वह अपने गृहको क्योंकर रचतीहै और अपने मुखके थूकका सूत करतीहै और मन्दिरके कोण ढूंढ़कर उसी सूतका ताना बाना करती है बहुरि उसीके विषे अपने बालकोंको रखती है और मक्खी को पकड़नेके निमित्त जाल उनके

कोने विषे छिपबैठती है बहुरि जब माखीको अचानकही पकड़लेती है तब सब ओरसे उसको तारके सूतके साथ लपेटलेती है इस करके कि किसीप्रकार माखी निकस न जावे ऐसेही माखियों को पकड़कर सदैव अपना उदर पूर्ण करती है बहुरि जब भृगी माखीही की ओर दृष्टि करिये तब देखिये कि यह माखी भी अपना घर कैसा अनूप बनावती है तात्पर्य यह कि महाराजने अपनी दयाकरके कीटों विषे भी ऐसी उत्तम बूझ और अनुभव राखी है कि उसका वर्णन कुछ नहीं किया जाता जैसे मच्छरको समझायाहै कि शरीरका रुधिरही तेरा आहार है ताते उसका डंक तीक्ष्ण और सूक्ष्महै और भीतरसे खालीरचाहै सो जब शरीर विषे उसी डंकको लगावताहै तब तुरतही रुधिरही को खैंचलेता है बहुरि उसको ऐसा चपल बनायाहै कि जब कोई उसको पकड़ाचाहे तब शीघ्रही लखिलेताहै और भागजाताहै बहुरि तुरतही फिर आवताहै ताते जो इसमच्छरके बुद्धि और रसना होती तो अपने उत्पन्न करनेहारे स्वामी की ऐसी स्तुति करता कि सब लोग सुनकर आश्चर्यवान् होते पर जब विचार की दृष्टि के साथ देखिये तब उसकी अवस्थाही महाराजकी महिमाको स्वतः लखावती है सो ऐसे आश्चर्य जीवमी अनतहीने रचे हैं ताते इतनी समर्थताभी किसी मनुष्य विषे पाई नहीं जाती जो लाखकोटि आश्चर्यों विषे एक आश्चर्यको भी पहिचाने अथवा एक आश्चर्य का वर्णन करे पर तेरे चित्त विषे इतना विचार भी नहीं उपजता कि सुन्दर आकार और उत्तम अंगोंसहित जो नानाप्रकार के यह जीव हैं सो सब आप करके उत्पन्न हुयेहैं कि तैंने उनको बनायाहै कि तेरा और उनका उत्पन्न करनेहारा एक वही महाराजहै ताते महाराजकी शक्ति वचन से अगोचरहै सो यद्यपि असंख्य पदार्थ उसकी महिमाको सर्वदा प्रसिद्ध आपही लखावते हैं पर उसने अपनी माया करके इस मनुष्यके नेत्रोंको मन्द करडारा है जो ऐसे आश्चर्योंको नहीं देखसके और इस जीवकी बुद्धिभी ऐसी अचेत कररखी है कि रंचकमात्र भी अद्भुत रचनाका विचार नहीं करती यद्यपि नेत्रों के साथ नाना प्रकारके कौतुक देखताहै और श्रवणों करके अनेक प्रकारकी स्तुति सुनता है तोभी जिसप्रकार श्रीरामजूकी महिमा जानने योग्यहै तैसे नहीं जानसका ताते ऐसे अल्पबुद्धि जीवों का सुनना और देखना निस्सन्देह पशुओं की नाई है काहेसे कि महाराजने कलम कागज विना अनेक भांति के आश्चर्यरूप अक्षर

लिखे हैं तिनको नहीं देखसके और यह मकोड़ा छोटासा कीड़ा है सो जब तू इसी को और भलीप्रकार ध्यानकरे तो उसकी नगर आकृति बनाही सर्वत्र इस प्रकार कहती है कि हे मूर्ख मनुष्य! जब कोई चितेरा पुरुष कागज पर मूर्ति लिखता है तब तू उसको देखकर लिखनेवाले की विद्या और चतुराई को भलीभांति समझता है और विस्मित होता है पर जब तू एकचित्त होकर मेरी ही ओर दृष्टिकरे तब भगवत की सम्पूर्ण समर्थता और पूर्ण विद्या को पहिंचाने इस कारण कि यद्यपि मेरा आकार देखने विषे अतिछोटा है पर तथापि उस महाराज ने मेरे एतेही शरीर विषे किसप्रकार भिन्न अङ्ग रचे हैं जैसे मस्तक उदर सीना हाथ पैर नेत्र श्रवण इत्यादि और आहार के पचाने का स्थान और मलके निकलने का ठौर इत्यादिक सबही सामग्री मुझको दीनी है और मेरे शरीर विषे चरनता रानी है और तीन खण्ड स्थित किये हैं सो तीनों को आपस में मिलाइ राखा है और मेरी कटि में कमरबन्द पहिराया है और मेरा जामा स्याह बनाया है सो यद्यपि तू अपने चित्त विषे ऐसा अनुमान करता है कि मैं और सबही जीवों से निर्बल हूं पर जब विचार करके देखै तब तू निस्सन्देह मेरा इतना ही समझेगा कि तू अनेक यत्नों के साथ अनाजों को जोतता और परिश्रम करता है और बहुत इकट्ठा करके धराइ रखता है और मेरे हृदय विषे महाराजने ऐसी शक्ति राखी है कि मैं सुगन्ध लेकर तुम्हारी घरों के मार्ग में उसी अन्न को ढूंढ़ लेता हूं सो तेरा सम्पूर्ण वर्ष का अनाज नहीं रहता और मैं अपनी जीविका संग्रह करता हूं पर तुझको वर्षा और जाड़े की खबर कुछ नहीं होती तातें नये अनाज के दो भाग करै है और स्वाद विषे रहजाते हैं और मुझको महाराज अचानकही मेरी समझ खोलि देता है तातें मैं आगेही राखने, अनाज को उपजाने वाला हूं इसी कारण से मैं अपने स्वामी का सदा धन्यवाद करता रहता हूं हे मुग्ध पुरुष तू तो कृतघ्न है कीनी है और तुझ ऐसे उत्तम को मेरा इतना भी साधन नहीं है ऐसेही, पृथ्वी, स्वर्ग, आकाश जगत जेते जीव हैं सो अपनी अपनी भाषा करके साथ सबही महाराज की स्तुति करते हैं सबही पृथ्वी और आकाश के अणु भी मौन से अपने मालिक की स्तुति करते हैं पर यह मनुष्य आंखवाला उनके दर्शन को भी न जानता, सुनै तेही नहीं क्योंकि प्रगट किये का आकर्षण करना इसी है सो जिसी प्रकार से पढे कामसे कि तेरी भाषा का मन्त्र भी अक्षर पवन है सो सबही समर

के अगेहैं और यह धरतीभी समुद्र विषे टापूकी नाईं है तो चाहिये कि तू समुद्रों की आश्चर्य्यता का भलीप्रकार विचारकरो इस करके कि समुद्रों विषे धरती से भी विशेष आश्चर्य्य उत्पन्न किये हैं और जेते जीव इस धरतीपर प्रकटहैं तेते जल में भी उनकी नाईं विद्यमानहैं पर जल विषे ऐसेभी अनेक जीवहैं जिनकी नाईं धरतीपर जीव उत्पन्न नहीं हुये बहुरि समुद्रों विषे एक ऐसे सूक्ष्मजीव रचे हैं जो दृष्टिही नहीं आवते और एक ऐसे स्थूल हैं कि उनकी पीठ को धरती जानकर जहाजोंके लोग जाइ उतरते हैं सो इसी समुद्रोंकी रचना विषे विद्यावानोंने केतेही ग्रंथ रचे हैं ताते इनकाभी सम्पूर्ण विस्तार नहीं कहसक्ते पर तू एकचित्त होकर देख कि समुद्र विषेही ऐसे जीव बनाये हैं कि उनका सीपही शरीरहै सो जब मेघका समय होताहै तब यह समय उनके चित्तविषे बड़ाही भास आवताहै ताते समुद्रसे बाहर निकसकर मुखको खोलते हैं बहुरि मेघकी बूंदको लेकर मुखको मूदलेते हैं और समुद्रके नीचेजाइ ठहरते हैं सो इसी बूंदको आते अन्तर बीर्य्य की नाईं पालते हैं बहुरि कुछ कालके पीछे वही उत्तम मोती होते हैं सो उनहींका पहिरावा मनुष्य पहरते हैं ऐसेही समुद्रों विषे एक पत्थर होवे हैं सो बेलकी नाईं उनका गुच्छा उपजता है और नित्यप्रति बढ़ताजाता है तिससे मूंगारूपी फल उत्पन्न होताहै बहुरि और भी नानाप्रकार के रत्न जो समुद्रों विषे रचे हैं सो वह भी एक दूसरेसे कौतुकरूप हैं और भिन्न भिन्न गुण रखते हैं ऐसेही समुद्रों विषे जहाजों का जो चलना है और जिसप्रकार महाराजने जहाजोंके चलनेके निमित्त खेवटों को सीधे और उलटे पवनकी सूझ दीनी है और जिसप्रकार नक्षत्र की विद्या उनको सिखाई है जो समुद्रों विषे जहाजोंका चलना तारागण्डल के आश्रय होताहै सो यह भी बड़ा आश्चर्य्य है काहेसे कि उस ठौरविषे जलबिना और कुछ चिह्न नहीं सूझता और वह जहाज देश देशान्तरोंविषे सीधेही चले जाते हैं पर जब एक जलतत्त्वही को भलीप्रकार विचार कर देखिये तब इसका रूप और निर्मलता और स्वाद और सम्बन्ध भी आश्चर्यरूप है काहे से कि जेता जल इकट्ठा होताजावे सो किसी प्रकार इसका सम्बन्ध तोड़ा नहीं टूटता बहुरि चर औरअचरोंका जीवनरूपहै ताते जब किसीको तृषाके समय यह जल हाथ न आवे तब सर्व सम्पदा देकर भी पानीको पानकिया चाहताहै बहुरि जब वही जल शरीर विषे अटकजावे तौभी सर्व सामग्री देकर उस को बाहर निकासा

चाहता है ऐसेही पवन और मेघमण्डल की रचनाभी अद्भुतरूप है जैसे शेष आकाशविषे जो यह पवन सदैव चलता रहताहै सो यहभी समुद्रोंकी नाईं सदा उछलता है और इसका स्वरूप ऐसा है कि नेत्रों करके देखा नहीं जाता सो यहभी शरीरधारी जीवों का जीवनरूप है इस करके कि अनाज और जलकी अभिलाषा किसी एक समय विषे होती है पर जब एक पलकपर्यन्त इस के प्राण रोकेजावें तब निस्सन्देह उसी समय मरने लगता है सो तुमको इस वार्त्ता की कुछ खबरही नहीं तातें इसका बखान करना भी मर्य्यादा से रहित है पर तू भलीप्रकार विचार करके देख कि इसी मण्डल विषे बादल और बरफ और गरज और बिजली आदिक कैसे कौतुक बनाये हैं जैसे यह बादल अचानकही इकट्ठे मिलकर आकाशको आच्छादित करलेते हैं सो इनका उपजना कबहूं समुद्रोंमें होताहै और कबहूं पहाड़ोंसे उपज आवते हैं अथवा कबहू केवल आकाशही में प्रकट होते हैं तातें जिन स्थानों विषे जलकी अधिक चाह होती है तहां धैर्य से एक एक बूंद वर्षावते हैं सो जिस जिस जीव और जिस जिस खेती अथवा वनस्पति में जल पहुँचना होताहै तब महाराज की आज्ञानुसार वहांही जलको पहुँचावते हैं और वनस्पतिके फलोंको हरा करते हैं सो उन्हीं फलोंको सब कोई सर्वदा भक्षण करते हैं पर अचेतता करके महाराजकी ऐसी रचनाको कबहूं नहीं विचार देखते और उसकी सम्पूर्ण दया कोई नहीं पहिचानता बहुरि जब सबही लोग मिलकर मेघकी बूंदोंको गननेलगें तो किसीप्रकार इनका अंत नहीं पा-सक्के और एक ऐसे देखते हैं कि इनमें बरफही बरसताहै बहुरि बरफकोभी जीवों के प्रतिपाल के अर्थ बड़ी युक्तिसे बनाया है इसकरके कि जब केवल मेघों की वर्षाहोवे तब वह जल इकट्ठाही बहजावे और खेतियों को पहुँच न सके तातें महाराज उसी जलको सरदी की प्रबलता के साथ बरफ बनाइ लेताहै बहुरि उसी बरफको सँवारकरके पहाड़ों विषे रखताहै सो ज्यों ज्यों उष्णताकी ऋतु आवती है त्यों त्यों वही बरफ समय पाइकर गलता है तातें झरने और जलके प्रवाह होचलते हैं सो देश देशान्तरोंपर्यन्त जीवोंके कार्य्योंको सिद्ध करते हैं तात्पर्य यह कि महाराजने इस बरफही विषे इतनी दया प्रकट कीनीहै सो ऐसेही सर्व पदार्थों विषे उसकी दया भरपूर है तातें पृथ्वी और आकाश के जेते अणु हैं सो सबही महाराज अपने विचारके अनुसार गुण और प्रयोजन के निमित्त उत्पन्न

किये हैं इसीपर महाराजनेभी कहाहै कि मैंने पृथ्वी और आकाशादिक सर्वसृष्टि को अपनी बूझकी नेतसाथ उत्पन्न कियाहै पर इस भेदको कोई नहीं जानसक्ता बहुरि तारामण्डल और देवतों और उनके स्थानों को भी ऐसा आश्चर्य रूप बनायाहै कि उनके निकट पृथ्वी और समुद्रोंकी रचना निस्सन्देह तुच्छमात्रहै ताते महाराजने तुझको वारम्वार यही आज्ञा कीनी है कि तू तारामण्डल और नक्षत्रों का विचार करके मेरी समर्थना को पहिंचाने काहेसे कि जब तू मेरी विचित्ररचनाका विचार न करे और बूझ बिना नक्षत्रों और आकाशकी नीलता को देखतारहे तब यह देखना तेरा पशुओंकी नाई होताहै पर तेरी तो ऐसी मद बुद्धि है कि अपने शरीरके आश्चर्यों की ओरही विचारकर नहीं देखता तब आकाश के आश्चर्यों को क्योंकर पहिंचाने ताते जिज्ञासुजन को इस प्रकार प्रमाण है कि शनै शनैः विचार करके अपनी बुद्धिको बढ़ावे प्रथम तो अपने शरीरके आश्चर्योंका विचारकरे बहुरि धरती पर जो नानाप्रकारके जीवहैं तिन के आश्चर्यों को विचारकी दृष्टि सहित देखे तिससे पीछे वनस्पति और पहाड़ोंकी रचना जो अद्भुतरूप है तिनकी ओर भलीप्रकार चित्त देवे बहुरि समुद्रों की रचनाके विचार विषे सावधान होवे इससे उपरान्त मेघमण्डल के कौतुकोंका विचारकरे ऐसेही पुरियों और नक्षत्रों की आश्चर्यताको भलीभांति समझे बहुरि आकारवन्त जेते पदार्थ हैं सो तिनसे उल्लंघित होकर निराकार तत्त्वों का विचारकरे तब ऐसी युक्तिकरके श्रीराघवजी के स्वरूपको विचारनेका अधिकारी होताहै पर प्रथम रचनाके विचार विषे ग्रहों और नक्षत्रों का विचारना इसप्रकार है कि महाराजने इसब्रह्माण्डकी उत्पत्ति और स्थिति और संहारके निमित्त आश्चर्यरूप देवता और ग्रह नक्षत्र रचे हैं और द्वादश राशिको उपजाया है सो सबोंकी मूर्त्ति और रंग और स्वभाव और स्थान भिन्न भिन्न बनाये हैं और भिन्न भिन्न क्रिया विषे वही स्थित किये हैं बहुरि आकाश विषे सबोंकी न्यारी न्यारी गतिहै ताते जिन्होंका ऐसा तीक्ष्ण वेगहै जो एकमासविषे सम्पूर्ण आकाशकी प्रदक्षिणा करलेते हैं बहुरि एकवर्षपर्यंत और एक बारहवर्षपर्यन्त और एक तीस वर्षपर्यंत ऐसेही एक इससे भी अधिक कालपर्यन्त आकाश की चारों फेर फिर आवते हैं सो इस क्रियाकी आश्चर्यता का भी पारावार कुछ नहीं पायाजाता इसकरके कि यद्यपि तू इस धरतीही के कौतुकों को देखकर आश्चर्यवान् हो

चाहता है ऐसेही पवन और मेघमण्डल की रचनाभी अद्भुतरूप है जैसे मेघ आकाशविषे जो यह पवन सदैव चलता रहताहै सो यहभी समुद्रोंकी नाईं बड़ा उछलता है और इसका स्वरूप ऐसा है कि नेत्रों करके देखा नहीं जाता सो सबही शरीरधारी जीवों का जीवनरूप है इस करके कि अनाज और जलकी अभिलाषा किसी एक समय विषे होती है पर जब एक पलपर्यन्त इस के प्राण रोकेजावें तब निस्सन्देह उसी समय मरने लगता है सो तुमको इस पवनकी कुछ खबरही नहीं ताते इसका ध्यान करना भी मर्य्यादसे रहित है पर तू भलीप्रकार विचार करके देख कि इसी मण्डल विषे बादल और बर्फ और गरज और बिजली आदिक कैसे कौतुक बनाये हैं जैसे यह बादल अचानकही इकट्ठे मिलकर आकाशको आच्छादित करलेते हैं सो इनका उपजना कबहू समुद्रोंसे होताहै और कबहू पहाड़ोंसे उपज आवते हैं अथवा कबहू केवल आकाशही से प्रकट होते हैं ताते जिन स्थानों विषे जलकी अधिक चाह होती है तहां धैर्य से एक एक बूंद बर्षावते हैं सो जिस जिस जीव और जिस जिस खेती अथवा वनस्पति में जल पहुँचना होताहै तब महाराज की आज्ञानुसार वहांही जलको पहुँचावते हैं और वनस्पतिके फलोंको हरा करते हैं सो उन्हीं फलोंको सब कोई सर्वदा भक्षण करते हैं पर अचेतनता करके महाराजकी ऐसी रचनाको कबहू नहीं विचार देखते और उसकी सम्पूर्ण दया कोई नहीं पहिचानता बहुरि जब सबही लोग मिलकर मेघकी बूंदोंको गननेलगें तो किसीप्रकार इनका अंत नहीं पा-इसके और एक ऐसे देखतेहै कि उनमें बर्फही सम्पतारे बहुरि बर्फकोभी जीवों के प्रतिपाल के अर्थ बड़ी युक्तिसे बनाया है इसकरके कि जब केवल मेघों की बर्षा होवे तब वह जल इकट्ठाही बहजावे और खेतियों को पहुँच न सके ताते महाराज उसी जलको सर्दी की प्रबलताके साथ बर्फ बनाइ लेताहै बहुरि उसी बर्फको गैंदाकरके पहाड़ों विषे रखताहै सो ज्यों ज्यों उष्णताकी ऋतु आवती है त्यों त्यों वही बर्फ समय पाइकर गलता है ताते झरने और जलके प्रवाह होजाते हैं सो देश देशान्तरोंपर्यन्त जीवोंके कार्य्योंको सिद्ध करते हैं तात्पर्य यह कि महाराजने इस बर्फही विषे इतनी दया प्रकट कीनीहै सो ऐसेही सर्व पदार्थों विषे उसकी दया भरपूर है ताते पृथ्वी और आकाशके जेते अणु हैं सो सबही महाराज अपने विचारके अनुसार गुण और प्रयोजनके निमित्त उत्पन्न

किये हैं इसीपर महाराजनेभी कहाहै कि मैंने पृथ्वी और आकाशादिक सर्वसृष्टि को अपनी बूझकी नेतसाथ उत्पन्न कियाहै पर इस भेदको कोई नहीं जानसक्ता वहुरि तारामण्डल और देवतों और उनके स्थानों को भी ऐसा आश्चर्य रूप बनायाहै कि उनके निकट पृथ्वी और समुद्रोंकी रचना निस्सन्देह तुच्छमात्रहै ताते महाराजने तुझको वारवार यही आज्ञा कीनी है कि तू तारामण्डल और नक्षत्रों का विचार करके मेरी समर्थना को पहिंचाने काहेसे कि जब तू मेरी विचित्ररचनाका विचार न करे और बूझ विना नक्षत्रों और आकाशकी नीलता को देखतारहे तब यह देखना तेरा पशुओंकी नाईं होताहै पर तेरी तो ऐसी मंद बुद्धि है कि अपने शरीरके आश्चर्य्यों की ओरही विचारकर नहीं देखता तब आकाश के आश्चर्य्यों को क्योंकर पहिंचाने ताते जिज्ञासुजन को इस प्रकार प्रमाण है कि शनैः शनैः विचार करके अपनी बुद्धिको बढ़ावे प्रथम तो अपने शरीरके आश्चर्योंका विचारकरे वहुरि धरती पर जो नानाप्रकारके जीवहैं तिनके आश्चर्य्यों को विचारकी दृष्टि सहित देखे तिससे पीछे वनस्पति और पहाड़ोंकी रचना जो अद्भुतरूप है तिनकी ओर भलीप्रकार चित्त देवे वहुरि समुद्रों की रचनाके विचार विषे सावधान होवे इससे उपरान्त मेघमण्डल के कौतुकोंका विचारकरे ऐसेही पुरियों और नक्षत्रों की आश्चर्य्यताको भलीभांति समझे वहुरि आकारवन्त जेते पदार्थ हैं सो तिनसे उल्लंघन होकर निराकार तत्त्वों को विचारकरे तब ऐसी युक्तिकरके श्रीराघवजी के स्वरूपको विचारनेका अधिकारी होताहै पर प्रथम रचनाके विचार विषे ग्रहों और नक्षत्रों का विचारना इसप्रकार है कि महाराजने इस ब्रह्माण्डकी उत्पत्ति और स्थिति और संहारके निमित्त आश्चर्य्यरूप देवता और ग्रह नक्षत्र रचे हैं और द्वादश राशिको उपजाया है सो सबोंकी मूर्त्ति और रंग और स्वभाव और स्थान भिन्न भिन्न बनाये हैं और भिन्न भिन्न क्रिया विषे वही स्थित किये हैं वहुरि आकाश विषे सबोंकी न्यारी न्यारी गतिहै ताते जिन्होंका ऐसा तीक्ष्ण वेगहै जो एकमासविषे सम्पूर्ण आकाशकी प्रदक्षिणा करलेते हैं वहुरि एकवर्षपर्यंत और एक बारहवर्षपर्यन्त और एक तीस वर्षपर्यंत ऐसेही एक इससे भी अधिक कालपर्यन्त आकाश की चारों फेरा फिर आवते हैं सो इस क्रियाकी आश्चर्य्यता का भी पारावार कुछ नहीं पायाजाता इसकरके कि यद्यपि तू इस धरतीही के कौतुकों को देखकर आश्चर्य्यवान् हो

तोहि इसप तू [illegible] तुरा और महाराज में आकाश विषे इसके भी अनन्त गुण अधिक कौतुक रचे हैं ताहीसे कि जब तक सूर्यहीके आकाश और इसके प्रकाश की मर्यादका विचार करिये तब इसीविषे हमारी बुद्धि थकित होजाती है यद्यपि जब इस वार्ताका विचार करिये कि यह सूर्य एक क्षण विषे कैसे लक्षयोजनों को लांघ जाते हैं तब इसका जानना भी बुद्धिविषे समाय नहीं सक्ता ताते इतनाही जानना चाहिये है कि जब इस सूर्य के चलने और मर्यादको समझनाही कठिन है तब आकाशके [illegible] विस्तारको क्योंकर समझ जानिये और किस प्रकार वर्णन करिये सो यद्यपि यह आकाश ऐसा अपार है तौभी महाराजने अपनी शक्ति करके तेरे नेत्रों विषे [illegible] दिखाया है तात्पर्य यह कि इस प्रकार [illegible] विचार करके तू श्रीभगवान्ह की बड़ाई और पूर्ण ऐश्वर्य को पहिचानने का समर्थ नहीं शक्ति पेषी [illegible] कि जनी [illegible] हमको महाराज ने कृपा कीनी सो जब उसीके अनुसार हमें [illegible] तो बहुत काल बीत जावे और पूर्ण न होवे और [illegible] बुद्धिमानों और ज्योतिषियों के निकट कुछ वस्तु ही नहीं ऐसेही वेत्ताओं और महापुरुषों की [illegible] के निकट तुच्छरूप है यद्यपि विद्यावानों और [illegible] और ऋषि [illegible] और [illegible] आश्चर्य [illegible] [illegible] निकट [illegible] जिन्होंने [illegible] [illegible] [illegible] इसका [illegible] [illegible] तब तू [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] विषे [illegible] है और इस [illegible] [illegible] सो यह [illegible] और [illegible] कि जिसविषे [illegible] दिखाया है यद्यपि [illegible] जो [illegible] [illegible] बनाया है और [illegible] है और [illegible] नहीं है और [illegible] सूर्य और [illegible] [illegible] कि [illegible]

बड़ाहै और तेरे नेत्र महामन्दहैं ताते तेरी दृष्टि विषे इसकी बड़ाई और सुन्दरता समाय नहीं सकती सो इसका दृष्टान्त यह है जैसे राजा के घर विषे किसी कीड़े मकोड़े का घर होवे तब उसने अपनी खांड लेना और कुछ नहीं सूझता ताते राजमहल की सुन्दरता और राज्य की बड़ाई को वह पिपीलिका कुछ नहीं जानती तैसेही जब तू भी मकोड़े अर्थात् चींटी की अवस्था को प्राप्त हुआ चाहता है तब इसीप्रकार शरीर के खान पान की चिन्ता विषे मग्न रहु और जब तू आपको मनुष्य जानता है तब विचार को अंगीकार करके ज्ञानरूपी बाग की सैर कर और बुद्धिरूपी नेत्रों को खोलकर महाराज की विचित्र रचना को देखि जानि तब श्रीरामजी के स्वरूप की आश्चर्यता विषे मग्न और विस्मित होजावैगा॥

आठवां सर्ग॥

भरोसा और एकताके निरूपणमें॥

ताते जान तू कि भरोसा सबगुणों से विशेष है और श्रीरामजी के निकटवर्त्तियों की अवस्था है पर भरोसे की क्रिया का पहिचानना महाकठिन है और सूक्ष्म है सो इसके समझने की कठिनाई का कारण यह है कि जब यह पुरुष किसी मनुष्य अथवा देवता अथवा और किसी जीव जन्तु को श्रीरामबिना कर्मों का कर्त्ता देखे तब जानिये कि राघवजी की एकता को उसने भलीप्रकार नहीं समझा पर जब ऐसेही निश्चय करे कि सब कुछ करनकरावनहारा एक महाराज है तब वेद शास्त्रों विषे पुण्य पाप का जो वर्णन किया है सो ऐसे जानने करके यह सब व्यर्थ होते हैं बहुरि जब सर्व पदार्थों को गुण और अवगुण का कारण देखे तब पदार्थों की पहिचाननेहारी बुद्धि और समझ सब मिथ्या होवेगी और जब श्रीराम बिना और किसी पदार्थ के गुण अवगुण पर भरोसा करे तब निःसन्देह एकता खण्डित होती है ताते जब बुद्धि और शास्त्र और एकता अखण्डित भरोसे को भलीप्रकार समझिये जो किसी की खण्डिता न होवे तब इसप्रकार भरोसे का समझना महाउत्तम है सो गूढ़से गूढ़ है इसीकारण से सब कोई इस क्रिया का पहिचान नहीं सक्ता ताते मैं प्रथम भरोसे की विशेषता वर्णन करता हूं उसका स्वरूप कहूंगा और तिसके उपरान्त भरोसे की अवस्था और क्रिया वर्णन करूंगा॥

अथ प्रकट करनी स्तुति भरोसे की॥ ताते प्रिय जान तू कि महाराजने श्रीगीता को भरोसा ही स्मरणीय कहा है और धर्मशास्त्र भरोसा ही वर्णन किया है और

योगी कहतेहैं कि भरोसेवालेही मेरे प्रियतम हैं इसीपर महापुरुषने भी कहाहै कि
मैंने ध्यान विषे कैसे सहस्र पुरुष इसप्रकार देखे जो कष्ट और साधना बिना गुन
भेदी मुक्तिपदको प्राप्तहुये तब मैंने पूछा कि यह पुरुष कौनहैं तब आकाशवाणी
हुई कि जिन्होंने मन्त्र यन्त्र और टोनेपर प्रतीति नहीं कीनी और सर्वथा श्रीराम
पर भरोसा राखाहै सो यह पुरुष यही हैं बहुरि योगी कहतेहैं कि जिसप्रकार महा
राजपर भरोसा करने योग्यहै सो जब तुम ऐसेही प्रतीति राखो तब यत्न बिनाही
तुम्हारी जीविका तुम को पहुँचतीहै जैसे पक्षी नित्यप्रति भूखे उठधावते हैं और
रात्रिको तृप्तहोकर शयन करतेहैं और योगी कहतेहैं कि जो पुरुष अपने चित्त
विषे एक श्रीरामहीकी टेक रखताहै तिनकी सर्व सम्पदा श्रीरामही होतेहैं और
अचिंत्यही महाराज उसको आशा और तृष्णासे रहित जीविका पहुँचावता है
बहुरि जो पुरुष संसारके पदार्थोंकी टेक रखताहै तब महाराज उसको पदार्थ के
आश्रयही छोड़ देताहै इसीपर एक वार्ता है कि एक सन्त भरोसेवाले को जब
अग्निके कुण्ड विषे सन्दूकमें डारकर डारतभये तब वह सन्त कहनेलगा कि श्री
रामजीकी सहायता परमसुखदायकहै ताते मुझको उसी की आशाहै सो जबहूं
अग्निकुण्डविषे प्राप्त न हुआथा तब मार्गमें एक देवताने आयकर मेरे कहा कि
तुम कुछ चाहतेहो तब उन्होंने कहा कि मैं तुमसे तो कुछ नहीं चाहता तात्पर्य
यह कि उन सन्तने श्रीरामहीको सहायक कहाथा सो इसी वचनके निर्वाह करके
स्तुतियोग्य हुआ बहुरि एक सन्तको आकाशवाणी हुईथी कि हे साधो जो
पुरुष एकचित्त होकर मेराही भरोसाकरे तब यद्यपि पृथ्वी आकाश के सर्व जीव
उसके साथ विरुद्ध करें तोभी मैं उसको कुछ खेद नहीं पहुँचने देता इसीपर एक
अनुरागीने कहाहै कि एकबार बिच्छूने मेरे हाथको डसा तब मेरी माता ने श्री
रामदुहाई देकर मुझको कहा कि तू हाथको बाहर निकाल जो इसके ऊपर मन्त्र
पढ़िये तब मैंने दूसरे हाथको निकाला और उसीके ऊपर पत्री ने मंत्र पढ़ा इस
करके कि मैंने रामचन्द्रके वचनको सुनाया कि भरोसेवाले पुरुष टोने और मन्त्रों
पर प्रतीति नहीं रखते इसीपर एक सन्त योगप्रधानने कहाहै कि मैंने एक मद
री से पूछा कि तू आहार कहांसे पावता है तब वहभी कहता भया कि मैं
इस वार्ताको नहीं जानता ताते तू जीविका देनेहारे भगवन्तही से पूछ कि मुझे
को कहांसे जीविका देताहै बहुरि एक राजकुमारने निर्मल पुरुष से पूछा कि तू राम

दिन तो भजन विषे व्यतीत करता है ताते तेरी उदरपूर्ति क्योंकर होती है तब उसने मुख और दांतों की ओर सैनकर कहा कि जिसने चाकी बनाई है सोई अनाजको लावताहै बहुरि एक प्रीतिमान् ने एक सन्त से पूछाथा कि मैं कौनसे नगरविषे जायरहूं तब उसने कहा कि तू अमुकनगर विषे जायरह बहुरि उस प्रीतिमान् ने पूछा कि वहां मेरी जीविका क्योंकर होवेगी तब सन्तने कहा कि जीवोंके हृदयपर प्रतीतिकी हीनता और संसार अधिक प्रबलहोरहाहै ताते उपदेश को अंगीकार नहीं करते ॥ अथ प्रकट करना स्वरूप एकता का इसनिमित्त कि भरोसेकी नींव एकताके ऊपरही दृढ़ होती है ॥ ताते जान तू कि भरोसा इस मनुष्यके हृदयही की उत्तम अवस्थाहै और उत्तमधर्मका फलहै सो यद्यपि धर्मके द्वार अनन्तहैं पर भरोसा सबसे विशेषहै सो भरोसा तबहीं दृढ़ होताहै जब इस मनुष्य के हृदयविषे दोप्रकारकी प्रतीति दृढ़होवे एक तो श्रीरामजू की एकताको भलीप्रकार समझना और उसी के ऊपर प्रतीति करनी १ बहुरि महाराजको परम कृपालु दयालु और उदार जानना २ सो एकताका बखान करनाही अमित है और एकताकी विद्यामी और सब विद्याओंका अन्तहै पर जेती कुछ एकता भरोसेकी दृढ़ता के निमित्त चाहतीहैं सो मैं तिसकाही कुछ बखानकरताहूं ताते जान तू कि एकता चारप्रकारकी है सो एक तो फलरूपहै १ और एकफलका रसहै २ बहुरि तीसरी एकता त्वचारूपहै ३ और चौथी त्वचाकी भी त्वचाहै ४ ताते प्रसिद्ध हुआ कि दोप्रकारकी एकता फलरूप है और दोप्रकारकी एकता त्वचावत्‌है जैसे पिस्ते और बादामकी दो त्वचाहैं और दोफल होतेहैं सो एकफल गिरीका नाम है और दूसरा जो गिरीका रस निकसताहै सो फलका भी फल और साररूप है ताते प्रथम एकता यह है कि मुखसे एक श्रीसीतारामही को सबका मूल और समर्थ और कर्त्ता कहना और हृदयविषे प्रतीति कुछनहीं रखनी सो यह एकता पाखण्डियों की है १ बहुरि दूसरी एकता यह है कि देखादेखी करके हृदय विषे कुछ प्रतीति करनी अथवा पण्डितों की नाईं विद्याकी युक्तियोंकरके हृदय विषे प्रतीति रखनी २ बहुरि तीसरी एकता यहहै कि हृदयके नेत्रोंके साथ प्रत्यक्ष देखे जो सबोंका मूल एक श्रीरामही है और यथार्थ की दृष्टिकरके समर्थ और कर्त्ता वही है और सब पराधीन और उनके प्रेरेहुये चलते हैं सो जब ऐसे ज्ञान का प्रकाश इस मनुष्य के हृदय विषे उपजता है तब यह वार्त्ता उसको प्रसिद्ध दृष्ट

जानती है, पर यह अवस्था पण्डितों और मुमुक्षुजीवों की नाईं नहीं होती ऐ-
से कि वह प्रतीति वचनों की युक्ति और देखादेखी करके होती है और तीसरी
एकता केवल हृदय का प्रकाश है और ज्यों का त्यों दर्शन है सो यथार्थ दर्शन
और वचनों की प्रतीति विषे बड़ा भेद है जैसे कोई पुरुष इसप्रकार प्रतीति करे कि
अमुक पुरुष अपने गृह विषे निस्सन्देह है इस करके कि मैंने अमुक पुरुष से सु-
ना है सो यह संसारीजीवों की प्रतीति की नाईं है जो शास्त्र गिनासे सुनकर भी
ब्रह्मजी को एक मानते हैं बहुरि विचारवानों की प्रतीति ऐसी है जैसे कोई पु-
रुष किसी पुरुष के द्वारपर घोड़े और टहलुवे को प्रत्यक्ष देखे तब इस युक्ति करके
प्रतीति करे कि वह पुरुष भी निस्सन्देह गृह विषे होवेगा और तीसरी विचारवानों
की एकता इसप्रकार है जैसे कोई पुरुष घरवाले मनुष्य को प्रकट जाय देखे ताते
इस तीनप्रकार की प्रतीति विषे बड़ाही भेद है पर यद्यपि यह तीसरी एकता म-
हाउत्तम अवस्था है तौभी नानात्व दृष्टि विषे दूर नहीं होती इस करके कि ब्रह्म
को भिन्न जानता है और सृष्टि को भिन्न जानता है ताते यह भी प्रकट द्वैतरूप है।
बहुरि चौथी एकता यह है कि सब को एकही देखे और भिन्न कुछ न जाने सो
इस एकता विषे द्वैत का अंश कुछ नहीं रहता ताते सन्तजनों ने इस अवस्था
को निरद्वन्द्वपद कहा है इसीपर एक वार्ता है कि एक ज्ञानवान् पुरुष ने एक
संतोषवान् को वन विषे फिरता देखा तब उससे पूछता भया कि तू क्या सर्वथा
यतन भ्रमण करता है तब उस संतोषवान् ने कहा कि मैं निराश वृत्ति के साथ
भ्रमण करके भरोसे को दृढ़ किया चाहता हूं बहुरि ज्ञानवान् ने कहा कि जब तेरी
सर्व आयुष् उदरपूर्ति विषे व्यतीत हुई तब निरद्वन्द्वपद विषे स्थित कब होवेगा
ताते प्रसिद्ध हुआ कि एकता चारप्रकार है सो एक पाखण्डियों की एकता बा-
दामरूपी हरित त्वचावत् है सो किसी कार्य में नहीं आवती ताते उस विषे इतना
प्रयोजन है कि इसकी त्वचा के पवित्र होने के निमित्त मज्जा रखती जाती है
तैसेही पाखण्डियों की एकता से भी और कुछ गुण नहीं होता पर इस वि-
इतनाही कार्य है कि धर्मशास्त्रवाले तिनको मार नहीं देवें बहुरि दूसरी ज्ञा-
नरूपी त्वचा होती है सो बादाम गिरी के ऊपर रहती है ताते गिरी विषे कीड़ा
प्रवेश नहीं करता सो यद्यपि इस दूसरी त्वचा का गुण प्रकट है तौभी गिरी के
स्वादसमान कुछ निपजना नहीं रखती तैसेही विचारवानों की एकता और कर्म-

वादियों की प्रतीति यद्यपि नरकों की अग्निसे बचावती है तौभी विचारवानों के आनन्द से रहित है बहुरि, यद्यपि एक तीसरी एकता बादामों की गिरीवत् अधिक स्वादी है तौ भी जब उसका रस निकास लीजिये तब गिरी भी फोकट रहजाती है तैसेही तीसरी एकता भी द्वैतदृष्टिसे रहित नहीं होती ताते चौथीही एकता पूर्ण पदहै इसकरके कि, चौथे पदवाला सबको एकही देखताहै और एकही मानताहै बहुरि आपभी उसी एकता विषे लीनहोजाताहै और जब तू इस प्रकार प्रश्नकरे कि यह वार्त्ता मेरी समझ में नहीं आती ताते मुझमे खोलकर कहिये कि धरती आकाशादिक जेती कुछ सृष्टि है सो सबही भिन्न २ रूपहै ताते सबको एकरूप क्योंकर समझिये सो इसका उत्तर यहहै कि पाखण्डियों और विद्यावानोंकी एकता तो प्रकटही युक्तिकरके समझ सकते हैं पर तीसरी और चौथी एकता का समझना कठिन है सो चौथी एकता भरोसे के साथ कुछ सम्बन्ध नहीं रखती ताते मैं तीसरी एकताहीको खोलकर कहूंगा इसकरके कि जिसको चौथी एकताकी बूझ प्राप्त न हुईहोवे तिसको बखानकरके सुनानाभी कुछ लाभदायक नहीं होता पर अब इस ठौर विषे जो वचन आनपहुँचा है ताते मैं संक्षेप करके चौथी एकताका भी कुछ बखान करताहूं कि यद्यपि बहुत पदार्थ भिन्न भिन्न रूप और भिन्नभिन्न क्रियासंयुक्त होते हैं पर विचारवान् परस्पर उनका सम्बन्ध देखकर एकही स्वरूप जानताहै जैसे मनुष्यके शरीर विषे त्वचा मांस अस्थि हाथ पांव आदिक और भी अनेक अंगहोते हैं पर विचारकी दृष्टिकरके उसको मनुष्य एकही कहते हैं ताते मनुष्य को देखनेहारा पुरुष ऐसेही कहता है कि मैंने अमुक पुरुषको देखाहै और उसके अंगोंको स्मरण विषे भी नहीं लावता तैसेही पूर्णज्ञानकी अवस्थाभी इसीप्रकार है कि ज्ञानीपुरुष यथार्थ की दृष्टि विषे सर्व पदार्थों को एक रूपही देखताहै इसकरके कि धरती और आकाश और नक्षत्र आदिक जेती कुछ सृष्टिहै सो एकही शरीरकी नाईं है और शरीरके अंगों की नाईं सर्व पदार्थ परस्पर सम्बन्ध रखते हैं पर इन सर्व पदार्थोंकी एकताभी एक भाव करके समझनी योग्यहै और सर्व प्रकार एकता नहीं होसकती जैसे शरीरके सर्व कर्म्मों विषे एक जीवही की सत्ता वर्त्तमानहै पर शरीरको सर्व जीवके साथ एकता नहीं कहीजाती सो इस भेदको मन्दबुद्धि मनुष्य समझ नहींसक्ते जैसे भगवत्‌नेभी कहाहै कि मनुष्यको अपने शरीरकी नाईं बनायाहै इसीकारण से

मैं इस वचनको शुद्धही माना चाहता हूं कि ऐसे वचनों विषे ज्ञानबुद्धि और मेरा मन उनका अधिक होजाता है ताप जीवको दूसरा जो शरीर की इन्द्रियां हैं तिसका समझना इसप्रकार है कि सूर्य चन्द्रमा तारे पवन आदिक जितने पदार्थ हैं सबके सब पुरुषके अधीन हैं जैसे लिखारीके हाथमें कलम पकड़ी है कि आप करके हलने के योग्य कुछ नहीं ताते जैसे कलमका हलना चलना प्राप्त करके जानना। अथवा यह है जैसा कि मैं समर्थ अथवा किसी मनुष्यकी कल्पना भी आप करके जानना अथवा यह इस करके कि मनुष्य तो अपने आप करके पराधीन और बेबस हुआ रहता है जैसे मैंने पीछे भी कुछ वर्णन किया है कि जीविका कर्म तन के आश्रय हैं और वा वाहके अधीन हैं यहूदि वाहका उप-जना और न उपजना किसके अधीन नहीं ताते प्रसिद्ध हुआ कि यह मनुष्य केवल पराधीनहै परन्तु इसवार्ता को तब समझेगा जब मनुष्य के सर्व वस्तुओं को भिन्न भिन्न करके कहिये सो सबही कर्म तीन प्रकारके प्रसिद्ध हैं प्रथम तो स्वभावके कर्म हैं जैसे नदी जो मनुष्यको डुबाय लेती है सो यह उसका स्वाभाविक कर्म कहावता है तैसेही मनुष्य का भी यह आदि स्वभाव है कि जब जल विषे चरण धरे तब नीचेही को चलाजाता है यहूदि दूसरा कर्म [illegible] कहावता है जैसे स्वासोंका निकसना वा रहावना यद्यपि अच्छा संयुक्त निकसते हैं तो भी अपने बलकरके रोक नहीं जासकते यहूदि तीसरे कर्म इच्छावाले हैं जैसे चा-लना और बोलना जाने पर कि जब चाहे तब बोलना चलना न होता पर इच्छा-वाले भी कर्म तो सबही पराधीन समझा जाता है कि मनुष्य का हलना और नहीं का हलना इनमेंसे भी ताकत नहीं रखता यहूदि जब भलीप्रकार विचार करके देखिये तब आवश्यकता भी पाई जाती है कि स्वासों के निकसने के लिये इस भीतरी सभी कुछ अच्छा उत्पन्न कियाहै कि वह किसी प्रकार रुके नहीं। [illegible] जैसे किसी मनुष्य के नेत्रों की ओर सुई सम्मुख करे कोई हाथ तब यद्यपि ऐसे चाहे कि मेरे नेत्र खुले रहें तो भी अवश्यही मूंद जाते हैं इस करके कि भगवान ने नेत्रों विषे ऐसीही इच्छा रक्खी है ताते इन दोनों प्रकार के कर्मों विषे इस मनुष्य को पराधीनता पहुंचई यहूदि तीसरे जो इच्छावाले कर्म हैं जैसे बोलना और चलना सो इस विषे पराधीनता समझ॥ जैसे दृष्टांत है स्पष्ट है कि जब चाहे तबही [illegible] चलताहै ताते इसको पराधीन क्यों कहिये पर इस का

उत्तर यहहै कि चाह तबही उत्पन्न होतीहै जब प्रथम बुद्धि आज्ञाकरे और जिस कर्म विषे अधिक भलाई दिखावे तब शीघ्रही उसविषे चाह उपजती है तबही इन्द्रिया हलने लगती हैं जैसे सुईको देखकर तुरतही नेत्र मूंदजाते हैं सो नेत्रोंका मूंदना बुद्धि विषे भलाईका भास होताहै ताते यह वार्त्ता अधिक निश्चय होरही है इसीकारणसे इस कर्मका नाम आवश्यक कहाहै कि इसबात विषे विचारनेकी अपेक्षा कुछ नहीं होती जैसे कोई पुरुष किसीको लाठी लेकर मारनेलगे तब तुरतही उससे भागा चाहताहै पर जब उस को मन्दिरके ऊपर तक पुरुष मारताहोवे तब लाठीके भयकरके ऊंचे मन्दिरसे कूदता नहीं मरता और जब मन्दिरकी उचाई थोड़ी होवे तब तुरतही नीचे कूद पड़ताहै तात्पर्य यह कि जब लाठीका दुःख अधिक देखताहै तब नीचे कूदताहै और जब कूदनेकी चाहका दुःख अधिक देखताहै तब उसकेपाव ऊपरही बद होरहते हैं ताते प्रसिद्धहुआ कि इन्द्रिया श्रद्धाके अधीन हैं और श्रद्धा बुद्धिकी आज्ञाके वशीकारहै इसीकारणसे जब बुद्धिकरके किसी कर्मविषे भलाई देखताहै तब तुरतही उसकर्मकी श्रद्धा उपज आवती है अन्यथा नहीं उपजती जैसे बहुतसे मनुष्य अपने पास सर्वशस्त्र रखते हैं तोभी अपने आपको मार कोई नहींसकता ताते जान तू कि यद्यपि श्रद्धा बुद्धिके आधीनहै पर जब भलीभांति देखिये तब बुद्धिभी पराधीनहै इसकरके कि बुद्धिरूपी दर्पण है सो तिस विषे भलाई और बुराई स्वाभाविकही भास आवती है इसीकारणसे अपना मरना भला नहीं भासता पर जब ऐसेही पीड़ाकरके दुःखीहोवे तब मरना भीसुगमभास आवताहै ताते इसकर्मको इच्छाचारी कहतेहैं सो ऐसीकरतूति बुद्धि की आज्ञाके अधीन होतीहै पर जब सूक्ष्म दृष्टिकरके देखिये तब बुद्धिका पहिचानना और श्वासोंका निकासना और नदीविषे डूबना आदि जो तीनों कर्म हैं सो सबही स्वभावके कर्म हैं स्वभावका अर्थ यहहै कि स्वतः प्रकृतिकर सिद्ध होते हैं ताते नदी विषे डूबनाभी मनुष्यकी स्वतः प्रकृति है और श्वासोंका निकासनाभी इसका स्वतः स्वभावहै तैसेही बुद्धिरूपी दर्पण विषेभी भलाई बुराई का भासना बुद्धिकी स्वतः प्रकृतिहै ऐसेही सर्व पदार्थोंका सम्बन्ध परस्पर मिला हुआ है जैसे जजीर विषे कुण्डियां होती हैं सो यह पदार्थ भी अगणितहैं ताते सभोंका बखान नहीं किया जाता पर इस मनुष्य विषे बुद्धिका यत्न जो रखाहै सो यहभी जजीरकी नाईं एक कुण्डीवतहै इसीकारणसे यह मनुष्य बुद्धि और

उनके स्थान सिर आवते। कर्ता जानताहै पर तोभी यह सभी पूछताहै याते कि इस मनुष्य का और बुद्धि मन का इतनाही समझाहै कि श्रीभगवान् ने इस मनुष्यको बुद्धि मन का स्थान बनायाहै जैसे वृक्षको हलने का स्थान बनाया है पर वृक्षका जो हलनाहै सो बुद्धि और श्रद्धा और मनका नहीं होता ताते वृक्ष को मनुष्यकी नाई नहीं कहते पर महाराजके मन विषे वृक्ष और मनुष्य दोनों पराधीन हैं इस करके कि महाराज का वन मनुष्यकी नाई पराधीन कदाचित् नहीं ताते प्रसिद्ध हुआ कि मनुष्य वृक्षकी नाई जड़ भी नहीं और श्रीभगवान् की नाई स्वाधीन भी नहीं ताते मनुष्य को दोनोंका मध्य कहतेहैं तात्पर्य यह कि यद्यपि यह मनुष्य कर्मकर्त्ता दृष्टि आवताहै तोभी इसकी बुद्धि और श्रद्धा अपने आधीन नहीं बहुरि जब तू इसप्रकार प्रश्न करे कि जब इसके हाथ कुछ नहीं तब पाप पुण्य किस निमित्त है और सन्तजनों का आवना किस निमित्त है और धर्मशास्त्र किसनिमित्तहै तब इसका उत्तर यहहै जान तू कि एकता पर शास्त्रोंके बीच है और शास्त्र एकता विषे है इसके बीच अल्पबुद्धि बहुत बहते हैं और इस बहने से वही बचताहै जो पानी के ऊपर चले और जो पानीपर चल न सके तो तैरना जाने और बहुत इसप्रकार भी बचे हैं जो जानने को इस नदी विषे न डारें तब डूबते नहीं और अल्पबुद्धि इसभेदको जानते नहीं उनपर दया करनी यहीहै कि उनको किनारे रखिये तब वह अचानक न डूबें और जो स-मझाई नदी विषे डूबे हैं तिनमें बहुतेरे ऐसे हैं कि वह तैरना नहीं जानते और समझाया ऐसी नहीं जो तैरना सीखें और अपने अभिमान करके किसी से पूछताभी नहीं ताते डूब जाते हैं और ऐसे जानते हैं कि हमारे हाथ कुछ नहीं सब कुछ वही करताहै जिसके लेखमें बुराई लिखी है सो यत्नकरके उनसे छुटकार नहीं सकता और जिसके लेखमें भलाई लिखी है सो यत्नकरने से उसका यथार्थ कुछ नहीं होती सो इसप्रकार समझना सभी भूल है और अज्ञानता है और विनाश इसकाहै और मार्गमें भूलताहै और तात्पर्य इसका पहिचानना ऐसा नहीं जो लोगोंकी विषे बखान करिये पर यत्न जो यहां आप पहुंचा तब इतना कहना समाप्तहै जान तू कि यह जो तैने कहा कि पुण्य और पाप किस निमित्त हैं ति-सका उत्तर यहहै जान तू कि पुण्य पाप इस निमित्त नहीं कि तैने पाप कर्त्तावि किया और किसीको तेरे ऊपर क्रोध आया तब उस कर्म के अनुसार तुझको

उसने दण्ड दिया अथवा तेरे ऊपर प्रसन्न हुआ और प्रसन्नताके अनुसार कृपा करी सो इनदोनों बातों से भगवत् न्यारा है पर ज्यों बाई पित्त कफ करके शरीर विषे रोग बढ़े सो जब औषध किया और औषध का बल पाया तब आरोगता उत्पन्नभई तैसे जब काम क्रोधने तेरे ऊपर बलपाया और तू उनके अधीन हुआ तिसकरके अग्नि उत्पन्न हुई सो उसने तेरे हृदयविषे प्रवेशकिया सो तेरे बिनाश का कारणहै सो इसीपर महापुरुषनेभी कहाहै कि जिसक्रोधको तैंने अपने ऊपर प्रबलकियाहै सो अग्निरूपहै और जिसप्रकार बुद्धिके प्रकाशकी प्रबलता काम क्रोधकी अग्निको निवृत्तकरदेती है तैसेही धर्मका प्रकाश नरककी अग्निको निवृत्त करताहै इसीप्रकार अग्नि नरकके प्रीतिमान्के धर्मका प्रकाश सों पुकार करती है और भागजाती है जैसे मच्छर पवनसे भागजाता है इसीप्रकार काम क्रोधादिक की अग्नि बुद्धिके प्रकाश सों भागजातीहै तात्पर्य्य यह कि तेरेही विषे भला बुरा उत्पन्नहोताहै और तू उसीके अनुसार पड़ा भोगताहै इसीप्रकार भगवत्नेभी कहाहै कि तुम्हारे कर्मानुसार सुख दु ख होताहै सो नरककी अग्नि का बीज काम और क्रोध है सो तेरे अन्त करण विषे होता है सो जब तेरेप्रति साक्षात्कारहोता तब इसज्ञानको प्रकट जानता जैसे तू विषको अंगीकारकरे तब तुझको रोग उत्पन्न होताहै सो किसीके क्रोध करके तेराविनाश नहींहुआ तैसेही पापकर्म और भोग बुद्धिको नाश करते हैं सो बुद्धिका नाश तेरी भागों की हीनताका कारणहै सो यह हृदयकी अग्निहै बाहरकी स्थूल अग्नि नहीं जैसे चुंबक पत्थर लोहेको खैंच लेताहै सो किसीके क्रोध करके नहीं तैसेही बुराई भलाई की करतूति इसीप्रकार समझ लीजिये बहुरि खोलने करके विस्तारहोताहै यह उत्तर तेरे प्रश्नका है कि पाप पुण्य किस निमित्तहै अब इसका उत्तर सुन जो तैंने पूछा था कि धर्मशास्त्र किस निमित्त है और सन्तजनों का आवना किस निमित्तहै सो तिसका उत्तर यहहै कि तू जान कि यहभी सर्व समर्थ महाराजकी करुणाकी प्रबलता और जबरदस्ती है जो बरबस के जीवोंको शुभमार्ग में लगायकर नरकसे बचाय रखते हैं और सुखविषे प्रवेश करावते हैं इसी प्रकार भगवत्ने भी कहाहै कि दण्ड करके तुम्हारी रक्षाकरी गई है इसीपर महापुरुष ने भी कहाहै कि पतंगकी नाईं तुम आपको अग्नि विषे डारतेहो और मैं तुमको पकड़पकड़ रखताहूं सो यह जंजीर भगवत्की है जिसकी एककुंडी सन्तजनों के

वचन हैं सो तिन वचनों के अनुसार लेवेंगे [illegible] करते होते हैं ॥ इसके मार्ग कृपासों पहिचाना जाता है सो उनवचनों के प्रकार करो बुद्धि की हानि उत्पन्न करती है तब तुमको यह समझ पड़ती है कि [illegible] करोड़ों के [illegible] इसप्रकार के [illegible] तब [illegible] हृदय विषे [illegible] मार्गों के चलने की श्रद्धा उत्पन्न होती है सो इस श्रद्धा [illegible] कामना विष [illegible] होती है क्योंकि कामना श्रद्धा के अधीन है सो इस शरीर में जो [illegible] नरक से बचावेगा उत्तम लोक विषे उत्तम भोग करावेगा [illegible] हुआ [illegible] अज्ञानकर के और [illegible] और [illegible] और [illegible] अज्ञान [illegible] के आगे [illegible] हनावता है [illegible] जाते और [illegible] और [illegible] इनकी [illegible] हैं सो [illegible] विष [illegible] है और यह [illegible] कि जिनको [illegible] विषे [illegible] है तब इसका पुरुषार्थ करना व्यर्थ है सो [illegible] और [illegible] प्रकार [illegible] सो यह [illegible] कारण है सो यह [illegible] है जिसका [illegible] होता है सो जिसके [illegible] ऐसी [illegible] उत्पन्न होती है जो [illegible] विषे उत्पन्न नहीं करता जैसे जो कोई [illegible] नहीं सुनता जैसे जिस पुरुष की मृत्यु [illegible] है [illegible] कि जब [illegible] विषे [illegible] कि [illegible] भोजन पावने [illegible] क्या [illegible] होवेगा ताते भोजन नहीं [illegible] सो [illegible] है और जिसके [illegible] है [illegible] की आज्ञा है तब उसके हृदय विषे यही [illegible] है कि ऐसी [illegible] करके मुझको क्या [illegible] होवेगा [illegible] कि नहीं रहता है और जिसके [illegible] और पानी और भोजन विषे [illegible] ताते [illegible] कि जो भगवत् ने किया है सो [illegible] नहीं [illegible] भगवत् ने जैसे [illegible] उत्पन्न किये हैं सो [illegible] नहीं होते और भगवत् ने भी कहा है कि तुम [illegible] देव के [illegible] और कामना [illegible] कि [illegible] कामना विषे [illegible] नहीं [illegible] जब तुमको [illegible] रहने की अभिलाषा [illegible] कि जो मार्गों का [illegible] है [illegible] नहीं और [illegible]

लेखमें मूर्खता लिखी है तब तेरे हृदयविषे इसप्रकार आन उपजती है कि मिथ्या करके मुझको भयंप्राप्तहोवेगा ताते अपनी मूर्खता और अज्ञानकी पत्रीबांचले तात्पर्य यह कि काम परलोकका भी इसी प्रकारहै जैसे इस संसारके कार्य हैं जब इसप्रकार समझा तब यह तीनोंसंशय तेरे निवृत्तहोतेहैं और एकता ठहरजाती है तब जानाजाताहै कि बीज बुद्धि और शास्त्र और एकताविषे भेद कुछ नहीं पर जब तेरे बुद्धि के नेत्रखुलें सो इससे अधिक इसग्रन्थ विषे इसवार्त्ताका खोलना प्रमाण नहीं॥ अथ प्रकट करना धर्म्म के दूसरे लक्षण का जो भरोसे की नींवहै॥ ताते जानतू कि पीछे जो कहाहै कि भरोसा दो निश्चयका फलहै एक एकता श्रीरामजू की सो तिसका निर्णय आगे कियागया और दूसरा यह कि तू यह निश्चय लावे कि उत्पन्न करनेहारा वही एक महाराजहै और सब उसीके आश्रयहैं और सब पर दयालु और कृपालु और जाननेहारा है दया और कृपा उसकी सर्वजीव चींटी और मच्छर पर्यन्त पर अपारहै तहां इस मनुष्यकी क्या वार्त्ता है सीतारामजूकी दया माता और पिता जैसे पुत्रपर करते हैं तिससेभी अधिकहै इसीपर महापुरुषने भी कहाहै कि सीतारामजूकी दया माता और पिता से भी अधिकहै और योंभी जानतू कि यहजगत् और इसजगत् विषे जो उत्पन्न हुयेहैं सो सबको पूर्ण और सुन्दर और अपने अनुभव करके ऐसा महाराजने बनायाहै जो और प्रकार न बनताथा अर्थात् जो जैसे बनाया सो उसीप्रकार चाहिये था और यों भी जान कि महाराज ने अपनी दयाकरके कुछ उपाय नहीं राखा जैसे उत्पन्न कियाहै तैसेही बननाथा जो सर्व बुद्धिमानों की बुद्धि बहुरकर कहे और विचारकरे कि इस जगत् विषे एकवाल और मच्छर के पत्त समान इसप्रकार न होना चाहियेथा जिसप्रकार अब है अर्थात् कुछ वृद्ध अथवा घाट होता अथवा सुन्दर अथवा बुराहोता तो ऐसी कोई वस्तु नहीं पावेंगे और जानेंगे कि जैसे बनना चाहिये था तैसाही है जो वस्तु कुरूपहै सो पूर्णता उसकी कुरूपता विषेही है जो कुरूप न होती तो खोटी होती बहुरि रचनाकी विचित्रता न रहती काहे से कि जो कुरूपता न होती तब सुन्दरता की विशेषता न होती और सुन्दरता का स्वाद भी किसीको न आवता और जो नीचता न होती तब सम्पूर्णता न होती तब सम्पूर्णता अपनी का स्वाद न आवता सो पूर्ण और नीच एक दूसरेकी अपेक्षाकरके जानाजाताहै जैसे पिता न होता तब पुत्र न होता सो

मरे दूसरे के संयोग कर जाना जाता है जब ऐसे न होवे तब अंतर्दि औ सुगरे न गढ़े यह बात जगत्के लोगोंमें गुप्त भली है पर यह बात भी जाम कि श्री कृष्ण महाराज ने किया है सो सब इसीमें है जैसे कुछ धनको गोंपना और ही महाराज ने किया है जो कुछ जगत विषे गया और स्वाधीनता और पाई और मनतुष्टता और नाश होना और रहना और दुःख जो कुछ महाराजने किया है सो इसीलिये प्रयोजन था पर जो महाराजने किया सो प्रयोजन बिना नहीं किया जिसको निर्धन उत्पन्न किया सो भलाई उसकी उसी में थी और जो उसको धन प्राप्त होता तब उस विषे उस की हानि होती और जिसको धनवान् किया है सो उसकी भलाई इसी विषे थी पर यह भी एक देखिया प्रसन्नताके होने ताई अपारहै सो इस विषे बहुत हुवे है तो इन भेदका भी लिखना भी प्रमाण नहीं जो इसका निर्णय करिये तब बहुत विस्तार होता है पर तात्पर्य इसका यह है कि मनुष्यको इसपर प्रतीति चाहिये कि जो ऐसा प्रतीत सिद्ध होता है ॥ अथ सन्तोष पतना रूप भरोसा ॥ ताते जानहु कि भरोसा अवस्था हृदयकी है सो भरोसा फल दो धर्म का है एक श्रीरामजूकी एकता पर प्रतीति दृढ़ करनी और दूसरे उनकी दयाका निश्चय जानना इनदोनों पर दृढ़ विश्वास करने का फल भरोसा होता है और यह विश्राम हृदयकी एक उत्तम अवस्था है जिसका भेद यह कि जैसे कोई अपना कार्य किसी बुद्धिमान् को सौंपता है तब उसपर प्रतीति रखता है तैसेही महाराजपर प्रतीति रखना चाहिये कि अपनी जीविका पर दृष्टि न राखे जब कोई अकस्मात् संकट जीविका का न देखे तब दुःखित और व्याकुल न होवे दृढ़ प्र तीति श्रीरघुपतिजी कि मेरी जीविका श्रीरामचन्द्रजी पहुंचावेंगे सो इसका दृष्टान्त यह कि जैसे किसी मनुष्यने स्वजनके ऊपर झूठा मि थ्या दावा किया होवे तब उसने किसी बुद्धिमान् को अपना वकील किया जो झूठ बोलनेवाले को दूसरे पर जिस भांति लखना उस भांति सों जाने और उसपर प्रतीति रखता है और निश्चिन्त होता है सो भी तीन बात ताके एक उसे दाबेवाले के सब भेद इसके दृष्टान्त जानता होवे १ दूसरा सत्यवादी होवे और बाणी की युक्ति विशेष जानता होवे कि जो बात जाने सो भलीप्रकार निरूपण करे २ तीसरा उसपर स्नेह होवे भला चाहनेवाला होवे ३ जब यह तीन लक्षण उसविषे सम्पूर्ण जानता है तब उसपर दृढ़ प्रतीति करता है पर उसकी सामान्य चतुराई का कारण है सो इसका

जिसनें जाना कि श्रीसीताराम जी के आश्रय सब कुछही है और कर्त्ता और कोई दूसरा नहीं बहुरि जानकारी और बलभी सपूर्ण उनविषे पायाजाताहै और दयालु कृपालु भी उनके समान कोई नहीं तब हृदय करके श्रीसीतारामजी पर दृढ़ प्रतीति करताहै तब अपनी चतुराई और सयानप छोड़देताहै और इस प्रकार जानताहै कि जीविका मेरी जितनी श्रीरामजूने लिखी है सो समय पाय कर मुझको प्राप्त होवैगी और और भी जो मेरे कार्य्य हैं सो महाराज की दया से सफल पूर्णहोवैंगे सो यद्यपि हृदय विषे यह प्रतीति महाराज पर रखताहै परन्तु तौभी कितनेकद्वारा ऐसा बल नहीं होता कि जो दृढ़ प्रतीतिकरके और बल करके श्रीरामजूको ऐसा समर्थ और दयालु जानकर निर्भय होवे कुछ संशय हृदय विषे आन होता है सो इसके बलकी हीनता है जैसे कोई मृतक मनुष्य को देखकर उसके साथ अकेला शयन नहीं करता यद्यपि जानताहै कि यह जड़ है पर तौभी भय करता है तैसेही भरोसवान को हृदय का प्रतीति भी दृढ़होवे और बल करतूति विषे भी दृढ़ होवे तब विक्षेपता हृदयकी दूरहोवे और हृदयसुखी होवे जब लग प्रतीति और बल सम्पूर्ण न होवे तबलग भरोसवान सपूर्ण नहीं होवै। सो अर्थ भरोसेका यहहै कि प्रतीति श्रीसीतारामजू पर सर्व कार्य्यों विषे होवै जैसे एक सन्तदृढ़ भरोसवान हुआ है सो उन्होंने कहा है कि हे महाराज मुझको निश्चय तो है पर हृदय भी विश्रामपावे सो प्रथम हृदयविषे विश्राम इन्द्रियों और संकल्प के अधीन होता है पर जब दृढ़ होकर अन्तर साक्षात्कार होता है तबी संशय कोई नहीं रहता सहजही हृदय विश्रामी होता है ॥ अथ प्रगट करने पद भरोसे के ॥ ताते जानना कि भरोसा तीनप्रकार का है प्रथम यह कि जैसे किसीने अपने दावेदारके अर्थ अपना वकील किया सो वह उस वकील पर विश्राम करताहै और निर्भय होताहै १ और दूसरा भरोसा यह है जैसे बालक की भरोसा होती है कि जो कुछ उस बालकको प्राप्त होताहै सो माता के बिना दूसरे नहीं जानता जब भूख उसको लगनी है तौभी माताको पुकारताहै और और जो दुःख लगता है तौभी माता ही और जानाहै सो यह भरोसा ऐसा है जो अपनेआपकी भी खबर नहीं रखता काहेसे कि उसकी माताविषे लीन रहता है और प्रथम भरोसेवालेको अपनी खबर रहती है और यत्नकरके अपने को भरोसे पर रखताहै २ और तीसरा भरोसा यहहै कि अवस्था उसकी मृतककी न्याई हो।

तांहे सो मूलक आपका कुछ नहीं करता उसकी क्रिया और जीव करते हैं तैसे यह तीसरे भरोसे वाला अपने को मृतक जानताहै और श्रीरामचन्द्रजीकी आज्ञा जिसविधि उसको चलावती है तिसहीविधि चलताहै और अपनी बुद्धि उसको कुछ नहीं रहती थी जब कोई कार्य उसको आनहोने मन याचना भी महाराज से कुछ नहीं करता सो उस बालककी नाईं नहीं लो अवसर विषे माताको बुलावताहै सो यह प्रेम बालककी नाईं है जैसे बालक जाने कि जब मैं माताको न बुलाऊंतो भी मेरेपास आप आवेगी तैसे यह भरोसेवाला तीसरा जानताहै कि जब मैं याचना न करूं तो भी श्रीजानकीनाथ सर्वप्रकार मेरा प्रतिपाल करेंगे इस तीसरे भरोसे विषे अपना पुरुषार्थ कुछ नहीं और प्रथम भरोसे विषे अपना पुरुषार्थ होताहै जैसे वकील के गुणको और स्वभावको जानताहै तैसेही कार्य और पदार्थों में यत्न करके लगताहै तैसे यह जानता है कि जबलग मैं वकील के समीप न जाऊंगा तबलग यह वकील मेरे निमित्त न झगड़ेगा तब अवश्यही उसके निकट जाताहै तिससे पीछे यह चिन्ता करता है कि देखिये यह वकील कैसे करताहै तैसेही यह प्रथम भरोसेवाला व्यवहार और खेतीआदिक क्रिया करताहै तब यह जानताहै कि यह भी संयोग श्रीसीतारम महाराजने बनाये हैं और बुद्धिभी महाराजने दीनी है ताते इसका त्यागनहीं करना पर भरोसवान् कहावताहै क्योंकि खेती आदिक व्यवहार जो कुछ करताहै तिस विषे यों जानताहै कि जब महाराजचाहेंगे तब यह होवेगा और जबन चाहेंगे तब न होवेगा जो कुछ करतूति यह करताहै सो सबही श्रीसीतारामजीकी ओरसे जानताहै सो इसीपर भक्तजनोंने कहाहै कि सब महाराज के अधीनहै और उन की प्रेरणाबिना कुछ नहींहोता और वचनभी महाराजकाहै सो इसवचनका तात्पर्य यह है कि भरोसवान् अपनी बुद्धि और बल श्रीसीतारामजी के अधीन जानता है अपने आश्रय कुछनहीं जानता सो जब स्थूल पदार्थों से इसकी दृष्टिउठी तब श्रीराम बिना और किसीको कुछ नहीं जानता तब यह भरोसवान् होता है पर उत्तम पद भरोसे का यह है जैसे एक सन्तने किसी जिज्ञासुने पूछाथा कि भरोसा क्या है तब उन्होंने कहा कि तुमको कैसे मालूम है तब उस जिज्ञासुने कहा कि आगे भक्तजनोंने कहा है कि जो इसके दहिने और बायें और पीछे दौड़ी सर्प न पावे तब उनसन्तने कहा कि यह बात तो तुच्छ ऐसीहै और तब

सर्व नरकियोंको नरकविषे दुःखी देखे और स्वर्गविषे स्वर्गवालोंको सुखीदेखे तब इसके हृदयविषे कुछ भेद फुरै तौ वह भरोसवान् नहीहोता सो तात्पर्य्य यह कि भरोसवान्को ऐसे जानना प्रमाणहै कि जो कुछ श्रीराम करते सोई पूराहै अपनी चिन्तवन कोई न फुरे सो यह भरोसा महाउत्तम है और एक भरोसवान् सर्पकी बांबीपर चरण रखकर शयनकर रहाथा सो उसके हृदय विषे सर्पका भय कुछ न था श्रीसीतारामकी ओरसे सबकुछ जानताथा सो यह भरोसा उस जिज्ञासुके वचनकाहै पर जैसा भरोसा उन ज्ञानवान् सन्तने कहाहै सो बहुत दुर्लभ है सो उसउत्तम भरोसवान्को ऐसे निश्चय होताहै कि महाराज दयालु कृपालु और सर्वज्ञहैं और न्याय करनेहारे हैं ताते नरकका दुःख और स्वर्गका सुखदेख कर उसके हृदय विषे कुछ भेद नहीं फुरता वह जानताहै कि रामजीने सब कुछ पूरा किया है ॥ अथ प्रकट करना करतूति भरोसवानों का ॥ ताते जान तू कि सब शुभगुण जो धर्मके मार्ग विषे हैं सो तीनबातोंके आश्रयहैं एक समझहै १ और दूसरी हृदयकी अवस्थाहै २ और तीसरी करतूतिहै ३ सो मैंनेपीछे बूझ और अवस्थाका निर्णयकियाहै अब करतूतिका निर्णय करताहूं कि केते ऐसभी कहते हैं कि भरोसा तब होताहै जब सर्व करतूति अपने श्रीसीतारामजी को अर्पिदेवे और आप कुछ करतूति न करे व्यवहारभी न करे और दूसरे दिनका संचय न करे और सर्प बिच्छू और सिंहादिकोंसे भी न भागे जब रोग इसपर आवे तब औषधभी न करे सो जिन्होंने ऐसे समझा है वह सब भूले हैं कोहेसे कि भरोसेकी नींव शास्त्रके अनुकूल है और यह बार्ता शास्त्र के विपर्य्यय है ताते भरोसा वही विशेषहै जो शास्त्र के अनुसार होवे सो इस मनुष्यका इख्तियार इनचार बातों परहै एक उत्पन्नकरना धनका १ दूसरे रक्षाकरनी धनकी २ तीसरा निवृत्तकरना दुःखका ३ चौथे जिसके सम्बन्ध करके दुःख पहुँचनेका भयहोइ तिससे बचना ४ सो भरोसा इन सब विषे भिनभिन्न होताहै ताते इसका निर्णय अब कहताहूं ॥ अथ प्रथम प्रकरण प्रकट करना व्यवहार विषे धनके उत्पन्न करनेका ॥ सो यह भी तीन प्रकारका है प्रथम यहहै कि जिसप्रकार महाराजने कार्य्योंविषे मर्यादा राखी है और वह अवश्यमेव उसी विधिसे होते हैं तिन मर्य्यादोंको जानकर उसके विपर्य्यय बर्त्तना यह भरोसानहीं मूर्खताहै जैसे कोई भोजन न खावे और कहे कि मेरे मुख विषे आपही आइपड़ेगा और इसको भरोसा जाने तब यह

सूझतानहीं अथवा जैसे कोई विवाह न करे और कहे कि बिनास्त्रीके विवाह भी,
पुत्रहोवे सो यह ऐसा नहीं मानाजाता क्योंकि जिस कार्यके आरम्भके साथ,
साधनहोने करके होताहै सो उसी आरम्भके साथ होताहै अन्यथा नहीं होता और,
कातिकके द्वारे ऐसेहै सो गोरखा सुनकर और दृष्टकी अवस्थाका होताहै और
तृप्तिकर नहीं होता सो समझ यह है जो जाने कि हाथ और अनाज और भोजन
और मुख और दांत सबही श्रीरामजीने उत्पन्न किये हैं और जीवका यह कि
विश्वास हृदय का श्रीरामजी की दयापर राखे अनाज और हाथों पर न,
राखे क्योंकि हाथ तो रोगकरके जुनभी होजाते हैं और अनाज कोई लेजाय
इसलिये साधनहीन्ताते सर्वदा अपनीदृष्टि श्रीरामजीकी दयापर राखे अपने बुद्धिबल
की ओर न राखे सो प्रथम प्रकरण जो कहाथा कि जिस कारणके साथ जिस
प्रकार महाराजने रचे हैं यह आवश्यकीय उसीप्रकार होते हैं सो यह वर्णन हो
गया ॥ अब दूसरा प्रकार यह है कि यह आवश्यकीय भी नहीं पर उनके निश्चय,
कि उस बिना कार्य सिद्ध नहीं होता और कभी होभी जाताहै जैसे महापुरुषों
ने सर्वत्रोत्तम सफलता सुसाफिरीलिये गयाहै पर मगोंसा उन्होंने आश्रयलिये वस्त्र साथा
है क्योंकि उत्तम करनेहारा तोशे और खोर कपड़ोंका यहा जहाँ है जाने तोशे
बुध्दमतिमान राखे पर बिना तोशेके सफर लिये जाना अधिकतर मोतमरहै और
उसीकी तरह नहीं जो भोजन न करे और वनहुआ होहै क्योंकि यह होनहार नहीं
और जो बिनातोशे के वनविषै जावे सो यह अधिकार उसका है जिसविषे यह
दो लक्षण होवें प्रथम यह कि जिसने ऐसा साधन किया होवे जो सातदिन
पर्यन्त भोजन न करे तोभी सहने का धैर्य रखताहै और दूसरा जो कन्दमूल,
फलपर भी शरीरका निर्वाह करलेवे सो जब ऐसहोवे तब यह चाहा मानले कि
कन्दमूल फल इत्यादि अवश्य पाता है और किसी और अनाजभी होजाते हैं जैसे
एक भरोसावान् का यही स्वभाव था कि इसतरहीयन लिये आलस्यसे में और
भोग्यापात्र कुसल रखतेथे पर प्रकट और जैसही और जहाँ जाय पास रखते
चाहिये कि यह अवश्य चाहिये है और नहीं चाहिये नहीं होवे ताके भरोसा इन
के त्यागलिये नहीं होता भरोसा यह है कि इष्टकी प्रतीति श्रीरामजीपर
राखे पर किसी ऐसेविषम स्थान अथवा पहाड़की कन्दरालिये जाय जहाँ कोई
पासभी न होवे और और भी कुछ पानेकी वस्तु न होवे और ऐसे कहे कि मैं

यहां भरोसा करि बैठताहूं सो यह मूर्खताहै और अपना नाश करनाहै ताते जिस प्रकार श्रीरामजीने नेतरीताहै तिसको भलीप्रकार समझा नहीं सो यह भरोसा उसकी नाईं है जो अपना वकील कार्य्यको करे और यह जानताहोवे कि मेरे समीप रहे बिना वह कार्य्य न करेगा और फिर उसके निकट न जावे तब कार्य्य नहीं होता जैसे एक त्यागी नगरको छोड़कर पहाड़की कन्दरा विषे जाइ बैठा था और भरोसा कियो कि भगवत् मुझको यहांही भोजन पहुंचाइ देवेगा सो सात दिन भूखेही उसको बीतगये पर उसको पास कुछ न भया तब एक महापुरुषको आकाशवाणी भई कि तू इस त्यागीको जाइ कहे कि मैं अपनी दुहाई करके कहताहूं कि जबलग तू नगर विषे न जावेगा तबलग तुझको मैं भोजन न देऊंगा सो यह वार्त्ता जब महापुरुषने उसको कही तब वह वहांसे उठकर नगरविषे आया तब सबकोई उसको भोजन ले आये तब उसके हृदयविषे संशय उत्पन्न हुआ कि यह क्या कारण हुआ तब उस महापुरुष को फिर आकाशवाणी भई कि तू उसत्यागीको कह कि तू अपने त्यागकर मेरी नतको विपर्य्यय किया चाहताहै सो यहतो न करेगा और मैं इस वार्त्ताको प्रियतर रखताहूं जो मेरे जीवों के सम्बन्ध द्वारे किसीको कुछ मिलती रहै सो यह वार्त्ता उसमें भी विशेष प्रियतम है जो मैं अपनी शीघ्रताको किसीके सम्बन्ध द्वारा बिना देऊं तैसेही जब नगरविषे गृहमें बैठे और घरका द्वारबन्दकरै और भरोसाकरै तब यहभी प्रमाण नहीं काहेसे कि अपना नाश करताहै यह भरोसा नहीं ताते जो कार्य्य अवश्यही करनेहोते हैं उनका त्याग न करे पर जो द्वार मंद न करै और भरोसा करके गृहविषे बैठे तो प्रमाणहै पर सर्वथा अपनी दृष्टि द्वारकी ओर न राखे कि अब कोई लिआवताहै और सर्वथा अपना हृदय लोगोंकी ओर न राखे भगवत्की ओर हृदय राखे और अपना समय भजन विषे व्यतीत करे ताते जब स्थूल सम्बन्धी दूरहुये तब निश्चय राखे कि जीविका भी उसकी बन्द न होवेगी सो यह वार्त्ता ऐसेही है जैसे सन्तजनोंने कहाहै कि जब यह मनुष्य अपनी प्रारब्धसे भागताहै तब प्रारब्ध इसको इसके पीछे आवती है और जब श्रीरामचन्द्रसे याचना करताहै तब महाराज कहतेहैं कि हे मूर्ख जब मैंने तुझको उत्पन्न किया है तब क्या भोजन न देऊंगा सो जब ऐसे जाना तब जिस प्रकार महाराज की नेवहै वह मार्ग शीघ्र छोडे और बिना भगवत्के योंभी न जाने कि इसी सम्बन्ध

करके कमाई होवेगा तासे भरोसा श्रीनारायणजी पर राखे और यत्नों का त्यागभी न करे ताते सर्वसृष्टि श्रीरामजीकी दात भोगती है पर केते अपमानके साथ याचनाकरके पावते हैं और केते दुःखके साथ भोगते हैं जैसे व्यवहार करनेहारे और केते और यत्न और उद्यम करके जैसे कृषि करनेहारे और ऐसे यत्न बिना भूखेनहीं पावते हैं जैसे वैष्णव रामानुरागी सो वह श्रीरामजी की ओरसे जानते हैं और किसी मनुष्यकी ओरसे नहीं जानते २ और तीसरा प्रकार यह है जो अवश्यही भी नहीं और अवश्यही के निकट भी नहीं सो अपने यत्न और चतुराई करके जाने यह प्रमाण नहीं सो यद्यपि भरोसवान् व्यवहार करता है परन्तु भी भरोसा भगवानही पर होताहै अपनी चतुराई और व्यवहार पर नहीं होता सो ऐसेही महापुरुषने भी कहाहै कि भरोसवान् यत्न और भले सगुन अपसगुन पर प्रतीति नहीं रखता सो ऐसे तो नहीं कहा कि व्यवहार न करो और नगरको छोड़कर वन विषे जाइ रहो सो भरोसेके यह तीनहैं प्रथम यह है जैसे एक भरोसवान् अन्न तोशे बिना वन विषे गमन करतेथे सो यह भरोसा उत्तम है पर यह भरोसेका चिह्न ऐसे होताहै कि भरोसवान भूखाहै अथवा घास पात खाइलेवे और यह भी जब प्राप्त न होवे तब मृत्यु का भय उसके हृदय में न होवे और ऐसे जाने कि मृत्यु होनाही मेरी भलाई है काहेते कि केते पुरुष ऐसेभी होते हैं जो तोशा खर्च पास रखते हैं परन्तु यह भी उनका कोई चोर हरलेता है और वह मृत होजाते हैं पर प्रथमतो कभी दैवयोग से होती है तातें इसमें वचन प्रमाण नहीं दूसरा यह भरोसे का यहहै जो व्यवहारभी नहीं करता और वनविषे भी नहीं जाता नगर विषेही रहताहै पर दृष्टि अपनी श्रीभगवान्जीकी दया पर रखताहै लोगों पर नहीं रखता तीसरा यह यहहै जो व्यवहारके निमित्त परदेशको जावे और जितनामात्र सन्तजनों ने व्यवहार करना कहाहै तितनामात्र करे और अपनी चतुराई और यत्न का आश्रय न करे अपनी प्रीति विषे, क्योंकि इन चतुराई और यत्नको तो भरोसवान नहीं होता पर व्यवहारका त्यागभी अ नोंपेहुँ युक्ति नहीं इसीवास्ते यह मार्ग है कि एक भरोसवान् था पर व्यवहारका त्याग न करताथा सो जब सर्व श्रीपिताजी का मुनिवर महंत होतामया तब सबसे कह दाना विषे आया ... ॥ कि ऐसे सो प्रमाण नहीं जो तुम महन्त होकर भाइयों विषे व्यवहार करनेको जाते हो तब उन्होंने कहा कि

जब मैंने अपने सम्बन्धियोंको सुधि न लीतब और किसीकी रक्षा क्योंकर कः रूंगा तब सबने यही कामकिया कि जिसधनका कोई वारिस न होवे उसकरके उनके सम्बन्धियोंकी मतिपाल राखी तब वह महन्त सर्व आयुष्के अवसानतक सुखी होकर भी निमानों की रक्षा करतेभये भी भरोसा यह है कि अपने अर्थ धन की तृष्णा न करे जो कुछ लाभ हानि होवे सो श्रीरामही की ओरसे जाने और धन अपना और मनुष्यों के धनसे प्रियतम न राखे तात्पर्य्य यह है कि भरोसा विना वैराग्य सिद्ध नहीं होता और भरोसे बिना वैराग्य सिद्ध होताहै जैसे एक सन्त भरोसेवान्ने कहा कि बीस वर्ष मैंने अपने भरोसेको गुप्त राखाहै सो नित्य प्रति तीन रुपये व्यवहार विषे उत्पन्न करताथा पर एक पैसा अपने निमित्त खर्च न करता सब गुप्तहैव दे डालताथा सो एक ज्ञानवान् सन्त उनके होते भरोसेका वर्णन कहतेथे कि इसे कि यह आपही उत्तम भरोसेवान्है बहुरि एक महन्त बड़े स्थानोंपर बैठते हैं और अपने चेला शिष्य बाहर परदेशों विषे भेजते हैं सो यह भरोसा तुच्छहै और निर्बलहै पर जब कोई भरोसवान् व्यवहार करे तब उसकी युक्तियां बहुत हैं पर जब आकाशवृत्ती होइ बैठे और अपने शिष्य सेवक भी किसी के पास न भेजे तब यह भरोसे के निकट है पर जब जिसस्थानपर बैठताहै वह स्थान विख्यात हो जावे तब यह भी बाजारकी नाईं होताहै तात्पर्य्य यह कि उसके चित्तकी वृत्ति उसपर ठहर जाती है पर जब चित्तकी वृत्ति उसपर न ठहरे तब यह भरोसा व्यवहारवाले की नाईं होताहै तात्पर्य्य यह कि दृष्टि इसकी श्री रामजीपर होवे और लोगोंपर न होनी चाहिये और और किसी कारणपर भी न होवे कारण कि महाकारण श्रीरामपर होवे जैसे एक भरोसवान्ने कहाहै कि एकवार वनविषे एक ऐश्वर्य्यवान् साधु मुझको आइमिले और मेरे सङ्ग रहने में राजीथे पर मैंने उनके सङ्गका त्यागकिया इसकारण करके मत मेरे हृदयविषे उस ऐश्वर्य्यवान् का भरोसा होजावे तब मेरा भरोसा श्रीरामपर न रहेगा जैसे एक बुद्धिमान् साधुने एकमजूर के पास कुछ क्रियाकराई थी तब अपने सेवक से कहा कि इसको कुछ अधिक मजूरीदेवो जब वह देनेलगा तब उसने न लीनी बहुरि जब वह मजूर गृहमें बाहर आया तब उन्होंने अपने सेवक से कहा कि अब उसके पास लेजावो अब लेनेलगा तब सेवक ने पूछा कि वह अब क्यों लेवेगा तब उन्होंने कहा कि आगे उसने अपने हृदय विषे लेने की अभिलाषा

करके कार्य होवेगा ताते भरोसा श्रीसीतारामजी पर राखे और सम्बन्धों का त्यागभी न करे ताते सर्वसृष्टि श्रीरामहीकी दान भोगती है पर केते अपमानके साथ याचनाकरके पावते हैं और केते दुःखके साथ भोगते हैं जैसे व्यवहार करनेहारे और केते और यत्न और उद्यम करके जैसे कृत्य करनेहारे और केते यत्न बिना सुखसेनहीं पावते हैं जैसे वैष्णव रामानुरागी सो वह श्रीरामही की ओरसे जानते हैं और किसी मनुष्यकी ओरसे नहीं जानते ३ और तीसरा प्रकार यह है जो अवश्यही भी नहीं और अवश्यही के निकट भी नहीं सो अपने यत्न और चतुराई करके जाने यह प्रमाण नहीं सो यद्यपि भरोसवान् व्यवहार करता है पर वो भी भरोसा महाराजही पर होवाहै अपनी चतुराई और व्यवहार पर नहीं होता सो ऐसेही महापुरुषने भी कहाहै कि भरोसवान् मन्त्र और टोने सगुन अपसगुन पर प्रतीति नहीं रखता सो ऐसे तो नहीं कहा कि व्यवहार न करो और नगरको छोड़कर वन विषे जाइ रहो सो भरोसे के पद तीनहैं प्रथम यह है जैसे एक भरोसवान् सन्त तोशे बिना वन विषे अटन करतेथे सो यह भरोसा उत्तमहै पर यह भरोसेका चिह्न ऐसे होताहै कि जो सकल भूखा रहै अथवा घास पात खाइलेवे और यह भी जब प्राप्त न होवे तब मृत्युका भय उसके हृदय में न होवे और ऐसे जाने कि मृत्यु होनाही मेरी भलाई है काहेते कि केते पुरुष ऐसेभी होते हैं जो तोशा खर्च पासरखते हैं पर वह सर्व उनका कोई चोर हरलेता है और वह मृत होजाते हैं पर यहवार्त्ता कभी दैवयोग से होती है ताते इससे बचना प्रमाण नहीं दूसरा पद भरोसे का यहहै जो व्यवहारभी नहीं करता और वनविषे भी नहीं जाता नगर विषेही रहताहै पर दृष्टि अपनी श्रीरामजीकी दया पर रखताहै लोगों पर नहीं रखता तीसरा पद यहहै जो व्यवहारके निमित्त परदेशको जावे और जिसप्रकार सन्तजनों ने व्यवहार करना कहाहै तिसीप्रकार करे और अपनी चतुराई और यत्नका आश्रय न करे अपनी जीविका विषे बहुत चतुराई और यत्न करे तो भरोसवान् नहीं होता पर व्यवहारका त्यागना भी भरोसेकी युक्ति नहीं इसीपर एक वार्त्ताहै कि एक भरोसवान् था पर व्यवहारका त्याग न करताथा सो जब सर्व भरोसवानों का मुखिया महन्त होतामया तबभी पशमीनेकर बाजार विषे आया तब सबने मिल करके कहा कि ऐसे तो प्रमाण नहीं जो तुम महन्त होकर बाजार विषे व्यवहार करनेको जाओ तब उन्होंने कहा कि

जब मैंने अपने सम्बन्धियोंकी सुधि न ली तब और किसीकी रक्षा क्योंकर क-रूंगा तब सबने यही काम किया कि जिसधनका कोई वारिस न होवे उसकरके उनके सम्बन्धियोंकी प्रतिपाल राखी तबवह महन्त सर्व आयुष्के अवसानतक सुखी होकर प्रीतिमानों की रक्षा करतेभये सो भरोसा यह है कि अपने अर्थ धन की तृष्णा न करे जो कुछ लाभ हानि होवे सो श्रीरामही की ओरसे जाने और धन अपना और मनुष्यों के धनसे प्रियतम न राखे तात्पर्य यह है कि भरोसा बिना वैराग्य सिद्ध नहीं होता और भरोसे बिना वैराग्य सिद्ध होताहै जैसे एक सन्त भरोसवान्ने कहा कि बीस वर्ष मैंने अपने भरोसेको गुप्त राखाहै सो नित्य प्रति तीन रुपये व्यवहार विषे उत्पन्न करताथा पर एक पैसा अपने निमित्त खर्च न करता सब गुप्तहीन दे डालताथा सो एक ज्ञानवान् सन्त उनके होते भरोसेका वचन कहनेथे कहिसे कि यह आपही उत्तम भरोसवान् हैं बहुरि एक महन्त बड़े स्थानोंपर बैठते हैं और अपने चेला शिष्य बाहर परदेशों विषे भेजते हैं सो यह भरोसा तुच्छहै और निर्बलहै पर जब कोई भरोसवान् व्यवहार करे तब उसकी युक्तियां बहुत हैं पर जब आकाशवृत्ती होइ बैठे और अपने शिष्य सेवकभी किसी के पास न भेजे तब यह भरोसे के निकट है पर जब जिसस्थानपर बैठताहै वह स्थान विख्यात हो जावे तब यह भी बाजारकी नाई होताहै तात्पर्य यह कि उसके चित्तकी वृत्ति उसपर ठहर जाती है पर जब चित्तकी वृत्ति उसपर न ठहरे तब यह भरोसा व्यवहारवाले की नाई होताहै तात्पर्य यह कि दृष्टि इसकी श्री रामजीपर होवे और लोगोंपर न होनी चाहिये और और किसी कारणपर भी न होवे कारण कि महाकारण श्रीरामपर होवे जैसे एक भरोसवान्ने कहाहै कि एकबार वनविषे एक ऐश्वर्यवान् साधु मुझको आनमिले और मेरे संग रहने में राजीथे पर मैंने उनके संगका त्यागकिया इसकारण करके मत मेरे हृदयविषे उस ऐश्वर्यवान् का भरोसा होजावे तब मेरा भरोसा श्रीरामपर न रहेगा ऐसे एक बुद्धिमान् साधुने एकमजूर के पास कुछ कियाकराईथी तब अपने सेवक से कहा कि इसको कुछ अधिक मजूरीदेवो जब वह देनेलगा तब उसने न लीनी बहुरि जब वह मजूर गृहसे बाहर आया तब उन्होंने अपने सेवक से कहा कि अब उसके पास लेजावो अब लेलेवेगा तब सेवक ने पूछा कि वह अब क्यों ले-वेगा तब उन्होंने कहा कि आगे उसने अपने हृदय विषे लेने की अभिलाषा

करके कार्य होवेगा ताते भरोसा श्रीसीतारामजी पर राखे और सम्बन्धों का त्यागमी न करे ताते सर्वसृष्टि श्रीरामहीकी दान भोगती है पर केते अपमानके साथ याचनाकरके पावते हैं और केते दुःखके साथ भोगवे हैं जैसे व्यवहार करनेहारे और केते ओग-यत्न और उद्यम करके जैसे कृत्य करनेहारे और केते यत्न बिना सुखेनही पावते हैं जैसे वैष्णव-रामानुरागी सो वह श्रीरामही की ओरसे जानते हैं और किसी मनुष्यकी ओरसे नहीं जानते न और तीसरा प्रकार यह है जो अवश्यही भी नहीं और अवश्यही के निकट भी नहीं सो अपने यत्न और चतुराई करके जाने यह प्रमाण नहीं सो यद्यपि भरोसवान् व्यवहार करता है पर तो भी भरोसा महाराजही पर होवाहै अपनी चतुराई और व्यवहार पर नहीं होता सो ऐसेही महापुरुषने भी कहाहै कि भरोसवान् मंत्र और टोने सगुन अपसगुन पर प्रतीति नहीं रखता सो ऐसे तो नहीं कहा कि व्यवहार न करो और नगरको छोड़कर बन विषे जाइ रहो सो भरोसे के पद तीनहैं प्रथम यह है जैसे एक भरोसवान् अन्न तोशे बिना बन विषे गमन करते थे सो यह भरोसा उत्तमहै पर यह भरोसेका चिह्न ऐसे होताहै कि भरोसवान् भूखारहे अथवा घास पात खाइलेवे और यह भी जब प्राप्त न होवे तब मृत्युका भय उसके हृदय में न होवे और ऐसे जाने कि मृत्यु होनाही मेरी भलाई है काहेते कि केते पुरुष ऐसेभी होते हैं जो तोशा सर्व पासरखते हैं पर वह सर्व उनका कोई चोर हरलेता है और वह मृतक होजाते हैं पर यहवार्त्ता कभी दैवयोग से होती है ताते इससे वर्त्तना प्रमाण नहीं दूसरा पद भरोसे का यहहै जो व्यवहारभी नहीं करता और बनविषे भी नहीं जाता नगर विषेही रहताहै पर दृष्टि अपनी श्रीरामजीकी दया पर रखताहै लोगों पर नहींरखता तीसरा पद यहहै जो व्यवहारके निमित्त परदेशको जावे और जिसप्रकार सन्तजनों ने व्यवहार करना कहाहै तिसीप्रकार करे और अपनी चतुराई और यत्न का आश्रय न करे अपनी जीविका विषे बहुत चतुराई और यत्न करे तो भरोसवान् नहीं होता पर व्यवहारको त्यागना भी भरोसेकी युक्ति नहीं इसीपर एक वार्त्ताहै कि एक भरोसवान् था पर व्यवहारका त्याग न करताथा सो जब सर्व भरोसवानों का मुखिया महन्त होता भया तबभी वस्त्रोंकर बाजार विषे जाया तब सबने मिलकर कहा कि एने तो प्रमाण नहीं जो तुम महन्त होकर बाजार विषे व्यवहार करनेको जावो तब उन्होंने कहा कि

कि एक पड़ोसीने हमारेसाथ वचन कियाहै कि दोरोटी नित्यप्रति में तुमको भे- जूंगा तब टहलुवेने कहा कि जो यहबार्ता है तो तुमको व्यवहारका कुछ प्रयो- जन नहीं तब भजनवान्ने कहा कि तू इस हरिमन्दिरका अधिकार किसी और को समर्पण करदेवे तो भलाहै तू इस अधिकार योग्यनहीं काहेसे कि तेरी दृष्टि विषे उस पड़ोसीका वचन महाराज विश्वम्भरके सर्व विश्वप्रतिपालन वचन से विशेष पुष्टहुआ बहुरि एक मुखियाने एक भजनीसे पूछा कि तेरी जीविका कहां सेहै तब उस भजनवान्ने कहा कि जेती भजनका नियम मैंने तुम्हारे संगकिया है सो सब व्यर्थहोगया ताते फेर आदिसे करलेऊं काहेसे कि तुमको महाराज की विश्वम्भर विरदावलीपर प्रतीति नहीं लौकिक सम्बन्धपर दृष्टिहै सो जिसने यहबात सत्य प्रतीति जानीहै तिनको संशय होताही नहीं और उनको प्रत्यक्ष परीक्षाहुई है कि जहांसे कुछ आशा न रखतेथे तहांसे उनको सबकुछ प्राप्तभया है सो विश्वास उनका महाराज के इस वचनपर है जो महाराज ने कहा है कि धरतीपर जेते जीवहैं तिनको जीविका में पहुंचावताहूं इसीपर एक और वार्ता है कि एक प्रीतिमान् से किसीने पूछा कि तुमने अमुक वैराग्यवान् सन्तकी स गतिकरी तिन विषे कौन आश्चर्य गुणदेखा तब उसने कहा कि एकबार मार्ग विषे उनके संगथा सो मार्गमें बहुत भूखेरहे तब नगर विषे जाइपहुंचे तब उन्होंने कहा कि तुम भूखकरके बहुत आतुरहुयेहो तब मैंने कहा कि जी ऐसेही है जैसे आपने कहा है हम भूखकरके बहुत निर्बलहुये हैं तब सन्तने कहा कि एक का- गज और मसी लेआवो तब मैं लेआया तब उन्हों ने कागज पर श्रीरामनाम लिखा और योंभी लिखा कि हमारा प्रयोजन सर्व समय विषे आपहीहैं और कहना भी आपहीके पासहै सोमैं स्तुति और धन्यवादकरनेहारा और आपका नामजापक हूं और आप जनप्रतिपालक हैं पर मैं भूखा प्यासा और नग्नहूं सो स्तुति और धन्यवादकरना और स्मरण यह तीन मेरे कर्म हैं और आहार जल वस्त्रदेना आपका धर्महै सो मैं तो अपने करतूति विषे सावधानहूं आपभी अपने दानी धर्म विषे सावधान हूजिये सो यहकागज लिखकर मुझको दिया और कहा कि श्रीराम विना अपना हृदय और ओर न राखो पर जो मनुष्य प्रथम तुमको मिले उसीको यह कागज देना तब मैं वहां से बाहर आया और एक विजातीय सवार मुझको मिला तब मैंने यह कागज उसको दिया सो उस ग

करीथी और अब उसके हृदयविषे लेनेकी मनसा नहीं ताते आप लेवेगा तात्पर्य यह कि व्यवहार विषे भरोसा ऐसाहोवे कि अपने धन और सामग्रीपर प्रतीति न राखे सो जब इसकी सामग्री चोर लेजावे तब शोकवान् न होवे और श्रीरामजूकी दयाकरके जाने कि जब श्रीराम चाहेंगे तब और संयोगकर आन प्राप्त होवेगा और जब न प्राप्त होगा तौभी मेरी भलाई इसी में होवेगी जिसमें श्रीरामजू की आज्ञाहै ॥ अब प्रकट करना उपाय इस भरोसेकी अवस्था आवनेका ॥ ताते जान तू कि जब धन और सामग्री किसीकी चोर लेजाय अथवा और संयोगकर नष्ट होजावे तब हृदय उसका स्थिररहै सो यह भरोसा दुर्लभ और उत्तमहै पर यहबार्ता अनहोनी भी नहीं इसीकारण करके जो प्रतीति और निश्चय श्रीरामजू की पूर्णकृपा और दया और समर्थपर राखे और जानलेवे कि बहुत मनुष्योंको धन, सम्पदा बिना महाराज प्रतिपाल करते हैं और बहुत धनवान् ऐसे हैं कि उनको वहीधन नाशताका कारण होताहै ताते मेरी भलाई इसी बिषे है जैसे महापुरुष ने भी कहाहै कि मनुष्य रात्रि बिषे किसी कार्यका संकल्प करते हैं और नाश होना उनका उसकार्य बिषे है तब श्रीरामजू अपनी दयाकरके उसके कार्यको सिद्ध नहीं करते तब यह पुरुष शोकवान् होताहै कि यहकार्य क्यों न हुआ और, पड़ोसियोंपर बुरा अनुमान करताहै कि उन्होंने किसी के आगे चुगली कीनी होवेगी सो यह केवल दया श्रीरघुनाथजूकी थी जो उसका कार्य न हुआ तैसे एक प्रीतिमान् ने कहाहै कि जब मैं प्रभातसमय उठताहूं तब जानताहूं कि निर्द्धनताई अथवा धनहोवे सो इसी बिषे मेरी भलाई है जैसे श्रीरघुनाथजू की आज्ञाहै और निर्द्धनताईका भय और बुराईका अनुमान यह मनका स्वभावहै सो इसीपर महाराज ने भी कहाहै कि मन निर्द्धनताईका बैरी है और विश्वास का स्वरूप यहहै कि श्रीसीतारामजी की कृपापर दृष्टिराखे और पूर्णसमझ यह है, कि जिसने समझा कि जीविका हमारी बिशेष करके ऐसे गुप्तमार्गपर आवती है जिसको कोई जानतानहीं सहरि गुप्तमार्गोपर भी बिश्वास न राखे श्रीसीतारामजीका जो उस मार्ग के कर्ता और कारण हैं भरोसा राखे क्योंकि इसकी जीविकाके द्वार यही हैं इसीपर एक वार्ता है कि एक भजनवान् एक शुभस्थान बिषे आसनराखा तब उस स्थान के टहलुओंने कहा कि तुम अपनी जीविकाके निमित्त कुछ उपाय करो तो भलाई है तब भजनवान ने कहा

कि एक पड़ोसीने हमारेसाथ वचन कियाहै कि दोरोटी नित्यप्रति मैं तुमको भे- जेंगा तब टहलुवेने कहा कि जो यहवार्ता है तो तुमको व्यवहारका कुछ प्रयो- जन नहीं तब भजनवान्ने कहा कि तू इस हरिमन्दिरका अधिकार किसी और को समर्पण करदेवे तो भलाहै तू इस अधिकार योग्यनहीं काहेसे कि तेरी दृष्टि विषे उस पड़ोसीका वचन महाराज विश्वम्भरके सर्व विश्वप्रतिपालन वचन से विशेष पुष्टहुआ बहुरि एक मुखियाने एक भजनीसे पूछा कि तेरी जीविका कहा सेहै तब उस भजनवान्ने कहा कि जेता भजनका नियम मैंने तुम्हारे सगकिया है सो सब व्यर्थहोगया ताते फेर आदिसे करलेऊं काहेसे कि तुमको महाराज की विश्वम्भर विरदावलीपर प्रतीति नहीं लौकिक सम्बन्धपर दृष्टिहै सो जिसने यहबात सत्य प्रतीति जानीहै तिनको संशय होताही नहीं और उनको प्रत्यक्ष परीक्षाहुई है कि जहांसे कुछ आश न रखतेथे तहांसे उनको सबकुछ प्राप्तभया है सो विश्वास उनका महाराज के इस वचनपर है जो महाराज ने कहा है कि धरतीपर जेते जीवहैं तिनको जीविका में पहुंचावताहूं इसीपर एक और वार्ता है कि एक प्रीतिमान् से किसीने पूछा कि तुमने अमुक वैराग्यवान् सन्तकी स गतिकरी तिन विषे कौन आश्चर्य गुणदेखा तब उसने कहा कि एकवार मार्ग विषे उनके सगथा सो मार्गमें बहुत भूखेरहे जब नगर विषे जाइपहुंचे तब उन्होंने कहा कि तुम भूखकरके बहुत आतुरहुयेहो तब मैंने कहा कि जी ऐसेही है जैसे आपने कहा है हम भूखकरके बहुत निर्बलहुये हैं तब सन्तने कहा कि एक का- गज और मसी लेआवो तब मैं लेआया तब उन्हों ने कागज पर श्रीरामनाम लिखा और योंभी लिखा कि हमारा प्रयोजन सर्व समय विषे आपहीहैं और कहना भी आपहीके पासहै सोमैं स्तुति और धन्यवादकरनेहारा और आपका नामजापक हूं और आप जनप्रतिपालक हैं पर मैं भूखा प्यासा और नग्नहूं सो स्तुति और धन्यवादकरना और स्मरण यह तीन मेरे कर्म हैं और आहार जल वस्त्रदेना आपका धर्महै सो मैं तो अपने करतूति विषे सावधानहूं आपभी अपने दानी धर्म विषे सावधान हूजिये सो यह कागज लिखकर मुझको दिया और कहा कि श्रीराम विना अपना हृदय और और न राखो पर जो मनुष्य प्रथम तुमको मिले उसीको यह कागज देना तब मैं वहां से बाहर आया और एक विजातीय सवार मुझको मिला तब मैंने वह कागज उसको दिया सो उस ग

वार ने कागज़को पढ़ा और रुदन करनेलगा और कहनेलगा कि इसका लिखनेहारा कहां है, तब मैंने कहा कि अमुक स्थान विषे बैठे हैं तब उन सवारने एक थैली मोहरकी मुझको दीनी तब मैं उन सन्तके निकट लेआया और सब वार्त्ता कहदीनी तब उन्होंने कहा कि यहथैली यहांही रक्खो और खर्च न करो कि इसका देनेहारा अब यहां आवेगा तब उसी समय वह सवार तहां आया और उनके चरणोंपर गिरपड़ा और नेलाहुआ, तब उन्होंने मुझसे कहा कि यह थैली लेजावो और अपने कार्य्य में लगावो पर आप अंगीकार कुछ न किया और एक और वार्त्ता है कि एक मौनिमान्‌ने कहाहै कि एक स्थान विषे मैं दश दिन पर्यन्त भूखाहीरहा तब बहुत निर्बलहुआ और वहांसे उठकर बाहर आया तब एक फल गूलर भूमि में पड़ाहुआ देखा तब मैंने चाहा कि यह लेजेऊं तब मेरे हृदय विषे यही ग्लानिहुआ कि दश दिन भूखारहा और अब यह गूलरफल तुझको मिला सो तेरी प्रारब्ध यहीथी तब मैं उसको त्यागकर उसी स्थान पर आइ बैठा तब एक मनुष्य वहांआया और बादाम और पिस्ते और मिसरी अँगोछा भराहुआ मेरे आगे आनिराखा और कहनेलगा कि मैं जहाज विषे था, तब बहुत पवन वहांचला था मैंने प्रसादबोला और नियमकिया कि प्रथम जो कोई अतिथि मुझको मिलेगा तब मैं उसको देऊंगा सो यह वही प्रसाद है तब मैंने आहार मात्र लेलिया और बाकी उसीको फेरिदिया तब मैं अपने आपको समझावने लगा कि प्रारब्ध में तो तेरी यह मेवा महाराजने रचीथी ताते पवनको समुद्र विषे नौकाके पहुंचानेकी आज्ञाभई जो यहां लेआया और तू भूला और औरसे दूढ़ताहै सो समझना ऐसी वार्त्ताका प्रतीतिको दृढ़ करताहै ॥ अथ प्रकट करना भरोसा गृहस्थी का ॥ ताते जान तू कि गृहस्थी को यह प्रमाण नहीं कि बन विषे जावे और व्यवहारका त्यागकरे काहेसे कि यह भरोसा गृहस्थीका नीमग यहहै सो व्यवहार करना आगेभी कहाहै जैसे एक सांईपुरुषने कहाहै कि भरोसे के अर्थ दो वार्त्ता चाहिये एक यह कि भूखपर धैर्य्य करनेकै और जो कुछ प्राप्तहोवे उसीपर प्रसन्नहोवे चाहे थोड़ाहो चाहे बहुतहोवे १ और दूसरायह कि प्रतीति ऐसी होवे कि जो प्रारब्ध मेरी भूखहै और मृत्युहै सो सत्यही मेरी इसी विधि होवेगी २ सो पुरुष भरोसे का वही आनन्दकारीहै जिस विषे यह दोनों गुण होवें पर मरणपर्य्यन्त का भय सब नहीं मरा और जब विचार कर देखियेतो

इसका मनही कलत्री के समान इढ़ता रहित है सो नम देखे कि सुखमें रहने का बल मेरे विषे नहीं और आतुरताई विभावना है तब व्यवहार का त्याग करना प्रमाण नहीं यद्यपि गृहस्थवालों सम्बन्धी भी सुख को सिद्धि है तौभी व्यवहार की त्याग प्रमाण नहीं परन्तु जब किसी को विश्वास पूर्ण होवे और वैराग्य विषे लगा रहे और व्यवहार न करे तौभी उसको श्रीरूप पहुंचे रहती है जैसे बालक माता के उदर विषे कुछ व्यवहार नहीं करता तौभी नाभि के द्वारे उसको आहार पहुंचता है जब उदरसे बाहर आवता है तब माता के स्तनों से उसको दूध मिलता है जब उससे बड़ा होता है और आहार खाने लगता है तब दांत उसके प्रकट होते हैं जब माता पिता उसके मृत्यु होते हैं और वह बालक अकेला रहता है तब और मनुष्यों के हृदय विषे श्रीरामजी दया डारदेते हैं आगे दया करनेहारी एक माता थी अब अनेक मनुष्य उसपर दया करते हैं जब बड़ा होता है तब आपही कार्य करनेको समर्थ होता है तब इस विषे सही श्रद्धा और बल महाराज देते हैं जो अपना प्रतिपाल आपकरने लगता है जैसे आगे माता इसका प्रतिपाल करतीथी तैसेही आप अपनी खबर लेता है जब अपना प्रतिपाल करने से रहित होता है और व्यवहार का भी त्याग करता है और श्रीरामकी ओर इसका हृदय आवता है तब सर्व जीवों के हृदय विषे इसके ऊपर दया महाराज डारदेते हैं सो मन यही जानते हैं कि यह श्रीरघुनन्दनजी से प्रसन्न हुआ है तातें जो कुछ उत्तम वस्तु होइ सो इनको दीजिये और इनकी सेवा करनी प्रमाण है सो आगे एक आपने ऊपर दया करताथा अब सर्व जीव इसके ऊपर दया करते हैं पर जब यह विकारों विषे लगता है और व्यवहार करनेको समर्थ होकर व्यवहार नहीं करता तब इसपर दया किसी को नहीं आवती तब ऐसे पुरुषको व्यवहार का त्याग करि रबके भरोसा करना प्रमाण नहीं जब अपने मन के साथ मिला हुआ है तब अपनी जीविका की खबरभी लेनी आपही को प्रमाण है तातें जब यह मनुष्य अपना हृदय महाराजकी ओरले आवता है और अपने प्रतिपालन से रहित होता है तब श्रीराघवजू सर्वजीवों को इस पर दयालु करदेते हैं इसी कारके कोई प्रेमी भूख कर मृत्यु नहीं हुआ सो जिसने यह नाम विचार देखा है कि श्रीरामजीने लोक और परलोक विषे किसप्रकार सूत्रालिये हैं और कैसे सम्पूर्ण बनाये हैं तब मनुष्यही इस वचनपर दृढ़ प्रतीति होती है जैसे महाराज ने कहा है कि सर्व जी-

वार ने कायखको पढ़ा और रुदन करनेलगा और कहनेलगा कि इसका खि-सनेहारा कहां है तब मैंने कहा कि अमुक स्थान विषे बैठे हैं तब उस सवारने एक थैली मोहरकी मुझको दीनी तब मैं उन सन्तके निकट लेआया और सब वार्ता कहदीनी तब उन्होंने कहा कि यहथैली यहांहीं रखदो और खर्च न करो कि इसका देनेहारा अब यहां आवेगा तब उसी समय वह सवार तहां आया और उनके चरणोंपर गिरपड़ा और रोताहुआ तब सन्तने मुझसे कहा कि यह थैली लेजावो और अपने कार्य में लगावो पर आप अंगीकार कुछ न किया और एक और वार्ता है कि एक श्रीविमान ने कहाहै कि एक स्थान विषे मैं दश दिन पर्यन्त भूखाहीरहा तब बहुत निर्बल हुआ और वहांसे उठकर बाहर आया तब एक फल सूखा भूमि में पड़ाहुआ देखा तब मैंने चाहा कि यह लेलेवों तब मेरे हृदय विषे यही आनिफुरा कि दश दिन भूखारहा और अब यह सूखाफल तुझको मिला सो तेरी प्रारब्ध यहीथी तब मैं उसको त्यागकर उसी स्थान पर आइ बैठा तब एक मनुष्य तहांआया और बादाम और पिस्ते और मिसरी मैं गोधा भराहुआ मेरे आगे आनिराखा और कहनेलगा कि मैं जहाज विषे था तब बहुत पवन बहाचला सो मैंने प्रसादबोला और नियमकिया कि प्रथम जो कोई अतिथि मुझको मिलेगा तब मैं उसको देऊंगा सो यह वही प्रसाद है तब मैंने आहार मात्र लेलिया और बाकी उसीको फेरिदिया तब मैं अपने आपको समझावने लगा कि प्रारब्ध में तो तेरी यह मेवा महाराजने रचीथी ताते पवन-को समुद्र विषे जीविका पहुंचानेकी आज्ञा भई जो यहां लेआया और तू भूला और ओरसे ढूंढ़ताहै सो समझना ऐसी वार्ताका प्रतीतिको दृढ़ करताहै ॥ अथ प्रकट करना भरोसा गृहस्थी का ॥ ताते जान तू कि गृहस्थी को यह प्रमाण नहीं कि वन विषे जावे और व्यवहारका त्याग करे काहेसे कि यह भरोसा गृहस्थीका तीसरा पदहै सो व्यवहार करना आगेभी कहाहै जैसे एक सांचे पुरुषने कहाहै कि भरोसे के अर्थ दो वार्ता चाहिये एक यह कि भूखपर धैर्य करसके और जो कुछ प्राप्तहै तिसपर प्रसन्नरहे चाहे थोड़ाहो चाहे बहुतहोवे १ और दूसरायह कि प्रतीति ऐसी होवे कि जो प्रारब्ध मेरी भूखहै और मृत्युहै तो भलाई मेरी इसी विषे होवेगी २ सो पूर्ण भरोसे का वही अधिकारीहै जिस विषे यह दोनों गुण होवें पर सम्बन्धियोंको भरोसा नहीं सका और जब विचार कर देखिये तो

इसका मनही कुलत्री के समान दहना रहित है सो जब देखे कि सुमसहने का वल मेरे विषे नहीं और आतुराई थेमावता है तब व्यवहार का त्याग करना प्रमाण नहीं यद्यपि गृहस्थ वाले संस्कारी भी सुख सों सहिसके तो भी व्यवहार का त्याग प्रमाण नहीं पर जब किसी को विश्वास पूर्ण होवे और वैराग्य विषे लगा रहे और व्यवहार न करे तो भी उसकी ओरब्ध पहुंच रहती है जैसे बालक माता के उदर विषे कुछ व्यवहार नहीं करता तब भी नासिका द्वारे उसको आहार पहुंचता है जब उदरसे बाहर आवता है तब माता के स्तनों से उसको दूध मिलता है जब उससे बड़ा होता है और आहार खाने लगता है तब दांत उसको प्रकट होते हैं जब माता पिता उसके मृत्यु होते हैं और वह बालक अकेला रहता है तब और मनुष्यों के हृदय विषे श्रीरामजी दया डार देते हैं आगे दया करनेहारी एक माता थी अब अनेक मनुष्य उसपर दया करते हैं जब बड़ा होता है तब आपही कार्य करने को समर्थ होता है तब इस विषे यही श्रद्धा और बल महाराज देते हैं जो अपना प्रतिपाल आप करने लगता है जैसे आगे माता इतना प्रतिपाल करती थी तैसेही आप अपनी खबर लेता है जब अपना प्रतिपाल करने से रहित होता है और व्यवहार का भी त्याग करता है और श्रीराम की ओर इसका हृदय आवता है तब सर्व जीवों के हृदय विषे इसके ऊपर दया महाराज डार देते हैं सो सब यही जानते हैं कि यह श्रीरघुनन्दन जी के प्यारा हुआ है ताते जो कुछ उत्तम वस्तु होइ सो इन को दीजिये और इनकी सेवा करनी प्रमाण है सो आगे एक आपने ऊपर दया करता था अब सर्व जीव इसके ऊपर दया करते हैं पर जब यह विकारों विषे लगता है और व्यवहार करने को समर्थ होकर व्यवहार नहीं करता तब इसपर दया किसी को नहीं आवती तब ऐसे पुरुष को व्यवहार का त्याग करके भरोसा करना प्रमाण नहीं जब आपने मन के साथ जीता हुआ है तब अपनी जीविका की खबर भी लेनी आपही को प्रमाण है ताते जब यह मनुष्य आपना हृदय महाराज की ओर ले आवता है और आपने प्रतिपाल से रहित होता है तब श्रीराघवजू सर्व जीवों को इस पर दयालु कर देते हैं ऐसी करके कोई वैरागी भूख कर मृत्यु नहीं हुआ सो जिसने यह ज्ञान विचार देखा है कि श्रीरामजी ने लोक और परलोक विषे किस प्रकार सूत्र डाले हैं और कैसे सम्पूर्ण बनाये हैं तब सत्य यही इस वचनपर दृढ़ प्रतीति होती है जैसे महाराज ने कहा है कि सर्व जी-

वोंका प्रतिपाल मैं करनेहाराहूं बहुरि यह समझलेना है कि महाराज ने ऐसी सुन्दर रचना बनाई है जो कोई तबाह नहीं रहजाता और जो कोई तबाह और विरधु रहता है तब उसी विषे उसकी भलाई होती है इसकारण फ़िकर नहीं कि उसने व्यवहारका त्याग किया काहेसे कि केते पुरुषोंके पास धनभी अधिक होता है और व्यवहारभी करते हैं पर धन भी उनका नाश होजाता है और वह भी मृत्यु होजाते हैं इसीपर एक साधुजनने कहाहै कि यहबार्त्ता मुझपर प्रकटहै कि जो सारतिगारु मेरा कुटुम्ब होजावे और एकदाना अनाजका एक मोहर को मिले तो भी मुझको भय कुछ नहीं काहेसे कि प्रतिपाल करनेहारे श्रीसीताराम जी हैं इसीपर एक और भरोसवान्ने कहाहै कि जो आकाश लोहेकाहोइ और पृथ्वी तांबेके साथ जड़ीजावे तो भी जीविका का भय कुछ नहीं सो महाराज जिसमार्ग चाहेंगे तिसमार्गसे जिविका पहुँचावेंगे बहुरि एक ज्ञानवान् सन्त के पास केते लोग आये और कहनेलगे कि हम अपनी जीविका ढूंढें अथवा न ढूंढें तब उन्होंने कहा जो तुम जानते हो कि जीविका हमारी अमुक स्थान विषे है तो वहां ढूंढो बहुरि पूछा कि महाराजसे अपनी जीविका मांगें तब उन्हों ने कहा कि जब महाराज भूलगये होवें तब तुम सुरति करावो बहुरि पूछा कि भरोसाकरें और देखें कि क्योंकर करेगा तब उन्होंने कहा कि भरोसा परीक्षा साथ करना भला नहीं बहुरि उन्होंने पूछा कि भला फिर उपाय क्याहै तब सन्तजीने कहाहै कि उपायका त्याग करनाही उपाय है तात्पर्य यह कि प्रतिपालक श्री रामहीको जानना प्रमाण है॥ अथ दूसरापद भरोसे का निर्णय करने और रक्षा करने में॥ तातें जानतू कि एक वर्ष से अधिक खर्च के हेतु जिसने धन संचय किया तब वह भरोसे से गिरजाता है काहेसे कि गुह्यभेद महाराज के कोन नहीं जानिता भया प्रकट स्थूलतापर दृष्टिराखी पर जन प्रयोजन मात्रपर संतोषकरे कि आहार एता जो भोजन करलेवे और वस्त्र इतना जो नग्नता को ढांकलेवे तब वह भरोसे पर दृढ़हुआ पर जब चालीस दिन का सञ्चयराखे तौभी भरोसा दूर नहीं होता और एक सन्तने कहा है कि सञ्चयकरना भरोसे की कुराई है एक और सन्तने कहाहै कि चालीसदिन से अधिक सञ्चयकरे तौभी भरोसा नहीं जाता पर आसरा उस सञ्चयपर न राखे और एक बुद्धिमान् ने कहाहै कि मैं एक उत्तम वैराग्यवान् के पास था वहां एक सन्त उनके दर्शन को आया तब

उन वैरागीने मुझसे कहा कि तुम उत्तम भोजन लेआवो तब मैं लेआया बहुरि वह सन्त और वैराग्यवान् दोनों मिलकर भोजन करनेलगे सो यहबात मुझको आश्चर्य्यवत् भई कि उन वैराग्यवान् ने आगे कबहूं ऐसे न कहा था जो ऐसा उत्तम भोजन लेआवो और प्रसाद भी किसी के साथ मिलकर नहीं पावतेथे जब भोजन करचुके तब प्रसाद जो बचरहाथा सो उन सन्तने सब लेलिया और चलेगये तब मुझको और भी आश्चर्य्य आया कि बिनापूँछे लेजाना कैसे प्रमाण है तब उन वैराग्यवान्ने कहा कि यह उत्तम सन्तजन हैं और दूरसे तेरे मिलनेको आयेथे तातें हमको यही सीखदीनी कि जिसका भरोसा दृढ़ हुआ होतिस को मञ्चय करनासी कुछहानि नहीं तात्पर्य्य यह कि मूल भरोसेका निराशता है सो अपने निमित्त सञ्चय न राखे और जब सञ्चय राखे तब ऐसे जाने कि यह धन और पदार्थ श्रीसीतारामजी के भंडार विषे हैं और उन सञ्चय पर भरोसा न राखे तब भरोसा इसका जाता नहीं सो यह चर्चा उसका अधिकार है जो इकल्लाही होवे और जो गृहस्थी होवे और वह वर्षाशता राखे तब उसका भरोसा जाता नहीं परजब वर्ष से अधिक सञ्चय राखे तब भरोसा दूर होजाता है जैसे महापुरुष भी अपने कुटुम्बियों के निमित्त एक वर्ष का सञ्चय करदेते थे और अपने निमित्त दूसरे बेलेका भी न रखतेथे और जो रखते तो उनको कुछ घटना भी नहीं कि होना न होना भिन्न सर्वदाका उन को एकसमान था पर और जीवों के समझाने के निमित्त ऐसे करतेथे सो एकबार महापुरुषके मिलीमीका शरीर छूटाथा तब पीछे उसके वस्त्र में से दोरुपये निकसे तब महापुरुषने कहा कि दो दाग इसके मस्तकपर देवो सो यह वार्त्ता दो प्रकारकर समझी जाती है एकतो यह लोगों को छल करके आपको इकल्लाही दिखावता था तातें सञ्चयके सम्बन्ध करके इतना दण्ड देना प्रमाण हुआ और दूसरा यह कि जब छल भी न किया होवेगा तब भी सञ्चय करने कर उसको परलोक विषे घटनी होवेगी जैसे दागदेना मुख परसुन्दरता को घटाता है बहुरि एक और प्रीतिमान् का शरीर छूटा था तब महापुरुषने कहा कि परलोक विषे इसका मुख पूर्णमासी के चन्द्रमा की नाईं होवेगा पर जब एक अवगुण इस विषे न होता तब सूर्य्य की नाईं इस का प्रकाश होता बहुरि लोगोंने पूछा कि वह अवगुण कौनथा तब महापुरुषने कहा कि वस्त्र अपने एक वर्षके दूसरे वर्ष निमित्त रखताथा सो यह उसके निश्चय

फी कसरहे मर यह मार्ग प्रमाणिहे कि जो बासन नित्यप्रति चाहिये तिनको रक्ख छोड़े और अनाज और वस्त्र तो वर्ष उपरान्त और भी आवते हैं और यह नित्यप्रति कार्य्यवाले बासन आदिक नित्यनवीन नहीं पैदाहोते सो यह नेत भगवतने रचीहै तिसका त्यागना प्रमाण नहीं फिर वस्त्र जाड़ेके गरमी विषे काम नहीं आवते तबइनको रखना बुद्धिके निश्चयकी निर्बलता है अब ऐसे जान तू कि जब कोई ऐसाहोवे कि संचय बिना उसके हृदय विषे आतुरता होवे और और लोगों की आशराखे तब उसको संचय रखना प्रमाणहै काहेसे कि जब भजन स्मरण विषे चित्तठहरे नहीं तब कुछ प्रयोजनमात्र जीविका का सम्बन्ध राखे तो भलाहै इसकरके कि प्रयोजन सर्व शुभ गुणोंका यहहै कि हृदय श्रीरामजीकी ओर राखे एक ऐसे पुरुष होते हैं जो धनका संचय उनको बन्धमानी और विक्षेपताका हेतु होताहै और निर्द्धनता विषे एकाग्रचित्त रहते हैं सो यह मनुष्य विशेष हैं और एक ऐसे पुरुष हैं कि बिना संचय के उनका चित्त ठहरता नहीं तिनको प्रयोजनमात्र संचय प्रमाणहै पर जब अधिक राजसी विषे हृदय होजावे तब वैह भी विश्वास नहीं कहावता ॥ अथ तीसरा पद भरोसे का विघ्नके दूर करने में ॥ तातेजान तू कि जो सम्बन्ध अवश्यही है सो तिसका त्यागना भरोसा नहीं होता और शस्त्ररखना जो शत्रुको दूरकरे तब यहभी प्रमाणहै जैसे शरदऋतुविषे वस्त्र पहिरे चाहै मार्ग चलनेकरके वस्त्र पहिरे तब भी प्रमाणहै पर जब ऐसे करे कि वस्त्र नपहिरे और भोजन अधिक करलेवे कि मार्ग विषे सरदी न व्यापैगी सो यह प्रमाण नहीं और भरोसा नहीं कहाजाता काहेसे कि जिसप्रकार भगवंतने प्रकट सम्बन्ध राखे हैं तिनका त्याग करना प्रमाण नहीं जैसे एक जंगली पुरुष महापुरुषके पास आया तब महापुरुषने कहा कि तुम्हारा ऊंट कहां है तब उसने कहा कि भरोसा करके जंगल में छोड़ दियाहै तब महापुरुषने कहा कि पांव बांधकर भरोसाकर पर जब किसीको किसी मनुष्यसे कष्ट पहुंचे तब तिसका सहनाही भरोसाहै जैसे भागवतमें भी कहाहै कि जब किसी मनुष्यसे तुम को दुःख पहुंचे तब गमखाकरके उसके दुःखको सहना प्रमाणहै पर जब कोई श्वान सिंह अथवा सर्प करके भयहोवे तब उससे दूरहोना प्रमाणहै पर जब शस्त्र शत्रुके निवृत्तकरने निमित्त राखे सोभी आसरा शस्त्रोंपर न राखे जैसे ताला द्वारको लगावे तौ तालेपर प्रतीति न राखे श्रीरामजी पर राखे काहेसे कि पेंतनाले तोड़कर

भी चोर वस्तुको लेजाते हैं सो भरोसवान्‌का लक्षण यहहै कि जब घरमें चोरसा मग्री लेजावे तब आज्ञा श्रीरागजूकी जानकर प्रसन्नहोवे जब घरके दर्वाजे को ताला देवे तब हृदयविषे ऐसेकहे कि हे महाराज! मैंने ताला इस निमित्त नहीं दिया कि तेरीआज्ञासे विपर्ययहोवे और जो तेरी आज्ञामें मेराधन सामग्री किसी और की जीविकाहै तोभी मैं प्रसन्नहूं वादेसे कि हमारा भला इसीमें होगा जैसे तैंने चाहाहोवे पर जब ताला देजावे और फिर घरआवे और देखे कि गृहकादार खुलाहुआहै और सामग्री नहीं रही और इस करके शोकवान्‌होवे तब जाने कि मेरा भरोसा पूर्ण नहीं यह भी मनका छलथा पर जब गृहकी सामग्री जावे और मुखमें कुछ किसीके आगे न कहे तो सन्तोषवानों विषे होताहै भरोसवान् नहीं होता बहुरि जब मुखसे भी कुछ कहनेलगे और चोरकी ढूंढ़करे तब सतोष और भरोसा दोनोंसे गिरताहै सो जब जानलेवे कि मैं न भरोसवान्‌हूं न धैर्य संतोष वान्‌हूं तब यहगुण तो होताहै कि चोरके संबंधकरके अनहोता अभिमानी नहीं होता बहुरि जब कोई ऐसे प्रश्नकरे कि जो इसको उस धनकी कुछ चाह न होती तो घरका ताला न देता सो जब रक्षा और चाह उस धनकी इसको थी तब वस्तु के जानेकरके शोकवान् क्योंकर न होवे तब इसका उत्तर यहहै कि श्रीरघुवरजूने इसको धन दियाहै सो जबतक इसके पासरहै तबतक यह जाने कि भलाई मेरी इसी धनमें है क्योंकि महाराजने मेरी भलाईके निमित्त मुझको दियाहै और जब धनजावे तब जाने कि भलाई मेरी इसीविषे महाराजने जानी है ताते महाराजने लेलिया है ताते दोनों अवस्था विषे प्रसन्नरहै और प्रतीति दृढ़राखे कि श्रीराम जो कुछ करते हैं जिसविषे मेरी भलाई होती है सो यह वार्ता महाराजही भली प्रकार जानते हैं मैं नहीं जानता तिसपर दृष्टांतहै यह जैसे कोई रोगीहोवे और पिता इसका वैद्य और इसपर अति दयालुहोवे सो जब बलदायक आहार इस को देवे तोभी प्रसन्नहोकर खाता है और जानता है कि उसने मुझको आरोग्य जाना है तब बलदायक आहार दिया है और जब ऐसा आहार न देवे तब यों जाने कि इसने रोगी जानकर नहीं दिया सो जब इसप्रकार प्रतीति दृढ़ न होवे तब यह भरोसा नहीं ऐसेही व्यर्थ वचन कहताहै ॥ अथ युक्ति भरोसेकी ॥ ताते जान तू भरोसवान्‌को पट् ६ युक्तिचाहिये प्रथम यह कि अपने गृहका दरवाजा जो बन्दकरे तो बहुत जंजीर और ताले न लगावे और पड़ोसियों में भी बहुत

न कहे कि तुम सुरतगखना महनरीनिमे ताला देलेवे जैसे एक भगोसवान् गृह के कपाटको धागा बाध जातेथे और कहतेथे कि जो कूकरका भय न होता तो मैं धागाभी न बाधता १ दूसरी युक्ति यह कि कोई वस्तु अधिक मोलवाली गृह में न राखे जो चोरको उसकी अभिलाषाहोवे एक भरोसवान्के पास किसी धनी ने कुछ रुपये भेजेथे तब उन्होंने न लिये और कहनेलगे कि हम धनकरके मन विषे संकल्प यह होताहै कि चोर लेजावेगा और जब चोरलेजावे तब पाप विषे पड़ता है ताते में ऐसे नहींचाहता यह वार्त्ता एक और सन्तने सुनी तब कहने लगे कि यह वार्त्ता इनकी निर्बलता भरोसे की है काहेसे कि वह वैराग्यवान् थे जब चोर लेजाता तब क्याभय उनको था सो यह वार्त्ता उत्तम भरोसे की है २ बहुरि तीसरीयुक्ति यहहै कि जब गृहसे बाहर निकसे तब यह मनसाधारे कि जब चोर लेजावे और फेर न देवे तब मैंने उसको कृपाकिया क्योंकि जब वह चोर अर्थी है तब उसका अर्थ पूर्णहुआ और जो धनवान्है तोभी यह भलाई हुई कि औरोंका धन उसने न लिया ताते धनहमारा औरोंपर वारा सो यह वार्त्ता बड़ी दयालुताकी है चोरपर भी और औरोंपर भी ताते आज्ञा महाराजकी तो अवश्यही होनीथी पर इसको अपनी भावनाके अनुसार बड़ा लाभहुआ कि एक दामका सहस्र फल होता है इसीपर महापुरुषने कहाहै कि जब कोई भगवत् के अर्थ शीशदेने युद्धविषे जावे तब आगे उसका शरीरछूटे अथवारहे पर उसको वह भावनाका फल होताहै काहेसे कि उसकी भावना शीश देनेकीथी ३ बहुरि चौथी युक्ति यह कि जब इसका धनजावे तब शोक न करे और जाने कि मेरा भला इसी में था जब ऐसे कहे कि श्रीभगवर्पण मत उसकी हदमी न करे और वह जब फेर देवे तोभी अंगीकार न करे जब अङ्गीकारकरे तबभी वस्तु इसीकी थी ताते दोष उसको न लगेगा पर भरोसा के पद में फेरलेना शोभित नहीं है जैसे एक सतकी गऊ चोर चुरालेगये तब उन्होंने ढूंढ़करी पर कहीं हाथ न आया तब कहने लगे कि भगवत् निमित्त हुआ और भजन करनेलगे बहुरि किसी पुरुषने आन कहा कि गऊ तुम्हारी अमुकस्थानमें है तब उठखड़ेहुये बहुरि विचारकर कहनेलगे कि मैं भूलाहूं काहेसे कि मैंतो भगवत् निमित्त कियाथा ताते अब मैं काहेको जाताहूं ताते जाना त्यागदिया बहुरि एक धीनिमानने कहाहै कि मैंने अनुभव ध्यान विषे भगवे एक मित्रको स्वर्ग विषे देखा कि लोक

वानहै तब मैंने उनसे पूछा कि तुम शोकवान् क्योंहो तब उन्होंने कहा कि यह शोक मेरा अमिटहै इस निमित्त कि प्रथम स्वर्ग में उत्तम स्थान मुझको देवतों ने दिखायेथे जिनसे ऊंचा और कोई न था जब मैं वहां जानेलगा तब मुझको जाने न दिया काहेसे कि यह स्थान उसको प्राप्त होताहै जो अपने वचनों का निर्वाहभी करताहै सो तैंने अपने वचनका निर्वाह नहींकिया अर्थात् तुमने कोई पदार्थ भगवत् अर्थ कहाथा सो फेर उसको अङ्गीकारकिया सो जब तुम अङ्गीकार न करते तब तुमको स्थान यहां मिलता बहुरि एक और मनुष्य की थैली रुपयोंकी सोवते में किसीने लेलीथी जब वह जागा तब ढूंढनेलगा जब न पाई तब एक भजनवान् से कहनेलगा कि तुम थैली हमारी लेआयेहो तब वह भजनवान् उसको अपने गृहमें लेआये और उससे पूछा कि तेराधन केताथा सो जेता उसनेकहा तेताही देदिया जब वह वहांसे लेकर बाहरलेआया तब किसीने कहा कि थैली तुम्हारी तुम्हारे मित्रने हांसीकरके लेलीथी तब वह पुरुष वह रुपये भजनवान्के पास फेर लाया तब उसभजनवान्ने अङ्गीकार न किये और कहने लगे कि मैंने तो श्रीराम निछावर कहकर दिये थे तातें मैं नहीं फेरसक्ता बहुरि उस पुरुषने कहा कि मेरी थैली मिलगई अब मैं तुमसे दण्ड क्योंकरलूं अन्तको दोनोंने अङ्गीकार न किये वह थैली अर्थियों को बांटदीनी इसीप्रकार जब कुछ भोजन किसी अर्थी के निमित्त कियाहोवे और उसके पास लेजावे सो जब वह अर्थी वहांसे चलाजावे तब वह भोजन अपनेगृह में फेरलाना प्रमाण नहीं किसी और अर्थीको देदेवे ४ बहुरि पांचवीं युक्ति यह कि जिसने इसका धन सामग्री हरलिया होवे तिसके निमित्त शाप न देवे कि शापदेनेसे भरोसा और वैराग्य दोनों नष्ट होजाते हैं इसीपर एक वार्त्ता है कि एक साधुकी एक दूधकी गाय किसीने चुरायलीथी तब वह साधु कहनेलगे कि गऊको जब चोरलिये जानेथे तब मैंने देखाथा तब लोगोंने पूछा कि तुमने उनको क्यों न बरजा तब उस साधुने कहा कि मैं उसकाल भजनके रसमें मग्नथा तातें मैंने कुछ न कहा यहसुनकर चोरको बुरी असीसदेनेलगे तब साधुनेकहा कि तुम उसको बुरावचन न कहो काहेसे कि मैंने उसको बकसाहै बहुरि लोगोंने कहा कि तुम ऐसे तामसी पुरुषको शापदेने नहीं देते तब साधुनेकहा कि उसने अपने ऊपर अन्याय किया है मेरेऊपर तो नहीं किया उसको अपनी बुराईही बहुत है हम उसको क्यादुःख दें

इसीपर महापुरुषने भी कहा है कि जो आपने शत्रुको शापदेता है तब अपनी गलाईका बदला लेलेता है ५ छठीयुक्ति यह कि जब हृदय विषे शोकले आवे तो उस चोरके निमित्त शोककरे कि यह बुराई जो उससे हुई है इस पापकर्मके उसको दण्डहोवेगा बहुरि धन्यवादकरे कि मेरे धन सामग्रीको दूसरेने लिया है मैंने तो किसीका कुछनहीं लिया ताते मेरे धनविषे यह विघ्नहुआ है मेरे धर्मविषे तो विघ्न नहींहुआ ताते जब किसीसे इसका पापहोजावे और यह हृदयविषे क्लेश न करे कि इसमे बुराभयाहै परलोक विषे दण्डकाभागी होवेगा तब वह लोगोंपर दया के देशमे भिन्नहोगया इसीपर एकवार्त्ता है कि एक साधुका वस्त्र किसीने चो- रायाथा तब वह साधु रुदनकरनेलगा तब किसीने पूछा कि तुम वस्त्रके निमित्त रोवतेहो तब साधुनेकहा कि मुझको चोरपर दयाआवती है कि जब वह परलोक विषे जावेगा तब उससे पूछेंगे सो वह क्या उत्तरदेवेगा॥ अथ चौथापद भरोसे का ओषधि करना और विघ्नकर्त्ताको टारना॥ सो यह भी तीनप्रकारका है प्र- थम यह कि अवश्यमेव है जैसे भूखका निवृत्तकरना भोजनकर होता है और तृषाका निवृत्तकरना जलकरके होताहै और जब अग्निलागे तब उसपर जल डारना सो इनका त्यागना भरोसा नहींहोता यहबात प्रमाणहै १ दूसरा यह जो अवश्यही भी न होवे और अवश्यही के निकट कदाचित् किंचित् होइ जैसे मन्त्रयन्त्र और टोनाहोताहै सो इनका त्यागनाही भरोसाहै २ और तीसरा इन के मध्य है जैसे फस्दकरावना और जुलाबलेना और गरमीके रोगकी ओषधि शरद करनी और शरदीके रोगकी गरमकरनी सो इनका त्यागना प्रमाण नहीं और इनका करना युक्ति भरोसेको भी नहीं फेरे अवसर विषे न करनेसे करना विशेष है और फेरे समय विषे न करना विशेष है इसीपर महापुरुष की साखी है सो कहनी और करनी करके है सो कहनी यह है कि उन्होंने कहाथा कि हे जीवो! श्रीरामजीकी रचीहुई ओषधिको अवश्यकरो क्योंकि कालमृत्यु के बिना ऐसा कोई रोग नहीं जिसकी ओषधि न होइ पर कोई जानता है कोई नहीं जा- नता तब लोगोंने पूछा कि ओषधि और मन्त्र श्रीरामजीकी आज्ञाको दूर करसके हैं तब महापुरुषने कहा कि यह भी समरजायगे हैं और रुधिरका निकार बहावना यह भी तुम्हारा नाश करनेहारा है महाराजकी आज्ञामे यह वार्त्ता अप्रमाण नहीं रुधिरका निकासना और सर्प को दूर करना अथवा अग्निका निवृत्त करना सो

इत्यादिक इसके विनाश करनेहारे हैं सो इनको न करना यह भरोसी नहीं क-हावता इसीपर एक मिलापीमें महापुरुष ने कहाथा कि रुधिर अगता निकासो और एक ओरकी आखोंको दर्देथा, तिसको कहा कि खजूर न खावो और शरद आहारखावो और रहनि उनकी यहथी; कि अंजन नेत्रों विषे नित्यप्रति डारतेथे और प्रतिवर्ष रुधिरभी निकसवावतेथे और जुलाबभी करतेथे और जब हाथ पांव शीशको कुछ खेदहोता तब ओषधि करते थे इसीपर एकवार्ता है कि एकसन्त के कुछरोग होताभया तब लोगोंने कहा कि अमुक ओषधि इसरोगकी है और आगे हमनेभी कियाहै तुमकरो तब सन्तने कहा कि मैं ओषधि नहींकरता जब वहरोग अधिकहुआ तब लोगोंने कहा कि ओषधि इसकी प्रगट है तुमकरो तब सतने कहा कि चाहे यहरोग हमकोरहे पर दवाई न करेंगे तब उससंतको भगवत् की आकाशवणीहुई कि मैं अपनी दुहाईकरके कहताहूं कि जबलग तू ओषधि न करेगा तबलग यहरोग निवृत्त न होवेगा सो उस सन्तने ओषधि किया और रोग दूरहोतभया तब उससन्तके हृदयविषे कुछ संशयआया तब आकाशवाणी हुई कि इनवनस्पतियोंविषे जो मैंने शक्तिराखी है और इन ओषधियोंमें गुणराखे हैं सो तू अपने भरोसेकरके दूरकिया चाहताहै और एकसाधुने महाराजके आगे प्रार्थना करीथी कि मेराशरीर निर्बलहै तब उसको आकाशवाणी हुई कि दूध घी आदिक बलदायक आहारखावो सो तात्पर्य यह कि ओषधि करना रोगको नि-वृत्त करनाहै जैसे भूख और तृषाके निवृत्त करने को जल और अनाजहै तैसेही ओषधिभी है पर हृदयकी प्रतीति श्रीरामहीपर राखे और एक और सन्तने महा-राजके आगे विनती करीथी कि रोग और अरोगता किसकी प्रेरणामे होते हैं तब आज्ञाहुई कि दोनों मेरीही ओरसेहैं बहुरि प्रार्थनाकरी कि फिर वैद्य किसकाम आ-वता है तब आज्ञाहुई कि ओषधिकरके उनकी जीविका इसीप्रकार रची है और मेरे जीवोंको धैर्य देते हैं सो भरोसा इसविषे हृदयकी समझ और अवस्था क-रके होता है कि हृदयकी प्रतीति श्रीरघुनन्दनजी पर राखे ओषधियोंपर न राखे काहेसे कि केते लोग ओषधि भी खाते हैं और मृत्यु होते हैं पर दागका करना भरोसा गिराय देता है और दाग लगावना किसी रोगकी निवृत्ति के निमित्त प्रमाण भी नहीं काहेसे कि दागकरके भेद बहुत होताहै और रुधिर कढ़ावने और ओषधि खानेकी नाईं नहीं ॥ अनस॥

विषे ओषधि न खानाभी प्रमाणहै और महापुरुष के वचन और करतूतिमें विपर्य्ययभी नहीं ॥ तातें जान तू कि केते सन्तजनोंने ओषधि भी नहींकरी है पर जब कोई इसप्रकार कहै कि जो ओषधि न करना प्रमाणहोता तो महापुरुष ओषधि न करते सो उन्होंने तो ओषधि कियाहै तब इसका उत्तर यहहै कि ओषधि न करना षट कारणोंकर होताहै प्रथम यह कि जिसने यह बात प्रत्यक्ष जानी है कि मृत्यु मेरी निकट आई है तब वह ओषधि नहीं खाता जैसे एक सन्त रोगी हुआथा तब लोगोंने कहा कि वैद्य को क्यों नहीं बुलवाते तब उन्होंने कहा कि वैद्य मुझको जानताहै सो इसका प्रयोजन यह कि मरना अपना उन्होंने जाना था कि निकट आयाहै १ दूसरा प्रकार यह कि जो रोगी जन परलोक मार्ग के भयविषे हृदय को लगाये होताहै तातें ओषधिकी ओर हृदय नहीं देता इसीपर वार्त्ताहै कि एक साधुको रोगके समय विषे किसीने रोवते देखकर पूछा कि तुम क्यों रोवतेहो और तुम्हारी चाह क्याहै तब उन्होंने कहा कि श्रीसीतारामजीकी दयाचाहताहूं बहुरि लोगोंने कहा कि वैद्यको बुलाइये तब उन्होंने कहा कि वैद्य नेही मुझको रोगी कियाहै और एक और साधुकी आंखोंको पीड़ाथी तब लोगोंने कहा कि ओषधि नहीं करते तब उन्हों ने कहा कि ओषधि से उत्तम एक क्रिया विषे लगा हूं सो इसका दृष्टान्त यह कि जैसे किसी को राजा के निकट पकड़ कर लेजावें और उसको राजा की बहुत ताड़ना का भय होवे बहुरि उस अवसर विषे कोई उसको कहै कि भोजन करले तब वह पुरुष कहताहै कि मुझको भोजन की रुचि क्योंकर होवे जो मुझको ताड़ना होनी है सो यह कहना उसका यथार्थ है तैसेही जो पुरुष परलोकके भयविषे रहते हैं तिनको ओषधि करना भूलजाताहै बहुरि एक सन्तसे किसी ने पूछा कि आहार तुम्हारा क्याहै तब उन्होंने कहा कि श्रीरामनाम स्मरण मेरा आहार है बहुरि लोगों ने कहा कि हम तुम्हारा बल पूछते हैं तब उन्होंने कहा कि श्रीरघुनन्दनके रूप अनूपको विचार हमारा बलहै बहुरि लोगोंने कहा कि हम अन्नका आहार पूछते हैं तब उन्होंने कहा कि यह शरीर श्रीराघवजू सर्व विश्वंभरपर राखो २ तीसरा प्रकार यह कि रोग बहुत दिनोंका होवे और रोगी जानता होवे कि ओषधि खानेविषे समायहै कि रोग दूर होवे अथवा न होवे क्योंकि वैद्य कभी अज्ञानभी नहीं जैसे एक अनुरागी को रोगहुआ और उसने चाहा कि ओषधि करूं पर यह विचार

उपजा कि आगे भी केतोंने रोगके ओषधि किये हैं और उनके शरीर छूटगये ताते मैं काहेको ओषध करूं सो प्रत्यक्ष बातपर उनकी दृष्टिथी ३ चौथा प्रकार यह कि रामानुरागी इसप्रकार नहीं चाहता कि रोग मेरा निवृत्तहोवे काहेते कि रोगकरके मुझको लाभ होवेगा और दूसरे मेरे धैर्यकी परीक्षा होवेगी इसीपर महापुरुषने भी कहाहै कि श्रीरघुनाथजू अपने दासोंको रोगविषे परखा चाहते हैं जैसे स्वर्ण को अग्नि विषे परखते हैं सो जो सोना खराहोता है वह निर्मल होताहै और जो खोटाहोताहै वह काला होजाताहै तैसेही सच्चा अनुरागी रोग के अवसर से भली भांति निर्मल होइ निकलता है और कबा श्रीरामजी को उरहना देताहै जैसे एक साधु औरों को रोगकी ओषध बतावते थे और आप ओषध न खाते थे और कहते थे कि बैठकर भजन करना रोगसहित मुझको प्रियतम है जो अरोग होकर खड़ा होकर भजन करूं ४ पञ्चम प्रकार यह है जो कोई जाने कि मैंने पाप बहुत किये हैं और यह रोग मेरे पापों का पुरश्चरण होताहै तब वह ओषध नहीं करता जैसे महापुरुषने भी कहाहै कि रोग जो मनुष्य को आवताहै सो इसके पापदूर करताहै और यह शुद्ध होताहै जैसे बिजली निर्मल होतीहै इसीपर एक साधु ने कहाहै कि जिसके ऊपर रोग आवै और वह प्रसन्न न होवे तब जानिये कि इस वार्ता को इसने भली प्रकार नहीं जानाहै कि रोगकरके मेरे पाप क्षयहोते हैं इसीपर एक सन्तने एक रोगीको देखा और महाराजसे प्रार्थनाकरी कि हे स्वामिन्! इसके ऊपरदया क्यों नहीं करते तब आकाशवाणी हुई कि इसके ऊपर यही मेरीदयाहै जो रोगकरके इसके पाप क्षीण होवेजाते हैं और इसकापद उत्तम होताजाताहै ५ छठाप्रकार यह कि रोगी यों जाने जो शरीरकी अरोगता करके विषयों का सुख और अचेतना होती है और मन सुमता श्रीरघुनन्दनजूसे होतीहै और रोगकरके मुझसे अचेतता दूर होवीहै ताते मेरा हृदय श्रीसीतारामजी की ओर रहताहै और जिसका श्रीरघुनाथजी भला चाहते हैं तिसको रोगोंके संग सचेत रखते हैं इसीपर सन्तजनों ने कहाहै कि अनुरागी जन तीन वार्तासे खाली नहीं होते एक निर्द्धनताई १ दूसरे रोग २ तीसरे अपमान ३ जैसे महापुरुषने भी कहाहै कि महाराजने यों कहाहै कि निर्द्धनताई और रोग मेरा बंधनहै सो मैं यह बंधन उसीको डालताहूं जिस को मैं प्यारा होताहूं ताते अरोगता पापोंका कारणहै और रोग विषे इसजीवकी

भलाईहै इसीपर एक साधुने किसीसे पूछाथा कि तुम्हारा क्या हालहै तब उस ने कहा कि कुशल है तब सन्तने कहा कि कुशल सुख तब होताहै जिस दिन पाप न होवे और जब पाप करिये तब कैसा सुखहै और एक राजाने जो आप को ईश्वर कहा तिसका यही कारण था कि चारसौ वर्षकी उसकी आयुष् हुईथी और उसको कोई रोगभी न हुआ ताते आपको ईश्वर माननेलगा पर जब एक क्षणभी उसको रोगहोता तब ऐसा अभिमानी न होता सो जब यह मनुष्य एक दोवार रोगी होताहै और पापोंका त्याग नहीं करता तब इसको धर्मराय कहते हैं कि हे अचेत ! मैंने तुमको रोगरूपी सन्देशा भेजाथा और तैंने न सुना इसी पर एक सन्तजनोंने कहाहै कि हरिभक्त चालीसदिनविषे इतनी वार्त्तों से खाली न होवे शोक अथवा रोग अथवा भय अथवा कोई धनका विघ्न इनचारों मेंसे कोई होवे तो भलाहै इसीपर वार्त्ता है कि एक दिन महापुरुषके पास कोई रोग की चर्चा चलावतेथे तब एक मनुष्यने कहा कि यह कैसी वार्त्ता है हम तो रोग को जानतेभी नहीं तब महापुरुषने कहा कि मुझसे दूरहोवो और कहनेलगे कि जो किसी नारकी को देखना होवे तो इसकी ओर देखो एक दिन महापुरुषकी स्त्रीने महापुरुषसे पूछा कि स्वामीजी जो पुरुष श्रीरामहेतु शीश अर्पे उसके पद को भी कोई पावताहै तब महापुरुषने कहा कि जो पुरुष एक दिनविषे बीसवार मृत्युको चित्तमें लावे सो उस पदको पावता है सो इस वार्त्ता को रोगीही चिंतन करताहै यह सन्शय नहीं ॥ अथ षट्कारण ओषधि न करनेके ॥ सो बहुत पुरुषों ने इन षट्कारणों कर ओषधि नहीं किया और महापुरुष इन षट्वार्त्तों से उदास थिन हुयेथ ताते ओषधि इसकारणसे करतेथे कि और लोगभी इसी भांति बर्ते तात्पर्य यह कि अत्यक्ष उपाधियोंका त्यागकरना भरोसे को खण्डित नहीं करता एक महापुरुषके प्रियतमथे सो किसी देशको गमन करतेभये तब आगे किसीने कहा कि इसदेशविषे रोग बहुतहैं और लोग बहुत मृत्यु होतेहैं तब किसीने कहा कि जाइये भगवत् की आज्ञा में भय न करिये और किसी ने कहा कि न जाइये तब महापुरुषके प्रियतमने कहा भगवत् की आज्ञा करकेही भगवत् की आज्ञासे भा- गना प्रमाणहै तब और एक प्रीतिमान् से पूछा कि तुमने महापुरुष का सत्संग बहुत कियाहै तुम उनका सम्मत इस विषे सुनावो तब उन प्रीतिमान्ने कहा कि एक दिन महापुरुषने ऐसे कहाथा कि जो एक जंगलविषे हरीघासहोवे और एक

सूखा निर्गलि होवें तब हरे तृणोंके जंगल विषे पशुओं को चरवाहा लेजाताहै सो ऐसेही प्रमाणहै सूखे जंगलविषे लेजाना प्रमाण नहीं और महापुरुष ने ऐसेभी कहा है कि जहा रोग करके बहुत मृत होते होवें तहा जाना प्रमाण नहीं परन्तु जब आगेसे वहां रहाहोवे तब वहांसे भागना प्रमाण नहीं यह सुनकर उस प्रीतिमान्ने कहा कि भलाहुआ जो मेरी समझभी महापुरुषके कहने के अनुसार हुई और विपर्यय न हुई तब यही सबने प्रमाण किया कि वहा न जाइये पर यह जो कहाहै कि जहा अधिक मृत होते होवें और रोगकी अधिकताहोवे और यह भी आगेसे वहां रहताहोवे तब वहासे छोड़ न जावे सो इसकारण करके कहा है कि जब यह वहांसे छोड़ जावेगा तब और लोगोंकी खबर कब न लेवेगा और उस देशकी हवाभी इसविषे प्रवेश करजाती है तब भागना व्यर्थ है क्योंकि जहा जावेगा तहाभी रोग फैलजावेगा ताते वहासे छोड़जाना प्रमाण नहीं इसकारण कि जिसप्रकार रणमें भागने में अपर योद्धाओं और घायलों का मन टूटजाताहै तैसेही यहा रोगियों का मनभी टूटजाताहै कि अब हमारा टहल करनेहारा भी कोई नहींरहा ताते रोगियों का मरन अवश्यही होताहै और भागनेवाले का मृत्युसे बचना संशय विषे है ताते जान तू कि रोगको प्रकट न कहना यह लक्षण भलोंमें का है और रोगको प्रसिद्ध करना प्रमाण नहीं पर किसी प्रयोजन करके प्रमाण है जैसे वैद्य के आगे रोगकी व्यथा कहनी अथवा अपनी दीनता कहनी जो अभिमान और मनकी प्रबलता को घटावे जैसे एक रोगी प्रीतिमान् से लोगों ने पूछा कि आपके कुशलहै तब उन्होंने कहा कि नहीं तब वह लोग विस्मित भये तब उनप्रीतिमान्नेकहा कि भगवत्केसाथ अपना बलदिखाना प्रमाणनहीं ताते उन्हींको ऐसे कहना प्रमाण है जो होवे बल अपनी दीनता करने थे इसी कारण से श्रीरघुनन्दनजूसे प्रार्थना करते थे कि हे महाराज ! मुझको आपनी दया करके ऐसा धैर्य्यदीजे जो दुःख और अपमान को सहूं इसीपर महापुरुषने कहा है कि भगवत् से कुशल क्षेममांगो दुःख न मांगो सो ऐसेही कारण करके रोग का प्रकट करना प्रमाणहै पर जब ऐसा कारण न होवे तब कहना प्रमाण नहीं पर जब कहे तब भी श्रीरघुवरजू पर ग्लानि न लावे पर गरने गुप्त रखना विशेष है काहेते कि कहने विषे और यही अधिक दुःख कहने लगजाते हैं और लोग जानते हैं कि यह गिला करता है ताते रोगका सनाम निशामना भी प्रमाण नहीं

यह भी ग्लानि होती है बहुरि श्रीरामानुरागी ऐसे हुये हैं कि जब रोगी होते थे तब गृहका द्वार बन्द करलेते थे कि पूछने कोई न आवे॥

नवासर्ग॥

प्रीति प्रेम और श्रीरामजी की आज्ञा के मानने का वर्णन॥

ऐसे जान तू कि भगवद्भक्ति सर्व अवस्थाओं से उत्तम अवस्था है और सर्व शुभगुणों का फल यही है काहेसे कि पापों का त्यागना इस निमित्त कहाहै कि इस करके हृदय शुद्ध होताहै और श्रीरामभक्ति विषे दृढ़ होताहै जैसे त्याग और वैराग्य और सन्तोष और भय और और जो इनकी नाईं सर्व शुभगुण हैं सो इनकरके श्रीरामभक्ति का अधिकारी होताहै बहुरि प्रेम और श्रीरामजू की आज्ञा माननी भक्तिका फलहै ताते इसपुरुष की पूर्णताई यह है कि इसके हृदय विषे श्रीरामजूकी प्रीति प्रबलहोवे और अवर किसी पदार्थकी प्रीति न रहे और जब ऐसी प्रबलप्रीतिको प्राप्त न होसके तब चाहिये कि और पदार्थों की प्रीतिसे श्री रामप्रीति अधिकहोवे पर श्रीरामप्रीति का पहिंचानना ऐसा कठिनहै कि पूर्वले पण्डित श्रीरामजू की प्रीतिको पहिंचानतेही नहीं और यों कहते हैं कि प्रीति उसकेसाथ होती है जिसकारूप मनुष्य की नाईं होवे अन्यथा नहींहोती ताते वह पण्डित इसप्रकार कहते हैं कि श्रीरामजी की प्रीतिका अर्थ यह है कि श्री रामजू की आज्ञा माननी सो जिसका निश्चय ऐसाहोवे तब जानिये कि उस को धर्म के मूलकी बूझ नहीं ताते इसका बखान करना अधिक प्रमाण है इसी कारण करके प्रथम सन्तजनों के वचनों की साक्षीसयुक्त श्रीरामजू की प्रीति प्रमाण कहूंगा बहुरि प्रीतिकारूप और उसके लक्षण कहूंगा॥ अथ प्रकट करनी स्तुति प्रीतिकी॥ ताते जानतू कि सर्व सन्तों का मत यही है कि श्रीरघुनन्दन जू के साथ प्रीति करनी अधिक प्रमाण है और इसीपर महाराजने भी कहा है कि जो पुरुष मेरेसाथ प्रीति करते हैं तब मैं भी उनके साथ प्रीति करता हूं और महापुरुषने भी कहाहै कि सर्व जीवोंका धर्म तब दृढ़होताहै जब सकल पदार्थों से अधिक श्रीरघुनन्दनके साथ प्रीति करै और महाराजने भी ताड़ना करके कहा है कि जबलग माता पिता पुत्र जन व्यवहार मन्दिर और अवर सर्व सामग्री साथ तुम्हारी प्रीति है तब निस्सन्देह जानो कि परमपद न को प्राप्तहोवोगे और एक पुरुष ने महापुरुषसे पूछाथा कि मैं महाराज और महाराजके प्रियजनों को प्रियतम

रखताहूं तब उन्होंने कहा जो तू अपने ऊपर दु खको आया जान और एकवार्त्ता है कि एकसन्तका जीवलेनेको भगवद्दूत आये तब उन्होंने कहा कि कभी तुमने देखाहै कि किसी प्रियतमका जीव किसीप्रियतमने लियाहोवे तबसन्तको आकाशवाणीहुई कि तैंने कभी देखाहै जो प्रियतम के दर्शनको कोई प्रियतम नहीं चाहता और अपनाजीव प्रियतम से प्याराकर रखताहै यह सुनकर सन्तने दूतोंसे कहा कि अब मैं प्रसन्नहू मेराजीव शीघ्र निकासलो और महापुरुष भी इसप्रकार प्रार्थना करतेथे कि हे महाराज! मुझ को अपनी प्रीतिदेवो और अपने प्रियतमों की प्रीति भी मुझको प्राप्तकरो और जिस पदार्थ करके मैं तेरे निकट होऊ सो तिस पदार्थ की प्रीतिभी मुझकोदेवो और जैसे ग्रीष्मऋतु विषे प्यासे पुरुषको जलके साथ प्रीतिहोती है सो तिससे भी अधिक आपकी प्रीति मेरे हृदय विषे प्रबल होवे बहुरि एक जगली पुरुष महापुरुष के निकट आकर पूछनेलगा कि हे महाराजके प्यारे! परलोकका समय कब आवेगा तब महापुरुषने कहा कि परलोकका तोशा तेरे पास क्याहै तब उसने कहा कि जप तप तो मैंने बहुत नहीं किया पर मैं महाराजको और उसके प्यारोंको प्याररखताहूं बहुरि महापुरुष ने कहा कि इसलोक विषे जिसके साथ किसीकी प्रीतिहै सो परलोक विषे उसीको प्राप्तहोवेगा और एक और सन्तने कहाहै कि जिस पुरुषने केवल श्रीसीतारामजूकी प्रीतिकारस चाखाहै सो सर्व ससारसे मुक्तहोताहै और जगत्के मिलापको निरस जानकर त्यागकरताहै और उसका आपा महाराज की प्रीति विषे लीन होता है और ऐसेही एक और महात्माने कहाहै कि जिस पुरुषने श्रीराम को पहिचाना है उसकी प्रीति श्रीरामके साथही होती है और जिस पुरुषने माया को छलरूप जानाहै उसने मायाका त्याग कियाहै और जिज्ञासु जबलग महाराजसे अचेत नहीं होता तबलग स्थूल पदार्थों विषे प्रसन्नहोताहै और जब माया के छलोंको विचार करके देखताहै कि इनमे रहितहोना कठिन है तब शोकवान् होताहै और एक महापुरुष एक सभा विषे जाय पहुँचे और उनके शरीर बहुत क्षीण देखते भये तब उनसे पूछा कि तुम ऐसे निर्बल क्यों हुये हो तब उन्होंने कहा कि हम नरकोंके भय करके निर्बलहुये हैं बहुरि उन महापुरुष ने कहा कि निस्सन्देह महाराज तुमको नरकों से बचावेगा तब आगे और सभा विषे गये और उनको उन्होंने भी अधिक निर्बलदेखा बहुरि उनसे पूछनेभये कि तुम ऐसे

क्षीणताको किस निमित्त प्राप्तहुये हो तब उन्होंने कहा कि हम स्वर्गकी इच्छा करके क्षीणभये हैं बहुरि उन महापुरुषने कहा कि भगवत् तुम को निस्सन्देह स्वर्गके सुखदेवेगा तब आगे एक और संगति विषे गये और इनके शरीर को उन दोनोंसे भी अधिक क्षीण देखतेभये पर मस्तक तिनका प्रकाशकरके दर्पणवत् महाउज्ज्वल था बहुरि उनसे पूछनेलगे कि तुम इस अवस्था में क्योंकर प्राप्तहुयेहो तब उन्होंने कहा कि हम श्रीरामजी की प्रीतिकरके क्षीणहुयेहैं बहुरि वह महापुरुष उनके पास बैठगये और कहने लगे कि तुम महाराज के निकटवर्तीहो और मुझको महाराजने तुम्हारी संगति करनी कही है और सिद्धसन्त ने कहा है कि जो जिसके पथ और मत विषे होवेगा सो परलोक विषे उसी के नामसे बुलाया जावेगा और जो केवल श्रीरघुनन्दन के प्रियतमहैं तिनको श्री रघुनन्दन के प्यारे कहकर बुलावेंगे तब वह श्रीरघुनन्दन जनचित चन्दनके निकट आवेंगे और उनका हृदय प्रसन्नता करके निर्मल होवेगा और महाराज ने कहा है कि मैं तुमको सबप्रकार प्रियतम रखताहूं ताते चाहिये तुमभी मेरेही साथ प्रीतिकरौ ॥ अथ प्रकटकरना रूप प्रीतिका ॥ तूने जानतू कि यह शुद्ध निर्विकार अमायिक स्वरूपकी प्रीति ऐसी कठिनहै कि केते पुरुषोंने इसका नकार किया है और कहते हैं कि भगवत् के साथ प्रीति करनी असंभव है ताते इसका जानना अधिक प्रमाणहै सो यद्यपि इसमें बहुत सूक्ष्मवचन चलेंगे जो सर्व किसीका समझने कठिनहै पर मैं दृष्टान्तके साथ ऐसे प्रसिद्ध करूंगा कि जो कोई इसमें हृदयदेवे तब सुगमही समझलेवे ताते प्रथम प्रीतिका मूल पहिचानना चाहिये कि क्याहै सो अर्थ यहहै कि जो पदार्थ इसपुरुष को इष्टहोताहै तिसविषे चित्तकी वृत्ति भी लगती है और वही खेंच जब दृढ़ होती है तब उसीको प्रेम कहते हैं और विप्रीतिका अर्थ यह है कि जो पदार्थ अनिष्टहोताहै तिसमें चित्त की वृत्ति ग्लानि पकड़ती है और जिस पदार्थ विषे खेंच और ग्लानि कुछ न होवे तहां प्रीति और विप्रीतिका रूप सम्बन्ध कुछ नहीं होता पर यों भी जानना चाहिये कि इष्ट और अनिष्ट क्याहै ताते जान तू कि तीनप्रकारके सर्व पदार्थ हैं सो एक ऐसे हैं कि यह शरीर के स्वभाव के अनुसारहैं और तो चित्त की वृत्ति उनको चाहती है सो तिनको इष्ट कहतेहैं १ और दूसरे इसप्रकार हैं कि यह मेरे स्वभाव के विपर्यय हैं सो तिनको अनिष्ट कहते हैं २ और जो पदार्थ तेरे स्व

भाव के अनुसार और विपर्ययमान होते मानतिम को इष्ट और अनिष्ट नहीं कहते २ ताते यों भी जानना चाहिये कि पृथक् २ सकल पदार्थ का तुझको इष्ट और अनिष्ट नहीं भासना जिसका उसीका ज्ञान तुझको प्राप्त न होवे और सर्व पदार्थों की ज्ञान बुद्धि और इन्द्रियों करके होती है सो इन्द्रिय पांच हैं और एक एक इन्द्रिय का भिन्न भिन्न विषय है सो अपने विषयों की प्रीति रखती हैं अर्थ यह कि चित्त को उस विषे खैंच होती है जैसे नेत्रों का विषय सुन्दर रूप है और नाना प्रकार के फूल और और जो इसकी नाईं हैं सो अवश्यही नेत्रों को प्रियतम लगते हैं और रसना का विषय स्वाद है और श्रवणों का विषय राग और नाद है और नासिका का विषय सुगन्धि है और त्वचा का विषय स्पर्श है सो यह सब पदार्थ इंद्रियों के इष्ट हैं और चित्त को खैंचनेहारे हैं पर यह सकल पदार्थ पशुओं को भी प्राप्त होते हैं और मुख्य इन्द्रिय बुद्धि है सो केवल मनुष्य के हृदय विषे होती है और उसी बुद्धि को प्रकाश अथवा बूझ और ज्ञान कहते हैं सो यह एकही वस्तु के नाम हैं और इसी बूझ करके मनुष्य पशुओं से विशेष है सो तिस बूझ को भी एक विषय है और उसको वोही विषय प्रियतम है जैसे इन्द्रियों को अपनी अपनी विषय प्रियतम हैं ताते जो मनुष्य पशुओं की नाईं बूझ से अचेत है और पंच इन्द्रियों के विषय बिना और कुछ नहीं समझता वह पुरुष बूझ का विषय जो भजन का आनन्द है तिसको नहीं समझता और इसको यह प्रतीति भी नहीं होती कि भजन करके परमानन्द को प्राप्त होते हैं और जिस पुरुष की बुद्धि उज्ज्वल होती है और पशुओं के स्वभाव से भिन्न होता है सो बुद्धि के नेत्रों करके श्रीजानकीजीवनजू की सुन्दरताई के देखने को प्रियतम रखता है और उनकी समर्थताई और सर्व गुणों को पहिचानता है और जैसे यह नेत्र सुन्दर रूप और बागीचे और तालों को देखकर प्रसन्न होते हैं तैसेही बुद्धिमान् पुरुष महाराज के अगोचर स्वरूप की सुन्दरताई को प्रियतम अधिक इससे भी रखने चाहिये कि जिसको श्री रघुनन्दनजू का स्वरूप प्रकट होजाता है तिसको सर्व इन्द्रियों के रस विरस होजाते हैं ॥ अथ मनहरना कारण प्रीति के उत्पन्न होने का ॥ ताते जान तू कि पांच कारण करके प्रीति प्रकट होती है सो प्रथम कारण यह है कि यह पुरुष अपने आपको विशेष प्रियतम रखता है और अपनी बड़ाई को भी प्रियतम रखता है और किसी प्रकार अपनी नाशता को नहीं चाहता और सदैव अपनी स्थिरता को चाहता है

सो अपनी स्थिरताको इसकारण करके प्रियतम रखताहै कि प्रीति उसके साथ होती है जो पदार्थ इसके स्वभावानुसार होताहै और कोई पदार्थ इसको अपने जीवने और अपने गुणोंकी पूर्णता के समान प्रियतम नहीं और कोई पदार्थ अपने नाश और अपने गुणोंकी नाशके समान विरोधी नहीं तातें इससे अपने पुत्रको भी प्रियतम रखताहै कि पुत्रका होनाभी अपने होनेकी समान जानताहै काहेसे कि यहपुरुष सदैवकाल अपने होनेको समर्थ नहींहोसक्ता ताते जो पदार्थ इसकेसाथ सम्बन्ध रखता है सो तिसके होने को अपनी स्थिरता मानताहै तातें भलीप्रकार देखिये तो सर्वथा आपहीको प्रियतम रखताहै और सकल सम्बन्धियों को भी इसकरके प्रियतम रखताहै कि उनकोभी अपने अङ्गोंकीनाईं जानताहै १ और दूसरा कारण यह है कि जो कोई उपकार इसके साथ करताहै तिसको भी प्रियतम रखताहै इसी पर सन्तजनों ने कहाहै कि यहमनुष्य उपकार करनेहारे का दास होजाता है और महापुरुषने भी महाराज के आगे प्रार्थनाकरी थी कि हे स्वामी! किसीनीचका उपकारमेरे ऊपर न होवे तो भलाहै काहेसे कि उसविषे मेरा चित्त बन्धायमान होवेगा और उपकारकरकेजो मनुष्य किसीको प्रियतम रखते हैं सो विचार करके देखिये तो यहभी अपने साथ प्रीतिहोती है और उपकार उस को कहते हैं कि जिसप्रकार इस पुरुषको सुख प्राप्तहोवे सोई उपकार है जैसे यह पुरुष अपनी आरोगता को अपनेही निमित्त चाहताहै तातें वैद्यको भी प्रियतम रखता है २ और तीसरा कारण यह है जिसका स्वभाव भलाहोता है सो यह पुरुषभी अवश्यही प्रियतम लगताहै यद्यपि इसके साथ कुछ उपकारभी न करे तौभी प्रियतम भासताहै जैसेकोई राजाको पश्चिमदिशा विषे सुनिये कि बुद्धिमान् और न्यायकरनेहारा है और सर्व लोगोंको सुख देनेहाराहै तब स्वाभाविकहीं उसकी भलाई सुनकर चित्तको प्रियतम लगताहै यद्यपि जानताहै कि मुझको पश्चिम दिशा विषे जानाही नहीं और उसकी भलाई और उपकार को मुझे देखनाही नहीं तब भी चित्तको प्यारा लगताहै ३ बहुरि चौथा कारण यह है कि जो मनुष्य सुन्दरहोताहै सो वह भी अवश्यही चित्तको प्यारा लगताहै सो किसी प्रयोजन के अर्थ प्यारा नहीं लगता पर उसकी जो सुन्दरताई है सो आपही चित्तको खैंचतीहै और योंभी प्रमाणहै कि रूपका देखना केवल स्वाभाविक भोगोंके निमित्तनहीं होता काहेसे कि जैसे लाल और बागीचे को देखकर चित्तर

रखताहै सो उसविषे स्पर्शके भोगोंका प्रयोजन नहीं केवल नेत्रोंको उसके देखने विषे प्रसन्नता होतीहै काहेसे कि यह सुन्दरताई भी नेत्रों को प्रियतमहै ताते जब इस पुरुषको श्रीजानकीवल्लभजू का रूप बुद्धि विषे प्रत्यक्ष भासे तब निस्सन्देह जाना जाताहै कि उनको अधिकही प्रियतम राखे और श्रीजानकीजीवनजूके स्वरूपकी सुन्दरताई को मैं अपनी बुद्धिके अनुसार कुछ वर्णन करूंगा ४ और पाचवां कारण यहहै कि जिसको किसीके साथ कुछ सम्बन्ध होताहै सो वहभी प्रियतम लगताहै काहेसे कि जिसकेसाथ चित्तकी वृत्ति और स्वभाव मिल जाता है तब निस्सन्देह प्रियतम भासता है यद्यपि रूपवान् भी न होवे पर यह सम्बन्ध जो मैंने कहाहै सो इसप्रकार होताहै जैसे बालककेसाथ बालककी प्रीति होती है और बजारी के साथ बजारीकी प्रीति होतीहै और विद्यावान् की प्रीति विद्यावान् के साथ होतीहै सो यह प्रकट है पर एक ऐसा भी सम्बन्ध होताहै जो आदि उत्पत्तिविषे शरीरके उत्पन्न होनेसे आगेही होताहै सो वह प्रकट जाना नहींजाता सो ऐसेही महापुरुषने भी कहाहै कि शरीरसे आगेही जीवोंका आपसविषे सम्बन्धहै और विरोध भी होताहै सो जिस का सम्बन्ध आदि उत्पत्तिविषे जिसके साथ होताहै तिसके साथभी अवश्यही प्रीति होतीहै सो सूक्ष्म सम्बन्ध इसीका नाम है॥ अथ प्रकट करना अर्थ सुन्दरताई का॥ कि सुन्दरताई क्या है ताते जान तू कि जिस पुरुषकी बुद्धि पशुओंकी नाईं होतीहै और नेत्रोंकी इन्द्रियों के विना और कोई मार्ग नहीं समझता सो वह यही कहताहै कि सुंदरताई इसीका नाम है कि जिसके वदनका रङ्ग गोर और उज्ज्वल होवे और सर्व अङ्ग उसके समान, और सुन्दर होवें तब उसीको सुन्दर कहते हैं और इससे अन्यथा सुन्दरताई कुछ सिद्ध नहीं होती सो इस विषे यही प्रसिद्ध होताहै कि जहां रङ्ग और आकार न होवे तहां सुन्दरताईभी नहीं होती सो यह उनका कहना अयोग्यहै काहेसे कि सभी बुद्धिमान् यों कहते हैं कि यह लिखित सुन्दर है अथवा घोड़ा सुन्दर है अथवा घर और बाग सुन्दरहै और अमुक नगर और सराय सुन्दर है ताते सुन्दरताईका अर्थ यों जानाजाता है कि जो पदार्थ की पूर्णताई और कार्य है सो उस पदार्थ विषे सम्पूर्ण पाया जावे तब उसको सुन्दर कहते हैं जैसे अक्षरों की सुन्दरताई यह है कि वह अक्षर सम और शुद्धहोवें सो यह निस्सन्देहहै कि अक्षरों की सुन्दरताई और घरकी सुन्दरताई को देखा करके नेत्रों को प्रसन्नता

होतीहै और यहभी प्रसिद्धहै कि सर्व पदार्थोंकी सुन्दरताई और पूर्णताई भिन्न २ होतीहै ताते सुन्दरपदार्थ वही कहावताहै जो सर्वअंगोंमें परिपूर्णहोवे सो इस तरके प्रगटहुआ कि सुन्दरताई केवल मुखकेऊपर नहीं परं यह जो वायु और घर और अक्षरोंका मैंने दृष्टान्त दियाहै सो सबी पदार्थ साकार हैं ताते स्थूल नेत्रों करके दीख सकेहैं सो जब कोई इसको प्रमाण भी करे और फिर यह प्रश्नकरे कि जिस पदार्थको नेत्रों करके देखा न जावे सो वहपदार्थ किसप्रकार सुन्दरहोता है सो यह मूर्खताहै काहेसे कि बुद्धिमान् लोगो कहते हैं कि साधुकेपुरुषका स्वभाव बहुत सुन्दरहै और विद्याभी वैराग्यसंयुक्त अतिकसुन्दर होतीहै और शूरता व दातासहित बहुत सुन्दर होतीहै और निर्लोभता और संयम सर्वपदार्थोंसे अति सुन्दरहै और और भी इसभांताई जो सर्व शुभगुणहैं सो तिनको स्थूल नेत्रोंकर देखा नहीं जाता और बुद्धिके नेत्रों करके देखसकते हैं सो यही बखान आगे भी कहाहै कि सुन्दरताई दोप्रकार की है एक स्थूल दूसरी सूक्ष्म; सो भले स्वभावकी सुन्दरता सूक्ष्म कहावती है और चित्तको यहभी प्रियतम लगती है सो युक्ति इस की यहहै कि बहुत लोगोंकी प्रीति पिछले महात्मालोगोंसे हुईहै और ऐसी प्रीति कि उनकी प्रतीति और प्रीतिमें शरीर और धनको निछावरकरते हैं सो यहप्रीति उनके शरीरकी सुन्दरताके निमित्त नहीं होती काहेसे कि इन्होंने उनके शरीरको देखाभी नहीं और उनका आकार गुप्तहोगया है ताते यहप्रीति उनके हृदय की सुन्दरताई विद्या और वैराग्य और शुभगुणकी है और इसीकारण से आचार्यों और अवतारों को धर्मवान् पुरुष प्रियतम रखते हैं ताते सो कोई किसी महापुरुष के साथ प्रीति करता है सो उसकी दृष्टि उनके शरीरकी ओर कुछ नहीं होती काहेसे कि उसकी भावना उनके गुणोंकी ओर होती है सो विद्या और सचाई जो महापुरुषोंके अंगमें सो कदाचित् उनमें दृष्टि नहीं होने सो यह बात प्रसिद्ध है कि इन लक्षणों का रूप और आकार कुछ नहीं और इनकी प्रीति धर्मवान् पुरुषों को निस्सन्देह होतीहै ऐसेही सर्वस्वभावोंका रूप कुछ नहीं और अर्थ सिवे प्रियतम भासतेभी यही हैं काहेसे कि इनकी देखना और जानना प्रीतिके अधिकारही नहीं ताते जो बुद्धिमान् पुरुषहोता है सो सूक्ष्म सुन्दरताई का तिरस्कार नहीं करता और स्थूल सुन्दरताईको अधिक मानता है और इसकी सुन्दरताई को अधिक प्रियतम वह जानता है कि जो बालकोंकी प्रीति स्त्रीमें

की मूर्त्ति के साथ होवे और एक और पुरुषकी प्रीति किसी सन्तजन के साथ होवे तब इसप्रीति और उस प्रीतिमें बड़ा भेदहै और योंभी है कि जब कोई पुरुष किसी मुयेहुये मनुष्य की बड़ाई करने लगता है तब उसके नेत्र और मुख की स्तुति नहीं करता उसकी उदारता और विद्या और शूरता और धैर्यको स्मरण करके स्तुति करता है और जब किसीकी निन्दा करता है तब उसके शरीर की कुरूपता का वर्णन नहीं करता इसीकारण से महापुरुष के प्रियतमों को सब कोई प्रियतम रखताहै और जो मनमुख उनके विरोधी हुये हैं तिनको बुराजानते हैं ताते यह प्रसिद्धहुआ कि सुन्दरताई दोप्रकारकी है एक सूक्ष्महै और दूसरी स्थूल है सो सूक्ष्म सुन्दरताई स्थूल रूपसे भी अधिक सुन्दर है, पर जो बुद्धिमान् पुरुषहै तिसकी प्रीति अन्तरीय सूक्ष्म स्वरूप विषेही होती है ॥ अथ प्रकट करना इसका कि सर्व्वप्रकार प्रीति करने योग्य श्रीसीतारामजीही हैं ॥ ताते जान तू कि जो विचारकर देखिये तो श्रीजानकी जीवन बिना प्रीति करने का अधिकारी कोई नहीं और जो कोई किसी और पदार्त्थ के साथ प्रीति करताहै तो मूर्खताहै पर जब इस पुरुषकी प्रीति श्रीराम निमित्त सन्तजनों के साथहोवे तो यहभी महाराजही की प्रीति होती है काहेसे कि जिसके साथ किसीकी प्रीति होती है तब उसके प्रियतम औरसदेशो देनेहारे को भी प्रियतम रखताहै ताते विद्यावानों और वैरागियों के साथ प्रीतिकरनी सो यहभी प्रीति श्रीरघुनन्दन सोथ होती है और यह जो आगे कहाथा कि प्रीति करने के अधिकारी श्रीराघवजूही हैं सो तुझको तब प्रत्यक्ष होवेगा जब तू प्रथम प्रीतिके कारणों को विचारकर देखेगा सो प्रीति का प्रथम कारण यहहै कि मनुष्य अपने आपको अधिक प्रियतम रखताहै और अपनी पूर्णताईको भी चाहता है सो इसकारण करके प्रमाणहै कि सबप्रकारही श्रीरघुनन्दन साथही प्रीतिकरे काहेसे कि इसका होना और इसके अगोंकी पूर्णताई महाराजकी सत्ताकर होती है कि जब श्रीराघवजू अपनी दयाकरके इस जीवकी रक्षा न करें तब एक क्षण भी इसका रहना नहीं होता और जो प्रथम अपनी दयाकरके इसको उत्पन्नही न करते तब इसका उपजनाही न होता और जब इसके अंग और गुणों को अपनी दया के साथ प्रकटही न करते तब महानीचसे नीचहोता ताते यह बड़ा आश्चर्य है कि जो कोई पुरुष ग्रीष्मऋतु विषे उष्णतासे भागकर वृक्षकी छायाको प्रियतमजाने और वृक्षको प्रियतम न जाने और

थार्दानी है ताते जब सबही पण्डित इकट्ठे होवें और भगवत्की जो आश्चर्य रूप क्रिया आभी और चींटीकी उत्पत्तिविषे प्रकटहुई है सो तिसको पहिचानना चाहें तौभी समर्थनहीं होसके और यद्यपि कुछ जानने भी हैं तौभी श्रीरामहीका जनाया जानते हैं बहुरि सर्व जगत्की जो क्रियाहै सो सरही गिनती और मृत्यु विषे है और श्रीरामजी की जो क्रियाहै सो सर्वप्रकार गिनती और मृत्युमे रहित है और जगत्की सर्व क्रिया उन्हींके आश्रितहै और उनकी क्रिया जगत्के आश्रित नहीं बहुरि जब तू बलकी ओर देखे तो बलभी अधिक सुन्दर है जो कैसे भगवद्भक्तोंको बल करकेही प्रियतम रखते हैं और कैसे भक्तोंको न्यायकरके प्रियतम रखते हैं जैसे भीमसेन और महाराज युधिष्ठिरादिक हुयेहैं सो न्यायभी बल करके होताहै पर सर्व जीवोंका बलभी श्रीरघुनाथजूके निकट कुछ वस्तुनहीं काहे से कि सबही पराधीन हैं और इन विषे भी एतावलहै जेता जिस किसीको महाराज ने दियाहै बहुरि सबों को ऐसा निर्बल बनाया है कि जब माखी इनमे कुछ ले जावे तब फिर उससे लेनेको समर्थ नहीं होते और श्रीरघुनाथजूका बल बेअन्त और अपार है काहे से कि धरती और आकाश और जेता कुछ इनके विषे है जैसे देवता और मनुष्य और पशु पक्षी भूत प्रेतादिक जो हैं सो सबही श्रीरघुनाथ जू के बलका प्रतिबिम्ब है ताते जो कोई पुरुष बलके अर्थ श्रीरामबिना किसीको प्रियतम राखे तौभी अयोग्य है बहुरि जब निर्लेपता और शुद्धताकी ओर दृष्टिकरे तौभी यह मनुष्य सब दोषों से रहित कब होसक्ता है काहेसे कि प्रथम तो इसविषे यह नीचताहै कि यह उत्पन्न किया हुआहै और अपने आप कर स्थित नहीं बहुरि अपने अन्तरमें भी मूर्ख है तब और किसीको कब पहिचान सक्ताहै काहेसे कि जब एक नाड़ी इसके शीश विषे विपर्यय होजावे तब बावरा होजाताहै और इस दुःखके कारणों को भी नहीं पहिचान सक्ता यद्यपि इस रोगकी औषध इस मनुष्यके निकटही धरीहोवे तौभी नहीं जानसक्ता ताते जब इस मनुष्य की निर्बलता और मूर्खता का विचार करिये तब गिनती विषे कुछ नहीं आवता बहुरि क्रिया और बल इस जीवका कुछ अल्पमात्रही भासता है यद्यपि सिद्ध और आचार्य होवे तौभी पराधीन है ताते सर्व दोषों से रहित एक श्रीरामही हैं काहेसे कि उनकी क्रिया अमित है और उनको मूर्खताका लेश कदाचित् स्पर्श नहीं करसक्ता और उनका बलभी अपार है काहेसे कि वो इहाँ

लोक उनहीं के बल विषे स्थित है और जब सर्व ब्रह्माडों को नाश करें तोभी उनकी साहिबी और ऐश्वर्य्य बड़ाईकी हीनता कुछ नहीं होती बहुरि लख और लक्ष ब्रह्मांडोंको उत्पन्न कियाचाहें तो एक क्षण विषे सर्व ब्रह्माडों के उत्पन्न करने को समर्थ हैं और उनकी बड़ाई एक रखकभी इनको उत्पन्न करने करके कुछ अधिक नहीं होती काहे से कि श्रीरघुनाथजी के स्वरूप विषे ऊनता और अधिकता का प्रवेश कदाचित् नहीं होता इसी कारण करके कि महाराज सर्व्व दोषों से निर्लेप हैं और सत्यस्वरूप हैं और उनके स्वरूप और गुण विषे नाशताका प्रवेश कदाचित् नहीं तांते अकस्मात् भी उनकी बड़ाईकी हानि नहीं होसक्ती इसी कारण से कहा है कि जो पुरुष किसी और के साथ श्रीराम बिना प्रीति करताहै और श्रीरामको प्रियतम नहीं रखता सो महामूर्ख है तातें जो प्रीति उपकार करके होती है सो तिससे भी उनके स्वरूप की प्रीति अधिक उत्तम है काहे से कि उपकार की प्रीति कबहू बढ़ती है और कबहू घट जाती है और जो श्रीरघुनाथजी के स्वरूपको पहिचानकर प्रीति होती है सो सदैव एकरस रहती है इसी कारण कर एक महात्मा को आकाशवाणी हुईथी कि मुझको वही पुरुष प्रियतम लगता है जिसकी प्रीति भय और आशा कर न होवे और केवल मेरा भजन इसी निमित्त करे कि मेरी बड़ाई को जानकर सन्मुख होवे औ महाराज ने योंभी कहाहै कि ऐसा कृपापुरुष और कौनहै जो नरक के भय और स्वर्ग की आशाकरके मेराभजन करे काहेसे कि जब मैं नरक स्वर्ग को उत्पन्न न करता तो भजन करनेका अधिकारी न होता ४ बहुरि पांचवां कारण प्रीतिका सम्बन्ध है सो श्रीरामजी के साथ इस जीवका निस्सन्देह सम्बन्ध है जैसे महाराजने भी कहाहै कि यह सब जीव मेरी आज्ञा और इच्छा है, अर्थ यह कि जैसे राजा का हुक्म राजासे भिन्न नहीं होता तैसेही जीव मुझसे भिन्न नहीं सो इस वचन कर के जीव ईश का सम्बन्ध प्रसिद्ध हुआ और महाराज ने योंभी कहा है कि मैंने इस मनुष्य को अपने रूपके अनुसार उत्पन्न किया है सो यह भी उसी सम्बन्ध की ओर लखहै और योंभी कहाहै कि जब यह पुरुष अधिक प्रेमकरके मेरे विषे लीन होताहै तब यह मेरा प्रियतम होता है बहुरि उसके श्रवण और नेत्र और रसनाभी मैंही होताहूं ऐसेही एक महापुरुषको भी महाराजने कहाथा कि जब मैं रोगी हुआ था तब तू मुझको पूछनेको भी न आया बहुरि उन महापुरुषने प्रा-

नेविनती किहे महाराज ! तू तो सर्व जगत्का ईश्वरहै तुमको रोग क्योंकर हुआ
तब महाराजने कहा कि मेरा अनुरूप जो रोगी हुआथा सो मानो मेरी रोगी
था जाने जब तू उसकी ओर पूछने को जाता तब यह भयाहि पूछने जाताहै मे
रे सुझमें और मेरे भक्तों में कुछ भेद नहीं वह मेरेही स्वरूप हैं पुनः इसासम्बन्ध
का वर्णन कुछ आगे भी कहाहै और सम्पूर्ण भेद ईश्वर जीवके सम्बन्धका इस
विषयविषे कहा नहीं जाता क्योंहै सो कि सब कोई इस वचन को समझने की शक्ति
नहीं रखता और कैसे जिज्ञासु इस वचनको विपर्यय समझकर मार्गसे गिरे
पड़े हैं जैसे कोई पुरुषयों ही समझते हैं कि जैसे हमारे शरीर का आकार है
वैसेही महाराज भी शरीरवंत साकार होवेंगे तातें वह सम्बन्धका अर्थ यों
समझते हैं बहुरि एक और पुरुष इसप्रकार कहते हैं कि जैसे हम चैतन्य स्व
रूपहैं वैसेही भगवत् भी चैतन्यस्वरूपहैं तातें जीवात्मा और परमात्मा की ए
कता वर्णन करते हैं सो यह भी उनकी समझना अयोग्य है क्योंकि सो कि भग
वत् आकारसे विलक्षण हैं और जीवकी नाईं मलिन और पराधीन भी नहीं
बहुरि मेरे कहनेका प्रयोजन यहहै कि जैसे पावनकारण प्रीतिके चैन कहे हैं सो
चित्तको जब तैंने भलीप्रकार पहिचाना तब इस फिरके यही सिद्ध हुआ कि भग
वत्के बिना किसी औरसे प्रीतिकरना गुप्त नाहै और जो पुरुष भगवत्की प्रीति
को नतरकार करते हैं और कहते हैं कि प्रीति उसी के साथ लगती है जो हम
मनुष्य कीनाईं आकारवन्त स्थूलदेहहै सो भगवत् इस मनुष्य की नाईं आकार
वन्त नहीं और शुद्ध सूक्ष्मरूपहै तातें भगवत्के साथ प्रीतिहोनी असम्भव और
प्रीतिका अर्थ यहीहै कि भगवत्की आज्ञामाननी सो ऐसे जो मानते हैं और
इस प्रीतिके भेदको नहीं समझे सो तिनकी बुद्धि हीन तो भली नहीं क्योंहैम
के यह पुरुष स्त्रियादिको की प्रीतिसे और प्रीति समझे नहीं सकते सो यह भी
निस्सन्देह है कि ऐसी स्थूल आकारादिकी प्रीति नहीं विवेकवाने हैं जो आप
से एक दूसरेकी नाईं होते हैं और जिस प्रीतिका अर्थ मैं कहताहूं सो नि
र्गुणनिर्मल अगाधिक स्वरूप की सुन्दरताई और पूर्णताई का प्रेम है और यह
प्रीति स्थूल शरीरके आकार आदि सम्बन्ध से रहित है कहिये कि जिस पुरुष की
प्रीति किसी मनुष्यके साथ होती है सो उसके कारण कर नहीं होती कि वाही नाईं
उसका नख शीश और मुख और रूप चित्रहै पाते इस प्रीतिका मार्ग या सूक्ष्म

है। किजैसे यह पुरुष चैतन्य और बुद्धिमन्त और श्रद्धा करते हाराहोते नहीं वह सन्त भी इन लक्षणों सयुक्त है पर सन्तजनों विषे यह सबही लक्षण सम्पूर्ण हैं और इतर जीवों विषे कुछ अल्पमात्र हैं सो जब विचार करिये तब वस्तु का सबंध प्रसिद्ध हैं और गुणों की अधिकता और ऊनता विषे भेद भी बहुत है ताते यही गुण जिस विषे अधिक होते हैं सो तिसके साथ प्रीति भी निस्सन्देह अधिक होती है पर प्रीति का कारण जो सम्बन्ध है सो सर्व जीवों और सन्तजनों और भगवत् विषे प्रसिद्ध है काहिते कि चैतन्यता और विद्या एकही वस्तु है सो इस सम्बन्ध को सब कोई प्रमाण करता है यद्यपि इस वचन के अर्थ को ज्योंका त्यों नहीं समझते सो जैसे महाराज ने कहा है कि मनुष्य को मैंने अपने स्वरूप की नाई उत्पन्न किया है सो अर्थ सम्बन्ध का यही है पर इसका भेद समझना कठिन है तात्पर्य प्रकट करना इसका कि कोई सुख श्रीरामरूप दर्शन के आनन्द के समान नहीं ॥ ताते यद्यपि सब कोई मुख से योंही कहता है कि श्रीरामरूप दर्शन विषे जैसा आनन्द है सो तैसा आनन्द और कोई नहीं पर जब कोई इसी वचन के अर्थ को अपने हृदय विषे ढूंढे कि जिसका दर्शन किसी दिशा विषे न होवे और उसका स्वरूप भी कुछ न होवे तिसके दर्शन विषे आनन्द किसप्रकार होवता है जब इस वार्ता का विचार करें तब उनके हृदय विषे ऐसे दर्शन और आनन्द का स्वरूप कुछ भासे नहीं आसता पर यद्यपि मुखसे भी सब कोई योंही प्रमाण करता है काहे से कि यह वचन धर्मशास्त्र विषे भी प्रसिद्ध है पर उनके हृदय विषे इस दर्शन की प्रीति कुछ नहीं और प्रीति उनकी इसकारण कर नहीं होती कि जिस पदार्थ की जान नहीं होती तिसके साथ प्रीति भी नहीं लगती सो यद्यपि ऐसे भेद का बखान करना बहुत कठिन है पर तौभी मैं अपनी बुद्धि अनुसार कुछ वर्णन करूंगा सो इस वचन का भेद चारप्रकार कर समझ सके हैं सो प्रथम यह है कि इस मनुष्य के हृदय विषे ज्ञान और बूझकर के प्रसन्नता और आनन्द होता है यद्यपि उस प्रसन्नता में नेत्र और और सर्व इन्द्रियों को कुछ सुख नहीं प्राप्त होता पर वह सुख केवल इसके हृदय में होता है १ और दूसरा प्रकार यह है कि प्रसन्नता इसको बूझ और विद्या कर होती है सो तिसका रस सर्व इन्द्रियों के रस से अधिक है २ पर तीसरा प्रकार यह है कि सब पदार्थों की बूझ से भगवत् की पहिचान का रस विशेष है ३ और चौथा प्रकार यह है कि भगवत् की पहिचान से भगवत् के दर्शन का-

आनन्द और रहस्य अधिक है सो जब तैंने इस चारप्रकार के भेद को समझा तब तुमको यह अर्थ प्रसिद्ध होवेगा कि श्रीरामजी के दर्शन के समान और पदार्थ कोई नहीं पर प्रथमप्रकार यही है कि प्रसन्नता हृदयकी बूझ और विद्याकर होती है सो ऐसे जानत् कि हृदयका आनन्द विद्यासे होता है सो सर्व इन्द्रियों मे विल क्षणहै काहेसे कि इस मनुष्य विषे सम्पूर्ण स्वादु उत्पन्न किये हैं सो सबही अपने अपने प्रयोजनको ग्रहण करते हैं और प्रियतम लगते हैं जैसे क्रोध को शत्रुओं के जीतने और प्रबलता के निमित्त उत्पन्न किया है सो क्रोधको शत्रु के जीत- नेही विषे रस है ऐसेही नेत्र और श्रवण और सर्व इन्द्रियों के विषे भिन्न भिन्न हैं जैसे कामादिकों का रस क्रोधके रससे भिन्न है और यों भी है कि सर्व इन्द्रियों के रस एक समान नहीं कोई अति प्रबल है कोई उससे निर्बल है जैसे नेत्रों के विषे जो सुन्दरताई है सो नासिका के विषे सुगन्धि के रससे अति प्रबल है तैसेही मनु- ष्य के हृदय विषे बुद्धि और विद्या भी भगवत्ने उत्पन्न कीनी है सो उसका स्व- रूप और इन्द्रियों विषे नहीं आवता और जैसे इन्द्रियों को स्थूल विषयों के ग्रहण करने को उत्पन्न किया है तैसेही बुद्धि को सूक्ष्म पदार्थों के समझने को उत्पन्न किया है और उसी बुद्धि करके यों भी जानता है कि यह जगत् उत्पन्न किया हुआ है और इस जगत्का उत्पन्न करनेहारा ईश्वर समर्थ है और सबका रचा है इसप्रकार बुद्धि करके श्रीरामजी के अवगुणों और आश्चर्यता को पहिचान- ता है सो यह सबही गुण ऐसे सूक्ष्म हैं कि इनका स्वरूप और इन्द्रियों विषे नहीं आवता और बुद्धिही इनको पहिचानती है और बुद्धिही करके सार्थ- कता अनुभव होती है और व्यवहार की सिद्धता भी बुद्धिकर होती है और औरभी सूक्ष्म विद्या बुद्धिही के आश्रित है और बुद्धि को इनसबों विषे रस उत्पन्न होता है और जब कोई नीच पदार्थ की विद्याकरके इसकी स्तुति करता है तब प्रसन्न होता है और जब कोई कहता है कि इस विद्याको अमुक पुरुष नहीं जानता तब शोकवान् होता है सो इसका कारण यह है कि यह पुरुष विद्याही को अपनी पू- र्णताई जानता है जैसे कोई पुरुष आपस विषे शतरंज से खेलते हैं और यह उन के पासजाय बैठे और वह पुरुष इस को शतरंज की चाल चलाने से बर्जे तब आप को बतावने से रोक नहीं सकता सो यद्यपि शतरंज की विद्या अति नीच है तो भी इसकी प्रसन्नता और स्वाद विषे प्रबल है क्योंकि उनको बतावने लगता है और

अपनी बड़ाई किया चाहताहै सो विद्याकरके बड़ाई और प्रसन्नता क्योंकर न करे कि विद्या श्रीराघवजू का लक्षणहै ताते इस मनुष्यको विद्याकेसमान और कुछ बड़ाई नहींहोती कि विद्या श्रीरामजी का लक्षणहै ताते इस वचन के अर्थ करके तैंने प्रसिद्ध जाना कि इस मनुष्य के हृदय को सूक्ष्म पदार्थों की विद्या करके आनन्दहोताहै और यह आनन्द नेत्र और श्रवणादिक इन्द्रियों से भिन्न है १ बहुरि दूसरा प्रकार यहहै कि विद्या और वूझका जो आनन्दहै सो इन्द्रियों के रससे अति प्रबलहै जैसे किसी पुरुषको शतरंज खेलने का स्वभाव होवे सो वह पुरुष उस खेलविषे ऐसा मग्न होता है कि जब उसको कोई कहे कि तू भोजनकर तब वह पुरुष भोजनकी ओर सुरति नहीं करता उसी खेलविषे लीनहो जाताहै ताते प्रसिद्धहुआ कि उस पुरुषको भोजनके रससे शतरंजका खेलना अधिक प्रियतम है इसी कारणसे भोजनका त्यागकरताहै और शतरंजके खेलने का त्याग नहीं करसक्ता सो प्रबलता और निर्बलता तबहीं पहिचानी जाती है जब दोनों पदार्थ इकट्ठे आइहोते हैं तब जो पदार्थ निर्बलहोताहै तिसका त्याग करना सुगम होताहै और जिस पदार्थका रस प्रबल होताहै तिसको अंगीकार करताहै ताते जानतू कि जो पुरुष बुद्धिमान् और व्यवहार विषे चतुर होताहै सो इन्द्रियों के रसों से मानका रस तिसको अधिक होताहै काहेसे कि जब कोई उस को कहे कि चाहे तू मिष्टान्नादिक भोजनकर अथवा इसका त्याग करके अपने शत्रुके जीतने का उपायकर तब तेरी जीतहोवेगी और तुझ को बड़ाई प्राप्तहो-वेगी तब वह पुरुष मिष्टान्नादिकों का त्याग करताहै और अपनी बड़ाई के नि-मित्त शत्रुके जीतने का उपाय करताहै और जब यों न करे तब जानिये कि उस की बुद्धि अल्प है ताते जिस पुरुषको भोजन के रसकी भी तृष्णा होवे तब भी निस्सन्देह भोजनके रससे मान और बड़ाई को अधिक प्रियतम रखताहै सो इसी कारण से जाना जाता है कि रसना के स्वाद से मानका स्वाद प्रबल है ऐसेही विद्यावान् को विद्या व्यवहार की और वैद्यक और धर्म्मशास्त्र की विद्या और और जो सर्व विद्याहै सो इनविषे उसको अधिक रस प्राप्तहोताहै पर जब उसकी विद्या सम्पूर्ण होवे तब सर्व भोगों और मानादिकमें भी विद्याके रसको अधिक प्रियतम रखताहै पर जबलग सम्पूर्ण विद्याका वेत्ता न होवे और विद्याकी बड़ाई को भलीप्रकार न जाने तबलग विद्याके रहस्यको नहीं पावता इसकरके प्रसिद्ध

हुआ कि विद्या और बूझका आनन्द उस पुरुषको प्रसन्नहोताहै जिसकी बुद्धि उज्ज्वल होती है और जिसको दोनों पदार्थ का ज्ञान होताहै सो इस वार्त्ताको थोड़ीही समझताहै पर जैसे बालक मानके रससे खेलने के रसको अधिक प्रियकर रखता है तब इस करके हमको कुछ यह संशय नहीं होता कि खेलन का रस अधिकहै और मानका रस अल्पहै काहेसे कि ऐसे जानना उस बालकहीकी बुद्धिकी नीचताहै और उसने मानके रसको भलीप्रकार नहीं जाना और जब उसको भी मान के रसकी पहिचान होती है तब खेलनेका त्याग करके मान और बड़ाईको अङ्गीकार करताहै २ बहुरि तीसराप्रकार यहहै कि और सर्व पदार्थोंकी विद्या से श्रीराम स्वरूपका पहिचानना महाउत्तम है काहेसे कि जब तैंने भलीप्रकार जाना कि विद्या और बूझ आनन्ददायक है तब इस वार्त्ता विषे भी संशय नहीं कि कोई विद्या नीच होती है और कोई उससे विशेष होतीहै काहेसे कि जैसा कोई पदार्थ होताहै तैसीही उसकी विद्या होती है तातें जो नीच पदार्थ है सो तिसकी विद्याभी नीचहै और जो उत्तम पदार्थ होताहै तिसकी विद्याभी उत्तम होती है जैसे शतरंजकी गोटोंके रखने से शतरंज खेलनेकी विद्या विशेष है और जैसे खत्री और दरजी की विद्या से राजकाज और प्रधानी की विद्या निस्संदेह विशेषहै तैसेही धर्मशास्त्र के अर्थकी विद्या व्याकरण की विद्यासे विशेषहै और जैसे बाजारीकी विद्यासे वजीरीकी विद्या और उसके भेद का समझना विशेषहै ऐसेही राज्यके भेदका जानना वजीरी के भेदसे उत्तमहै तातें जैसा एक जानने योग्य पदार्थ उत्तम होता है तैसाही उसकी जानिबे आनन्द अधिक होताहै इसीकारण से तू विचार करके देख कि सर्व सृष्टि विषे श्रीरामजीसे इतर कौन पदार्थ विशेष और सुन्दर और पूर्णहै काहेसे कि श्रीरामजी ऐसे हैं जो सर्व सुन्दरताई और पूर्णताई के उत्पन्न करनेहारे हैं और ऐसा बादशाही श्रीरामजीही हैं तिस बादशाह और वैसेही धरती और आकाश और इसलोक और परलोकको जिसप्रकार श्रीरामजी ने सिर्जनकियाहै सो ऐसा समर्थ और कोई नहीं और श्रीरघुनाथजी के दरबार सदृश सुन्दर और विशेष और कौन दरबार है तातें ऐसे श्रीरघुनाथजी के दर्शन और दरबार के समान किसी और का दरबार कब होताहै पर जिस पुरुषकी बुद्धि के नेत्र उज्ज्वल होते हैं सो इस दर्शनको थोड़ा देखता है और ऐसे महाराजके भेद जानने न किसी

और राजाका भेद जानने से और उसके गुण और उसकी ईश्वरताईके भेदोंका समझना सर्व पदार्थों की क्रियासे अधिक विशेषहै काहेसे कि रामरूपी ऐसा परम पदार्थ है कि उसके समान जानने योग्य और पदार्थ कोई नहीं और और पदार्थों से श्रीरामजीको विशेष कहना भी अयोग्य है काहेसे कि ऐसा पदार्थ कौनहै जिसकी उपमा श्रीरघुनन्दन के साथ कहिये और फिर श्रीरघुनन्दनको विशेष कहिये सो ऐसा कहना भी श्रीरामजीकी बड़ाई के निकट हीनता होतीहै ताते ऐसे कहनाभी अयोग्यहै इसीकारण से जिन पुरुषोंने श्रीरामजीको पहिचानाहै सो इस जगत्विषे भी श्रीसाकेतधाम विषे सदैव बैठे हैं और उनका हृदयही साकेतरूपहै सो कैसाहै कि इस धरती और आकाश से भी विशाल है काहेसे कि यह धरती और आकाश मृत्युविषे हैं पर जिसस्थान और जिस हृदय रूपी बागविषे रामानुरागी विचरते हैं सो अमिटहै और इसबागके फलभी सर्व ऋतुविषे अटूट और अरोकहैं काहेसे कि वह फल उसी हृदय के गुणहैं और और जो स्थूल पदार्थहैं सो सबही हृदयसे बाहरहैं और अपना आपाही इसके अति निकट है ताते ज्ञानवान् पुरुषों के फलों को कोई विघ्न दूर नहीं करसक्ता बहुरि जेता किसीको ज्ञान अधिक होताहै तेताही उसको आनन्द अधिक होता है और ज्ञानरूप ऐसा स्वर्ग है कि वह स्थान कदाचित् सकुचित नहीं होता ३ बहुरि चौथा प्रकार यहहै कि श्रीरामचन्द्रके स्वरूपके ज्ञानसे श्रीरामरूप दर्शन का आनन्द बहुत विशेष है ताते जानतू कि जानना दो प्रकारका होताहै सो एक यहहै कि उसका रूप और आकार मनोराज विषे मूर्तिमान् स्वप्न भासता है और दूसरा यहहै कि उसको बुद्धिही पहिचानती है पर उसका आकार सकल्प विषे नहीं आवता जैसे श्रीरामचन्द्रजी की सुन्दरताई है और जेते उनके गुणहैं सो बुद्धिहीकर अनुभव होतेहैं बहुरि इस जीव के भी केते स्वभाव ऐसे हैं कि उनका कुछ आकार नहीं जैसे बल और विद्या और श्रद्धा सो यह सबही अनूप हैं बहुरि क्रोध काम और हर्ष शोक सो यह सब आकार से रहित हैं ताते इनका रूप सकल्प विषे नहीं आवता बहुरि जो पदार्थ आकारवन्त होताहै सो प्रथम तो वह पदार्थ मनके सकल्प विषे प्रत्यक्ष भासताहै जैसे तू किसी पुरुष को ध्यान विषे देखे तब तू जानताहै कि मैं इसको देखताहूं सो यह देखना सकल्पमात्र होताहै ताते अल्पहै और सम्पूर्ण नहीं होताहै बहुरि इसका यहहै कि

जिसपदार्थ को नेत्रोंकर देखताहै सो यह देखना अति प्रत्यक्ष है और सम्पूर्ण है इसीकारणसे प्रियतमके ध्यानसे प्रियतमके दर्शनविषे अधिक आनन्द होताहै सो इसकारण कर नहीं कि ध्यान विषे उसकारूप कुछ और था और देखने विषे कुछ और है अथवा सुन्दरताई अधिक हुईहै पर इसका प्रयोजन यहहै कि ध्यान से जाना रूप प्रकटमात्रथा और देखने विषे अतिप्रकट होताहै जैसे कोई अपने प्रियतम को प्रभात समय देखे और फिर उसको दिनके प्रकाश विषे देखे तब उससे अधिक आनन्द को प्राप्त होताहै सो इस कारण कर नहीं कि प्रभात विषे कुछ और रूपथा और प्रकाश विषे कुछ और रूप हुआहै पर इस विषे प्रकटता हीका भेद होताहै तैसेही जिस पदार्थ का रूप संकल्प विषे नहीं आवता और बुद्धिही कर पहिचाना जाताहै सो तिसका पावनाभी दोप्रकार से होताहै एक ज्ञान कहावताहै और दूसरा दर्शन कहावताहै सो जैसे ध्यान और प्रकट देखने विषे भेदहै तैसेही ज्ञान और दर्शन विषे भेद होताहै और जैसे नेत्रोंकी पलकों कर दर्शन विषे पटल होताहै पर ध्यान विषे कुछ पलकों का परदा नहीं होता तैसेही यह पाञ्चतत्त्वका जो शरीरहै और इस शरीरके साथ जीवका सम्बन्ध है और इसीकरके इन्द्रियोंके रसोंकरके आसक्तहै सो यह देहाभिमान श्रीरामदर्शन विषे पटलहै और उसके जानने विषे पटल नहीं ताते जबलग इसजीव का देह और मान दूर न होवे तबलग श्रीरामका दर्शन को प्राप्त नहीं होता इसी कारण से एक महापुरुषको आकाशवाणी हुईथी कि देहके अभिमान सयुक्त तू मुझको न देख सकेगा तातें प्रसिद्ध हुआ कि जैसे ध्यानके देखने से प्रत्यक्ष का देखना विशेषहै तैसेही श्रीरामजी के पहिचानने से दर्शन विषे आनन्द अधिकहै ताते जान तू कि मूल दर्शनका ज्ञानहीहै पर देहाभिमानके दूरहुये वह ज्ञानही ऐसी सम्पूर्णताको प्राप्त होताहै कि यह ज्ञानादि अवस्थाके ज्ञानकी नाईंही नहीं भासता जैसे शरीरकी उत्पत्ति बीजकरके होतीहै पर मनुष्यके शरीर और बीजका स्वरूप एक सरीखा नहीं होता बहुरि जैसे बीजसे वृक्ष होताहै पर बीजकी नाईं वृक्षका स्वरूप नहीं होता तथापि वह बीजही सम्पूर्णताई को प्राप्तहोताहै तब वृक्ष कहावताहै तैसेही जब यह ज्ञान सम्पूर्ण होताहै तब वह दर्शन कहावताहै काहे से कि जिस पदार्थकी सम्पूर्णता प्राप्त होतीहै सो दर्शनभी उसीप्रकारसे साथ होता सो समझना दर्शनहै सो इसीकारणसे श्रीरामदर्शन किसी दिशा विषे

नहीं पायाजाता जैसे बूझ और ज्ञानभी स्थूल दिशासे विलक्षण है तैसेही उन का दर्शन भी दिशा और स्थानसे रहित है पर दर्शन का मूल ज्ञानही है ताते जिस पुरुषको ज्ञान कुछ नहीं तिसको श्रीराम दर्शन विषेभी बड़ा पटल है और उस को दर्शन कदाचित् नहीं प्राप्त होता जैसे बीजके बिना खेती उत्पन्न नहीं होती और जिसको सम्पूर्ण ज्ञान प्राप्त हुआ है सो तिसको सम्पूर्ण दर्शन प्राप्त हुआहै पर इस दर्शनके विषे सबही पुरुष समान नहीं होते काहे से कि जिसको ज्ञान अधिकहै तिसको दर्शनका आनन्दभी अधिकहै और जिसको ज्ञान अल्पहै तिसको दर्शनानन्दभी अल्पहै इसीपर महाराज ने भी कहाहै कि मैं सब लोगों को उनके अधिकार प्रति दर्शन दिखाऊंगा और केवल दर्शन सन्तजनों को देऊंगा सो इस का तात्पर्य यहहै कि बीज दर्शन का ज्ञानहै सो ज्ञान सतों के हृदयमें होताहै ताते उनको शुद्ध सच्चिदानन्द विग्रहका दर्शन प्रकट होताहै और इतरजीवोंको ऐसादर्शन नहीं होता काहे से कि उनमें ज्ञानरूपी बीज नहीं मिलता इसीपर महापुरुषने भी कहाहै कि अमुक मीतिमान् की विशेषता बहुत भजन, तप और व्रतोंकर नहीं पर उनकी विशेषता बूझ मे है और वह बूझही ज्ञानरूपहै ताते सर्वजीवोंको जो भगवत्का दर्शन अपने अपने अधिकार प्रति होताहै सो तिसका दृष्टान्त यहहै कि जैसे बहुत दर्पणहोवें और कोई मलिनहोवें कोई उज्ज्वल होवें और कोई अति उज्ज्वल होवे और कोई अतिमलिन होवें सो यद्यपि उन विषे एकही स्वरूपका प्रतिबिम्ब भासताहै तौभी उसका आकार भिन्न भिन्न दिखाई देताहै काहेसे कि जो दर्पण सीधा होताहै तिसविषे सीधाही आकार भासताहै और जो दर्पण टेढ़ा होताहै तिसमें सुन्दररूप भी कुरूप भास ताहै जैसे तरवारकी दीर्घता विषे सुन्दर मुखका आकार भी दीर्घ दृष्टि आवता है तैसेही परलोक विषे जिस पुरुषका हृदयरूपी दर्पण मलिन और टेढ़ा होताहै तब उसको निस्सन्देह सुखदायक पदार्थ भी दुःखदायक भासताहै ताते ऐसे जान तू कि श्रीरामरूप दर्शनविषे जैसा आनन्द सन्तजनों को होताहै सो इतर जीवोंको प्राप्त नहीं होताहै और जैसा रहस्य विद्यावानोंको होताहै तैसा विद्याहीन जीवोंको नहीं होता बहुरि जैसा सुख विद्यावान् वैरागी और प्रेमीको प्राप्त होता है सो इतरविद्यावानोंको नहीं होता ताते जिस पुरुषने श्रीरामको पहिचाना है और श्रीरामही के साथ जिसकी अधिक प्रीति है बहुरि जिसने श्रीरामजी को

पहिचाना और प्रीति उनकी अन्तर है सो इनदोनों के आनन्द विषे बड़ा भेद होनाहै यद्यपि उनको दर्शन देखने विषे समानताहै तौभी उनके आनन्द विषे समानता नहीं सो यह भेद प्रत्यक्ष है दर्शन विषे नहीं काहसे कि रूप एकही है बहुरि दर्शनका बीज आनंद और ज्ञानरूपी बीज दोनोंको है सो तिसका दृष्टांत यह है कि जैसे दो पुरुष होवें और दोनों की दृष्टि समानहोवे सो किसी सुन्दर पुरुषको देखें पर उनमें इतनाभेदहोवे कि एकपुरुष उसको अधिक प्रीतिके साथ देखे और दूसरे पुरुषकी प्रीति थोड़ी होवे तब उनके देखने विषे भेद कुछ नहीं होता पर आनन्द विषे बड़ा भेद होता है ताते प्रसिद्धहुआ कि प्रेमसाथ देखने हारे पुरुषको आनन्द अधिक होताहै और जो पुरुष प्रीतिसे रहित है सो तिस-को ऐसा आनन्द नहीं प्राप्तहोता सो इसका तात्पर्य यहहै कि केवल ज्ञानकरके भी जीवको उत्तम भोगोंकी सम्पूर्णता नहीं प्राप्तहोती ताते जब प्रेम और ज्ञान दोनोंहोवें तब उत्तम भोगोंको प्राप्तहोताहै और प्रेमकी प्रबलता तब होती है जब प्रथम इसमनुष्यके हृदयसे मायाकीप्रीति सपूर्ण दूरहोवे ताते श्रीरघुपति नारायणकी प्रीति वैराग्य बिना सिद्ध नहीं होती इसीकारण करके ज्ञानी वैरागी को आनन्द अधिक होताहै बहुरि जब कोई इसप्रकार प्रश्नकरे कि जो दर्शनका आनन्दभी ज्ञानके आनन्द की नाईं है तब यह आनन्द कुछ अधिक नहीं भासता सो उस का उत्तर यहहै कि इसप्रकार प्रश्न तू तबलग करताहै जबलग तैंने ज्ञानके आ-नन्दको जाना नहीं है और कैसेही वचन शास्त्रके पढ़कर अथवा सीखकर प्रगट किये हैं सो इसीको तैंने ज्ञान जानाहै ताते इसकरके तुझको वह आनन्द प्राप्त न होवेगा किसी प्रकार जैसे कोई पुरुष अटकेका भिखारीपन नाश और चाहे कि इसप्रकार मुझको मिठाई का स्वाद आवे तब कदाचित् मिठाई के स्वादको पाव नहीं होता और जिस पुरुषको ज्ञानका स्वाद ज्योंका त्यों आयाहै तब उसको इस जगत् विषे ऐसा आनन्द होताहै कि वह आनन्द जो स्वर्ग के सुखसे अधिक विलक्षण रमनाहै सो यद्यपि ज्ञानका सुख ऐसाहै कि उसके समान और सुख कोई नहीं पर तौभी श्रीरामचन्द्र के दर्शनका आनन्द ऐसा अधिक है कि उसके नि-कट ज्ञानका आनन्द भी तुच्छही भासताहै पर इस प्रकारका भेद दृष्टान्त बिना प्रगट नहीं समझपड़ता ताते इसका दृष्टान्त यहहै जैसे किसी सुन्दर पुरुषके साथ किसीकी प्रीति अधिकहोवे और प्रभात समय अपने प्रियतमको देखे तब सूर्य

का प्रकाश प्रकट न हुआ होवे बहुरि उस देखनेहारे पुरुष को बिच्छू और माखिया भी डसती होवें और उसी समय विषे किसी के भयकरके डरना भी होवे और किसी और कार्य्यकी चिंताभी करताहोवे तब यह वार्ता निस्सन्देह है कि जहां एते विघ्न इकट्ठेहोवें तब उस प्रेमी पुरुषको अपने प्रियतम के दर्शनका सुख सम्पूर्ण प्राप्त नहीं होता पर जब अचानकही सूर्य्य उदय होवे और प्रकाश अधिक प्रकटहोवे बहुरि जिसके भयकरके डरताथा सो तिसका भयभी दूरहोवे और किसी कार्यकी चिन्ताभी न होवे बहुरि बिच्छू और माखी का डसना भी दूरहोजावे तब निस्सन्देह उस प्रेमीपुरुषको अपने प्रियतमके दर्शनका आनन्द अति अधिक होताहै सो उस पूर्व देखने कीनाई नहीं होता और विघ्नों के दूरहुये वह आनन्द सम्पूर्णता को प्राप्त होताहै तैसेही यह पुरुष जबलग देह के अभिमान विषे बँधा रहता है तबलग इतने विघ्न इस जीव को लगेहुये हैं कि ज्ञान की अल्पज्ञता अँधेरे की नाईं है अथवा परदे की नाईं है बहुरि बिच्छू और मक्खियों का डसनाभी इन्द्रियों के रसोंकी सैन है और सदैवकाल शरीरकी नाशना का भय रहता है और नानाप्रकार के शोक और दुःख चित्तको विक्षेपता देनेहारे हैं और सर्वदा आहारके उत्पत्तिकी चिंता रहती है पर जब इस जीव को देहाभिमान नष्टहोताहै तब यह परदे सबही दूरहोजाते हैं और उस दर्शनकी प्रीति सम्पूर्णताको प्राप्त होती है और प्रकाशके प्रकटहोने करके वह अँधेरा भी दूर होजाता है बहुरि मायाके व्यवहार की विक्षेपता भी नाश होजाती है इसी कारण करके यह दर्शनका आनन्द अधिकताको प्राप्त होताहै और जैसे उस देहाभिमान विषे ज्ञानका आनन्द अल्पथा तैसेही देहाभिमानके दूरहुये वह आनन्द संपूर्ण होताहै जैसे अनाजकी सुगन्धिका सुख भूखेपुरुष को कुछ अल्पही होता है तैसेही वह ज्ञान जबलग देहाभिमान युक्त होता है तबलग उसका आनन्द अल्पमात्र होताहै और देहाभिमानके दूरहुये वह ज्ञानही दर्शनरूप होताहै और उसका आनन्द भी अति अधिक होताहै बहुरि जब तू इसप्रकार प्रश्नकरे कि तुम तो ज्ञानही की सम्पूर्णताई को दर्शन कहतेहो सो ज्ञान हृदय विषे होताहै और दर्शन का देखना नेत्रों के विषे होताहै ताते ज्ञान और दर्शनकी एकता क्योंकर जानिये तब ऐसे जान तू कि दर्शन का नाम दर्शन इसकरके कहतेहैं कि जिसपदार्थ का स्वरूप प्रकट विषे दृढहोताहै सो दर्शन विषे उसकी प्राप्त

प्राप्ति होवेहै ताते उसको दर्शन कहते हैं इसीकारणकर प्रसिद्धहुआ कि सम्पूर्ण प्राप्तिका नाम दर्शन है और नेत्रों के देखनेकर दर्शन नहीं कहाजाता जैसे कोई पुरुष फूल अथवा बीनको देखे पर जबलग उसकी सुगन्ध न लेवे और बीन के शब्दको श्रवण न करे तबलग सुगन्ध और रागके दर्शनका प्राप्त नहींहोता अर्थ यह कि यद्यपि उनको नेत्रोंकर देखता भी है तोभी उसके रहस्य को प्राप्त नहीं होता ताते यह निस्सन्देह है कि श्रीरामचन्द्रजी जब दर्शन का देखना सहस्र विषे उत्पन्न करने तो भी उसको दर्शन नहीं कहने ताते केवल नेत्रों करके देखनेही को दर्शन समझना भी बुद्धिकी हीनताहै पर यद्यपि दर्शन के अर्थ तो तू नेत्रों का देखनाही समझता है तोभी तुझको ऐसी प्रतीति चाहिये कि श्रीराम दर्शन भी परलोक विषे नेत्रोंकर प्रकट होइ आवेगा परवह नेत्र इन स्थूल नेत्रों की नाईं न होवेंगे काहेसे कि यह शरीर के नेत्र स्थान दृष्टि बिना नहीं देखसके और वह सूक्ष्मनेत्र ऐसे हैं कि उनका देखना दिशा और स्थान से रहित है पर इससे अधिक ऐसे वचनकी चर्चा और बखानकरना अयोग्यहै काहेसे कि सब किसीकी बुद्धि ऐसे भेदको समझ नहींसकती जैसे सुन्दर चित्रकारी की क्रिया बढ़ाने नहींहोसकती यद्यपि यद्यपि कोई पुरुष विद्यावान् भी होवे और वह व्याकरण और व्याकरण और और विषे चतुरहोवे तब ऐसे सूक्ष्मचतुरता में उसकी बुद्धि का पहुँचना भी कठिन होताहै और जो पण्डित शास्त्रोंके वचनोंके निर्णय करनेहारे हैं सो ऐसे भेदको वहभी नहीं पासकते काहेसे कि यह पुराण पण्डित मसाधि जीवोंके धर्मके कोतवालहैं अर्थ यह कि पाप पुण्य और नाना स्वर्गों का निरूपण संसारी जीवों के हृदय में दृढ़ करावते हैं और जो मतमतान्तर सम्प्रदाय मतमुत्रहै जिनके विषय में यह पण्डितही झगड़ावते हैं और चर्चा करके उन के मतको खण्डन करते हैं पर यह ज्ञानको जो पाना है सो जिसका मार्गही भिन्न है और इसके समझनेहारे ज्ञानवान् पुरुष दुर्लभ हैं ताते इस वचन का बखान करना ऐसे ग्रन्थ में योग्यही समाधान है इसीकारण करके मैंने इसको यहां सम्पूर्ण छिपाके रक्खा जब तू इसप्रकार समझले कि तमको सोआप पीत दर्शनके आनन्दकी ऐसी विशेषता नहीं है कि इस पुरुष के निकट इसको के सुख और सुखपात्र होता है सो इस वचनका अर्थ भी इससे अधिक नहीं जानता और यद्यपि इसी मार्ग में सन्तजनोंके वचन बहुतहैं पर मेरी जानमें ऐसे सूक्ष्म भेदको

समझ नहीं सकते और यह संशय उत्पन्न होता है कि ऐसा सुख कौन होवेगा जिस सुखके आगे स्वर्ग का सुख भी विरस होजाता है और जबलग यह संशय दूर न होवे तबलग हृदयकी प्रतीति और निश्चयभी दृढ़ नहीं होती सो तिसका उत्तर यह है कि इसवचनके अर्थका भेद तीनप्रकार करके तेरी बुद्धि में प्रत्यक्ष भासेगा सो प्रथम यह है कि तब तुझको यह अर्थ प्रगट भासेगा जब तू बहुतबार भली प्रकार इन वचनों के अर्थका जो हमने कहा है तिसका मनन और विचार करेगा काहेसे कि जो वचन एकहीबार श्रवण किया जाता है तब वह चित्तमें नहीं ठहरता ताते बारबार इस वचनका विचार करना प्रमाण है बहुरि दूसरा उपाय यह है कि मनुष्यमें सभी स्वाद इकट्ठे नहीं उत्पन्न किये ताते अपने २ समय अनुसार प्रकट होते हैं जैसे बालकको प्रथम आहारही की तृष्णा होती है और आहार से इतर किसी पदार्थको नहीं जानता बहुरि जब सातवर्षका होता है तब उसको खेलने की तृष्णा उत्पन्न होती है और उसी खेलने के रसमें ऐसा लीन होता है कि आहारका स्मरण भी नहीं करता बहुरि जब दशवर्ष का होता है तब उसको शृंगार और सुन्दर वस्त्रों की अभिलाषा उत्पन्न होती है और सुन्दरताई के स्वाद करके खेलने का भी त्याग करता है बहुरि जब यौवन अवस्था को प्राप्त होता है तब कामादिक भोगों की प्रबलता होती है और कामकी अभिलाषा विषे ऐसा मग्न होता है कि उस करके आहार और खेलन और शृंगार की अभिलाषा नष्ट हो जाती है बहुरि जब बीसवर्षका होता है तब इसमनुष्य विषे मान और बड़ाई की तृष्णा उत्पन्न होती है सो इस मानबड़ाई का स्वाद ऐसा है जो माया के सर्वपदार्थों विषे प्रबल है जैसे प्रभुके वचनों विषे भी आया है कि इससंसार विषे इस जीवको इतना ही प्राप्त होता है जो खेल और सुन्दरताई और मान और सम्पदा और दुर्वासना सो इस संसार विषे यही पदार्थ हैं पर जब यह पुरुष मायाके पदार्थों करके मलिन और रोगी और आसक्त न होवे तब इससे पीछे सर्व जगत्‌के उत्पन्नकरनेहारे जो भगवत् हैं सो तिनकी विद्या और उनके ज्ञानका आनन्द इसजीवको प्रगट होता है सो भगवत्‌के जाननेका रहस्य ऐसा है कि जैसे मानके स्वाद विषे सर्वपदार्थ मायाके लीन होजाते हैं तैसेही भगवत्‌के पहिचानने के आनंद विषे मान और बड़ाई का आनन्द भी विरस होजाता है और यह वार्ता प्रसिद्ध है कि स्वर्ग विषे भी आहार और रूपके सुखसे अधिक और सुख कोई नहीं काहेसे कि

प्राप्ति होतीहै ताते उसको दर्शन कहते हैं इसीकारणकर प्रसिद्धहुआ कि संपूर्ण प्राप्तिका नाम दर्शन है और नेत्रों के देखनेका दर्शन नहीं कहावता जैसे कोई पुरुष फूल अथवा बीनको देखे पर जबलग उसकी सुगन्ध न लेवे और बीन के शब्दको श्रवण न करे तबलग सुगन्ध और रागके दर्शनको प्राप्त नहींहोता अर्थ यह कि यद्यपि उनको नेत्रोंका देखना भी है तौभी उनके रहस्य को प्राप्त नहीं होता ताते यह निस्सन्देह है कि श्रीरामचन्द्रजी जब दर्शन का देखना मस्तक विषे उत्पन्न करते तौ भी, उसको दर्शनही कहते ताते केवल नेत्रों करके देखनेही को दर्शन समझना भी बुद्धि की हीनताहै पर यद्यपि दर्शन के अर्थको तू नेत्रों का देखनाही समझता है तौभी तुझको ऐसी प्रतीति चाहिये कि श्रीराम दर्शन भी परलोक विषे नेत्रोंकर प्रकट हुई आवेगा पर वह नेत्र इन स्थूल नेत्रों की नाईं न होवेंगे काहेसे कि यह शरीर के नेत्र स्थूल दृष्टि बिना नहीं देखसके और वह सूक्ष्मनेत्र ऐसे हैं कि उनका देखना दिशा और स्थान से रहित है पर इससे अधिक ऐसे वचनकी चर्चा और बखानकरना अयोग्यहै काहेसे कि सब किसीकी बुद्धि ऐसे भेदको समझ नहींसकी जैसे सुन्दर चित्रकारी की क्रिया बदरेसे नहींहोसकी बहुरि यद्यपि कोई पुरुष विद्यावान् भी होवे और वह कर्म-काण्ड और व्याकरण और और विषे चतुरहोवे तब ऐसे सूक्ष्मवचनों में उसकी बुद्धि का पहुँचना भी कठिन होता है और जो पण्डित नानाप्रकारके वचनोंके निर्णय करनेहारे हैं सो ऐसे भेदको वहभी नहीं पासके काहेसे कि यह प्रकृति पण्डित संसारी जीवोंके धर्मके कोतवालहैं अर्थ यह कि पाप पुण्य और नरक स्वर्ग का निश्चय संसारी जीवों के हृदय में दृढ़ करावते हैं और जो मनमति लम्पट मनमुखहै तिनके चित्तको यह पण्डितही डरावते हैं और चर्चा करके उन के मनको खण्डन करते हैं पर यह ज्ञानकी जो चर्चा है सो तिसका मार्गही भिन्न है और इसके समझनेहारे ज्ञानवान् पुरुष दुर्लभ हैं ताते इस वचन का बखान करना ऐसे ग्रन्थ में थोड़ाही प्रमाणहै इसीकारण करके मैंने इसको यहां सम्पूर्ण लिखाहै बहुरि जब तू इसप्रकार प्रश्नकरे कि तुमने तौ ज्ञान और दर्शनके आनन्दकी ऐसी विशेषता कही है कि इस सुखके निकट स्वर्ग के सुखभी तुच्छमात्र होजाते हैं सो इस वचनका अर्थ मेरे हृदय में प्रत्यय नहीं भासता और यद्यपि इसी अर्थ में सन्तजनों के वचन बहुतहैं पर मेरी बुद्धि ऐसे सूक्ष्म भेदको,

समझ नहीं सक्ती और यहसंशय उत्पन्नहोताहै कि ऐसासुख कौन होवेगा जिस सुखके आगे स्वर्गों का सुख भी विरस होजाताहै और जबलग यह संशय दूर न होवे तबलग हृदय की प्रतीति और निश्चयभी दृढ़ नहीं होती सो तिसका उत्तर यहहै कि इसवचनके अर्थका भेद तीनप्रकार करके तेरी बुद्धि में प्रत्यक्ष भासेगा सो प्रथम यहहै कि तब तुझको यह अर्थ प्रगट भासेगा जब तू बहुतबार भली प्रकार इन वचनों के अर्थका जो हमने कहाहै तिसका मनन और विचार करेगा काहेसे कि जो वचन एकहीवार श्रवण किया जाताहै तब वह चित्तमें नहीं ठहरता ताते वारवार इस वचनका विचार करना प्रमाणहै बहुरि दूसरा उपाय यह है कि मनुष्यमें सभी स्वाद इकट्ठे नहीं उत्पन्नकिये ताते अपने २ समय अनुसार प्रकट होते हैं जैसे बालकको प्रथम आहारही की तृष्णा होती है और आहार से इतर किसी पदार्थको नहीं जानता बहुरि जब सातवर्ष का होताहै तब उसको खेलने की तृष्णा उत्पन्न होती है और उसी खेलने के रसमें ऐसा लीनहोताहै कि आहार का स्मरणभी नहीं करता बहुरि जब दशवर्ष का होता है तब उसको शृंगार और सुन्दर वस्त्रों की अभिलाषा उत्पन्न होती है और सुन्दरताई के स्वाद करके खेलने का भी त्याग करताहै बहुरि जब यौवन अवस्थाको प्राप्तहोताहै तब कामादिक भोगों की प्रबलता होती है और कामकी अभिलाषा विषे ऐसा मग्नहोता है कि उस करके आहार और खेलने और शृंगार की अभिलाषा नष्ट होजाती है बहुरि जब बीसवर्षका होताहै तब इसमनुष्य विषे मान और बड़ाई की तृष्णा उत्पन्न होती है सो इस मानबड़ाई का स्वाद ऐसाहै जो माया के सर्वपदार्थों विषे प्रबलहै जैसे प्रभुके वचनों विषे भी आयाहै कि इससंसार विषे इस जीवको इन नाही प्राप्तहोता है जो खेल और सुन्दरताई और मान और सम्पदा और इन्द्रियवासना सो इस संसार विषे यही पदार्थ हैं पर जब यह पुरुष मायाके पदार्थों करके मलिन और रोगी और आसक्त न होवे तब इससे पीछे सर्व जगत्के उत्पन्न करनेहारे जो भगवत् हैं सो तिनकी विद्या और उनके ज्ञानका आनन्द इसजीवको प्रगट होताहै सो भगवत्के जाननेका रहस्य ऐसाहै कि जैसे मानके स्वाद विषे सर्वपदार्थ मायाके लीन होजाते हैं तैसेही भगवत् के पहिचानने के आनंद विषे मान और बड़ाईका आनन्द भी विरस होजाताहै और यह वार्ता प्रसिद्ध है कि स्वर्ग विषे भी आहार और रूपके सुखसे अधिक और सुखकोई नहीं काहेसे कि

उहा भी बागों विषे क्रीड़ा करते हैं और उनके फलों का आहार करते हैं और फूल जल और और सुन्दर मन्दिरोंको देखकर प्रसन्न होते हैं सो यह सभीभोग इसमसार विषे मानके भोग की अभिलाषा के निकट तुच्छरूप होजाते हैं ताते ज्ञानके आनन्द विषे स्वर्ग के भोगों का विस्मरण कैसे कठिन होगा काहेसे कि मानकी तृष्णा करके यह मनुष्य ऐसा कठिन तप करते हैं कि प्रथम एकान्त ठौरविषे अपना बन्दीखाना बनाते हैं अर्थ यह कि कभी बाहर नहीं निकसते बहुरि नित्यप्रति एकही दानेका आहार करते हैं और सर्वरात्रि जागरण करते हैं यद्यपि ऐसा तप करते हैं कि सर्वभोगोंका त्याग करते हैं पर तौभी मानका त्यागनहीं करसके ताते प्रसिद्ध हुआ कि स्वर्ग के सुख जो इन्द्रियादिक भोगहैं सो इससे मान और बड़ाई के सुखको अधिक प्रियतमरखते हैं सो जैसे ऐश्वर्य और मानकी अभिलाषा इन्द्रियादिक भोगोंके रसको विरसकर डारती है तैसेही ज्ञान के रस करके ऐश्वर्य और मानका रसभी विरस होजाता है सो यह सभीवार्त्ता तेरीबुद्धि विषे निस्सन्देह प्रत्यक्ष भासती है काहे से कि इन मानादिक रसों को तू भलीप्रकार जानताहै पर बालककी बुद्धि विषे जो मानके रसका स्वाद नहीं भासता ताते वह मान के रसकी प्रतीति भी नहीं करसक्ता और अब तू बालक को मान और बडाई के रस को लखाया चाहे तो जबलग उस की बुद्धि विषे आपही उसका स्वाद न भासे तबलग उसे बचन करके लखाना कठिन होताहै तैसेही जबलग तुझको ज्ञानके आनन्दका स्वरूप प्रत्यक्ष न भासे तबलग ज्ञानवान्‌भी अपने बचनों करके तुझको समझाय नहीं सक्ता जैसे तू बालकको समझाने विषे समर्थ नहीं होसक्ता २ बहुरि तीसरा उपाय यहहै कि जब तू ज्ञानवानोंकी अवस्थाको देखे और उनके बचनोंको श्रवणकरे और उनसे प्रश्नोत्तर करके अपने संशयको दूरकरे तब तेरे चित्त विषे इस बचन का अर्थ अवश्यही प्रकट होवेगा जैसे नपुंसक पुरुष कामादिक भोगों के रसको आप करनहीं जानता पर जब कामी पुरुषों को देखताहै कि वह अपनी सर्वसामग्री इसी भोगकी प्रबलता विषे खर्चते हैं तब उसकोभी इतना भासने लगताहै कि इन कामादिक भोगोंकारस महाप्रबलहै तैसेही जब तू ज्ञानवानोंकी अवस्थाको देखे और उनके परमानन्द को पहिंचाने तब तुझको भी ऐसी प्रतीति दृढ़ होजावेगी कि उनके हृदयमें निस्सन्देह बड़ा सुखहै इसीपर राबियाबाईकी वार्त्ता है कि उनको किसी

पुरुषने कहाथा कि स्वर्गको चाहतीहो तव उन्होंने कहा कि मेरी प्रीति घरवाले के साथहै ताते मैं घरको नहीं चाहती अर्थ यह कि मुझको प्रीति भगवत्की है इसकारणसे मैं स्वर्गरूपी घरको नहीं चाहती बहुरि दाराई सतनेभी कहाहै कि श्रीरामजीके ऐसे प्रियतमहैं कि उनको स्वर्गकी आशा और नरकोंका भय आसक्त नहीं कर सक्ता पर इसलोक के सुख तो अल्पमात्रहैं तव उनविषे आसक्त क्योंकर होवें इसीकारण से सर्व वासनाको दूरकरके श्री रघुपतिचरणप्रीति विषे मग्न रहते हैं बहुरि एक और सन्तकोभी किसीप्रियतमने कहाथा कि तुमको सर्व संसार और मायासे जो वैराग्य प्राप्त हुआहै और एकान्त ठौरमें भजन विषे जो स्थित हुयेहो सो तिसका कारण क्याहै तात्पर्य्य यह कि तुमको काल का भय स्मरण विषे आयाहै अथवा नरकोंका भयहै अथवा स्वर्गकी आशाहै सो इस का उत्तर मुझसे कहो तव सन्तने कहा कि कालका भय क्याहै और नरकोंका भय क्याहै और स्वर्गकी असल क्याहै पर एक ऐसा परेश प्रभुहै कि यहलोक और परलोक उसीके हाथ विषे हैं सो जव तू उसकी प्रीतिका रस चाखे तव यह सभी डर और आशा विस्मरण होजावे और जव तुझको उसकी पहिंचानहोवे तव इन सव पदार्थोंसे तू लज्जावान् होवेगा बहुरि एक और महात्माको किसी ने स्वप्नविषे देखाथा तव उसने पूछा कि अमुकसन्तकी गति परलोक विषे क्यों कर हुईहै तव उन्होंने कहा कि अवहीं मैं उसको स्वर्गविषे अमृतफलोंका आहार करते देखआयाहू बहुरि उसपुरुषने पूछा कि तुम्हारी अवस्था क्योंकरहै तव उन्होंने कहा कि श्रीरामजी मेरे हृदयके अन्तर्यामीहैं सो जव महाराजने जाना कि इसको स्वर्गके खान पान की अभिलाषा कुछ नहीं तव महाराजने अपनी दया करके मुझको दर्शन दिया और एक और सन्तनेभी कहाहै कि मैंने स्वप्न विषे स्वर्ग को देखा था और उस स्वर्ग विषे बहुतलोग भोगोंको भोगते देखे तव मैं एक और पुरुषको देखा कि वह शुद्धस्थान विषे वैठाहै और नेत्र उसके खुलेहुये हैं और मतवारे की नाईं स्थितहै तव मैंने स्वर्गवासियों से पूछा कि यह पुरुष कौनहै तव उन्होंने कहा कि यह मारूफजीहैं सो यह ऐसे महापुरुषहैं कि इन्होंने नरक की भय और स्वर्ग की आशाकरके श्रीरामजी का भजन नहीं किया और निष्काम होकर श्रीरामनामस्मरण विषे दृढ़ हुयेहैं तो इनको श्रीरामजी का दर्शन हुआहै और स्वर्गके भोगों से निरपेक्ष [illegible]

सन्तने भी कहाहै कि जो कोई पुरुष इसलोक विषे अपने शरीरके भोगोंके साथ परचाहुआ है सो परलोक विषेभी शरीरके भोगों विषे आसक्त रहेगा, और जो पुरुष इसलोक विषे श्रीरामभजनके साथ परचाहै सो परलोकविषे श्रीरामजी के दर्शन सुखदर्पन को प्राप्त होवेगा बहुरि एक और सन्तनेभी कहाहै कि एकबार मैंने बायजीदजी को देखाथा कि वह सन्ध्याकालसे लेकर प्रभात समय पर्यन्त चरणोंके भार बैठेरहे और ध्यान विषे नेत्रोंको मूदलिया बहुरि धरतीपर मस्तक टेककर उठ खड़ेहुये और प्रार्थना करनेलगे कि हे महाराज! जिनपुरुषों ने आप का भजन कियाहै तब उनको आपने सिद्धताका बल दियाहै तातें वह पुरुष जलोंपर सूखेही तरजातेहैं और आकाश विषे उड़ने लगते हैं पर मैं इन सब्बै सिद्धियों से अपकी रक्षा चाहताहू बहुरि एक ऐसे पुरुषहुये हैं कि उनको दबे हुये खजाने मिले हैं और एक ऐसे हुयेहैं कि वह एकही रात्रि विषे सहस्रयोजनों के मार्गको लांघगयेहैं और इसी सिद्धता विषे प्रसन्नहुये हैं पर मैं इनसे भी रक्षा चाहताहूं तब इतना कहकर बायजीदजी ने अपनी पीठकी ओर देखा और मुझको देखकर कहनेलगे कि तू यहांहीं बैठाथा तब मैंने कहा कि हां स्वामी जी मैं यहांहीं बैठाया बहुरि उन्होंने कहा कि कबका बैठाहै तब मैंने कहा कि मुझको यहां बैठे बहुत चिरकालहुआ और मैंने योंभी कहा कि हे स्वामीजी! अपनी अवस्थाका बखान कुछ मुझकोभी सुनावो तब उन्होंने कहा और कि तेरे अधिकार अनुसार मैं कछुक वर्णन करताहूं बहुरि कहनेलगे कि मैं एकबार आकाशविषे देवतों के स्थानों में गयाथा तब वहां स्वर्ग बैकुण्ठादिक सब्बै लोकों को देखता भया और वहां मुझको आकाशवाणी हुई कि जिस पदार्थकी तुझको इच्छा होवे सो अब मांगलेवो तब मैं तुझको वही पदार्थ देऊं बहुरि मैंने प्रार्थनाकरी कि हे दीनदयाल! तेरे विना मुझको किसी पदार्थकी इच्छा नहीं तब स्वामीने कहा कि तू मेराही दासहै बहुरि एक महात्माका एक जिज्ञासुथा सो वह हृदयकी एकाग्रताविषे लीन रहताथा तब एकबार महात्माने कहा कि उस जिज्ञासु को कि तू बायजीदजी का दर्शनकरै तो भलाहै बहुरि उसने कहा कि मैं अपनेही हृदय विषे परचा हुआहूं तब महात्माने उसको केतीबार फेरभी कहा कि तुझको उनका दर्शन करना अधिक प्रमाणहै बहुरि उसने कहा कि मैं उनकेभी स्वामीको नित्यप्रति देखताहूं तातें मुझको उनके देखनेकी इच्छा क्योंकर होवे

बहुरि महात्मा ने उसको कहा कि जो तू एकबार उनका दर्शन करे तो सत्तरबार प्रभुके देखने से उनका दर्शन तुझको विशेष है तब वह जिज्ञासु आश्चर्यमान् होकर कहनेलगा कि हे स्वामीजी ! तुमने यह वचन किसप्रकार कहा तब उन्होंने कहा कि हे भाई ! अब जो तू प्रभुको देखता है सो अपने अधिकार प्रति देखता है और जब तू उनके निकट जावेगा तब तू प्रभुको उनकी अवस्थाके अनुसार देखेगा तब जिज्ञासुने इस वचनको समझकर कहा कि हे स्वामीजी ! तुमभी मेरे साथ चलो तब वहां जाकर उनका दर्शन करें बहुरि दोनों गुरु शिष्य बायजीदजी के पासगये तब बायजीद जंगल विषे गये थे बहुरि जब अपने गृह विषे आये और उस जिज्ञासुने उनको देखा तब बायजीदको देखतेही उसजिज्ञासुने कहा कि भले आयेहो बहुरि इतना कहकर उस जिज्ञासुका शरीर छूटगया तब उसके गुरुने कहा कि हे महापुरुषजी ! तुमने इस जिज्ञासु को एकही दृष्टिकर समाप्त किया तब उन्हों ने कहा कि यह सांचा जिज्ञासु था और इसके हृदय विषे एक गुह्यभेदथा सो वह भेद इसको आपकरके खुलता न था और जब मुझको इसने देखा तब वह भेद इसको प्रकटहुआ है पर इसके हृदयविषे उस भेदके सहलेनेका बल न था ताते शरीर छूटगया और बायजीदजीने योंभी कहाहै कि यद्यपि बड़े महापुरुषोंके समान अराम और प्रार्थना और दिव्यता तुझको मिले तोभी चाहिये कि तू श्रीराम बिना और किसीपदार्थका अङ्गीकार ना करे काहेसे कि ज्ञानवानों की अवस्था इनसेभी परेहै इसीतरह एकबार्ता है कि बायजीदजी से एक प्रीतिमान् ने कहा कि मुझको तीसबर्ष इसीप्रकार बीते हैं जो रात्रि विषे भजन करताहूं और दिनको ब्रत रखताहूं पर जैसे ज्ञानके वचन तुम कहतेहो सो मुझको इनकी समझ कुछ प्रकट नहीं भासती तब उन्होंने कहा कि जब तू तीनसै वर्ष पर्य्यन्त ऐसाही कठिन तप करे तब भी हमारे वचनों के भेदको समझ न सकेगा बहुरि उसपुरुष ने कहा कि मैं इस भेदको किसकारण करके न समझसकूंगा तब उन्होंने कहा कि तुझको अपने मान और अहङ्कार का पटलहै बहुरि उस पुरुषने पूछा कि इसका उपाय क्याहै तब उन्होंने कहा कि तू इसका उपाय न करसकेगा बहुरि उसने कहा कि तुम दयाकरके मुझको बताओ तब मैं उपाय करूंगा तब उन्होंने कहा कि प्रथम तू अपनी दाढ़ी को दूरकर और नग्न होकर अखरोटों का थैला गलेमें डालके और बाजार विषे जाकर यह कि जो कोई

बालक मुझको एक मुष्टिका मारे तो मैं उसको एक अखरोट देऊंगा बहुरि राजसभाके पण्डितों के आगे इसीप्रकार कहे तब तेरे अहङ्कार का पटल दूर होवेगा बहुरि जब यह वचन उसपुरुषने सुना तब कहनेलगा कि इससे भगवान् रक्षाकरे तुमने यह वचन कैसा कहा तब बायजीद उसको कहनेलगे कि यह वचन जो तैंने कहाहै सो इसकरके तू मनमुख हुआ है काहेसे कि यद्यपि मुझसे तू यों कहताहै कि भगवन्त जो निर्लेपहै सो मेरी रक्षाकरे पर इसी कहने विषे तू अपनी बड़ाई को चाहताहै ताते तू मनमुख है बहुरि उस पुरुषने कहा कि तुम मुझको कुछ और उपायकहो तो मैं करूंगा और यह जो तुमने आगे कहाहै सो मुझसे हो नहीं सक्ता तब उन्होंने कहा कि औषध तेरा यहीहै बहुरि उसने कहा कि यह तो मुझसे नहींहोसक्ता तब उन्होंने कहा कि मैंने तो तुझको प्रथमही कहाथा कि तेरा जो उपायहै सो तू न करसकेगा पर बायजीदने यहउपाय उसको इसकारण कर कहाथा कि वह पुरुष मान और बड़ाई की अभिलाषा विषे आसक्तथा और उसको मानहीका रोगथा ताते निर्माण होना उसका औषधथा और एक महापुरुषको आकाशवाणी हुईथी कि जिस मनुष्यके हृदयविषे लोक और परलोक का अभिलाषा नहीं देखताहूं तब उसके हृदय विषे मैं अपनी प्रीतिको रखताहूं और सर्व प्रकार उसकी रक्षा करता हूं बहुरि एक महात्माने महाराज के आगे प्रार्थना करीथी कि हे प्रभु! तू भलीप्रकार जानताहै कि जैसे अपनी प्रीति और भजनकारहस्य तैंने मुझको अपनीदयासे दियाहै तिससे स्वर्गके सुखोंकामोल मच्छरके परकी समान भी नहीं लगता बहुरि राबियाबाई से भी किसी पुरुषने पूछाथा कि तुम महापुरुषको प्रियतम रखतीहो तब उन्हों ने कहा कि ऐसापुरुष कौनहै जो महापुरुषको प्रियतम न राखे पर मुझको भगवत्की प्रीतिने ऐसा लीन कियाहै कि और किसीकी प्रीति मेरेहृदयमें नहीं रही और एक और महापुरुष से लोगोंने पूछाथा कि उत्तम करतूति कौनहै तब उन्होंने कहा कि श्रीरामजीकी प्रीति और उनकी आज्ञामें प्रसन्नरहना सो उत्तम करतूति यही है पर तात्पर्य यहहै कि सन्तजनोंकी साक्षियां भी ऐसी बहुतहैं पर उनकी अवस्थाकरके जानाजाताहै कि स्वर्ग के सुख से श्रीरघुनन्दनजूकी प्रीति और तिनकी पहिचान का आनन्द अधिक होताहै ताते चाहिये कि तू ऐसे वचनोंका विचारकरे तब तुझको भी इस वचनका अर्थ प्रत्यक्षभासे॥ अब प्रकट करना इसका कि श्रीरामजी

की पहिंचानै किसकारण छिपीहुई है॥ ताते जान तू कि जिस पदार्थकी पहिं-चान कठिन होती है सो दो कारणोंकर होती है सो प्रथम यहहै कि जो पदार्थ अति गुह्य होता है तिसको पहिंचान नहीं सक्के १ और दूसरा कारण यहहै कि जो पदार्थ अति प्रकट और अधिक प्रकाशवान् होताहै तब उसको भी नेत्रोंकर देख नहीं सक्के जैसे चिमगोदर सूर्य्यको देख नहीं सक्ता बहुरि जब रात्रिका स-मय होताहै तब नेत्रको खोलकर देखताहै सो तिसका कारण यहहै कि दिनविषे सूर्य्यका प्रकाश अधिक होताहै और चिमगोदर की दृष्टि मन्दहै ताते अंधकार विषे नेत्रोंको खोलकर देखना है तैसेही भगवत् के पहिंचाननेकी कठिनाई भी अति प्रगटता करके है कि भगवत् अति प्रकाशवान् और अति प्रत्यक्ष है ताते बुद्धिरूपी नेत्र उसको देख नहीं सक्के और श्रीरामजी का प्रकाश और उनकी प्रकटता इसप्रकार जानी जाती है कि जैसे तू किसी के सुन्दर अक्षरदेखे अथवा किसी वस्त्रको सिलाहुआ देखे तब तू निस्सन्देह दरजीकी विद्याको और श्रद्धा को सुगमही पहिंचान लेताहै और कारीगरीकी क्रियाको देखकर उसकी विद्या प्रत्यक्ष भास आवती है तैसेही श्रीरामजी जब इस जगत् विषे एकही पक्षी अथवा एकही वृक्ष उत्पन्न करते तब जो कोई उसको देखता सो निस्संदेह उसके उत्पन्न करनेहारे महाराजकी बूझ और समर्थताई और बड़ाई को सुगमही पहिंचानता काहे से कि यह महाराजकी रचना ऐसी है जो वस्त्र और अक्षरों की रचना के समान नहीं इसकारण से कि वस्त्र और अक्षरोंकी कारीगरी आरम्भ और सा-मग्री और यत्नकर सिद्ध होती है और यह धरती और आकाश और पशु वृक्ष और पर्वत और अवर जो इसकी नाईं सृष्टि है और जो कुछ मनके सङ्कल्पविषे आवता है सो सभी महाराजकी कारीगरी है और इसकारीगरी को महाराजने आरम्भ और यत्न बिनाही उत्पन्न किया है ताते यह सभी पदार्थ महाराज की बड़ाई के लखावनेहारे हैं और यद्यपि एते पदार्थ लखावनेहारेभी हैं तौभी अति प्रगटता करके उसका पहिंचानना गुह्य होरहा है काहे से कि जब एक पदार्थ महाराजने उत्पन्न कियेहोते और एक और पदार्थ किसी औरने बनाये होते तब निस्संदेह महाराजकी बड़ाईको पहिंचानसक्के पर जब सर्व सृष्टिका उत्पन्न करने-हारा महाराजही है इसीकारणकर लखा नहीं जाता और इसका दृष्टान्त यहहै कि जैसे सूर्य्य के समान इस जगत् विषे और कोई पदार्थ प्रकाशवान् नहीं काहे से

सर्व पदार्थों को सूर्य्यही लखावताहै पर जब यह सूर्य्य भी रात्रि के समय अस्त न होता अथवा मेघोंके आवरण विषे सूर्य्यको पटल ना होता तब कोई मनुष्य इस प्रकाशको सूर्य्य के आश्रय न जानते और यों जानते कि यह सबही रंग आप करके प्रकाशे हुयेहैं पर सब कोई जो रंगोंके लखावनेहारे प्रकाशको पहिचानताहै सो इसकारण करके जानते हैं कि रात्रिके समय सभीरंग छिपजाते हैं और प्रकाशविना कोई रंग दीखनहीं सक्ता तातें जानाजाताहै कि रंग भिन्नहै और प्रकाश भिन्नहै सो प्रकाशका लखना अन्धकार होताहै काहे से कि विरोधी पदार्थको विरोध करकेही लखा जाताहै तैसेंही सर्व्व जगत् का उत्पन्न करनेहारा जो भगवन्त है सो वहभी किसी कालविषे सूर्य्यकी नाईं जब अलोप होजाता अथवा नाशनाका प्राप्त होता तब धरती और आकाश भी नष्ट होजाते तब इस करके सब कोई भगवन्तको सुगमही पहिचानलेता पर वह भगवन्त जो नाशता और आवरणादिकसे रहितहै और सर्वपदार्थ उसीकेलखावनेहारे हैं और सर्वदा उसका प्रकाश अखण्डहै तातें अधिक प्रकाश करके छिप रहाहै बहुरि योंभी है कि बाल अवस्था से लेकर जब तेरे विषे कुछ बुद्धि ही न थी तबसे तू सर्व सृष्टिको देखता है और सृष्टिके उत्पन्न करनेहारे का बुद्धिही करके पहिचान सक्ते हैं सो बुद्धिके आगेही सृष्टिके देखनेमें तेरे नेत्रोंकी वृत्ति दृढ़होगई और स्वाभाविक होगयाहै तातें नानाप्रकारके चरित्र देखकरभी तुझको आश्चर्य नहीं भासता बहुरि जब अचानक किसी अपूर्व पक्षी अथवा वृक्षको तू देखताहै तब जानता है कि इसका उत्पन्न करनेहारा ईश्वर समर्थहै और तू यों कहताहै कि जिसने इसको बनायाहै सो बड़ा महाराजकी महिमा अपार है और उस अपूर्व आश्चर्य को देखकर भगवन्तकी कारीगरी तुझको प्रत्यक्ष भास आवती है तातें जिन पुरुषकी बुद्धिके नेत्रकी दृष्टि उज्ज्वलहै सो सर्व पदार्थोंको आश्चर्य रूपही देखता है और भगवन्तकी कारीगरीको पहिचानताहै और अपनी वासनाकरके किसी पदार्थको नहीं देखता जैसे कोई पुरुष सुन्दर अक्षरों को देखे तब वह पुरुष जो विद्याहीन होताहै तो स्याही और कागजको देखताहै और जो विद्यावान् होताहै तो सुन्दर अक्षरोंके देखकर लिखनेहारेकी कारीगरीको पहिचानताहै और वाणी करके वाणी के बनानेहारे की विद्याको समझताहै तैसेही जो बुद्धिमान् पुरुषहै सो सर्व्व पदार्थों विषे भगवन्तकी सत्ताको देखताहै और जो पुरुष बुद्धिसे हीनहै

सो इस संसार को अपनी वासना और तृष्णायुक्त देखता है और बुद्धिमान्पुरुष इसप्रकार जानता है कि कोई पदार्थ भगवत्की सत्ता से भिन्न नहीं ताते उसको सब कुछ आश्चर्यही भासता है इसकारण कर सबही पदार्थ भगवत् की बड़ाई और समर्थताई को प्रकट लखावते हैं ताते इसजगत् विषे भगवत् के समान और कोई पदार्थ प्रकाशमान और उज्ज्वल नहीं पर यह जीव अपनी बुद्धिकी हीनता करके उसको पहिंचान नहींसक्ते॥ अथ प्रकटकरना उपाय प्रीतिके प्राप्तहोने का॥ ताते जान तू कि भगवत्की प्रीति सर्वपदों से उत्तमपद है और उसके प्राप्त होनेका उपाय समझना अतिप्रमाण है सो इस प्रीतिके उपजने का दृष्टांत यह है कि जैसे कोईपुरुष किसी सुन्दर पुरुषके साथ प्रीति कियाचाहे तब इसका उपाय यह है कि प्रथम अपने प्रियतम बिना और सर्व पदार्थों से विरक्तहोवे बहुरि उसी प्रियतमको सर्वदा प्रीति संयुक्त देखतारहे और उसके सर्वअङ्गोंके देखनेकी अभिलाषा को बढ़ावे ताते जेती जेती उसकी सुन्दरताई को देखता है तेतीही उस के हृदय विषे प्रीति दृढ़ होतीजाती है सो जब वह पुरुष इस प्रीति के स्वभाव विषे दृढ़ होताहै तब निस्सन्देह उसको प्रीतिकी अधिकता होती है तैसेही श्रीरामजी की प्रीतिका उपायभी यहीहै कि प्रथम माया के सर्व रसों से विरक्तहोवे काहे से कि महाराजकी प्रीति विषे मायाकी प्रीति पटल डारती है सो मायाकी प्रीतिका दूरकरना ऐसे है जैसे किसान कण्टकों को दूर करके धरती को शुद्ध करताहै बहुरि इससे पीछे रामजीकी पहिंचान को ग्रहण करे काहे से कि जबलग यह पुरुष रामजीको नहीं पहिंचानता तबलग इसको श्रीरघुनन्दनजू की प्रीति भी नहींहोती ताते यह वार्त्ता प्रसिद्धहै कि हृदय सुन्दरताई और पूर्णताई आपही चित्त को खैंचती है और प्रियतमहै सो जब यह पुरुष उसको पहिंचानताहै तब निस्सन्देह उस को प्रियतम रखताहै जैसे कोईपुरुष किसी महात्माकी विशेषता को जाने तब अवश्यही उसके साथ प्रीति करताहै काहेसे कि उसमें शुभ गुणों की सुन्दरताईको प्रकट देखताहै ताते उसको प्रीति स्वाभाविकही दृढ़होती है तैसेही जब यह पुरुष श्रीरामजी को पहिंचानता है तब सहजही प्रीति उत्पन्न होतीहै सो यह पहिंचानना बीज की नाईं होता है बहुरि चाहिये कि सर्वकाल श्रीराम भजनमें स्थित होवे सो भजन विषे स्थितहोना जल सींचनेकी नाईंहै सो योंभी है कि जो कोई किसीका अधिक स्मरण करता है तब इस करकेभी प्रीति अधिक होती है ताते

जान तू कि यद्यपि सात्त्विकी मनुष्यों के हृदय विषे महाराजकी प्रीति अवश्य होती है पर सबको समान नहीं किसी को अल्प किसी को अधिक होती है सो अधिकता और अल्पताका भेद तीन कारणकर होताहै सो इसका प्रथमकारण यह है कि जिसका चित्त माया के व्यवहारविषे अधिक पसराहुआहै तब उसको श्रीरामचरण प्रीति थोड़ी होती है काहे से कि एक पदार्थकी प्रीतिदूसरे पदार्थ की प्रीतिको मन्दकरती है १ बहुरि दूसराकारण यह है कि पहिचान विषेभी भेद होता है जैसे कोई पुरुष विद्याहीन होवे तब वह पण्डितोंको इतनाही पहिचानता है कि अमुक पण्डित बहुत पढ़ाहुआहै और जो आपभी विद्यावान्होवे सो उस पण्डित के नानाप्रकारकी विद्याको पहिचानताहै और उस पण्डित के साथ जिस की प्रीति होतीहै तब वह उसके हृदयके गुणोंको भी पहिचानता है और शुभ गुणोंकी सुन्दरताई को देखकर अधिक प्रियतम रखताहै तैसेही जो पुरुष श्रीराम जीको भलीप्रकार पहिचानता है तब उसके साथ प्रीति भी अधिकही करताहै २ बहुरि तीसराकारण यह है कि भजन स्मरण करकेजो रहस्य प्राप्तहोता है सो उस विषे भी बड़ा भेद होता है काहे से कि कोई पुरुष भजनकी सावधानता विषे दृढ़ होता है और कोई अल्प दृढ़ होता है ३ ताते जान तू कि प्रीतिकी अधिकता और अल्पताका भेद इन तीन कारणों कर होताहै पर जिस जीवकी प्रीति रामजी के साथ कुछ नहीं होती तब जानाजाता है कि उसने रामचन्दजीको पहिचानाही नहीं पर जैसे शरीरकी सुन्दरताई चित्तको खैंचती है तैसेही गुणोंकी सुन्दरताई को जो पुरुष देखता है तब उसको अवश्यही प्रीति प्रकट होती है ताते यहप्रीति भी श्रीराम सर्वदिव्य भव्य गुणसागर की पहिचानका फल है और रामजी की पहिचानका प्राप्तहोना भी दो कारणों कर होताहै सो एक योगीजनोंका मार्ग है कि वह प्रथम तप करते हैं बहुरि भजनकरके हृदय को शुद्ध और एकत्र रखते हैं और आपको और सर्व पदार्थोंको विस्मरण करतेहैं इससे पीछे उन के हृदय विषे ऐसी अवस्था प्रकट होती है कि उस करके श्रीरामजीकी बड़ाई को प्रत्यक्ष देखते हैं पर इस मार्ग का दृष्टान्त ऐसे है जैसे कोई बधिक फांसी को पसारै तब उस फन्द विषे मृगपक्षी फँसता है अथवा नहीभी फँसता अथवा मूस उस फांसी विषे आन फँसताहै अथवा बाजभी प्राप्तहोता है तैसेही जो मार्गकी साधना विषे भी अवस्थाका बड़ा भेद होताहै जैसे किसी का चक्षन फुरने लगता है किसीको

वृद्धताका फल होताहै किसी को पूर्णज्ञान भी होताहै १ दूसरा मार्ग विचारकाहै सो सत्सग और ब्रह्मविद्याकर प्राप्तहोताहै और श्रीरामजीकी विचित्र रचनाका विचार करना इसका मूल है बहुरि श्रीरघुनन्दन जनचित्तचन्दन के अंग और उनके स्वरूपका विचार प्रकट होताहै तब श्रीरामजीकी पूर्णताई और बड़ाईको प्रत्यक्ष देखता है सो इस विचारकी विद्याका अन्त नहीं पर बुद्धिमान् पुरुष इस को सुगमही प्राप्त होता है और इस मार्ग विषे ज्ञानवान् सद्गुरु की सहायता चाहता है पर जिस पुरुषकी बुद्धि नीचहोवे और हृदय उसका मलिन होवे तब वह ऐसे मार्ग विषे नहीं पहुंच सक्ताहै सो यह विचारकी विद्या फन्द विछानेकी नाईं नहीं ताते इसका दृष्टान्त यह है कि जैसे कोई पुरुष व्यवहार अथवा खेती करे अथवा कुछ और मँजूरीकरे तब इस करके निस्सन्देह लाभको पावताहै पर जब कोई अकस्मात् विघ्न पहुंचजावे तब हानि भी होतीहै तौभी इस व्यवहार विषे लाभकी प्राप्ति अधिक है और हानि होना अकस्मात् है ताते विचारहीका मार्ग विशेष कहा है और जब कोई पुरुष विचार बिना श्रीरामजीकी प्रीति को प्राप्तहुआ चाहे सो यह भी असंभव है और विचारकी प्राप्ति भी इन दोनों मार्ग बिना सिद्ध नहीं होती २ और जो कोई यों जाने कि रामजीकी प्रीति बिना परलोक विषे मैं सुखी होऊंगा सो यह मूर्खता है काहेसे कि यह पुरुष रामजी की प्रीति बिना परलोक विषे सुखको प्राप्त नहीं होता सो इसका कारण यह है कि रामजीके निकट पहुंचनेहीका नाम परलोकहै ताते जिसपुरुषकी प्रीति आगेही किसी पदार्थ के साथ होती है सो यद्यपि अकस्मात् किसीके संयोग करके उस पदार्थ से दूरभी रहताहै तौभी उसके चित्त विषे वोही प्रीति दृढ़ रहती है बहुरि जब उस पदार्थको प्राप्त होताहै तब स्वाभाविकही परमानन्दको पावताहै और उत्तम भक्ति इसीका नाम है पर जब आगेही उस पदार्थ के साथ जिसकी प्रीति कुछ नहींहोती तब तिसको उस पदार्थकी प्राप्ति विषे सुखभी कुछ नहीं प्राप्त होता और जब प्रीति अल्प होती है तब उसकी प्राप्ति विषे सुखभी अल्पमात्र होताहै ताते प्रसिद्ध हुआ कि परलोक की भलाई और सुख इस जीवको प्रीति के अनुसार होताहै और भगवान् रक्षाकरे इससे कि जब इस मनुष्यका हृदय ऐसा मलिन होजावे जो श्रीरामसे इतर पदार्थों के साथ इसकी प्रीति होवे और सर्वथा तिस की वृत्ति स्थूलता विषे पसरजावे तब यह पुरुष निस्सन्देह परलोक विषे रामजी

सुखको प्राप्त होताहै और जिस पदार्थको पाकर गुरुमुख प्रसन्नताको पावते हैं सो उसी पदार्थको मनमुखी जब पावताहै तब प्रीतिकी हीनताकरके वह निस्सन्देह दुःखी होताहै सो इसका दृष्टान्त यहहै कि जैसे कोई चाडाल बाजार विषे गंधी के निकट आया और सुगन्ध की अधिकता करके मूर्च्छितहोकर गिरपड़ा तब वह गन्धी उसके चैतन्य करनेके निमित्त उस चाडाल पर सुगन्धें गुलाबजल आदिक डारनेलगा पर वह चाडाल सुगन्धकरके अधिक मूर्च्छितहुआ तब अचानकही एक और चाडाल वहां आवतामया और उसने इस वृत्तान्तको पहिंचाना तब वह विष्ठाको भिगोकर उस मूर्च्छित चाडालको सुंघावनेलगा तब वह चाडाल शीघ्रही जागउठा और कहनेलगा कि यह भली सुगन्ध है तैसेही जिसपुरुषकी प्रीति मायाके साथ अधिक दृढ़हुई है और वह सर्वथा मायाहीको प्रियतम जानताहै सो उस चाडालकी नाईं है काहेसे कि जैसे चाडालका स्वभाव दुर्गन्धताके साथ दृढ़था और गन्धियोंके बाजार विषे उसको दुर्गंध प्राप्त न भई तातें मूर्च्छाको प्राप्तहुआ तैसेही परलोक विषे भी इस जीवको मायाका सुख कोई न होवेगा तातें जो कुछ परलोक विषे इस जीवको प्राप्तहोता है सो वह मनमुखके स्वभावसे विरोधी होताहै इसीकारणसे परलोकविषे विषयी पुरुष महादुःखी होताहै अर्थ यह कि परलोकभी चैतन्यताके प्रकट होनेका नामहै इसी चैतन्यता विषे भगवत् का स्वरूप भी प्रकट होता है तातें बड़भागी पुरुष वही है जिसकी प्रीति इसलोक विषेही रामजीके साथ दृढ़हुई है और जिसका चित्त चैतन्यपुरुष के साथ सम्बन्धी हुआहै सो धन्यहै काहेसे कि सर्व तप और भजनोंका प्रयोजन श्रीरघुपति चरण प्रीतिहै और सम्बन्ध भी प्रीतिका नामहै इसीपर महाराजनेभी कहाहै कि जो उत्तम पुरुषहैं सो निस्सन्देह परम शुद्धताहीको प्राप्त होतेहैं और जेते पाप कर्म और मायाके भोगहैं सो श्रीराम प्रीतिके सम्बन्ध विषे विरोधी हैं तैसे महाराज नेभी कहाहै कि जिसपुरुषकी प्रीति बुराईके साथ होती है सो अवश्यही बुराईकोही प्राप्त होताहै तातें जिन पुरुषों के बुद्धिरूपी नेत्र खुलेहैं सो इस भेदको प्रत्यक्ष देखतेहैं और सन्तजनों के हृदयकी निर्मलताई को प्रकटही पहिंचानते हैं और यद्यपि वह सन्तजन अपनो धन और ऐश्वर्य नहीं दिखावते तौभी बुद्धिमान्पुरुष उनकेहृदयकी शुद्धताको हस्तामलकवत् देखतेहैं जैसेकोई पुरुष वैद्यकविद्याका वेत्ता होता है सो सुगमही वैद्यको पहिंचानलेताहै और जो

पुरुष पाखण्ड करके आपको बेद्य किया चाहताहै सो उसको भी विद्यावान् पहिंचान लेताहै कि यह पाखण्डी है तैसेही सन्तजन और दम्भीको बुद्धिमान् पुरुष प्रकटही पहिंचान लेताहै और योंभी चाहिये कि जबलग इसजीव के बुद्धिरूपी नेत्र खुले न होवें तबलग सन्तजनों के वचन और अवस्था अनुसार पहिंचाने और प्रतीतिकरे पर जबलग इसजीव की दृष्टि बल और ऐश्वर्य्य पर होतीहै तब लग जिस विषे सिद्धताका बल कुछ देखता है उसीको सन्त जानता है सो यह अयोग्यहै काहेसे कि सिद्धताका बल सन्तजनोंको भी होताहै और वरदानकर के अथवा जादूकरके भी होताहै सो इस भेदका समझना हृदयकी शुद्धता बिना कठिनहै ताते यह परीक्षाही झूठी है ॥ अथ प्रकट करने लक्षण प्रीति के ॥ ताते जान तू कि श्रीरामजीकी प्रीतिरूपी रत्न महादुर्लभहै और अभिमानकरना अयोग्यहै काहेसे कि श्रीरामजीकी प्रीतिके भी सातलक्षणहैं ताते चाहिये कि यह मनुष्य वह सातलक्षण अपने हृदयमें दृढकरे सो प्रथम यह है कि प्रीतिमान् पुरुष कालके भयकरके कदाचित् नहीं डरता काहे से कि शरीरके मृत्युहोने करके यह जानता है कि मुझको अपने प्रियतम का दर्शन होवेगा ताते प्रेमी पुरुष सर्वदा प्रियतमका दर्शनही चाहताहै इसीपर महापुरुषने भी कहाहै कि जो पुरुष श्रीरामजीके दर्शनको चाहताहै सो तिसको श्रीरामजी भी चाहतेहैं और एकहरिजन ने किसी तपस्वीसे पूछाथा कि तुम मृत्युको प्रियतम रखतेहो तब वह तपस्वी मौन कररहा बहुरि उसको हरिजन ने कहा कि जब तुझको साची प्रीति होती तब तू निस्सन्देह मृत्युको प्रियतम रखता पर इस विषे इतना भेदहै कि प्रीतिमान् पुरुष मृत्यु होनेमें ग्लानि नहीं करता पर मृत्युकी शीघ्रता से ग्लानि करता है काहेसे कि उसको परलोक मार्गका तोशा बनावनेकी अधिक अभिलाषा होतीहै ताते पीछु कुछ काल जीवनेको भी चाहताहै पर इसकी परीक्षा यह कि ऐसा पुरुष परलोकही के कार्यविषे अतिदृढ होताहै और कदाचित् अचेत नहीं होता १ बहुरि दूसरा लक्षण प्रीतिका यहहै कि जिस पदार्थ विषे रामजीकी प्रसन्नता और निकटता प्राप्त होती है सो प्रीतिमान् पुरुष उसी को अङ्गीकार करताहै और जिस पदार्थ करके रामजीसे वियोग होताहै तब उसको त्याग करताहै पर ऐसी अवस्था उस पुरुषकी होतीहै जिसकी सम्पूर्ण प्रीति श्रीरामजीके साथ होती है पर जिस पुरुषसे अकस्मात् कुछ पापभी होजावे तब उसकी सर्वथा प्रीतिसे हीनता

नहीं कहाजाता पर यों कहाजाता है कि उसको सम्पूर्ण प्रीति नहीं इसीपर एक सतने कहाहै कि जब कोई पुरुष तुझसे पूछे कि तू प्रीतिमान्है तब तुझको मौन करनीही भली है काहेसे कि जब तू ऐसेकहै कि मैं रामजीको प्रियतम नहीं रखता तब मनमुखता होती है और जब तू कहै कि मैं प्रीतिमान्हूं तब प्रीतिमानोंके लक्षणोंको प्राप्तहोना कठिनहै २ बहुरि तीसरा लक्षण यहहै कि प्रीतिमान्का हृदय सर्वदाही भजनके रसविषे लीनहोताहै और यत्न बिनाही भजनविषे स्थित रहताहै सो यह वार्ता प्रसिद्धहै कि जिसके साथ किसीकी प्रीति होतीहै तब स्वाभाविकही उसका स्मरण करताहै और जब सम्पूर्ण प्रीति होती है तब प्रियतमको कदाचित् विस्मरण नहीं करता और जब यों होवे कि यत्नकरके मन को भजन विषे लगावे तब जानिये इसकी प्रीति किसी और पदार्थ के साथ अधिक है और श्रीरामजी के साथ अल्पहै पर श्रीरामजी को प्रियतम रखताहै ताते चाहताहै कि मेरी प्रीति श्रीरामजीके साथ दृढ़होवे ३ और चौथा लक्षण यहहै कि सन्तजन और उनके वचनों विषे प्रीतिकरै और जिसके साथ कुछ अपने प्रियतमका सम्बन्धहोवे तब उसको भी प्रियतमराखे इसीकारणकर कहाहै कि जब इसकी प्रीति श्रीरामजी के साथ सम्पूर्ण होती है तब सर्वजीवों को प्रियतम रखताहै और जानता है कि यह सबही जीव मेरे स्वामीके उत्पन्न कियेहुयेहैं ताते सर्वसृष्टिको भाव संयुक्त देखताहै जैसे किसी मनुष्य के साथ किसीकी प्रीति होतीहै सो अपने प्रियतम की वाणी और उनके अक्षरोंको प्रियतम रखताहै तैसेही प्रीतिमान् पुरुष सर्व सृष्टिको प्रियतम रखताहै ४ बहुरि पांचवां लक्षण यहहै कि प्रीतिमान् पुरुषको एकान्त और प्रार्थना की अधिक अभिलाष होती है और चाहता है कि जो रात्रि का समय आवे तो भलाहै क्योंकि रात्रि विषे व्यवहार की विक्षेपता दूर होती है और केवल एकांत करके भजन विषेदृढ़ होसक्ता है और जबलग [illegible] मिला। [illegible]
के एकांतसे प्रियतमराखे तब जानिये कि इसकी प्रीति [illegible] दाऊ [illegible]
आकाशवाणी हुईथी कि जो पुरुष अपने को प्रीतिमा[illegible] र रा [illegible]
निद्राकरके सोइ रहताहै सो झूठाहै [illegible] नि [illegible]
दर्शन का त्याग कैसे करसक्ता है ता [illegible]
निकटहू और एक महापुरुषने प्रार्थना [illegible]
तब आकाशवाणी हुई कि जब तेरे ह [illegible]

निस्सन्देह मुझको पाया और महाराज ने मूसाभी एक अनुरागी से कहा है कि जगत् विषे तू किसीके साथ प्रीति न कर तब मुझसे दूर न होवे काहेसे कि दो पुरुष मुझसे निस्सन्देह दूर होतेहैं एक यह जो पुण्यके फलकी सिद्धताको शीघ्र ही प्राप्तहुआ चाहे और जब उस फलकी प्राप्ति विषे कुछ ढीलहोजावे तब पुण्य कर्म्मका त्यागकरे और दूसरा वह जो मुझको बिसारकर शरीरके सुखों विषे मग्न होइरहे तब मैंभी उसको बिसार देताहूं ताते वह जगत् विषे दुःखी रहताहै इस करके प्रसिद्ध हुआ कि जब सम्पूर्ण प्रीति होतीहै तब किसी और पदार्थकी अभिलाषा नहीं रहती इसीपर एक वार्त्ता है कि एक तपस्वी था सो जिस वृक्षके ऊपर पक्षी शब्द करतेथे तब उस वृक्षके नीचेजाकर भजन करनेलगा तब महाराजने उस तपस्वीको कहा कि अब तेरी सुरति पक्षियोंके शब्दकी ओर गई है ताते तू अपने पदसे गिरा है और जबलग इस वृक्षको त्याग न करेगा तबलग किसीप्रकार उस पदको न पहुंचेगा और केते सन्तजनोंकी अवस्था भजन और विनय प्रार्थना विषे ऐसी दृढ़हुई है कि जब उनके घरमें अग्निलगी तौभी उन्हों ने नहींजाना और किसी और सन्तजनके चरण विषे कुछ रोगथा सो जब वह सन्त भजन विषे स्थितहुआ तब वैद्योंने उसका चरण काटलिया और उस सन्त को पीड़ाकी कुछ खबर न भई ५ बहुरि छठा लक्षणभी प्रीतिका यहहै कि प्रीतिमान्‌को भजनकरना सुगमहोताहै और कुछ यत्न और आलस उसको नहींरहता इसीपर एक सन्तने कहाहै कि जब मैंने भजन किया तब प्रथम बीस वर्ष पर्य्यंत मुझको यत्नकरना होतारहा बहुरि अब बीस वर्ष हुये हैं तब से भजन करनाही मुझको सुखरूप हुआहै तात्पर्य यह कि जब रामजीकी प्रीति सम्पूर्ण होती है तब श्रीरामभजनही इसपुरुषको सर्वथा सुखरूप भासताहै और कोई पदार्थ सुखदायक नहीं भासता और कठिनता भी दूर होजाती है ६ बहुरि सातवां लक्षण यह है कि प्रीतिमान् पुरुषका मिलाप और सम्बन्ध सात्त्विकी मनुष्यों के साथ होताहै और सर्ब्ब जीवोंपर दयादृष्टि रखताहै और कुसंगियों का संग कदाचित् नहींकरता जैसे किसी सन्तने महाराजसे बिनती करके पूछा था कि हे महाराज! तेरे प्यारे सन्तजन कैसे हैं तब महाराजने उसको आज्ञाकरी कि जैसे बालककी प्रीति माताके साथ होतीहै तैसेही जिसकी प्रीति मेरे साथहै और जैसे पक्षी अपने घोंसलेमें विश्राम पावताहै तैसेही जो पुरुष मेरे भजन विषे विश्रामी होता

है और जैसे सिंह निर्भयहो कर किसीके ऊपर कोप करताहै तैसेही कुमार्गियोंकी ओर जिनको निर्भय कोपदृष्टि होती है सो ऐसे पुरुष मुझको महाप्रियतम हैं ७ इसीप्रकार और भी प्रीतिके लक्षण अनेक हैं पर जिसको सम्पूर्ण प्रीति होतीहै तिसके हृदय विषे सम्पूर्णही लक्षण स्थित आइ होते हैं और जिसके विषे कुछ लक्षण होते हैं और कुछ नहींहोते तब जानिये कि उसकी प्रीतिही अल्पहै॥ अथ प्रकट करना रूप प्रेम और उत्कण्ठाका॥ ताते जान तू कि जो पुरुष प्रीतिको प्रमाण नहीं करते सो प्रेम और उत्कण्ठाको भी नहीं मानते और महाराजने इस प्रकार प्रसिद्ध कहाहै कि उत्तम पुरुषोंकी चाह और प्रेम मेरेही साथ अधिक है और मैं उनको उससेभी अधिक चाहताहूं ताते प्रेमका अर्थ अवश्यही पहिचानना चाहिये सो प्रीतिही प्रेम और उत्कण्ठा का अंगहै इसीकारणसे जिसपुरुष को प्रीति कुछ नहीं होती तिसको प्रेम और उत्कण्ठा भी नहीं होती और जो पुरुष अपने प्रियतम को प्रकट देखताहै तब वहां भी प्रेम और उत्कण्ठा का स्वरूप प्रत्यक्ष दिखाई नहीं देता और समाप्त होजाता है ताते प्रेम का स्वरूप वहांहीं प्रकट भासता है जहां वह पदार्थ एक प्रकारकर प्रसिद्ध होवे और एक भावकरके वोही पदार्थ गुप्तहोवे जैसे प्रियतमका देखना ध्यान विषे प्रकट होताहै और नेत्रोंसे दूर होताहै तब प्रेमीपुरुष ऐसेही चाहता है कि जिस प्रियतमको मैं ध्यान विषे देखताहूं सो उसका दर्शन भी मैं किसीप्रकार नेत्रों साथ देखूं तब मुझको प्रियतमकी सम्पूर्णप्राप्तिहोवे सो इसी खैंचकानाम उत्कण्ठा और प्रेमहै बहुरि तैसे ही जान तू कि जबलग इसजीवका सम्बन्ध शरीरके साथहै तबलग सपूर्ण प्रेम को प्राप्त नहीं होता काहेसे कि यद्यपि बुद्धि करके श्रीरामजी को पहिचानता है तोभी दर्शन से दूरहै ताते प्रसिद्ध हुआ कि प्रेमकी सम्पूर्णता देहाभिमानके दूर हुये से प्राप्त होतीहै और एक और भावकरके देखिये तो देहाभिमान के दूरहुये भी प्रेमका अंग कदाचित् नहींजाता काहेसे कि देहाभिमानका आवरण ऐसा वर्णन कियाहै जैसे कोई अपने प्रियतमको महीनवस्त्र के परदे विषे देखे अथवा प्रभात समय देखे सो देहाभिमान विषे महाराजको पहिचानना ऐसेही होता है अर्थ यह कि यद्यपि देखताभी है तोभी अतिप्रत्यक्ष नहीं देखता सो देहाभिमान के दूरहुये से यह परदा तो दूर होजाताहै पर एक भावकरके प्रेम और उत्कण्ठा की अधिकता रहतीहै जैसे प्रेमीपुरुषने प्रियतमका मुख देखाहावे और उसके और

अंगान्न देखे होवें और योंभी जानताहोवे कि मेरे प्रियतमके सर्व अंग सुन्दरहैं तब उसको सर्व अंगोंके देखनेकी अभिलाषा रहती है तैसेही चैतन्यरूप जो श्रीराम जी हैं सो तिनका कुछ अन्त नहीं ताते जो कोई उनको बहुतही पहिंचानताहै तौभी उनकी सम्पूर्णताको पाय नहीं सक्ता काहेसे कि श्रीरामरूप अपारहै और मर्य्याद से रहित है ताते प्रसिद्ध हुआ कि जब उनको सम्पूर्ण पहिंचाना नहीं जाता तब सम्पूर्ण देखनाभी नहीं होसक्ता इसीकारण करके कहाहै कि यह जीव स्थूल देशविषे भी और सूक्ष्म देश विषे भी श्रीरामजी के सम्पूर्ण भेदको जान नहीं सक्ता पर यों है कि जेता सूक्ष्मदेश विषे महाराजके दर्शनको अधिक देखताहै तेताही अधिक आनन्दको पावताहै सो उनका दर्शन बेअन्तहै पर जेता किसीने देखाहै तिसके चित्तकी वृत्ति उसी दर्शनविषे लीनरहे तब इसीका नाम मिलापहै और जेता देखना शेष रहताहै सो जब चित्तकी वृत्ति उसीअभिलाषा विषे होवे तब इसीका नाम प्रेम और उत्कण्ठा है ताते प्रकट हुआ कि इसलोक और परलोकविषे उत्कंठा और मिलापका अन्त कबहू नहीं आता पर यह जीव परलोकविषे जो देखताहै सो श्रीरामरूपके प्रकाशको देखताहै तौभी दर्शनकी सम्पूर्णताईको चाहताही रहताहै पर यह वार्त्ता निस्सन्देहहै कि श्रीरामही अपने आपको ज्योंकात्यों जानताहै और और ऐसा कोई समर्थ नहीं जो श्रीरामस्वरूपको सम्पूर्ण जानसके और जब सम्पूर्ण पहिंचाननाही कठिन है तब उसको पहुँच नहींसक्ता पर वहां सन्तजनों की अवस्था ऐसी होती है कि उनको सदा सर्वदा दर्शनकी अधिकता खुलती जातीहै सो इसीकारण करके आत्मसुखको अपार कहाहै कि उसका पार कभी नहीं आता और बढ़ताही जाताहै सो जब वह सुख ऐसा न होता तब उसकी मर्य्याद होती और कुछकाल के पीछे आनन्द न भासता काहेसे कि जो आनन्द मर्य्यादविषे होताहै तब उसकेसाथ चित्तकी वृत्ति वैसी स्वभावको पकड़ जातीहै ताते वह आनन्द नहीं भासता और आनन्द तबहीं नया भासता है जब उसकी अवस्था बढ़ती जाती है सो आत्मसुख ऐसाहै कि उसका आनन्द सदाही नूतनहै और बढ़ता जाताहै वहुरि जब इस वचनके निर्णय विषे तैंने मिलाप और प्रेमके अर्थको समझा कि प्राप्त वस्तुकी प्रसन्नताका नाम मिलापहै और शेष वस्तुकी अभिलाषाका नाम प्रेम और उत्कण्ठाहै तब ऐसे जान तू कि प्रेमीजनका इसलोक और परलोक विषे मिलाप

और उत्कण्ठा विषेही रहते हैं इसीपर प्रभूने दाऊदजीको कहाथा कि हे दाऊद! यह संदेशा मेरा जीवोंको पहुँचावो कि जो मेरेसाथ प्रीति करते हैं मैंभी उनको प्रियतम रखताहूं और मैं उनहीका संगीहूं जो एकान्त विषे मेरेही साथ स्थित होते हैं और मैं उनकाही मित्र हूं जो निर्वासना होकर मेरेही भजन विषे परचते हैं, और मेरे प्यारे वही हैं जिन्होंने मेरे प्यारकरके और सब कुछ विस्मरण कियाहै, और जो मेरे आज्ञाकारी हैं मैंभी उनका आज्ञाकारी हूं,ताते जिसपुरुषने मुझको प्रियतम कियाहै सो निस्सन्देह मैंने उसको प्रियतम और विशेष कियाहै और जो कोई मुझको ढूंढताहै सो अवश्यही पावताहै और जो पुरुष किसी और पदार्थ को ढूंढता है सो मुझको नहीं पायसक्ता, ताते तुमको चाहिये कि जिस मायाके कार्य्यों विषे तुम आसक्तहुये हो और छलेगये हो सो इसका त्यागकरके अपना मुख मेरी ओर लेआवो और मेरेही साथ प्यारकरो तब मुझकोभी प्यारे होवो और जेते मेरे प्रियतमहैं सो उनको मैंने अपने प्रकाशसे उत्पन्न कियाहै और अपने ही तेजसे उनको मैंने पालाहै बहुरि किसी और सन्तको भी आकाशवाणीहुई थी कि जिनकी प्रीति मेरे साथहै मैंभी उनहीको प्रियतमरखताहूं और जो मुझको चाहते हैं मैं भी उनको चाहताहूं और जो मेरा स्मरण करते हैं मैंभी उनका स्मरण करताहूं और जिनकी दृष्टि मेरी ओर है मैंभी उनकी ओर देखताहूं, पर तू भी जब उनही के मार्ग चलेगा तब मेराप्यारा होवेगा और जब विपरीत मार्ग विषे चलेगा तब मुझसे विमुख होवेगा सो इसीप्रकारके वचन प्रीति और प्रेमके निर्णय विषे बहुत आये हैं ताते इतनाही बखान बहुतहै ॥ अथ प्रकटकरना अर्थ रजाय का और विशेषता रजाय मानने की ॥ ताते जान तू कि श्रीरामजी की आज्ञा मानना उत्तमपदहै और और अवस्था इसके समान विशेष नहीं काहेसे कि यद्यपि प्रीतिकी अवस्थाभी महाउत्तमहै पर महाराजकी आज्ञा मानना सा चीही प्रीतिका फलहै इसीपर महापुरुषने भी कहाहै कि श्रीरघुनाथजीके प्राप्तहोने का परमद्वारा यही है जो श्रीमहाराजकी आज्ञामाननी और परमसुखका द्वारा भी यही है बहुरि महापुरुषने किसी से पूछाथा कि तुम्हारे धर्मका चिह्न कौनहै तब उन्होंने कहा कि हम दुःख विषे सन्तोष करते हैं और सुखमें धन्यवाद करते हैं और सर्वकाल विषे महाराजकी आज्ञापर प्रसन्नरहते हैं तब महापुरुषने उनसे कहा कि तुम बुद्धिमानहो और विद्यावान्‌हो और सन्तजनोंके निकटवर्तीहो और

योंभी कहाहै कि परलोक विषे एक मनुष्य ऐसे होवेंगे जो परमसुख के स्थानों विषे आनन्दवान् होवेंगे और उनको दण्ड ताडना न होवेगी बहुरि उनसे देवता पूछेंगे कि तुम ऐसी अवस्थाको क्योंकर प्राप्तहुयेहो तब वह कहेंगे कि हम ने दो करतूति किये हैं सो एक यह कि हम एकान्त विषे भी श्रीरामजी का भय करके पापकर्म्म का त्याग करते थे और दूसरा यह कि जैसी हमारी प्रारब्ध राम जीने रचीथी सो हम उसी विषे प्रसन्न रहते थे तब देवता कहेंगे कि तुम ऐसेही सुखके अधिकारी हो और धन्यहो बहुरि एक महापुरुषने महाराज के आगे प्रार्थना करीथी कि हे महाराज! तू किस करतूति करके प्रसन्न होताहै तब हम वोही करतूति करके तुझको प्रसन्न करें तब आकाशवाणी हुई कि जब तुम मेरी आज्ञा विषे प्रसन्न होवोगे तब मैं भी तुम्हारे ऊपर प्रसन्न होऊंगा और दाऊदजीको भी आकाशवाणी हुई थी कि जो मेरे सन्तजनहैं सो किसी माया के पदार्थका शोक नहीं करते इसीकारणसे उनके भजनकी प्रसन्नता कदाचित् खंडित नहीं होती ताते हे दाऊद! मेरा प्रियतम वही है जिसका हृदय अपने आप विषे स्थितहुआहै और किसी पदार्थ करके उसको शोक और मोह नहीं होता बहुरि महापुरुषने भी कहाहै कि महाराजने इसप्रकार अपने वचनों विषे कहाहै कि मैं ऐसा ईश्वर समर्थ हूं कि मुझ ऐसा और दूसरा कोई समर्थ नहीं ताते जो मनुष्य दुःख विषे सन्तोष नहीं करता और सुख विषे मेरा धन्यवाद नहीं करता और मेरी आज्ञा विषे प्रसन्न नहीं रहता तब उसको चाहिये कि वह अपना ईश्वर कोई और ढूंढे और योंभी कहाहै कि मैंने सर्वकार्य्योंकी नेत रची है और सबकुछ समझकरके दृढ़ कियाहै और सर्व विषे मेरी आज्ञा वर्त्तमान है ताते जो कोई मेरे कियेपर प्रसन्नहै तब उनपर मैंभी प्रसन्नहूं और जो कोई पुरुष मेरे किये पर प्रसन्न नहींरहता तब मैंभी उसपर अप्रसन्न होताहूं अर्थ यह कि वह मुझको दुःखदायक समझता है ताते दुःखी रहता है और महाराज ने योंभी कहा है कि भला और बुरा सब मैंनेही उत्पन्नकिया है पर जिस पुरुषकी भलाई विषे प्रीति है सो सुखीरहता है और जिस मनुष्यको बुराई करनी सुगम भासती है और मेरी आज्ञा से विमुखहै सो अभागी है और एक सन्तके ऊपर तीसवर्षपर्यन्त भूख और निर्द्धनताईका दुःख आ रहाथा और नव कुछ महाराज से मांगताथा तौभी उसको प्राप्त न होताथा बहुरि उसको आकाशवाणीहुई कि जब आदिही जगतको मैंने

उपजायाथा तब तेरी मारब्ध इसी प्रकार रचीथी सो अब तू चाहताहै कि मैं तेरे निमित्त अपनी नेतको विपर्य्यय करूं और तेरी चाहके अनुसार तुझको सुखी करूं और जिसप्रकार मेरी आज्ञा है सो व्यर्थ होवे ताते मैं अपनी बुड़ाई करके कहताहूं कि जो तैंने मेरी आज्ञासे विमुख होकर कुछ और चाह करी तब तुझको अपने पदसे गिराइदूंगा बहुरि उस सन्त ने कहा है कि बीसवर्षपर्य्यन्त मैं महापुरुषकी टहल विषे रहाथा पर उन्हों ने मुझको ताड़ना करके कबहू न कहा कि अमुक कार्य्य तैंने किस निमित्त कियाहै और अमुक कार्य्य क्यों न किया पर जब कोई मुझको बुलाता और मैंभी उसके साथ कुछ विवाद करता तब मुझको ताड़नाकरके कहते कि जब तू श्रीरामजीको पहिचानता तब अपने शत्रुके साथ विवाद न करता और मौन कररहता बहुरि दाऊदजीको भी आकाशवाणी हुई थी कि हे दाऊद! एक तेरी चाहहै और एक मेरी चाहहै पर कार्य्य वही सिद्ध होता है जिसको मैं सिद्धकरताहूं ताते जब तू अपना आपा समर्पण करेगा तब सुखी होवेगा और जब मेरी आज्ञासे विपर्य्यय होवेगा तब अपनी चाहविषे दुःखीहोवेगा बहुरि एक और सन्तका वचनहै कि जैसी नेत महाराजने रची है सो मैं भी उसी विषे प्रसन्नहूं और सर्वदा दृष्टि मेरी उसकी आज्ञा विषेही रहती है बहुरि जब उन सन्तके कुछ रोग उत्पन्नहुआ तब लोगोंने पूछा कि तुम क्या चाहतेहो तब उन्होंने कहा कि मैं वोही चाहताहूं जो कुछ महाराज चाहता है और एक और सन्तने भी कहाहै कि जो कार्य्य प्रभुने कियाहोवे सो तिसविषे जब अभावकरूं तब इस विमुखतासे मुझको विष खाना सुगम भासताहै बहुरि किसी तपस्वीने चिरकालपर्यन्त तप कियाथा तब बहुत कालके पीछे उसको आकाशवाणी हुई कि तुझको अमुक बाईका दर्शन करना विशेष है तब वह तपस्वी उस बाई के निकट गया और चाहनेलगा कि मैं इसका भजन और तप देखूं सो तपस्वीने रात्रि विषे कुछ उसकी जाग्रत् भी न देखी और दिनको व्रतभी न देखा तब उस से पूछनेलगे कि तुम्हारी करतूति क्याहै तब बाई ने कहा कि मेरी करतूति यही है जैसी तैंने देखी है बहुरि तपस्वी ने बहुत विनती करके पूछा तब बाईने कहा कि मेरा एक यह भी स्वभाव है कि जब मुझको कुछ रोग और कष्ट होताहै तब मैं अरोगता के सुखको नहीं चाहती और जब धूपविषे होती हूं तब मैं छायाकी अभिलाषा नहीं करती और जब छाया विषे होती हूं तब धूप को नहीं चाहती

और जिसप्रकार श्रीजानकीनाथ की आज्ञा होती है तब मैं उसी में प्रसन्न रहती हूं, बहुरि, उस तपस्वीने दण्डवत् करके कहा, कि, यह तुम्हारा स्वभाव महाउत्तम है ॥ अथ प्रकटकरना अर्थ महाराजकी आज्ञा माननेका ॥ ताते जान तू कि केते पुरुष इसप्रकार भी कहते हैं कि दुःख में प्रसन्न होना असम्भवहै काहेसे कि दुःख में सन्तोष तो करसक्तेहैं पर दुःख में प्रसन्न होना बुद्धि में नहीं आता यह उनका कहना प्रमाण नहीं काहेसे कि जब इसपुरुष की प्रीति सम्पूर्ण होती है तब दोय-कारसे दुःखमें प्रसन्नता होती है सो प्रथम यहहै कि प्रेमीपुरुष प्रेम में ऐसा लीन होता है कि उस को दुःखकी सुधिही नहीं रहती जैसे युद्ध में शूरमा पुरुष ऐसा अचेत होताहै कि यद्यपि युद्धमें उसका घायलशरीर होताहै तौभी वह पीड़ाको जानता नहीं और उसके चित्तकी वृत्ति, शत्रुके जीतने में मग्न होजाती है बहुरि जब उस, चोट घावको देखताहै तब जानताहै कि मैं घायल हुआहूं और जब कोई धनकी, तृष्णाकरके किसी कार्य्यमें दौड़ताहै और उसके चरणमें कांटा प्रवेशकर जाताहै तब उसको भी नहीं जानता और यहभी प्रसिद्धहै कि व्यवहारकी अधिकता विषे भूख प्यास नहीं भासती ताते प्रकटहुआ, कि जब स्थूलशरीर, और व्यवहार की प्रीति विषे एते दुःखोंका भान नहीं रहता तबत्थ्रीरामजीकी प्रीति और प्रेमविषे दुःखोंका न जानना क्योंकर असम्भव होताहै काहेसे कि इस स्थूल रूपकी सुन्दरताई से दिव्यरूप की सुन्दरताईका, देखना महाविशेषहै और, यह जो, शरीर है सो मलमूत्र का घर है और चर्म करके, लपेटा हुआ है और इसको देखनेहारे नेत्र भी, क्षणभंगुरहैं और जिस बुद्धिरूपी नेत्रोंकरके दिव्यस्वरूपकी सुन्दरताई देखसक्ता है सो दृष्टि महासूक्ष्म और उज्ज्वल है और यह जो स्थूल नेत्रहैं, सो इनकी दृष्टि विपरीत है काहे से कि बड़ेको छोटा देखने हैं और छोटे को बड़ा देखते हैं बहुरि जो वस्तु दूर होती है सो निकट भासती है और जो निकट है सो दूर भासते हैं ताते प्रसिद्ध हुआ कि स्थूलरूपका देखना तुच्छमात्र सुखहै और सूक्ष्म सुन्दरताई का देखना परमानन्द स्वरूपहै उसीकारण से ऐसे आनन्दविषे दुःखका विस्मरण होना कठिन नहीं २ बहुरि दूसरा प्रकार यहहै कि यद्यपि प्रेमीपुरुषको कुछ दुःखभी लगताहै तदपि वह ऐसे जानताहै कि मेरे मित्र-वरकी आज्ञा इसीप्रकारहै ताते उसका हृदय प्रसन्न होजाताहै और उस दुःखको दुःख नहीं जानता जैसे कोई मित्र अपने मित्रको रुचिर कहावे अथवा कडुवी

औषध लगावे तब वह औषध खानेहारा कुछ खेद नहीं मानता और भलाही जानताहै तैसेही जो पुरुष श्रीरामजीकी आज्ञाको पहिंचानताहै सो निर्द्धनताई और और दुःख करके शोकवान् नहीं होता जैसे तृष्णावान् पुरुष व्यवहार के निमित्त बड़े २ दुःखोंको खैंचताहै पर धनकी आशाकरके उसको दुःखनहीं जानताहै तैसेही जिज्ञासु अनुरागी भी जब ऐसे जानता है कि महाराजकी आज्ञा को प्रसन्न होकर मानने विषे महाराज प्रसन्न होताहै तब उसकी प्रसन्नताके निमित्त दुःखको दुःख नहीं जानता सो बहुत सन्तजन इस अवस्थाको प्राप्त हुये हैं जैसे एकबाईकी वार्त्ता आगेभी कही है कि वह गिरपड़ीथी और उसके पांवके अँगूठेका नख उतर गयाथा तब वह हँसने लगी बहुरि लोगोंने उससे पूछा कि तुमको दुःखनहीं भासहुआ तब उसने कहा कि दुःखविषे प्रसन्नहोनेका फल जो है सो तिसकी आशाकरके मुझको दुःख नहीं भासा बहुरि एक सन्त के कुछ रोगथा और उसका उपाय न करताथा तब किसीने कहा कि तुम रोगका उपचार क्यों नहीं करते तब उन्होंने कहा कि हे भाई! तू नहीं जानता कि अपने प्रियतमकी चोटकरके दुःख और पीडा नहीं होती बहुरि जुनेद सन्तनेभी कहाहै कि मैंने अपने सद्गुरु से यह वार्त्ता पूछीथी कि हे स्वामीजी! शरीरके दुःख विषे प्रेमी पुरुषभी दुःखी होताहै तब उन्होंने कहा कि प्रेमी दुःखी नहीं होता बहुरि मैंने पूंछा कि जब उसको तरवारकी चोटलगे तब क्योंकर रहताहै तब उन्होंने कहा कि एक तरवारकी चोट क्याहै जो उसके सत्तर चोटलागें तोभी उसको दुःख नहीं भासता और एक सन्तने ऐसे कहाहै कि जो कुछ रामजी चाहते हैं मैंभी वोही चाहताहू ताते जब मुझको महानरकमें डारें तोभी मैं प्रसन्नहू और उस नरकहीमें भला जानताहू बहुरि एक और महात्माने कहाहै कि किसी मनुष्य से कुछ अवज्ञाहुईथी तब लोगोंने उसको सहस्र लाठीमारीं और उसने पुकार न करी तब मैंने उससे पूछा कि तैंने पुकार क्यों न करी बहुरि उसने कहा कि जब वह लोग मुझको लाठी मारते थे तब मेरा प्रियतम मेरे सम्मुख खड़ाहुआथा और मेरीओर देखताथा और मेरी दृष्टि भी उसीके ओरथी ताते मुझको पुकारकरनी भूलगई तब मैंने उसपुरुषको कहा कि अबतो तेरी प्रीति स्थूल मनुष्य के साथहै पर जो सर्व सौन्दर्य्यसागर श्रीरघुनन्दन महाराजके रूप अनूपकी छविछटाको देखता तब क्या करता बहुरि इतना सुनकर ऊर्ध्व पुकारकरके हायकरी और शरीर त्याग

दिया बहुरि उन्हीं महात्माने कहाहै कि प्रथम अवस्थाविषे मैं वनमें गयाथा और वहां जाकर भजनविषे दृढ़हुआ बहुरि मैंने एक पुरुषको देखा कि वह बावरेकी नाईं धरतीपर पड़ाहुआथा और चींटी उसके मासको काटती थीं तब मैंने दया करके उसका शीश अपनी गोदमेंलिया बहुरि जब वह चैतन्यहुआ तब कहने लगा कि तू ऐसी फजूली करके मेरे और स्वामीविषे परदा क्यों डारताहै और यह वार्त्ता तो प्रसिद्धहै कि मिश्र नगरकी स्त्रियोंने जब यूसफको देखा तो उनकी सुंदरताईको देखकर नींबूके बदले अपनी अंगुरियां काटडारीं और उनको पीड़ा की खबर न भई बहुरि जब उस नगरविषे दुर्भिक्ष पड़ाथा तब नगरके लोग जब भूखे होतेथे तब यूसफजीको आय देखते थे और उनको भूख भूलजातीथी सो यह तो स्थूलरूपकी मग्नताई भी ऐसी प्रबलहै पर जिसने परमशोभासागर श्री जानकीवरजी की सुन्दरताई को देखाहै सो उसको दुखका विस्मरणहोना क्या आश्चर्य्य है इसीपर एक वार्त्ता है कि एक पुरुष वनविषे रहताथा और सर्वदा योंही कहता था कि सर्वप्रकार श्रीरामजीकी आज्ञा विषेही कुशलहै बहुरि उनके घर विषे एक कूकुरथा सो रात्रि विषे चोरसे रक्षा करताथा और एक वृषभथा सो उनका भार उठावताथा और एक पक्षीथा सो उनको जगावता था बहुरि अचानकही सिंहने आइकर वृषभको मारडाला तब उन्हों ने कहा कि इसी विषे भला होवेगा बहुरि कूकुरने पक्षीको मारडाला और वह कूकुरभी मरगया तबभी उन्होंने कहा कि इसी विषे भला होवेगा पर स्त्री उनकी रोकरके कहनेलगी कि तुम यह कैसावचन कहतेहो तब भी उन्होंने कहा कि इसी विषे कुशलहोगी सो जब दूसरा दिनहुआ तब क्या देखते है कि उनके निकट जो ग्रामथ सो सब ही चोरोंने लूटलिये और ग्रामवासियों को मारडाला तब उन्होंने अपनी स्त्री से कहा कि जब कूकुर और वृषभ हमारे घरविषे होते और रात्रिको बोलते तब निस्सन्देह शब्द सुनकर चोर हमारेनिकट आकर लूटलेजाते और प्राणभी न बचते ताते सर्व्वप्रकार भगवत् भला करता है पर कोई जान नहींसक्ता बहुरि ऐसे भी जान तू कि केते पुरुष इसप्रकार भी कहते हैं कि महाराजकी आज्ञा मानने का अर्थ यहहै कि महाराजके आगे प्रार्थना और याचनाभी न करे और पापकर्म को देखकर ग्लानि न करे काहेसे कि यहभी भगवत्की आज्ञाकरके होते हैं बहुरि जिस नगरमें पाप और क्लेश और दुख दुःखकी अधिकताहोवे तब उसका

[illegible]

इश्तहार रामायण आल्हा का ॥

देखहु ! देखहु ! यह देखहु अब, कीरति रघुपति परम उदार ॥

प्रकट हो कि इस यन्त्रालयाध्यक्ष ने सर्व्व भारतनिवासियों की रुचि आजकल जैसी आल्हा में देखी ऐसी किसी विषयमें नहीं फिरि वह कौन आल्हा कि जिसमें जौन जिसको मानिपरै तौनहीं सो बनायके गावै–जैसे कि लोग गाते हैं (भैंसि बियानी रे कनउजमों पड़वा गिरा महोबे जाय) अथवा (बनी रोसइया लखनिआल्हा के ब्याहिमाँ परी साठिमन हींग) ऐसेही सम्पूर्ण गाथा कि जो न किसी पुराण में लिखी न कोई देवताही का आराधन इसमें व्यर्थ समय व्यतीत करने के सिवाय और क्या अर्थ सिद्ध होसक्ताहै इन सर्व बातोंको अल्पबुद्धि भी थोड़ेही विचार से समझ सक्ते हैं और गाना तो वही है जिसमें धर्म, अर्थ, काम, मोक्षकी प्राप्ति हो और श्रेष्ठ से श्रेष्ठ देवता की आराधनाहो जैसे (कतहि खगेश रघुपति सम लेखौं । अस स्वभाव कहुँ सुनौं न देख्यौं) यह काकभुशुण्डिजी गरुड़जी से कहते हैं कि हे खगेश ! हम किस को श्रीरामचन्द्रजी के समान लेखाकरैं ऐसा स्वभाव तो हम किसी को न देखते हैं न सुनते हैं–क्योंकि जो लङ्का रावण को बड़ी कठिन तपस्यासे प्रसन्न हो श्रीशिवजी ने दी थी वह लङ्का सहमही में श्रीरामचन्द्रजी ने विभीषणजी को देदी—अथवा (उलटा नाम जपत जगजाना । बालमीकि भे ब्रह्म समाना) कि जिनने उलटे नाम के जापसे बाल्मीकिजी ब्रह्मके समान भये राम को उलटने से मरा होताहै—अथवा (बसन हीन नहिं सोह सुरारी । सब भूषण भूषित बरनारी) कि जैसे स्त्री को सम्पूर्ण जेवर पहनादियाजावे लेकिन वस्त्र न हों तो क्या उसकी शोभा होसक्ती इसीतरह सम्पूर्ण राग बिना ईश्वरके नाम व्यर्थ हैं जैसे (नैष्कर्म्यमप्यच्युतभाववर्जितं न शोभते ज्ञानमलं निरञ्जनम् ॥ कुतः पुनः शश्वदभद्रमीश्वरे न चार्पितंकर्मयदप्यकारणम्) ऐसेही अभिप्रायों को समझकर इस यन्त्रालयाध्यक्षने बहुतसा धन देकर वर्तमान कवियोंमें श्रेष्ठ कविवर प० चन्दीदीनजी से सातोकाण्ड रामायण का आल्हा ऐसी सरल भाषा के मनोहर पदों से बनवाया है कि जिसको बिना पढ़े लिखे भी मनुष्य अच्छीतरह से समझ सक्ते हैं और जिनको कि भाषा में कुछ भी ज्ञान है वे तो इसके सम्पूर्ण वचनों को समझ के राम भक्ताधिकारीही होजावेंगे क्योंकि इस में ज्ञान भक्ति, वैराग्य, शृंगार, युद्धादि जौन जहाँ है तौन तहाँ गान करन से उसके रूप को दर्शाही देते हैं क्योंकि सत्कवियों के काव्यका प्रभावही यह है–लङ्काकाण्ड के वीर वृत्तान्तों को सुनके कादरों के रोमाञ्च होजाताहै भुजा ओष्ठ फरकने लगते हैं वीरों की क्याही क्या इसीतरह रामवनगमन सुनने से कौन ऐसा पाषाण की मूर्ति है कि जिसके अश्रुओंकी धारा न चलनेलगे इसीतरह यह आल्हा रामायण बड़ीही विचित्र इस पुस्तक में बाल, अयोध्या, आरण्य, किष्किन्धा, सुन्दर, लङ्का और उत्तर सातोंकाण्ड इसमें मौजूद हैं और आदमी को कर्षापण से शीघ्रही मिलसक्ते हैं और कीमतभी बहुतही सस्ती रक्खीगई जिसमें गरीब अमीर सभी लोग इसके रसको पासके हैं लेकिन जो शीघ्रता न करेंगे उनको पहिली आवृत्ति की ऐसी रामायण आल्हा मिलना दुश्वार होगा क्योंकि थोड़ा छपवाया (रक्खा) है ॥

मनुस्मृति सटीक का विज्ञापनपत्र ॥

पण्डित गिरिरचन्द कृत मन्वर्थभास्कर भाषाटीका सहित–जिसमें प्रथम मनुजीका बनाया हुआ श्लोक उसके पीछे पदच्छेद फिर अन्वय तदनंतर भाषामें भावार्थ और तात्पर्य्यार्थ इनानर चारे प्रकारके टीकाओंसे इसप्रकार भूषित कियाहै कि जिससे केवल भाषामात्रके जाननेवाले भी अच्छी तरह समझसकें यह स्मृतियों में शिरोमणि ग्रन्थ है इसमें ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रों के धर्म कर्म और गृहस्थ, ब्रह्मचर्य, वानप्रस्थ और संन्यासी के भी यथोचित धर्म और राजाओं के यथा योग्य प्रजापालनादि नियम विस्तारपूर्वक वर्णित हैं ॥

इश्तहार सरित्सागर भाषा ॥

हिन्दी भाषा के परमहितैषी भार्गववंशावतंस मुंशीनवलकिशोर (सी, आई, ई) ने विद्वानों के मुखसे इस कथा सरित्सागर नाम ग्रन्थरत्नकी प्रशंसा तथा सदुपदेश भरी अत्यन्त मनोहरकथा ओंको सुनकर अपनी मातृभाषा हिन्दी का गौरवबढ़ाने के लिये हमलोगों को यथोचित धन देकर इसका अनुवाद करवाया इस अनुवादमें हमलोगोंने यथाशक्ति यह उद्योग किया है कि श्लोकके किसी शब्दका अर्थ न रहने पावे और यथासम्भव भाषाका ढङ्गभी न बिगड़ने पावे इसमें जहां जहां नीतिके श्लोक आगये हैं वह भी अनुवाद सहित कोष्ठक में लिख दिये गये हैं—

हमलोग आशा करतेहैं कि जैसे इस ग्रन्थकी कथाओं व आशयोंको लेकर संस्कृत के कवियों ने नागानन्दकादम्बरी हितोपदेश मुद्राराक्षस तथा वेताल त्वविंशतिका आदि अनेक ग्रंथ बनाये हैं इसीप्रकार इस अनुवाद को देखकर हिन्दी भाषाके सुलेखकगण भी इसकी कथाओं के आशयों को लेकर अनेक नवीन ग्रन्थ बनाके अपनी मातृभाषा के गौरवको बढ़ावेंगे हमलोगोंको यह भी दृढ़ विश्वासहै कि यदि इस यन्त्रालयाधिपतिकी आज्ञानुसार इस ग्रन्थकी छोटी छोटी कथाओं को लेकर दो चार छोटे २ ग्रन्थ बनवाकर पाठशालाओं के दशम नवम अष्टम तथा सप्तम आदि वर्गों के विद्यार्थियोंको पढ़ाने के लिये नियत किये जावें तो उनको बिना प्रयासकेही सदुपदेशका लाभ होगा और इससमय यह ग्रन्थ विशेष शुद्धताके साथ उम्दा हरूफ में छपाहुआ तैयार है मूल्य बहुतही न्यूनहै ग्राहकलोग विलम्ब करने में पछतावेंगे ॥

मैनेजर नवलकिशोर प्रेस
लखनऊ हजरतगंज



भाषा विष्णुपुराण ॥

जिसमें

जगदुत्पत्ति स्थितिपालन ध्रुव पृथु आदि राजाओंकी कथा भू-
गोल खगोलवर्णन नरक स्वर्ग बखान धर्मशास्त्र मन्वन्तर कथा
सूर्य्य सोमवंशी राजाओं का कथन श्रीकृष्णचन्द्र चरित्र भुक्ति
मुक्ति साधन भक्ति भजन रीति वर्णाश्रम धर्म सर्ग उपसर्ग
मन्वन्तर वंशानुचरित देव, दनुज, गन्धर्व, सर्प, पिशाच,
यक्ष, सिद्ध, विद्याधरचरित्र और धर्मादि अनेक अद्भुत
प्रकार की कथा इतिहास पूजन क्रम वर्णित हैं

स्वस्तिश्री सद्गुणग्राहक गुणिजनसुखदायक श्रीयुतमुंशी नवल
किशोर साहब सी, आई, ई, की आज्ञानुसार
नव्याबगंज प्रदेशान्तर्गत धनारलीग्रामनिवासि पंडित महेशदत्त जी
ने संस्कृत विष्णुपुराण से भाषा में रचना किया
श्रीमद्भगवदुपासकों के अभिप्राय और प्रेमनिमित्तार्थ

चौथीबार

लखनऊ

[illegible]
[illegible]
[illegible]

इति ॥

भूमिका ॥

विष्णुपुराण भाषा ॥

दोहा ॥

अतिज्ञानी ध्यानी सकल गुणखानी वरवानि ॥ परम सुशील सशी-लमत शील सुलील बखानि ॥ १ ॥ सज्जन मनरञ्जन दुरितगञ्जन भञ्जन पाप ॥ शुभअञ्जन मल तिमिरहित विहित सदा शुभ लाप ॥ २ ॥ स्वस्ति श्रीशुभगुणसदन मुशी नवलकिशोर ॥ दान मान बुध जनन को करत सदा नहिं थोर ॥ ३ ॥ तिन निजमति उदगारसों स-कल जननके हेत ॥ संस्कृत विष्णुपुराण को भाषाकरण सुचेत ॥ ४ ॥ जामो अबतक तिलकहू तासु संस्कृतहि केर ॥ मिलत रेह भाषा नहीं यासों होनकरेर ॥ ५ ॥ पर जो परहित चित धरत तासु मनोरथ पूर ॥ करत सदा हरि करि कृपा यासों नहिं कछुदूर ॥ ६ ॥ सुकुल वहोरण राम सुत धीरधीरमणि नाम ॥ तासु तनयवर इन्द्रमणि सबविधि पूरण काम ॥ ७ ॥ तासुत श्री विश्राम युत राम तासु सुत नीक ॥ रजायन्द सुखकन्द तिन अवधराम सुत ठीक ॥ ८ ॥

दोवैछन्द ॥

सुकुल महेशदत्त सुत ताके बारहवङ्कि प्रदेशा ॥ वहिशात्वय जन-पद गोमति तट धनावली कृतवेशा ॥ तिनसों शुभ भाषा करवाई मुशी जीव प्रवीने ॥ लखत जाहि सज्जन जन तनमन ह्वैहैं सबसुखभीने ॥ ९ ॥ प्रतिश्लोक प्रतिचरण बहुरि प्रतिपद भाषान्तर कीनी ॥ तदपि सुजन जन निजमन देके लखिहैं दृष्टि प्रवीनी ॥ जहँ कहुँ भूलहोय सो क्षमिहैं पढ़िहैं शुद्धमनेहू ॥ जासों भ्रान्तिधर्म्म पुरुषनको भूलत सत्र न सँदेहू ॥ १० ॥

दोहा ॥

यहि श्रीविष्णुपुराणमें छा हैं सुन्दर अंश ॥ अतिपवित्र सुचरित्र वर हरिगुणकेरि प्रशंश ॥ ११ ॥ बाइस पहिलेअंशमें सोरह दूजे माहि ॥ अष्टादशक तृतीयमहँ चौथे चौबिसआहिं ॥ १२ ॥ पचम

कार ॥ वेणा[illegible]
णि देश सरिता जलधि पर्व्वत जोनि प्रमि[illegible]
बहुरि खगोल अविद्द ॥ २३ ॥ सुमति भरत सुखनृपनकी कथा[illegible]
बहुभांति ॥ वेदभेदशाखाकथन सुनतदहतअघपांति ॥ २४ ॥ जग
सज्जनपालनहरण करणविष्णुकीगाथ ॥ वर्णितविष्णुपुराण में ज्यहि
सुनि होत सनाथ ॥ २५ ॥ जो सुनि हैं गुनिहैंहिये पढिहैं सहित वि-
धान ॥ यहां सकल सुखभोगि हरिपुर लहिहैं अवसान ॥ २६ ॥

हरिगीतिका ॥

ऋतुरामनवनिधु १९३६ शब्द भादों सगुरु वामन द्वादशी ॥
नवलखनमुमहि १८७९ खृष्टमत तिथि अगस्त [illegible] । प्रा-
रम्भविष्णुपुराण भाषान्तरकरण कियउ [illegible] सुमहेश [illegible] श
नवलकिशोर आज्ञापायके ॥ २७ ॥

भूमिका ॥

विष्णुपुराण भाषा ॥

दोहा ॥

अतिज्ञानी ध्यानी सकल गुणखानी बरवानि ॥ परम सुशील सदी-लमत कील सुलील बखानि ॥ १ ॥ सज्जन मनरञ्जन दुरितगञ्जन भञ्जन पाप ॥ शुभअञ्जन मल तिमिररहित विहित सदा शुभ लाप ॥ २ ॥ स्वस्ति श्रीशुभगुणसदन मुंशी नवलकिशोर ॥ दान मान बुध जनन को करत सदा नहिं थोर ॥ ३ ॥ तिन निजमति उद्गारसों सकल जननके हेत ॥ संस्कृत विष्णुपुराण को भाषाकरण सुचेत ॥ ४ ॥ जासो अबतक तिलकहू तासु संस्कृतहि केर ॥ मिलत रहे भाषा नहीं यासों होन करेर ॥ ५ ॥ परजो परहित चित धरत तासु मनोरथ पूर ॥ करत सदा हरि करि कृपा यासों नहिं कछुदूर ॥ ६ ॥ सुकुल बहोरण राम सुत धीरधीरमणि नाम ॥ तासु तनयवर इन्द्रमणि सबविधि पूरण काम ॥ ७ ॥ तासुत श्री विश्राम युत राम तास सन [illegible] ॥

रजावन्द सुखकन्द तिन [illegible] शर आय ॥ २ ॥

[illegible] अध्यायमहँ सबपुराणप्रस्तार ॥

जिमि मैत्रेय पराशरहु प्रश्नोत्तर श्रुति गाय ॥ ३ ॥

हे पुण्डरीकाक्ष ! आपकी जयहोय व हे विश्वभावन हृषीकेश महापुरुष सब से पूर्वज ! तुम्हारे नमस्कार है जो विष्णु मत् अक्षर ब्रह्म ईश्वर पुरुष अपने गुणोंकी तरङ्गों से इस संसार की सृष्टि पालना व नाश करते और प्रधानद्वारा बुद्ध्यादिकों को उत्पन्न करते हैं सो हमलोगों को गति भुक्ति मुक्ति दे विश्व के ईश्वर विष्णु व ब्रह्मादिकों व गुरुके प्रणाम के वेदसम्मित पुराण कहते हैं इतिहास पुराणोंके जाननेवाले वेदवेदाङ्ग के पारगन्ता धर्मशास्त्रादिकों के जाननेहारे वशिष्ठ मुनि के पौत्र मुनिवर्गों में उत्तम सुखसे बैठेहुये पराशर ऋषिसे नमस्कारपूर्वक मैत्रेय मुनि बोले हे गुरुजी ! आप से हमने सम्पूर्ण वेद सब धर्मशास्त्र वेदाङ्गादि भी यथाक्रम पढ़े व तुम्हारेही प्रसाद से इन में श्रम भी किया व जो हमारे वैरीभी कोई हैं उन्होंभी सब शास्त्र पढ़ानेंगे कुछ छिपावेंगे नहीं इससे हे धर्मज्ञ ! यह जगत् जैसे हुआ व जैसे होगा व जिस

समय यह चराचरहै जहां से है व जहां लीन होगा जहां लीनहुआथा व जितने प्राणी इसमें हैं सबकी व देवादि समुद्र पर्वतों की उत्पत्ति पृथ्वी सूर्यादिकों के टिकने के स्थान व इन सबोंका प्रमाण व देवादिकों को वंश मनु मन्वन्तर कल्प विकल्प चारों युगोंकी उलटापलटी कल्पान्त का स्वरूप सब युगों का अन्त देवर्षि व राजाओं के चरित्र व्यासकृत वेदशाखाओं का अलग होना ब्राह्मणादि वर्णों व आश्रमों के धर्म ये सब बातें आप से सुनाचाहते हैं हमारे ऊपर प्रसन्न हूजिये जिससे यह सब तुम्हारे अनुग्रह से हम जानें यह सुन पराशर मुनि बोले कि हे धर्मज्ञ मैत्रेय ! अच्छा किया जो हमारे पिता के पिता वशिष्ठजीने पूर्वही हमसे कहाथा उसका स्मरण कराया हमने सुनाथा कि विश्वामित्र के कहने से किसी राक्षस ने हमारे पिता को खा लिया था इस से हमारे बड़ा क्रोधहुआ तो हमने राक्षसों के विनाश के लिये यज्ञका आरम्भकिया जिसमें सैकरों निशाचर भस्म होगये होते २ जब सम्पूर्ण राक्षस नाशहुये तो हमारे पितामह वशिष्ठजीने आय हमसे कहा कि हे तात ! इस अत्यन्तकोप को शांतकरो व त्यागो क्योंकि राक्षसों ने तुम्हारे पिता को नहीं मारा उनका कुछ भी अपराध नहीं है तुम्हारेपिता का उसीप्रकार मरणथा जिससे कि पुरुष सदा अपना कियाहुआही भोगताहै इस से हे तात ! कौन किसको मारता है ऐसा क्रोध मूर्खोंकोही होता है न कि ज्ञानवानों को हे वत्स ! बड़े २ क्लेश कर के मनुष्य जो यश तपस्यादि इकट्ठा करते हैं उनके नाशनेवाला क्रोधही है यह क्रोध स्वर्ग व मोक्षके निषेधका कारणहै इसीसे महर्षिलोग इसे त्यागतेहैं तिससे हे तात ! इसके वश तुम न होवो और बेजके अपराधी राक्षसों के जारने से कुछ नहीं यह यज्ञ बन्दहोवे साधुलोगों का सार क्षमाही है पराशरजी बोले कि इस प्रकार जब हमारे पितामहने शिक्षादी तब तिनके वाक्यकी गुरुतासे हमने यज्ञ करना बन्द करदिया वशिष्ठजी बहुत प्रसन्नहुये उसीसमय ब्रह्माजीके पुत्र पुलस्त्यजी वहां आये और हमारे पितामहने अर्घ्यपाद्यासनादि दिया उसे अंगीकारकर हमसे बोले कि जिससे इस बड़े वैरमें इन परमगुरु वशिष्ठजीकी आज्ञासे तुमने क्षमाकी तिससे तुम सब शास्त्रों के वेत्ता होगे व जिससे कि क्रोधयुक्त भी तुम थे पर हमारी सन्तति राक्षसों का छेदन नहीं किया इससे हे महाभाग ! और भी वरदान तुमको देते हैं हे वत्स !

आप पुराण संहिताके कर्त्ता होवो व देवताओं के परमार्थ को यथाविधि जानो व हमारे प्रसाद से प्रवृत्त निवृत्त दोनों कर्मों में सन्देहरहित विमल तुम्हारी गतिहो यहसुन हमारे पितामह वशिष्ठजी ने भी आशीर्वाद दिया कि जो २ पुलस्त्यजी ने कहाहै सब कुछ सत्यहोवेगा सो इसप्रकार वशिष्ठजी व पुलस्त्यजी ने जो पूर्वही कहा था तुम्हारेप्रश्न से सब हमको स्मरण हो आया॥

चौ० सो हम तुमसनसकलवखानत। जासों पूछत अरु सुख मानत॥
शुभ पुराण संहिता बनाई। सुनहु यथाविधिसों चितलाई॥ १॥
हरिसों होत सकल संसारा। जा देखत यह पसरु पसारा॥
तिथि सयम करता जग केरो। स्वइ हरि आनहिं जनि हिय हेरो॥ २॥
तासों बाहर तनिक न येहू। देखहु सुनहु तजहु संदेहू॥
जो जब चहत करत तब सोई। नयनन देखहु कतहुँ न गोई॥ ३॥

दूसरा अध्याय॥

दो० कहत द्वितीयाध्याय महँ प्रश्न कथन हरि नाम॥
क्रमपुराण कर सृष्टि पुनि सब महदादि न खाम॥ १॥

पराशरमुनि बोले कि अविकार शुद्ध नित्य परमात्मा सदैकरूप विष्णु सर्व जिष्णु हिरण्यगर्भ हरि शंकर वासुदेव तार सृष्टि स्थिति पालनकारी एकानेक स्वरूप स्थूल सूक्ष्मात्मा अव्यक्तव्यक्त रूप विष्णु मुक्ति हेतु संसारकी सृष्टि स्थिति विनाश करनेवाले जगन्मय जगन्मूलभूत विष्णु परमात्मा विश्वके आधारभूत अतिसूक्ष्मसे सूक्ष्म अच्युत पुरुषोत्तम ज्ञानस्वरूप अत्यन्त निर्मल ज्ञेय स्वरूप विश्वके वेष्टन व ग्रसन करनेवाले व सृष्टिस्थिति के स्वामी जगत्के ईश अज अक्षर अव्यय ऐसे श्रीविष्णुजी के प्रणाम करके जिस प्रकार दक्षादि मुनियों के पूछने पै ब्रह्माजीने कहाहै व उन मुनियोंने नर्मदा नदीके तट पर पुरुकुत्स राजासे कहा व राजाने सारस्वत से व सारस्वत ने हमसे सो सब हम तुम से कहेंगे वह ईश्वर परोंसे पर परमात्मा परमपुरुष आत्मसंस्थित रूप वर्ण निर्देश और विशेषण रहित अपक्षय विनाश परिणाम वृद्धि जन्मादि वर्जित सदा व सर्वत्र विद्यमान व यह सब निरमेंही रहता है उसीको विद्वान्लोग वासुदेव कहते हैं व वही ब्रह्म नित्य अज अक्षय अव्यय एक स्वरूप निर्मल है वही व्यक्ताव्यक्त स्वरूप व

कालरूप पुरुषरूप सर्वत्र स्थित है हे द्विजश्रेष्ठ! ब्रह्मका प्रथमरूप पुरुष है और व्यक्तअव्यक्त दो और उसीके रूपहैं तिसके पीछे काल एकरूप है और जो प्रधान पुरुष व्यक्त कालादिकों से पृथक् सिद्ध रूप है उसीको पण्डितलोग श्रीविष्णु का परमपद कहते हैं प्रधान पुरुष व्यक्त काल ये सब विष्णुहीके रूप हैं तिनमें प्रधान से सृष्टि होती है पुरुष उसको स्थापित रखना व व्यक्त महत्त्वादि व्यक्तियों की उत्पत्ति का कारण है व काल इस सृष्टिके नाशका हेतु है व्यक्तपुरुष काल अव्यक्त ये सब नाम विष्णुही के हैं जैसे बालक लोग राजा प्रजा आदिकी क्रीडा करते हैं वैसेही कार्य कार्य के निमित्त श्रीविष्णु जी इन नामोंका धारण करते हैं अब इनकी चेष्टा बताते हैं श्रवण कीजिये जो अव्यक्त कहाताहै ऋषिलोग उसीको प्रधान कारण प्रकृति इन नामों से बखानते हैं वह प्रकृति अतीव सूक्ष्म व नित्य कार्य कारण शक्तियुक्तहै व अक्षय आधाररहित प्रमाणरहित जराहीन अचल शब्द स्पर्शादिरहित व इनके रूपादिकों से बाहर त्रिगुण संसारको उत्पत्ति स्थान अनादि उत्पत्ति नाशरहितहै तिसीसे प्रथम यह संसार हुआ था और अब सबमें व्याप्त है व प्रलयके पीछेभी वही रहेगी इसीको निरन्तर वेदवादी विद्वान् प्रधान कहते हैं प्रलयके समय दिन रात्रि आकाश भूमि चन्द्र सूर्य इत्यादि कुछभी न था केवल एक ब्रह्मप्रधान पुरुष और काल येही थे परम निरुपाधि श्रीविष्णु से प्रधान व पुरुष उत्पन्न हुये और फिर तिसी विष्णु के स्वरूप से काल उत्पन्न हुआ जिससे कि सब रूपादि होतेहैं और जिससे कि बीतीहुई प्रलयमें पुरुष प्रकृतिमें स्थित तथा जिससे इस प्रलयका नाम प्राकृत प्रलय हुआ है मैत्रेय भगवान् काल अनादि है व इसका अन्त नहीं है जिससे सृष्टि पालन नाश ये प्रवाहरूप क्रमसे चले आते हैं व गुणों की समता में जब प्रधान व पुरुष अलगहोजाते हैं तो उनके एकत्र करने के लिये विष्णुका कालनाम रूप रहताहै फिर जब सृष्टिका समय आताहै तो परब्रह्म परमात्मा जगन्मय सर्वगामी सर्वभूतेश सर्वात्मा परमेश्वर श्रीहरि अपनी इच्छा से प्रकृति व पुरुष दोनों में प्रवेशकरके कालके द्वारा चैतन्य करते हैं जिसप्रकार गन्ध मनको सन्निधिमात्रसे क्षोभित करताहै तिसी भांति यह परमेश्वरभी प्रकृतिपुरुषको चैतन्यकरता है हे ब्रह्मन्! सोई परमेश्वर चलानेवाला है व पुरुषोत्तम चलनेवाला व वही परमेश्वर सकोच व विकाशमें प्रधाननामें भी

टिकाहै ब्रह्मादिकों के साथ विकार जो महत्तत्वादि व अणु जो जीव तिन का स्वरूपभी विष्णुही हैं व व्यक्तका स्वरूप भी क्योंकि वे सब ईश्वरों के ईश्वर हैं फिर जब गुणों की समता ईश्वरने देखी तब उससे गुण व्यंजन जो बुद्धि तिसकी उत्पत्ति हुई फिर प्रकृति से उत्पन्न जो बुद्धि वह सर्वत्र व्याप्त होगई सो राजसी सात्त्विकी तामसी के भेदसे तीन प्रकारकी है जैसे त्वचा से बीज घेरा हुआ रहता है तैसेही प्रधान तत्त्वसे महत्तत्त्व घेराहुआ उत्पन्नहोताहै व महत्तत्त्व से सात्त्विक राजस तामस तीनप्रकारका अहंकार उत्पन्नभया है हे महामुनि ! सो अहंकार पृथ्वी जलाग्नि वायु आकाश और इन्द्रिया इनके उत्पन्न होने का कारणहै व जैसे प्रधान से बुद्धि घेरी हुई है तैसेही बुद्धिसे अहंकार व अहंकार से मूर्तितन्मात्रा उत्पन्न हुई फिर शब्दतन्मात्रा से आकाश उत्पन्न हुआ जिसका गुण शब्द है व आकाश से स्पर्शमात्र उत्पन्नहुआ उससे बलवान् वायु हुआ जिसका गुण स्पर्श है फिर शब्दतन्मात्र जो आकाश वह स्पर्शमात्र जो वायु तिसमें व्याप्त हुआ फिर जब वायु चैतन्य हुआ रूपतन्मात्र सूर्यादिकों उसने उत्पन्न किया जिसका गुण रूप है व सूर्यसे रसतन्मात्र जो जल सो उत्पन्न हुआ वह जल रसाधारहै फिर जलसे गन्धतन्मात्रा पृथ्वीकी उत्पत्ति हुई जिसका गुण गन्ध हुआ इन सबकी मात्रा अविशेष हैं इसी से ये भी अविशेषहैं किन्तु न शान्त न घोर न मूढ़ ये गुण इनमें नहीं हैं व पृथ्वी जलाग्नि वायु आकाश व इनकी मात्रा गन्ध रस रूप स्पर्श शब्द व कर्ण त्वचा नेत्र जिह्वा नासिका वाणी हाथ चरण गुद शिश्न ये इन्द्रिया व क्रमसे इनके अधिष्ठ दृन्देवता दिशा वायु सूर्य वरुण अश्विनीकुमार अग्नि इन्द्र विष्णु मित्र प्रजापतिहैं व ग्यारहवीं इन्द्रिय मनहै त्वचा नयन नासिका जिह्वा कान ये ५ शब्दादिक पांचों के ग्रहण करने के लियेहैं बुद्धि भी इन्हीं के संग है व गुन्हे शिश्न हाथ पैर वाणी व पांच हैं इनके कर्म क्रमसे ये हैं पुरीष व मूत्र त्याग शिल्पकर्म चलना बोलना व आकाश वायु अग्नि जल पृथिवी इन के क्रमसे शब्द स्पर्श रूप रस गन्ध ये ५ गुण हैं ये शान्त घोर मूढ़ व विशेषहैं यद्यपि ये सब नानाप्रकार के पराक्रम से युक्त थे पर जबतक अलग २ रहे बिना एकत्र हुये प्रजाओं की सृष्टि न करसके तब सब एकत्र हो एक दूसरे की सहायता से पुरुषके व प्रकृति की दया से बुद्धयादिकों ने अण्डकी उत्पत्ति की सो जलके बुद्बुदके समान धीरे धीरे बढ़ा व गोलाकार

वन वही वृद्धिको प्राप्त हुआ व जलमें शयन करनेलगा वही हिरण्यगर्भ थी विष्णुजीकी आकृति हुई वह आकृति अव्यक्तस्वरूप थी व व्यक्तरूप जगत्पति श्रीविष्णुजी ब्रह्मस्वरूप उसमें पैठे कुछ उत्पन्न नहीं हुये फिर उसी से मेरुपर्वत के सदृश गर्भ लपेटने के लिये चर्म जरायु पर्वत वृक्ष गर्भ पा जल समुद्र द्वीप द्वीपान्तर सूर्य्य चन्द्र नक्षत्रगण देवता दैत्य मनुष्य सब उसी अण्डाकृति से उत्पन्न हुये फिर उस अण्ड कटाहके बाहर ७ आवरण हुये यथा पृथिव्यावरण से २५००००००० योजनपर उससे १० गुणा जलावरण व जलावरण में इतनी ही दूर दश गुणाही अग्न्यावरण उसमे उतनीही दूर पवनावरण फिर वैसे ही आकाशावरण फिर तामसावरण तदनन्तर अहङ्कारावरण यही ७ आवरण हैं जैसे नारियलके फलमें बाहर छिलकेहोते बीज सबके मध्यमें होता है वैसेही इन आवरणों के मध्यमें अण्ड रहताहै व जब ऐसा अण्डकटाह होजाता है तो श्री हरि रजोगुणी ब्रह्माहो उसमें पैठ इस संसार की सृष्टि करते हैं वह सृष्टि जब तक कल्प विकल्पों की कल्पना रहेगी तबतक चलीजावेगी व तबतक सत्त्वगुणी श्रीविष्णुजी पालन करते रहेंगे हे मैत्रेय! फिर कल्पांत में तमोगुणी रुद्ररूपहो वही जनार्दन भगवान् सब प्राणियोंको नाश करते हैं उससमय बड़ा भयानक रूप धारण करते हैं॥

चौ० सबहि विनाशि प्रलयकरि नीके। जलमय जगत करत विधि ठीके॥
शेषनाग पर सोवन लागत। रमानिवास शयन सुख पागत॥ १॥
पुनि जागत धरि विधितनु स्वामी। करत सृष्टि सब पूरण कामी॥
उपजावत पालत पुनि नाशत। विधि हरि हर संज्ञक सोइ भासत॥ २॥
सोइस्रष्टा निरंजन पुनि पालन। पाल्य स्वई स्वइ सबकहँ घालन॥
गुरु जनार्दन तीनिउँ नामा। करत यथाविधि धरि त्रय नामा॥ ३॥
क्षिति जल पावक पवन अकाशा। इन्द्रिय अन्तःकरण प्रकाशा॥
पुरुष नाम यह जगत अनूपा। तासु कृपासों होत स्वरूपा॥ ४॥
विश्वरूप अव्यय सब स्वामी। स्वइ हरि आन नहीं बहुनामी॥
यासों सृष्टि आदि सब केरे। करन हार हरि अस श्रुति टेरे॥ ५॥

व वही भगवान् हरि सृष्टिकर्त्ता व सृज्यहैं वही पालक वही पाल्य वही हर्ता वही हार्य्य केवल ब्रह्मा विष्णु शिव ये संज्ञायें जिन्हें वस्तुत सबश्रेष्ठ सर्वेश्वर सर्वदर्शी सर्वकर्त्ता भर्त्ता वही हैं॥

तीसरा अध्याय ॥

दो० भगत तृतीयाध्याय महँ विष्णु सृष्टि प्रकारि।
सकल कालगति अरु प्रलय सुनहु तजहु मदादि ॥

इतनी सृष्टिकी व्यवस्थासुन मैत्रेयजी पराशर मुनिसे बोले कि हे मुनिश्रेष्ठ! निर्गुण अप्रमेय शुद्ध अमलात्मा ब्रह्म सृष्टि पालन संहार कैसे करसक्ता है क्योंकि ये विना कर चरणादिकों के व्यापार के नहीं होसक्ते व निर्गुण के इनका अभाव है यह सुन पराशर मुनिबोले हे मैत्रेय! लोकमें सब मणि मन्त्रादि भावों की शक्तियाँ अचिन्त्य ज्ञानगोचर होतीहैं इसीसे सृष्टिआदि भाव शक्तियाँ ब्रह्माके भी होतीहैं जैसे कि अग्निमें दाहक शक्ति होतीहै सो जिसप्रकार सृष्टि के विषय में भगवान् नारायण ब्रह्मा लोककेपितामह उत्पन्नहो सृष्टि करतेहैं सुनिये ब्रह्माजीके वर्षोंसे ब्रह्माकी आयुर्दाय १०० वर्षकी होतीहै व उस ब्रह्माकी आयु का पर नामहै व तिसके आधेका परार्द्ध श्रीविष्णुका कालस्वरूप जो हमने तुमसे कहाहै तिसीसे ब्रह्माकी भी आयुहोती है व अन्य चराचर पृथ्वी पर्वत सागरादि सबकी भी उसीसे होतीहै हे मुनिसत्तम! १५ बार पलक मारने में जो समय बीतताहै उसे काष्ठा कहतेहैं बत्तीस काष्ठाको कला व ३० कलाको मुहूर्त कहते व ३० मुहूर्त की मनुष्योंकी दिनरात्रि होतीहै व ३० दिनरात्रिका महीना उसमें कृष्णशुक्ल के भेदसे दोपक्ष होते ६ महीना का अयन होता वर्षमें दो अयन होते एक उत्तरायण दूसरा दक्षिणायन दक्षिणायन देवताओं की रात्रि होती व उत्तरायण दिन इस प्रकारके ३६० दिन रात्रियों का देवोंका वर्ष होताहै व देवताओंके १२००० वर्षों में सत्ययुग त्रेता द्वापर कलियुग चारोंयुग बीततेहैं इन देवताओंके १२००० सहस्र वर्षोंमें मनुष्योंके ४३२०००० वर्षहुये इनमें देवताओं के ४८०० वर्ष अर्थात् मनुष्यों के १७२८००० वर्ष सत्ययुग व देवोंके ३६०० वर्ष अर्थात् मनुष्यों के १२९६००० वर्ष त्रेता व सुरोंके २४०० वर्ष अर्थात् मनुष्यों के ८६४००० वर्ष द्वापर रहताहै व देवोंके १२०० वर्ष अर्थात् मानवोंके ४३२००० वर्ष कलियुग रहता है परन्तु इन युगों में पूर्व्वापर सन्ध्याओंके भी वर्ष मिलेहुए हैं यथा सत्ययुगमें देवोंके ८०० वर्ष अर्थात् मनुष्यों के २८८००० वर्ष व त्रेतामें देवोंके ६०० वर्ष अर्थात् मनुष्योंके २१६००० वर्ष व द्वापरमें देवों

के ४०० वर्ष अर्थात् मनुजों के १४४००० वर्ष व कलियुग में देवोंके २०० वर्ष अर्थात् मानुषों के ७२००० वर्ष सन्ध्या रहती है व सत्ययुग त्रेता द्वापर कलियुग ये जब हज़ार बार बीत जाते हैं तो ब्रह्मा का एकदिन होताहै ब्रह्मा के दिन में १४ मनु बीतते हैं तिनका प्रमाण कहते हैं सुनो एकमन्वन्तर में ७ ऋषि देवता इन्द्र मनु मनुपुत्र राजा ये सब उत्पन्नहोते व जब फिर नया मन्वन्तर होताहै तब नये ये सब होते हैं व एक मनुमें ७१ चतुर्युगी बीततीहैं इन ७१ चौयुगियोंमें मनुष्योंके ३०६७२०००० वर्ष होवे हैं इनके १४ गुनेका ४२९४०८०००० ब्रह्मा का एकदिनहोता है और इतनेहीकी रात्रि इतना समय बीतनेपर ब्रह्माका नित्यप्रलय होताहै तब भूर्भुव आदि लोकोंका भी नाश होजाता महर्लोकके निवासी मारे तापके जनलोक को चले जाते हैं व त्रिलोकी एकार्णव होजाती है तब भी ब्रह्माजी नारायण स्वरूप हो शेषनागको शय्या बनाय शयन करने लगते हैं जब उतनेही वर्ष शयन करते रहतेहैं तो जनलोक निवासी योगी लोग चिन्तना करते हैं तभी जाग फिर ब्रह्मा सृष्टि करनेलगते हैं ॥

चौ० यहिविधि वर्षशतक जबजाहीं। विधि आयुष सम होवत आहीं ॥
एक परार्द्ध सकल भव केरो। बीत्यहु सुखयुत वर्ष घनेरो ॥ १ ॥
तासु अन्तमो कल्प महाना। जाहि पाद्म अस करत बखाना ॥
बहुरि द्वितीय परार्द्ध सुहावन। अब लाग्यहु सब भाति सुहावन ॥ २ ॥
है वाराह कल्प यहि नामू। यहि परार्द्ध महँ प्रथम ललामू ॥
तुमसन विप्र सृष्टिकी गाथा। कमि वरणी सुनि होहु सनाथा ॥ ३ ॥

चौथा अध्याय ॥

दो० कहत चतुर्थोध्याय महँ श्री वराह अवतार ॥
धरणि रसातलगम विनय लोक विभाग प्रचार ॥ १ ॥

इतनी कथा सुन मैत्रेयजी पराशरमुनिसे बोले कि हे महामुनि ! नारायण नामक ब्रह्माभगवान् ने इस वाराहकल्पकी आदि में जैसे सृष्टि की रचना कीहो कृपापूर्वक कहिये पराशर मुनी बोले जिसप्रकार नारायण स्वरूप प्रजापतियों के पति ब्रह्माजी ने प्रजाओंको उत्पन्नकिया है सो हमसे सुनो जब पाद्मकल्प के पीछे नारायणस्वरूप सत्त्वरूप ब्रह्मा नारायणमूर्ति सब से श्रेष्ठ अचिन्त्य

महिमा श्रेष्ठोंके भी प्रभु ब्रह्मस्वरूपी अनादि सब चराचरके जन्मस्थान उन्होंने त्रैलोक्य चराचर रहित देखा ऋषि लोग नारायण इस शब्दका यों अर्थ करते हैं कि नार जलको कहते हैं व जल पुराण पुरुष भगवान् का रूपहै तिस नार कहे जल में जिसका अयन अर्थात् स्थानहो उसे नारायण कहते हैं जब तिन्हीं नारायण स्वरूपी ब्रह्माने जाना कि प्रलयके पीछे जलमय संसार होगयाहै पृथ्वी भी डूबगई है बस उसके ऊपरलाने के लिये अनुमान किया व जैसे अन्यकल्पों में मत्स्यादि रूप धारण किये थे वैसेही इस कल्पमें श्रीवाराहजीका अवतार हुआ जो अवतार वेद यज्ञमय सम्पूर्ण जगत्की स्थिति के लिये प्राप्त स्थिरात्मा सर्वोत्तम प्रजापति ऐसे भगवान् शूकरजीका अवतार लेतेही जनलोकनिवासी सिद्धोंने स्तुतिकी व जलमें प्रवेश करगये वहां जाते२ पातालमें पहुँचे पृथ्वी भी वहीं थी उसनेजानाकि साक्षात् पुराण पुरुष परमेश्वर आये हैं इससे स्तुति करने लगी पृथ्वी बोली सर्वभूत शङ्ख चक्र गदा धारण करनेवाले भगवान् तुम्हारे नमस्कारहै हमको इस स्थानसे लेचलिये क्योंकि पूर्वही हम तुम्हीं से उत्पन्न हुई थीं व मैं तुम्हाराही स्वरूपहूं कुछहमीं नहीं आकाश अग्नि आदि सब तत्त्व आपही से उत्पन्नहुये हैं व अन्य भी चराचर आपही से पैदाहुये हैं हे परमात्मन् भूतात्मन् पुरुषात्मन् प्रधानरूप कालरूप ! आपको नमस्कारहै आप ब्रह्मा विष्णु रुद्रका रूपधर इस संसारकी उत्पत्ति पालन व नाश करतेहो इस संसारको अन्तमें नाशकरके जलमें शेषके कोरामें शिर धरके शयन कर रहतेहो तुम्हारे नमस्कार है तुम्हारा जो परमोत्कृष्ट रूप है उसे कोई नहीं जानता अवतारों में जो जो रूपधरतेहो देवगण उन्हींकी स्तुति करते हैं हे परब्रह्म ! आपकी आराधना से मुक्तिचाहनेवाले लोग मोक्षको पहुंचे इससे तुम्हारी आराधना बिना कौन मोक्षपावेगा जो रूप मनसे ग्रहण करने के योग्य जो नेत्रों से देखने के लायक व जो बुद्धिके पहुंचने के योग्यहै वह सब आपहीकारूप है मैं तन्मय हूं व तुम्हीं मेरे रहने के स्थानहो व तुम्हीं मेरे उत्पन्न करनेवालेहो मैं तुम्हारे शरणागतहूं व इसी से मेरा माधवीनाम लोकमें कहाजाताहै हे सबके ज्ञानमय ! हे नाश रहित स्थूलस्वरूप ! हे अनन्ताव्यय ! हे व्यक्तरूपप्रभु ! आपकी जयहो हे परा परात्मन् ! हे विश्वात्मन् ! हे यज्ञपति ! हे पापरहित ! तुम्हारी जय है यज्ञ वषट्कार ओंकार व तीनोंअग्नि तुम्हींहो चारोंवेद वेदोंकेअङ्ग यज्ञपुरुष सूर्य ॥

ग्रह तारागण सम्पूर्ण अश्विन्यादि नक्षत्र मूर्त्तिमान् अमूर्त्तिमान् दृश्य अदृश्य हे पुरुषोत्तम! जो कुछ हमने कहा और जो नहीं कहा सब कुछ तुम्हींहो तुम्हारे वारंवार नमस्कारहै इसप्रकार भगवान् वाराह जीकी जब पृथ्वीने स्तुति की सामवेद के स्वरके समान शब्द से घर्घराकर गर्जे व तदनन्तर अपने दांतों पृथ्वीकोधर कमलनयन श्रीवाराह जी रसातलसे निकले जैसे कि नीलपर्वत रसातल से निकले व श्रीभगवान् वाराहजी के मुखारविन्द से जो पवन निकली उसके लगने से प्रलय समुद्र का जल उछला व जनलोक में टिकेहुये महा देदीप्यमान सनन्दनादि मुनियोंको प्रक्षालित किया व महीको ले वराहजी जब जलसे निकले तो उनके वेदमय शरीर की सेना रोमसे उठेहुये जलसे भीगेहुये मुनियों की व उनके खुरोंसे खुदेहुये रसातल में जो जल उछलता था उसमें प्रवेश करगया व जनलोक में जो सिद्धलोग बसते थे वे वराहजी के श्वास से प्रेरित चारोंओर तितर बितरहोगये तब जनलोक निवासी सनन्दनादि योगी सन्तुष्ट व प्रणतकन्धर हो स्तुति करनेलगे। हे ईश्वरों के ईश! हे केशव! हे प्रभु! हे शङ्ख चक्र गदा खड्गधर! इससंसारकी उत्पत्ति पालन व नाश करने वाले तुम्हीं हो व परमपद तुम्हींहो हे प्रभुजी! यज्ञपुरुष तुम्हीं हो तुम्हारे पावोंमें चारोंवेदहैं व यज्ञस्तम्भवत् आपके दांतहैं यज्ञ व अन्य बहुत यज्ञनामवाले आपके मुखमें रहती हैं आपकी जिह्वाही अग्निहै तुम्हारे रोमही कुश हैं हे महात्मन्! आपके नेत्रही रात्रि दिनहैं व सबका आश्रयभूत ब्रह्मपद आप का शिरहै वैष्णव शैवादि सूक्त तुम्हारे शरीर के रोमहैं सब हवि आपकी नासिका है सुवन सुवाहै सामवेद तुल्यस्वर धीर नादयुक्त यज्ञशाला का पूर्वभाग तुम्हारा कायहै सम्पूर्ण यज्ञ तुम्हारे अङ्गोंके जोड़हैं श्रौत स्मार्त सब धर्म तुम्हारे कानहैं हे सनातनात्मन्! हे भगवन्! प्रसन्न हूजिये हे वेद व वेदपाद के स्थापन के स्थान आपको इस संसार के अन्त पालन उत्पत्ति करनेवाले हम जानते हैं व नाश रहित विश्वमूर्त्ति तुम्हींहो व चराचरकेनाथ परमेश्वर प्रसन्न हूजिये व जैसे जल में मिलेहुये गजेन्द्र दोनों लपटाहुआ कमलिनीपत्र शोभित होताहै वैसेही यह सब भूमण्डल आपके दांतोंपर शोभितहै हे अतुल प्रभाव! पृथ्वी व आकाश का जो अन्तरहै सो तुम्हाराही शरीर है हे विभुजी! इससंसार के व्यापक हे जगत्पते! परमार्थ तुम्हीं हो और कोई नहीं है यह आपही की महिमाहै जिसम

यह जगत् समार ज्ञानात्मा जो आपहैं तिभीकर रचित यह भमार है जो लोग कहते हैं कि केवल पृथ्वी जल वायु अग्नि आकाश इन ५ तत्त्वोंमें ही यह बनाहै वे अज्ञानी हैं व ज्ञान स्वरूप इस ममार को जो निर्बुद्धि लोग अर्थ स्वरूप जान देखते हैं वे मोह समुद्रमें भ्रमते हैं व जो शुद्ध चित्त ज्ञानी लोगहैं वे इस सम्पूर्ण जगत् को ज्ञानरूपही देखते व तुम्हाराही रूप इसको मानतेहैं क्योंकि यह तुम्हाराही रूपहै हे सर्व मर्वात्मन्! प्रसन्न हूजिये व इस जगत्की स्थितिके लिये इस पृथ्वीको उद्धारिये हे कमल नयन! व हम लोगोंका कल्याण कीजिये आप सत्त्व मूर्ति हैं हे गोविन्द! इस पृथ्वीको सबके कल्याण के लिये स्थापित कीजिये व हम लोगोंको मंगल सहित कीजिये यह धरणी आपकी सृष्टिकी उपकारिणी होगी स्थापन कीजिये व हे वारिजाक्ष! हम को शुभदीजिये परमात्मा मही धारण करनेवाले भगवान् वाराहजी की जब जनलोक निवामी सनकादिकोंने इस भांति स्तुति की तो इस महीको उठाय महाप्रलयका जो जल भराहुआ था उसीपर स्थापित करदिया जिस जल समूह के ऊपर नौका के समान पृथिवी थामी गई परन्तु अति बड़ी होने के कारण व ईश्वरानुग्रह से फिर डूबनहीं गई तदनन्तर पृथिवी को समान करदिया व पर्वतोंको भी प्रथक् प्रथक् करदिया पाव यथास्थान स्थापित किया यद्यपि प्रलय सृष्टिमें सब पर्वत जल गये थे परन्तु सकल प्रभाव भगवान् ने अपनी कृपासे फिर ज्यों के त्यों बनाकर स्थापित किया तदनन्तर धरणीके ७ भाग जैसे चाहिये किये व भू भुव स्व मह इन्हीं लोकों का नाश नित्य प्रलय में होताही है सो हुआथा उन्हें पूर्ववत् फिर स्थापित करदिया फिर भगवान् हरि रजोगुणी ब्रह्मस्वरूप चतुर्मुखीहो सृष्टिको करनेलगे सो केवल मुख्यकर्मोंके बनानेमें ब्रह्मा निमित्तमात्रही थे जैसे उत्पन्न हुये वे सब बन गये मुख्य पदार्थोंकी शक्ति प्रकृतिके कारणों का रूपहै केवल ब्रह्माजीने निमित्त मात्र एक पदार्थको बनादिया उनने उसके सजातीय पदार्थ हजारों होगये क्योंकि उनमें उत्पन्न होनेकी एकप्रकारकी शक्तिहै॥

पांचवां अध्याय ॥

दो॰ कहत पञ्चमाध्याय महँ तद सुर मनुजन सर्ग।
अपर पक्षि पशुआदिहुन अरु तिनकेर निसर्ग १॥

इतनी कथा सुन मैत्रेय जी बोले हे द्विज! जिसप्रकार नारायणरूपी ब्रह्माजी ने देवता ऋषि पितर दानव मनुष्य पशु वृक्ष व पृथिवी आकाश जल के निवासियों को सिरजा व जौन गुण जौन स्वभाव जौन रूप के जगत् को सृष्टि के आरम्भ में सिरजा सब हमसे विस्तारसहित कहिये यह सुन पराशर मुनि बोले हे मैत्रेय! जिस प्रकार ब्रह्माजी ने देवादिक सम्पूर्ण सृष्टि को रचा है हम कहते हैं एकाग्रचित्त हो सुनिये जैसेही ब्रह्माजी ने सृष्टिकी चिन्ताकीथी वैसेही जैसे पूर्व कल्पमें सृष्टि हुईथी उसीके समान तमोमय अविद्या युक्त तामसी सृष्टि उत्पन्न हुई यथा तम मोह महामोह तामिस्र अन्धतामिस्र ये अविद्या की ५ पर्वे उत्पन्न हुईं वही स्थावरसृष्टि है वह ५ प्रकारकी है वृक्ष गुल्म लतावीरुत् तृण जिससे इसमें अचर पदार्थ मुख्य हैं इससे इस सृष्टिका नगात्मक नाम है इस सृष्टि में ज्ञान नहीं होता इसकेपीछे श्रीब्रह्माजी ने फिर ध्यान किया तो पशुओं की सृष्टि हुई इस सृष्टि का तिर्यक्स्रोतनाम है जिससे ब्रह्मा की उस समय में आहारमें प्रवृत्ति थी इससे इस सृष्टि का तिर्यक्स्रोत नाम पड़ा है सब पशु आदि तमोगुणी होते हैं इनमें विशेषज्ञान नहीं होता अज्ञानही को ये ज्ञान मानते हैं भक्ष्याभक्ष्य का विवेक भी इनमें नहीं होता यहच्छाचारी अहङ्कारी भी होते हैं केवल अन्तःकरणमें इनके ज्ञान होता है जिससे ये अपनी जातिवालों के साथ आपसमें मिले जुले रहते हैं व अपने पालकको भी पहिंचानतेहैं इस सृष्टि से ब्रह्माजी प्रसन्न नहीं हुये तो और सृष्टि करने के लिये ध्यान करनेलगे तब देवताओं की सृष्टि हुई इस सृष्टिका ऊर्द्धस्रोत नामहै व तीसरी सृष्टि है यह सतोगुणी है ऊर्द्धवास इससे नामहै जिससे कि देवलोग बहुधा ऊपरही रहते हैं ये सुखप्रीति बहुत चाहतेहैं व भीतर बाहर सबकहीं की बातें जानते व शुद्धचित्त होते हैं जबयह देवताओं की सृष्टिहुई तो ब्रह्माजीकी उसमें बड़ी प्रीतिहुई तिसके पीछे और सृष्टि करने के लिये ध्यान किया व चाहा कि इसी सृष्टि के समान हो तब मनुष्यों की उत्पत्ति हुई परन्तु यह सृष्टि सत्त्वगुणहीन हुई उसमें देवसृष्टिकी न समानताहीं र-

सक्ती है न ब्रह्माजीकी उतनीप्रीतिही इसमें हुई तब ब्रह्माजीने फिर अन्य सृष्टिके लिये ध्यानकिया तोफिर मनुष्यही हुये पर प्रथमवाले मनुष्यों से बहुत अच्छे इस सृष्टिका अर्व्वाक्स्रोत नामहै इस में सत्त्वगुण और रजोगुण बहुत हुआ तमोगुण बहुत कम रजोगुण अधिक होने के कारण मनुष्योंको दुःख बहुत होते हैं परन्तु वे जिसकार्य्य के करने में लगते हैं बार २ कियाकरते हैं सुखदुःखका बड़ा विचार नहीं करते पराशरजी बोले हे मुनिसत्तम! इससमय ६ प्रकारकी सृष्टि तुमसे कही व तीन प्रकार की प्रथम कहीथी सब ९ प्रकार की सृष्टि हुई १ महान् की सृष्टि वह ब्रह्माकी सृष्टिहै २ भूतसृष्टि इसमें तत्त्वों की उत्पत्ति हुई है ३ वैकारिक सृष्टि इसमें इन्द्रियों की उत्पत्ति हुई है ४ मुख्य सृष्टि इसमें वृक्षादिकों की उत्पत्ति है ५ तिर्य्यक्स्रोत सृष्टि इसमें पशुओंकी उत्पत्ति है ६ स्रोतससृष्टि इस में देवताओं की उत्पत्तिहै ७ अर्व्वाक्स्रोतस सृष्टि इसमें मनुष्यों की उत्पत्तिहै ८ अनुग्रह सृष्टि इसमें देवता मनुष्य दोनोंकी उत्पत्ति है इसीसे यह सत्त्वगुणी व तमोगुणी सर्गहै ९ कौमार सृष्टि इसमें सनन्दनादि मुनि व महादेवजी की उत्पत्तिहै इसप्रकार ब्रह्माजीकी ९ प्रकारकी सृष्टि तुमसे हमने कही हे मैत्रेयजी! अब और क्यासुनाचाहते हो यह सुनके मैत्रेयजी फिरबोले हे महामुनिजी! यह देवादिकोंकीसृष्टि आपने सक्षेपहीसे तो कही अब आपसे विस्तारसहित सुनाचाहते हैं सुनाइये पराशरजी यह सुनबोले अपने २ कर्मों के कारण जब प्रलय होताहै प्रजाओं के रूपकुछ के कुछ होजातेहैं प्रथम के रूप नहीं रहजाते देवताओं से ले स्थावर पर्य्यन्त ४ प्रकारकी प्रजाहोतीहैं वे ब्रह्माकी मानसी प्रजाकहाती हैं वे देवता दैत्य पितर व मनुष्य ये हैं पहिले पहिल जब ब्रह्मा सृष्टि करनेलगे तो तमोगुण उत्पन्नहुआ उस तमसे ब्रह्माकी जाँघसे दैत्य उत्पन्नहुये तब ब्रह्माजीने उस सृष्टिको अप्रसन्न कर अपने उस तमोमयी शरीर को छोड़दिया वह रात्रि होगई फिर और देह धारण किया उस शरीरके मुखसे देवता लोग उत्पन्नहुये ८ वे सब सत्त्वगुणी हुये इस सृष्टिसे ब्रह्माजी बहुत प्रसन्न हुये वह भी शरीर त्याग दिया वही सत्त्वगुणी दिनहुआ तिसीसे दैत्यरात्रिमें बली रहते हैं व देवतादिनमें फिर सत्त्वगुणीहो और शरीर धारण किया व पिताके समान मान उस शरीर से सत्त्वगुणी पितरलोग उत्पन्न हुये पितरों को उत्पन्नकर उसदेहको भी छोड़दिया वह सन्ध्या होगई जोकि दिन व रात्रिके बीच में रहती है फिर

रजोगुणी और शरीर धारण किया उससे रजोगुणी मनुष्य उत्पन्न हुये उसदेह को भी छोड़ा वह प्रातःकाल हुआ जिसको पूर्वसन्ध्या कहते हैं प्रभात होने पर मनुष्य बली होते हैं व सन्ध्या समय में पितर प्रबल रात्रि दिन सन्ध्याये ए ब्रह्माके त्रिगुणमयी शरीर हैं तदनु रजोगुणी और देह धारण किया जिससे क्षुधा उत्पन्न हुई और जिससे कोप कोप से यक्ष व राक्षस भये भूखे जानो ब्रह्माजी ने उनको अन्धकारमें फेंकदिया पर वे ब्रह्माहीको भक्षण करने दौड़े व वे बड़े कुरूप बड़े बार रखायेथे उनमें से जिन्होंने कहा कि हम ब्रह्माको खायेंगे उनका नाम यक्ष हुआ व जिन्होंने कहा इनकी रक्षा करो या नहीं उनका राक्षस नाम पड़ा इन को अतिभयानक देख ब्रह्माजी के बार गिरपड़े परन्तु पीछेसे फिर शिरपै जा जमे जो कुछ परे होरहे वे सर्प होगये तब ब्रह्माजी ने बड़ा कोपकर भूरे वर्णके भूतोंको उत्पन्न किया ये बड़े कठोर स्वभाव व मांसाशी हुये फिर इनको देख ब्रह्माजी हँसके कुछ गायउठे उस गानेसे गन्धर्व हुये इसीसे वे गानविद्या में निपुण होते हैं ईश्वरप्रेरित ब्रह्माजीने इतनी सृष्टि करके फिर अपने मनसे पक्षियोंकी सृष्टि की फिर उनकी छाती से भेड़े व मुखसे छगरियां उत्पन्न हुईं पेट व पसुरियों से गौयें व पदों से घोड़े हाथी गदहा नीलगाय मृग ऊंट खच्चर हरिण व अन्य भी जनके जीव हुये अन्य भी उनके रोमोंसे हुये इसप्रकार सत्ययुग त्रेतायुग की आदि में पशु व ओषधि उत्पन्न करके यज्ञके अर्थ स्थापित कर दिया पराशरजी बोले गाय बैल छगरी भेड़ी मनुष्य भेड़ा घोड़ा खच्चर गदहा ये सब ग्रामों में रहनेवाले हैं व अब वनके रहनेवालों को कहते हैं सुनो श्वापद सिंह भेड़िया सियार नील-गाय हाथी वानर पक्षी कछुआ आदि जलजन्तु अन्य पशु मृग गोह आदि ये सब वन व जलके रहनेवाले हैं फिर अपने पूर्वमुखसे गायत्री छन्द ऋग्वेद त्रिवृत्स्तोम रथन्तर जो तीनबार गाया जाताहै अग्निष्टोम एकप्रकार का यज्ञ ये सब पूर्व वाले मुखसे उत्पन्न किये यजुर्वेद त्रिष्टुप्छन्द स्तोम जो १५ बार पढ़ाजाता है बृहत्साम उक्थ सोमयज्ञ ये दक्षिणवाले मुखसे निकाले सामवेद जगती छन्द जो १७ बार पढ़ाजाताहै वह स्तोम वैरूप यह भी एक प्रकार का सामवेद भी है अतिरात्र सोमयज्ञ ये पश्चिमके मुखसे निकाले २१ बार पढ़नेवाला साम अथर्ववेद आप्तोर्याम एक प्रकार की सोमसंस्था अनुष्टुप्छन्द वैराजनाम सामवेद ये सब उत्तरके मुखसे निकाले [illegible]

देवता दैत्य पितर मनुष्य बनाये थे उसीप्रकारके इनकल्पमें भी बनाये जैसे कि यक्ष पिशाच गन्धर्व अप्सरा मनुष्य किन्नर राक्षस पक्षी पशु मृग सर्प नानारहित मरण चल अचल सब पदार्थ उत्पन्नकिये तिन सबके जौन जौन कर्म पूर्वसृष्टिमें थे सोई सोई इस सृष्टिमें भी उनको पहुंचाये गये जीवमारनेवाले जीव रक्षाकरनेवाले कोमलस्वभाव क्रूरस्वभाव धर्म अधर्म सत्य झूठ ये सब पूर्वही के स्वभाव के अनुसार सबको मिले व इसी से सबको वे अच्छे लगते हैं इन्द्रियों के नानाप्रकार के स्वभाव नानाप्रकारके शरीर ये सब ब्रह्माजीनेही सबकेलिये उनके पूर्व स्वभाव के अनुसार बनादिये हैं ॥

चौ० नाम रूप अरु कर्म सुहाये । वेद रीति सों, सुरन बनाये ॥
अरु जिमि ऋषिनहेतु श्रुतिगाये । नामरूप तिमि ऋषिगणपाये ॥ १ ॥
जिमि वसन्तऋतुमहँ तरु पाती । झरतलखत नहिं तिन न सँघाती ॥
पुनिनिजजाति जाति अनुसारा । होत पत्र जानत ससारा ॥ २ ॥
तिमि सब पूर्व सृष्टि अनुसारा । नामरूप अरु कर्म विचारा ॥
देवन योग्य देवगण पाये । ऋषिनयोग्य ऋषिगणमनभाये ॥ ३ ॥
इमि विधि कल्पआदिमहँ नीके । पुनि पुनि सृष्टिकरत विधिटीके ॥
सर्जन शक्तियुक्त विधि काजा । करत विष्णुप्रेरित गुणभ्राजा ॥ ४ ॥

छठा अध्याय ॥

दो० कहब छठे अध्याय महँ मनुज सृष्टि तिनवर्ण ॥
सत्त्व गुणादिक भावसों सुरन सृष्टि शुभवर्ण ॥ १ ॥

श्रीमैत्रेयजी बोले हे महामुने ! जो आपने अर्वाक्स्रोतस्राव मनुष्यों की सृष्टिकही जिसप्रकार ब्रह्माजी ने बनायाहो विस्तारसहित कहिये व जिसप्रकार विप्रादि वर्णों के गुण व कर्महों कृपापूर्वक कहिये यह सुन पराशरमुनि बोले सुनिये जब सृष्टिकरने की इच्छा ब्रह्माजीने की प्रथम सत्त्वगुण को ध्यानकिया तब उनके मुखसे सत्त्वगुणी प्रजा उत्पन्नहुई व छाती से रजोगुणी व जांघों से रजोगुणी तमोगुणी व सब पावों से प्रजाहुई ते तमोगुणीहुई व तिनके मुखसे ब्राह्मण उत्पन्नहुये बाहु आदि से क्षत्रिय उरुसे वैश्य पावोंमें शूद्र यह सब चारोंवर्ण यज्ञ की सिद्धि के लिये ब्रह्माजीने उत्पन्नकिया इसीसे ये ब्राह्मणादि यज्ञके अधि-

कारी है व यज्ञसे तृप्तहो देवतालोग वृष्टि करते हैं जिससे अन्नादि उत्पन्नहोते व उनसे प्रजाओंका पोषण होताहै इससे यज्ञही कल्याणकेहेतुहैं जिससे धर्मात्मा अच्छे मार्ग के पुरुषों को चाहिये कि यज्ञ अवश्य करें क्योंकि यह मनुष्यका देह अतिदुर्लभहै व इसी मनुष्य शरीरसे स्वर्ग मोक्ष सब कुछ मनुष्योंको मिलते हैं जिस स्थानको चाहै जासकैं सो ब्रह्माजीने चारों वर्णोंकी व्यवस्थासे प्रजा बनाई हैं प्रथम जब ये सब बनायेगये थे स्वच्छन्दचारी सब बाधाहीन शुद्धचित्त शुद्धशरीर सब कार्यों में निर्मलबुद्धिथे व अब भी जिनका मन अन्तःकरण शुद्ध है वे लोग श्रीविष्णुजी के शुद्धज्ञान परमपदको देखते हैं व जो कालका वर्णन किया था वह हरिका अंगहै वही प्रजाओं में थोड़ा थोड़ा करके पापको धीरे धीरे जैसे जैसे समय बीतता जाताहै फैलताजाताहै यह मन प्रथम अधर्म बीज रहित था परन्तु लोभ करने के कारण प्रजाओं का मन काम क्रोध रागादि में फँसगया इसी से पाप करनेलगा इसी से प्रजाओं की स्वाभाविकी सिद्धिजाती रही व अणिमादि सिद्धिया भी नहीं मिलतीं जब ये सब सिद्धिया जातीरहीं व पापबढ़गया तो ये प्रजा नानाप्रकारके दुःखसे दुःखित होनेलगीं और दुःखादिकों से बचने के लिये किला खाता ऊंचे ऊंचे स्थान पुर खेरे ग्राम नगरादि बनाये जिसमें कि जाड़ा गर्मी वर्षा इनसे बचारहे फिर नानाप्रकारकी जीविका बनाई गई भोजनार्थ खेती बनाईगई उसमें धान यव गेहूं नन्हिंगांधान तिल काकुनि देवान्न कोदव च्यनशा उर्द मूंग मसूर्दा गोम कुरथी आहर चना पटुवा १७ अन्न उत्पन्नकियेगये व ये ग्रामों के निकट वा ग्रामों में होते हैं व कुछ इनमें के कुछ वनके मिलाकर १४ यज्ञके अन्न हैं जैसे कि धान यव उर्द गोहूं नन्हिंगा धान तिल काकुनि कुरथी मारा तिनी पसाई कटतिल्ली व जर्वा पुरुषी बांसे के चावल कयधान ये सब यज्ञके अन्न हुये इन्हीं से पण्डितलोग यज्ञकरते हैं गृहस्थोंको प्रतिदिन यज्ञ करना चाहिये क्योंकि उनके कूटनेसे पीसने पछाने फाड़ने व लीपने से ५ हत्याहुआ करती है परन्तु जिनलोगों के चित्तमें पाप का लेश भी बढ़जाताहै वे यज्ञ करने में मन नहीं करते व वेलोग वेदवाद वेद यज्ञकर्म इन सबकी निन्दा करते व यज्ञों के करने में निषेध करते हैं इसी से सतोगुणी जिनका मार्ग है जिनके नाशकेवास्ते वेदके निन्दक दुरात्मा दुराचारी प्रवृत्ति बढ़ीलेगई हैं जब इसप्रकारकी जीविका प्रजाओं के लिये बनादीगई

तब प्रजाओं के गुण वर्ण के अनुसार मर्यादा बनाई गई व ब्राह्मणादिवर्णों व गृहस्थाद्याश्रमों के धर्म भी बनाये व जो लोग अपने वर्ण आश्रमके अनुसार धर्म्म करते हैं उनकेलिये लोकभी नियतकरदिये कि यह कार्यकरे तो इसलोक को जावे व यह करे तो इसको जो ब्राह्मणलोग वेदके अनुसार अग्निहोत्रादि क्रियाकरते हैं उनको पितरोंकालोक मिलताहै व जो क्षत्रिय संग्राम से नहीं भागते उनकेलिये इन्द्रलोक ठहरायागया व कृषी वाणिज्यादि कर्म करनेवाले वैश्यों के लिये वायुलोक बतायागया व ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य इन तीनों की सेवा करनेवाले शूद्रों के लिये गन्धर्वोंका लोक विचारागया व जो गुरुकुलमें पढ़ते हुये ब्रह्मचारीलोग हैं उनके निमित्त जो ८८००० ऋषियोंकेलिये स्थाननियत है वह है व वानप्रस्थोंके लिये सप्तर्षियोंका स्थान मिलेगा व गृहस्थों को पितरों का लोकमिलेगा सन्यासियों के अर्थ ब्रह्मलोक नियतहुआ व ज्ञानीलोगों के लिये विष्णु का परमपद वैकुण्ठ नियतहुआ जो विष्णुपद एकान्तमें सदा ब्रह्मके ध्यान करनेवाले योगियोंकेही लिये है वहां ब्रह्मज्ञानियों को मिलता है व वही स्थान भगवदुपासकों को भी मिलता है क्योंकि चन्द्र सूर्यादि ग्रह अपने अपने लोकों को जाय जाय कर फिर लौटआते हैं पर ॐनमोभगवते वासुदेवाय इस द्वादशाक्षर मन्त्रके जपनेवाले वहांसे कभी नहीं लौटते और॥

चौ० वेद यज्ञ निन्दक जन हेतू। सदन नियत जो सुनहु सचेतू॥
रौरव कालसूत्र अतिघोरा। तामिस्रान्धत मिस्र कठोरा॥ १॥
खड्ग पत्रवन अरु महरौरव। पुनिअवीचिमत जहँ दुखगौरव॥
इन्हें आदि सत्ताइस नरकू। रचे विरंचि सुनत जिय करकू॥ २॥

सातवां अध्याय॥

दो० कह्यउ सप्तमाध्यायमहँ मानस सुत भव कीन॥
तिन मिलि विधि जिमि कीन मय देहिफसृष्टिप्रवीन॥ १॥

श्रीपराशरमुनि बोले कि फिर जब ब्रह्माजीने सृष्टिके लिये ध्यानकिया तो मानसी सृष्टिहुई जिसका वर्णन पूर्वके अध्यायों में होचुका है यह देवताओं से ले वृक्षों के अन्ततक है जब यह सृष्टि जितनी बनाई गई उसनेकी उतनीही बनीरही तब और सब एक स्वभाव एक रूप मानसी पुत्र उत्पन्न किये जिनके नाम ये हैं॥

चौ० भृगु पुलस्त्य पुलह क्रतु नामा। अरु अंगिरा मरीचि सुधामा॥
दक्ष अत्रि वशिष्ठ सुनामा। विधि समान नव सुत गुणधामा॥१॥

व जो सनक सनन्दन सनातन सनत्कुमार ये ४ मानसीपुत्र ब्रह्माजी के हुयेथे वे लोक निर्पेक्ष रहे इसी से उन्होंने सृष्टि बढ़ाने में कुछ सहायता न की क्योंकि वे सब रागरहित महाज्ञानी अहंकारहीन थे जब उनको उत्पन्न किया व ब्रह्माजीके कहनेपरभी उनलोगों ने सृष्टि न की तो ब्रह्माको बड़ा क्रोधहुआ जिससे तीनोंलोक जरजानेका भयहुआ जब उस क्रोधकी ज्वालासे त्रिलोकी जलने लगी व भौंहें अतिटेढ़ी हुईं ऐसा होतेही भौंहेंके मध्यसे दुपहरके सूर्य के समान श्रीरुद्रजी उत्पन्न हुये वह शरीर आधा तो स्त्री का था व आधा पुरुष का उस रूपसे ब्रह्माजीने कहा कि तुम अपना रूप जो स्त्री पुरुष संयुक्तहै इसे अलग अलग करडालो इतना कहकर अन्तर्द्धान होगये व उनके कहने से रुद्रजीने वैसाही किया स्त्री का रूप अलग करदिया व पुरुष का अलग फिर एक पुरुष ११ होगये वेही ११ रुद्र हैं उनमें कोई गोरे कोई काले थे फिर स्त्री रूपसे भी बहुत स्त्रियां बनाईं उनमें भी बहुत गोरी व बहुत काली थीं तिसके पीछे ब्रह्माजी ने स्वायम्भुवमनु को उत्पन्न किया व उनको प्रजापालनके लिये नियत किया ये मनुजी भी जब उत्पन्नहुये थे तब एक उन्हींके सगही स्त्री भी उत्पन्न हुईथी जिसका नाम शतरूपाथा मनुजीने उसको अपनी स्त्री बनाई फिर स्वायम्भुवमनु व शतरूपासे प्रियव्रत व उत्तानपाद दो पुत्र व प्रसूति आकूति दो कन्या उत्पन्नहुईं ये दोनों कन्या रूप उदारता सुशीलतादि गुणयुक्त थीं प्रसूतिका विवाह ब्रह्माजीके पुत्र दक्षके साथ हुआ व आकूतिका रुचि सग फिर तिन रुचि व आकूति से एकपुत्र एककन्या दोनों के हुये पुत्रका यज्ञ नाम हुआ व कन्याका दक्षिणा यज्ञसे दक्षिणामें १२ पुत्र हुये उन सब का यामनाम हुआ येही सब स्वायम्भुव मन्वन्तर में देवता हुये व प्रसूति में दक्षजीने २४ कन्या उत्पन्न की उनके नाम व विवाहसुनो १ श्रद्धा २ लक्ष्मी ३ धृति ४ तुष्टि ५ पुष्टि ६ मेधा ७ क्रिया ८ बुद्धि ९ लज्जा १० वपु ११ शान्ति १२ सिद्धि १३ कीर्ति इन १३ का धर्मके सग विवाहहुआ उनसे छोटी ११ रहीं जिनके ये नामहैं १ ख्याति २ सती ३ सम्भूति ४ स्मृति ५ प्रीति ६ क्षमा ७ सन्नति ८ अनसूया ९ ऊर्जा १० स्वाहा ११ स्वधा क्रमसे इनके पति ये हैं १ भृगु

२ महादेव ३ मरीचि ४ अंगिरा ५ पुलस्त्य ६ पुलह ७ क्रतु ८ अत्रि ९ वशिष्ठ १० अग्नि ११ पितर धर्म्म की स्त्रियों के पुत्र ये हैं श्रद्धाके काम लक्ष्मी के अहंकार धृतिके नियम तुष्टिके संतोष पुष्टिके लोभ मेधाके श्रुत क्रिया के दण्ड नय विनय बुद्धिके बोध लज्जाके विनय वपुके व्यवसाय शान्तिके क्षेम ऋद्धिके सुख कीर्त्ति के यश ये सब धर्म के पुत्र हैं काम से नन्दी स्त्रीमें हर्षनाम पुत्रहुआ अधर्म्म की स्त्रीका हिंसा नामहै तिससे अनृत नाम पुत्र हुआ व निकृति नाम कन्या इन दोनों से भय व नरक दो पुत्रहुये व इन दोनों की स्त्रियां माया व वेदना थी अनृति व निकृतिसे हुई मायाके प्राणियोंके नाश करनेवाला मृत्यु नाम पुत्रहुआ व वेदनाके दुःखनाम पुत्रहुआ मृत्युके व्याधि जरा शोक तृष्णा क्रोध ये हुये ये दुःखादि सब अधर्म्म के लक्षण हैं इनके न स्त्रीही थी न कोई पुत्रही हुआ क्योंकि ये सब ऊर्ध्वरेता थे ये सब विष्णुजी के भयानकरूप हैं व संसारके प्रलय के अर्थ हैं व दक्ष मरीचि अत्रि भृगुआदि इस संसारमें सृष्टि के कारण हैं व मनु मनुओं के पुत्र अच्छेमार्ग चलानेवाले व शूरवीर ऐसे राजा ये सब संसारके पालनके कारण हैं इतनी कथासुन मैत्रेयजी बोले कि हे द्विज-राज! आपने जो यह नित्यपालना व नित्य सृष्टि कही अब नित्यप्रलय का भी हाल हमसे कहिये श्री पराशरमुनि बोले सुनिये इस असार संसार की सृष्टिपा-लना व नाश भगवान् मधुसूदन तिन्हीं मनु व मनुपुत्रादिकोंके रूपोंसे करतेहैं प्रलय नैमित्तिक प्राकृतिक आत्यन्तिक व नित्यके भेदसे ४ प्रकारका होता है जब ब्रह्मा दिनभर सृष्टि करके सोय जाते हैं वह उनका नैमित्तिक प्रलय है व जब ब्रह्माण्ड प्रकृति में लीनहोजाताहै तब प्राकृतिक प्रलय होता व योगीलोग ज्ञानसे परमात्मा में लीन होते उसे आत्यन्तिक प्रलय कहते हैं व जोकि प्रति-दिन जीव मरा करतेहैं वह नित्यप्रलयहै ॥

चौ॰ प्रकृतिप्रसूति होत ज्यहिमाहीं । सो प्राकृती सृष्टि शक नाहीं ॥
दै नन्दिनी सृष्टि यहि कहई । जग त्रिविदिन बीतन सुखलहई ॥ १ ॥
पुनि सब प्रतिदिन होवत भूमा । नित्य सृष्टि त्यहि गुनुमजबूना ॥
यहि विधि सब शरीरमहँ सोई । श्रीहरिसरिथत हैं नहिं गोई ॥ २ ॥
उपजावत पालत अरु घालत । सब जग यासहि याग हृपालन ॥
सृष्टि स्थिति विनाशकी नोर्फी । प्राणिनमाहिं शक्ति प्रभु ठोर्फी ॥ ३ ॥

सो सब शक्ति वैष्णवी होई। जानत हौ न कतहुँ कछु गोई॥
गुणत्रयमय यह ब्रह्म अपारा। तीनिशक्तियुत सहित विचारा॥ ४॥
जो त्यहि भजत तजन सबकामा। सो त्यहि रूप मिलवयुत रामा॥
पुनि नहिं फिरत यथा भवलोगा। आवत जात सहत नितशोगा॥ ५॥

आठवां अध्याय॥

दो॰ कहब अष्टमाध्यायमहँ रुद्र सर्ग को प्रेरि॥
विष्णुशक्ति प्रेरित जगत चराचिररचना हेरि॥ १॥

श्रीपराशरमुनि बोले कि हे महामुने। ब्रह्माकी तामसी सृष्टि कही अब रुद्रसृष्टि कहते हैं सुनिये कल्प की आदिमें श्रीब्रह्माजी ने चाहा कि हमारे ही समान पुत्रहोवे यह विचार करते उनके कोपसे नीललोहित एक बालक उत्पन्न होआया व बड़े ऊंचेस्वर से रोदन करनेलगा ब्रह्माजी ने पूंछा क्यों रोतेहो तब उस कुमारने कहा हमारा नाम स्थण कीजिये ब्रह्माजी ने कहा तुम्हारा रुद्र नामहै अब न रोदन करो धैर्य धारण करो जब इसप्रकार रुद्रजी कह गये तो ७ बार रोये ब्रह्माजीने ७ नाम ७ स्थान ७ स्त्रियां व पुत्र बताये वे नाम भव १ शर्व २ ईशान ३ पशुपति ४ भीम ५ उग्र ६ महादेव ७ इन ७ के क्रमसे सूर्य जल पृथ्वी वायु अग्नि आकाश दीक्षित ब्राह्मण सोम ये स्थान बनाये इसीसे ये सब शिवमूर्तिही हैं व सुवर्चला ऊषा विकेशी अपरा शिवा स्वाहा दीक्षा रोहिणी ये स्त्रियां भव सूर्य्यादि होंके पुत्रों के नाम सुनिये जिनके वंशकी प्रवृत्ति से संसार पूर्णहोगया सूर्य्यके शनैश्चर जलके शुक्र पृथ्वी के मङ्गल वायुके मनोज व अग्निके स्कन्द आकाश के स्वर्ग दीक्षितके सन्तान सोमके बुध इस प्रकार रुद्रजी को सतीनाम स्त्री मिली जिन्हों ने दक्ष अपने पिताके कोप से शरीर छोड़दिया फिर हिमवान्पर्वतकी स्त्री मेनामें पैदाहुई तब उमा नाम हुआ व फिर महादेवही के साथ विवाह हुआ भृगुसे ख्याति में धाता विधाता दोपुत्र व श्रीनाम कन्या जो देवदेव श्रीनारायण की स्त्री हुई इसकी कथा सुन मैत्रेयजी बोले कि हमने तो सुना था कि जब समुद्र मथा गयाथा तब लक्ष्मीजी निकली थीं व विष्णुजी को व्याहीं गईथीं अब आप बताते हैं कि भृगुसे ख्यातिमें लक्ष्मी पैदाहुई यह कैसी बातहै सुनाइये पराशरजी बोले हे द्विजोत्तम!

जो जगन्माता लक्ष्मीजी नित्य हैं जैसे विष्णुजी सबमें विद्यमानहैं विष्णुजी अर्थ व लक्ष्मी वाणी नयहरिनीति लक्ष्मी विष्णुबोध लक्ष्मी बुद्धि विष्णुधर्म्म लक्ष्मी सत्क्रिया विष्णु सृष्टि करनेवाले व लक्ष्मी सृष्टि विष्णु भूधर लक्ष्मी भूमि भगवान् सन्तोष लक्ष्मी तुष्टि भगवान् काम लक्ष्मी इच्छा भगवान् यज्ञलक्ष्मी दक्षिणाहव्य विष्णुघृताहुति लक्ष्मी प्राग्वंश भगवान् पत्नीशालालक्ष्मी हरियूप लक्ष्मी चिति भगवान् कुशलक्ष्मी इध्मा भगवान् सामलक्ष्मी उद्गीतिहरि अग्नि लक्ष्मी स्वाहा हरिशंकर लक्ष्मीगौरी भगवान् सूर्य्य लक्ष्मी प्रभा विष्णु पितृगण लक्ष्मी स्वधा विष्णु अवकाश लक्ष्मीद्यो विष्णुचन्द्रमा लक्ष्मीकान्ति वायुहरि धृति लक्ष्मी विष्णुसमुद्र लक्ष्मी लहरी हरिइन्द्र लक्ष्मी इन्द्राणी केशव यम लक्ष्मी धूमोर्णा विष्णु कुबेर लक्ष्मीऋद्धि केशव वरुण लक्ष्मीगौरी विष्णु कार्त्तिकेय लक्ष्मी देवसेना विष्णु पुरुषार्थ लक्ष्मीशक्ति हरिनिमेष लक्ष्मीकाष्ठा हरिमुहूर्त्त लक्ष्मीकला हरिप्रदीप लक्ष्मीज्योत्स्ना हरिवृक्ष लक्ष्मीलता दिनहरि रात्रिलक्ष्मी विष्णुवर लक्ष्मीवधू हरिनद लक्ष्मीनदी हरिध्वज लक्ष्मी पताका नारायणलोभ लक्ष्मी तृष्णा हरिराग लक्ष्मी रति ॥

चौ० कहँलग कहहुँ तोहिं मुनिराऊ। अब सो सुनहु जु कहत बनाऊ ॥
देव दनुज नर तरु जगमाहीं। पुरुष विष्णु योषित कमलाहीं ॥ १ ॥

नवां अध्याय॥

दो० कहब नवम अध्याय महँ जिमि दुर्वासा शाप ॥
लहि कमलान्तर्द्धान भइ कीन्ह्यो सयन विलाप ॥ १ ॥
पुनि हरि सस्तुति करि जलधि मथनभयो तहँ ढेर ॥
लक्ष्मी मुख निकसे बहुत शुभपदार्थ श्रुति टेर ॥ २ ॥

पराशरजी बोले कि हे मैत्रेयजी ! लक्ष्मीका सम्बन्ध हमने पूर्व्वही जिस प्रकार मरीचिजीसे सुना है आपके प्रश्न के अनुसार कहते हैं महादेवजी के अंश दुर्वासामुनि एक समय पृथिवी में घूमते थे मार्ग में एक विद्याधरी के हाथ में फूलकी माला देखी वह माला कल्पवृक्षके फूलोंकी थी जिसकी सुगन्धसे वह बनका बन सुगन्धित रहता था उस मालाको देख मुनिने उन्मत्त व्रतको तो धारणही किये थे उस विद्याधरी की माला मांगनेलगे उसने मुनिको

प्रणाम कर बड़े आदरसे मालादेदी व उसको मूड़ेपर धरके मुनिराज पृथ्वी में
विचरने लगे एकदिन देखा तो देवगणों के साथ मतवाले ऐरावत हाथी पै
चढ़ेहुये इन्द्र चले आते हैं श्रीमुनिराज उन्मत्त तो थे ही अपने शिर से उतार
देवराज महाराज के ऊपर उस मालाको फेंकदिया देवराजने ऐरावत के शिरपै
रख दिया मालाकी सुगन्धसे अधिक मत्तहो ऐरावत ने उसे सूंड़से पृथिवी में
पटक दिया तब तो दुर्वासामुनि बड़े क्रुद्धहो इन्द्रसे बोले हे पुरन्दर! तू अपने
ऐश्वर्य के मदसे बड़ा दुष्टात्मा होगया है व बड़ा मूर्ख है जो ऐश्वर्यके देर देने
वाली मालाका निरादर करताहै और यह मेरीदीहुई है हाथीके पहिरने के यो
ग्य नहीं है तूने इसे प्रसाद मानकर प्रणाम करके शिर पर न धरा जिससे हे
मूर्ख! हमारी दीहुई मालाको तूने बहुत नहीं माना इससे जा तेरी त्रैलोक्यश्री
बहुतही शीघ्र नष्ट होजावै हे इन्द्र! हमको तुमने अन्य ब्राह्मणों केही समान
समझा इसीसे हमारा अपमान किया अच्छा जिससे हमारी दीहुई माला तुमने
धरणी में फेंकवादी इससे त्रैलोक्यश्री तुम्हारी भ्रष्टहो जिस मेरे कोपसे चराचर
तीनों लोक भयभीत होते हैं तिन हमको तुमने अपमानित किया इतना सुन
इन्द्रजी हाथीसे उतर हाथ जोड़ मुनिके चरणोंपर गिर विनती करनेलगे तब दुर्वा-
साजी बोले हे देवराज! हम उन मुनियों में नहीं हैं जो हाथ जोड़नेसेही प्रसन्न
होजाते हैं हमारा दुर्वासा नाम है क्या हमारे हृदय नहीं गई इस अपमान
का फल तुम्हें भोगनाही पड़ेगा हम तुमको पहचानतेहैं कि गौतमादि मुनियों
ने तुम्हें अहंकारी बनारक्खा है हम दुर्वासा मुनि हैं जिनके कोपसे धर्मदे वसि
ष्ठादि दयाशील मुनियों ने स्तुति करके तुम्हें अहंकारी करदिया है इसीसे ह-
मारा भी अपमान करतेहो मुझसा जैसा मैं कौनहै कि जब मैं कोपकरके जग
पटाता उस समय इन्द्र भौंहाके साथ मेरे भृकुटी देख भयभीत न होवे बहुत
बकने से क्याहै हम किसी भांति क्षमा न करेंगे कि फिर तुम ऐसी हमारी
निन्दा करो इतना कह दुर्वासा अपनी राह चलेगये व इन्द्र अपने पुरानेपै
चढ़ इन्द्रपुरी को गये हे मैत्रेय! तबसे सब समागमहीन श्री इन्द्रहीन होगये व न
तबसे कहीं यज्ञ होती न तपस्या न कोई दान देता सब ओर भूमि पर रहनेवाले
सब लोग बलहीन होगये थोड़ी २ बातोंमें झगड़ा फसाद करनेलगे लोभ-
से नासमझ होगये फिर तब पारमार्थी नहीं तो धर्म कहां रहसक्ताहै क्योंकि

वहतो वहींरहती है जहा धीरता रहतीहै जब पुरुष बल शूरतादि से हीन होजाताहै तो उसे कोई नहीं मानता यह बात संसार में भी प्रसिद्ध है सो जब देवतालोगभी धीरतादि गुणों से हीनहोगये तब दैत्योंने उनके ऊपर चढ़ाई की यद्यपि दैत्य लोग बडे लोभी धीरतादि गुण हीनथे पर देवता लोग उनसे हार गये व ब्रह्माजी के शरणको गये व सब समाचार ब्रह्माजीने जाना व कहा कि सबके स्वामी महापुरुष श्रीनारायण के शरण में पहुंचो वे आपलोगों का कल्याण करेंगे इतनाकह सब देवगणों को साथले क्षीरसागर के किनारे पहुंचे व श्रीभगवान् परमात्मा परब्रह्म की स्तुति करनेलगे ब्रह्माजीबोले ॥

चौ॰ अज अनन्त अव्यय सब स्वामी। लोकधाम महिधर खगगामी ॥
नारायण लघुतम अति भारी। सब जगकारण सबजगहारी ॥ १ ॥
तुमसे होत सकल जग स्वामी। तुमपालत पुनि द्विजपतिगामी ॥
सर्व भूतमय, सब गुण खानी। परमपुरुष निज जन वरदानी ॥ २ ॥
ज्यहि ध्यावत योगीजन भारी। मुक्तिहेतु प्रभु पाहि मुरारी ॥
सत्त्व आदि गुण नहिं तुम माहीं। जो प्राकृत गुण प्रकट सदाहीं ॥ ३ ॥
सब शुद्धन महँ शुद्ध पुनीता। कृपा करहु हरि देव समीता ॥
काष्ठा कला मुहूर्त तुम्हारी। शक्ति सकल प्रणवों दनुजारी ॥ ४ ॥
जो कारण कारज कारण कर। कारण कार्य हेतु कमला वर ॥
सो प्रसन्न देवन पर होऊ। तुम्हरो भेद न पावत कोऊ ॥ ५ ॥
कारणहु के कारण तासू। पुनि कारण कृतलोक प्रकासू ॥
भोक्ताभोज्य सकल जगकारक। कर्त्ता कार्य दैत्य गण दारक ॥ ६ ॥
अव्यय अज अक्षय भगवाना। नमो नमो गुणखानि सुजाना ॥
कोटिन अश अश गति तोरी। सजत विश्वजिननी मुनिमोरी ॥ ७ ॥
दर्शन देहु कृपालु गोसाईं। हेरहु दुखित प्रजा सब आईं ॥
इमिविधि अस्तुतिमुनि सबदेवा। करन लगे कमलापति सेवा ॥ ८ ॥
दीनबन्धु प्रणतारत हर्त्ता। जगदाधार विश्व के भर्त्ता ॥
जासुअपार गुणन की थाहा। विधिहु न पावहु अतिअवगाहा ॥ ९ ॥
नमो नमो भगणन महँ तासू। भूविराम पद जगहै जासू ॥
जासु न आदि मध्य अवसाना। सो पालहु श्रीपति भगवाना ॥ १० ॥

गुण गुरु आदिक श्रुति सुरज्ञानी। आपु प्रणमत हरिगुण ग्यानी॥
विधि नटवट उमापति दैत्य। तगणित सहित गणग कहहि मेरा॥ ११॥
पावक वसु अश्विनी कुमारा। मरुत साध्य विश्वदेव सारा॥
इन्द्रकुबेर वरुण सब आये। असुर निकरपीड़ित शरणागे॥ १२॥

इस प्रकार जब देवोंने स्तुति की तो भगवान् कमलापतिने दर्शन दिया शंख चक्र गदा धारणकी हुई अपूर्व मूर्ति देख पहिले सब चकित हुये पीछे शिर नाय स्तुति करनेलगे हे भगवन्! आपको बार २ नमस्कार है इन्द्र अग्नि वरुण सूर्य यमराज रुद्र ४६ पवन कहां लगि गनायें जितने देवगण यहां आये हैं सब आपही हैं व यज्ञ वषट्कार ॐकार प्रजापति सब तुम्हीं हो अति भयभीत देवगण आपके शरणागत हैं प्रसन्न हूजिये क्योंकि प्राणियोंको तभीतक भय है जबतक तुम्हारे शरणागत नहीं होते जब देवगणों ने इतनी स्तुतिकी तो श्री भगवान प्रसन्न होकर बोले हे देवगणो! तुमलोगोंके ही तेजमें सबकुछ होवेगा सहायता हम भी करेंगे जाय दैत्यों से भी मायत्न सर्व औषधी समुद्रमें छोड़ मन्दराचलको मथानीबनाय वासुकिसर्पको नेतीबनाय के सागर मथो उससे अमृत निकलेगा वह तुम्हीं पियोगे कोई २ वस्तु दैत्योंको भी देदेना अमृत पीनेसे तुमलोग बली होजावोगे बस और दैत्यों का जीतलेवोगे कुछ बड़ी सहायताकी आवश्यकता नहीं है इसमें शंका न करो कि असुर दानव भी न पीलेवें जिससे और बली होजावें वह न होनेपावेगा ये केवल क्लेशभागी होवेंगे व तुम उत्तमफलभागी इस भांति भगवान्‌की वाणीसुन देवताओं ने जाय दैत्योंसे मेल किया व उनको साथले समुद्र मथनेका उद्योग किया सबप्रकारकी औषधियां सागरमें छोड़ी व मन्दराचलको मथानी व वासुकिनागको नेतीबनाय भगवान् नारायणकी आज्ञासे उन्होंने देवताओंको पूछकी ओर लगाया व दैत्योंको वासुकि के मुखकी ओर इसमें जब मथानी चली नेतारूप वासुकिके मुखसे निश्वास निकलनेलगे जिनके लगनेसे दैत्य निस्तेज होगये व उन श्वासोंके लगने से मेघोंने पूंछकी ओर वर्षाकी जिससे देवगण सुखपाये जब मन्दराचल समुद्रमें घूमनेलगा तो देव दैत्य दोनों न आधारके नीचे को धसनेलगा भगवान् विष्णुजीने विचारा कि अब यह इनके सम्हालेंगे इससे कच्छप रूप धारणकर उसको नीचे धारिके व पृथ्वी धारणकर देवताओंकी सभामें जा नेता

पकड़ा दूसराRूपधरकर दैत्योंकी सेनाजमें व एकबड़ाभारीरूप धारणकर मन्दराचलके ऊपरबैठ चारोंओरसे उसेआड़ा कि डगमगाने न पावे पर इसरूपको सुरासुरोंमेंसे किसीने नहीं देखा केवल गुप्तस्वरूपथा व अपनेही तेजसे देवता दैत्य वासुकिआदि सबको तेजस्वी करदिया इसीकारण कोई नहींथके सबसे पहिले मथनेपर कामधेनु निकली उसे देवताओंने लेलिया दैत्योंकी आंखें ऐसी मूंदसी गई कि उन्होंने देखाही नहीं फिर वारुणी मदिरा निकली फिर अतीवसुगंधित कल्पवृक्ष निकला इसे भी देवोंने लिया तदनन्तर अप्सराओं का झुंड निकला फिर चन्द्रमाजी निकसे उन्हें महादेवजी ने अपने माथे पै धरने के लिये लिया फिर विष निकला उसे नागोंने फिर अमृतसे भरा कलश लिये धन्वन्तरिजी निकसे जिन्हें देख देव दानव ऋषिमुनि सब परमानन्दितहुये फिर लक्ष्मीजी निकसीं तिन्हें देख देवगण स्तुति करनेलगे विश्वावसु आदि गन्धर्व तिनके आगे गाने व घृताची आदि अप्सरा नाचनेलगीं गंगादि नदिया स्नानके लिये पहुंचीं दिग्गज लोग सोने के कलशों में जललाय स्नान करानेलगे क्षीरसागर मनुष्य रूप धरके एक कमलोंकी ऐसी मालालाये जिसमें के फूल कभी मुरझातेही नहीं इसप्रकार दिव्यमाला भूषण वस्त्र रत्नादिपहिन सब देव दैत्यों के देखतेही देखते विष्णुजी के वक्षस्स्थलमें जाबैठीं व बैठतेही कृपादृष्टि से देवताओं को देखा वे देखतेही कृतार्थ होगये व विष्णुविमुख दैत्यलोग बड़े कष्ट को पहुंचे क्योंकि श्रीलक्ष्मीजी ने उनकी ओर नहीं देखा व इसीवीचमें उन्हों ने धन्वन्तरिके हाथ से अमृतपूर्ण कलश छीनलिया परन्तु श्रीभगवान् ने मोहनी मूर्ति स्त्री बन दैत्यों को मोहितकर उनसे अमृतले देवताओं को पिया दिया अमृतपान करने से देवगण अतिबलीहो नानाप्रकार के अस्त्रशस्त्र ले दैत्योंसे ऐसेलड़े कि सबके सब कुछ मारगये कुछ पाताल को चलेगये देवतालोग परमानन्दितहो श्रीहरिकी स्तुतिकर जैसे पहिले स्वर्गके सुख भोगते थे भोगनेलगे सूर्यनारायण जैसे प्रथम प्रकाशित रहतेथे प्रकाशितहुये तारागण सब स्वच्छहोगये ब्राह्मणों के अग्नि आपने आप धधकिउठे आहुतिलेने लगे तीनोंलोक शोभायमानहुये इन्द्रजी फिर राज्य लक्ष्मी को प्राप्तहुये जब सिंहासनपै बैठे कमल हाथमें लिये कमलाकी स्तुति करनेलगे इन्द्रजी बोले कमल से उत्पन्न सब संसार की माता प्रफुल्लित कमलनयनी विष्णु के वक्-

सुरगुरुआदिक मुनि सुरज्ञानी । आपहु प्रणमत हरिगुण खानी ॥
निधि सहरुद्र उमापति देवा । तरणिसहितगणवरुव्यादि सेवा ॥ ११ ॥
पावक वसु अश्विनी कुमारा । पवन साध्य विश्वेश्वर सारा ॥
इन्द्रकुबेर वरुण सब आये । असुर निकरपीडित शरणाये ॥ १२ ॥

इस प्रकार जब देवोंने स्तुति की तो भगवान् कमलाशनिने दर्शनदिया शंख चक्र गदा धारणकी हुई अपूर्व मूर्त्ति देख पहिले सब चकित हुये पीछे दिठाय स्तुति करनेलगे हे भगवन्! आपकेआर २ नमस्कारहै इन्द्र अग्नि वरुण सूर्य्य यमराज वसु ४९ पवन रुद्र लग गन्धर्वे जितने देवगण यहां आये हैं सब आपही हैं व यज्ञ वषट्कार ॐकार प्रजापति सब तुम्हीं हो अति भयभीत देवगण आपके शरणागत हैं अभयकीजिये क्योंकि प्राणियोंको तभीतक भयहै जबतक तुम्हारे शरणागत नहीं होते जब देवगणों ने इतनी स्तुतिकी तो श्री भगवान् प्रसन्न होकर बोले हे देवगणो! तुमलोगोंकेही तेजसे सबकुछ होवेगा सहायता हम भी करेंगे जाव दैत्योंको भी साथले सब ओषधी समुद्रमें छोड़ मन्दराचलको मथानीबनाय वासुकिसर्पको नेदाबनाओ व सागर मथो उसमें से अमृतनिकलेगा वह तुम्हींको पिलावेंगे कोई ० वस्तु दैत्योंको भी देदेंगे अमृत पीनेसे तुमलोग बली होजावोगे श्रम आप दैत्यों को जीतलेवोगे कुछ बड़ी सहायताकी आवश्यकता नहीं है इसमें शंका न करो कि अमृत दानव भी न पीलेवें जिसमें और बलीहोजावें यह न होनेपावेगा वे केवल क्लेशभागी हीहोंगे व तुम उत्तमफलभागी इस भांति भगवान्‌की वाणीसुन देवताओंने जाय दैत्योंकासंगकिया व उनको साथले समुद्र मथनेका उपायकिया सबप्रकारकी ओषधियां सागरमें छोड़ी मन्दराचलको मथानी व वासुकिनागको नेदाबनाया भगवान्‌नारायणभी आये उन्होंने देवताओंको पूंछकीओरलगाया व दैत्योंको वासुकिके मुखकीओर इससे जब मथानीचली नेदारूप वासुकिके मुखसे विषा- रीश्वासानिकलनेलगी जिनकेलगनेसे दैत्य विकल होगये व उनश्वासों के लगने से मेघोंने पूंछकीओर वर्षाकी जिसमें देवगणजुड़ागये जब मन्दराचल समुद्रमें घूमनेलगा तो देव दैत्य कोई न जानसके नीचेको चलनेलगा भगवा न् विष्णुजीने विचारा कि अब सब डरके भागजावेंगे इसमें कच्छप का अव तारले उसकेनीचे जानैठे व एकरूप धारणकर देवताओंकी सभामें भी नेदा

पकड़ा दूसरारूप धरकर दैत्योंकी समाजमें व एकबड़ाभारीरूपधारणकर मन्दराचलके ऊपर बैठ चारोंओरसे उसेआड़ा कि डगमगाने न पावे पर इसरूपको सुरासुरोंमेंसे किसीने नहीं देखा केवल गुप्तस्वरूपथा व अपनेही तेजसे देवता दैत्य वासुकि आदि सबको तेजस्वी करदिया इसीकारण कोई नहींथके सबसे पहिले मथनेपर कामधेनु निकली उसे देवताओंने लेलिया दैत्योंकी आंखें ऐसी मुंदसी गईं कि उन्होंने देखाही नहीं फिर वारुणी मदिरा निकली फिर अतीवसुगन्धित कल्पवृक्ष निकला इसे भी देवोंने लिया तदनन्तर अप्सराओं का झुंड निकला फिर चन्द्रमाजी निकसे उन्हें महादेवजी ने अपने माथे पै धरने के लिये लिया फिर विष निकसा उसे नागोंने फिर अमृतसे भरा कलश लिये धन्वन्तरिजी निकसे जिन्हें देख देव दानव ऋषिमुनि सब परमानन्दितहुये फिर लक्ष्मीजी निकसीं तिन्हें देख देवगण स्तुति करनेलगे विश्वावसु आदि गन्धर्व तिनके आगे गाने व घृताची आदि अप्सरा नाचनेलगीं गंगादि नदियां स्नानके लिये पहुंचीं दिग्गज लोग सोने के कलशों में जललाय स्नान करानेलगे क्षीरसागर मनुष्य रूप धरके एक कमलों की ऐसी मालालाये जिसमें के फूल कभी मुर्झातेही नहीं इसप्रकार दिव्यमाला भूषण वस्त्र रत्नादिपहिन सब देव दैत्यों के देखतेही देखते विष्णुजी के वक्षस्स्थलमें जाबैठीं व बैठतेही कृपादृष्टि से देवताओं को देखा वे देखतेही कृतार्थ होगये व विष्णुविमुख दैत्यलोग बड़े कष्ट को पहुंचे क्योंकि श्रीलक्ष्मीजी ने उनकी ओर नहीं देखा व इसीबीचमें उन्होंने धन्वन्तरिके हाथ से अमृतपूर्ण कलश छीनलिया परन्तु श्रीभगवान् ने मोहनी मूर्ति स्त्री बन दैत्यों को मोहितकर उनसे अमृतले देवताओं को पिया दिया अमृतपान करने से देवगण अनिवलीहो नानाप्रकार के अस्त्रशस्त्र ले दैत्योंसे ऐसेलड़े कि सब के सब देत्य कुछ मारेगये कुछ पाताल को चलेगये देवतालोग परमानन्दितहो श्रीहरि की स्तुतिकर जैसे पहिले स्वर्गके सुख भोगते थे भोगनेलगे सूर्यनारायण जैसे प्रथम प्रकाशित रहतेथे प्रकाशितहुये नारागण सब स्वच्छहोगये ब्राह्मणों के अग्नि अपने आप प्रज्वलितहो आहुतिलेने लगे तीनोंलोक शोभायमानहुये इन्द्रजी फिर राज्य लक्ष्मी को प्राप्तहुये जब सिंहासनपै बैठे कमल हाथमें लिये कमलाकी स्तुति करनेलगे इन्द्रजी बोले कमल से उत्पन्न सब संसार की माता प्रफुल्लित कमलनयनी विष्णु के वक्ष-

स्स्थल में विराजती हुई लक्ष्मीको नमस्कारहै हे देवि ! सिद्धि स्वधा स्वाहा लोकपावन करनेवाली सध्या रात्रि प्रभा बुद्धि श्रद्धा सरस्वती यज्ञविद्या महाविद्या गुह्यविद्या आत्मविद्या विमुक्ति फल देनेवाली आन्वीक्षिकी वेदत्रयी कृषी वाणिज्य दण्डनीति ये सब तुम्हीं हो तुम्हें छोड़ सर्व यज्ञमय शरीर और कौनहै तुमने सब तीनोंभुवनों को छोड़दिया था इसीसे सब नष्टप्राय होगये थे अब तुमने कृपाकी सब फिर ज्योंके त्यों होगये स्त्री पुत्र घर मित्र धन धान्य सब तुम्हारेही निहारनेसे होते हैं हे भगवति ! शरीरकी निरोगता ऐश्वर्य शत्रुओंका जीतना सुख सब कुछ पुरुषों को तुम्हारी सुदृष्टिहोने से दुर्लभ नहीं तुम संसार की माता व विष्णु भगवान् पिता तुम्हीं दोनों से चराचर संसार पूरितहै हे महालक्ष्मि ! खजाना कोठा घर परिवार शरीर स्त्री हमारे इन पदार्थों को कभी न छोड़िये व पुत्र इष्टवर्ग पशु गण सुवर्ण इनको भी न छोड़िये क्योंकि जिन पुरुषों को तुम छोड़तीहो वे सत्यशौच शीलआदि गुणों से तुरन्तही हीन होजाते हैं व जिनको तुम कृपाकटाक्ष से देखदेतीहो उन के शीलादि गुण व ऐश्वर्यादि सब होजाते हैं चाहे वे निर्गुणभीहों फिर जिसको तुमने देखा बड़ाई के योग्यगुणी धन्य कुलीन बुद्धिमान् शूरवीर व पराक्रमी वह तुरन्त होजाता है व जिससे तुम अप्रसन्न होतीहो उसमें चाहे कितने गुणहों सब अवगुणही समझेजाते हैं आपके गुणोंको तो ब्रह्माकी भी बुद्धि नहीं कहसक्ती फिर अन्य लोग कैसे कहसक्ते हैं तिससे प्रसन्न होओ व हम लोगों को कभी न छोड़ो इस नास्तुन श्रीलक्ष्मी जी बोलीं इन्द्र हम तुम्हारे इस स्तोत्रसे सन्तुष्टहुई जो चाहो वरमांगो इन्द्रजीने कहा जो मैं वरदान पाने लायक समझा जाऊं व आप वर देनेको तैयारहों तो तीनों लोकों को न छोड़ो बस यही वर मांगताहूं व दूसरा यह कि जो कोई इसस्तोत्र से तुम्हारी स्तुतिकरै उसेभी कभी न छोड़ियेगा लक्ष्मीजी ने कहा अच्छा हम इस स्तोत्रसे सन्तुष्टहैं तीनों तुम्हारेलोकोंको कभी न त्यागेंगी व सन्ध्या प्रात काल समय जो इस स्तोत्रसे हमारी स्तुति करेगा उसे भी हे मैत्रेय ! इस भांति इसस्तोत्र से सन्तुष्टहो लक्ष्मी जी ने इन्द्रको वरदानदिया यही लक्ष्मी प्रथम ख्यातिनाम स्त्रीमें भृगुमुनि से उत्पन्न हुई थीं फिर जब समुद्रमथागया उससे जन्मीं इसीभांति जब जब देवदेवेश जगन्नाथ विष्णु जी अवतारलेते हैं तभी तभी लक्ष्मी भी जन्मती जब भगवान् वामनहुये

तब लक्ष्मीजी कमल से उत्पन्नहुईं जब हरिने परशुरामावतार लिया तो लक्ष्मी जी धरणीहुईं रामावतार में सीता कृष्णावतार में रुक्मिणी इसीभांति अन्य अवतारों के साथ जन्म लेती हैं देवावतारके साथ देवता व मनुष्यावतार के सग मनुष्य जैसा हरिका अवतारहोता उसके योग्य आप भी जन्मती हैं जो कोई इस लक्ष्मीजी के जन्मकी कथाको सुनता व जो पढ़ता उनके तीन पुस्तिलों घरमे लक्ष्मी नहीं जातीं और भी जिसघर में यह कथा पढ़ी जाती उसमें लक्ष्मी वसीरहती दरिद्रता लड़ाई आदि नहीं वसती हे मैत्रेय। जिसभांति लक्ष्मीजी समुद्रमे उत्पन्नहुईं व जैसे भृगुमुनिसे ख्यातिमें हुईं व जैसे जैसे दूसरे स्थानों में जन्मीं सब तुमसे कहा॥

चौ० सकल विभूति मिलन उपकारी। यह कमलास्तुतिशकप्रचारी॥
जो नित पढ़िहिसुनिहि पुनिगाइहि। तासु सदनसों भूतिनजाइहि॥ १॥

दशवां अध्याय॥

दो० कहत दशम अध्याय महँ कमला जन्म बहोरि॥
दक्षसुता गाथा सुभग सुनियो सुजन निहोरि॥ १॥

श्री मैत्रेयजी बोले हे महामुनि। जो जो हमने पूछा सो सो आपने कहा अब भृगुकी सृष्टिके पीछे जो सृष्टिहुईहो सुनाइये मुनिने कहा सुनिये भृगु मुनिसे ख्यातिमें लक्ष्मीजी व धाता विधाता दो पुत्रहुये उनका विवाह मेरुकी कन्या आयति व नियतिके साथहुआ तिनदोनों के प्राण व मृकण्डु पुत्रहुये मृकण्डुके मार्कंडेय मुनि हुये तिनके वेदशिर नाम तनय हुये व प्राणके द्युतिमान् तिनके राजिमान् तिनमे भृगुका वंश बढ़ा मरीचिकी स्त्री सम्भूति से पौर्णमास पुत्र हुआ जिसमे विरज व सर्वगहुये व मरीचिही के कश्यपजीहुये हैं उनका वंश जब वड़ी वंशावली कहेंगे तब कहेंगे अंगिराकी स्त्री स्मृतिसे पुत्र व सिनी वाली कुहू राका अनुमति कन्याहुईं अत्रिकीस्त्री अनसूया से सोम दुर्वासा दत्तात्रेय ये तीन महा प्रतापी पुत्रहुये पुलस्त्यकीस्त्री प्रीतिसे दम्भोलि नामक पुत्रहुये पूर्व जन्म में इन्हींका अगस्त्यनामथा पुलहकीस्त्री क्षमासे कर्दम उर्वरीवान् सहिष्णु तीनपुत्र हुये क्रतुकी स्त्री सन्नतिने ६०००० बालखिल्य उत्पन्न किये वशिष्ठ कीस्त्री ऊर्जासे रजगात्र उर्द्ध्वबाहु सवन अनघ सुतपा व शुक्र ये पुत्रहुये जो

तीसरेमन्वन्तर में सप्तर्षिये जो ब्रह्माके एक अग्निनाम पुत्र हुये थे उनकी स्त्री स्वाहासे पावक पवमान व शुचि तीनतनय हुये इन तीनोंके पन्द्रह पन्द्रह पुत्र हुये थे अपने बाप दादासहित ४९ हुये अग्निष्वाता बर्हिषद ये दो पितरों के गण ब्रह्मासे उत्पन्न हुये थे इनमें जो लोग अग्निहोत्र यज्ञ करतेहैं उनके पितर अग्निष्वाताहैं व जो तिसेनहीं करते उनके बर्हिषद पितर हैं इनपितरोंसे स्वाहा स्त्रीमें मेना व वैधारिणी दो कन्या हुईं इनमें सब उत्तम २ गुणये॥

चौ० दक्षसुता सन्तति यहगाई। जो यहिसुमिरिहि नितचितलाई॥
सन्ततिरहित कबहुँ सोमानी। नहिंहोइहि यह कहत बखानी॥ ६॥

ग्यारहवां अध्याय॥

दो० अब ग्यरहें अध्यायमह ध्रुवचरित्र अतिपूत॥
कहत सुनहु चितदै सुजन होहु कामसजयूत॥ १॥

राजा स्वायम्भुव मनुके प्रियव्रत उत्तानपाद दो पुत्र बड़े पराक्रमी धर्मवान् हुये तिनमें उत्तानपादके सुरुचि स्त्री में उत्तमनाम पुत्र हुआ वह पिता को बहुतही प्याराथा एक सुनीति नाम स्त्री थी जोकि राजा को बहुत प्यारी न थी उसके ध्रुवनाम पुत्रहुये एकदिन राजा उत्तानपाद उत्तम नाम पुत्रको कोरामें लिये राज्यसिंहासन पै बैठे थे ध्रुवजीने चाहा कि हमभी जाकर पिताके कोरामें बैठें परन्तु उससमय उत्तमकी माता सुरुचिभी बैठीथीं इससे उनकी सौतिके पुत्र ध्रुवको राजाने प्रसन्नतासे न बुलाया तथापि वे चढ़नेको लपके यहदशा देख सुरुचि ध्रुवसे बोलीं हे भैया! तुम हमारे गर्भसे नहींहुये अन्य स्त्रीके पेटमें होकर ऐसेबड़े मनोरथको क्यों करतेहो यह बातसत्यहै कि तुमभी इन्हीं राजाके पुत्रहो पर हमारे गर्भमें न होनेके कारण राज्यसिंहासन पै नहीं बैठसक्ते यह राज्यसिंहासन हमारे ही पुत्र के लियेहै इसके लिये अपने आत्माको क्यों कष्ट देतेहो हमारे पुत्रके समान इस बड़ेभागी मनोरथ को क्यों करतेहो क्या तुम यह नहीं जानते कि हम सुनीतिसेज्यादेहैं सौतेलीमाताके ऐसे वचनसुन पिताको छोड़ अति कोपकर अपनीमाता के मन्दिरको ध्रुवजी चलेगये माताने देखा कि पुत्रकहीं से सकुपित चला आताहै कोरामें बैठाकर पूछनेलगी हे प्यारे! तुम्हारे कोप करनेका कौन कारणहै कौन तुम्हारा आदरनहींकरता व ऐसा कौनहै जो तुम्हारे पिताको

नहीं जानता तुमसे अन्याय करताहै यह सुन जो २ बातें सुरुचिने सहित घमण्ड राजाके आगे कहीथीं सब अपनी मातामे कहीं सुनीति सुनकें बड़ी उदासहो व शोचविचार ध्रुवसेबोलीं हे प्यारे! सुरुचि ने सत्यही कहा तुम बड़ेही अभागीहो क्योंकि पुण्यात्मालोगोंको वैरी ऐसा नहीं कहते अब परिताप न करो जो कर्म पूर्वजन्ममें तुमने किया है उनको कौनमिटासक्ता व जो नहीं कियाउनकोकौन देसक्ताहै राज्यासन छत्र अच्छे २ घोड़े उत्तम२ हाथी इन्हें आदि पदार्थ जिनने पूर्व जन्ममें पुण्यकीहै उसीको मिलने भये प्यारे! कोप मानन करो सुरुचिने पूर्व जन्ममें बहुत पुण्यकीहै इसीसे उनमें राजा की बड़ीरुचिहै ते उन्हीं को स्त्री कहते हैं हमें ऐसी पापिनियोंको स्त्रीही नहीं कहते इसीसे अतिपुण्यात्मा उत्तमपुत्र उत्तम भी उनके जन्मा मेरे तो स्वल्प पुण्यकरने वाले तुमहुयेहो यद्यपि ऐसाहै तथापि भयेबचे। दुःखी न होवो जिसके जितना होनाहै वह उतनेही में सन्तोष करताहै नहीं जो सुरुचि के कहनेसे तुम्हें बहुतही दुःखहुआहो तो पुण्य बटोरनेमें यत्न करो क्योंकि उससे सब फलमिलतेहैं तुम भयम सुशील धर्मात्मा मित्र प्राणियों के हित करनेवाले होवो जब ऐसे गुणोंको धारणकरोगे जैसें जहांनीची भूमि होती है वहांही पानी ठहरताहै वैसेही गुणी केहीनिकट सम्पत्तियां ठहरती है सो ठहरेंगी यह सुन ध्रुवजीने कहा हे अम्ब। जो बातें तुमने मेरे दुःख शान्त होनेके लिये कहीं वे सुरुचिके दुर्वचनसे भिन्न मेरेहृदयमें नहीं ठहरतीं अबमें ऐसा उपायकरूंगा जिससे मनुष्योंको दुर्लभ व जिसकीपूजा सब करें वैसास्थान पाऊं सुरुचिही राजाकी प्यारीरानी ठहरीं उनके पेटमें हमहुयेही नहीं हमतो तुम्हारे उदरसे हुये हैं तथापि हमारा प्रभाव देखिये क्याकरतेहैं उत्तमहमारे भाई पिताका दियाहुआ राज्यसिंहासनलें उसकी हमें इच्छा नहीं हम किसीका दियाहुआ स्थान लेहींगे नहीं किन्तु उस स्थानको लेंगे जिसे हमारे पिताजीने भी न पायाहो व न पानेकी आशा हो ऐसामातासेकह घरसेध्रुवजीनिकलखड़ेहुये जाते २ बाहरकी फुल वाड़ी में पहुँचे वहां ७ ऋषिलोग बैठेहुयेथे उनके विधि पूर्वक प्रणामकर बोले हे ऋषिलोगो! हम राजा उत्तानपादके पुत्रहैं सुरुचिके कहने से हमको कुछ दुःखहुआहै इसलिये आपलोगोंके निकट आयेहैं ऋषिलोग बोले हे राजकुमार! तुम चार पांच व आठ वर्षकेहोगे तुम्हें अभी किसीके कुछ कहने सुनने से दुःख न होनाचाहिये तुम्हारेपिता तो राजाहैं सो अपनाकार्य्य करतेहाहैं उ

सभें कुछ तुम्हारे चिन्तनाके लायकनहीं फिर कोई इष्टमित्रका वियोगभी नहीं देखपरता व तुम्हारे शरीरमें कोईरोगभी नहीं देखपरता फिर तुमको किसलिये दुःख हुआहै कहिये पराशरमुनि बोले कि जिस रीति से सुरुचिने इनको कहा था सब विस्तार पूर्वक कहा सुनके मुनि लोग आपस में कहने लगे अहो क्षत्रियोंका अति उत्कृष्ट तेज होताहै जो बालकभी किसी की कुशिक्षा नहीं सहसक्ता सौतेलीमाताके वचन हृदयसे नहींजाते हे राजकुमार! सौतेलीमाताके कहने से जो दुःख तुमको हुआ उससे अब क्याकरना विचाराहै यदि मनभावै तो हम लोगों से कहो व जिस तुम्हारेकार्य्य में हमलोग सहायता करसक्तेहों सोभी कहो क्योंकि तुम्हारे देखनेसे जानाजाताहै कि कुछ पूछा चाहतेहो यह सुन ध्रुवजीबोले हे द्विजसत्तमो! न हमद्रव्यकी इच्छा करतेहैं न राज्यकी किन्तु वही एकस्थान चाहतेहैं जिसे आजतक किसीने न भोग कियाहो यही हमारी सहायताकीजिये कि वहउपाय बताइये जिससे सबस्थानोंसे उत्तमस्थान मिले यह सुनि ऋषियोंमेंसे मरीचिजी बोले हे राजनन्दन! जोलोग गोविन्दकी आराधना नहीं करते उनको श्रेष्ठस्थान नहीं मिलता इसलिये तुम अच्युतभगवान्‌की आराधना करो फिर अत्रिजीबोले श्रेष्ठोंकेश्रेष्ठ पुराण पुरुष जनार्द्दन जिनके ऊपर सन्तुष्टहोतेहैं वह नाशरहित स्थानपाताहै यह हमने सत्यही कहाहै फिर अंगिरामुनि बोले कि जो सबसे उत्तमस्थानकी इच्छाकरतेहो तो जिस अव्ययात्मा अच्युत भगवान्‌के भीतर यहसबसंसारहै तिस गोविन्दकी आराधनाकरो फिर पुलस्त्यजी बोले कि परब्रह्म परन्धाम ब्रह्मरूप अतिश्रेष्ठ जो श्रीहरि हैं तिनकीआराधनासे अतिदुर्लभ मुक्तिभी मिलजातीहै तो अन्यस्थानकी कौनबातहै फिर क्रतुजी बोले कि जो यज्ञमें यज्ञपुरुष व योगमेंपरमपुरुषहैं तिसजनार्द्दनके सन्तुष्टहोनेपेऐसाकौन पदार्थहै जो न मिले फिर पुलहजीबोले जिसजगत्पतियज्ञपति विष्णुकी आराधना से इन्द्रने परमोत्तम इन्द्रस्थान पायाहै हे राजकुमार! तिसको आराधो फिर वशिष्ठजी बोले कि हे वत्स! सर्व्वोत्तमोत्तम विष्णुकी आराधनासे जो २ मुक्तवादि कीभी इच्छा मनसेकरै सबपदार्थ मिलतेहैं फिर तीनोंलोक में ऐसाकौन पदार्थहै जो उनकी आराधनासे न मिले यहसुन ध्रुवजीबोले अभिनम्र जो मैं तिन के लिये आराधना करनेके योग्य जोहै उसे तो आपलोगोंने बताया अब कोई मन्त्र भीबताइये जो उसके परितोषकेलिये उपयोगीहो व जैसे तिसमहात्माकी आरा-

धना हमारे करनेलायकहो प्रसन्नहो सोभी आपलोग कहैं यहसुनऋषिलोगबोले हे राजपुत्र ! जो विष्णुकी आराधनामें निपुणलोगोंकेकरनेलायक कार्य्य है हमलोगकहते हैं सुनो मनुष्यको चाहिये कि प्रथम सब बाहरके अर्थ देखने सुनने आदिके बन्दकरै फिर उस जगद्धाम परमेश्वर विष्णुमें निश्चल मनलगावै जब एकाग्रचित्तहो मन हरिमय होजावै तो जो जपनेके योग्य है कहतेहैं सुनो ब्रह्मा विष्णु महेश तीनोंके प्रेरक भगवान् वासुदेवका ओं नमोभगवतेवासुदेवाय यह जो द्वादशाक्षर मन्त्रराजहै सोई जपनाचाहिये इसीमन्त्रको आगे तुम्हारे पितामह राजा स्वायम्भुव मनुजीने जपाथा तिसके ऊपर भगवान् जनार्दन ने सन्तुष्टहो त्रैलोक्य दुर्लभ यह ऋद्धि दीथी तिससे तुमभी इस मन्त्रको जपतेहुये गोविन्द को प्रसन्न करो ॥

बारहवां अध्याय ॥

दो॰ द्वादशयें अध्याय महँ ध्रुव वृन्दावन वास ॥
जिमिकरि हरिसेवा करी कहतलख्यो सुखरास ॥ १ ॥

पराशरजी बोले हे मैत्रेय ! ऋषियों के वचन सुन ध्रुवजी उनको प्रणाम कर उस फुलवाड़ी से निकल खड़ेहुये व अपना को कृतार्थमान मधुवन में पहुंचे इस वनमें कभी मधुनाम दैत्य रहताथा उसी के नाम से मधुवन नाम हुआ इस मधु के पुत्रका लवणनाम था उसे शत्रुघ्नजी ने मार उसी वनमें मथुरानाम पुरी बसाई जिस मथुरा में श्रीकृष्णचन्द्र सदा विराजमान रहते हैं वहीं ध्रुवजी तपस्या करनेलगे जिस भांति मरीच्यादि मुनियों ने उनसे बताया था उसी भांति तपकर अपना शरीर ईश्वरमय कर दिया व समझा कि हमारे हृदय में विष्णुजी बैठे हैं जब सनाथ स्थिरचित्तहो विष्णुको हृदय में देखनेलगे हरि ने जाना कि अब इनका चित्त हममें लगगया आकर दृढ़तापूर्वक उनके हृदयमें निवास किया जब ऐसाहुआ तो यद्यपि यह पृथ्वी सब चराचर का भार सम्हालतीहै तथापि ध्रुवजीका भार न सहसकी जब बायें चरण से खड़ेहुये तो पृथ्वी का आधा खण्ड नय गया व जब दक्षिणसे खड़ेहुये तो दूसरा खण्डभी नयगया जब कि पावके अँगूठे से पृथ्वी को दबाकर ध्रुवजी खड़ेहुये तो सम्पूर्ण पृथ्वी पर्वतों के साथ कांपने लगी तथा नदी नद समुद्र ये सब क्षोभको प्राप्तहुये व

देवताओं को भी बड़ा क्षोभहुआ तब पराशरजी बोले हे मैत्रेयजी ! देवतालोग इन्द्रसे सम्मति करके ध्रुवजीके ध्यान में विघ्न करने भी यत्नमें उतारूहुये इन्द्र की आज्ञा पाय कूष्माण्डलोग तरह २ के रूप बनाय २ आये माया की बनी हुई सुनीति अर्थात् ध्रुवजी की माता रोतीहुई आकर कहनेलगी कि हे पुत्र ! जिसमें शरीर नाश होजाने का भय ऐसे इस दारुणकार्य से निवृत्तहो बड़े २ मनोरथों से मुझे तुम प्राप्त हुयेहो सवति के कहनेसे दीन अनाथ मुझको त्याग न कीजिये मेरी तुम्हीं गतिहो कहा तो तुम्हारा पांचवर्ष का वय व कहां यह परमदारुण तपस्या तिससे निष्फल कष्ट देनेवाली इस तपस्या को मतकीजिये यह समय तो तुम्हारे खेलने व पढ़नेका है इसके अनन्तर भोग करने का समय आवेगा तिसके अनन्तर कहीं तप करने का समयहोगा हे पुत्र ! खेलनेकेसमय में ऐसा तप करतेहो क्यों अपने नाश होनेमें लगेहो तुम्हारा धर्म यही है कि जिससे मैं प्रसन्न रहूं इससे मेरे वचन से अपनी अवस्था के अनुरूप कामकरो व इस अधर्म से निवृत्तहो हे प्रियपुत्र ! जो तू इस तपस्या को नहीं छोड़ता तो देख तेरे देखतेही मैं भी प्राणों को त्याग करती हूं ध्रुवजी के सम्मुखही ऐसे विलाप करती हुई माताको ईश्वर में चित्तलगाये हुये ध्रुवजीने नहीं देखा तब हे वत्स ! इस भयकर वनमें बड़े २ राक्षस शस्त्रलियेहुये चलेआते हैं यहां से अन्यत्र चलेजाओ ऐसा कहकर सुनीति तो अन्तर्द्धान होगई व नाना विधि शस्त्र लिये हुये बड़े २ भयकर राक्षस प्रकटहुये व आय ध्रुवजी के सम्मुख खड़ेहो भयकर शब्द करनेलगे इधर चमकते हुये शस्त्रोंको घुमानेलगे व उनके डरवाने के लिये मुखसे अग्नि की ज्वाला निकलतीहुई सियारियां आय फेकरनेलगीं इसे मार डालो काटडालो खाडालो ऐसे सब राक्षस कहनेलगे किसी राक्षसका व्याघ्र कासा मुख किसी का ऊंटकासा किसीका मगर कासा सब आकर ध्रुवजी के भय देखलाने के लिये बड़ा नाद करनेलगे वे सब राक्षस व उनका भयंकर शब्द सियारियों का फेकरना नानाविधि शस्त्र यह कुछभी नारायण में चित्त लगाये हुये ध्रुवजी को नहीं विदित हुआ किन्तु ध्रुवजी एकाग्रचित्तहो केवल नारायण के ध्यानही में लगेरहे और कुछभी न जाना तब देवताओं की सब माया व्यर्थ होकर नष्टहोगई व देवतालोग ध्रुवके अनादर करनेसे बहुत डराये व परितापे व उनकी तपस्या से संतापितहो अशरणशरण परमकारुणिक श्रीनारायण के

शरणको प्राप्तहुये व बोले हे देवदेव पुराणपुरुषोत्तम! हमलोग ध्रुव की तपस्या से व्याकुल हो आपके शरणको आये हैं जैसे दिन २ चन्द्रमा बढ़ने २ पूर्णहोजाताहै वैसेही यह राजकुमार ध्रुव तपस्यासे पूर्ण होगयाहै आप उसको तपस्या करने से रोकिये किंच हम यह भी नहीं जानते कि वे इन्द्र सूर्य कुबेर वरुण व चन्द्रमा आदि में से किसकी पदवीको चाहते हैं जिससे महाराज ध्रुवको तपस्यासे रोक हमलोगों की छातीमे तीर निकालिये यह सुन अनाथनाथ लक्ष्मीनाथ बोले इन्द्र सूर्य वरुण कुबेरादि किसी की पदवीको परमोदार राजकुमार ध्रुव नहीं चाहता जो चाहता है हम जाय देते हैं तुमलोग न डरो व अपने २ स्थानों को जाओ तपस्या में लगेहुये ध्रुव को हम रोक देते हैं इसभांति परमसुजान श्रीभगवान् के कहने से सब देवगण अपने २ स्थानोंको गये व ध्रुव की तपस्या से प्रसन्न हो श्रीविष्णुभगवान् भी ध्रुव के निकट आये व बोले हे हमारे प्यारे ध्रुव! तुम्हारी तपस्या से हम अति सन्तुष्ट हुये व वरदान देने के लिये आयेहैं जो चाहो वर मांगो जिससे तुम बाहर के अर्थों की इच्छा नहीं रखते केवल हमींमें चित्त लगाये हो इससे बहुतही प्रसन्न हुये वर मांगो इतना सुन जैसेही नेत्र खोलेहैं देखा कि शङ्ख चक्र गदा धनुष खड्ग धारण किये मुकुट शिरपै धरे मन्द मन्द मुसकाते हुये श्रीहरि आगे खड़े हैं बस देखतेही स्तुति करने के लिये पृथ्वी पर दण्डवत् गिर परे व सोचने लगे कि कैसे इनकी स्तुति करें इसभांति व्याकुल हो उन्हीं के शरण को प्राप्तहुये व बोले हे भगवन्! जो इस दीन के ऊपर प्रसन्न हुयेहो तो मैं आपकी स्तुति किया चाहताहूं उसके योग्य बुद्धि दीजिये क्योंकि वेद वेदान्त जाननेवाले ब्रह्मादि देवगण जो आपकी गति नहीं जानते तो मैं बालक कैसे स्तुति करसक्ता हूं तुम्हारी भक्ति में मेरामन बहुत लगा है व स्तुति करना चाहता हूं इस में वैसी गति दीजिये यह सुन श्री हरिने हाथजोड़े हुये ध्रुव के गाल में शङ्ख छुआदिया कि वे प्रसन्नहो स्तुति करने लगे॥

चौ० धरणि तोय पावक अरु वाता। इन्द्रिय मनमति प्रकृतिविधाता॥
सब तव रूप भणति पति नाथा। बार बार तवहिं नावहुँ माथा॥ १॥
शुद्ध सूक्ष्म व्यापकहु प्रधाना। जासु रूप भणतों भगवाना॥
भूमिगन्ध गुण बुद्धि प्रधाना। परम पुरुष पर जो भगवाना॥ २।
साम कहत पर भक्त नीके। शुद्ध रूप परमेश्वर ठीके॥

सहस शीर्ष लोचन अरु पादा। जासु दया करिये मुनि नादा॥ ३॥
व्यापकमहिं व्यापक दश आगुर। जोहरि त्यहि वन्दौं नहिं चातुर॥
भूत भव्य सब तुम पुरुषोत्तम। तुम विराट सम्राट सदोत्तम॥ ४॥
अध ऊरध तिर्य्यक क्षिति केरो। भूत भविष्य विश्व श्रुति टेरो॥
तुम सन यज्ञअनल घृत अरुपशु। ऋचासाम सबछन्द परम यशु॥ ५॥
तुम सन यजु तुरग गोमृगगण। अजाअवी महिषादि शुद्धमण॥
तव मुख सो ब्राह्मण तव बाहू। क्षत्रिय ऊरु वैश्य युत लाहू॥ ६॥
पदसों शूद्र सूर्य्य तव लोचन। प्राण पवन विधु मनभव मोचन॥
प्राण सुषुम्ना सों मुख पावक। नाभिगगन शिरस्वर्ग सुभावक॥ ७॥
कर्ण दिशा महिपद सों होई। सकल पदारथ तुम नहिं गोई॥
अल्पबीजमहँ जिमि वटभारी। तिमि तुममहँ यह विश्वकरारी॥ ८॥
जिमि सुबीज सों अंकुर तासू। घट महान यह बात खुलासू॥
तिमि तुमसन यह जग भगवाना। बढ़त घोरहौ सों श्रुति माना॥ ९॥
जिमि कदली नाड़ी महँ नाथा। त्वचा जलादि लखात न गाथा॥
इमि जगनाड़ी तुम जगदीशा। तुममहँ स्थितियाकीनहिंकीशा॥ १०॥
रूप प्रकाशकरी अरु सघिनि। उभयशक्ति तुममहँ हरिनिदिनि॥
नहिं सो शक्ति जीव महँ स्वामी। जबलगहोय न तव अनुगामी॥ ११॥
सो सात्त्विकी प्रकाशत जोई। अरु तामसी ताप कृति होई॥
उभय सहित राजसी बखानी। तुमसों बाहर नहिं कछुजानी॥ १२॥
पृथक भूत इक भूत भूतभव। बहुरि प्रभूत भूत भव मानव॥
भूतात्मा तव चरण नमामी। जगदात्मा सब अन्तर्यामी॥ १३॥
व्यक्त प्रधान पुरुष तुम स्वामी। पुनि स्वराट सम्राट निशामी॥
अरु विराट तव हृदय मँझारी। सततसकल्पणगत दिरधारी॥ १४॥
तुम सबमहँ तुमसन सब होई। पुनि सब तुम सब रूप न गोई॥
आदि मध्य अवसान मुरारी। रहे जहाँ रहिहहु सबहारी॥ १५॥
सर्वात्मक सर्वेश कृपाला। सर्व भूतगत होहु दयाला॥
जासों इमि सबरूप रमारम। तासों जाना जाय हृदयमर॥ १६॥
गाय्यहहुँ न्यतिशारन नाहीं। कृपाकरहु परम मम पाहीं॥

जो मम हतो मनोरथ स्वामी। सफल कीन्हतुम अन्तरयामी॥ १७॥
अरु सब तपसो सफल मुरारी। जो तव दर्शन भो अघहारी॥
करत प्रणाम बहोरि बहोरी। मतिअनुसार नाथ नहिं खोरी॥ १८॥

जब इतनी स्तुति ध्रुवजीने की करुणानिधान श्रीभगवान् बोले हे ध्रुव! जो हमारा दर्शन तुमने पाया तपस्या का फल तो हुआ परन्तु अब दर्शन होनेका भी फल होना चाहिये क्योंकि हमारा दर्शन निष्फल नहीं होता इस से जो कुछ अभीष्टहो वर भी मागो क्योंकि हमारे दर्शन होने पर पुरुषको सब कुछ मिलता है ध्रुवजी बोले हे स्वामिन्! आप सब प्राणियों के स्वामी हैं व सबके हृदयमें रसते हैं इससे जो मेरे हृदयमें है क्या आप नहीं जानते तथापि जो मेरे हृदयमें है मागताहू क्योंकि आपके प्रसन्नहोनेसे त्रिलोकी में कुछभी दुर्लभ नहीं रहता इन्द्रभी तुम्हारीही कृपासे त्रिलोकीनाथ हैं जोकि मेरी सौतेली माताने अहंकार में मुझसे कहाथा कि हमारे पेटमे तुम उत्पन्न नहीं हो इससे यह राज्यासन तुम्हारे योग्य नहीं इससे आपके प्रसाद से ऐसा स्थान चाहता हू जो सब स्थानों में उत्तम से उत्तम हो व कभी उसका नाश न हो श्रीभगवान् कृपानिधान बोले हे ध्रुवजी! तुमने मागा सो पावोगे क्योंकि तुम ने हमको पूर्व्वजन्ममेंही प्रसन्नकर राखा है पूर्व्व जन्म में अपनी माता पिताके सेवक व निज धर्म्मों के पालक तुम एक ब्राह्मण थे कुछदिन बीतेपर एक राजकुमार तुम्हारा मित्र हुआ वह नानाप्रकार के भोग विलास करने से बडा तेजस्वी जान पड़ता था जिसके संगमे उसकी राज समृद्धि देख तुम्हारे वाञ्छाहुई कि हमभी राजकुमार होते तो अच्छा था तिसीहेतु राजा उत्तानपाद के तुम पुत्रहुये पर यह उत्तानपादके घरमें उत्पन्न होना जो योगीजन हमारेभक्त नहीं हैं उनको तो अतिश्रेष्ठ व दुर्लभ है पर हमारे भक्त तुमलोगोंके लिये अनितुच्छ है क्योंकि हमारी आराधना से प्राणी मोक्ष पाताहै उसको स्वर्गादि फल कुछ दुर्लभ नहीं इससे हमारे प्यारे ध्रुव तीनोंलोकों से अधिक स्थान में जिसकी प्रदक्षिणा सूर्यादि किया करते हैं तिसजोगे हमारी प्रसन्नता का यही प्रसाद है और सूर्य चन्द्र मंगल बुध बृहस्पति शुक्र शनैश्चर सब तारागण सप्तर्षि अन्य विमानोंपर चढ़नेवाले सब देवगण इन सबसे ऊपर तुमको स्थानदिया कोई कोई देवतालोग ४ युगतक अपने स्थान पर रहते हैं कोई २ मन्वन्तरभरि पर हमने

तुमको कल्पपर्यन्त रहनेके लिये स्थान दियाहै व तुम्हारी माता सुनीति भी अतिनिर्मल स्वरूपिणी तुम्हारेही निकट ताराहो जबतक तुम वहां रहोगे रहेगी किंच जो मनुष्य प्रात व सन्ध्या समय तुम्हारा स्मरण करेंगे उनको बड़ी पुण्य मिलेगी इसभांति जगन्नाथ देवदेव जनार्दन भगवान् से वरपाय यहां बहुतसुख भोग उभी श्रीहरिके बताये हुये स्थान को ध्रुवजी गये व तिनकी इस विभूतिको देख देवता व असुरों के आचार्य ने यह श्लोक पढ़ा अहो इसकी तपस्या का पराक्रम व फल कि जिससे सप्तर्षि लोग इसको आगे कर प्रदक्षिणा करते हैं व इस ध्रुवकी माता सुनीतिकी महिमा कौन कहसक्ता जिसने ध्रुवको उत्पन्नकर ऐसा स्थान पाया जो सबोंको दुर्लभ है जो यह ध्रुव का स्वर्गारोहण कहेगा वह सब पापोंसे छूट स्वर्ग में बसेगा व चाहे स्वर्गहो वा पृथ्वीहो कभी स्थान न छूटे गा व नर कल्याण सहित बहुत दिन जीवेगा ॥

तेरहवां अध्याय ॥

दो॰ तेरहयें अध्याय ध्रुव वंश कहब जहँ वेन ॥
उपजि जरेउ द्विज कोपसों पुनि पृथु जनि सुखदेन ॥ १ ॥

श्री पराशरमुनि बोले कल्याणरूप ध्रुवजीकी स्त्रीका शम्भु नामथा जिससे श्लिष्टि व भव्य दोपुत्रहुये शिलाष्टकी सुच्छाया नाम स्त्रीसे रिपु रिपुंजय विप्र वृकल वृकतेज ये पांचहित ५ पुत्रहुये रिपुकी बृहती नाम स्त्रीसे अतितेजस्वी चाक्षुष पुत्रहुआ व अवर्म वरुणके वंशमें उत्पन्न हुये बुद्धिमान् अनरण्य प्रजापतिकी कन्या पुष्करिणी में चाक्षुषमनु छठें मन्वन्तरके पति उत्पन्नहुये फिर मनु से वैराज प्रजापतिकी कन्या अति तेजस्विनी नड्वला स्त्रीमें ऊरु १ पुरु २ शतद्युम्न ३ तपस्वी ४ सत्यवाक् ५ शुचि ६ अग्निष्टुत् ७ अतिरात्र ८ सुद्युम्न ९ व अभिमन्यु १० पुत्रहुये ऊरुसे अग्निकी कन्या महाभागामें अंग १ सुमन २ ख्याति ३ क्रतु ४ अंगिरा ५ औ शिव ६ ये छःपुत्र हुये अंगसे सुनीथानाम पत्नीमें वेन नाम पुत्रहुआ सन्तानके लिये ऋषियोंने जिसका दहिना हाथ मथा जिससे महामति परमप्रवीण अतितेजस्वी महाराजाधिराज पृथुजी उत्पन्नहुये जिन्होंने सब प्रजाके लिये पृथ्वी दुही थी इतनी कथासुन मैत्रेयजी बोले कि किस लिये ऋषियोंने वेनका दहिना हाथ मथा जिससे अति पराक्रमी महाराज पृथु हुये पराशरमुनि बोले सुनीथा

कन्याका सुनीथा नामथा वह राजा अग को व्याहीगई उसमें वेन नाम पुत्र हुआ वह अपने नाना मृत्युके दोषसे जन्महीसे अनिष्ट हुआ जैसेही ऋषियोंने उसके पिताके पीछे उसे राज्यके लिये अभिषेकित किया वैसेही उसने अपने राज्यमें ढोंढ़ी पिटादी कि हमारे राज्यमें कोई भी यज्ञ दान होम न करै यज्ञभोग करनेवाला हमसे दूसरा कौन है हमी यज्ञों के पति व स्वामी हैं तब सब ऋषि लोग राजा वेन के निकट आय समझाने लगे हे महाराज! आपके राज्य व देह व प्रजाके कल्याण के लिये जो २ हम लोग कहैं कृपापूर्वक सुनिये १०० वर्षतक बड़ाभारी यज्ञ करैं व उस में सबयज्ञों के स्वामी श्रीहरिकी पूजा करैं उसमें छठाअंश आपको भी मिलेगा हमलोग जब यज्ञसे श्रीहरिकी पूजाकरेंगे तो वे यज्ञसे प्रसन्नहो आपकी सब कामना पूर्ण करेंगे हे राजन्! जिन राजाओंके राज्यमें यज्ञपुरुष श्रीविष्णु पूजे जाते हैं तिनको सब कुछ देते हैं यह सुन राजावेन बोले हमसे अधिक दूसरा कौनहै व कौन आराधना करनेके योग्य व वह हरि कौन है जिसे तुमलोग यज्ञेश्वर समझते हो क्योंकि ब्रह्मा विष्णु महादेव इन्द्र पवन यमराज सूर्य अग्नि वरुण धाता पूषा धरणी चन्द्रमा इन्द्रआदि अन्यभी जो देवगण हैं सब शापदेने व क्षमा करने में समर्थ हैं ये सब राजाके शरीर में सदा रहते हैं इससे राजा सर्व्वदेवमय होता यह जान जो हमने आज्ञादी है कि यज्ञ दान होम कुछ न करो तिसकी पालना करो जैसे स्त्रियों को अपने २ पतिकी सेवा करनी चाहिये तैसेही तुम प्रजा लोगोंको राजाकी सेवा व तिसकी आज्ञाका पालन करनाचाहिये ऋषिलोगोंने यहसुन कहा राजन्! यज्ञादि करनेकी आज्ञा दीजिये जिसमें धर्म न नाशहोवे यह सब संसार केवल यज्ञही के करने से चलाजाता है धर्मक्षीण होनेसे जगत् भी क्षीण होजावेगा इसभांति ब्राह्मणों ने दशबीस बार समझाया पर राजावेन उसीप्रकार बकता रहा यज्ञादि करनेकी आज्ञा नहींहुई तबतो सब मुनियों ने बड़ाकोप करके आपसमें कहा इसपापी राजाको मारडालो मारडालो यह किसीतरह राज्यके योग्य नहीं क्योंकि यह पुरुष अनादिनिधन सबके स्वामी विष्णुजी की निन्दा करताहै यह कह मन्त्रपढ़ कुशासे घोर जल छिरकदिया राजा तो भगवान्की निन्दासे पहिलेही मरचुका था पर उस जलके पड़ने से अच्छीभांति मृतक होगया राजाके मरने के थोड़ेही दिनोंके पीछे चारोंओर से बड़ी धूरि उड़ती हुई देख

ऋषियों ने लोगोंसे पूछा धूरि कहासे आतीहै लोगोंने कहा राज्य विना राजा के होगयाहै इससे चोरलोग सबका धन लूटते व धूरि उड़ाते हैं यहलोग कहीं रहते थे वहां भी धूरिपहुंची तब सब मुनियों ने सम्मत करके पुत्र होनेके लिये मन्त्रपढ़ २ राजाकी जाँघ मथी उसमें से एक अतिकुरूप बहुतही छोटे डौलका काला मनुष्य निकला व उसने ऋषियों से पूछा कि क्याकरू उन्होंने कहा (निषीद) बैठ इससे उसका निषाद नामहुआ व उसके वंशवाले तभीसे विन्ध्याचल पर्वत में बसनेलगे बहुधा इनलोगों की चोरीही जीविकाथी उस पापरूप निषाद के होनेसे राजाका शरीर निष्पाप होगया फिर मुनियोंने राजशरीरका दहिना हाथ मथा उससे महाप्रतापी सब शुभगुण सहित पृथुजी उत्पन्न हुये जिनका शरीर अपनेही तेजसे ऐसा प्रकाशित था मानो दूसरी अग्निही की मूर्त्तिहै ऐसे महाराजाधिराज के होनेही आकाश से महादेवजी का अजगव नाम धन्वा व बाण व (कवच) बख्तरादि सबआये व सब लोग परमानन्दित हुये इनके होने से वेन ऐसे पापी भी स्वर्गको चलेगये क्योंकि पुत नाम नरकसे जो रक्षाकरै उसीका पुत्रनामहै सो नरकसे अपने पिता की रक्षा इन्होंने की व उसीसमय अभिषेकके लिये सब समुद्र व नदियां मनुष्यमूर्त्तिसे अपना २ जल व रत्न लाईं ब्रह्माजी मरीच्यादि मुनियों को सग लेआये अन्य सब नगे घर पहुँचे व सबोंने अभिषेक किया ब्रह्माजी महाराज पृथु के दहिने हाथमें चक्र देखकर विष्णुजीका अवतार समझ प्रणामकर परमानन्दित हुये इसभाँति ब्रह्माजी के आगेही सब महा महा कोविद ऋषियोंने ऐसे महाराज्य पै महाराजाधिराज पृथुको स्थापितकिया व इन्होंने अपने पितासे क्लेशित सब प्रजाओं को भलीभाँति प्रसन्नकिया क्यों न करें राजा उसीका नाम होताहै जो प्रजाओं अनुराग करें महाराजाधिराज पृथुजी राज्यमें जब कभी कहीं जाते थे तो नदियां थाह होजाती थीं समुद्रका जल थँभजाता पृथिवीमें विना जोते केवल चिन्तना करनेही से अन्न उपजता था गायों से जब चाहो दूध दुहलेते व जब ये पैतामह यज्ञ करनेलगे कि सूत व मागध दो उत्पन्नहुये उन्होंने कहा राजाकी स्तुति करनी चाहिये यह सोनकर ऋषियों से पूछा इन नये राजाके गुण हमलोग अभी कुछ नहीं जानते आपलोग जैसा बतावें वैसी स्तुति करें ऋषिलोग बोले हे सूत व मागध ! ये महाराजाधिराज चक्रवर्त्ती जो २ गुण व कर्म आगे

करेंगे उन्हीं २ गुण कर्म्मों से इनकी स्तुतिकरो महाराज भी इस बातको सुन बहुत प्रसन्न हुये कि ये लोग वर्णन तो करें भला हम अपने गुण दोष जान तो लेवें व जो २ ये दोनों हमारे गुण वर्णन करेंगे सो २ हम करेंगे जो दोष बतावेंगे उन्हें न करेंगे इसकेपीछे सूत मागध दोनों बड़े ऊंचेस्वर से राजाके होनेवाले गुण कहनेलगे कि ये महाराजाधिराज सत्यवचन दानशील सत्य प्रतिज्ञा लज्जावान् सबके मित्र क्षमाशील अतिपराक्रमी दुष्टोंके शिक्षक धर्म्मज्ञ कृतज्ञ दयावान् प्रियवचन मान्यों को माननेहारे यज्ञकर्त्ता ब्रह्मण्य साधुवत्सल व्यवहारमें शत्रु मित्र सब से समता करनेवाले होंगे सूत व मागधने जो २ गुण कहे महाराज उन सबको अंगीकार कर राज्य करने व विविधभांति यज्ञ करनेलगे पर जब कोई राजा न था उनदिनों अन्न फलादि सबका होना भी बन्द होगयाथा इससे प्रजा बड़े दुःखमें थी जब ये राजाहुये सारेभूखोंके इनके शरणमें आई व बोली हे प्रजानाथ। जब अराजकथी पृथिवीने सब अन्नादिकों को चुरालियाथा इस हेतु सब प्रजा मरी जाती है व आप हमलोगों के वृत्ति करनेवाले व प्रजापालक बनाये गये हैं इसलिये हम भूखी प्रजाओंको अन्नादि दीजिये यहसुन राजा धनुर्बाणले अतीव क्रोधकर धरणीके मारनेके लिये दौड़े वह गायका वेषधर भागी भागते २ ब्रह्मादि लोकों को गई पर जहांही घूमकर देखा धनुर्बाण लिये राजा पीछे खड़ेहैं जब जाना यहां भी बचाव नहीं मारे भयके कांपतीहुई राजासे बोली हे पृथिवीपाल कृपालु। हमको मारना चाहतेहो क्या स्त्रीवधमें कुछ दोष नहीं देखते उसमें तो बड़े २ दोषहैं यहसुन राजा पृथु बोले जो एक दुष्ट के मारनेसे बहुतोंका कल्याण हो तो उसके वधकरने में कुछ दोष नहीं होता पृथिवी बोली हे नृपश्रेष्ठ। जो आप प्रजाके उपकार के लिये हमको माराचाहते हो तो हमारे न होनेपर प्रजा कहां रहेगी राजा ऐसे वचन सुन बोले हमारी आज्ञाके प्रतिकूल चलनेवाली तुमको बाणों से निन्न २ उड़ादेंगे और अपने योगबलसे प्रजाको धारणकरेंगे यह सुन धरणी फिर कांपतीहुई बोली सबकार्य उपायसे सिद्ध होतेहैं तिस मे हम उपाय बतातीहैं जो आपको रुचै तो कीजिये हे राजनाथ। सब अन्नादि ओषधियां हममें पचिन हो गई जो आप इच्छाकरतेहो तो दूधरूप करदीजिये यों तो अब नहीं निकल सकीं जिससे हे प्रजापाल! प्रजा व हमारे हितके लिये बहुत पुत्राके बछड़े

बनाइये जिसमें हम पन्द्राकार सब पदार्थ चुवादेवें पर हमें बराबर भी अवश्य करदीजियेगा जिससे दुग्धरूप सब ओषधियां अपने २ स्थान पर जमें यहसुन महाराज पृथुजीने जो सर्वत्र पृथिवीपर पर्वतही पर्वतथे दूर २ धनुषकी नोकसे तुड़फाड़कर स्थापित करदिये प्रथमकी भी सृष्टि में ग्राम पुर नगरादिकोंकी बस्ती न थी पृथिवीके विभागथे इस सृष्टिमें भी महाराज पृथुके प्रथम खेतीपाती कुछ नहीं होतीथी जब पृथुजीने पृथिवी को बराबर कर ग्राम पुरादि बसादिये व लोगजोतने बोनेलगे व प्रजाओंके लिये अन्नफल पुष्पादि सब होने लगे अब इस सबके होनेका क्रम लिखते हैं प्रथम राजाने स्वायम्भुवमनुको बछड़ा बनाय अपने हाथही को दोहनी समझ गोरूप धरणी दुही उससे सब अन्न प्रजाके अर्थ निकले अबतक भी उसी अन्नसे प्रजा बढ़ती है पृथिवी के प्राण जिससे पृथुजीने छोड़ दिये इससे वे उसके पिता ठहरे व इसी से इसका पृथ्वीनाम हुआ ॥

चौ० पुनि सब देव पितर मुनि नागा। दैत्य निशाचर सुत अनुरागा ॥
यक्ष वृक्ष गन्धर्व समेता। निज अनुरूप पात्र ले नेता ॥ १ ॥
वत्स दोहनी निज अनुरूपा। करि वाञ्छित दुहिलीन सुरूपा ॥
भये अनन्द सकल सब पाई। अब न परत कछु कमी देखाई ॥ २ ॥
यह पृथिवी जननी सब केरी। पालन पोषण करनि घनेरी ॥
पुनि सब सुतन्ह सदा सब भांती। यासों सेवत यहि जन पांती ॥ ३ ॥
इमि प्रभाव सुन पृथु धरणीशा। प्रथम महीपति भयउ मतीशा ॥
पुनि जनरञ्जन सों भे राजा। अमितप्रभाव सकल गुणभ्राजा ॥ ४ ॥
वेन तनय नृप वर पृथु गाथा। जो यहि पढ़िहि सो होइ सनाथा ॥
तासु न दुष्कृति कौनिउ भांती। सत्य कहत नहिं ठकुरसुहाती ॥ ५ ॥
अरु जो सुनत रहत नहि शोका। पृथु चरित्र जो करत अशोका ॥
यह मैत्रेय कहा तुम पाहीं। पृथु जो पृथु धरणि दुहाहीं ॥ ६ ॥

चौदहवां अध्याय ॥

सो० चौदहवें अध्याय महँ पृथु के वंश प्रवेश ॥
जड़पथि करी तपहुगिरिमें भज, सृष्टिपरत्व ॥ १ ॥
सोई वर्णन सुजान जा सुनिये होइ प्रगस ॥

हरिहरिजनयशश्रवणमां कुछनचहतमुनिमश्च ॥ २ ॥

श्रीपराशरमुनि बोले राजा पृथु के अन्तर्द्धान व पालित दो पुत्र हुये अन्तर्द्धान से शिखण्डिनी स्त्री में हविर्द्धान नाम तनयहुआ हविर्द्धानमे अग्नि के वंशमें उत्पन्न धिषणानाम नारी में प्राचीनबर्हिष १ शुक्र २ गाय ३ कृष्ण ४ व्रज ५ व अजिन ये ६ पुत्र हुये ये महाराज प्राचीनबर्हिष बड़े प्रतापी व धर्मात्माहुये इनसे बहुत प्रजाओंकी बढ़ती हुई व ऐसे २ यज्ञ इन्होंने पृथिवी में किये जिनमे कुश धरने से कहीं धरणी खाली न रही इससे ये अतिप्रसिद्ध महाराज हुये हैं इनका सवर्णानाम समुद्रकी कन्याके साथ विवाहहुआ उसमें इनसे १० पुत्र हुये उन सबोंका प्रचेतस एकही नाम हुआ ये लोग धनुर्विद्या में बड़े प्रवीणथे व सबका एकही स्वभावथा इसीमें एक सग समुद्रके भीतर सबों ने जाकर १०००० वर्ष तक तपस्याकी इतनी कथा सुन मैत्रेयजीने पूछा हे पराशरजी! प्रचेतसों ने समुद्रके भीतर क्यों तपस्याकी कृपा करके कहिये पराशरजीने कहा सुनिये इनके पिता प्राचीनबर्हिष से ब्रह्माजीने कहा प्रजा बढ़ाओ तब उन्होंने १० पुत्र उत्पन्न करके कहा हे प्यारो! हमसे ब्रह्माजी ने प्रजा बढ़ाने के लिये कहाहै सो हम तुमको आज्ञा देते हैं जिसभांति बने प्रजा बढ़ावो यह सुन प्रचेतसलोग बोले बहुत अच्छा पर यह तो बतलाइये कि कौन उपाय करें जिसमें प्रजा बढ़े प्राचीनबर्हिषजी ने कहा सब कुछ देनेवाले श्रीविष्णुजी की आराधना विना मनुष्य कुछभी नहीं करसक्ता बहुत क्याकहें तिससे जो सिद्धि की इच्छाहो तो सर्वभूतोंके स्वामी श्रीहरिकी आराधना करो धर्म अर्थ काम व मोक्ष इनकी जिसको इच्छाहो उसे चाहिये कि पुराणपुरुषोत्तम श्रीहरिकी आराधना करे जिस विष्णुकी आराधना करके सबसे प्रथम ब्रह्माजीने सृष्टि की है तुमभी तिसीको आराधो प्रजाकी वृद्धिहोगी जब प्रचेतसों के पिताने ऐसा कहा ये सब समुद्रके भीतर खड़ेहो श्रीहरिका स्मरण करनेलगे व १०००० वर्ष तक वहीं करतेरहे व वह बड़ाभारी स्तोत्रहै जिसमें प्रचेतसलोग श्रीनारायण सर्व लोकपरायण की स्तुति करतेरहे मैत्रेयजी ने यह सुन पूछा हे मुनिश्रेष्ठ! जिस स्तोत्रमे उन लोगोंने श्रीहरिकी स्तुतिकरी हमसों सनातन मति से कहा सुनिये॥

चौ॰ सकल जगतपति प्रभु भगवाना। जहँ सब रचन प्रतिष्ठा थाना॥
प्रणवों सो हरि सहित विधाना। करहु सदा प्रभु मम कल्याना॥ १॥

स्थावर जंगम सब जग स्वामी। उपमारहित ज्योति सगगामी॥
करौं प्रणाम बहोरि बहोरी। नाथ कृपा कीजे यहि ओरी॥ २॥
दिन अरु रात्रि रूप है जासू। यद्यपि अरूप फणीश प्रकासू॥
कालरूप सो कृपानिधाना। करहु कृपा श्रीपति भगवाना॥ ३॥
देव पितर ऋषि सुधा समाना। सोम रूप तव श्रीभगवाना॥
जीव भूत भोगत सब कोऊ। चन्द्ररूप त्यहिं विनय सुनाऊ॥ ४॥
जो निज प्रभा हरत अँधियारी। घाम शीत जलप्रद अधिकारी॥
सूर्यरूप त्यहि प्रणवौं नीके। कृपा करहु हम पर गनि जीके॥ ५॥
जो काठिन्य रूप जग भारी। शब्द गन्ध आश्रय करि भारी॥
भूमि रूप सो प्रणत कृपाला। प्रणवौं सबविधि तजिके जाला॥ ६॥
योनि सकल भूतन की जोई। सकल शरीरि बीज जो होई॥
सो जलरूप अनूप विधाता। नमो नमो दीजे सुखदाता॥ ७॥
हव्य कव्य सुर पितृ मुख होई। जो भोगत नित नहिं यहुँ गोई॥
अग्निरूप सो श्रीहरि आशू। कृपा करहु सबलोक प्रकाशू॥ ८॥
प्राण अपान उदान समाना। व्यान रूप तुम श्रीभगवाना॥
पञ्च प्रकार प्राणि के देहू। बसत वायु तनु तुम न सँदेहू॥ ९॥
सकल जीव अवकाश शरीरा। शुद्ध अनन्त मूर्ति यदु वीरा॥
व्योम रूप प्रणवौं हरि तोहीं। करिये कृपा दरश दे मोहीं॥ १०॥
सब इन्द्रिय गणके सुखदाना। शब्द रूप तुम कृपानिधाना॥
सुनिये विनय सकल नयपाला। हमहिं दरश दे करहु निहाला॥ ११॥
इन्द्रिय रूप विषय सब माहीं। अक्षर क्षरण शील जो आहीं॥
ज्ञानरूप विनवौं सो स्वामी। जो घट घट कर अन्तर्यामी॥ १२॥
इन्द्रिय सों गहि अर्थ बहोरी। जीव निकट पहुँचावत ओरी॥
अन्तःकरण रूप सो स्वामी। विनय सुनहु मम अन्तर्यामी॥ १३॥
जासों होत जगत त्यहि माहीं। पुनि प्रविशत कछु अन्तर नाहीं॥
प्रकृति रूप सो दयानिधाना। लेहु प्रणाम महान महाना॥ १४॥
अज अविकार शुद्ध गुणहीना। प्रकृति निरन्तर परम प्रवीना॥
ह्रस्व अदीर्घ अरूप अथूला। अनणु शरीर रहित गतमूला॥ १५॥

अनाकाश विन गन्ध रसादी । नयन कर्ण वच विना अमादी ॥
नाम गोत्र सुख तेज विहीना । अमयभ्रान्ति विनअजरनदीना ॥ १६ ॥

इसप्रकार प्रचेतसोंकी स्तुतिसुन गरुड़पै चढ़े समुद्र के भीतर श्रीभगवान् ने दर्शनदिया प्रचेतसों ने फिर भलीभांति प्रणाम किया श्रीभगवान् ने कहा हम तुम्हारे ऊपर प्रसन्न हैं जो चाहो वरमांगो उन्होंने यही मांगा कि जैसा हमारे पिता चाहते हैं प्रजा बढ़े श्रीभगवान् अच्छा कहकर अन्तर्द्धान होगये और प्रचेतस, जलसे निकसे ॥

पन्द्रहवां अध्याय ॥

दो० पन्द्रहवें अध्याय महँ मार्षीजनि त्यहि माहिं ॥
दक्षजनन तासों कहब सृष्टि बड़ी सुनु ताहिं ॥ १ ॥

पराशरमुनि बोले हे मैत्रेय ! जबतक प्रचेतस तपस्या करतेरहे उस समय कोई राजा नहीं रहाथा क्योंकि प्राचीनवर्हिष को नारदजी ने ऐसा उपदेश दियाथा कि वे सब छोड़ वनको तप करने चलेगये थे इसलिये पृथ्वी पर सब वृक्षही वृक्ष होगये थे कहीं भी जोतने बोने को धरणी नहीं रह गई थी इसलिये बहुतसी प्रजा मरगई थी वृक्षों के ही कारण पवन भी नहीं चलती थी जब प्रचेतस तपस्या करके निकसे वृक्षों को देख बड़ाही कोप किया व मुख से पवन व अग्नि छोड़ी सब वृक्ष जरने लगे पहिले वायु के जोर से वृक्ष उखड़ पड़ते फिर अग्नि से जलते फिर पवन उड़ालेजाती जब इसभांति बहुत वृक्ष जरगये थोड़ेही रहगये तब वृक्षोंके राजा चन्द्रमाजीने प्रचेतसों से कहा हे राजकुमारो ! कोप शान्त करो इन वृक्षों से भी आपलोगों का कुछ काम निकलेगा अर्थात् इनके एक कन्या है उसे लेकर दशोंजने अपनी स्त्री बनावो इसका मारिषा नाम है ले जावो आधे तुम्हारी तपस्या के तेजसे व आधे हमारे तेजसे इससे महाप्रतापी दक्षप्रजापति नाम पुत्रहोगा उससे बड़ी सृष्टि चलेगी यह कन्या वृक्षों को इसभांति मिली कि एक कण्डुनाम मुनि थे वे सुगमणीक गोमती नदी के किनारे तपस्या करतेथे उनके चलायमान होनेके लिये इन्द्र ने प्रम्लोचानाम अप्सरा भेजी उसने मुनिको अपने वश करलिया मुनि १०१ वर्षतक मन्दराचल पर जाय उसके संग विहार करते रहे एक दिन मुनि ने कहा

मैं इन्द्रलोक को जाया चाहतीहूं आज्ञा दीजिये मुनि उसमें आसक्तथे येही कहा कुछदिन और रहजावो शाप के भयसे वह रहगई इतने में १०१ वर्ष फिर बीते फिर उसने मुनिसे कहा मुनिने फिर उसे बिलमाया इसभांति कईबार कहा सुनी हुई एकदिन मुनि उठे व हरबराते हुये नदीकी ओर चले अप्सरा ने कहा कहां जाइयेगा मुनिने कहा बोलो नहीं सन्ध्या करनेका समय है काल बीतजावेगा उसने हँसकर कहा सैकड़ों वर्ष होगये आपको सन्ध्या करते नहीं देखा मुनिने कहा सत्य २ कहती है व हँसी आ करती हा क्यो तो तू प्रात सन्ध्याके पीछे मिलीथी और यह सायं सन्ध्या का समय है सत्य सत्य बताव कितना समय हुआ हास्य न कर अप्सरा बोली हास्य नहीं करती आपको मेरे सग विहार करतेहुये ६०७ वर्ष ६ मास ३ दिनबीते ऋषि बोले सत्यही कहती है हमतो यही मानते हैं कि तुम्हारे सग विहार करनेमें हमको एकही दिन बीताहै अप्सराने कहा आप के सामने मैं झूठ क्यों कहती फिर पूछनेपै तो ऐसे महात्मा के सामने कोईभी झूठ न कहेगा यहसुन मुनिने बड़ा पश्चात्तापकिया हाय मैंने सबअपनी तपस्या नष्ट करदी व ब्रह्मज्ञानियोंका धर्म्म जो वेद व ब्रह्म तिसे नष्टकरके इस वेश्याके सग भ्रष्ट होगया हाय मेरा विवेक कहांगया काम क्रोध लोभ मोह मद मात्सर्यादि दोषों को जीतकर यह ब्रह्मज्ञान मैंने बटोरा था जिस कामने मेरी यह दशा की उसे भी धिक् है हाय वेदविद्या के कारण ये सब धन एकत्र हुये थे उन्हें मैंने नरक समूह के मार्ग्ग से नष्ट कर दिये इस भांति बहुत पछिताकर उस अप्सरासे बोले हे दुष्टे! इन्द्रलोक को अभी चलीजा तूने इन्द्रका काम अच्छीभांति किया नहीं तो तुझको अभी भस्म करूंगा क्याकहूं तेरेसग इतने दिन रहानहीं तो भस्म करही देता अथवा तेरा भी कौन दोषहै हमीं अजितेन्द्रिय होगये नहीं तो इन्द्र के प्रिय करनेवाली व महामोह की प्यारी व अतीव निन्दित तू मेरा तप क्याहै को नाशती जबतक मुनि इस भांति रोते पीटते कहते रहे तबतक उसे मारे भय के मूर्च्छा आगई व सर्वांग मे पसीना बहा मुनि ने बड़ा कोपकरके फिर कहा चलीजा चलीजा यहसुन मुनिके आश्रमसे प्रम्लोचा आकाशमार्ग्ग हो भागी व वृक्षों के पत्तों में अपना पसीना पोंछनेलगी इसकारण जो ऋषिके बीजसे उसके गर्भ था यह रोम २ की राह निकल वृक्षों में टोरहा पवन ने उस को उड़ाय एकत्र कर दिया व चन्द्रमा महराने

कि हमने अपने किरणों से पोषण कर बढ़ाया वही मारिषा नाम कन्या वृक्ष लोग तुमको देते हैं क्रोध न कीजिये यह कण्डुमुनि की कन्या वृक्षों से उत्पन्न हमारी व वायु व प्रम्लोचाकी भी बेटी आपलोग लेवें पराशरजीबोले हे मैत्रेय! जब कण्डुजी की तपस्या भ्रष्टहोगई तो मुनि बदरिकाश्रम को चलेगये व वहां ऊपरको बाहु उठाकर फिर तपस्या करनेलगे यह सुन प्रचेतसोंने चन्द्रमा से पूछा कि कण्डुमुनि जब फिर तपस्या करनेलगे तो कौन स्तोत्र जपते थे सुनाइये चन्द्रमाने कहा सुनिये॥

चौ० परम्पार हरि अपरम्पारा। परसे पर परमार्थ विचारा॥
ब्रह्म पार पर पार स्वरूपा। परसे पार पार पर भूपा॥ १॥
कारणसहित अकारणगामी। तासु हेतु परहेतुक स्वामी॥
कार्य कर्म कर्ता तुम होई। पालतसबहि तनिकनहिंगोई॥ २॥
ब्रह्म समर्थ ब्रह्म सबकारक। ब्रह्म प्रजापति अच्युत पारक॥
अव्यय ब्रह्म नित्य अज सोई। अक्षय सग रहित नहिं गोई॥ ३॥
ब्रह्माक्षर अज नित्य कहावत। पुरुषोत्तम पुराण श्रुति गावत॥
सो रागादिक हरहु कृपाला। प्रणवौं तोहि रहित सब जाला॥ ४॥

हे प्रचेतसो! यही स्तोत्र कण्डु जपते थे अब इस मारिषाके पूर्वजन्मकी कथा सुनाते हैं सुनिये यह पूर्वजन्म में रानी थी इसके पुत्र कन्या कुछ नहीं हुये थे कि विधवा होगई उसी अवस्थामें श्रीविष्णुकी स्तुति करनेलगी स्तुतिसे भगवान् प्रसन्नहो बोले हम तुम्हारे ऊपर प्रसन्नहैं वरदान मांगो यह सुन उसने यह वरमांगा कि हे भगवन्! मैं बालकपनहीं में विधवा होगई इससे यह वर मांगतीहूं कि जहां जन्महो बड़े सुन्दर बहुत से मेरे पतिहों व प्रजापतिके समान पुत्रहों व यहभीहो कि मैं रूपसम्पत्तियुक्त होऊं व योनिमें न पैदा होऊं यह सुन श्री भगवान् ने कहा अच्छा अन्य जन्म में बड़े पराक्रमी दानी विज्ञानी महाशुशील १० तेरे पति होंगे व पुत्रभी अत्युत्तमहोगा जिससे बड़ीप्रजाबढ़ेगी तीनों लोकमें उसका यश व ऐश्वर्यहोगा व तुमभी हमारे प्रसादसे अयोनि से उत्पन्न होवोगी व सब सुशीलतादि गुण भी तुममें होंगे यह कह श्रीविष्णुजी अन्तर्द्धानहोगये यह वही रानी मारिषाहुई जो आपलोगोंकी स्त्री होगी फिर यहसुन प्रचेतसोंने वृक्षों के ऊपर कोप न किया व शास्त्रानुसार उसके सग विवाह कर

अपनी स्त्री बनाया उन १० प्रचेतसों से मारिषा में दक्षनाम पुत्रहुये इन्हीं ने ब्रह्माजी की आज्ञासे दो पाँववाले व चार पाँववाले भी बहुत प्राणी सृष्टि के लिये उत्पन्नकिये इनके पीछे बहुतसी कन्या इन्हों ने उत्पन्नकीं उनमें १० धर्म को दीं १३ कश्यपको २७ चन्द्रमाको तिन्हीं में देवता दैत्य नाग गाय पक्षी गन्धर्व अप्सरा व दानवादि सब उत्पन्नहुये तबसे मैथुनी सृष्टि बहुतहुई इसके प्रथम भी थी पर बहुधा सङ्कल्प व दर्शन व स्पर्शही से सृष्टिहोती थी क्योंकि आगे लोग बड़ी बड़ी तपस्या करते थे व तेजस्वी होते थे उनमें वैसीही शक्ति होती थी इतनी कथासुन मैत्रेयजी बोले कि प्रथम हमने सुनाथा कि ब्रह्माजीके दाहिने अँगूठासे दक्ष उत्पन्नहुये हैं फिर प्रचेतसोंके कैसेहुये व यह कि चन्द्रमाही की कन्या मारिषा थी फिर उसके पुत्र दक्ष चन्द्रमाके श्वशुर कैसेहुये यह बड़ाही सन्देह है पराशरमुनि बोले मैत्रेयजी सुनिये उत्पत्ति व नाश प्राणियोंमें नित्यहै ऋषिलोग वा अन्य दिव्यदृष्टिलोग इसविषयमें मोह नहीं करते थे दक्षादि युगर हुआ करते हैं व फिरनाशको प्राप्त होतेहैं पंडितोंको चाहिये कि इस में मोहित न हों और छुटाई व बड़ाई आगे न थी केवल तपोबलहीसे बड़ाई छुटाई ली जा तीथी क्योंकि प्रभावही कारणहै आगे पीछे उत्पन्नहोने से कुछभी नहीं होता यहसुन मैत्रेयजीने कहा हां यहतो समझा अब देवता दानव गन्धर्व नाग राक्षसादिकों की उत्पत्ति विशेष मौनि,से विस्तारसहित सुना चाहते हैं पराशरजी बोले जब पहिले पहिल दक्ष को प्रजा बनाने के लिये ब्रह्माजीने आज्ञादीथी व जैसे उन्होंने सृष्टिकी सुनो पहिले दक्षजीनेभी मानसीही सृष्टिकी रीतिसे देवता ऋषि गन्धर्वादि बनाये जब इससृष्टिसे प्रजा न बढ़ी तो मैथुनी सृष्टि का विचार किया व वीरणनाम प्रजापतिकी असिक्नी नाम कन्या से अपना विवाह किया उस में सृष्टि के लिये ५००० पुत्र उत्पन्न किये उनको नारद जीने देखा कि सृष्टि बढ़ाया चाहते हैं पूछने में आये थे जो ५००० हर्यश्वनामथे तिनसे कहा हे हर्यश्वलोगो। तुम्हारा अभिप्राय ऐसा लक्षित होता है कि तुम प्रजाओं की सृष्टि करोगे तुमलोग बड़े अनाथीहो इस पृथ्वी का अन्त व ऊपर व नीचे सो जानतेही नहीं कि कितनाहै फिर प्रजाओंकी सृष्टि कैसे करोगे जो कहो कि हम इसके नीचे ऊपर व इस पर सब कहीं जानतेहैं तो जाकर देख क्यों नहीं लेते प्रजाओंको कैसे बनाना चाहते हो बड़े अज्ञानीहो यहसुन वे सब दशोंदिशाओं

का अन्तलेनेको चलेगये आजतकनहींलौटे जैसेकि समुद्रको जाकर फिर नदियां नहीं लौटतीं जबहर्यश्वसञ्ज्ञक ५००० पुत्रनारदके बहँकानेसे नष्टहोगये तो दक्षजी ने १००० पुत्र और उसीस्त्रीमें उत्पन्न किये इनका शबलाश्व नामधरा व इनसे भी कहा कि सृष्टिकरो नारदजीने आकर इनसेभी वही कहा वे सुनकर आपस में कहनेलगे मुनि सत्य कहतेहैं बिना पृथिवीका प्रमाण जाने प्रजावनाकर क्या करेंगे बस यही शोच विचार वेभी अपने भाइयोंकी पदवीको चलेगये अबतक नहीं लौटे तबसे ऐसा कोईभाई नहीं हुआ जो अपने भाइयों को ढूंढ़ने गयाहो यह अपूर्व स्वभाव उन्हीं महाशयोंका था दक्षजीने देखा कि हमारे इनपुत्रोंकोभी नारद ने बहँकाय कहीं भगादिया इसलिये नारदको शापदिया कि जाव तुम्हारा यह शरीर छूटजावे फिर गर्भवासीहो यह शापदे जाना कि पुत्रतो नारदके मारे वचनेही न पावेंगे ६० कन्या उत्पन्न कीं उनमें १० धर्मको दीं १३ कश्यप को २७ चन्द्रमाको ४ अरिष्टनेमि को २ बहु पुत्रको २ अंगिरा को २ कृशाश्वको इन ६० के नाम ये हैं अरुन्धती १ वसु २ यामी ३ लम्बा ४ भानु ५ मरुत्वती ६ सकल्पा ७ मुहूर्त्ता ८ साध्या ६ विश्वा १० येसब धर्मकी स्त्रियाहैं इनकी सन्तान सुनिये विश्वाके विश्वेदेवहुये साध्याके साध्य मरुत्वती के मरुद्गण वसुके वसु भानुके भानु मुहूर्त्ताके मुहूर्त्तज लबाके घोषयामीके नागवीथी अरुन्धतीके पृथि-वीका सबविषय सकल्पाके सङ्कल्प वसु के जो वसुहुयेहैं ८ थे उनके आप ध्रुव सोमधर अनिल अनल प्रत्यूष प्रभास ये नामहैं आपके पुत्र वैतराड्य श्रम शान्त ध्वनि ये हुये ध्रुवके काल सोमके वर्चा धरके मनोहरा स्त्रीमें द्रविणहुत हव्य वह शिशिरप्राण व रमण ये पांचपुत्र हुये अनिलकीस्त्री शिवामें मनोजव अविज्ञात गति अग्नि के सरपतके गुच्छामें कुमार नामक व शाख विशाख नैगमेय ये ४ पुत्र हुये कृत्तिकाओं के पुत्रका कार्त्तिकेय नाम प्रत्यूषके देवल देवल के दो पुत्र क्षमावान् व मनीषी बृहस्पतिकी भगिनी का कामवेरिणी नाम था जो आठयें वसुप्रभासकी स्त्री हुई जिसमें विश्वकर्मा नाम पुत्रहुये जिन्हों ने देवताओं के सब विमान व घर बनाये शिल्पविद्या इन्हीं की प्रचारी हुईहै जिसमें बहुत से मनुष्यभी धनईका काम करके जीते हैं र अजैकपाद १ अहिर्बुध्न्य २ त्वष्टा ३ रुद्र ४ ये ११ रुद्रहैं त्वष्टा के विश्वरूप हर ५ बहुरूप ६ त्र्यम्बक ७ अपराजित ८ वृषाकपि ६ शम्भु १० कपर्दी र रैवत महीं ११ रुद्र इनसौहैं तेजसे भरपूरी

अपनी स्त्री वनाया उन १० प्रचेतसों से मारिषा में दक्षनाम पुत्रहुये इन्हीं ने ब्रह्माजी की आज्ञासे दो पाँववाले व चार पाँववाले भी बहुत प्राणी सृष्टि के लिये उत्पन्नकिये इनके पीछे बहुतसी कन्या इन्हों ने उत्पन्नकीं उनमें १० धर्म को दीं १३ कश्यपको २७ चन्द्रमाको तिन्हीं में देवता दैत्य नाग गाय पक्षी गन्धर्व अप्सरा व दानवादि सब उत्पन्नहुये तबसे मैथुनी सृष्टि बहुतहुई इसके प्रथम भी थी पर बहुधा सङ्कल्प व दर्शन व स्पर्शही से सृष्टिहोती थी क्योंकि आगे लोग बड़ी बड़ी तपस्या करते थे व तेजस्वी होते थे उनमें वैसीही शक्ति होती थी इतनी कथासुन मैत्रेयजी बोले कि प्रथम हमने सुनाथा कि ब्रह्माजीके दहिने अँगूठासे दक्ष उत्पन्नहुये हैं फिर प्रचेतसोंके कैसेहुये व यह कि चन्द्रमाही की कन्या मारिषा थी फिर उसके पुत्र दक्ष चन्द्रमाके श्वशुर कैसेहुये यह बड़ाही सदेह है पराशरमुनि बोले मैत्रेयजी सुनिये उत्पत्ति व नाश प्राणियोंमें नित्यहै ऋषिलोग वा अन्य दिव्यदृष्टिलोग इसविषयमें मोह नहींकरते ये दक्षादि युग२ हुआ करते हैं व फिर नाशको प्राप्त होतेहैं पंडितोंको चाहिये कि इस में मोहित न हों और छुटाई व बड़ाई आगे न थी केवल तपोबलहीसे बड़ाई छुटाई ली जा तीथी क्योंकि प्रभावही कारणहै आगे पीछे उत्पन्नहोने से कुछभी नहीं होता यहसुन मैत्रेयजीने कहा हां यहतो समझा अब देवता दानव गन्धर्व नाग राक्ष सादिकों की उत्पत्ति विशेष मानिसे विस्तारसहित सुना चाहते हैं पराशरजी बोले जब पहिले पहिल दक्षको प्रजा बनाने के लिये ब्रह्माजीने आज्ञादीथी व जैसे उन्होंने सृष्टिकी सुनो पहिले दक्षजीनेभी मानसीही सृष्टिकी रीतिसे देवता ऋषि गन्धर्वादि बनाये जब इससृष्टिसे प्रजा न बढ़ी तो मैथुनी सृष्टि का विचार किया व वीरणनाम प्रजापतिकी असिक्नी नाम कन्या से अपना विवाह किया उस में सृष्टि के लिये ५००० पुत्र उत्पन्न किये उनको नारद जीने देखा कि सृष्टि बढ़ाया चाहते हैं एकान्त में आय वे जो ५००० हर्यश्वनामथे तिनसे कहा हे हर्यश्वलोगो ! तुम्हारा अभिप्राय ऐसा लक्षित होता है कि तुम प्रजाओं की सृष्टि करोगे तुमलोग बड़े अनारीहो इस पृथ्वी का अन्त व ऊपर व नीचा तो जानतेही नहीं कि कितनाहै फिर प्रजाओंकी सृष्टि कैसे करोगे जो कहो कि हम इसके नीचे ऊपर व इस पर सब कहीं जानकारहैं तो जाकर देख क्यों नहीं लेते प्रजाओंको कैसे बनानाचाहते हो बड़े अनारीहो यहसुन वे सब दशोंदिशाओं

का अन्नलेनेकोचलेगये आजतकनहीं लौटे जैसेकि समुद्रको जाकर फिर नदियां नहीं लौटतीं जबहर्यश्वसंज्ञक ५००० पुत्रनारदके बहँकानेमे नष्टहोगये तो दक्षजी ने १००० पुत्र और उसीस्त्रीमें उत्पन्न किये इनका शबलाश्व नामधरा व इनमे भी कहा कि सृष्टिकरो नारदजीने आकर इनसेभी वही कहा वे सुनकर आपस में कहनेलगे मुनि सत्य कहतेहैं विना पृथिवीका प्रमाण जाने प्रजावनाकर क्या करेंगे बस यही शोच विचार वेभी अपने भाइयोंकी पदवीको चलेगये अबतक नहीं लौटे तबसे ऐसा कोईभाई नहीं हुआ जो अपने भाइयों को ढूढ़ने गयाहो यह अपूर्व स्वभाव उन्हीं महाशयोंका था दक्षजीने देखा कि हमारे इनपुत्रोंकोभी नारद ने बहँकाय कहीं भगादिया इसलिये नारदको शापदिया कि जाव तुम्हारा यह शरीर छूटजावे फिर गर्भवासीहो यह शापदे जाना कि पुत्रतो नारदके मारे बचनेही न पावेंगे ६० कन्या उत्पन्न कीं उनमें १० धर्मको दीं १३ कश्यप को २७ चन्द्रमाको ४ अरिष्टनेमि को २ बहु पुत्रको २ अंगिरा को २ कृशाश्वकोइन ६० के नाम ये हैं अरुन्धती १ वसु २ यामी ३ लम्बा ४ भानु ५ मरुत्वती ६ सङ्कल्पा ७ मुहूर्त्ता ८ साध्या ९ विश्वा १० येसब धर्मकी स्त्रियाहैं इनकी सन्तान सुनिये विश्वाके विश्वेदेवहुये साध्याके साध्य मरुत्वती के मरुद्गण वसुके वसु भानुके भानु मुहूर्त्ताके मुहूर्त्तज लंबाके घोषयामीके नागवीथी अरुन्धतीके पृथिवीका सबविषय सङ्कल्पाके सङ्कल्प वसु के जो वसुहुयेहैं ८ थे उनके आप ध्रुव सोमधर अनिल अनल प्रत्यूष प्रभास ये नामहैं आपके पुत्र वैतण्ड्य श्रम शांत ध्वनि ये हुये ध्रुवके काल सोमके वर्च्चतधरके मनोहरा स्त्रीमें द्रविणहुता हव्य यह शिशिरप्राण व रमण ये पांचपुत्र हुये अनिलकीस्त्री शिवामें मनोज व अविज्ञात गति अग्नि के सरपतके गुच्छामें कुमार नामक व शाख विशाख नैगमेय ये ४ पुत्र हुये कृत्तिकावों के पुत्रका कार्त्तिकेय नाम प्रत्यूषके देवल देवल के दो पुत्र क्षमावान् व मनीषी बृहस्पतिकी भगिनी का कामवेरिणी नाम था जो आठयें वसुप्रभासकी स्त्री हुई जिसमें विश्वकर्मा नाम पुत्रहुये जिन्हों ने देवताओं के सब विमान व घर बनाये शिल्पविद्या इन्हीं की बनाई हुईहै जिसमें बहुत से मनुष्यभी बढ़ईका काम करके जीते हैं व अजेकपाद १ अहिर्बुध्न्य २ त्वष्टा ३ रुद्र ४ ये ११ रुद्रोंमें त्वष्टा के विश्वरूप हर ५ बहुरूप ६ त्र्यम्बक ७ अपराजित ८ वृषाकपि ९ शम्भु १० कपर्दी ११ रैवत मृगी ११ रुद्रहीं इन्होंने तेनमे सेरदी

पुत्र हुये अब कश्यपकी स्त्रियोंके नाम सुनिये अदिति दिति दनु काला अरिष्टा सुरसा वसा सुरभि विनता ताम्रा क्रोधवशा इराकद्रुमुनि अब इनकी सतति के नाम सुनो जो तुषितनाम चाक्षुष मन्वन्तरमें देवतागण कहाते थे जब वैवस्वत मन्वन्तर लगने परथा सबोंने मिलकर सम्मत किया कि आवो इस मन्वन्तर में भी जन्म लेवें जिस से इसमेंभी इन्हीं देवता रहें यह कह जब वैवस्वत मनुलगा तो कश्यपसे अदितिनाम स्त्रीमें उत्पन्नहुये वे विष्णु १ शक्र २ अर्यमा ३ धाता ४ त्वष्टा ५ पूषा ६ विवस्वान् ७ सविता ८ मित्र ९ वरुण १० अंश ११ भग ये १२ आदित्य हुये यह वही हैं जो चाक्षुष मन्वतर में तुषित नाम देवगण थे जो चन्द्रमाकी २७ स्त्री कहीथीं सबमें बड़े २ तेजस्वी पुत्र हुये अरिष्टनेमि की स्त्रीके १६ पुत्रहुये बहुपुत्र के ४ कन्याहुई वही बिजली कहाती हैं अंगिराके २५ वेदकी ऋचाओं की अधिष्ठातृ देवता हुईं व कृशाश्व के देवप्रहरण नाम पुत्र हुये ये सहस्र युगोंके पीछे फिर उत्पन्न होते हैं इसीसे फिर इनकी उत्पत्ति कहनी पड़ी जैसे सूर्यका उदयास्त एक दूसरे के पीछे हुआ करता है इसी भांति कल्प २ में देवगणभी होते व नाशको प्राप्तहोते और कश्यप से दितिनाम स्त्री में हिरण्यकशिपु व हिरण्याक्ष दो अतिदुर्जय पुत्रहुये यह हमने सुनाहै व दिति हीके सिंहिकानाम कन्याभी हुईथी जो विप्रचित्ति को ब्याही गई हिरण्यकशिपु के अनुह्लाद ह्लाद प्रह्लाद व संह्लादये ४ पुत्र हुये उनमें प्रह्लाद बड़े धर्मवान् हुये हैं जिन्होंने श्रीविष्णुजीकी बड़ी भारी भक्तिकी है जिनके ऊपर हिरण्यकशिपु ने अग्नि बरवाय छोड़वादिया पर जिससे उनके हृदयमें श्रीविष्णुका वासथा तनिक गर्मीभी न पहुंची जार कौन सके फांसीमें बंधवाय समुद्र में फेंकवादिया तब पृथिवी चलायमान होगई अनेक शस्त्रास्त्र मारे छोड़ेगये पर उनका अंग न कटा उनके हृदयमें तो विष्णुवास था ही देह पर्वतसे भी कठिन होगई थी बड़े २ विषधर सर्प छोड़ेगये पर किसीने न काटा पर्वतोंके नीचे दबादियेगयेपर न कचरे पर्वत परसे नीचेभी ढकेलेगये पर कुछभी चोट न लगी सशोषक पवन चलाया गया पर उनके अंगोंमें लगनेसे वही नाश होगया बड़े २ दांतोंवाले मतवाले हाथी मारने के लिये हुलकारे गये पर इनकी देहमें लागते उनके दांत टूटगये दैत्यराज के कहने से इनकेही मारनेके लिये पुरोहितों ने कृत्या उत्पन्नकी वह निकट पहुंचतेही आपही भस्म होगई इनको कौन भस्मकरे शम्बरासुरकी बनाई

हुई अनेक भातिकी माया इनके ऊपरकीगई पर जो इनकी रक्षाकेलिये सुदर्शन चक्र रहताथा उसने सबको नाशा इनका स्वभाव भी ईश्वरानुग्रह से अपूर्वही था कि जैसे अपनाको जानते थे वैसेही अन्यको भी वैर किसीसे नहीं मित्रता सबसे बड़े धर्म्मात्मा सत्यशीलादि सब गुणोंके खानि सब साधुओं के उपमान सब इनके उपमेय॥

सोलहवा अध्याय॥

दो॰ सोरहवें अध्याय महँ मुनि प्रहलाद चरित्र॥
पुनि २ जिमि पूछेउ कहत मुनिजनि होहुसचित्र॥ १॥

श्रीमैत्रेयजी बोले हे मुनिराज! आपने मनुका वंश कहा उससे भलीभाति विदितहुआ कि इस संसार के कारण श्री विष्णुही हैं परन्तु जो आपने कहा कि दैत्यश्रेष्ठ प्रह्लादजी को अग्निमें जलाया शस्त्रोंके लगने से उनके अंग न कटे व प्राण न निकले जब वे समुद्रमें छोड़ेगये पृथिवी चलायमान हुई व जब वे बाँधेगये तबभी धरणी चली पहाड़ोंके नीचे दबाने से भी न मरे इन्हेंआदि जो २ अनुपमभाव उन महावैष्णव शिरोमणि प्रह्लादजी के आपने कहे वे विस्तारपूर्वक कहिये हमारे सुननेकी इच्छाहै इनको दैत्योंने शस्त्रोंसे क्यों मारा व समुद्र में क्यों फेंका कि ये धैर्यहो कैसे धारण कियेरहे पर्वतों से क्यों दबवाये गये सर्पों से कटवाये काहेको गये पर्वतों से क्यों गिरायेगये व अग्नि में क्यों डालेगये हाथियों से उनके ऊपर दांत क्यों चलवाये गये भगोपक पवन दैत्यों ने इनके ऊपर क्यों छोड़ा व दैत्यों के गुरुओं ने कृत्या क्यों छोड़ी शम्बरासुर ने सहस्रों अपनी माया इनके ऊपर क्यों चलाई दैत्यों के रसोईंदारों ने भोजन में विष क्यों डारा कि जिससे ये न मरें हे भगवन्! ये सब महात्मा प्रह्लादके चरित्र सुनाचाहते हैं कुछ इसविषयमें हमआश्चर्य नहीं मानते कि ऐसी ऐसी विपत्तिया हुई पर प्रह्लादजी को कुछ भी न व्यापीं विष्णु के परम भक्त शिरोमणिको वे कैसे होसक्ती हैं क्योंकि उनके छोटे से छोटे भक्त को नहीं सतासक्ती हमें केवल इस विषय में संदेह है कि जिस ऐसे महात्मा धर्म्म परायण भगवदाराधन में तत्पर ऐसे परमसुशील में उन्हीं के वंशवालों ने कैसे इतने उपद्रव किये ऐसे महात्मा के साथ तो वैरीभी ऐसे कार्य्य नहीं करसक्ते न

कि उनके वशही वाले करें ताहेसे दैत्येश्वर प्रह्लादजी के चरित्र अच्छी भांति कहिये हमारे सुनने की इच्छाहै॥

सत्रहवां अध्याय॥

दो० सत्रहवें अध्याय महँ जिमि प्रहार भे सर्व॥
श्री प्रह्लाद शरीर महँ कहवें सुनहु न खर्व॥ १॥
अन्य सुतनमहँ राग पुनि विष्णुपरायणताहि॥
वैर कीन दनुजाधि पति अब वर्णत हैं नाहिं॥ २॥

पराशरमुनि बोले हे मैत्रेयजी! तिन बुद्धिमान् उदारचरित्र महात्मा प्रह्लाद जी के चरित्र आप से कहते हैं अच्छी भांति सुनिये दिति के पुत्र हिरण्यक शिपु ने ब्रह्मा के वरदान से अहङ्कारीहो तीनों लोक अपने वश करलियाइन्द्र पदवीको आपही भोगने लगा व सूर्य पवन अग्नि वरुण चन्द्रमा कुबेर यमराज सब आपही होगया व यज्ञों के सब भाग भोगने लगा देवतालोग तिसके भय से स्वर्ग छोड़ मनुष्यों का वेष बनाय पृथ्वी में घूमने लगे तीनों लोकों को भलीभांति जीत सब त्रिलोकी का ऐश्वर्य पाय महाअहङ्कारीहो सब राज्य भोगने लगा गन्धर्वादि उसी के आगे गाने बजाने लगे जब वह मदिरा पी बैठताथा तो सब सिद्ध गन्धर्व नागादि सेवा करतेथे व कोई २ सिद्ध लोग बजाते गाते जय जय शब्द करते थे अप्सरों के नाच सहित स्फटिक मणियों के बवरहरों पर बैठकर मदपान करताथा तिसके पुत्रका प्रह्लाद नाम था जो कि बड़ेही विष्णुभक्त थे गुरु के घर में बालकों के संग पाठ पढ़ते थे एक दिनकी बात है कि प्रह्लादजी अपने गुरु के साथ पिता के निकट गये पिता उससमय बहुतही मतवाला बैठाथा पुत्रको देख कोरा में बैठाय प्यारसे बोला अय हमारे दुलारे प्यारे प्रह्लाद! इतने दिनों में तुमने जो जो पढ़ा व उसमें जो तुम्हें बहुतअच्छा लगताहो व जो सबका साराश हो पढ़ो तो यह सुन प्रह्लाद जी बोले पिता जी जो मैं अच्छीभांति पढ़ा हूं व अच्छा समझता हूं आपको सुनाता हूं सुनिये आदि मध्य अन्त हीन अज वृद्धिनाश रहित सब के सिखाने वाले व सब के कारण अच्युत भगवान्‌के साष्टांग प्रणाम है बस यही पढ़ा यह सुनतेही अतीव क्रोधयुक्त हो आगे खड़े हुये गुरुजी से कहा अय

नीच ब्राह्मण ! तूने हमारे वैरीही की भक्ति इस लड़के को सिखनाई हमारा बड़ाही अनादर किया यह सुन गुरुजी बोले हे दैत्येश्वर ! आप कोप के वश होने के योग्य नहीं हैं तुम्हारा पुत्र जो कहता है हमने नहीं पढ़ाया तब हिरण्यकशिपु ने प्रह्लाद से पूछा हे वत्स ! तुम्हारे गुरु जी कहते हैं कि यह हमने नहीं पढाया तो तुमने किस से सीखा बतलाओ। प्रह्लादजी ने कहा हे तात ! इस संसार के सिखानेवाले श्री विष्णुही हैं उन्हें छोड़ कोई किस से सीखता है हिरण्यकशिपु बोला अरे दुष्टबुद्धे ! विष्णु कौन है जिस को मुझ जगदीश्वर के आगे बार बार कहता है फिर प्रह्लादजी ने कहा जिन विष्णु का परमपद शब्द गोचर नहीं होसक्ता न योगी लोगों के ध्यान में आता है व जिसका रूप यह संसार है वह विष्णु सबका ईश्वर है न कि तुम हिरण्यकशिपु बोला हे मूर्ख ! क्या हमारे होनेपर भी दूसरा और परमेश्वर जिसे बार २ कहता मैंने जाना तू मराचाहता है प्रह्लाद फिर बोले हे तात ! वे केवल मेरेही विष्णु नहीं हैं वरन सब प्रजाओं व आप के व सब ब्रह्मादि परमेश्वरों के भी धाता विधाता वही हैं इस से प्रसन्न हूजिये कोप क्यों करते हो फिर हिरण्यकशिपुबोला इस दुर्बुद्धि के हृदय में कौन पापी पैठा है जिससे यह ऐसे असाधु वचन बोलताहै फिर प्रह्लादजी बोले हे पिता जी ! सो विष्णुजी केवल हमारेही हृदय में नहीं हैं किन्तु सबलोक को दबाये बैठेहैं व सोई हमको व आपको व सब संसार को सब कार्य करनेकी आज्ञा दिया करतेहैं क्योंकि सब के हृदय में टिकेहैं यह सुन फिर हिरण्यकशिपु बोला इस दुष्ट को यहा से निकालो व गुरु के घर में लेजाओ कि पढ़ाया जावे जिसमें हमारे शत्रुमें लगी हुई इसकी मति लौट जावे इसभांति जब दैत्येश्वर ने कहा दैत्यलोग गुरु के घर में पढ़े आये गुरुकी सेवा करते हुये प्रह्लादजी फिर विद्या पढ़ने लगे बहुत दिनों के पीछे हिरण्यकशिपु ने फिर प्रह्लाद को बुलाया व कहा हे पुत्र ! कोई कथा कहो तो प्रह्लादजीने कहा सुनिये जिस विष्णु से प्रकृति व पुरुष उत्पन्न हुये व जिस से यह चराचर संसार हुआ व जो इस सबका कारण है वह मेरे ऊपर प्रसन्न होवे फिर हिरण्यकशिपु बोला इस दुरात्मा को मारही डालो इस के जीने से कुछ भी प्रयोजन नहीं यह अपने पक्षवालों की हानि करने से कुलका अंगारही है इस में भलाई न होगी ऐसी आज्ञाके पातेही सैकड़ों दैत्य

हथियार उठाकर प्रह्लाद के मारने को दौरे प्रह्लाद जी हँसकरबोले हे दैत्यो। जैसे तुम्हारे शस्त्रों में विष्णु टिके हैं वैसेही हम में भी हैं यह हमें निश्चयहै इसी से तुम्हारे हथियार हमारे विषय में नहीं चलसक्ते यह कहतेही रहे कि दैत्यों ने सैकरों अस्त्रशस्त्र चलाये पर इनको तनिकभी पीड़ा न हुई वरन वैसेही सब अंग बनेरहे यह दशा देख हिरण्यकशिपुने कहा हे दुर्बुद्धे। तू वैरीहीके पक्षका आदर करताहै उससे अपनी बुद्धि लौटार हमने तुझे अभयदान दिया अति मूढ़ मति न हो प्रह्लादजी फिर बोले सब भयोंके हरनेवाले विष्णु हमारे हृदयमें टिके हैं फिर भय कहां रहसक्ते हैं कि जिस विष्णु के स्मरणमात्रसे जन्म बुढ़ापा आदिसे उठे भय नाश होजाते हैं हे तात। यह सुन हिरण्यकशिपु अपने सर्पोंसे बोला हे मेरे सर्पो। इस दुराचारी अत्यन्त दुर्गतिको विषकी ज्वालासे उज्ज्वलित अपने मुखोंसे काट इसे मारडालो यह सुन कुहक तक्षक अन्धकादि सर्प जो उसके यहांथे सब अंगोंमें उन्होंने काटा पर प्रह्लादजीके हृदयमें तो सबके आनन्द देनेवाले विष्णु जी वैठेही थे नहीं मालूम उनका विष कहांगया थे ज्योंके त्योंहीं बैठेरहे सर्पोंने दैत्यराज ने कहा हे दैत्येश्वर। हम लोगों के दांत टूटगये मणि फूटगये फणों में जलन उठी है हृदय कांपता है और इस लड़केकी थोड़ीभी खाल नहीं फूटी इसमे अब और उपाय विचारिये यह सुन हिरण्यकशिपु दिग्गजों से बोला हे दिग्गजो! हमारे वैरीके पक्षमें टिकेहुये इस लड़केको अपने बड़े कठोर दाँतों से मारडालो नहीं तो यह कुछ दिनमें हमीं को मारडालेगा यह तुम न विचारो कि इन्हीं से उत्पन्न इनको कैसे मार सकेंगे ऐसा होता है देखो लकड़ीही से अग्नि पैदा होती फिर उसीको जलाती है तब दिग्गजों ने सूंड़से पकड़ पृथ्वी में प्रह्लादको गिरा दिया व लातों से गोंदडाला व दांत पेट में अड़ाया प्रह्लादजी ने गोविन्द का स्मरण किया दिग्गजों के दांतगिरपड़े व वे अपने पितासे बोले कि वज्र के समान ये दिग्गजों के दांत अति निठुर मेरे अंगों में लगने से टूटगये यह मेरा बल नहीं है किन्तु महा विपत्तियों के नाशनेवाला श्रीजनार्दन भगवान् के स्मरण का प्रभाव है यह सुन दैत्यराज ने पवनको आज्ञादी कि अग्नि प्रज्वलित करके इस पापीको जलादेवो व हे दिग्गजो। बैठो तुमसे अब क्या होगा जब इस प्रकार की आज्ञाहुई दानवों ने बहुत काठ इकट्ठा किया उसके बीचमें प्र

ह्लादजी को बैठाय आग लगादिया उस समय पवन भी उसकी आज्ञा के कारण बड़ी प्रचण्डता से चली उसके बीचमें बैठेहुये प्रह्लादजी पितासे बोले हे तात! इस समय यद्यपि पवन अग्निको प्रेरणाभी करती पर मुझको नहीं जलाती किन्तु सब ओरसे यही जान पड़ता है कि चन्दन के फुहारे चले आते हैं यहभी हरिस्मरणही का प्रभावहै यह कहते शुक्राचार्य्य के पुत्र आय दैत्यराज से बोले महाराज इस अपने पुत्रमें कोप न कीजिये रहने दीजिये देवताओं पर फिर क्या करोगे अब हमको दीजिये बालकको ऐसा सिखलावेंगे जिसमें आप के वैरीका स्मरण तो क्या नामभी कभी न लेवे और लड़कपन सब दोषों का स्थानही होता इससे इस बालकपै कोप न कीजिये जो हमारे कहने से भी हरिका पक्ष न छोड़ेगा तो इसके मारनेके लिये ऐसी कृत्या उत्पन्न करेंगे कि जो देखतेही इसे भस्म करदे जब इस भांति गुरुपुत्रों ने प्रार्थना की तो दैत्योंसे अग्निमें से पुत्रको निकलाय गुरुपुत्रोंको सौंपदिया वे लेकर नानाभांतिसे पढ़ाने लगे एकदिन गुरुपुत्र कहीं चलेगये थे कि अन्य बालकोंको भी बैठाय एकान्त में बोले हे दैत्यपुत्रो! हमारी बात चित्तलगाकर सुनो व जो कहैं वही मानों देखो पहिले सबका जन्म होता फिर बाल्यावस्था आती फिर जवानी फिर धीरे २ बुढ़ापा पहुंचजाता है फिर मृत्युभी आयही जाती है सो प्रत्यक्ष है हमतुम सब जन्म देखतेहैं फिर जो मरता उसका जन्मभी होता यही उलटापलटी लगीरहती है गर्भवाससे ले जबतक जन्म नहीं होता सब दुःखही दुःख है जन्महोने पर भी जो भूख प्यास लगती है और उसके शान्तहोने के लिये पदार्थ मिलने हैं मूर्ख उसे सुख मानतेहैं विचारसे देखो तो सब दुःखही दुःख है सुखकानामभी नहीं जिनके गात बलिष्ठअंग हैं उनको मल्लयुद्ध में कोई मारताभी है तो उसे सुखही समझते हैं इसीभांति जिनकी बुद्धि भ्रमी हैं वे मारको भी सुखही समझते हैं कहा नाक थूक खंखार आदिसे भरीहुई देह कहा कान्ति शोभा सौगन्ध्यादि अच्छेगुण जो शरीर नरकों भी मिलता है उसमें स्नेह करना मूर्खहीका काम है क्योंकि इस शरीरमें मांस रुधिर पीब विष्ठा मूत्र नस चर्बी हाड़ यही पदार्थ तो हैं क्या ये नरकमें नहीं हैं फिर क्यों इसको चाहे शीत लगने पर अग्निसे सुख समझने प्यास लगनेपर जलसे भूख लगने से अन्नमें सम्पूर्ण दुःखके सिवाय सुख नहीं है हे दैत्यकुमारो! पुरुष जितनाही अधिक धनादि संग्रह करता है उ-

तनाही चोरादिकों से भय रहता है वही दुःखहै ऐसेही जितने प्रियतम पदार्थ एकत्र करते उतनाही शोकहोता क्योंकि उन पदार्थों में चित्तलगा रहताहै कि कौनवस्तु कहा धरी है जन्म में जानों बड़ाही दुःखहोता फिर मरण समय में भी जानों होताही है यमराजकी पुरीमें मानों सब कष्टहीकष्ट हैं जो गर्भमें भी कोई सुख आपलोग अटकरते हों तो कहैं हमतो जानते हैं कि जो यहां सुखन हीं तो गर्भ में भी न होंगे कौन बहुत कहे इस ससार में सब दुःखही दुःख है केवल श्रीविष्णुके शरण होना यही सुखहै हे बालको। यह न जानना चाहिये कि जीव देहों में निरन्तर रहता ये बुढ़ापा जवानी जन्म मरणादि देहहीके धर्म हैं कुछ जीवके नहीं जबतक हमलोग बालकहैं यह न विचारना चाहिये कि जब जवानहोंगे तब कल्याण के कामकरेंगे व जब युवावस्था को प्राप्त होवें तो यह न विचारें कि वृद्धावस्था में करलेवेंगे क्योंकि वृद्धावस्था में तो अपने देखने सुनने चलने आदिके कार्य न करसकेंगे फिर कल्याण के लिये क्या करसकेंगे इससे जबतक हाथ पैर चलते हैं तभीसे करना चाहिये इसीप्रकार नाना भांति के दुराशयों में चित्तलगा रहना पुरुष सदा विचारा करता कि आज नहीं कल्ह करलेंगे पर कल्याणकीबात कभी नहीं होती जैसे कि धोबीलोग गगाजी में कपड़े धोते हैं यही विचाराकरते कि इस कपड़े को धोकर पानी पियेंगे जब उसे धोचुकते दूसरा उठालेते इसी भांति धोते २ सन्ध्या होजाती विचारे प्यासेही रहजाते ऐसेही मनुष्यों के कार्य भी एक दूसरे के पीछे आया करते उनसे कल्याणवाले कार्य के करने का अवकाशही नहीं मिलता सब एकदिन मुहँबाय मरजाते मूर्खलोग बाल्यावस्था को खेलते खेलते युवावस्था को विषयों के भोग में बिताकर वृद्धावस्था में सामर्थ्यही न हो बैठते हैं कल्याणकीवार्त्ता किससमयकरें तिससे बाल्य यौवन वृद्धापन ये सब शरीर के धर्म हैं इनमें आसक्त नहोकर बाल्यावस्थाही से कल्याण में प्रयत्न करनाचाहिये प्रह्लादजी बोले कि आपलोगों से मैंने यह जो सब कहा इससे सत्यजानो तो मुक्ति देनेवाले नारायण का स्मरणकरो इसमें मेरी भी प्रसन्नता होवेगी देखो विष्णुके स्मरण करने में परिश्रम तो कुछ भी नहीं पर विष्णु भगवान् मुक्तिदेते हैं व सम्पूर्ण पापों का नाशहोता है सबप्राणियों के हितकारी नारायण में यदि आपलोगों की भक्ति व सब प्राणियों में मैत्रीहोगी तो सब दुःखों से मुक्त हो

जावोगे जब देखोगे कि सब प्राणी आधिभौतिक आध्यात्मिक आधिदैविक इन तीनोंतापों से पीडित होरहे हैं तो अकस्मात् उन प्राणियों के ऊपर दया व मैत्री होहीगी व जब देखो कि सब प्राणी धनादिकों मे समृद्ध हैं मैंही अकेला गरीब निर्द्धन होरहाहू तो भी आनन्दही होना चाहिये न कि किसीके साथ द्रोह करना क्योंकि द्रोहका फल बुरा है यदि सब लोग अपने मे विरोधभी रक्खें तोभी उन्हें अज्ञानी समझ साधु हो उनके ऊपर दयाही करनीचाहिये हे दैत्यकुमारो। यह तो मैंने भेदद्दृष्टि मे ज्ञान कहा अब संक्षेपसे कहताहू सुनिये यह सब जगत् एक नारायण की केवल विभूति है इससे ज्ञानवान् को चाहिये कि भेदको त्याग अपने सदृश सब जीवों को देखै इससे आपलोग आसुरभाव को छोड़ वैसा प्रयत्न करो जिससे अनन्त सुख पावो जो मनुष्य नारायण में चित्त लगाताहै उस सुखको पाताहै जोकि अग्नि सूर्य चन्द्रमा वायु मेघ वरुण सिद्ध राक्षस यक्ष दैत्य सर्प किन्नर मनुष्य पशु व अपने दोष व ज्वर अतीसारादि रोग इन किसी से भी नष्ट नहीं होसक्ता इस असारसंसार में सतोपरक्खो व सब जीवोंमें समदृष्टि करो क्योंकि इसी से ईश्वर प्रसन्न होताहै ॥

चौ॰ जासु प्रसन्न भये जग माहीं। सकल पदारथ दुर्लभ नाहीं॥
धर्म अर्थ अरु काम बहुता। पावत अल्प कौन मजबूता॥ १॥
ब्रह्म वृक्ष सब अन्तर्यामी। आदि अनन्तरु पूरण कामी॥
तासु शरण जब जैहहु प्यारे। सकलमहाफलहोंहितुम्हारे॥ २॥

अठारहवां अध्याय॥

दो॰ अठ्ठरहें अध्यायमहँ वरत पुरोहित लोग॥
जिमि मारणमति कीन पुनि सोइ बचे सहितशोग॥ १॥

पराशरजी बोले प्रह्लादजी के ऐसे वचनसुन हिरण्यकशिपु से डरेहुरे दैत्य कुमारों ने जाय सपूर्ण वृत्तांत हिरण्यकशिपुसे कहा तब हिरण्यकशिपु ने अपने रसोईदारों को बुलाय कहा कि यह मेरा पुत्र बड़ा दुष्ट होगया आप तो कुमार्ग चलताही है औरभी बालकों को वैसाही सिखलाता इससे आज इसके लिये जो भोजनबने उसमें हलाहल विष डालदो जिसमें यह पापी खाकर मरजावै ऐसी प्रह्लादके पिताने आज्ञा दी थी वैसाही रसोईदारों ने किया उस विष मिलेहुये अन्न

को प्रह्लाद जी नारायण का नाम लेकर बड़ी रुचिसे भोजन करगये जब कि नारायण के नामके माहात्म्य से विष भी प्रह्लादजी को पचिगया किञ्चिन्मात्र भी विकार न हुआ तब तो रसोईदार मन भयभीतहोकर दैत्यराज से बोले हे दैत्यराज ! विष मिलाकर अन्न प्रह्लाद को हमने खिलाया पर वहभी पचिगया आपके पुत्रको कुछभी विकार न हुआ तब दैत्यराजने अपने पुरोहितों से कहा कि इस दुष्ट मेरे पुत्रको नाश करनेहारी एक कृत्या अतिशीघ्र उत्पन्न करो परा-शरजी बोले हे मैत्रेयजी ! ऐसी दैत्यराजकी आज्ञापाय पुरोहितलोग प्रह्लादजी के पास आय बोले कि हे चिरजीव ! तीनोंलोक में प्रसिद्ध ब्रह्माके कुलमें तुम उत्पन्नहुये तिसमें भी दैत्यराज हिरण्यकशिपु के पुत्रहुये तुमको क्या देवताओं से व क्या नारायण से जैसे तुम्हारा पिता तीनोंलोक का स्वामी है वैसे तुमभी होगे इससे अपने शत्रु विष्णुकी स्तुति मत करो पिताकी आज्ञा मानो क्योंकि पिता सबसे श्रेष्ठ व परमगुरु होताहै तब प्रह्लादजीने उत्तरदिया कि पुरोहितराज आप सत्य कहते हैं यह मरीचिका कुल ऐसाहीहै इसको कौन अन्यथा कह सक्ता है व मेरा पिताभी तीनलोक में श्रेष्ठहै यहभी मैं सत्य जानताहूं व सब गुरुओं का गुरु पिताहोताहै इसमें कुछ सन्देह नहीं आपने जो कहा कि पिता परमगुरु है व पूजनीयहै सो सत्यहै मैंभी पिताकेसाथ किसी प्रकारका विरोध नहीं करता परन्तु आपने जो कहा कि नारायणसे तुम्हारा कुछ प्रयोजन नहीं यह कहना अयोग्य व ऐसा और कोई भी नहीं कहसक्ता ऐसा कहकर पुरोहितके गौरव से प्रह्लादजी कुछ देर मौनहो फिर बोले कि वाह वाह पुरोहितजी वाह आप अच्छे हमारे गुरु मिले जो कहते हैं कि नारायणसे तुम्हारा क्या प्रयोजनहै यदि आप क्रुद्ध न हों तो मैं कहताहूं सुनिये जिस नारायणसे धर्म अर्थ काम मोक्ष चारोंपदार्थ मनुष्यको प्राप्त होते हैं उससे प्रयोजन क्यों न हो देखो मरीच्यादि ऋषियों ने और दक्षप्रजापतिने नारायणकी सेवामें धर्म औरभी किसी ने अर्थ किसीने धन पाया औरभी बड़े २ महात्मा लोग तत्ववेत्ता नारायणही के ध्यानसे मुक्त होगये सम्पत्ति ऐश्वर्य प्रतिष्ठा ज्ञान सन्तान इत्यादि सम्पूर्ण पदार्थों की प्राप्ति का कारण केवल नारायणका ध्यानहै हे पुरोहितजी ! जिस नारायणसे धर्म अर्थ काम मोक्ष चारों पदार्थ सुलभ हैं तिसके आराधन को आप निष्फल कहते हैं या अब बहुत कहांतक कहैं आप मेरे गुरुहैं चाहे अच्छा कहसेहो म खराब

मेरीही समझ में नहीं आता प्रह्लादजी के ऐसे वचन सुन पुरोहितजी बोले रे बालक! जब तेरा पिता तुझे अग्निमें जलाये देताथा तब हमींने तुझे बचाया रे मूर्ख! हम न जानतेथे कि तू फिरभी ऐसेही बकता रहेगा यदि हमारे वचन से तू इस आग्रहको नहीं छोंडता तो देख तेरे नाश करनेवाली एक कृत्या हम उत्पन्न करते हैं पुरोहितों के ऐसे वचन सुन प्रह्लादजी ने कहा कि सुनिये महाराज न कोई किसीको मारसक्ता न कोई किसीकी रक्षा करसक्ता किन्तु आपही असत्कर्मों से नष्ट होजाता और सत्कर्मों से रक्षित रहता है ऐसे प्रह्लादजी के वचन सुन पुरोहित लोगों ने अतिक्रोध से एक कृत्या उत्पन्न किया जिसमें अग्निकी ज्वालायें जल रही हैं जिसके जलने से पृथ्वी हिलती है ऐसी महाभयकर उस कृत्याने आय प्रह्लादजी की छातीमें एक त्रिशूल मारही तो दिया उस त्रिशूलके प्रह्लादजी की छाती में लगने से सौ टुकड़े होगये क्योंकि जिस प्रह्लादजी के हृदयमें अविनाशी साक्षात् नारायण विद्यमान हैं वहां वज्रके भी तो टुकड़े २ होहीजाते त्रिशूल बिचारेकी कौन गिनती है वहाने निष्फलहो वह कृत्या उन्हीं पुरोहितोंको जलाय आपभी नष्ट होगई उस कृत्याग्निसे जलते हुये पुरोहितों को देख परमदयालु प्रह्लादजी जिसमें ब्राह्मण न जलें इस लिये नारायणकी स्तुति करनेलगे हे सर्वव्यापिन्! हे जगन्नाथ! हे जनार्दन! इस बड़ी दुःसह कृत्यारूप अग्निसे इन ब्राह्मणोंकी रक्षाके लिये जो सब जगत् में नारायण व्याप्तहो तो आज इस अग्निसे ब्राह्मण न जलें जैसे मैं विष्णुको सब जीवोंमें व्याप्त देखताहूं किसीको शत्रु नहीं जानता तैसे ये ब्राह्मण आज न जलें मेरे मारनेके लिये हाथी विष अग्नि सर्प ये सब आये पर मैंने यदि इन सबों में पाप न विचारा हो तो उस मेरी सत्यतासे ये पुरोहितलोग बचजावें ॥

चौ० यह सुनि दैत्य पुरोहित सारे। है प्रसन्न इमि वचन उचारे ॥
दीर्घजीवि अप्रति हत शक्ती। धीर्यबलादिसहित द्विजभक्ती ॥ १ ॥
पुत्र पौत्र धन युत सुत होहू। तुम्हरी कृपा जियाइसि मोहू ॥
यह यहि दैत्यराज पहँ जाई। तासुन कथा द्विजन सब गाई ॥ २ ॥

उन्नीसवां अध्याय ॥

दो०　उन्निसयें अध्याय महँ पुनि प्रह्लाद पयोधि ॥
डारेगे शिर गिरि धरे हरि विनती कह शोधि ॥ १ ॥

श्रीपराशर मुनि बोले हिरण्यकशिपुने जब सुना कि कृत्याभी प्रह्लादको न मारसकी तब प्रह्लादको बुलाय पूछा कि हे प्रियपुत्र ! यह तेरा प्रभाव आप ही आप ऐसा है कि तुझे कहीं भय नहीं होता या कुछ मन्त्र तन्त्र तू करता है ऐसे पिताने जब पूछा तो प्रह्लादजी अपने पिताको प्रणामकर बोले हे पिता जी ! यह प्रभाव न किसी मन्त्रका है व न मेरे स्वभावही से यह तो सामान्य है जिस २ के हृदयमें अच्युत भगवान् निवास करते हैं तिन सब लोगों का ऐसाही प्रभाव होताहै हे तात ! जो मनुष्य मन वचन कर्म से दूसरेको दुःख देना नहीं चाहता उसको कभी नहीं दुःख होता व दूसरेको दुःख देना चाहता है उसे अवश्य दुःख होताहै मैं न किसीको दुःख देनेकी इच्छा करूं न देऊं न कछू केवल सब प्राणियों में नारायण को व्यापक देखताहूं मैं तो सब जीवोंका शुभचिन्तकहूं मुझे शरीर मानस अधिदैव अधिभूत आदि कोई दुःख नहीं होते इसीभांति नारायणको सर्वत्र व्यापक जान विद्वान्को चाहिये कि सबसे मैत्रीकरे ऐसे प्रह्लाद के वचन सुन सौयोजन के ऊंचे शिखर पै बैठाहुआ दैत्यराज मारे क्रोधके आंखें लाल करके अपने किंकरोंसे बोला कि इस दुष्टको इस शिखरसे नीचे ढकेलदो नीचे पर्वतहै उसपर गिरनेसे हाथ पैर सब टूटजावें दैत्यराजकी ऐसी आज्ञा पाय किंकरों ने प्रह्लादजी को ढकेला नारायणका भक्त जान उसी समय अतिशीघ्र आय पृथ्वीने अपने हाथोंपर प्रह्लादको लेलिया तनिकभी चोट न लगी जब इसप्रकारसेभी कुछ न हुआ तो दैत्यराज शम्बरासुरसे बोला हे शम्बर ! यह बालक बड़ा दुर्वृत्त है इसके मरने के हम सब उपाय करचुके पर कोई नहीं चलता तुम माया बहुत जानतेहो माया से इसे मारडालो शम्बरासुर बोला हे दैत्यराज ! मैं अभी इस बालक को मारता हूं हजारों करोड़ों माया करूंगा देखिये ऐसा कह प्रह्लाद के सामने अनेक माया शम्बरासुर ने छोड़ीं परन्तु प्रह्लादजी तो बड़े समदर्शी शम्बरासुर से भी कुछ क्रोध न मानकर केवल परमेश्वर के ध्यान में तत्पर हुये तब नारायणजीका भेजाहुआ जिस में हजारों

अग्नि की ज्वाला धधकती हुई चलीआती हैं सुदर्शनचक्र ने आय सब माया-ओं को क्षणमात्र में नाश करदिया तब दैत्यराज अतिक्रुद्ध होकर सशोपक नाम वायु से कहा कि तू इसी समय इस दुरात्मा बालक को सुखादे दैत्यराज की आज्ञा से बड़ी शीतल व रूखी पवन सुखाने के लिये प्रह्लाद के हृदयमें पैठगई जब उन्हों ने जाना कि मेरे शोषण करने के लिये पवन मेरे हृदय में पैठी है तो जगत् धारण करनेवाले नारायण को अपने हृदय में धारण किया श्रीनारा-यण जीने हृदय में आय सम्पूर्ण पवन को पान करलिया ऐसेही जब सब माया भी नष्टहोगई व पवनभी नाशहोगई तो प्रह्लादजी चुपचाप उठकर अपने गुरुजी के पास फिर पढ़ने को चलेगये गुरुजी प्रह्लादजी को शुक्रनीति रोज २ बहुत अच्छी तरह पढ़ाने लगे जब देखा कि यह सब नीतिशास्त्र पढ़चुका तो दैत्य-राज से जाकर बोले हे दैत्यराज! आप के पुत्र प्रह्लाद को हमने नीतिशास्त्र बहुतभलीभांति से पढ़ाया अब यह बहुतअच्छा नीतिशास्त्रमें शिक्षित होचुका ऐसा सुन हिरण्यकशिपु ने प्रह्लाद को बुलाकर पूछा कि तुमने नीतिशास्त्र पढ़ा है बतलाओ तो कि मित्र शत्रु और सम के साथ राजा को किस २ काल में किस २ प्रकार वर्तना चाहिये और मन्त्रियों के साथ अमात्यों के साथ तथा जो बाहरी मनुष्य या जो आपस के लोगहैं और हरकारों के साथ शहरवाले मनुष्यों से राजा को कौन २ व्यवहार करना चाहिये किसप्रकार शत्रुके साथ मेल व किसप्रकारके से विग्रह करना चाहिये किला कैसे बनाना चाहिये शि-कार में कैसे जाना चाहिये हे प्रह्लाद वत्स! ये सब जो मैं पूछता हूं व और जो तुम जानतेहो कहो मैं सुनाचाहताहूं पराशरजी बोले कि हे मैत्रेय जी। ऐसे पिता के वचन सुन हाथजोड़ सविनय प्रह्लादजी बोले हे पिताजी! गुरुजीने मुझे सब पढ़ाया है इसमें कुछ सदेह नहीं पर इस सबको व्यर्थ झगड़ा जान मैंने भलीभांति ग्रहण नहीं किया परन्तु आप की आज्ञा हे तो कहता हूं सुनिये शत्रु के वश करने में साम दाम दण्ड भेद ये चार उपाय नीतिशास्त्र में कहेहैं परन्तु हे पिता जी! क्रोध न कीजियेगा मैं किसी को भी शत्रु नहीं समझता सब जगत् मेरा मित्रही है जब कोई शत्रु नहीं तो इन उपायों से मेरा क्या प्रयोजन सब प्राणियों के आत्मा जगत् के स्वामी जगन्मय परमात्मा गोविन्द में शत्रु मित्रकी क्या कथा नारायण आप के हृदय में हैं व मेरे भी इसीप्रकार सब

जगत्‌में भी हैं तो कहिये कौन किसका शत्रु है वरन सब सबका मित्रही है तिस से हे पिताजी! ये राग द्वेषादिकों के बढ़ानेवाले नीतिशास्त्र के बकने से कुछ फल नहीं ऐसा कोई उपाय करना चाहिये जिसमें कुछ कल्याण हो हे तात जिन विद्याओं को आप कहते हैं वे विद्या नहीं किन्तु अविद्या हैं उनसे केवल अज्ञान उत्पन्न होता है जैसे बालक आकाशमें उड़तेहुये जुगनू को अग्नि जानता है वैसेही इन विद्याओं से ज्ञान होता है कर्म वही है जिससे बन्धन न हो विद्या वही है जिससे मोक्ष हो और तो ये सांसारिक कर्म केवल परिश्रम देने के लिये होते हैं व विद्या भी सब इन्द्रजाल की नाईं झूठी हैं हे महाभाग पिता जी! इस संसार को असार समझ एक अत्युत्तम उपाय आप को प्रणामकर कहताहूं सुनिये इस संसार में ऐसा कौनहै जो कि राज्य या धनकी इच्छा न रखता हो परन्तु प्राप्त उसी को होता जिसकी भाग्य में है सब कोई अपनी २ वृद्धिही के उद्यम किया करता पर बढ़ना भाग्यही से न कि उद्यमसे बड़े २ मूर्ख शूरता वीरता नीतिशास्त्रहीन को कभी स्वप्न में उनको भी भाग्यबल से राज्य मिल जाती इस से जो बड़ी सम्पत्ति की इच्छा करे तो पुण्य बढ़ानेमें यत्न करे और जो मुक्त होना चाहे वह सब जीवों में समता होने का उपाय करे देवता मनुष्य पशु पक्षी सर्पआदि यावत् जगत् सब नारायण का रूप है भिन्न २ रूप से दृष्टिगोचर होताहै ऐसा जानकर सब चर व स्थिर जगत् में नारायणको प्राप्त देखो क्योंकि यह जगत् ईश्वरमय है ऐसा ज्ञान होने से अनादि भगवान् पुरुषोत्तम अतिशीघ्र प्रसन्न होतेहैं व उनकी प्रसन्नता से सब क्लेशों का नाश होजाता है यह सुन बड़ा कोपकर अपने राजसिंहासन से उठ प्रह्लादजी की छाती में हिरण्यकशिपु ने लात मारा व हाथ से हाथ मींज बड़ा कोपकर असुरों से कहा हे विप्रचित्त! हे राहु! हे बलि! इसको नागफांस में बांधके समुद्रमें फेंकदो कुछ भी विचार न करो नहीं तो सब लोक व दैत्य दानव इसी दुरात्मा व मूर्ख के मतपर चलने लगेंगे देखो इस दुष्ट को हमलोगों ने अनेक भांति समझा बुझाकर रोका भी पर हमारे शत्रुही की स्तुति करता है इसलिये दुष्टों का मारनाही ठीक है यह सुन अपने स्वामी की आज्ञा शिरपर धर सब दैत्योंने नागफांस में बांध प्रह्लादजी को समुद्रमें फेंकदिया समुद्र में इनके गिरनेहीं इतनी बड़ी२ लहरें उठीं कि सब पृथ्वी डूबनेलगी तब देख हिरण्यकशिपु दैत्योंसे बोला कि

हे दैत्यो ! सब पर्व्वत ठौर २ से उखाड़ समुद्र में एकओर से डालो कि उसी में कचरकर दूब मरे क्योंकि न तो यह अग्नि से मरा न शस्त्रास्त्रों से न सर्पों से न पवन से न विषसे न कृत्यासे न मायाओं से न ऊंचेपरसे ढकेलने से न दिग्गजोंके गोंजने से इससे इसके जीने में कुछ भी प्रयोजन नहीं मारहीडालो जब समुद्रमें १००० वर्ष पर्व्वतों से दबाया रहे ॥ तो अवश्य यह दुष्ट मृतक होजावेगा इस आज्ञा के पानेपर जहां समुद्रमें इनको छोड़ा था हजारों योजन पर्व्वतों से पाटदिया ये उन पर्व्वतों के नीचे तो दोही पे जब पूजाका समय आया श्रीभगवान् विष्णु की स्तुति करनेलगे ॥

चौ० कमल नयन पुरुषोत्तम स्वामी। सर्व लोक मय तुम्हैं नमामी ॥
गो ब्राह्मण हित ब्राह्मण देवा। कृष्ण गोविन्द करहुँ तव सेवा ॥ १ ॥
ब्रह्म विष्णु हर तनु धरि सबजग। उपजावन पालन नाशन ढँग ॥
देव यक्ष दानव अहि किन्नर। सिद्ध पिशाच मनुज पशु गोचर ॥ २ ॥
पक्षी स्थावर सर्प पिपीला। भूमि वारि नभ अनल अनीला ॥
शब्द स्पर्श रूप रस गन्धा। मन मति आत्म काल गुण सन्धा ॥ ३ ॥
यह सब तुम अच्युत भगवाना। नमस्कार तव कृपानिधाना ॥
सत्य असत्य अविद्या विद्या। अमृत गरल श्रुति कर्म अनिद्या ॥ ४ ॥
प्रवृत निवृत्त कर्म के भोजक। सकल कर्म उपकरण नियोजक ॥
सर्व कर्म फल तुम मम स्वामी। तव पद कमल नमामि नमामी ॥ ५ ॥
योगी ध्यावत तुमहिं कृपाला। याज्ञिक यजन तोहिं जनपाला ॥
हव्य कव्य भोक्ता तुम नाथा। देव पितर तनु धरि शुभ गाथा ॥ ६ ॥
महारूप तव यह जग रामा। सूक्ष्मरूप जग तुम गुणधामा ॥
भूत भेद तनु सूक्ष्म शरीरा। इन के मध्य सूक्ष्मतर वीरा ॥ ७ ॥
नाम रूप गुण रहित कृपाला। वन्दौं पद सरोज गत जाला ॥
जासु सकल अवतार निकाया। पूजत भजत देव सम दाया ॥ ८ ॥
जो प्रभु सब उर व्यापक होई। शुभ अरु अशुभ लखत नहिं गोई ॥
सब साक्षी त्वहि वन्दौं आजू। ज्यहि वन्दनबिन जन्म अकाजू ॥ ९ ॥
जासों नर्त्तग और अनन्ता। तासों भासु रूप में सन्ता ॥
हमरे सब सब है सुहि माहीं। पमन सकल जग मदाप नाहीं ॥ १० ॥

हम अक्षय पुनि नित्यहु आहीं। परमात्माश्रय हमहिं कहाहीं॥
हमहिं ब्रह्म हम आदि अंत सब। जो कछु जग सबहमहिंमाहिंअब॥११॥

वीसवां अध्याय॥

दो० कह विंसवें अध्याय महँ कनककशिपु सुत ध्यान॥
हरिदर्शन जलनिरसरण पुनि हरिविनय बखान॥१॥

पराशर मुनि बोले कि जब इस भांति प्रह्लादने आपमें व विष्णु में भेद न समझा तब वे हरिरूपही होगये व अपनाको सब कुछ समझने लगे और सब भूलगये व यह माननेलगे कि अव्यय अनंत हमीं हैं जब ऐसी चिंतना करते२ अंतःकरण शुद्ध व पापरहित होगया सर्वज्ञानमय भगवान् विष्णु अंतःकरण में आनसे ऐसे हानेमे प्रह्लाद जी नागफाँसमे छूटगये व जल जन्तुओं सहित समुद्र खलभलाउठा वन पर्वतसहित पृथ्वी काँपनेलगी और दैत्योंने जो पहाड़ उनके ऊपर डालेथे उन्हें फेंकके बाहर निकलआये बाहरआय आकाश पृथ्वी आदि देखकर फिर सुधि आई कि हम प्रह्लाद हैं फिर एकाग्रचित्तहो श्रीहरिकी स्तुति करनेलगे॥

चौ० नमो नमः परमार्थ रूप हरि। स्थूल सूक्ष्म अक्षर क्षर अघ दरि॥
व्यक्ताव्यक्त कलासों बाहर। अरु सकलेश निरंजन श्रुतिपर॥१॥
गुण अंजन निर्गुण गुण धारा। मूर्त्तामूर्त्त सूक्ष्म तनु सारा॥
महामूर्त्ति अस्फुट स्फुट तोहीं। कृपा करहु आपनि लखि मोहीं॥२॥
सौम्य कराल रूप तव स्वामी। विद्याविद्या सब गुण ग्रामी॥
सदसद्रूप अनूप तुम्हारा। सबमभाव भवन संसारा॥३॥
नित्यानित्यरु एक अनेका। कारण कार्य वर्ग सविवेका॥
स्थूल सूक्ष्म अरु प्रकट प्रकासा। सर्व मूल मांहि सो जग भासा॥४॥
नहिं संसार हेतु ममारा। दोस तुमहिं सों परम उदारा॥
करत प्रणाम बहोरि बहोरी। नाथ कृपा कीजे यहि ओरी॥५॥

इस भांति स्तुति करनेसे प्रह्लादजीके हृदयमें श्रीहरि प्रकट हुये उन्हें देख हर्षाय स्तुति करनेलगे हे देवदेव! प्रसन्नहूजिये व प्रत्यक्षहोकर दर्शन दीजिये श्रीभगवान् बोले प्रह्लाद तुम्हारी अचलभक्तिसे हम प्रसन्नहुये जो चाहो सोमांगो

प्रह्लादजीने कहा हे नाथ! जिस २ योनिमें मेरा जन्महो तिस२में सदा आपकी अच्युत भक्तिहो व जो प्रीति अविवेकियों को स्त्री पुत्रादि विषय वासनाओं में होती है वह आपको स्मरण करते हुये मेरे हृदय से कभी न जावे श्रीहरि बोले हममें तुम्हारी ऐसीही भक्तिहो व सदा बनीरहै परंतु और भी अभीष्ट वर मांगो प्रह्लादजीने कहा यदि आप यही चाहते हैं तो जब हम तुम्हारी स्तुति करने लगे थे और हमारे पिताने आपसे वैरमान हममेंभी वैरमाना यह उनका पाप नाश हो व जो मेरे अंगोंपर अस्त्रशस्त्र चलवाये अग्नि में मुझे फेंकवादिया सर्पोंसे कटवाया विष खवाया बांधकर समुद्रमें बहवादिया ऊपरसे पहाड़ों से दबवाया इन्हें आदि और भी जो २ खराब काम मेरे लिये किये कराये सो आपके भक्त मेरे संग ऐसा करने से पाप अवश्यही हुये होंगे इन सब पापोंसे तुम्हारी कृपा से मेरे पिताजी छूटजावें श्रीभगवान् बोले अच्छा ऐसाही होगा पर कुछ औरभी वरमांगो प्रह्लादने कहा हे नाथ! मैं हजारों योनियों में चाहै जहां जो जो होऊ पर तुममें अचल भक्ति बढ़ती रहै इसीमें कृतार्थहूं क्योंकि जिसने आपमें अचल भक्तिकी मुक्ति उसके हाथहीमें धरी रहती फिर धर्म अर्थ काम उसके आगे क्याहैं श्रीहरि ने कहा जैसा सहित भक्ति तुम्हारा मन हमसे निश्चल है तैसेही हमारे प्रसादसे जीवन्मुक्तता को पहुँचोगे यह कह श्रीहरि तो अन्तर्द्धान होगये प्रह्लादजी ने आय अपने पिताके चरण गहे पिताने मुंहसूंघ अच्छीभांति छाती से लगा कहा जिओ व आँसुओं से शिर सींचदिया व सब वैरछोड़ा प्रह्लादजी भी गुरु व पिताकी सेवा करनेलगे जब श्रीनृसिंहजी के हाथों से हिरण्यकशिपु मारागया तब दैत्योंके राजाहुये व राज्यके नानाप्रकारके सुख भोगने लगे पुत्र पौत्रादिभी बहुतहुये जब राज्याधिकार छूटा उस समय पाप पुण्य दोनों उनमें न रहे साक्षात् मोक्ष पदको प्राप्त होगये हे मैत्रेय! ऐसे प्रभावयुक्त प्रह्लादजी हुये जो तुमने पूछाथा सब कहा इन महात्मा दैत्यराज परमभक्त का यह चरित जो सुनेगा व कहेगा उसके सबपाप नशायेंगे यह चरित पढ़नेवाले के रात्रि दिनके किये हुये पाप मिटही जावेंगे व जो कोई पौर्णमासी अमावास्या व अष्टमी को व द्वादशीको पढ़ेगा गोदान करनेका फल पावेगा व जो कोई सदा इस चरितको सुना करेगा उस की रक्षाभी ईश्वर वैसेही करेगा जैसे सब विपत्तियों से प्रह्लादकी की ॥

इक्कीसवां अध्याय ॥

दो॰ इक्किसयें अध्यायमहँ कश्यप वंश बखान ॥
जहां मातु शुचि होन सो परनवेत्र यह गान ॥ १ ॥

श्रीपराशरमुनि बोले हे मैत्रेय ! हिरण्यकशिपुके जो ४ पुत्र कहेहैं उनका वंश सुनिये प्रह्लादके आयुष्मान् शिबि व बाष्कल ये ३ पुत्र हुये प्रह्लाद जीके विरोचन विरोचन के बलि बलि के बाणासुरादि १०० पुत्र हुये उनमें बाणासुर सबसे ज्येष्ठथा हिरण्याक्षके महाबलवान् उत्कुर शकुनि भूत संतापन महानाभ महाबाहु कालनाग ये हुये कश्यपकी स्त्री दनुमें द्विमूर्द्धा शंबर शकर अयोमुख शंकुशिर कपिल एकचक्र महाबाहु तारक महाबल स्वर्भानु वृषपर्वा पुलोमा विप्रचित्ति ये हुये स्वर्भानुके प्रभानाम व वृषपर्वाके शर्मिष्ठा कन्या हुई वैश्वानरके उपदानवी हयशिर पुलोमा कालिका ये हुईं पुलोमा व कालिका दोनों कश्यपको व्याहीगई इनके ६०००० दानव हुये ये दानव पौलोम और कालकञ्ज नामोंसे प्रसिद्ध हुये विप्रचित्तिकी स्त्री सिंहिकानामथी उसके व्यंश शल्य बलवान् नभ महाबल वातापी नमुचि इल्वल अजकनरक कालनाभ स्वर्भानु महावीर्य चक्रयोधी महाबल ये सब दानव दनुवंश बढ़ानेवाले हुये इनके पुत्र पौत्र प्रपौत्रादि हजारों लाखों हुये प्रह्लादजी के कुलमें निवातकवचादि पुत्र हुये व ताम्रा नाम स्त्रीसे शुकी श्येनी भासी सुग्रीवी शुचि गृध्रिका ये ६ कन्या हुई शुकीसे सब सुआ उत्पन्न हुये उलूकीसे खगट श्येनीसे कुर्ग भासीसे बाज गृध्रीसे गृध्र शुचिसे जलपक्षी सुग्रीवीसे घोड़े ऊंट गर्दह हुये और कश्यपकी विनता नाम स्त्रीसे गरुड़ व अरुण दो पुत्रहुये गरुड़जी सब पक्षियोंमें श्रेष्ठ दारुणहैं क्योंकि सर्पोंकाभी भोजन करजातेहैं व सुरसानाम स्त्रीमें कश्यपसे सहस्र सर्पहुये कद्रू नाम स्त्रीसे भी सर्पहीहुये इसीसे सर्पोंका काद्रवेय नामहै ये सब गरुड़के आधीनहैं इनमें मुख्य २ शेष वासुकि तक्षक शंखश्वेत महापद्म कम्बल अश्वतर एलापत्र नाग कर्कोटक धनञ्जय इतने ये इनके विशेष अन्य भी सहस्रों नागहुये ये सब महाक्रोधी होते व दांतोंसेही काटते हैं पक्षी स्थलचारी व जलचारी दो प्रकारके होते उनमें जो मांसभक्षी होते वड़े दारुण होते सुरभि नाम कश्यपकी स्त्री ने गाय भैंस व भेड़ इनमें उत्पन्न किये इराने वृक्ष लता लता तृणादि सब पैदाकिये खसाने यक्ष राक्षस

मुनिनाम स्त्री ने अप्सराओं को उत्पन्न किया व अरिष्टाके गन्धर्व हुये स्थावर व जगमके भेदसे दोप्रकार के कश्यपजी के वंश कहे इनके पुत्र पौत्रादि सहस्रोंहुये यह सब सृष्टि चाक्षुष मन्वन्तरकी है वर्त्तमान वैवस्वत मन्वन्तर में तो जो यज्ञ करने के समय ब्रह्माजी से सप्तर्षि उत्पन्नहुये थे वही इसमें हुये व जब देवता गन्धर्व और दैत्योंसे विरोध हुआ उसमें दैत्य मारेगये तब दितिने कश्यप अपने पतिको प्रसन्न किया कश्यपजी ने दितिसे प्रसन्नहोकर कहा वरमांगो दितिने कहा जो आप प्रसन्नहों तो ऐसा पुत्र देवें जो इन्द्रको मारडाले कश्यपजीने कहा अच्छा ऐसाही होगा परन्तु इन्द्रके मारनेके योग्य ठीक २ पुत्र तभी होगा जब तुम १०० वर्ष तक गर्भ धारण किये हुई बड़ी पवित्रता से रहोगी यदि पवित्रता में कुछभी अन्तर होगा तो वह पुत्र इन्द्रको न मारेगा वरन विष्णुका भक्त देवताओं का भाई होगा यह कह कश्यपजी ने दितिको गर्भाधान कराया व उन्होंने नियममें तत्परहो गर्भ धारण किया इन्द्रने जाना हमारी सौतेली माता हमारे मारने के लिये पुत्र उत्पन्न किया चाहती हैं इस लिये आप उनकी सेवा में लगे व उनकी पवित्रता में भ्रष्टता विचारते व दितिभी बराबर अपने नियम से चलीगई जब १०० वर्ष में १ वर्ष पुत्र होनेको रहा तो एकदिन विन पैरधोये रात्रिको सोरहीं इन्द्र सूक्ष्मरूप धर दिति के पेटमें पैठगये व गर्भ के उन्हों ने ७ खण्ड वज्रसे करडाले जब वे सातो रोने लगे तो प्रथम समझाया कि न रोवो जब उन्होंने न माना तो एक २ के फिर वज्र से सात२ खण्ड करडाले वेही ४६ पवन हुये ये सब इन्द्रही के सहायक हुये ॥

वाईसवां अध्याय ॥

दो० बाइसयें अध्यायमहँ जिमि विधि राजकहँ दीन ॥
आधिपत्य निज प्रियन को वर्णन सोइ प्रवीन ॥ १ ॥

श्रीपराशरमुनि बोले जैसे पूर्वही ऋषियोंने पृथुको राजसिंहासन पर बैठाया उसी क्रमसे ब्रह्माजीने सब को राज्य दिये जैसे कि नक्षत्र ग्रह ब्राह्मण वृक्ष सल्लादि यज्ञ व तपस्या इनके राजा चन्द्रमा को बनाया राजाओं के राजा कुबेर को जलके वरुणको देवताओंके राजा वामनजी को अग्नियों के राजा पावक को प्रजापतियोंके राजा दक्षको देवताओं के राजा इन्द्रकोभी दैत्य व दानवों के

स्वामी प्रह्लाद को पितरों के धर्मराजको हाथियों के ऐरावत को पक्षियों के गरुड़को घोड़ों के उच्चैश्रवा को गाय बैलों के नन्दीश्वर को सर्पों के शेष को वनपशुओं के सिंहको सब वृक्षों की रानी पकरिया को बनाया इस भांति इन सबके राजा बनाय सब दिशों के भी स्वामी नियत करदिये जैसे पूर्वदिशाके स्वामी वैराज प्रजापति के पुत्र सुधन्वाको बनाया व दक्षिण दिशा के कर्द्दम प्रजापति के पुत्र शङ्खपद को व पश्चिम दिशा के रजसके पुत्र केतुमान् को तथा पर्ज्जन्य प्रजापति के पुत्र दुर्द्धर्षको उत्तर दिशाके स्वामी बनाया ये लोग सप्तद्वीपवती इस पृथ्वी में अपनी २ दिशाओंके स्वामी हुये व अबतक पालन करते हैं ये सब राजा व जो होचुके हैं जो होंगे सब विष्णु भगवान् के ऐश्वर्य्य रूप हैं इसी भांति दानव राक्षस भूत प्रेत पिशाच पशु पक्षी मनुष्य सर्प नाग वृक्ष पर्व्वत ग्रह इनके जो २ पति हैं सब ईश्वरकी विभूति हैं व इन्हीं की शक्तिसे पालन करते हैं क्योंकि बिना भगवान् विष्णुकी शक्ति किसी में सामर्थ्य नहीं जो राज्यका प्रबन्ध करसकें क्योंकि सृष्टिके समय रजोगुणी ब्रह्माहो संसारको वही विष्णुजी बनाते पालनके समय सत्त्वगुणी हरिहो पालते प्रलयके समय तमोगुणी रुद्र हो नाशते हैं चार प्रकारकी सृष्टिके उपराजने पालने नाशने के लिये श्रीविष्णु अपने चार चार भागकरके सृष्ट्यादि करते हैं सृष्टिके समय एक अंश से ब्रह्मा होते दूसरेसे मरीच्यादि मुनि तीसरेसे काल चौथे से सब प्राणियों को बनाते यह चार प्रकार का रजोगुणी स्वरूप हुआ पालनसमय में एक अंशसे विष्णुहो पालते दूसरे से मन्वादिक रूप होते तीसरे से कालरूप होते चौथे से सब प्राणियों में स्थितहो पालते हैं इसीभांति प्रलय के समय तमोगुणी रुद्रहो एक अंशसे नाशनेलगते दूसरे से अग्न्यन्तकादिरूप धारण करते तीसरे से कालस्वरूपी होते चौथे से सब प्राणियों को नाशने ब्रह्मादक्षादि काल व सब प्राणी सृष्टिके समय हरिकी सब विभूति रहती विष्णु मन्वादि काल सब प्राणी पालनके समय यह हरिकी विभूति रहती है रुद्र काल यम राजादि सब प्राणी यह सब चारप्रकारकी प्रलयके समय हरिकी विभूति रहती है जगत् के आदि व मध्यमें जबतक प्रलय नहीं होती ब्रह्मा मरीच्यादि व जन्तुओं से सृष्टि हुआ करती है पहिले ब्रह्मा सृष्टिको बनाते फिर मरीच्यादि सन्तान उत्पन्न करते उनके पीछे सब जन्तु प्रतिक्षण उत्पन्न करतेही रहते बिना काल ब्रह्मा प्रजापति-

व जन्तु कोई नहीं सृष्टि करसके इससे कालभी मुख्य कारण है इसीभांति पालन व विनाशमें भी चार २ प्रकार होते हैं इसप्रकार जगत्कर्त्ता जगत्पालक जगन्नाशक सब विष्णुही हैं तत्त्व ज्ञानमय परमात्मा भगवान्का परमपदभी चारप्रकार का है यह सुन मैत्रेयजी बोले हे मुनिराज। उस ब्रह्मभूत परमेश्वरका जो चारप्रकारका परमपद आपने कहा सो सुनाइये पराशरमुनि बोले हे मैत्रेय। सब वस्तुओं के कारणको साधन कहते हैं व जिस वस्तुको सिद्ध किया चाहते हैं उसे साध्य कहते हैं जैसे कि मुक्तिकी कामना किये हुये योगियों के प्राणायाम साधन हैं व जिस ब्रह्मको प्राप्तहो फिर जीव नहीं लौटता वह ब्रह्म साध्य है साधनावलम्बी जो योगियों का ज्ञान मुक्तिके लिये है वही ज्ञानभूत परमेश्वर का पहिला भेद है फिर साध्य ब्रह्मके निकट पहुँचने व मुक्तिके लिये क्लेश सहना इनके अवलम्बन वाला ज्ञान उसका दूसरा अंगहै फिर इन साध्य साधन दोनों की एकतासे जो अद्वैतमय ज्ञानहै वह उसका तीसरा भागहै व जो इन तीनों ज्ञानोंसे विशेष इनके छोड़ने से होता वह निर्व्यापार अकथनीय परिपूर्णमात्र उपमारहित ईश्वरके बोधका विषय चैतन्यमात्र लक्षणरहित प्रशान्त अभय शुद्ध अविभाज्य संशयहीन यह ज्ञान श्रीविष्णुका परमपद व चौथा अंश है वही अमल नित्य व्यापक नाशरहित सब भेद शून्यहै जिसको पहुँचकर योगी पुण्य पाप रहितहो फिर कभी नहीं गिरता उस ब्रह्मके दो रूप हैं एक मूर्त्त दूसरा अमूर्त्त वे क्षर अक्षर स्वरूप से प्राणियों में स्थित हैं अक्षर तो परब्रह्म है व क्षर संसार जैसे एक स्थान में अग्नि बारो उसकी उजियारी दूरतक जाती ऐसेही ब्रह्महै तहांभी जो पदार्थ अग्निके निकटहैं वहां बहुत प्रकाश पहुँचता जहां दूर है कम ब्रह्मा विष्णु शिव ये ब्रह्मकी प्रधान शक्तिहैं इनसे उतर इन्द्रादि देव उनसे कम दक्षप्रजापत्यादि तिनसे कम मनुष्य इनमे पशु पशुओंसे भी कम वनके जीव उनमे कम पक्षी इनसे सर्प वृश्चिकादि इनमे बहुतही न्यून वृक्ष वल्ल्यादि हे मुनिवर। यह ईश्वर अक्षय नित्य है जगत्भी अक्षयहै और सब शक्तिमय श्रीविष्णु ब्रह्मके श्रेष्ठरूपहैं मूर्त्त वह रूप जिसे योगीलोग ध्यावते हैं व जो बहुत ध्यावते २ सुस्थिर मनमें आजाताहै वही ब्रह्मस्वरूप हरि हैं उसी ईश्वरमें यह संसार वस्त्रकी भांति दोनोंओरसे बीनाहै इसीसे उसीमें जगत् होता व उसी में गिरजाता वह ईश्वर क्षर अक्षर रूपहै व इस संसारको सगुण व ब्रह्मरूप भा

रण किये हैं मैत्रेयजी इस कथाको सुन बोले कि हे पराशरजी ! जिसप्रकार भूषण व अस्त्ररूप इस संसार को श्रीविष्णु धारण करतेहैं वह हमसे कहिये पराशरजी बोले श्रीविष्णु को प्रणाम कर जिसभांति वशिष्ठजी ने हमसे कहाहै तुम को सुनाते हैं निर्लेप गुणरहित इस संसारको भगवान् विष्णु कौस्तुभमणिके समान धारण किये हैं अनन्त भगवान्के कोश में सोतेहुये हरि श्रीवत्सरूप जगत्को धारण करते प्रकृति व बुद्धि तत्त्व गदारूपसे पृथिव्यादि ५ तत्त्व व मुखादि १० इन्द्रियों को व अहंकार तत्त्वको शङ्ख व धनुषरूपसे अतिचंचल मनस्वरूप मन को हाथमें चक्र स्वरूप धारण करते हैं जो मुक्ता माणिक्य मरकतमणि इन्द्रनील हीरक इन ५ से बनीहुई विष्णु की वैजयन्ती मालाहै वह शब्द रूप स्पर्शादि जो आकाशादि तत्त्वोंकी मात्राहैं उनके रूपसे धारण किये हैं व जो ज्ञानेन्द्रिय ५ कर्मेन्द्रिय ५ हैं उन्हें बाणरूप श्रीभगवान् ग्रहण करते निर्मल खड्ग श्रीहरि धारते वह विद्यामय है व अविद्यामय ढाल इसभांति श्रीजनार्दन भगवान् में पुरुष प्रकृति बुद्धि अहकार पृथ्वी वायु आकाश अग्नि जल मन सब इन्द्रिय विद्या अविद्या सब अस्त्ररूपमें विद्यमान हैं ये सब मायारूप हरि प्राणियों के उपकारके लिये धारण करते हैं प्रकृति पुरुष व सब जगत् परमेश्वर परब्रह्म में रहते हैं विद्या अविद्या सत असत् अव्यय जो कुछहै सब मधुसूदन भगवान् में है भूर्लोक भुवर्लोक स्वर्लोक महर्लोक जनलोक व सत्यलोक सब उन्हीं में है सब लोकोंकी मूर्त्ति सबमे पृथग् होनेवाले सब विद्याओं के आधार वही हैं देव मनुष्य पशु आदि बहुत रूपोंमें दिखेहुये देखने में मूर्त्तिमान् वस्तुतः अमूर्त्तिमान् वही हरि हैं सब वेद महाभारतादि इतिहास आयुर्वेद धनुर्वेदादि उपवेद वेदान्त मनुस्मृत्यादि धर्मशास्त्र अन्य वेदाङ्ग वैशेषिकादि ६ शास्त्र कल्पसूत्रादि काव्य गीतिशास्त्र यह सब शब्दमूर्त्ति विष्णु की मूर्ति हैं इतनी गिनाये पर जो कुछ संसार में है सब हरिरूपही है जिसका मन यह समझता कि हरि में हूं यह सब संसार हरिरूपहै कारण कार्य्य कुछभी तिससे अलग नहीं वह संसार से बाहर होजाता है॥

चौ॰ यह पुराण प्रथमांश बखाना। तुगमन द्विजवर सहित विधाना॥
जासु सुने नर पाप नशाहीं। अन्तकाल हरिपुर ते जाहीं॥ १॥
द्वादश वर्ष कार्तिकी माहीं। जो जन पुष्कर माहिं नहाहीं॥

पावत जो फल सो सब पावत। जो यहि सुनत गुनत अरु गावत॥ २॥
देव ऋषीश पितर गन्धर्वा। किन्नर यक्ष अन्य सुर सर्वा॥
जो यह सुनत ताहि वरदाना। देत सकल यह सत्य बखाना॥ ३॥

इति श्रीमद्विष्णुपुराणे प्रथमेंऽशे द्वाविंशोऽध्याय ॥ २२॥

अथ विष्णुपुराणस्य ॥

द्वितीयोंऽशः २॥

दो॰ अहै दूसरे अंश महँ सब सोरह अध्याय॥
जहँ भूगोल खगोल कर वर्णित हैं समुदाय॥ १॥
तहँ पहिले अध्याय महँ कथा प्रियव्रत केरि॥
तासु वंश वर्णन मही गोलहु सूचित टेरि॥ २॥

प्रथम अंश के २२ अध्यायों की कथा सुन मैत्रेयमुनि मुनिराज पराशर जी से बोले कि हे भगवन्! जगत्की सृष्टि जो हमने पूछीथी सो तो आपने भली भांति कही इस प्रथम अंशमें अभी फिर कुछ हम सुना चाहते हैं जो कि आप ने स्वायम्भुव मनु के पुत्र प्रियव्रत व उत्तानपाद बताये उन में उत्तानपाद के ध्रुवादिपुत्र कहे उनकी कथा भी कही पर प्रियव्रत की सन्तति नहीं बताई हम उसे सुनाचाहते हैं प्रसन्नचित्तहो सुनाइये पराशरमुनि बोले कर्दमुनिकी कन्या जिसका कन्याही नाम था राजा प्रियव्रतका उसके साथ विवाहहुआ उसमें सम्राट व कुक्षी दो कन्या और बड़ेप्रतापी १० पुत्र हुये ये सब महापण्डित महापरा क्रमी महासुशील अपने पिता के परमप्यारे हुये इन के नाम ये हैं १ अग्नीध्र २ अग्निबाहु ३ वपुष्मान् ४ द्युतिमान् ५ मेधा ६ मेधातिथि ७ भव्य ८ सवन ९ पुत्र १० ज्योतिष्मान् इनमें ज्योतिष्मान् बड़े तेजस्वी थे इन में मेधा अग्नि-बाहु व पुत्र ये तीन बड़े योगी व जातिस्मरथे इन्होंने राज्यकी इच्छा टीन की सब कामों से निर्मोह होने से जितनी क्रिया करते थे फल किसी से नहीं चाहतेथे बाकी ७ पुत्रोंको प्रियव्रतजी ने पृथ्वी के सात द्वीप बनाय बांट दिया यथा अग्नीध्रको जम्बूद्वीप दिया यह सबके बीचमें है इसके चारों ओर शाल्म-

लि द्वीप है वह वपुष्मान्‌को फिर ऐसेही कुशद्वीप ज्योतिष्मान् को क्रौंचद्वीप द्युतिमान् को शाकद्वीप भव्यको पुष्करद्वीप सवन को दिया इनमें जम्बूद्वीप के पति अग्नीध्रजी के नाभि १ किम्पुरुष २ हरिवर्ष ३ इलावृत ४ रम्य ५ हिरण्यवान् ६ कुरु ७ भद्राश्व ८ व केतुमाल ये ९ पुत्र हुये इन में नाभिको सब से दक्षिणवाला खण्ड जो हिमालय से समुद्र पर्यंत है पिताने दिया इससे उत्तर वाला जिस में हेमकूट पर्वत है किम्पुरुष को मिला जिसमें निषध नाम पर्वत है हरिवर्ष को सौंपा जो सबके मध्यमें है व उसके बीच में सुमेरुहै वह इलावृत को दियागया व जिसमें नीलनाम पर्व्वतहै रम्यको मिला जो उससे उत्तर जिस में श्वेताचल है हिरण्यवान् को मिला जिस में शृङ्गवान् पर्वत है व सब के उत्तर समुद्र के किनारे है कुरु को सौंपा सुमेरु के पूर्व ओर जो खण्ड है भद्राश्व को दिया व जो सुमेरुवाले इलावृतकी पश्चिम ओर है जिस में मर्य्यादागिरि गन्धमादन है केतुमालको मिला इस भांति अपने नवपुत्रों को नवखण्ड सौंप राजा अग्नीध्र शालग्रामाश्रमको तपस्याकरने चलेगये जो किम्पुरुषादि८खण्ड हैं उन में स्वाभाविकी सिद्धि है वहां जिनकी जितनी आयुष् नियतहुई रहती रहती अकाल मरण नहीं होता धर्म्म अधर्म्म कुछ नहीं उत्तम मध्यम अधम भी कोई नहीं सब समान स्वभावही होते जातिकी व्यवस्था तो है पर नाममात्रही को युग की भी अवस्था कुछ नहीं और जो हिमालय के दक्षिण खण्डके पति नाभिजी थे उनका विवाह मेरुदेवी के संग हुआ उसमें उनसे ऋषभनाम पुत्र हुये ऋषभजी के १०० पुत्र हुये उनमें सबसे बड़े भरतजी थे ऋषभजी भरतको राज्य दे पुलस्त्याश्रम को तपस्या करने चलेगये वहां वानप्रस्थाश्रम के अनुसार बहुत दिन तपस्याकर परमधाम को गये जाहे से वन के चलने के समय ऋषभजी ने भरतही को यह खण्ड दिया इसी से इसका भारतवर्ष भरत खण्ड नाम कहाजाता है भरतके पुत्रका सुमति नाम हुआ बहुत दिनों तक राज्य कर सुमति को दे अन्त्यावस्था में महाराजाधिराज भरतजी शाल ग्राम को तपस्या करने चलेगये व वहीं मृतकहुये फिर ब्राह्मण के यहां जन्म पाया हे मैत्रेय ! जिसका चरित्र पीछे से कहेंगे सुमति के इन्द्रद्युम्नहुये तिनके परमेष्ठी परमेष्ठी के प्रतिहार इनके प्रतिहर्त्ता तिनके भुव भुव के उद्गीथ इन के प्रस्तार तिनके पृथु पृथुके नक्त नक्त के गय गयके नर नर के विराट् विराट्

के महावीर्य तिमके धीमान तिमके महान् तिमके मनुस्यु तिनके त्वष्टा त्वष्टा के विरज विरज के रज रज के विष्वग्ज्योति आदि १०० पुत्र हुये इनमे बहुत प्रजा बढ़ी यह सब उत्तानपाद व प्रियव्रत केही वंशवालों की सन्तान है जिसने भारतखण्डको भोगा ॥

चौ० कृतत्रेता द्वापर कलि जबहीं। जात एकहत्तरि बारहिं सबहीं ॥
यहिस्वायम्भुवसृष्टि कहत सब। यामांपृथ्वि भयह जगत फब ॥ १ ॥
यह वाराह कल्प सब गाथा। विधि भली विधि तुम्हें सुनावा ॥
अथको सुना चहत चितलाई। हम मन दीजै तुरत बताई ॥ २ ॥

दूसरा अध्याय ॥

दो० कहब द्वितीयाध्यायमहँ प्रश्नोत्तर बहु भांति ॥
जहा चरित प्रियव्रत मही गोल कथाकी पांति ॥ १ ॥

श्रीमैत्रेयमुनि बोले हे मुनिश्रेष्ठ। आप ने स्वायम्भुव मन्वन्तर की सृष्टि कही अब भूगोलविद्या सुनाचाहते हैं इस में इस पृथ्वी में जितने सागर द्वीप खण्ड पर्वत वन नदी देवता आदिकों की पुरियाहों व जितना प्रमाण भूगोल का हो जिसपर यह थँभा हो सब यथाविधि कहिये पराशरमुनि बोले हे मैत्रेय! विस्तारपूर्वक तो इस भूगोल को कोई सैकड़ों वर्ष में नहीं कह सक्ता इसलिये हम संक्षेप रीति से कहते हैं सुनिये इस पृथ्वीतल पर जम्बू प्लक्ष शाल्मलि कुश क्रौञ्च शाक व पुष्कर ये ७ द्वीप हैं ये सातों द्वीप क्रम से लवणोद इक्षुसोद सुरोद घृतोद दधिमण्डोद दुग्धाब्धि व शुद्धजलसे घेरेगये हैं इन सब द्वीपों के मध्यमें जम्बूद्वीप है इस के बीचोबीच सुमेरु नाम सोनेका पर्वत है वह पृथ्वीतल से चौरासी हजार योजन ऊंचा है व सोलहहजार योजन धरतीमें गड़ाहै ३२००० योजन चौड़ा स्थान इसकी चोटी पर है नीचे सोलहही सहस्र योजन विस्तारहै यह पर्वत कमलाकार पृथ्वी का कर्णिकाकार है हिमवान् हेमकूट व निषध ये ३ तो इसके दक्षिण वाले तथा के वाहीवाले हैं नील श्वेत व शृङ्गवान् उत्तरवालोंके इन में निषध व नील तो लाख योजन पर्यंत बाकी सब दश २ सहस्र योजन एक दूसरे की अपेक्षा कम हैं इन सभों की ऊंचाई दो २ हजार योजन है व चौड़ाई भी इतनाही सुमेरु पर्वत के चारों तरफ़ी

और गे भारतवर्ष किम्पुरुषवर्ष व हरिवर्ष ये तीनखण्ड क्रमसे हैं इसी भांति सुमेरु से उत्तर समुद्र पर्यन्त रम्यक हिरण्मय व कुरु ये तीन खण्डहैं ये सब भारतखण्डा दि नव २ सहस्र योजन के हैं इलावृत खण्ड सबके मध्य में है इसी में सुमेरुप र्वत सोने का है इलावृत भी सुमेरुके चारों ओर नवसहस्र योजन है इसके चारों ओर चार पर्व्वतहैं वे सुमेरु को मानों चारों ओर से आड़े हैं सुमेरु के पूर्व्व मंद राचल व दक्षिणमें गन्धमादन पश्चिम विपुल उत्तर सुपार्श्व इन मन्दरादिपर्व्वतों के ऊपर क्रम से ११०० योजन के ऊंचे कदम्ब जामुनि पीपर व बरगद के ये ४ वृक्षभी हैं इसका जम्बूद्वीप इसीसे नामहुआहै जिससे इस में जम्बूकहे जामुनि का पेड़है इस जामुनिके फल बड़े बड़े हाथियोंके समान होतेहैं व पहाड़ पै गि रने से फूटजाते उन्हीं के रस से एक जम्बूनाम नदी बहती है इलावृतखण्ड के निवासी उसका जल पीते हैं इसके पीनेवालोंके पसीना दुर्गन्धि बुढ़ापा इन्द्रिय क्षयआदि रोग नहीं होते इसी नदी में जम्बूनद नाम सुवर्ण होता वहांके सिद्ध लोग उसे धारण करते और मेरु के पूर्व्व भद्राश्व वर्ष पश्चिम केतुमालहै इन दोनों के बीच में इलावृत खण्ड और सुमेरुके पूर्व्व चैत्ररथ नाम वनहै दक्षिणमें गन्धमादन पश्चिममें वैभ्राजव उत्तरमें नन्दन व पूर्वहीके क्रमसे अरुणोद महा भद्र असितोद व मानस ये चार सरोवरहैं इनमें देवतालोग विहार किया करते व शीतांतचक्रमुञ्ज कुररी माल्यवान् वैकङ्क आदि कर्णिकाकार सुमेरु के पूर्व्व केसराकार ये पर्व्वतहैं व दक्षिणमें त्रिकूट शिशिर पतङ्ग रुचक निषधादि पश्चिम में शिखिवास वैडूर्य्य कपिल गन्धमादन जारुधि आदि उत्तर में शङ्खकूट ऋषभ हंसनाग कालञ्जरादि ये सब सुमेरुके पेट आदि अङ्गों में और और लपटेहुये हैं सुमेरुके ऊपर १४००० योजनकी ब्रह्माकी पुरी है इसकी चारों दिशा व उप दिशों में इन्द्रादि लोकपालों की ८ पुरियां हैं वामनावतार विष्णुजी के चरण से निकलीहुई गङ्गाजी अन्तरिक्षसे चन्द्रमण्डल भिगातीहुई भी ब्रह्मपुरी में गिरती हैं वहांसे इनकी ४ धारा होगई हैं व सीता अलकनन्दा चक्षु व भद्राके नामसे प्रसिद्ध हैं पर्व्वतसे सीता पूर्व्वको बही व भद्राश्ववर्षमें होतीहुई समुद्रमें पहुंची इसी भांति अलकनन्दा दक्षिण दिशाको बही बहके २ भारतखण्डहो समुद्रमें पहुंची इनकी ७ धारा हैं १ नलिनी २ ह्लादिनी ३ पावनी ये तीनों सीधी पूर्व्वको चली गईं सीता ४ चक्षु ५ व सिन्धु ६ ये तीनों सीधी पश्चिम

को और सातवीं गंगानाम से भागीरथ के साथ दक्षिण ओर बहतीहुई सागरमें मिली हैं व चक्षु नाम सुमेरु पर्व्वतके पश्चिमवाले सब पर्व्वतोंपर होतीहुई केतुमाल वर्षमेंहो पश्चिम सागरमें मिली और इसीभांति भद्रा सुमेरुके उत्तर पर्व्वतों व उत्तर कुरुदेशों में होतीहुई उत्तर महासागर में जामिली नील निषध माल्यवान् व गन्धमादन इनके बीचमें इलावृतखण्ड जिसके मध्यमें सुमेरु पर्व्वत है इस कर्णिकाकार जम्बूद्वीप के भारतकेतुमाल भद्राश्व कुरु ये पत्राकारहैं और देवकूट व दक्षिण उत्तरके मर्य्यादा पर्व्वत ये मानों जम्बूद्वीपके पेटहैं गन्धमादन व कैलास ये दोनों पूर्व्व पश्चिमको अस्सी योजन लम्बेहो समुद्रमें मिले हैं निषद व पारियात्र ये मर्य्यादा गिरिसुमेरु की पश्चिम ओर हैं त्रिशृङ्ग व जारुधि ये दोनों उत्तरके मर्य्यादा पर्व्वत हैं व पूर्व्वसे पश्चिमको लम्बे हैं मैत्रेय। ये मर्य्यादा पर्व्वत तुमसे बताये ये जितने मर्य्यादा व केसराकार पर्व्वत कहे हैं इनमें अतिमनोहर कन्दरा हैं उनमें सिद्ध व चारणलोग निवास करते हैं अतिरमणीक वन नगरादिकी उनमें लक्ष्मी विष्णु अग्नि सूर्य्यादि देवोंके हैं उन स्थानोंमें किन्नर नर गन्धर्व्व यक्ष राक्षस दैत्य दानव इत्यादि विहार किया करते हैं धर्म्मात्माओंके लिये ये स्वर्ग पृथ्वीतल ही पर हैं पाप त्मालोग चाहे मैं करों जन्म धरैं इन स्थानोंको नहीं जाते भद्राश्वखण्ड में हयशीर्ष भगवान्‌की मूर्त्ति रहती केतुमालवर्षमें वाराहजीकी भरतखण्डमें कच्छपजीकी कुरुवर्षमें मत्स्यजीकी ॥

चौ॰ विश्व रूप सर्व्वेश्वर श्रीहरि। रहत सदा सर्व्वत्र नेह करि॥
सर्व्वाधार अखिल जग स्वामी। घट घट व्यापक अन्तर्य्यामी॥ १॥
जाकिम्पुरुष आदि वसुखण्डा। तहां न शोक मोह अति चण्डा॥
नहिं उद्योग न क्षुधा पियासा। कोऊ काहुकि करत न आसा॥ २॥
प्रजा सकल तहँ सुस्थिर रहई। दुःख दुराशा क्रोध न लहई॥
दश द्वादश सहस्र सम जीवत। सदा सुधा सम रस मद पीवत॥ ३॥
तहां न कबहु मेघ गण वर्षत। भूमिवारि सम्पत्ति जन दर्शत॥
कृत त्रेता युग सम सब काला। तहां रहत हरि कृपा विशाला॥ ४॥
सब खण्डन महँ सुन्दर सुहाये। सात सात पर्व्वत मन भाये॥
तिनसों बहत नदी गण नाना। जिनमों जगत भेद बखाना॥ ५॥

तीसरा अध्याय ॥

दो० कथन तृतीयाध्यायमहँ नदी पहाड़ बखान ॥
भरतखण्ड महिमा बहुत सुनहु सुजान दै कान ॥ १ ॥

पाराशरमुनि बोले दक्षिण महासागर से उत्तर व हिमालय पर्व्वतसे दक्षिण जो देशहै उसे भारतवर्ष कहते हैं व यहांकी प्रजाको भारती यह प्रगट नवसहस्र योजनका लम्बा चौड़ाहै स्वर्ग व मोक्षके पानेवालों के लिये कर्मभूमि यही है चाहे अच्छे कर्म करके अच्छे लोकों को जावो चाहो पाप करके नरकादिकोंमें जावो इस खण्डमें महेन्द्राचल १ मलयाचल २ सह्याचल ३ शुक्तिमान् ४ ऋक्षवान् ५ विन्ध्याचल ६ व पारियात्र ये ७ मुख्य पर्व्वत हैं इसी खण्ड से पुरुष स्वर्ग मोक्ष व नारकी गति सबको पहुंचते हैं अन्यत्र कर्मभूमि नहीं है जो कुछ यहां से करके लेजावोगे वहां भोगोगे इस भारतवर्ष में नव भेद हैं यथा इन्द्रद्वीप कशेरुमान् ताम्रवर्ण गभस्तिमान नागद्वीप सौम्यद्वीप गान्धर्व्व द्वीप वारुणद्वीप व यह इतना जोकि सगरके पुत्रों के खनेहुये समुद्र व हिमालय के बीचमें हैं ये सब इसखण्डके द्वीप दक्षिण महासागर में दूर २ हैं इतने इस देश व उस दक्षिण समुद्रकी भी भारतखण्ड संज्ञा है व यहां से यहांतक ६००० योजन वर्गात्मक है यह सगरसुत कृत समुद्रसे हिमालयपर्य्यन्त १०००योजन है इसके पूर्व्वमें किरातदेश पश्चिममें यवनदेश है ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य व शूद्र इसी देशमें बसतेहैं इनकी वृत्ति क्रम से शास्त्रादि पठन पाठन युद्ध वाणिज्य व त्रिवर्ण की सेवा यह है इस खण्ड में भी पारियात्र पर्व्वतके निवासी वेद व स्मृति में बड़ा अभ्यास रखते हैं नर्मदा सुरसा आदि नदियां विन्ध्याचलसे निकलती हैं तापी पयोष्णी व निर्विन्ध्यादि नदियां ऋक्षवान्से गोदावरी भीमरथी कृष्णा व वेणी आदि सह्यपर्व्वतके निकटवर्त्तीगिरिसे कृतमाला ताम्रपर्णी आदि मलयाचल से त्रिसामा ऋषिकुल्या आदि महेन्द्राचलसे दूसरी ऋषिकुल्या व कुमारी आदि शक्तिमान्‌के तीरवाले पर्व्वतोंसे शतद्रु व चन्द्रभागा आदि हिमवान्‌के नीचे भागों से इन नदियोंसे भी बहुत नदियां व छोटी नदियां निकली हैं इनके किनारे २ व दूर २ भी कुरु पांचाल मध्यदेश पूर्व्वदेश कामरूप पुण्ड्र कलिंग मगध दाक्षिणात्य पश्चिम सौराष्ट्र शूर आभीर अर्बुद मालव मालव पारियात्र सौवीर सैंधव हूण साल्व शाकल मद्र आराम अम्बष्ठ पारसीक आदि देश बसे व इनके निवासी

इनका जल पी २ आनन्दित होते ये सत्ययुग त्रेता कलियुग इसी भरतखण्ड हीमें मानजाते हैं अन्यत्र नहीं क्योंकि इनके अनुसार धर्मके ४ पायें क्रम २ से इसीखण्डमें घटत इससे इनका प्रयोजन अन्यखण्डोंमें नहीं है व इसीखण्डमें पुरुष तपस्या व्रत यज्ञ दानादि आदरपूर्वक परलोकके लिये करते कराते यज्ञपुरुषभगवान् जम्बूद्वीपहीमें यज्ञोंसे पूजेजाते अन्यद्वीपोंमें नहीं फिर जम्बूद्वीपमें भी नवखण्ड हैं उनमें यह भरतखण्डही सर्वोत्तम है क्योंकि यह कर्मभूमि है व अन्य खण्ड भोगभूमि हैं इस भरतखण्ड में लाखोंजन्म के पीछे जन्म होता फिर यदि मनुष्यका जन्म बड़ी पुण्य इकट्ठा होनसे मिलजावे तो अहोभाग्य है ॥

चौ॰ गावत सकल देव गण गीता। धन्य पुरुष जिन जन्म पुनीता ॥
स्वर्ग मोक्ष प्रद भारत माहीं। कवनिउ विधि पायउ शुभ ग्राहीं ॥ १ ॥
जामों भरतखण्ड जनु पाई। होत सुकृति नर सुर समुदाई ॥
यामों धन्य धन्य त्यहि खण्डा। जन्महोय जाकर श्रुति मण्डा ॥ २ ॥
करन कर्म सकाम विहीना। जहघरि नर हरिपद लवलीना ॥
पुनि पावत हरि सदन निवासू। धन्य धन्य महि सकल सुपासू ॥ ३ ॥
स्वर्गेंद कर्म हीन जब होइहि। नहिं जानत जन्मब कहँ गोइहि ॥
धन्य मनुज जो भारत सर्पू। शुभ इन्द्रिय युत रहत सहर्षू ॥ ४ ॥
पुनि पावत हरि पद युत नेमा। स्वर्ग लहत अरु रहत सक्षेमा ॥
धन्य धन्य यह खण्ड महाना। लहै जन्म तहँ तो कल्याना ॥ ५ ॥
जम्बूद्वीप खण्ड नव भाना। योजन लक्ष जासु परमाना ॥
योजन लक्ष जलधि चहु फेरा। जम्बू द्वीप भरी तिमि घेरा ॥ ६ ॥

चौथा अध्याय ॥

दो॰ कह्यो चतुर्थाध्याय मों प्लक्षादिक व ...॥
पुनि मिनगिरिनदिवर्णे अरु पृथन ... ॥ १ ॥
क्षीरोदादि समुद्र जिमि ... ॥
... याम मुनिराज यह सुनिये श्रवण पवित्र ॥ २ ॥

पाराशरमुनि बोले जिसभांति क्षारसमुद्र से जम्बूद्वीप घिरा है तैसेही क्षार-समुद्रको प्लक्षद्वीप घेरे जम्बूद्वीप लाखयोजन का है प्लक्षद्वीप दो लाखयोजन का उसद्वीपका राजा प्रियव्रत पुत्र मेधातिथि ... ... निमित्त ...

खोदय आनन्द शिव क्षेमक व ध्रुव ये ७ पुत्रथे इन्हींके नामसे पूर्वदिशाके क्रम से शांतन व शिशिर सुखद आनन्द शिव क्षेमक व ध्रुव ये ७ खण्डोंके नामहुये मर्यादाकारक गोमेद चन्द्र नारद दुन्दुभि सोमक सुमन व वैभ्राज ये ७ हैं इन सब पर्वतों पर देवता गन्धर्वादि व प्रजाभी बसती है व उस खण्डमें पुण्यात्मा लोगही रहते उनके आधि व्याधि कुछ नहीं होती सदा-सुखमे निवास होताहै नदी भी वहां अनुतप्ता शिखी विपापा त्रिदिवा क्रतु अमृता व सुकृता ७ हैं ये सब समुद्रमें मिलीहैं व इनके स्मरणसे पाप मिटते हैं जो नदी व पर्वत गनाये सब प्रधान २ हैं इनको छोड़ छोटीनदियां व पर्वत हजारों हैं वहां की नदिया कभी घटती बढ़ती नहीं सदा समान रहती हैं इसलिये प्रसन्नतासे वहां की प्रजा उनसे अपना काम चलातीहैं वहां युगोंके अनुसार धर्मकी घटतीबढ़ती नहीं होती सदा त्रेतायुगके समानही काल बनारहता है प्लक्षद्वीपसे ले शाकद्वीप पर्यन्तके जन ५००० वर्षतक जीतेरहते हैं उनमें भी धर्म वर्णोंकेही अनुसारहै व वर्ण भी चारही हैं ब्राह्मणोंको आर्यक क्षत्रियोंको कुरव वैश्योंको विंश व शूद्रोंको भाविनी कहते हैं जैसे जम्बूद्वीपमें जम्बूका बड़ाभारी वृक्षहै जिसके नामसे यह जम्बूद्वीप कहाता वैसेही प्लक्षद्वीपमें प्लक्षकहै पकरिया का तरुहै उसी के नामसे वह प्लक्षद्वीप कहाता वहां सबही श्रीहरिकी पूजा सब आर्यकादि करते हैं प्लक्षद्वीपके किनारे २ दोलाख योजन का इक्षुमोदनाम समुद्रहै हे मैत्रेय! प्लक्षद्वीपकी व्यवस्था तो संक्षेपहीसे कही अब शाल्मलि द्वीपकी कहते हैं चित्तलगाय श्रवण कीजिये शाल्मलिद्वीप के अधिपतिका वपुष्मान् नाम था उनके भी श्वेत हरित जीमूत रोहित वैद्युत मानस व सुप्रभ ये ७ पुत्रथे इन्हींके नामों से ७ खण्ड बनाये गये यह द्वीप ४००० योजन का है व इक्षुरसोद समुद्र के किनारे वर्त्तमान है इनमें भी बड़े २ पर्वत व नदियां मानहीमान हैं यथा कुमुद उन्नत सुवलाहक द्रोणाचल कि जिसमें बड़ी ओषधी हैं कंक महिष व ककुद्मान् ये ७ पर्वतहैं और योनी तोया वितृष्णा चन्द्रा शुक्ला विमोचनी व निवृत्ति ये ७ नदियांहैं जिन के स्मरण मात्रहीसे पाप नाश होजाते हैं और श्वेत रोहित जीमूत हरित वैद्युत मानस व सुप्रभ ये ७ खण्डहैं इसमें भी चार वर्ण हैं ब्राह्मण को कपिल क्षत्रियको अरुण वैश्यको पीत शूद्रको कृष्ण कहते हैं ये सब पराध्य भगवान् विष्णु

भी पूजा यज्ञादिकोंसे करते हैं इसमें देवतालोग बहुत रहते और १ शाल्मलि कहे सेमरका वृक्ष बड़ाभारी यहां है उसीके नामसे यह शाल्मलिद्वीप कहाता इसके किनारे २ सुरोदक नाम समुद्र ४००० योजनका है शाल्मलिद्वीपके आगे कुशद्वीप है इसके महाराजाधिराज का ज्योतिष्मान् नामथा उनके उद्भिद वेणुमान् स्वैरथ लम्बन धृति प्रभाकर व कपिल ७ पुत्र थे इन्हींके नामसे सातखण्ड बनायेगये उनमें मनुष्य दैत्य व दानव सब एक संग बसतेहैं देवता गन्धर्व्व यक्ष किन्नरादि भी रहते वर्ण यहाभी चारहैं ब्राह्मणको दमी क्षत्रियको शुष्मी वैश्यको स्नेह शूद्रको मन्देह कहते हैं वहां ब्रह्मरूप श्रीविष्णुजीकी पूजा होती है और विद्रुम हेमशैल द्युतिमान् पुष्पवान् कुशेशय हरि व मन्दराचल ये ७ पर्व्वतहैं धूतपापा शिवा पवित्रा सम्मति विद्युतम्भगा व मही ये ७ नदिया हैं सब स्नानमात्रसे पाप नाशती हैं इनके विशेष बहुतसी छोटी २ नदिया व पहाड़ हैं इस द्वीपमें १ कुशका बड़ाभारी समूहहै उसीसे इसका कुशद्वीप नाम है इस द्वीपके किनारे २ घृतोदक समुद्र उतनेही योजनकाहै जितने का कुशद्वीपहै इस समुद्रके उसपार क्रौंचद्वीप इसका दूनाहै इसके महाराजका द्युतिमान् नामथा उनके कुशल मनुग उष्ण पीवर अन्धकारक मुनि व दुन्दुभि ये ७ पुत्र थे इसमें भी पव क्रौंच वामन अन्धकारक देवावृत्त पुंडरीकवान् दुन्दुभि व महा क्रौंच ७ मर्यादा पर्व्वत हैं इन सबपर देवता व मनुष्य गन्धर्व्वादि बसते हैं व ब्राह्मण को पुष्कर क्षत्रियको पुष्कल वैश्यको धन्य शूद्रको तिष्य कहते इसमें भी छोटी २ बहुत नदिया हैं पर प्रधान तो गौरी कुमुद्वती सन्ध्या रात्रि मनोजवा ख्याति पुंडरीका ये ७ नदियां हैं यहां रुद्ररूप श्रीभगवान् जनार्द्दनकी पूजा सबलोग करते हैं इस द्वीपको दधिमण्डोद समुद्र घेरेहै जितने योजनका यह द्वीपहै उतनेही योजन का वह समुद्रभी है दधिमण्डोद समुद्रके आगे शाकद्वीपहै यह क्रौंचद्वीप से दूना है यहाके महाराजका भव्य नाम था उनके भी जलदकुमार सुकुमार अणीवक कुसुमोद मोदाकि व महाद्रुम ये ७ पुत्र हुये उन्हींके नामसे ७ खण्ड बनाये गये इस द्वीपमें भी ७ पर्व्वत उदयगिरि जलाधार रैवतक श्याम आम्बिकेय रम्य व केसरीनाम से प्रसिद्ध हैं और शाकनाम बड़ाभारी एक वृक्षहै इसीके कारण इसका शाकद्वीप नाम हुआहै इसीके वायु के लगने से बड़ा सुख होताहै और नदियांभी यहांकी सब पाप नाशनेवाली

हैं उनके नाम सुकुमारी कुमारी नलिनी रेणुका इक्षुधेनुका व गभस्ती ये ७ हैं इनको छोड़ नदियां व पर्वत हजारों वहां हैं जो लोग वहां बसते हैं उनकी न धर्महानि होती न उनमें कभी परस्पर कहासुनी होती सब सदा प्रसन्नचित्त बने रहते वहां ब्राह्मणको मग क्षत्रियको मागध वैश्यको मानस व शूद्रको मन्दग कहते हैं इसमें सूर्यरूप भगवान् विष्णु की पूजा होती है इसके किनारे २ क्षीरोद समुद्र है इस समुद्रके उसपार शाकद्वीपका दूना पुष्करद्वीप है पुष्करद्वीपके अधिपतिका सवननामथा उनके महावीत व धातकि दोही पुत्रथे इनदोनों के नामसे उसमें दोही खण्डकियेगये इसमें मर्यादापर्वत मानसोत्तर एकही है यह पृथिवी तलसे ५०००० योजन ऊंचाहै व इतनाही इसका विस्तार भी है इसद्वीपके निवासी १०००० वर्ष तकजीते हैं और सब अरोगी अशोकी स्नेह वैर हीन होते अधम व उत्तम तो उनमें होते पर कोई मारने के योग्य व मारनेवाला नहीं देखपड़ता और कोई किसीकी ईर्षा निन्दा नहीं करता भय रोष लोभ किसी को नहींहोते उन दोनों महावीत व धातकीखण्डों में सत्य व झूठ दोनों नहीं हैं वहां नदी व पर्वत कुछनहीं सुन्दरसुहावने हैं पर्वत एकही मानसोत्तर दोनों खण्डोंकेमध्यमें है वहां देवादि व मनुष्य एकहीरूपसे फिरते हैं न वर्णाश्रमकी व्यवस्था भी नहीं वेदपाठ न्यायशास्त्र उद्यमादि भी नहीं ये दोनों खण्ड पृथिवी के स्वर्ग हैं इस पुष्करद्वीपमें एक बड़ाभारी न्यग्रोधका वृक्षहै उसके पत्ते ब्रह्मा जीका स्थानहै देवता व दैत्य सब ब्रह्माजीकी पूजा करते इस भांति द्वीप और समुद्रोंकी व्यवस्था कहीगई जितना जो द्वीप है उसके घेरेवाला समुद्र भी उतनाही है जम्बूद्वीप जो सबके मध्यमें है वह १००००० योजनका है इसके घेरनेवाला लवणसमुद्र भी इतनाही है इसके आगेवाला द्वीप व समुद्र इससे दूना फिर आगेवाला उससे दूना इसीभांति सबको जानो इन सब समुद्रोंमें जितना २ जल रहता है सदा उतनाही बना रहता है न्यूनाधिक कभी नहीं होता जैसा कि नदियों में और जो वृद्धि कमी २ देखी जाती है उसमें जल अधिक नहीं होजाता परन्तु जैसे किसी बर्तनमें जल करके अग्नि पर चढ़ाओ तो वह उबलता है उसी भांति समुद्रका जल चन्द्रमा को देखकर उछलता व फिर नीचे आजाता इसीको चढ़ना उतरना कहते हैं समुद्र जल ज्योंका त्योंही रहता व बढ़ना घटना शुक्ल व कृष्णपक्षके अनुसार होता है यथा

शुक्ल १ को ४। अंगुल समुद्रका जल बढ़ना द्वितीया को ८॥ अंगुल होजाता इसप्रकार सवाचार २ अंगुल प्रतिदिन अधिक बढ़ने से पूर्णमासीके दिन ५१० अंगुल होजाता है इसीभांति इतनाही इतना घटते २ अमावास्याको अपनी समानता को पहुंचता है उसकी वृद्धिका क्रम नीचे लिखते हैं वैसेही घटनीका भी क्रम जानना चाहिये ॥

तिथयः	अंगुलानि
१	४।
२	८॥
३	१२॥।
४	१७
५	२१।
६	२५॥
७	२९॥।
८	३४
९	३८।
१०	४२॥
११	४६॥।
१२	५१
१३	५५।
१४	५९॥
१५	६३॥।
जोड़	५१०

और भोजन पुष्करद्वीपमें किसीको बनाना नहीं पड़ता किन्तु बना बनाया ६ रस युक्त सबकेलिये प्रतिदिन अपने आप पहुंचजाताहै और उस स्वादूदक समुद्रके आगे अबतक जितनी पृथ्वी का बखान होचुका है उसकी दूना सोने की पृथ्वी है वहां कोई जन्तु नहीं बसते केवल योगी लोग देखने जाय वैसी नहीं सके तिसके आगे लोकालोक पर्वत १०००० योजनका ऊंचा व उतना ही चौड़ा इस पृथ्वी की आठों दिशाओं में है फिर उस पर्वत के उसपार गहा अन्धकार है अन्धकार अण्डकटाह से घेरा हुआ है यह सब पृथ्वी अण्डकटाह सहित ५०००००००० योजन की है इसके धात्री विधात्री आदि नाग हैं और सब प्राणियोंके रहने का स्थानहै ॥

पांचवां अध्याय ॥

दो० कहत पञ्चमाध्याय महँ सप्त पताल बखान ॥
सुनहु सुजन चितलाय शुचि पावन हैं हैं प्रान ॥ १ ॥

श्रीपराशरमुनि बोले हे मैत्रेयजी ! पृथ्वीका यह विस्तार तुमसे कहागया इसके ऊपर भी दश २ सहस्र योजन ऊंचे सातलोक हैं और नीचेभी दश २ हजार योजनपरमान पाताल अतल वितल नितल रसातल महातल सुतल व पाताल ये हैं इनमें क्रमसे शुक्ल कृष्ण अरुण पीत शर्करा पार्वती व सोने की धरती है व बड़े अति मनोहर घरद्वार बने हैं जिनमें दैत्य दानव व नागों की लाखों जाति बसी हैं पातालोंमे जाय एकसमय नारदमुनिने देवताओंकी सभामें कहा कि स्वर्गसे भी अधिक सुख पातालों में है क्योंकि जहां मणियों

से ही प्रकाश होता व सबकी प्रीति बढ़ती दैत्य व दानवोंकी कन्या इधर उधर घूमरही हैं ऐसे पातालों में विमुक्तभी हो पर कौनहै जिसकी प्रीति न हो जहां दिनको सूर्य के किरण प्रकाश तो करते हैं पर घाम नहीं चन्द्रमाके किरणभी रात्रिको प्रकाशते तोहैं पर शीत नहीं करते भक्ष्य भोज्य लेह्यादि सब भांतिके भोजन करतेहुये दैत्योंको बीताहुआ समय जान नहीं परता कि कितना बीता वन व नदियां सब रमणीक तड़ागों में कमल फूल रहे हैं ठौर ठौर मतवाले कोकिल बोल रहे हैं अतिमनोहर वस्त्र व भूषण व सुगन्धित पदार्थ व वीणा वेणु मृदंग नगारे आदि बाजन ठौर २ विद्यमान हैं इन्हें आदि औरभी नाना प्रकारके भोग विलास के पदार्थ हैं दैत्य दानव नागलोग भोगते हैं और सब पातालोंके नीचे भगवान् विष्णुकी जो एक नागकी मूर्त्तिहै जिसे अनन्त शेषादि अनेक नामोंसे पुकारते हैं उनके गुणोंको दैत्य दानव तो क्या कोई नहीं जानसक्ता इनके १००० शिरहैं और ये सब जगत के हित अपने फणोंसे ऐसा प्रकाश करते कि दैत्योंके मणकण घटतेजाते हैं इसीसे नीचेसे ऊंचे नहीं आते सदा इन अनन्तजीके नयन मदसे घूमा करते हैं कुण्डल एकही कानमें पहनते मुकुट धरे रहते मालाभी गले में विराजा करती मानों अग्नि सहित उज्ज्वल पर्वतहै वस्त्र सब नीलके रँगेहुये पहिनते हल उज्ज्वल हल व मुशल हाथों लिये कल्पान्त में इन्हीं के मुखसे अग्नि निकलने से सब भस्मीभूत हो जाता तभी स्वरूप विष्णु जगत् नागने इनके १००० शिरों में से किसी एक पर यह भूमण्डल धरारहता व यहां सब देवगण स्तुति किया करते हैं तिनका वीर्य व प्रभाव रूप व स्वरूप देवता लोग भी न जानसके न कहसके जिन के मस्तकपै यह इतनी बड़ी पृथ्वी फूलके मालाके समान धरी है फिर तिनका पराक्रम कौन कहेगा जब शेषजी कभी २ जभाई लेतेहैं तभी २ यह सबी पर्वत व समुद्रों के साथ चलायमान होती है ॥

चौ० चारण सिद्ध नाग गन्धर्वा । किन्नर अप्सर आरु नर सर्वा ॥
अन्त न लहत कहत गुणजासू । नाम अनन्त मानहिंसो तासू ॥ १ ॥
नागवधू करगत हरिचन्दन । जासु श्वास पवनासुमन्दन ॥
होयदिशा पटवासन मोई । भागुणगण पर ज्विमि कहसोई ॥ २ ॥
सबपुराण भाखत मुनिगणों । जादि अगायो परम निसर्गी ॥

लहीसकल ज्योतिषकी विद्या । सकल निमित्त कहेगति निद्या ॥ ३ ॥
सोइ नागपति निज शिरमाहीं । धरे रहत महि संशय नाहीं ॥
सकल पताल कथायह मानी । सुनहु भली विधि मुनिवरज्ञानी ॥

छठा अध्याय ॥

दो० कहव छठे अध्याय महँ सब नरकनकी गाथ ॥
जो क्षिति नीचे जलऊपर हैं सुनि कांपत माथ ॥ १ ॥

श्रीपराशरमुनि मैत्रेयमुनि से बोले तिन सब पातालों के नीचे व जल के ऊपे सब नरकहैं जहा सब पापी जन्तु गिराये जाते उनके नाम सुनिये १ रौरव २ सूकर ३ रोध ४ ताल ५ विशसन ६ महाज्वाल ७ तप्तकुम्भ ८ सवन ९ विमोहन १० रुधिरान्ध ११ वैतरणी १२ कृमिश १३ कृमिभोजन १४ असिपत्रवन १५ कृष्ण १६ लालाभक्ष १७ दारुण १८ पूयवह १९ पाप २० वह्निज्वाल २१ अधशिरा २२ सन्दश २३ कृष्णसूत्र २४ तम २५ आवीचि २६ श्वभोजन २७ अप्रतिष्ठ २८ अवीचि इन्हें आदि और बहुतसे महादारुण नरकहैं ये नरक सब यमराज के अधिकार में हैं इनमें जो कोई किसीको शस्त्रसे मारडालते व कहीं अग्नि लगादेते व अन्य पाप करते वहीलोग जबरदस्ती गिराये जाते हैं जो लोग झूठी साखी देते व किसी की मुहदेखी करते व औरही झुंठाई करते वे रौरवनरकमें डारेजाते कि जिसमें रुरुनाम बड़े कटहे जीव भरेहैं और जो लोग गर्भगिराने गाव फूकने गायबैल मारडालने व किसी को सास बन्दकरके मारते मदिरा पीते ब्राह्मण को मारने व ब्राह्मण का सोना चुराते व इन लोगों के सगखाते पीते ये सब सूकर नरकमें जाते हैं जो कि सोरके मुहके डौलका बनाहै व जन्तुके पगने से चबाने लगता है जो लोग क्षत्रिय व वैश्यको मारडालते वे तालनाम नरकमें परते हैं जिसमें जीव तालफलके समान फेंकदिये जाते और जो गुरुकी शय्यापर बैठ जाता वह तप्तकुम्भ नरकमें परता जिसमें कि खौलता हुआ पानीभरा है इसी में जो अपने बहिन के सग भोग करते व जो राजदूतोंको मारते ये भी परते हैं और जो पतिव्रता स्त्रीको छोड़देते व बेचडारते जो मनुष्यों की रखवारी करत व जो घोड़ा बेचते व शरणागत को त्यागते ये सब तप्तलोह नरकमें परत हैं जिसमें सब अग्निमे-

तप्तलोहक्रय लोहेही ये स्थान हैं जो लोग अपनी कन्या व पतोहू के संग भोग करने व महाज्वाल नरक पाते जिसमें अग्नि की लपटें आती हैं जो माता पिता गुरु आदि अपने बड़ों का निरादर करने व पापवाद कहने सुनने व वेदकी निंदा करने व वेद लिखलिखकर बेचने व वेद पढ़ाकर कुछ द्रव्य लेने ये लवण नाम नरक में जाते जहां पहुँचतेही मुग्दरोंसे कूटडारे जाते और चोर सदाचार मार्ग धर्म के डुबानेवाले दगा ब्राह्मण व पिताके वैरी अच्छे सबमें दोष लगानेवाले ये सब विमोहन नाम नरकमें जाते जहां जातेही अचरज करने लगते जो किसीके ऊपर मारण मोहनादि करने व पिता देवता अतिथि इनको त्याग आपही खानेवाले वे मनुष्य कृमिभक्ष जिसमें कीड़ेही खानेको मिलते उसमें पड़ते व कृमिश में जिसमें सब कीड़ेही बलबलारहे हैं जो तीरबनाते व मणियों में छेद करने व तरवारि आदिशस्त्र बनाते वे लालाभक्ष नरकमें जाते जहां कि लारही भरीहै वही पीनेखाने को मिलती यहीलोग विशसन नरकमें भी पड़ते जहां बड़ी बिसाइँधि आती है असत् दान लेनेवाले अधोमुख नरक में जाते जहां कि नीचे मुखकर सब टांगेजाते इसी में वेभी पड़ते जो ब्राह्मणहो शूद्रोंके यज्ञ कराते व जो अच्छी भांति ज्योतिष शास्त्र नहीं पढ़े मसखरीमद्दा बनाते फिरते और जो अविचार के साथ काम करते वे पूयवह नरकमें पड़ते जहां पीबही भरी रहती इसी में अन्य जनानों को छोड़ जो आपही मीठी वस्तु खाते पीते व ब्राह्मणहोकर ओनाख लाख लोन तेल घृतादि रस व विष बेचते वे भी पड़ते और बिलाव मुर्गा बकरी कूकर सोर पक्षी इनके पालनेवाले भी और कुहीवाज मल्लाह पशुकुण्ड की बनी वस्तु खानेवाला विष देनेहारा चुगली करनेवाला मैला जोतनेवाला व जिसकी स्त्री व्यभिचारिणीहो उसका वास्ता श्राद्धादि के दिन मैथुन करनेवाला घर फूंकनेवाला मित्र मारनेहारा चिड़िया बझानेवाला पुरोहित गांवनगरी बेचनेवाला ये सब रुधिरान्ध नरक में जाते जहां सब रुधिरही रहता है इनहीं गिर्द मांसनिकालनेवाला पाप करानेवाला वैतरणी नरकमें जाता इसमें पुरुष नाश शिव व यज्ञादि करते हैं काम पीनेवाले ढाढ़पालनेवाले अपनी मर्यादा छोड़देनेवाले ये सब कृष्णनरक में जाते हैं सब अपने अपने कर्मके अनुसार जो नाहक वन काटता वह असिपत्र वन नरकमें जाता इस वनके पेड़ोंके पत्ते तलवारके समान होते हैं

जिवैया शिकार खेलैया कुम्हारी कृषिकरैया ये अग्निज्वाल नरकमें गिरते इसमें अग्निकी ज्वाला जलाकरती हैं जो किसीका व्रत भंगकरदेता व अपने धर्मको छोड़देता ये दोनों सदंशनामनर्क परते जिसमें मसा आदि जीव औरैं पहुंचतेही रुधिर चूसलेते हैं जो ब्रह्मचारीहो दिनको स्वप्नमें भी काम गिराते व जो अपने पुत्रसेही विद्यापढ़ते वे श्वभोजन नाममें परते इसमें कूकुर काट खातेहैं इतने ये इन्हें छोड और भी हजारों नरकहैं सबोंमें पापीलोगही परतेहैं जो लोग वर्ण व आश्रमके विरुद्ध कर्मकरते वे सब नरकों मेंही परते नरकनिवासी लोग नीचेसे देवताओं को देखते व ललचाते हैं कि हाय हमने ऐसे कर्म न किये जो स्वर्ग को जाते देवता भी ऊपर से नरकनिवासियों को देखते व पछिताते कि हाय जब हमारी पुण्य क्षीण होजावेगी तो पृथ्वीमें जन्म लेकर पाप करने से नरक भोगने परेंगे ये नरकनिवासी भी क्रमसे कभी न कभी मोक्षपदतक पहुंचते हैं जैसे कि नरकसे निकल वृक्ष वल्ल्यादि होते फिर कीड़े मकोड़े फिर मछली आदि जल जन्तु फिर पक्षी फिर पशु पशुके पीछे मनुष्य इन्हों में जब धार्मिकहुये तो देवता हुये और ब्रह्मानन्द हुये तो मुक्तही होगये पर वृक्षादि योनियों में बहुत२ दिन रहना परता जैसे २ अन्यकृमि आदि योनियों में जीव आता हजार २ योनि क्रमपरती जातीहैं जितने जन्तु स्वर्ग में हैं उतनेही नरक में भी पाप न करै व करके प्रायश्चित्त करडाले तो स्वर्ग को जाता जो पापका प्रायश्चित्त नहीं करता नरकको जाताहै प्रायश्चित्त पाप शोधनके उपाय को कहतेहैं सब पापोंके योग्य विचार २ ऋषिलोगोंने बनायेहैं बड़े पापके लिये बड़े २ प्रायश्चित्त व छोटे पापके लिये छोटे २ प्रायश्चित्त स्वायम्भुवमनु आदि अपने २ मनुस्मृत्यादि ग्रन्थों में लिखेहैं सब प्रायश्चित्त तपस्या व्रतदानादि साध्यहैं पर उन सब प्रायश्चित्तों से श्रीकृष्णस्मरणरूप प्रायश्चित्त श्रेष्ठहै जिसको पाप करने के पीछे पछिताई आवे उसके लिये कृष्णस्मरणरूपही प्रायश्चित्त ठीकहै श्रीकृष्ण स्मरणका क्रम यह ठीकहै जो प्रात काल सन्ध्या समय मध्याह्न रात्रिको स्मरणकरै इसभांति करने २ पाप छूटजाते व प्राणी नारायण में लीन होजाता है विष्णुके स्मरण करने से सब क्लेशोंके हेतु नाश होजाते व जीव मुक्ति को पहुंच जाता यदि इसमें कुछ विघ्नहुआ तोभी स्वर्गवास होताहै जिसने वासुदेव में मनलगाय जप होम पूजनादिक्रिया व बीचमें इन्द्रादिपद पानेकी इच्छाकी इसी

को विष्णु स्मरणका विघ्न कहतेहैं क्योंकि उनके स्मरणका तो मोक्षही फलहै इन्द्रलोकादि तो यों यज्ञोंसे भी मिलजातेहैं कहा स्वर्ग जहां जाय मनुष्य फिर लौटआना कहा वासुदेव के अर्थ जप जो मुक्तिका उत्तम बीजहै बड़ा मन्त्र है तिससे पुरुष को चाहिये कि दिन रात्रि विष्णुका स्मरणकरै जिससे सब पाप मिटजावें व वह शुद्ध परमधाम को चलाजावे जिस कार्य के करनेमे मन प्रसन्न रहे और कोई निन्दा न करे उसीका स्वर्ग नामहै व जिसके करनेसे मन भी न प्रसन्नहै व कोई निन्दाभी करै उसको नरक नामहै अर्थात् वैसा कर्म करने से स्वर्ग व ऐसा करने से नरक होताहै पापसे नरक पुण्य से स्वर्ग एकही वस्तु से कभी दुःख कभी सुख कभी ईर्षा कभी कोप होना फिर वस्तु दुःख देनेवालीही कैसे होसक्ती है फिर वही वस्तु कभी प्रसन्नताको प्राप्त कराती कभी दुःखको कभी कोप को कभी फिर प्रसन्नताको तिससे न कोई वस्तु दुःख देनेवाली न सुख देनेवाली है यह सुख दुःख मनकाही परिणाम है जिस वस्तुमें मनने सुख समझा वह सुखद जिससे दुःख समझा वह दुःखद ज्ञानही परब्रह्म है व ज्ञानमेंही बन्धन होता व ज्ञानही से मुक्ति यह संसार ज्ञानस्वरूप ज्ञानसेपरे कुछ नहीं है विद्या अविद्या सब ज्ञानही है ॥

चौ० इमि तुमसन भूगोल बखाना । पुनि पाताल नरक पुनि नाना ॥
सागर गिरि नदि द्वीपक खण्डा । सब संक्षेप कहा मति मण्डा ॥ १ ॥
अपर सुना चहहु द्विजराई । पूछहु सो हम तुम्हैं सुनाई ॥
इमि न कछु जो नहिं तुमयोगू । चाहो पूछहु सहित मनोगू ॥ २ ॥

सातवां अध्याय ॥

दो० कहब सप्तमाध्याय महँ ब्रह्मप्रमाण सुप्रमान ॥
पुनि भुवजन सुव लोक अरु मुनियो लोग समान ॥ १ ॥

श्रीमैत्रेयजी बोले हे मुनिराज ! आपने पृथिवी में नरक पर्यन्त सब कहा अब भुवर्लोकादिकी व्यवस्था व ग्रहोंकीनाम प्रमाणादि सुना चाहते हैं कृपा सहित सुनाइये पराशरमुनिबोले सूर्य चन्द्रमाके किरण से जहांतक उजियारी पहुंचती है सब समुद्र व पहाड़ोंके साथ उतनीही पृथिवी लोकहै जितनी लम्बी चौड़ी व निम्न भागकी पृथिवी है उतनाही भुवर्लोक भी है भूमितलमे

लाख योजनदूरीपर रविलोक है व रविलोक से उतनीही दूर चन्द्रलोकहै व चन्द्रलोकसे १००००० योजन दूर तारागण मण्डल व वहासे २००००० योजन पर बुधमण्डल वहा से शुक्र २००००० योजन शुक्र से २००००० योजन मंगल इनसे २००००० योजन पर बृहस्पति इनसे २००००० शनैश्चर इनसे १००००० योजनपै सप्तर्षियोंका स्थान इससे १००००० ऊंचे ध्रुवस्थानहै बस त्रिलोकी इतनीही है यज्ञ व्रतके करनेवाले यहींतक पहुँचसक्ते ध्रुवसे १०००००० योजन ऊंचे महर्लोक इससे २०००००० योजन ऊंचे जनलोकहै जहा ब्रह्माके पुत्र सनकादि रहते हैं वहा से ८०००००० योजन ऊंचे तपलोकहै जहा दाहरहित वैराज नाम देवगण रहते हैं तपलोकसे ४०००००० योजन सत्यलोक है जहा पहुंच फिर जन्म मरणशून्य जीव होजाते हैं इसी को ब्रह्मलोक कहतेहैं जहातक पैदर मनुष्य पहुच सक्ते हैं उसी पृथिवीको भूर्लोक कहते हैं भूमि व सूर्य्य के अन्तर में जो कुछहै उसे भुवर्लोक कहते हैं यहा सिद्ध व मुनिलोगोंकी गतिहै सूर्यलोक ध्रुवलोक के बीचमें १४००००० योजन है उसे स्वर्लोक कहते हैं ये तीनोंलोक कृतिमनक हैं क्योंकि ब्रह्माकी नित्य प्रलयों में बिगड़जाते है जन तप व सत्य ये नित्य हैं इनतीनों के बीच में महर्लोक है नित्य प्रलय में इस का नाश नहीं होता पर जीव ऊँचेके लोकको भागजाते हे मैत्रेय ! ये ७ लोक ऊपर के व ७ पाताल बस इतनाही ब्रह्माण्डका विस्तार है व सब करोरियोजन अण्डकटाह से घिराहुआ है फिर इस अण्डकटाह के उपर उससे दशगुण जलावरणहै फिर यह अग्निसे घिराहै व अग्नि वायुसे वायु आकाशसे आकाश तामसाहङ्कार से तामसाहङ्कार महत्तत्त्व से महत्तत्त्व प्रकृति से और फिर प्रकृतिको कोई भी आवरण नहीं न उसकी गिनतीहोसक्ती है क्योंकि वह तो अनन्तहै व प्रमाण व्यापी है इससे इस संसारका कारण प्रकृतिही है क्योंकि उसपरमेश्वर की रचना से सैकरों व सहस्रों अण्ड होते हैं क्योंकि प्रकृति व पुरुषमें कुछ अन्तर नहीं जैसे ईंधनमें अग्नि तिलोंमें तेल तैसेही प्रकृतिमें पुरुषहै प्रधान व पुरुष दोनो सर्वशक्तियुक्त विष्णु शक्तिसे घेरेहुये हैं सृष्टिके समय प्रकृति पुरुषके अलग करनेका कारण वही विष्णुकी शक्तिही है क्योंकि वही इनदोनों को चैतन्य करती है जैसे जल की शीतलता शो कणिकाओं के द्वारा वायु धारण करताहै विष्णुकी शक्ति प्रधानपुरुष द्वारा जगत् को ग्रहण करती है जब डार पातों सहित वृक्षादि बीज

से उत्पन्न होता व उससे अन्यबीज होते हैं फिर उन बीजों से उसीतरह के लाखों वृक्ष होते इसीतरह प्रकृति व पुरुष से महत्तत्त्वादि होते फिर उनसे पृथिवी जलादि इन सबसे देवतादि होते फिर तिनके पुत्र पौत्रादि जैसे बीजसे बीज उत्पन्न होने से वृक्षका नाश नहींहोता इसीभांति पृथिव्यादि भूतों से पृथिव्यादि बनने से पृथिव्यादिकों का नाश नहीं होता जैसे आकाश व कालादि के एकत्र होने से वृक्ष के कारण होने तैसेही विष्णुके बिना परिणाम विष्णुका कारण है जैसे बीजहीसे वृक्षकी जड़ नाड़ी अँखुआ पत्ता शाखा पुष्प तुष भूसी कन आदि उत्पन्न होने पर होते हैं तैसेही विष्णु की शक्ति से अनेक कर्मों से देवता उत्पन्न होते हैं क्योंकि विष्णुही परब्रह्म हैं तिनसे यह सब जगत् हुआहै वही सर्वत्र विद्यमानहैं व उन्हीं में सब प्रलय के समय लीन होगा ॥

चौ० सदसत्पर पद परम सुजासू। सोई ब्रह्म सर्वत्र प्रकासू ॥
भेद रहित आकार जग येहू। चर अरु अचर न कछु सन्देहू ॥ १ ॥
मूलप्रकृति मोह सबजगरचना। व्यक्त रूप हरि जो निर्वचना ॥
भिन्नताहिमह अरु सबहिमाहीं। अपहु विराजमान जग माहीं ॥ २ ॥
यज्ञ क्रिया कर्त्ता हरि सोई। सोईपूज्य क्रतु सोइ फल होई ॥
सबयुग साधन जो कछु अहई। एहिसे भिन्न न कछु श्रुति कहई ॥ ३ ॥

आठवां अध्याय ॥

दो० कहब अष्टमाध्याय महँ सूर्य्य भेद्भपल ॥
सुनि हरि चरण प्रसादतें गंगा गमन न चल ॥ १ ॥

श्रीपराशरमुनि बोले हे मैत्रेयजी ! ब्रह्माण्डकी व्यवस्था तो तुमसे कही अब सूर्यादिकों के प्रमाण व संस्था सुनिये नव सहस्र योजन का सूर्य नारायण का रथहै व अष्टादश सहस्र योजन तिसरिया १८७५०००० योजनका घुमरा क्योंकि पुष्कर द्वीपके मध्य में जम्बुद्वीपके मध्य तक इतनाही दूरीहै उतनाही बड़ा धुराब होनाचाहिये इसमें एकओर एकपहियाचर्खीहै एकपहियावाला गिरिमानपोत पर्वत पर कि उसीपर पहिया घूमती है और तिस पहियावाला रथ सुमेरु पर्वत पे धरारहता इस पहिया में आड़ा नाभी सातसीन समयदी तीन नाभी हैं इस वत्सरादि ५ आरागज ६ ऋतु पुट्टियों पर बाजचक मर मानपदें और इसका

सुसरा ४५५०० योजनका है इस रथमें गायत्री बृहती उष्णिक् जगती त्रिष्टुप् अनुष्टुप् पङ्क्ति ये ही ७ छन्दके नामके घोड़ेहैं मानसोत्तर पर्वत पर यहासे विचारें तो पूर्व ओर इन्द्रकी पुरीहै दक्षिणओर यमराज की पश्चिम में वरुण की उत्तर चन्द्रमाकी इन्द्रकी पुरीका अमरावती यमराज की का सयमनी वरुणकी का सुख्या सोमकीका विभावरी नाम है दक्षिणायन में बहुतशीघ्र सूर्य चलते इसीसे दिन छोटा होता उत्तरायण में धीरे २ इससे उनदिनों में दिन बड़ाहोता रात्रिदिन के होनेका कारण सूर्यनारायणही हैं व योगियों के क्लेश नाशने के मार्ग भी वही हैं दिनके मध्यमें सूर्य सब द्वीपोंमें उस स्थानपर पहुँचते जिसके ठीक उत्तर आधीराति को पहुँचते हैं उदय समय में सबद्वीपों में पूर्वही देखपरते व अस्त समय में पश्चिम जहा जिस देशवाले सूर्योदय देखते उस देशवालों को वही सूर्योदय स्थान है व जहा अस्त देखते वही अस्तका स्थान सत्य २ तो न कभी सूर्यका उदय ही हो न अस्तही क्योंकि कहीं न कहीं उनका उदय बनाही रहता है पर उदयास्त दर्शन व अदर्शन को मानते हैं जब तक देखते उदय बताते जब नहीं देखते अस्त बताते हैं इन्द्रपुरी आदि में टिके हुये सूर्यनारायण जिस पुरीमें रहते हैं उसे और दो उसके आगे वालियों में प्रकाशकरते व इन्हीं पुरियों के मध्यके दोकोणों में भी प्रकाशते हैं जब किसी कोणवाली दिशा म आजाते हैं तो जिसमें हैं एक उसके पीछेवाले कोणको व उसको व उसके आगेवाले इन तीन कोणोंको प्रकाशते व अगली पिछली दो पुरियोंको जब उदय होते तबसे दो पहरतक तो उनकी किरणें बढ़तीजातीं फिर कमती होनेलगती हैं उदय समय में सूर्य जहां देखपरते वह पूर्वदिशा जहा अस्त समय देखते वह पश्चिम उदयकी दिशाको मुख करने से दहिनीओर दक्षिण बाईओर उत्तर दिशा होतीहै जबतक किसीके सामने सूर्य देख परते तो उसकी बगलकी ओर व पीछेभी प्रकाश करतेहैं पर सुमेरु पर्वत पर जो ब्रह्मा की सभाहै उसे छोड़ क्योंकि उसपर सदा प्रकाश व सदा अप्रकाश रहता है जाहे से सबद्वीपों व खण्डोंके सुमेरु पर्वत उत्तरही है जब सन्ध्याको सूर्य अस्त होनेलगते हैं तो उनकी दीप्ति कुछ २ अग्निमें रहजाती है इसीसे रात्रिमें आग दूरसे प्रकाशित होती और दिनमें अग्निका तेज सूर्यमें चलाजाता इसीसे अग्नि के तेजके संयोग से सूर्य प्रकाशित होते व गरमी भी करते हैं सूर्य

से उत्पन्न होता व उससे अन्यबीज होते हैं फिर उन बीजों से उसीतरह के लाखों वृक्षहोते इसीतरह प्रकृति व पुरुष से महत्तत्त्वादि होते फिर उनसे पृथिवी जलादि इन सबसे देवतादि होते फिर तिनके पुत्र पौत्रादि जैसे बीजसे बीज उत्पन्न होने से वृक्षका नाश नहीं होता इसीभांति पृथिव्यादि भूतों से पृथिव्यादि बनने से पृथिव्यादिकों का नाश नहीं होता जैसे आकाश व कालादि के एकत्र होने से वृक्ष के कारण होते तैसेही विश्वके बिना परिमाण विष्णुका कारण हैं जैसे बीजहीसे वृक्षकी जड़ नाड़ी अँखुआ पत्ता शाखा पुष्प दुग्ध भूमी कन आदि वृक्ष होने पर होते हैं तैसेही विष्णु की शक्ति से अनेक कर्मों से देवता उत्पन्न होते हैं क्योंकि विष्णुही परब्रह्महैं तिनमें यह सब जगत् हुआ है वही सबमें विद्यमानहैं व उन्हीं में सब प्रलय के समय लीन होगा ॥

चौ० सदसत्पर पद परम सुजासू। सोई ब्रह्म सर्व्वत्र प्रकासू ॥
भेद रहित जाकर जग येहू। चर अरु अचर न कछु संदेहू ॥ १ ॥
मूलप्रकृति सोइ सबजगरचना। व्यक्त रूप हरि जोनिर्व्वचना ॥
मिलततासिमह अरु त्यहिमाहीं। अबहु विराजमान जग आहीं ॥ २ ॥
यज्ञ क्रिया कर्त्ता हरि सोई। सोईपूज्य क्रतु सोइ फल होई ॥
सबयुग साधन जो कछु अहई। हरिसे भिन्न न कछु श्रुति कहई ॥ ३ ॥

आठवां अध्याय ॥

दो० कहब अष्टमाध्याय महँ संस्था भेदभचक ॥
पुनि हरि चरण असगसों गंगा गमन न वक ॥ १ ॥

श्रीपराशरमुनि बोले हे मैत्रेयजी ! ब्रह्माण्डकी संस्था तो तुमसे कही अब सूर्यादिकों के प्रमाण व संस्था सुनिये नव सहस्र योजन का सूर्य नारायण का रथहै व अष्टादश सहस्र योजनकीफरिया १५७५०००० योजनका मुसरा क्योंकि पुष्कर द्वीपके मध्य से जम्बूद्वीपके मध्य तक इतनीही दूरीहै उतनाही बड़ा मुसरा होनाचाहिये इसमें एकओर एकपहियालगी है एकपहियावाला गिरमानसोत्तर पर्वत पर कि उसीपर पहिया घूमती है और बिना पहियावाला रथ सुमेरु पर्वत पै धरारहता इस पहिया में जाड़ा गर्मी वर्षा तीन समयही तीन नाभी हैं इड़ा वत्सरादि ५ आराजा ६ ऋतु पुट्टियां यह कालचक्र भवत्सरमयहै और इसरा

मुसरा ४५५०० योजनका है इस रथमें गायत्री बृहती उष्णिक् जगती त्रिष्टुप् अनुष्टुप् पंक्ति ये ही ७ छन्दके नामके घोड़ेहैं मानसोत्तर पर्वत पर यहासे विचारें तो पूर्व ओर इन्द्रकी पुरीहै दक्षिणओर यमराज की पश्चिम में वरुण की उत्तर चन्द्रमाकी इन्द्रकी पुरीका अमरावती यमराज की का संयमनी वरुणकी का मुख्या सोमकीका विभावरी नाम है दक्षिणायन में बहुतशीघ्र सूर्य चलते इसीसे दिन छोटा होता उत्तरायण में धीरे २ इससे उनदिनों में दिन बड़ाहोता रात्रिदिन के होनेका कारण सूर्यनारायणही हैं व योगियों के क्लेश नाशने के मार्ग भी वही हैं दिनके मध्यमें सूर्य सब द्वीपोंमें उस स्थानपर पहुँचते जिसके ठीक उत्तर आधीराति को पहुँचते हैं उदय समय में सबद्वीपों में पूर्वही देखपरते व अस्त समय में पश्चिम जहा जिस देशवाले सूर्योदय देखते उस देशवालों को वही सूर्योदय स्थान है व जहाँ अस्त देखते वही अस्तका स्थान सत्य २ तो न कभी सूर्यका उदय ही हो न अस्तही क्योंकि कहीं न कहीं उनका उदय बनाही रहता है पर उदयास्त दर्शन व अदर्शन को मानते हैं जब तक देखते उदय बताते जब नहीं देखते अस्त बताते हैं इन्द्रपुरी आदि में टिके हुये सूर्यनारायण जिस पुरीमें रहते हैं उसे और दो उसके आगे वालियों में प्रकाशकरते व इन्हीं पुरियों के मध्यके दोकोणों में भी प्रकाशते हैं जब किसी कोणवाली दिशा में आजाते हैं तो जिसमें हैं एक उसके पीछेवाले कोणको व उसको व उसके आगेवाले इन तीन कोणोंको प्रकाशते व अगली पिछली दो पुरियोंको जब उदय होते तबसे दो पहरतक तो उनकी किरणें बढ़तीजातीं फिर कमती होनेलगती हैं उदय समय में सूर्य जहां देखपरते वह पूर्वदिशा जहां अस्त समय देखते वह पश्चिम उदयकी दिशाको मुख करने से दहिनीओर दक्षिण बाईओर उत्तर दिशा होतीहै जबतक किसीके सामने सूर्य देख परते तो उसकी बगलकी ओर व पीछेभी प्रकाश करतेहैं पर सुमेरु पर्वत पर जो ब्रह्मा की सभाहै उसे छोड़ क्योंकि उसपर सदा प्रकाश व सदा अप्रकाश रहता है जाहे से सबद्वीपों व खण्डोंके सुमेरु पर्वत उत्तरही है जब सन्ध्याको सूर्य अस्त होनेलगते हैं तो उनकी दीप्ति कुछ २ अग्निमें रहजाती है इसीसे रात्रिमें आग दूरसे प्रकाशित होती और दिनमें अग्निका चतुर्थांश सूर्यमें चलाजाता इसीसे अग्नि के अतीव संयोग से सूर्य अधिक दीप्त होते व गर्मी भी करते हैं सूर्य

तेजमें प्रकाश करनाही गुणहै उष्णता करना नहीं और अग्निके तेजमें उष्णता करना गुणहै प्रकाशकरना नहीं इसलिये जब रात्रिको अग्निमें सूर्यतेज आता तो अग्निमें प्रकाशन शक्ति होजाती और दिनको अग्नि तेज सूर्य्यमें जाता इसलिये सूर्य्यके तेजमें उष्णताभी होजाती है जब सुमेरु पर्व्वतके दक्षिण सूर्यरहते जबकि यहा दिन रहता तब अँधियारी करनेवाली रात्रि जल में प्रवेश करजाती जब सुमेरुके उत्तर सूर्यजाते जबकि यहा रात्रि होजाती है तब उजियारी करनेवाला दिनही जलमें प्रवेश करताहै इससे दिनको अँधेरा व रात्रिको प्रकाश नहीं होता दिनमें जल में रात्रिके प्रवेश करने के कारण पानी कुछ ललछर होजाता और रात्रिको दिन पानीमें रहता इस हेतु जल उजला रहता सूर्य्य जितने समय में पृथ्वीका तीसवा भाग चलते हैं उतने समयको मुहूर्त कहते हैं जब मकरराशि में सूर्य्य जाते हैं उसे उत्तरायण कहते उत्तरायण जब आधा बीतजाता है जबकि मेषकी संक्रांति लगती है उसे विषुवत् कहते हैं तब रात्रि दिन बराबर होते हैं फिर रात्रि छोटी होनेलगती व प्रतिदिन दिन बढ़नेलगताहै फिर जब कर्कराशि के सूर्य्य होते हैं दक्षिणायन कहानेलगते इस अयनमें बहुत शीघ्र सूर्य्य चलते इससे जल्द दिन बीतजाता दक्षिणायनमें १२ मुहूर्त में ही दिन बीतजाता व १८ मुहूर्त में रात्रि पर यह बात सर्व्वत्र नहीं होती किसी देशमें होतीहै और उत्तरायणमें सूर्य्य बहुत धीरा चलते इससे उतने कालमें बहुत कम भूमि चलते हैं जब उत्तरायण बीत नगिचाता अर्थात् आषाढ़में तब १८ मुहूर्त में दिनभर चलते हैं और रात्रिको १२ मुहूर्त में जैसे पहियाकी नाभि धीरे घूमती है और पुट्ठियां जल्द २ इसी भांति ज्योतिश्चक्रके मध्य में बैठे हुये ध्रुव बहुत कम चलते वरन चलते हुये विदितही नहीं होते जैसे कुम्हारके चाककी नाभि घूमती हुई अपने स्थानही पर रहती इसीभांति ध्रुव अपने स्थानही पर रहते अन्य भचक्र घूमता जाताहै दक्षिण व उत्तर दोनों दिशाओंके मध्य में चलते हुये सूर्य्य के कारण दिन रात्रि होती हैं जब दिनको सूर्य्यकी चाल शीघ्र होती तब रात्रि को धीरा जब रात्रिको शीघ्र तब दिनको धीरा पर चाहे शीघ्र चलें चाहे धीरा उतने समय में १२ राशियों को अवश्य पार करते हैं उनमें ६ रात्रिको और ६ दिन को भोगते हैं राशियों केही प्रमाणमें दिन व रात्रिकी घटनी बढ़नी होती है उत्तरायण में रात्रिको शीघ्रताके साथ चाल होती व दिनको मन्दताके साथ व

दक्षिणायनमें सूर्य्यकी चाल दिनको शीघ्र रात्रिको मन्द होती है रात्रि को उषा कहते दिनको व्युष्टि और इनदोनों के बीच में सन्ध्या होती जो सन्ध्यासमय में राक्षस लोग सूर्य्यको खाने को दौड़ते हैं क्योंकि उनको प्रजापतिका शापहै कि दिनको तुम्हारा शरीर अक्षय रहेगा व प्रतिदिन मरते भी रहोगे इस लिये सूर्य्य से व राक्षसों से सन्ध्याओंमें युद्ध हुआ करताहै इसीसे जो उत्तम ब्राह्मण क्षत्रिय व वैश्यहैं ॐकारयुक्त गायत्रीको पढ़ सूर्य्यके आगे जल उछालते हैं वह जल उन राक्षसों के बाणसमान लगताहै व जलजाते हैं जो अग्निहोत्रमें पहिली आहुति दीजाती है उससे सूर्य्यनारायणकी किरणें बढ़ती हैं ॐकार श्रीविष्णुका रूपहै तिसके उच्चारणमात्रसे वे सब राक्षस नाश होजाते हैं व सूर्य्यनारायणभी विष्णुका तेजहैं नहीं तो ॐकार उनको न प्रेरणाकरता इसी सन्ध्यासमयमें गायत्रीमन्त्र से अभिमन्त्रित जल उन मन्देहा नाम राक्षसों को नाश करदेता तिससे सब कार्य्यछोड़ सन्ध्याकाल से सन्ध्योपासन अवश्य करना चाहिये क्योंकि जो उससमय सन्ध्योपासन नहीं करता वह मानों सूर्य्यको मारताहै व पाप लूटता है जब ब्राह्मण लोग सन्ध्याके जलसे उन राक्षसों को मार डालते हैं तो द्विजों से पालित भगवान् सूर्य्य अपने ६०००० बालखिल्योंके संग जगत्की पालना करते हुये चले जाते हैं १५ बार पलक मारने को काष्ठा कहते ३० काष्ठाकी कला व ३० कलाको मुहूर्त्त ३० मुहूर्त्तमें रात्रिदिन होताहै कमती व बढ़ती दिन हीकी होती पर सन्ध्या सदा एक मुहूर्त्तकी होती इसमें न कमी न बढ़ती जब आधे सूर्य्य निकलआते हैं तबसे तीन २ मुहूर्त्तके काल मानेजाते हैं इसी से जो तीन मुहूर्त्त दिनचढ़ेतक भी स्नानकरता वह प्रातस्स्नायी कहाता है तीनही मुहूर्त्तका दिनका पाँचवांभागभी होताहै फिर प्रातःकालसे तीन मुहूर्त्ततक सगव नाम कालरहता उसके पीछे तीन मुहूर्त्ततक मध्याह्नकाल रहता मध्याह्नकालके पीछे तीनमुहूर्त्त तक अपराह्न काल अपराह्न काल के पीछे उतनाही सायाह्न काल होता १५ मुहूर्त्तका सामान्यत दिन होता और मेषकी सङ्क्रान्तिसे मिथुनकी सङ्क्रान्तितक १८ मुहूर्त्तकाभी कहीं २ होजाताहै १५ मुहूर्त्तका केवल मेष व तुला के सूर्य्यमें दिनहोता दक्षिणायनमें रात्रि बढ़ती उत्तरायणमें दिन जब दिन बढ़ने लगता तो रात्रिको ग्रसित करता जब रात्रि बढ़ने लगती है तो दिनको शरद व वसन्तऋतु में विषुवत् होताहै तुला व मेषके सूर्य्यों में रात्रि दिन बराबर २

होते हैं कर्कराशि के सूर्य्य से धन तक दक्षिणायन व मकर से मिथुनांत तक उत्तरायण होताहै ३० मुहूर्त्तका रात्रि दिन जो कहागयाहै उन्हीं १५ रात्रि दिनोंका पक्षहोताहै दोपक्ष का एक मास दो मासका ऋतु तीन ऋतुओंका अयन दो अयनोंका वर्ष सवत्सरादि के नाम से चान्द्र सावन सौर व नाक्षत्र ये चार मास इन नामों से प्रसिद्ध हैं अमावास्या से अमावास्यातक चांद्रमास होता चाहे जिस तिथि से जिस तिथि तकहो ३० दिनका सावनमास होताहै सूर्य्य जितने समय में एक राशिको भोगते उसे सौरमास कहते हैं जितने दिनों में सब नक्षत्र बीत जाते हैं उतनेको नाक्षत्रमास कहते और वत्सरों सेही युगोंका निश्चय होता उनमें १ सवत्सर २ परिवत्सर ३ इदावत्सर ४ अनुवत्सर ५ इद्वत्सर और जो श्वेतकी उत्तर ओर शृङ्गवान् नाम पर्वतहै उसके तीन शृङ्गहैं इसी से शृङ्गवान् उसका नामहै शरद व वसन्त ऋतुओं में सूर्य मध्यरेखासे दक्षिण उत्तर नहीं दबते मेषादि व तुलादि में विषुवत् रेखापर रहते तभी दिन रात्रि समान पन्द्रह २ मुहूर्त्तोंकी होतीं जबतक कृत्तिका के प्रथम चरण तक सूर्य पहुँचते तबतक चन्द्रमा विशाखा के चौथे चरण तक अवश्य पहुँचता जब सूर्य्य विशाखा के तीसरे चरण में जावे तो चन्द कृत्तिकाके शिरपै पहुँचता तभी पुण्यदायक विषुवत् काल होता तब देवता व पितर व ब्राह्मणों को दानदेना चाहिये क्योंकि यह समय दानका मुखहै व जो विषुवत् कालमें दान देता कृतार्थ होजाता कोई दिन कोई रात्रि कोई मध्याह्न अर्द्धरात्र मास कला काष्ठा क्षण ये विशेष पुण्यदायक होते पूर्णमासी व अमावास्या व इनके भेद सिनीवाली कुहू व राका अनुमति ये सब पुण्यके मुखहैं माघ फाल्गुन चैत्र वैशाख ज्येष्ठ व आषाढ़ ये उत्तरायणमें और श्रावण भाद्र आश्विन कार्त्तिक आग्रहायणिक व पौष ये दक्षिणायनमें हैं हे मैत्रेय ! जो प्रथम लोकालोक पर्वत कहाथा उसपर सुधामा शङ्खपाल हिरण्यरोमा व केतुमान् ये चार लोकपाल चारों दिशाओं में टिके हैं ये सब अकेलेही अकेले रहते विवाहादि इन्होंने नहीं किया मानगी नहीं रखते अगस्त्यसे उत्तर व अजवीथीके दक्षिण वैश्वानर मार्ग के बाहर पितृलोककी गलीहै वहां अग्निहोत्र करनेवाले ऋषिलोग रहते हैं व परब्रह्म को हृदयसे जपते हैं व प्राणियों के आरम होनेके लिये वेद कहते व लोकका आरंभ किसी २ युगके पीछे कराते हैं और युग २ चलायमान होजाने पर वेदका

प्रचार कराते व सन्तति तपस्या वर्णाश्रमादिकी मर्य्यादासे आगिलेवाले पिछले वालोंकी स्त्रियों में उत्पन्नहोते व पिछलेवाले पहिलेवालोंकी स्त्रियों में इसभांति प्रलयपर्य्यन्त जन्म लिया करते व मरतेहैं और सूर्य्य के दक्षिण मार्गमें टिके रहतेहैं नागवीथी के उत्तर व सप्तर्षियों के दक्षिण इस बीचमें सब देवताओं के आने जानेका मार्ग है उसमें जितेन्द्रिय सिद्धलोग विमल ब्रह्मचारी बसते हैं वे सन्ततिकी सदा निन्दाकरते इसीसे मृत्युकोजीतेहुयेहैं और सूर्य्यके उत्तरमार्ग में ८८००० ऊर्द्धरेता ऋषि टिकेरहते ये भी जबतक प्रलय नहीं होता तबतक वहीं विराजा करते क्योंकि न वे किसी प्रकारका लोभ करते न मैथुनकी इच्छा करते इच्छा व वैरभी नहीं करते सृष्टिभी नहीं करते किसी प्रकारका संयोग नहीं करते न किसी के दोष निहारते इन्हीं गुणों से शुद्धहो अमृतस्वरूप होगये वे इसी से त्रिलोकी के प्रलयपर्य्यन्त स्थित रहते इस स्थानको पहुँच फिर कोईभी नहीं मरता ब्रह्महत्या का पाप व अश्वमेधयज्ञकी पुण्य ये दोनों जबतक त्रैलोक्यका प्रलय नहीं होता तबतक रहते हैं इनका फल कहीं नहीं जाता जहां ध्रुवजी हैं तिसके नीचेतक पृथिवीकी प्रलयमें नाश होजाताहै ऋषियों के ऊपर व जहां ध्रुवहैं तिसके भी ऊपर तीसरे आकाश में विष्णुपद वैकुण्ठ नामहै यह स्थान पापरहित जितेन्द्रिय योगियोंका है जब पाप पुण्य दोनों नहीं रहजाते तब मिलताहै व वहाँ जाय फिर नहीं लौटते वही विष्णुजी का परमपदहै फिर जहाँ धर्म व ध्रुवादि लोकके साक्षी टिके रहते वह विष्णु का पदहै फिर जहाँ यह संसार ओतप्रोतहै व जहां से इस चराचरकी उत्पत्तिहुई है व जहाँ से फिर होगी वही विष्णु का परमपदहै जो योगियों के विवेक ज्ञान से देखा जाता जिसमें ध्रुवजी मेढ़ीभूत बैठे हैं व ध्रुव में सब नक्षत्रगणहैं व मेघगण भी जहाँ हैं कि जिनसे सदा वृष्टि होती है वृष्टिमें पानी गिरता उससे सबका पालन पोषण होता व उसीसे सब अन्नादि होते जिनसे आहुति दीजाती वृष्टि के सब कारण सृष्टि के उपकारहीके लिये होते इस प्रकार का वह विष्णु का परमपदहै तिसी विष्णु के परमपद से देवताओंकी स्त्रियों के अनुलेप चन्दनादि बहानेवाली श्रीगंगा जी उत्पन्न हुईं जो कि श्रीविष्णुजी के बायें चरणके अँगूठासे निकलीं और ध्रुवजीने अपने मस्तक पर धारण किया तिसके पीछे सप्तर्षियों के लोक में आईं व उन लोगों ने प्राणायाम कर अपनी जटा धोई तिसके पीछे नक्षत्र-

मण्डल को सींचती हुई सुमेरु पर्वत पर आई वहाँ से जगत् के पवित्र करने के लिये ४ दिशाओं को सीता अलकनन्दा चक्षु व भद्रा नामों से प्रसिद्ध होचलीं उनमें अलकनन्दा में भी सात भेदहैं उनमें जो गंगा नामसे प्रसिद्धहै उसे शिव जीने अपनी जटामें धारण करलिया व १०० वर्ष तक न छोड़ा शिवजी की जटासे भगीरथ राजाकी तपस्या से आई व सगर के पुत्रोंकी राखपर बहकर उन को तारती भई जिनके जल में स्नानकरने से तुरन्तही पाप नशाते व अपूर्व पुण्यकी प्राप्ति होती व जिनका जल कदाचित् पुत्रों ने अपने पुरुषों को दिया तो तीन वर्षतक पितर तृप्तरहते फिर जिसके किनारे यज्ञेश विष्णु को राजालोग यज्ञोंसे प्रसन्नकर बड़ी २ ऋद्धि सिद्धियों को पहुँचे फिर जिसके जलमें स्नानकर तपस्वी लोग पापरहित केशव भगवान् में चित्त लगाय मोक्ष को प्राप्त हुये ॥

चौ० सुनत चहत देखत जो कोई। छुवत पियत अवगाहत जोई ॥
कहत कहावत पावन करई। तासु महामहिमा किमि कहई ॥ १ ॥
गंगा गंगा जो नर कहई। शत योजन शत पै सो रहई ॥
तीन जन्म कृत पाप नशाहीं। मानहुँ कबहुँ रहे तहँ नाहीं ॥ २ ॥
जासों जग पावन हित सोई। आई यहां तनकि नहिं गोई ॥
श्रीहरि तीसरे पद नसँदेहू। तिन दर्शन अघ किमि न वदेहू ॥ ३ ॥

नवां अध्याय ॥

दो० कहत नवम अध्याय महँ ध्रुव पर ग्रह तिथि ठीक ॥
शिशुमाराकृति रूप हरि तारामय अति नीक ॥ १ ॥

पराशर मुनि बोले हे मैत्रेय ! शिशुमाराकृति भगवान् का जो तारामयरूप आकाशमें है तिसकी पूंछपर ध्रुवजी टिकेहैं व वे जब आप घूमते हैं तो चन्द्र सूर्यादि ग्रहों को घुमाते हैं व जब वे घूमते हैं तो तिनके पीछे चक्राकार सब नक्षत्र घूमते हैं क्योंकि सूर्य चन्द्रमा तारा नक्षत्र व अन्य सब ग्रह पवनरूप बन्धनसे ध्रुवमें बाधे हैं इस शिशुमाराकार ज्योतिश्चक्र के आधार नारायण श्रीहरिही हैं व राजा उत्तानपाद के पुत्र ध्रुवजी तिन्हीं नारायणकी आराधना से शिशुमारचक्रकी पूंछपर टिके हैं शिशुमारके आधार सब प्राणियों के स्वामी

जनार्दनही हैं व ध्रुवके आधार शिशुमार व ध्रुवमें सूर्य्य टिके हैं फिर जितना चराचरहै सबको आधार सूर्य्य हैं इसकी विधि वर्नाते हैं सुनिये सूर्य्यनारायण आठ महीनोंमें पृथ्वीका स्वरूप जल हरलेते हैं व फिर चारमास वर्षामें बरसाते हैं उसमें अन्नादि उपजते उनमें सम्पूर्ण संसार पोषित होता तीसी किरणों से सूर्य्य जगत् का जल खींचते व फिर चन्द्रमाको उसीसे पोषने चन्द्रमा नलरूप वायुके द्वारा आकाश में मेघोंके ऊपर छिरकते ये मेघ धुआ अग्नि व पवन के योगसे बनते हैं जिससे इन मेघोंसे अपने आप जल नहीं गिरता इसीसे इनका अभ्रनाम है उन मेघोंमें इसप्रकारसे जल सदा रहताहै पर जब समय आताहै पवनकी प्रेरणासे जल वर्षने लगता नदी समुद्र पृथ्वी व प्राणियों की देह इन चार स्थानों से जल सूर्य्य खींचतेहैं व आकाशगंगाका भी जल ले किरणों से धरतीपर छिरकते हैं उस जलके परनेही प्राणियों के पाप मिटजाते व नरकको वे नहीं जाते दिव्य स्नान इसीका नामहै जो वर्षतेहुये जलमें कियाजाता है जब कभी सूर्य्य देखपरतेहों व बादर विनाही पानी बरसनेलगे-जानना चाहिये कि आकाशगंगा का जल सूर्य्यकी किरणों से बरसता है कृत्तिका मृगशिर आदि विषम नक्षत्रों में जब सूर्य्यहों और उनके देख परनेपर विना बादरका जल बरसे तो वह दिग्गजोंकी सूड़से छिरकाहुआ आकाशगंगा का जल है और रोहिणी आर्द्रादि युग्म नक्षत्रोंमें जब सूर्य्यहों और विना बादलकी वृष्टि हो तो गंगाहीका जल सूर्य्य किरणों से गिराहुआ समझो ये दोनों जल अति पवित्रहैं इससे इनमें स्नान अतिपुण्यदायकहै व जो बादरसे वृष्टि होती उसमें सब अन्नादि ओषधिया पुष्ट परतीं जिनसे संसार जीता है इसी जलसे सब ओषधिगण बढ़तीको पहुँच प्रजाओंकी बढ़ती करता फिर उन्हीं अन्नोंसे नाना प्रकारके यज्ञ होते जिनसे देवगण प्रसन्न होते हैं इसभांति यज्ञ वेद ब्राह्मणादि वर्ण सब देवगण पशु पक्षी भूतगण सब वृष्टिहीके भरोसे रहते क्योंकि उसीसे अन्न होता फिर उस वृष्टिके करने करानेवाले सूर्य्य उहरे व सूर्य्यके आधारभूत ध्रुव ध्रुवके शिशुमार वह नारायणके आश्रयभूत हैं॥

चौ॰ आदि सनातन सब जग भर्त्ता। सर्जन पालन नाशन कर्त्ता॥
नारायण शिशुमार हृदय महँ। चमनन्तम सप भाग परम गहँ॥ १॥

दशवां अध्याय ॥

दो० कहव दशम अध्याय महँ रवि रथ हय अयनीय ॥
तिमि ससक गण मासके वर्णव अति कमनीय ॥ १ ॥

श्रीपराशर मुनि बोले कि जिन दक्षिण व उत्तर दिशाओं के बीचमें सूर्य्य की चाल होती है उनके मध्यमें १८० मण्डलहैं अर्थात् एक अयनमें सूर्य्य १८० वार घूमतेहुये चलते हैं इन्हींमें चढने उतरनेसे भानुकी एक वर्ष में चाल पूरी होती है उस सूर्य्य के रथपर १ आदित्य १ ऋषि १ गन्धर्व्व १ अप्सरा १ राक्षस १ यक्ष १ सर्प्प ये सात २ प्रतिमास रहते हैं चैत्रमास में धाता सूर्य्य कृतस्थली अप्सरा पुलस्त्यऋषि वासुकी सर्प्प रथकृत यक्ष हेतिराक्षस तुम्बुरु गंधर्व ये सब सूर्य्य रथपर रहते वैशाखमें अर्य्यमा सूर्य्य पुलहऋषि रथौजा यक्ष पुञ्जिकस्थली अप्सरा प्रहेतिराक्षस कच्छ नीर सर्प्प नारद गन्धर्व्व ज्येष्ठमें मित्र सूर्य्य अत्रिऋषि तक्षकसर्प्प पौरुषेय राक्षस मेनका अप्सरा हाहा गन्धर्व्व रथस्वन यक्ष आषाढ़में वशिष्ठऋषि वरुण सूर्य्य रम्भा अप्सरा हूहू गन्धर्व्व रथचित्र यक्ष व सर्प्प दोनोंका नामहै बुधराक्षस श्रावणमें इन्द्रसूर्य्य विश्वावसुगन्धर्व्व स्रोतयक्ष एलापत्रसर्प्प अंगिराऋषि प्रम्नोचा अप्सरा सर्प्पनाम राक्षस भाद्रपद में विवस्वान् सूर्य्य उग्रसेन गन्धर्व्व आपूरणयक्ष भृगुऋषि अनुम्लोचा अप्सरा शंखपालसर्प्प व्याघ्रराक्षस आश्विन में पूषासूर्य्य सुरुचिगन्धर्व्व वात राक्षस गौतम ऋषि धनञ्जय सर्प्प सुषेणयक्ष घृताची अप्सरा कार्त्तिकमें विश्वावसु के नाम का दूसरा गन्धर्व्व भरद्वाजऋषि पर्जन्यसूर्य्य ऐरावत सर्प्प विश्वाची अप्सरा सेनजित्नाग यक्ष व राक्षस अगहन में अंशु सूर्य्य तार्क्ष्य यक्ष महापद्म सर्प्प चित्रसेन गन्धर्व्व विद्युत्राक्षस पौषमें क्रतुऋषि भगसूर्य्य ऊर्णायुगन्धर्व्व स्फूर्ज्ज राक्षस व कर्कोटकसर्प्प अरिष्टनेमियक्ष पूर्व्वचित्तिअप्सरा माघमें त्वष्टासूर्य्य जमदग्निऋषि कम्बलसर्प्प तिलोत्तमा अप्सरा ब्रह्मापेत राक्षस ऋतुजित्यक्ष धृतराष्ट्र गन्धर्व्व फाल्गुनमें विष्णु सूर्य्य अश्वतरसर्प्प रम्भाअप्सरा सूर्य्यवर्चा गन्धर्व्व सत्यजित् यक्ष यज्ञापेत राक्षस विश्वामित्र ऋषि इनमें ऋषिलोग सूर्य्यकी स्तुति करते गन्धर्व्व आगे गाते अप्सरा आगे नाचतीं राक्षस रथ ढकेलते सर्प्पोंसे रथ साजाजाता यक्ष किरणोंका प्रबन्ध करते बालखिल्य आगे २ चलते ये सात २ प्रतिमास अपना २ कार्य्य करते व वृष्ट्यादिके कारणभी यही सबहैं ॥

ग्यारहवां अध्याय ॥

दो॰ ग्यारहवें अध्याय महँ यद्यपि गण रवि साथ ॥
सृष्टि हेतु प्राधान्य कह हरि मैत्रेय यह गाथ ॥ १ ॥

इतनी कथा सुन मैत्रेयजी बोले हे पराशरजी । आपने सब गणोंके समाचार कहे व गन्धर्व राक्षसादि इन सबके पराक्रमभी सूर्य के साथ कहे पर सूर्य का कर्म नहीं बताया कि वे क्या किया करते हैं यदि इन सातहीं से जल वर्षना गर्मी व जाड़ा होता तो फिर सूर्य का कौन प्रयोजन है व उनमे वृष्टि होतीहै यह कैसे कहा सो कहिये यद्यपि इनके कर्म अलग कुछ सुनेभी हैं तथापि इन छहोंके साथभी जो कुछ करतेहों कहिये यह सुन पराशरमुनि बोले कि सप्तगणभी प्रधानतासे एक सूर्यरूपीही है व जो विष्णुकी शक्तिमें ऋक् यजु व सामके नामसे प्रसिद्धहैं जिसे त्रयी कहते हैं व संसारमें तपस्या करनेवालोंके पापोंको नाशती है सो विष्णु इस जगत्की स्थिति में टिकेहुये पालन नहीं करते व जो वेदत्रयीरूप उनकी शक्तिहै वह सूर्यहीमें टिकी रहती महीना २ जो २ रवि जहां २ रहते नहींहीं तहां वेदत्रयीमयी विष्णुकी शक्तिभी रहती दोपहरतक विष्णु शक्तियुक्त ऋग्वेद तपा करता मध्याह्न में यजुर्वेद दिन अस्त होनेपै सामवेद यह वेदत्रयी विष्णुमयी प्रतिमास सूर्य में स्थान करती व उनको प्रकाशती है यह त्रयीमयी वैष्णवी शक्ति केवल सूर्यहीमें नहीं वरन ब्रह्मा व महादेवमें भी है सृष्टिके आदि ऋग्वेदमयी ब्रह्मा होते हैं पालन समय यजुर्वेदमय विष्णु अन्तकाल में सामवेदमय रुद्रभी होते हैं तिससे इस वेदत्रयीका शब्द पवित्रहै इसप्रकार यह वेदत्रयी सात्त्विक वैष्णवी शक्ति अपने सातगणों सहित सूर्यमें टिकी रहतीहै तिसके टिकनेहीसे कारण सूर्यनारायण किरणोंसे प्रकाशित रहते व सब जगत्का अन्धकार नाशतेहैं मुनि लोग उनकी स्तुति करते गन्धर्व आगे २ गाते अप्सरा नाचतीहुई चलतीं राक्षस पीछेसे रथमें लगेहुये होवें ऐसेही सर्पोंसे रथ बांधाजाता यक्ष लगाम थामते व बालखिल्य उनकी ओर मुँह किये हुये आगेको चलेजाते हैं विष्णु भगवान् अपना पनस न उगते न अस्त होते यह सूर्यका गण विष्णुसे भिन्नहै केवल उनकी शक्ति, नहीं तो सामर्थ्य से अलगही प्रगट करते जैसे खम्भे सीसे फंसेहुये दर्पणमें जो

जैसेही निकटहै वह अपने को देखताहै इसीभांति वह वेदमयी वैष्णवी शक्तिभी सूर्य्यके रथमें सदा प्राप्त नहीं देखपरती वरन उनके गण सप्तकमें प्रवेश किये रहती है ये सूर्य्यनारायण पितर देवता मनुष्यादिकोंको तृप्त करतेहुये दिन रात्रि करते हैं जो सूर्य्य की किरण शुक्लपक्ष में होती उससे चन्द्रमा तृप्तहोते व कृष्णपक्ष में प्रतिपदसे प्रतिदिन देवतालोग पीने लगते अमावास्यातक पीलेते हैं क्योंकि चन्द्रमाकी दीप्ति अमृतमयी है इसभांति चतुर्दशी के अंत में केवल दोही अंश चन्द्रमा में शेषरहजाते अमावास्याको पितरपीते हैं इसकारण सब देवताओंकी तृप्ति सूर्य्यही से होती है जन्तु व पृथिवी में टिकेहुये रसको सूर्य्य पहिले अपनी किरणों से खींचलेते फिर प्राणियोंकी पुष्टताकेलिये अन्न बढ़ानेको बर्षते हैं ॥

चौ० तासों पितर देव मनुजादी। अखिल भूत पालत शुभ नादी ॥
सबहि पियावत सुधा अनूपा। रविप्रताप को कवि अनुरूपा ॥ १ ॥
पक्ष तृप्ति देवन की होई। पितरमासिकी तृप्ति न गोई ॥
मनुजतृप्तितो करत निरन्तर। मार्चण्ड महिमाति शुहचर ॥ २ ॥

बारहवां अध्याय ॥

दो० द्वादशयें अध्याय महँ चन्द्रादिक तिथि मान ॥
कहब्रसुनहु सज्जन सकल तनमन धन धरिध्यान ॥ १ ॥

श्री पराशरमुनि बोले चन्द्रमाके रथ में तीन पहिया हैं व कुन्दसमान श्वेत वर्ण के १० घोड़े नहेजाते हैं व नागवीथीवाले अश्विन्यादि नक्षत्रों में चन्द्रमा का रथ चलता ध्रुवके आधार होनेसे चाल में घटती बढ़ती सूर्य्य के समान इन कीभी होती है सूर्य्य के घोड़े कल्पकी आदि में एकबार नहेजाते फिर कल्प पर्य्यन्त चलाकरते हैं क्योंकि वे अमृतसे उत्पन्नहुये हैं इसीसे उनके भूख प्यास नहींलगती चन्द्रमा को अमावास्या पर्य्यन्त जब सबदेव पीलेते हैं सूर्य्यनारायण फिर अपनी एक किरणसे तृप्त करते हैं जिसक्रमसे कृष्णपक्ष की परीवा से अमावास्यातक देवता चन्द्रमा की एक २ कला सुधामयी सगम्भ पीलेते हैं उसी क्रमसे शुक्लप्रतिपदा से एक २ कला सूर्य्यनारायण बढ़ावेहैं फिर जो पूर्णमासी तक कला बढ़ती कृष्णपक्ष में फिर देवगण पीलेते क्योंकि अमृत तो देवोंका आहारही है ३६३३३ देवता चन्द्रमाको पियाकरते हैं जब चन्द्रमाकी दोकला रह

जाती हैं सूर्य्य के मण्डलमें चलाजाता है इसीसे नहीं देखपरता जिस में नहीं दीखता उस तिथिको अमावास्या कहते हैं उसरात्रि के पहिले एकरात्रि व एक दिन पानीमें बसता फिर वृक्षों में फिर सूर्यमण्डलको जाता है जब चन्द्रमा वृक्षों में बसता अर्थात् प्रतिपत्को जोकोई वृक्षकाटना व वृनके पत्तेतोड़ता वह ब्रह्महत्या को प्राप्त होता है जब पन्द्रहवीं कला में चौथाई बाकी रहजाती तब पितरलोग सबसे पीछे पीते हैं उतनीही कलाके पीनेसे मासपर्य्यन्त पितर तृप्त रहते हैं पितरों के तीनगण हैं सौम्य बर्हिषद् अग्निष्वात्ता शुक्ल पक्ष में देवताओंकी तृप्ति होती क्योंकि यज्ञादि उसीपक्ष में होते व कृष्णपक्ष में पितरोंकी क्योंकि पितृ क्रिया कृष्णही पक्ष में होती है और वृक्षोंकी तृप्ति जलमय किरणों से करता व वृक्षवल्ली अन्नादि के सींचनेमे व गर्म्मी ग्लानिआदि हरने से मनुष्यादिकोंकी तृप्तिकरता और बुध का रथ जलअग्नि से बना है इस में ८ पीलेघोड़े नहेजाते हैं और सबप्रकार के अङ्गोंसे सुन्दर बनाहुआ शुक्रकाभी रथ है मङ्गलजी का सुवर्णमय अष्टकोण रथ है घोड़े भी इस में लालरङ्ग के हैं व ८ पाण्डुरङ्ग के घोड़ेनहे हुये सोनेके रथ पै चढ़े बृहस्पति एक राशि में वर्षभर रहते हैं शनैश्चर के रथ में कालेघोड़े नहेजाते इसरथपर बहुत धीरे २ चलते यहां तक कि एक राशिको ढाईवर्ष में पूराकर पातेहैं राहुके रथमें भौंरोंके रङ्ग के ८ घोड़े नहेजाते व रथभी इसीरङ्गका है इसकेभी एकही बारके नहे हुये घोड़े नित्यप्रलय पर्य्यन्त चलेजाते हैं सूर्य्य से निकल राहु जबकभी सब योग होते हैं पूर्णमासी में चन्द्रमाको पृथिवी की छाया में प्रवेशकरके ग्रसता व चन्द्रमा में प्रवेशकरके अमावास्याको योगपाय सूर्यको ग्रसता है तैसे ८ केतुके भी रथमें पवन समान वेगवान् पैराके धुओंके रङ्ग के समान हैं व बड़े दारुण घोड़े हैं हे मैत्रेय!सब ग्रहों के रथ तुमसे बनाये ये सब पवनरूप रस्सीसे ध्रुवमें बांधे हैं ग्रह नक्षत्र तारा सब पवनरूप रस्सी से ध्रुव में बांधेहुये भ्रमण क्रिया करते हैं जितनेही तारा हैं उतने ही पवनकी रस्सियां हैं सब बँधेहुये घूमते व ध्रुवकोभी कुछ घुमाते हैं जैसे कोल्हू पर चढ़ेहुये लोग आपभी घूमतेजाते और कोल्हूकोभी घुमाते जाते हैं सब नक्षत्रगण जैसे कोई लकड़ी के एक तरफ में आगलगाय घुमावे वृत्ताकार चमक देखाती है इसीभाँति घूमते हैं पवनका प्रवाह इसीसे नाम है जो इन सबको घुमाता है जिमशिशुमारचक्र में ध्रुव स्थित हैं तिसकी स्थिति कहते हैं मुनिये

दिनभरको जो पाप मनुष्य करता वह शिशुमारके दर्शनसे रात्रिको मिटजाता और १४ वर्ष आयुर्बल बढ़ती है शिशुमाररूपकी दहिनी चोंह उत्तानपाद नाग नक्षत्र है व यज्ञ बाईं मस्तकमें धर्म हृदय में नारायण अश्विनीकुमार दोनों चरणों में वरुण व अर्य्यमा उनकी ऊरुहैं सम्वत्सर लिंगेन्द्रिय मित्र गुद स्थान पूछमें अग्नि इन्द्रकश्यप व ध्रुवहैं ४ तारा कभी अस्त नहीं होती वहीऊंची पूछ होने के कारण सदा दिखाई देती हैं हे मैत्रेय! पृथ्वी नक्षत्र तारागण दीप-समुद्र पर्वत खण्ड व इनके बसनेवाले इन सब के समाचार सुनाये अब और सुनो जो ब्रह्माण्डस्थ जलरूप विष्णु का शरीर है उसी से पृथिवी समुद्रादि सहित उत्पन्नहुई है विमश्वर्यानक्षत्रमण्डल १४ भुवन वन पर्वत दिशा नदियां समुद्र आदि जो कुछ विद्यमानहै व जो कुछ नहीं हैं सबकुछ विष्णुही हैं परन्तु जिससे भगवान् विष्णु ज्ञानस्वरूप सकल लोकमूर्त्तिहैं कुछ कोई वस्तु नहीं है कि सर्वत्र व सबको देखपड़े इस से समुद्र पर्वतादि जो ईश्वरकी मूर्त्तियां हैं उनको विष्णुके विज्ञानशक्ति युक्त जानना चाहिये जब कि सबके कर्म नाश होजाते तब शुद्धरूपहो हरिरूप होजाते हैं तब फिर जन्म नहीं मिलता कर्त्ता कोई वस्तु व कहीं आदिमध्य अन्तहीन सदा एकरूप परमेश्वर जो फिर ईश्वर भी इन वस्तुओं के समान घटा बढ़ा व मरा जिया रहै तो ईश्वरता काहेकी फिर वस्तुतो कुछ पदार्थही नहीं क्योंकि उसकीदशा पलटा करती है जैसे पृथिवी से घड़ा बना घड़ासे मिटकिया हुई मिटकियां से चूर्णहोकर धूलहुई पानीपड़ने से फिर धरती में मिलकर धरती होगई इसी भांति मनुष्यों की भी गति है फिर वस्तु कौन पदार्थ है जिससे हे द्विजश्रेष्ठ! संसार में कोई वस्तु कभी व कहीं नहीं केवल विज्ञान से ही निज कर्मों के भेदसे बहुत नानाप्रकार से देख पड़ती है और विशुद्ध विरज विशोक निरञ्जन सदा एकरस परम परेश विज्ञान भगवान् वासुदेव हैं जिनसे बाहर कुछभी नहीं यह ज्ञानस्वरूप सत्यरूप तुमसे कहा इसीज्ञानस्वरूप परमेश्वरके आधीन सब संसारहै ॥

चौ॰ यज्ञ अनल पशु ऋत्विक नाना। सम्वत्सर मय काम महाना॥
इन्द्रे आदि जो कर्म महाना। तिनकेफलद विष्णुमुनिगाना॥१॥
जो यह भयत रावर हम गाया। तब स्वकर्म सदाहै न भुलाया॥
यह सुनि निश्चय मन जियमाहीं। जेहो विप्र त्यजित हरि पाहीं॥२॥

तेरहवां अध्याय ॥

दो० तेरहयें अध्याय महँ सुजड़भरत इतिहास ॥
कह्यो जहां विज्ञान कर वर्णन पूरण आस ॥ १ ॥

श्री मैत्रेयमुनि बोले हे भगवन्! जो हमने समुद्र पृथिवी नदी ग्रहादिकों की स्थिति पूंछीथी आपने कही व यहभी कि सब संसार विष्णु के अधीन है व विज्ञानभी सुनाया परन्तु जो आपने कहाथा कि भरत राजा के चरित पीछे से कहेंगे अब हमारे सुनने की इच्छा है सुनाइये क्योंकि राजा भरत राज्यछोड़कर शालग्रामाश्रम में तपस्या करके वासुदेव में मन लगायेरहे तथापि मरने के पीछे फिर ब्राह्मण हुये मुक्त नहीं हुये यह कैसीबात है व ब्राह्मणकी देहमें उन्होंने कौन २ कर्म्म किये सब कहिये पराशरमुनि बोले हे मैत्रेय! राजाभरत अहिंसा सत्यादि गुणों में तत्परहो शालग्रामाश्रम में बहुत दिनोंतक बसेरहे व यह जपते रहे कि ॥

चौ० यज्ञेशाच्युत केशव माधव। कृष्णानन्त गोविन्द अराधव ॥
विष्णो हृषीकेश भगवाना। केवल करत रहे यह गाना ॥ १ ॥

इसे छोड़ स्वप्नमेंभी और कुछ राजाने चिन्तना नहींकी कुशपत्र इन्धनादि जो कुछ लाते थे यज्ञहीके अर्थ लाते और कोई कर्म्म नहीं करते थे क्योंकि वे तो परमविरक्त निस्सङ्ग रहतेहीथे जब उन्होंने देहछोड़ी सदाचारी परम कुलीन ब्राह्मणों के कुलमें विप्रहुये उस देहमें भी सर्व्व विज्ञान सम्पन्न सर्व्व शास्त्रों के अर्थके जाननेवाले हुये व आपना को प्रकृतिसे परे परम पुरुष समझने लगे आपना व देवता मनुष्य पशु इत्यादिकों में कुछ अन्तर नहीं देखते थे न तो उन्हों ने यज्ञोपवीत होजाने पर गुरुका पढ़ाया वेद पढ़ा न कर्म्मों को देखा न शास्त्रों को ग्रहण किया जब बहुत भांतिसे कहने सुननेपर कुछ कहेंभी तो वह भी जड़ोंकी ऐसी बोलीमें व गवई गावकी भाषामें जो निष्फल संस्कार रहित भाषाहोती है व वस्त्र जो पहिनने सब मैले कुचैले देहमें धूर लगाये स्नानाचमनादि कभी नहीं करते नगरनिवासी ऐसे आचरण देख निरादर करने पर उनका तो यह विचारथा कि सम्मान योगसिद्धिको बड़ी हानि करता है जो योगी जनों से निरादरित होता वह सब योगसिद्धियों को पाता है इस

ब्रह्मा के वचन को स्मरणकर जनों के आगे, अपना जड़ व उन्मत्तोंकासा आकार बनाय घूमनेलगे तिसमें योगीको चाहिये कि महात्माओं के धर्मों को दूषता हुआ घूमे जिसमें लोग उसका अपमान करें व उसके निकट न खड़े हों पर चित्तसे कभी न सन्मार्गमें दूषण करें उनको जो कुछ कण आदि की रोटियां दीजाती थीं बड़े प्रेमसे भोजन करते थे इसीसे बड़े मोटेताजे बने रहते जब इनके पिताजी मृतकहुये तो इनकेभाई व भाई के लड़के कणआदि की रोटी खिलाते हुये इनसे खेतरखाने व खोदानेलगे पर ये तो बड़ेरूखे व बड़े मोटे जो कुछकरें उलटाही पलटाकरें फिर खेती कैसे चले ऐसे विलक्षण तो ये थेही एकदिन खेत रखातेथे कि सौवीर देशके राजा रहूगणकी सवारी जातीथी उसमें एक कहार थकगया बड़ा मोटा ताजादेख दूतोंनेइन्हें बेगारपकड़लिया व पालकी में लगादिया राजा रहूगण इक्षुमती नदी के किनारेपर कपिलदेवजीके स्थानपर यह पूछनेजाते थे कि इस दुःखसागर संसार में पुरुषोंके कल्याणके योग्य कौन वस्तुहै क्योंकि इस विषय में कपिलदेवजी के समान कोई नहीं था जैसे अन्य बेगारी पकड़े हुये राजा की पालकी में नहे थे ये भी नहेगये व कईबार कहेगये तो लेचलने परन्तु जब दो हाथ आगे बनाय भूमि देखलें व कोई जीव न हो तभी पावधरें उठावें नहीं तो खड़ेही रहते तबतक और बेगारी आगे चलदेते यह दशा राजा देख कहारोंसे बोले यह क्याहोता जो पालकी टेढ़ी मेढ़ी चलती है अच्छी भांति लेचलो कुछ दूरपर ये फिर किसी जीवको देख कूदे कि पालकी बिलकुल डगमगागई राजा हँसकर बोले कि अरे यह पालकी क्यों डगमगावी सूधे क्यों नहीं चलते यह सुन अन्य कहार बोले महाराज हम तो अच्छे चलते यह जो नया आया है अनर्थ का मूल है राजा बोले क्या थकगया है क्यों न थके बहुत दूरसे तो लगाहाहै क्या बोझ नहीं ले जासक्ता मोटा तो है बलवान् भी देख परता यह सुन ब्राह्मणदेव बोले न हम मोटे हैं न तुम्हारी पालकी हमने उठाई है न थकेहैं न हमें कुछ दुःख करना परता न हम लिये चलते हैं राजाबोले प्रत्यक्ष में तो मोटे देखपरतेहो व लादे तो हो यह कैसे कहते कि हमने तुम्हारी पालकी नहीं उठाई व भार लेचलने में श्रम भी होता फिर तुमको दुःख क्यों नहीं लगाना परता ब्राह्मणदेव फिर बोले हे राजन्! जोहममें प्रत्यक्ष देखाहो कहो फिर यह भी कि कौन बलवान् होता कौन निर्बल व जो तुमने कहा कि तुमने पा-

लकी उठाई व तुम्हारे ऊपर अब भी धरीहै यह सब झूठ कहते हो हमारे वचन सुनो दोनों पैरतो भूमिपर हैं व पैरोंपर दोनों फीलिया फीलियों पर ऊरू ऊरूपर पेट पेटपर छाती व इसपर बाहें व कंधेपर तुम्हारी पालकी फिर इसमें हमारे ऊपर कौन भारहै व पालकी पर यह तुम्हारी देह लदी है जिसे तुम अपनी मानते व कहते कि हम चढ़े हैं तुम पैदरहो ये दोनों बातें झूठी हैं क्योंकि तुम हम ये पद ही झूठेहैं ये तब होसक्ते जब ईश्वर दो हों हम तुम व सब और कहार ये गुणों की धारामें परेहैं व इसीसे जानपरता कि ये पालकी उठाते हम चढ़ते वस्तुत कुछ भी नहीं और ये गुणभी कर्म बशहैं व ये कहारभी क्योंकि अविद्यासे बटोरे हुये कर्म सब जन्तुओं में रहते हैं परन्तु आत्मा शुद्ध अक्षर शांत निर्गुण प्रकृतिसे परहै इसकी न कभी वृद्धि होसक्ती न नाशही क्योंकि वह सब जन्तुओंमें एकही है जब उसकी न कभी वृद्धिही होसक्ती न हानिहीहोती यह तुमने किस युक्तिसे कहा कि मोटे हो हे भूपाल! तैसेही जब यह पालकी जांघ कटिहाथ पेट कंधा सबके ऊपर धरी है तो तुमने हमको क्यों कहा कि तुम तो लिये हो जब हमसे दूसरा और भी कोई होता तो यह ठीकथा कि हम तुम व वह जब एकही ईश्वर है तो ये सब नहीं होसक्ते तुम राजा यह पालभी हम सब पालकी उठाने वाले ये सिपाही यह तुम्हारी राज्य यह कहना अच्छा नहीं देखो वृक्षसे काष्ठ काष्ठसे यह पालकी जिसपर तुम चढ़ेहो कब इसकी वृक्ष सञ्ज्ञाहुई थी व कब काष्ठ सञ्ज्ञा पर यह कोई नहीं कहता कि यह महाराज वृक्षपै चढ़ा जाता या काष्ठपर सब यही कहते कि पालकी पै राजा जाते हैं पालकी लकड़ियों के एकत्र होने से बनीहै अब तुम छूटो तो कि कहा वे लकड़िया हैं इसी प्रकार छतुरी व लोह शलाका आदिमें जानो अपना व हममें भी जानो यह पुरुष यह स्त्री गाय बैल घोड़ा हाथी पक्षी इत्यादि सञ्ज्ञा संसार में कर्म हेतु देहोंकी है न कि परमात्मा की पुरुष देवता मनुष्य पशु वृक्ष ये कोई नहीं केवल ये नाम इनके देहके डौलमें डालदिये गये हैं सो भी कर्मों के योगसे राजा यह जो लोक में पदार्थ है व जौन राजदूत यह पदार्थ है तैसेही और भी जो कुछ है यह सत्यकल्पनामय नहीं किन्तु सब मिथ्या क्योंकि कालान्तर में इसकी यह सञ्ज्ञा न रहेगी कुछकी कुछही होजावेगी कहो तुम्हारे भी तो कई नाम हैं कौन नेपर पुकारें १ सब लोकके राजा २ अपने पिताके पुत्र ३ वैरीके वैरी ४ स्त्रीके पति ५ पुत्रके पिता

इनमें से कौननाम ठीक है भला यहतो बताओ तुम्ही शिरहो कि तुम्हारा यह शिरहै फिर तुमपेटहो कि यह पेट तुम्हाराहै इसीभांति ये चरणादि तुम्हारे हैं वा तुम्ही सबहो वा इन सब के तुमहो तुम सब अंगों से अलगहो क्योंकि हम को हैं इस कहने में निपुण हो विचारो तो क्या आतहै जब इस भांति निश्चय होजावे तो हमने ऐसा किया हम हैं ऐसी बातें कैसे होसक्ती हैं ॥

चौदहवां अध्याय ॥

दो० चौदहवें अध्याय महँ यद्यपि भयहु विवेक।
राजा निजहित वारबहु पूछेउ कहत सटेक ॥ १ ॥

पराशरमुनि बोले इसभांति परमार्थमानी विप्रकी वाणी सुन परमविज्ञानी राजारहूगण प्रणामकर ब्राह्मण से बोले भगवन् जो परमार्थ युत वचन आपने कहे उनके सुनने से मेरे मनकी वृत्ति बहुतही भ्रमित होगई यह विवेक विज्ञान जो सब जन्तुओं में आपने देखाया वह प्रकृति से परे है जोकि हम पालकी को नहीं लेचलते न हमपर पालकी का बोझहै क्योंकि शरीर हमसे अलग है जो पालभी लिये जाताहै यह कहा व यह भी कि गुणोंकी प्रवृत्ति से प्राणियों की प्रवृत्ति कर्म करने में लगती व गुण सब में विद्यमानही हैं तुमने हमारा क्या कहा यह बात जो मेरे कानों में पड़ी तो मन व्याकुल होगया व परमार्थ जानने की इच्छा करने लगा मैं पहिले कपिलजी से कल्याण की बात पूछने जाता था तिसी बीचमें आपने ऐसे वचन कहे अब परमार्थ जानने के विषय में तुम्हीं में चित्त दौड़ता है कपिलदेवजी सर्वभूतपालक भगवान् विष्णुजी के अंश से संसार के मोह नाशने के लिये पृथिवीतल में अवतरे हैं वे हमीं लोगों के हित के लिये प्रकट हुये हैं जैसे आप भी इसीलिये हुये हैं तिससे जो परमकल्याणकी बातहो मेरे ऊपर दयाकरि कहिये क्योंकि सम्पूर्ण विज्ञान लहरियों के आप समुद्रहैं यह सुन ब्राह्मणदेव बोले हे भूप ! फिर भी कल्याणही पूंछतेहो परमार्थ क्यों नहीं पूछते कल्याण की तो सब बातें परमार्थ में आइहैं जैसे देवता की आराधनाकर के धन सम्पत्ति पुत्र राज्यकी इच्छा करता है इसीको श्रेय वा कल्याण कहते हैं जो बिना संकल्प किये हुये यतरूप कर्म किया जाना वह श्रेय स्वर्गलोकके फलको देताहै इनमें यह मुख्य श्रेयका कर्म

है व जो नानाप्रकार के योगों मे परमात्माका ध्यान किया जाताहै श्रेय ठीक २ उसीका नामहै क्योंकि उसमे यह जीव परमात्मा में लीन होजाता है इस भांति सैकरों हज़ारों कल्याणकी बातें हैं पर परमार्थ ये कोई नहीं है यदि धन परमार्थ होता तो धर्म के लिये क्यों खर्च किया जाता नहीं धन कभी परमार्थ नहीं होसक्ता क्योंकि वह तो केवल कामकेही अर्थ खर्च किया जाता है व उसके खर्च से कामही मिलसक्के न कि मोक्षरूप परमार्थ यदि पुत्र को परमार्थ समझे तो वह भी नहीं क्योंकि वह भी तो किसी का पुत्र है फिर उसको अपने पिताका परमार्थ बननापड़ेगा इसभांति इस चराचर संसारमें कारणोंका परमार्थ कार्य नहीं होसक्के अर्थात् पुत्र पिताका घड़ा कुम्हार का परमार्थ नहीं है यदि राज्यादिकोंका मिलना परमार्थ समझाजावे तो वह भी नहीं होसक्ता क्योंकि क्याजाने किसका २ राज्य उसमे होजावे वा वेदविहित यज्ञ कर्म परमार्थ भूत होसक्ताहै पर उस विषय में भी जोहम कहतेहैं सुनो जो घटादि कार्य कारणभूत पृथिवी से बनते हैं सो जब कारण मिटजाता फिर घड़ा भी मिट्टीही होजाती है इसभांति समिधा घृत कुश आदि नाशहोनेवाल पदार्थों मे जो यज्ञादि किया कीजावेगी वह भी नाशहीहोगी और परमार्थ तो नाशहीन है वह भी जब नाशहोनेवाले पदार्थों से कियाजावेगा तो नाशताको पहुँचेगा परमार्थ अन्य कोई पुत्र धनादि फल नहीं देसक्ता क्योंकि वह केवल मुक्तिहीकी सिद्धि देता इस से परमार्थ से किसी अन्य पदार्थ की इच्छा न करनीचाहिये हे राजन् ! ईश्वर का ध्यान परमार्थ के अर्थको बताताहै परन्तु वह भेदादिकों के करने से भेद वाला होजाताहै फिर परमार्थ तो भेदवान् न होनाचाहिये इससे ध्यान भी परमार्थ नहीं जो कहो परमात्मा व आत्माका योग परमार्थ है तो वह भी नहीं क्योंकि अन्य पदार्थ अन्य पदार्थता को कभी नहीं पासक्ता जिससे हे भूपाल ! कल्याण की बातें बहुतहैं इसमें कुछ सन्देह नहीं परन्तु परमार्थ हम संक्षेप रीतिसे बताते हैं सुनिये यह एक सर्वव्यापी समानरूप शुद्ध निर्गुण प्रकृति से परे जन्म वृद्धि मरणरहित सबमें मन सबमय आत्माहै व परमज्ञानमय समर्थ नाम ईश्वर जाति नामादि अपराधों से न कभी युक्त हुआहै न युक्तहै न युक्त होगा इसी से प्रकृतिमे पर कहा जाताहै फिर नाशवाली प्रकृति से उत्पन्न होने उसमें कैसे होसके हैं ईश्वर समीचीन है पर निम निम यहाँ मान होता

भ्रान्ति से विदित होता कि इसमें भी सुख दुःखादि का भागी यह नहीं, वह एक निराकार विज्ञानस्वरूप है व वही परमार्थ है जो नैयायिकादि द्वैतवादी हैं वे अपरमार्थदर्शी हैं ईश्वर जीव एकही है जैसे बांसुरी में छेदों के भेद से वही पवन षड्ज मध्यम धैवतादि का भेद कहाने लगता वस्तुत दूसरा नहीं है इसी भांति ईश्वरभी भेदरहित है एकता व रूपभेदता बाहर के कर्मोंकी प्रवृत्तिसे उत्पन्न होती है वे अन्य ब्रह्मादि देवों में है उसमें नहीं क्योंकि वह जन्मादिरहित है ॥

पन्द्रहवां अध्याय ॥

दो० पन्द्रहें अध्याय महँ नृपहिं व्याकुलित देखि ॥
कह्यउ निदाघाख्यान द्विज वर्णत सोइ विशेखि ॥ १ ॥

पराशरमुनि बोले कि यह सुन राजा मौन व चिन्ता व्याकुल होगये तब ब्राह्मणदेव अद्वैत ब्रह्मके अन्तर्गत एक कथा कहने लगे हे नृपश्रेष्ठ ! सुनिये निदाघ नाम ब्राह्मण के बोधार्थ ऋभुजीने जो इतिहास कहाहै कहते हैं स्वभावही से महाविज्ञानी ब्रह्माजी के ऋभुनाम ब्राह्मण एक पुत्र हुये तिनके पुलस्त्यके पुत्र निदाघ नाम शिष्य हुये उन्हें उन्होंने परमानन्द से सम्पूर्ण विज्ञान दिया जब निदाघ ने ज्ञान तत्त्व पाया तो द्वैत वासना न रही यद्यपि ऋभुजी ने भल २ देखा पर उसका कहीं लेशही न दीखता देविका नदी के तीर अतिरमणीय एकनगर नाम पुर पुलस्त्यजी ने बसाया उसी में ऋभुजी के शिष्य निदाघजी बसतेथे बहुत दिनों के पीछे निदाघ के देखने के लिये ऋभुजी आये व उनकी अतिथिशाला के आगे खड़े हुये निदाघ भी शिष्य चारी के साथ अपने गृहमें लेगये व उनके हाथ पैर धुलाके बोले महाराज भोजन कीजिये ऋभुजी बोले कहो तुम्हारे यहां हमारे भोजन के लिये कौन वस्तु है खराब भोजन हमें नहीं अच्छा लगता निदाघ बोले सतुवा यवका पिसान और मालपान बहुत हैं जो इच्छाहो खाइये ऋभु बोले ये सब कदन्नहैं हमको स्वादिष्ट स्वरई खीर दधि भात फेनी आदि खिलाइये यह सुन निदाघ ने अपनी स्त्री से कहा जो नीक मीठ कुछहो इनके लिये बनादो ऐसे वचन सुन स्त्री ने जहां तक होसका बहुत नीक मीठ बनाकर निवेदन किया वे अच्छे प्रकार भोजन करने लगे तो निदाघजी बोले कि आपकी इस आहारमें परम प्रीति

हुई व चित्त प्रसन्न हुआ कहिये आप कहां रहते हैं व कहां चले व कहांसे इस समय आतेहो कहिये ऋभु बोले हे ब्राह्मण! जिसके भूख होती है भोजन करने से उसकी तृप्ति होतीहै हमारे तो भूखही न थी फिर तृप्ति क्यों पूछतेहो। शरीर में जो पृथिवी का अंशहै अग्नि से तप्त होना तब भूख व जब जलका अंश क्षीण हुआ तो पिपासा लगती है भूख प्यास ये दोनों देहके धर्म हैं ये हमारे नहीं हैं क्योंकि हमारे शरीरही नहीं इसीसे भूख प्यास न होने से हम सदा अघानेही बने रहते हैं मनकी स्वास्थ्य व सन्तुष्टता दोनों चित्तके धर्म हैं जिसके चित्त न हो उससे पूछो पुरुषपुराण परमेश्वर के ये नहीं होते व जो पूछा कि कहां रहते कहां जावोगे कहां से आतेहो इन तीनों के उत्तर सुनो जिससे वह पुरुष सबमें प्राप्त व सब कहीं आकाश के समान व्याप्तहै इससे कहांसे आते कहां रहते कहां जावोगे इस आप के प्रश्नका कुछ अर्थही नहीं है सो हम न जानेवाले न आनेवाले न एक देशके रहनेवालेहैं और तुम न तुम न अन्य अन्य न हम न कोई यह कुछभी नहीं यह मीठ मीठ नहीं न तुमने हमारी जीभ मीठी कीहै जो कहो क्या कहते हो तो कहते हैं सुनो जो भोजन करनेको उद्यतहै उसको क्या अच्छा व क्या खराब सब अच्छेही हैं जिसको भूख नहीं अच्छेभी खराब हैं कभी २ गैरमीठ मीठ होजाता व येहीमीठ मीठ आदि मध्य व अन्तमें क्या अच्छी रुचिका कारणहै नहीं जैसे माटीका घर ऊपरसे माटी लगाने से पोढ़ा होजाताहै तैसेही यह पृथ्वी से उत्पन्न देह पृथ्वीही से उत्पन्न यव गोधूम मूंग चून तेल दूध दही गुड़ फलादिकोंसे पुष्ट बना रहताहै जिससे आप मीठ करुक विचार जानकर मनको समान करो क्योंकि समताही का कार्य मुक्तिदायक होता है ब्राह्मणदेव रहूगण राजासे बोले कि इस भांति ऋभुजी के वचन सुन निदाघ जी प्रणाम करके बोले हे महाराज! प्रसन्न हूजिये तुम्हारे वचनसे हमारा मोह गया अब कहिये आप क्यों आये ऋभुजी बोले हम तुम्हारे आचार्य ऋभु हैं तुमको विज्ञान देने आये थे सो दिया व परमार्थ भी कहा अब जाते हैं इसी भांति यह जगत् एकहै भेद नहीं है वासुदेव जिसका नामहै वही परमात्मा का स्वरूप है॥

चौ० इमि निदाघ सन भाषि ऋभुनामा। भे प्रणाम गमने निजधामा॥
कहा रहूगण सुनु मम मोहं। त्यहि नरवर परमार्थ न मोहू ॥ १ ॥

सोरहवां अध्याय ॥

दो॰ सोरहव अध्याय महँ पुनि ऋभु मुनि तहँ आय ॥
कह्यो परमार्थ निदाघसों सोइ कहत मनलाय ॥ १ ॥

ब्राह्मणदेव फिर ब्राह्मण राजासे बोले कि १००० वर्ष के पीछे ऋभुजी फिर निदाघको ज्ञानदेनेके लिये तिसी नगर को आये व देखा कि एक राजाकी सवारी नगर में जाती है व निदाघ मुनि भी वनसे कुश पाना लिये आते हैं सवारी देखकर दबकि रहे हैं ऐसे निदाघ से जाकर पूछा कि तुम क्यों दबकि रहे निदाघ बोले कि यह राजाकी सवारी जातीथी इसीको देख थँम रहेहैं ऋभु बोले हे द्विजश्रेष्ठ! इनमें राजा कौन है व इतरजन कौन हैं बताओ तो हमारे विचार से जानो तुम इस विषय के जनैया जान परतेहो निदाघ बोले जो पर्वताकार हाथी पै चढ़े जाते हैं वेतो राजा हैं बाकी उनके नौकर चाकर हैं ऋभुजी बोले ये हाथी व राजा आपने साथही हमसे बताये विशेष कोई चिह्न नहीं बताये तिससे इन दोनों में जो कुछ विशेषहो कहिये हमारे जानने की इच्छाहै निदाघ बोले यह जो नीचे है हाथी है जो इसके ऊपर चढ़ाहै राजा है भला सवार पैदलका सम्बन्ध कौन नहीं जानता ऋभु बोले हे महान् ! जिस कहने से हम जानें तैसा कहो नीचे किसको कहते व ऊंचे किसको यह सुन निदाघ बोले जो हम से पूछतेहो कहते हैं ऊपर हमहैं जैसे राजा नीचे तुमहो जैसे हाथी तुम्हारे बोधके लिये यह दृष्टान्त हमने दिया ऋभु बोले हे द्विजश्रेष्ठ! तुम राजा के तुल्यहो और हम हाथीके तो यह बताओ कौन तुमहो कौन हम यह सुन निदाघ बहुतही शीघ्र दोनों चरणोंपर गिरके बोले महाराज तुम हमारे गुरु ऋभुजी हो क्योंकि अन्य किसी का मन अद्वैत संस्कार से संस्कृत नहीं है जैसा कि हमारे आचार्य्य आपकाहै हमनें जाना कि हमारे गुरुजी आये ऋभुजी बोले हां तुम्हारी पूर्व्वकी सेवा से हम बहुत प्रसन्न हुये थे इससे तुम्हारे गुरुही हैं तुम्हें दर्शन देने आयेहैं सो संक्षेपही से देख लिया कि परमार्थ तत्त्व तुममेंहै यह कह ऋभुजी तो चल गये निदाघ उसी उपदेश से अद्वैत में रमित हुये सब प्राणियों को समान देखने लगे कि वैसेही जीव व ब्रह्म को समान समझ अन्तावस्था में ईश्वर में लीन होगये ब्राह्मणदेव कहते हैं हे राजन्! तैसेही तुमभी

सब प्राणियों को समान देखो अपना व शत्रु व बन्धु भाई में अन्तर न रक्खो जैसे श्वेत नीलादिवर्णों के भेदमे एकभी आकाश भिन्न २ जान पड़ता इसी भांति आत्मा भी एकही है पर भ्रांतिदृष्टि से अलग अलग जान पड़ता है जो कुछ इस जगत्में है सब वही ईश्वर है उससे बाहर कुछ भी नहीं सो हम सोतुम सो यह सब यह मोह भेद छोड़ो पराशर मुनि बोले॥

चौ० यह सुनि भेद सकल नृप त्यागे। अरु परमार्थ दृष्टि अनुरागे॥
द्विजहु जाति सुमिरण के हेता। ताहिजन्म मे विष्णु निकेता॥ १॥
भरत महीप कथा कर सारा। सुनै पढ़ै जो सहित विचारा॥
अमल बुद्धि लहि लहै न मोहा। मुक्ति योग सो सद्गति सोहा॥ २॥

इति श्रीमद्विष्णुपुराणेद्वितीयोंऽशेषोडशोऽध्याय १६॥

अथ विष्णुपुराणस्य॥

तृतीयोंऽश ३॥

पहिला अध्याय॥

दो० अष्टादश अध्यायहैं अंश तीसरे माहिं॥
व्यास मनुमभृतिककहैं धर्मशास्त्र गण नाहिं॥ १॥
तासु प्रथम अध्याय महँ सात मनुनकी गाय॥
वर्त्तमान अरु भूतसब हरि अवतार सुनाय॥ २॥

श्रीमैत्रेयजी बोले हे गुरुजी। पृथिवी समुद्र सूर्यादि ग्रह नक्षत्र मण्डल देवता ऋषि आदिकी सृष्टि ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र पशु पक्षी इत्यादिकोंकी स्थिति व बाल प्रह्लाद व ध्रुवादिकों के चरित सब यथाक्रम आपने कहे अब मन्वन्तरों के स्वामी इन्द्रदेवता ऋष्यादिकी कथा आपके कहने से सुना चाहते हैं पराशर मुनि बोले कि बीतेहुये वर्त्तमान सब मन्वन्तर तुमसे यथाक्रम कहते हैं स्वायम्भुव स्वारोचिष औत्तमि तामस रैवत व चाक्षुष ये ६ मन्वन्तर बीत चुके आजकल जो मन्वन्तर है उसका वैवस्वतनाम है यह सातवां है उनमें स्वायम्भुव मन्वन्तरकी कथा तो सृष्टिके आदिही में कह चुके उनके देवता ऋष्यादि

भी कहे अब स्वारोचिष मन्वन्तरकी कथा कहते हैं जिसमें मन्वन्तर के स्वामी व ऋषि व उनके पुत्रोंकी भी कथाहोगी स्वारोचिष में पारावत व तुषित नाम देवताथे व इन्द्रका विपश्चित नाम था ऊर्ज्जस्तम्भ प्राणदत्त अग्निऋषभ निश्चर व ऊर्व्वरीवान् ये ७ ऋषिथे व चैत्र किम्पुरुषादि स्वारोचिषके पुत्रथे यह दूसरेमनुकी कथाकही अब औत्तमिनाम तीसरे मनुकी सुनिये इसमें के इन्द्रका सुशान्ति नामथा स्वधामान सत्य शिवप्रदर्शन व वशवर्त्ती ये बारह २ के देवताओंके ५ गणथे वशिष्ठजी के पुत्र सप्तर्षिथे परमदिव्यादि प्रजाथीं उनउत्तम मनुके पुत्रका तामसनाम था ये चौथे मनुहुयेहैं इसमें सुरूप व हरि सत्यसुधी सञ्ज्ञक देवताथे इन्द्रका शिखी नाम था ज्योतिर्द्धामा पृथु काव्य चैत्र अग्निवमक वपीवर ये ७ ऋषिथे व ख्याति शतहय जानुजघादि तामसकेपुत्र बड़ेबलवान् राजाहुये पँचयें मनुका रैवतनामहुआ व इन्द्रका विभु और ममिताभ सुतरज वैकुंठ सुमेधाइन्हें आदि चौदह २ के चौदहगण देवोंकेथे हिरण्यरोमा वेदश्री ऊर्द्धबाहु वेदबाहु स्वधामा पर्ज्जन्य व महामुनि ये ७ ऋषिथे बलबन्धु सम्भाव्य व सत्यकादि तिनकेपुत्रथे ये सब बड़ेभारी राजाहुये स्वारोचिष उत्तम तामस व रैवत ये ४ मनु प्रियव्रत के वंशके हैं इनको प्रियव्रतजीने विष्णुकी बड़ीआराधनासे पायाथा जो चारों मन्वन्तराधिप हुये छठेंमनुका चाक्षुषनामहुआ इसमें इन्द्रका मनोज व आद्यप्रसूत भव्य पृथग दिवौकाः महानुभाव लेखपे देवता सुमेधा विरज हविष्मान उत्तम मधु अतिनामा सहिष्णु ये ७ ऋषि ऊरुपुरु शतद्युम्ननाम मनुके पुत्रथे अब इससातयें मन्वन्तरके स्वामी सूर्य्यके पुत्र श्राद्धदेव जिनका वैवस्वतभीनामहै हुये व आदित्य वसु रुद्रादि देवता पुरन्दर इन्द्र वशिष्ठ कश्यप अत्रि जमदग्नि गौतम विश्वामित्र भरद्वाज ये ७ ऋषि इक्ष्वाकु १ नभग २ धृष्ट ३ शर्याति ४ नरिष्यन्त ५ नाभगाग ६ दिष्ट ७ करूप ८ पृषध्र ये सब ६ पुत्र हुये सब परम धार्मिक व विष्णुभक्तपरायण हुये इन सब मन्वन्तरों में देवताओं के बीच एक २ विष्णुका अवतार भी रहताहै जैसे कि स्वायम्भुव मन्वन्तर मे यज्ञजी का अवतार यह आकूती में मानसी अवतार हुआ था फिर स्वारोचिष मन्वन्तरमें तुषितनाम देवताओंके साथ तुषितामें अजितजी का अवतार उत्तम मन्वन्तरमें वही अजितजी सत्यामें सत्यनाम देवों के साथ सत्य नाम से प्रसिद्धहो अवतरे तामसमें हर्य्यामें हरिनाम देवों के साथ हरि नामसे

प्रसिद्धहो अवतरे रैवतनाम मन्वन्तरमें सम्भूति नाम स्त्री में मानस नाम देवों के साथ मानस नाम हरि अवतरे चाक्षुष मन्वन्तर में वैकुंठ नाम भगवान् विकुंठा नाम माता में वैकुंठ नाम देवों के संग जन्मे और इस वैवस्वत मन्वन्तरमें अदिति में कश्यपजी से वामन नाम श्री हरिने अवतार लिया जिन्होंने तीन पैर से तीनों लोक को नापके बलिसे छीन इन्द्रको सब देदिया व इन्द्र के कोई कंटक न रहने दिया॥

चौ० यहिविधि सात मनुनमहँतासू। भई मूर्ति सातहु खुलासू॥
जिनसों पाल्यहु प्रजासमूहा। सगुण प्रगटहिं जनिकरऊहा॥ १॥
जासोंतासु शक्तिसों यह जग। विष्टदृष्टि आवत जगमअग॥
तासो विष्णु कहत प्रविशनसों। जो विशधातुप्रयोग लगनसों॥ २॥
देवऋषीश्वर मनुमनुजाता। इन्द्र आदि मन्वन्तर पाता॥
सकल विभूति रमापति केरी। है विचारि देखहु चित हेरी॥ ३॥

दूसरा अध्याय॥

दो० कहब द्वितीयाध्याय महँ सातमनुन इतिहास॥
जहँसावर्णि खरांश सुत करइतिहास विलास॥ १

मैत्रेयजी बोले हे मुनिराज सात मन्वन्तरों के समाचार तो आपने कहे अब जो ७ होनेवाले मन्वन्तरहैं उनके भी वृत्त सुनाइये पराशर मुनि बोले सूर्यकी सञ्ज्ञानाम स्त्री मे श्राद्धदेवमनु यमराज व यमी ये तीन सन्तान हुये सञ्ज्ञासूर्यका तेज न सहसकी इससे आपनेही समान एक छाया नाम स्त्री बनाय सूर्यनारायण की सेवामें लगाय आप वनको तपस्या करने चली गई सूर्यजीने जाना ये सञ्ज्ञा नाम हमारीही स्त्री है इस लिये छायामें शनैश्चर तपती कन्या व सावर्णि मनु तीन और सन्तान उत्पन्न किये एक समय यमराजजीने देखा कि यह हमारी माता शनैश्चरादि तीनों में बड़ा स्नेह रखती है हमसे कम इससे छाया के मारने को लात उठाया छायाने शापदिया तुम्हारा चरण गिरपरे तब सूर्य व यमराज को जानपरा कि यह सञ्ज्ञा नाम नहीं है, कोई दूसरी स्त्री है नहीं तो अपने पुत्रको शाप न देती तब सूर्यनारायण के पूछने पर छायाने बताया मैं सञ्ज्ञा की छायाहूं वे उत्तर कुरुदेश तपस्या करने चलीगई यह सुन सूर्यजीने

वहांजाय देखा तो संज्ञा घोडीका रूपधरे तपस्याकर रही हैं आपभी घोड़ावन के उनमें अश्विनीकुमार व रैवन्त नाम २ पुत्र उत्पन्न कियेव फिर संज्ञाको अपने स्थानपर लाये विश्वकर्मा को बुलाया कि उन्होंने कुछ सूर्यका तेज अपनी खरादपर चढ़ाय छीलडारा कि वे संज्ञाके संग विहार करनेवाले रहगये इस छीला छाली में ७ भाग तेजके निकलगये केवल एक भाग रहगया वह न छुला क्योंकि मुख्य विष्णुका तेज तो नाश रहित है फिर विश्वकर्मा ने जो तेज सूर्य से क्षीण कर डाराथा वह अतीव देदीप्यमान हो भूमिमें गिरपरा उसी से विश्वकर्मा ने विष्णुका सुदर्शनचक्र रुद्रका त्रिशूल कुबेरकी पालकी षड़ानन की शक्ति अन्य सब देवों के आयुध बनाये व जो छायाके पुत्र मनु हुये थे श्राद्धदेव मनुके सवर्ण भाई होने से इनका सावर्णिनाम पड़ा इन्हीं के नाम से सावर्णिक आठवामनु कहावेगा तब सुतपा अमिताभ आदि देवता होंगे तिन देवताओं के गणों में बीस बीस देवहोंगे व दीप्तिमान् गालव परशुराम कृपाचार्य अश्वत्थामा व्यास व ऋष्यशृङ्ग ये ७ ऋषिहोंगे व पापरहित विरोचन के पुत्र बलिजी विष्णु के प्रसादसे इन्द्र विरज उर्वरीवान् निर्मोहादि मनुके पुत्र दक्ष सावर्णिनाम नवयें मनु होंगे व पारमरीचि गर्भ निर्मोहादि तीन प्रकारके देवता बारह २ होंगे व अद्भुत नामइन्द्र सवनद्युतिमान् भव्य वसु मेधा मुनि व ज्योतिष्मान् ये ७ ऋषि धृतकेतु दासकेतु पञ्चहस्त निरामय पृथुश्रवा आदि मनु के पुत्र राजा होंगे दशवेंमनुका ब्रह्म सावर्णि नाम होगा व शुधामा विरुद्ध शतसंख्य आदि देवता शान्तिनाम इन्द्र हविष्मान् सुकृति सत्य अपाम्मूर्ति नाभाग अप्रतिमौज सत्यकेतु सुक्षेत्र उत्तमौज हरिषेणादि १० मनुके पुत्रहोंगे ग्यारहवें मनुका धर्मसावर्णि नाम होगा तब विहंगम काम गम निर्माणरति इन्हें आदि देवगणहोंगे इन एक २ गणों में तीस २ देवता हैं इन्द्रका वृषनाम होगा निश्चर अग्नि तेज वपुष्मान् विष्णु आरुणि हविष्मान् ये मनुपुत्र सर्वग सर्वधर्मा देवानीकादि सप्तर्षि होंगे बारहवें मनुका रुद्रसावर्णिनाम होगा व इन्द्र का ऋतधामा हरित लोहित सुमनस सुकर्मा ताराआदि दश २ देवों के पांच गण व तपस्वी सुतपा तपोमूर्ति तपोरति तपोधृति तपोद्युति तपोधन ये ७ ऋषि ... वान् उपदेव देवश्रेष्ठादि मनुके पुत्र तेरहवें मनुका रौच्यनाम होगा व सुत्रामा सुकर्मा सुधर्मा आदि ३३ भांतिके देवगणहोंगे दिवस्पति इन्द्र निर्मोह तत्त्वदर्शी

निष्प्रकम्प निरुत्सुक धृतिमान् अव्यय वसुतपाये ७ ऋषि व चित्रसेन वि चित्रादि मनुपुत्र चौदहें मनुका भौत्यनाम होगा इन्द्रका शुचि चाक्षुष पवित्र कनिष्ठ भ्राजिर वाचावृद्ध आदि देवता अग्निबाहु शुचि शुक्र मागध अग्नीध्र युक्त अजित् ये ७ ऋषि उरुगम्भीर बुध्नादि मनुके पुत्र किंव सब मन्वन्तरोंकी कथा कही चारोंयुग बीतने पर वेद नहीं रहजाते तब स्वर्ग से पृथ्वीपर आय सप्तऋषि प्रचार कराजाते हैं पुनिसत्ययुग धर्मशास्त्र के प्रवर्त्तक मनुजी होते हैं व देवतालोग यज्ञ भागही भोगते हैं व जो मनुके पुत्रहोते तिन्हींके वंशवाले एक दूसरे के पीछे राजाहोते मनु सप्तऋषि देवता राजा मनुके पुत्र व इन्द्र इतने इतने अधिकारी प्रत्येक मन्वन्तर में होतेहैं जब इसप्रकार के १४ मन्वन्तर सं इस्रयुग पर्यन्त बीतते हैं तो एक कल्प होताहै इतनेही समयकी रात्रिभी हो- तीहै दिनको ब्रह्माका रूप धारण कर सृष्टि करते रात्रिको वही ब्रह्मा नारायण स्वरूप से अनन्त शेषके ऊपर गिरधरके सोरहते हैं फिर जब जागते हैं रजोगुणी ब्रह्माहो जैसी प्रथम सृष्टियी बनानेलगते व मनु मनुपुत्र राजा इन्द्र देवता सप्तर्षि ये सब सात्त्विकी अंशसे पालन करने लगते फिर चारोंयुगों में भगवान् जना- र्दन पालन के करनेवाले युगव्यवस्था करते हैं व बनाते हैं सुनिये सत्ययुग में कपिलदेवादि का रूप धारणकर परमज्ञान सब प्राणियों को श्रीविष्णुजी देतेहैं त्रेतायुग में चक्रवर्त्ती श्रीरामचन्द्रादि रूप धारणकर दुष्टोंको मार त्रिलोकी की रक्षा करते फिर द्वापर में व्यासावतार धारणकर एकही वेद के चार बनातेहैं व कलियुग के अन्त में कल्किभगवान् हो दुष्टों को मार वेदोक्त स्थापन करते ॥

चौ० इमि त्रिलोक उपजावत पालत। अंतसमय पुनिरुद्रह्वै घालत ॥
जासों नाम अनन्त कहावत। नहिं तासों बाहर कुछ आवत ॥ १ ॥
भूत भविष्य भव्य जो कुछ सब। तासु कृपा तें होत नशत अब ॥
सो सब तुमसन ब्रह्म बखानी। सुनहु गर्ग विधि मुनि मनजानी ॥ २ ॥
मन्वन्तर मन्वन्तर स्वामी। तुमसन सकल कहे गत पामी ॥
अब का सुना चहत मो पाहू। कहव जौनविधि शक न ताहू ॥ ३ ॥

तीसरा अध्याय ॥

दो० कहत तृतीयाध्याय मह वेद विभाग विचार ॥
सुनहु सकल सज्जन गुणप जासु सुने मनप्यार ॥

श्रीमैत्रेयमुनि बोले हे महाराज ! हमने यह जाना कि सब संसार को विष्णु ही पालते उन्हीं से उत्पन्नहोता व उन्हीं में लीनहोजाता विष्णु से पर और कुछ नहीं अब यह चाहतेहैं कि वेद व्यासका रूप धारण कर जिस २ युगमें वेद विभाग जैसे २ करते हों सुनाइये जिस २ युग में जो २ व्यास हुये हों बताइये व वेदों की शाखाओं के भेदभी पराशरमुनि बोले हे मुनिवर्य ! वेदवृक्ष की शाखाओं में बहुत भेद हैं इसलिये विस्तार सहित तो नहीं कहसक्ते संक्षेप से बखानते हैं सुनिये व्यासरूपी विष्णु प्रत्येक द्वापर में एकही वेदको कईप्रकार करतेहैं वेदके भेद करने का कारण मनुष्यों में वीर्य तेज बलकी कमी है यही विचार वेदव्यासजी अनेक २ इनका किया करतेहैं जिसमूर्त्ति से वेद विभाग करतेहैं वह मूर्त्ति श्रीविष्णुजीकी है जिस २ युगमें जो २ व्यास हुये हैं उनके नाम व शाखाओं के भेद सुनिये इस वैवस्वत मन्वन्तरमें २८ बार महर्षियोंने वेद विभाग कियाहै पहिले द्वापरके अन्तमें ब्रह्माजीने आपही वेद विभाग किया दूसरे में राजा स्वायम्भुव मनुजीने तीसरेमें शुक्राचार्य चौथेमें बृहस्पति ५ वें में सूर्य ६ ठें में मृत्यु ७ वें में इन्द्र ८ वें में वशिष्ठ ९ वें में सारस्वत १० वें में त्रिधामा ११ वें में त्रिवृषा १२ वें में भरद्वाज १३ वें में अन्तरिक्ष १४ वें में वप्रीवा १५ वें में त्र्यारुण १६ वें में धनञ्जय १७ वें में कृतञ्जय १८ वें में ऋणज्य १९ वें में भरद्वाज २० वें में गौतम २१ वें में उत्तम जो हर्यात्मा कहाते २२ वें में वेन २३ वें में सोम २४ वें में शुष्मायण २५ वें में तृणबिन्दु २६ वें में ऋक्ष २७ वें में जातुकर्ण २८ वें में कृष्णद्वैपायन ये २८ वें में पुराने वेद व्यास कहे इसके आगेवाले २९ वेंमें अश्वत्थामा व्यासहोंगे पराशरजी बोले कि जब हमारे पुत्र कृष्णद्वैपायन न रहेंगे तो उनपीछे अश्वत्थामा वेदव्यास होवेगा क्योंकि इसी से प्रथम वेद हुआ भी था यह ऊंकार ब्रह्मस्वरूपी है व इसी में भू भुवः स्वः और ऋक् यजु साम अथर्वण सब विद्यमान हैं इन्हें वेद ब्रह्मरूप ॐकार के नमस्कार है जिस निमित्तसे जगतकी उत्पत्ति पालन संहार होतेहैं व महत्तत्त्व में गुप्त है ऐसे ब्रह्म को नमस्कार है फिर वो अपार [illegible] सदा हीन जगत् मोहन रूप । [illegible] आदिभी [illegible] जन्म मरणादि [illegible] व पुरुष के [illegible] शुद्ध सत्त्व ऐसे परमब्रह्म के निर्गुण नमस्कार है फिर जो परमात्मा रूपी

भगवान् वासुदेव का रूप एकही ब्रह्म तीन प्रकार का होता व भेदरहित है उस के प्रणाम॥ ८॥

चौ० भेद रहित पर जड़गति मानत। सकलभूत महँ भेद लखावत॥
सोइ साम ऋक यजुर अथर्वा। इनकर सार सोइ अरु सर्वा॥ १॥
सोइ भेद बदा श्रुति मय होई। करतवेद सोइ तनिक न गोई॥
शाखा वेद प्रणेता सोई। सब शाखा स्वरूप मुनि ओई॥ २॥

चौथा अध्याय॥

दो० कहब चतुर्थाध्याय महँ वेद व्यासही व्यास॥
होतकरत श्रुति भेद सब वर्णन सो सप्रकास॥ १॥

श्रीपराशरमुनि बोले वेद आदिहीं व इसमें ऋक यजुस्सामाथर्वण के भेदसे चारपाद व १००००० श्लोकहैं सब यज्ञ भयेहैं इसी एक वेद को हमारेपुत्र कृष्ण द्वैपायनजी ने २८ वें द्वापर के अन्तमें ऋगादि ४ भेद करडारे जिस भांति इन वेदव्यासने इसके विभाग किये ऐसेही पिछलेवाले व्यासोंने व हमने भी किये थे परन्तु कृष्ण द्वैपायन के समान अन्य अस्मदादि वेदविभाग करनेवाले नहीं हैं क्योंकि वे साक्षात् नारायण के स्वरूप हैं नहीं तो ऐसा कौन महीमण्डल में दूसरा है जो महाभारत बनाता यह इन्हीं महात्मा का कार्य है तिन हमारे महात्मापुत्र ने जिस प्रकार वेदोंका विभाग कियाहै तुम को सुनाते हैं ब्रह्माजी की आज्ञासे व्यासजी वेदोंके विभाग करनेलगे उन वेदोंके ग्रहण करनेवाले चार शिष्य भी उनको मिले उनमें पैलको ऋग्वेद पढ़ाया वैशम्पायनको यजुर्वेद जैमिनि को सामवेद व सुमन्तु को अथर्वण और रोमहर्षण नाम सूतजी को इतिहास व पुराण पढ़ाये यजुर्वेद में फिर ४ चार भाग बनाये वही चातुर्होत्र हुये जिनमे सम्पूर्ण यज्ञ होनेहैं उनमें याजुर्वेदी अध्वर्यु ऋग्वेदी होता साम वेदी अग्निकार्य कर्ता अथर्ववेदी मन्त्रोच्चारण करनेवाला होता उन्होंमेंसे ऋक मन्त्रोंको एकत्रकर ऋग्वेद बनाया यजुओं करके यजुर्वेद सामोंवाली ऋचाओंसे साम राजाओं के जितने कार्य शान्ति पुष्टादिक सब अथर्वण मे सिद्ध किये व महत्तम प्रतिपादन भी यह वेदका एकही पूर्व वेदव्यासजी ने चार प्रकारका वेदवृक्ष बनाया पहिले ऋग्वेद वृक्षको पैलमुनि ने भेदकर इन्द्रप्रमति व वाष्कलको पढ़ाया वाष्कलजीने अपनी संहिताके ४ प्रकार करदिये व बौध्यादि

शिष्योंको पढ़ा दिया फिर उसी ऋग्वेद की शाखाओं की शाखाशिष्य अग्नि माठर याज्ञवल्क्य पराशर आदिने ग्रहण किया उनमें इन्द्रप्रमतिजीने १ संहिता माण्डूकेय नाम अपने महात्मा पुत्र को पढ़ाई तिनके पुत्र प्रपौत्र शिष्य प्रशिष्य पढ़ते गये उनमें १ वेदमित्र नाम ने इन्द्रप्रमति संहिता पढ़ी व उस संहिता की ५ संहिता बनाय अपने शिष्यों को पढ़ाई उन शिष्यों के मुद्गल गोखल वात्स्यशालीय व शिशिर ये नामथे इन्द्रप्रमति के एक शिष्य शाकपूणिथे उन्हों ने अपनी संहिता में ३ संहिता व निरुक्त बनाया क्रौञ्च वैतालिक बलाक इन तीनोंको तो एक २ संहिता व निरुक्त कनको निरुक्त पढ़ाया व पैलके शिष्य वाष्कलने तीन संहिता और बनाईं व कालायनि गार्ग्य कथा जवनाम अपने शिष्यों को पढ़ाई ये सब मुनिलोग बहुत २ ऋचों के वक्ताहुये हैं॥

पांचवां अध्याय॥

दो० कहब पचमाध्याय महँ यजुर्वेद की शाख॥
तैत्तिरीय अरु याजिकी शाखानुत तजिमाख॥ १॥

श्रीपराशरमुनि बोले कि इसीभांति व्यासजी के शिष्य वैशम्पायनजी ने यजुर्वेद की २७ शाखा बनाईं व याज्ञवल्क्यादि अपने शिष्यों को पढ़ाई एक दिन सब मुनियों ने कहा कि जो हमारे इस पर्व्वतपर की समाजमें न आवेगा उसे सात रात्रितक ब्रह्महत्या होगी उसमें वैशम्पायनमुनि नहीं पहुंचे क्योंकि उन्होंने किसी कारण से अपने भैनेको शापदे मारडालाथा व शिष्यों से कहा हे शिष्यो। हमारी ब्रह्महत्या मिटने के लिये प्रायश्चित्त करो यह सुन याज्ञवल्क्यमुनि बोले हे भगवन्! इन थोड़े थोड़े तेजवाले ब्राह्मणोंके करनेसे प्रायश्चित्त कैसे होगा। हम अकेले व्रतकरेंगे कि प्रायश्चित्त होजावेगा यह सुन वैशम्पायनजी रिसाकर याज्ञवल्क्य से बोले कि जो हमसे पढ़ाहै छोड़दो क्योंकि तुम ने इन ब्राह्मणों का अपमान किया जिस से तुमने इन सब ब्राह्मणश्रेष्ठों को बिना तेज कहा इससे तुम्हारा यहां कुछभी काम नहीं क्योंकि तुमने हमारी आज्ञाका उल्लंघन किया याज्ञवल्क्यजी ने कहा कि हमने तो आपकी भक्तिसे कहाथा कि हमीं अकेले करडालें इन बेचारों को काहे को क्लेशदें पर आप क्रुद्ध होगये तो अच्छा हमारा भी इस आपसे पढ़नेसे कुछ काजनहीं अपना वेद लीजिये यह कह वमन करने लगे हुये सब यजुर्वेद के मन्त्र उन्होंने पढ़ेथे इसीसे

त्यों उगिल दिये व वैशम्पायनजी को दे उनके निकट से चलेगये तब मुनिने तित्तिरों का रूपधर सबमन्त्र चुनलिये इसीसे वे मन्त्र तैत्तिरीय कहाते हैं फिर वैशम्पायनजी ने अन्य शिष्यों से कहा उन्होंने ब्रह्महत्या मिटाने के लिये प्रायश्चित्त करडाला याज्ञवल्क्य भी यजुर्वेद फिर पढ़ने की इच्छा से सूर्य नारायण की स्तुति करनेलगे ॥

चौ० मुक्तिद्वार सविता सित तेजम। ऋग्यजु सामरूप शुभ मेधस ॥
वेदत्रयीमय नमो नमामी। सकल मनोरथ पुरवहु स्वामी ॥ १ ॥
अग्नीषोम भूत जग कारण। भास्कर परम तेज के धारण ॥
काष्ठा कला निमेष स्वरूपा। विष्णुरूप जगसाक्षि निरूपा ॥ २ ॥
जो निज किरण सकलसुरचन्द्रा। धारण करत प्रकाशत मन्दा ॥
सुधामयी तनु पीतर पोषत। नमो नमो त्वहिं कोइ न दोषत ॥ ३ ॥
हिम जल घाम वृष्टि के कर्त्ता। नमो नमस्मन के पुनि हर्त्ता ॥
हरत जगतपति जग तम भारी। सत्त्व धामधर विनय पुरारी ॥ ४ ॥
जासु उदय बिन शुभकृति धारी। होतनजन नहिं जलशुचिकारी ॥
विनवत ताहि पाहि सो भानू। क्षमाकरहु अब तुम सब जानू ॥ ५ ॥
जासु किरण लगि भय ससारा। क्रियायोग्य होवत सविचारा ॥
अरु शुचिता कारण है जोई। करत प्रणाम करें हित सोई ॥ ६ ॥
सविता सूर्य भास्कर देवा। विवस्वान आदित्य परेवा ॥
देवादिक भावन तुम स्वामी। चरणसरोज नमामि नमामी ॥ ७ ॥
जासु हिरण्मय रथ अनिवारन। येतु अमृतधारी मनभावन ॥
जासु नयन सों देखत लोका। करहु प्रणाम मिटावहु शोका ॥ ८ ॥

इतनी स्तुति सुन वाजीका रूपधर सूर्यनारायण बोले कि वाञ्छित वरमांगो याज्ञवल्क्यजीने कहा जे यजु हमको दीजिये जिन्हें हमारे गुरुजी न जानतेहों। यह सुन भगवान् भास्करजीने अयातयाम नाम यजु याज्ञवल्क्य से कहे जिन्हें उनके गुरु वैशम्पायनजी नहीं जानतेथे उन यजुवोंके धारण करनेवाले वाजी कहाते हैं क्योंकि वाजी जो घोड़ा तिसके रूपसे सूर्यनारायण ने पढ़ाया इन यजुओं की शाखाओं में १५ भेदहैं जिन्हें याज्ञवल्क्य के पढ़ाने से दशादिक मुनियों ने धारण किया ॥

छठवां अध्याय ॥

दो० यहव छठें अध्याय महँ सामाथर्वपुराण ॥
शाखाभेद विचार अध्येता तासु प्रमाण ॥ १ ॥

श्रीपराशरमुनि बोले हे मैत्रेय ! सामवेदवृक्ष की शाखा व्यास के शिष्य जैमिनिजीने जैसे पढ़ीं उन्हें कहते हैं सुनिये जैमिनि के सुमन्तु सुमन्तु के सुकर्मा इन दोनों ने सामवेद की एक २ संहिता पढ़ी सुकर्मा ने अपनी संहिता के सहस्रोंभेद बनाय अपने शिष्योंकोपढ़ाये उनमेंएकशिष्यका हिरण्यनाभनामथा इनके १५ शिष्यथे इसलिये अपनी संहितामें इन्होंने १५ भेदकिये व शिष्योंको पढ़ाये उनलोगोंको उदीच्यसाम कहते हैं व इतनीही संहिता हिरण्यनाभके लोकाक्षि कुथुमिकुसीदी लाङ्गलि ये सब पौष्यजिके शिष्यहैं इन्होंने पढ़ी इन्हें प्राच्यसामग कहते हैं व हिरण्यनाभही के एक कृतिनाम शिष्यथे उन्होंने अपनी संहिता में २४ भेदकिये व अपने शिष्योंको पढ़ाये इनलोगोंने सामवेद की बहुतसी शाखेंकीं और सुमन्तुमुनि ने अथर्ववेद की संहिता कबन्धनाम अपने शिष्य को पढ़ाई उन्होंने उसमें दो संहिता बनाईं एक देवदर्श नाम अपने शिष्यको दूसरी पथ्यको पढ़ाई देवदर्शके शिष्य मौद्ग ब्रह्मबलि शौल्कायिनि पिप्पलादादि बहुत थे व पथ्यके ३ शिष्य जाजलि कुमुदादि व शौनक ये थे शौनक ने अपनी संहिता के दो भेद बनाये एक तो बभ्रुनामको पढ़ाया दूसरी सैन्धवायनको इसी से उस वेदके सैन्धव व मुञ्जकेश दो भेदहुये और संहिताओं के नक्षत्रकल्प वेदकल्प संहिताकल्प आङ्गिरसकल्प शान्तिकल्प ये सब अथर्वणवेद की संहिता कहीं और सकल पुराणार्थ विशारद श्रीवेदव्यासजी ने आख्यान उपाख्यान गाथा कल्पशुद्ध्यादि पुराणाङ्गोंके साथ पुराण बनाये व अपने शिष्य रोमहर्षणनाम सूतजीको पढ़ाये रोमहर्षणजी के सुमति अग्निवर्चा मित्रयु शांशपायन अकृतव्रणीय व सावर्णि ये ६ शिष्य हुये अकृतव्रण सावर्णि शांशपायन इन तीनोंने एक एक संहिता बनाई व रोमहर्षणकी संहिता चौथीहुई उसमें १८ पुराण हैं उनमें यह विष्णुपुराण हमने बनाया पुराणों के नाम ये हैं सब पुराणों में पहिला ब्रह्मपुराण है १ ब्रह्मपुराण २ पद्मपुराण ३ विष्णुपुराण ४ शिवपुराण ५ श्रीमद्भागवतपुराण ६ नारदीयपुराण ७ मार्कण्डेयपुराण ८ अग्निपुराण ९ भविष्यपुराण १० ब्रह्मवैवर्तपुराण ११ लिङ्गपुराण १२ वाराहपुराण १३

स्कन्दपुराण १४ वामनपुराण १५ कूर्मपुराण १६ मत्स्यपुराण १७ गरुड़पुराण १८ ब्रह्माण्डपुराण इन सब पुराणोंमें सर्ग प्रतिसर्ग वंश मन्वन्तर वंशानुचरित ये ५ पदार्थ कहेजाते हैं यह विष्णुपुराण जो तुमसे कहते हैं उसे पद्मपुराण के पीछे व्यासजीने ही बनाया था वही हम तुमसे कहते हैं इस पुराण में सर्ग प्रतिसर्ग वंशमन्वन्तर वंशानुचरित पाँचों पदार्थों के कथन में मुख्यकर विष्णु का वर्णनहै इसीसे इसका विष्णुपुराण नामहै वेदाङ्ग शिक्षाकल्प ज्योतिष छंद निरुक्त व्याकरण ये ६ ऋक् यजु साम अथर्वणये ४ वेद मीमांसा न्यायपुराण ब्रह्मादि व मनुस्मृत्यादि धर्मशास्त्र इन्हीं का चौदहविद्या नाम है और आयुर्वेद धनुर्वेद गान्धर्ववेद नीतिशास्त्र इन चारोंको मिलाने से १८ विद्याहोती हैं इनके जाननेवाले प्रथम तो ब्रह्मर्षि व्यास नारद वशिष्ठादि हैं उनसे देवर्षियों ने पाया तिनसे राजर्षियों ने ये तीनों ऋषिगण हैं॥

चौ० शाखा शाखाभेद बखाना। शाखा कारक सकल महाना॥
भेद हेतु सब भांति सुनावा। सत्य सत्य भाषा न बनावा॥ १॥
शाखाभेद मन्वन्तर माहीं। रहत समान न्यूनधिक नाहीं॥
ब्रह्मभाणित श्रुति नित्यन शंका। शाखाभेद न तातम अंका॥ २॥
जो पूछा सम्बन्ध वेदकर। सो तुमसों भाषा संदेह हर॥
अबका सुना चहत सो कहिये। सुनि उत्तर सब मंगल लहिये॥ ३॥

सातवां अध्याय॥

दो० कहब रासमाध्याय महँ नास्त्रिकधर्मरु कर्म॥
कहल सहित इतिहास सो सुनहु सुजन नहिं नर्म॥ १॥

श्रीमैत्रेयमुनि बोले हे भगवन्! जो जो हमने पूछा सब आपने सुनाया अब और कुछ सुना चाहते हैं ७ द्वीप ७ पातालवीथी ७ लोकस्थूल सूक्ष्म जो कुछ है सबमें प्राणी विद्यमान हैं कहीं परमाणु मात्र भी नहीं जहाँ कोई न कोई प्राणी न हो व ये सब यमराजके अधीनहैं मरण के पीछे सबको यमयातना भोगनी पड़ती है यातनाओं के पीछे सब देवता दैत्य मनुष्यादि योनियोंमें उत्पन्न होते हैं हम वह उपाय सुना चाहते हैं जिससे प्राणी यमकी यातना के वशीभूत न हों पराशरमुनि बोले हे मुनिवर्य! यही प्रश्न नकुलजी ने भीष्मपितामह से पूछा था जिस भांति उन्होंने उनको उत्तर दिया सुनिये नकुल का प्रश्नसुन

भीष्मजी बोले कि एक समय हमारे समीप कालिङ्गक नाम मुनि आये उन्होंने कहा कि हम पूर्व जातिस्मर हैं तब हमने उनसे पूछा व ये २ बातें आगे ऐसी २ होंगी यह भी कहा फिर जैसा २ वे कहगये थे वैसाही वैसा हमने देखा भी एक दिन फिर मुनि से हमनेभी यही पूछा जो तुमने आज हमसे पूछाहै मुनिने इस विषय में यमराज व यमदूतों के एकान्त की वार्त्ताका यह इतिहास हमसे कहा कि एक दिन यमराजजी अपने दूतोंके कानोंमें लगेहुये यह कहते थे कि आये दूतो। जो मधुसूदन भगवान् विष्णुजी के शरणमें हैं उनको छोड़ औरों को यहां लाया करो क्योंकि हम और मनुष्यों के स्वामी हैं वैष्णवों के नहीं देवताओं से वन्दित ब्रह्माजी ने लोकको हिताहित विचारने के लिये यमराज इस नामसे हमको स्थापित कियाहै परन्तु हम हरिके वशीभूत हैं स्वतन्त्र नहीं हैं क्योंकि विष्णुजी हमारे भी यमराजाधिराजहैं जैसे कण्ठी नारी मुकुट कुण्डल मुन्दरीआदि भेदों से सोना बहुत प्रकार का विदित होता पर वस्तुतः सब में सुवर्ण एकही है इसी भांति देवता पशु मनुष्यादि कल्पना से हरि कईप्रकारसे विदित होते पर वे एकही हैं फिर जैसे पृथिवी के परिमाणु पवन के चलने से इधर उधर उड़जाते फिर पृथिवीमें उसीमें आय मिलते इसीभांति देव दनुज मनुजादि भी उसी ईश्वर विष्णुमें अन्तमें मिलते हैं देवगणों से वन्दित चरण कमल श्रीहरिको जो मनुष्य प्रणाम करताहो उसे घृत परेहुये प्रज्वलित अग्नि के समान त्यागदेना यह सुन फांसीधारण कियेहुये यमदूत ने यमराज से पूछा महाराज बताइये तो हरिभक्त कैसे होतेहैं यमराज बोले कि जो अपने वर्ण के धर्मों से कभी न चलायमान हो व आपनाों वैरीमें समभाव रखताहो न किसी की वस्तु चोराकर लेताहो न किसीकी हिंसा करताहो उसको हरिभक्त जानना फिर जिस निर्मलमति का आत्मा कलियुग के पापों से मलिन न होनेपाता हो व गोदमें न फँसताहो मनमें सदा श्रीहरि को रखताहो उसे अतीव हरिभक्त समझना और जो पराये द्रव्य सुवर्णादि एकान्त में भी पड़ेहुये उसे तृणके समान समझता हो व भगवानको छोड़ किसीमें चित्त न लगाताहो उसे हरि भक्त समझना कहां स्फटिकशिला समान निर्मल श्रीविष्णुजी कहां मनुष्यों के मनमें अहङ्कारादि दोष यह योग नहीं होसक्ता क्योंकि चन्द्रमा की किरणों के आगे अग्निका प्रताप कैसे होसक्ता है और जो मनुष्य निर्मलमति मद

इच्छाहीन प्रशान्तचित्त पवित्रचरित्र मन संसारसे मित्रभाव रखनेवाला प्यारहित बोलनेवाला मान मायाहीन होता उसके हृदय में श्रीवासुदेव बसते हैं तिन भगवान् के हृदयमें बसनेसे पुरुष जगत् का प्रिय होजाता व उसीसे विष्णुभक्त सूचित होता जैसे साखूका छोटापेड़ अतिरमणीक होनेहीसे पृथिवी के रसको बताता है हे दूत! यमनियम से विधूतपाप प्रतिक्षण अच्युत में मन लगायेहुये मान मद अहङ्काररहित ऐसे मनुष्यों से दूर भागना क्योंकि यदि उनके हृदय में असि शंख चक्र गदाधर अनादि श्रीहरि हैं तो उनके पाप नाशहोचुके अब कहा है जैसे सूर्य के उदय में अन्धकार नहीं रहता और जो मनुष्य परधन हरता जन्तुओंको मारता सदा निष्ठुरवाणी बोलता ऐसे अशुभ दुर्मदसहित व पापमति पुरुष के हृदय में अनन्त भगवान् नहीं बसते और जो असाधु दुष्ट जन पापमति महात्माओंके अधिकार को नहीं देखसक्के व उनकी निन्दा करते हैं व विष्णुकी न पूजा करते न उनके भक्तोंको कुछ देते उन अधमों के हृदयमें भगवान् विष्णु नहीं बसते व जो लोग परमप्रिय मित्र भाई बन्धु स्त्री पुत्र कन्या पिता माता सेवक इनसे भी पालनके वेतनमें धनकी इच्छा करता उस अधमको विष्णुभक्त न समझना व जो पुरुष अशुभमति असत्कार्यों में सक्त अनारियों के सङ्ग निरन्तर लगा प्रतिदिन पापही करने के उपाय करता ऐसा पुरुषों में पशुपुरुष वासुदेवका भक्त नहीं है और जो पुरुष ऐसा विचारताहो कि यह सब संसार व हमभी वासुदेवरूप हैं वह परमपुरुष वासुदेव सर्वत्र व सबमें व्याप्त है इस भांतिकी निर्मलमति जिनकी हो उनको दूरसे बचय जाना और जो ऐसा कहा करते हों कि ॥

चौ० कमलनयन अच्युत महिधारी। वासुदेव विष्णू भयहारी॥
शंख चक्र कर शरण तुम्हारी। जो इमि भाषत सदा पुकारी॥ १॥
पापरहित तिनको जनि लायहु। तिन देखत भग दूर परायहु॥
जासु पुरुषवर के हिय माहीं। बसत सदा हरिहरि निजचाहीं॥ २॥
तिन्हें विलोकन की तुम काहीं। और हमहुँ की आशा नाहीं॥
चारों चक्र पराक्रम पाई। तिन हिंग हरिपुर आव न भाई॥ ३॥

कालिङ्ग कहते भीष्मपितामह से बोले कि इसभांति जाने दूतोंके सिखानेके लिये यमराजजी कहतेथे हमने भाव से कहा भीष्मपितामह बहुत से बोले दे

नकुल! ये समाचार कलिंगदेशसे आय कालिंगब्राह्मण ने हमसे कहेथे सो तुम को सुनाया। इससे जानना चाहिये कि इस संसार में श्रीविष्णु को छोड़ और कोई रक्षा करनेवाला नहीं जिस पुरुषका चित्त श्रीहरिके शरण में पहुँचा उस को यमदूत यमदण्ड यमपाश यमराज व यमयातना कोई भी कुछनहीं करसके पराशरजी बोले हे मैत्रेय! यमराज ने जो अपनी गति दूतों को बताई तुमसे कही। अब और क्या सुना चाहते हो॥

आठवां अध्याय॥

दो० कहब अष्टमाध्याय महँ निज धर्मन अनुसार॥
हरि आराधन विधि सगर और्वकथन आचार॥ १॥

श्रीमैत्रेयजी बोले हे भगवन्! भगवान् विष्णु जिस भांति संसार वासना जीतने की इच्छा कियेहुये लोगों से आराधना करने के योग्यहों कहिये व विष्णुकी आराधना करने से जो फलभीहो सो भी कहिये पराशरमुनि बोले हे मैत्रेय! जो आपने हमसे पूछाहै यही सगर राजाने और्वमुनि से पूछाथा जैसे जैसे उन्होंने उनसे कहा उसी रीतिपर कहते हैं सुनो। और्वजी सगरसे बोले कि विष्णुकी आराधना करने से प्राणी पृथिवी स्वर्गादि के सुख व मोक्ष सब कुछ पाताहै कहांतक गनावें जो२ न जितना फल विष्णु के आराधन से होता व जितना वह चाहताहै सब फल पाताहै हे भूपाल! जो तुम हरिका आराधन पूछते हो सब तुमसे कहते हैं सुनो वर्णाश्रम के आचारवालों को उचित चाहिये कि हरिकी आराधना करें क्योंकि ईश्वर के प्रसन्न करने का और मार्ग नहीं जिस से हरि सर्वभूतमय हैं तिससे चाहे जिसकी पूजाकरे वह हरिहीकी होती चाहे जिसको जपे व चाहे जिससे माँगे सब भला बुरा जो करे हरिहीके मुख होता है तिस से अपने वर्णाश्रम के अनुसार सदाचारियों को चाहिये कि श्रीहरि कीही आराधना करें ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य व शूद्र सब अपने २ धर्ममें तत्पर हो विष्णुही को आराधते हैं जो लोग पराई अपवाद पराई चुगुली झुठाई नहीं करते व और को कष्ट नहीं देतेहैं उनसे केशव भगवान् प्रसन्नरहते जो पराईस्त्री पराई द्रव्य परहिंसामें मन नहीं लगाता उससे भी विष्णु सन्तुष्ट रहते व जो प्राणियों को न मारता न मारने में सम्मति देता उससे भी बहुत सन्तुष्ट हरि रहते व जो देवता

ब्राह्मण गुरुकी सेवा करता व जो अपने व अपने पुत्रके समान सब संसार पर कृपा करता व जिसका मन रागादि दोषोंसे सन्तुष्ट नहींहोता व शुद्धचित्त रहता इन सबसे विष्णु सन्तुष्ट रहते हैं सो विष्णुके सन्तुष्ट होनेके लिये जिस २ वर्णाश्रमके लिये शास्त्र में जो २ धर्म कहे हैं वही हैं उनके प्रतिकूल करने से हरि कभी प्रसन्न नहीं होसक्के यह सुन राजासगर बोले हे द्विजश्रेष्ठ ! हम वर्ण व आश्रम सबके धर्म सुना चाहते हैं आप कृपाकर कहिये और्वजी बोले अच्छा ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य व शूद्र चारोंवर्णोंके धर्म बताते हैं सुनिये दानदेना देवताओंकी पूजा करना वेदपढ़ना अग्निहोत्र करना सन्ध्या तर्पणादि करना ब्राह्मण की यह नित्य वृत्तिहै यदि इतने में निर्वाहहो तो बहुत अच्छा नहीं तो जीविकाके अर्थ औरोंको यज्ञ करावे शास्त्रपढ़ावे व दानलेवे पर असत्दान न लेवे व सब प्राणियों का हितकरे अहित किसीका न करे सब से प्रीति राखे ब्राह्मण का यही उत्तमधन है पत्थर व रत्न में समदृष्टि रहे ऋतुकाल में स्त्रीको प्राप्तहो ब्राह्मण के धर्म कहे क्षत्रियों के सुनिये इच्छापूर्वक ब्राह्मणों को दानदेवे यज्ञकरे व वेदशास्त्र पढ़े शस्त्रास्त्र बांधकर जीविका करे पृथिवी व प्रजाकी रक्षाकरे इन कृत्योंमें मुख्य महीकी पालनाहै क्योंकि उसके पालन से दान यज्ञादि सबहोंगे जो राजा दुष्टोंको भयदेता व सज्जनोंका परिपालन करता है वह वाञ्छितलोक पाताहै वैश्यों को ब्रह्माजी ने पशुओं का पालन वाणिज्य व खेती करना यही जीविकादी है और वेद पढ़ना यज्ञकरना दान देना येभी कर्म वैश्योंके हैं इस से पर्वोंमें दान यज्ञादिभी कियाकरें शूद्रलोग ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्योंकी सेवाकिया करें उसमे जो धनपावें व कुछ मोललेव सेरा किडिहिर चटाई छान छप्परआदि बना २ कर बेंच उनसे जो धन मिले वही उनकी जीविका है यदि खाने पीने से बचे तो शूद्रभी दानदेसक्काहै श्राद्धभी उसी द्रव्यसे करें और सेवकोंके पालन पोषणके लिये सब वर्णोंको कुछ २ धनका संग्रह चाहिये व सबको ऋतुकालमें अपनी स्त्रीकेसाथ भोगभी करना चाहिये किन्तु सब प्राणियों पर दया करना सहना मानहीन होना सत्य बोलना शौचतासे रहना बहुत यत्न न करना प्रसन्नचित्त रहना प्रियबोलना सबसे मैत्री करना अलोभी होना ईर्ष्यता न करना किसीकी निन्दा न करना सामान्यरीति से ये चारों वर्णों के धर्म हैं सामान्यतः ये धर्म सब आश्रमोंकेभी हैं अब ब्राह्मणादिकों के आपत्काल के धर्म सुनो

आपत्काल में ब्राह्मण क्षत्रियका धर्म व क्षत्रिय वैश्य का करें पर क्षत्रिय वैश्य दोनों न शूद्र के कर्मको न ब्राह्मण के पर नीकेपने में आपना २ कर्म किसी को छोड़ना न चाहिये नहीं तो कर्मोंका मेलहोजाना है हे राजन्! ये वर्णोंके धर्म आपसे कहे अब आश्रमों के कहने हैं सुनिये ॥

नवां अध्याय ॥

दो॰ , कहत नवम अध्यायमहँ, आश्रम, धर्म पुनीत॥
श्रवणकरत पातक मिटत सज्जन सुनहु विनीत ॥ १ ॥

और्वजी राजासगरसे बोले हे महीपाल ! जब ब्राह्मणका यज्ञोपवीत होजावे तो वेद पढ़ने के लिये ब्रह्मचारीहो गुरुके घरमें जा बसे वहां शौचाचारसहित गुरुकी सेवा व व्रतकरताहुआ वेदपढ़े दोनों सन्ध्याओं में रवि व अग्निका उप-स्थानकरे व गुरुके प्रणाम जब गुरु बैठाहो आप भी बैठे जब कहींचले तो सग जावे पर गुरुके घरमें जबतक रहे नीच वृत्तिसे रहे कभी गुरु के प्रतिकूल कुछ कार्य्य न करे जब आज्ञाहो तभी वेदपढ़े जबतक सामने बैठारहै अलग चित्त न लगावे जब आज्ञाहो तभी भिक्षादि लेकर वा आपने पासहो तो सोई भोजनकरे प्रथम जिस नदी तड़ागादि में गुरु स्नानकरलेवे पीछे आपभी नहाय व प्रातः काल उठके गुरुके लिये इन्धन जलादि आन दियाकरे जितना प्रयोजन हो वेद पढ़ गुरुकी आज्ञाले गुरुदक्षिणा दे गृहस्थाश्रम में आवे वेदविधि से विवाह करे व कर्मानुसार धनको प्राप्तहो यथाशक्ति गृहस्थी के सबकाम करे पिण्डादि दानसे पितरोंकी पूजाकरे यज्ञोंसे देवोंकी अन्नसे अतिथि व मुनियोंकी वेदपढ़ने से व पुत्र उत्पन्न करने से सब ब्रह्मादि प्रजापतियोंकी बलिविश्वदेवादिकों से पृथ्वी जलाग्नि वाताकाशादिकों की पूजा करता है सत्यबोलना से भिक्षाओं की इस भांति जो पुरुष कर्म करता वह उत्तम लोकको पाता जाहै से भिक्षाके भक्षण करनेवाले संन्यासी ब्रह्मचारीआदि भी इस गृहस्थाश्रमकी आशारखते हैं इससे सब आश्रमों से यह श्रेष्ठ है क्योंकि माटी लेनके लिये तीर्थ स्नान करने व पृथ्वी दर्शन करने के लिये विना घरद्वार व विना आहारके ब्राह्मण जोग भ्रमतेश्सन्ध्याको गृहस्थके द्वारपै आते हैं उनको आनेपर गृहस्थोंको चाहिये कि शोगसे बैठावें उठावें मधुरवचन बोलें व शयन भोजनादि की सामग्री द टा करें

क्योंकि जिस गृहस्थके द्वारपरसे अभ्यागत निराशहो लौटजाताहै अपना पाप उसको देजाता व उसकी पुण्य आप लेजाता है गृहस्थ को चाहिये कि किसी का अनादर अहंकार पाखण्ड परिताप उपघात निष्ठुरता न करे जो गृहस्थ इस भांति गृहस्थाश्रम के धर्मों पर चलता वह सब बन्धनोंसे छूट उत्तमलोक पाता है जब वृद्धावस्था आवे व बीचहीमें जब गृहमें जो २ कारणीप होताहै उससे छुट्टी पाय स्त्री पुत्रको सौंप व संगही लिये वनको चलाजावे वहां पात जड़ फल भोजनकरे बार न बनवावे भूमिमें शयनकरे सबका अतिथि बनजावे बेप्रयोजन न बोले मृगचर्म काश व कुश पहिरे ओढ़े तीनोंकाल स्नानकरे देवताओं की पूजा होम अतिथि पूजन भिक्षान्नभोजन ये भी अवश्य करे वनके पालीआदि वृक्षोंके तेलभी जब इच्छा चाहै लगावे तपस्या करने में जो जाड़ा गर्मी वर्षा आदि सहने परने हैं सहै जो कोई मुनि इस वानप्रस्थाश्रम को करता है वह अग्निसमान तेजस्वीहो सब दोषोंको भस्मकर नाशरहित लोकों को जाता है अब चौथा सन्यासाश्रम कहते हैं चित्तलगाय सुनिये पुत्र स्त्री द्रव्यादिकों का स्नेह छोड़ चौथे आश्रम को जाना चाहिये उसमें पाखण्डादि भी न करना चाहिये अर्थ धर्म कर्म के लिये कुछ भी न करे सब जन्तुओं में मित्रवत् वर्तावराखे पशु पक्षी जो वनमें रहते मनसा वाचा कर्मणा सबका हितकरे अहित कभी न होनेपावे जब कभी ग्रामको जाय तो १ रात्रिसे अधिक न बसे नगरमें ५ रात्रि इसमें भी इस रीतिसे रहै जिसमें ग्राम व ग्रामीणों से न बहुत प्रीतिही होजावे न वैरही जब बनाय अग्नि बुतायजावे तो भोजन करनेजावे भोजन भी ब्राह्मण क्षत्रिय व वैश्य तीनही वर्णों के घरका करे शूद्रान्न कभी नहीं अपने शरीर की यात्राही को अग्निहोत्र समझे शरीरही को अग्नि अपने मुख में भिक्षान्न डालनेही को खीर भक्षण समझे बस अग्नीष्टलोक पावे और जो मोक्षकी इच्छा करताहो तो पवित्र बुद्धिहो अपनेहीमें अग्नि उत्पन्नकर वर्णोंमें प्रशान्तचित्तहो परब्रह्म को प्राप्त होजावे ॥

दशवां अध्याय ॥

दो॰ कहब दशम अध्यायमहँ नित्यनैमित्तिक कर्म ॥
आर्यो षोडश संस्करण विनान द्विज के धर्म ॥ १ ॥

इतनी कथा सुन राजासगर बोले हे विप्रश्रेष्ठ ! आपने चार आश्रम व चार वर्ण व इनके धर्म कहे अब हम पुरुषों की नित्यनैमित्तिक व काम्यक्रिया सुना चाहते हैं दयाकर कहिये और्वजी बोले हे राजन् ! पुरुषों की नित्यनैमित्तिका· दिक्रिया जो आपने पूछी कहते हैं सुनिये पिता को चाहिये जैसे पुत्रहो उस के जातकर्म्मादि कर अभ्युदयिक श्राद्धकरे प्रथम तो दो ब्राह्मणों को पूर्वमुख बैठाय भोजन करावे फिर शास्त्र व कुलानुसार देवता पितरआदि के कर्मकरे यथा दधियवका पिसान बेरके फल वा पाता जैसा सम्भवहो लाय पिण्डबनाय नान्दीमुख श्राद्धके अनुसार यह देवकर्म करे वा सब कर्म कनिष्ठा अंगुली मूलमें करे क्योंकि हाथमें यह प्रजापति तीर्थ कहाता है केवल जन्महीमें नहीं कन्या पुत्रके विवाह व पुत्रके यज्ञोपवीत में भी अवश्यही अभ्युदयिक श्राद्ध करना चाहिये तदनन्तर दशदिन बीतजानेके पीछे जब शुद्धस्नानादि होजावैं तो नामकरण करे उसमें प्रथम सबके नाममें देवताका नाम होना चाहिये पीछे ब्राह्मणादि वर्णोंके क्रमसे शर्मा वर्मा गुप्त व दास लगाना चाहिये यथा सोमदत्त शर्मा ब्राह्मण इन्द्रदत्तवर्म्मा क्षत्रिय चन्द्रदत्तगुप्त वैश्य शिवदास शूद्र न ऐसा नाम धरावे जिसका संस्कृतविद्या के अनुसार कोई अर्थ न हो न ऐसा जिससे देशभाषा में कुछ हँसीहो न ऐसा जिसमें गुदवार इत्यादि गदेशशब्द परे न अमंगलरूप न निन्दित और दो चार छःआदि सम अक्षरों का नामहो १, ३, ५ आदि विषमाक्षर न परनेपावें न बहुत बड़ा न बहुत छोटाहो न बहुत दीर्घ अक्षरका हो जहांतकहो ह्रस्वाक्षर बहुतहों जिसमें सुखपूर्वक पुकारते बने इस भांति अन्नप्राशन चूड़ाकरण यज्ञोपवीतादि संस्कार होजानेपर गुरुके घरजाय विद्यापढ़े विद्यापढ़ गुरुकी आज्ञाले गुरुदक्षिणा दे यदि गृहस्थाश्रम की इच्छा हो तो विवाहकरे यदि गृहस्थाश्रममें प्रीति न हो तो ब्रह्मचर्य्यही धारणकिये रहे सदा गुरुकी व गुरुपुत्र की सेवा कियाकरे व ब्रह्मचर्य्य के पीछे वनको जाय वानप्रस्थाश्रम में चलाजावे व सन्यासाश्रमको प्राप्तहोजावे व पहिले जिस आ· श्रमकी इच्छाकरे जन्मपर्य्यन्त उसीमें रहे आश्रम से आश्रम में जानेकी कुछ बड़ी आवश्यकता नहीं विवाह करने में स्त्री सदा पति से कमवर्षों की हो फिर न उसके बहुत बारहों न बिलकुल बार हीनही हो न बहुत काली न बहुतगोरी न लूली न लंगड़ी हो अंगहीन न अधिकांगी न अशुद्धा न जन्मरोगिणी न म

कुलीन न कुलमें उत्पन्न न अतिरोगिणी न कुराचारिणी न दुष्ट वचनवाली न जिसके माता पिता कोढ़ीहों न दाढ़ी मोछवाली न पुरुषाकृति न कड़े बोलवाली न अतिधीरे बोलनेवाली न जिसकी आखें सोनेमेंभी अच्छी भाति न मूदती हों न गोली आखों की न जाघमें रोमवाली न घुटनू ऊंचेवाली न हँसने के समय जिसके गालों में लाली होजाताहो न अतिरूखी छविवाली न पीले नःहवाली न मोटे हाथ पैरवाली न बहुतही छोटेडील की न बहुत लम्बायमान न भौंह मिलीहुई न विरलदन्तवाली न करालमुखी ऐसी स्त्रियों के सग न विवाह करे और मातृपक्ष में नाना से पाचपुस्ति ऊंचेवाले वश्योंकी कन्याके साथ न करे इसीभाति पिताके सातपुस्ति ऊंचेवालों की सन्तान को भी छोड़ अन्यों के सग पूर्व्वदोषरहित कन्या के सग विवाह करे विवाह ब्राह्म १ दैव २ आर्ष ३ प्राजापत्य ४ आसुर ५ गांधर्व्व ६ राक्षस ७ व पैशाच ८ प्रकार के होतेहैं १ ब्राह्म वह विवाह जिसमें यथाशक्ति भूषण वस्त्र पहिनाय वरको बुलाय कन्यादी जावै २ दैव वह जिसमें यज्ञकराय ऋत्विज को कन्यादीजावे ३ आर्ष वह जिस में कन्या का पिता दो बैल वरसे लेकर कन्यादे ४ प्राजापत्य वह जो वर कन्या राज़ी होकर आपस में करलेवें ५ आसुर वह जो कन्या पिता बहुत धनपर बेंन्डालें ६ गान्धर्व्व वह जिसमें कुछ कौल करार दूनोंओर से होजावे ७ राक्षस वह जिसमें युद्धहोकर विवाहहो ८ पैशाच वह जिसमें कन्याको छलसे भगाय कहीं करलेवे इसमें पैशाच विवाह महाअधम है पहिले के चार ब्राह्मणों के योग्य व गान्धर्व्व राक्षस क्षत्रिय वैश्य के योग्य आसुर शूद्रके पैशाच महापापिष्ट विवाह किसी वर्ण के योग्य नहीं जो अच्छेप्रकार अच्छेकुल की दोषरहित स्त्री विवाहितहो उससे धर्म्मार्त्थ काम तीनों वर्ग सिद्ध होते हैं॥

ग्यारहवां अध्याय॥

दो० ग्यारहयें अध्याय महँ गर्भाधान प्रधान॥
यहत सकल सस्कार पुनि सदाचार एरिध्यान॥१॥

यह सुन राजासगर बोले हे मुनिराज! अब हम गृहस्थ के सदाचार सुना चाहते हैं जिनके करने से गृहस्थ इसलोक व परलोक कहीं से न रुके और्व मुनि बोले हे पृथ्वीपाल! जिस सदाचार के करने से पुरुष इसलोक व परलोक

दोनोंको जीतता है कहते हैं सुनिये क्षीणदोष साधुलोगोंके आचरण को सदाचार कहते हैं क्योंकि सत्शब्दका साधुही अर्थ है इस सदाचारके वक्ता व कर्त्ता सप्तऋषि मनु प्रजापतिलोग हैं पुरुष को चाहिये कि दो घड़ी रात्रि रहे शयन से उठे स्वस्थमनहो धर्म व अर्थ की चिन्तना करे जिसमें इन दोनोंका नाश न हो इसलिये कामकी भी चिन्तना करै धर्म अर्थ काम इन तीनोंको समान समझे क्योंकि इनमें एक दूसरे की सहायता चाहताहै परन्तु ऐसे अर्थ कामको न करै जिससे धर्मकी पीड़ाहो क्योंकि धर्म करने मे बहुधा दुःखहोते पर करना अवश्य चाहिये चाहे अर्थ काम सिद्धहों वा न हों तिसके पीछे प्रात काल उठ जलपूरित पात्रले ग्रामकी नैर्ऋत्यदिशा में जहांतक तीर चलानेसे जासक्ता हो और दूर जहां शुद्ध व निर्जनस्थान हो दिशा फिरनेजाय आयके शौच करै कभी पायँधोने से बचा जल घरके भीतर न फेंके अपनी छायकी छाया व गाय सूर्य्य अग्नि पवन गुरु ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य इनके सामने कभी न दिशाजाय जोते व अन्न लगेहुये खेतमें न जाय व जहां गौवें बैठती हों जहां बहुत जन बैठेहों मार्ग नदी आदि तीर्थ जल जलके किनारे जहां मुर्दा फुंकेजाते हों इन स्थानोंमें दिशा पेशाब दोनों न करने चाहिये यदि कोई कठिनता न हो तो दिनको उत्तरमुख रात्रि को दक्षिणमुख दिशा पेशाब करने चाहिये शिरपै कुछ वस्त्रबांध यज्ञोपवीत दहिने कानपै चढ़ाय पृथ्वी पर कुश लपेटकर घर मलोत्सर्गको बड़ीदेरतक न उठा बैठारहे व न कुछ बकवक बोले और बम्बीकी माटी मूसकी खोदीहुई पानी के भीतर की किसीके हाथ गड़िग्राने से बचीहुई घरकी दीवार से खोदीहुई घरके लेपने से बचीहुई जिसमें कीट पतङ्गहों हलकी जोतीहुई इतनी मृत्तिका शौच करने को न लेनी चाहिये लिंग इन्द्रिय में एक बार मृत्तिका लगानी चाहिये गुदामें ५ बार बायें हाथमें १० बार दोनों हाथोंमें सात २ बार लगाय हाथ धोवै पैरोंमें तीन २ बार फिर अच्छे साफजलसे कुल्ला करै तीनबार जल से मार्जन भी करै जलपवित्र दातुन से मुख और स्नान नाकआदि धोवै जब अच्छी भांति शुद्धहोजावै तो बाल झाड़िकाड़ि करै व दर्पण में मुख देखे फिर अपने वर्णके अनुसार द्रव्यार्जनादि व नमाजादिकरनेको तैयारी करै धन अवश्य बनावै क्योंकि बेपैसा लिखना सब उपाय होमहैं निष्प्रयोजन विचारने के लिये नदी नद तड़ागादिमें या घरके भीतर ही स्नान करना

चाहिये अथवा कूपसे कलशादिकोंसे भरभराके स्नान करे स्नानके पीछे पवित्र वस्त्र पहिन देव पितृतर्पण कुश जल तिल से करै देवता ऋषियों को ब्रह्मर्षीस्तर्प्पयामि ब्रह्मर्षीस्तर्प्पयामि इत्यादि मन्त्रों से तीन २ बार तर्पण करै प्रजापतियोंको एक २ बार पितृपितामह प्रपितामह मातामह प्रमातामह वृद्धप्रमातामहादिकोंको भी तीनही तीनबार अञ्जलि देना चाहिये इसीभांति माता पितामही प्रपितामही गुरुपत्नी गुरु मामा मित्र राजाआदिकों को भी इतना तर्पण कर फिर देव असुर यक्ष गन्धर्व राक्षस पिशाच गुह्यक सिद्ध कूष्माण्ड वृक्ष पक्षी जलेचर भूमिचर वायुभक्षी इन सबको देवै व जो लोग सब नरकों की यातना भोगते हैं तिनके लिये भी जो अबन्धु वा बन्धुहों जो अन्य जन्मके बन्धुहों तिन सबको देवे यह काम्य तर्पण है इसके करने से जगत् तृप्तहोताहै इतना तर्पण कर सूर्यको जलाञ्जलि देवै फिर घरमें आय इष्टदेव की पूजाकरे उसमें जल से स्नान कराय फिर पुष्प धूप दीप नैवेद्यादि देवे तदनन्तर अग्निहोत्र करै उसमें पहिले ब्रह्माको फिर प्रजापतिको फिर गुह्यादिदेवोंको फिर कश्यप अनुमति को फिर मणियों को द्वारपै धाता व विधाता को बीचमें ब्रह्माको घरमें ये दिग्देव भी रहते इन्द्र धर्मराज वरुण चन्द्र इन को पूर्वादि दिशाओंमें आहुति देनीचाहिये पूर्व उत्तर के कोणमें धन्वन्तरि को इस अग्निहोत्र के पीछे वैश्वदेवकर्म करै उसमें वायव्य कोण में वायुको फिर प्राच्यैदिशे दक्षिणस्यैदिशे इत्यादि मन्त्रोंसे ब्रह्मा अंतरिक्ष भानु विश्वेदेव विश्वभूत भूतपति वरुणदेव तिसके पीछे थोड़ा अन्नले पृथिवी में सब प्राणियों के लिये छोड़े फिर यह पढ़े कि देवता मनुष्य पशु पक्षी सिद्ध यक्ष नाग दैत्य प्रेत पिशाच वृक्ष पिपीलिका कीट पतंग जिनके माता पिता बन्धु न हों न अन्नकी सिद्धिहो न अन्न मिलताहो ये सब हमारे अन्न से तृप्तहों और १४ प्रकार के जो भूतगण हैं तिनके अर्थभी हम यह अन्न देतेहैं वे तृप्तहों ये मन्त्र पढ़ गृहस्थ सब प्राणियों के लिये प्रतिदिन अन्न दियाकरे फिर कुत्ता कौवा आदि जन्तुओं के लिये कुछ भूमिमें छोड़ देवे इतनाकर गोदोहनमात्र अपने घरके ऑगना में खड़े होकर देखे कि कोई भूखा अतिथि तो नहीं है यदि आजावे तो उसे भोजन कराके नहीं तो ऐसेही भोजन करे कदाचित् अतिथि आजावे तो उसका आगतस्वागत कराके पूछे बैठावे पाद धोय देवे श्रद्धापूर्वक अन्न देवे प्रिय सम्भाषण करै जब चलनेलगे

दोनोंको जीतता है कहते हैं सुनिये क्षीणदोष साधुलोगोंके आचरणको सदाचार कहतेहैं क्योंकि सत्शब्दका साधुही अर्थ है इस सदाचारके वक्ता व कर्त्ता सप्तऋषि मनु प्रजापतिलोग हैं पुरुष को चाहिये कि दो घड़ी रात्रिरहे शयन से उठे स्वस्थमनहो धर्म्म व अर्थ की चिन्तना करे जिसमें इन दोनोंका नाश न हो इसलिये कामकी भी चिन्तनाकरे धर्म्म अर्थ काम इन तीनोंको समान समझे क्योंकि इनमें एक दूसरे की सहायता चाहताहै परन्तु ऐसे अर्थ कामको न करे जिससे धर्मकी पीड़ाहो क्योंकि धर्म्म करने मे बहुधा दुखहोते पर करना अवश्य चाहिये चाहे अर्थ काम सिद्धहों वा न हों तिसके पीछे प्रातःकाल उठ जलपूरित पात्रले ग्रामकी नैर्ऋत्यदिशा में जहांतक तीर चलानेसे जासक्ता वा और दूर जहां शुद्ध व निर्जनस्थान हो दिशा फिरनेजाय आयके शौच करे कभी पायँधोने से बचा जल घरके भीतर न फेंके अपनी वृक्षकी छाया व गाय सूर्य्य अग्नि पवन गुरु ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य इनके सामने कभी न दिशाजाय जोते व अन्न लगेहुये खेतमें न जाय व जहां गौवें बैठती हों जहां बहुत जंतु बैठेहों मार्ग नदी आदि तीर्थ जल जलके किनारे जहां मुर्दा फूंकेजाते हों इन स्थानोंमें दिशा पेशाब दोनों न करने चाहिये यदि कोई कठिनता न हो तो दिनको उत्तरमुख रात्रि को दक्षिणमुख दिशा पेशाब करने चाहिये शिरपै कुछ वस्त्रबांध यज्ञोपवीत दहिने कानपै चढ़ाय पृथ्वी पर कुछ खरपतवार धर मलोत्सर्गकरे बड़ीदेरतक न वहां बैठारहे व न कुछ तबतक बोले और बमगौली की माटी मूसकी खोदीहुई पानी के भीतर की किसीके हाथ मटियाने से बचीहुई घरकी दीवार से खोदीहुई घरके लेपने से बचीहुई जिसमें कीट पतरांहो हलकी जोतीहुई इतनी मृत्तिका शौच करने को न लेनी चाहिये लिंग इन्द्रिय में एक वार मृत्तिका लगानी चाहिये गुदामें ५ वार बायें हाथमें, १० वार दोनों हाथोंमें सात २ वार लगाय हाथ धोवै पैरोंमें तीन २ वार फिर अच्छे साफजलसे कुल्ला करे तीनबार जल से मार्ज्जन भी करे जलसहित हाथ से मूंह आंख कान नाकआदि छुवै जब अच्छी भांति शुद्धहोजावे तो बाल झारिझूरि डारे व दर्पण ले मुख देखे फिर अपने वर्णके अनुसार द्रव्यार्ज्जनकरे व यज्ञादिकरनेकी तैयारी करे धन अवश्य बटोरे क्योंकि देवयज्ञ पितृयज्ञ सब उसीसे होतेहैं नित्य क्रियाकरने के लिये नदी नद तड़ागादिमें वा पर्वत के झरना में स्नान करना

चाहिये अथवा कूपसे कलशादिकोंसे भरभरके स्नानकरै स्नानके पीछे पवित्र वस्त्र पहिन देव पितृतर्पण कुश जल तिल से करै देवता ऋषियों को सुरांस्तर्प्पयामि ऋषींस्तर्प्पयामि इत्यादि मन्त्रों से तीन २ वार तर्पण करै प्रजापतियोंको एक २ वार पितृपितामह प्रपितामह मातामह प्रमातामह वृद्धप्रमातामहादिकोंको भी तीनही तीनवार अंजलि देना चाहिये इसीभांति माता पितामही प्रपितामही गुरुपत्नी गुरु मामा मित्र राजाआदिकों को भी इतना तर्पण कर फिर देव असुर यक्ष गन्धर्व राक्षस पिशाच गुह्यक सिद्ध कूष्माण्ड वृक्ष पक्षी जलेचर भूमिचर वायुभक्षी इन सबको देवै व जो लोग सब नरकों की यातना भोगते हैं तिनके लिये भी जो अबन्धु वा बन्धुहों जो अन्य जन्मके बन्धुहों तिन सबको देवै यह काम्य तर्पण है इसके करने से जगत् तृप्तहोताहै इतना तर्पण कर सूर्यको जलाञ्जलि देवै फिर घरमें आय इष्टदेव की पूजाकरै उसमें जल से स्नान कराय फिर पुष्प धूप दीप नैवेद्यादि देवै तदनन्तर अग्निहोत्र करै उसमें पहिले ब्रह्माको फिर प्रजापतिको फिर गुह्यादिदेवोंको फिर कश्यप अनुमति को फिर मणियों को द्वारपै धाता व विधाता को बीचमें ब्रह्माको घरमें ये दिग्देव भी रहते इन्द्र धर्मराज वरुण चन्द्र इनको पूर्वादि दिशाओंमें आहुति देनीचाहिये पूर्व उत्तर के कोणमें धन्वन्तरि को इस अग्निहोत्र के पीछे वैश्वदेवकर्म करै उसमें वायव्य कोण में वायुको फिर प्राच्यैदिशे दक्षिणस्यैदिशे इत्यादि मन्त्रोंमें ब्रह्मा अंतरिक्ष भानु विश्वेदेव विश्वभूत भूतपति वरुणदेव तिसके पीछे थोड़ा अन्नले पृथिवी में सब प्राणियों के लिये छोड़ै फिर यह पढ़े कि देवता मनुष्य पशु पक्षी सिद्ध यक्ष नाग दैत्य प्रेत पिशाच वृक्ष पिपीलिका कीट पतङ्ग जिनके माता पिता बन्धु न हों न अन्नकी सिद्धिहो न अन्न मिलताहो ये सब हमारे अन्न से तृप्तहों और १४ प्रकार के जो भूतगण हैं तिनके अर्थभी हम यह अन्न देतेहैं वे तृप्तहों ये मन्त्र पढ़ गृहस्थ सब प्राणियों के लिये प्रतिदिन अन्न दियाकरै फिर कुत्ता कौवा आदि जन्तुओं के लिये कुछ भूमिमें छोड़ देवै इतनाकर गोदोहनमात्र अपने घरके आँगना में खड़े होकर देखै कि कोई भूखा अतिथि तो नहीं है यदि आजावे तो उसे भोजन करावै नहीं तो आपही भोजन करै कदाचित् अतिथि आजावे तो उसका स्वागतस्वागत करै पूछै बैठावै पाद धोय देवै श्रद्धापूर्वक अन्न देवै फिर सम्भाषण करै जब चलनेलगै

दोनोंको जीतता है कहते हैं सुनिये क्षीणदोष साधुलोगोंके आचरण को सदाचार कहतेहैं क्योंकि सत्शब्दका साधुही अर्थ है इस सदाचारके वक्ता व कर्त्ता सप्तऋषि मनु प्रजापतिलोग हैं पुरुष को चाहिये कि दो घड़ी रात्रिरहे शयन से उठे स्वस्थमनहो धर्म्म व अर्थ की चिन्तना करे जिसमें इन दोनोंका नाश न हो इसलिये कामकी भी चिन्तनाकरे धर्म्म अर्थ काम इन तीनोंको समान समझे क्योंकि इनमें एक दूसरे की सहायता चाहताहै परन्तु ऐसे अर्थ कामको न करे जिससे धर्मकी पीड़ाहो क्योंकि धर्म्म करने से बहुभाई सहोते पर करना अवश्य चाहिये चाहे अर्थ काम सिद्धहों वा न हों तिसके पीछे प्रात काल उठ जलपूरित पात्रले ग्रामकी नैर्ऋत्यदिशा में जहातक तीर चलानेसे जासक्ता वा और दूर जहा शुद्ध व निर्ज्जनस्थान हो दिशा फिरनेजाय आयके शौच करे कभी पायँधोने से बचा जल घरके भीतर न फेंके अपनी वृक्षकी छाया व गाय सूर्य्य अग्नि पवन गुरु ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य इनके सामने कभी न दिशाजाय जोते व अन्न लगेहुये खेतमें न जाय व जहा गौवें बैठती हों जहा बहुत जन बैठेहों मार्ग नदी आदि तीर्त्थ जल जलके किनारे जहा मुर्दा फूंकेजाते हों इन स्थानोंमें दिशा पेशाब दोनों न करने चाहिये यदि कोई कठिनता न हो तो दिनको उत्तरमुख रात्रि को दक्षिणमुख दिशा पेशाब करने चाहिये शिरपै कुछ वस्त्रबांध यज्ञोपवीत दहिने कानपै चढ़ाय पृथ्वी पर कुश रखपतवार धर मलोत्सर्गकरे बड़ीदेरतक न वहा बैठारहे व न कुछ तबतक बोले और बमोरी की माटी मूसकी खोदीहुई पानी के भीतर की किसीके हाथ मटियाने से बचीहुई घरकी दीवार से खोदीहुई घरके लेपने से बचीहुई जिसमें कीट पतंगहों हलकी जोतीहुई इतनी मृत्तिका शौच करने को न लेनी चाहिये लिंग इन्द्रिय में एक वार मृत्तिका लगानी चाहिये गुदामें ५ वार बायें हाथमें १० वार दोनों हाथोंमें सात २ बार लगाय हाथ धोवे पैरोंमें तीन २ बार फिर अच्छे साफजलसे कुल्ला करे तीनवार जल से मार्ज्जन भी करे जलसहित हाथ से मूंड आंख कान नाकआदि छुवै जब अच्छी भांति शुद्धहोजावे तो बाल झारिझोरि डारे व दर्पण ले मुख देखे फिर अपने वर्णके अनुसार द्रव्यार्ज्जन करे व यज्ञादिकरनेकी तैयारी करे धन अवश्य बटोरै क्योंकि देवयज्ञ पितृयज्ञ सब उसीसे होतेहैं नित्य क्रियाकरने के लिये नदी नद तड़ागादिमें वा पर्वत के झरना में स्नान करना

शुद्ध पात्रमें आप कोपरहित व प्रसन्नचित्त हो भोजन करै और बिना किसी ऊंचे स्थानपर धरे न खराब दुर्गन्ध्यादि युक्त स्थानमें न सन्ध्यादि काल में न अतिसंकीर्ण स्थानमें न बिना अग्राशन व अग्निमें डारे न बिना मन्त्रोंसे पवित्र कियेहुये न बासी न बिना जलके धोये न भोजनकरे पर मिठाई पूरी भात रोटी आदि धोने की आवश्यकता नहीं धोना केवल शाकादिकों केही लिये है व किसी वस्तुका सकला न खावे मिठाई दही घृत पूरी भोजन करने में इन को तो न छोड़ना चाहिये अन्य जितने पदार्थ हैं कुछ छोड़देने चाहिये पहिले सब भोजनों में जो मीठीवस्तु हो खाय फिर सलोनी खट्टी फिर कटु व तीत आदि जो पुरुष प्रथम घृत तैलादि द्रव पदार्थ खाता मध्य में कठिन पदार्थ अन्तमें फिर द्रवपदार्थ उस का बल व आरोग्यता कहीं नहीं जाती इस भांति अनिन्द्य अन्न भोजन करना चाहिये जिससे कि भोजनकी निन्दा न करनी चाहिये इसलिये मौन रहकर भोजन करना चाहिये बहुत नहीं तो ५ कवल तक तो अवश्यही मौन चाहिये ऐसे भोजन कर पूर्व व उत्तरमुख बैठके आचमन मुख धोवनादि करै कईबार खूब कुल्ला करै टिहुनीतक हाथ धोवे तिसके पीछे स्वस्थचित्त हो अच्छे आसन पै बैठ इष्ट देवता का स्मरण करै व यह कि पवन की प्रेरणा से अग्नि मेरे भक्षित अन्न पचावै व धातुओं को बढ़ावै व सब सुख देवै यह मेरा खाया हुआ अन्न पृथ्वी जल पवनादिकों के बलके निमित्तहो व मुझको इससे सुखहो सब प्राण अपान समान उदान व्यान इन पवनोंको मेरा अन्न पुष्टिकरहो व मुझको भी सुख देवै अगस्ति व बड़वानल अग्नि हमारे खाये हुये अन्नको पचावैं व हमको सुख देवैं कि जिसमें शरीर आरोग्य रहे जिस भांति विष्णु इन्द्रिय व जीवोंके स्वामी हैं व सबकी रक्षा करते इसी भांति उनकी दयासे अन्न हमारी रक्षा व पुष्टता करै जिस सत्यता से विष्णुही इस अन्नके भोक्ता हैं तिसी सत्यता से हमारा खाया हुआ अन्न पचै इन मन्त्रों को पढ़ हाथ से पेट सुहरावै फिर जो कुछ करनाहो करनेलगै व सच्छास्त्रों के देखने सुनने पढ़ने पढ़ाने में दिन बितावै सन्ध्यासमय सन्ध्योपासन करै दिनान्तवाली सन्ध्या जब कुछ सूर्य्य रहजावें तब करनी चाहिये प्रात कालवाली कुछ २ नक्षत्र रहने पर सन्ध्या सब मास व सबदिन सब तिथियों में करनी चाहिये केवल सूतक जबकि वंशमें किसीके लड़का लड़की हो व अशौच में जबकि कोई मा;

थोड़ीदूर पहुँचावे यह गृहस्थ का कर्म्म है अतिथि उसका नाम है जिसका नाम व कुल न जानते हों अकस्मात् कहीं से आगयाहो एक ग्रामवासी व चीन्हा परिचई को अतिथि नहीं कहते ऐसे दरिद्र व विना पहिँचाने हुये अन्य देशसे आयेहुये अतिथि को विना भोजन कराये जो भोजन करता है वह नरकगामी होता गृहस्थ अतिथिका नाम वेद गोत्र कुल कुछ न पूँछे उसको ब्रह्माकी मूर्त्ति समझ पूजन भोजनादि देवै पितरों के अर्थ एक ब्राह्मण को और भोजन दे परइस ब्राह्मण के आचार कर्म्म धर्म्म उत्पत्ति कुल सब जानताहो व वह पञ्चयज्ञ भी करता हो उसेही भोजन करावे भोजन के समय पहिले ४ कौर त्रिकाल डालै फिर १६ कौर ब्राह्मण को देवै सन्यासी व ब्रह्मचारी को भी तीन २ कौर देवैं यदि होसके तो इन सबको भोजन भरको देवै नहीं तो जितना २ कहा है अवश्य देवै इन चारों ब्राह्मणादिकों की पूजा जो करता मनुष्य यज्ञके ऋणसे छूटजाता है जो अतिथि विना भोजनादि पायें गृहस्थके घरसे चलाजाता है वह अपने पाप उसे देजाता व उसकी पुण्य लेजाता है ब्रह्मा प्रजापति इन्द्र अग्नि वसु सूर्य ये सब अतिथि के भीतर प्रवेश करके भोजन करते हैं जिस से अतिथि के भोजन कराने में अवश्य यत्न करना चाहिये क्योंकि जो विना अतिथि भोजन करता वह केवल पापही पाप खाता है अतिथिके पीछे जिस कन्या का विवाह होगयाहो व अपने पिता के घरमें हो उस सुवासिनी को भोजन करावै तदनु दुःखी गर्भिणी वृद्ध बालक इनको फिर आप भोजन करै इन के विना भोजन कराये जो खाता यह तो पापही खाता मरणान्त में नरकको जाताहै जो विना स्नानकिये भोजन करता वह मानो विष्ठा खाता जो विना गायत्र्यादि मन्त्रों के जपने पर खाना वह पीब व रुधिर विना संस्कार किया अन्न खाता सो मूत्र जो बाल वृद्धादिकों के प्रथम खाता वहभी विष्ठाही खाता इस से हे राजन् ! सुनिये जिस भांति गृहस्थ को भोजन करना चाहिये व जिस भांति भोजन करने से स्वर्ग्ग होताहै स्नानकर यथावत् सन्ध्यावन्दन बलि-वैश्व अग्निहोत्रातिथ्यादि को भोजन कराय सुवर्णादि हाथ में पहिने धोती पहिन अंगोछा लिये पैर व हाथ तुरन्तही धोय उत्तर व पूर्वमुख बैठ भोजनकरै अन्य दिशोंमें न करै अन्न महुत अच्छा पथ्य खूबसाफ शुद्धतापूर्वक बनायाहुआ दुर्गन्धिरहित परिपक्व होना चाहिये जिन २ को उचित है प्रथम देकर अच्छे व

शुद्ध पात्रमें आप कोपरहित व प्रसन्नचित्त है भोजन करे और विना किसी ऊंचे स्थानपर धरे न खराब दुर्गन्ध्यादि युक्त स्थानमें न सन्ध्यादि काल में न अतिसंकीर्ण स्थानमें न विना अग्राशन व अग्निमें डारे न विना मन्त्रोंसे पवित्र कियेहुये न बासी न विना जलके धोये न भोजनकरे पर मिठाई पूरी भात रोटी आदि धोने की आवश्यकता नहीं धोना केवल शाकादिकों केही लिये है व किसी वस्तुका चकला न खावे मिठाई दही घृत पुरी भोजन करने में इन को तो न छोड़ना चाहिये अन्य जितने पदार्थ हैं कुछ छोड़देने चाहिये पहिले सब भोजनों में जो मीठीवस्तु हो खाय फिर सलोनी खट्टी फिर करू व तीत आदि जो पुरुष प्रथम घृत तैलादि द्रव पदार्थ खाता मध्य में कठिन पदार्थ अन्तमें फिर द्रवपदार्थ उस का बल व आरोग्यता कहीं नहीं जाती इस भांति अनिन्द्य अन्न भोजन करना चाहिये जिससे कि भोजनकी निन्दा न करनी चाहिये इसलिये मौन रहकर भोजन करना चाहिये बहुत नहीं तो ५ कवल तक तो अवश्यही मौन चाहिये ऐसे भोजन कर पूर्व व उत्तरमुख बैठके आचमन मुख धोवनादि करे कईबार खूब कुल्लाकरे टिहुनीतक हाथ धोवे तिसके पीछे स्वस्थचित्त हो अच्छे आसन पै बैठ इष्ट देवता का स्मरण करे व यह कि पवन की प्रेरणा से अग्नि मेरे भक्षित अन्न पचावे व धातुओं को बढ़ावे व सब सुख देवे यह मेरा खाया हुआ अन्न पृथ्वी जल पवनादिकों के बलके निमित्तहो व मुझको इससे सुखहो सब प्राण अपान समान उदान व्यान इन पवनोंको मेरा अन्न पुष्टिकरहो व मुझको भी सुख देवे अगस्ति व बड़वानल अग्नि हमारे खाये हुये अन्नको पचावे व हमको सुख देवें कि जिसमें शरीर आरोग्य रहे जिस भांति विष्णु इन्द्रिय व जीवाके स्वामी हैं व सबकी रक्षाकरते इसी भांति उनकी दयासे अन्न हमारी रक्षा व पुष्टता करे जिस सत्यता से विष्णुही इस अन्नके भोक्ताहैं तिसी सत्यता से हमारा खाया हुआ अन्न पचे इन मन्त्रों को पढ़ हाथ से पेट सुहरावे फिर जो कुछ करनाहो करनेलगे व सच्छास्त्रों के देखने सुनने पढ़ने पढ़ाने से दिन बितावे सन्ध्यासमय सन्ध्योपासन करे दिनान्तवाली सन्ध्या जब कुछ सूर्य रहजावें तब करनी चाहिये प्रात कालवाली कुछ २ नक्षत्र रहने पर सन्ध्या सब मास व सबदिन सब तिथियों में करनी चाहिये केवल सूतक जबकि वंशमें किसीके लड़का लड़की हो व अशौच में जबकि कोई मा;

रमीयें मेरे प्र॰ जब चित्तविभ्रमहो व बीमारी या किसीका बड़ाभय हो इन समयों में न करनी चाहिये बीमारादिकों को छोड़ जो कोई दोनों सन्ध्याओं में सोता है सन्ध्योपासन नहीं करता वह पापी होता बिना प्रायश्चित्त किये हुये छुट्टी नहीं पाता तिससे प्रतिदिन सूर्य्योदय के प्रथम उठ सन्ध्योपासन करे दिनान्त की सन्ध्याभी कुछ दिन रहतेही रहने करडाले क्योंकि जो भिनसारे व साझकी सन्ध्या नहीं करता वह तामिस्र नरकको जाता है सायं सन्ध्योपासन के पीछे वैश्वदेव के निमित्त कुछ अन्न ले विना मन्त्रही पढ़े स्त्री बलि दे देवे वा पुरुष ही स्त्रीको सगलेकर दे देवे व अन्य श्वपच चाडालादि व अतिथि आवे व शक्तिहो तो सबको भोजन करावे अतिथि को आने पर पांव धोने को जल बैठने को आसन प्रणाम कर स्वागत पूछना अन्न देना पीछे शयनदेना यही अतिथि की पूजाहै दिनको अतिथि लौट जाने से जो पाप होता है रात्रि के लौटने से उसका अठगुना पाप होता तिससे सूर्य्यास्त होने के पीछे अतिथि की पूजा अवश्य करनी चाहिये तिसकी पूजाहुई मानों सब देवोंकी होचुकी अन्न शाक जल बिछौना आदि जो होसके उससे पूजा करे तिसके पीछे हाथ पैर मुँहधोय भोजन करे चाहे काठकी की खटिया आदिहो पर टूटी न हो तिसपर शयन करे टूटी फाटी ऊंची खाली बड़ी छोटी अंग भंग खटकिरवा आदि युक्त निखरहरी शय्या न हो कि तो पूर्व्व दिशाको शिर करके सोवे वा दक्षिणको पश्चिम उत्तर को शिरकर कभी न सोना चाहिये व स्त्री के संग रति तो ऋतुकालमेंही प्रशस्त है उसमें भी ऋतुमती स्त्री के स्नान से छठईं आठईं दशईं आदि सम रात्रियों में उनमें भी पहिलेवालियों से जैसे आगे की हों अच्छी हैं फिर उनमें भी आर्द्रादि १३ नक्षत्र छोड़के शेष १४ नक्षत्र उत्तमहैं इनमें भी रेवती अश्विन्यादि जो मूलसञ्ज्ञक कहाते हैं उनमें नहीं फिर जो स्त्री रजोदर्शनके पीछे चौथे दिन न अन्हाई हो जो बीमार हो जो रजस्वला हो जो इच्छा न करती हो जो रिसानी हो जो खड़ीहो जो गर्भिणीहो जो अनुकूल न हो जो अन्य पुरुषकी अभिलाषा किये हो जो इच्छाही न करती हो जो अन्यकी स्त्री हो जो बहुत भूखी वा बहुत अघानी हो ऐसी स्त्रीके संग रति कभी न करनीचाहिये फिर आप स्नान किये माला पहिने चन्दनादि गन्ध लगाये अच्छी भांति भोजन किये घबराही रहित सकाम प्रीति सहित हो तब मैथुन करे पर चतुर्दशी अष्टमी अ-

मावास्या पौर्णमासी व सङ्क्रांति ये ५ पर्व्व प्रत्येक मासमें होती हैं इनमें न मैथुन करै क्योंकि इन तिथियों में जो तेल स्त्रीका सम्मह व मांसभक्षण करता वह विष्ठा व मूत्र जिस नरकमें खानापीना पड़ता है उसमें जाताहै इसलिये इन पर्व्वों में सयम कर नियम व्रतके साथ पूजा पाठ अच्छे २ शास्त्रों का देखना यही कार्य्यकरना चाहिये किंच पशवादिकों के सग व पुरुष वा स्त्रीके मुख गुदादि में वा बहुत वाजीकरणादि ओषधि भक्षण करके व देवता के स्थान ठाकुरद्वारा शिवालयादि में मैथुन न करना चाहिये व अच्छे देवता के चौतरा नदीतीर वन उपवन चौरहा श्मशान व पानीके भीतरभी न चाहिये इन सब पर्व्वों व सन्ध्याओं में व जब पेशाब लगाहो ऐसे समय में न करना चाहिये पर्वों में करने से घनहानि दिनको पाप पृथिवी पर रोग जलाशय में अप्रशस्त होताहै मनसे भी परस्त्रीगमन न करना चाहिये फिर वचन व कर्म से कौन कहै क्योंकि परदारगामीको मरणाव में तो नरक होता और यहां भी आयुर्दाय घटती है यह जानके पुरुष ऋतुकाल में सब दोषरहित समय में अपनी ही स्त्रीके सग भोगकरै नहीं तो जब उसकी स्त्री की इच्छाहो ऋतुसमय के पीछे जबतक रजस्वला फिर न हो प्रतिदिन भोगकरै परन्तु परस्त्रीगमनसे दूर दूर रहै ॥

बारहवां अध्याय ॥

दो॰ बारहयें अध्याय महँ सदाचार बहुभांति ॥
पुनि वर्णय सज्जन सुनहु सकलधर्मकी पांति ॥ १ ॥

और्वमुनिराज राजासगरसे फिर बोले देवता गाय ब्राह्मण सिद्ध वृद्ध आचार्य्यकी पूजा व दोनों कालमें सन्ध्योपासन नित्य २ का कार्य है सदा साफ व पुष्ट वस्त्र धारण प्रशस्त अन्न भक्षण गरुड़ादि रत्नोंका पहिरनाभी नित्यकर्म है बार सदा साफ रखना सुगन्धित वस्तु लगाना सुन्दर वेष रहना श्वेतफूल पहिरना यह भी कि थोड़ी भी किसीकी द्रव्य न ले थोड़ा भी किसी से अप्रिय न बोले झूठ प्रिय भी न कहै किसी के दोष कभी मुखसे न निकाले अन्य के धन व वैरकी इच्छा न करै दुष्ट सवारी कटहा घोड़े आदि पर न चढ़ै नदी के कगार परके वृक्षकी छायामें न बैठे अतिवैरी जातिधर्म्मभ्रष्ट विक्षिप्त जिसके बहुत वैरी हों जिसके देहमें कुष्ठादिरोगहों वेश्यारत जिसके थोड़ा लाग बहुत खर्चहो मिथ्यावादी अतिखर्च वा हजो पराई निन्दा चुगली करनाहो अतिकुटिलहो इनकेसाथ

ज्ञानी मित्रता न करे न कभी अकेला गली चले नंगा हो स्नान सोना आचमन न करे जब पीठपर दुष्टा कपड़ा पड़ाहो तो न आचमन करे न देवता की पूजा व होम देवपूजन आचमन सन्ध्या तर्पणादि जप तप आदि कर्म एकही वस्त्र पहिने न करे दुष्टों के संग क्षणमात्र भी न बैठे क्योंकि उनके संगका थोड़ा भी बैठना बड़ा अकार्य्य करता जैसे सज्जनों के निकट का थोड़ा भी बैठना बड़ा कार्य करता अपने से बड़े व छोटे के साथ बिगाड़ न करे क्योंकि विवाद व विवाह समानके संग करना चाहिये रार्ड व नाहक़ बैर न करे अपनी थोड़ी हानि होतीहो तो सहलेवे पर बैरसे द्रव्य न बटोरे स्नान करने के पीछे न तो धोतीसे देह पोंछे न हाथसे यदि होतो अँगोछासे पोंछे नहीं, तो योंही सूखनेदे और बारभी उस समय न फटकारे न आचमन करे पांवसे पांव न मीजे न किसी अपने बड़ेके आगे पसारे गुरुके आगे वेप व आसन बहुत विचारके साथ करे देवताके स्थान व चौरहा के बिना प्रदक्षिणा किये न चलाजावे और अमाङ्गल्य पदार्थोंकी प्रदक्षिणा कभी न करे चन्द्रमा अग्नि सूर्य वायु व अन्य पूज्योंके भी सामने दिशा पेशाब व थूकना न चाहिये खड़े २ दिशा पेशाब न करे रुयँवार विष्ठा मूत्र न नावें थूकना छींकना व मलोत्सर्ग भोजन के समय व बलि मङ्गल जपकरने के समय महाजनों के आगे व होम करते में न करनाचाहिये और स्त्रियोंका न कभी अपमान करे न उनका विश्वास करे न बड़ा दुलारही करे न उनका पुरुषार्थ ही होने देवे मङ्गल पदार्थ रत्न पुष्प घृत व पूज्यलोग इनके बिना देखे व बिना प्रणाम किये घरसे कभी न निकले अर्थ धर्म काम मोक्ष चारों मार्गोंके नमस्कार करे व होम करता रहे दीन दुःखियों को उभारे वदेज्ञानी साधुओं की उपासना करे जो मनुष्य देवपितृ पूजा करता पितरोंको पिण्डदेता अतिथिलोगों का सत्कार करता वह उत्तम लोकों को जाता है व जो हितप्रिय विचारके साथ थोड़ा बोलता वहभी उत्तम लोकों को जाता है किम्बा बुद्धिमान् लज्जावान् क्षमावान् वेदशास्त्रनिष्ठ विनयकारी विद्या विनय व वृद्धों की मानता वहभी उत्तमलोकनिवासी होता पौषादि ४ मासों में वर्षने व गर्जने पर अमावास्याष्टम्यादि पर्व्वों में व अशौच सूतक में वेद शास्त्र न पढ़े जो रिसाने पुरुषोंको समझाके शान्तकरता सबके साथ बन्धुवत् बर्ताव बर्तना अहङ्कार नहीं करता भयभीतों को अभयदान देना ऐसे मनुष्य को जो स्वर्गही मिला तो

अतीव तुच्छफल है वर्षा घामादि बचाने के लिये छतुरी रखनी चाहिये रात्रि व वनमें जानेकेलिये लाठी शरीर भरकी रक्षाके लिये जूता सदा चलने में पहिरे व चलनेहीमें न ऊपर को बहुत निहारे न तिरछा न बहुत दूरको केवल ४ हाथ आगेकी भूमि देखताहुआ चले जितने दोषके हेतु कहचुकेहैं व कहेंगे उनको जो कोई धर्मात्मा होके मिटाता है तिसको धर्म्म,अर्थ काममें कुछभी हानि नहीं होती और जो ,पापी पुरुषके भी साथ आप अपापी हो प्रियता करता उसके हाथमें तो मुक्ति धरीही है जो विरागी लोग काम क्रोध लोभमें अपनी इन्द्रिया नहीं लगाते किन्तु सदाचारही में,लगाते उन्हीं लोगों के अनुभाव से पृथ्वी थाईहै तिससे मनुष्य को चाहिये कि जिस सत्यके बोलनेसे लोग प्रसन्न होते हैं सत्यही बोले पर जिस,सत्य से किसी को दुःखहो न बोले वहां फिर मौनही रहनाठीक सत्यासत्य कुछभी न कहे प्रिय बोलना सदा उचितहै पर जिससे यह जानपरे कि किसी को हित न होगा तो प्रिय न कहे चाहे अत्यन्त अप्रियहो पर उसमें किसीका कल्याण होता हो तो अवश्य कहना चाहिये जिसमें प्राणियोंका उपकार हो मनसा वाचा कर्मणा वही कहना सुनना बोलना करना चाहिये ॥

तेरहवां अध्याय ॥

दो० – तेरहयें अध्याय महँ कहब श्राद्ध विधि हेत ॥
प्रेतक्रिया अरु तासु अधिकारी श्रुति सुखदेत ॥ १ ॥

श्री और्व्वमुनि बोले जब किसी के पुत्र हो तो उसे चाहिये जितने न पड़े पहिले हो पहिलेही स्नानकर जातकर्म्म व अभ्युदयिक श्राद्ध करे, देवता व पितर दोनों के निमित्त दो २ व चार २ व छः २ आदि युगल ब्राह्मणों की पूजाकरे उससमय पुत्रके होने के उत्सवमें विघ्न न लगने पावे दधि अक्षत व बेरकेफल व पाताके पिण्डबनाय उत्तर व पूर्व्व मुख बैठ देवतातीर्थमे व प्रजापति तीर्थ से पिण्डदान करे इस अभ्युदयिक श्राद्धसे नान्दीमुख पितरोंके गण तृप्त होते हैं तिससे विवाह ,यज्ञोपवीत नवगृहप्रवेश नामकरण चूड़ाकर्म्म सीमन्त कर्म पुत्रादिके होनेपर इन कार्य्यों म नान्दीमुख नाम पितरोंका गृहस्थ पूजे पहिलेश्राद्ध म तो पितरके पूजनकी विधि बनाई है यहांपर प्रेतकर्म्म क्रिया

ज्ञानी मित्रता न करे न कभी अकेला गली चले नंगा हो स्नान सोना आचमन न करे जब पीठपर छुटा कपड़ा पराहो तो न आचमन करे न देवता की पूजा व होम देवपूजन आचमन सन्ध्या तर्पणादि जप तप आदि कर्म एकही वस्त्र पहिने न करे दुष्टों के संग क्षणमात्र भी न बैठे क्योंकि उनके संगका थोड़ा भी बैठना बड़ा अकार्य्य करता जैसे सज्जनों के निकट का थोड़ा भी बैठना बड़ा कार्य करता अपने से बड़े व छोटे के साथ बिगाड़ न करे क्योंकि विवाद व विवाह समानके संग करना चाहिये खई व नाहक बैर न करे अपनी थोड़ी हानि होतीहो तो सहलेवे पर बैरसे द्रव्य न बटोरे स्नान करने के पीछे न तो धोतीसे देह पोंछे न हाथसे यदि होतो अँगोछासे पोंछे नहीं तो योंही सूखनेदे और बारभी उस समय न फटकारे न आचमन करे पावसे पाव न मींजे न किसी अपने बड़ेके आगे पसारे गुरुके आगे वेप व आसन बहुत विचारके साथ करे देवताके स्थान व चौरहा के बिना प्रदक्षिणा किये न चला जावे और अमाङ्गल्य पदार्थोंकी प्रदक्षिणा कभी न करे चन्द्रमा अग्नि सूर्य वायु व अन्य पूज्योंके भी सामने क्रिया पेशाव व थूकना न चाहिये खड़े व दिशा पेशाव न करे सर्वदा विष्ठा मूत्र न नांघे थूकना छींकना व मलोत्सर्ग भोजन के समय व यति मङ्गल जपकरने के समय महाजनों के आगे व होम करते में न करनाचाहिये और स्त्रियोंका न कभी अपमान करे न उनका विश्वास करे न बड़ा दुलारही करे न उनका पुरुषार्थ ही होने देवे मङ्गल पदार्थ रत्न पुष्प छत्र व पूज्यलोग इनके विना देखे व विना प्रणाम किये घरसे कभी न निकले अर्थ धर्म काम मोक्ष चारों मार्गोंके नमस्कार करे व होम करता रहे दीन व स्त्रियोंको उभारे बड़ेज्ञानी साधुओं की उपासना करे जो मनुष्य देवर्षिकी पूजाकरता पितरोंको पिण्डदेता अतिथिलोगों का सत्कार करता वह उत्तम लोकों को जाता है व जो हितप्रिय विचारके साथ थोड़ा बोलता वहभी उत्तम लोकों को जाता है फिर बुद्धिमान् लज्जावान् क्षमावान् वेदशास्त्रनिष्ठ विनयकारी विद्या विनय व वृद्धों को मानता वहभी उत्तमलोकनिवासी होता पौषादि ४ मासों में वर्षने व गर्जने पर अमावास्याएम्यादि पर्व्वों में व अशौच सूतक में वेद शास्त्र न पढ़े जो रिसाने पुरुषोंको समझाके शान्तकरता सबके साथ बन्धुवत् बर्ताव बर्तता अहङ्कार नहीं करता भयभीतों को अभयदान देता ऐसे मनुष्य को जो स्वर्गही मिला सो

अतीव तुच्छफल है वर्षा घामादि बचाने के लिये छतुरी रखनी चाहिये रात्रि व वनमें जानेकेलिये लाठी शरीर भरकी रक्षाके लिये जूता सदा चलनेमें पहिरे व चलनेहीमें न ऊपर को बहुत निहारे न तिरछा न बहुत दूरको केवल ४ हाथ आगेकी भूमि देखताहुआ चले जितने दोषके हेतु कहचुकेहैं व कहेंगे उनको जो कोई धर्म्यात्मा होके मिटाता है तिसको धर्म्म अर्थ काममें कुछभी हानि नहीं होती और जो पापी पुरुषके भी साथ आप अपापी हो मित्रता करता उसके हाथमें तो मुक्ति धरीही है जो विरागी लोग काम क्रोध लोभमें अपनी इन्द्रिया नहीं लगाते किन्तु सदाचारहीमें लगाते उन्हीं लोगों के अनुभाव से पृथ्वी अड़ीहै तिससे मनुष्य को चाहिये कि जिस सत्यके बोलनेसे लोग प्रसन्न होते हैं सत्यही बोले पर जिस सत्य से किसी को दुःखहो न बोले वहा फिर मौनही रहनाठीक सत्यासत्य कुछभी न कहे प्रिय बोलना सदा उचितहै पर जिससे यह जानपरे कि किसी को हित न होगा तो प्रिय न कहे चाहे अत्यन्त अप्रियहो पर उसमें किसीका कल्याण होता हो तो अवश्य कहना चाहिये जिसमें प्राणियोंका उपकार हो मनसा वाचा कर्मणा वही कहना सुनना बोलना करना चाहिये ॥

तेरहवां अध्याय ॥

दो॰ तेरहयें अध्याय महँ कहयं श्राद्ध विधि हेत ॥
प्रेतक्रिया अरु तासु अधिकारी श्रुति सुखदेत ॥ १ ॥

श्री और्व्वमुनि बोले जब किसी के पुत्र हो तो उसे चाहिये जितने कपड़े पहिने हो पहिनेही स्नानकर जातकर्म्म व अभ्युदयिक श्राद्ध करे देवता व पितर दोनों के निमित्त दो २ व चार २ व छः २ आदि युगल ब्राह्मणों की पूजाकरे उससमय पुत्रके होने के उत्सवमें विघ्न न लगने पावे दधि अक्षत व बेरके फल व पानाके पिण्डबनाय उत्तर व पूर्व्व मुख बैठ देवतीर्थसे व प्रजापति तीर्थ से पिण्डदान करे इस अभ्युदयिक श्राद्धसे नान्दीमुख पितरोंके गण तृप्त होते हैं तिससे विवाह यज्ञोपवीत नवगृहप्रवेश नामकरण चूड़ाकर्म्म सीमन्त कर्म्म पुत्रादिके होनेपर इन कार्य्यों में नान्दीमुख नाम पितरोंका गृहस्थ पूजै वृद्धिश्राद्ध में तो पिताके पूजनकी विधि बताई है सर्वसाधारण प्रेतकर्म्म क्रिया

की विधि कहते हैं सुनिये जब कोई पुरुष व स्त्री मरे तो अच्छे जलसे स्नान कराय पुष्प मालादि पहिराय ग्रामके बाहर लेजाय दाहकरे जितने मनुष्य उस के सगजावें जितने व वस्त्र उनके पासहों सब लेकर स्नानकरें व उसका नामले ले दक्षिणमुख हो तिलाञ्जलि देवें सन्ध्यासमय गृहको आवें व मृतककृत्यकरें सब के सब नहीं तो जो दाहकरे भूमि में तृण बिछाके रहे प्रतिदिन प्रेतके निमित्त पिण्डदान करे दिन रात्रि जब कभी भोजनकरे मांसाशीभी हो तो मांसभक्षण न करे और प्रतिदिन अपने वंशवाले दो एक ब्राह्मणादिकों को भोजन कराता रहे क्योंकि भाई बिरादरीके भोजन करने से प्रेतकी बड़ी तृप्ति होती है पहिले तीसरे सतयें व नवयें दिन ग्रामके बाहर जाय स्नान करआवे व वहीं जो वस्त्र पहिने हो छोड़ आवे चौथेदिन अस्थि व भस्मसञ्चयन श्राद्धकरे तिसके पीछे दाह करनेवाला सपिण्डवालों को छूसक्ताहै पर अन्य लोगोंको नहीं फिर उस दिनसे समानोदक जो वंशके लोगहैं पञ्चयज्ञादि करसक्ते हैं पर चन्दन पुष्पादि भोग विलास धारण नहीं करसक्ते एक सङ्ग बैठना उठना खाना पीना सपिण्ड सबलोगों का अस्थिसञ्चयन के ऊपर होसक्ता पर स्त्रियों के संग भोग विलास नहीं यदि दन्त जाग आयेहों ऐसे लड़के का मरण विदेश में वर्ष दिन के पीछे सुने तो स्नानकरके अग्नि स्पर्श करने से शुद्धहोगा यदि वर्ष के मध्यही में सुने तो तीनरात्रि अशौच मानना चाहिये जिसके कुलमें कोई मरे दशदिनतक अन्यकुल जातिवाले उसके घरका अन्न जल न ग्रहणकरें व क्षत्रियके अशौच हो तो १२ दिनतक लोग वरावें वैश्यको १५ दिन व शूद्रको एकमास अशौच रहताहै ११ वें दिन १,३,५,७,६ आदि महाब्राह्मणों को भोजन देवें व प्रेतको पिण्डदान करे इन ब्राह्मणों के भोजन करानेके पीछे ब्राह्मण जल क्षत्रिय हथियार वैश्य पैना शूद्र लाठी छूके शुद्धहोताहै तिसके पीछे ब्राह्मणादिकों के लिये जो २ धर्म कहे हैं अपने २ वर्णके धर्म के अनुसार करनेलगें व जबतक जीवें करते रहें जिस तिथिको प्राणी मृतक हुआ हो जबतक वर्षी न हो प्रतिमास उसी तिथिको एकोद्दिष्ट श्राद्ध कियाकरे इस श्राद्धमें आवाहन अग्नौकरण विश्वेदेव विप्रामन्त्रण नहीं होता और प्रेतके अर्थ इसमें एकही अर्घ्य १ पवित्रक व एकही पिण्ड देना चाहिये व ब्राह्मणों का भोजन इसमें श्राद्धके प्रथम कराना चाहिये यह एकोद्दिष्ट कर्म जबतक वर्ष व्यतीत न हो प्रतिमास कियाजावे सपिण्डीकरण

भी वर्षके पीछेही करना चाहिये उसका विधान कहते हैं सुनिये यह भी एकोद्दिष्टही के विधानसे होगा तिल चन्दन जलयुक्त ४ पात्र धरने होंगे उन चारों में एक प्रेतपात्र व ३ पितृपात्र होते प्रेतके पात्रका जल पितरोंके पात्रमें जब श्राद्ध विधिसे मिला दियाजावे तबसे सब पितरोंके साथ उस प्राणीका भी श्राद्धहोने लगै प्रेतक्रिया करनेके पुत्र पौत्र प्रपौत्र बन्धुभाई की सन्तति व सपिण्डसन्तति इतने अधिकारी हैं इनके अभाव में समानोदक सन्तति अर्थात् मातृपक्ष के लोगकरें यदि दोनोंकुलों में कोई न हो तो स्त्री प्रेतक्रिया करे कदाचित् कहीं विदेश में मरा व कोई उसके गोत्रों में रहा नहीं है तो उसके सगवाले करें जिनके कोई भी किसी प्रकार करनेवाला नहीं उनकी क्रिया राजाकरावै पूर्वा मध्यमा उत्तरा क्रिया तीन प्रकारकी हैं सो दाहसे ले जल हथियार पैना लाठीछूने पर्य्यन्त जो क्रिया है वे पूर्वा और बारहमासतक प्रतिमास एकोद्दिष्ट करना मध्यमाक्रियाहै और जो सपिण्डीकरणको ले पीछे की जाती हैं वे उत्तराक्रिया कहाती हैं कदाचित् किसी कारण किसीके पिता माताकी क्रिया समानोदकवाले व सङ्गी साथियों ने व राजाने करी कराई हो तो पूर्वक्रिया तो होहीचुकी उत्तराक्रिया पुत्र पौत्रादि करें पर मध्यमाक्रिया तो क्रिया होजाने पर भी जब कभी पुत्रआवै वहीकरै व उसकी बेटीका बेटाकरै स्त्रियोंका श्राद्धभी जिस मासमें मरी हो उसी तिथिको प्रतिवर्ष एकोद्दिष्ट करना चाहिये पर पार्वणश्राद्ध तो पितृपक्ष में नवमीही को कियाजावै इसीको अन्वष्टका श्राद्ध कहते इसमें ६ पिण्ड दिये जाते हैं प्रथम तीन पितृ पितामह प्रपितामह को फिर माता पितामही प्रपितामही को तदनन्तर मातामहादिकों को तिसपै अब उत्तरक्रिया का विधान कहते हैं सुनिये॥

चौदहवां अध्याय॥

दो॰ चौदहयें अध्याय महँ नित्य काम्य सब श्राध ॥
पटप्रयपुरिसिनपत्नसय कम्पादिक सुखसाध ॥ १ ॥

और्व्वमुनि राजासगरसे बोले जो कोई श्रद्धासहित श्राद्ध करताहै वह ब्रह्मा इन्द्र रुद्र अश्विनीकुमार सूर्य्य अग्नि वसु पवन विश्वेदेव ऋषिगण पशु पक्षी मनुष्य सर्प दृश्निक पितृगण व अन्य सब जीवसमूहों को तृप्त करता है और

की विधि कहते हैं सुनिये जब कोई पुरुष व स्त्री मरे तो अच्छे जलसे स्नान कराय पुष्प मालादि पहिराय ग्रामके बाहर लेजाय दाहकरे जितने मनुष्य उस के सगजावें जितने व वस्त्र उनके पासहों सब लेकर स्नानकरें व उसका नामले ले दक्षिणमुख हो तिलाजलि देवें सन्ध्यासमय गृहको आवें व मृतककृत्यकरें सब के सब नहीं तो जो दाहकरे भूमि में तृण बिछाके रहे प्रतिदिन प्रेतके निमित्त पिण्डदान करे दिन रात्रि जब कभी भोजनकरे मासाशीभी हो तो मांसग्रहण न करे और प्रतिदिन अपने वशवाले दो एक ब्राह्मणादिकों को भोजन कराता रहे क्योंकि भाई बिरादरीके भोजन करने से प्रेतकी बड़ी तृप्ति होती है पहिले तीसरे सतयें व नवयें दिन ग्रामके बाहर जाय स्नान करआवे व वहीं जो वस्त्र पहिने हो छोड़ आवे चौथेदिन अस्थि व भस्मसञ्चयन श्राद्धकरे तिसके पीछे दाह करनेवाला सपिण्डवालों को छूसक्ताहै पर अन्य लोगोंको नहीं फिर उस दिनसे समानोदक जो वशके लोगहैं पत्रपत्रादि करसक्ते हैं पर चन्दन पुष्पादि भोग विलास धारण नहीं करसके एक सङ्ग बैठना उठना खाना पीना सपिण्ड सबलोगों का अस्थिसंचयन के ऊपर होसक्ता पर स्त्रियों के सग भोग विलास नहीं यदि दन्त जाम आयेहों ऐसे लड़के का मरण विदेश में वर्ष दिन के पीछे सुने तो स्नानकरके अग्नि स्पर्श करने से शुद्धहोगा यदि वर्ष के मध्यही में सुने तो तीनरात्रि अशौच मानना चाहिये जिसके कुलमें कोई मरे दशदिनतक अन्यकुल जातिवाले उसके घरका अन्न जल न ग्रहणकरें व क्षत्रियके अशौच हो तो १२ दिनतक लोग बरातें वैश्यको १५ दिन व शूद्रको एकमास अशौच रहताहै ११ वें दिन १,३,५,७,६ आदि महाब्राह्मणों को भोजन देवे व प्रेतको पिण्डदान करे इन ब्राह्मणों के भोजन कराने के पीछे ब्राह्मण जल क्षत्रिय हथि यार वैश्य पैना शूद्र लाठी छूके शुद्धहोताहै तिसके पीछे ब्राह्मणादिकों के लिये जो २ धर्म कहे हैं अपने २ वर्णके धर्म्म के अनुसार करनेलगें व जबतक जीवें करते रहें जिस तिथिको प्राणी मृतक हुआ हो जबतक वर्षी न हो प्रतिमास उसी तिथिको एकोद्दिष्ट श्राद्ध कियाकरे इस श्राद्धमें आवाहन अग्नौकरण विश्वेदेव निमन्त्रण नहीं होता और प्रेतके अर्थ इसमें एकही अर्घ १ पवित्रक व एकही पिण्ड देना चाहिये व ब्राह्मणों का भोजन इसमें श्राद्धके प्रथम कराना चाहिये यह एकोद्दिष्ट कर्म जबतक वर्ष व्यतीत न हो प्रतिमास कियाजावे सपिण्डीकरणी

भी वर्षके पीछेही करना चाहिये उसका विधान कहते हैं सुनिये यह भी एको- द्दिष्टही के विधानसे होगा तिल चन्दन जलयुक्त ४ पात्र धरने होंगे उन चारों में एक प्रेतपात्र व ३ पितृपात्र होते प्रेतके पात्रका जल पितरोंके पात्रमें जब श्राद्ध विधिसे मिला दियाजावे तबसे सब पितरोंके साथ उस प्राणीका भी श्राद्धहोने लगै प्रेतक्रिया करनेके पुत्र पौत्र प्रपौत्र बन्धुभाई की सन्तति व सपिण्डसन्तति इतने अधिकारी हैं इनके अभाव में समानोदक सन्तति अर्थात् मातृपक्ष के लोगकरें यदि दोनोंकुलों में कोई न हो तो स्त्री प्रेतक्रिया करे कदाचित् कहीं विदेश में मरा व कोई उसके गोत्रों में वहां नहींहै तो उसके सगवाले करें जि- नके कोई भी किसी प्रकार करनेवाला नहीं उनकी क्रिया राजाकरावै पूर्व्वा म- ध्यमा उत्तरा क्रिया तीन प्रकारकी हैं सो दाहसे ले जल हथियार पैना लाठीछू- ने पर्य्यन्त जो क्रिया हैं वे पूर्व्वा और बारहमासतक प्रतिमास एकोद्दिष्ट करना मध्यमाक्रियाहै और जो सपिण्डीकरणको ले पीछे की जाती हैं वे उत्तराक्रिया क हाती हैं कदाचित् किसी कारण किसीके पिता माताकी क्रिया समानोदकवाले व सङ्गी साथियों ने व राजाने करी कराई हो तो पूर्व्वक्रिया तो होहीचुकी उत्त राक्रिया पुत्र पौत्रादि करें पर मध्यमाक्रिया तो क्रिया होजाने पर भी जब कभी पुत्रआवै वहीकरै व उसकी बेटीका बेटाकरै स्त्रियोंका श्राद्धभी जिस मासमें मरी हो उसी तिथिको प्रतिवर्ष एकोद्दिष्ट करना चाहिये पर पार्व्वणश्राद्ध तो पितृपक्ष में नवमीही को कियाजावे इसीको अन्वष्टका श्राद्ध कहते इसमें ६ पिण्ड दिये जाते हैं प्रथम तीन पितृ पितामह प्रपितामह को फिर माता पितामही प्रपिता मही को तदनन्तर मातामहादिकों को तिसपै अब उत्तरक्रिया का विधान कहते हैं सुनिये॥

चौदहवां अध्याय॥

दो० चौदहयें अध्याय महं नित्य काम्य मय श्राध॥
कहययहुरिमितरत्नमय कम्पादिक सुखमाध॥१॥

और्व्वमुनि राजासगरसे बोले जो कोई श्रद्धासहित श्राद्धकरताहै वह ब्रह्मा इन्द्र रुद्र अश्विनीकुमार सूर्य्य अग्नि वसु पवन विश्वेदेव ऋषिगण पशु पक्षी मनुष्य सर्प राक्षस पितृगण व अन्य सब जीवमात्रों को तृप्तकरता है और

प्रतिमास अमावास्या और अगहनके कृष्णपक्ष की अष्टमीतककी ३ कृष्णाष्टमी इनका अष्टका नामहै इनमें सदा श्राद्ध करना चाहिये श्राद्धके लिये जो २ वस्तु व ब्राह्मणादि चाहिये बनाय अच्छीभांति उनकी परीक्षा करलेनी चाहिये कि श्राद्धयोग्यहैं व नहीं व्यतीपातयोग व दक्षिणायन उत्तरायण अयनों के दिन व तुला मेषकी संक्रांति सूर्य चंद्रके ग्रहणकेदिन सब संक्रांतियोंको श्राद्ध करै और जब कभी नक्षत्र व ग्रहकी पीड़ाहो व दुष्टस्वप्न देखाजावै जब नवान्नहो इन में इच्छाश्राद्ध करनी चाहिये अमावास्याके दिन जो विशाखा व स्वाती नक्षत्रहो व उसमें श्राद्ध कियाजावै तो पितरों को ८ वर्षतक की तृप्ति होती है यदि पुष्य आर्द्रा पुनर्वसुयुक्त अमावास्याको श्राद्ध करै तो १२ वर्षकी पितरोंकी तृप्तिहो और ज्येष्ठा पूर्वभाद्रपदा शतभिषानक्षत्र जिस अमावास्याको हो वह तो देव पितृकार्य करनेवालोंको अतिही दुर्लभ है यद्यपि प्रतिअमावास्याको नित्यश्राद्ध होताहै तथापि इन ६ नक्षत्रों के योगसे अतीव माहात्म्य है अब और श्राद्ध तिथि कहते हैं जोकि सनत्कुमारजीने पुरूरवा से कही है वैशाख मासकी शुक्लतृतीया व नवमी कार्तिककी नवमी भादोंकी अँधेरे त्रयोदशी माघकी अमावास्या ये युगादि तिथियां हैं इनमें भी देव पितृकार्य अवश्य होने चाहिये सूर्य चन्द्र ग्रहण व अष्टका दोनों अयन इनमें जो मन्त्रपढ़के तिलजल भी कोई पितरोंके नाम छोड़ताहै व श्राद्धकरताहै तो उसके पितर हजारवर्षतक तृप्त रहते हैं कदाचित् माघकी अमावास्याको शतभिषा नक्षत्र हो तो पितरों का बड़ाही उत्तमकाल है यह बड़ी कठिनता से मिलता और जो उसी अमावास्या को धनिष्ठानक्षत्रहो व अन्न जल कुछ पितरोंके लिये दियाजावै तो दश हजार वर्षतक पितर तृप्त रहते हैं व यदि उसी तिथि को पूर्वभाद्रपदाहो व श्राद्धादि कियेजावें तो एकयुगपर्यंत पितरोंकी तृप्तिहोती व जो कोई गंगा शतद्रू व्यासा सरस्वती नैमिषारण्य गोमती इनमें स्नानकर पितरोंका तर्पण करता मानों उनके सब पाप धोता है पितरलोग यह गाथा करते हैं कि माघ नगिचाय आया हमारे पुत्र त्रयोदशी व अमावास्याको श्राद्ध करेंगे और हम लोग तृप्त होंगे पर श्राद्ध करने में इतने पदार्थ अवश्य होने चाहिये मनुष्योंका प्रगम चित्त व द्रव्य शुद्धहो उत्तमकाल हो विधिसहित किया कीजावै जैसा चाहिये पात्रहो परमभक्ति हो पितर में हो तो सब वाञ्छित फल मिलते हैं अब

पितरोंके गीत कहते हैं चित्तलगाय सुनिये पितालोग अपने लोकमें बैठेहुये गनाया करते हैं कि हमारे कुलमें ऐसा बुद्धिमान् व धन्यपुरुष उत्पन्नहो जो वित्तशाठ्य को छोड़ हमलोगों को पिण्डदान करै व यदि उसके ऐश्वर्यहो तो हमारे निमित्त उत्तम २ ब्राह्मणों को रत्न वस्त्र पृथिवी सवारी उत्तम २ भोगके पदार्थ देवै और कदाचित् बहुत विभव न हुआ तो हमारी अमावास्यादि तिथियों में ब्राह्मणों को भोजनही देवै कदाचित् भोजनमात्र को अन्नभी न देसके तो भक्तियुक्तहो चुटकी २ तिलही देदेवै कदाचित् इतने तिलभी न मिलें पांचही सात तिल मिलाय दो एक अंजुरी जलही हमारे निमित्त भूमिमें छोड़ दे न कुछहो तो हमारे लिये एक गायको खानेभर को घास भूसाआदिही देवै यदि यहभी न हो महादरिद्राधिराजही हो तो हमारे पर्वतों में चुपे वनको चला जावे ऊपरको हाथ उठाय बड़े जोरसे यह पढ़े कि॥

चौ० नहिंधन वित्त न ममकुछआना। जामों श्राद्ध करौं मनमाना॥
केवल करत प्रणाम पिता के। कछु न कमी रहत नितजाके॥ १॥
तृप्त होहिं मम भक्ति निहारी। पितर विनय यह लेहिं हमारी॥
दोनों हाथ पवन के मारग। दीन पसारि होहिं गतिपारग॥ २॥
यह पितृगीता भाव प्रभाता। सहित प्रयोजन तुमसनगाता॥
जो यह करहिं मनौं तैं भीना। सकल श्राद्धपर हैं गतिदीना॥ ३॥

पन्द्रहवां अध्याय॥

दो० पन्द्रहयें अध्याय महँ श्राद्ध सकल करणीय॥
कर्त्ता भोक्ता के नियम कहत विप्र रमणीय॥ १॥

और्वमुनि बोले कि अब पार्वणश्राद्ध विधान कहेंगे प्रथम उसमें खानेवाले ब्राह्मणों के लक्षण कहते हैं वे त्रिणाचिकेत त्रिमधु त्रिसुपर्ण षडंगवित् ये ४ प्रकारके होनेचाहिये द्वितीय काठक के तीन अनुवाकों को त्रिणाचिकेत कहते उनके पढ़नेवालों को त्रिणाचिकेत मधुवाताऽ २ ऋचा पढ़नेवालों को त्रिमधु मद्यमेतुमाम् इत्यादि ऋचों के पढ़नेवालों को त्रिसुपर्ण ६ अंगयुत वेद के जाननेवाले को षडंगवित् प्रयोजन कि जहांतकहो श्राद्धमें वेदपाठीही ब्राह्मण को खिलाना चाहिये आगे भिनामें भी वेदार्थ विचारनेवाला वेदार्थ के म-

नुसार करनेवाले योगी सामवेदपाठी ऋत्विक् भानजा नाती दमाद श्वशुर मामा तपस्वी पञ्चाग्नि तापनेवाला शिष्य समधीका लड़का व जो अपने पिता माताकी भक्ति करताहो सामवेदाध्यायी नक जितने हैं व तो श्राद्ध में भोजन कराने के लिये मुख्यहैं तिनके पीछे ऋत्विजादि सबको भोजनकरावे और मित्रद्रोही खराब नहवाला नपुंसक कारिया दांतवाला कन्याके संग भोग करनेवाला अग्निहोत्र व वेदाध्ययन करसक्ता पर जो जान कर न करताहो यज्ञो· पधि बेचनेहारा महापापी चोर चुगुल पुरोहित शूद्र को वेद पढ़ानेवाला व उस से पढ़नेवाला अन्यकी स्त्रीके संग बिहार करनेवाला माता पिताका त्यागी शूद्रीपुत्रपालक शूद्रीका पति शिवालय ठाकुरद्वारा भैरवादि मठमें पूजा करने वाला इनको कभी श्राद्धमें भोजन न करावे प्रथम दिन जिन अच्छे २ ब्राह्म· णोंको निमन्त्रण देनाहै उनसे कहभीदे कि ऐसे आचारों से रहना होगा श्राद्ध वाले ब्राह्मण व यजमान क्रोध मैथुन भारढोना मार्गचलनादि दोनों उस दिन न करें श्राद्धभोजन कर व श्राद्धकरके दूसरे दिनभी जो मैथुन करता नरकगामी होता व अपने पितरोंको काम के कुंडमें गिराताहै तिससे जहांतकहो बिना नि· मन्त्रण दिये भी जिनके स्त्री न हो व सत्कर्म करतेहों उन्हीं ब्राह्मणों को भोजन देवे ब्राह्मणलोग जब आवें प्रेमपूर्वक उनके पादप्रक्षालनादि कराय आसन पर बैठावे पितरों के कार्य्य में १।३।५।७ आदि विषम ब्राह्मण खिलाने चाहिये व देवकार्य में २।४।६।८ आदि सम व देवता पितर दोनों के कार्यों में अच्छा एकही एक खिलावे नाना का श्राद्ध विश्वेदेवपूर्वक अलग भी करनाचाहिये देवकार्यमें पूर्वमुख पितृकार्यमें उत्तरमुख भोजन करावे कोई २ महर्षि कहते हैं कि पित्रादि श्राद्ध से अलग पाक बनाय मातामहादिकों का श्राद्धकरे कोई एकही पाकमें कहते हैं प्रथम बैठनेके लिये कुशधरके वि· श्वेदेवों का आवाहन करे जब वे आयजावें तो उनकी आज्ञासे सबकार्य करने लगे विश्वेदेवों की पूजा यव जलसे करे व पुष्पमाला चन्दन धूप दीप ताम्बू लादि भी यथाविधि दे पितरोंका सब काज अपसव्यहो कियाजाता है सो देवों की आज्ञा से गोटक पर पितरोंका आवाहन करे जैसे मन्त्र आवाहन के पदों में लिखेहैं उनसे पितरोंका आवाहन करे व तिल जलसे संकल्पकरे गंध पुष्प धूपादि करे रक्षार्थ उस समय कोई गनीव चलेगा अतिथि आजाय तो

ब्राह्मणों के साथ उसकी भी पूजाकरें क्योंकि योगीलोग नरोंके उपकारके लिये विविधभांति के रूपोंसे पृथिवी में घूमा करते हैं तिसमें श्राद्धसमय के अतिथि की पूजा अवश्यहो क्योंकि उसके निराश जाने से श्राद्धहत होजाता फिर द्विजोंकी आज्ञासे एक दोनामें तीन आहुतें सीरकीदे १ अग्नयेकव्य वाहनाय स्वाहा इससे २ सोमायपितृ मतये इससे ३ वैवस्वताय स्वाहा इससे बचा अन्न फिर उसी पात्रमें डालदे फिर घृतादि मिलाय कुछ अन्न पात्रोंपै छोड़ अमृत ञ्जुषध्वम् यह पढ़े प्रीतिपूर्वक जब ब्राह्मण भोजन करहों तो पितरोंका आवाहन करें और कहै कि हमारे पिता पितामह प्रपितामह ब्राह्मणों के देहोंमें बैठेहुये इस भोजनसे तृप्तहों व पिता पितामहादि हमारे पिण्डादि देनेसे तृप्तहों व जो कुछ भक्तिपूर्वक हमने यहां पहुंचाया है उससे पिता पितामहादि अतीव तृप्तहों और मातामह प्रमातामह वृद्धप्रमातामह भी तृप्तहों सब राक्षस नाशको प्राप्तहों जब सब ब्राह्मण बनाय तृप्त होजायँ तो उनके मुखादि धोनेके लिये शुद्ध जल देवे फिर उनकी आज्ञाले अन्नसे पिण्डदान करै सब पितृ पितामह प्रपितामह मातामहादिकों को अन्न जलादि जो जो देनाहै पितृतीर्थहीसे देनाचाहिये कुश बिछाके अपने पिता को पहिले पिंडदे फिर पितामहादिकों को इसभांति सब पिंड क्रियाकर पित्रादित्रय मातामहादित्रयको दक्षिणादेवे पितरोंको दक्षिणादे विश्वेदेव प्रसन्नहों यह उनके आगेपढ़े ब्राह्मणलोग जब कहदेवें कि हम प्रसन्नहुये तब पहिले पितरोंका विसर्जनकरे फिर विश्वेदेवका क्या अन्य सब श्राद्धके कर्मों में प्रथम विश्वेदेवोंकी पूजाहोती पर विसर्जन पितरोंकेही पीछे होता ब्राह्मणों के प्रणामकरे और द्वारतक पठैके उनकी आज्ञालेके लौटे फिर वैश्वदेव नित्य क्रियाकरै पश्चात् सब नौकर चाकर भाई बंधुओं के संग भोजनकरे इसभांति पंडितलोग पिता पितामहादि मातामहादिकों का श्राद्ध करें कि ये पितर मनुष्यों की सबकाम पूरेकरें श्राद्धमें कन्याका पुत्र अर्थात् नाती व तिल ये तीन बहुत प वित्रहैं और थोड़ी बहुत चांदीका दान भी अत्यावश्यक है विश्वेदेवा के लिये कुछ सुवर्ण भी चाहिये कुशोंका होना भी अत्यावश्यकहै श्राद्ध कर्त्ता व भ वेया दोनोंको चाहिये कि उसदिन क्रोधगाली चलना न करचाहै किसी कार्य में न करें श्राद्ध करने से विश्वेदेव पितृ पितामहादि व मातामहादि व कत्ता सब तृप्त होतेहैं पितरलोग योगाधार होतेहैं अर्थात् योगी होते इससे श्राद्ध योगी

भ्यासी व वेदपाठी अवश्य न्योतेजावें क्योंकि सहस्र ब्राह्मणों के आगे एक योगाभ्यासी ब्राह्मण खड़ाहो तो सब श्राद्ध भोजन करनेवालों व यजमान को तार देता है ॥

सोरहवां अध्याय ॥

दो० सोरहयें अध्याय महँ श्राद्ध अयोग्य सुयोग्य ॥
सकल वस्तु वरणन करत सुनिश्चित होय निरोग्य ॥ १ ॥

और्वमुनि बोले हविष्य मत्स्य शशक पक्षी वन्य सूकर छाग हिरण रौरव गवय उरभ्र इनके मास से एकमास अधिक पितर तृप्तहोते हैं वाध्रीणस के मांससे वो नित्य तृप्तहोते हैं परंतु कलियुग को छोड़ यह अन्य युगों की व्यवस्था माससे श्राद्ध करनेकी है क्योंकि इस युग में अश्वमेध गोमेध सन्न्यास मास से पिण्ड देना देवरसे पुत्रोत्पादन का निषेधहै बस अन्ययुगों में ऐसा होताथा गैंड़ाका मास बहुतही पवित्र व उससमय में जो शाक होतेहों जो पुरुष गयामें जाय श्राद्धकरता उसका जन्म सुफल होजाता व उसके पितर तृप्त निनी पसाढ़ी सावा ये भी श्राद्धकर्म में अतिपवित्रहैं यव कांकुनि मूंग गेहूं धान तिल सरसों ये भी श्राद्ध योग्यहैं जिस अन्नमे नवान्न श्राद्ध न हुईहो व काले उर्द उपठऊसावा लौकी गाजर प्याज सलजम लहसुन गैंधेलाशाक क्यरमुआ अमलोनादि लोनखर पदार्थ ऊसर में उत्पन्न अन्नादि सर्ववृक्षोंका गोंद प्रत्यक्षमें लोन जो विहितभी हो पर उसका नामही निषेधहै रात्रिमें लाई वस्तु अंधऊ कूपआदि अपवित्र स्थानमें उत्पन्न जो बहुतही थोड़ीवस्तु उत्पन्न हुईहो जिस में गौभी न खायसके फेना व दुर्गंधितहित जल एकखुर घोड़ी गदहीआदि ऊंटिनी भेड़ी बकरी हिरणी भैंस इनका दूध नपुंसक चांडाल पाखंडी सिरी कुष्ठादि महारोगी मुरगा नंगाबानर ग्रामसूकर रजस्वला सूतक अशौच व मुर्दा ढोनेमें अन्न पापकर भोजन करनेवाला इनलोगों के देखतेहुये यार कृमियुक्त कांजीआदि से मिलाहुआ पदार्थ और बासीअन्न इन पदार्थोंसे श्राद्ध न करना चाहिये क्योंकि देवता पितर, कोई ऐसी वस्तु नहीं ग्रहण करते जो अन्नादि श्रद्धासहित उत्तम उत्तम दिये जाते हैं पितर उनसे तृप्त होते हैं देखो कल्पापआपके उपवनमें राजा इक्ष्वाकु के पितर गाथा करते थे कि भला हमारे कुलमें

ऐसे सन्मार्गशीली पुरुष उत्पन्नहोंगे जो गयामें जाय हमलोगोंको पिण्डदान करेंगे व भादोंमें मघायुक्त त्रयोदशी को श्राद्धकरेंगे व ८ वर्षकी स्त्रीकेसग विवाह करेंगे वृषोत्सर्ग करेंगे व अश्वमेध यज्ञ विविध दक्षिणासहित करेंगे ॥

सत्रहवां अध्याय ॥

दो॰ सत्तरहें अध्याय महँ देव स्तुति सों विष्णु ॥
उपजायो छलमोह जेहि असुरनग्न असहिष्णु ॥ १ ॥

श्रीपराशरमुनि बोले हे मैत्रेय! और्वमुनि ने महात्मा राजा सगर से इस भांति सदाचार कहा वही हमने आपसे कहा जो इसके प्रतिकूल चलता है उसका कल्याण नहीं होता इतनी कथा सुन मैत्रेयजी बोले कि नपुसकादिकों के छुयेहुये व देखेहुये पदार्थों से श्राद्ध न करना चाहिये यह तो हमने जाना पर यह नहींजाना कि नगे कौन लोग कहाते हैं जो उनके देखने से कर्मनग्न होजाताहै उन नग्नोंकी कथा सुनाइये कैसी है पराशरमुनि बोले ऋक् यजु साम ये तीनोंवेद ब्राह्मणआदि वर्णोंकी पहिरावरि है इन्हींके अनुसार इनको चलना चाहिये जो कोई इन वेदोंको छोड़ अन्यमार्ग में चलता वही महापापी नग्न कहाता है जाहैसे चारों वर्णोंके वस्त्र तीनों वेदही हैं इससे जो इन वेदोंको छोड़ता है वह नग्नाही है इसमें कुछभी सन्देह नहीं है औरभी सुनिये यही बात हमारे पितामह वशिष्ठजीने भी भीष्मपितामह से नग्न सम्बन्धिनीवार्त्ता कही थी और उस समय हमभी वहांथे जिस २ भांति उन्होंने उनसे कहाहै सुनाते हैं सुनिये आगेकी बातहै कि देवता व दैत्योंसे देवताओं के १०० वर्षतक युद्ध हुआ उसमें ह्रादआदि दैत्योंसे देवतालोग हारे तब क्षीरसागर के उत्तर कूलपै जाय विष्णुजीकी आराधना के लिये इस स्तोत्रसे स्तुति करनेलगे कि लोकोंके स्वामी श्रीविष्णुकी आराधना के लिये जो वाणी हमलोग कहेंगे तिससे श्री विष्णु प्रसन्नहों जिससे सबप्राणी उत्पन्नहोते हैं व जिसमें फिर लीन होतेहैं उस ईश्वरकी स्तुति कौन करसक्ताहै तिस आपकी उत्पत्तियोंको तो यथार्थ नहीं जानते पर शत्रुओंसे पीड़ित हमलोग अपने कल्याणके लिये व वैरियों के नाशके लिये तुम्हारी स्तुति करते हैं पृथिवी जल अग्नि वायु आकाश अन्तःकरण प्रकृतिपुरुष एव तुम्हींहो यह सब आप से छोटेके अन्ततक तिनका है सो सो

तुम्हींहो जिस अवतार के नाभिसे कमल जागना जिससे ब्रह्माहोते उस मूर्त्तिके नमस्कार है इन्द्र सूर्य रुद्र वसु अश्विनीकुमार पवन चन्द्रमा इन आदिके भेदसे हमसब जिसका स्वरूप है उसके प्रणामहैं दम्भमय सम्बोधनरहित सहनशीलता जितेन्द्रियता हीन जो दैत्यस्वरूपी भगवान् है उसके दण्डवत् जिस परमेश्वरकी नाड़िया अतीवज्ञान पहुँचानेवाली नहीं व शब्दादि का लोभ करती हैं उस यक्षात्मा ईश्वरके प्रणाम है क्रूरतासहित मायायुक्त जो निशाचरी-स्वरूपहै तिसके भी देवताओंके स्वभाववाला जो स्वरूप धर्मनामकहै तिसके भी॥

चौ० हर्ष प्राय संसर्ग विहीना। सिद्धरूप नति करत प्रवीना॥
क्रूर सहनशीलता विहीना। उपभोगता सहन लवलीना॥ १॥
जिह्वायुगल जासु मुखमाहीं। सर्वात्मा स्वहि विनय कराहीं॥
योधनिकाय अदोष अपापा। नमो नमो ऋषिरूप अलापा॥ २॥
निर्भय कल्प समय सब प्रानी। जो भक्षत नहिं तनिकगलानी॥
कालरूप सो श्रीभगवाना। लेय प्रणाम मोर गत माना॥ ३॥
देवादिक सब नादि सुनावत। कल्पसमय अपने मनगावत॥
रुद्ररूप सो अतिविकराला। हरै सकल रिपुगणकी माला॥ ४॥
अष्टाविंश भेद पशु वृन्दा। जासु भेद वर्णित गत निन्दा॥
सो उन्मार्गगामि भगवाना। नोहहु दैत्य करहु कल्याना॥ ५॥
जो प्रधान पुरुष भगवाना। कौनिउँ भाति न आनत्मानी॥
सो कारण कारण जगदीशा। लेहु प्रणाम नवामहुँ शीशा॥ ६॥
शुक्र वीर्य घन आदि विहीना। अगम अगोचर शुद्ध प्रवीना॥
लखतजाहि ऋषिगणकी माला। कृपा करहु हरि परमकृपाला॥ ७॥
जो मम देह जो आन शरीरा। सकलजगतुमहूँ व्यगत सुधीरा॥
जासिन तनिक नहीं ससारा। ब्रह्मरूप सो रखहु पारा॥ ८॥

श्रीपराशरमुनि बोले कि इस स्तुतिके पीछे शङ्ख चक्र गदा पद्मादि धारण किये श्रीहरिको देवगण देखके बोले हे देव। प्रसन्नहूजिये व इन दैत्योंसे रक्षा कीजिये हम आपके शरणागत हैं ह्रादादि दैत्योंने त्रैलोक्य के यज्ञभाग हरि लिये महाराजकी भी आज्ञा नहीं मानते यद्यपि हम आपही के अंशसे हैं और आपहीहैं तथापि मायाके भेदसे आपको भिन्न समझते हैं हमारे शत्रु

अपने वर्णाश्रम के धर्मों में निरत वेदमार्गानुसार चलनेवाले व तपस्यायुक्त होनेके कारण ऐसे नहीं हैं जो हमलोगों से हारें इसलिये वह उपाय बनाइये जिससे हम उन असुरों से जीतें पराशरमुनि बोले श्रीभगवान् से देवोंने जब ऐसाकहा तो उन्होंने मायामोह अपने शरीर से उत्पन्नकर देवोंको दे कहा कि यह मायामोह सब दैत्योंको मोहित करेगा तब वे वेदमार्ग से बाहर होजावेंगे व तुमलोग उन्हें मारसकोगे संसार में जितने परिपन्थी हैं हम उन सबको वध करते हैं तिससे जाव तुम्हारे उपकार के लिये मायामोह आगे आगे जाताहै निर्भय चले जावो तुम्हीं जीतोगे यह सुन देवगण श्रीहरि के प्रणाम कर जहां दैत्यगण थे गये उन्हीं के संग मायामोह भी ॥

अठारहवां अध्याय ॥

दो॰ अट्ठरहें अध्यायमहँ मोहित दैत्य विनाश ॥
नग्न दोष लगि शतधनु कथा कहनगतत्रास ॥ १ ॥

श्रीपराशरमुनि बोले कि देवताओं के संग मायामोह ने नर्मदा के किनारे तपस्या करतेहुये दैत्योंको देखा व नंगे मूड़ मुड़ाये कुशकी पैती पहिने दैत्यों से कहा हे दैत्यो! इस तपस्या से इस लोकमें कुछफल चाहतेहो व परलोक में बताओ तो क्यों तपकरतेहो दैत्योंने कहा हम परलोक के लिये तपकरते हैं कहिये इस पूंछने से आपका क्या प्रयोजन है मायामोह बोले यदि मुक्तिकी इच्छाहो तो हमारी बातें मानो इनसे ऐसा धर्म पाओगे जिसमें मुक्तिका फाटक खुलजावेगा जब चाहना सीधे चलेजाना मुक्तिके योग्य यही धर्म है इससे बड़ा और कोई नहीं इससे चाहे यहीं टिकेहुये स्वर्गसुख भोगना चाहे विमुक्ति हीको प्राप्तहोना इसभांति बहुतसी बातें मायामोहने युक्तिपूर्वक कहीं जिनमें दैत्यों भी वेदनिंदित धर्म्म से निष्ठा जातीरही अधर्म्म में लगी यहांतक कि आर्हतधर्म्म व बौद्धजैनधर्म्म बताये तब उसीपर आनन्द हुये उनसे औरोंने सीखा फिर उनसे दूसरोंने इसी भांति धीरे २ वेदत्रयी धर्म्म बिलकुल छूटगया जो कोई इस मुड्या मतपर व बौद्धादि मतपर नहीं आयेथे उनके पास माया मोह एकदिन लालकपड़े पहिने आंखेंमदाये जाय अतिमधुर वचन बोले हे दैत्यो! यदिस्वर्ग की वा मोक्षकी इच्छाहो तो निरर्थ पशु मारेजाते हैं ऐसे

यज्ञ न करो इनसे स्वर्ग न मुक्तिकुछ भी नहीं धर्म, नरकही होता, यह हमने बड़े बड़े पण्डितों से सुनाहै तुम केवल विज्ञानही को धारणकरो क्योंकि विना ज्ञान मुक्ति नहीं होगी और यह संसार अनाधार है न कोई इसके करनेवाला न पालने न नाशनेवाला है बसयही योगाचारोंका मतमानों इससे सबकुछ पावोगे इसभांति बारम्बार नानाप्रकार से धर्मभाय माया मोहने दैत्यों का जो वैदिक धर्मथा उसेछुड़ादिया उन लोगोंने आपस में देवगाल बहीमत सीख लिया वेद व स्मृतियों के मतको बिलकुल छोड़दिया जो इससे भी बचे उनको अन्य पाखंडियों के मत बताये इसभांति थोड़ेही समय में सब दैत्योंने वेदकी कथाही छोड़ी तिसके अनुसार धर्म कौनकरे कोई कोई तो वेदोंकी निन्दा करने लगे कोई २ देवताओं की कोई यज्ञ कर्मोंकी कोई ब्राह्मणोंकी अरे भाई। यह बात युक्तिग्राह्य नहीं है कि यज्ञमें पशु मारने से धर्महोगा व खीर अग्नि में जारने से फलहोगा यहबात तो लड़कों कीसीहै जो अनेक यज्ञोंसे देव पदवी को पाय इन्द्र शमी पलाशादि काष्ठही खाते हैं तो क्याबात पशुखाना तो उनको सहजसी बातहै क्योंकि वह तो वृक्षोंके कोमल कोमल पत्र खाताहै जो काष्ठकी अपेक्षा बहुतही नम्रहोते जो कहो कि यज्ञमें जो पशु मारा जाताहै उसे स्वर्गधाम मिलता है तो स्वर्ग जानेके लिये यजमान अपने पिताही को क्यों नहीं यज्ञपशु बनाय मारता जो श्राद्धादि में अन्य के भोजन कराने से अन्य पितरोंकी तृप्ति सत्य सत्य होती तो लोग विदेश को सीधा पानीआदि काहेको लादलेजाते घरमें उनके पुत्र श्राद्धकरके किसीको भोजन न करादेते कि उनको विदेश में पहुंचता रहता हे लोगो! सब वेद वाक्यों को छोड़ो देखो कोई युक्तिकी बात उसमें नहीं हमारीही बातमानो कुछश्रेष्ठ वचन आकाश से कभी नहीं गिरते केवल सायुक्तिक वचनोंकोही श्रेष्ठ वचन कहते हैं फिर हमारे तो सब सयुक्तिकहीं हैं क्यों नहीं मानते इसप्रकार मायामोह ने नानाभांति उलटी सीधी झूठीसांची बातें कह उन दैत्योंको उलट पलट देखा जब उनको वेद वाक्य से बनाय अलगहीहोगये तब छोड़ा इसभांति जब सब दैत्य वेदवाह्य मार्ग चलने से धर्महीन व निर्बल होगये तब देवताओंने लड़ाईका सामान इकट्ठाकर उनके ऊपर चढ़ाईकी व फिर देवासुर संग्राम हुआ जिसमें दैत्योंकी पराजय और देवोंकी विजय हुई तिसमें हे मैत्रेय! जो लोग वेदानुसार नहीं

चलते वही नग्न कहाते हैं क्योंकि वेदहीजनों के वस्त्र जब वेदानुसार कर्म्म न करेगा तो नङ्गा तो होहीगा ब्रह्मचारी गृहस्थ वानप्रस्थ सन्यासी यही ४ आश्रमहैं पांचवा नहीं जो गृहस्थ अन्तावस्थामें भी गृहस्थाश्रम छोड़ वानप्रस्थ वा सन्यासी नहीं होजाता वह भी पापी नग्नही है जो सन्ध्या पूजा तर्पणादि नित्य कर्म्म हैं उनके न करने से पुरुष पतित होजाताहै यदि किसी आपत्ति के कारण नित्यकर्म्म नहीं छोड़ा मनमाना योंही नहीं किया तो विना प्राय श्चित्त किये हुये नहीं शुद्ध होसक्ता जो पुरुष वर्षभर नित्यनैमित्तिककार्य्य न करे उसके देखने से जब सूर्य्य के दर्शन करे तो शुद्धहो जो कभी उसका स्पर्श होजावे तो सवस्त्र स्नान करनेसे शुद्धि होगी और उस नित्य क्रियाहीन पापी की तो कभी शुद्धिही नहीं होसक्ती यह शुद्धि तो केवल उसके देखने छूनेवालोंकी है देवता पितर ऋषि वा अन्यप्राणी जिसके घरमें ऊर्ध्वश्वासले विनापूजे खाये पिये चलेजाते हैं तिससे अधिक पापी न हो जिसका घर वा देह देवादि निश्वाससे हतहोजावे चाहिये कि उसके घरमें वा उसकेसङ्ग न उठे बैठे क्योंकि उसके साथ भोजने व बतलाने हँसने उठने बैठने से उसकी तुल्यता वर्षपर्य्यन्त उसकी भी होजाती है और जो उसके गृहमें भोजन करता वा उस चौकापर खाता वा उसकेसङ्ग शयनकरता वह तो तुरन्तही उस पापीके समान होजाता है जो देवता पितर अन्य प्राणी अतिथि इनकी विना पूजा किये भोजन करता वह तो पापही खाता फिर उसके उद्धारका कौनसा उपाय है ब्राह्मण क्षत्रियादि वर्ण अपने २ धर्म्म से यदि विमुख हो नीचकर्म्म करने लगें तो वेभी नग्न जहाँ चारोंवर्ण के लोग एकस्थान में बड़ी मचापची के साथ बैठते हैं वहाँ जो जैसा अधिक वर्णवालाहै उसको अधिकदोष होता और लोग देवताऋषि पितर अतिथिआदि के विना पूजेहुये भोजन करते उनके साथ नरकमें पड़ेहुये लोगभी बतलाना नहीं चाहते तिससे वेदत्यागी इननङ्गों के साथ उठना बैठना बोलना बतलाना पंडित को न करना चाहिये चाहे बड़ी भी श्रद्धासे श्राद्धादि कर्म करें पर उन्हीं इननङ्गोंके देखा देखी आदि प्रमाण नहीं होंगे पाप अपराध हो जाने वाले हैं सुनते हैं कि आगे एक शतधनु नाम राजा थे उनकी स्त्री शैव्यानाम था जाति सब गुण धर्मों में तत्पर थी बड़ी पतिव्रता सत्य शौच दयादि गुणसम्पन्न तब विनयवती भी तिन महाराज शतधनु सहित

साथ देवदेव जनार्दन विष्णुकी आराधनाकी उसमें होम जप दान उपवास पूजा॰ दि करके दिन बिताये थे एक दिन स्त्री पुरुष दोनों गंगाजी में स्नानकर निकले उसदिन कार्त्तिककी पूर्णमासीका व्रतथा निकलतेही एक पाखंडी देख पड़ा वह कभी राजाका मित्रया इसकारण उसके गौरव से राजा उससे बतलानेलगे पर रानी नहीं बोलीं वरन् उसने सूर्य के प्रणाम किया व कहा कि महाराज मैं आज व्रतमेंहूं यह कह दोनों अपने स्थानपै आये और श्रीविष्णुकीपूजा करने लगे कुछ दिन के पीछे राजामरे रानी लेकर सती होगई परन्तु उसदिन उस पाखण्डी से बतलाने के कारण राजा कुक्कुर हुये-और रानी व्रत के प्रभावसे काशी के राजाकी कन्याहुई जैसे सुन्दर गुण रूपादि राजकुमारियों में चाहिये उसमें हुये व्रतके प्रभावसे राजकुमारी को पूर्वजन्मकी कथा भी स्मरणथी राजा ने चाहा कि कहीं कन्याका विवाह करें पर कन्याके न मानने के कारण नहीं किया राजकुमारी ने ध्यान धरके देखा तो विदित हुआ कि मेरा पति उस पाखण्डी के साथ बतलाने के कारण वैदिशापुर में कुत्ता हुआ है तब वहां जाय कुक्कुर रूप अपने पतिको देखा और वहां रहिके अति मीठी नीकी वस्तु खिलाने पिलाने लगी राजा कुत्तों की भांति पूछआदि हिलाय अपनी पालिका जान प्रिय करनेलगे तब राजकुमारी बहुत लज्जित हो व शोचकर बोली महाराज उस जन्मका स्मरण आपको भूलगया अब उस पाखण्डी के संग व्रत में बोलने से इस योनिको प्राप्तहुये हो इस भांति राजकुमारी के वचन सुनकार्तिक व्रत प्रभाव से पूर्व्व जाति का स्मरण आया तब अतीव दुःखी होगये और उस ग्रामसे भाग मरुदेश में जाय बिनाजल शरीरछोड़ी चूहा होगये फिर कोलाहल पर्व्वत पर सियार हुये दूसरेही वर्षमें वहांभी राजकुमारी जानके पहुंची और पति से बोली कि जो हमने आपसे कुक्कुरकी योनि में उस पाखण्डीके संसर्ग का हाल कहा था स्मरण है व नहीं स्मरण कीजिये फिर राजाको स्मरण होआया इस॰ लिये निराहार रह उसी वनमें शरीर छोड़दिया फिर भेड़िया हुये राजसुता ने जाय फिर समझाया कि आप शतधनुराजा हैं इस पाखण्डी के कारण कुत्ता सियारहोके अब भेड़िया हुयेहो इस स्मरण के कराने से उस योनिको छोड़ गीधहुये वहां भी समझाया तब उसे छोड़ कौआ हुये वहां जाय बहुतरोय स॰ मझाया कि हाय सब राजालोग तुमको बलि देने थे अब तुम बलिभुक् कौआ

हुये क्या करैं यहसुन काक योनि छोड़ सुरैलाहुये वहाभी नाथ समझाया यह जन्म जनकपुर में हुआ उन्हीं दिनोंमें जनकपुर के राजाने अश्वमेध यज्ञकिया उस राजकुमारी ने वहां पहुंच उसी यज्ञान्त स्नान जलमें उस सुरैलाको स्नान कराया व सब योनियोंकी सुधि दिलाई उस योनिको भी छोड़ा ईश्वरानुग्रह से जनकपुर के महाराज के पुत्रहुये तब राजकुमारी ने आय कुछ दिनके पीछे अपने पितासे कहा हमारे विवाह के लिये अब यत्न कीजिये काशिराजने स्वयंवर किया उसमें जनकपुर के राजकुमार भी आये तब उन्हीं के गले में राजकुमारी ने जयमाला डारी इसलिये फिर अपने पतिको प्राप्तहुई जब राजा जनकमरे तो ये राजकुमार राजाहुये व ये रानी जनकपुर में नानाप्रकार के भोग विलास किये बहुत यज्ञ किये कराये दानभी बहुतदिये पुत्रभी कईहुये शत्रुओं को समर में पराजित भी किया न्याय पूर्वक राज्यभी किया प्रजाओंका पालनभी न्यायही से अन्तमें संग्रामभूमि में वीरताके साथ प्राणछोड़े राजपत्नी पूर्वही की भांति राजाको लेकर सतीहुई राजा रानी दोनों इन्द्रलोक को जाय बड़े उत्तम लोकको गये जहां पुण्यक्षीण नहीं होती पराशर मुनि बोले हे मैत्रेय! यह पाखण्डी के साथ मन में बोलनेका दोष व अश्वमेध यज्ञके अवभृथ स्नान का फलकहा जिससे पाखण्डियों का देखना व उनसे बतलाना सदा छोड़ना चाहिये यज्ञ दान व्रत श्राद्धादि क्रिया कालमें तो विशेषता से बचाना चाहिये नहीं तो यही दशाहोती है जिसके घरमें मासपर्य्यन्त क्रिया हानिहो तिसके देखने पर सूर्य्यके दर्शन अवश्य करने चाहिये फिर जो वेदानुसार कुलभी कर्म नहीं करते केवल सेंतमेत का पराया अन्नही खाते व वेद विरोधी हैं उन से तो दूरसे बचना चाहिये जो अपने धर्मसे भ्रष्टहो जो निषिद्ध कर्म करताहो जो शुभपापीहो जो सामने प्रियबोले पीछे अप्रिय करै वेदाज्ञामें जो नानाभांति की कुतर्कनासे सन्देहकरै तथा जो मिथ्याही शास्त्र बोल अपना प्रयोजन सिद्ध करताहो इन दुष्टोंसे सूधे वचन भी न बोलने चाहिये पुजाका कौन कहै पापियों का मेल मिलाप व उनके साथका बैठना दूरही से त्याज्य है जिससे इन दुराचारियोंका छोड़नाही ठीकहै ॥

चौ० इतने मग्न रहे मुनराई। देखा यान विनाशक आई॥
फिर समुझाय मा मयसर्मा। तीसम दिनके लिये न कर्मा॥ १॥

इन पाखण्डिन पापिन माहीं । कबहु न बोलहु मुनि मनमाहीं ॥
बिनकृत पुण्य जात इन संगा । सम्भाषण सों जासों भंगा ॥ २ ॥
जटाधारि शिर मुण्डन कारी । मिथ्या भोजन हित तनु धारी ॥
शौचहीन पितृ पिण्डजलादी । जान देत सब बड़े अपादी ॥ ३ ॥
इन सम्भाषणही सों लोगा । नरक वास पावत सहिशोगा ॥
यासों इन्हें दूर सों त्यागहु । सुनि ममवचन बहुत अनुरागहु ॥ ४ ॥

इति श्रीमद्विष्णुपुराणेतृतीयांशेऽष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

अथ विष्णुपुराणस्य ॥

चतुर्थोऽंश ४ ॥

पहिला अध्याय ॥

दो० यहि चौथे शुभ अंश में चौबिस हैं अध्याय ॥
कथामनुनकी है सकल नाना भांति सोहाय ॥ १ ॥
तह पहिले अध्याय मह बल रेवती विवाह ॥
मनु प्रसंग सों कहत हैं सुनतै परम उछाह ॥ २ ॥

मैत्रेयमुनि बोले हे गुरुदेव ! साधुकर्मकारी मनुष्यों के लिये जो नित्य नैमित्तिक कर्म हैं आपने हमसे कहे वर्ण व आश्रमों के भी धर्म बताये अब हम वंश वर्णन सुना चाहते हैं कृपापूर्वक कहिये पराशरमुनि बोले हे मैत्रेय ! अनेक यज्ञ करनेवाले शूरवीर राजाओंसे शोभित ब्रह्मा से उत्पन्न राजा मनुका वंश सुनिये प्रतिदिन जो कोई राजामनुके वंशका स्मरण करेगा तिसके वंश का नाश न होगा तिसके वंशकी वंशावली संपूर्णपाप खोने के लिये सुनिये सब जगत्के आदि वेदमयी शरीरधारी श्री विष्णुके अवतार ब्रह्मांडमें सब से पहिले ब्रह्माजी उत्पन्नहुये ब्रह्मा के दाहिने अँगूठा से दक्ष प्रजापति हुये उनके अदिति नाम कन्याहुई तिसके विवस्वान तिनके मनु मनुके इक्ष्वाकु १ नृग

२ धृष्ट ३ शर्याति ४ नरिष्यत ५ प्रांशु ६ नाभाग ७ नेदिष्ट ८ करूष ९ पृषध्र १० आदि पुत्र हुये इन पुत्रोंके होनेके लिये राजा मनुने मित्रावरुण देवताओं की आराधना यज्ञद्वाराकी तहां राजाने चाहा कि एक पुत्रहो रानीनेचाहा कन्याहो होताने रानीके कहने से कन्याहोनेहीका मन्त्रपढ़ा इसलिये इलानाम कन्या उत्पन्नहुई राजाने मैत्रावरुणकी प्रार्थनासे उस कन्याहीको सुद्युम्न नाम पुत्र बनाया फिर सुद्युम्न महादेव के कोपसे स्त्री होगये व सोमके पुत्र बुधके स्थानपे घूमते २ पहुँचे बुधसे उसमें पुरूरवा नाम पुत्र हुये फिर ऋषियोंने चाहाकि सुद्युम्न पुनः पुरुष होजावे इसलिये वेदमूर्त्ति सर्वमय मनोमय यज्ञ-स्वरूपी भगवान्‌की आराधनाकी तिसके प्रसादसे इला फिर सुद्युम्न नाम पुत्र होगई सुद्युम्न के उत्कल गय विनत तीन पुत्र हुये तिससे कि सुद्युम्न प्रथम स्त्रीही उत्पन्न हुये थे इससे उनको राज्य न मिला परन्तु तिनके पिताने वशिष्ठ जी के कहने से सुद्युम्नको प्रतिष्ठान नाम नगर जो प्रयाग के निकटहै दिया सुद्युम्न ने अपने पुत्र पुरूरवा को वह पुर दिया पृषध्र तो गुरुकी गाय मारने के कारण शूद्र होगये करूषसे कारूष नामक महाबली क्षत्रीहुये नाभाग वैश्य होगये नाभाग के भलन्दन नाम उनके वत्सप्रि वत्सप्रि के प्रांशु तिनके प्रजानि तिनके खनित्र तिनके क्षुप क्षुपके विंश तिनके खनीनेत्र तिनके अतिभूत तिन के करन्धम तिनके अविक्षि अविक्षि के मरुत्त नाम पुत्रहुये जिन मरुत्तकासा यज्ञ भूतल में किसीका नहीं हुआ क्योंकि इनके यज्ञमें सब वस्तु सुवर्णहीकी बनाई गईथीं व यज्ञोषधि पान करने से इन्द्र अतीव तृप्तहुये व दक्षिणा पाय २ ब्राह्मण लोग व परिवेष्टा व सदस्य देवतालोग थे मरुत्त चक्रवर्त्ती से नरिष्यन्त तिनसे दम दम से राज्यवर्द्धन तिनसे सुधृति तिनसे नर नरसे केवल तिनसे धुन्धुमान् तिनसे वेगवान् तिनसे बुध बुधसे तृणबिन्दु तिनके इलविलानाम कन्या हुई व उन्हीं तृणबिन्दुका दूसरा विवाह अलम्बुषा नाम अप्सराके साथ हुआ तिनसे विशाल हुये जिन्हों ने विशालापुरी बसाई व इनसे हेमचन्द्र नाम हुये तिनसे सुचन्द्र तिनसे धूम्राश्व तिनसे सृञ्जय तिनसे सहदेव तिनसे कृशाश्व तिनसे सोमदत्त जिन्होंने १० अश्वमेध यज्ञ किये तिनसे जनमेजय तिनसे सुमति इतने वैशाल राजाहुये राजा तृणबिन्दु के प्रसादसे सब वैशालराजा दीर्घजीवी महात्मा पराक्रमी व धर्मवान् हुये और राजा शर्याति के सुकन्या

नाग कन्या हुई जो च्यवन मुनिको ब्याही गई और आनर्त्तनाग पुत्रथी तिन्हीं के आनर्त्त के रेवत नाम पुत्रहुये जिन्होंने आनर्त्तदेश में राज्यकिया व द्वारका पुरी बसाई रेवत से रैवत नाम पुत्रहुये इनके ककुद्मी आदि १०० पुत्र व रेवती नाग कन्याहुई तिसके विवाहकी सम्मति लेनेकेलिये कन्याको ले रैवत ब्रह्माजी के पास ब्रह्मलोक को गये उससमय ब्रह्माजी के निकट हाहा हूहू नाम गन्धर्व अति तान नाम गीतगाते थे जब तक उस राग के षड्ज मध्यम गान्धार पै स्वर हुआ चाहैं तब तक अनेक युग बीत गये रैवतने जाना अभी एकही मुहूर्त बीता होगा जब गान बन्दहुआ रैवतजीने ब्रह्माजी से अपनी कन्या के योग्य वर पूछा कि किस राजा के यहां करें ब्रह्माजीने कहा जहां २ करनेकी इच्छाहो कहिये तो हम बतावें रैवतने प्रणामकर जहां २ विवाह करना अभीष्ट था बताया व पूछा कि इन में किसके घर में इस कन्या का विवाह करें कृपा पूर्वक बतलाइये तब भगवान् ब्रह्माजी कुछनीचे मुखकर मुसुकातेहुये बोले कि जिनके २ यहां आपको विवाह करना अभीष्ट है अब उनके पुत्र पौत्र प्रपौत्र तो क्या सन्तान में भी कोई नहीं रहा इस गान के सुनने में बहुतसी चतुर्युगियां बीतगईं इस समय अट्ठाईसवीं चतुर्युगी के द्वापरयुग का अन्तहो रहा है तिससे अन्य किसी को यह कन्या देदीजिये आपके भी मित्र मन्त्री सेवक बन्धुवर्ग सेना खजाना आदि सब बहुतकाल बीतने के नष्टहोगये अब नहीं हैं यह सुन राजाने प्रणाम पूर्वक फिर पूछा कि यह तो हमने जाना कि अब वे लोग नहीं रहे परन्तु जो विद्यमानहैं उनमें किसको कन्यादेवें सो बतलाइये तब ब्रह्माजी बोले कि जिस ईश्वरका आदि मध्य अन्त नहीं है हम इस सृष्टि में हैं पर नहीं जानते व जिसका स्वरूप स्वगोचररूप जानने हेतु कभी तापस ब्रह्मादि काम जिसके अन्त के हेतु नहीं हैं व जो जन्म नाशरहित सर्वमूर्ति सर्वमय सनातन है व जिसकीही कृपा से हम विष्णुके अंशहो सृष्टि करते व कोपमूर्ति रुद्र इस संसार को नाशते व जो विष्णु स्वरूपी मध्य में सबको पालता व जो सनातन जीवों अवतारले सब भूमण्डल और गमनकी धर्म व इन्द्रादिरूप से सबकी पालनाकरता सूर्यरूपसे अँधियारी नाशता अग्निस्वरूपी सबके लिये अन्नादि पकाता पृथिवी स्वरूपीहो सबका आधार होपालता पवनस्वरूपीहो सबको स्वास देता व बजाता छिपाता जल स्वरूपीहो सबको तृप्तकरता आकाश स्वरूपीहो

जगत् भरको रहनेका स्थान देना व सब में आप व्याप्त रहता व जो अपनेही आप इस जगत् को बनाता पालता नाशताहै पर सबसे अलगहै फिर जिसमें यह जगत् है व जो इस संसारके पहिलेथा व अब सब में टिकाहै आपने आप उत्पन्न होना वह परमात्मा परब्रह्म अपने अंश से आज कल पृथिवीमें अवतरा है सो जो तुम्हारी कुशस्थलीनाम पुरीथी वहीं अब द्वारकानाम पुरी बसगई है बस वहां वे बलदेव के नाम से प्रसिद्ध केशवके अंशभूत हैं बस बहुतही उत्तम वर बनाया उन्हीं को अपनी कन्या देवो जैसे वे सर्वोत्तम वर हैं वैसीही तुम्हारी कन्याभी सर्वोत्तमा है यह कन्या वरकी भली जोड़ी बनीहै इसभांति जब ब्रह्माजी से राजा रैवतनेसुना प्रणामकर अपनी कन्याको ले चलदिया यहां पृथिवीतल में देखा तो सब मनुष्य छोटे २ व बलहीन होगये थे चलते चलते द्वारका में आय ब्रह्माज्ञा सुनाय बलदेवजी के संग अपनी कन्याका विवाह करदिया बलदेवजी ने देखा कि यह स्त्री तो बहुतही लम्बी है बस अपने हल से दबाय दिया कि जैसी उस समय की सब स्त्रियां थीं रेवती भी होगई राजा रैवत भी रेवतीको बलदेव जी को दे आप हिमालयपर तपस्या करने चलेगये ॥

दूसरा अध्याय॥

दो॰ कहत द्वितीयाध्याय मह धृष्टादिक के वंश ॥
अरुतिन चरित प्रसंग सों सौभरिकथा प्रशंस ॥ १॥

श्रीपराशरमुनि बोले कि जबतक राजारैवत ब्रह्मलोक में आया नहिं तब तक पुण्यजन सञ्ज्ञक राक्षस रैवतकी पुरी कुशस्थली में आये इन पुण्यजनों के भयसे राजाके जो ९९ भाई थे सब भागगये तिस के वंश के क्षत्रिय भी इनसबन भागगये बस इदतापूर्व्वक वैवस्वत के मनुपुत्र धृष्ट राजा हुये नभग के नाभाग तिनके अम्बरीष तिनसे विरूप तिनसे पृषदश्व तिनसे रथीनरहुये इनकी स्त्रीके इनसे पुत्र न हुआ तो अङ्गिरामुनिने जाय उत्पन्न किया उससे जो सन्तानहुई वह क्षत्रिय व ब्राह्मणोंकी मिलीहुई रहाई वैवस्वतमनु के छींकआई उसी समय नाभिरासे इक्ष्वाकु नाम महाप्रतापी पुत्रहुये इन के १०१ पुत्रहुये उनमें विकुक्षि निमि दण्ड ये तीन श्रेष्ठ हुये व शकुनि आदि ५० पुत्र उत्तरापथ के रक्षकहुये ४८ दक्षिण दिशाके राजा हुये राजा इक्ष्वाकुको अष्टका श्राद्धकरनाथा तासे पुत्र

विकुक्षि से कहा मांस लावो क्योंकि उस युगमें मांस केभी पिण्डदिये जाते अब कलियुग में मांसपिण्डका निषेध होगयाहै विकुक्षिने वनमें जाय बहुत मृग मारे घूमने २ बड़ा परिश्रम पड़ा इससे भूखलगी एक चौगड़ा उन्हीं मेंसे खाय लिया बाकी मांसले पिताको दिया इक्ष्वाकुजी ने अपने कुलाचार्य्य वशिष्ठ जीको मांस प्रोक्षण करने को बुलाया उन्होंने जैसेही मन्त्र पढ़ा विदित हुआ कि जूठा मांसहै कहा इस मांससे श्राद्ध नहीं होसक्ता जिससे विकुक्षि ने एक शश अर्थात् चौगड़ा खाय लिया इससे इनका शशाद नाम धराया जाताहै व राज्य कार्य्य के योग्य नहीं समझे जाते यह सुन राजाने विकुक्षि को घरसे निकाल दिया जब राजा इक्ष्वाकु मरे विकुक्षि वन से आय अपना राज्य करने लगे इन शशादके परंजयनाम पुत्रहुये इन्हीं के समय त्रेतायुग में एक और देवासुर संग्राम हुआ उसमें देवता हारे दैत्य जीते देवगण श्रीविष्णु के शरण में पहुंचे वहां से आज्ञा हुई कि शशाद राजर्षिके पुत्र परंजय के शरीर में हम अपने अंश से प्रवेश कर सब दैत्योंको जीतेंगे तुम लोग प्रार्थना कर उनको संग्राम में लेचलो यह सुन देवगण राजा परंजय के निकट आये व कहनेलगे महाराज आपके सहायक होनेसे हमारे शत्रु दैत्य पराजित होंगे आप सहायक हूजिये राजाने कहा हम योंही सहायक नहीं होते यदि देवराज हमारी सवारी को मिलें उनके पीठ पर चढ़ लड़ेंगे व दैत्यों को हारेंगे यह सुन इन्द्रने बैल का रूप धारण किया राजा परमानन्दितहो उस बैलके ककुद् जो कांधा तिसपै चढ़ संग्राम में पहुंचे विष्णुजीका तेजभी राजाकी देहमें आय गयाथा पहुंचतेही दैत्य पराजितहुये देवताओं की विजय हुई जिससे कि राजा बैलरूप इन्द्र के ककुद् पर स्थितहुये थे इसीसे उनका एक ककुत्स्थ नामहुआ ककुत्स्थके पुत्र का अनेहा नामहुआ इनसे पृथु पृथुसे विष्वगश्व तिनसे आर्द्र आर्द्रसे युवनाश्व तिनसे श्रावस्त जिन्होंने श्रावस्तीपुरी बसाई श्रावस्तसे बृहदश्व तिनसे कुवलयाश्व जिन्होंने उत्तङ्कमुनि के अपकारी धुन्धुनाम दैत्यको अपने २१००० पुत्रों को साथले मारडाला जिससे धुन्धुमार नामहुआ इन राजाके सबपुत्र उसदैत्य के मुखके धुआँलगने से उस लड़ाई में मरे केवल दृढाश्व चन्द्राश्व व कपिलाश्व ये तीनपुत्र बचे दृढ़ाश्व से हर्य्यश्व तिनसे निकुम्भ तिनसे संहताश्व तिन से कृशाश्व तिनसे प्रसेनजित तिनसे युवनाश्व इन राजाके पुत्र न था इसीसे

परमकृपालु ऋषि लोगोंने पुत्र होने के लिये पुत्रेष्टि यज्ञ कराई मन्त्रितजल वेदीपर धर मुनिलोग रात्रिको सोयगये रात्रिको राजा बहुत प्यासे हुये जलके लिये यज्ञशाला में आये मुनिलोगों को सोतेहुये देख जगाय न सके कि पूछलेते उसी मन्त्रित कलशका जल उठाके पीगये प्रात काल जब ऋषिगण जागे पूंछनेलगे इसकलशका जल किसने पिया इसके पीनेमे तो रानीके महाप्रतापी पुत्र होता यह सुन राजाने कहा हमने विना जाने पीलिया ६ मुनियों ने कहा आपही के गर्भ रहेगा कौनकहे राजाहीके पेटमें गर्भाधान हुआ व क्रम क्रम से बढ़नेलगा जब समय आया तो राजाकी दाहिनी कोखि चीरके पुत्र निकाला गया पर ईश्वरानुग्रहसे राजा न मरे जबबालकहुआ मुनियोंने कहा यह क्यापियेगा उस समय इन्द्रने आयकहा हमको पियेंगे व अपनी अमृतमयी कनिष्ठिका पिलादी इसीसे उनका मान्धातानाम हुआ उस अमृतमयी अंगुली के पीने से एकही दिनमें बाढ़गये ये मान्धाताजी सातोंद्वीपयुक्त सब पृथ्वी के चक्रवर्ती राजाहुये हैं उनके राज्य के विषय में यह चौपाई गाईजाती है कि॥

चौ० जहँते उदय होत रविप्राता। पुनि सन्ध्यातक जहँलग जाता॥
सकल राज्य मान्धाता केरो। लिखा पुराणन में नहिं फेरो॥१॥

राजा शशविन्दु की कन्या विन्दुमती के साथ महाराजाधिराज चक्रवर्ती मान्धाता का विवाह हुआ व पुरुकुत्स अम्बरीष मुचुकुन्द ये तीन पुत्र उत्पन्न हुये और ५० कन्या उसी समय सर्व्ववेदपाठी सौभरिऋषि यमुना के जल के भीतर १२ वर्षमे तपस्या कररहे थे उस जलमें एक सम्मदनाम मछलियों का राजा बड़ाभारी मत्स्य रहता था उसके पुत्र पौत्रादि बड़ाभारी परिवार था कोई उसके शिरपै कोई पीठपै कोई बगल में लपटाहुआ घूमता था इन बातों से वह बार २ हर्षित होताथा बहुधा ऋषिके आसपास घूमा करता सौभरिजी १२ वर्षके पीछे उसमत्स्यके परिवार व उसके बार २ प्रसन्न रहनेके चरित देख अपने मनमें चिन्तना करनेलगे कि देखो यह जड़जन्तु मत्स्य अपने पुत्र पौत्रादिकों के साथ विहरताहुआ कैसे २ आनन्द करता है हमभी इसकी भांति स्त्री पुत्र पौत्रादिकों के संग विहारकरेंगे यहविचार मुनि जलके भीतरसे निकले और कन्या हूंढ़ने के लिये चले आते २ महाराजा मान्धाता के यहां पहुँचे राजा ने मुनिका आगमनजान अर्घ्यपाद्याचमनीयादि से मुनिकी पूजाकर तब मुनि

विकुक्षि मे कहा मास लाओ क्योंकि उस युगमें मास केभी पिण्डदिये जाते थे अब कलियुग में मासपिण्डका निषेध होगयाहै विकुक्षिने वनमें जाय बहुत मृग मारे घूमने २ बड़ा परिश्रम पड़ा इससे भूखलगी एक चौगड़ा उन्हीं मेंसे खाय लिया बाकी मांसले पिताको दिया इक्ष्वाकुजी ने अपने कुलाचार्य्य वशिष्ठ जीको मास प्रोक्षण करने को बुलाया उन्होंने जैसेही मन्त्र पढ़ा विदित हुआ कि जूठा मासहै कहा इस माससे श्राद्ध नहीं होसक्ता जिससे विकुक्षि ने एक शश अर्थात् चौगड़ा खाय लिया इससे इनका शशाद नाम धराया जाताहै व राज्य कार्य्य के योग्य नहीं समझे जाते यह सुन राजाने विकुक्षि को घरसे निकाल दिया जब राजा इक्ष्वाकु मरे विकुक्षि वन से आय अपना राज्य करने लगे इन शशादके परजयनाम पुत्रहुये इन्हीं के समय त्रेतायुग में एक और देवासुर सग्राम हुआ उसमें देवता हारे दैत्य जीते देवगण श्रीविष्णु के शरण में पहुंचे वहा से आज्ञा हुई कि शशाद राजर्षिके पुत्र परजय के शरीर में हम अपने अंश से प्रवेश कर सब दैत्योंको जीतेंगे तुम लोग प्रार्थना कर उनको सग्राम में लेचलो यह सुन देवगण राजा परजय के निकट आये व कहनेलगे महाराज आपके सहायक होनेसे हमारे शत्रु दैत्य पराजित होंगे आप सहायक हूजिये राजाने कहा हम योंही सहायक नहीं होते यदि देवराज हमारी सवारी को मिलें उनके कांधे पर चढ़ लड़ेंगे व दैत्यों को हरादेंगे यह सुन इन्द्रने बैल का रूप धारण किया राजा परमानन्दितहो उस बैलके ककुद जो कांधा तिसपै चढ़ सग्राम में पहुंचे विष्णुजीका तेजभी राजाकी देहमें आय गयाथा पहुंचते ही दैत्य पराजितहुये देवताओं की विजय हुई जिससे कि राजा बैलरूप इन्द्र के ककुत् पर स्थितहुये थे इसीसे उनका एक ककुत्स्थ नामहुआ ककुत्स्थके पुत्र का अनेहा नामहुआ इनसे पृथु पृथुसे विष्टराश्व तिनसे आर्द्र आर्द्रसे युवनाश्व तिनसे श्रावस्त जिन्होंने श्रावस्तीपुरी बसाई श्रावस्तके बृहदश्व तिनसे कुवलयाश्व जिन्होंने उत्तङ्कमुनि के अपकारी धुन्धुनाम दैत्यको अपने २१००० पुत्रों को साथले मारडाला जिससे धुन्धुमार नामहुआ इन राजाके सबपुत्र उसी दैत्य के मुखके धुआँलगने से उस लड़ाई में मरे केवल दृढाश्व चन्द्राश्व व कपिलाश्व ये तीनपुत्र बचे दृढाश्व से हर्य्यश्व तिनसे निकुम्भ तिनसे संहताश्व तिनसे कृशाश्व तिनसे प्रसेनजित तिनसे युवनाश्व इन राजाके पुत्र न था इसलिये

परमकृपालु ऋषि लोगोंने पुत्र होने के लिये पुत्रेष्टि यज्ञ कराई मन्त्रितजल वेदीपर धर मुनिलोग रात्रिको सोयगये रात्रिको राजा बहुत प्यासे हुये जलके लिये यज्ञशाला में आये मुनिलोगों को सोतेहुये देख जगाय न सके कि पूछलेते उसी मन्त्रित कलशका जल उठाके पीगये प्रातःकाल जब ऋषिगण जागे पूंछनेलगे इसकलशका जल किसने पिया इसके पीनेसे तो रानीके महाप्रतापी पुत्र होता यह सुन राजाने कहा हमने विना जाने पीलिया है मुनियों ने कहा आपही के गर्भ रहेगा कौनकहै राजाहीके पेटमें गर्भाधान हुआ व क्रम क्रम से बढ़नेलगा जब समय आया तो राजाकी दाहिनी कोखि चीरके पुत्र निकाला गया पर ईश्वरानुग्रहसे राजा न मरे जबबालक हुआ मुनियोंने कहा यहक्यापिये गा उस समय इन्द्रने आयकहा हमको पियेंगे व अपनी अमृतमयी कनिष्ठिका पिलादी इसीसे उनका मान्धातानाम हुआ उस अमृतमयी अंगुली के पीने से एकही दिनमें बाढ़गये ये मान्धाताजी सातोंद्वीपयुक्त सब पृथ्वी के चक्रवर्ती राजाहुये हैं उनके राज्य के विषय में यह चौपाई गाईजाती है कि॥

चौ॰ जहँते उदय होत रविप्राता। पुनि सन्ध्यातक जहँलग जाता॥
सकल राज्य मान्धाता केरे। लिखा पुराणन में नहिं फेरे॥१॥

राजा शशबिन्दु की कन्या बिन्दुमती के साथ महाराजाधिराज चक्रवर्ती मान्धाता का विवाह हुआ व पुरुकुत्स अम्बरीष मुचुकुन्द ये तीन पुत्र उत्पन्न हुये और ५० कन्या उसी समय सर्व्ववेदपाठी सौभरिऋषि यमुना के जल के भीतर १२ वर्षसे तपस्या कररहे थे उस जलमें एक सम्मदनाम मछलियों का राजा बड़ाभारी मत्स्य रहता था उसके पुत्रपौत्रादि बड़ाभारी परिवार था कोई उसके शिरपै कोई पीठपै कोई बगल में लपटाहुआ घूमता था इन बातों से वह बार २ हर्षित होताथा बहुधा ऋषिके आसही पास घूमा करता सौभरिजी १२ वर्षके पीछे उसमत्स्यके परिवार व उसके बार २ प्रसन्न रहनेके चरित्र देख अपने मनमें चिन्तना करनेलगे कि देखो यह जड़जन्तु मत्स्य अपने पुत्र पौत्रादिकों के साथ विहरताहुआ कैसे २ आनन्द कररहा है हमभी इसकी भांति स्त्री पुत्र पौत्रादिकों के संग विहारकरेंगे यहविचार मुनि जलके भीतरसे निकल और कन्या ढूंढ़ने के लिये चले आते २ महाराजा मान्धाता के नगर पहुँचे राजा ने मुनिका आगमनजान अर्घ्यपाद्यासनदीयादि से मुनिकी पूजाकी तब मुनि

राज बोले हे महाराज। हम विवाह के अर्थ आपसे कन्या मांगने आये हैं हमारी याचा भंग न करना क्योंकि अर्थी लोग जब कभी ककुत्स्थ गोत्रवाले राजाओं के यहां आते हैं विमुख नहीं जाते इस पृथिवी में और भी राजालोग हैं कि उनके भी कन्या उत्पन्नहैं अर्थियों के अर्थ पूर्ण करनेवाला यही आपहीका कुल है आप के ५० कन्याहैं उनमें से एक हमको दीजिये जिस में हमारी पहिली याचा भंग न हो क्योंकि हम इसमे डराते हैं राजाने मुनिको महाजर्जरीभूत देख मन में कहा यदि इन महावृद्धको कन्या देतेहैं तो वह शापदेगी यदि नहीं देते तो मुनिशापदेंगे यहशोच कुछ न बोले मुनिराज यह दशादेख फिर आपही बोले हे राजन् ! चिंता क्योंकरतेहो हमने कोई ऐसी वस्तु नहींमागी जो देनेके योग्य नहो आखिर किसीन किसीको तो अवश्यहीदेवोगे फिर हममागतेहैं हमींको देवो इसमें आपकी कौनसी प्रसन्नता नहींहै हम तो जानते हैं कुछ हानि नहीं शाप से भयभीतहो हाथजोर राजा मुनि से बोले हे भगवन्। हमारे कुलकी यह रीतिहै कि जिस वरको कन्या प्रसन्न करे उसीको देतेहैं यही चिंतना करतेहैं और अदेय कुछभी नहींहै सबकुछ आपही लोगोंके लिये है मुनिराजने राजाके इस आशयको भलीभांति समझलिया कि राजा हमको कन्या नहीं देना चाहता पर साफ २ जवाब नहीं देना क्योंकि जानता है कि इस वृद्धको तो कोई भी स्त्री न प्रसन्न करेगी फिर राजकुमारी काहेको प्रसन्न करेगी मुनि यह विचार के बोले अच्छा जहा आपकी कन्या रहती हों वहा हमको भेजिये जो हमें प्रसन्नकरेगी उसीके संग विवाह करदेना यहसुन राजा मुनिशाप से शङ्कितहो कन्यारक्षक पुरुष के साथ मुनिको भेजा कि जाइये मुनिराजने अपनी तपस्या के प्रभाव से मार्ग में सकल देव गन्धर्व नरादिकों से सुन्दर व युवावस्था को प्राप्तरूप धारण किया इतने मुनिको ले कन्याओं के आगे ठाढ़कर कहा कि तुमलोगों के पिताने इन मुनिको भेजाहै कि हम जबरदस्ती नहीं कहते जिस कन्याका मनहो इनके साथ विवाहकरे यहसुन मुनिको सकलभांति सुंदर देख सबकीसब उठखड़ी हुई व कहनेलगीं कि हमारा विवाहहो हमारा विवाहहो और सब आपस में कहने लगीं कि ये हमारेही योग्यहैं तुम्हारे नहीं यही कहकह पचासोंने मुनिको घेरा व परस्पर लड़नेलगीं इतने राजा से कहा कि मुनिने ऐसारूप बनाय लियाहै कि प्रत्येक कन्या उनको चाहती है

राजाने बहुत शोच विचार पचासों के साथ मुनिका विवाह करदिया मुनि सब को अपने आश्रमपर लाये और द्वितीय विश्वकर्मा को उत्पन्नकर आज्ञादी कि इन सबके लिये अलग २ नानापक्षिगण सहित तड़ाग परमोत्तम उपवन सुन्दर २ शय्या अन्य नानाप्रकार के भोग विलासके पदार्थ बनावो उन्होंने वैसाही यत्न मुनिके कथनसे भी उत्तम २ पदार्थ बनाय दिये तदनन्तर सौभरि की आज्ञासे अक्षयानन्द नामनिधि सबघरों में आय निवसा फिर नानाभाति की सेवकी प्रत्येक गृहमें सैकरों आईं व राजकन्याओं की सेवा करनेलगीं सब राजकन्या मुनिको भोज्य लेह्यादि अनेक स्वादुके पदार्थ बनाय २ भोजन कराने व करने व भोगविलास करनेलगीं कुछ दिनोंके पीछे राजाने शोचा कि नहीं जानते कन्याओं की क्या दशाहुई सुखसे रहती हैं वा दुःखसे यह विचार मुनिके आश्रमपै आये आतेही अतिरमणीक तड़ाग उपवनादि देखे फिर वहां एक धवरहर में प्रवेशकर कन्याको कोरामें बैठाय बड़े प्रेमसे पूछा हे बत्से! यहां तुमको सुखहै वा दुःख महर्षि स्नेहरखते हैं वा नहीं कभी हमारे घरकी भी सुधि आतीहै वा नहीं कन्याने उत्तरदिया पिताजी किसीप्रकार का कष्ट यहां नहीं नानाप्रकार के पक्षियों के सुहावने बोल सुनाई देते सब प्रकार के भोजन विद्यमानहैं भांति २ की शय्याहैं महर्षि बड़ी कृपा रखते हैं पर ऐसी कौन कन्याहै जो पिताके घरका व पिता माताकी कृपा को स्मरण न करे केवल एक यही दुःख हम को है कि हमारे पति हमारे घरसे रात्रि दिन नहीं निकलते हमारी बहिनी दुःखित रहती हैं नहीं जानतीं उनकी क्या दशाहै यहसुन राजा दूसरी कन्या के मन्दिरमें गये उस कन्यासे भी वैसेही पूछा उसने भी सब भोगकी वस्तुओंका बखान किया व यही दुःख बताया कि हमारे पति हमारेही समीप बैठे रहते हैं अतः हमारी भगिनियोंके यहां नहीं जाते यही दुःखहै इसीभांति सबों के मन्दिरों में गये व सबोंने यही कहा सो सुनि राजा अतिविहर्षित व विस्मितहो सौभरिमुनि के निकट एकान्त में जाय यथाविधि बोले हे भगवन्! यह आपकी सिद्धताका प्रभाव हमने देखा ऐसा अन्य अस्मदादि किसी के नहींहै यह कितनी तपस्या का फलहै नहीं जानते इत्यादि वचनकह कुछदिन वहां रह मुनिके सग नानाप्रकार के भोग विलासादि कर अपने नगरको आये बहुत दिनों के पीछे तिन राजकुमारियों में तीन २ पुत्रहुए जो १५० होगये मुनि भोग भोगता

के उनमें बहुतही मन लगानेलगे व सोचने लगे कि भला ये हमारे इतनेपुत्र कभी तुतुरी तुतुरी बोली बोलेंगे व अपने पैरोंमे चलेंगे फिर युवावस्था को पहुँचेंगे इनके विवाह होंगे पुत्रवधू उत्तम आवेंगी इन के भी पुत्रहोंगे फिर ये पुत्र अपने पुत्रोंके साथ घूमेंगे व हम देखेंगे इत्यादि मनोरथोंकी चिन्तना रात्रिदिन करतेथे अकस्मात् एकदिन बड़ा पश्चात्ताप किया व कहा हाय अहो हमारे मोह का विस्तार कहां फँसे इन मनोरथों की समाप्ति तो हजारों लाखों वर्षलग न होगी जब एक मनोरथ पूराहोगा तो दूसरेकी इच्छाहोगी उसके पीछे तीसरे चौथेआदि की होतीही जायगी देखो पहिले मनोरथ कियाथा कि हमारे पुत्र अपने पैरोंचलेंगे सो चलनेलगे विवाह भी हुये स्त्रियां भी यथोचित मिलीं उनके पुत्रभी हुये अब पुत्रोंके पुत्रोंके पुत्रोंके देखने की वाञ्छाहोती है कदाचित् तिनके भी पुत्र देखेंगे तो और मनोरथहोंगे उसके पूर्णहोने पै और मनोरथहोंगे प्रयोजन कि इन मनोरथों की समाप्ति न होगी कहांतक कहैं जबतक जीवहै मनोरथों का अन्त न होगा यह आज हमने विचार लिया और मनोरथों में लगाहुआ जीव परमात्मा का सगीहोही नहींसक्ता हाय यह मेरी समाधि जलजीवके संग करने से नष्ट होगई यह परिग्रह मैंने किया जिसमे नानाप्रकार की बाधा होतीहैं देखिये इसी एकही शरीर के नानाप्रकार के दुःखथे जिनमे दुःख होताथा फिर ५० राजाकी कन्यालाये इनके पुत्र पौत्रादि हुये अब तो इन सब दुःख से दुःखित होना पड़ता है फिर यह बढ़ताही जावेगा इसमें दुःखके सिवाय सुख कभी होने हीवाला नहीं हाय मुझको उस थली के संगसे यह गतिमिली भाई तपस्वियों को निस्सङ्गही रहना चाहिये सङ्गसे अनेक दोष होतेहैं चाहे पूर्णयोगी भी हो सङ्ग करने से नीचे गिरायाजाता है व थोड़े योगवाले को क्या कहैं हम अब ऐसा करेंगे कि जिसमें इस परिवार का कहीं लेशभी हमारे पास न रहेगा और हम फिर इनके दुःखमें न दुःखितहोंगे अर्थात् सबके धारण करनेवाले अनिन्त्यरूप सूक्ष्मसे सूक्ष्म स्वरूप सबसे बड़े व मोटे शुक्ल व कृष्णस्वरूप ईश्वरों के ईश्वर ऐसे विष्णु की आराधना तपस्या से करेंगे जिसमें उस सच्चिदानन्द अनन्त भगवान् विष्णु में चित्तलगे कि फिर जन्म न हो ॥

चौ० सब जीवनसों अनल अनन्ता। सर्वेश्वर ज्यहि आदि न अन्ता ॥
मार्ग पार न भक्त मताग। सो गुरु गुरु हरिशरण सुजाग ॥ १ ॥

तीसरा अध्याय॥

दो॰ कह्यष तृतीयाध्याय महँ सौभरि सिद्धिक वस॥
मान्धाता के तनयकर सगर चरित्र प्रशस॥ १॥

पराशरमुनि बोले इस भांति सौभरिमुनि को अपनेही आप परम विराग हुआ पुत्र परिवार सब आसन वासनादि छोड़ स्त्रियोंको सग ले वनको चलेगये वहां वानप्रस्थाश्रम में रहनेलगे उस आश्रम की जो २ क्रिया है सब करतेरहे जिससे सब पाप जातेरहे व मनकी वृत्ति ईश्वर में पक्की होगई होने २ सन्यास धारण किया सकल कर्मकलाप भगवान् विष्णुमें अर्पित किया अच्युत भगवान के पदमें शरीर छोड़ लीनहोगये उनकी स्त्रियां उनकी पत्नी को प्राप्तहुई यह राजा मान्धाता की कन्याओं के सम्बन्ध की कथा कही जो कोई यह सौभरिचरित स्मरण करेगा व पढ़े सुनेगा ८ जन्मतक उसकी असन्मति अधर्म असन्मार्ग में मनकी वृत्ति न होगी व गृह पुत्रादि में ममता भी न होगी अब मान्धाता के पुत्रोंकी सन्तति कहते हैं मान्धाता के पुत्र अम्बरीष के युवनाश्व पुत्रहुये तिनसे हरित तिनसे अंगिराजी के संयोग से हारीत मङ्गक ब्राह्मणहुये उसी समय पाताल में मौनेयनाम छः करोरि गन्धर्व पहुंचे व वहां के नागों को जीत सम्पूर्णरत्न अपने अधिकार में करलिये सर्पोंने जाय जलशायी भगवान् की स्तुतिकी उसमें श्रीहरि जागे सर्पोंने कहा भगवान् इन गन्धर्वों से हमारी रक्षा कीजिये श्रीविष्णुजी बोले कि राजा मान्धाता के पुत्र पुरुकुत्सके देह में प्रवेशकर हम इन गन्धर्वोंको मारेंगे यह सुन भगवान् को प्रणामकर फिर नाग अपने लोकको आये व अपनी भगिनी नर्मदानाम से जोकि पुरुकुत्स की स्त्री थी कहा किसी यत्नसे राजाको यहां भेजो नर्मदाने यह सुन पुरुकुत्स को नाग लोकको भेजा वहां जाय भगवान् विष्णु के तेजसे भरेहुये पुरुकुत्सने सब गन्धर्वोंको मारा व फिर अपने नगरमें पहुँचे सर्पोंने नर्मदा को वरदान दिया कि जो कोई नमस्कार पूर्वक तुम्हारा नाम स्मरण करेगा उसे सर्पका विष न व्यापैगा॥ विष निवारण का मन्त्र॥ नर्मदायैनमः प्रातर्नर्मदायै नमोनिशि॥ नमोस्तु नर्मदेतुभ्यं त्राहिमांविषसर्पतः १ इस मन्त्रको पढ़ चाहे जिस अन्धकार में चलाजावे सर्प उसे न काटेंगे कदाचित् स्मरणके पूर्वही सर्प काटचुकाहो तो स्मरण

करने से विष न चढ़ेगा राजापुरुकुत्स के पुत्र नहीं होताथा सर्पोंने वरदान दिया तब नर्मदा नाम स्त्रीमें पुरुकुत्स से त्रसदस्युनाम पुत्रहुआ तिनसे सम्भूत हुये तिन से अनरण्य इनको दिग्विजय में रावणने मारडाला अनरण्य से पृषदश्व इनसे हर्य्यश्व तिनसे वसुमना तिनसे त्रिधन्वा तिनसे त्र्य्यारुण तिनसे सत्यव्रतजिनका दूसरानाम त्रिशंकुहुआ यह नाम वशिष्ठ की गाय मारडालने सेहुआ व उन्हींके शापसे चाण्डालता कोभी प्राप्तहुये उसी समय में त्रिशंकु वनमें थे कि १२ वर्ष तक अवर्षणहुआ विश्वामित्रजी अपनी स्त्री पुत्रादि छोड़ तपस्या करनेचलेगये थे उनकी स्त्री पुत्रादि के खाने केलिये त्रिशंकु एकमृग मारके उनकी कुटीके निकट एकवृक्ष में बाँधआते थे मुनिकी स्त्री व पुत्र खातेथे जब १२ वर्षपै मुनि लौटे त्रिशंकु के ऊपर प्रसन्न हुये त्रिशंकु की इच्छाजान सहित शरीर मन्त्र के जोरसे स्वर्ग को भेजा त्रिशंकु के हरिश्चन्द्र हुये तिनसे रोहिताश्व तिनसे ह-रित तिनसे चञ्चु चंचु के विजय व वसुदेव विजय से रुरुक रुरुकपे वृक वृकसे बाहु जो हय ताल जघादिकों से हार अपनी गर्भिणी स्त्रीके साथ वनको चलेगये वहा उनकी दूसरी स्त्रीने सौतिके गर्भ मरजाने व थँभजाने केलिये विषदेदिया गर्भ मरातो नहीं पर ७ वर्ष पर्य्यन्त थँभारहा राजा बूढ़ेतो थेही इसी अन्तर में और्वमुनि के स्थानपै मृतक होगये उनकी सगर्भारानी सतीहोने चली तब त्रिकालदर्शी और्वमुनिने अपने आश्रमसे अलग लेजाय एकान्त में रानीसे कहा तू सती न हो तेरेपेट में महाचक्रवर्ती शत्रु क्षयकारी बड़ा पराक्रमी पुत्रहै सो अबहोनेही चाहता है यहसुन रानीसती नहींहुई राजाकी दाहक्रिया कराय मुनि रानीको अपने आश्रमपर लाये कुछदिनों के पीछे उसी विष के साथ बड़ा तेजस्वी बालकहुआ मुनिने उसके सब जात कर्म्मादि किये व स-गरनाम धराया यज्ञोपवीत होजाने पै और्वजी ने चारोवेद पढ़ाये व ६ शास्त्र भार्गव एवं अग्निका अस्त्रभी पढ़ाया जब बुद्धिहुई तो सगरजी ने अपनी मातासे पूछा हेमातः! हमतुम यहां कैसे हैं हमारे पिताजी कहा हैं ये मुनिवेष धारी कौनहैं इत्यादि सब समाचार पूछे माताने यथाविधि सुनाये सुनतेही प्र-तिज्ञा की कि जिन्होंने मेरे पिताका राज्य लेलियाहै सबको मारडालूंगा यहकह हैहयसे प्रारम्भ किया उनको मार शक यवन काम्बोज पारद पह्लव इनसब देश वालों को मारा जो बचेबचाये वशिष्ठजी के शरणमें आये वशिष्ठजी ने बहुत

फटकारा व दुर्वाद कहा पर शान्त हो सगरसे कहनेलगे यतः इन मोहुआ को क्या मारते हो जानेदेवो अपने कियेको पहुँचगये इनको हमने तुम्हारी प्रतिज्ञा पालनके लिये द्विजाति धर्म्मसे बाहर करदिया बस मरगये क्योंकि लिखाहै जो अपने धर्म्मसे भ्रष्टहोजावै वा ब्राह्मणलोग जिसे पंक्ति से बाहर करदें वह लोकमें जानो जीताहुआ मरगया सो ये जीतेही मरे हैं हमने द्विजाति धर्म्मसे बाहर करदिया सगरजीने गुरुके वचन माने व बड़ी प्रशंसाकी व इनसब यवनादि देशीय क्षत्रियादिकों के वेष बदलादिये यथा यवनोंको मूड़ मुड़ाये व मूड़उघारे रहनेकी आज्ञादी शकोंके लम्बे बार रखनेकी पारद व पल्हवों को दाढ़ी रखाये रहने व स्वाहा स्वधा वषट्कार न करने वेद न पढ़नेकी इसीभांति औरोंको भी ये लोग जब वेदबाह्य होगये और ब्राह्मणोंने इनके यहां आनाजाना बन्द कर दिया तो सबकेसब म्लेच्छ होगये और महाराजाधिराज सगरभी अपनी राजधानी में आय बड़े प्रताप के साथ ससद्वीपवती पृथिवी की पालना करनेलगे।

चौथा अध्याय ॥

दो० कहब चतुर्थाध्याय महँ सगर सुतनकर नाश ॥
कपिलदृष्टिसों जिमिभयो राक्षस होन सुनाश ॥ १ ॥

पराशरमुनि बोले राजा सगरके दोस्त्रियां हुई एक कश्यपकी कन्या सुमति दूसरी विदर्भ देशके राजाकी कन्या केशिनी इन दोनोंने सन्तान होनेके लिये और्वमुनिकी आराधनाकी मुनिने आशीर्वाददिया कि इनमेंसे एकके एकही पुत्र वंशधर होगा दूसरी के ६०००० जिसको जो इच्छाहो मांगे केशिनीने एक पुत्र मांगा सुमति ने ६०००० केशिनी के थोड़ेही दिनोंमें असमञ्जसनाम १ पुत्रहुआ सुमति के ६०००० असमञ्जस से अंशुमान् हुये असमञ्जस जानी बड़ेपे पर ऊधमसे लड़कानहीं से बड़े दुष्टप्रकृति निदिन होनेसे इनके पिता जानतेथे कि जब सयानेहोंगे तब सदाचारी होजावेंगे परन्तु जबसे युवावस्था को भी प्राप्त हुये और दुराचारता न मिटी तो इनके पिताने घरसे निकाल दिया और वे ६०००० भी असमञ्जसही से समान दुराचार करने से यज्ञादिक लोक में सत्यतादि धर्म्म पगमिन्ने ? लूटने फूंकनेलगे तब सब देवगण भगवान कपिलजी की शरण में जाकर ऐसा दुःख निवेदन करनेलगे महर्षिजी ...

के ये भी ६०००० पुत्र असमजसही के से दुराचार करनेलगे फिर वह गंगार फाहे को रहेगा और आपका अवतार दु:खितजनों की रक्षा करने ही के लिये है यह सुन कपिलदेवजी ने कहा थोड़ेही दिनों में ये नाश होजायँगे इसी अवसर में राजा सगर अश्वमेध यज्ञ करनेलगे व अपने ६०००० पुत्रों को घोड़ेकी रक्षाकेलिये भेजा उस घोड़ेको पकड़ कोई पृथ्वीके विवर में समाय गया उसके खुर देखतेहुये सब पहुँचे प्रत्येक राजकुमार प्रतिदिन योजन २ पृथिवी खोदनेलगा जाते २ पाताल में राजकुमारों ने घोड़ा देखा जब वहां प्रवेश करनेलगे तो वहुतही निकट कपिलजी को देखा सबके सब अस्त्रशस्त्र उठाय दौरे कि यही हमारे घोड़े का चोर है मारो २ जाने न पावे यह सुन कपिलदेव जीने किंचिन्मात्र अपना एक नेत्रखोल राजकुमारों की ओर देखा कि उन सबों के देहसे आगउठी सबके सब भस्म होगये सगरजी ने सुना कि उन ६०००० पुत्रोंकी यह दशाहुई तो असमजस के पुत्र अंशुमान् को घोड़ा हेरने के लिये भेजा ये जाते २ वहां पहुँचे जहां कपिलदेवजी थे पहुँचतेही मुनिकी बड़ीस्तुति की मुनि ने प्रसन्नहो आशीर्वाद दिया कि जाव बहुतशीघ्र घोड़ा पावोगे व तुम्हारे पितामह यज्ञ पूर्णकरेंगे व तुम्हारा पौत्र इस लोकमें गंगाजीको लावेगा अंशुमान् ने फिर बड़ीस्तुति की व कहा कि महाराज अब यह वर दीजिये जिसमें हमारे पितृव्य जिनकी यह राख परी है स्वर्गवासी हों कपिलदेव ने कहा हमतो प्रथमही कहचुके तुम्हारा पौत्र जब गंगा लावेगा तो इन सबके देहकी राखपै गंगाजल परैगा तब सब स्वर्गवासी होजावेंगे यह भगवान् विष्णु के पादांगुष्ठसे निकसेहुये गंगाजलहीमें शक्तिहै जो कि केवल स्नान पान मार्जन करनेवालेही पुरुषको न तारै किन्तु सैकरों हजारोंवर्षके सड़ेगले वार नह हाड़ राख आदिपै जलपरनेसे उस प्राणीको भी तारदेवै यह सुन अंशुमान् भगवान् कपिलदेवके प्रणामकर पाताल से घोड़ालाय अपने पितामह के यज्ञमें पहुँचे सगरजी ने घोड़ाले यज्ञ किया व अपने पुत्रोंकी खोदने से महाजान समुद्रको पुत्रही मानने लगे अंशुमान् से दिलीप दिलीप से भगीरथ हुये जो गंगाजीको स्वर्ग से मर्त्यलोक को लाये इसीसे गंगाका एक भागीरथी नाम हुआ भगीरथ से श्रुत इनके पुत्रका भी नाभाग नाम हुआ इनसे अम्बरीष तिनसे सिन्धुद्वीप तिनसे अयुतायु तिनसे ऋतुपर्ण राजानल इनके बड़े मित्र थे व द्यूत विद्यामें बड़े

निपुण थे ऋतुपर्ण से सर्व्वकाम तिनके सुदास सुदामके सौदाम इन्हीं का मित्रसह भी नाम था जिन्हों ने शिकारके लिये वनों जाय दो व्याघ्र देखे जिन व्याघ्रों ने उस वनमें कोई मृगही नहीं रक्खाथा उनमें से एकको राजाने एक बाण से मारडाला जब वह मरनेलगा तो महाकराल मुख बड़ाभारी राक्षसहोगया दूसराभी यह कह कि हम अपने साथी का दाँव पीछे से लेंगा अन्तर्द्धान होगया कुछ दिनके पीछे राजा सौदास कुछ यज्ञ करनेलगे यज्ञकी सामग्री इकट्ठा कराय वशिष्ठजी तो यज्ञशाला से बाहरगये वह राक्षस जो उसदिन अन्तर्द्धान होगया था वशिष्ठजी का रूपधर यज्ञान्त में आया व कहनेलगा कि हम सँते बहुत हैं अभी हमारेलिये मांस मँगावो आते हैं इतना कह चलागया तुरन्त राजाके रसोईसर्दारका रूपधरके आया राजाने कहा बहुतही जल्द कहीं से गुरुजीके लिये मांसलाय बनाव वह चटजाय एकमनुष्य मारलाया उसका मांस रींध सोने के पात्रमें कर राजाके आगेधरा कि सत्य सत्य वशिष्ठजी भी आये कि प्रेमपूर्व्वक वही मांस निवेदन किया मुनि ने तुरन्त जाना कि यह अभक्ष्य मनुष्य का मांसहै इसलिये राजा को शापदिया कि जावो जिसमे तुमने हमको मनुष्यमांस खानेको दिया इससे मनुष्यमांस खानेवाले अर्थात् राक्षस होवो यह सुन राजा ने प्रार्थना की कि हमारा इस विषय में अपराध तो नहीं पर बताइये जन्मपर्य्यन्त के लिये यह शापहै वा थोड़ेही दिनों के लिये मुनिने भी जो समाधि धर देखा तो राजाका अपराध न पायागया कहाजाव जन्मपर्य्यन्तका तो शाप नहीं १२ वर्ष राक्षसहोना पड़ेगा अबतो मुखसे निकलगया यह सुन राजा ने भी गुरुको शापदेने के लिये क्रोधकर जल उठाया तब उनकी रानी मदयन्ती हाथ जोर खड़ीहुई महाराज ये कुलगुरु हैं शापके योग्य नहीं सदा पूजन करनेही के लायक हैं राजा ने विचारा कि सत्य है पर उस जलको पृथिवी में बहाने से अन्नका न होना समझ और आकाश में फेंकने से वृष्टिका न होना इसलिये अपने दोनों पैरों पै डारदिया परन्तु वह जल तो भरागी राजाके क्रोध से तप्तहोही गया था राजा के पैर कलुने होगये इसी से राजा का एक नाम कल्माषपाद हुआ वशिष्ठजी के शाप देने के पीछे तीसरे दिन राजा राक्षस होगये और वनमें घूम घूम मनुष्य खानेलगे एक दिन इनने एकान्त पर मुनि के पुत्रको देखा कि उसकी स्त्री ने उस दिन ऋतुस्नान किया था इसलिये

वह मैथुन करने में प्रवृत्त था वे दोनों इस भयानक राक्षस को देख उठभागे परन्तु झपट के ब्राह्मण को राक्षसरूप राजाने पकड़ लिया ब्राह्मणी ने बहुत २ भांति विनय किया व कहा कि आप राक्षस नहीं हैं इक्ष्वाकुवंशियों के तिलक मदयन्ती के पति राजा सौदासहैं हम अभी तृप्त नहीं हुईं हमारे पति के प्राण दान दीजिये पर राक्षसराजने न सुना ब्राह्मणी हाय हाय करती रोतीही रही और उसने ब्राह्मणको खायही लिया तब ब्राह्मणी यह कहा कि जैसे से हम अभी मैथुनसे तृप्त नहीं हुईथीं कि तुमने हमारे पतिको खा लिया ताहे से तुम भी जैसेही अब कभी मैथुन करने लगोगे तुरन्त मरजावोगे यह शापदे अपने पति के हाड़ले अग्नि में प्रवेश करगई जब १२ वर्ष के पीछे राजा का शाप छूटा और राक्षस से मनुष्य हुये तो रानी के साथ मैथुन करने में उद्यत हुये रानीने ब्राह्मणी के शाप की सुधि दिलाई राजा ने उस दिनसे स्त्रियों का सुख छोड़ दिया वशिष्ठजी की प्रार्थना राजा रानी ने पुत्र होने के विषय में की मुनिने पुत्रेष्टि यज्ञ कराय रानी के गर्भाधान कराया परन्तु वह गर्भ पुरुष के संयोग से तो हुआही न था ७ वर्षतक पुत्रही न हुआ तो रानी ने अपना पेट पत्थर से फाराय बालक निकाला इस कारण उसका अश्मक नाम हुआ अश्मक के मूलक हुये जब परशुरामजी इस पृथिवी का निक्षत्रिय करनेलगे तो इन अश्मक को स्त्रियों ने नङ्गी हो चारों ओर से घेर के बचाया क्योंकि महात्मा परशुराम नङ्गी स्त्रियों के बीच में कैसे जाते इसी से इनका एक नारि कवच नाम हुआ मूलक के दशरथ तिनसे इल विल तिनसे विश्वसह तिन से खट्वाङ्ग एक समय देवगण दैत्यों से हारे तब राजा खट्वाङ्ग को अपने यहां लेगये इनके लड़ने से दैत्यहारे देवताओं ने प्रसन्नहो कहा जो चाहो वर मांगो राजाने कहा प्रथम यह बताओ कि हम अब कितने दिन जीवेंगे देवों ने कहा दो घड़ी बस राजा तुरन्त अतिशीघ्रता से देवप्रसाद बल से मर्त्यलोक में आये व तन मन धन भगवान् वासुदेव में लगाय उन की गतिको पहुँच हरि में लीनहुये जिनके मरण के समय सप्तर्षियों ने ये श्लोकगाये कि खट्वाङ्ग समान न कोई राजा हुआ है न होगा क्योंकि मुहूर्त्तही भरमें स्वर्ग से आय भगवत में हरिचरणारविन्दों में चित्तलगाय उनकी पदवी को पहुँचे खट्वाङ्ग से दीर्घबाहु जिनका दिलीपभी नामथा तिनसे रघु हुये अब अन्त में महागर

दशरथ तिनके श्रीभगवान् संसारकी स्थिति के लिये अपने अंशसे राम लक्ष्मण भरत शत्रुघ्न इन ४ नामों से प्रसिद्ध हो, अनन्तर श्रीरामचन्द्रजी ने बाल्यावस्था ही में विश्वामित्र की यज्ञ रखाते ताड़का नाम राक्षसी को मार व विश्वामित्र हीके यज्ञमें अधम मारीचको मारा कि बाण के परनही के लागने से वह समुद्र में गिरा व वहीं सुबाहुआदि राक्षसों को भी विनाशा दर्शनमात्रहीं से अहल्या को पापरहित करदिया जनकपुर में जाय अनेक राजाओं का मान मथ जनक की अयोनिजा कन्या जानकी के संग अपना विवाह किया सब क्षत्रियों को क्षयकारी हैहयराज के कुलको नाशनेहारे परशुरामजी का वीर्य दूरकिया पिता के वचन से राज्यकी अभिलाषा छोड़ अपने भाई लक्ष्मण व सीताजी के साथ वनको गये वहां विराध खर दूषणादि व कबन्ध बालीआदि को मारा समुद्र में सेतु बांध सपरिवार लङ्का के राजा महाप्रतापी रावणको मारा उसी रावणकी हरीहुई निष्कलङ्क सीताजीको अग्नि में प्रवेशकराय प्रत्यक्ष में भी शुद्ध कराय अनेक देवगणों की स्तुति कीहुई जनकराजकी तनयाको अयोध्या में लाय भरत ने भी दिग्विजय में तीन करोड़ गन्धर्व मारे शत्रुघ्नजी ने भी महाबल पराक्रमी मधुके पुत्र लवणनाम राक्षसराजको मार व मधुपुरी के स्थानमें मथुरा नाम पुरी बसाई इसी प्रकार नानाबल पराक्रमी अतीव दुष्टस्वभाव राक्षसादिकों को मार पृथिवीका भार उतार राम लक्ष्मण भरत व शत्रुघ्न फिर जहां से आये थे वहीं चलेगये जो कोई अयोध्यावासी श्रीरामजी में अधिक अनुराग रखते थे वेभी उनके लोकको गये रामचन्द्रजी के कुश व लव दो पुत्र हुये लक्ष्मण जी के अङ्गद व चन्द्रकेतु भरत के तक्ष व पुष्कर शत्रुघ्न के सुबाहु व शूरसेन कुशके अतिथि तिनके निषध तिनके नल नल के नभ नभ के पुण्डरीक तिन के क्षेमधन्वा तिनके देवानीक तिनके अहीनगु तिनके रुरु रुरु के पारियात्र तिनके दल दलके शल शलके उक्थ उक्थ के वज्रनाभ तिनके शङ्खनाभ ति नके उषितास्व तिनके विश्वसह जिनका दूसरा नाम हिरण्यनाभ है जिनसे याज्ञवल्क्यजी ने योग सीखा हिरण्यनाभ के पुष्य पुष्य के ध्रुवसन्धि तिनके सुदर्शन तिनके अग्निवर्ण तिनके शीघ्र तिनके मरु जो योग अभ्यास धारण कियेहुये अबभी कलापग्राम में स्थित हैं मरुके प्रसुश्रुत तिन तिनके सुसन्धि तिनके अमर्षण तिनके सहस्वान

तिनके बृहद्बल जिनको अर्जुन के पुत्र अभिमन्युने महाभारत में मारा॥

चौ० ये इक्ष्वाकु वंशके भूपा। सकल प्रधान प्रमान निरूपा॥
एक ओरमों इतन्यन नाहीं। गने करोरिन की गणनाहीं॥ १॥
इनके चरित सुनतहीं प्रानी। पापन सों छूटत है ज्ञानी॥
लहत सकल सम्पतिमनमानी। कहँलग मुनि तिनके फलमानी॥ २॥

पांचवां अध्याय॥

दो० कहब पंचमाध्याय महँ निमि वशिष्ठकर शाप॥
जागे देहतजी उभय अरु तासशकलाप॥ १॥

पराशरमुनि बोले राजा इक्ष्वाकु के पुत्र जो निमि नाम थे उन्हों ने हजार वर्षतक करने के विचार से यज्ञ का प्रारम्भ कराया व वशिष्ठजी को यज्ञ कराने को कहा वशिष्ठजी ने कहा हमको तुम्हारे कहने से प्रथमही इन्द्र ने ५०० वर्ष तक यज्ञ करने के लिये न्योता है इस निमित्त पहिले उनका यज्ञ कराआवैं फिर तुमको करावेंगे पर हमको बुलाना ऐसा न हो कि अन्य किसीसे करालेवो राजा सुनके हां नहीं कुछ न बोले वशिष्ठजी ने जानाभी कि राजाकी इच्छा हमारे यहां जानेकी नहीं है पर चलेगये व इन्द्रको यज्ञ करानेलगे राजाने भी गौतमादि मुनियों को बुलाय यज्ञारम्भ करदिया इन्द्रकी यज्ञ समाप्त होने पर वशिष्ठजी बहुतही शीघ्र निमिकी यज्ञ कराने को वोआश्रम आये व देखा कि गौतमादि आधे से अधिक यज्ञ कराचुके हैं तब बड़ा क्रोधकर सोतेहुये राजा को शापदिया कि जाव तुम्हारी यह देह न रहै निमिने जागने पे जाना कि गुरुने शाप दियाहै आपने भी शाप दिया कि जिससे हम सोने थे बिना कहे सुने हमको दुष्टे शाप दिया तिससे इस दुष्ट गुरुकी भी देह न रहै यह कह शरीर छोड़ दिया राजाके शाप से वशिष्ठ जब मरे तो उनका तेज मित्रावरुण मुनिकी देह में समाय गया व उर्वशी अप्सराको देख वीर्य च्युत हुआ एक कलश में गिरा तिससे वशिष्ठ व अगस्त्य दो पुत्र हुये निमिकी देह भी तेल की नावों में धरदीगई इससे तुरन्त ही गलीभी नहीं रहीसड़ी पुनी नहीं यज्ञ समाप्त होने पे जब अपना अपना भाग लेने देवतालोग आये तो गौतमादि ऋषियों ने कहा कि राजाको आशीर्वाद देके निवाइये देवोंने निमि को बुलाया

तो बोले कि हे देवगणो ! आपलोग सब संसार के ऊपर कृपा करते हैं पर यह नहीं जानते कि उत्पन्न होने व मरने में कितने कितने कष्ट होते हैं उसमें बड़ ही क्लेश होते हैं इसलिये अब हम जीना नहीं चाहते वरन प्रत्येक प्राणी की पलकपर बैठा चाहते हैं कि सब को स्मरण रहेगे देवोंने कहा अच्छा तब से प्राणी पलक मारनेलगे राजा के पुत्रतो हुआही नहींथा कि उनके पीछे राजा होता इसलिये राजहीन राज्य होने से चोरों ने बड़ा उपद्रव मचाया तब ऋषि लोगों ने आय राजशरीर मथा तिससे एकपुत्र हुआ उसका जनकनाम पड़ा विदेह होने से विदेह मथेजाने से मिथि ये सब नाम उसी बालक के हुये विदेह के उदारवसु तिनसे नन्दिवर्द्धन तिनसे स्वकेतु तिनके देवरात तिनसे बृहदुक्थ तिनसे कृति कृतिसे विबुध विबुधसे महाधृति तिनसे कृतिरात तिनसे महारोमा तिनसे सुवर्णरोमा तिनके ह्रस्वरोमा तिनके महाराज सीरध्वज हुये इनके पुत्र होनेके लिये यज्ञ करने के निमित्त सुवर्ण के हलसे पृथ्वी जोती जाती थी कि कूड़से सीतानाम कन्या उत्पन्नहुई सीरध्वजके भाई का कुशध्वज नाम था सीरध्वज के भानुमान तिनके शतद्युम्न तिनके शुचि शुचिके ऊर्जवह तिनके सत्यध्वज तिनके कुणि कुणिके अंजन तिनके ऋतुजित् तिनके अरिष्टनेमि तिनके श्रुतायु तिनके सुपार्श्व तिनके संजय तिनसे क्षेमारि तिनके अनेना तिनके मीनरथ तिनसे सत्यरथ तिनके सात्यरथि तिनसे उपगु तिनसे श्रुत तिनसे शाश्वत तिनसे सुधन्वा तिनसे सुभाष तिनसे सुश्रुत तिनसे जय तिनसे विजय तिनसे ऋत तिनसे सुनय तिनसे वीतहव्य तिनसे धृति तिनसे बहुलाश्व तिनसे कृति बस इन्हींतक यह जनकका वंश चला ये सब मिथिलापुरीके राजा आत्मविद्याविशारद हुये हैं ॥

छठा अध्याय ॥

सो॰ कहब छठे अध्याय महँ ऐल कथा रवि वंस ॥
सुनहु सुजन जामें बहुरि चन्द्रवंश परशंस ॥ १ ॥

मैत्रेयमुनि बोले हे भगवन् ! आपने सूर्यवंश कहा वह हमने सुना अब चंद्रवंश सुना चाहते हैं जिस वंशके राजाओं की सन्तति अबतक कही जाती है कृपाकर चन्द्रवंशही सुनाइये पराशरमुनि बोले हे मुनिवर्य ! सुनिये सोम

वंशकी कथा कहते हैं जिसमें अनेक राजा बड़े २ प्रतापी कीर्त्तनीय हुये हैं यह वंश बड़े २ प्रतापी यशस्वी गुणवान् नहुषययाति कार्त्तवीर्य्यार्जुनादि राजाओं से शोभित है सुनिये भगवान् विष्णु की नाभिमे कमल जामा उससे ब्रह्मा जी हुये तिनके अत्रि अत्रिके सोम इन चन्द्रमाको ब्रह्माजी ने सब अन्नौषधियों व ब्राह्मणों व नक्षत्रों का राजा बनाया उन्हों ने राजसूय यज्ञ किया इस यज्ञके करने व सबके राजा होनेसे इनको बड़ा अहङ्कार होगया उसी अहङ्कार से सब देवोंके गुरु बृहस्पतिकी तारानाम स्त्री जबरदस्ती हरली बृहस्पतिजी ने ब्रह्मासे कहा उन्होंने व सप्तर्षियोंने बहुत समझाया बुझाया पर उन्होंने गुरुकी स्त्री न छोड़ी बृहस्पति से वैर होनेके कारण शुक्राचार्य्य चन्द्रमाके सहायक हुये व बृहस्पतिसे सकल विद्या पढ़नेके हेतु इन्द्र भी बृहस्पतिके सहायक हुये जिस ओर शुक्राचार्य्य हुये उस ओर जम्भ कुम्भादि सब दैत्य दानव हुये व संग्रामके लिये बड़े २ उपाय करनेलगे बृहस्पतिकेभी सकल देवसहित इन्द्र सहायक हुये इसभांति दैत्य व देवों से ताराके लिये बड़ाभारी तारकामय नाम संग्राम हुआ उसमें सब शस्त्रास्त्र दैत्यों ने देवोंके ऊपर व देवोंने दैत्यों के ऊपर चलाये इस संग्रामसे त्रासमान होके सब जगत् ब्रह्माके शरण होगये ब्रह्माजीने आप शुक्राचार्य्य बृहस्पति व चन्द्रमा व देवता दैत्योंको समझा य ताराको बृहस्पति को दिलादिया उस अन्तरमें ताराके गर्भ रहगयाथा उसे देख बृहस्पतिने कहा कि हमारे क्षेत्रमें अन्य किसीका बीज न रहने पावेगा इससे इस गर्भको गिरायदे तो हमारे यहां रहो बेचारी पतिव्रता तारा ने पति की आज्ञानुसार सरपतमें वेत गर्भ गिरादिया वह बालक ऐसा सुन्दर हुआ कि देवताओं का तेज उसके आगे छिपगया अब उस मनोहर बालकको देख बृहस्पति व चन्द्रमा दोनोंने चाहा कि हम लेवें तब देवगणों ने तारा से पूछा कि महाशुभ सत्य कहना यह बालक बृहस्पति का है वा चन्द्रमाका यद्यपि भलीभांति देवोंने पूछा पर मारेलज्जा के तारा कुछ न बोली तब वह बालक आप बोला कि हे दुष्टे! हमारे पिताको क्यों नहीं बताती बताव जो बताव नहीं तो अभी यह शाप दूंगा कि तू अपनी दुष्टताका फल पावेगी तब ब्रह्माजी ने बालक को रोक कर आप ताराने पूछा कि बेटी सत्य कहो लड़का बृहस्पति का है वा चन्द्रमा का मारेलज्जा के कांपतीहुई ताराने धीरेसे कहा कि चन्द्रमाका है तब चन्द्रमाने उठालिया और

बड़ा प्यारकर कहा वत्स बड़े पंडितहो तुम्हारा बुधनाम जगत है यह कह आपने घर लेगये यह कथा जानो कही चुकेहैं जैसे बुधने पुरूरवा को उत्पन्न किया जो कि बड़े तेजस्वी दानी यज्ञकर्ता हुये जिनके गुण स्वर्गलोक में नारदसे सुन मित्रावरुणके शापसे जब उर्वशी मर्त्यलोकको आई तो उन्हीं पुरूरवाके घरमें रही राजा ने भी देखा कि सब लोककी स्त्रियों में यह सर्वोत्तमा है इसलिये अतीव प्रेमपूर्वक उसमें चित्त लगाया दोनों का चित्त एक दूसरे में ऐसालगा कि देह गेहादिकी भी सुधि भूलगई राजा ढिठाईसे उर्वशीसे बोले हे सुनयने। हम तुम्हारे संग विहार किया चाहते हैं यह सुन उर्वशी बोली अच्छा परन्तु हम कुछ करार करती हैं जबतक आप पूर्ण करतेरहोगे अवश्य हमारे संग विहरोगे राजा ने कहा जो करार करनाहै हमसे कहो उसने कहा ये हमारे दो भेड़े हैं इनको सदा शयनके समीपही आप बांधे व रक्खे रहियेगा व मैथुन के समय को छोड़ कभी मैं आपको नग्न न देखूंगी और घृतही भोजन करूं-गी जब इन में से कोई बात न होगी तो चलीजाऊंगी राजाने कहा ऐसाही होगा यह कह उर्वशी के संग चैत्ररथादि वनों व कमल फूलेहुये तड़ागों के समीप भोगविलास करनेलगे यहांतक कि ६१००० वर्ष बीतगये राजाका प्रेम उसमें बढ़ताही गया उर्वशी भी राजाके संग भोगविलास करने मे इन्द्रपुरी के सुख भूलगई परन्तु उर्वशी बिना सुरलोकनिवासी गन्धर्व अप्सरा व देव गणों को स्वर्गलोक रमणीक नहीं लगताथा इसलिये उर्वशी व पुरूरवाके क-रार के जाननेवाला विश्वावसु गन्धर्व रात्रि में राजा को सोते देख उर्वशी का एक भेड़ा चुरालेगया भेड़ा आकाशमें जाय बोला उर्वशी सुन कहनेल-गी कि मुझ अनाथ बेचारीका पुत्र कौन लेगया अब मैं किसके शरण को जाऊं राजा ने सुना परन्तु यह सोचा कि जो हम नंगे उठेंगे तो उर्वशी देखेगी तो चलीजायगी इसलिये न उठे तबतक और गन्धर्व आये और दूसराभी भेड़ा चुरालेगये उसकाभी शब्द उर्वशी सुन कहनेलगी मुझ अनाथका दूसरा भी पुत्र कोई लेगया अब किसके शरणजाऊं हम तुम्हारे समान राजा के संग नाथकरी यह सुन राजा न सहनकरके जाना कि अंधियारी रात्रि तो है उर्वशी नंगेभी हमको न देखसकेगी इसलिये खड्ग हाथमें लेकर रात्रि में हम चिल्लाकर कहतेहुये दौड़े गन्धर्वों ने इतने में बड़ी चटकीली बिजुली चमकादी जिससे

बनाय उजियाली छायगई उर्वशी राजाको नंगेदेख उनके आकाशको चलगई गन्धर्व भेड़ें छोड़ आकाश पै चलेगये राजा भेड़ेंपाय परमानन्दित है अपने शयनस्थान में आये पर उर्वशी को न देख विक्षिप्तोंकी भांति रोनेलगे है प्रिये कहांगई ठहरो नेठजा इत्यादि वचन कहनेलगे उर्वशी ४ अन्य अप्सराओं के संग एकबार कुरुक्षेत्र में आई राजा देख पकड़ने दौरे तब बोली राजन् रोदन न कीजिये आपसे मुझ में गर्भहै वर्षदिन के पीछे इसी स्थानपर आइयेगा मैं आय आपको पुत्रदेजाऊंगी और एक रात्रि संग भी रहूंगी राजा इस बात को सुन परमानन्दितहुये वर्षदिन बीतने पै उर्वशी आई आयुर्नाम पुत्र देगई व एक रात्रिरह अन्य पुत्र के लिये गर्भ धारण करालेगई इसीभांति वर्ष २ के पीछे ५ बार आई व पुत्र देदेगई अन्य अप्सराओंसे राजा की सदा बड़ाई करती रही जिससे सबका मन होताथा कि इस राजा के संग कभी हम भी विहार करतीं तो अच्छाथा एकबार राजा से उर्वशी ने कहा कि आप इन गन्धर्वों से वरमांगिये तो हमें आपको देडालें राजा ने गन्धर्वोंसे कहा अन्य किसी पदार्थकी अभिलाषा हमको नहीं केवल उर्वशी के लोक के जाने व इसके संग विहार करने की अभिलाषाहै सो आपलोगों से मांगतेहैं गन्धर्वों ने यह सुन एक अग्निस्थाली राजा को इस आशय से दी कि इसमें अग्नि निकाल अग्निहोत्र करनेसे उर्वशीलोक मिलेगा वहां उसकेसंग विहारभी होगा यही राजासे कहभी दिया राजा उस स्थाली को लेआये आन २ एक वन में चिन्तना करनेलगे कि हाय ! मैंने बड़ी मूर्खता की जो स्थाली लाया उर्वशी न लाया यह सोच स्थाली वनमें धर अपने पुरको आये रात्रिको सोगजागे तो सोचने लगे कि उर्वशी के लोक पाने के लिये गन्धर्वों ने हमको अग्निस्थाली दी थी सो हम वन में धर आये अब जाय लेआवें यह विचार जहां धरआये थे गये अग्निस्थाली वहां न थी उस स्थानपै एक पीपल जमआया था जिसके भीतर एक शमीका वृक्षभी था उसे देख सोचे कि ये वृक्ष उसी अग्निस्थालीही से जमे हुये हैं इससे इनसे दो लकड़िया तोड़लेवें उनका आपस में घिसें उससे जो अग्नि उत्पन्नहो उर्वशीलोक पाने के लिये उसी की उपासना करें यह विचार लकड़ी अपने पुरको लाय वहां लकड़ी अंगुलों से नापने व गायत्री पढ़ने लगे गायत्री पढ़तेही गायत्री के अक्षरों के समान अर्थात् २४ अंगुली की

कही होगई उसे मथ अग्नि निकाला उस अग्निमें अनेक यज्ञकिये जिनसे गन्धर्वलोक मिला व उर्वशी का सगहुआ एकही अग्निसे राजा पुरूरवाने तीन अग्नि उत्पन्न किये ॥

सातवां अध्याय ॥

दो० कहब सप्तमाध्याय महँ वंश अमावसु केर ॥
जहँ जह्न्वादिक राजकुल जन्म परशुधर टेर ॥ १ ॥

पराशरमुनि बोले राजा पुरूरवा के उर्वशी से आयुष धीमान् अमावसु विश्वावसु शतायु ये ६ पुत्रहुये तिनमें अमावसु के भीमनाम पुत्र भीमके काञ्चन काञ्चन से सुहोत्र सुहोत्र के जह्नुराजर्षि हुये जो कि यज्ञ करतेथे उस समय गंगाजी का जल बाढ़के यज्ञ सामग्री बोरनेलगा भगवान् को ध्यानकर परम क्रोध संयुक्तहो सब गंगाकी गंगा पीगये तब सप्तर्षिलोगों ने आय राजा की बड़ी प्रार्थनाकी व कहा कि अब गंगाजल छोड़ दीजिये ये तुम्हारी कन्या होजावेंगी यह सुन दहिनेकान से जह्नुराजर्षि ने गंगाजल छोड़दिया तो फिर धारावही तबसे गंगाका एक जाह्नवी नामहुआ जह्नु के सुजन्तु तिसके अजक तिसके बलाकाश्व तिसके कुश कुशके कुशाम्ब कुशनाभ अमूर्त्तरय अमावसु ये ४ पुत्रहुये तिनमें कुशाम्बने इन्द्रके समान पुत्रहोने के लिये तपस्या की तिसकी उग्रतपस्या देख इन्द्रने जाना हमारे सदृश कोई न हो इसलिये आपही आप पुत्रहुये सोई परमधर्मात्मा राजागाधि हुये गाधि के सत्यवतीनाम कन्या हुई तिसको भृगुवंशी ऋचीकमुनिने मांगी राजा गाधिने देखा कि बड़े क्रोधी इस वृद्धब्राह्मण को कन्या न देनीचाहिये इसलिये जिन घोड़ों का एक कान श्याम रंग हो अन्य सब शरीर चन्द्रसमान शुक्लवर्ण हो चाल पवन के समान जल्दहो ऐसे १००० घोड़े कन्या के दाममांगे कि मुनि न कहीं पावेंगे न हम विवाह करेंगे यह सुन ऋषि वरुण के समीप जाकेगये वैसेही सहस्र घोड़े मांग राजाको देदिये व सत्यवती का विवाह करलिया सत्यवती कुछ दिन बाद पुत्रहोने के लिये ब्रह्मर्षि ऋचीकसे चरु मांगा राजा भी मेरे भाई नहीं है थोड़ी क्षीर और बनादेने तो माता भी भाई होता मुनिने क्षत्रिय का वीर्य रखा तस दूसरी क्षीर बनाई व कहा कि यह क्षीर तुम खाना व दूसरी तुम्हारी

माता इतना कह कर चलेगये सत्यवती की माता आई कहनेलगी हे बेटी ! सब कोई अपना पुत्र गुणी चाहता है स्त्री के भाईको नहीं वैसा चाहता इसलिये मुनिने तुम्हारे निमित्त अच्छी खीर बनाईहोगी सो यह तुम हमको दो हमारी तुम खाओ क्योंकि हमारे पुत्रमे सकल भूमण्डल की पालना होनीचाहिये ब्राह्मण को बहुत बलवीर्य्य क्या करना है यह कह दोनों ने परस्पर खीर बदललिया व आया मुनिने वन से आय सत्यवतीको देखा तो अतीव विकराल क्षत्रियवीर्य्य रूप पानेमे मुग्धहोगया था कहा दुष्टे तूने जानकरकेहै कि अपनी माताबाली खीरखाई यह बहुतही खराब हुआ क्योंकि हमने इस खीर में सकल शूरता वीरता वीर्यबल सम्पत्तिया आरोपित की थीं व तुम्हारी खीर में सम्पूर्ण शान्तिज्ञान सहनशीलतादि ब्राह्मणों की सम्पत्तिया इस उलटापलटी के कारण तुम्हारे अतिभयानक कठोरास्त्र धारण करनेवाला मारण में निपुण क्षत्रियोंका आचार करनेवाला पुत्रहोगा व तुम्हारी माताके परमजितेन्द्रिय यम नियमकारी ब्राह्मण स्वभाव महातेजस्वी पुत्रहोगा यहसुन सत्यवती बहुत भयभीतहो मुनिके पैरोंपर गिरी व रोतीहुई कहनेलगी भगवन् मैंने अज्ञान में ऐसा कामकिया है दयाकीजिये ऐसा पुत्र न मेरेहो चाहे पौत्रहो मुनिने कहा अच्छा पौत्रही ऐसा होगा कुछ दिनके पीछे सत्यवती के जमदग्निमुनि हुये व तिसकी माता के विश्वामित्रजी सत्यवती मरने पै कौशिकी नदी हुई जमदग्निजी का विवाह इक्ष्वाकुराजी रेणुराजाकी कन्या रेणुका के साथ हुआ तिसमे जमदग्निजी ने सकललोक गुरुनारायणजी के अंश क्षत्रियोंके वंशनाशक भगवान् परशुराम जीको उत्पन्न किया विश्वामित्रजी के तो भृगुवंशी शुनश्शेफ नामपुत्र देवों के देनेसे हुये जिनका पीछे देवरात नामहुआ तिसके पीछे और भी मधुच्छन्द जयकृत देवदेव अष्टक कच्छप हारीतकादि विश्वामित्रके पुत्र हुये तिनके बहुत कौशिकगोत्र अन्य २ ऋषियों में हुये ॥

आठवां अध्याय ॥

श्लो० ऐलस्य सुधाम्नायस्य दौरुद्रस्य नृपात्मजम् ॥
यत्रेताप्लव्यपत्यानि धर्माणि श्रुतितसु महाहता ॥ १ ॥

पराशर मुनि बोले कि मैत्रेय पुरूरवा के जो आयुनाम पुत्र थे उनके यज्ञ ग्रहण किया ॥

के साथ विवाह हुआ तिसमें उन्होंने नहुष क्षत्रवृद्ध रम्भ रजि अनेना ५ पुत्र उत्पन्न किये उनमें क्षत्रवृद्ध के सुनहोत्रनाम पुत्र हुये तिनके काश लेश गृत्स मद ३ पुत्र हुये गृत्समद के शौनकेय हुये जिन्हों ने चातुर्वर्ण्य यथाविधि फैलाया काश के काशिराज तिनमे दीर्घतमा तिनके धन्वन्तरि हुये ये सकल संसिद्धियों के जाननेवाले व सब शास्त्रोंके वेत्ता हुये भगवान् नारायण ने क्षीरसागरमें जन्महोनेके लिये इनको वरदान दिया व कहा कि काशिराजके गोत्र में अवतार ले तुम वैद्यविद्या के ८ भागकरोगे व यज्ञोंमें तुम्हारा भागभी लगा करेगा तिन धन्वन्तरि के केतुमान् हुये तिनके भीमरथ तिनके भी दिवोदास तिनके प्रतर्दन इन्होंने भद्रश्रेण्यवंश का नाश किया उसमें अनेक शत्रुओंको जीता इससे इनका दूसरा शत्रुजित् नामहुआ इन्होंने अपने पुत्र को वत्स २ कर पुकारा इसलिये वह वत्सही नाम होगया पर सत्य बोलने के कारण उन्हीं का ऋतध्वजनाम हुआ फिर इनको कुवलयनाम एक अश्व मिला इससे कुवलयाश्वभी एक नाम हुआ तिन वत्सके अलर्कनाम तनय हुये जिसके लिये यह पद्य अबभी गायाजाता है ॥

चौ० छासठि सहस वर्ष महि माहीं। बिन अलर्क दूसर नृप नाहीं ॥
युवा अवस्था में क्षिति भोगा। इन काहू कर नाहिं नियोगा ॥ १ ॥

अलर्क के सन्नति नाम पुत्र हुये तिनके सुनीथ तिनके सुकेतु तिनके धर्मकेतु तिनके सत्यकेतु तिन के विभु विभुके सुविभु तिन के सुकुमार तिनके भी धृष्टकेतु तिनके वैनहोत्र तिनके भार्ग भार्गके भार्गभू इनसे चातुर्वर्ण्य प्रवृत्त हुये ये काशसंज्ञक राजा हुये अब रजिकी सन्तति सुनिये ॥

नवां अध्याय ॥

दो० कह्य नवम अध्याय महँ रजिसुत दाग पुरान ॥
जिमि नाश्यो पुनि क्षत्रनृप वंश कथन मनमान ॥ १ ॥

पराशरमुनि बोले राजा रजिके अतुलपराक्रमी ५०० पुत्र हुये उसी समय देवता दैत्योंसे दनासुरनाम संग्राम होनेवाला था देवता व दैत्य दोनोंने ब्रह्माजीसे पूछा कि हमलोगों में कौन जीतेगा। ब्रह्माजीने कहा जिसकी ओर राजा रजिक

पुत्रहोंगे दैत्योंने अतिशीघ्र जाय रजिसे कहा आप अपने पुत्र भेजें तो हम देवों से जीतें रजिने कहा बहुत अच्छा भेजेंगे पर देवताओंके हारनेसे इन्द्र हमी होंगे दैत्योंने कहा इन्द्र तो हम अपने प्रह्लादहीको बनावेंगे चाहो सहायता करो व न करो यह कह चलेगये इतने में देवगण आये उनसे भी इन्द्र होनेके लिये कहा उन्होंने कहा अच्छा तुम्हीं इन्द्र होना जितावो तो रजिने अपने पुत्रोंको ले देवोंकी सहायता की उसमें लक्षों दैत्य मारे व बचे बचाये भाग खड़ेहुये इन्द्रकी विजय हुई तब पुरन्दर राजा रजिके चरणों पै गिर कहने लगे आपने हमको अभय किया इसलिये हमारे पिताहो व धन्यहो कि जिसका पुत्र मैं इन्द्रहूं यह सुन राजा रजिने हँसके कहा कि इस भांति के प्यारे वचन तो शत्रुभी कहै तो उसके ऊपर दया की जाती है फिर तुमतो देवताहो अच्छा जाव इन इन्द्रपदवी न लेंगे लड़का बनके मांगते हो तुम्हीं लेजाव यह सुन इन्द्र तो इन्द्रपदवी भोगने लगे रजि अपने घरआये अपना राज्य भोगनेलगे जब रजिमरे तब नारदजीने उनके पुत्रोंको बहँकाया कि इन्द्रपदवी तो तुम्हारे बापकी है अब क्यों नहीं लेते रजि पुत्रोंने यहसुन इन्द्रके समीप जाय तिनकी पदवी मांगी इन्द्रने नहीं दी पर वे तो बड़े बलीथे जबरदस्ती इन्द्रको जीत आप इन्द्रपुरी का राज्य करनेलगे इस भांति बहुत दिनोंतक वे लोग इन्द्र बने रहे एकदिन कहीं एकान्त में बैठेहुए बृहस्पति जीको देख दीनतापूर्वक प्रणामकै इन्द्र बोले महाराज अब तो कोई बेरकोभर भी नहीं देता लीजिये कौन करे क्याकरें सो बताइये बृहस्पतिने कहा अबतकी ऐसा कहेहोते कि दैत्योंकोही किसी न किसी उपाय से हमने पाले पगके रजिके नि- कट नाहक गये अच्छा अब थोड़ेही दिनोंमें तुमको तुम्हारे पदपे स्थापित करा- वेंगे यह कह प्रतिदिन उन लोगोंकी बुद्धि अभिचार की ओर लगानेलगे व पूर्वै इन्द्रकी वृद्धि के लिये हवनादि करते यहांतक कि उन सिवारों की बुद्धि धर्म मोहमें डाली कि वे ब्राह्मणों के वैरी शुभधर्मत्यागी वेदने पाखण्डरत होगये तब वे नानाप्रकार के अधर्म करने से बलहीन होगये तब इन्द्रने सबको मार त्रिलोकी का राज्य लेलिया व पुरोहित के मन्त्रों से फिर बलवान् होगये जो कोई यह इन्द्रके पदच्युत होनेकी कथा सुनता है वह अपने अधिकार से कभी नहीं गिरता रम्भके कोई पुत्र न था क्षत्रवृद्धसे प्रतिक्षत्र हुये तिनके सञ्जय तिनके विजय तिनके सहदेव तिनके हर्यवर्द्धन तिनके सहदेव तिनके अदीन

तिनके जयत्सेन तिनके सम्कृति तिनके क्षत्रधर्म्मा इतने क्षत्रवृद्ध के वंशमें हुये अब नहुष का वंश कहते हैं ॥

दशवां अध्याय ॥

दो० कह्य दशम अध्याय महँ नहुष तनूज ययाति ॥
वंश सुने ज्यहि नरनको अभिमत सुफलददाति ॥ १ ॥

पराशरमुनि बोले यति ययाति सयाति अयाति वियति कृति ये ६ नहुष के बड़े पराक्रमी पुत्रहुये यतिने राज्यकी इच्छाही न की इसलिये उनसे छोटे ययाति राजाहुये इनके दो स्त्रियाथीं एक शुक्राचार्य्य की कन्या देवयानी दूसरी वृषपर्व्वा दैत्यराजकी शर्म्मिष्ठा उनमें देवयानीसे यदु व तुर्व्वसु दो पुत्रहुये द्रुह्यु अनु पुरु शर्म्मिष्ठा से शुक्राचार्य्य के शापसे युवावस्थाही में ययाति वृद्धहोगये शुक्रकी प्रसन्नता से अपनी बुढ़ाई ज्येष्ठपुत्र यदुको दे उनकी युवावस्था आप लेनेके लिये कहा कि तुम्हारे नानाके शापसे युवावस्थाही में हमको वृद्धावस्था आगई है सो तिसे तुम्हारे नानाकेही अनुग्रहसे तुमको दियाचाहते हैं व तुम्हारी युवावस्था हज़ारवर्षके लिये हम लिया चाहते हैं क्योंकि अभी भोग करनेसे हम तृप्त नहीं हुये इससे तुम उसके देनेमें निषेध न करना यह सुन यदुने वृद्धावस्था की इच्छा न की तब ययाति ने शाप दिया अब तुम्हारी सन्तान में से कभी कोई राजा न होगा इसके पीछे राजाने द्रुह्यु तुर्व्वसु अनुसे भी अपना बुढ़ापा देने व उनकी जवानी लेनेका कहा उनमें भी प्रत्येक ने अंगीकार न किया तो हरएक को वही शापदिया जो यदुको दियाथा तब सब से छोटे शर्म्मिष्ठा के पुत्र पुरुसे कहा उन्होंने बड़ी प्रसन्नतासे अपनी जवानी पिताको दी व पिताकी बुढ़ाई आपने ली उस पुत्रकी जवानीसे पिताने १००० वर्षतक धर्म्मसहित स्त्रियों के संग भोगकिया व राज्य पाला पोषा विवाहिता स्त्रियोंके विशेष एक विश्वाचीनाम अप्सरा भी भोग करनेके लिये थी उसमें प्रतिदिन भोग करतेहुये यही चाहते थे कि अब हम तृप्त होजायँगे अब तृप्त होगये परन्तु दिन २ तृष्णा बढ़ती ही गई शांत न हुई एक दिन उससे हायमोंध ययाति यह कथा गानेलगे ॥

चौ० कबहुं न काम भोगसों कामा। शांत होत यह सत्य कलामा ॥
जिमि हविसों नहिं अनल बुझाई। यहनै ज्ञान न कबहुं अघाई ॥ १ ॥

जो पृथिवी महँ व्रीहि यवादी। पशु सुवर्ण नारी इन आदी॥
इन एकहु सों भृटत मन नाहीं। तासों नृप त्यागहि इन काहीं॥ २॥
जो न पाप सब भूतन माहीं। करै भाव अपनो दुख याहीं॥
तो समदृष्टि पुरुष कहँ सबहीं। दिशा होत सुखमय न दुखवहीं॥ ३॥
जो दुर्म्मति दुरत्यज अरु जोई। खात पचत नहिं तृष्णा सोई॥
त्यहित्यागत नृप सब सुखलहई। देखु निचारि कहा कोउ कहई॥ ४॥
दांत खियात चलत अरु केशा। श्वेत होत अरु झरत कुकेशा॥
पर न धनाशा जीवन आशा। कबहुँ घटत नितबढ़तखुलाशा॥ ५॥
विषयासक्त चितहै मेरो। वर्ष सहस्र गये यहि फेरो॥
ताहू पर तृष्णा दिन राती। बढ़त जात विषयन महँ धाती॥ ६॥
तासों यहि तजि मैं मनआपन। लाय ब्रह्म महँ करहुँ सुजापन॥
है निर्द्वन्द्व निर्म्मम नीके। मृगन सग विचरहुँ विधि ठीके॥ ७॥

पराशरमुनि बोले कि पुरु अपने पुत्रने अपनी जरावस्थाले न उनकी युवावस्था उनको दे व अपना राज्य भी उन्हींको दे आप तपस्या करने को वनको चलेगये दक्षिण व पूर्व की दिशा में तुर्वसुको स्थापित किया था पश्चिम में द्रुह्युको दक्षिणमें यदुको उत्तरमें अनुको इन सबको मण्डलाधिप राजा बनायदिया सब पृथ्वीके राजा जेष्ठ पुरुही को बनाय राजा ययाति वनको गये॥

ग्यारहवां अध्याय॥

दो॰ अब शुभ एकादश्याय महँ अतिपुनीत यदुबंस॥
कहत जहां हरि अवतरे कीन्हें दुष्ट विध्वंस॥ १॥
ग्यारहें अध्याय महँ कार्त्तवीर्य्य नृप साथ॥
जो अतिगर्व्वित है भोउ परशुराम के हाथ॥ २॥

पराशरमुनि बोले कि इसके पीछे ययाति के प्रथम पुत्र यदुका वंश कहेंगे जिसमें अशेषलोकनिवासी मनुष्य गन्धर्व यक्ष राक्षस गुह्यक किम्पुरुष अप्सरा उरग विहग दैत्य दानव देवर्षि ब्रह्मर्षि मोक्षकी इच्छा कियेहुये व धर्मार्थ काम मोक्षकी वाञ्छा कियेहुये इनसबों से स्तुति कियेहुये अपरिमितमाहात्म्य अपने अंशमें श्रीकृष्णचन्द्रने अवतार लिया इस यदुवंश के सुनने में मनुष्य

सब पापोंसे छूटजाताहै क्योंकि इसमें विष्णुनाम परब्रह्म परमात्माने अवतार लियाहै यदुके सहस्रजित् क्रोष्टु नल व रघु ४ पुत्रहुये सहस्रजित् के शतजित् तिनके हैहय वेणु व हय ३ पुत्रहुये हैहय के धर्मनेत्र तिनके कुंति कुंतिके साहंजि तिनके महिष्मान् तिनके भद्रश्रेण्य तिनके दुर्दम तिनके धनक धनक के कृतवीर्य्य कृताग्नि कृतवर्म्मा कृतौजा ये ४ पुत्र हुये जो कि वीर्य्य से अर्ज्जुन हुये जो कि सप्तद्वीपवती पृथिवी के पति व जिनके सहस्रबाहु थे जिन्होंने भगवान् विष्णुके अवतार अत्रिके पुत्र दत्तात्रेयजी की उपासनाकर सहस्रबाहु अधर्मसेवा निवारण धर्मसे पृथिवी जीतना धर्महीसे पालनकर शत्रुओं से सदा जीतना ससार भरमें प्रख्यातपुरुषसे मृत्यु इतने वरमांगे व पाये तिन्होंने इस सब पृथिवी की पालना धर्महीके साथकी व दश सहस्र यज्ञ किये तिनके विषय में यह पद्य अवभी गायाजाता है कि॥

चौ० कार्त्तवीर्य्य गति कहँ कोउ भूपा। कबहुँ न जैहँ कहत अनूपा॥
यज्ञ दान तप प्रश्रय दम से। कौनिउँभांति न पहुँचे यमसे॥ १॥

इस राजाके नाम लेनेसे अबभी चोरीकी वस्तु मिलजाती है उसके राज्य में तो चोरीका नामही न था इसभांति पचासी सहस्र वर्षतक उन्होंने एकक्रमही का राज्य किया इन्हीं के समय में सब देवता दैत्य गन्धर्वों के जीतने वाला लंकाका राजारावण माहिष्मती नाम इनकी पुरी में दिग्विजय करने के लिये आया और नर्मदा नदी में क्रीडा करते हुये मदान्धी मून नगन इन्होंने उसे पकड बलिप्रदानके पशुकी भांति बांध अपने द्वारमें बांधदिया व ८५००० वर्ष राज्य करने के पीछे भगवान् विष्णु के अंशसे अवतरेहुये भी परशुरामजीके हाथसे मृत्युपाया तिनके १०० पुत्रहुये पर शूर शूरसेन वृष्णि मधु व जयध्वज ये ५ प्रधान हुये जयध्वज से तालजंघ तालजंघ से तालजंघही नाम के १०० पुत्रहुये तिनमें वीतिहोत्र सबसे ज्येष्ठ पुत्रथा व दूसरा भरत नाम हुआ भरत से वृष व सुजान दोहुये वृषके मधु मधुके वृष्णिआदि १०० हुये जिससे इस गोत्रकी वृष्णिसंज्ञा हुई व मधुसे माधवता हुई यदुके नामसे यादवसंज्ञा हुई॥

बारहवां अध्याय॥

दो० द्वादशयें अध्याय महँ यदुसुतक्रोष्टुक वंश॥
वर्णव जहँ ज्यामघ नृपनि नारिवश्य प्रशंश॥ १॥

पराशरमुनि बोले यदुके पुत्र क्रोष्टुके वृजिनीवान तिनके स्वाहि स्वाहिके रुशद्गु तिनके चित्ररथ तिनके शशबिन्दु ये भी चक्रवर्ती राजा हुयेहैं इनके १००००० स्त्रियां थीं व १०००००० पुत्र तिनमें पृथुयशा पृथुकर्मा पृथुजय पृथुकीर्ति पृथुदान पृथुश्रवा ये ६ प्रधानहुये पृथुश्रवाके तम तमके उशना जिन्होंने १०० अश्वमेध यज्ञ किये इनके पुत्र शितिनेयु नाम हुआ तिनके रुक्मकवच तिनके परावृत इनके रुक्मेषु पृथुरुक्म ज्यामघ पालित हरित ये ५ पुत्रहुये इन ज्यामघ का यह पद्य अबभी गायाजाता है कि॥

चौ० भार्य्यावश जो ह्वै हैं कोऊ। अरु जो मरे नारिवशी सोऊ॥
तिनमें ज्यामघ श्रेष्ठ बखाना। शैब्यापति अतीव अज्ञाना॥ १॥
पुत्र हीन शैब्या अरु आपू। सुत कामना भई करि दापू॥
शैब्याधीन कीन्ह पुनि ब्याहू। यशहीन भुवि गये अथाहू॥ २॥

उन राजा ज्यामघ ने एक समय बड़ेभारी संग्राम में अतिप्रबल शत्रुओंको जीता वे शत्रुलोग अपनी २ स्त्री पुत्र बंधु कोष गृहादि छोड़ भागगये वहां ये जाने जाय देखा तो हाय २ भाई पिता माता इत्यादि करती हुई एक राजकन्या बैठी है उसको देख अतिप्रीति हुई व चिन्तना करने लगे कि हमारे पुत्र नहीं है और यह स्त्री कन्या है इसलिये ईश्वरने इसे भेजाहै इस पातकी पै च ढ़ाय घरलेजावें व इस के संग विवाह करें कि पुत्रहो यदि शैब्याकी आज्ञाहोगी तो अपना विवाह करेंगे नहीं तो देखा जायगा यह सोच रथमें चढ़ाय अपने नगरको लाये विजयी राजाके देखने के लिए सब मन्त्री पुरजनों के साथ शैब्या द्वारपै खड़ी थी राजारथ से उतरे और उस कन्याको बैठीहुई देख मारे क्रोधके ओठ कपाती हुई शैब्या राजासे बोली कि चंचलचित्त यह तुम्हारे संग कौनहै जल्द बताओ राजा स्त्रीवश भी थेही उसके पूछने से घबड़ागये कुछ उत्तर न देसके कहने २ लगे कि यह हमारी पतोहू है शैब्या बोली कि हमतो बांझहैं और कोई तुम्हारे स्त्री नहीं कि पुत्र उत्पन्न हुआ फिर यह कहां से राजाने कहा

जब तुम्हारे पुत्रहोगा उसके सग विवाह करेंगे यह सुन शैव्या प्रसन्नहुई व अपने घरकोलाई ईश्वरानुग्रह से शैव्याके गर्भ रहा दशमास पै पुत्रहुआ पिता ने उसका विदर्भ नाम धराया व उसी के साथ उस राजकन्या का विवाह किया विदर्भ के उस स्त्री में क्रथ व कौशिक दोपुत्र हुये फिर रोमपाद नाम तीसरा बालक हुआ रोमपाद के बभ्रु बभ्रु के धृति व कौशिक के चेदि जिनकी संतति के चैद्य राजाहुये क्रथके कुन्ति कुन्तिके वृष्णि वृष्णिके निवृति निवृतिके दशार्ह तिनके व्योमा तिनके जीमूत तिनके विकृति तिनके भीमरथ तिनके नवरथ तिनके दशरथ तिनके शकुनि तिनके करम्भि तिनके देवरात तिनके देवक्षत्र तिनके मधु मधु के अनवरथ तिनके कुरुवत्स तिनके अनुरथ तिनके पुरुहोत्र तिनके अंश तिनके सत्वत इन्हीं से सात्वतवंशी कहाये यह ज्यामघ की सन्तति श्रद्धापूर्वक सुनने से प्राणी सब पापों से छूटता है॥

तेरहवां अध्याय॥

दो० तेरहयें अध्याय महँ सत्वत वंश पुरान॥
करयै जहां स्यमन्तमणि कथा सहित विज्ञान॥ १॥

पराशरमुनि बोले कि सत्वत के भजिन भजमान दिव्य अंधक देवावृध महाभोज वृष्णि ये ७ पुत्रहुये भजमानके निमि कृकण वृष्णि शतजित् सहस्रजित् अयुतजित् हुये देवावृध के बभ्रु इनके लिये भी गाया जाता है कि जैसा हमसे सुनते हैं वैसेही निकटसे भी देखते कि बभ्रु मनुष्यों में श्रेष्ठ व देवावृध देवोंके समानहैं क्योंकि बभ्रु व देवावृध के उपदेश से १०६७४ पुरुषनें महाभोज अतिधार्मिक हुये इन्हींके नाम से भोजवंशी कहाये वृष्णि के सुमित्र व युधाजित् दो पुत्रहुये सुमित्र के अनमित्र व अग्निनी दो पुत्र हुये अनमित्र से निघ्न निघ्नके प्रसेन व सत्राजित इन सत्राजितके मित्र भगवान् सूर्यनारायण थे एक समय समुद्रके तटपै बैठ सत्राजित ने सूर्यकी स्तुतिकी सूर्यनारायण प्रसन्नहो सुन्दर मूर्त्तिसे सत्राजित के आगे खड़ेहुये सत्राजित ने कहा जैसे आप आकाशमें देख पड़ते थे वैसेही यहांभी आय खड़े हुये कुछ विशेषता न जान पड़ी न कुछ प्रसादही मिला जब इसभांति सूर्यनारायण पदसुने तो अपने गले से स्यमन्तक नाम मणि निकाल सत्राजित के निकट रखदिया तब आंखोंसे मूर्त्ति

होगई उसे देख सत्राजित स्तुति करनेलगे तब श्रीसूर्य्यनारायण बोले मित्र व-रदान मांगो सत्राजित ने यही मणि मांगा सूर्य्यनारायण मणि दे अपने लोक को चले गये और सत्राजित भी उस मणि के धारण करने के कारण दूसरे सूर्य्यही के समान सब दिशों को प्रकाशित करतेहुये द्वारका में आये उन्हों ने देख द्वारकावासी लोग भगवान् अनादि पुरुष पुरुषोत्तम जो भूमिका भार उता-रने के लिये अपने अंशसे मानुषरूप धारण किये द्वारका में निवास करते थे प्रणाम कर उनसे बोले हे भगवन्! आपको देखने के लिये निश्चय है कि ये सूर्य्यनारायण जी आतेहैं यह सुन श्रीकृष्णचन्द्र हँसके उनसे बोले ये भगवान् आदित्य नहीं हैं किन्तु उनका दिया हुआ स्यमन्तकमणि पहिने सत्राजित आतेहैं तुमलोगोंने भ्रमसे सूर्य्य बतायाहै यह सुन सबकेसब अपने अपने कार्य्य को गये सत्राजित ने वह महामणि अपने गृह में धरा वह मणि प्रतिदिन ८ भार सुवर्ण उगिलता था व तिस मणिही के प्रभावसे सब राज्य में अवर्षण दु-र्भिक्ष सर्पभय अग्निपीड़ा आदि भय नहीं होते थे भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजी ने भी समझा था कि यह मणि उग्रसेन के योग्य है इसे लेलें परन्तु गोत्र में बि-गाड़ होने के भयसे नहीं लिया यद्यपि सब भांति उसके लेनेकी सामर्थ्य रखते थे सत्राजितने भी जाना कि कृष्णचन्द्र इस मणिकी इच्छा करते हैं इसलिये अपने भाई प्रसेनजित को देदिया उस मणि में यह भी गुणथा जो उसे पवित्र ताके साथ धारण किये रहै उसे ८ भार सुवर्णादि दियाकरे जो अपवित्रता से पहिरै उसके प्राणही हरले उसे गलेमें पहिन घोड़ेपै सवारहो प्रसेनजित शिकार खेलनेगये वहां सिंहने सहितघोड़ा प्रसेनजितको मारडाला व मणि मुहँमें दबाय जानेलगा कि जाम्बवान् ऋक्षराज ने देखा देखतेही मारडाला व मणिले अ-पने बिलमें आया व सुकुमारक नाम अपने पुत्रको खेलनेके लिये दिया जब दोतीनदिन होगये प्रसेनजित शिकार खेलके न लौटे तो लोग आपस में धीरे धीरे कहनेलगे कि यह मणि कृष्णचन्द्र ने मांगा था व सत्राजित ने नहीं दिया था निश्चय है कि प्रसेनजितको मार उन्हीं ने मणि लेलिया है भगवान् कृष्णच-न्द्रजी ने भी सुना कि सबलोग हम को अपवाद लगाते हैं इसलिये बहुतसे द्वा-रकावासी संगले प्रसेनजित के घोड़े की पोदा देखते हुये वनमें ढूंढ़ने गये देखा तो घोड़े सहित प्रसेनजित सिंहके मारेहुये पड़े यह दशा सब लोगोंको दि-

लाई कि देखो सिंहने मारा है फिर सिंहकी पौदर देखतेहुये आगेको बढ़े देखा तो थोड़ीही दूरमें ऋक्षका माराहुआ सिंह पड़ा है मणिके लोभमें अब ऋक्षकी पौदर लगातेहुये आगेको बढ़े जब पर्वतके किनारे पहुँचे तो सब साथियों को वहीं छोड़कर आप आगेबढ़े जाते २ एक बिल मिला तो उसमें एक लड़का खिलानेवाली नीचेवाला श्लोक पढ़तीहुई बालक खिलाती थी कि ॥

सिंह प्रसेनमवधीत्सिंहो जाम्बवता हत ॥
सुकुमारक मारोदीस्तव ह्येष स्यमन्तक ॥ १ ॥

अर्थात् सिंहने प्रसेनको मारा व सिंह जाम्बवान् से मारागया है सुकुमारक! न रोवो यह स्यमन्तक तुम्हारा है यह सुनके समाचार पाय बिल में पैठे तो देखा कि लड़के को गोदमें लिये मणि हाथ में किये धात्री मणि को उछालती हुई खेलाती है धात्रीने देखा कि यह अपूर्वपुरुष मणिलेने की इच्छा करता है इसलिये चिल्लाई कि बचावो २ यह सुन बड़ाक्रोधकर जाम्बवान् आये कृष्णचन्द्र से युद्धहोनेलगा यहांतक कि रात्रिदिन २१ दिनतक युद्ध हुआ तो यदुवंशी जो कृष्णचन्द्र के संगगये थे सात आठदिन बिताय के कहनेलगे निश्चय कृष्णचन्द्रको बिलमें किसी ने मारडाला नहीं तो इतने दिन शत्रु के मारने में उनको न लगते यह विचार द्वारका को चलेआये व कहा कि कृष्णचन्द्र मारडाले गये तिनके भाई बन्धुओं ने जो मरणकी क्रिया की थी उस श्राद्धादि से लड़ाई में कृष्णचन्द्र के बल व प्राणकी पुष्टताहुई इससे २१ दिनतक भूख प्यास न लगी और जाम्बवान् की तो ऐसे महापराक्रमी के संग लड़ने व चोट सहने व भूखे रहने से बलहानि हुई इस हेतु जाम्बवान् हारे व प्रणाम करनेलगे कि महाराज आप ईश्वर के अवतार हैं देवता असुर गन्धर्वादि कोई तुमसे नहीं जीतसक्ते मैं विचारा अल्पपराक्रम क्या जीतूं प्रथम बिना जाने तुमसे लड़नेलगा था कृष्णचन्द्र ने कहा सत्य २ हम मणी का भाग लगाने के लिये यहांतक आये हैं यह सुन प्रीतिपूर्वक अपना कन्यका जाम्बवतीको भेंटमें देदिया कि मुझे क्षमा करना जानिये तब जाम्बवान् ने श्रीभगवान् को फिर प्रणाम किया व आने घरमें आने के हेतु जाम्बवती नाम अपनी कन्या अर्पित करदिया और व स्यमन्तकमणिभी दिया यद्यपि स्यमन्तक जाम्बवान् ने लड़के के खेलने के लाये था कृष्णचन्द्र को उचित न था कि मणिकी ले लड़के की वस्तुनें लेवें सो लोक में

होगई उसे देख सत्राजित स्तुति करनेलगे तब श्रीसूर्य्यनारायण बोले मित्र वरदान मागो सत्राजित ने वही मणि मागा सूर्य्यनारायण मणि दे अपने लोक को चले गये और सत्राजित भी अमलमणि कंठमें धारण करने के कारण दूसरे सूर्यही के समान सब दिशोंको प्रकाशित करतेहुये द्वारका में आये उन्हों ने देख द्वारकावासी लोग भगवान् अनादि पुरुष पुरुषोत्तम जो धरणीभार उतारने के लिये अपने अंशसे मानुषरूप धारण किये द्वारका में निवास करते थे प्रणाम कर उनसे बोले हे भगवन् ! आपको देखने के लिये निश्चय है कि ये सूर्य्यनारायण जी आतेहैं यह सुन श्रीकृष्णचन्द्र हँसके उनसे बोले ये भगवान् आदित्य नहीं हैं किन्तु उनका दिया हुआ स्यमन्तकमणि पहिने सत्राजित आतेहैं तुमलोगोंने भ्रमसे सूर्य्य बतायाहै यह सुन सबकेसब अपने अपने कार्य्य को गये सत्राजित ने वह महामणि अपने गृह में धरा वह मणि प्रतिदिन ८ भार सुवर्ण उगिलता था व तिस मणिही के प्रभावसे सब राज्य में अवर्षण दुर्भिक्ष सर्पभय अग्निपीड़ा आदि भय नहीं होते थे भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजी ने भी समझा था कि यह मणि उग्रसेन के योग्य है इसे लेलें परन्तु गोत्र में बिगाड़ होने के भयसे नहीं लिया यद्यपि सब भांति उसके लेनेकी सामर्थ्य रखते थे सत्राजितने भी जाना कि कृष्णचन्द्र इस मणिकी इच्छा करते हैं इसलिये अपने भाई प्रसेनजित को देदिया उस मणि में यह भी गुणथा जो उसे पवित्रताके साथ धारण किये रहै उसे ८ भार सुवर्णादि दियाकरै जो अपवित्रता से पहिरै उसके प्राणही हरले उसे गलमें पहिन घोड़ेपै सवारहो प्रसेनजित शिकार खेलनेगये वहां सिंहने सहितघोड़ा प्रसेनजितको मारडाला व मणि मुहँमें दबाय जानेलगा कि जाम्बवान् ऋक्षराज ने देखा देखतेही मारडाला व मणिले अपने बिलमें आया व सुकुमारक नाम अपने पुत्रको खेलनेके लिये दिया जब दोतीनदिन होगये प्रसेनजित शिकार खेलके न लौटे तो लोग आपस में धीरे धीरे कहनेलगे कि यह मणि कृष्णचन्द्र ने मागा था व सत्राजित ने नहीं दिया था निश्चय है कि प्रसेनजितको मार उन्हीं ने मणि लेलिया है भगवान् कृष्णचन्द्रजी ने भी सुना कि सबलोग हमको अपवाद लगाते हैं इसलिये बहुतसे द्वारकावासी सगले प्रसेनजित के घोड़ेकी पोदर देखते हुये बनमें ढूंढ़ने गये देखा तो घोड़े सहित प्रसेनजित सिंहके मारेहुये पड़ेहैं यह दशा सब संगियोंको दि-

गाई कि देखो सिंहने मारा है फिर सिंहकी पौदर देखतेहुये आगेको बढ़े देखा तो थोड़ीही दूरपे ऋक्षका मारा हुआ सिंह पड़ा है मणिके लोभमें अब ऋक्षकी पौदर लगातेहुये आगेको बढ़े जब पर्वतके किनारे पहुँचे तो सब संगियों को वहीं खड़ेकर आप आगेबढ़े जाते २ एक बिल मिला तो उसमें एक लड़का खिलानेवाली नीचेवाला श्लोक पढ़तीहुई बालक खिलाती थी कि ॥

सिंह प्रसेनमवधीत्सिंहो जाम्बवता हतः ॥
सुकुमारक मारोदीस्तव ह्येष स्यमन्तक ॥ १ ॥

अर्थात् सिंहने प्रसेनको मारा व सिंह जाम्बवान् से मारागया है सुकुमारक ! न रोवो यह स्यमन्तक तुम्हारा है यह सुनके समाचार पाय बिल में पैठे तो देखा कि लड़के को गोदमें लिये मणि हाथ में किये धात्री मणि को उछालती हुई खेलाती है धात्रीने देखा कि यह अपूर्वपुरुष मणिलेने की इच्छा करता है इसलिये चिल्लाई कि बचावो २ यह सुन बड़ाक्रोधकर जाम्बवान् आये कृष्णचन्द्र से युद्धहोनेलगा यहांतक कि रात्रिदिन २१ दिनतक युद्ध हुआ तो यदुवंशी जो कृष्णचन्द्र के संगगये थे सात आठदिन बिताय के कहनेलगे निश्चय कृष्णचन्द्रको बिलमें किसी ने मारडाला नहीं तो इतने दिन शत्रु के मारने में उनको न लगते यह विचार द्वारका को चलेआये व कहा कि कृष्णचन्द्र मारडाले गये तिनके भाई बन्धुओं ने जो मरणकी क्रिया की थी उस श्राद्धादि से लड़ाई में कृष्णचन्द्र के बल व प्राणकी पुष्टताहुई इससे २१ दिनतक भूख प्यास न लगी और जाम्बवान् की तो ऐसे महापराक्रमी के संग लड़ने व चोट सहने व भूखे रहने से बलहानि हुई इस हेतु जाम्बवान् हारे व प्रणाम करनेलगे कि महाराज आप ईश्वर के अवतार हो देवता असुर गन्धर्वादि कोई तुमसे नहीं जीतसक्ते मैं बिचारा अल्पपराक्रम क्या जीतूं प्रथम त्रेतामें तू है लड़नेलगा ॥ कृष्णचन्द्र ने कहा सत्य २ हम धरणी का भार उतारने के लिये मनुष्यावतार [illegible] यह कह प्रीतिपूर्वक अपना करकमल जाम्बवान् की पीठपर फेरदिया कि युद्ध-सर व्यथा जातीरही तब जाम्बवान् ने श्रीभगवान् को प्रणाम किया व अपने घरमें आने के हेतु जाम्बवती नाम अपनी कन्या भगवान् को व्याहदी व स्यमन्तकमणिभी दिया यद्यपि स्यमन्तक जाम्बवान् ने लड़के के खेलने के लिये था कृष्णचन्द्र को उचित न था कि मनुष्यों के लड़के की वस्तु लें तथापि ताके मैं

प्रसिद्ध करने व जो दुर्यश उसके लिये उनको लगा था उसके मिटाने के अर्थ लेलिया व जाम्बवती को सगले द्वारका को आये कृष्णचन्द्रका आगमन सुन यहांतक द्वारकानिवासियों को सुख हुआ कि जो बूढ़े लोगभी थे मानो ज्वाने होगये वसुदेव देवक्यादि व सकल यादव अहो भाग्य २ कह बहुत मिले भेंटे कृष्णचन्द्रभी यथोचित सबको मिले भेंटे व सबसे स्यमन्तक मणिकी प्राप्ति जैसे जैसे हुई कहा व सत्राजित को बुलाय मणि देदिया अपना दुर्यश मिटाया सत्राजित ने विचारा कि हमने नाहक इनको दोष लगाया अब अपनी कन्या विवाहि दें तो इनका क्रोध शांतहोगा यह सोच सत्यभामानाम अपनी कन्या कृष्णचन्द्र को देदी तिस सत्यभामा को प्रथम अक्रूर कृतवर्म्मा शतधन्वा आदि यादवों को देने को कहा था इसलिये वे लोग सत्राजित से वैरभाव रखने लगे अक्रूर व कृतवर्म्मादिकों ने शतधन्वा से कहा कि इस दुष्ट सत्राजित ने अपनी कन्या हमको व तुमको देनेको कहा था परन्तु हमारा तुम्हारा सबका निरादर कर कृष्णचन्द्र को दिया इसलिये इसकोमार मणि क्यों नहीं लेलेते जो अच्युत तुमसे वैरकरेंगे तो हमलोग तुम्हारे सहायक होंगे यह सुन शतधन्वा ने कहा अच्छा जब कृष्णचन्द्र पांडवों को लाक्षाभवन में जरेहुये सुन दुर्योधन के सम्झाने को हस्तिनापुर गये तब सोतेहुये सत्राजितको शतधन्वा ने मारडाला यह बातजान मारे क्रोधके व्याकुल हो सत्यभामा रथपै सवार हो हस्तिनापुर पहुँची व अपने पिताका वध कृष्णचन्द्र से कहती भई यह सुन बड़ा क्रोधकर सत्यभामा सहित हरि द्वारका मे आये बलदेवजी से एकान्त में कहनेलगे भाई देखिये प्रसेनजित को शिकार खेलने में सिंहने मारा सत्राजित को शतधन्वा ने सोतेहुये मारडाला व मणि लेलिया अब तो चाहिये कि मणि हम व आपलें तिससे उठिये रथपै सवार हूजिये व शतधन्वा को मारिये बलदेवजी ने कहा हां चलिये शतधन्वाने जब जाना कि हमारे मारनेके लिये तैयारी है तो कृतवर्म्मा के पासजाय कहा अब हमारी सहायता कीजिये कृतवर्म्मा ने कहा हम बलदेव व कृष्णचन्द्र से विरोध नहीं करसक्ते तब अक्रूर से कहा अक्रूर बोले सब देवता दैत्योंमें मे कोई भी कृष्णचन्द्र व बलदेवजी से नहीं युद्ध करसक्ता फिर हमारी क्या गणना है जिसमे अन्य से सहायता मांगो शतधन्वा ने कहा यदि आप सहायता नहीं करसक्ते तो हमारा मणिही धर रखिये अक्रूरने कहा यदि साथ

हूनेपर्य्यन्त किसीसे यह न कहो कि हमने अक्रूरके पास मणि रक्खाहै तो हम धरें शतधन्वा ने कहा रखिये हम किसीसे न कहेंगे तब अक्रूरने मणि रखलिया और शतधन्वा २०० कोस पवनरूपी अतिशीघ्र चलनेवाली घोड़ी पै चढ़ भागा व शैब्य सुग्रीव मेघपुष्प बलाहक ४ घोड़ोंके रथपै चढ़ बलदेव व कृष्णचन्द्र भी उसकेपीछे दौरे वह घोड़ी ४०० कोस दौड़ी चलीगई उसके आगे फिर जब दौ-ड़ाई गई तो जनकपुरी की फुलवाड़ी में पहुँच मरगई शतधन्वा वहांसे पैदल भागा कृष्णचन्द्र ने बलदेव से कहा तबतक इसी रथपै बैठेरहिये हम इस दुष्टको पैदरजाय के मारआवें यहांसे आगे इन घोड़ों को न बढ़ाइयेगा बलदेवजी तो उसी रथपै बैठेरहे कृष्णचन्द्र शतधन्वा के पीछे दौड़े वहांसे दोहीकोस पर दूरही से चक्रफेंक शतधन्वा का मूड़काट सब कपड़ों में उलट पलट ढूंढ़ा पर मणि न मिला लौटके बलदेवजीसे कहनेलगे भाई नाहक शतधन्वाको मारा मणि उसके पास न था यह सुन बलदेवजीने बड़ा कोपकिया व कहा तुमने नाहक उसको मारडाला वहभी तो भाई बन्धुओं में था धिक्कार ऐसी झूंठीबातों को जाव अब हम तुम्हारे संग न जायेंगे हमारा द्वारका जाने से व बन्धुओं के भेंटने से कुछ प्रयोजन नहीं हमारे आगे तुमने झूठी बातें कहीं कृष्णचन्द्र ने मारयैनाभी की पर न रहेहुये जनकपुरी में चलेगये जनकने बडी शिष्टाचारी के साथ अपने यहां बैठाया कृष्णचन्द्रजी द्वारकाको चलेआये जबतक बलदेवजी जनकपुर में रहे तबतक धृतराष्ट्र के पुत्र दुर्योधन उनसे गदाचलाना सीखतेरहे तीन वर्ष के पीछे बभ्रु उग्रसेनादि यादवों ने जाय बलदेवजी से कहा कि सत्य २ कृष्णचन्द्र ने मणि नहीं पाया आपसे झूठ नहीं कहा अब द्वारकाको चलिये तब बलदेव आये यहां अक्रूरके जानो ८ भार सोना प्रतिदिन मणिसे आताहीथा बार २ यज्ञ होते थे इस भांति ६२ वर्षतक उनके घरमें मणिरहा इसलिये दुर्भिक्ष मारी भयादि उतने दिन द्वारकामें नहीं हुये जब अक्रूरके पक्षवाले भोजवंशियों ने सात्वतके प्रपौत्र शत्रुघ्न को मारडाला तो उनके संग अक्रूरभी द्वारकासे नि-कलगये तब से महामारी अकाल में पत्थर गिरना सर्पादि भय द्वारका में बहुत होने लगे तब सब यादव बलदेव उग्रसेनादिकों ने मुख्यमिलकर कहा कि देखो भगवान् कृष्णचन्द्र भी द्वारका में विद्यमान हैं पर एकाएकी सब उपद्रव होने लगे इसका क्या कारणहै नहीं विदित होता यह सुन अन्धकनाम यदुवंशियों

में बड़ावृद्ध था बोला इन अक्रूरके पिता श्वफल्क जहां २ जाते थे तहां २ महामारी अवर्षणादि नहीं होतेथे एक समय काशिराजके राज्यमें अत्यन्त अवर्षण था तब श्वफल्क बुलायेगये उनके पहुँचतेही तुरन्त वर्षाहुई काशिराजकी पत्नी के कन्या होनेवाली थी समय बीतभी गयाथा पर नहीं हुई यहांतक कि १२ वर्षतक गर्भही बनारहा तब काशिराज गर्भमें टिकीहुई कन्या से बोले पुत्री क्यों नहीं उत्पन्न होती निकल आज तेरा मुख हम देखना चाहते हैं अपनी माता को क्यों चिरकाल से क्लेशदेती है यह कहने से गर्भमेंसेही बोली पिताजी जो प्रतिदिन ब्राह्मणको एक२ गाय देते रहोगे तो अबसे तीनवर्ष के पीछे हम होंगी नहीं तो नहीं यह सुन राजा दिन २ ब्राह्मणको गाय देतेरहे तीनवर्षके पीछे कन्याहुई तिसका उसके पिताने गान्दिनीनाम धराया वही कन्या उस उपकार में राजाने श्वफल्क को दी गान्दिनी यहाभी जबतक जीं प्रतिदिन ब्राह्मण को गाय देती रहीं तिसमें ये अक्रूर श्वफल्क से उत्पन्नहुये इनकी उत्पत्ति ऐसे गुणी माता पितासे है सो ऐसे अक्रूरके यहां से चलेजानेसे कैसे ऐसे २ उपद्रव न हों तिससे तिसीको ले आइये अन्य गुणी ढूंढ़नेसे कुछ प्रयोजन नहीं ऐसे यदुवृद्ध अंधक के वचन सुन बलभद्र केशव उग्रसेनादिकों ने अक्रूर के अपराध क्षमाकर फिर द्वारका में बुलाया तिसके आनेही स्यमन्तकमणि के प्रभावसे अकाल महामारी सर्पभयादि उपद्रव सब शान्त होगये कृष्णचन्द्रजी ने अपने मन में चिन्तना की कि यह बहुतही थोड़ा कारणहै कि केवल गान्दिनी के उदरसे उत्पन्न अक्रूर महामारीआदि भयों को दूर करैं यह कुछ नहीं निश्चय है कि इनके घर में वह स्यमन्तकनाम महामणिहै क्योंकि उसका ऐसाही प्रभाव सुनाजाता है फिर ये अक्रूर एक यज्ञ समाप्त नहीं होनेपाता कि दूसरे में प्रारम्भ करदेते हैं यज्ञादि एक दूसरे के पीछे कियाकरते हैं यह विचार सब यादवोंकी समाज इकट्ठाकर श्रीकृष्णचन्द्र महाराज अन्य२ लोगोंसे बहुतभांतिकी वार्ताकर प्रथम इस अक्रूरजी से हँसीकी बात पूछपाछ कहनेलगे हे अक्रूरजी ! हमने भली भांति जानलिया है कि शतधन्वा स्यमन्तक महामणि आपके समीप धरगया था उससे आप व हम सब यदुवंशियों का कल्याण होताहै वह आपही के यहां रहै कुछ आवश्यकता नहीं परन्तु हमारे भाई बलरामजी उसके लिये अप्रसन्न रहते हैं अपने मनमें जानते हैं कि शतधन्वा को मार अवश्य इन्हों ने मणि

लिया है हमसे छिपाते हैं इसलिये आप सबके सामने देदेवें भाई को दिखला फिर लौटादेंगे जैसे आपके यहां तैसे हमारे यहां चाहे जहां रहे यहसुन अक्रूर अपने मनमें विचारने लगे कि अब इस विषय में क्याकरें जो नहीं देते तो कपड़ा में लपेटाहुआ मणिहै ढूंढ़ने से मिलहीजायगा तो कौनभलाई होगी इत्यादि विचाराश कर बोले हां शतधन्वा जब भागने लगा था तो मणिराज हमारेपास धरगयाथा तबसे यही सोचते २ कि आज मांगते हैं कल मांगने वा परसों मांगेंगे इतनेदिन बीतगये अबलीजिये यद्यपि यह सुवर्ण देताहै तथापि नहीं विदित इसमें कौन अगुणहै कि जबसे हमारे यहां है क्लेशहीसे मन घबराया करता है अब आपलें चाहे जिसको देवें हमसे कुछ काम नहींहै यह कह वस्त्रकेभीतर से निकाल मणि देदिया जैसेही कपड़ा से मणिराज अलग कियागया उसकी दीप्तिसे सबसभा प्रकाशित होगई अक्रूरने कहा भाइयो यह वही मणि है जो शतधन्वा हमको देगयाथा अब जिसका हो सो लेवें यह सुन सब यादवोंने साधुवादकिया कृष्णचन्द्रजी ने कहा अब हमारामणि है लियाजावेगा बलदेवजी ने कहा हमलेते हैं सत्यभामाजी ने कहा हमारे पिताका धनहै हमलेंगी यह सुन श्रीकृष्णचन्द्रजी ने विचारा कि अबतो घरही में बिगाड़हुआ चाहता है इस लिये यह कहतेहुये बोले कि हां इस मणिमें सबका दावाहै क्योंकि हमारे तो श्वशुर का ठहरा बलदेवजी जानो पुरुषाही ठहरे सत्यभामा के जानो पिताहीका है परन्तु इसमणिको जो कोई ब्रह्मचर्य के साथ रहता रहै तो धारण करसक्ता है नहीं तो धारण करनेवालेही का विनाश होजाता है और तभी सब का कल्याण भी इसके रहने से होताहै फिर १६१०८ स्त्रियां हमारे हैं हमसे ब्रह्मचर्य कैसे सधेगा इसी भांति सत्यभामा भी ठहरी क्योंकि हमारा सङ्ग कैसे छोड़सकेंगी भाई बलदेवजी मदिरा पान मद्य आ किया करते हैं कहिये कहने लगे फिर मणिधारण कैसेहोगा इस लिये अब सबोंने देख ... लिया अक्रूर जी इसे आपही धारण किये रहिये बस अब और विचार न कीजिये अक्रूर ने कहा अच्छा तब से सबके सामने सभामें मणिधारण कर अक्रूर चलनेभये॥

चौ० जो यह हरि मिथ्या अपवादहि। कथा सुनहि सो पाव नसादहि॥
मिथ्या दोष लगहि नहिं ताहीं। सकल पापमिटि शुभमय रहहीं॥ १॥

चौदहवां अध्याय॥

दो० चौदहयं अध्याय महँ वृष्णवंश की गाथ॥
अरु शिशुपाल विनाश की कथाकहत मुनिसाथ॥१॥

पराशरमुनि बोले कि सत्वतके पौत्र अनमित्र तिनके सत्य सत्यके सात्यकि तिनके युयुधान तिनके असंग तिनके तूणि तूणिके युगन्धर इन सबकी शैनेय सज्ञाहुई अनमित्रहीके वंशमें पृश्निनामक हुये तिनके श्वफल्क तिनका प्रभाव कहचुकेहैं श्वफल्क के छोटेभाई का चित्रकनाम हुआ श्वफल्क से गान्दिनी में अक्रूरहुये और उपमद्गु मृदर विशारि में जयगिरि क्षत्रोपक्षत्र शत्रुघ्न अरि मर्दन धर्मधृक् दृष्टशर्मा गन्धमोक्ष आवह प्रतिवाह ये पुत्र व सुतारा कन्या अक्रूरके देव अनुपदेव दो पुत्र और चित्रक के पृथु विपृथु आदि तनय हुये तिसी तरह कुकुर भजमान शुचिकम्बल बर्हिष ये चार पुत्र अन्धकके हुये कुकुरसे धृष्ट धृष्टसे कपोतरोमा तिनसे विलोमा तिनसे तुम्बुरुके मित्र भवनामहुये तिनसे नन्दनोदक दुन्दुभि तिनसे अभिजित् तिनसे पुनर्वसु तिनसे आहुक व आहुकीकन्या व आहुक के देवक व उग्रसेन देवक के देववानुपदेव सुदेव व देवरक्षित ये चार पुत्रहुये व वृकदेवा उपदेवा देवरक्षिता श्रीदेवा शांतिदेवा सहदेवा और देवकी ये ७ कन्या इन सब कन्याओं का वसुदेव के साथ विवाह हुआ और उग्रसेन के कंस न्यग्रोधसुनाम धक सक स्वभूमि राष्ट्रपाल युद्धपाल युद्धतुष्टि तुष्टिमान् ये पुत्र व कंसा कंसवती सुतनु राष्ट्रपाली ककी ये कन्याहुईं भजमानके विदूरथ विदूरथ के शूर शूरके शमी शमी के प्रतिक्षत्र तिनके स्वयम्भोज तिनके हृदिक तिनके कृतवर्मा शतधन्वा देवमेढुक आदिहुये देवमेढुक व शूर दोनोंकी स्त्रियों का मारिषानाम था जिसमें शूरसे वसुदेवादि दश पुत्रहुये वसुदेवजी के जन्म होतेही इनसे भगवान् विष्णु का अवतार होनेवाला जानके देवगणोंने दिव्य नगारे आकाश में बजाये इसी से वसुदेवजी का एक आनकदुन्दुभि भी नाम हुआ इनके देवभाग देवश्रवा अनाधृष्टि करुणक वत्सवालक सृंजय श्याम शमीक गण्डूष ये ६ भाई थे इन सब वसुदेवादिकोंके कुन्ती श्रुतदेवा श्रुतिकीर्ति श्रुतश्रवा राजाधिदेवी ये पांच भगिनियां थीं शूरके कुन्तिभोजनाम एक मित्र थे उनके कोई संतान न थी इसलिये शूरजीने अपनी कन्या कुन्ती जिसका पृथा

भी नामथा उनको देडाला उन्होंने राजा पाण्डुकेसाथ विवाह करदिया तिसमें धर्म्म पवन इन्द्र इनके अशोंसे युधिष्ठिर भीमसेन अर्ज्जुन ये तीनपुत्र उत्पन्न कराये और जब इन कुन्तीजीका विवाह नहीं हुआथा तभी सूर्य्यनारायण से कर्णनाम पुत्रहुयेथे कुन्तीकी सौतिका माद्री नाम था तिसमें अश्विनीकुमार के अशमे नकुल व सहदेव पाण्डुके दो पुत्र हुये श्रुतदेवाका विवाह वृद्धशर्म्मानामकारूपके साथहुआ तिसमें दन्तवक्रनाम महाअसुर उत्पन्नहुआ श्रुतकीर्तिका विवाह केकयदेश के राजाके सगहुआ तिसके सन्तर्दनादि ५ पुत्रहुये राजाधि देवीका अवन्तिकापुरी के राजाके साथ विवाहहुआ उसमें विन्दानुविन्द दोपुत्रहुये श्रुतश्रवाका विवाह चेदिराज दमघोष के सग हुआ तिसमें शिशुपाल नाम पुत्र हुआ यह पूर्व जन्ममें अतिदुराचारी दैत्यराज हिरण्यकशिपु के नामसे प्रसिद्ध हुआथा तब इसे भगवान् विष्णुजीने नृसिंहावतारले माराथा फिर महापराक्रमी अतिशूरवीर त्रिलोकविजयी रावणहुआ तबभी श्रीसकललोकपालनकारी साक्षात् परब्रह्मावतार श्रीरामचन्द्रजीने मारा फिर वही चेदिराज दमघोषका पुत्र शिशुपाल के नामसे प्रसिद्धहुआ इस जन्ममें भी भगवान् कृष्णजी से वैरानुरोध करने के कारण उन्हींसे मारागया जिससे रात्रिदिन मारे वैरके उन्हीं परमात्मा परब्रह्मही में चित्त लगाये रहता था इसलिये मरणान्त में उन्हीं में लीन भी होगया ॥

चौ० जिमि प्रसन्न है श्रीभगवाना। देत सबहि अभिमत फल नाना॥
अप्रसन्न है मारत जाही। अनुपम धाम देत तिमि ताही॥ १॥

पन्द्रहवां अध्याय ॥

दो० पन्द्रहयें अध्याय महँ कृष्ण जन्म की गाथ॥
कह्यो मोक्ष शिशुपालका सोत्पत्ति शुभ गाथ॥ १॥

इतनीकथा सुन मैत्रेयजी बोले हे मुनिराज महाराज! यह शिशुपाल जब हिरण्यकशिपु हुआथा तो भी श्रीनारायण ने नृसिंहावतारने मारा फिर जब रावणहुआ तो भी श्रीभगवान् ने श्रीरामचन्द्रावतारने मारा परन्तु फिर २ बड़े अन्दे भनार्थी कुलमें जन्मता रहा क्योंकि था कि हरिकरकमल से मारागयाथा मुक्त होजाना सो नहीं हुआ अब शिशुपाल के देहमें कृष्णचन्द्र के हाथमें मरा

चौदहवां अध्याय ॥

दो० चौदहयें अध्याय महँ वृष्णवंश की गाय ॥
अरु शिशुपाल विनाश की कथाकह्यमुनिनाथ ॥ १ ॥

पराशरमुनि बोले कि सत्वत के पौत्र अनमित्र तिनके सत्य सत्य के सात्यकि तिनके युयुधान तिनके असंग तिनके तूणि तूणिके युगन्धर इन सबकी शैनेय संज्ञाहुई अनमित्रहीके वंशमें पृश्निनामक हुये तिनके श्वफल्क तिनका प्रभाव कहचुकेहैं श्वफल्क के छोटेभाई का चित्रकनाम हुआ श्वफल्क से गांदिनी में अक्रूरहुये और उपमद्गु मृदुर विशारि में जयगिरि क्षत्रोपक्षत्र शत्रुघ्न अरि मर्दन धर्मदृक् दृष्टशर्म्मा गन्धमोक्ष आरह प्रतिवाह ये पुत्र व सुतारा कन्या अक्रूरके देव अनुपदेव दो पुत्र और चित्रक के पृथु विपृथु आदि तनय हुये तिसी तरह कुकुर भजमान शुचिकम्बल बर्हिप ये चार पुत्र अन्धकके हुये कुकुरसे धृष्ट धृष्टसे कपोतरोमा तिनसे विलोमा तिनसे तुम्बुरुके मित्रभवनामहुये तिनसे नन्दनोदक दुन्दुभि तिनसे अभिजित् तिनसे पुनर्वसु तिनसे आहुक व आहुकी कन्या व आहुक के देवक व उग्रसेन देवक के देववानुपदेव सुदेव व देवरक्षित ये चार पुत्रहुये व वृकदेवा उपदेवा देवरक्षिता श्रीदेवा शांतिदेवा सहदेवा और देवकी ये ७ कन्या इन सब कन्याओं का वसुदेव के साथ विवाह हुआ और उग्रसेन के कंस न्यग्रोधसुनाम कंक सुभूमि राष्ट्रपाल युद्धपाल युद्धमुष्टि तुष्टिमान् ये पुत्र व कंसा कंसवती सुतनु राष्ट्रपाली कंकी ये कन्याहुई भजमानके विदूरथ विदूरथ के शूर शूरके शमी शमी के प्रतिक्षत्र तिनके स्वयम्भोज तिनके हृदिक तिनके कृतवर्म्मा शतधन्वा देवमेढुक आदिहुये देवमेढुक व शूर दोनोंकी स्त्रियों का मारिषानाम था तिनमें शूरसे वसुदेवादि दश पुत्रहुये वसुदेवजी के जन्म होतेही इनसे भगवान् विष्णु का अवतार होनेवाला जानके देवगणोंने दिव्य नगारे आकाश में बजाये इसी से वसुदेवजी का एक आनकदुन्दुभि भी नाम हुआ इनके देवभाग देवश्रवा अनाधृष्टि करुवक वत्सपालक सृंजय श्याम शमीक गण्डूष ये ६ भाई थे इन सब वसुदेवादिकोंके कुन्ती श्रुतदेवा श्रुतिकीर्ति श्रुतश्रवा राजाधिदेवी ये पांच भगिनियां थीं शूरके कुन्तिभोजनाम एक मित्र थे उनके कोई सन्तान न थी इसलिये शूरजीने अपनी कन्या कुन्ती जिसका पृथा

भी नामथा उनको देडाला उन्होंने राजा पाण्डुकेसाथ विवाह करदिया तिसमें धर्म पवन इन्द्र इनके अंशोंसे युधिष्ठिर भीमसेन अर्ज्जुन ये तीनपुत्र उत्पन्न कराये और जब इन कुन्तीजीका विवाह नहीं हुआथा तभी सूर्य्यनारायण से कर्णनाम पुत्रहुये ने कुन्तीकी सौतिका माद्री नाम था तिसमें अश्विनीकुमार के अंशमे नकुल व सहदेव पाण्डुके दो पुत्र हुये श्रुतदेवाका विवाह वृद्धशर्म्मानामका रूपके साथ हुआ तिसमें दंतवक्रनाम महाअसुर उत्पन्न हुआ श्रुतकीर्त्तिका विवाह केकयदेश के राजाके संगहुआ तिसके सन्तर्द्दनादि ५ पुत्रहुये राजाधिदेवीका अवंतिकापुरी के राजाके साथ विवाहहुआ उसमें विन्दानुविन्द दोपुत्रहुये श्रुतश्रवाका विवाह चेदिराज दमघोष के संग हुआ तिसमें शिशुपाल नाम पुत्र हुआ यह पूर्व जन्ममें अतिदुराचारी दैत्यराज हिरण्यकशिपु के नामसे प्रसिद्ध हुआथा तब इसे भगवान् विष्णुजीने नृसिंहावतारले माराथा फिर महापराक्रमी अतिशूरवीर त्रिलोकविजयी रावणहुआ तहांभी श्रीसकललोकपालनकारी साक्षात् परब्रह्मावतार श्रीरामचन्द्रजीने मारा फिर वही चेदिराज दमघोषका पुत्र शिशुपाल के नामसे प्रसिद्धहुआ इस जन्ममें भी भगवान् कृष्णजी से वैरानुरोध करने के कारण उन्हींसे मारागया जिससे रात्रिदिन मारे वैरके उन्हीं परमात्मा परब्रह्महीमें चित्त लगाये रहता था इसलिये मरणान्त में उन्हीं में लीन भी होगया ॥

चौ० जिमि प्रसन्न ह्वै श्रीभगवाना। देत सबहि अभिमत फल नाना ॥
अप्रसन्न ह्वै मारत जाही। अनुपम धाम देत तिमि ताही ॥ १ ॥

पन्द्रहवां अध्याय ॥

दो० पन्द्रहयें अध्याय महँ कृष्ण जन्म की गाथ ॥
नहिय मोक्ष शिशुपालकर तापरंति सुभ साथ ॥ १ ॥

इतनीकथा सुन मैत्रेयजी बोले हे मुनिराज महाराज ! यह शिशुपाल जब हिरण्यकशिपु हुआथा तो भी श्रीनारायणने नृसिंहावतारले मारा फिर जब रावणहुआ तो भी श्रीभगवान् ने श्रीरामचन्द्रावतारले मारा परन्तु फिर २ बड़े जन्मके प्रभारी उनमें तन्मना रहा परहिये था कि हरिके हस्तकमल से मारागयाथा मुक्त होजाना सो नहीं हुआ और शिशुपाल के जन्ममें कृष्णचन्द्र के हाथमें मरा

और उन्हींमें लीनभी होगया इसका कारण हम सुनाचाहते हैं कृपासे सुनाइये यहसुन पराशरमुनि बोले कि जब यह हिरण्यकशिपु हुआ था व नृसिंहजी ने उसे आय वधकिया तो उसके मनमें यह न आईथी कि ये विष्णुहैं किन्तु यह समझा था कि ये कोई महाप्रतापी राजराजेश्वर जो गुणी नानासम्पत्ति युक्त विलक्षणजीव हैं इन्हीं सब अतिशय रजोगुणी पदार्थों को विचारताही था कि मारागया इसीसे मुक्ति न हुई वरन उसीप्रकारका अतिशय रजोगुणी रावणहुआ जिसके आगे औरोंके रजोगुणकी गणनाही नहीं होसक्ती रावण होनेपरभी रामचन्द्रजीको यही समझाथा कि ये जानकीके लिये घूमते घूमते आयेहैं विष्णु नहीं हैं कोई मनुष्यहीहैं इसी चिंतनामें मारागया इससे उस बारभी मुक्त न हुआ और परमऐश्वर्यवान् चेदिराज दमघोषके घरमें जन्मा इस जन्ममें बहुत दिनके वैरानुबन्ध से बाल्यावस्थाही से कृष्णचन्द्र के अनेक गुण व नाम कहता हुआ गालीआदि देतारहा यही करते२ सब संसारको सोतेजागते परब्रह्म परमात्माकी मूर्त्ति कृष्णमय देखनेलगा इसी अवसर में सुदर्शनचक्र से मारागया व श्रीहरि में लीनहोगया इससे हे मैत्रेय ! प्राणी चाहे जिस रीतिसे ईश्वरमें चित्त लगावै मुक्तहोही जाता है सो वैरभाव सेचित्त लगाने से ऐसी गतिपाता है जो भक्तिसे लगावै तो उसको क्या कहना वसुदेवजीके पौरवी रोहिणी मदिरा भद्रा वैशली देवकी आदि१८ स्त्रियाथीं उनमें बलभद्र सारण शठ दुर्मदआदि रोहिणीके पुत्र हुये बलभद्रजीके रेवतीमें निशठ व उल्मुक दोपुत्रहुये सारणके मार्ष्टिमान् शिशु सत्य धृतिआदिहुये रोहिणीहीके भद्राश्व भद्रबाहु दुर्गमभूत ये भी हुये मदिराके नन्द उपनन्द कृतक आदि भद्रा के उपनिधि गदाआदि वैशलीसे एक कौशिक नामही पुत्रहुआ और देवकी में वसुदेवजी से कीर्त्तिमान् सुषेण उदापी भद्रसेन ऋजुदास भद्रदेह ये ६पुत्रहुये इन सबको कंसने मारडाला फिर सातवांगर्भ भगवान्की प्रेरणासे योगनिद्राने आधीरात्रिको खींच रोहिणीके गर्भ में करदिया खींचनेके कारण इसी गर्भसेउत्पन्न पुत्रका सङ्कर्षणनामहुआ इसकेपीछे धरणी का भार उतारनेकेलिये सब ब्रह्मादि देवताओंने जाय श्रीनारायणकीस्तुतिकी तो सकल संसारके उत्पन्न करनेके महावृक्ष रूप भूत वर्त्तमान भविष्यत् तीनोंकालों से बाहर सकल सुरासुर मुनि मनुष्यों के मनभी जहां नहीं पहुंचने ऐसे श्रीविष्णुभगवान् देवकी में आय अवतरे जिनका वासुदेव नामहुआ निन्हींके प्रसाद

से मान पाईहुई योगनिद्राभगवती नन्दकी स्त्री यशोदा में जन्मी जब कृष्ण-चन्द्र जन्मलेनेको थे तब चन्द्रमा सूर्य्यादि ग्रह प्रसन्नहोगये सब संसार सर्पादि भय रहितहो सुस्थिरचित्त होगया जन्महोनेही सब जगत्को सन्मार्गगवर्ती करदिया भगवान् वासुदेवजीके इसबार मर्त्यलोकमें अवतार लेने से १६१०८ स्त्रिया हुईं तिनमें रुक्मिणी सत्यभामा जाम्बवती जालहासिनी आदि ८ स्त्रियां प्रधान हुईं तिनसबोंमें अनादिपुरुष भगवान्ने हजारों लाखों पुत्र उत्पन्नकिये तिनमें प्रद्युम्न चारुदेष्ण साम्बादि १३ पुत्र प्रधान हुये प्रद्युम्नका विवाह रुक्मीकी कन्या कुमुद्वती के साथ हुआ तिनमें अनिरुद्धनाम महारथीपुत्रहुये अनिरुद्ध जी का भी विवाह रुक्मीकी पोती सुभद्रा के साथ हुआ तिसमें अनिरुद्ध से वज्रनाम हुये वज्रके प्रतिबाहु तिनसे सुचारु इसीभांति सैकरों हजारों लाखों करोरों अर्बौंयदुवंशीहुये उनकीगिनती सैकरों वर्षोंमेंभी नहींहोसक्ती क्योंकि॥

चौ० अट्ठासीलख तीन करोरी। धनुर्बाण शिक्षक यक ठोरी॥
युवा कुमारन शिक्षा देहीं। लघुबालकन पाठिनहिं येही॥ १॥
यासों सख्या यदुकुल केरी। कौनकरै आसिमति कहँ हेरी॥
जानहु यादव सख्या हीना। कौनकहै यहि विधि मतिहीना॥ २॥

ये इतने यदुवंशी इसभांति हुये कि देवासुर संग्राम में जो दैत्य मारेगये वे सब महापराक्रमी मनुष्यों में नानाभांति के उपद्रव करने को उत्पन्नहुये तिन दुष्टों के नाश करने के लिये भगवान् कृष्णचन्द्र यदुकुल में अवतरे १०१ कुल इस यादवकुलमेंही उन दुष्ट दैत्यों के उत्पन्नहुये उनमें सबके प्रेरक श्रीविष्णुजी हुये अर्थात् इनकी प्रेरणासे यदुवंशियोंने अन्य दुष्टोंको मारा व अन्तमें कृष्ण-चन्द्रने इन सबोंको भी मरवा के पृथिवीका भार उतारा यह यादवों का वंश जो कोई सुनता है सब पापोंसे छूट विष्णुके लोकको जाताहै॥

सोरहवां अध्याय॥

दो० सोरहयें अध्याय महँ तुर्व्वसु वंश अनूप॥
कह्यो भरतको जन्मलग दायययाति स्वरूप॥ १॥

पराशरमुनि बोले हे मैत्रेय! यह यदुका वंश तो तुमसे कहा अब तुर्व्वसु वंश कहते हैं सुनिये तुर्व्वसुके वह्नि वह्निके गोभानु गोभानुके त्रैसानु त्रैसानुके

और उन्हींमें लीनभी होगया इसका कारण हम सुनाचाहते हैं कृपासे सुनाइये यहसुन पराशरमुनि बोले कि जब यह हिरण्यकशिपु हुआ था व नृसिंहजी ने उसे आय वधकिया तो उसके मनमें यह न आईथी कि ये विष्णुहैं किन्तु यह समझा था कि ये कोई महाप्रतापी राजराजेश्वर जो गुणी नानासम्पत्ति युक्त विलक्षणजीव हैं इन्हीं सब अतिशय रजोगुणी पदार्थों को विचारताही था कि मारागया इसीसे मुक्ति न हुई वरन उसीप्रकारका अतिशय रजोगुणी रावणहुआ जिसके आगे औरोंके रजोगुणकी गणनाही नहीं होसक्ती रावण होनेपरभी रामचन्द्रजीको यही समझाथा कि ये जानकीके लिये घूमते घूमते आयेहैं विष्णु नहींहैं कोई मनुष्यहीहैं इसी चिंतनामें मारागया इससे उस वारभी मुक्त न हुआ और परमऐश्वर्यवान् चेदिराज दमघोषके घरमें जन्मा इस जन्ममें बहुत दिनके वैरानुबन्ध से बाल्यावस्थाही से कृष्णचन्द्र के अनेक गुण व नाम कहता हुआ गालीआदि देतारहा यही करते२ सब संसारको सोतेजागते परब्रह्म परमात्माकी सुधि कृष्णमय [illegible] मे सूतता [illegible]भिधान ॥ १ ॥

पराशरमुनि बोले ययातिके चौथेपुत्र अनुके सभानर चाक्षुष परोक्ष ये तीन पुत्रहुये उनमें सभानर के कालानर इनके सृञ्जय इनके पुरञ्जय इनके जनमे जय तिनके महामणि तिनके महामन तिनके उशीनर व तितिक्षु दो पुत्र उशीनरके शिवि नृग नर कृमि दर्वा ये ५ तनय हुये फिर शिवि के वृषदर्भ सुवीर केकय मद्रक ये ४ पुत्रहुये व तितिक्षु के उषद्रथ तिनके हेम सुतप सुतपके बलि बलिके अंग बंग कलिंग सुह्मपुण्ड्र इन नामों से प्रसिद्ध क्षत्रिय हुये इन्हींके नामसे अंगबंगादि ५ देशबसे अंगके पार पारके दिविरथ तिनके धर्मरथ तिनके चित्ररथ इन्हीं का रोमपाद भी नामहुआ इनके दशरथनाम पुत्रहुआ इन्हीं रोमपाद को महाराज अयोध्यापति दशरथजी ने मित्रता के कारण अपनी शान्तानाम कन्यादेदी क्योंकि इन राजा के कोई सन्तान न थी इस लिये वही कन्या सन्तान हुई रोमपाद के इस कन्याके पाने के पीछे चतुरंग नामपुत्र भी हुआ तिसके पृथुलाक्ष तिनके चम्प जिन्होंने चम्पानाम पुरी बसाई चम्पके हर्यंग तिनके भद्ररथ तिनके बृहद्रथ व बृहत्कर्मा बृहत्कर्मा के बृहद्भानु तिनके बृहन्मन तिनके जयद्रथ तिनके विजय इनकी माता ब्राह्मणी थी क्षत्रियसे उत्पन्न

से मान पाईहुई योगनिद्राभगवती नन्दकी स्त्री यशोदा में जन्मी जब कृष्ण-चन्द्र जन्मलेनेको थे तब चन्द्रमा सूर्य्यादि ग्रह प्रसन्नहोगये सब संसार सर्प्यादि भय रहितहो सुस्थिरचित्त होगया जन्महोतेही सब जगत्को सन्मार्गगवर्ती कर-दिया भगवान् वासुदेवजीके इसबार मर्त्यलोकमें अवतार लेने से १६१०८ स्त्रिया हुई तिनमें रुक्मिणी सत्यभामा जाम्बवती जालहासिनी आदि ८ स्त्रिया प्रधान हुई तिनसबोंमें अनादिपुरुष भगवान्ने हजारों लाखों पुत्र उत्पन्नकिये तिनमें प्रद्युम्न चारुदेष्ण साम्बादि १२ पुत्र प्रधान हुये प्रद्युम्नका विवाह रुक्मीकी कन्या कुमुद्वती के साथ हुआ तिनमें अनिरुद्धनाम महारथीपुत्रहुये अनिरुद्ध जी का भी विवाह रुक्मीकी पोती सुभद्रा के साथ हुआ तिसमें अनिरुद्ध से वज्रनाम हुये वज्रके प्रतिबाहु तिनसे सुचारु इसीभांति सैकरों हजारों लाखों करोरों अशेषयदुवंशीहुये उनकीगिनती सैकरों वर्षोंमेंभी नहींहोसक्ती क्योंकि॥

चौ० अट्ठासीलक्ष तीन करोरी। धनुर्बाण शिक्षक यक ठौरी॥
हु[illegible] [illegible]मेदी। लघुबालकन पाठिनहिं येहीं॥ १॥

हुये तसुके अनिल अनिल के दुष्यन्त॥ [illegible]

राज चक्रवर्ती भरतजी हुये राजादुष्यन्त शिकार को गयेथे जाते २ कण्वमुनि के आश्रम पै रहुंचे वहां विश्वामित्र जी से मेनका नाम अप्सरा में उत्पन्न शकुन्तला नाम कन्या के साथ अपना गान्धर्व विवाह कर गर्भाधान करा, आये मुनिने अपने शिष्यों के साथ गर्भवती शकुन्तलाको राजाकेपास भेजा राजा दुर्वासा के शापसे एक तो भूलही गयेथे दूसरे लोकापवाद के भयसे श-कुन्तलाके पुत्र व शकुन्तला के लेनेसे निषेध किया तब भरतके जन्मका कारण बताने के लिये देवोंने ये पद्य पढ़े॥

चौ० माता भस्त्रा पुत्र पिताकर। जासों जन्मत पिता आपहर॥
सुत दुष्यन्त भरहु निजनाई। जनि अपमान शकुन्तलपाई॥ १॥
पिता श्रीयेतां होत तनुजा। नर दुष्यन्त आनु जनि दूजा॥
तुम यहि गर्भ धाता [illegible]। सत्य शकुन्तल बरन सुभाऊ॥ २॥

यहसुन राजा दुष्यन्तने भरतनाम पुत्र व शकुन्तला को ग्रहणकिया इन महा प्रतापी भरतजी के नवपुत्र हुये भरत ने कहा ये पुत्र हमारा नहीं थे हम तिये रानियाँने जाना कि राजा हमारा नम्भ [illegible] [illegible] न हो इसलिये पुत्रों

को मारडाला तब इन राजाके कोई पुत्र न रहा तो पुत्र के लिये यज्ञ कराया। तब पवनने भरद्वाज नाम पुत्र भरत को दिया इन भरद्वाजके जन्मकी ऐसी कथाहै कि बृहस्पति के बड़ेभाई उतथ्य की स्त्री का ममतानाम था वह गर्भिणीथी पर बृहस्पतिजी ने भी उसके सङ्ग भोगकिया उससेभी दूसरागर्भ धारणहुआ परन्तु जो गर्भ उसके पेटमें प्रथमसे था उसने वहां कमस्थान होनेके कारण लात मार२ पिछिले गर्भको बाहर करदिया तब बृहस्पति ने कहा हे ममते मूढे। इस द्वाज अर्थात् दूसरीबार के उत्पन्न पुत्रको भरण पोषण कर ममता ने कहा बृहस्पति तुम इसको भरणकरो यह कह माता पिता दोनों चलेगये किसीने ग्रहण न किया उस पुत्रका भरद्वाज नामहुआ वही पवनने राजा भरतको दिया इसका दूसरा नाम वितथ हुआ वितथ के अभवन्मन्यु नाम पुत्रहुआ अभवन्मन्यु के बृहत्क्षत्र महावीर्यनर गर्गादि हुये उनमें नरके सकृति सकृतिके रुचिरथी व रन्तिदेव दो पुत्रहुये गर्ग के शिनि तिनके गार्ग्य इन सबकी क्षत्रिय ब्राह्मणकी मिलीहुई जातिहुई महावीर्य के उरुक्षय हुये तिनके त्र्यय्यारुण पुष्करी कपि ये ३ पुत्रहुये ये तीनों पीछे से ब्राह्मणहोगये बृहत्क्षत्र के सुहोत्र सुहोत्र के हस्ती जिन्होंने हस्तिनापुर बसाया इनके अजमीढ द्विमीढ पुरुमीढ तीन तनय हुये अजमीढ के कण्व कण्वके मेधातिथि इन मेधातिथि से कण्वायन सञ्ज्ञक ब्राह्मणहुये अजमीढ के एक और पुत्र बृहदिषु नामथा तिसके बृहद्वसु तिनके बृहत्कर्म्मा तिनके जयद्रथ तिनके विश्वजित् तिन के सेनजित् तिनके रुचिराश्व काश्य दृढधनु वत्सहनु ये हुये रुचिराश्व के पृथुसेन तिनके पार पारके नीप नीप के १०० पुत्र तिनमें काम्पिल्य नगरका स्वामी समरनाम प्रधानहुआ समरके भी पार सम्पार सदश्व तीन पुत्रहुये पारके पृथु पृथुके सकृति तिनके विभ्राज तिनके अनुह इनका विवाह शुक्राचार्य की कन्या सकृत्वा के साथहुआ तिनके ब्रह्मदत्त तिनके विष्वक्सेन तिनके उदक्सेन तिनके द्विमीढ तिनके प्रतीनर तिनके धृतिमान् तिनके सत्यधृति तिनके दृढनेमि तिनके सुपार्श्व तिनके सुमति तिनके सन्नतिमान् तिनके कृत जिनको हिरण्यनाभने योगशास्त्र पढ़ाया। इसलिये इन कृतने सामवेदकी २४ संहिता बनाई कृतके उग्रायुध हुये जिन्होंने नीपवंशी क्षत्रियों का नाशकिया उग्रायुधकेक्षेम्य तिनके सुवीर तिनके नृपञ्जय तिनके बहुरथ ये इतने पुरुवंशी हुये अजमीढ की स्त्रीका नीलिनीनाम-

था तिसमें नीलहुये तिनके शान्ति शान्तिके सुशान्ति तिनके पुरुजानु तिनके चक्षु तिनके हर्य्यश्व तिनके मुद्गल सृंजय बृहदिषु यवीर काम्पिल्य ये ५ पुत्रहुये इन पांचोंकी रक्षासे इनके पिता प्रसन्नहुये इसीसे अपने देशका पंचालनाम धराया मुद्गलसे मौद्गल्य नाम क्षत्रिय ब्राह्मणोंकी मिलीहुई जातिहुई व उनके पुत्रका वद्ध्यश्वनाम हुआ तिससे दिवोदासपुत्र व अहल्यानाम कन्या हुई शरद्वान् अर्थात् गौतम मुनिसे अहल्यामें शतानद जी हुये शतानदके सत्यधृति धनुर्वे-दान जाननेवाले हुये सत्यधृति के उर्व्वशीको देख वीर्य्यस्खलितहोने व सरपत में परने से एकपुत्र व एक कन्या उत्पन्नहुई उसीसमय राजाशन्तनु शिकार खेलने गये थे मारे कृपाके उठालाये इसलिये उस बालकका कृप व कन्याका कृपी नामहुआ इससे द्रोणाचार्य्यका विवाह हुआ जिसमे अश्वत्थामाजी उत्पन्नहुये दिवोदासके मित्रायु तिनके च्यवननाम राजा तिनके सुदास तिनके सौदास जिनका सहदेवभी नामहुआ तिनके सोमक तिनके जन्तु इन जन्तु के ६६ भाई इनसे छोटे औरथे तिनमें सबसे छोटा पृषतनामहुआ तिनके द्रुपद तिनके धृष्टद्यु-म्न तिनके धृष्टकेतु अजमीढके एक और ऋक्षनाम पुत्रहुआ तिसके संवरण तिनके कुरु तिन्होंने यह धर्मक्षेत्र कुरुक्षेत्र बनाया इन कुरुके सुधनु जह्नु परीक्षि-त आदि पुत्र हुये सुधनुके सुहोत्र तिनके च्यवन तिनके कृतक तिनके उपरिचर तिनके वसु तिनके बृहद्रथ प्रत्यग्रकुशाम्ब गावेल मत्स्य आदि ७ पुत्रहुये बृहद्रथ से कुशाग्र तिनके ऋषभ तिनके पुष्पवान् तिनके सत्यधृत तिनके सुधन्वा ति-नके जन्तु इन्हीं बृहद्रथ से एकपुत्र हुआ जिसके बीचोंबीच से दो खंडथे उसे जरानाम राक्षसी ने सन्धित किया इसलिये उसका जरासंध नाम हुआ तिसके सहदेव नाम पुत्रहुआ तिनके सोमापि तिनके श्रुतश्रवा ये इतने मगधदेश के राजा कहे॥

बीसवां अध्याय॥

सो॰ या विंशें अध्याय महँ कहत सकल कुरु वंश॥
जहां व्यासते पांडु धृतराष्ट्र विदुरजनि हंस॥१॥

पराशरमुनि बोले कुरुके पुत्र परीक्षित के जनमेजय श्रुतसेन उग्रसेन भीम-सेन ये ४ पुत्रहुये व जह्नु के सुरथ तिनके विदूरथ तिनके सार्वभौम तिनके

जयसेन तिनके आयवी तिनके अयुतायु तिनके अक्रोधन तिनके देवातिथि तिनके ऋक्ष तिनके भीमसेन तिनके दिलीप तिनके प्रतीप तिनके देवापि शन्तनु बाह्लीक ये ३ पुत्र हुये देवापि बाल्यावस्थाही में वनको चलेगये तब शन्तनु राजाहुये ये शन्तनु जी जिस २ बूढ़ेको छूते थे तुरन्त ज्वान होजाता था व वह बड़ी शांति को पहुँचता था इसलिये इनका शन्तनुनाम हुआ तिन शन्तनु के राज्य में १२ वर्ष तक वर्षा न हुई तो सब राज्यका नाशदेख राजा ने ब्राह्मणों से पूछा हे ब्राह्मणो। हमारे राज्य में वर्षा क्यों नहीं होती इसमें हमारा अपराध हो बताइये ब्राह्मणों ने कहा यह पृथिवी तुम्हारे ज्येष्ठ भाईकी है व उनका विवाह नहीं हुआथा इसलिये तुमको परिवेत्ता दोषलगा इसीसे वर्षा नहीं होती राजाने कहा फिर इसका कोई उपाय है या नहीं ब्राह्मणों ने कहा हां जब तक देवापि किसी कारण पतित न होजावैं तबतक आप राज्य न कीजिये प्रथम उसके पतित होनेका उपायहो यह सुन राजमन्त्री अश्मसार ने ब्राह्मणोंका वेषधर दोचार वेद विरुद्ध काम करनेवाले लोग वनमें देवापिके निकट भेजे उन लोगोंके बहँकाने से देवापि की मति वेद विरुद्ध होगई तब शन्तनु ब्राह्मणों को संगले वनमें अपने भाईको राज्य देने गये व बहुत विनती की कि आप अपना राज्य कीजिये ब्राह्मणों ने भी बहुत देववाणी इस विषयमें सुनाई पर देवापि की मति तो वेद विरुद्ध होरही थी उन्हों ने वेद व ब्राह्मण दोनोंकी बड़ी निन्दा की तब ब्राह्मणों ने शन्तनु से कहा अब आप इनको न मनाइये चलकर राज्य कीजिये ये अब वेद ब्राह्मणों की निन्दा करने से पतित होगये अब परिवेत्ता दोष आपमें नहीं रहा क्योंकि जब बड़ाभाई किसी कारण पतित होजाता है तो छोटे के विवाहकरने व बड़ेका राज्य लेने से परिवेत्ता दोष नहीं होता यह सुन शन्तनु अपने नगर में आय राज्य करने लगे तब वेदविरुद्ध बात उच्चारण करने से देवापि पतित होगये शन्तनु के राज्य में वर्षाहुई और बाह्लीक के सोमदत्त नामपुत्र हुआ तिनके भूरि भूरिश्रवा व शल तीन पुत्रहुये और शन्तनु के श्रीगंगाजी में उदारकीर्त्ति सर्वशास्त्रवेत्ता महात्मा भीष्म नाम तनयहुये व सत्यवती स्त्री में चित्राङ्गद विचित्रवीर्य दो पुत्र शन्तनुजी के हुये उनमें चित्राङ्गद को तो बाल्यावस्थाही में चित्राङ्गद नाम गन्धर्व ने संग्राम में मारडाला और विचित्रवीर्य का भी विवाह काशिराज की कन्या अम्बिका व-

अम्बालिका के साथ हुआ उनदोनों के सग अतियोग करनेसे उनके क्षयीरोग होगया कि वहभी विना सतानही मरे पराशर मुनि बोले कि तब सत्यवती अपनी माताके गौरव से हमारे पुत्र कृष्ण द्वैपायन वेदव्यासने विचित्रवीर्य की स्त्रियोंमें धृतराष्ट्र व पाडु दोपुत्र और विचित्रवीर्यकी स्त्रीकी भेज की एक शूद्रीमें जिसे उन्होंने अपने स्थान में भेजा था विदुरनाम पुत्र ये सब तीन पुत्र उत्पन्न किये धृतराष्ट्र के दुर्योधन दुश्शासन प्रधान १०० तनयहुये व पाडुके भी वनमें मृगके शापसे पुत्रोत्पादन करने की सामर्थ्य न रहने से धर्म वायु इन्द्रसे युधिष्ठिर भीमसेन अर्ज्जुन तीन कुन्ती में व अश्विनीकुमार से नकुल सहदेव दो माद्रीमें सब ५ पुत्रहुये इन सबकी साझे में एक द्रौपदी नाम स्त्रीथी उनमें उन सबों से एक २ पुत्र अर्थात् ५ हुये युधिष्ठिर से प्रतिविन्ध्य भीमसेनसे सुतसोम अर्ज्जुन से श्रुतकीर्त्ति नकुलसे शतानीक सहदेव से श्रुतकर्म्मा ये तो द्रौपदी में हुये इनको छोड़ अन्य स्त्रियोंसे युधिष्ठिरादिकों के अन्यभी पुत्रथे जैसे कि युधिष्ठिर से यौधेयी नाम स्त्री में देवक भीमसेन से हिडिम्बी में घटोत्कच व सर्व्वत्रग सहदेव से विजया में सुहोत्र नकुल से करेणुमती में निरमित्र अर्ज्जुन से उलूपी नाम नागकन्या में इरावान् मणिपुरपतिकी पुत्री में पुत्रिका धर्म से बभ्रुवाहन नाम व कृष्णचन्द्रकी भगिनी सुभद्राजी में अभिमन्युजी हुये जिन्हो ने बाल्यावस्थाही में अमरुप शत्रुओं को मारा अभिमन्यु के उत्तरा नाम स्त्रीमें जब कुरुवंशी परिक्षीण होगये तब अश्वत्थामा के चलाये हुये ब्रह्मास्त्र से गर्भही भस्म हुआजाता था भगवान् कृष्णचन्द्र के प्रभावसे गर्भ की रक्षाहुई इससे परीक्षितजी उत्पन्नहुये जो आजकल समस्त महीमण्डल की पालना करतेहैं यह पराशर का वचन है ॥

इक्कीसवां अध्याय ॥

दो० इकिसयें अध्याय महँ भविष्यित कुरु भेर ॥
वर्णत क्षेमकनक लगि, नृपन महित अभेर ॥ १ ॥

पराशरमुनि बोले हे मैत्रेय ! अब हम भविष्यत राजाओं का वर्णन करते हैं जो आजकल परीक्षित नाम महाराज राज्य करते हैं इनके भी जनमेजय श्रुतसेन उग्रसेन भीमसेन ४ पुत्रहोंगे और एक शतानीक नाम पुत्रहोगा जो।

याज्ञवल्क्यजी से वेदपढ़ कृपाचार्य्य से अस्त्र पाय विषयवासना से विरक्तचित्त हो शौनक के उपदेश से आत्मज्ञान पाय परम मोक्षपद को पहुँचेगा शतानीक से अश्वमेधदत्त होंगे तिनके अधिसीम कृष्ण तिनके निचक्षु होंगे जो हस्तिनापुर गंगामें डूबजानेसे कौशाम्बी पुरी में बसेंगे तिनके उष्ण उष्णके चित्ररथ तिनके शुचिरथ तिनके वृष्णिमान् तिनके सुषेण तिनके सुनीथ तिनके ऋच तिनके नृचक्षु तिनके सुखावल तिनके परिप्लव तिनके सुनय तिनके मेधावी तिनके नृपंजय तिनके मृदु तिनके तिग्म तिनके बृहद्रथ तिनके वसुदान तिनके शतानीक तिनके उदयन तिनके अहीनर तिनके खण्डपाणि तिनके निरमित्र तिनके क्षेमक ॥

चौ॰ ब्राह्मण क्षत्रि योनि जो वंशा । जासु राज ऋषि करत प्रशंसा ॥
सो कलियुग महँ क्षेमक राजहि । पाय समाप्त होइ निज साजहि ॥ १ ॥

बाईसवां अध्याय ॥

दो॰ बाइसयें अध्याय महँ सोम सूर्य्य के वंश ॥
जो भविष्य नृप होहिंगे तिनकी करब प्रशंश ॥ १ ॥

पराशरमुनि बोले हे मैत्रेय ! अब भविष्यत् सूर्य्यवंशी राजाओं का बखान करते हैं जिस सूर्य्यवंशी बृहत्तलको महाभारत में अभिमन्यु ने मारा उनके पुत्र का बृहत्क्षण नाम होगा तिनके गुरुक्षेप तिनके वत्स वत्सके वत्सव्यूह तिनके प्रतिव्योम तिनके दिवाकर तिनके सहदेव तिनके बृहदश्व तिनके भानुरथ तिनके सुप्रतीक तिनके मरुदेव तिनके सुनक्षत्र तिनके किन्नर तिनके अन्तरिक्ष तिनके सुवर्ण तिनके मित्रजित तिनके बृहद्राज तिनके धर्मी तिनके कृतंजय तिनके रणंजय तिनके संजय तिनके शाक्य तिनके शुद्धोदन तिनके रातुल तिनके प्रसेनजित तिनके क्षुद्रक तिनके कुण्डक तिनके सुरथ तिनके सुमित्र इनसे यह सूर्य्यवंश समाप्त होजावेगा। इस विषयमें यह पद्य गायाजाताहै ॥

चौ॰ यह इक्ष्वाकुवंश अति पावन । भूप सुमित्र अन्तलग भावन ॥
कलियुग में सुमित्र के पाछे । फिर न चलिहि वंश यह आछे ॥ १ ॥

तेईसवां अध्याय॥

दो॰ तेइसयें अध्याय महँ चन्द्र वंश के भूप॥
कह्यु रिपुंजय लग भविषि कलिमहँ अतिहि अनूप॥ १॥

पराशरमुनि बोले सूर्य सोमवंशी भूत भविष्यत् राजाओंका वर्णन होचुका अब सोमवंशही के पल्लव से उत्पन्न बार्हद्रथ राजाओंका भविष्यत् वर्णन कहते हैं इस मागध वंश में जरासन्धादि प्रतापी राजाहुये जरासन्धके पुत्र सहदेव के सोमापि पुत्रहोगा तिसके श्रुतवान् तिनके अयुतायु तिनके निरमित्र तिनके सुक्षेत्र तिनके वृहत्कर्म्मा तिनके सुश्रुत तिनके दृढ़सेन तिनके सुमति तिनके सुवल तिनके सुनीत तिनके सत्यजित् तिनके विश्वजित् तिनके रिपुंजय इतने बार्हद्रथ मागध राजा कलियुग के १००० वर्ष बीतेतक रहेंगे॥

चौवीसवां अध्याय॥

दो॰ चौविसयें अध्याय महँ कलि नृप धर्म बखान॥
भूमिगीत शिक्षा कह्य हेतु विराग अमान॥ १॥

पराशरमुनि बोले हे मैत्रेय! जो मगधदेश के राजाओं में रिपुंजय सबसे पिछला राजाहै तिसका सेवक शुनक नाम होगा वह अपने स्वामी रिपुंजय को मार अपने पुत्र प्रद्योतनको राज्यसिंहासन पर बैठावेगा तिसके पुत्रका पालक नामहोगा तिसके विशाखयूप तिसके जनक तिनके नन्दिवर्द्धन ये पांच प्रद्योतन नाम राजा १३८ वर्षतक राज्य करेंगे तिसके पीछे अन्य वंशका शिशुनाग नाम राजाहोगा तिनके काकवर्ण तिनके क्षेमधर्मा तिनके क्षत्रौजा तिनके विन्दुसार तिनके अजातशत्रु तिनके दर्भक तिनके उदयन तिनके नन्दिवर्द्धन तिनके महानन्दी ये,१० शिशुनागकुल के राजा ३६२ वर्षतक राज्य करेंगे इस महानन्दीका पुत्र शूद्री के गर्भ से उत्पन्न महापद्मनाम क्षत्रिय [illegible] नाश करनेके लिये दूसरा परशुरामही होगा तिनके पीछे सब शूद्रही राजाहोंगे यह महापद्म पृथ्वीभरका एकही राजा होगा तिसके सुमाली आदि ८ पुत्र होंगे ये [illegible] उसकेपीछे राजाहोंगे महापद्म व उसके पुत्र सब १०० वर्षतक राज्य करेंगे इन नन्दों के पीछे एक ब्राह्मण ने इन नवों नन्दोंको मारा [illegible]

दिलावेगा चन्द्रगुप्त के बिन्दुसार तिनके अशोकवर्द्धन तिनके सुयश तिनके दशरथ तिनके संगत तिनके शालिशूक तिनके सोमशर्मा तिनके शतधन्वा तिनके बृहद्रथ इन १० राजाओं की मौर्यसंज्ञा होगी ये १३७ वर्ष राज्य करेंगे इनके पीछे शुंगजाति के राजा होंगे उन शुंगों की सेनाका स्वामी अपने स्वामीको मार आप राज्यकरेगा इसका पुष्यमित्र नामहोगा। इसके पुत्रका अग्निमित्र तिनके सुज्येष्ठ तिनके वसुमित्र तिनके आर्द्रक तिनके पुलिन्दक तिनके घोषवसु तिनके वज्रमित्र तिनके भागवत तिनके देवभूति ये १० शुंग नामक ११२ वर्षतक राज्य करेंगे तिसके पीछे कण्वगोत्रियों के पास यह भूमि जायगी शुंगों के अन्तिम राजा देवभूति को कण्वगोत्री वसुदेव नाम जो कि उसीका नौकर होगा मार आप राज्य करनेलगेगा तिसके पुत्रका भूमित्र नाम होगा तिनके नारायण तिनके सुशर्मा ये ४ कण्ववंशी ४५ वर्षतक राज्य करेंगे सुशर्मा को उसीका सेवक अन्ध्रवंशी क्षिप्रनामक मार आप राज्य करेगा तिसके पीछे उसका भाई कृष्णनाम राज्य करेगा। तिनके श्रीशातकर्णि तिनके पूर्णोत्सङ्ग तिनके शातकर्णि तिनके लम्बोदर तिनके द्विविलक तिनके मेघस्वाति तिनके पटुमान तिनके अरिष्टकर्मा तिनके हाल तिनके पत्तलक तिनके प्रविल्लसेन तिनके सुन्दर शातकर्णी तिनके चकोर शातकर्णी तिनके शिवस्वाति तिनके गोमती तिनके पुलिमान तिनके शातकर्णी शिवश्री तिनके शिवस्कन्ध तिनके यज्ञश्री तिनके विजय तिनके चन्द्रश्री तिनके पुलोमार्चि ये ४५६ वर्ष राज्यकरेंगे तिसके पीछे ७ आभीर १० गर्दभिल्ल १६ शकवंशी तिसके पीछे ८ यवन १४ तुषार अर्थात् गोरा १३ मुण्ड ११ मौन ये ७६ राजा १३९९ वर्ष राज्य करेंगे तिसके पीछे पौरनामक ११ राजा तीनसौ वर्षतक राज्यकरेंगे तिनके उच्छिन्न होजानेपे कैलिकिलनाम यवन राजा होंगे तिनमें अभिषेक केवल विन्ध्यशक्ति ही का होगा तिसकेपीछे पुरञ्जय तिनके रामचन्द्र तिनके धर्म तिनके वराङ्ग तिनके कृतनन्दन तिनके सुनन्दि तिनके नन्दियश तिनके शिशुक तिनके प्रवीर ये राय १०६ वर्षतक राजा होंगे तिसके पीछे विन्ध्यशक्त्यादिकों के १३ पुत्र बाह्लीक राजा होंगे फिर तिनके पुष्पमित्र पटुमित्र ये २ होंगे फिर १३ मेकल इनमें अयोध्यामें ९ राजा होंगे ६ नैषधराजा मगधापुरीमें विश्वस्फटिक नाम एक राजा होगा वह सबको अन्यवर्ण करदेनेगा व केवर्त यदुपुलिंद ब्राह्मणों को

राज्यमें स्थापित करेगा सब क्षत्रियोंको देशसे निकालदेगा फिर पद्मावतीपुरी में ६ राजा नागसञ्ज्ञक होंगे कान्तीपुरी मथुरा गंगाके किनारे २ प्रयागतक गुप्त जातिके राजा होंगे व कोशलेंद्र ताम्रलिप्तपुरी जो समुद्र तटपैहै इनमें देवरक्षित राजा होगा कलिंगमाहिषक महेंद्रकी पृथ्वीको गुहसञ्ज्ञक भोगेंगे नैषाद नैमिषिककालतोय देशोंको मणिधानवंशी भोगेंगे स्त्री राज्यमूषिक देशोंको कनकसञ्ज्ञक भोगेंगे सौराष्ट्र अवंतिकापुरी मरुदेश इनको जातिभ्रष्ट ब्राह्मण व शूद्र भोगेंगे सिंधुदेश व काश्मीरादिमें चन्द्रभागा नदीके किनारे २ जातिभ्रष्ट ब्राह्मण व म्लेच्छ व शूद्रादि राज्यकरेंगे ये सब राजा और २ एकही कालमें इस भरतखण्डमें होंगे और सबके सब प्रसाद तो थोड़ादेंगे कोप बहुत करेंगे सब कालमें झूठही बोलने व स्त्री बाल गोवध करनेवाले परद्रव्यलेनेमें रुचि करनेवाले अल्पबली उदय होनेमें महातमोगुणी थोड़ी २ आयुर्दायवाले बड़ी २ इच्छा करनेहारे अल्पधर्मकारी ये सब गुण सबोंमें होंगे इनमें जो राजाओं के नगीचीहोंगे वही बलवान् रहेंगे चाहे म्लेच्छ भी हो उन्हींकी रीति श्रेष्ठ समझी जायगी व श्रेष्ठलोगों की रीति म्लेच्छों की रीति समझी जायगी इसकारण धर्मभ्रष्टहो सब प्रजा नाश होजायगी तदनन्तर धीरे २ मिटते २ धर्मादिकी वार्ताप्रसार से जाती रहेगी तदनन्तर अर्थहीसे प्रयोजन रहेगा लोग धनहीको धर्म समझने लगेंगे केवल स्त्री पुरुषहीका सम्बन्ध रहेगा अन्य भाई बन्धु माता पिताको कोई न मानेगा परद्रव्य लेलेना वा उद्यम करना यही चतुरता रहेगी स्त्रीरूपहो पुरुष भोग करावेंगे पृथिवी रखने से केवल रत्न ताम्रादि की प्राप्तिही हेतु माना जायगा न कि उससे जो द्रव्य मिले तीर्थयात्रादिमें लगाईजावे केवल यज्ञोपवीत धारण करनाही ब्राह्मणताका हेतु होगा न कि सन्ध्या वन्दन तप जपादि करना रँगे कपड़े पहिनना यही सन्यासी तपस्वी आदिकोंका हेतु होगा न कि अन्य कर्म अन्याय करनाही जीविकाका हेतु होगा जो दुर्बल होगा उसको जीविका न मिलेगी दीनताके साथ बोलना इसीका पांडित्य नाम होगा कुछ भी दान करना धर्म समझा जावेगा धनी होगा वही साधु कहावेगा स्नानकरनाही पवित्रता कहावेगी किसीका हाथ पकड़लेना यही विवाह रहजावेगा अच्छे रत्नादि धारण किये हो चाहे चोरभीहो लोग नृप समझाजायगा जो बालक दूरहो यही तीर्थ कहावेगा इस भांति कलियुग जब महाभयङ्कर होजावे

तो ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र अन्त्यजोंमें जो कोई बलवान् होगा वही राजा होजायगा कुछ जातिका नियम न रहेगा इसीभाँति होते २ जब पृथिवीका पौन बदजायगा तब प्रजा पीड़ितहो भाग २ पर्वतादिकी कन्दरों में जागिरेगी व नाशको पहुँचेगी जो जीतीरहेगी मधु पुष्प फल शाकादि खायगी वृक्षोंके व कपड़ा पत्ता आदि पहिनेगी इसलिये शीत वर्षा घाम सहनेका स्वभाव होजायगा कोई भी २३ वर्ष न जीवेगा बहुधा सबकी अल्पही आयुष होगी इसप्रकार सब जन नाशको पहुँचेंगे वेदस्मृतिके अनुसार कर्मोंके न होनेपर व धर्माचरण भ्रष्ट होजानेपर सब जगत्के स्रष्टा चराचरके पिता आदि मध्य अन्तमय ब्रह्ममय आत्मस्वरूपी भगवान् वासुदेवके अंशसे शम्भलग्राम में ब्राह्मणोंमें प्रधान विष्णुयश नामके यहां श्रीकल्कीजीका अवतार होगा तब सकल म्लेच्छ और दुष्टाचरण लोगोंका नाश वे करेंगे व सब प्रजाओंको धर्ममें चलावेंगे जो कलियुग बाकी रहेगा उसमें सब शुद्धमतिलोग रहजावेंगे उन सब लोगों की सन्तति उनसे भी अच्छी होनेलगेगी यहांतक कि सब सत्ययुगी मनुष्यों के समान काम करनेलगेंगे इस विषयमें यह पद्य पढ़ाजाता है ॥

चौ० चन्द्र सूर्य गुरु एकहि संगा । पुष्यनक्षत्र में जाहिं अभंगा ॥
न्यूनाधिक तिनको नहिं कोई । तब सुखदायिसत्ययुगहोई ॥ १ ॥

हे मैत्रेय ! जो राजा बीतगये व जो अब राज्य करते हैं व जो आगे राजा होंगे उन सबके वंशवाले राजाओंकी कथा कही राजापरीक्षितके जन्मसे ले महानन्द राजाके अभिषेकतक १०१५ वर्षतक शुद्ध क्षत्रियलोग कलियुग में राज्यकरेंगे सप्तर्षियों में जो पुलह पुलस्त्य सबमें पूर्व हैं उनके बीचके नक्षत्र में सप्तर्षि जब होते हैं तब कलियुग लगताहै सो राजापरीक्षितके जन्म काल में सप्तर्षि मघानक्षत्र में थे तभी कलियुग लगाथा यह वही समय है जब भगवान् कृष्णचन्द्र स्वर्गको गये थे तभीसे कलियुग आया है जबतक वे अपने चरण कमल से पृथ्वी को छूतेरहे तबतक कलियुग पृथ्वीको नहीं छूसका जब कृष्णचन्द्र इस पृथ्वी को छोड़ स्वर्ग को चलेगये तभी राज्यछोड़ धर्म के पुत्र महाराज युधिष्ठिरजी भी अपने भाइयोंसमेत स्वर्गको चले गये जब देखा कि कृष्णचन्द्र चलेगये और महीमण्डल में बहुत २ अधर्म होनेलगे तब अपने पौत्र परीक्षितजी को राज्य देकर गयेथे जब वे सप्तर्षिलोग मघा से पूर्वाषाढ़ में जावेंगे

तब नन्द के पीछे ये राजा होंगे और तभी से कलियुग अपनी बढ़ती को पहुँचेगा। जिसदिन कृष्णचन्द्र महीमण्डल छोड़ अपने धामको गये उसीदिन कलियुग आया जिसकी सख्या सुनिये ३६०००० वर्ष मनुष्यों की गिनती में यह कलियुग रहेगा। देवताओं की गणनासे १२०० वर्ष रहेगा जब सब कलियुग बीत जायगा तो फिर सत्ययुग लगेगा ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र ये सब युगों में महात्मा होते चलेआये हैं और उनके बहुत २ नाम हुये व होतेजावेंगे क्योंकि कुल २ के नाम लिखें बड़ाभारी ग्रन्थहोजाने के भय से उन सबके नाम हमने नहीं कहे पुरुवंशियों में राजा देवापि व इक्ष्वाकुवंशी राजामनु महायोग के बल से कलापग्राम में तपस्या करतेहैं जब सत्ययुग लगेगा तो यहाआय चन्द्र सूर्यवंशको चलावेंगे इस क्रम से मनु के पुत्र सत्ययुग त्रेता द्वापर तीनोंयुगों में राज्य करतेहैं कलियुग में राज्य नहीं करते केवल बीजभूत कोई २ कहीं २ टिके रहते हैं जैसे देवापि व मनुपुत्र दोनों इससमय कलापग्राम में टिके हैं हे मैत्रेय! यह संक्षेपरीति से प्रधान २ राजाओं का वंश हमने कहा सम्पूर्ण वंश तो सैकड़ों वर्षों में भी नहीं कहसक्ते जितने राजा गिनाये व जिन्हें नहीं गिनाये व उन्हों ने इस नित्य पृथिवी में अपने अनित्य देह से ममता की है कि हाय २ हमारे पीछे हमारापुत्र कैसे राज्यकरेगा फिर उसके पुत्र पौत्रादि कैसे राज्य करेंगे इन सबको पुष्पितदेख पृथिवी हँसा करती है हे मैत्रेय! पृथिवी के गायेहुये श्लोक सुनिये जिन्हें धर्मध्वजी जनकराजा से असितमुनिने कहा है पृथिवी कहती है कि इन राजाओं को यह मोह क्यों है जो फेन समानदेह में विश्राम मानते हैं ये लोग पहिले अपना तो जीतना फिर मन्त्रियों को जीतना चाहते फिर भृत्यलोग व पुरवासियों के जीतने की इच्छा करते जैसे कि शत्रुओं को जीतना चाहिये इसीक्रम से विचारते हैं कि जीतते हुए फिर स मुद्र पर्य्यन्त पृथिवी जीतलेंगे मृत्यु पै चढ़ेहुये मृत्यु को नहीं देखते यह नहीं कि अपने काम क्रोधादि जीतें कि संसारवश से मुक्त होके चढ़ते होजाते हमारे जीतने से उनको क्या मिलेगा जिस हमको छोड़ के उनके पहिलेवाले चले गये व ये भी छोड़जावेंगे वे मूढ़ जिस हमारे जीतने में क्यों इतना परिश्रम करते हैं हमारे निमित्त पिता पुत्र व भाइयों में विवाद होता है इसीसे अपना नाश हो करते हैं यह सब पृथिवी हमारी है व मेरे पुत्र [illegible] के नाम सदा रहेगी।

जो २ कुबुद्धि राजाहुये व जो होंगे उन सबकी ऐसीही गति रही व रहेगी हम नहीं जानतीं कि जब उनके पहिलेवाला राजा मरता व हमको यहींछोड़ जाता तो उसको देखतेभी हैं फिर पिछलेवालों को क्यों हममें ममता होती है जो लोग अपने दूतोंसे शत्रुओंको कहला भेजतेहैं कि यह पृथ्वी हमारीहै शीघ्रही इसे छोड़दो तिन मूढ़ राजाओं की गति देख हमें बड़ी हँसी आती है पर फिर दयाभाजाती है पराशर मुनिबोले हे मैत्रेय ! ये धरणी के गाये श्लोक जो सुनतेहैं तिनकी ममता दूर होजाती है जैसे गर्मीसे जाड़ा मिटता है यह मनु का वंश हमने कहा जिसकी स्थिति चलाने के लिये विष्णुके अंशांश से राजालोग हुये जो इस मनुवंशकी कथा क्रमसहित सुनता उसके सबपाप छूट जातेहैं व अति पवित्र सूर्य सोमवंशकी कथा जो सुनता अतुल धनधान्य ऋद्धिसिद्धि सब उसके होतीहै मनुष्योंको चाहिये कि इक्ष्वाकु जह्नु मान्धाता सगर रघु ययाति नहुषआदि महापराक्रमी व बलवान् राजाओं का नाशदेख व सुत पुत्र पौत्रादि में ममता न करें जब ऐसे २ न रहे तो औरों की क्या गणना जिनलोगों ने ऊपरको बाहुउठाय जलशायीहो नानाप्रकार की तपस्या की उन्हेंभी काल कलेवा करगया केवल कथामात्र सुनी जाती है राजा पृथु ने सब पृथ्वीमण्डल में राज्य किया शत्रुओं का नामही मेटदिया सो भी काल-प्रेरित पवन के झकोरों से प्रचण्डअग्नि में गिर भस्म होगये जैसे सेमर की रुई में आग लगती है उसका पता नहीं मिलता जिस सहस्रबाहु कार्त्तवीर्या-र्जुन राजा ने सप्तद्वीपवती पृथिवी का राज्य किया वहभी कालके मुखमें पड़ा अब केवल कथाप्रसङ्ग में नाम लिया जाता है रावण ऐसा महाप्रतापी जिस के ऐश्वर्यके आगे रघुवंशियों का भी ऐश्वर्य तुच्छथा व सब दिशों में प्रका-शित था सो भी काल मुख में पड़ भस्महोगया फिर अन्य ऐश्वर्यको धिक्कार है भूमि में मान्धाता राजा की कथाही मानों उनका शरीर बनाहै यड़ेप्रतापी चक्र-वर्ती राजा हुयेहैं पर रह न सके उनकी कथा श्रवणकर कोई साधु ममता न करेगा भगीरथादि सगर ककुत्स्थ रावण राम लक्ष्मण युधिष्ठिरादि बहुराजा हुये मिथ्या नहीं पर नहींजानते कहांगये जो राजालोग इससमय विद्य-मान हैं व जो आगे होंगे सबकी वही दशा होगी जो पहिलेवालोंकी हुई जे यह जान श्रेष्ठ पण्डित को चाहिये कि अपने शरीरमें भी ममता न करे

फिर स्त्री पुत्रपौत्र धन धान्य ये शरीरसे अलग हैं इसलिये इनको अलग धरे॥

इति श्रीमद्विष्णुपुराणेचतुर्थेंशचतुर्विंशोऽध्याय २४॥

अथ विष्णुपुराणस्य॥

पञ्चमोऽश॥

पहिला अध्याय॥

दो॰ यापञ्चम शुभ अंश में अरातिस हैं अध्याय॥
तहां प्रथमअध्यायमहँ कृष्णजन्माहित जाय॥ १॥
देवन हरि सस्तुतिकरी सो वर्णत मुनिलेहु॥
कृष्णजन्मकी है कथा मित्र चित्त यह देहु॥ २॥

चतुर्थ अंशकी कथासुन मैत्रेयमुनि बोले हे मुनिराज! आपने राजाओं का वंश विस्तार सहित कहा व वंशानुचरित भी सब यथावत् कहा पर जो यदुकुल में श्रीविष्णुभगवान् के अंश से श्रीकृष्णावतार हुआ है उसकी कथा विस्तार पूर्वक सुना चाहते हैं अंशांश से महीतलमें अवतारले जो कर्म भगवान् पुरुषोत्तमने कियेहों सब हमसे कहिये यह सुन पराशरमुनि बोले हे मैत्रेय! विष्णु के अंशांश से उत्पन्न श्रीकृष्णचन्द्र के पवित्रचरित्र जो तुमने पूंछे सो संसारके हेतु कहते हैं श्रवण कीजिये राजा देवककी कन्या बड़ी भाग्यशालिनी देवकीजी का विवाह वसुदेवजी के साथहुआ जब देवकी वसुदेव रथ पै चढ़ चले तो उग्रसेनका पुत्र कंस उनका रथ हांकने लगा। तो कंसको आदर सहित सुनाय बड़े जोरसे आकाशवाणी हुई कि हे मूढ़ कंस! जिन इन दोनोंको तू रथमें चढ़ाये भेजनेको जाताहै तिनके आठवें गर्भवाले बालक से तेरा मरणहोगा यह सुन तलवार खींच कंस देवकी को मारने चला तब वसुदेवजी बोले हे महाबाहु कंसजी! आप इसको न मारिये जो २ बालक इसके गर्भमेंहोंगे सब हम तुमको देजायँगे वसुदेवजी के वचनमान कंसने देवकी को न मारा इन्हीं दिनोंमें इन्द्र

राजाओं के भारसे पीड़ित हो पृथिवी सुमेरु पर्वत पै-देवताओं की समाज में पहुँची तहां ब्रह्मादि सब देवोंसे अपने दुःख का हेतु कहत रोय २ कहने लगी जैसे अग्नि सुवर्ण का गुरु है व सूर्य पशुओं के वैसही हमारे व सब लोक का पालन करनेवाला गुरु श्रीनारायण हरि हैं ये प्रजाओं के पति ब्रह्मा जी कला काष्ठा मुहूर्तादि के स्वामी तिसी नारायण के अंशसे उत्पन्न हैं जोकि तुम सब देवगणोंके अधिष्ठाता हैं आदित्य पवन साध्य रुद्र वसु अश्विनीकुमार अग्नि पितर अन्य भी जो लोककी सृष्टि करनेवाले हैं ये सब उसी अतुलबल श्रीहरि के रूपहैं यक्ष राक्षस दैत्य पिशाच नाग दानव गन्धर्व अप्सरा ये भी उन्हीं महात्मा विष्णु के रूपहैं ग्रह नक्षत्र तारागण आकाश अग्नि पवन जल व हम सब सब जगत् विष्णुमय हैं यद्यपि उस परमात्माके रूपसे बाहर कुछ नहीं तथापि इन्हींमें से कोई किसी के मारनेवाला व कोई किसी से मरनेवाला होताहै जैसे समुद्र की लहरें जो जल समुद्रमें है वही उसकी लहरों में कुछ अन्तर नहीं तथापि वे समुद्र की लहरें कहाती हैं तिसीहेतु आजकल कालनेमि आदि दैत्य पृथिवीतल में आय प्रजाओं का नाश किये डालते हैं जो कहो कालनेमिको तो श्रीहरि ने वधे कियां अब वहु कहां है सो वही आजकल उग्रसेन का पुत्र कंस हुआहै इसके सिवाय अरिष्ट धेनुकासुर केशी प्रलम्बासुर नरकासुर सुन्दासुर बाणासुर तथा अन्यभी जो राजाओंके घरमें दुष्ट उत्पन्न हुये हैं जिनकी गिनती मैं नहीं करसक्ती उन सब दुष्टोंकी अक्षोहिणियां नाघोंहिणी सब मेरे ऊपर बूमती हैं तिनके भारसे मैं पिसी जातीहूं अब मुझसे उनका भार नहीं सहाजाता यही आपलोगों से कहने आईहूं तिसीहेतु हे देवो आपलोग हमारे भार उतारने का उपाय कीजिये जिसमें पाताल को न चलीजाऊं पराशरमुनि बोले जब इतनाही पृथवीने कहा तो उसके भार उतारनेका उपाय कहतेहुये ब्रह्माजी बोले हे देवताओ! जैसा पृथ्वी कहती है हम तुम सब नारायणही के अंश हैं इसलिये इसका भार उतारनेका उपाय करना चाहिये और विशेष सब ईश्वरोंकी है पर उनमें न्यूनाधिकता है यहारण मारने व मरनेवाला समभा जाताहै तिससे आओ हम सब क्षीरसागरके तीर चलें व श्रीहरिकी स्तुतिकर पृथ्वीके भारके उतारने का उपाय उनसे कहैं क्योंकि सदा से श्री हरि जगत्के कार्य अपने स्वरूप, अंशसे अवतार ले धर्मस्थापन करते हैं यह

यह सब देवताओं व पृथ्वीको आगले क्षीरसमुद्रके किनारे जाय चित्त लगाय गाय गाय श्रीहरिकी स्तुति करनेलगे ब्रह्माजी बोले हे नारायण आपके सगुण निर्गुण दोरूपहैं फिर दो अव्यक्तरूपहैं एक स्थूल एक सूक्ष्म व एक शब्द ब्रह्म एक ब्रह्मब्रह्म ऋग्वेद यजुर्वेद सामवेद अथर्व्ववेद शिक्षाकल्प निरुक्त छन्द ज्योतिष इतिहास पुराण व्याकरण मीमांसा न्याय धर्मशास्त्र आत्मज्ञान विचार वेदान्तशास्त्र सब तुम्हींहो फिर सबसे भीन सबसेन्यारे चिन्तवन करनेके योग्य अचिन्त्यरूप कर चरणादिहीन परमपद विष्णु सब तुम्हींहो ॥

चौ० सुनत कान बिन लखत बिनयना । रूपहीन बहुरूप सुवयना ॥
कर चरणादि हीन अतिधावत । ग्रहणकरत पर सबहिनभावत ॥ १ ॥
तुम सब जानत तुम्हें न कोई । जानत कृपासिंधु नहिं गोई ॥
लघुते लघु सबरूप कृपाला । नहिं अज्ञानि लखत भयमाला ॥ २ ॥
धीरबुद्धि मनुष्य तवपासा । आनबुद्धि नहिं पहुँच खुलासा ॥
तुम बरदानि परे सब तैसी । तुम्हरी महिमा किमिकहिजैसी ॥ ३ ॥
विश्वनाभि तुम भुवन पलैया । सकल भूत तुम महँ न छुटैया ॥
मूल भविष्य लघुते लघुजोई । प्रकृति परे तुमही हरि सोई ॥ ४ ॥
एक रूप पर चारि प्रकारा । है पावक जग करत उजारा ॥
विश्व नयन तुम नेत्र विहीना । मूर्ति रहित बहु मूर्तिप्रवीना ॥ ५ ॥
यथा एक पावक बहु रूपा । काष्ठ भेद सो लखत अनूपा ॥
तिमि तव एक रूप भगवाना । नाना रूप मर्म्म को जाना ॥ ६ ॥
एक आदिपुरुष तुम स्वामी । तव पर पद देखहिं मुनिगामी ॥
तुमसों अलग न कछु संसारा । भूत भविष्य जो परम पसारा ॥ ७ ॥
व्यक्ताव्यक्त रूप तुम अहऊ । तुम सर्वेश शक्ति सब रहऊ ॥
घटत बढ़त कबहूँ नहिं काऊ । स्वयश सदा परमद मिमिगाऊ ॥ ८ ॥
सर्वधारण वासीतम भावन । निरालम्ब जगदीश गुणायन ॥
सदा विभूति नाथ पुरुषोत्तम । नमस्कार कीजे सर्वोत्तम ॥ ९ ॥
आन न कारण कारण सोई । जासों सब प्रभु कारण होई ॥
धर्म सनातन हित भगवाना । सदा देव तुम रूप सुजाना ॥ १० ॥

पराशरमुनि बोले इसभांति ब्रह्मादि देवोंकी स्तुति सुन श्रीभगवान हरि

राजाओं के भारसे पीड़ित हो पृथिवी सुमेरु पर्व्वत पै देवताओं की सभा में पहुँची वहां ब्रह्मादि सब देवोंसे अपने दुःख का हेतु कहन लगी२ कहने लगी जैसे अग्नि सुवर्ण का गुरु है व सूर्य पशुओं के वैसेही हमारे व सब लोक के पालन करनेवाले गुरु श्रीनारायण हरि हैं व प्रजाओं के पति ब्रह्माजी कला काष्ठा मुहूर्त्तादि के स्वामी तिथी नारायण के अंशसे उत्पन्न हैं जोकि तुम सब देवगणोंके अधिष्ठाता हो आदित्य पवन साध्य रुद्र वसु अश्विनीकुमार अग्नि पितर अन्य भी जो लोककी सृष्टि करनेवाले हैं ये सब उसी अतुलबल श्रीहरि के रूप हैं यक्ष राक्षस दैत्य पिशाच नाग दानव गन्धर्व्व अप्सरा ये भी उन्ही महात्मा विष्णु के रूप हैं ग्रह नक्षत्र तारागण आकाश अग्नि पवन जल व हम सब सब जगत् विष्णुमय हैं यद्यपि उस परमात्माके रूपसे बाहर कुछ नहीं तथापि इन्हींमें से कोई किसी के मारनेवाला व कोई किसी से मरनेवाला होताहै जैसे समुद्र की लहरें जो जल समुद्रमें है वही उसकी लहरों में कुछ अन्तर नहीं तथापि वे समुद्र की लहर कहाती हैं तिसीहेतु आजकल कालनेमि आदि दैत्य पृथिवीतल में आये प्रजाओं का नाश किये डालते हैं जो कहो कालनेमिको तो श्रीहरि ने वध किया अब वह कहां है सो वही आजकल उग्रसेन का पुत्र कंस हुआहै इसके सिवाय अरिष्ट धेनुकासुर केशी प्रलम्बासुर नरका सुर सुन्दासुर बाणासुर तथा अन्यभी जो राजाओं के घरमें दुष्ट उत्पन्न हुये हैं जिनकी गिनती में नहीं करसक्ती उन सब दुष्टोंकी अक्षौहिणीसी अक्षौहिणी सब मेरे ऊपर घूमती हैं जिनके भारसे मैं पिसी जातीहूं अब मुझसे उनका भार नहीं सहाजाता यही आपलोगों से कहने आईहूं जिससे हे देवो आपलोग हमारे भार उतारने का उपाय कीजिये जिसमें बहुत शीघ्र पाताल को न चलीजाऊं पराशरमुनि बोले जब इसभांति पृथ्वीने कहा तो उसके भार उता रनेका उपाय करतेहुये ब्रह्माजी बोले हे देवताओ ! जैसा पृथ्वी कहती है हम तुम सब जानते हैं कि भारसे दुःखी है इसलिये इसके भार उतारनेका उपाय करना चाहिये और विभूति सब देवताओंकी है पर उनमें न्यूनाधिकताके कारण मारने व मरनेवाला समझा जाताहै इसलिये आवो सब जन क्षीरसागरके तीर चलें व श्रीहरिकी स्तुतिकर उनसे यह सब समाचार उनसे कहें क्योंकि सदा वे श्री हरि जगत्के अर्थ अपने स्वरूप अंशसे अवतार ले धर्मस्थापन करते हैं यह

यह सब देवताओं व पृथिवीको भगले क्षीरसमुद्रके किनारे जाय चित्त लगाय गायगाय श्रीहरिकी स्तुति करनेलगे ब्रह्माजी बोले हे नारायण ! आपके सगुण निर्गुण दोरूपहैं फिर दो अन्यरूपहैं एक स्थूल एक सूक्ष्म व एक शब्द ब्रह्म एक ब्रह्मब्रह्म ऋग्वेद यजुर्वेद सामवेद अथर्वेद शिक्षादम्भ निरुक्त छन्द ज्योतिष इतिहास पुराण व्याकरण मीमांसा न्याय धर्मशास्त्र आत्मज्ञान विचार वेदान्तशास्त्र सब तुम्हींहो फिर सबमें लीन सबकेभीतर चिन्तना करनेके योग्य अनिन्द्यरूप कर चरणादिहीन परमपद विष्णु सब तुम्हींहो ॥

चौ॰ सुनत कान बिन लखत बिनयना। रूपहीन बहुरूप सुवयना ॥
कर चरणादि हीन अतिधावत। ग्रहणकरत पर सबहिनचावत ॥ १ ॥
तुम सब जानत तुम्हैं न कोई। जानत कृपासिन्धु नहिं गोई ॥
लघुते लघु तवरूप कृपाला। नहिंअज्ञानि लखत भयजाला ॥ २ ॥
धीरबुद्धि पहुँचत तवपासा। आनबुद्धि नहिं पहुँच खुलासा ॥
तुम बरदानि परे सब रोती। तुम्हरी महिमा किमिकहिजेती ॥ ३ ॥
विश्वनाभि तुम भुवन पलैया। सकलभूत तुम महँ न छुटैया ॥
भूत भविष्य लघुते लघुजोई। प्रकृति परे तुमही हरि सोई ॥ ४ ॥
एक रूप पर चारि प्रकारा। ह्वै पावक जग करत उजारा ॥
विश्व नयन तुम नेत्र विहीना। मूर्त्ति रहित बहु मूर्त्तिप्रवीना ॥ ५ ॥
यथा एक पावक बहु रूपा। काष्ठ भेद सो लखत अनूपा ॥
तिमि तव एक रूप भगवाना। नाना रूप मर्म्म को जाना ॥ ६ ॥
एक आदि पुरुष तुम स्वामी। तव पर पद देखहिं श्रुतिगामी ॥
तुमसों अलग न कछु ससारा। भूत भविष्य जो पसर पसारा ॥ ७ ॥
व्यक्ताव्यक्त रूप तुम अहऊ। तुम सर्वज्ञ शक्ति सब लहऊ ॥
घटत बढ़त कबहु नहिं काऊ। स्वबश सदा परबश किमिगाऊ ॥ ८ ॥
सुखकारण अतीशय पावन। निरालम्ब जगदीश कृपावन ॥
सदा विभूति नाथ पुरुषोत्तम। नमस्कार लीजै सदगोत्तम ॥ ९ ॥
आन न कारण कारण सोई। जासों सब पशु पालन होई ॥
धर्म्म सनातन हित भगवाना। सदा तव तुम रूप सुजाना ॥ १० ॥

पराशरमुनि बोले इसभांति ब्रह्मादि देवोंकी स्तुति सुन श्रीभगवान हरि

प्रसन्नहो पाने हे ब्रह्माजी! तुम सब देवताओं के साथ जो २ हमसे चाहतेहो सब कहो प्रसन्न अपने मनोरथ पूरेही जानना यह सुन व श्रीहरिका दिव्यरूप देख ब्रह्माजी फिर स्तुति करनेलगे सहस्रमूर्ति सहस्रबाहु सहस्र चरण सहस्राक्ष सहस्र मुख संसारकी उत्पत्ति पालन नाशन करनेवाले तुम्हारे अर्थ नमस्कारहै सूक्ष्मसेभी अतिसूक्ष्म बड़ेसेभी बड़े गरुओं से गरू प्रधानपुरुष परेसेपरे हे भगवन्! प्रसन्न हूजिये यह पृथिवी धरणी पै उत्पन्न दुष्ट दैत्य व राजाओंके भारसे पीड़ितहै इसके भार उतारनेके लिये कोई उपाय कीजिये और हमसे महादेव अश्विनीकुमार वरुण रुद्र वसु सूर्य पवन अग्नि आदि सब देवता आपके आधीनहैं इस विषयमें जो कार्य जिसके करने लायकहो उसके लिये उसे भी आज्ञा दीजिये सब आज्ञा पालन करेंगे यह सुन भगवान् नारायण ने अपने दो बार श्वेत व कृष्ण उखारे व देवोंसे बोले कि ये दोनों हमारे बार महीतल में अवतारले धरणी का भार उतारेंगे ये सब देवतालोग भी महीमण्डल में अवतार लें व पूर्व के जन्मे हुये दुष्ट दैत्य व राजाओं से युद्ध करें इस रीति से सब दुष्टदैत्य नाशहोंगे क्योंकि हमारे जो दोनों अवतारहोंगे उनकी दृष्टि पड़तेसेही चूर्णीभूत होजावेंगे फिर समरमें कौन वीरता दिखावेंगे हमारा यह एक बार तो वसुदेवकी स्त्री देवकी के अठयें गर्भ में होगा होके कंसको मारेगा व दूसरा श्वेतबार रोहिणी के उत्पन्नहोगा इतना कह श्रीहरि वहीं अन्तर्द्धान होगये जहां हरि अन्तर्द्धान हुये उस ओर प्रणामकर देवगण सुमेरुपर्वत पै गये व अपने २ अंशसे महीतलमें जहां तहां अवतरे यहां यह सब होताहीरहा यहां नारदमुनिने जाय कंस से कहा कि देवकी के अठयें गर्भ में श्रीहरी तुम्हारे मारने के लिये अवतार लेतेही हैं यह सुन कंसने बड़ा कोपकिया व देवकी वसुदेव को पकर बँधुआ करदिया वसुदेव ने भी जैसा कंस से कहा था कि जो पुत्र इनके होंगे तुमको देजायाकरेंगे वसी भांति देतेरहे वे बालक पैसेथे कि हिरण्यकशिपु के ६ पुत्रथे उनको विष्णुकी प्रेरणा से योगनिद्रा भगवतीने पाताल में करदिया था तब फिर श्रीहरि उस भगवती महामाया योगनिद्रा से बोले कि हे योगनिद्रे! हमारी आज्ञा से पाताल में जाय वहां जो हिरण्यकशिपु के ६ पुत्रहैं उनको एक एक करके वसुदेव की स्त्री देवकी के गर्भमें उत्पन्न करावे जब उन सबको कंस मारडालेगा तो हमारे शेषके अंशसे सातवांगर्भ देवकी के

गर्भमें वासकरेंगे जब थोड़े दिनहोने को बाकीरहे तब देवकी के गर्भसे खींच जो रोहिणी नाम वसुदेवकी स्त्री गोकुलमें नन्दके यहांहैं उन के गर्भमें करदेना सो कंसने जाहैभ देवकी को बन्दीघर में रक्खाहै इसलिये लोग कहेंगे कि देवकीका अठवां गर्भ कंसके भयसे गिरपड़ा और उस गर्भ के संकर्षणकहे खींचा-खाची होनेके कारण उससे जो उत्पन्नहोगा उसका संकर्षण नामहोगा उसका शरीर भी बहुतही गोरहोगा जिसके पीछे हम अपने अंशसे देवकी के गर्भ में आवेंगे तुमभी बहुतही शीघ्र नन्दकी स्त्री यशोदा के उदर में जाय वास करो वर्षाऋतुमें भादों महीनाकी अँधेरी अष्टमी को हम अवतार लेंगे व तुमभी अर्द्ध रात्रिके पीछे अष्टमी बीततेही नवमी में जन्मलेना उसी रात्रिको हमारीशक्ति की प्रेरणासे वसुदेव हमें तो यशोदाके शयनमें पोढ़ाआवेंगे व तुमको ले देवकी के आगेधरेंगे तब कंस तुमको जान पकड़के पत्थरपै पटकेगा पर तुम उसकेहाथ से छूट अन्तरिक्ष को चलीजावगी तब हमारे गौरवसे इन्द्रभी तुमको अपनी भगिनी सनमें ग्रहण करेंगे तब तुम शुम्भ निशुम्भादि हजारों दैत्योंको मार अनेक स्थानों में विराजमान हो महीमण्डल को भूषित करोगी भूति सन्नति कीर्ति क्षान्ति द्यौ पृथिवी लज्जा पुष्टि प्रात काल व जहांतक संसारमें स्त्रियांहोंगी सब तुम्हाराही रूप होंगी और॥

चौ॰ जो तुम कहँ आर्य्या जगदम्बा। दुर्गा भद्रा क्षेम कदम्बा॥
श्रीअम्बिका क्षेमकरि आदी। कहिमोरहि विनयहि शुभवादी॥१॥
तासु सकल वांछित ममकारी। होइहिंसंशय कछु न पुरारी॥
भक्ष्य भोज्य नाना पकवाना। विप्र तोहिं देहैं रविमाना॥२॥
सुरामांस शब्दादिक देहैं। पर हमसों सपदिन सच पैहैं॥
बिन सन्देह सबहिं सयकाहीं। देवआहु जन्मतु दायनाहीं॥३॥

दूसरा अध्याय॥

सो॰ कहब द्वितीयाध्याय महँ जिमि देवन अस्तुतिकीन॥
देवकि को जब हरि उदर प्रेयहि जिमभांति प्रवीन॥१॥

पराशरमुनि बोले कि जिसभांति देवदेव श्रीहरी ने योगनिद्रा भगवती से कहा उसी भांति उसने ६ गर्भ पातालसे लेजाकर रक्खे २ दिनके पीछे देवकी

के उदरमें प्रवेश किये व उन सबको क्रमसेमाया मानकी गर्भमें भी सातवें रोहिणी के पेटमें प्रवेश कराया तब तीनोंलोकोंके उपकार के लिये देवदेव भगवान् देवकी के उदर में आये उसी दिन योगनिद्रा यशोदा के पेटमें आई व उत्पन्न होनेके समय उत्पन्न हुई जब विष्णुका अंश महीतलमें आया तो सब ग्रहगण व ऋतुमुहूर्त शुभदायक हुये देवकीजी का ऐसा अद्भुततेज हुआ कि कोई सामने देख नहीं सकता। उन्हीं दिनोंमें जिसमें स्त्री पुरुष कोई नहीं देखे ऐसे गुप्तरूप से सब देवगण आय रात्रि दिन देवकीकी स्तुति विष्णु के गुणगाय २ करनेलगे हे देवकीजी ! तुम आदि प्रकृति ब्रह्मगर्भधारिणी वेदवाणी तथा तुम्हीं हो तुम्हीं सृष्टि करने का स्वरूप तुम्हीं पालन संहार करनेका सब संसारके बीजके धारण करनेवाली सब फल सब अग्नि तुम्हीं से होते देवोंकी माता अदिति दैत्यों की माता दिति इन्द्रकी माता ज्योत्स्ना ज्ञान नम्रता नीति लज्जा इच्छा तुष्टि मेधा धृति अन्तरिक्ष आदि जितनी विभूतियां हैं अब आजकल तुम्हारे गर्भमें हैं व सब पर्वत नदी ग्राम नगर खेरी खेटा आदिक स्थान पृथिवी सब अग्नि सब समुद्र सब पवन ग्रह नक्षत्र तारा गण भूलोक भुवर्लोक स्वर्लोक महर्लोक जनलोक तपलोक सत्यलोक व सब ब्रह्माण्ड जिसके मध्यमें टिके जो देव दैत्य गन्धर्व विद्याधरादि मनुष्य पशु पक्षी इन्हें आदि जितनी सृष्टि है सो सब आपके गर्भ में धारण किये हुये श्री विष्णु तुम्हारे गर्भमें हैं तुम्हारी जयहो स्वाहा स्वधा विद्या आदि तुम्हींहो व सब लोककी रक्षा करने हेतु महीतल में आप गर्भ धारणकर प्रसन्न हूजिये व इन महाप्रभु को कि सब संसार को धारण किये हैं प्रीतिपूर्वक धारण किये रहिये ॥

तीसरा अध्याय ॥

सो० कह्यो तृतीयाध्याय महँ हरि शिशु अवतार ॥
जनमे मथुरा असुर भय पशुपालन विस्तार ॥ १ ॥

पराशरमुनि बोले इसप्रकार देवोंने देवकीजी की स्तुति की व उन्हों ने देवों के देव जगत्के रक्षा करनेवाले पुण्डरीकाक्ष भगवान् को उदर में धारण किया तब कमलरूप संसार के प्रफुल्लित करने के लिये भानुरूप अच्युत भगवान् प्राक

काल की सन्ध्यारूपिणी देवकीजी में उदयहुये तिनके जन्म के दिन सब दिशा विकशितहुई व सबलोक परमानन्दको प्राप्तहुआ जैसे चन्द्रमाकी किरणों से सबको आनन्द होताहै तैसे महात्मा लोगोंका परमसन्तोष हुआ प्रचण्ड पवन जो चलते थे शान्त होगये नदियां धीरे २ बहनेलगीं समुद्र अपने शब्द से मनोहर बाजा बजानेलगे गन्धर्वपति गाने व अप्सरा नाचनेलगीं देवता लोगोंने आकाश अन्तरिक्ष व भूतलमें भी आय २ धाय धाय फूल बरसानेलगे जो तपस्वियों के अग्नि मंद होगयेथे अपने आप प्रज्वलित हो उठे जब आधी राति हुई तो सकल जगदाधार भगवान्ने जन्मलिया मेघलोग मंदमंद गर्जते हुये पुष्परूप जल वर्षानेलगे श्याम कमलवर्ण चतुर्भुजी मूर्त्ति श्रीवत्स चिह्न चिह्नित भगवान्को देख वसुदेवजी स्तुति करनेलगे बहुतभांति स्तुतिकर कंसकेभय से डरेहुये तो येही यह कहनेलगे हे देवदेव शंखचक्रगदाधर! हमने आप को जाना अब कृपाकर यह दिव्यरूप समेटिये नहीं तो आपको मेरेमंदिरमें अवतरेजान इसीसमय कंस मेरी नानायतना करनेलगेगा फिर देवकीजी बोलीं कि जो अनन्तरूप भगवान् जिसके गर्भमें सब समारहे वह परमात्मा बालरूप प्रसन्नहो व यह अपना अद्भुत चतुर्भुजरूप समेटें जिसमें दुष्टकंस न जाने यह सुन श्रीभगवान् बोले कि तुमने पूर्व जन्ममें हमारे समान पुत्र होने के लिये तपस्या कीथी वही सफल करने के हेतु हम तुम्हारे उदरसे उत्पन्न हुये यह कह भगवान् तो मौन होगये वसुदेवजी उनको उठाय रात्रिहीमें घरसे बाहर हुये जब वसुदेवजी कृष्णचन्द्रको ले बाहर निकलनेलगे तो सब द्वारपाल जो रखाते थे योगनिद्राके प्रभावसे मोहित सोयगये उस रात्रि के समय मेघ वर्षा कररहे थे शेषजीने अपने सहस्रफणों से छायाकी कि एक बूंद भी ऊपर नहीं परा जो जाने यमुनाजीपै पहुंचे तो भादोंकी अँधेरीराति भयानक २ सा ॥ जलराशि भयकर भँवरघूमतेथे पर पार धरतेही गांठिके नीचेही पानी हुआ उस पार पहुंचे कि देखा कंसका बरसोंई करनेके लिये नन्दादिगोप आये हैं यमुनाके तीर परेहुयेथे तदभी रानी यशोदा के कन्या हुईथी पर योगनिद्रा ने ऐसा सबको मो-हित किया था क्या स्त्री क्या पुरुष कोई उस समय जागता न था पर वसुदेवजी यशोदाके शिरहानेपै अपना पुत्र पौढ़ाय व उनकी कन्याले बहुत शीघ्र लौटआये यशोदा जब फिर जागीं तो कमलनयन मनमोहन मनोहरतम बालक देख प्रसन्न

नदिव हुई वसुदेवजीकी कन्याने आय देवकीके निकटपर प्रीतियुत पूर्वकी भांति बैठे तब कन्या रोई रोदन सुनतेही रखवारोंने जाय कंससे कहा कि देवकी के लड़का हुआ यह सुनतेही तत्काल कंस वहां पहुंचा व देवकीके आगेसे कन्या व ठालिया यद्यपि देवकीने बहुत कुछ कहा पर न माना ले पत्थरपै पटकदिया पर वह हाथसे छूटतेही पत्थरपै नहीं गिरी वरन अन्तरिक्ष को चलीगई वहां अष्टभुजा मूर्ति कंसको देखपरी व खिलखिलाकर हँसीसे कंससे बोली अरे मूर्ख! हमारे मारने से क्या होगा जो तुझे मारेगा वह तो जन्मलेचुका जोकि देवोंका सर्वस्वधन व तुझे जिसने पूर्वजन्म में माराथा अब उनको ढूंढ़ अपना हित कर इतना कह दिव्यमाला भूषणादि पहिने आकाशमें टिकेहुये सिद्धोंसे स्तुति की हुई कंसके देखतेही देखते कहीं चलीगई ॥

चौथा अध्याय ॥

दो॰ या चौथे अध्याय महँ निज रिपु बालक नास ॥
करनहेतु पठइहि दितिज निकरफल मृतिपास ॥ १ ॥

पराशरमुनि बोले उस कन्याके ऐसे वचन सुन कंस बहुत उद्विग्नचित्त हुआ प्रलम्बासुर केशी आदि दैत्योंको बुलाय बोला हे प्रलम्ब केशी धेनुकासुर पूतना अरिष्टादि दैत्य! हमारे वचनसुनो दुरात्मा देवता लोग हमारे मारने का यत्न किया है परन्तु हम अपने बलके आगे उन सबोंको कुछ भी नहीं गनते क्योंकि अल्प पराक्रमी इन्द्र क्या करेगा महादेव अकेले वनमें तपस्या कियाकरते क्याकरेंगे हरिभी कुछ नहीं करसक्ते क्योंकि वे जब कोई छिद्र पातेहैं तभी दैत्योंको मारते हैं आदित्य वसु अग्नि इनके जानो बहुतही थोड़ा पराक्रमहै क्या कामकरेंगे फिर अन्य सिवाय देवता क्या करसक्ते हैं वे तो हमारे योगध्वनके जीते हुयेपरे हैं क्या हमने कभी लड़ाई में इन्द्रको नहीं देखा जिनके भागते हुए पीठपर हजारों बाण मारेहैं देखो हमारे राज्यमें इन्द्रने वर्षा रोकदी थी फिर हमारे बाणोंसे छिन्न भिन्नहो मेघ बरसनेलगे इनके सिवाय पृथ्वीके कौनसे राजा मेरे बाणोंसे हार शरणागत नहीं हुये हां जरासन्धको छोड़ना जानो हमारा भययुक्त है उनकी कौन लड़ाई देवताओं के साथ हमारा निरादर होना इस बातको सुन हमारी बड़ी हँसीआती है कि वे लोग अपना गर्व करतेहैं यद्यपि वे हमारा कुछ

भी नहीं फसके तथापि जितना अपकार वे दुष्ट हमारा कियाचाहते हैं हम उ समे अधिक उनका करेंगे तिससे अब देवताओं के अपकारार्थ जो लोग यश स्वी व यज्ञ करनेवालेहों उनको मारडालो क्योंकि यज्ञादिही से देवोंका भाग पहुंचताहै और देवकीके गर्भमे जो कन्या हुईहै उसने कहाहै तुम्हारा पूर्वही जन्मवाला वैरी उत्पन्न होचुकाहै तिससे बालकोंके मारनेमें बड़ा विचार रखना चाहिये जोई कोई लड़का तेजस्वी जानपड़े अवश्य मारडाला जावे इस भांति दैत्योंको आज्ञादे कंस अपने घरको चलागया देवकी वसुदेव को बँधोईसे छोड़ दिया व उनसे बोला क्या कहें तुम्हारे बालक हमने नाहकमारे हमको मारने वाला तो कहीं अलगई उत्पन्न हुआ सो जो हुआ सो हुआ आपलोग अपने बालकोंका शोच न करें क्योंकि बिना आयुर्बल क्षीणहुये कोई किसीको नहीं मारसक्ता इसभांति बहिन बहनोई को समझा बुझा अपने मनमें डरता हुआ कंस अपने घरको गया ॥

पांचवां अध्याय ॥

दो॰ या पँचयें अध्याय महँ मरी पूतना देखि ॥
सभयनन्द गोपुच्छभ्रमि हरिरक्षा करि शेखि ॥ १ ॥

पराशरमुनि बोले वसुदेवजी जब रात्रिहीको बँधोई से छूटगये व प्रातःकाल होतेही सुना कि नन्दादि कंसको पोनदेने आयेहैं इससे उनके निकट पहुंच व बोले कि बड़े हर्षकी बातहै भाई तुम्हारे बुढ़ापेमें बालक हुआहै अब जिसकार्य के लिये आयेहो सो भी करचुके कंसका वार्षिक पोन देचुके निष्प्रयोजन यहां का रहना अच्छा नहीं क्योंकि महात्माओंको चाहिये प्रयोजनमात्र ठहरें अप्रयो- जन न ठहरें सो सब होचुका चले जाइये हमारे जान तुम्हारे गोकुलमें आज कुछ न कुछ उपद्रव होगा भाई हमारा पुत्र भी जो रोहिणी से उत्पन्न हुआहै आपके ही यहांहै उसकी भी रक्षा वैसीही करना जैसी अपने पुत्रकी करोगे यह सुन नन्दादि गोप अपनी २ लढ़ीपर दूध दहीके भरे बर्तन लाद लाद कंसकोनजर भेंटदे अपने गोकुल को चलेगये गोकुलमें पहुंच कुछ दिनरहे एक दिन बाल घातिनी पूतना नाम राक्षसी रात्रिको आय कृष्णचन्द्रको कोरामें बैठाय दूधपि- लानेलगी यह पूतना जिस २ बालकको रात्रिमें दूध पिलाती वहीमरजाता सो

सो तुरन्त गरलपाया पर यहां वह बात कहां कृष्णचन्द्रने दोनों हाथोंसे पूतना का स्तन थोमके दबाया कि दूध न उसके प्राण खायही पीलिये ऐसा पकरेही, हाहाकार शब्दकर प्राण सहित पूतना भूमिमें गोड़ हाथ फैलाय गिरी उसका हाहाकार शब्दसुन सब व्रजवासी जागउठे दौर२ वहां आये तो पूतना मरी परीहै, कृष्णचन्द्र उसकी छातीपे लोटरहेहैं यह देख यशोदाजी अति भयभीतहो बालक को उठाय छातीलगाय राक्षसीके ऊपर लोटने के दोष मिटाने के लिये गायकी पूंछ हरिकेऊपर घुमानेलगीं नन्दजी भी गायका गोबरले कृष्णचन्द्र के मस्तक में लगाय अतिहर्षाय गाय २ आगे लिखेहुये मन्त्र पढ़तेहुये रक्षाकरनेलगे ॥

चौ॰ जासुनाभि पङ्कजसों सब जग। होतसो हरि रक्षहिं त्वहिं हैलग ॥
सकलभूत जनि पारणकारण। श्रुतिपालन पिनि शत्रु विदारण ॥ १ ॥
जासुदन्तधृतिधरणिजगतसब। धारण करत भरम सुख शुभदव ॥
सो वराह हरि पालहिं तोहीं। कृपाकरहिं निजजनलखि मोहीं ॥ २ ॥
जासुनखांकुर भिरा अरातिन। वक्षस्थल गहिदेय अघातिन ॥
सो नृसिंह हरि तोहिं रखावें। सकल दिशा के दुष्ट भगावें ॥ ३ ॥
जो क्षणमाहिं धारि त्रय पादा। नापि तीन त्रैलोक न बादा ॥
सो वामन विभु तो पहँ धावें। सकल वैरि कुलके पर पावें ॥ ४ ॥
मम शिर पालहिं श्रीगोविन्दा। रक्षहिं केशव कण्ठ अनिन्दा ॥
गुह्य जठर श्रीविष्णु रखावें। जंघा पाद जनार्दन धावें ॥ ५ ॥
वदन बाहुमनसब इन्द्रियगन। अव्याहत ऐश्वर्य महागन ॥
श्रीनारायण पालहिं नीके। दयाकरहिं निज्जन लखितीके ॥ ६ ॥
शार्ङ्ग चक्र असि गदा शङ्खसुन। सुनत नाद उपजत तिनके दुख ॥
भूत प्रेत राक्षस जो सारे। होहिं नाहित यह करौंनिहोरे ॥ ७ ॥
दिशन माहिं राखहिं श्रीवैकुण्ठा। मधुसूदन विदिशनमहु भकुण्ठा ॥
तलीतेरा अम्बर महि पालहिं। भूमि महीधर अति कृपालहिं ॥ ८ ॥

इसभांति जब नन्दजीने बालककी रक्षाकी तो श्रीकृष्णचन्द्रको लड़की के नीचे पलँगपर सुवाय दिया व गोपगण मरी पूतना का भयानक बड़ा भारी शरीर देख बड़े विस्मित हुये ॥

छठवां अध्याय ॥

दो॰ या छठयें अध्यायमहँ यमलार्ज्जुन शकटादि ॥
भजन वृन्दावन वमन वर्षा क्रीड़ा आदि ॥ १ ॥

पराशरमुनिबोले एकदिन श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्द लढ़ी के नीचे सोते थे कि दूधपीने की इच्छाहुई रोने लगे पर किसी ने न सुना तब दोनों चरण कमल ऊपरको उछाले तिनके चरणारविन्दों के लगतेही लढ़ी उलट पलटगई उसपर जो दूध दहीआदि के भाजन लदेथे सबके सब टूटफूट गये उसका शब्द सुन हाय २ के गोप गोपी सब दौर आये देखें तो लड़का उतान पडुड़ा है गोप गण कहनेलगे लढ़ी कैसे उलटी वहां ार जिनने लड़के खेलते थे उन्होंने कहा इसी बालकने अपने पावों से उलटदी है पहिले तो रोनेलगा फिर इधर उधर देख पांयचलाय उलटदिया इसमें कुछ संदेह नहीं हमलोगों ने नगीचे से देखा है अन्य किसीका कर्म यह नहीं है यहसुन और सब गोपी गोप विस्मित हुये नन्द व यशोदाजी ने आप उठाय लिया और फिर दधि पुष्पाक्षत से लढ़ी की पूजा यशोदा करनेलगीं एकदिन वसुदेवजी के भेजेहुये यदुवंशियों के आचार्य गर्गजी गोकुल में आये और सब गोपों से चोराय नंदके कहने से दोनों लड़कों के संस्कार करनेलगे ज्येष्ठ बालकका नाम राम धराया छोटेका कृष्णनाम करणादि कर कराय गर्गजी तो चलेगये अब थोड़ेहीदिनों में राम कृष्ण दोनों धैया २ चलनेलगे माटी गोबर धूरि लगायेहुये इधर उधर रेंगनेलगे मारे स्नेह के यशोदा रोहिणी कोई रोंकती नहींथीं जाने २ गाय व बछरुओं के जानेकी गली में पहुंचे एक २ बछरे की पूछपकर उनके पीछे २ खींचे २ फिरनेलगे जब दोनों भाइयों को चञ्चलता के साथ खेलने से यशोदा न रोंकपकीं तो एकदिन कृष्णचन्द्रको ओखली में बांध बोलीं अब तुम्हारी चञ्चलता देखें तो यदि खींच सको तो खींचो यहकह अपने घर कार्यमें लगगईं तब कृष्णचन्द्रने ओखली खींची खींचतेई दो अर्ज्जुन के पेड़थे उनके बीचमें निकले सदा ओखली तिरछी होगई दोनों वृक्षों में अड़ी कि दोनों जड़से उखड़परे वृक्षोंकी चरचराहट सुन ब्रजवासी धाय आये देखें तो दोनों के बीच में ओखली में बँधे मधुमूर्ति नन्दनन्दन परे हैं वृक्षों की डारी २ शाखा २ सब टूटगई हैं व नयेनये दांत २ दोनिकने हुये मदन

मोहन फिरतेहैं इ जिससेकि दाम जो रस्सी सोई लगाय यशोदाजी ने बनमें
इन को बांधाथा इससे एक इनका दामोदर नामहुआ तब नन्दोपनन्दादि सब
गोपवृद्ध बड़े बहुत उपद्रव देख भयभीतहो परस्पर बोले हे भाइयो। इस स्थान में
अब बहुत उत्पात होनेलगे इससे यहां रहना अच्छा नहीं जहां कहीं अच्छा वन
हो अलग चलेचलो देखो पूतना आई फिर लढ़ी उलटगई आज बिन पवन यम
लार्ज्जुन उखड़ परे इससे यहां से थोड़ीही दूर वृन्दावनहै चलो वहीं चलेचलें यह
सम्मतकर अपने २ भाई बन्धुओं से कहनेलगे अब विलम्ब न करना चाहिये
बहुतही शीघ्र वृन्दावन चलेचलो बस इसभांति सब के सब गोपों ने बर्त्तन भांड़
गाड़ियों पै लाद फाँद चलदिये एकदोही घड़ी में सब व्रज खालीहोगया ढोर ढोर
कौआ बोलनेलगे मनुष्य व पशु शोभा वहां नाम भी न रहगया व जाय वृन्दावन
में सब पहुंचे व बसे कृष्णचन्द्र की कृपासे वृन्दावन में ग्रीष्मऋतु में भी वर्षाही
काल रहनेलगा सब गायोंमें पशुओं को हरी २ घास चरनेको मिलनेलगी होते
होते बलदेव व कृष्णचन्द्रजी बछरू चरानेलगे वनमें जाय मोरके पखनोंसे मुकुट
बनाते वनके नानाभांति के पुष्पों से शिरोभूषण बनाते बांसकी वंशी बजाते
पत्ता आदि बजानेलगे कालीजुल्फें रखाये आपस में हँसते हँसाते गोपकुमारों
के संग वनमें विचरनेलगे धीरे धीरे बछरू चराते २ जब सात सात वर्ष के हुये
होते २ वर्षाकाल आया उसमें चारों ओर से श्याम बादल की घटा उठनेलगी
मानों सारी वर्षा के सबदिशा एक होजायेंगी महीमें हरी २ घास जमि समोदर
हुई उसके बीच २ बीरबहूटी कैसे शोभित होनेलगीं जैसे मरकतमणि के निकट
पद्मरागमणि रखने से शोभा होती है चातकोंके शब्दोंके बादरऐसे गान घटाटोप
जैसे दुर्जन लोगों के मन लक्ष्मीपाय ऊपर उधर उफनाते हैं निर्मल भी चन्द्रमा
मलिन मेघों से छिपाहुआ शोभा को नहीं पाता जैसे बहुत उत्तमराजप मूर्खोंकी
हठीबोलियों से आच्छादितहो नहीं शोभित होते फिर रोदा रहित भी इन्द्रधनुष
आकाश में छिपरहो दिखाई देताहै जैसे अविवेकी राजाके यहां गुणोदित महा
मूर्खभी स्थानपाय शोभित होते मानों हैं काले मेघों के ऊपर उजले बगुलों की
पांति ऐसे शोभित होती है जैसे दुराचारी पुरुषों के चित्तमें कुलीन मनुष्य का उदा
भाव अत्यन्त चञ्चल बिजुली मेघों में वैसे स्थिर नहीं होती जैसे श्रेष्ठ मनुष्यों
के संग दुर्जनों की मैत्री नहीं स्थिर रहती मोरे नहींचाल के मार्ग जैसे मेंदसके

हैं जैसे विक्षिप्तों की उक्ति से साफ साफ अर्थ नहीं जानपरते उन्मत्त मोर व भ्रमर युक्त तिस वर्षाकालमें आनन्द सहित रामकृष्ण दोनोंजन गोपालों के संग विचरते थे कभी कभी तो गाइयों के बोलके साथ आप भी बोलने गाने लगते कभी कभी झाऊआदि वृक्षोंकी डालें पकर खींचतेहुये विचरते कभी कभी कदम्ब के फूलोंकीमाला पहिनते कभी २ मयूर के पखों के मुकुट बनाय धारण करते कभी कभी नानाप्रकार के गेरूआदि धातुओं से अपने अङ्ग रँगवे छहने कभी कभी पाता व घासपै बैठजाते व शयनकर रहते कभी कभी जब घन गर्जने लगते तो आप भी हाहाकार शब्द करनेलगते कभीकभी अन्य गोपकुमारोंका गानासुन प्रशंसा करनेलगते कभी कभी मोरोंकी बोली बाँसुरी में गाते इसभांति नाना प्रकार की क्रीड़ा करतेहुये प्रसन्नचित्तहो औरोंको आनन्दित करतेहुये वृन्दावन में विचरते खेलकूद सन्ध्यासमय व्रजको बछरूले आते फिर यहांभी गोपकुमारों के संग कूदफाद घड़ी दोघड़ी रात्रि बीते तक करते कराते उन सबमें देवरूप सब के स्वामी येही दोनों रहते ॥

सातवां अध्याय ॥

दो० या सतयं अध्याय महँ जिमि हरि कालियनाग ॥
यमुना से बाहर कियो कहत सहित अनुराग ॥ १ ॥

पराशरमुनि बोले एकदिन कृष्णचन्द्र आनन्दकन्द बिना बलदेवही के वृन्दावनको गये वहा वनके फूलोंकी मालापहिर गायों के संग विचरने लगे खेलते २ अति चलायमान लहरी सहित यमुना के तीर पहुंच उसमें फेना तट पै नहीं लगाहुआ है मानों नद दान निकारे हँसती है जिसके भीतर अति भयानक विषानल से सन्तप्त बड़ेभयकारी कालियनागका कुण्ड देखा जिसके विषकी अग्निके मारे तीरके तरु जलकर रहेथे व उसके जलकी स्पर्शकर पवनके लगने से आकाश में उड़तेहुये पक्षी उसमें गिरपड़ते थे भगवान् मधुसूदन ने देखा कि यह तो अति कठोर मानों मृत्युका दूसरा मुख यहां है इसमें दुष्ट कालिय सर्प है जिसे हमारे वाहनने हरादिया था वह समुद्र छोड़ यहां आगया है निर्भय दुष्ट न यमुनाको दूषित करदिया है कि मनुष्य पशु पक्षी कोई इस कुण्डका जल नहीं पीसके जिससे जिस दुष्ट नागराज कालियको हम इससे निकालें कि गया०

मोहन निवरहे हैं जिसमें कि दाम जो रस्सी सोई लगाय यशोदाजी ने मनमोहन को बांधाथा इसमे एक इनका दामोदर नामहुआ तब नन्दोपनन्दादि सब गोपवृन्द बड़े बहुत उपद्रव देख भयभीतहो परस्पर बोले हैं भाइयो ! इस स्थान में अब बहुत उत्पात होनेलगे इसमे यहां रहना अच्छा नहीं जहां कहीं अच्छा वन हो अलग चलेचलो देखो पूतना आई फिर लढ़ी उलटगई आज विन पवन यमलार्जुन उखड़ परे इससे यहा से थोड़ीही दूर वृन्दावन है चलो वहीं चलेचलें यह समझकर अपने २ भाई बन्धुओं से कहनेलगे अब विलम्ब न करना चाहिये बहुतही शीघ्र वृन्दावन चलेचलो बस इस भांति सब के सब पशुने बर्त्तन भांड़ा गाड़ियों पै लाद फाँद चलदिये एकदोही घड़ी में सब ब्रज खोलीहोगया ठौर ठौर कौआ बोलनेलगे मनुष्य व पशुओं का वहां नाम भी न रहगया व जाय वृन्दावन में सब पहुंचे व तमे कृष्णचन्द्र की कृपासे वृन्दावन में ग्रीष्मऋतु में भी वर्षाही काल रहनेलगा सब ग्रामोंमें पशुओं को हरी २ घास चरनेको मिलनेलगी होते होते बलदेव व कृष्णचन्द्रजी बछरू चरानेलगे वनमें जाय मोरके पखनोंसे मुकुट बनाने वनके नानाभांति के पुष्पों से शिरोभूषण बनाने बांसकीबंशी बजाने पत्ता आदि बजानेलगे कालीजुल्फें रखाये आपस में हँसते हँसाते गोपकुमारों के संग वनों विचरनेलगे धीरे धीरे बछरू चराते २ अब सात सात वर्ष के हुये होते २ वर्षाकाल आया उसमें चारोंओर से श्याम बादल की घटा उठनेलगी मानों मारे वर्षा के सबदिशा एक होजायँगी मही में हरी २ घास अति मनोहर हुई उसके बीच २ बीरबहूटी कैसे शोभित होनेलगीं जैसे मरकतमणि के निकट पद्मरागमणि रखने से शोभा होती है नदियोंके करारोंके बाहर कैसे जल बहरहाहै जैसे दुर्जन लोगों के मन लक्ष्मीपाय इधर उधर उफलाते हैं निर्मल भी चन्द्रमा मलिन मेघों से छिपाहुआ शोभाको नहीं पाता जैसे बहुत उत्तमवाक्य मूर्खोंकी ढीठबोलियों से आच्छादितहो नहीं शोभित होवे फिर रोदा रहित भी इन्द्रधनुष आकाश में स्थितहो देखाई देताहै जैसे अविवेकी राजाके यहां गुणरहित महा मूर्खभी स्थानपाय शोभित होने लगते हैं काले मेघों के ऊपर उजले बगुलों की पांति कैसे शोभित होती है जैसे दुराचारी पुरुषोंके बीचमें कुलीन मनुष्यका सदाचार अत्यन्त चपला बिजुली मेघों में कैसे स्थिर नहीं होती जैसे श्रेष्ठ मनुष्यों के संग दुर्जनों की मैत्री नहीं स्थिर रहती भारे महैवासके मार्ग कैसे मुंदगये

हैं जैसे विक्षिप्तों की उक्ति से साफ साफ अर्थ नहीं जानपरते उन्मत्त मोर व भ्रमर युक्त तिस वर्षाकालमें आनन्द सहित रामकृष्ण दोनोंजन गोपालों के संग विचरते थे कभी कभी तो गाइयों के बोलके साथ आप भी बोलने गाने लगते कभी कभी झाऊआदि वृक्षोंकी डालें पकर खींचतेहुये विचरते कभीकभी कदम्ब के फूलोंकीमाला पहिनते कभी २ मयूर के पङ्खों के मुकुट बनाय धारण करते कभी कभी नानाप्रकार के गेरूआदि धातुओं से अपने अङ्ग रँगते हुहते कभी कभी पाता व घासपै बैठजाते व शयनकर रहते कभी कभी जब घन गर्जने लगते तो आप भी हाहाकार शब्द करनेलगते कभीकभी अन्य गोपकुमारोंका गानासुन प्रशंसा करनेलगते कभी कभी मोरोंकी बोली बाँसुरी में गाते इसभांति नाना प्रकार की क्रीड़ा करतेहुये प्रसन्नचित्तहो औरोंको आनन्दित करतेहुये वृन्दावन में विचरते खेलकूद सन्ध्यासमय व्रजको बछरूले आते फिर यहांभी गोपकुमारों के संग कूदफाद बड़ी दोघड़ी रात्रि बीते तक करते कराते उन सबमें देवरूप सब के स्वामी येही दोनों रहते ॥

सातवां अध्याय ॥

दो॰ या सतयं अध्याय महँ जिमि हरि कालियनाग ॥
यमुना से बाहर कियो बहुत महित अनुराग ॥ १ ॥

पराशरमुनि बोले एकदिन कृष्ण नन्द आनन्दकन्द बिना बलदेवजी के वृन्दावनको गये वहां वनके फूलोंकी मालापहिन गोपों के संग विचरते गाते खेलते २ अति चलायमान लहरी सहित यमुना के तीर पहुंच उसमें फेना तट पै नहीं लगाहुआ है मानों वह दान निकारे हँसती है जिस के भीतर अति भयानक विषानल से सन्तप्त बहुभयकारी कालियनागका कुण्ड देखा जिसके विषकी अग्निके मारे तीरके तरु जलकर रहेथे व उसके जल के छींटों के पवनके लगने से आकाश में उड़तेहुये पक्षी उसमें गिररहे थे भगवान् मधुसूदन ने देखा कि यह तो अति कठोर मानो मृत्युका दूसरा चक्र यही है इसमें दुष्ट कालिय बसता है जिसे हमारे चकने हराादिया था वह समुद्र छोड़ यहां आयाहै जिस दुष्ट ने यमुनाको दूषित करदिया है कि मनुष्य गऊ पक्षी कोई इस कुण्डका जल नहीं पीसके जिससे जिस दुष्ट नागराज कालियको हम इसमें निकालें कि सब

नाजल सब पशु पक्षी नरादि पानकरें क्योंकि इस नरलोक में हमने इसीलिये जन्मलिया है कि ऐसे २ दुष्टोंको शिक्षादेवें जिससे अब हम इस कदम्बौ चढ़ के जो अतिही इस कुण्ड के निकट है कुण्ड में कूदें व उस दुष्टको पकरलावें यह विचार अच्छीतरह फौड़ बाँध कदम्बोंचढ़ कालियकुण्ड में कूदपरे हरिके जोरसे कूदने से ऐसा जल इधर उधर उछला कि बहुत दूर २ वाले वृक्षों पै जाय गिरा तिस विषारी पानी के परने से सहस्रों वृक्ष भस्म होगये कि बड़ा हाहाकार मचा उसकुण्ड के भीतर पहुँचतेही कृष्णचन्द्रने ताल ठोंका सुनतेही नागराज कुद्ध आयदौरा मारे क्रोधके अरुण २ नयन होगये थे उसके संग और हजारोंनाग व नागिनिया फण लपलपाती दौंडी चली आती थीं कहा तक कहें सब सर्प सर्वाङ्गमें कृष्णचन्द्र को लपट गये व काटनेलगे कृष्णचन्द्र को कालियकुण्डमें कूदतेहुये देख सब गोप गण जो संगथे रोते पीटते ब्रज में पहुचे व कहनेलगे नहीं जानते कृष्णचन्द्र कैसे मोहमें फँस गये जो कालिय कुण्डमें कूदे वहा सर्पोंने काटाही होगा इसलिये मरगये होंगे चलो देखो यह वज्रपात समान वचन सुन नन्दादि सब गोप व यशोदादि गोपिया रोती पीटती कालियकुण्ड पै पहुचीं वहा जाय देखा तो कृष्णचन्द्र नागराज कालिय के फणों में लपेटेहुये जल के ऊपर इधर उधर छूटनेका यत्न कररहे हैं पर नहीं छूटते नन्दजी व यशोदाजी दोनों यह दशा देख मूर्च्छित हो पृथ्वी प गिरपरे तब गोपी लोग कृष्णचन्द्रको देख२ व सुनाय२ रोय२ बोलीं हे नाथ! यशोदा सहित हम सब गोपिया भी तुम बिना इसीकुण्ड में गिरती हैं अब ब्रजमें जाने को हम लोगोंका कुछ प्रयोजन नहीं क्योंकि बिना सूर्य दिन किस काम का बिना चन्द्रमा राति किस काम की धेनु बिना गाय किस काम की इसी रीति पर बिना कृष्ण के ब्रज किस काम का बिना कृष्ण ब्रजको न जायँगी क्योंकि वहा कौन रक्षा करैगा जैसे जल बिन तडागकी शोभा नहीं होती तैसेही हमारे प्यारे मनमोहन बिन ब्रजकी शोभा न होगी जिस ब्रजमें श्यामकमल राग रा नि मनोहरण श्रीहरि न होंगे उसमें चाहे जो सुख हो कैसे रहाजायगा प्रफुल्लित कमलवदन समान लोचन मोहिन कृष्णचन्द्र का मधुर मुख बिना देखे ब्रजमें क्या होगा अति प्यारी २ बनवारी की बोली सुन सुन हम लोगोंका मन टरगया है जो बिना उनके नन्दगोकुलमें जाय हाय क्या करेंगी अये गोपियो! देखो ना

नागराज के फणों में वेष्टित भी श्यामसुन्दरका मुखारविन्द कैसा शोभित होता व कैसे कमलनयन हमलोगोंको निहाररहे हैं इस भांति गोपियों के वचन सुन गोपों को अतिभयभीत देख नन्दजीको कृष्णचन्द्रकी ओर एकटक देखने देखते व यशोदाको मूर्च्छित निरोक्षि बलरामजी कृष्णचन्द्र से बोले हे देवदेवेश ! क्या निज मनुष्यहीका भाव अपना में लाये हो जो आत्माको क्लेश देरहे हो यह कैसी बातहै आप जगत् की नाभि हैं जैसे आराओंकी नाभि होती कि उसी में सब छेदेहुये होते इस संसार के कर्त्ता धर्त्ता भर्त्ता हर्त्ता सब तुम्हीहो त्रिलोकी में वेदमय स्वरूप तुम्हारा है व इन्द्र वरुण रुद्र आदित्य वसु पवन अग्नि व योगी गण सब तुम्हारी चिन्तना करते हैं हे जगन्नाथ ! जगत् का भार उतारने के लिये अपनी इच्छासे यहां अवतरेहो व तुम्हारेही अंश हम तुम्हारे बड़े भाई हैं हे भगवन् ! तुम तो मनुष्यलीला कररहेहो पर देखो तो ये देवता लोग आकाशमार्ग से देख २ कैसी विडम्बना कररहे हैं उनके सिवाय ये व्रजवासी भी तो देवताही हैं जिनको पहिले आज्ञादे आपने जन्मलेवायाहै तत्पश्चात् आपने लियाहै ये भी अपने मनमें हँसते होंगे फिर यहां अवतार लेने से यही गोप गोपी भाई बन्धुहैं ये सब तुम्हें बिना महाविपत्ति में डूबते हैं इनको देख भी दया नहीं आती बस अब मानुषभाव व बाल्यावस्थाकी चञ्चलता देखाचुके इस दुरात्मा नागको अभी दमन कीजिये अब खेलानेका कुछ काम नहीं पराशर मुनि बोले जब बलदेवजूने इसभांति स्मरण दिलाया तो कृष्णचन्द्र तालदे नागराजके फण फुफकार नागबन्धनसे अलग होगये व दोनों हाथोंसे नागराजका बीचवाला फण नवाय कूदके उस पर चढ़ अतिभार बढ़ाय नाचनेलगे कृष्णचन्द्रके नाचने में उसके फण में घावही घाव होगये नाचने के समय जो २ शिर वह उठाता उसी को लातसे मर्द देते कूदते २ यहांतक कूदा कि कालियको मूर्च्छा आगई और सब मुखोंसे रुधिर उगलनेलगा उसकी यह दशा देख नागकी स्त्रियां कृष्णचन्द्र की स्तुति करनेलगीं हे देवदेवेश ! हमलोगोंने जाना कि आप सब के ईश सर्वोत्तम परज्योति अचिन्त्य परमेश्वरहैं तुम्हारी स्तुति करने में जब देवता लोग समर्थ नहीं तो हम स्त्रिया कैसे रूपवर्णन करसकेंगी कि भूमि आकाश जल पवन अग्निसे बना हुआ ब्रह्माण्ड जिसके पद के एक अंशका अंश है तिसे हम कैसे स्तुति सुनावें योगी लोग जिसकी पूजा नित्य भी करने पर

नहीं जानते तिस सूक्ष्म से सूक्ष्म स्वरूप तुम्हारे नमस्कार है जिस तुम्हारे जन्म देनेके कारण ब्रह्मा नहीं व नाश करनेके यमराज व न कोई अन्य पालन करने वाला तिसके सदा नमस्कार है महाराज आप तो सदा सबका पालन पोषणही करतेहो फिर इस कालियके दमन करनेमें क्या कारणहै जो हो अब हम सब दीन स्त्रियोंके ऊपर कृपा कीजिये क्योंकि साधुलोग सदा दीनोंपर दयाही करते हैं इसको छोड़दीजिये नहीं तो यह मरताही है क्योंकि कहां आप समस्त जगत के आधार कहां यह अल्पबल सर्प तुम्हारे पावोंसे पीड़ितहो एक घड़ीही भरमें प्राण छोड़देगा हे भगवन् ! प्रीति व वैर समान के संग होते हैं कहां यह अल्प-रूप वीर्य नाग कहां महापराक्रमी सकल भुवनाश्रय आप भला इसका आप का वैर कैसे होसका तिससे अब यह बहुत व्याकुलहै प्राण निकलतेही हैं इसके ऊपर कृपा कीजिये व हमलोगोंको पति भिक्षामें दीजिये इस भांति नागकी स्त्रिया विनय करतीहीथीं कि धीरे २ श्वास लेताहुआ नागराजभी बोला हे देव ! प्रसन्न हूजिये आपके साधारण आठगुणहैं जिनके आगे किसीका विभव नहीं तिसकी स्तुति हम क्या करें॥

चौ॰ तुम सबमें पर हौ जगदीशा। तव मायावश विधि सुर ईशा॥
किमि तव गुण गावहुँ मैं भोगी। नहिं सुर सिद्धि न गतमद योगी॥ १॥
जासों विधिहर विधु रवि सुरपति। सूर्य्य अश्विनीसुतसुवशुमरुति॥
देव न जानत तुम्हें मुरारी। तासु विनय किमि मनन उचारी॥ २॥
सूक्ष्म अंश तनु यह जगजासू। विनय करौं मैं जड़ किमि तासू॥
सन्महूप रूप विधि आदी। जासु न जानत सो किमि वादी॥ ३॥

जिस आपकी पूजा ब्रह्मादि देव नन्दनादि वनके सुगन्धित पुष्पोंसे करते हैं तिस मैं कैसेकरूं जिसके अवतारों के रूप इन्द्र सदा पूजतेहैं तिसकी पूजा कैसे करूं विषयवासनासे सब इन्द्रियोंको खींच जिसकी पूजा ये योगीलोग करते तिसकी मैं विषयी कैसे करूं हृदयमें ध्यानसे कल्पनाकर योगीलोग जिसकी पूजा करते तिसकी मैं अभिमानी कैसेकरूं तिससे हे देवदेव ! मैं आपकी पूजा, स्तुति ध्यान वन्दना किसीके योग्य नहीं आप अपनी कृपामात्रसे प्रसन्न हूजिये हे केशव ! क्याकरूं जो मेरी सर्पकी जातिही आपकी स्वभाव होगी है जो मैं काटने दौड़ा उस विषयमें मेरा अपराध कुछभी नहीं आपहीं प्रथम सब संसार

को बनाते फिर नाशते हैं सृष्टि करनेके समय जातिके अनुसार रूप व स्वभाव भी बनाते फिर जिसप्रकारकी जातिमें जैसारूप स्वभाव आपने बनाया उसका जो कुछ व्यापार था वह मैंने कर दिखाया यदि मैं जाति स्वभावसे विपरीत कुछ करता तो आपको यह दण्ड देना उचितथा नहीं तो अनुचितही दण्ड हुआ है यद्यपि आपने अयोग्य दण्ड दिया तथापि अब मैंने उसे सहलिया अब अपने प्राण वरदान में मांगताहूं अन्य कुछ नहीं चाहता यह सुन कृष्णचन्द्र बोले हे सर्प ! तुम्हें प्राणदान दिये पर अब सहित परिवार यमुनाजलसे निकलजा समुद्रमें जाय बस यहां रहनेका कुछ काम नहीं यदि यहां गरुडसे डरताहै तो हमारे चरणोंके चिह्न तेरे शिरपै देख गरुड़ अब तुम्हें न मारेंगे इतना कह कृष्णचन्द्रने कालियको छोड़दिया वह प्रणाम कर सहित परिवार समुद्र में जाय बसा सर्पके चलेजाने पै सब गोपगण कृष्णचन्द्रको प्रेमसे मिले व अपने नेत्रोंके जलसे इनका शिर सींचने लगे अन्य गोपोंने देखा कि नदीका जल अब इनकी कृपासे मीठा होगया इसलिये वे स्तुति करनेलगे सब गोपगोपी कालियदमन लीला गाते बजाते नन्द यशोदा बलदेव श्रीकृष्णचन्द्रके साथ ब्रजको आये ॥

आठवां अध्याय ॥

दो॰ कहब अष्टमाध्याय महँ धेनुक बध जिमि कीन ॥
कृपासिन्धु ब्रज पशु नरन जिमि सो करि सुख दीन ॥ १ ॥

पराशरमुनि बोले एक दिन बलराम व केशव मूर्त्ति होता नन गोपकुमारों के संग धेनु चरातेहुये तालोंके वनमें पहुंचे उस वनमें मनुष्य व पशुओंके मांस खानेवाला गर्दभरूपी धेनुकासुर बहुत दिनोंसे रहता था तहां पहुंच अतिगढ़ ताल फल देख खानेकी इच्छासे गोपगण कृष्णचन्द्र व बलदेवजीसे बोले हे राम ! हे कृष्ण ! इस वनके फल सदा धेनुकासुर रखाया करता है इसीसे देखिये बहुत पकेफल लगेहैं हमलोग खाया चाहते हैं यदि आपभी चाहें तो दिवादें कि हमलोग भी खावें व आपभी गोपकुमारोंके ऐसे वचनसुन कृष्णचन्द्र व बलदेवजीने एक २ जोरसे तालवृक्ष हलादिये कि सब फल भूमिमें गिरपड़े फलों के गिरनेका शब्दसुन अतिकोपकरके गर्दभरूपी धेनुकासुर आताहुआ व दोनों के

सिद्धने दोनोंलात बलरामजी की छातीमेंमारी कि उन्होंने एक २ हाथसे एक २ पैरपकर घुमाया घुमातेही उसके प्राण निकलगये व उठाय उसी ताल की जड़ पै पटकदिया उसके पटकन से जो कुछ फल हिलाने के समय गिरने को रह भी गयेथे वेभी गिरपरे तब उसकी जातिके और भी गर्दभाकार बहुतसे दैत्य आये उन्हें भी दोनोंजनों ने पटकपुटक समाप्ति करदिया एक क्षणमात्र में वहां की मही तालोंके फल व उसी वर्ण के दैत्योंके परनेसे पूर्णहो शोभायमान होने लगी तबसे ब्रजवासियों के पशु अतिनरम घास उस वनकी चरनेलगे काहू को कभी ऐसी रखाई हुई घास चरने को मिली थी ॥

नवम अध्याय ॥

दो० कहब नवम अध्याय महँ जिमि प्रलम्ब कहँ राम ॥
मार्‌यो पुनि गोपन कियो तिमि स्तुति अभिराम ॥ १ ॥

पराशरमुनि बोले जबसे सपरिवार धेनुकासुर मारागया तबसे सब गोपव गोधन उसमें जाने फलादि खाने चरने चरानेलगे व धेनुकासुर को मार हर्षित हो दोनों भाई गोपोंके संग भाण्डीरनाम वनको गये वहां खेलने कूदने हँसने हँसाने व दूर चलीगई गायोंके नाम ले २ पुकारनेलगे व गायें दुहनेके नेंदे कांधोंपर धरे वनमाला पहिने शोभित होनेलगे सुन्दर रंगका अञ्जन लगाय अन्य नानाभांति के धातुओं से कपड़े रंगबिरंगेकर पहिन २ ऐसे शोभित होने लगे जैसे इन्द्रधनुष्के साथ उजली व काली बादर की घटा शोभित होती है कहांलों गनावें जितने खेल लोकमें प्रसिद्ध हैं लोकके नाथ बलदेव व कृष्ण-चन्द्र धरणीतल में अवतार ले सब करतेहुये वनमें विचरते थे क्योंकि मनुष्यके अवतार धारण किये थे फिर मनुज चेष्टा करनीही चाहिये इसीसे उसकी प्रशंसा करते थे जैसे कि आपसमें दोजन हाथजोर एक को चढ़ाये इूलेजाते कुश्ती लड़ते दण्ड करते इधर उधर पत्थर चढ़ाते दूसरा रोकता एक दूसरे को अपने ऊपर चढ़ाना व लेजाता यही भेद देख प्रलम्बासुर गोपवेष धारणकर आया व उन्हींमें गुप्तहोकर खेलनेलगा और कृष्णचन्द्र व बलदेवजी के मेलमें छिद्र ताकनेलगा खेलतेर चाहा कि बलदेव व कृष्णचन्द्र दोनों भाइयों को मारडालें तब चढ़ाचढ़ैया खेलहोनेलगा जिसमें हारनेवाले जीतनेवालों को अपने ऊ-

पर चढ़ाय किसी नियमित स्थानपर लेजाते हैं उसमें श्रीकृष्णचन्द्र और श्रीदामा गोपके साथियोंसे व प्रलम्बासुरके साथियोंसे बलभद्रजी से खेलहोनेलगा कृष्ण-चन्द्र श्रीदामा से जीते बलरामजी प्रलम्बासुर से तब भाण्डीरनाम वरगद् वटा गया जो हारे चढ़ाय २ लेचले कृष्णचन्द्र को श्रीदामाने अपने ऊपर चढ़ाया व प्रलम्बासुर ने बलदेवजी को भाण्डीर तर पहुँच सबोंने तो उतार दिया पर प्रल म्बासुर बलभद्रजी को आगे लेभागा परन्तु बलदेवजीका भार जब न सहसका तो अपना शरीर उसने बढ़ाया सङ्कर्षणजीने देखा अभी यह सब गोपों के स मानथा अब पर्वताकार होगया तब कृष्णचन्द्र को गोहराया देखिये भाई यह कोई दैत्य है जो गोपालवेषधारी था हमको पर्वत की कन्दरा को लिये भगा जाताहै सो भाई इस विषय में जो हमें कर्त्तव्यहो बताइये यह दुष्टात्मा लियेही जाताहै यह सुन कृष्णचन्द्र ने हँसके कहा कि आपभी क्या मनुष्यभाव को प्राप्त होगये जो हमसे उपाय पूछते हो भाई अपने उस रूपको स्मरण कीजिये जिसके मुखसे अग्नि निकल प्रलय समय संसार को भस्म करता क्या नहीं जानते कि हम व आप दोनों धरणीभार उतारने के लिये मर्त्यलोक में अवतरे हैं हे भाई! तुम्हारा शिर तो आकाश शरीर जलमय चरण पृथिवी मुख अग्नि मन चन्द्रमा श्वास पवन चारोंदिशा बाहु हैं व तुम्हारे मुख चरण कर शिर सब सहस्र २ हैं तुमको मुनिलोग सहस्रयोनि कहते हैं तुम्हारा दिव्यरूप अन्य कोई देवता नहींजानता व सब अन्तमें तुम्हारीही स्तुतिकरते सम्पूर्ण संसार तुम्हींमें लीनहोताहै तुम्हारीही धरीहुई यह धरती चराचर संसारको धारण कियेहै सत्य-युगादिके भेदसे अज काल रूपतुम्हींहो व निमेषरूप यह विश्व हम तुम दोनों एकही हैं कुछ अन्तर नहीं केवल क्रीड़ाके लिये अवतार लियाहै इसदुष्टके मा-रनेमें कौन प्रयास करनाहै शीघ्रमार बन्धुओं को प्रसन्न कीजिये जब इसभांति कृष्णचन्द्र ने स्मरण दिलाया तो हँसके बलरामजी ने प्रलम्बासुर के एक मूका मारा जिससे उसके प्राण निकलगये आँखें निकलआईं पृथिवी में गिरपड़ा व मरगया गोपोंने बलदेवजीकी बड़ी स्तुतिकी कृष्ण व बलदेवजी गोपोंके साथ फिर व्रजको आये॥

दशवां अध्याय ॥

दो० कहब दशम अध्यायमहँ जिमि हरि सुरपति याग ॥
बन्दकराय लगाय प्रिय गोवर्द्धन गिरि भाग ॥ १ ॥

पराशर मुनि बोले हे मैत्रेय ! राम कृष्ण के इसभांति विहरते २ वर्षा ऋतु बीतगई शरद् ऋतु आई जिसमें कमल फूलनेलगे व छोटी २ तलैयों की मछलियों को कर्मीत उत्पन्न होने लगी जैसे स्त्री पुत्र विषी पानीमें लगे हुये थोड़े धनवाले गृहस्थों को होती है व मदान्धता को छोड़ मयूरगण मौनव्रत धारकर बैठे जैसे समार को असारजान योगी लोग एकान्त में मौनहो बैठत व मेघगण ने जल ही मानो उनका सर्वस्व धन है तिसे छोड़ निमलतासे उज्ज्वलहो आकाश छोड़ दिया जैसे विज्ञानी लोग सब धन दान पुण्यकर घर छोड़देते हैं शरद्ऋतु के सूर्य्यकी किरणों से सन्तापितहो जल सुखागया जैसे जिन प्राणियों को गृहादि में बड़ी ममता है उनके हृदय नानाभांति की तापों से सुखजाते हैं कुमुदों के फूलने से शरदऋतु के जन योग्यता को पहुँचे जैसे निर्मल विज्ञानी मनुष्यों के मन अच्छे बोधसे और भी योग्य होजाते हैं तारागणों सहित विमल आकाश में पूर्णमासी का चन्द्रमा कैसे शोभायमान होताहै जैसे साधुओं के कुलमें अच्छा योगी देदीप्यमान होता है तड़ाग नदी आदि जलाशय धीरे २ अपना किनारा छोड़ २ सिमटनेलगे जैसे पण्डितलोग स्त्री पुत्रादि में लगीहुई ममता धीरे २ छोड़ते हैं वर्षाकाल में हंसोंने जलाशय छोड़ दिया था अब शरदऋतुमें फिर विमल जल पाय योग्यता को पहुँचे जैसे कुयोगी लोग तपस्या करते हैं तो किसी भांति के विघ्न से तप करना छूट जाता जब फिर योग करने लगते तो योग्यता को पहुँचते समुद्र अब नदियों की धारा जल पहुँचने के कारण पनाय परिपूर्ण होचुका है शब्द नहीं करता जैसे क्रम २ से जब यतीको महायोग मिलजाता तो वह महागम्भीर स्वभावहो बैठता बोलता नहीं सब कहीं विमलहो मल प्रसन्न हुये जैसे सर्वव्यापी विष्णुको अच्छीभांति जाननेसे पण्डितों के मन प्रसन्न होजाते हैं मेघरहित आकाश निर्मल होगया जैसे योगाग्निसे क्लेशसमूहोंके जरने से योगियों का मन निर्मलहोजाता दिन को जो सूर्य्य की किरणोंसे मनुष्यादिकोंको ताप होतीहै रात्रि में चन्द्रमा शीतकिरणोंसे नाश करदेताहै जैसे

महकामे उत्पन्न हुआ को महाविवेक,नाशता है आकाश में मेघों को भूमि से कीचको जल से मलिनता शरद् ने हरलिया जैसे प्रत्याहार नाम योगाग सर्व विषयों से इन्द्रियों को खींचलेना तड़ागों के जल मानो जहां तहां मे जलखींचने व छोड़ने आदि मे पूरक रेचक धारणादि प्राणायाम करने में अभ्यास करते हैं ऐसी शरद् में कृष्णचन्द्र आनन्दकन्द ने देखा कि सब ब्रजवासी इन्द्र की यज्ञ करने में प्रवृत्त कररहे हैं सब को उसी में लगेहुये जान जो गोपोंमें वृद्ध थे उनसे बोले यह इन्द्र कौनहै जिसकी यज्ञ करने में तुम लोगों को बड़ाहर्ष है जब ऐसे पूछा तो नन्दजी बोले कि भैया मेघों व जलों के स्वामी इन्द्रजीहैं जिन्हीं की आज्ञा से मेघ पृथिवी में जलमय रस वर्षतेहैं तिसी वृष्टिसे अन्न घास फूल फल मूलादि सब होतेहैं उनसे हमलोग व सब अन्यप्राणी देवताओं को हवनादि द्वारा पहुँचाय आप खाते पीते निर्वाह करते हैं ये गौयें जो बहुत २ दूध देतीं व मोटी ताजी आनन्दित घूमतीं बच्चे देतीं यह सब मेघोंके बरसने से जो घास होती उसी के खानेका प्रभावहै जहां पानी बरसतेहुये बादर देखपरते वहां विना अन्न व विनाघास की पृथिवी नहीं देख परती न कोई भूखा जन देख परता है इस पृथिवी का जल सूर्य्य अपनी किरणों से ८ महीनों में सोख लेते फिर उसी से वर्षाकाल में बादर बनते जो संसार के कल्याण हेतु भूमिजलमें बरसतेहैं तिसीकारण राजालोग शरद्ऋतु में इन्द्रकी पूजा करते हम लोग व अन्य भी प्राणी तिसी से तिनकी पूजाकरतेहैं नन्दगोप के ऐसे वचन इन्द्रकी पूजाके विषय में सुन सुरपतिको कोप करानेक लिये श्रीनन्दनन्दन बोले जिस से कि हे तात! हमलोग वनचर रहेहैं हमारे धन दौलत व देवता गायेंहैं कुछ खेतीपाती व वाणिज्य हमारा काम नहीं न्याय शास्त्र वेदत्रयी कृष्यादिवार्त्ता दण्ड नीति ये ४ वर्णों की विद्याहैं उनमें वैश्यों की कृषिवार्त्ता है उसको हम तुमसे बताते हैं सुनिये खेती करना वाणिज्य व्यापार करना पशुपालना इन तीनों वार्त्ताओं के साथ एक विद्याहुई इनमें किसानों की वृत्ति खेती है वनियों की वृत्ति लेन देन मोल बेचलना हमलोगों की वृत्ति पशुओं का पालना है यह भी उन्हीं तीन वृत्तियों में से है इसलिये जो विद्या जिस के लिये है वह उसीसे निर्वाह करना व उसीका पूजा करना चाहिये क्योंकि उसका देवता वही है जो अपनी विद्याको छोड़ अन्य किसीकी पूजा करता

दशवां अध्याय ॥

दो॰ कहब दशम अध्यायमहँ जिमि हरि सुरपति याग ॥
यन्दकराय लगाय दिय गोवर्द्धन गिरि माग ॥ १ ॥

पराशर मुनि बोले हे मैत्रेय ! राम कृष्ण के इसभांति विचरते २ वर्षा ऋतु बीतगई शरद् ऋतु आई जिसमें कमल फूलनेलगे व छोटी २ तलैयों की मछलियोंको कमीतरन होनेलगी जैसे स्त्री पुत्र खेती पातीमें लगेहुये थोड़े धनवाले गृहस्थों को होती है व महान्धना को छोड़ मयूरगण मौनव्रत धारकर बैठे जैसे संसार को असारजान योगी लोग एकान्त में मौनहो बैठते व मेघगण ने जल ही मानो उनका सर्वधन है तिसे छोड़ विमलतामे उज्ज्वलहो आकाश छोड़ दिया जैसे विज्ञानी लोग सवतन दान पुण्य कर घर छोड़देते हैं शरद्ऋतु के सूर्यकी किरणों से सन्तापितहो जल सुखागया जैसे जिन प्राणियों को गृहादि में बड़ी ममता है उनके हृदय नानाभांति की तापों से सुखाजाते हैं कुमुदों के फूलने से शरदऋतु के जल योग्यता को पहुंचे जैसे विमल विज्ञानी मनुष्योंके मन अच्छे बोधसे और भी योग्य होजाते हैं तारागणों सहित विमल आकाश में पूर्णमासी का चन्द्रमा कैसे शोभायमान होताहै जैसे साधुओं के कुलमें अच्छा योगी देदीप्यमान होता है तड़ाग नदी आदि जलाशय धीरे २ अपना किनारा छोड़ २ सिमटनेलगे जैसे पण्डितलोग स्त्री पुत्रादि में लगीहुई ममता धीरे २ छोड़ते हैं वर्षाकाल में हंसोंने जलाशय छोड़ दिया था अब शरद्ऋतुमें फिर विमल जल पाय योग्यता को पहुंचे जैसे कुयोगी लोग तपस्या करते हैं तो किसी भांति के विघ्न से तप करना छूट जाता जब फिर योग करने लगते तो योग्यता को पहुंचते समुद्र अब नदियों की द्वारा जल पहुंचनेके कारण बनाय परिपूर्ण होचुका है शब्द नहीं करता जैसे क्रम २ से जब यतीको महायोग मिलजाता तो वह महागम्भीर स्वभावहो बैठता बोलता नहीं सबकहीं विमलहो जल प्रसन्न हुये जैसे सर्वव्यापी विष्णुकी अच्छीभांति जाननेसे पण्डितोंके मन प्रसन्न होजाते हैं मेघरहित आकाश विमल होगया जैसे योगाग्निसे क्लेशसमूहोंके जरने से योगियों का मन विमलहोजाता दिन को जो सूर्यकी किरणोंसे मनुष्यादिकोंको ताप होतीहै रात्रि में चन्द्रमा शीतकिरणोंसे नाश करदेताहै जैसे

अहङ्कारमें उत्पन्न दुःखको महाविवेक नाशता है आकाश से मेघों को भूमि से कीचको जल से मलिनता शरद् ने हरलिया जैसे प्रत्याहार नाम योगाङ्ग सर्व विषयों से इन्द्रियों को खींचलेना तड़ागों के जल मानो जहां तहां से जलखींचने व छोड़ने आदि से पूरक रेचक धारणादि प्राणायाम करने में अभ्यास करते हैं ऐसी शरद में कृष्णचन्द्र आनन्दकन्द ने देखा कि सब ब्रजवासी इन्द्र की यज्ञ करने में मग्न कररहे हैं सब को उसी में लगेहुये जान जो गोपोंमें वृद्ध थे उनसे बोले यह इन्द्र कौनहै जिसकी यज्ञ करने में तुम लोगों को बड़ाहर्ष है जब ऐसे पूछा तो नन्दजी बोले कि मैया मेघों व जलों के स्वामी इन्द्रजी हैं तिन्हीं की आज्ञा से मेघ पृथिवी में जलमय रस वर्षते हैं तिसी वृष्टिसे अन्न घास फूल फल मूलादि सब होतेहैं उनसे हमलोग व सब अन्यप्राणी देवताओं को हवनादि द्वारा पहुँचाय आप खाने पीने निर्वाह करते हैं ये गौयें जो बहुत २ दूध देतीं व मोटी ताजी आनन्दित सुखी बच्चे देतीं यह सब मेघोंके बरसने से जो घास होती उसी के खानेका प्रभावहै जहां पानी बरसतेहुये बादर देखपरते वहां बिना अन्न व बिनाघास की पृथिवी नहीं देखपरती न कोई भूखा जन देख परता है इस पृथिवी का जल सूर्य्य अपनी किरणों से ८ महीनों में सोख लेते फिर उसी से वर्षाकाल में बादर बनते जो संसार के कल्याण हेतु भरणीतलपर बरसतेहैं तिसीकारण राजालोग शरदऋतु में इन्द्रकी पूजा करते हम लोग व अन्य भी प्राणी तिसी से तिनकी पूजाकरतेहैं नन्दगोप के ऐसे वचन इन्द्रकी पूजाके विषय में सुन सुरपतिको कोप करानेके लिये श्रीनन्दनन्दन बोले जिस से कि हे तात! हमलोग वनचर रहेहैं हमारे धन दौलत व देवता गायेंहैं कृषि खेतीपाती व वाणिज्य हमारा काम नहीं न्याय शास्त्र वेदत्रयी कृष्यादिवार्त्ता दण्ड नीति ये ४ वर्णों की विद्याहैं उनमें वैश्यों की वृत्तिवार्त्ता है उसको हम तुमसे बताते हैं सुनिये खेती करना वाणिज्य व्यापार करना पशुपालना इन तीनों वार्त्ताओं के साथ एक विद्याहुई काम किसानों की वृत्ति खेती है बनियों की वृत्ति लेन देन मोल बेचना हमलोगों की वृत्ति पशुओं का पालना है यह भी उन्हीं तीन वृत्तियों में से है इसलिये जो विद्या जिस के लिये है उसे उसीसे निर्वाह करना व उसीका पूजा करना चाहिये क्योंकि उसका देवता वही है जो अपनी विद्याको छोड़ अन्य विद्याओंको ग्रहण करता

व पूजता वह न इसीलोकमें सुखपावे न परलोकही में ग्रामसे जहां उसका कोई होता वहांतक खेती होती हाड़के बाहर पर्व्वत तक वन होता हम लोगोंका बड़ा प्रयोजन पर्व्वतसे निकलता है इससे पर्व्वतकी पूजा करनी चाहिये क्यों कि जिसप्रकार लदींवदी लादनेवाले पशु चरानेवाले जैसे कि हमलोगहैं सुखी रहते वैसे गढ़ी क़िला बनाये रहनेवाले व खेती पाती करनेवाले नहीं सुखी रहते सुनते हैं कि हम वनमें जो ये पर्व्वत हैं सब इच्छाचारी हैं अपना २ रूप धर २ अपने २ कँगूरोंपै फिरा करते हैं जब कोई वनवासी उनका कोई अपराध करते हैं तब वे सिंह व्याघ्रादि रूप धारण कर उनको मारते हैं तिससे यज्ञ व गोयज्ञ लावो करें हमारा इन्द्र क्या करैगे हमारे तो पर्व्वत व गायें यही देवता हैं ब्राह्मण लोग मन्त्र यज्ञ करते किसान लोग हलकी यज्ञ तिसीभांति वन पर्व्वत निवासी हम लोग पर्व्वत यज्ञ करें तिससे हमलोग विविध भांतिके पशु बलिप्रदान कर गोवर्द्धन पर्व्वतकी पूजाकरें व्रज भरका सब दूध आज लेलियाजाय तिससे ब्राह्मण व अभ्यागतों का भोजन कराया जाय जब गोवर्द्धनकी पूजा होय ब्राह्मणोंका भोजन होजाय तो शरदृऋतुके फूलोंकी मालादि पहिनाये गायों की प्रदक्षिणा करो हे गोपो ! हमारा तो यह मतहै जो ऐसा करोगे तो गाय पर्व्वत व हमारी सबकी प्रीतिहोगी पराशर मुनि बोले हे विप्र ! कृष्णचन्द्रके ऐसे वचन सुन सब गोप प्रसन्नहो बहुत अच्छा बहुत अच्छा कहनेलगे हे भैया ! तुम्हारा मत बहुतही अच्छा है अब चलो पर्व्वत यज्ञकरें और बखेड़ों से कुछ काम नहीं यहकह जैसे २ कृष्णचन्द्रने बताया वैसे २ गोवर्द्धन की पूजा करी कराई पीछे नानाप्रकार की वस्तु गोवर्द्धनके आगे निवेदनकी तदनन्तर सहस्रों ब्राह्मणोंको खीर आदि उत्तम २ पदार्थोंसे भोजन कराया जब पूजा होगई तो गोधन आगेकर सब गोप गोपी गोवर्द्धनकी प्रदक्षिणा करने लगे उसमसय बैल ऐसे हकरतेथे मानों वर्षाकालके मेघ गर्ज्जते हैं कृष्णचन्द्रने अपनी दूसरी मूर्त्ति बनाय पर्व्वतके ऊपरसे कहा हम पर्व्वत हैं बस जितने खीर पूरी पुआ आदि पक्वान्न ब्राह्मणादिकों के भोजनसे बचेथे व गोवर्द्धनके आगे निवेदन कियेगये थे सब उठाय २ खायगये और दूसरी मूर्त्ति जो गोपोंके संगथी उससे गोपोंके संग उस पर्व्वतस्थ अपनी मूर्त्तिको पूजा करतेरहे वह मूर्त्ति बोली हम बहुत तृप्तहुये कृष्णचन्द्रने कहा तुम लोग सदा इन्द्रकी पूजा करतेरहे कभी

प्रसन्नहो उन्होंने कहा कि हम तृप्तहुये यह कहतेही वह मूर्त्ति तो अन्तर्द्धान होगई कृष्णचन्द्र सब ब्रजवासियोंके संग ब्रजको आये ॥

ग्यारहवां अध्याय ॥

दो॰ ग्यारहयें अध्यायमहँ इन्द्र कोपसे वृष्टि ॥
जिमिब्रजमेंभे कहब पुनि गिरिधर रक्षादृष्टि ॥ १ ॥

पराशर मुनि बोले हे मैत्रेय ! जब इन्द्रकी यज्ञ इसभांति रोकीगई तो अति कराल कोपकर व सावर्त्तनाम मेघोंके राजासे बोले हे मेघो ! हमारे वचन सुनो सुनके उससे विचार न करो तुरन्तही करना होगा महादुर्बुद्धि नन्द गोपने अन्य गोप व अपने पुत्र कृष्णकी सहायता से हमारी यज्ञ भङ्ग करदी तिससे तिन गोपोंकी जीविका जो गाइयां हैं उनके ऊपर ऐसी ऐसी वर्षा करो कि सब मारे जाड़के पीड़ित होजावें हमभी पर्व्वताकार ऐरावत चतुर्दन्त अपने हाथी पै चढ़ पवनको संग चलवातेहुये तुम्हारी सहायता करेंगे पराशर मुनि बोले इतनी आज्ञापाय मेघगण धाये व ब्रजके ऊपर आय गाइयोंके नाश करनेकेलिये बड़े वेगसे वर्षा करनेलगे ऐसी वर्षाकी कि क्षणमात्रमें पृथिवी आकाश व सब दिशा जलसे पूर्ण होगईं बिजुली का चमकना मानो लोहका दण्ड था जिसके भयहीसे पीड़ितहो जानो एक बादरसे दूसरे लड़ने व भागते व चिल्लाते हुये सम्पूर्ण दिशाओं में शब्द व जल भरनेलगे बरन भारही दिया लगातार ऐसी वर्षाहुई कि लोकों अन्धकार होगया नाले ऊंचे नाल कड़ी पानीसे खाली न रहा ऐसा विदित होताथा कि जानो प्रलय होजायगी मारे जाड़के गायें इधर उधर कुराय कराय भागीं व मारे पवनके वेगसे गिर २ मरनेलगीं कोई गाय अपने बच्चे अपने पेटके नीचे लिये खड़ीथीं किसी २ के बच्चे मरहीगये कोई बच्चे धीरे धीरे शब्द करते थे मानो कृष्णचन्द्र से अपना दुःख कह रहेथे यही दशा मनुष्यों की भीथी यह सब देख कृष्णचन्द्रने अपने मनमें विचारा कि यज्ञभङ्ग होनेके कारण यह सब इन्द्रने कियाहै इसलिये अभी ब्रजकी रक्षा करनी चाहिये इसके लिये यही उपाय करें कि इस गोवर्द्धन पर्व्वत को उखाड़ ऊपर को उठालें उसीके नीचे ये सब रहेंगे तो रक्षा होगी... गोवर्द्धन एक हाथसे लीलापूर्वक उखाड़ लिया तब ऊपर उठाय ब्रजवासियों से कहा

अपने २ गोधन व मनुष्य ले २ इसके नीचे आजावो हमने वर्षासे रक्षा
जबतक यह वर्षा व वात न मिटै इसीके नीचे निर्वाह करो हमारे हाथसे प०
गिरने का भय न करना यह अब न गिरैगा यह सुन सब गोप गोपी अपने
गोधनले माल असबाब छकड़ों पै लादफान्द गोवर्द्धन के नीचे आयगये
कृष्णचन्द्र भी उसीके नीचे निश्चलता से प०ते धारण किये हुये खड़ेरहे
गोपी गोप निहार २ आनन्दित होतेथे व सबके सब स्तुति करते थे इस भ
इन्द्रकी आज्ञासे नन्दगोप का ब्रज नाशनेके लिये मेघ सात दिनतक महावेग
साथ वर्षा करतेरहे सात दिनके पीछे जब इन्द्रनेजाना कि हमारा किया कुछ न
हुआ गोकुलकी रक्षा कृष्णचन्द्रने करली तो लज्जितहो अपने मेघोंको रोका
वर्षा बन्दकरो जब बादर निकलगया व इन्द्र की प्रतिज्ञा भ्रष्टहोगई तो कृष्णच
भी सबको सङ्गले गोवर्द्धन को यथा स्थान स्थापित कर ब्रजको आये ॥

बारहवां अध्याय ॥

दो॰ द्वादशयं अध्याय महँ लज्जित है सुरराज ॥
सुरभि सहित आये ब्रजहि हरि बिनवन के काज ॥ १ ॥
गोविंद नाम धराय करि कै अभिषेक विशाल ॥
करि उपेंद्र हरिको गये वर्णव सोइ हवाल ॥ २ ॥

पराशरमुनि बोले जब गोवर्द्धन उठाय कृष्णचन्द्र ने गोकुलकी रक्षाकरली
तो इन्द्रको श्रीहरि के देखने की इच्छाहुई इस लिये ऐरावत हाथी पै सवार हो
ब्रजको आये कृष्णचन्द्र को गोवर्द्धन पर्वत पै गोपोंके सग गायें चराते हुये
देखा जो कृष्णचन्द्र सम्पूर्ण ससार के पालन करनेवाले हैं सो गायोंकी पालन
करते हैं इन्द्रको यह भी देखपरा कि गरुड़जी अपने पंखोंसे ऊपर से कृष्णचन्द्र
के शिरपै रक्षा कररहे हैं यह जान ऐरावत से उतर एकान्त में कृष्णचन्द्र से बोले
हे कृष्ण ! हम आपके निकट जिस लिये आये हैं निवेदन करते हैं आप कुछ
उसके विरुद्ध न चिन्तना कीजिये हम जानते हैं कि आप अनादि पुरुष पर
मात्मा हो महीभार उतारने के लिये यहां अवतरेहो यज्ञभग करने के लिये हम
ने क्रोधकर मेघोंको ब्रजवासियोंके नाशार्थ भेजाथा उन्होंने वर्षासे गोधन गोपी
गोपोंको बहुत पीड़ित किया पर तुमने गोवर्द्धनउठाय उनकी रक्षाकी इसलिये

तुम्हारी वीरता देख हम बहुत सन्तुष्ट हुये व हमने जाना कि तुमने देवों का कार्य सिद्धकिया क्योंकि जब इतना बड़ा पर्वत उखाड़ लिया व ७ दिनतक हाथपै धरेहुये गोकुलकी रक्षाकी तो दुष्ट दैत्योंके मारनेमें क्याहै तुमने गायों की जो रक्षाकी है इस से प्रसन्नहै सुरभी ने व सब गायोंने हमको भेजाहै आज से तुम्हारा गोविन्द नाम हुआ व गायों के उपेन्द्रहुये यह कह और २ से तीर्थोंका जल मँगवाय व ऐरावत की सूड़में जो आकाशगंगा का जल भराथा ले कृष्णचन्द्रका अभिषेक पुरन्दर ने अपने हाथ से किया जब अभिषेक करनेलगे तो प्रसन्नहो गायोंने स्वर्ग से दूधकी वर्षाकी वह भी अभिषेक हुआ इसके पीछे कृष्णचन्द्र से हाथजोड़ इन्द्र बोले कि एक बात और भी आपसे कहते हैं हमारे अंशसे कुन्ती में अर्जुनजी उत्पन्न हुये हैं उनकी रक्षा जबतक यहां रहियेगा करते कराते रहियेगा यह सुन कृष्णचन्द्र बोले कि हम जानते हैं तुम्हारे अंगसे कुन्तीमें अर्जुन उत्पन्न हुयेहैं जबतक यहांहैं उनकी रक्षा अवश्य करते रहेंगे जबतक हम महीतल में हैं तबतक संग्राम में कोई उनको न जीतसकेगा कंस अरिष्ट केशी कुवलयापीड़ भौमासुरादिकों के मारेजाने के पीछे महाभारत नाम संग्राम होगा उसमें सहस्रोंवीर मारेजायँगे जब वह होजावे तो तुम जानना कि पृथिवी का भार उतारागया जिससे आप जायँ पुत्रके अर्थ शोच न करें हमारे आगे अर्जुन का शत्रु कोई न होगा अर्जुन के लिये भारत होजानेके पीछे सब युधिष्ठिरादिकों को कुन्तीको सौंपदेंगे व उन तबक जो संग्राममें घायल-होंगे सब नीक होजायँगे यह सुन देवराज कृष्णचन्द्र को मिल भेंट ऐरावत पै सवारहो फिर स्वर्गको चलेगये व कृष्णचन्द्रभी गोपालों के साथ व्रजकोआये॥

तेरहवां अध्याय॥

दो० तेरहयें अध्याय महँ गोपन हरि सों चीत॥
कहब सोइ पुनि जिमि हरी रासक्रीड़ा चंद॥ १॥

पराशरमुनि बोले जब इन्द्र चलेगये तो गोपों ने गोवर्द्धन उठा लेनेके हेतु प्रीतिसहित कृष्णचन्द्रसे कहा हे महाभाग! आपने पर्वत उठाय इन्द्र के कोप से हुई वर्षा से हमलोग व गायों की पालना की परहमलोगों को एक बड़ी शंकाहै कि आप के सब कर्म तो देवताओं के से भी अच्छे हैं पान्तु मैन्त्र्य

गोपोंके साथ करते जो अतिनिन्दित हैं यह क्या बातहै कहिये यमुनाजल के भीतर जाय कालियदमन आपने किया प्रलम्बासुर को मारा गोवर्द्धन पहाड़ उठालिया इन २ बातों से हमलोगों के मनों में बड़ी शंका होती है हम हरिके चरणोंकी सौगन्द खायकर सत्य २ कहते हैं कि आपका ऐसा वीर्य्य देख हम लोग तुमको मनुष्य नहीं मानते फिर व्रज में क्या स्त्री क्या पुरुष क्या लड़के सब में आपकी प्रीतिहै जैसे मनुष्यों को होती पर कर्म तुम्हारे ऐसे हैं जिन्हें देवतालोगभी नहीं करसक्के फिर बाल्यावस्थाहीमें जिसके इतने पराक्रम हों हमलोगों में उसका जन्म किसी भांति शोभित नहीं होता जब ऐसी २ बातों की चिन्तना करते हैं तो शंका होती है इसलिये पूछतेहैं कि तुम देवता हो वा दानव वा यक्ष गन्धर्व कि हमारे बान्धवहो जो कुछहो तिसके नमस्कार करतेहैं यह सुन कृष्णचन्द्र क्षणमात्र चुपरहे फिर कुछ प्रेम कुछ कोपमाने वचन बोले हे गोपो। जो हमारे सम्बन्ध से तुमको लज्जा न आती हो तो हम तुम्हारे प्यारे हैं विचार से तुम लोगों का कौन प्रयोजन है जो हममें तुम्हारी प्रीति हो व हम तुमको प्रिय लगतेहों तो हम में तुमलोग वही प्रीति रक्खो जो भाई बन्धुओं में रखतेहो न हम देवता हैं न गन्धर्व न यक्ष न दानव किन्तु हम तुम्हारे बान्धव उत्पन्नहुये हैं हममें और बुद्धि न मानो यह सुन सब गोप कृष्णचन्द्रको प्रीति कोप सहित जान चुपहो व्रजको चलेगये व कृष्णचन्द्रजीने एक दिन बलरामजी के संग व्रज के बाहर बैठेहुये देखा कि आकाश विमल होरहा है शरदऋतु के चन्द्रमाकी स्वच्छ चन्द्रिका फैल रहीहै कुमुदिनी फूलरहीहै उस की महक से दिशा पूर्णहैं वन में भ्रमर गुञ्जार कर रहे हैं ऐसा समय गोपियों के संग विहार करने की इच्छाकी व मधुरस्वर से वंशीबजाय हरएक गोपी का नाम ले २ बुलाया यह रमणीक दिव्य वंशीका शब्दसुन जहां मनोहर कृष्ण चन्द्र थे सब गोपियां अपना घरबार छोड़ धाय २ आय पहुँचीं कोई २ धीरे २ भी आई कोई गली में मुस्काती व हरिको सुमिरतीहुई पहुँचीं कोई २ हे कृष्ण हे कृष्ण! यह कह लजाय उठीं कोई २ प्रेममग्न हो लज्जारहित प्रभुके पास ही जायखड़ीहुई एक चलने को तैयारहुई अंगनामें उसका श्वसुर खड़ा था उसे देख घरमें न निकल सकी तब वहींसे कृष्णचन्द्रका ध्यान करनेलगी यहां तक कि ध्यान करते २ हरि में लीन होगई क्योंकि हरिके न मिलने से जो

महादुःख उसको हुआ था उस से उस के सब पातक छूटगये एक और गोपी वहां से परब्रह्मस्वरूपी मदनमोहन को सुमिरतीहुई देह छोड़ आप केशवमूर्त्ति में लीनहोगई जब सब गोपियां आयगईं तो शरच्चन्द्र से रमणीक रात्रि देख वृन्दावनविहारी ने चाहा कि इनके संग रासक्रीड़ा करें यही सोच रास करने लगे करते २ कुञ्जन में अन्तर्द्धान होगये तो गोपियां कृष्णचन्द्र का वेष बनाय उनकी कीहुई लीला करनेलगीं जैसे कि एक गोपी बोली देखो हम कैसी सुन्दर कृष्णचन्द्रकी चाल चलतीहैं दूसरी ने कहा हम कृष्णचन्द्र के गीत गाती हैं सुनिये अन्य बोली हे कालिय दुष्ट! खड़ाहो हम कृष्णहैं तुम्हें दमन करते हैं यह कह तालठोंक लड़ने को खड़ीहुई एक बोली हे गोपो! अब न डरो हमने गोवर्द्धन उठा लिया इसके नीचे आजाओ एक बोली अब सब ताल वन के फल खाओ हमने धेनुकासुर को मारडाला इसभांति अनेक कृष्णचन्द्र के किये हुये खेल करतीहुईं गोपियां वृन्दावन में ढूंढ़नेलगीं उन में एक पृथिवी देख कहने लगी गोपियो! देखो यहां की धरणी अतिरमणीक व चटकीली है व इस में कृष्णचन्द्र के चरणारविन्द के ध्वजा पताकादि चिह्न देख परते व उनके साथ कोई अन्य स्त्री भी गई है क्योंकि उस के भी पैर बने हैं इस स्थान पै मदनमोहन ने फूल तोड़े हैं क्योंकि आधे २ चरणों के चिह्न बने हैं देखो यहां बैठ उन्हीं फूलों से उसका शिर गुथा है इसने पूर्व जन्म में हरिकी बड़ी तपस्या की है नहीं तो ऐसा काहे को होता देखो यहां जब हरि ने फूलों से उसके बार गुहे तो उसने मान किया है फिर नन्दनन्दन उसे छोड़ चलेगये हैं देखो कृष्णविहारी यहांसे भागे हैं तो कोई और गोपी उनके संग दौड़ीहुई चली गई है जल्दीके पाव बनेहैं हे सखियो! यहां श्यामसुन्दर उस का हाथ पकरके चले हैं फिर देखो हाथ पकरनेसे उसको मान हुआहै तब मदनमोहन आगे चलेगये हैं वह पीछे २ धीरा २ गईहै देखो यहां फिर विहारीके पकरनेको दौरी है क्योंकि दौरनेके पाव बनेहैं देखो यहां उसके पाव नहीं जान परते जानपरता है कि मोहनने उसे कांधे वा पीठपै चढ़ालियाहै अयि सखियो! चलो अब लौटचलें क्योंकि चन्द्रमा अस्त होने चाहता है यह कह निराशहो सब गोपियां यमुना तीरपै आईं व नन्दनन्दनके चरित्र गानेलगीं कि देखो ढूंगनेहुये मनोहरण कृष्ण चलेआते हैं देखतेही कोई गोपी तो कृष्ण २ यही

वहनेलगी कोई सकुचितहो नयन तोर फिर निज नेत्रभ्रमर से हरि आनन कमल रस पीनेलगी कोई कृष्णरूप निहार नयन मूद मनमें ध्यान करनेलगी देखनेमें जानो योगाभ्यास कररही है कोई २ प्रिय आलापोंमे कोई २ भौंह टेढीकर कोई हाथ पकर कृष्णचन्द्रको शिक्षासी देती हैं कि मोहन भले हमको छोड चलेगयेथे इसभांति कहसुन हरिकेसंग गोपियां विहरनेलगीं हरि एक२ गोपीका हाथ पकर नाचनेलगे फिर शरदऋतुके गीत गानेलगे उससमय कृष्णचन्द्र तो शरदऋतुके चन्द्रमा तथा उसकी किरणोंकी प्रशंसा करतेहुये गातेथे गोपीलोग बार २ कृष्ण २ कहतीहुई गातीथीं नाचनेके समय एक गोपी थकउठी वह श्यामसुन्दरका बाथ पकर लटकरही कोई गोपी गाते २ भाव बतानेके ओदरमें हरिका मुख चूमनेलगी गोपीके कपोलसे चुम्बित हरिके बाहु कणयुक्तहो कैसी शोभाको पहुँचे जैसे हरे नाजके ऊपर मेघकी बूंदियां शोभितहोतीं जबतक हरि राम गीतके तालस्वर मिलाय २ गाते तबतक गोपियां जय कृष्ण २ कहा करतीं जब हरि चलते तो गोपियां आपभी चलतीं जब गावे तो गातीं जब हँसते तो हँसतीं इसभांति सब नन्दकुमारकी सेवा करतीथीं यद्यपि गोपियोंके पति पिता भाइयोंने मनाभी किया पर,रात्रिमें गोपियोंने हरिके संग विहारकिया हरिभी किशोर अवस्थाको तो प्राप्तही थे जैसे २ गोपियों ने चाहा वैसेही वैसे उन्होंने भी विहार किया सो कुछ दोष की बात नहीं गोपियों के पतियों में व मनमें व सब प्राणियों में भगवान् हरि टिके हैं इसीसे सर्वस्वरूपी भगवान् कृष्णचन्द्रके विहारमें दोष नहीं जैसे वायु सबमें व्यापक है वैसे हरि भगवान्हैं जैसे सब प्राणियों में आकाश अग्नि पृथिवी जल वायु हैं तैसे आत्मारूप सर्व्वव्यापी कृष्णचन्द्र हैं ॥

चौदहवां अध्याय ॥

दो० । चौदहयें अध्याय महँ जिमि रासोत्सव माहिं ॥
हरि वृषभासुरको, हन्यो वर्णय सो शक नाहिं ॥ १ ॥

पराशर मुनि बोले कि किसी दिन दोघड़ी रात्रि बीते कृष्णचन्द्र गोपियोंके संग रासक्रीड़ा करते थे कि गोपियोंको भयभीत करताहुआ वृषभासुर आया मानो सजल मेघरूप मढ़ी तीखी सींगें लाली २ आंखें काढ़े सींगें व खूरनसे

पृथिवी खोदे डालताथा बार २ जीभसे ओंठ चाटता मारे क्रोधके पूंछ पटकता बड़ाभारी कांधा त्यागता गोबर व मूत पीठमें लगाये गायोंको उद्वेग कराता हुआ बड़े लम्बे गलेवाला आतेही ऐसे ज़ोरसे डकारा कि गायोंके गर्भ गिर परे उसका डकरना सुन गोप गोपी सब भयवान् कृष्णचन्द्रके शरणहुये श्री हरिनेभी सिंहके समान शब्द किया जिसे सुन हरिके सामने दौरा आयके पेट में सींग लगायही तो दिया कृष्णचन्द्रने देखा कि यह तो मारनेही चाहताहै ऐसे मारनेको चाहा कि हरिने सींगपकर एक लात उसके पेटमें ऐसे ज़ोरसे मारा कि भहराकर गिरनेपै गला पकर ऐसा दबाया जैसे कोई ओदा कपड़ा गारता है फिर सींग उखार गदाभद पीटडाला उसके प्राण निकलगये गोपोंने हरिकी बड़ी स्तुतिकी जैसे जम्भासुरके मारनेपर देवताओंने देवराजकी कीथी ॥

पन्द्रहवां अध्याय ॥

दो॰ पन्द्रहयें अध्याय महँ नारद सों सुनि कंस ॥
अद्‌टा पठली कृष्णकी पठराऽक्रूर मो शंस ॥ १ ॥

पराशर मुनि बोले कि जब वृषभासुर धेनुकासुर प्रलम्बासुर मारेगये गोवर्द्धन उठायागया कालियदमितहो निकाला गया यमलार्ज्जुन वृक्ष उखाड़ेगये पूतना मारीगई लढ़ी उलटाई गई तो नारदजी ने आय कंससे सब कथा कही जिस भांति देवकी के पुत्र कृष्णचन्द्र यशोदा के यहां आये व यशोदा की कन्या देवकी के यहां आई यह सुन कंसने वसुदेव के ऊपर बड़ाही कोप किया व सब यदुवंशियोंके आगे बैठाय वसुदेव को बहुत ऊंची नीची कहीं व सोचने लगा कि जबतक राम कृष्ण दोनों बालक युवावस्थाको न प्राप्तहों तभीतक चाहिये कि उनको मारडालें नहीं तो जब युवावस्था को पहुँचेंगे तो महापराक्रमी होजाने के कारण हमारे मारे न मरेंगे अभी अच्छाहै कि दोनोंको बुलावें और चाणूर मुष्टिक दोनों महापराक्रमी वीरोंसे कुश्ती लेनाय मरवाडालें यहां धनुर्यज्ञकी तैयारीकरें उसीके देखनेके मोदसे व्रजसे उनको बुलाय किसी २ उपाय करें जिनसे वे महादुष्ट मारेजावें जिससे श्वफलक के पुत्र अक्रूर को जिनसे बुलानेके लिये गोकुलको भेजें व महाबली केशी को वृन्दावन भेजें कि वह वहीं उनको मारडाले व उन दोनों वसुदेव के पुत्र बालकों को कुवलयापीड हाथी

चहनेलगी कोई सकुचितहो नयन तरेर फिर निज नेत्रभ्रमर से हरि आनन कमल रस पीनेलगी कोई कृष्णरूप निहार नयन मूंद मनमें ध्यान करनेलगी देखनेमें जानो योगाभ्यास कररही है कोई २ प्रिय आलापोंसे कोई २ भौंह टढ़ीकर कोई हाथ पकर कृष्णचन्द्रको शिक्षासी देती हैं कि मोहन भले हमको छोड़ चलेगयेथे इसभांति कहसुन हरिकेसग गोपिया विहरनेलगीं हरि एक२ गोपीका हाथ पकर नाचनेलगे फिर शरदृऋतुके गीत गानेलगे उससमय कृष्णचन्द्र तो शरदृऋतुके चन्द्रमा तथा उसकी किरणोंकी प्रशंसा करतेहुये गातेथे गोपीलोग बार २ कृष्ण २ कहतीहुई गातीथीं नाचनेके समय एक गोपी थकउठी वह श्यामसुन्दरका पाय पकर लटकरही कोई गोपी माते २ भाव बतानेके ओढ़ंगसे हरिका मुख चूमनेलगी गोपीके कपोलमे चुम्बित हरिके बाहु कणयुक्तहो कैसी शोभाको पहुँचे जैसे हरे नाजके ऊपर मेघकी बूंदिया शोभितहोतीं जबतक हरि राग गीतके तालस्वर मिलाय २ गाते तबतक गोपियां जय कृष्ण २ कहा करतीं जब हरि चलते तो गोपिया आपभी चलतीं जब गावें तो गातीं जब हँसते तो हँसतीं इसभांति सब नन्दकुमारकी सेवा करतीथीं यद्यपि गोपियोंके पति पिता भाइयोंने मनाभी किया पर रात्रिमें गोपियोंने हरिके सग विहारकिया हरिभी किशोर अवस्थाको तो प्राप्तही थे जैसे २ गोपियों ने चाहा वैसेही वैसे उन्होंने भी विहार किया सो कुछ दोषकी बात नहीं गोपियोंके पतियों में व मनमें व सब प्राणियों में भगवान् हरि टिके हैं इसीसे सर्व्वेश्वररूपी भगवान् कृष्णचन्द्रके विहारमें दोष नहीं जैसे वायु सबमें व्यापक है तैसे हरि भगवान्हैं जैसे सब प्राणियों में आकाश अग्नि पृथिवी जल वायु हैं तैसे आत्मारूप सर्व्वव्यापी कृष्णचन्द्र हैं॥

चौदहवां अध्याय॥

दो॰ चौदहयें अध्याय महँ जिमि रासोत्सव माहिं॥
हरि वृषभासुरको हन्यो यशोप्र सो शक नाहिं॥ १॥

पराशर मुनि बोले कि किसी दिन दोघड़ी रात्रि बीते कृष्णचन्द्र गोपियोंके सग रासक्रीड़ा करतेथे कि गोपियोंको भयभीत करताहुआ वृषभासुर आया मानो सजल मेघहै पड़ी तीखी सींगें लाली २ आंखें काढ़े सींगें व खुरनसे

पृथिवी खोदे डालताथा बार २ जीभसे ओठ चाटता मारे क्रोधके पूछ पटकता बड़ाभारी कांधा कांपता गोबर व मूत पीछेसे लगाये गायोंको उद्वेग कराता हुआ बड़े लम्बे गलेवाला आनेही ऐसे ज़ोरसे डकारा कि गायोंके गर्भ गिर पड़े उसका डकरना सुन गोप गोपी सब भयवान् कृष्णचन्द्रके शरणहुये श्री हरिनेभी सिंहके समान शब्द किया जिसे सुन हरिके सामने दौरा आयके पेट में सींग लगायही तो दिया कृष्णचन्द्रने देखा कि यह तो मारनेही चाहताहै जैसे मारनेको चाहा कि हरिने सींगेंपकर एक लात उसके पटमें ऐसे ज़ोरसे मारा कि महराराय गिरनेपै गला पकर ऐसा दबाया जैसे कोई ओदा कपड़ा गारता है फिर सींग उखार मराभर पीटडाला उसके प्राण निकलगये गोपोंने हरिकी बड़ी स्तुतिकी जैसे जम्भासुरके मारनेपर देवताओंने देवराजकी कीथी ॥

पन्द्रहवां अध्याय ॥

दो॰ पन्द्रहयें अध्याय महँ नारद सों सुनि कंस ॥
अदला बदली कृष्णकी पठयोअक्रूर सो ग्रास ॥ १ ॥

पराशर मुनि बोले कि जब वृषभासुर धेनुकासुर प्रलम्बासुर मारगये गोवर्द्धन उठायागया कालियदमितहो निकाला गया यमलार्जुन वृक्ष उखाड़गये पूतना मारीगई लढ़ी उलटाई गई तो नारदजी ने आय कंससे सब कथा कही जिस भांति देवकी के पुत्र कृष्णचन्द्र यशोदा केयहां आये व यशोदा की कन्या देवकी के यहां आई यह सुन कंसने वसुदेव के ऊपर बड़ाही कोप किया व सब यदुवंशियोंके आगे बैठाय वसुदेव को बहुत ऊंची नीची कही य सोचने लगा कि जबतक राम कृष्ण दोनों बालक युवावस्थाको न प्राप्तहों तभीतक चाहिये कि उनको मारडालें नहीं तो जब युवावस्था को पहुंचेंगे तो महापराक्रमी होजाने के कारण हमारे मारे न मरेंगे अभी अच्छाहै कि दोनोंको बुलावें और चाणूर मुष्टिक दोनों महापराक्रमी वीरोंसे कुश्ती लेवाय मरवाडालें यहां धनुर्यज्ञकी तैयारीकर उसीके देखनेके आदरसे व्रजसे उनको बुलावें फिर २ उपाय करें जिनसे वे महादुष्ट मारेजावें जिससे श्वफल्क के पुत्र अक्रूर को तिनके बुलानेके लिये गोकुलको भेजें व महाबली केशी को वृन्दावन भेजें कि वह वहीं उनको मारडारे व उन दोनों वसुदेव के पुत्र बलदेव औ कृष्णको [illegible]

यहा आतेही आते मारडालेगा पराशरमुनि बोले इस भांति दुष्टात्मा कंसने अपने मनमें ठान राम कृष्णके मारने के विषय में अक्रूर को बुलाय बोला हे अक्रूर! हमारी प्रसन्नताके लिये यह बात मानिये कि अभी रथपै चढ़ नन्द गोकुलको जाइये क्योंकि वहा विष्णु के अंशसे उत्पन्न वसुदेव के दो पुत्र हमारे मारनेके लिये बढ़तेहैं सो चतुर्दशी के दिन हमारे यहा धनुर्य्यज्ञहै उसके देखने के लिये दोनोंको बुलायलावो कि यहा आय कुश्तीलड़ैं चाणूर व मुष्टिक दो हमारे यहा बड़े कुश्तीबाज हैं तिनसे वे दोनोंलड़ें कि सबलोग देखें वा उन दुष्ट वसुदेवके पुत्रोंको कुवलयापीड़ हाथी जो बड़ा मदान्धहै द्वारपै पहुँचतेही पहुँचते मारडालेगा तिन दोनोंको मार वसुदेव व दुष्ट नन्द गोप व अपने पिता उग्रसेन को भी मारडालूगा तिसके पीछे दुष्टगोपों का सब धन लेलूंगा क्योंकि वे मेरावध चाहतेहैं तिसके पीछे आपको छोड़ इन सब दुष्ट यादवों के मारनेका भी उपाय करूंगा तो यह अयादव राज्य निष्कंटक होजायगा बस तुम्हारी सहायता से हम भोगेंगे इसलिये हे वीर! आप शीघ्रही चलेजाइये जैसा कहने से गोपलोग दूध दही घी हमारे लिये भेंटलावें वैसा उनसे बतलाना पराशरमुनि बोले कि जब परम भागवत अक्रूरजी से कसने ऐसा कहा तो वे बहुत प्रसन्नहुये कि प्रात काल जानो इसी बहाने से हरिके दर्शन करेंगे यह विचार कहा बहुत अच्छा हम जाते हैं बस रथपै चढ़ मथुरापुरी से बहिराय खड़ेहुये ॥

सोरहवां अध्याय ॥

दो॰ सोरहवें अध्याय महँ हरि केशी बध कीन ॥
अन्य भावि संग्राम सब नारद मुनि कहिदीन ॥ १ ॥

पराशरमुनि बोले कसके दूतका भेजाहुआ महापराक्रमी केशीनाम दैत्य कृष्णचन्द्रके मारनेकी इच्छासे वृन्दावनमें आया आतेही खुरोंसे पृथिवी खोदने अपने कंधे परके बार हिलाय २ बादरों में धक्का मारने व अपनी अतिवेगचाल से सूर्य्य चन्द्रमा का मार्ग रोकनेलगा व अपने शब्दसे गोप गोपियों के हृदय कपाने तिसका हिनहिना सुन अतिभयभीत हो गोपी गोप सब गोविन्द के शरणागत हुये उनका त्राहि त्राहि वचन सुन दीनबन्धु श्रीहरि मेघवत्गम्भीर वाणी बोले हे गोपो! इस अश्वरूप दैत्य का हिनहिना सुन नाहक डरते हो

पर क्या करो गोपजाति तो ठेंठीहो तुम लोगोंने वीरता का लोपही करदिया इस दुष्टके केवल हिनहिनाने से क्याहै दैत्योंके समान बल तो इसके हई नहीं केवल चिघरनाही चिघरना है यह गोपोंसे कह केशीसे बोले हे दैत्य दुष्ट! यहां आव हम कृष्णहैं जैसे पूषाके दांत वीरभद्र ने दक्षयज्ञ में हँसनेपर तोड़डाले थे वैसेही मुखसे तेरे सब दांत गिराये देतेहैं यह कह तालठोंक गोविन्द केशीकी ओर चले केशी भी मुँह बाय हरिकी ओर दौरा वह मुँह बाये तो थाही मधुसूदनजी ने अपना हाथ उसके मुखमें डाल दिया हाथ में ऐसी उष्णताकी कि उससे केशीके सब दांत आगे गिरपरे व हाथ पेटतक पहुँचाय ऐसा मोटाकिया कि दुष्टदैत्य की श्वास बन्दहोगई जैसे मरण समय में कफकी वृद्धिसे कण्ठावरोध होजाता अब उसका मुख बहुतही फैलहोगया आंखें निकलआईं भूमिपर पैर फटकनेलगा मुँहसे फेना व रुधिर डाकने लीद व पेशाब करनेलगा अब कुछ यत्न उसका किया नहीं होता बस मुँह फैलगया बीचोबीच से शरीर फटगया जैसे बिजुली गिरनेसे वृक्ष फटजाताहै अब केशीके दो पैर आधी पूंछ आधीपीठ एक कान नेत्र नासिका अलगहोगये दोखण्ड केशीकेहो शोभित होनेलगे केशी को मार आनन्दित गोपोंके साथ हँसते हुये तिसी स्थानपर नन्दनन्दन खड़ेहैं गोप व गोपियां दुष्ट केशीके मारेजाने से श्रीहरिकी स्तुतिकरनेलगे जिससमय केशीको प्रभुने माराथा उससमय नारदमुनि बादलों में लुकेहुये आकाश से देखतेथे मारनेही के साथ वाह २ करने व कहनेलगे कृष्णचन्द्र अच्छा किया इस देवताओंके वैरी दुष्ट केशी को शीघ्रही मारडाला हम तो कभी मनुष्य और घोड़े की लड़ाई नहीं देखी थी उसी के देखने के लिये स्वर्गलोक से यहां आये हे आपने अपने अवतार में जो २ कर्म किये उनके देखने से मन बहुत प्रसन्न हुआ इस घोड़े से सब देवसहित इन्द्रभी डराकरते थे बार २ यह हिनहिनाय अपने कन्धे के बार हिलाय स्वर्ग की ओर मुँह उठाताथा तब २ इन्द्रादि कांपने लगते थे हे जनार्दन! जिससे आपने ऐसेही इस दुराचारी केशी को मारा है इससे आजसे एक तुम्हारा केशवनाम हुआ अब तुम्हारी स्वस्ति हो हम जाते हैं अब परसों आपका कंसके साथ युद्ध देखने आवेंगे जब उग्रसेन के पुत्र दुष्टात्मा कंसको सहित परिवार मारडालोगे तो पृथ्वीका भार उतारोगे इस संग्रामों में अनेकों राजाओं को महार करोगे इन सब युद्धों को आप करेंगे

व हमें देखेंगे सो अब हम जाते हैं आपने देवताओं का कार्य खूबकिया व आगे बहुत करोगे तुम्हारा कल्याणहो जाते हैं पराशरमुनि बोले कि ॥

चौ० जब नारद गे अपने धामा। गोपन सहित कृष्ण अभिरामा ॥
गोकुल गये गोपिजन नयना। देखन पात्र कहत मृदु बयना ॥ १ ॥

सत्रहवां अध्याय ॥

दो० सत्रहयें अध्याय महँ करत मनोरथ पुञ्ज ॥
गे गोकुल अक्रूर हरि बल देख्यो धृतगुञ्ज ॥ १ ॥

पराशरमुनि बोले अक्रूर जी कंसके दियेहुये रथपैचढ़ मथुरा से निकले कृष्ण चन्द्रके दर्शन की लालसा से नन्द गोकुल को चले व मनमें विचारनेलगे कि हमारे समान कोई धन्य नहीं काहेसे कि आज विष्णु के अंशावतार श्याम सुन्दर का मुखारविन्द अवलोकन करेंगे आज हमारा जन्म सफल हुआ व आजकी रात्रि का प्रभात सुप्रभात हुआ क्योंकि प्रफुल्लितकमलदलनयन विष्णुका मुखारविन्द देखेंगे काहेसे वेदलिखित अच्छे २ मृगगण हमारे दाहिने हाथ चलते हैं ताहेसे अवश्य श्रीहरि के दर्शनहोंगे जिस ईश्वरको यज्ञोंमें लोग यज्ञपुरुष पुरुषोत्तम कहकर पूजते हैं तिस जगत्पति को हम देखेंगे जिस अनन्त भगवान् के लिये १०० अश्वमेध यज्ञकर इन्द्र अमर राजता को पहुँचे तिस आदि पुरुष को देखेंगे जिस हरिको ब्रह्मा इन्द्र रुद्र अश्विनीकुमार वसु आदित्य पव-नादि देवगण नहीं जानते सो हरि आज प्रत्यक्षमें हमारे आगे प्राप्त होंगे जो परमात्मा सर्वज्ञ सर्वात्मा सब प्राणियों में टिका नाशरहित सर्वव्यापी है वह आज हमारे साथ प्रत्यक्ष में वार्त्तालाप करेगा जो हरि मत्स्य कूर्म वराह हयग्रीव नृसिंहादि रूप धारणकर जगत्में विचरा सो आज हमसे भलीभांति बो-लेगा इस समय जो जगत्स्वामी और ॥ सबके अन्तःकरण का जाननेवाला देवताओं के कार्य्यकेलिये मनुष्यता को धारण किये है नहीं तो नाशरहित है सो वह हमको मिलेगा जो अनन्त भगवान् शेषस्वरूपी अपने शिरसे धरणी धारण किये है सो संसार के हेतु अवतार ले हमसे अक्रूर अक्रूर कह बोलेगा जिसकी मायासे मोहित संसार पिता पुत्र सुहृद भाई माता चतुर्वें फँसाहै व इस मायाक पार जाने में समर्थ नहीं तिसके नमस्कार है जिस ईश्वरको हृदय

में बैठाने से पुरुष अविद्या को तरिजाता है तिन विद्यास्वरूपी के नमस्कार जिसको यज्ञ करनेवाले लोग यज्ञपुरुष भगवद्धाम वासुदेव वेदान्तवादी विष्णु कहते हैं तिसके नमस्कार करते हैं जैसे तिस जगद्धाम परमेश्वर में यह सब स्थावर जंगम समाय टिकाहै तिस सत्यता से वह परमात्मा मेरे ऊपर कृपाकटाक्ष करे जिसके स्मरण से पुरुष सब कल्याणों का पात्र होताहै तिस अज अनादि नित्य विद्यमान हरिके शरणको जाताहूं पराशरमुनि बोले कि इसभांति चिन्तना करतेहुये भक्ति से काया नवाये अक्रूर कुछ दिनरहे गोकुल में पहुँचे व उन्होंने भगवान् कृष्णचन्द्र को गायों के दुहाने में लगेहुये बछड़ों के मध्य में प्रफुल्लित नील कमलदल समान छवि देखा जो मूर्ति साफ कमलदल समान लोचन श्रीवत्सचिह्न चिह्नित वक्षस्थल प्रलम्बबाहु उच्चनासिका वक्षःस्थल सहित विलास हँसतेहुये मुखको धारणकिये ऊँचे ऊँचे व लाले कर चरण के नख विराजमान पदों से धरणी में धीरे धीरे चलतेहुये पीताम्बर ओढ़े बनके फूलोंकी माला पहिने सचन्द्र नीलपर्वत के समान दीप्ति उज्ज्वल कमलों से शिरोभूषण बनाये हरिको व तिसके पीछेही हंस कुन्द चन्द्र समान गोररंग बैंजनी वस्त्र ओढ़े ४ हाथ ऊँची मूर्ति ऊँचे बाहु व कन्धे प्रफुल्लित कमलसम मुख मानो मेघमाला से घेराहुआ कैलासपर्वत ऐसे बलभद्रजी को भी देखा ऐसे दोनों भाइयों को देख अक्रूरजी बहुतही प्रसन्नहुये व मनमें कहनेलगे कि निश्चय निश्चय भगवान् वासुदेव का अंश यही है जिसकी ये दो मूर्तियां होगई हैं इन जगद्धाता के दर्शन से मेरे नयनों की सफलता निश्चय हुई भला मेरा यह अंग भगवान् की अंगसंगता को पहुँचेगा वा नहीं भला ये मदनमोहन मूर्ति मेरी पीठपै अपना करकमल रक्खेंगे वा नहीं कि जिनकी अंगुलियों के स्पर्श से सम्पूर्ण पापसमूह नाश होजाते व नाशरहित सिद्धि होतीहै व जिस करकमल से चलायेहुये अग्नि बिजुली रविकी किरणों की मालाओं से अतिकराल सुदर्शन चक्रसे मारेहुये दैत्यों की स्त्रियों के नेत्रों का अंजन धोय गयाहै व जिसमें जलदानकर राजाबलि ने पृथिवीतल में दिव्यदिव्य अति रमणीक भोग विलास पाया व इन्द्रने जिसमें यज्ञफल समर्पण करके मन्वन्तर पर्यन्त शङ्कारहित देवाधिपत्य पाया भला ये कृष्णचन्द्र मुझ दुष्टको कंस का भेजाहुआ जान दोषी तो न समझैं कि इसने बुरा होगा ऐसे दोषी

हुआ तो मुझको धिक्कारहै क्योंकि जिसका महात्मा साधुओं से निरादर हुआ उसके जन्म को धिक् है पर मैं यह ठीक ठीक जानताहूं कि ज्ञानात्मा अमल सत्त्वगुणराशि न्योपाहित सदा देदीप्यमान सर्व्वज्ञ सर्व्वदर्शी अन्तर्य्यामी भगवान् कृष्णचन्द्र न जानतेहों ऐसा कौन पदार्थ संसारमें है क्योंकि वे सबके हृदय में टिके हैं क्या मेरे मनका हाल न जानतेहोंगे जानतेहोंगे फिर कौन गकाम्हि॥

चौ० तासों हम विनम्रचित होई। सर्वेश्वर ईश्वर नहिं गोई॥
पुरुषोत्तम अवतार करारी। हरिके शरण होय भयहारी॥ १॥
आदि मध्य अवसान विहीना। जो हरि विष्णु जाहि मुनिचीना॥
तासु अंश अवतार अनूपा। शरण जाव यह योग्य निरूपा॥ २॥

अठारहवां अध्याय॥

दो० अठ्ठरहें अध्याय महँ राम कृष्णको देखि॥
वार्त्तालाप अक्रूर से मथुरा चलन विशेखि॥ १॥
गोपिन केर विलाप अक्रूर स्तुति जिमि कीन॥
जिमि नन्दादिक कंस उपहार दीन कहिदीन॥ २॥

पराशरमुनि बोले कि इस भांति चिन्तना करतेहुये अक्रूरजी रथसे उतर मैं अक्रूरहूं यह कह कृष्णचन्द्रके चरणारविन्दों में प्रणाम किया श्रीहरिने भी अक्रूरको ध्वज वज्र कमलचिह्न चिह्नित अपने करकमल से स्पर्शकरि प्रीतिपूर्वक खींच अच्छी भांति भेंटा बलदेव व कृष्णचन्द्रने भी उनको प्रणाम किया हाथ पकड़ अपने मंदिरको लाये वहां आय जब भोजनादि करचुके तो अक्रूरजी राम कृष्ण से कहनेलगे जैसे २ दुष्ट कंसने वसुदेवजीका अपकार किया जैसे देवकी का निरादर किया जैसे वह दुष्ट उग्रसेनसे बर्त्तावबर्त्तता जिसके लिये कंस ने गोकुलको भेजाथा सब विस्तारपूर्वक दोनों जनोंसे कहा सब सुन मधुसूदन भगवान् बोले हे अक्रूरजी! यह सब हमने जाना इस विषयमें जो उपाय करना है अवश्य करेंगे पर यह अवश्य जानो कंस माराही पराहै हम व बलरामजी दोनों तुम्हारे साथ प्रात काल मथुराको चलेंगे व गोपवृद्धभी कंसके लिये दूध दही घीआदि भेंटकी वस्तु बहुत लेचलेंगे यह रात्रि बिताइये चिन्ता न कीजिये तीन रात्रियों के बीतनेमें उसके अनुयायी समेत कंसको मारडालेंगे पराशरमुनि

थोने इतनाकह गोपालों से कहनादिया प्रातःकाल दूध दही आदिले मथुराको चलना है हमभी कंसकी धनुर्य्यज्ञ देखने जायँगे यह कह आप व बलराम व अक्रूर सबजन नंदमंदिर में सोरहे प्रात काल होतेही कृष्णचन्द्र व बलरामजी दोनों अक्रूर के साथ मथुरापुरी के जानेको तैयारहुये यह देख गोपियां के कृष्ण गिरपरे ऊंची श्वास लेतीहुई परस्पर बोलीं मथुराको जाय कृष्णचन्द्र फिर गोकुलको काहेको आवेंगे क्योंकि वहां शहर की स्त्रियोंकी मीठीबोली कानोंसे पानकरेंगे जब नगर की स्त्रियों के विलासी वचन इनके कानों में परेंगे तो फिर गवईगाँव की स्त्रिया गोपियों की बात इनके चित्त में काहेको आवेगी ब्रह्मा बड़ा दुष्टात्मा है जो सब गोकुल के सारांश कृष्णचन्द्र को हरेलिये जाता व गोपियों को मारेजाता नगर की स्त्रियों के हावभावादियुक्त वाक्य होते चाल उनकी विलास मे ललित कटाक्ष जानो देखनेवाले को तुरन्तही मोहित कर लेते फिर वे लोग चाहे नगरवाले मनुष्योंको न मोहित करसकें पर गवईं गाँव वालों को तो तुरत मोहित करलेतीं फिर ये हरिभी तो गवईं के मनुष्य ठहरे जब उन नागरियों के विलास बेरी में फँसेंगे तो हमलोगों के निकट किस युक्ति से आवेंगे देखो अतिक्रूर इस अक्रूर के बहँकाने मे मदनमोहन रथ पै चढ़ मथुरा को जाते हैं क्या यह निर्दयी अनुरागी मनुष्यों का अनुराग नहीं जानता जो हमलोगों के नेत्रों के सुखदेनेवाले मनोहरण प्यारे को लिये जाताहै अयि सखियो! ये निर्दयी कृष्ण बलराम सहित रथ पै चढ़े चलेही जाते हैं इनके रोकने में शीघ्रताकरो जब चलेही जायँगे तब उपाय करना व्यर्थ है यदि यह कहती हो कि माता पिता सासु श्वशुरादि श्रेष्ठ जनोंके आगे ऐसी बातें न कहो सो ये श्रेष्ठ लोग कृष्णविरहानल से भस्म हम लोगों को क्या करेंगे देखिये तो नन्दगोपादि सब गोप चलनेही की तैयारी करते हैं गोविन्दके लौटाने की युक्ति कोई भी तो नहीं करता यह रात्रि मथुरावासिनी स्त्रियों के लिये सुप्रभाता होगी क्योंकि उनके नेत्र सोई मानो भ्रमरकी पांति है सो उन्हीं से कृष्णचन्द्र का मुखारविन्द पीवेंगी सखियो वे जन धन्य हैं जो बिना रोकटोक जातेहुये कृष्ण के साथ जाय गली में मार्ग के श्रमके बिंदुओं सहित नन्दलाल का मुख कमल देखेंगे मथुरानगरी के लोगों को आज गोविंदके अंग देख देख महा-उत्साह होगा नहीं जानतीं कि आजकी रात्रि मथुरावासियोंने कौनसा अच्छा

स्वप्न देखाहै जिसके प्रभाव से दिनको मधु मूर्ति मोहनप्यारेको देखेंगी हाय विधाता बड़ानिर्दयी है गोपियोंको महानिविरूप मदनमोहनको देखाय अब गोपियों के नयनहीं खोदे लिये जाताहै देखो चले जातेहुये हरि का अनुराग अब हमलोगों में शिथिल होगया चटक नहीं रहा नहीं तो लौट के निहारते तो उनमें हमींलोगों का अनुराग है सो क्यों न हो जब कङ्कणादिकों को भी उनका अनुरागहै कि हम लोगों के हाथसे गिरे पड़ते हैं हा देव! बड़ेकष्टकी बात है देखो तो यह क्रूर चित्त अक्रूर शीघ्रताके साथ रथ हाँकताहै भला ऐसी दुःखिनी स्त्रियों को देख किसको दया न आवेगी अयि सखियो ! देखो यह कृष्णचन्द्रके रथके पहियों की धूरिहै जिसने हरिको दूरकरदिया है अब वहभी नहीं देखपरती इस भांति देखतेही देखते राम के साथ केशवमूर्तिने व्रजभूमि छोड़दी जाते २ मध्याह्न समय यमुना के किनारे पै रथारूढ़ बलराम कृष्णचन्द्र व अक्रूर पहुँचे अक्रूरने कहा आप दोनों जन तबतक रथपै बैठे रहैं जब तक हम यमुना से स्नान सन्ध्या वन्दनादि न कर आवें दोनों भाइयों ने कहा अच्छा जाइये यह सुन अक्रूरजी यमुनाजल में स्नानकर फिर बुड़कीमार परब्रह्म परमात्माका ध्यान करने लगे तो प्रथम सहस्र फण सहित कुन्द समान गौरशरीर कमल नयन बलभद्र जी को देखा यहभी कि उनके चारोंओर वासुकी रम्भादि नागराज स्तुति कर रहे हैं वनमाला धारण किये बैंजनी वस्त्र ओढ़े सुन्दर फूलों का शिरोभूषण बनाये अतिमनोहर कुण्डल पहिने जलके भीतर बैठे हैं व तिसके कोरामें घनश्याम स्वरूप बड़े २ अरुणनेत्रधारी चतुर्भुजी मूर्ति सकलअंगउदार पीताम्बर पहिने चित्रविचित्र फूलोंकी माला पहिने मानो बिजली सहित सजल मेघरूप श्रीवत्स छाती में विराजमान श्मनिरमणीक बजुल्ला व मुकुट धारणकिये कमल के फूलों से शिरोभूषण बनाये सनन्द नन्दादि पापरहित मुनि स्तुति कर रहे हैं ऐसे श्रीकृष्णचन्द्र को देखकर चिन्तना करने लगे कि बलदेव व कृष्णको तो हम रथपै बैठा आये थे वे इस जलमें कैसे आये यह पूछने पर हुये कि कृष्णचन्द्र ने वचन रोक दिया बोलही न सके तब जलसे बाहर शिर उठाय देखा तो राम कृष्ण दोनों मनुष्य देह धारण किये जैसे अक्रूर बैठा गये थे वैसेही रथपै बैठे हैं तब फिर जलमें बुड़कीमारी देखा कि जैसी मूर्ति पहिले देखपरी थी वैसेही हैं केवल इतना अन्तर है कि गन्धर्व सिद्ध चारण स्तुति कर रहे हैं इस भांति

दो चार धार जलके भीतर व रथपै बैठे देख जाना कि ये स्वयम्ब्रह्म परमात्मा पुराणपुरुष हैं इसलिये स्तुति करने लगे ॥

चौ० मात्रा रूप अचिन्त्यक महिमा। परमात्मा व्यापी गुण रहिमा ॥
एक अनेक रूप तुम स्वामी। सब अंग जग के अन्तरयामी ॥ १ ॥
सत्त्वभूत हवि रूप प्रकृतिपर। पर विज्ञान पार करुणाकर ॥
करहु दया निज जन पहिंचानी। मैं मतिमन्द कथनि विधिजानी ॥ २ ॥
भूतात्मा आत्मा परमात्मा। तुम प्रधान इन्द्रिय सुखदात्मा ॥
पञ्च प्रकार तुमहिं प्रभु नीके। करहुँ प्रणाम भलीविधि टीके ॥ ३ ॥
होहु प्रसन्न सर्व्व सर्व्वेश्वर। सब मय सबसेरहित महेश्वर ॥
ब्रह्म विष्णु शिव आदिक नामा। हैं तव नाथ न मृषा कलामा ॥ ४ ॥
तव स्वरूप प्रभु नहिं कथनीया। नाहिं प्रयोजन पुनि बदनीया ॥
नहिं तव नाम कथनकोउ लायक। कृपा करहु सुखसम्पतिदायक ॥ ५ ॥
नाम जाति गुण रूप बखाना। नहिं जहँ सोइ ब्रह्म भगवाना ॥
तुम अविकारि सनातन स्वामी। क्यहिविधितवगुणकहहुँअनामी ६ ॥
बिन कल्पना अर्थ नहिं होई। तासों तोहिं कहैं सबकोई ॥
अच्युत कृष्ण अनन्त मुरारी। दैत्य विदारण सुर सुखकारी ॥ ७ ॥
सकल अर्थ तुम महँ गुनि भेदा। अखिल जगततुमइमिकहवेदा ॥
विश्व स्वरूप विकार विहीना। तुमसे भाव वस्तु नहिं चीना ॥ ८ ॥
तुम विधिशिवरविविष्णु विधाता। सुरपति अनल वरुणयमत्राता ॥
धनद आदि सब नाम तुम्हारे। भिन्न अर्थ लहि अस ससारे ॥ ९ ॥
किरण रूप जग तुम उपजावत। पालन हरत भेद अस गावत ॥
विधि प्रपञ्च यह जग तव रूपा। मदिति रूप जो पर अनुरूपा ॥ १० ॥
अक्षर ज्ञान रूप गुण खानी। तुम प्रभु सकल भांति सम्मानी ॥
करत प्रणाम पाणि युग जोरी। कृपाकरहु मम मतिअतिभोरी ॥ ११ ॥
वासुदेव सङ्कर्षण नामा। प्रद्युम्नानिरुद्ध गुण धामा ॥
करहुँ प्रणाम बहोरि बहोरी। पालहु नाथ कुमति हम मोरी ॥ १२ ॥

उन्नीसवां अध्याय ॥

दो० उनिसयें अध्याय महँ लखि अद्भुत अक्रूर ॥
मथुरा चलि माली रजक तारे हरि भरिपूर ॥ १ ॥

पराशरमुनि बोले इसभांति जल के भीतर कृष्णचन्द्र की स्तुतिकर अक्रूरजी ने मानसी पुष्प धूपसे पूजा की अन्य विषयता छोड़ कृष्णचन्द्रही में मन लगाय ब्रह्मरूप मान बड़ी बेरलग ध्यान करते रहे अपना को कृतार्थमान यमुना जल से निकल रथके लगे आये राम कृष्णको देखा तो वैसेही बैठे हैं जैसे पूर्व बैठे थे अक्रूरको विस्मितचित्त देख श्रीहरि मुसुकाय बोले हे अक्रूर! तुमने यमुना जल में निश्चय है कि कुछ आश्चर्य देखा है क्योंकि तुम्हारे नयनोंसे विदित होता है कि कुछ अद्भुत पदार्थ देखा है यह सुन अक्रूर बोले हे भगवन्! जो कुछ आश्चर्य हमने देखा सो उसकी मूर्ति तो यहा है इसलिये यहा भी देखते हैं आश्चर्य देखने में कौन आश्चर्य है क्योंकि यह आश्चर्यरूप संसार जिस महात्मा का बनाया हुआ है तिस आश्चर्य्य में निपुण आपके तो सगही में हैं सो इससे क्याहै अब मथुराको चलते हैं कंस दुष्टसे डरते हैं विलम्ब बहुत हुआ पराधीन के जन्मको धिक्कार क्याकरें शीघ्र चलिये यह कह घोड़ों को हांका सन्ध्यासमय अक्रूर जाय मथुरामें पहुँचे मथुरापुरी देख बलदेव व कृष्णचन्द्रसे अक्रूर बोले अब तुम दोनोंजन पैदर चले जाओ हम रथपै बैठे हैं पर देखिये वसुदेव के घरको न जाइयेगा क्योंकि तुम्हारेही दोनों जनों के कारण कंस उनको दुःख देता है यह सुन कृष्णचन्द्र तो राजाके द्वारपर को जो सड़क लगीथी सहित बलराम उस पैचले व अक्रूररथपै चढ़े हुये अन्य मार्गसे मथुरामें पैठे जिस जिस गली में दोनों भाई जाते थे स्त्रिया देख देख अतिहर्षित होतीथीं जाते जाते देखा तो एक धोबी राजाके कपड़े धोये लिये जाताथा दोनों भाइयोंने कहा और अच्छे २ कपड़े हमकोभीदे यह कंस राजाका मदोन्मत्त धोबी यहसुन कृष्ण रामको बहुत २ दुर्वाद कहने लगा तब कृष्णचन्द्र ने कूद एक लात उस दुष्ट धोबी के गले पै मारा कि उसका शिर टूट भूमि में गिर पड़ा तब परमानन्दितहो कृष्णचन्द्रने उनमें से अच्छे २ पीले वस्त्र पहिन लिये व बलराम ने बैंजनीरग के दोनों भाई जाते २ एक मालीके द्वारपै पहुँचे मालीने देख चिन्तना की कि ये अतिसमर्थ

वदन कौनहैं व कहासे आतेहैं पीताम्बर नीलाम्बर धारण किये दोनों जनोंको देख उसने अपने मनमें तर्कणाकी कि निश्चय ये देवताहैं किसी कारण पृथिवी में आयेहैं माली यह तर्कणा करताही था कि दोनों भाइयोंने हँसके कहा अच्छे अच्छे पुष्पों की माला हमेंभी देते यह सुननेही उसने भूमि छू बड़ी नम्रताके साथ झुकके प्रणाम किया व कहा आप दोनोंजने प्रसन्नतापूर्वक मेरे घर आये मैं आज धन्य व कृतार्थ हुआ पुष्पों से अवश्य पूजा करूंगा इतना कह बहुत अच्छे२ फूल उनके गुण व सुगन्धादि बताता हुआ देने लगा बार२ प्रणाम करता हुआ माली सुन्दर २ सुगन्धित फूल देतारहा श्रीकृष्णचन्द्रजी ने भी प्रसन्नहो उसे वरदान दिया कि हे मालाकार! जाव तुमको लक्ष्मी कभी न छोड़ेगी व बलहानि धनहानि भी न कभी होगी व जबतक सूर्य इस संसारमें उदयहुआ करेंगे तबतक तेरी संतति बनी रहेगी जबतक तू जीवेगा हमारे प्रसाद से नानाप्रकार के भोग भोगेगा अतमें हमारा स्मरणपाय दिव्यलोक पावेगा सर्व्वकाल तेरा मन धर्म्महीमें लगारहेगा तेरीसंततिमें जिनका जन्महोगा सबकी आयुष बड़ीहोगी महामारी आदि उपद्रवोंसे तुम्हारी संततिमें कोई न मरेगा पराशरमुनि बोले यह कह बलदेवजीके साथ मालाकारके घरसे आगेको चले उसने चलतेसमयभी बड़ी पूजाकी ॥

बीसवां अध्याय ॥

दो० कहबिसयें अध्यायमहँ कुबरी गंध प्रदान ॥
धनुषभंग करिवध चाणुर मुष्टिक कंसमरान ॥ १ ॥
पुत्रपिता स्तुति बहुत समझावन सन्निधान ॥
सुनहु सुजन मनलायकै हरियश करत बखान ॥ २ ॥

पराशरमुनिबोले कि मालाकारके घरसेचल दोनोंभाई राजमार्ग में चले जातेथे कि चंदन अरगजादि सुगन्धित लगानेकी वस्तुलिये चली जातीहुई कुबरी देखपरी मदनमोहन मन्दमुसुकाय तिससे बोले हेकमलनयने! यह अनुलेपन किसकाहै जो तुम लियेजातीहो सत्य २ कहना मोहनके दर्शनमात्रसे मोहित सकामहो प्रीति सहित हरिसे बोली हे कान्त! क्या नहीं जानते कि कंसकी आज्ञासे अनुलेपन मैं लियेजातीहूं व अनेकवक्रा मेरानामहै मुझे मोह

अन्य किसीका पीसाहुआ अनुलेपन न सकोगे प्रिय नहींहै इससे उनकी प्रसन्नताके लिये मैं जायलगाया करतीहूं यहसुन श्रीहरि बोले हे रुचिराननी पहराजाके योग्य अनुलेपन हम दोनों के लायक थोड़ा देदीजिये यहसुन उसने सहित आदर कहा लीजिये यह कह जितना २ जो इनदोनों भाइयोंके योग्य था दे दिया उसके लगाने से दोनोंभाई ऐसे शोभित हुये जैसे इन्द्रधनुष सहित श्वेत व श्याम जलधर शोभित होते हैं तदनन्तर कृष्णचन्द्र ने अपनी दो अँगुलिया उलटीके उसकी ठाढ़ीके नीचेलगाई एकहाथपीछे पैरपै पैरधर ऊपरको उठाया कि कुबरीके सब अंग सीधेहोगये जब टेढ़ाई जातीरही तो स्त्रियोंमें श्रेष्ठ होगई व मन्दमुसुकाय विलास ललित वचन नन्दनन्दन के वस्त्र पकर बोली अय श्यामसुन्दर! मेरे घरको चलिये कृष्णचन्द्र ने कहा अच्छा तुम्हारे घरको आवेंगे यहकह उसे विदाकिया व बलभद्र की ओर देख हँसे वहांसे चल चित्र विचित्र माला व अनुलेपन धारण किये धनुषके स्थानमें पहुँचे रखवारोंसे पूंछ धनुषउठाय हरिने कानतक उसकी रोदा खींची खींचतेही धनुष टूटगया उसके शब्दसे दिशा पूरित होगई व मथुरामें झनझनाहट भरही उठी धनुर्भंग होनेपै रखवारों ने कुछ मारो २ पीटो २ बका दोनोंभाइयोंने उनको समाप्तके आगेकी गलीली यहां कंसने भी अक्रूरके आने व धनुषके भंगके वृत्त सुन चाणूरादिकनाम दैत्यवीरों को बुलायकहा दो गोपाल लड़के आयेहैं उन्हीं से हमारा मरण होनेवालाहै इसलिये चाहियें कि हमारे सामने कुस्तीलड़ उन्हें मारडालो जब दोनोंको युद्धमें मारडालोगे तो तुम लोगोंके ऊपर हम बहुत प्रसन्न होंगे जो २ वाञ्छित मांगोगे सब देंगे इसमें कुछ संदेह नहीं कुस्तीमें न्याय अन्याय चाहै जैसे बने उनको मारही डालना जब वे मरजायँगे तो यह तुम्हारा राज्य निष्कण्टक होजायगा योद्धोंसे ऐसा कह कुवलयापीड़ हाथीपरवाले हस्तिपालको बुलाया व कहा तुम रंगभूमि के द्वारे कुवलयापीड़ हाथी मतवाला रखना जैसे वहां लड़ने के लिये वे गोपालन करनेवाले लड़के आवें तुरंत उससे उनको मरवाडालना इन सबको ऐसी आज्ञादे सूर्योदय होतेहीहोते कंस राजमाला पैबैठा अन्यमंचानोंपै सब राजाके नोकर चाकर व मथुरानिवासी बैठे यहां रंगभूमि रखानेके लिये अन्य बहुतसे सिपाही भी नियत किये जिस मचानपै कंसबैठा वह सबसे ऊंचाथा इनके विशेष रनिवासोंके बैठनेकेलिये व वेश्याओं

के अर्थ अन्यनगरी की स्त्रियोंके लिये अलग मञ्चान बनाये गये थे उनपर आय आय सबलोग यथोचित बैठे नन्दादि गोप एक मञ्चपै बैठे अक्रूर व वसुदेव मञ्चों के निकट बैठे नगरकी स्त्रियों के मध्य में पुत्र देखने की इच्छा से देवकीजी भी जाय बैठीं जब चारों ओर से बाजन बाजनेलगे व चाणूर मुष्टिक ताल देने लगे तो लोगोंने हाहाकार मचाया उसीसमय कृष्णचन्द्र व बलदेवजी द्वारपै खड़ेहुये कुवलयापीड़ हाथीको मार जिसे कि हथिवालने इनके मारने को दौरायाथा उसका एक २ दानकान्धेपै धरे मुखपै पसीना व हाथी के रुधिरकी छिंटिया विराजमान हाथियों के झुंडमें सिंहके समानआय रंगभूमि में पहुंचे सब लोगोंने इन किशोर अवस्थाके दोनों भाइयों को देख हाहाकार मचाया कि हाय इन्हीं बालकोंसे चाणूर मुष्टिक महापराक्रमियों की कुस्ती होगी लोग यह भी परस्पर कहनेलगे ये वही कृष्णचन्द्रहैं जिन्होंने निशाचरी पूतनामारी व जिन्होंने लढ़ी उलटादी यमलार्जुन वृक्ष गिराये का लियके मस्तकपै नृत्य नाच किया सात रात्रितक गोवर्द्धन पर्वत उठाया अरिष्टा- सुर धेनुकासुर केशी आदि जिन्होंने मारे वही कृष्णचन्द्र हैं खूब देख लेवो ये इनके बड़े भाई बलदेवजी हैं प्रलम्बासुर को इन्होंने माराहै इन दोनों जनों को पुराणवक्ता लोग कहते हैं कि दुःखसागरमें बूड़तेहुये यदुवंशियोंको उबारेंगे ये भगवान् विष्णुके अंशमे भूतलमें अवतरेहैं निश्चयहै कि पृथिवीका भार उता- रेंगे इसीभांति जबतक कहनेलगे तो देवकीका हृदय जरनेलगा भारे स्नेहके स्तनोंसे दुग्ध बहआया वसुदेवजी भी पुत्रका मुखदेख बड़े आनन्दको पहुंचे यद्यपि वृद्धापनेको भी प्राप्त होगयेथे पर कृष्णचन्द्रको देखतेही जानों फिर युवा- वस्थाको प्राप्त होगये सब राजाकी रानियां व मथुराकी स्त्रियां बड़े प्रेमसे देखने लगीं व परस्पर कहनेलगीं कि हे सखियो! देखो तो अति अरुणनयन कृष्णच- न्द्रका मुखारविन्द जिसमें हाथीके मारे युद्ध करनेसे पसीनाके बुंद व रक्तकी बूंदिया शोभितहैं प्रफुल्लित शरद्ऋतु के कमल की शोभाको दूर किये देता है अच्छीभांति मदनमोहनका भुज देखो हे भामिनि! श्रीवत्स चिह्न सहित छाती व शत्रुओंके नाशनेवाले भुज तो देखो अयि मानि! इन बलभद्रजीका मुखार- विन्द क्यों नहीं देखती जो दुग्ध व चन्द्रमासे भी गौर है बलराम यही हैं जो नीलाम्बर ओढ़ेहैं अयि मानि! चाणूर व मुष्टिकका इधर हुआ कूदना देखि मद २

मुसकाते हुये बलदेवका मुखकमल देखो तो सखियो देखो तो मुष्टिक के साथ लड़नेके लिये कृष्णचन्द्र खड़े हैं क्या इससमय कोई वृद्ध लोग लड़नेवाले नहीं जो लड़के के सङ्ग लड़ाई होतीहै कहा अभी तनुक २ युवावस्था को प्राप्त सुकुमाराङ्ग मदनमोहन कहा वज्रसे भी कठिनाङ्ग यह मुष्टिक महासुर ये दोनों तो अति ललित मूर्त्ति सुकुमाराङ्ग लड़ैंगे व उधर चाणूर मुष्टिकादि अति कठोर दैत्य यह बड़े अन्यायकी बातहै इस लड़ाईके देखनेवालोंको बड़ा पाप लगेगा जो बलवान् व निर्बल की कुस्ती देखते हैं पराशरमुनि बोले कि इस रीति से स्त्रियां आपसमें कहतीही रहीं कि भटपट कृष्णचन्द्र लड़ने के लिये फांड़बांध बांधनेलगे फिर बलभद्रजीने इधर उधर कूद अपने वस्त्रबांधे उस समय जो पृथिवी मारे धमकके फट नहीं गई सो बड़ाही आश्चर्य्य है चाणूरसे कृष्णचन्द्र से युद्ध होनेलगा बलरामसे मुष्टिकसे ये दोनों दैत्य लड़नेमें बड़े कुशलथे अब चाणूर कूद फाद करनेलगा इधर उधर मूका चलाने चरणसे चरण बमाने लातोंसे लात लड़ाने मूड़से मूड़ गिरानेलगा इस कूदाफांदी खींचाखींचीमें चाणूर काबल कमहोने व कृष्णचन्द्रका बढ़नेलगा जब कंसने देखा कि चाणूरका बल घटताही जाताहै व कृष्णका बढ़ताही तो उसने कुस्ती बन्दहोनेकी आज्ञादी बाजन सब बन्द करादिये तब देवतालोग आय आकाशमें अनेक तरह के बाजन बजानेलगे व कहनेलगे कि हे गोविन्द! आपकी विजय हो इस दुष्ट चाणूर को जल्द मारिये इस बोलीको सबोंने सुना बड़ीदेर लग कृष्णचन्द्र चाणूरके साथ खेलते कूदते रहे अब मारने के विचार से उठाय खूबजोर से घुमाया व आकाश को फेंकदिया वहासे पृथिवीमें गिरा गिरतेही प्राण निकलगये व उसका अङ्ग रत्ती २ फटगया जिससे रङ्गभूमि में सब रुधिरही रुधिर देखाई देनेलगा जितने समय तक कृष्णचन्द्र चाणूरसे लड़तेरहे उतने समयतक बलदेव जी भी मुष्टिक से लड़ते हुये अनेक भांतिकी युद्धक्रिया दिखातेरहे चाणूर के मरतेही उन्हों ने मुष्टिक को भी ऐसा पटकनादिया कि तुरन्त प्राण निकल गये कृष्णचन्द्र ने तबतक तोशालनाम मल्लराज को बायें हाथसे मारा कि उसके भी प्राण जातेरहे जब चाणूर मुष्टिक तोशाल महापराक्रमी तीनों योधा मारेगये तो बाकी सबके सब इधर उधर भाग खड़ेहुये बलदेवजी व कृष्णचन्द्र अपनी २ हमजोलीवाले गोपोंके संग लपटने भपटनेलगे तब कंस अतीव कोपमें आ अपने नौकर

चाकरों से कहनेलगा इन दुष्ट गोपालों को मारपीट हमारी रङ्गभूमिसे बाहर निकालो व नन्द पापीके लोहेकी बेगी डालदेओ वसुदेवको भी ऐसा कठोर दण्डदो कि जिसे वृद्धमनुष्य न सहसके व जो गोपलोग इस कृष्णके संग इधर उधर कूदरहे हैं तिनकी गायें व जो कुछ और धनहो सब छीनलो ऐसी बातें बकतेहुये कंसको श्रीकृष्णचन्द्रने कूदजाय बड़ी शीघ्रताके साथ मञ्चही पै पकरा व घुमायके पृथिवीमें गिरायदिया ऊपरसे आपभी उसीकेऊपर कूदपरे अशेष संसार के भार से गरु श्रीहरिके कूदनेसे बेचारा कंस मृतक होगया मरेहुये कंसकी देहपकर मधुसूदनने रंगभूमिमें इधरसे उधर कईबार घसीटी आनि बलकेमाय तिसकी लोथ खींचनेसे रुधिर जलभरी मानों बड़ीभारी खाईहोगई कंसके मारनेके पीछे सुनामानाम उसका भाई बड़ाकोपकिये आया उसे बलदेवजीने पकर मरोरडाला इन सबके मारेजानेपै तहां हाहाकारमचा क्योंकि इतनाबड़ा राजाकंस इस निरादर के साथ मारागया इसकेपीछे कृष्णचन्द्र व बलदेवजीने वसुदेव देवकीके चरण कमलछुये वसुदेव व देवकी जन्म समयके कहेहुये वचनों की सुधिकैके कृष्णचन्द्रको उठाय स्तुति करनेलगे ॥

चौ० होहु प्रसन्न देव भयहारी। देव प्रवर सुर नर सुखकारी ॥
जिमिप्रसन्नहै महिमरनासा। तिमि हरु मोहमोरलखिदासा ॥ १ ॥
मम आराधन सों भगवाना। जन्म लियो ममसदन प्रधाना ॥
यासों मोर कीन कुल पावन। सकलपाप दुखदुर्गति नशावन ॥ २ ॥
तुम सबकेउर मांझ निवासी। सबमहँ सदा रहत अविनासी ॥
भूत भविष्य सकल तुमहींसे। होत नाथ नहिं अनत कहींसे ॥ ३ ॥
सर्व्व देवमय यागन माहीं। पूजे जात तुमहि शकनाहीं ॥
तुमहिं यज्ञ अरु कारन तासू। परमेश्वर पसेश प्रकासू ॥ ४ ॥
तुममहँजोममनाविलिजारी। निन्दासहित होत इमिकारी ॥
ममदयिता देवकिमहँ जननू। सबहु तोर यह कथन विटयनू ॥ ५ ॥
कहु सब भूत कारितुमनाथा। आदि अन्तगतिकारनसनाथा ॥
कहँममनुजकेरि यहजीहा। कहत तुम्हें सुत यहप रिहहा ॥ ६ ॥
जगन्नाथ जासों जग येहू। तुमसन होत न संशय नेहू ॥
कौनिउपल न बिन तबमाया। नाम तुम्हार रोग पदुगाई ॥ ७ ॥

अगजगसकलविश्वजग्यहिमाहीं। सदा रहत कछु संशय नाहीं॥
सो मनुष्य सों जन्मिहि कैसे। मनुज सदन महँ सोइहितैसे॥ ८॥

हे परमेश्वर! सो आप मेरेऊपर प्रसन्नहूजिये व संसारकी रक्षा कीजिये तुममेरे पुत्र नहींहो क्योंकि विष्णु के अंशसे अवतरेहो ब्रह्मासेले च्यूंटी पर्यंत सब आपहीका स्वरूपहै इसलिये मुझको मोहित न कीजिये हे परमेश्वर! प्रथम तुम्हारी मायासे मोहित हो मैंनेजाना कि तुम मेरे पुत्रहो इसलिये कंससे भयभीत हो तुम्हें ब्रजमें पठेआया वहां जाय तुम बड़े बढ़ाये इन्हीं इन्हीं बातोंसे मेरीममता बढ़ी जो कर्म रुद्र पवन इन्द्रादि देवताओं से सिद्ध नहीं होसक्ते वे आपने किये हमलोगोंने देखा तुम विष्णुहो संसार के उपकारके लिये यहां अवतरेहो मेरा मोहगया अब न मोहित करना॥

इक्कीसवां अध्याय॥

दो० इक्किसयें अध्याय महँ उग्रसेन अभिषेक॥
सभासुधर्मागमनजिमि भयोकहयकरिटेक॥ १॥
जिमिसांदीपनिसों पढ़ी विद्याअरुसुतताासु॥
आनिदई गुरुदक्षिणा ताकर करब प्रकासु॥ २॥

पराशरमुनि बोले देवकी व वसुदेव दोनोंको भगवान् के अद्भुतकर्म देख अतिविज्ञान समुत्पन्नहुआ व यदुवंशियोंको भी ज्ञान होआया था इन सबके मोहनके लिये भगवान् कृष्णचन्द्रने फिर अपनी वैष्णवीमाया फैलाय बोले हे अम्ब! हे तात! बहुतदिनोंमे मुझको व बलदेव को कंससे भयभीत आपके दर्शनकी अभिलाषाथी अब आय दर्शनपाये इतना समय व्यर्थही बीतगया क्योंकि जो समय बिना मातापिताकी पूजाकरने से बीतता यह साधुओं के मनसे आयुमें व्यर्थही जाताहै हे तात! गुरु देवता ब्राह्मण व माता पिता इनका पूजन करते हुये प्राणियों का जन्म सफल होना है पिताजी! सो कुछ हमसे नहीं बनपरा आप क्षमा कीजिये क्योंकि कंसके वीर्य्य व प्रताप के मारे हम तुम दोनों परवश्ये न तुम वहां जासके न हम यहां आसके पराशरमुनि बोले यह कह दोनोंने यदुवंशियों मे जो वृद्धलोग थे यथाक्रम उनके प्रणाम किया फिर पुरवासियों के मनोरथ पूर्ण किये तदनन्तर कंसकी स्त्री व माता

चारोंओर से मरेहुये महीतल में परे कंसको घेर रोनेलगीं उनकी ऐसी दशा देख जगमोहन भगवान् भी बहुत पछिताये व नानाभांति उनको समझाने लगे उस समय कमलनयन के नयनों से अश्रुपात भी होनेलगे सबको सम झाय बुझाय उग्रसेन को बँधोई से छोड़ाय पुत्रकंस के मरनेपर उन्हीं को वहां का राजा बनाय जब श्रीहरि ने राज्य पै बैठादिया तो कंसादि जितने मारेगये थे उन सबकी प्रेतक्रिया उन्होंने करी कराई जब सबकी मृतक क्रिया उग्रसेन करचुके और फिर सिंहासनपै बैठे तो कृष्णचन्द्र बोले हे नानाजी ! जो २ कार्य करनाहो निशङ्क आज्ञा देतेरहियेगा यद्यपि ययातिके शापसे यह वंश राज्यके योग्य नहीं तथापि हम ऐसे सेवकको पाय देवताओंको भी आज्ञा देतेरहिये फिर इन पृथिवीके क्षुद्रराजाओंकी क्या गणना यह कह हरि ने पवनको स्मरणकिया स्मरण करतेही वे आन पहुंचे कहा हे पवन ! तुम इन्द्रके निकट जाय हमारा सँदेश कहो कि अहङ्कार करने का कुछ प्रयोजन नहीं अपनी सुधर्मा सभा उग्रसेन को दें यह सभा यदुवंशियों के साथ राजा उग्रसेनही के भोग करने के लायक है पराशरमुनि बोले यह सुन पवनने जाय कृष्णचन्द्र का सन्देश इन्द्र से कहा सुनतेही उन्होंने सभा पवनके हवालेकी पवन ने सब पदार्थ भरीहुई सभालाय मथुरामें स्थापित करदिया कृष्णचन्द्र की कृपासे सब यदुवंशी उसके सुखको भोगने लगे यद्यपि सम्पूर्ण विज्ञानों को जानते थे व सब ज्ञानमय थे तथापि गुरु शिष्योंका कर्म प्रख्यात करानेके लिये कृष्णचन्द्र बलदेव दोनोंभाई अवन्तिकापुरी के वासी सांदीपनिनाम गुरुसे जो काशीमें रहते थे विद्या पढ़ने को गये वहां जैसे गुरुके घरमें गुरुकी सेवाकरते हुये नीचवत् रहना चाहिये तैसे रहने व पढ़नेलगे जिसमें उनको देव और लोगभी बैठादी फिर सहित रहस्य धनुर्विद्या वेद पुराणादि १४ विद्याओं की ६४ कला ६४ दिनमें पढ़लीं यह मानों अचम्भासा होगया सांदीपनिजी ने इनके अमानुष कर्म देख अपने मनमें जाना कि ये दोनों चन्द्रमा सूर्य हैं सब विद्यापढ़ जब पैंसठवें दिन घर को चलनेलगे तो दोनों भाइयोंने कहा गुरुजी जो चाहिये गुरुदक्षिणा मांग लीजिये सांदीपनिजी ने इनके अद्भुत कर्म जान प्रभासक्षेत्र में समुद्रकी लहरों से डूब उनका पुत्र मराथा उसीको गुरुदक्षिणा में मांगा सो सुन हरिदोनों भाई समुद्रके पास गये उसनेकहा मैंने तुम्हारे गुरुका पुत्र नहीं लिया है शत्रुघ्न !

अगजगसकलनिसउपाहिमाहीं। सदा रहत कछु संशयनाहीं॥
सो मनुष्य सों जन्मिहि कैसे। मनुज सदन महँ सोइहितैसे॥ ८॥
हे परमेश्वर! सो आप मेरेऊपर प्रसन्नहूजिये व संसारकी रक्षा कीजिये तुममेरे पुत्र नहींहो क्योंकि विष्णु के अंशसे अवतरेहो ब्रह्मासेले च्यूंटी पर्यंत मनु आ पहीका स्वरूपहै इसलिये मुझको मोहित न कीजिये हे परमेश्वर! परन्तु तु म्हारी मायासे मोहित हो मैंनेजाना कि तुम मेरे पुत्रहो इसलिये कंससे भयभीत हो तुम्हें मजमें पठेआया वहां जाय तुम बड़े बढ़ाये इन्हीं इन्हीं बातोंसे मेरीमगत वही जो कर्म रुद्र पवन इन्द्रादि देवताओं से सिद्ध नहीं होसके वे आपने किये हमलोगोंने देखा तुम विष्णुहो संसार के उपकारके लिये यहां अवतरेहो मेग मोहगया अब न मोहित करना॥

इक्कीसवां अध्याय॥

दो० इक्किसयें अध्याय महँ उग्रसेन अभिषेक॥
सभासुधर्मागमनजिमि भयोकृष्णकरिटेक॥ १॥
जिमिसांदीपनिसों पढ़ी विद्यासबसुततासु॥
आनिदई गुरुदक्षिणा ताकर करय प्रकासु॥ २॥

पराशरमुनि बोले देवकी व वसुदेव दोनोंको भगवान् के अद्भुतकर्म देख अतिविज्ञान समुत्पन्नहुआ व यदुवंशियोंको भी ज्ञान होआया था इन सबके मोहनके लिये भगवान् कृष्णचन्द्रने फिर अपनी वैष्णवीमाया फैलाय बोले हे अम्ब! हे तात! बहुतदिनोंमें मुझको व बलदेव को कंससे भयभीत आपके द र्शनकी अभिलाषाथी अब आय दर्शनपाये इतना समय व्यर्थही बीतगया क्योंकि जो समय बिना माता पिताकी पूजाकरने से बीतता वह साधुओं के मतमें आ युर्मे व्यर्थही जाताहै हे तात! गुरु देवता ब्राह्मण व माता पिता इनका पूजन करते हुये प्राणियों का जन्म सफल होता है पिताजी! सो कुछ हमसे नहीं बनपरा आप क्षमा कीजिये क्योंकि कंसके वीर्य व प्रताप के मारे हम तुम दोनों परवशथे न तुम वहां जासके न हम यहां आसके पराशरमुनि बोले यह कह दोनोंने यदुवंशियों में जो वृद्धलोग थे यथाक्रम उनके प्रणाम किया फिर पुरवासियों के मनोरथ पूर्ण किये तदनन्तर कंसकी स्त्री व माता

चारोंओर से मरेहुये महीतल में परे कंसको घेर रोनेलगीं उनकी ऐसी दशा देख जगमोहन भगवान् भी बहुत पछिताये व नानाभांति उनको समझाने लगे उस समय कमलनयन के नयनों से अश्रुपात भी होनेलगे सबको समझाय बुझाय उग्रसेन को बँधोई से छोड़ाय पुत्रकंस के मरनेपर उन्हीं को वहां का राजा बनाय जब श्रीहरि ने राज्य पै बैठादिया तो कंसादि जितने मारेगये थे उन सबकी प्रेतक्रिया उन्होंने करी कराई जब सबकी मृतक क्रिया उग्रसेन करचुके और फिर सिंहासनपै बैठे तो कृष्णचन्द्र बोले हे नानाजी ! जो २ कार्य करनाहो निशङ्क आज्ञा देतेरहियेगा यद्यपि ययातिके शापसे यह वंश राज्यके योग्य नहीं तथापि हम ऐसे सेवकको पाय देवताओंको भी आज्ञा देतेरहिये फिर इन पृथिवीके क्षुद्रराजाओंकी क्या गणना यह कह हरि ने पवनको स्मरणकिया स्मरण करतेही वे आन पहुंचे कहा हे पवन ! तुम इन्द्रके निकट जाय हमारा सँदेश कहो कि अहङ्कार करने का कुछ प्रयोजन नहीं अपनी सुधर्मा सभा उग्रसेन को दें यह सभा यदुवंशियों के साथ राजा उग्रसेनही के भोग करने के लायक है पराशरमुनि बोले यह सुन पवनने जाय कृष्णचन्द्र का सन्देश इन्द्र से कहा सुनतेही उन्होंने सभा पवनके हवालेकी पवन ने सब पदार्थ भरीहुई सभालाय मथुरामें स्थापित करदिया कृष्णचन्द्र की कृपासे सब यदुवंशी उसके सुखको भोगने लगे यद्यपि सम्पूर्ण विज्ञानों को जानते थे व सब ज्ञानमय थे तथापि गुरु शिष्योंका कर्म प्रख्यात करानेके लिये कृष्णचन्द्र बलदेव दोनोंभाई अवन्तिकापुरी के वासी सांदीपनिनाम गुरुसे जो काशीमें रहते थे विद्या पढ़ने को गये वहां जैसे गुरुके घरमें गुरुकी सेवाकरते हुये नीचवत् रहना चाहिये तैसे रहने व पढ़नेलगे जिसमें उनको देख और लोगभी वैसाही करें सहित रहस्य धनुर्विद्या वेद पुराणादि १४ विद्याओं की ६४ कला ६४ दिनमें पढ़लीं यह मानों अचम्भासा होगया सांदीपनिजी ने इनके अमानुष कर्म देख अपने मनमें जाना कि ये दोनों चन्द्रमा सूर्य्य हैं सब विद्यापढ़ जब पैंसठवें दिन घर को चलनेलगे तो दोनों भाइयोंने कहा गुरुजी जो चाहिये गुरुदक्षिणा मांगलीजिये सांदीपनिजी ने इनके अमानुष कर्म जान प्रभासक्षेत्र में समुद्रकी लहरों से डूब उनका पुत्र मराथा उसीको गुरुदक्षिणा में मांगा सो सुन हरिदोनों भाई समुद्रके पास गये उसनेकहा मैंने तुम्हारे गुरुका पुत्र नहीं लिया है शत्रुसूदन !

हमारेही जलके भीतर पञ्चजन नाम दैत्य शंखका रूप धारण किये रहताहै उस बालक को उसने लियाहै यह सुन भगवान् ने जलके भीतरजाय पञ्चजन को मार उसके अंगसे उत्पन्न शंखलिया जिस शंख के नादसे दैत्योंकी तो बलहानि होती व देवोंका तेज बढ़ता तथा अधर्म की क्षयहोती गुरुपुत्र पंचजनके निकट भी न मिला तो हरि यमपुरी को गये वहां पहुँचतेही वही पाञ्चजन्य शंख श्री हरिने बजाया बलदेवजी ने यमराज को जीता दोनों भाइयोंने यमयातना में परेहुये पुत्रको लाय गुरुके निवेदन किया गुरुसे विदाहो उग्रसेन की पालीहुई व प्रसन्न पुरुष स्त्रियोंसे भरीपुरी मथुराको आये॥

बाईसवां अध्याय॥

दो॰ बाइसयें अध्याय महँ जरासन्ध की हारि॥
हरिसे अरु बलदेव से हुई कहत निरधारि॥ १॥

पराशरमुनि बोले हे मैत्रेय! जरासन्ध की कन्या अस्ति व प्राप्ति कंसकी स्त्रियां थीं जब कंस मारागया व उसकी मृतकक्रिया होगई तब उन स्त्रियों ने अपने पतिका मरण अपने पितासे कहा उसे सुन बड़ाकोपके जरासन्ध कृष्ण चन्द्रके मारनेके लिये मथुरामें चढ़आया व आनेही २३ अक्षौहिणी सेनासे चारों ओरसे पुरीघेरलिया तब थोड़ेसे साथीले राम व कृष्णचन्द्र लड़ने के लिये आये और लड़नेलगे व चाहा कि पुराने अस्त्र शस्त्र सुदर्शन हलादि से लड़ें यह विचारतेही आकाश से शार्ङ्गनाम धनुष व अक्षय तरकस कौमोदकी गदा बलभद्रजी के लिये हल सुनन्दनाम मूशल व चक्र ये सब अस्त्र शस्त्रादि आये इन को ले हरि व बलदेवजीने सब सैन्यको पराजित किया जरासन्ध भी हारा उसे वहीं छोड़ अपनी पुरीको आये जाहमे जीनाही जरासन्ध भी अपने देशको चलागया ताहि मे कृष्णचन्द्र ने उसे निर्जित नहीं समझा कुछ दिनके पीछे फिर उतनीही सेनाले जरासन्ध आया फिर राम कृष्ण दोनों भाइयोंने हरादिया इसी भांति राम कृष्णादि यदुवंशियों से १८ बार उसने युद्धकिया व सब युद्धों में हारा यद्यपि उसके संग सेना बहुत भारीरही व यदुवंशियों के संग बहुत कम थाई थोड़ीभी सेना यदुवंशियों की जरासन्धकी बड़ी सेनासे न हारी बरन उसीको हराया यह कृष्णचन्द्र के सहाय होनेका प्रभावहै और जो नानाभांति

के आयुध शत्रुओं के ऊपर हरि चलाते थे वह मनुष्य भाव को प्राप्तहोनेसे उस की लीला करते हैं नहीं तो जो हरि मनही मे संसार को उपजाते नाशते हैं उनको शत्रुओं के नाशने के लिये बड़े विस्तारित उद्यमका कौन प्रयोजन है पर नहीं मनुष्यों के सिखाने के लिये सब धर्म्म करतेरहे जिनको देख देख अन्य लोग भी करें इसीसे बलवान् शत्रुके संग मेल करते थे निर्बल से युद्ध कहीं कहीं शत्रुको समझा बुझादेते कहीं कहीं शत्रुओं में फोरतोर करादेते कहीं कहीं दण्डभी देते कभी कभी कहीं कहीं से भागते भी थे इस रीति से मनुष्यभाव की लीला परमेश्वर कृष्णचन्द करते थे ॥

तेईसवां अध्याय ॥

दो॰ तेइसयें अध्याय महँ कालयवनकर नाश ॥
देखतही मुचुकुन्द के भयो कहत सुखरास ॥ १ ॥
कृष्णविनय मुचुकुन्दकृत अरु द्वारका बसाव ॥
सकल कहत सुनियो सुजन करिकै बहुत बनाव ॥ २ ॥

पराशरमुनि बोले गर्गवंशी एक ब्राह्मण कहीं यदुबंशियों के यहां किसी का भेजाहुआ बरदेखी आया वह कुछ टेढ़ामेढ़ाथा उसे देख यदुबंशियों के लड़के हँसी से कहनेलगे यह हमलोगों का स्याल है व नपुंसक है यहसुन उसने बड़ा कोपकर दक्षिण में जाय शिवजीकी तपस्याकी उस तपस्या से वह ऐसा पुत्र चाहताथा जिसे देख यदुबंशी भागें लड़ने से कभी न जीतें तब उसने १२ वर्षतक तपस्या की तो महादेवजीने प्रसन्नहो बरदान दिया ये ब्राह्मण देव वहां से आतेथे गली मे एक यवनों के राजाके पुत्र न था उसने इनको टिकाय भोजन कराया व रात्रि में अपनी स्त्रीको जिसकी सेवा करने व पुत्र उत्पन्न करने के लिये भेजा द्विजराज के संयोग से गर्भाधान हुआ व समय पर शिव के बरदान के प्रभाव से महाप्रतापी पुत्र हुआ उसका उसने कालयवन नाम धराया कुछ दिनके पीछे कालयवन को राज्यदे वह यवनेश्वर वनको चलागया कालयवन महाप्रतापी लड़ने के लिये सब से बलवान् राजा पूंछा करता नारद जीने बताया आजकल यदुबंशियों से बलवान् कोई नहीं इस लिये उनसे लड़ो यह सुन उसने बड़ी भारी सेना एकत्र की जहांसे चला तहां कोई गिरा था

उसे मारता पीटता यादवों के ऊपर क्रोध किये हुआ मथुरापुरीको चला उसका आना सुन कृष्णचन्द्रने विचार किया कि यदि हमसे लड़ाई करते हैं तो यदुवंशियोंकी शक्ति कम होजायगी जरासन्ध आनेवालाहै उससे हार जायँगे जो कहीं जरासन्धही के साथ लड़ें तो वहतो निर्बल भी है यह यवन तो बड़ा पराक्रमीहै सबको मारडालेगा इस रीति से यदुवंशियों को दोनों ओर से कष्ट होनेवाला है तिससे हम ऐसा किला अति दुर्गम बनावेंगे जिसमें से चाहें छिपा लड़ाकरें फिर वृष्णिश्रेष्ठवीरों को क्या कहना जिससे कभी हम कोई उपाल लायेहों या खिचड़ी गड़बड़हो वा सोतेहों वा कहीं अन्यत्र गये तो उस समयमें यादवोंका निरादर कोई दुष्ट शत्रु न कर सके यह शोच कृष्णचन्द्र ने १२ योजन स्थान समुद्र के भीतर उसीसे मांगा उसमें द्वारका नामपुरी बनाई जिसमें बड़ी २ फुलवारियां बड़े २ मार्ग सैकड़ों तालाब बड़ी २ शहरदीवारें विस्तारथी मानो दूसरी इन्द्रकी अमरावतीपुरीहै मथुरावासियोंको अपने प्रभाव से दोघड़ीमें वहां पहुंचाय बसाय दिया तबतक कालयवन भी मथुराके निकट आया उधरसे आपभी आनपहुंचे पुरी के बाहर कालयवन परम कृष्णचन्द्र बिना आयुधही पैदल उसीकी तरफ होनिकसे उसने इन्हें देखा व जाना कि वासुदेव यही हैं इस लिये इनके पीछे दौड़ा जिन कृष्णचन्द्रको योगी लोग अपने चित्तोंसे नहींपाते तिनके पीछे दौड़ाजाताहै इतनेहिमें भागतेहीभागते कृष्णचन्द्र भी जाते उस गुहामें पहुंचे जिसमें राजामुचुकुन्द सोते थे हरितो आगे को चले गये वहभी दुष्टाधम पीछे से पहुंचा देखातो एक मनुष्य सोताहै उसने जाना वासुदेवही है एकलात मारा जैसे उन्होंने क्रोधसे नेत्र खोले उनसे जो अग्नि निकली उससे तुरन्त भस्म होगया ये राजा मुचुकुन्द जी देवासुर संग्राम में देवोंकी ओर से लड़ेथे दैत्योंकी पराजय व देवोंकी विजयहुई तो इन्होंने बहुतदिनों से न सोने के कारण देवोंसे सोनाही वरदान मांगा देवोंने कहा अच्छा शयन कीजिये सोते में जो कोई तुम्हें जगावेगा तुम्हारे नेत्रों की आग से तुरन्त भस्म होजावेगा जब कालयवन इसरीति से भस्महुआ तो कृष्णचन्द्र को देख राजाने पूछा आप कौनहैं इतने कहा जानता तो हूं चन्द्रवंश में उत्पन्न हुये हैं उनमें भी यदुवंशी वसुदेवके पुत्र मुचुकुन्दजी इन्द्र गर्गजी के वचनों का स्मरण कर श्रीहरिके चरणोंपर सोने इनने जाना आप भगवान्

विष्णुके अंशहो हम से आगे वृद्ध गर्गमुनिने कहा था कि अट्ठाइसमें द्वापर के अन्त में यदुवंश में हरिका जन्म होगा सोई आप प्राप्त हुयेहो इसमें सन्देह नहीं मनुष्यों का तुम से बड़ा उपकार होगा हम तुम्हारा तेज नहीं सहसक्के तैसेही सजल मेघ गर्जन समान तुम्हारा बोल भी नहीं सहसक्के व तुम्हारे पाओं का आघातभी धरणी नहीं सहती देवासुर संग्राम में बड़े २ तेजस्वी दैत्य दानव ये कोई भी हमारा तेज नहीं सहसके पर हम आप का तेज नहीं सहसक्के संसार में पतित जीवको एक तुम्हीं शरण हो हे प्रपन्नार्त्तिहर! प्रसन्न हो मेरे अशुभ दूर करिये॥

चौ० जलधि शैल वन नदी तड़ागा। मही गगन जल पवन विभागा॥
अग्नि बुद्धि मन प्राण परेशा। सकल वस्तु तुम सदा रमेशा॥ १॥
शब्द रूप रस आदि विहीना। अजर अमर क्षयरहित अदीना॥
जनन मरणगत ब्रह्म स्वरूपा। तुम हरि यह हम इमि अनुरूपा॥ २॥
अमर पितर किन्नर गन्धर्वा। यक्ष सिद्ध नर पशु खगसर्वा॥
उरग महीरुह मृग गण जेते। भूत भविष्य तुमहिं सो तेते॥ ३॥
मूर्त्तिमान बिन मूर्त्ति चराचर। स्थूल सूक्ष्म तर सकल नरावर॥
हौ तुम जग कारक भगवाना। तुम सन भिन्न न तनिक बखाना॥ ४॥

हे भगवन्! तीनों तापों से तपाया हुआ मैं इस संसारचक्र में फिरताहू कल्याण कहीं नहीं दिखाई देता जो दुःखहै मृगतृष्णा जलकी आशा से उन को सुखही मानता चला आया पर उनसे दुःखही मिलता रहा राज्य पृथिवी बल कोश मित्र लोग पुत्र गण स्त्री सेवक ये सब कहनेही कहने को हैं कोई भी काम नहीं आते इन सब को सुखके लिये मैंने पालन पोषण किया परन्तु अन्त में जो देखा तो सब सन्तापही के देनेवाले हुये मैं देवलोक तक भी गया व जब चाहू चला जाऊ परन्तु देवता लोग भी मुझी से सहायता चाहते हैं फिर देवलोक को जाना निरन्तर सुखदायक कैसे जगत् के उत्पन्न पालन नाश करनेवाले आपकी आराधना बिना निरन्तर निर्वृत्ति पन्थ कैसे पायसक्ता तुम्हारी माया से मूढ़ मानस लोग जन्म मरण जरा आदि तापों को पाय यमराज का मुख देखतेहैं वहां नानाप्रकार के दुःख भोगते हैं यहां आपके शरणागत नहीं होते कि इन सब से छूटी पाय जाव मैं आपकी माया से मोहितहो रात्रि दिन

उसे मारता पीटता यादवों के ऊपर क्रोध किये हुआ मथुरापुरीको चला उसका आना सुन कृष्णचन्द्रने विचार किया कि यदि इससे लड़ाई करते हैं तो यदुवंशियोंकी शक्ति कम होजायगी जरासन्ध आनेवालाहै उससे हार जायँगे जो कहें जरासन्धही के साथ लड़ें तो वहतो निर्बल भी है यह यवन तो बड़ा पराक्रमीहै सबको मारहीडालेगा इस रीति से यदुवंशियों को दोनों ओर से कष्ट होनेवाला है तिससे हम ऐसा क़िला अति दुर्गम बनावेंगे जिसमें से चाहें स्त्रिया लड़ाकरें फिर वृष्णिश्रेष्ठवीरों को क्या कहना जिससे कभी हम कोई अमल खायेहों या चित्तही गड़बड़हो वा सोनेहों वा कहीं अन्यत्र गये तो उस समयमें यादवोंका निरादर कोई दुष्ट शत्रु न कर सके यह शोच कृष्णचन्द्र ने १२ योजन स्थान समुद्र के भीतर उसीसे मागा उसमें द्वारका नामपुरी बनाई जिसमें बड़ी २ फुलवारिया बड़े २ खाता भैकरों ताजाव बड़ी २ छहरदीवारें विभ्रगानयीं मानो दूसरी इन्द्रकी अमरावतीपुरीहै मथुरावासियोंको अपने प्रभाव से दोघड़ीमें वहा पहुंचाय बसाय दिया तबतक कालयवन भी मथुराके निकट आया उधरसे आपभी आनपहुंचे पुरी के बाहर कालयवन पराया कृष्णचन्द्र विना आयुधही पैदर उसीकी तरफ होनिकले उसने इन्हें देखा व जाना कि वासुदेव यही हैं इस लिये इनके पीछे दौरा जिन कृष्णचन्द्रको योगी लोग अपने चित्तोंसे नहींपाते तिनके पीछे दौराजाताहै हरेच्छागरीयसी कृष्णचन्द्र भी जाते उस गुहामें पहुंचे जिसमें राजामुचुकुन्द सोते थे हरितो आगे को बढ़गये वहभी दुष्टाधिराज पीछे से पहुंचा देखानो एक मनुष्य सोताहै उसने जाना वासुदेवही है एकलात मारा जैसे उन्होंने क्रोधसे नेत्र खोले उनसे जो आंच निकली उससे तुरन्त भस्म होगया ये राजा मुचुकुन्द जी देवासुर संग्राम में देवोंकी ओर से लड़ते रहे जब दैत्योंकी पराजय व देवोंकी विजयहुई तो इन्हों ने बहुतदिनों से न सोने के कारण देवोंसे सोनाही वरदान मांगा देवोंने कहा अच्छा शयन कीजिये सोते में जो कोई तुम्हें जगावेगा तुम्हारे नेत्रों की आंच से तुरन्त भस्म होजावेगा जब कालयवन इसरीति से भस्महुआ तो कृष्णचन्द्र को देख राजाने पूछा आप कौनहैं हरिने कहा आजकल तो हम चन्द्रवंश में उत्पन्न हुये हैं उसमें भी यदुवंशी वसुदेवके पुत्रहैं मुचुकुन्दभी वृद्ध गर्गके वचनों को स्मरण कर श्रीहरिके प्रणामकर बोले हमने जाना आप भगवान्

विष्णुके अंशहो हम से आगे वृद्ध गर्गमुनिने कहा था कि अट्ठाइसवें द्वापर के अन्त में यदुवंश में हरिका जन्म होगा सोई आप प्राप्त हुयेहो इसमें सन्देह नहीं मनुष्यों का तुम से बड़ा उपकार होगा हम तुम्हारा तेज नहीं सहसक्ते तैसेही सजल मेघ गर्ज्जन समान तुम्हारा शब्द भी नहीं सहसक्ते न तुम्हारे पावों का आघातभी धरणी नहीं सहती देवासुर संग्राम में बड़े २ तेजस्वी दैत्य दानव थे कोई भी हमारा तेज नहीं सहसके पर हम आप का तेज नहीं सहसक्ते संसार में पतित जीवको एक तुम्हीं शरण हो हे प्रपन्नार्तिहर ! प्रसन्न हो मेरे अशुभ दूर करिये ॥

चौ० जलधि शैल वन नदी तड़ागा। मही गगन जल पवन विभागा ॥
अग्नि बुद्धि मन प्राण परेशा। सकल वस्तु तुम सदा रमेशा ॥ १ ॥
शब्द रूप रस आदि विहीना। अजर अमर क्षयरहित अदीना ॥
जनन मरणगत ब्रह्म स्वरूपा। तुम हरि वह हम इमि अनुरूपा ॥ २ ॥
अमर पितर किन्नर गन्धर्वा। यक्ष सिद्ध नर पशु खगसर्व्वा ॥
उरग महीरुह मृग गण जते। भूत भविष्य तुमहिं सो तेते ॥ ३ ॥
मूर्त्तिमान निज मूर्त्ति चराचर। स्थूल सूक्ष्म तर सकल बराबर ॥
हौ तुम जग कारक भगवाना। तुम सन भिन्न न तनिक बखाना ॥ ४ ॥

हे भगवन् ! तीनों तापों से तपाया हुआ मैं इस संसारचक्र में फिरताहूं कल्याण कहीं नहीं दिखाई देता जो दुःखहैं मृगतृष्णा जलकी आशा से उन को सुखही मानता चला आया पर उनसे दुःखही मिलता रहा राज्य पृथिवी बल कोश मित्र लोग पुत्र गण स्त्री सेवक ये सब दुःखही देने को हैं कोई भी काम नहीं आते इन सब को सुखके लिये मैंने पालन पोषण किया परन्तु अन्त में जो देखा तो सब सन्तापही के देनेवाले हुये मैं देवलोक तक भी गया व जब चाहूं चला जाऊं परन्तु देवता लोग तो मुझी से सहायता चाहते हैं फिर देवलोक को जाना निरन्तर सुखदायक कैसे जगत् के उत्पत्ति पालन नाश करनेवाले आपकी आराधना विना निरन्तर निर्वृत्ति एक कैसे पापसक्त तुम्हारी माया से मूढ़ मानव लोग जन्म मरण जरा आदि तापों को पाय यमराज का मुख देखतेहैं वहां नानाप्रकार के दुःख भोगते हैं यहां आपके शरणागत नहीं होते कि इन सब से छूटी पाय जांय मैं आपकी माया से मोहितहो रात्रि दिन

विषय वासनामें लीन भ्रमा करताहूं व मोक्षकी अभिलाषा करता हुआ आद्य अनन्त ईश जो आप जिससे परे कुछ नहीं है संसार भ्रमण करने के ताप से तापित तिसके शरणागतहूं ॥

चौवीसवां अध्याय॥

दो०- चौबिसयें अध्याय महँ नृप वर यवन धनाप ॥
कहय बहुरि बलदेव ब्रज गमन गोपिकालाप ॥ १ ॥

पराशरमुनि बोले जब इस रीति से मुचुकुन्दजीने स्तुति की तो सब प्राणियं के अनादि भगवान् हरि बोले हे नरेन्द्र! जिस लोक की इच्छाहो वहां जाइये हमारे प्रसाद से बिन रोंक टोंक वहां सब पदार्थ तुमको मिलते रहेंगे बहुत दिनों तक वहांके दिव्य भोग विलास भोग महीतल में फिर ब्राह्मणके कुल में जन्मो गे वहां तुमको जातिस्मरण बनारहेगा मरणानन्तर मोक्षको पावोगे पराशर मुनि बोले यह वर पाय अच्युत भगवान् के नमस्कारके गुहाके मुखसे राजा निकले देखातो सब मनुष्य छोटे २ होगये थे राजाने जाना कलियुग आय गया इस लिये नरनारायणाश्रमपै जो गंधमादन पर्वतपैहै तपस्या करने वहां चले गये कृष्णचन्द्रभी उपायसे कालयवन को वध कराय हाथी घोड़े आदि जो उसका धनधा मथुरा में लाये फिर वहां से लदाय फँदाय द्वारका में लाय राजा उग्रसेनके आगे धरा यदुवंश अब बनाय निर्भय होगया तब सब विग्रह शांत होजाने के पीछे बलदेवजी सब इष्ट मित्रोंके देखने के लिये नंदगोकुलको गये वहां पहुंच गोप गोपियों से उसी भांति प्रेमसे बोले जैसे पूर्वही बोलते बतलाते थे जो लोग उनसे ज्येष्ठथे उन्होंने तो इनको छातीमें लगाय लिया जो छोटे थे उनको इन्होंने छातीसे लगाया जो बराबर के थे उनसे हँसते हुये मिले चाहे वे गोपथे चाहे गोपिया गोप लोगोंने भी बलभद्रजीके सामने अनेक प्रेमकी बातें कहीं गोपियोंने भी अपना प्रेम खूब प्रकट किया परंतु जो कृष्णचंद्रकी प्रियाथीं उनमें कोई २ प्रेमसे कोप करतीहुई ईर्षाके साथ बोलीं कोई २ हरिके समाचार पूछने लगीं हे बलरामजी! भला नगरकी स्त्रियों के वल्लभ स्थिर प्रेम श्रीकृष्णचन्द्र सुखसे हैं फिर कभी पुरयोषितोंके आगे उनका मान अधिक बढ़ाने केलिये क्षणमात्रही मित्रता रखनेवाले मोहन हमलोगों के कर्मोंको तो नहीं

हँसते भला कभी हमलोगों के गाने बजाने आदिको तो नहीं स्मरण करते भला एकबार भी अपनी माता यशोदाको देखने तो न आवेंगे और गोपियां बोलीं उनकी बतकही से क्याहै अब औरही बात चलाइये क्योंकि हमें बिना उनका भी काम चलाजाता है व उनके बिना हमारा भी चलाजावेगा फिर क्या प्रयोजन भला हमलोगों ने कौन कौन नेकी उनके साथ नहींकी पिता माता भाई बन्धु अपनी जान सब उनकेलिये छोड़ा पर उन्होंने कुछभी न माना बस नेकी न माननेवालों के शिरताज हरिको समझना चाहिये यद्यपि वे ऐसेही हैं तथापि कहिये कभी यहांआने की वार्त्तालाप करते हैं आप सत्यही कहियेगा उनकीसी झुठाई न कीजियेगा हमको तो यह जानपरता है कि मदनमोहन श्यामसुन्दरका नगरकी स्त्रियों में मन लगगया है हमलोग वनचरियों की प्रीति जातीरही इससे उनका दर्शन हमलोगों को दुर्लभ है पराशरमुनि बोले यहकह दामोदर गोविन्द कृष्ण ऐसाकह हरिकी ओर मन लगाई हुई गोपी अकस्मात् हँसउठीं तब बलरामजी ने मधुर शिक्षा सहित प्रेम भरेहुये अहंकार रहित अतिमनोहर कृष्णचन्द्र के सँदेशों से गोपियोंको अच्छीभांति समझाया व गोपोंसे भी पूर्व्वहीं की रीति से हँसते हँसातेरहे व कथा वार्त्ता भी विविधभांति कहते सुनते रहे व ब्रजभूमि में ठौर ठौर विहार भी करतेरहे ॥

पच्चीसवां अध्याय ॥

दो॰ पचिसयें अध्याय महँ यमुना खींची राम ॥
कांति वारुणी रेवती प्रियामिलीं अभिराम ॥ १ ॥

पराशरमुनि बोले जब मानुषरूपधारी धरणीधर शेषावतार बलदेवजी गोपों के संग वृन्दावन में विहरते थे जिन्होंने पृथिवीका बहुतमा भार उतार डालाथा व कारणपाय जो धरणी में विचरते थे तिनके भोग करने के लिये वरुणजी वारुणी से बोले हे मदिरे ! जिससे तू बलदेवजी को सदा प्यारी है तेरे पान की इच्छा उनको बनीही रहती है इसलिये अब तू उन्हीं के भोगकेलिये उनकेनिकट जा जब वारुणी मदिरा से वरुण ने ऐसाकहा तो वह आय वृन्दावन में एक कदम्बके खोदले में आय बसी बलदेवजी भी विचरते विचरते वहीं आन पहुँचे जहां मदिराथी उसकी महक उनको दूरही से जानपरी पीनेकी इच्छासे बनाय

निकट पहुंचे तब वृक्षके कोटरसे बड़ीभारी मदिरा की धारा बही उसेदेख बल-
रामजी परमानन्दित हुये गोप गोपियों के साथ गाते बजाते हुये पहुंचे व यथेष्ट
पानकिया जब बनाय मतवाले हुये तो यमुना से कहनेलगे हे यमुने ! हमको
बड़ी गरमीलगी है यहां चलीआ तो हम स्नानकरैं मतवाले जान तिनके वचनों
की ओर यमुना ध्यान धर न आई तब तो बलदेवजी नें क्रोधसे अपना हललिया
व किनारेपै लगाय खींचा व कहा हे पापे न आई न आई अब जहां चहै तहां
चली तो जा जब ऐसाहुआ तो जहां यमुनाजी बहतीथीं उस गलीको छोड़-
जिस बनमें बलदेवजी थे जाय उसमें बहनेलगीं और शरीर धारणकर प्रणामके
साथ बोली राम कृपा कीजिये हमको छोड़ दीजिये बलदेव ने कहा हमको व
हमारे बलको तू नहीं जानती हम खींचके तेरे सहस्रधारा कर देंगे जहाँचाहैं
लोग नाँघजाया करैं यहसुन यमुना ने बड़ी स्तुतिकी तो अपना हल छुड़ा
दिया फिर नदी बहनेलगी फिर इन्होंने अच्छीभाँति स्नानकिया स्नानान्तर
और अद्भुत कांति होगई पुष्पों की माला पहिने एक कानमें कुण्डल धारण
किये अति शोभित होनेलगे तब लक्ष्मीजी ने आय वरुणकी पठाई एक कमल
पुष्पों की मालादी इसमें कभी फूल कुम्हलाते न थे व दो नीलरंग के वस्त्र भी
समुद्रके यहां से मँगाय लक्ष्मीजी ने दिया तब पुष्पोंकी माला पहिन रमणीक
कुण्डल धारणकर नीलाम्बर पहिने अति कान्तियुक्तहो शोभित होनेलगे इस
रीति से दो महीने तक बलभद्रजी गोकुल में गोप गोपियों के संग विहर फिर
मथुराको आये यहां रैवत राजा की कन्या रेवती के संग विवाहहुआ उससे
उन्होंने निशठ व उल्मुक दो पुत्र उत्पन्न किये ॥

छब्बीसवां अध्याय ॥

दो० छब्बिसयें अध्याय महँ कृष्ण रुक्मिणी ब्याह॥
भया भया प्रद्युम्न जिन शम्बर हत्यो कनाह ॥ १ ॥

पराशरमुनि बोले विदर्भदेशमें कुंडिनपुरके राजा भीष्मक हुये उनके पुत्र
का रुक्मी व कन्या का रुक्मिणी नामथा रुक्मिणी ने कृष्णचन्द्रके साथ अ-
पना विवाह करनाचाहा व कृष्णचन्द्रने रुक्मिणीके साथ परमारे वैरके रुक्मीनें
अपनी भगिनी कृष्णचन्द्रको न दी जरासंध के कहने से व रुक्मीकी सम्मतिसे

भीष्मकने शिशुपालके संग रुक्मिणी के विवाहकी तैयारीकी यहाँ बलभद्रादि यदुवंशियों के साथ कृष्णचन्द्रभी चँदेली के राजा शिशुपाल का विवाह देखने को कुंडिननगर को गये प्रातःकाल विवाह होनेवाला था कि श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्दने रुक्मिणी को हरलिया बलभद्रादि यदुवंशी संगहोलिये जो दोचार शत्रुआये मारेगये तिसके पीछे पौंड्रक दन्तवक्र विदूरथ शिशुपाल जरासंध शाल्वादि राजा सकुपितहो हरिके मारडालने को दौरे परन्तु रामादि यदुवंशियों ने सबको पराजित किया फिर बिना कृष्णको मार डाले कुण्डिन नगरमें न प्रवेश करेंगे यह प्रतिज्ञाकै रुक्मी कृष्णचन्द्र को मारने दौरा श्रीहरिने लीला पूर्व्वकही उसके संग जितनी सेना हाथी घोड़े रथआदि की थी सबनाश रुक्मी को पराजित करदिया रुक्मी को जीत राक्षस विधिसे रुक्मिणी को ले आय अपना विवाह किया तिससे से कामके अंश प्रद्युम्नजी उत्पन्नहुये जिन्हे शम्बरासुर हरलेगया व उन्होंने शम्बरको मारभी डाला ॥

सत्ताईसवां अध्याय ॥

दो० सप्तविंश अध्याय महँ मत्स्योदरसे काम ॥
मिलेरतिहिहतिशम्बरहि पुनिआयेनिजधाम ॥ १ ॥

इतनी कथासुन मैत्रेयजी बोले हे मुनिराज ! वीर प्रद्युम्नजी को शम्बरासुर कैसे हरलेगया व शम्बरभी तो बड़ा वीरथा वह प्रद्युम्नके हाथ से कैसे मारागया यह सुन पराशरमुनि बोले शम्बरासुरने सुनरक्खा था कि कृष्णचन्द्रके पुत्र प्रद्युम्न मुझे मारेंगे इसलिये जन्म के छठेदिन सौरी के घरसे प्रद्युम्नको उठालेगया व ग्राह मकर नक्र सर्पादि से भरेहुये महासागर में फेंकदिया वहां एक मछली ने लीललिया पर महाप्रतापी प्रद्युम्न उसके उदरकी आगसे न जले मछली मारने वाले धीमरोंने अन्य मछलियों के साथ उस मछलीको भी मार शम्बरासुर को आय नजर दिया पाक करनेवालों की स्वामिनी एक मायावती नाम उसके यहां उसकी स्त्री थी उसे सब मछलियां बनाने के लिये दीगईं जब वह मछली चीरीगई तो अत्युत्तम मानों जलेहुये काम वृक्ष का अंकुरही है एक बालक निकला जिसे देख वह स्त्री कहनेलगी यह कौनहै व मछली के पेटमें मनुष्य का लड़का कैसे आया वह ऐसा कहतीही थी कि नारदमुनि आय उससे बोले कि

यह बालक संसार के उत्पन्न पालन संहार करने वाले कृष्णचन्द्र का पुत्रहै इसे शम्बरासुर लायाथा व समुद्र में फेंकदियाथा वहां मछली लीलगई थी अब यह तुम्हारे वशमें आयाहै इस मनुष्यरत्नकी पालना अच्छी रीतिसे करना पराशर मुनि बोले कि नारद के कहने से उस बालककी पालना मायावती करने लगी अतिमनोहर रूप देख बाल्यावस्थाही से उसपर मोहित होगई जैसे २ ये सयाने होतेजाते थे उसका प्रेम अधिक बढ़ता जाताथा उस मायावती ने जितनी मायाहैं सब प्रद्युम्नजीको दीं जब ये वनाय किशोर अवस्थाको प्राप्तहुये तो एक दिन उसने अपना पुरुष बनाने की इच्छासे कुछ रसीली बात सुनाई सुनतेही प्रद्युम्नजी ने कहा आज माताकाभाव छोड़ यह कैसाभाव करतीहो उसने कहा तुम मेरे पुत्र नहींहो किन्तु कृष्णचन्द्रके हो तुमको शौरीके घरसे शम्बरासुर उठालायाहै व उसीने समुद्र में छोड़दिया वहां मछलीने लीललिया उसके पेटसे हमने तुमको पायाहै यद्यपि तुम्हारी माताके पतिभी है तथापि तुम पुत्रके स्नेह से रात्रिदिन रोयाकरती हैं यह सुन प्रद्युम्नजी ने शम्बरासुरको युद्ध करने के लिये ललकारा सुनतेही वह आन पहुंचा लड़ाई होने लगी पहिले उसकी सेना मारीगई पीछे दोनों ओरसे मायायुद्ध होनेलगा प्रद्युम्नजीने ७ माया छोड़ आठईमाया छोड़ी उससे शम्बरासुर को मार विमानारूढ़हो अपनी स्त्री मायावती के साथ द्वारकाको आये जाते २ विमान जहां भीतर स्त्रियां रहतीथीं वहीं उतरा स्त्री सहित प्रद्युम्न को देख जोकि कृष्णचन्द्रके समानही थे हरिकी स्त्रियां कुछ लज्जित हो इधर उधर छिपने लगीं पर रुक्मिणीजी बोलीं वह स्त्री धन्य है जिसका युवावस्थाको प्राप्त ऐसा मनोहर यह पुत्रहै हमाराभी प्रद्युम्न नाम पुत्र यदि जीताहै तो इसी अवस्थाका होगा हे वत्स! तुमने किस माताको भूषित किया है नहीं तो हमारे विचार से जैसा तुममें हमारा स्नेहहै व जैसी तुम्हारी देहहै इन सब बातों से अवश्य तुम श्रीहरिहीके पुत्रहोगे इतने में नारद मुनिके साथ कृष्णचन्द्रजी वहीं आये नारद कहनेलगे हे रुक्मिणि! यह तुम्हारा वही पुत्रहै जो सूतिकागृहमें उठागया था इसे शम्बरासुर लेगया था अब उसे मार स्त्री समेत आयाहै यह मायावती शम्बरासुर की स्त्री नहीं है किन्तु तुम्हारे पुत्रहीकी है इसका कारण बताते हैं सुनो जब कामको महादेवजीने भस्मकर दिया तो उसकी स्त्री रति कामके उत्पन्न होनेमें लगीहुई मायाके रूपमें शम्ब-

रासुर को उसने मोहित किया जब दैत्यराज विहारादि करनेआवे तब यह अपनी मायासे दूसरी स्त्री बनादेती थी सो अब यह तुम्हारा पुत्र कामही उत्पन्न हुआ है फिर इसका वह पतिहै क्योंकि यह रति है इसमें कुछ शङ्का न करो तुम्हारी यह सत्य २ पतोहू है यह सुन रुक्मिणी श्रीहरि दोनों बहुत आनन्दित हुये सब द्वारकावासी भी परमानन्दितहो वाह २ करनेलगे ॥

चौ० बहुतकाल सुत रह्यहु भुलाना। त्यहि लहि रुक्मिणि अतिसुखमाना॥
सो लखि सकल द्वारकावासी। अतिविस्मित भे लहि सुखरासी॥ १॥

अट्ठाईसवां अध्याय ॥

दो० अष्टाविंशाध्याय महँ हरि सुत अरु सब नारि॥
कहब काम अनिरुद्धकर ब्रह बल रुक्मि सहारि॥ १॥

पराशरमुनि बोले चारुदेष्ण सुदेष्ण चारुदेह सुषेण चारुगुप्त भद्रचारु चारुविन्द सुचारु चारु ये पुत्र व चारुमती कन्या रुक्मिणीजी ने उत्पन्न किया रुक्मिणी को छोड़ हरिके ७ और पटरानियां थीं उनके नाम ये हैं कालिन्दी मित्रविन्दा सत्या नाग्नजिती जाम्बवती सुशीला सत्यभामा लक्ष्मणा इन के विशेष १६१०० और स्त्रियां कृष्णचन्द्र के थीं प्रद्युम्न का विवाह उनके मामा रुक्मीकी कन्या के साथभी हुआ तिसमें अनिरुद्धजी हुये अनिरुद्ध का भी विवाह रुक्मी की पौत्री के साथहुआ यद्यपि हरि व रुक्मी से विरोध था तथापि हुआ इस विवाहमें बलभद्रादि यदुवंशी बहुत बरातमें गयेथे जब विवाह होगया तो कलिंगदेशादि के राजाओंने रुक्मी से कहा कि बलदेव जुवा नहीं खेलना जानते इससे आवो इनको उसमें हरायदें जब हारेंगे तो तो हँसने को होजायगा युद्धादिमें तो जीतना कठिनही है रुक्मी ने कहा कि अच्छा बुलावो बस बलदेवजी को सभामें बुलाया व जुवा होनेलगा पहिले १००० पणकी बाजी लगी उसमें रुक्मीजीता दूसरी बार फिर उतनीही बाजीलगी उसमें भी वही जीता तीसरीबार १०००० की लगी उसमें भी वही जीता तब कलिंगदेश का राजा दांत निकाल ठठाय हँसा व मदगर्व रुक्मी भी कहनेलगा देखो इन को नाहक जुवा खेलने का घमण्डथा हमने जीतलिया ये वनेचर जुवाका ज्ञान क्या जानें यह सुन व उसको दांत निकाले हँसने देख बलदेवजीने बड़ा कोपकिया

व कहा कि अबकी करोरनिष्क बाज़ी लगाते हैं सँभर के खेलना रुक्मीनिकहा अच्छा फिर अबकी बाजी बलदेव जीते तब रुक्मीने कहा हम जीते हैं तुम झूंठ कहते हो तुमने बाजीलगाई,पर मैंने तो इतनी भारी बाजी मानीही नहीं यदि तुम अपना को जीना बताते हो तो हम अपना को बताते हैं कहनेहीसे हो तो हमभी जीते यह सुन आकाशवाणी हुई कि रुक्मी मिथ्या कहता है अबकी बलदेवही जीते हैं यह सुनतेही बलरामजी ने अति कोप किया व वही पांशा फेंक रुक्मी के ज़ोरसे मारा व कोपसे कलिङ्गराजा के दांतों में जिन्हें निकाल पहिले हँसाथा मूका मारा सबके सब भूमिमें गिरपरे वहां मण्डपमें एक सोनेका खम्भा गड़ाथा उसे उखाड़ जितने दुष्ट राजा उसके पक्षी थे सबको मारडाला रुक्मी उसी पांशाही के लगने से मरगया यह दशा देख हाहाकार मचा जो कोई बचे इधर उधर भागगये राज्यभरमें हलकम्प मचगया कृष्णचन्द्र ने सुना बलदेवने रुक्मीको मारडाला सत्यासत्य कुछ नहीं कहा क्योंकि प्रसन्नता प्रकट करने से भाईके मारे जानेसे रुक्मिणी रिसाती अप्रसन्नता से बलदेव ॥

चौ० तब अनिरुद्धहि वधू समेता। रथ चढ़ाय श्रीकृपानिकेता ॥
राम आदि यादव के साथा। आय द्वारकहि कीन्ह सनाथा ॥१॥

उन्तीसवां अध्याय ॥

दो० उन्तिसयें अध्याय महँ इन्द्र माहँ हरि भौम ॥
मारि कुमारि समूह लै आये गुणन अनौम ॥१॥

पराशरमुनि बोले कि एकदिन मत्त ऐरावत हाथीपै चढ़ इन्द्रजी हरिके दर्शन के लिये द्वारकामें आये व हरिसे बोले नरदेह धार आपने देवोंके सब दुःख नि-वारे तपस्वियों के नाशने में प्रवृत्त अरिष्टासुर धेनुकासुर केशी आदि को मारे कंस पूतना कुवलयापीड़ादि जो संसार के उपद्रवरूप थे सबको विनाशा आप की भुजाओं से संसारकी रक्षाहुई यज्ञ करनेवाले लोगों के यज्ञांश से देवता तृप्तहुये अब हम जिसलिये आपके निकट आये हैं तिसे सुन उसके विषयमें जो कर्त्तव्यहै उसका यत्न कीजिये यह प्राग्ज्योतिषपुर का राजा भौमासुर जिसे नर-कासुर कहते हैं,सब प्राणियों को नाश किया करताहै देवता सिद्धादि व राजा-ओंकी कन्याहर उसने अपने मन्दिर में धररक्खी हैं जिस छत्र से जल चुआ

करता है उसे वरुण से छीनलाया मन्दराचल पर्वत अब हमारा पर्वत यानी शृंगमणि पर्वत लाया मणिसे बनेहुये जिनसे अमृत चुआ करता ऐसे अदिति देवमाता के कुण्डल छीनलाया अब हमारा ऐरावत हाथीभी लिया चाहता है उसके दुराचार सब आपसे कहे अब जो उचित समझिये सो कीजिये पराशर मुनिबोले यहसुन श्रीहरि हँसे व इन्द्रका हाथ पकड़ आसनसे उतरे व गरुड़को स्मरण किया वे आये सत्यभामा सहित चढ़ प्राग्ज्योतिषपुर को चलदिये तब द्वारकावासियों के देखतेही में इन्द्रभी स्वर्गलोक को गये प्राग्ज्योतिषपुर के चारोंओर सौ सौ योजन तक मुरदैत्यने लोहकी फाँस ऐसी लगाय रक्खीथीं कि अङ्ग छूतेही छिन्न भिन्न करदेतीं थीं भगवान् कृष्णचन्द्र ने पहुँचतेही सुदर्शन चक्रसे सब काटडालीं मुरके ७०० पुत्रथे उन्हें भगवान् ने सुदर्शनकी आगसे टीड़ियों के समान सब भस्म करदिया मुरकोभी चक्रसे मारडाला मुर हयग्रीव पंचजन इन दैत्यों को मार हरिने प्राग्ज्योतिषपुर में प्रवेश किया वहां भौमासुरकी बड़ी सेना के साथ युद्धहुआ हरिने सहस्रों दैत्य मारडाले फिर नाना शस्त्रास्त्र बरसाते हुये भौमासुर को चक्रसे मारडाला जब नरकासुर मारडाला गया तो भूमि उसकी माता अदिति के कुण्डललाय हरिसे हाथ जोड़ बोली हे नाथ! जब आपने सूकरावतार धार हमको लायेथे तब तुम्हारे सगमें यह नरक नाम पुत्र हमारे हुआथा सो यह पुत्र आपही ने दियाथा अब आपही ने हरभीलिया अच्छा किया अब अदिति के कुण्डल लीजिये व उनकी सन्तति की पालना कीजिये आप मेराही भार उतारनेके लिये अंशसे अवतरे हैं हे अच्युत! जगत् के कर्त्ता धर्त्ता हर्त्ता तुम्हींहो कौन तुम्हारी स्तुतिकरे सब भूतोंके आत्मभूत व्याप्य व्यापक क्रिया कर्त्ता कार्य्य सब तुम्हींहो फिर कौन तुम्हारी स्तुति करे परमात्मा आत्मा भूतात्मा अन्य जब सब तुम्हींहो तो कौन स्तुति कीजावे महाराज प्रसन्न हूजिये नरकासुर के अपराध क्षमा कीजिये उसकी सन्तति पालिये पराशरमुनि बोले कृष्णचन्द्र ने अच्छा कह जितने रत्न नरकासुर के यहां थे सब लेलिये फिर कन्यकागार में देखा तो १६१०० कन्या थीं गजशाला में देखा तो ३००० चौदन्ते हाथीथे वाजिशालाकी ओर दृष्टिगई तो २१००००० काम्बोज देश के घोड़े बँधेहुये थे तिन कन्या हाथी घोड़ों को नरकासुर के नौकरों के संग हरिने द्वारका को पठाया देखा तो वरुण का छत्र व मणिपर्वत येभी

धरेथे दोनोंको उठाय गरुड़ पै लाद आपभी सवारहुये फिर सत्यभामा को भी चढ़ालिया अब अदितिके कुण्डल देनेके लिये इन्द्रपुरी को गये ॥

तीसवा अध्याय ॥

दो० कह तिसर्य अध्याय महँ अदितिहि कुण्डलदान ॥
अदितिविनय सुरतरुहरण इन्द्रपराजय गान ॥ १॥

पराशरमुनि बोले वरुण का छत्र मणिपर्व्वत सस्त्रीक कृष्णचन्द्र को सहज में अपने ऊपर चढाय गरुड़चले सुरलोक के द्वारपै पहुँचते ही हरिने पाञ्चजन्य शङ्ख बजाया जिसे सुनतेही देवगण अर्घपाद्याचमनीयादि हरिके लिये लाये देवताओं से पूजित हरिने देवमाता अदिति का उज्ज्वल बादल के कँगूरा के आकार मन्दिर देखा व उसमें प्रवेशकर अदितिजीको भी देखा हरिने इन्द्रके संग अदिति को प्रणाम किया उनके कुण्डलदे नरकासुरका वध भी सुनाया तब अदिति हरिकी स्तुति करनेलगीं ॥

चौ० भक्ताभयकर कमल विलोचन । सनातनात्मा भव भय मोचन ॥
सर्व्वात्मा भूतात्मा स्वामी । भावन भूत नमामि नमामी ॥ १ ॥
मनसतिप्रेरक इन्द्रि गुणात्मक । त्रिगुणातीतक द्वन्द्व गतात्मक ॥
तुम सबके प्रभु हृदयनिवासी । कृपानिधान मुक्ति तव दासी ॥ २ ॥
सित दीर्घादि कल्पना हीना । जन्म मरण वर्जित गुण चीना ॥
स्वप्न सुषुप्ति आदि तुम माहीं । नाथ अवस्था एकहु नाहीं ॥ ३ ॥
सन्ध्या रात्रि भूमि दिन अम्बर । पवन हुताशन मन मति सम्बर ॥
सब तुम दयानिधान मुरारी । लीजै विनय सुधारि हमारी ॥ ४ ॥
ब्रह्म विष्णु हर है संसारा । उपजावत पालत संहारा ॥
देव दनुज राक्षस अहि यक्षा । कूष्माण्ड गन्धर्व्वरु ऋक्षा ॥ ५ ॥
सिद्धपिशाचमनुजमृग पशुगन । पतक सरीसृप वृक्ष गुल्म वन ॥
वल्ली लता सकल तरु जाती । तुम सब नाथ कहीं बहुभांती ॥ ६ ॥
यह तव माया जो जग तोहीं । नहिं जानत उपजावत मोहीं ॥
हम हमार यह जीवउ माहीं । तव माया कृत संशय नाहीं ॥ ७ ॥
जो निज धर्म्म रीतिसों जोहीं । नाथ अराधत नहिं छल छोहीं ॥

सो तरिजात तुम्हारी माया। नाथ नहीं कछु आन उपाया॥ ८॥

हे नाथ! ब्रह्मादि सब देव मनुष्य पशु पक्षी सब विष्णुमाया महाआवर्त्तमें डूबरहे हैं दैवयोगसे जो तुम्हारी आराधना भी करते हैं तो स्त्री पुत्र धनादि मांगते हैं यही आपकी मायाहै सो इसीभाति मैंनेभी पुत्रकी कामना व वैरियों के मारनेहीके लिये तुम्हारी आराधनाकी मोक्षकी कामनासे नहीं आप कल्पतरु कोभी पाय यदि पापी पुरुष भोजन व स्त्रीही मागे तो उसीके अपराधका दोष है तिससे हे सब ससार के मोहनेवाले! कृपा कीजिये ज्ञान सदभावसे उत्पन्न अज्ञान नाशिये शङ्ख चक्र गदा शार्ङ्ग धारण करनेवाले तुम्हारे नमस्कार हैं मैं आपका सूक्ष्मरूप नहीं देखनी यह स्थूलहीरूप देखतीहू कृपा कीजिये यह सुन हँस जगन्मोहन श्रीहरिबोले तुम हमारी माताहो तुम्हें प्रसन्न होनाचाहिये अदिति ने कहा ऐसाही हो लड़काही सही जो हमसे प्रसन्नता चाहतेहो तो मर्त्यलोक में सब देवता दैत्यों से अजयहोवो तब सत्यभामाजी ने इन्द्राणी सहित अदितिसे कहा हमारे ऊपरभी कृपा कीजिये अदिति बोलीं सत्यभामा हमारे प्रसाद से न कभी तुमको वृद्धता आवेगी न अगोंमें विरूपता व सदा सब काम पूर्ण रहेंगे तब अदिति से बिदाहो श्रीहरि व इन्द्र सत्यभामा के साथ देवताओं के नन्दनादि वन देखनेगये सब देख देखाय इन्द्र तो लौटआये जाते २ हरिने कल्पवृक्ष देखा उसे देखतेही सत्यभामा ने गोविन्दसे कहा यह वृक्ष द्वारकाको क्यों नहीं लेचलते जो आपके वे वचन सत्यहों जिनमे कहा था कि सत्यभामा तुम हमको बहुत प्यारीहो तो यह वृक्ष उखाड़ हमारे घरके उपवन में लगादीजिये यहभी तो कहा था जैसे सत्यभामा तुम हमको प्यारीहो वैसे जाम्बवती रुक्मिणी आदि नहीं यह कईबार कहचुकेहो यदि सत्यहो हास्यहीन हो तो यह कल्पतरु अवश्य हमारे घरका भूषण होवे हम चाहती हैं कि कल्पद्रुम की मजरी शिरके बालोंमें गुथ सौतियों के बीच शोभितहों जब ऐसा हँसिके सत्यभामाने कहा तो मधुसूदन ने हँसके कल्पवृक्ष उखाड़ गरुड़पै लादलिया यह दशा देख वनरखवारे बोले हे गोविन्द! इन्द्रकी स्त्री इन्द्राणी का यह पारिजात है इस लिये इसे लेजाने के योग्य आप नहीं अमृत मथन समय में देवोंने शचीके भिस्पणके लिये इसे निकाला था इससे इसको ले कुशलपूर्वक यहासे न जानेपावोगे इन्द्र जिस इन्द्राणी का मुख देखा करते जो ते चाहती है सोई करते जि

तिन्हीं शचीका यह वृक्ष इसे लेजाय कौन कुशल सहित जायसक्ताहै हे कृष्ण इसके अर्थ अवश्य इन्द्र आवेंगे व जैसेही अपना वज्र उठावेंगे देवगण भी तुरन्त पहुँचेंगे तिससे सब देवताओंके संग विग्रह करनेसे कुछ अच्छा नहीं क्योंकि जिसका परिणाम करूहो उसकर्मकी प्रशंसा पण्डित लोग नहीं करते यहसुन हरि तो नहीं बोलने पाये सत्यभामा बड़ाकोप करके बोलीं कि इस पारिजातकी इन्द्राणी कौन होतीहैं व देवोंके स्वामी इन्द्र इसके कौन होतेहैं यदि यह अमृतमथन समय समुद्र से निकला है तो सब संसार का इसमें स्वत्वहै फिर अकेले इन्द्रही क्यों इसे ग्रहण करते हैं जैसे अमृत,जैसे चन्द्रमा जैसे लक्ष्मी ये सब समुद्रसे निकले पदार्थ हैं तैसेही यह कल्पवृक्ष भी है जो अपने पतिकी भुजाओं के बलसे महाघमण्डसे इन्द्राणी इसे रोकतीहैं तो चलेजावो अभी कहो वे उपाय न रहें जो होसके करें सत्यभामा वृक्ष उखड़ाये लिये जातीहै शीघ्रही जाय हमारे गर्वित वचन इन्द्राणीसे कहो यदि वे अपने पतिको प्यारीहों और यदि उनके वश उनका पतिहो तो हमारा पति वृक्ष लिये जाताहै रोकें हम तुम्हारे पतिको जानती हैं कि इन्द्र देवताओं के पतिहैं तथापि मनुष्यही की स्त्रीहो पारिजात तो उखड़ायेही लियेजाती हैं पराशरमुनि बोले रखवार लोग जब इस प्रकार कहेगये तो जाय ज्योंका त्यों उन्होंने इन्द्राणी से कहा उन्होंने अपने पतिको कहसुन लड़ने को तैयार किया कि सब देवोंको संगले पारिजात के छीनने के लिये इन्द्र लड़ने को पहुँचे,जब पुरन्दर ने वज्रउठाया तो सब देवगण भी शूल पट्टिश परिघ खड्गादिले लड़नेमें प्रवृत्तहुये महाराज सकलवैरिमर्दन जनार्दनजी ने भी अवलोकन किया कि मत्त ऐरावत पै चढ़े वज्र उठाये इन्द्र व सब देवगण भी अस्त्र शस्त्र धारण किये आन पहुँचे, आपने प्रथमही कोटिवाणों की वर्षा देवोंके ऊपर करी कि सबओर वाणही वाण दृष्टि परनेलगे देवोंने भी यह दशा देख एक २ बार सबोंने अपने शस्त्रास्त्र चलाये, पर मधुसूदन ने एक आयुध के अपने वाणों से सहस्र २ करडाले गरुड़ने वरुण की चलाईहुई फांसीको चोंच से पकड़ ऐसे लीललिया जैसे वे बाल सर्पिणीको लीलजाते हैं यमराज ने अपना कालदण्ड चलाया उसे हरिने गदासे चूर्णचूर्ण करदिया कुबेरकी पालकी चक्रसे तिल २ उड़ादी सूर्यकी ओर ऐसी कड़ीदृष्टिसे देख दिया कि उनका तेजही जातारहा वाणोंसे अग्निके सैकरों भाग करडाले वसुलोगोंको ऐसा भगाया कि वे दिशा

विदिशों में भागगये रुद्रों के शूल चक्र से काट २ धरणी में गिरादिये। साध्य विश्वदेव पवन गन्धर्व्व इनको बाणों से ऐसा मारा कि सेमर की रुईके समान आकाश में उड़नेलगे गरुड़जी भी अपने मुख पक्ष नखादिकों से देवोंको विदारतेहुये इधर उधर सग्राममें दौड़ते फिरने तब इन्द्र व जनार्दन दोनों महात्माओं ने दोनोंओर से ऐसी बाणधारी एक दूसरे के ऊपर की मानो दो बादल जल धारा उमँगि २ बरसाते हैं अब ऐसा जुटाव होगया कि ऐरावत व गरुड़से लड़ाई होनेलगी और सब देवताओं व इन्द्रमे जनार्दन भगवान्से जब खड्गों लक्षों अर्बुदों शस्त्रास्त्र छिन्न भिन्न होगये तो इन्द्रने वज्रउठाया व मधुसूदन ने सुदर्शनचक्र तब देवराज व जनार्दन को वज्र चक्र धारण किये देख चराचर जगत् ने हाहाकार मचाय इन्द्रने वज्रमारा श्रीहरिने हाथ से पकड़ लिया पर अपना चक्र नहीं चलाया केवल यही कहा खड़ेहो खड़ेहो कहां जातेहो जब इन्द्र का वज्र भी नष्टहोगया वाहन ऐरावत को गरुड़ने ठौर २ नोंच फोंचडाला तब भागतेहुये पुरन्दर को देख सत्यभामा बोलीं हे त्रैलोक्येश्वर इन्द्र! शची के पतिहो तुमको भागना उचित नहीं अब पारिजात के पुष्पोंकी माला पहिन शची तुम को उठके आदर करेगी हे देवराज! व पारिजात की माला धारण करना तुम्हारा कैसाहै जोकि अब जैसे आगे प्रसन्न चित्त रँगीहुई शची को देखते थे न देखोगे इन्द्र अब भागनेसे कुछ नहीं लज्जितहो यह पारिजात लेजाव देवता लोगोंकी व्यथा मिटे निश्चिन्त होवैं हमने तो केवल इससे यह विग्रह करया था कि जब हम तुम्हारे घरमें गईथीं तो तुम ऐसे पतिके घमण्डमें शचीने हमारा अच्छी भांति मान सत्कार नहीं कियाथा सो स्त्री तो हमभी हैं स्त्रियों का चित्त गरू तो होनाही नहीं हमने भी अपने पतिके बलके घमण्ड मे व पति की बड़ाई के लिये आपके साथ विगार किया सो इस पराये पारिजात से हमारा कुछ भी प्रयोजन नहीं जिस स्त्री को रूपका गर्व्व है वह अपने पति से क्या २ नहीं करासक्ती हमारा पति हमारे रूपहीसे राजी है पारिजातके फूलों से क्याहै पराशरमुनि बोले यह सुन इन्द्र लौटे व सत्यभामासे बोले अयि सत्यभामे! मित्रों के सङ्ग ऐसा खेद न करना चाहिये अब मेरा व लौटिये हमें सबके भी सृष्टि पालन संहार करनेवाले विश्वरूप श्रीहरिसे पराजित होनेसे कुछ लज्जा नहीं॥

चौ० आदि मध्यगत ज्यहि हरि माहीं। सकल जगत यह संशय नाहीं॥

जासों होत होत ज्यहि कारण। जो पालन जग पुनि जो हारण॥१॥
तासु जगत पालन उपजावन। हरणकरण हरिसों जितिजावन॥
या महँ लाज न कौनिउँ भाती। क्रोध करहु जनि हरिप्रिय पाती॥२॥
सकल भुवन भव कारण जोई। अल्प सूक्ष्म मूरति प्रभु सोई॥
निगमागम मुनि सुर समुदाई। जासु भेव कबहु नाहिं पाई॥३॥
त्यहि अज अद्वय ईश अनादिहि। स्वेच्छाचारि शत्रुभयकारिहि॥
कहु को जग महँ जीतनहारा। हारिहि सदा लड़े संसारा॥४॥

इकतीसवां अध्याय॥

दो॰ एक त्रिंश अध्याय महँ पारिजात लै श्याम॥
थक्से सोरह सहस तिय ब्याही अपने धाम॥१॥

पराशरमुनि बोले जब इस भांति पुरन्दर ने सत्यभामा से कह २ हरि की स्तुतिकी तो श्रीभगवान् हँस भावगम्भीर वचन बोले हे देवराज! हे जगत्पति! आप इन्द्र हैं व हमलोग मनुष्य ठहरे इस लिये हमारे किये हुये अपराध आपही क्षमा कीजिये व पारिजातवृक्ष यह तुम्हींको उचितहै ले जाइये हमने तो सत्यभामा के कहनेसे लेलिया था यह अपना वज्र भी लीजिये हमारे ऊपर निष्फल होगया, यह शत्रुओं के नाश करनेवाला तुम्हाराही आयुध है इन्द्र बोले हे ईश! हम मनुष्य हैं यहकह हमको क्या मोहित करतेहो हम यद्यपि बड़े सूक्ष्म ज्ञानी नहीं पर आपको जानते फिर हे नाथ! जोहो सोहो पर आज कल तो जगत्के मर्यादमार्ग में टिकेहो व इसके कण्टकरूप दैत्योंको मारतेहो अब यह कल्पवृक्ष द्वारकापुरी को लेजाइये जब आप मर्त्यलोक छोड़देंगे तब फिर यहां मँगालिया जायगा हरि अच्छा कह पारिजातको ले पृथिवीतलको आय चलते समय देव सिद्ध मुनियोंने स्तुतिकी द्वारका के निकट पहुँचतेही हरिने शङ्ख बजाया जिसके सुननेसे वहां के वासी परमानन्दित हुये सत्यभामा सहित गरुड़से उतर पारिजात सत्यभामा की फुलवारी में लगादिया जिसके नीचे जानेसे सब लोगोंको पूर्वजाति का स्मरण होजानेलगा व उसकी सुगन्धि से तीन योजनतक पृथिवी चारोंओर सुगन्धित होनेलगी सब यदुवंशीलोग जब उस वृक्ष के नीचे खड़ेहोते थे तब अपना को अपनी पूर्वजाति देवता रूप देखने कृष्णचन्द्रने फिर भौमासुर के

किङ्करों के साथ जो हाथी घोड़ रत्न कन्यादि भेजे थे देखे जो कन्या भौमासुर ने जहा तहा से लाय एकत्र की थीं उनका विवाह हरि ने एक शुभमुहूर्त्त में १६१०० मन्दिरों में इतनेही रूप बनाय करलिया। जिसमे एकही समय में एक एक कन्या के साथ विवाह हुआ इमसे उनमें से प्रत्येक कन्या ने यही जाना कि मेराही विवाह हरि के सङ्ग हुआहै और रात्रिको निश्चय हरि सबके घरों एक एक मूर्त्ति से सोये ॥

बत्तीसवां अध्याय ॥

दो॰ बत्तिसयें अध्याय महँ हरि सुत शेष बखान ॥
अरु ऊषा अनिरुद्धकर ब्याह कहब जस ज्ञान ॥ १ ॥

पराशरमुनि बोले प्रद्युम्नादि हरिके पुत्र रुक्मिणी में से उत्पन्न तुम से कह चुके अब अन्यस्त्रियों के भी सुनिये भानु व भैमरिक सत्यभामा के पुत्र हुये दीप्तिमान् आदि रोहिणी के और जाम्बवती के साम्बादिक महाबली उत्पन्न हुये नाग्निजिनी भद्रविन्दाके बड़े प्रतापी पुत्र हुये संग्रामजित आदि शैव्या से जन्मे माद्रीके वृकादि हुये लक्ष्मणा के गात्रवान् आदि कालिन्दी के श्रुतादिक हुये इनको छोड़ अन्य स्त्रियों में सब ८०८८०० पुत्र हुये इन सब में रुक्मिणी के सुत प्रद्युम्न सब से बड़े हैं प्रद्युम्न से अनिरुद्ध तिन से वज्र अनिरुद्ध का विवाह बलिकी पोती बाणासुरकी कन्या ऊषाके भी साथ हुआ जिस विवाहमें हरि हरमे बड़ा संग्राम हुआ जिसमें बाणासुरके १००० भुजों में से ९९८ हरि ने काटडाले इतनी कथासुन मैत्रेयजी पूछने लगे कि हे मुनिराज। ऊषा के निमित्त शङ्कर से कृष्णचन्द्र से कैसे युद्ध हुआ व हरि ने बाणासुर के बाहु कैसे काटे यह कथा सुनने को हमारी बड़ी इच्छाहै आप कृपाकर सुनाइये पराशरजी बोले बाणासुरकी कन्या ऊषा ने महादेव पार्व्वती को एकसङ्ग क्रीड़ा करते हुये देखा उसने भी चाहा कि मुझको भी जो पति मिलता तो क्रीड़ा करती गौरी जी तो सब के चित्त की बात जानेवाली है उन्होंने कहा उपताप न करो तुम भी अपने पति के साथ विहार करोगी जब ऊषा ने ऐसा सुना तो अपने मन में कहा कब हम पति के संग विहरेंगी व कौन हमारा पति होगा जब ऐसा विचार किया तो पार्व्वती जी ने फिर कहा हे राजपुत्रि। बैशाखकी शुक्ल द्वादशी को स्वप्न में जो तेरे संग भोग करेगा वही तेरा भ[illegible]

होगा यह सुन ऊषा अपने घर आई जब वह तिथि आई तो स्वप्न में एक पुरुष ने आय अच्छीरीति से उसके सग मैथुन किया उसमें उसकी प्रीति भी बहुत बढ़गई जब जागी तो पतिको अपने पास न देख कहा गये २ निर्लज्जहो सखी से ऐसा कहने लगी बाणासुर का मन्त्री कुम्भाण्ड था उसकी कन्या का चित्रलेखा नाम था वही ऊषाकी सखीथी वह बोली यह कौनहै जिससे ऐसा कहती हो जब लज्जामें आय उसने कुछ न बताया तब उस सखीने विश्वास में लाय उस से सकल वृत्त पूछ लिये जब सखी सब जानगई तो ऊषा ने कहा पार्वती जी ने हमसे कहा है कि स्वप्नमें तेरेसग विहार करनेहीवाला तेरा पति होगा सो अपि सखि ! अब वह उपाय बता जिसमें वह हमारा पति हो तब चित्रलेखा वस्त्र पै प्रधान २ देवासुर गन्धर्व मनुष्य लिख उसे देखानेलगी तब वह देवासुर गन्धर्वादिकों को छोड़ मनुष्यों को देखनेलगी मनुष्यों में भी वृष्णिवंशियों को बहुत उनमें भी जब कृष्णचन्द्र व बलदेव जी को देखा तो लज्जाके मारे जड़ होगई प्रद्युम्न को देख मारे लज्जाके अनग मुख करलिया जब प्रद्युम्न के तनय अनिरुद्ध को देखा तो लज्जा छोड़ एकटक देखनेलगी व कहने कि सो यही है सो यही है यह सुन चित्रलेखा अपनी सखी ऊषा को समझाय द्वारकाको योगाभ्यासके कारणशीघ्रगई ॥

तेंतीसवां अध्याय ॥

दो॰ तेंतिसयें अध्याय महँ बाणयुद्ध विस्तार ॥
जहँवहुबाहुहिंबाहुभा बाण कृष्ण करदार ॥ १ ॥

पराशरमुनि बोले कि एक दिन बाणासुरने महादेवजी से हाथ जोड़ कहा हे देव ! ये जो सहस्रबाहु आपने मुझको दिये हैं ये बिना किसी से लड़ेहुये भारस्वरूप हैं सो बताइये इनभुजोंकी साफल्य करानेवाला सग्राम कहां होगा नहीं तो बिना युद्ध भारस्वरूप भुजों से मुझको कौन लाभहै यह सुन शङ्करजीबोले हे बाणासुर ! जल्दी न करो जब यह तुम्हारी पताका अपनेआप गिरपरै तब ऐसा रणहोगा जिसमें मांसाशी जीव परमानन्दितहोंगे यह सुन शिवसे नति हर्षितहो भवनमें आय घरको आया देखै तो पताका टूटी परी है उसे देख और

हर्षित हुआ। कि भला लड़नेवाला तो मिलेगा। इसी बीचमें योगक्रियाके बलसे चित्रलेखा अनिरुद्धको द्वारकामें सोतेहुये सहितपलँग उठालाई व अपनी सखी ऊषाकोदिया कि वह उनके संग भोग विलास करने करानेलगी रखवार दैत्योंको जब ये समाचार मिले तो उन्हों ने जाय बाणासुरसे कहा उसने तुरन्त अनिरुद्ध के मारने व पकड़ने के लिये सेनाभेजी पहुंचतेही अनिरुद्धजी ने मारडाली तब रथारूढ़हो मारडालने के विचारसे वहां आप आया पर पराजित हुआ तब बड़ा लज्जितहुआ मन्त्री के कहनेसे मायायुद्ध करनेलगा जिसमें कि नागपाश में अनिरुद्धजी को बँधुआ कर लिया वहां यदुवंशियों में बड़ा हल्ला मचा कि अनिरुद्ध कहां गये उसी समय नारदमुनि ने बताया कि वेतो बाणासुरके यहां बँधुआ हैं यह सुनतेही कि योगबलसे कोई स्त्री उठालेगई है यदुवंशियों ने लड़ाई की तैयारी की श्रीहरि गरुड़ को बुलाय सवारहुये बलराम प्रद्युम्नादि सब को संगले बाणासुरकी पुरी शोणित पुरको गये पुरी में प्रवेश करतेही महादेवके गण प्रमथसञ्ज्ञक जो पुरकी रक्षाकरते थे उनसे लड़ाईहुई उन्हें तुरन्त मार हरिपुरमें पैठे पैठतेही बाणासुरकी रक्षाके लिये तीन पाँयें व तीनशिर का महादेव का ज्वर वहां रहताथा उससे हरिसे युद्ध होनेलगा उस ज्वरका ऐसावेग था कि कृष्णचन्द्र व बलदेव दोनोंभाई तिसके तापसे तापित हुये तब हरिने अपनी देहसे शीतज्वर निकाला जिससे उनदोनों ज्वरों से लड़ाई होनेलगी वैष्णव ज्वरसे माहेश्वर ज्वर हारगया तो ब्रह्माजी के शरणगया उन्होंने आय क्षमाकराया माहेश्वर ज्वर व वैष्णव दोनों शान्तहोगये हरिने कहा जो हमारा तुम्हारा संवाद मनुष्य स्मरण करेंगे तो उनको ज्वरकी पीड़ा न होगी तिसके आगे ५ अग्नियों की रखवारी थी उन्हेंभी हरिनेजीता आगे दानवोंकीसेनाथी उसे भी हरिने संहारा तदनन्तर सबसेनासे बाणासुर कार्त्तिकेय शंकर जी सबके सब श्रीहरिसे लड़नेलगे इस हरि शंकरके महाघोर युद्धमें सबलोग डरने लगे देवताओंने माना कि अब त्रिलोकी की प्रलयहोगी चाहती है हरिने उसीबीचमें जृम्भणास्त्र छोड़ा जिसके लगने से महादेवजी जँभुआने लगे उसी बीचमें हरि ने सकल दैत्यगण व प्रमथ गणोंका संहार करदिया महादेव जी मारे जँभाई के ऐसे व्याकुलहुये कि रथमें सोयरहे लड़नेकी सामर्थ्य जाती रही षडाननके वाहन मयूर को तो गरुड़ने घायल किया प्रद्युम्नजीने भी उनको बहुत पीड़ित किया

कृष्णचन्द्रने ऐसी हुंकीगरी कि कार्त्तिकेय रणमे चलेगये जब कृष्णचन्द्रने शिव को जृम्भित्र दैत्यों को विनाश कार्त्तिकेयकी पराजय व प्रमथ सैन्यका नाश किया तो तो बड़े भारीरथपै सवारहो कृष्ण व बलराम व प्रद्युम्नके सायलड़ने के लिये बाणासुर आपआया बलरामजी ने आनेही के साथ उसकी सबसेना मार डाली जो कुछ बचीबचाई भागगई जब बाणासुरने यह दशादेखी कि पहुँचतेही मेरीसेना बलरामने हलसे खींच२ मूसरसे सबकी सब कूटडाली तो कृष्णचन्द्रसे क्रुद्धहो बाणावरी करने लगा बाणासुरके मारे बाण हरिने अपनेबाणों से काट डाले तब कृष्णचन्द्र के बाणासुर व बाणके हरिने बाण मारे यहां तक कि दोनों परस्पर अपनी विजय दूसरेकी महापराजय चाहते थे जब बाणासुरके व हरिके सम्पूर्ण शस्त्रास्त्र लड़ने २ टूटगये तो हरिने बाणासुरके मारने को मन किया व बाणासुरने हरिकेमारनेको इसलिये हरिने तो सुदर्शनचक्र उठाया व बाणासुरने सैकरों सूर्यों केसमानवाली शक्ति जब ऐसाहुआ तो कोटिवीनाम दैत्योंकी विद्या हरिके आगे स्त्री स्वरूपसे नगीहो आन खड़ी हुई तिस को नंगी आगे देख हरिने नेत्र मूद बाणके बाहु काटनेही के लिये सुदर्शन छोड़ा मारडारने के लिये नहीं सुदर्शन ने सब बाहु बाणासुरके काटडाले जब फिर सुदर्शन हरिके हाथमें आये तो हरि ने चाहा कि अब फिर चलावें जिससे बाणासुर के प्राणभी जाते रहें यह बात महादेवजी ने भी जाना कि झटपट आय बाहु कटेहुये रुधिर बहते हुये बाणको देख श्री हरिसे बोले हे कृष्ण। २ हे जगन्नाथ। हम तुमको जानते हैं कि पुरुषोत्तम परेश परमात्मा आदि मध्यान्त हीनहो यह जो नर वेषमें देह धारण किया सो लीलाही लीला है तिससे प्रसन्न हूजिये हमने इस बाणासुरको अभयदान दियाहै उसे आप मिथ्या न कीजिये हमारे वरदान से इसको बड़ाबल हुआ और इसी से इसने आपके साथ अपराध किया इसी हेतु हम क्षमा कराते हैं अब जानेही दीजिये यह अपने किये को पहुँचगया यह सुन बाणासुरके ऊपर क्रोध मिटाय प्रसन्नवदनहो हरिहर से बोले हे शंकर। आपने जो वर दियाहै तो अब यह जीतारहै हमने तुम्हारे वचनका गौरव मान सुदर्शन को निवारण किया तुमने जो अभय दिया तो हमनेभी अभय दिया क्योंकि अपना को हमसे भिन्न न जानिये जो तुमने किया हमने भी किया जो हम हैं सोई तुम हो व संसारभी हम तुम मयहै जो लोग हममें तुममें भेद जानते हैं वे अज्ञानमें

मोहित हैं यह कह हरि वहां गये जहां अनिरुद्ध नागपाश में बँधुआ थे पहुँ-
चतेही गरुड़को देख नागपाश में लगे हुये सर्प भाग खड़ेहुये तब सहित स्त्री
अनिरुद्ध को गरुड पै चढ़ाय बलभद्र प्रद्युम्नादि के सग हरि द्वारकाको आये॥

चौंतीसवां अध्याय॥

दो॰ चौंतिसयें अध्यायमहँ पौण्ड्रककाशिमहीप॥
हरि मारे काशीपुरी कृत्या दहि मानीप॥ १॥

मैत्रेयमुनि बोले हे मुनिराज! मनुष्य देहधार मुरारि ने बड़े २ अद्भुत कर्म
किये इन्द्रको जीत महादेवको भी जीता व सब अन्य वरुण कुबेर आदि देवोंको
भी जीता इसके उपरान्त और जो २ दिव्य कर्म किये हों उनके सुनने की
हमको बड़ी इच्छा है कृपाकर सुनाइये यह सुन पराशर मुनि बोले हे मैत्रेय!
नरावतार में कृष्णचन्द्रने जैसे काशीपुरी जारीहै वह हम कहतेहैं आदरसे सुनि-
ये पौण्ड्रक देशके राजा का वासुदेव नाम था उसमें वहां के रहनेवाले अज्ञानी
लोग कहने लगे कि वासुदेव तुम्हींहो उसन जाना कि सत्य २ वासुदेव हमीहैं
कुछ हमको स्मरण जातारहाहै यह विचार उसने भगवान् विष्णु के जो२ चिह्नहैं
सब अपने लिये बनवाये व कृष्णचन्द्र के पास अपना दूत भेज यह कहलाभेजा
कि चक्रादि चिह्न व हमारा वासुदेव यह नाम छोड़देगो और जीना चाहतेहो तो
हमारे शरणागत होरो जब हरिसे मिथ्या वासुदेव के दूतने आय ऐसा कहा तो
मधुसूदन भगवान् बहुत हँसके दूतसे बोले हम अपन चिह्न व सुदर्शनचक्र सब
छोड़देंगे परन्तु हे दूत! जैसे अपने स्वामी के वचन हमसे तुमने कहे हैं वैसाही
हमारेभी उन से कहना कि हमने तुम्हारी वाक्य का सब भाव जाना अब जो
कर्तव्यहै सो करो हम यहां कोई भी अपना चिह्न न छोड़ेंगे सब चिह्न व सुद
र्शनचक्र सहित तुम्हारे पुरमें आते हैं वहीं तुम्हारा सुदर्शनचक्र भी छोड़देंगे व
अपने सब चिह्न भी जो२ तुमने आनाहै दे सब कुछ पास छानकी वहां जाग
करेंगे कुछ विलम्ब नहींहै वहां तुम्हारे शरणमें आय जो कुछ विवादि करना
होगा करेंगे जिसमें फिर तुमसे कुछ भय हमको न रहै पराशरमुनि बोलेकि इतना
कह दूतको विदाकिया आपने गरुड़को स्मरणकिया फिर आये भटपट गरुड़ा-
रूढ़हो हरि पौण्ड्रक देशको चल दिये वहां काशी के राजाने सुना कि कृष्ण-

चन्द्र पौण्ड्रक के ऊपर चढ़े आते हैं आप भी बड़ी सेना ले मिथ्या वासुदेवकी सहायता को गये तब काशिराजकी सेना व अपनी बड़ीभारी फौजले पौण्ड्रक हरि से लड़ने को चला श्रीहरि ने दूरही से देखा कि बहुत चित्र विचित्र रथपै चढ़ा एक हाथ में चक्र एक में गदा एकमें खड्ग एक में कमल लिये पुष्पों की माला पहिने धनुषधारण किये पताका में गरुड़का चिह्न बनाये छातीमें श्रीवत्स चिह्न बनाये किरीट कुण्डल पीताम्बर धारण किये हुये पौण्ड्रक आताहै जब बनाय निकट आया तो भगवान् उसके लड़ाई करनेलगे इधर उधरसे बहुत अस्त्र शस्त्रादि चलेचलाये एक क्षणमात्र में जितनी सेना पौण्ड्रक व काशिराजकी थी सब मारी गई तब अपने सब चिह्न धारण किये पौण्ड्रक से श्रीहरि बोले हे पौण्ड्रक ! जो तुमने दूतके मुखसे कहलायाथा सो हम सब चिह्न अब छोड़ देते हैं व तुमको देते हैं लेवो यह चक्र भी छोड़ा गदाभी छोड़ी गरुड़ भी लेवो जल्दी चढ़ो पराशरमुनि बोले इतना कह चक्रसे तो मारा शिर अलग गिरा गदा से मार चूर्णीभूत करदिया गरुड़ने उसके मिथ्या गरुड़को तूर फारडाला राज्यके लोग हाहाकार करनेलगे तब मित्रका बदला लेनेकेलिये काशिराज लड़नेलगे भगवान्ने बाणों से उनका शिर काटडाला व अद्भुतता देखाने के लिये मारा बाणों से छेदाहुआ काशिराजका शिर जाय काशीपुरी में गिरा बस पौण्ड्रक व काशिराज दोनोंको मार द्वारका में आय स्वर्गवासियों के समान विहार करने लगे जब काशी में काशिराजका शिर गिरा तो वहां के वासी देख विस्मितहो कहने लगे यह क्या है व किसने ऐसा किया उसके पुत्रने जाना कि भगवान् वासुदेवने हमारे पिताको माराहै इसलिये वह अपने पुरोहितको सगले महादेव जी की स्तुति करनेलगा काशी सिद्ध क्षेत्र तो हैहीहै महादेव प्रसन्नचित्तहो काशिराज के पुत्र से बोले वरदान मांगो यहसुन वह बोला हे भगवन् ! आपके प्रसादसे ऐसी कृत्या उत्पन्नहो जो मेरे पिताके मारनेवाले कृष्णचन्द्रको मारडाले शिवजीने कहा अच्छा ऐसी कृत्या उत्पन्न होगी बस शिवजी तो इतना कह अन्तर्द्धान होगये होमकुण्ड से एक महाकृत्या निकली जो कि मारे ज्वाला के अतिकराल देदीप्यमान केश धारण कियेहुईथी अग्नि से निकलतेही कृष्ण कृष्ण कहतीहुई जाय द्वारका में पहुंची व चारोंओर से जारनेहीलगी उसे देख सदा भयभीतहो सब द्वारकावासी संसार के शरण देनेवाले श्रीहरि के

शरणको गये तब श्रीकृष्णचन्द्र ने विचारा कि काशिराजके पुत्र ने शिवकी तपस्या के बलसे इसे उत्पन्न किया है यह सोच सुदर्शनचक्र को आज्ञादी कि इसे तुरन्त भस्म करडालो आज्ञापातेही सुदर्शनचक्र कृत्याके पीछे लगा चक्रके प्रताप से विध्वस्तहो कृत्या भागी व भागकर काशी में पहुंची उसके पीछेही सुदर्शनचक्रभी पहुंचा तब काशिराजकी सेना व महादेवजीके प्रमथादि गण सब नानाप्रकारके शस्त्रास्त्र धारणकै सुदर्शन के सम्मुख आये सब शस्त्रास्त्र चलाने में चतुर काशिराज की सेना व शिवके गणोंको सुदर्शन ने तुरन्त भस्म करदिया तदनन्तर हाथी घोड़ा अन्य पशु पक्षी मनुष्य कोष मन्दिर वाटिका तड़ागादिसहित काशीको भी भस्म करदिया खाईं खावाँ शहरपनाह आदि सब सुदर्शनने जारा जब कुछ वहां बाकी न रहा तो विष्णुचक्र फिर विष्णु के कर कमल में द्वारका में आय शोभित होनेलगा ॥

पैंतीसवां अध्याय ॥

दो० पैंतिसयें अध्याय महँ कुरुवंशिन बलराम ॥
मन्थन करि साम्बहि तहां ब्याही कहब समाम ॥ १ ॥

इतनीकथा सुन मैत्रेयजीने फिर प्रश्न किया हे मुनिनाथ! हम फिर श्रीमान् बलदेवजीका पराक्रम सुना चाहते हैं कृपापूर्वक आप सुनाइये यमुना कर्षणादि लीला तो बलदेवजी की सुनी पर और कुछ कियाहो सो भी कहिये यहसुन पराशरमुनि बोले मैत्रेयजी सुनिये अनन्त अमेय शेषावतार धरणीधर बलदेव जीने जो कर्म कियाहै कहते हैं कुरुवंशी राजा दुर्योधन की कन्याका स्वयंवर हुआ उसमें जाम्बवती के पुत्र साम्बजी जबरदस्ती उस कन्याको ले भागे तब महापराक्रमी शूरवीर कर्ण दुर्योधन भीष्म द्रोणाचार्यादिकोंने बड़ाकोपकै लड़ाई में उस बेचारे लड़के साम्बको जीत बँधुआ करलिया यहसुन यादवों ने दुर्यो धनादि के ऊपर बड़ा कोपकिया व सब कुरुवंशियों के मारडालने का उद्योग भी किया तिन सबको मनाकर पचहार बलदेवजीने शान्तकिया व कहा हम जाके कुरुवंशियों के निकट जाते हैं व हमारे कहने से लड़के को छोड़ देंगे यह कह बलरामजी हस्तिनापुर को गये नगरके बाहर एक फुलवारी में उतरे भीतर नहीं गये बलदेवजी को आयेसुन दुर्योधनादि कौरवों ने अर्घ्यपाद्यादि से सत्

उनको पहुचाया जब सब कुरुवंशी बैठे तो बलरामजीने कहा उग्रसेनकी आज्ञाहै आपलोग साम्बको बहुतही शीघ्र छोड़देवें यहसुन भीष्म द्रोणाचार्य कर्ण दुर्योधनादिकों ने बड़ा कोपकिया बाह्लीकादि कौरव यह देख कि यदुवंशियों में तो कोई राजाही नहीं होता बलदेव क्या कहते हैं इसलिये कोपसहित वचन बोले हे बलदेव ! यह क्या तुमने कहा भला कुरुवंशियों को किस यदुवंशी ने आज्ञादी है यदि उग्रसेन भी कौरवों को आज्ञा देनेलगे तो राज्य के योग्य श्वेतच्छत्र व चमरका कुरुवंशियों के यहां कौन प्रयोजन रहा तिससे बलभद्र चलेजाइये इस अन्यायी पापी साम्बको न हम तुम्हारे कहनेसे छोड़ेंगे न उग्रसेन के हम लोग कौरव यादवों के मान्यहैं सदा वहीलोग हमारे प्रणाम करते रहे अब आज्ञा कैसे करने लगे यह तो ऐसाही हुआ जैसे किसीका सेवक स्वामीही को आज्ञा देनेलगे वाह २ सो कुछ तुमलोगोंका दोष भी नहीं हमीलोगोंका दोषहै जो तुमलोगों को अपने साथ बैठाय उठाय भोजन कराय एकशयनपै सोवाय अहङ्कारी कराय दियाहै सो यह अन्यायही कियागया है क्योंकि नीतिमें लिखा है कि सब छोटों बड़ोंके सङ्ग राजाको प्रीति न करनी चाहिये हमलोगोंने जो अर्घ्यपाद्यादि तुमको दियाहै सो प्रीतिहीके हेतुसे नहीं तो हमारे कुलको यह उचित नहीं जो तुमको पाद्यादिदें पराशरमुनि बोले कुरुवंशी बलदेवसे ऐसा कह अपने मनमें यह ठान कि साम्बको न छोड़ेंगे वहां से उठ नगरको चलेगये तब मारे कोप के बलदेव जी ने पृथ्वी से उठके लातमार व ताल ठोंका जिसके शब्दसे सब दिशा पूर्ण होगईं फिर आंखें नीलीपीली कर भौंहें टेढ़ी के के बोले बड़े आश्चर्यकी बातहै जो इन दुष्टनिर्बल कौरवोंको इतना घमण्डहै अब इनका राज्य हमलोगों से भी बड़ाहोगया सो न, कि अब ये उग्रसेनकी भी आज्ञा नहीं मानते जिसका उल्लंघन कोई भी नहीं करसक्ता देवताओंके साथ इन्द्र भी जिसकी आज्ञाकी इच्छा किये रहते जो सुरराज की सुधर्म्मा सभाको भोगते तिसउग्रसेन को धिक्है जो ऐसे मनुष्यों के जूठे फूटे राज्यकी इच्छाकरैं क्योंकि जिसके नौकर चाकर पारिजातके पुष्पोंकीमाला पहिनतेहैं फिर ऐसेभी उग्रसेन राजा नहीं हैं तो ये दुष्टराजा कब हुये उग्रसेन तो आजकल सब राजाओंके राजाहैं यह तो ठीकहै इससे आज पृथ्वी में कुरुवंशी न रहने पावेंगे सब को उच्छिन्न करदेंगे तब द्वारकाको जायँगे कर्ण दुर्योधन द्रोणाचार्य भीष्म

बाह्लीक दुश्शासन भूरि भूरिश्रवा सोमदत्त शल भीम अर्ज्जुन युधिष्ठिर नकुल सहदेव इन सब को सहित सेना हाथी घोड़ोंको मार अभी वीर साम्बको सहित स्त्री द्वारकाको लियेजाते हैं जाप अपने भाईबन्धु द्वारकावासियोंको देखते हैं अथवा एक २ को ढूंढ़ढूंढ़ कौन मारता फिरेगा पृथ्वीका भार उतारनेके लिये इन्द्रने कहा भी है हास्तिनापुर नगरही गंगा में उलटादेवें जिसमें सबके सब दुष्ट कौरव समाप्त होजावें यह विचार कोपयुक्त हो हल नीचे कर हस्तिनापुरकी शहरपनाह में लगाया व गंगाकी ओरको खींचा खींचतेही नगर कम्पाय नदी की ओर झुँका तहांके रहनेवालोंको जानपरा कि बस अब जाताहै यह दशा देख सब कौरव रोते पीटते हाय २ करते आय बलभद्रजीके चरणोंपे गिरे हे राम २!! क्षमा कीजिये २ कोप शांत कीजिये यह आपका लड़का साम्ब सपत्नीक हाजिरहै लीजिये हमलोग आपके प्रभावको नहीं जानतेथे क्षमाकीजिये यह कह सब कौरव सस्त्रीक साम्बको रथपै चढ़ाय बहालाये तब भीष्म द्रोण कृपाचार्य को बलदेवजीने प्रणाम किया व कहा नाथ हमने क्षमाकिया व हस्तिनापुर अबभी गंगाजीकी ओरको झुँकाहुआ बलरामजी का पराक्रम सूचित कराता है ऐसे बलदेवजीहैं तब सब कौरवों ने दायजदे साम्ब को अच्छी तरह बलदेवजी के संग भेजा पुत्र पुत्रवधू व बहुत दहेज ले बलरामजी द्वारका को आये ॥

छत्तीसवां अध्याय ॥

दो॰ छत्तिसयें अध्याय महँ द्विविद हत्यो बलराम ॥
जो आयो मित्रोपचिति करन हेतु अति वाम ॥ १ ॥

पराशरमुनि बोले हे मैत्रेय! जो कुछ बलदेवजीने और कियाहै सोभी सुनिये देवपक्षविरोधी नरकासुरका मित्र एक द्विविद नाम बानरथा उसने विचारा कि नरकासुर मेरे मित्रको देवताओंके कहनेसे कृष्णचन्द्रने मारडाला इसलिये मैं अब देवोंको जहां पाऊं मारूं व उनके लिये उपद्रव करूं पहिले तो सब यज्ञविध्वंसकरूं फिर धीरे २ मर्त्यलोकही नाश करूं क्योंकि इसीलोकके लोग यज्ञ करके कराते तो देवता खातेपीते हैं यह सोच यज्ञविध्वंस करने साधुमार्ग नाशने व मनुष्यों को मारनेलगा ऐसा चलताथा जिधर नाना देश ग्राम नगर

हो तो यहीं रहिये व हम देव अनुयायियों को आज्ञा देते रहिये यह सुन श्रीहरि बोले हे वृद्ध! जो २ तुमने कहा वह सब हमभी जानते हैं पर अभी पृथ्वी का भार अच्छी रीतिसे नहीं उतरा था अब प्रारब्धवश यदुवंश नाश होने के लिये भी ब्राह्मणों का शाप होगया है ये भी मरेंगे तो धरणीभार उतर जायगा क्योंकि ये बढ़ेहुये यदुवंशी महाभाररूप थे इनको कोई भी न मारसक्ता सो अब ७ रात्रिमें सबको समाप्त कराय पृथ्वीभार उतार हमभी चलेआते हैं जैसे हमने समुद्र मे भूमि माग द्वारका बसाई थी वैसे अब फिर समुद्र की भूमि समुद्रको दे स्वर्गको आनेहैं मनुष्य देह छोड़ बलभद्र प्रद्युम्नादिकों के साथ स्वर्ग में पहुँचेहीहुये महित देव इन्द्र हमको जाने धरणी भार उतारने के लिये जो जरासन्धादि राजा मारेगये वे यदुवंशियों के एक छोटेसे लड़के को भी नहीं मारसक्ते थे तिससे इन महाभार रूप यादवों को भी संहार करलेवें तो परलोक की रक्षा करने के लियेजावें जाय दोनोंसे कहो पराशरमुनि बोले जब इस रीतिसे हरिने देवदूत से कहा तो वह हरिके प्रणामकै दिव्यचाल से इन्द्रके पास पहुँचा यहां भगवान् भी द्वारकापुरी में पृथ्वी अन्तरिक्षादि के नानाप्रकार के उत्पात देखनेलगे जिनसे द्वारकापुरी का नाश सूचित होनेलगा तब सब यादवों से हरि बोले देखो ये बड़े २ उत्पात होतेहैं इनके शान्त होने के लिये चलो प्रभासक्षेत्र को चलें यह सुन उद्धवने जाना कि उत्पात तो क्या नाशहोंगे नाशहोने के लिये सबको प्रभासक्षेत्र को भेजतेहैं इसलिये वे हरिसे हाथजोड़ बोले हे भगवन्! इस समय जो हमको कर्त्तव्यहो सो आज्ञादीजिये हम जानते हैं कि आप इस कुल को विनाशोगे क्योंकि इन उत्पातों से इनका नाशही विदित होताहै तब श्रीभगवान् बोले हे उद्धव! तुम हमारे प्रसाद से दिव्य गति पाय गन्धमादन पर्व्वत पै बदरीवन को चलेजावो वहां नरनारायणजी का स्थानहै इसमें चित्तलगाय हमारे प्रसादसे हमारी गति पावोगे हमभी यदुकुल का संहारकर स्वर्ग को जायँगे हमारे चलेजाने पै समुद्र द्वारकापुरी को बोरडालेगा यह सुन हरिके प्रणामकर उद्धवजी नरनारायणाश्रमको चलेगये तिसके पीछे सबयदुवंशी रथोंपै चढ़२कृष्णचन्द्र बलराम के साथ प्रभासक्षेत्र में पहुँचे वहां सबोंने स्नान दानादि किया वासुदेवभगवान् की प्रसन्नतासे सबोंने मद्यपान भी किया पीनेहीं परस्पर बड़ा वाद विवाद उनमें हुआ जो वंशनाश करने को कराल अग्निही हुआ

यहांतक कि नाना भांतिके शस्त्रास्त्र चलनेलगे जब सब आयुध टूटफाटगये तो उसी शापित लोहके चूर्ण से उत्पन्न एरकानाम खरको सबोंने उखाड़ा व एक दूसरे को मारनेलगा उस खरके मारने से वज्रके समान चोट लगती थी प्रद्युम्न साम्ब कृतवर्म्मा सात्यकि अनिरुद्ध पृथु विपृथु चारुवर्म्मा चारुक व अक्रूरादि ये सब एरकारूप वज्रोंसे मारनेलगे श्रीहरिने रोका पर इनको भी सहायक जान सब के सब मारने दौरे तब हरिने भी कोप से एरका लिया व उसमे सब बड़े बड़े आततायियों को मार गिराया बचे बचाये सब परस्पर कटपिट बराबर होगये तब समुद्र के मध्यसे मैत्रनाम रथ श्रीहरि का दारुक सारथि लेआया उसपर चक्र गदा धनुष् तरकस खड्ग शंख ये सब धरेथे सबोंने मनुष्यरूप धारणके हरिके प्रणामकर सूर्यमार्ग हो स्वर्गकी राहली एक क्षणमात्र में कृष्णचन्द्र व दारुक सारथि को छोड़ यादवों में कोई भी जीता न रहा कृष्णचन्द्र व दारुकने देखा तो एक वृक्षके नीचे घायल बलदेवजी बैठेहैं उनके मुखसे बड़ाभारी सर्प निकल समुद्रमें चलागया वहां उसकी बड़ी पूजाहुई समुद्र अर्घ्यपाद्याचमनीय ले खड़ाहुआ उसे ग्रहणकर सर्पोंसे पूजित जलमें प्रवेश करगया बलदेवजी की यात्रादेख कृष्णचन्द्र ने दारुक से कहा कि तुम जाय उग्रसेन व वसुदेवजी से यादवों का नाश बलदेव की यात्रा सबकहो हमभी अभी योगाभ्यास से शरीर छोड़ निजधाम को जाते हैं जो कोई द्वारका में रहगये हों उनसे यहभी कहना कि अब इस द्वारका को समुद्र बोरदालेगा तिस से रथांपे सवारहो अर्ज्जुन के आनेकी प्रत्याशा कियेरहैं जैसेही वे आवें तुरन्त सब उनके संग चलेजावें विना उनके क्षणमात्र भी द्वारका में न रहैं हस्तिनापुर जाय अर्जुनसे भी हमारा सन्देश कहना कि जो कोई मरते बचते हमारे जन व स्त्रियां बाकीरहैं उनकी रक्षा करते रहैं यह कह अर्ज्जुनको ले द्वारका जाना सबको ले लेजायेंगे वज्र राजा किये जायँगे पराशरमुनि बोले यह सुन दारुक बार बार हरिके प्रदक्षिणाकै जैसा बतायाथा वैसा करनेगया अर्ज्जुन को हस्तिनापुर से बुलाय द्वारका लेगया वहां सबके सन्देश कहा भगवान् भी यहां वासुदेवात्मक परब्रह्म का ध्यान अपना में कर अपनाको सब प्राणियों में धारणकरतेहुये बैठ फिर दुर्वासा मुनि ने एकसमय कृष्णचन्द्र से कहाथा कि आपके चरण में बाण लगने से शरीर छूटैगा उसे स्मरण कर योगयुक्तहो बलभी बाएं वृक्ष के नीचे बैठगये

उसी समय मूसर से बचेहुये लोह को बाण की फोंकपर धराय जरानाम लुब्धक आया उसने दूरसे भगवान् का चरण कमल मृगाकार देख वहीं बाण चलाया कि हरिके पाद कमल में लगा निकट जाय देखा तो चतुर्भुजी मनुष्य आप बैठेहैं भयभीतहो बार २ प्रणाम करने लगा व कहने लगा कि महाराज मैंने बिना जाने आपको मारा मेरे अपराध क्षमाकीजिये नहीं तो आपके कोपानल से भस्महोजाऊंगा श्रीहरिने कहा तेरी कुछभी भूल नहीं न कुछ पापहै ना हमारे प्रसाद से तुझे स्वर्गवास मिलेगा उसीसमय विमान आया उसपे वह लुब्धक स्वर्गको चलागया जरा के चलेजाने पै ब्रह्मभूत अव्यय अचिन्त्य वासुदेवमय अमल अजन्मा जरारहित नाशहीन अप्रमेय अखिलात्मा आत्मा में आत्मा को संयोजितके श्रीहरि ने त्रिविध गतियों को लांघ मनुष्य शरीर त्याग किया ॥

अड़तीसवां अध्याय ॥

दो० अड़तिसयें अध्याय महँ हरि तिय लै पार्थ पार्थ ॥
गोपन सों हारे कहत वज्र सुराज्य यथार्थ ॥ १ ॥

पराशर मुनि बोले कि अर्जुनजीने कृष्णचन्द्र व बलराम जीके मृतक शरीर ढूंढ़ ढुँढ़ाय सब मृतक कर्म किये तिसके पीछे अन्यलोगों के भी कर्म किये बताये कृष्णचन्द्र की जो रुक्मिणी आदि ८ पटरानियां कहीथीं सब श्रीहरिके शरीर के साथ अग्नि में जलगईं रेवती नाम बलरामजी की स्त्री अपने पति का शरीर ले भस्महोगई उग्रसेन वसुदेव देवकी रोहिणी यह सब हाल सुन अग्नि में प्रवेश करगये व गई तब इनसबोंके भी प्रेतकर्म अर्जुनजी करकराय कृष्णचन्द्र की शेष स्त्रियों व वज्रको ले हस्तिनापुरको चले मार्गमें सब हरिकी स्त्रियों व वज्रकी पालना करतेहुये धीरे धीरे जातेथे सुधर्मा सभा व कल्पवृक्ष जैसेही हरिने मर्त्यलोकको छोड़ा स्वर्ग को चलेगये जिसदिन पृथ्वीतल छोड़ भगवान् हरिपरमधामको गये उसीदिन यह दुष्ट कलिकाल आया व हरिके जानेसे दूसरेही दिन रुक्मिणीजीका मन्दिर छोड़ सारी द्वारका समुद्र ने बोरडाली उस मन्दिर को अबतक समुद्र नहीं बोरसक्ता क्योंकि वहां श्रीहरि नित्य विहार करते आये हैं वह स्थान विष्णुकी क्रीड़ाका स्थान होनेसे अतीव पुण्यदायक व पवित्रहै

जो इसका दर्शन करता सब पापोंसे छूटजाताहै अर्ज्जुनजी पञ्चनदमें आय कहीं उत्तमस्थान देख सब जनों के सुख के लिये ठहरगये चोरों ने देखा कि अकेले अर्ज्जुन १६१०८ अनाथ स्त्रियां लिये जाते हैं लावो छीनलेवें ने सब अहीर थे एकत्रहो पापियों ने सम्मत किया कि अकेले धनुर्द्धारी अर्ज्जुन नाथरहित इन स्त्रियों को हम लोगों का अनादर कर लिये जातेहैं इम से ऐ भाइयो! सब को धिक्कार है और इनको भीष्म द्रोण जयद्रथ कर्णादिकों को मारडालने से बडाघ मण्ड है हम लोग गवई गावँ के रहनेवालों के बलको कुछ जानतेही नहीं इम से नानाप्रकार की अलौकिक माया करके लाठी पाठीले इस दुष्टको जीतही लेना चाहिये क्योंकि हमलोग नीचों का यह बड़ा अपमान करताहै यदि इसे भी न जीत लिया तो हमलोगों के बाहुबलसे क्याहुआ यह विचार लाठीपाठी लियेहुये सहस्रों चोर अर्ज्जुन के ऊपर दौरे तब अर्ज्जुनजीने हँसके उन अहीरों से कहा हे धर्मज्ञो! यदि इसी समय मरनेकी इच्छा न हो तो लौटजाओ परन्तु उन दुष्टों ने न माना अर्ज्जुन का अपमानकर सब धन व कृष्णचन्द्र की स्त्रियों को ले लिया तब अर्ज्जुन जीने चाहा कि गाण्डीव धनुष् चढ़ावें व एकहीबार में सबको विध्वंसें पर हरिकी इच्छा तो औरही कुछ थी उनके चढ़ाये धनुष्ही न चढ़ा देख २ कर बड़े परिश्रमसे चढ़ाया भी फिर उतरगया तब अर्ज्जुनने बहुत चिन्तनाभीकी पर अन्य अस्त्रोंका स्मरण न किया दिव्य गाण्डीवही पर बाण चढ़ाय चलाया जिससे चोरोंकी खाल तो छिदगई पर एक भी न मरा तब अर्ज्जुनने विचारा कि इन्हीं बाणोंके जोरसे अग्निको खाण्डवा वन दियागया है अब गोपोंकी लड़ाई में नहीं काम देते महाभारतमें सहस्रों महापराक्रमी राजा इन्हींसे मारे यन सब कृष्णचन्द्रहीका प्रभावथा हमारे कानेम कुछभी न होना अर्ज्जुनजीके देखतेही देखते अहीर स्त्रियोंको इधर उधर खींचनेलगे कुछ तो यह दशा हुई कुछ इधर उधर भागगईं जब बाण सब हटकाढ गये तो पार्थ धनुषही उनके ऊपर फटकने लगे पर उनके देह में कुछ जानही नहींपरा तब वे हँसने लगे कहांतक कहैं अर्ज्जुन देखतेही रहे जितनी स्त्रियांथीं सबको अहीरादि ले चलेगये तब अर्ज्जुन अतीवदुःखित हो कष्ट कष्ट कहते हुये रोदन करने लगे हाय कृष्ण! हमको त्याग चलेगये हाय सोई धनुष् वही बाण वही रथ वही घोड़े सबके सब एकही संग नष्ट होगये जैसे वेदपाठी ब्राह्मणको छोड़ अन्यको दान देनेसे नष्ट होजाताहै ऐसे

ाग्य बड़ा बलवान्है विना महात्मा भाग्यके हमारी यह दशा हुई व इन नीच गो-
की यह प्रबलता हाय हाय वहीतो मेरी भुजा वही मूका वही स्थान वही हम
र्जुन विन हरि सब असार होगया जैसे विना पुण्य कोई उत्तम कार्य नहीं
ता हमारी अर्ज्जुनता भीमकी भीमता सब हरिहीकी कीहुईथी अरे विना उन
चलीगई यदि होती तो ये अहीर न जीतपाते हाय मार्गमें ऐसेही रोते धोते
र्ज्जुन मथुरा को गये वहां वज्रको राजा बनाय आये वहांसे इन्द्रप्रस्थ को च-
आते थे मार्गमें किसी वनमें व्यासजी को देख प्रणाम किया इनको बहुत
दासदेख देरतक चिन्तनाके व्यासजी बोले पार्थ बहुत उदासीन क्योंहव क्यों
कहो तो क्या दशाहै क्या कहीं जिस स्त्रीके पति पुत्र नहीं उसके सङ्ग गमन
नहीं किया व ब्रह्महत्या तो नहीं की वा कोई बड़ी आशा से तुम्हारे पास
ायाहो उसकी अभिलाषा तो नहीं टूटी क्योंकि तुम बहुत अरुच्छाय देखपरते
वा कोई परिवारवाला भूखा नङ्गा तो नहीं आया जिसका पालन पोषण तुम
करमकेहो वा अगम्य स्त्रीके सग गमन तो नहीं किया जो प्रभाहीन होगये
वा कोई नीक मीठ पदार्थ बनवाय विना विप्रको दिये तो नहीं भोजन कर-
लया वा कृपण मनुष्य का धन तो नहीं हरलिया वा कहीं सूर्य्यमें लगी गरम
यार तो नहीं लगगई व किसीने दुष्टदृष्टि तो नहीं लगादी यदि यह नहीं तो
ीड़ित कैसे होगये व कहीं नख छूआहुआ जल तो नहीं ऊपर परगया वा कोई
ड़ा लियेजाता था उससे उछल तुम्हारे ऊपर पानी तो नहीं परगया व संग्राम
अपना से छोटोंसे तो नहीं हारे जिसमें ऐसे होगयेहो यह सुन बड़ी ऊर्ध्वश्वास
अर्ज्जुन बोले हे भगवन् ! मेरा निरादर सुनिये बल तेज वीर्य पराक्रम शोभा
ाया व धन धर्म जो कुछ हमलोगों के हरिये सो अब चलेगये जिनके मन्द२
सुकाय बोलनेसेही हम लोगोंका गौरवथा सो तिन विना तृणके समान ह-
के होगये जो पुरुषोत्तम हमारे अस्त्र बाण गाण्डीव व हमारे सारांशरूप थे वे
व चलेगये जिस हरिके अवलोकनमात्रसे श्री जय सम्पत्ति उँचाई आदि गुण
पलोगों को नहीं छोड़ते थे सो हरि सबको छोड़ चलेगये भीष्म द्रोण दुर्यो-
नादि राजा जिस हरिके प्रभाव से भस्मीभूत होगये सो हरि महातल छोड़
ये सो कुछ उनके चलेजाने से हमीं नहीं श्रीहत होगये परन्तु निश्शोभित भी
न अरुन्छाया यह पृथिवीही होगईहै जिन कृष्णचन्द्रके प्रभाव से अनिरुद्ध

इसमें भीष्मादि महारथी पाखीके समान जरे गोपोंने तिन हमको जीत लिया जिसके अनुभाव से गाण्डीव धनुष् का नाम त्रिलोकी में हुआ तिनके बिना गोपोंने लाठियों से गाण्डीव सहित हमारा अनादर किया हमारे साथ सहस्रों स्त्रिया यदुवंशी व यदुवंशविभूषण हरि की आनीथीं सो मार्ग में अहीरोंने लाठी मार २ हमारा अति तिरस्कारकर छीनलिया सो निरर्थकता होजानेका कुछ आश्चर्य नहीं हम जीतेबने हैं यही अद्भुत है क्योंकि नीचोंके अपमानके कीचड़ के चिह्न मेरेअंगमें होगये अब मुझसे अधिक कौन निर्लज्ज होगा यह सुन व्यासमुनि बोले हे अर्ज्जुन! तुम क्यों लजातेहो सब प्राणियों में कालकी ऐसे ही गति जानो कालही प्राणियोंको बनाना वही बिगाड़ना इस संसारको काल मूलजान धैर्य धारण करो नदी समुद्र पर्वत सब धरणी देवता मनुष्य पशु वृक्ष सर्प ये सब कालही के बनाये हुयेहैं व कालही से इनका नाश होता है इस संसार को कालरूप जान शान्तहोवो जैसा कृष्ण नन्द का माहात्म्य तुमने बताया वैसाही है वे पृथिवी भार उतारने के लिये अवतरे थे क्योंकि दुष्टराजाओं दैत्योंके भारसे दबीहुई पृथिवी पूर्वही हरिके शरण को गईथी उसका भारही उतारने आये थे कुछ अन्य प्रयोजन यहां न था सो सब उन्होंने किया महाभारतादि में अनेक राजाओं को विनाश करके हे महाभारूप यदुवंशी थे उन्हें भी सहारा तिसके पीछे अपने धामको चलेगये अब कोई काम बाकी नहीं रहा सो यह तो उनका कार्यही है सब प्रकार सृष्टि करते फिर पालते अन्त में नाश करते सोई इससमयभी किया तिससे हे पार्थ! पराजित होनेसे परिताप न करो पुरुषोंके पराक्रम उदयहोनेके समय होताहै जिसकाल के प्रतापसे अकेले तुमने भीष्म द्रोणादिकों को जीता सो तिन लोगों का निरादर कालवश न भया न्यून भी नहीं हुआ वह ईश्वर औरोंके शरीर में पैठ इस विश्वको पालना करता फिर अन्तकाल में नाश भी सबको करता सो जब तुम्हारा सृष्टिकर्ता था तब ईश्वर ने सबको उत्पन्न किया था जब नाशका समय आया तो उन्हीं लोगोंसे तुम्हारे वैरी बनाय मरवाडाला नहीं तो इस विषय कौन विश्वास मानेगा कि सहित भीष्म कौरवों को तुमने मारडाला व अब अहीरोंसे हारगये इनदोनों का विश्वास न मानाजाता पर यह सब ईश्वरकी लीला है जो तुमने कौरवों को जीता था व अब अहीरोंसे हारगये और जो तुम खिन्न हो विषय चाहते

भाग्य बड़ा बलवान्है विना महात्मा भाग्यके हमारी यह दशा हुई मैं इन नीच गोपोंकी यह प्रबलता हाय हाय वहीतो मेरी भुजा वही मूका वही स्थान वही हम अर्ज्जुन विन हरि सब असार होगया जैसे विना पुण्य कोई उत्तम कार्य्य नहीं होता हमारी अर्ज्जुनता भीमकी भीमता सब हरिहीकी कीन्हुईथी अबे विना उनके चलीगई यदि होती तो ये अहीर न जीतपाते हाय मार्गमें ऐसेही रोते धोते अर्ज्जुन मथुरा को गये वहां वज्रको राजा बनाय आये वहांसे इन्द्रप्रस्थ को चलेआते थे मार्गमें किसी वनमें व्यासजी को देख प्रणाम किया इनको बहुत उदासदेख देरतक चिन्तनाके व्यासजी बोले पार्थ बहुत उदासीन श्रीहत क्यों हो कहो तो क्या दशाहै क्या कहीं जिस स्त्रीके पति पुत्र नहीं उसके सङ्ग गमन तो नहीं किया व ब्रह्महत्या तो नहीं की वा कोई बड़ी आशा से तुम्हारे पास आयाहो उसकी अभिलाषा तो नहीं टूटी क्योंकि तुम बहुत भ्रष्टच्छाय देखपरते हो वा कोई परिवारवाला भूखा नङ्गा तो नहीं आया जिसका पालन पोषण तुम न करसकेहो वा अगम्य स्त्रीके सग गमन तो नहीं किया जो प्रभाहीन होगये हो वा कोई नीक मीठ पदार्थ बनवाय विना विप्रको दिये तो नहीं भोजन कर लिया वा कृपण मनुष्य का धन तो नहीं हरलिया वा कहीं सूर्य्यमें लगी गरम बयार तो नहीं लगगई व किसीने दुष्टदृष्टि तो नहीं लगादी यदि यह नहीं तो श्रीहत कैसे होगये व कहीं नख डूबाहुआ जल तो नहीं ऊपर परगया वा कोई घड़ा लियेजाता था उससे उछल तुम्हारे ऊपर पानी तो नहीं परगया व संग्राम में अपना से छोटोंसे तो नहीं हारे जिसमे ऐसे होगयेहो यह सुन बड़ी ऊर्ध्वश्वास ले अर्ज्जुन बोले हे भगवन् ! मेरा निरादर सुनिये बल तेज वीर्य पराक्रम शोभा छाया व धन धर्म जो कुछ हमलोगों के हरिथे सो अब चलेगये जिनके मन्द २ मुसुकाय बोलनेसेही हम लोगोंका गौरवथा सो तिन विना तृणके समान हलके होगये जो पुरुषोत्तम हमारे अस्त्र बाण गाण्डीव व हमारे सारांशरूप थे वे अब चलेगये जिस हरिके अवलोकनमात्रमे श्री जय सम्पत्ति ऊँचाई आदि गुण हमलोगों को नहीं छोड़ते थे सो हरि सबको छोड़ चलेगये भीष्म द्रोण दुर्योधनादि राजा तिस हरिके प्रभाव से भस्मीभूत होगये सो हरि महीतल छोड़ गये सो कुछ उनके चलेजाने से हमी नहीं श्रीहत होगये वरन निर्य्यौवन श्रीहीन भ्रष्टच्छाया यह पृथिवीही होगईहै जिस कृष्णचन्द्रके प्रभाव से अग्नि ।

इसमें भीष्मादि महारथी पावोंके समान जो गोपोंने तिन हमको जीत लिया जिसके अनुभाव से गाण्डीव धनुष् का नाम त्रिलोकी में हुआ तिनके विना गोपोंने लाठियों से गाण्डीव सहित हमारा अनादर किया हमारे साथ सहस्रों स्त्रिया यदुवंशी व यदुवंशविभूषण हरि की आनीथीं सो मार्ग में अहीरोंने लाठी मार २ हमारा अति तिरस्कारकर छीनलिया सो निश्श्रीकना होजानेका कुछ आश्चर्य नहीं हम जीतेवने हैं यही अद्भुतहै क्योंकि नीचोंके अपमानके कीचड़ के चिह्न मेरेअङ्गमें होगये अब मुझसे अधिक कौन निर्लज्ज होगा यह सुन व्यासमुनि बोले हे अर्जुन! तुम क्यों लजातेहो सब प्राणियों में कालकी ऐसे ही गति जानो कालही प्राणियोंको बनाता वही बिगाड़ता इस संसारको काल मूलजान धैर्य्य धारण करो नदी समुद्र पर्व्वत सब धरणी देवता मनुष्य पशु वृक्ष सर्प ये सब कालही के बनाये हुयेहैं व कालही से इनका नाश होना है इस संसार को कालरूप जान शान्तहोवो जैसा कृष्णचन्द्र का माहात्म्य तुमने व ताया वैसाही है वे पृथिवी भार उतारने के लिये अवतरे थे क्योंकि दुष्टराजाओं दैत्योंके भारसे दबीहुई पृथिवी पूर्व्वही हरिके शरण को गईथी उसका भारही उतारने आये थे कुछ अन्य प्रयोजन यहां न था सो सब उन्होंने किया महाभारतादि में अनेक राजाओं को विनाश करचुके महाभारतरूप यदुवंशी थे उन्हें भी सहारा तिसके पीछे अपने धामको चलेगये अब कोई काम बाकी नहीं रहा सो यह तो उनका कार्य्यही है समयपर सृष्टि करते फिर पालते अन्त में नाश करते सोई इससमयभी किया तिससे हे पार्थ! पराजित होनेसे परिताप न करो पुरुषोंके पराक्रम उत्पत्तिहीके समय होतेहैं तिसकाल के प्रभावसे अकेले तुमने भीष्म द्रोणादिकोंको जीता सो तिनलोगों का निधन कालवश से क्या न्यून भी नहीं हुआ वह ईश्वर औरोंके शरीर में पैठ इस विश्वको पालना करता फिर अन्तकाल में नाश भी सबको करता सो जब संसारकी सृष्टिरची भी तब ई- श्वर ने सबको उत्पन्न किया था जब नाशका समय आया तो उन्हीं लोगोंको तुम्हारे वैरी बनाय मरवाडाला नहीं तो इस विधान और विश्वास मानेगा कि सहित भीष्म कौरवों को तुमने मारडाला व अब अहीरों से हारगये इनदोनों का विश्वास न मानाजाता पर यह सब ईश्वरका किया हुआ है जो तुमने भीष्म को जीता था व अब अहीरों से हारगये और जो तुम विषाद करो सो जानने

मार्ग में चोरोंने छीनलिया उसकेभी समाचार तुमको सुनाते हैं अष्टावक्रमुनि बहुत दिनोंतक जलशायीहो सनातनब्रह्म जपते रहे जब देवोंने दैत्योंको जीता तो सुमेरुपर्वत पै बड़ा उत्सवहुआ उसके देखने को स्त्रिया वहा जाती थीं मार्ग में अष्टावक्रजी को देखा उसमें रम्भा तिलोत्तमादि सैकरों स्त्रियाथीं सबकी सब मुनिकी स्तुति करनेलगीं मुनितो आकण्ठ जल में खड़े तपस्या करते थे इनलोगों ने बड़ीभारी स्तुतिकी जैसे वे प्रसन्न होतेगये तैसे तैसे वे और स्तुति करती रहीं तब मुनिराज बोले हम तुम लोगोंकी स्तुतिसे प्रसन्नहुये चाहेदुर्लभ भी पदार्थ मांगोगी तो देंगे उनमें रम्भा तिलोत्तमादि उत्तम अप्सरों ने तो कहा आप प्रसन्नहुये हम् लोगोंने क्या क्या नहींपाया अन्य स्त्रियोंने कहा महाराज यदि प्रसन्नहो तो हम पुरुषोत्तम श्रीविष्णु को चाहती हैं कि हमारेपति हों मुनि ने कहा बहुत अच्छा हरि तुम्हारे पतिहोंगे, इतनाकह जलमे बाहरहुये स्त्रियोंने मुनिको देखा तो आठ स्थानों से टेढ़े महाकुरूप थे मुनिको देख जिन २ स्त्रियों को हँसाई आई तिन तिनको मुनिने शापदिया कहा हमको कुरूपदेख जाहेसे तुम हँसतीहो जावो पुरुषोत्तम पति तो तुमको अवश्य हमारे प्रसाद से मिलेंगे पर हमारे शापसे जब तुम्हारे पति न रहेंगे तो चोर तुमको लेजावेंगे तब उन्हों ने फिर मुनिकी प्रार्थना की मुनिने कहा अच्छा चोरोंके यहासे फिर इन्द्रपुरीको जावोगी हे अर्ज्जुन । इसीहेतु वे देवस्त्रिया कृष्णचन्द्र को तो प्राप्त हुई पर अन्त में उन्हें चोरोंनेलूटा तिससे अर्ज्जुन तुम कुछ भी शोच न करो उन्हीं हरिने सब संहार किया अब वहुनहीं शीघ्र तुम लोगोंका भी संहार किया चाहते हैं इसीसे बल तेज पराक्रम अभीसे हर लियाहै जो उत्पन्न होताहै उसका मरण अवश्य होताहै इसी भांति जो अत्युच्च होता वह पतित भी होता यह संयोग नश्वर है सदा नहीं रहसक्ता ॥

चौ० यासों जो अति पण्डित ज्ञानी । तेन हर्ष अरु करहिं गलानी ॥
तिनकी शिक्षा तामस लोगा । करतरहत नहिं पावत,शोगा ॥ १
तासों तुम निज बन्धु समेता । समुझि जाहु बन तपके हेता ॥
छोड़ि सकल धनधामरु राजू । चले जाहु लै भाइ समाजू ॥ २
तासों जाहु धर्म्म सुत पाहीं । कहहुजाय ममवचन सुहाहीं ॥
परसों भाइन सहित विहाई । राज्य तपस्या महँ मनलाई ॥ ३

यहसुन अर्ज्जुन गे ततकाला। जो कुछ देखा सुना हवाला ॥
सो सब निज भाइनसों भाखा। तनिकनहींजियसशय राखा ॥ ४ ॥
अर्ज्जुनसों सुनि व्यास सुबानी। धर्म्मराज आदिक विज्ञानी ॥
दीन परीक्षित कहँ सब राजू। आपगये बन सहित समाजू ॥ ५ ॥
यह मैत्रेय सहित विस्तारा। तुमसनचरित कृष्णअवतारा ॥
यादव भूषण केर निरूपा। सकल विलक्षण बहुरिअनूपा ॥ ६ ॥
इति श्रीमद्विष्णुपुराणेपञ्चमेंऽशेऽष्टत्रिंशोऽध्याय ॥ ३८ ॥

अथ विष्णुपुराणस्य ॥

षष्ठोंऽश ॥ ६ ॥

पहिला अध्याय ॥

दो० या छठयें शुभ अंश महँ अहँ आठ अध्याय ॥
मुक्तियुक्ति साधन निरति कलिप्रभाव सबगाय ॥ १ ॥
तहँ पहिले अध्याय महँ श्रवण दुखद कलिगान ॥
हरिपाण्डव निर्य्याण सब कहँव सहित विधान ॥ २ ॥

पञ्चम अंश की कथा सुन मैत्रेयमुनि पूछनेलगे हे भगवन्! आपने सृष्टि मन्वन्तर कथा व तिनके वंशोंके चरित विस्तार सहित कहे अब हम महाप्रलयके समाचार सुना चाहते हैं जो कल्पान्त में होतेहैं पराशरमुनि बोले हे मैत्रेय! प्राकृत प्रलय व कल्पान्त प्रलय में जिस रीतिसे उपसंहार होताहै हमसे यथा-विधि सुनिये एकमासमें पितरों की दिन रात्रि होती है वर्षभर में देवोंकी व जब चारोंयुग सहस्रवार बीतते हैं तो ब्रह्माका दिन व रात्रि होतीहै सत्ययुग त्रेता द्वापर व कलियुग ये ४ युगहैं देवताओं के बारह हजार वर्ष में चारोंहोते हैं प्रथम सत्ययुग व अन्तिम कलियुग को छोड़ शेष युग सदा आपने २ युग के समान होते हैं आद्य सत्ययुग में ब्रह्मा सृष्टिकरते व अन्त्य कलियुग में संहार यही इन दोनों में विशेषता है इतनी कथा सुन मैत्रेयमुनि बोले तिस कलियुग में गार

मार्ग्ग में चोरोंने छीनलिया उसकेभी समाचार तुमको सुनाते हैं अष्टावक्रमुनि बहुत दिनोंतक जलशायीहो सनातनब्रह्म जपने रहे जब देवोंने दैत्योंको जीता तो सुमेरुपर्व्वत पै बड़ा उत्सवहुआ उसके देखने को स्त्रियां बहां जाती थीं मार्ग्ग में अष्टावक्रजी को देखा उसमें रम्भा तिलोत्तमादि सैकरों स्त्रियांथीं सबकी सब मुनिकी स्तुति करनेलगीं मुनितो आकण्ठ जल में खड़े तपस्या करते थे इनलोगों ने बड़ीभारी स्तुतिकी जैसे वे प्रसन्न होतेगये तैसे तैसे वे और स्तुति करती रहीं तब मुनिराज बोले हम तुम लोगोंकी स्तुतिसे प्रसन्नहुये चाहेदुर्लभ भी पदार्थ मांगोगी तो देंगे उनमें रम्भा तिलोत्तमादि उत्तम अप्सरों ने तो कहा, आप प्रसन्नहुये हम लोगोंने क्या क्या नहींपाया अन्य स्त्रियोंने कहा महाराज यदि प्रसन्नहो तो हम पुरुषोत्तम श्रीविष्णु को चाहती हैं कि हमारेपति हों मुनि ने कहा बहुत अच्छा हरि तुम्हारे पतिहोंगे इतना कह जलसे बाहरहुये स्त्रियोंने मुनिको देखा तो आठ स्थानों से टेढ़े महाकुरूप थे मुनिको देखकेजिन २ स्त्रियों को हँसाई आई तिन तिनको मुनिने शापदिया कहा हमको कुरूपदेख जाहँसे तुम हँसतीहो जाओ पुरुषोत्तम पति तो तुमको अवश्य हमारे प्रसाद से मिलेंगे पर हमारे शापसे जब तुम्हारे पति न रहेंगे तो चोर तुमको लेजावेंगे तब उन्हों ने फिर मुनिकी प्रार्थना की मुनिने कहा अच्छा चोरोंके यहांसे फिर इन्द्रपुरीको जावोगी हे अर्ज्जुन ! इसीहेतु वे देवस्त्रियां कृष्णचन्द्र को तो प्राप्त हुईं पर अन्त में उन्हें चोरोंनेलूटा तिससे अर्ज्जुन तुम कुछ भी शोच न करो उन्हीं हरिने सब संहार किया अब बहुतही शीघ्र तुम लोगोंका भी संहार किया चाहते हैं इसीसे बल तेज पराक्रम सभीने हर लियाहै जो उत्पन्न होताहै उसका मरण अवश्य होताहै इसी भांति जो अत्युच्च होता वह पतित भी होता यह संयोग नश्वर है सदा नहीं रहसक्ता ॥

चौ० यासों जो अति पण्डित ज्ञानी । तेन हर्ष अरु कराहिं गलानी ॥
तिनकी शिक्षा तामस लोगा । करतरहत नहिं पावत शोगा ॥ १ ॥
तासों तुम निज बन्धु समेता । समुझि जाहु बन तपके हेता ॥
छोड़ि सकल धनधामरु राजू । चले जाहु लै भाइ समाजू ॥ २ ॥
तासों जाहु धर्म्म सुत पाहीं । कहहुजाय ममबचन सुहाहीं ॥
पर्सो भाइन सहित सिहाई । राज्य तपस्या मरँ मनलाई ॥ ३ ॥

यहसुन अर्जुन गे ततकाला। जो कुछ देखा सुना हवाला ॥
सो सब निज भाइनसों भाखा। तनिकनहींजियसंशय राखा ॥ ४ ॥
अर्जुनसों सुनि व्यास सुबानी। धर्म्मराज आदिक विज्ञानी ॥
दीन परीक्षित कहँ सब राजू। आपगये बन सहित समाजू ॥ ५ ॥
यह मैत्रेय सहित विस्तारा। तुमसनचरित कृष्णअवतारा ॥
यादव भूषण केर निरूपा। सकल विलक्षण बहुरिअनूपा ॥ ६ ॥

इति श्रीमद्विष्णुपुराणेपञ्चमेंऽशेऽष्टत्रिंशोऽध्याय ॥ ३८ ॥

अथ विष्णुपुराणस्य ॥

षष्ठोंऽश ॥ ६ ॥

पहिला अध्याय ॥

दो० या छठयें शुभ अंश महँ अहैं आठ अध्याय ॥
मुक्तियुक्ति साधन विरति कलिप्रभाव गयगाय ॥ १ ॥
तहँ पहिले अध्याय महँ श्रवण दुखद कलिगान ॥
हरिपाण्डव निर्य्याण सब कहँबे सहित विधान ॥ २ ॥

पञ्चमअंश की कथा सुन मैत्रेयमुनि पूछनेलगे हे भगवन्! आपने सृष्टि न्वन्तर कथा व तिनके वंशों के चरित विस्तार सहित कहे अब हम महाप्रलय के समाचार सुना चाहते हैं जो कल्पान्त में होते हैं पराशरमुनि बोले हे मैत्रेय! प्राकृत प्रलय व कल्पान्त प्रलय में जिस रीतिसे उपसंहार होताहै हमसे यथा-विधि सुनिये मनुष्यमानमें पितरों की दिन रात्रि होतीहै देवमानमें वर्षोंकी व जब चारोंयुग सहस्रबार बीतते हैं तो ब्रह्माका दिन व रात्रि होतीहै सत्ययुग त्रेता द्वापर व कलियुग ये ४ युगहैं देवताओंके बारह हजार वर्षों में चारोंहोतेहैं प्रथम स-त्ययुग व अन्तिम कलियुग को छोड़ सब युग सदा अपने २ युग के समान होते हैं आद्य सत्ययुग में ब्रह्मा सृष्टिकरते व अन्त्य कलियुग में संहार यही इन दोनों में विशेषता है इतनी कथा सुन मैत्रेयमुनि बोले जिस कलियुग में मार

चरण के धर्मका एकही पाद रहिजाता है तिसका स्वरूप आप कृपाकर कहिये पराशरमुनि बोले मैत्रेयजी कलियुगका स्वरूप जो आप पूछतेहो हम विस्तार से बखानते हैं सुनिये कलियुग में मनुष्यों की प्रकृति वर्णाश्रमों के आचार में निष्ठ नहीं होती न साम ऋक् यजुर्वेद के पढ़ने पढ़ाने में ह्यती धर्म सहित कलियुगमें विवाह नहीं होते न गुरु शिष्यका भावहोता स्त्री पुरुषोंका व्यवहारभी यथावस्थित नहीं न अग्नि व अन्यदेवोंका क्रम यज्ञादि होता कलि में चाहे जिस देश व जिस कुल में उत्पन्नहो पर जो बली हो वही सबका मालिक होता विवाह के विषय में सब वर्णों से बड़ा वही कन्या का वर होगा जो धनवान् होगा अन्य जातिपाँतिका नियम कुछभी नहीं ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य इनकी कोई जीविका न नियतरहेगी जो जौनचाहेगा वहीकरेगा कलि में जिसके मुखसे आँय बाँय साँय जो कुछ निकलगया वही शास्त्र होगया व देवताभी सबी हैं सब आश्रम भी सब के हैं कुछ नियत नहीं उपवास तीर्थयात्रा दान देना व धर्म कलि में जिसकोजैसा नीकलगता वैसाही करता चाहे शास्त्रकी आज्ञाहो वा न हो लोगोंको थोड़ेहीसे धन में धनाढ्योंकासा घमण्ड होजाता स्त्रियोंको केवल अच्छे काले चीकने आदि बालोंसेही रूपका मद होजाता रत्नादि पहिरने की कुछ आवश्यकता नहीं जब बनाय कलियुग सरायगा तो सुवर्णमणि रत्न वस्त्रादिकों के क्षयहोजाने के कारण स्त्रिया केवल बारहीं का शृङ्गार करेंगी व धनहीन पतिको कलिमें स्त्रिया छोड़देंगी क्योंकि इस युगमें स्त्रियोंका धनहीपुरुष भर्त्ता होसक्ताहै फिर स्त्रियोंके सिवाय अन्यलोगोंकोभी जो कोई बहुत कुछ देगा वही स्वामीहोगा कुछ यह नियम नहीं रहेगा कि कुलीनही कोई स्वामीहो व नीच ही सेवकहो फिर मनुष्यों की इतनीही समाप्ति मिलेगी जिसमें घर बनवासके न कि दानादि देनेके लिये लोगोंकी मतिभी द्रव्यही बटोरनेतक पहुँचेगी न कि आत्मज्ञान करनेतक द्रव्यभी अपने खाने पीनेही की कठिनता में अटेगी न कि दानादि के लिये भी कलि में स्त्रिया व्यभिचारिणी बहुधाहोंगी क्योंकि सुन्दरेही पुरुष की इच्छा उनकी होगी पुरुषभी परधन पर स्त्रीही की वाञ्छा किया करेंगे व चाहे कोई इष्ट मित्र भाई बन्धु प्रार्थना भी करे पर मनुष्य अपनी आधीकौड़ी की भी हानिकर उनको कुछ न देंगे कलि में अन्य शूद्रादि भी ब्राह्मणोंको अपने समान समझेंगे गायोंकी गुरुता दूध परहीहोगी बहुधा कलि

में अनावृष्टिही हुआकरेगी उससे भूखप्यासके मारे प्रजा सदा बादलोंकीही ओर देखाकरेगी कि कब पानी बरसाताहै जब बार २ ऐसाहोगा तो अन्य लोगभी तपस्वियों के समान कन्दमूलादि आहार करतेहुये नाशको पहुँचेंगे सदा सर्वदा कलि में अकालही पराकरेगा इस से लोग उसका क्लेश जब न सहसकेंगे तो इधरउधर जाय मरमराय जायँगे लोग विना स्नान पूजा पाठ अग्निदेव अतिथि के पूजा करेही भोजन करलेंगे जल पिण्डदानादि पितृक्रिया कोई भी न करेगा व स्त्रियां अतिचञ्चल छोटे २ डीलकी बहुत २ अन्न खानेवाली एक २ बहुत २ सन्तान उत्पन्न करनेवाली थोड़ी भाग्य व बड़ी अभिलाषा रखनेवाली होंगी व दोनों हाथोंसे मूड़ खजुआतीहुई अनादर पूर्वक स्त्रिया सासु श्वशुर पतिआदि श्रेष्ठजनोंकी आज्ञाभङ्ग करडालेंगी फिर अपने पालन पोषणमें तत्पर क्षुद्रस्वभाव देह संस्कार रहित कठोर व मिथ्यावचन बोलनेवाली होंगी फिर कलिकी स्त्रिया ऐसी दुश्शील होजायँगी कि दुष्टस्वभाव अन्यपुरुषोंकी वाञ्छा सदाकरेंगी व अपने पुरुषोंके साथ दुराचारहीकरेंगी ब्रह्मचारी लोग वेद न पढ़ेंगे न व्रतरहेंगे गृहस्थ लोग हवन दानादि क्रिया न करेंगे वानप्रस्थ लोग ग्रामोंमें जाय २ भोजन वस्त्र स्त्री आदि ग्रहण करेंगे सन्न्यासी लोग सन्न्यास छोड़ अन्य लोगोंसे नानाप्रकार के स्नेह करेंगे राजालोग पेटके ओदर से प्रजाकी द्रव्य तो हरलेंगे पर रक्षा न करेंगे तैसीही भांति व्यापारियों के ऊपर कर तो ला देंगे पर उनके माल असबाब की रक्षा न करेंगे जिसके २ हाथी घोड़े पालकी आदि होंगे वे सब राजा कहावेंगे जो २ लोग दीन धनहीन होंगे वे सेवक कहावेंगे वैश्य लोग कृषी वाणिज्य गोरक्षादि अपनी वृत्तिछोड़ परसेवा छानि छप्पर आदि छाना शूद्रों की वृत्ति अंगीकार करेंगे व दुष्टशूद्रलोग सन्न्यासियों तपस्वियोंकी वृत्तिको धारण करनेके लिये यद्यपि संस्कार रहित भी होंगे तथापि पाखण्ड वृत्ति में तत्परहोंगे अकालमें भी पेट पालनेके श्रमसे पीड़ितहो भाग २ प्रजालोग जिन देशोंमें गेहूं यव धान आदि अन्नहोते होंगे वहां बसेंगे तब वेदमार्ग नष्टहोजाने व जनोंके पाखण्डी होने अधर्म की वृद्धि होने धर्म लोप होने आदिसे मनुष्यों की आयुष् थोड़ी होने लगेगी सबलोग शास्त्र विधिसे विपरीत तप करने लगेंगे व राजालोग पापदृष्टि से प्रजा के संग वर्त्ताव करेंगे इसलिये बालकों कीही मृत्युहोने लगेगी ५।६।७ वर्षकी स्त्रियोंके व ८।६।१० वर्षके पुरुषों

के लड़की लड़के होनेलगेंगे १२ वर्षमें लोगोंका बुढ़ापा आजावेगा प्रयोजन कि २० वर्षसे आगे कोई न जीवेगा सबजन अल्पबुद्धि झूठाआचरण करने वाले अन्तष्करण के दुष्टहो थोड़ेही कालमें जड़ा नेश नाश होजावेंगे हे मैत्रेय! जब २ पाखण्ड की बढ़नी देखपरै तब २ कलियुगकी बढ़नी जाननीचाहिये जब जब वेदमार्गानुसार चलनेवाले महात्माओंकी हानि जानिपरै तब २ भी कलियुगकी वृद्धि समझनी चाहिये जब धर्मात्मा मनुष्य कुछ धर्म कर्म करनेका प्रारम्भ करें व उसकी सिद्धि न हो तो कलियुगकी बड़ी प्रधानता जाननी चाहिये जब २ यज्ञ करनेवाले लोग विष्णु भगवान् पुराण पुरुषोत्तम के लिये यज्ञ न करें तब २ कलियुगही का बल बूझना जब वेदवचनमें मनुष्यों की प्रीति न हो व पाखण्डमें हो तब अवश्य कलिकाल की प्रबलता समझनी चाहिये कलियुगमें जगत्पति जगत्कर्त्ता परमेश्वर विष्णुकी पूजा पाखण्ड मार्गों में आय मनुष्य न करेंगे पाखण्ड के मारे सत्यानाशहो लोग कहने लगेंगे कि देवता पूजन विप्रोंको भोजन देने वेदवचन मानने से क्या है व मेघ थोड़ी वर्षा करेंगे अन्न कम उपजेगा फलोंमें बहुत कम गूदा निकलेगा सब वस्त्र सन सुतरी आदि केही होजायँगे सब वृक्षोंके पत्ते फल शमी वृक्षके पत्ते फलोंके समान छोटे होजायँगे ब्राह्मणादि वर्ण सब शूद्रमय होंगे लोगोंके बड़े मान्य गुरु सासु श्वशुर होंगे सारेआदि सब सुहृद गिनेजायँगे लोग श्वशुरोंके पीछे लगेहुये यह बकते फिरेंगे कि किसकी माता किसके पिता जब पुरुष अपने कर्मही के अनुसार भोगताहै तो ये क्या करते व करेंगे कायिक वाचिक मानस पापों के करनेसे यद्यपि लोगोंको बड़े २ कष्टहोते भी रहेंगे तथापि अल्पबुद्धि नर प्रति दिन पाप करतेही जायँगे मिथ्यालापी शौचहीन निर्लज्ज मनुष्यों के लिये जो २ वस्तु कलिकाल में होगी दुःखहीके लिये न कि ऐसे दुष्टोंको कुछभी सुख हो ऐसा कोई २ कहीं कहीं मनुष्य मिलेगा जो वेदाध्ययन स्वाहा स्वधा वषट्कारहीन न हो परन्तु ॥

चौ० जप तप नियम धर्म व्रतधारी। कृत त्रेता द्वापर नर नारी॥
जो फल पावत सो कलि माहीं। हरिसुमिरणसों लहतअहाहीं॥ १॥

दूसरा अध्याय ॥

दो॰ कहब द्वितीयाध्याय महँ कलियुग एक महान ॥
नारिशूद्र आदिहु लहत मुक्ति करत हरिगान ॥ १ ॥

पराशरमुनि बोले हे मैत्रेय ! कलियुग के विषयमें व्यासमुनिने भी जो कुछ कहाहै तुम्हें सुनाते हैं एक समय सब मुनियों को यह विचार आया कि किस युगमें कौन ऐसा थोड़ासा गुणहै जो बड़ा फल देताहै यह सन्देह मिटाने के लिये सब मुनिलोग व्यासजीके निकटगये जाय देखा तो हमारे पुत्र व्यासजी गङ्गाजी में अधनहाये खड़े हैं सब मुनिलोग जबतक व्यासजी स्नानके निकलाचाहैं एक वृक्षके नीचे खड़े होरहे जब व्यासजीने बुड्डीमार शिर ऊपर उठाया तो मुनियोंने सुना कि व्यास कहते हैं कलियुग साधुहै फिर बुड्डीमार शिर उठाया कहा हे शूद्र ! तूभी धन्यहै फिर बुड्डीमार शिर उठाया कहा स्त्रिया सबमें धन्यहैं इनके समान और कौनहै ऐसा कह जब विधिपूर्वक स्नान के व्यासजी जलसे निकले तो मुनिलोगोंने आप प्रणाम किया व्यासजी ने भी उनके यथोचित प्रणामादि के आसनादि दे बैठाय पूंछा आप लोग किसलिये यहां आये सो सुनाइये मुनिगण बोले हमलोग कुछ संशय आप से पूछने आये थे पर उसे तो अब रहने दीजिये अब औरही सन्देह हुआ उसे निवारण कीजिये आपने कहा कलियुग साधु है शूद्र धन्यहै स्त्रिया अतीव धन्यहैं सो इसका आशय जो गुप्त न हो तो कृपा सहित सुनाइये इसका प्रयोजन हमलोगोंके विचारमें नहीं आया यह सुन व्यासजी बोले हे मुनिश्रेष्ठो ! हमने जो साधु २ कहा है उसका प्रयोजन सुनातेहैं जो जप तप ब्रह्मचर्यादि करनेसे सत्ययुगमें १० वर्ष में पुरुष को फल मिलता था वह त्रेतामें एक वर्षमें द्वापर में एक मासमें वही फल कलियुग में रात्रि दिनमें मिलता है इसी कारण सब युगोंमें कलियुगको हमने साधु कहा ॥

चौ॰ कृतयुग महँ जो ध्यावत ध्यान । त्रेता यज्ञ किये मख जान ॥
द्वापर पूजन सों फल सोई । हरिकीर्तन सो कलिमहँ होई ॥ १ ॥

व ये ईश्वरी पुष्टि कर्मने से मनुष्य कलियुग में बड़ाधर्म पाताहै इसी से हम

इस युगके ऊपर अतीव सन्तुष्टहैं व शूद्रोंके ऊपर इससे हम प्रसन्न हैं व उनको धन्य कहते हैं कि ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य नानाप्रकार के व्रतनियम पूजासामग्री एकत्रकर प्रथम वेद पढते फिर धर्म पानेके लिये विविध भांतिके यज्ञ करते कराते फिर श्रीकृष्णकीर्त्तन सहित सब प्रकारकी कथा कहते कहाते विना हरिके अर्पण कियेभी श्राद्धादिमें भोजन करते हरिनीर्थ छोड़ अन्य निन्द्य तीर्थोंमें भी फिरते फिराते जो सब नरकपातके सिवाय और कुछ नहींदेते फिर यज्ञ तपस्यादि जो कुछ करें विधि पूर्वकही करें अविधि करने कराने से दोष होता फिर अच्छे २ पदार्थ भोजनपान करने के योग्य विना सब अतिथि आदिकों को दिये इच्छा पूर्वक भोजन करनेको नहीं मिलते इस रीतिसे जितने कार्य ब्राह्मणादि तीन वर्णोंके हैं सब परतन्त्र हैं इससे बड़े २ क्लेशों से अपने २ लोकोंको पाते हैं व शूद्र केवल द्विजातियों की सेवारूप एकही यत्नसे अपने लोकको जाते हैंइससे वे धन्यतरहैं फिर इन शूद्रोंके लिये भक्ष्याभक्ष्य पेयापेयके लिये कोई नियम नहीं सब समय सब दिन सब वस्तु खा पीसक्ते हैं इसीसे इनको हमने साधु कहा व स्त्रियों को इसलिये हमने धन्य कहा जिससे पुरुष लोग अपने धर्महीं के अनुसार वो धन दौलत इकट्ठा करते फिर यथाविधि योग्यायोग्य विचार भागियों को देते शास्त्रानुसार यज्ञ करते जिस धनके बटोरने व रखने में बड़े २ कष्ट होते हैं फिर उसको अच्छे प्रकार वर्त्तने में अनेक कष्ट होतेही हैं इन्हें आदि नानाप्रकार के कर्म कर कराय तो कहीं बड़े क्लेशसे पुरुष प्राजापत्यादि लोकोंको क्रम २ से जाते एकाएकी नहीं और स्त्रियां तो मनसा वाचा कर्मणा अपने पति की सेवा केवल एकही कर्म के करने से अपने पतिके लोकको सीधी चलीजाती हैं कुछ जैसे पुरुषों को परलोक साधन में बड़े २ क्लेश होते स्त्रियों को नहीं इसीसे तीसरीवार स्त्रियोंके विषयमें साधु पद हमने कहा यह बात जो हमने तुमसे बनाई अब जिस लिये यहां आयेहो पूछो सब बतावेंगे-पराशरमुनि बोले कि जब मुनिलोगों से व्यासजी ने ऐसा कहा तो उनलोगों ने कहा जो हमको पूछना था वह तो आपने औरही प्रश्नके उत्तरमें कहदिया यह सुन व्यासजी बहुत हँस कहनेलगे हे मुनिलोगो। हमने दिव्यदृष्टि से तुम्हारा अभिप्राय जानलिया था इसीसे उसी प्रसङ्गमें कलियुगादिकों को धन्यवकिया था थोड़ेही उपायसे कलि युगमें धर्म सिद्ध होताहै व हम मनुष्यों के हायहै कि अपने धर्म से बेलेजाते

व हरिकीर्तन जलरूप कर्म से पापरूप कीचड़ धोयडालें व शूद्रलोग ब्राह्मणादि तीनवर्णों की सेवासे अपना पाप धोवें स्त्रिया अनायास अपने २ पतिकी सेवासे धोवें तिसी भांति तुमसे कलियुग की भी प्रशंसा की सत्ययुगादि में द्विजातियों को जप तपस्या आदि में बड़ा क्लेश होताथा अब कलियुग में भगवत्कीर्त्तनसे सब काम सिद्धि करें यह बिना तुम्हारे पूछेही हमने कह दिया अब अन्य क्याकरना है पराशर मुनि बोले ॥

चौ० यहसुनि मुनि गण पूज्यहुव्यासा । करिप्रणाम सबगे निजवासा ॥
व्यास कथन सों गयहु सँदेहू । सुमिरन लगे हरिहि करिनेहू ॥ १ ॥
तुमहूसों यह रहस बखाना । अतिखल कलिमहँसुगुणमहाना ॥
जो हरिकीर्त्तनहीं सों मानी । मुक्तहोत नहु बड़ अज्ञानी ॥ २ ॥
प्राकृत अन्त प्रलय जो तुमहू । जगत सहार हेतुकी सयहू ॥
पूछी कहत सुनहु चित लाई । मुनिनिजाचित गुनि करहुबड़ाई ॥ ३ ॥

तीसरा अध्याय ॥

दो० कहब तृतीयाध्याय मह काल मान संक्षेप ॥
अरुनैमित्तिक प्रलय अति भयद निरति हितलेप॥ १ ॥

पराशरमुनि बोले सब प्राणियों के लिये नैमित्तिक प्राकृतिक आत्यन्तिक ये तीन प्रलयहै जो ब्रह्माके प्रतिदुआकरता है वह नैमित्तिक प्रलय कहाता ब्रह्माके मरणान्त प्राकृतिक सबजीवोंको नाशहोने को आत्यन्तिक प्रलय कहते मैत्रेयजी बोले हे भगवन् ! परार्द्ध संख्याके प्राकृतिक प्रलयबताइये पराशर मुनि बोले हे द्विज ! एक दश शत सहस्रादिकी दश गुणी गिनती करने में अठारहें अङ्कको परार्द्ध सज्ञक प्रलय होता इसपरार्द्ध के दूने को प्राकृतिक प्रलय कहते हैं इसमें सब सृष्टि ईश्वरमें लीनहोजाती है मनुष्यों के पलक मारने को निमेष कहते १५ निमेष को काष्ठा ३० काष्ठाको कला १५ कला को नाड़िका कहते यह नाड़िका साढ़ेबारहटका भर तांबेकी कटोरी ४ अंगुल ऊंची बनाय मासाभर सोनेकी ४ अँगुल की शलाकासे छेदकरे जितने समय में उस छिद्र में जल के आनेसे कटोरी पूर्णहो उसी समय के प्रमाणको होती दोनाड़िका का मुहूर्त ३० मुहूर्तका दिन रात ३० दिनरातका मास १२ मासका वर्ष छ ऋतु होते हैं।

का दिन रात्र ३६० मनुष्यों के वर्षों का देवों का वर्षहोता देवों के १२००० वर्षों में ४ युग बीतते हैं इन चारोंयुग के सहस्र वार बीतने का ब्रह्मा का एकदिन होता उतनीही फिर रात्रिहोती उसीको कल्प कहते हैं इस कल्पमें १४ मनु बीतते हैं इसके अन्तमें ब्राह्म नैमित्तिक प्रलय होता इस नैमित्तिक प्रलयका अति कठोर प्रलय हम से सुनिये प्राकृत प्रलय पीछे कहेंगे जबचारोंयुग सहस्र वार बीतजाते हैं तो पृथिवीतल अन्नादि से हीन होजाता क्योंकि अत्युग्र १०० वर्ष तक अनावृष्टिहोती है तब जितने अल्पसार पृथिवी के पदार्थ हैं नाश होजाते क्योंकि अन्न किसीको मिलताही नहीं जब भगवान् कृष्णचन्द्र रुद्ररूप से सब प्रजाओंको नाश अपनामें मिलना चाहते तब भगवान् विष्णु सूर्य्य की किरणों में आय सब धरणीका रस पीलेते जब प्राणी व भूमिगत सब जलपान करलेते तो पृथिवीतल सनाथ सूखजाता समुद्र नदी पर्व्वत गिरना झरना पातालादि सब कहींका जल नाश होजाता तब तिसी हरि की कृपासे जलपान का वर्द्धित हो सातों किरण ७ सूर्य्य होजाते हैं ये सातों सूर्य्य नीचे ऊँचे से तप तपाय गृहिन पाताल त्रिलोक भस्म करदेते इनके जाले सेनदी पर्व्वत समुद्रादि सब अति नीरस होजाते जरते २ वृक्ष वल्ली समुद्र पर्व्वतादि ऐसे नष्ट होजाते कि पृथिवी कछुहाकी पीठके समान होजाती तब सबके हरनेवाले हरि कालाग्नि रुद्रस्वरूपी हो शेष सर्पकी श्वासके सन्तापसे पातालकी ओरसे भस्म करनेल गते सब पातालोंको जार काल रुद्राग्नि भूतल में आय इसे भी भस्मीभूत कर देते इस रीतिसे भूर्भुव स्व तीनलोक व पाताल भस्म होजाते जब इन लोकों में रावल्लीरास देखपरने लगती तो भुवर्लोकादि के सिद्ध मुनि गन्धर्वादि महर्लोक को चलेजाते जब महर्लोकभी जरनेलगता तो सब जनलोकको जाते तब रुद्ररूपी जनार्दन मखलोक जाय अपने मुखसे श्वास निकाल बादर उत्पन्न करते तो हाथीकी सूड़के समान धारों से संवर्त्तकनाम मेघसब महावृष्टि करनेलगते इन बादरों में कोई २ अञ्जन के समान काले कोई २ कुमुद के समान उजले कोई २ धुआँके रंगके कोई २ पीले कोई २ गदहा के रंगके कोई २ लाखके रंग के समान कोई वैदूर्यमणि के समान कोई इन्द्रनीलमणि के रंग कोई शंखकुन्द के वर्ण के कोई अतिकाले अंजनके समान कोई बीरबहूटी के वर्ण के कोई गेरु गिरि के रंगवाले कोई नीलरंगके कोई २ मानों श्रेष्ठग्राम के आकार के व कोई २

पर्वताकार कोई गोलेमकान के आकार कोई भेड़ाके डीलके ये सब महाकाय महामार मेघ आकाशमण्डल में गरजने आकाश पूर्णहोने के पीछे जब घम घमाय अतिवेगसे वर्षनेलगते तो त्रिलोकी में फैलीहुई आग शान्तपरनेलगती अग्नि शान्त होजानेपर भी १०० वर्षतक रात्रि दिन ये मेघ वर्षा करते बड़ी२ धाराओं से भूर्लोकपूर्ण भै भुवर्लोकको भी भर देते हैं जोकभी अन्धकार होजाता स्थावर जंगम सब नष्ट होजाने पर वे १०० वर्षतक वर्षा निरन्तर करतेही रहते॥

चौथा अध्याय॥

दो॰ कहव चतुर्थाध्याय मह प्राकृत प्रलय मलीन॥
जहां ब्रह्म महं जीव सब लीन होत है दीन॥ १॥

पराशरमुनि बोले पाताल से ले सप्तर्षियों के लोकतक सब जलही जल देखाई देता त्रिलोकी एकार्णवाकार होजाती तब विष्णु भगवान् के श्वासों से अतिवेग पवन चलनेलगता जिससे सबमेघ जहां तहां चले जाते यह भी रात्रि दिन निरन्तर १०० वर्ष तक चलाकरता तब विश्व के आदि अनादि सर्व भूतमय अचिन्त्य भूतभावन श्रीभगवान् विष्णु सब वायु पीलेते हैं पीन के पीछे ब्रह्मरूपधार शयनकर्य। पे शयन करतेहैं तब जनलोक निवासी सनकादिमुनि व ब्रह्मलोक निवासी सिद्धगण अपने २ स्थानों से स्तुति करते रहते उससमय आपनीमाया योगनिद्राको प्राप्तहो वासुदेवाख्य परमपुरुष निजरूप को ध्यावने लगते इसी को नैमित्तिक प्रलय कहते हैं इसमें ब्रह्मरूप धारणके हरिका शयन करनाही निमित्तहै इसी से इसका नैमित्तिक नाम हुआहै जब फिर महात्मा भगवान् ब्रह्मरूपधारी जागते हैं तब जगत्‌की रचना होती है जब फिर सोते हैं तो सब उन्हीं में लीन होजाताहै जितना चतुर्युग सहस्र पर्यन्त ब्रह्मा का दिन होता उतनीही रात्रि भी होती तब तक यह संसार एकार्णव रहता जब रात्रि बीतजाती तो ब्रह्मरूपधारी हरि जाग फिर सृष्टि करने लगते जैसा कि कहचुके हैं इसमें हे द्विज! यह नैमित्तिक प्रलय मुझसे कहा अब प्राकृतिक प्रलयकहते हैं सुनो जब अनावृष्टि में बहुत दिनों तक अनाहार रहते फिर कालाग्निरूप शेष के मुखानलसे भस्म होना मेघवर्षा जलमय करने इत्यादि नाना ऊपर सात नीचेके चौदहो भुवन नाश होजाते उसका क्रम कहते हैं कि जब

महदादि विकार हरिकी इच्छा से नाश कराये जाते तो प्रलय होने लगता प्र थम भूमिका गंधगुण जल खींचलेता जब पृथिवी में गन्ध नहीं रहिजाता तो प्रलय को प्राप्तहोजाती गन्धतन्मात्रा जब पृथिवीमें जाती रहती तो सब जल रूप होजाती है तब जल में बड़ा वेग व शब्द होजाता है तब जल बड़ी बड़ी लहरों से सब लोकोंको पूर्णकर बोर डारता है जलका गुण जो रस तिसे फिर अग्नि पीलेताहै तब रस तन्मात्रके नष्ट होने से जल नाश होजाता जब जल रस हीन होजाता है तो अग्नि में मिलजाता तब चारों ओर अग्निही अग्नि देखाई देता क्योंकि जल सब अग्नि में लीन होजाता संसार में ऐसा कोई स्थान नहीं रहता जहा अग्नि न हो तदनन्तर जब ऊँचे नीचे अँजुरे पँजरे अग्निही अग्नि रहजाता तो अति वेग पवन अग्नि को खायजाता जब रूप तन्मात्र प्रणष्ट होजाती तो अग्निका रूप जाता रहता व अग्नि सहित वायु अति वेगसे चलने लगता प्रलय समय जान नीचे ऊँचे अगल बगल जहा देखो वायुही वायु फिर वायुका जो स्पर्श गुण उसे आकाश अपना में मिला लेता वायु शान्त होजाता आकाश सर्वव्यापी होजाता अब इसका आवरण कुछनहीं रहता अरूप अरस स्पर्श गन्धहीन मूर्ति रहित ऐसा सबके धारण क- रनेवाला आकाश प्रकाशित होनेलगता उसमें केवल शब्दही गुणहै सो सर्वत्र शब्दही शब्द रहजाता तब आकाशके गुण शब्दको राजस तामस सत्त्वात्मक तीनप्रकारका अहंकार उसे ग्रसित करलेता अहंकारको महत्तत्त्व इस क्रमसे पृथिवी ब्रह्माण्ड की आदि व महत्तत्त्व अन्तहै इसप्रकार पृथिवी महत्तत्त्व पर्यंत ये सातो आवरण परस्परमें महाप्रलय के समय मिलजाते हैं जिससे घेराहुआ यह अण्डकटाह जलमेंलीन होजाता इस अण्डमें सप्तद्वीप ७ समुद्र सपर्वत लोक सब लीन रहते जलावरण कोअग्नि सोखता अग्न्यावरणको वायु वायु को आकाश आकाशको अहंकार अहंकारको महत्तत्त्व इनसबों के सात मह त्तत्त्वको प्रकृतिग्रसती है इससबका हेतु प्रकृतिहै वह प्रधानसी कारणहै इसलिये इसप्रलयका प्राकृतिक नामहै यह प्रकृति सबोंसेलीन सबसे बाहरहै इसको कोई विकार नहींहोता व परमात्मा तो एक रूपशुद्ध चैतन्यघन अक्षर नित्य सर्व व्यापी परम पुरुष यह भी सर्व भूताशय परमात्मा परब्रह्म का अशहै इस सम्पूर्ण प्राणियोंके स्वामी ईश्वरकी नाशजात्यादिकी कल्पनानहीं क्योंकि वह चैतन्यमात्र

ज्ञानात्मा आत्मासे परब्रह्मरूप परमधाम परमात्मा ईश्वर सर्वमय विष्णुहै जिससे यह सब समारहोता है व जिसमें पहुंच फिर प्राणी लौटा नहीं आता सो प्रकृति व पुरुष ये दोनों उसी परमात्मा वासुदेव रूपमें लीनहोजाते हैं परमात्मा यहनाम वेद व वेदान्त में सबके आधार भूत विष्णुका कहा है सो विष्णु वेद के प्रवृत्त निवृत्त दोनों कर्म्मों के द्वारा पुरुषोंसे पूजित होतेहैं सो ऋक् यजु साम इन वेदों के मार्ग्गसे नाना प्रकारके यज्ञोंसे जो यज्ञपुरुष विष्णु को पुरुष पूजते वह प्रवृत्त कर्म्म कहाता है व योगी लोग ज्ञान मार्ग्गसे जो ज्ञानात्मा ज्ञानमूर्त्ति विष्णुकी पूजा करते जिससे मोक्ष होतीहै उसे निवृत्त कर्म्म कहते हैं जो कुछ वस्तु ह्रस्व दीर्घ प्लुत स्वरोंसे कही जाती है व जो वचन के कहनेही के योग्य नहीं उसी वस्तुका अव्यय विष्णु नामहै व्यक्त अव्यक्त अव्यय पुरुषोत्तम परमात्मा विश्वात्मा विश्वरूपये भी उन्हीं के नाम हैं इन्हीं में व्यक्ताव्यक्त स्वरूपिणी प्रकृति व इन्हीं गुणोंका पुरुष दोनों लीनहोते जितने दिनोंतक पुरुष प्रकृति में व प्रकृतिपुरुष में लीन रहती उतने दिनकी एक रात्रि भी होती यद्यपि हस्त चरणादिरहित प्रकृति पुरुषके लिये रात्रि नहीं होती न उसका वहां कुछ प्रयोजन है तथापि उस पुरुष के दिन रात्रि उपचारमात्र से कहदिये हैं कुछ वास्तव में नहीं ॥

चौ० यहप्राकृतिकप्रलयमुनि राजा । तुमसन कह्यासकलपरिसाजा ॥
अबआत्यन्तिकप्रलयभगवानत । सुनहुजाहिंसुनिसबसुखमानत ॥ १ ॥

पांचवां अध्याय॥

दो० यहपञ्चमअध्यायमहँ मोक्षवस्तुहितजोय ॥
त्रिविधदु खभाराअपर परिमितादिकसोय ॥ १ ॥

पराशरमुनि बोले हे मैत्रेय ! आध्यात्मिकादि तीनों तापोंको जान ज्ञान वैराग्यपाय पुरुष आत्यन्तिक प्रलयको पाता है आध्यात्मिक ताप शारीरक मानस के भेद से दो प्रकार का है फिर शरीर में बहुत भेद हैं तिनको कहते हैं मुनिये जैसे शिरोरोग पीनस ज्वर शूल उदना भगन्दर रोग गुल्मरोग बवासीर खासी शोथ वमन नेत्र रोग अतीसार कोढ़ इन्हें आदि अनेक रोग शरीरमें दुःख देनेवालेहैं इन्हींके कारण शारीरताप नाम हुआ अब मानसताप कहते हैं काम क्रोध भय वैर लोभ मोह विषाद शोक निन्दा अपमान ईर्षा अहंकारादि से

उत्पन्न जो ताप तिसीको मानस ताप कहते हैं यह मानस तापभी एकही प्रकार का नहीं इसमें अनेक भेदहैं इन्हीं आदि भेदोंमे आध्यात्मिक ताप कहाता व जो ताप मनुष्यों मृग पशु पक्षी मनुष्य भूत प्रेत पिशाच सर्प राक्षस अन्य कीट पतङ्गोंआदिसे होता उसे आधिभौतिक ताप कहते हैं व जो ताप शीत उष्णवायु वर्षा जल बिजुली आदिसे होता उसे आधिदैविक ताप कहते हैं इन्हें आदि बहुत दुःख मनुष्योंको होते हैं जैसे गर्भवास जन्म समय वृद्धावस्था फोड़ा आदि मृत्यु समय में व नरक यातना में हजारों होते उनके कुछ भेद सुनामे भी हैं जब जन्तु गर्भ में रहता उसके सब अंग सुकुमार होते वड़ा विष्ठा मूत्रके बीच में रहने का स्थान मिलता फिर एक ओझरी नाम खालसे लपेटा रहता जिसमें पीठ झुकी रहती गर्दनभी झुका हाथ पैर बँधे हुये रहते फिर ऐसी दशामें बहुत खट्टी कडु तीक्ष्ण गरम लोन खार आदि माताके किये भोजन अंगों में लगतेहैं उनसे बड़ाही भारी दुःख होता फिर अपने हाथ पैर आदि अंगफैलाने सिकोरने की सामर्थ्य नहीं रहती ज्यों के त्यों अंगरहते विष्ठा मूत्रके बीच में परा जन्तु सब ओरसे पीड़ित होता तब गर्भ वासही में जब चैतन्य हुआ तो सैकरों जन्म के पाप पुण्यकी सुधि आतीहै होते २ जब उत्पन्न होने का समय आताहै तो विष्ठा मूत्र रुधिर वीर्यसे लपेटा हुआ प्रसूति पवनका ढकेला जीव नीचे मुख किये सकुचित नालीके निकलने के अनेक कष्ट सहता हुआ भूमिमें आता यहां की पवन लागतेही मूर्च्छा आजाती है उसीके संग ज्ञानभी चलाजाता होने के समय बड़ीदेरतक उसे इतनी पीड़ारहती कि जानों काटों से छेदागयाहै व आरा से चीरडालागया सड़ा दुर्गन्धित स्थानसे निकल कृमि समान भूमि में परारहता अवश क्या करे हाथपैर अबभीकाबूमें नहीं जो चलावे खजुलाने करवट लेने आदि में भी शक्ति नहीं स्नान पान खाना आदि सब पराईही इच्छा से मिलते बड़ी मैली कथरी आदिमें जिसमें छोटे २ चीलर जुवां आदि सैकरों जीव भरेहैं रहना परता उनके काटनेकी व्यथा न किसी से कहसक्ता न आपको सामर्थ्य निनि- वारणकरे जन्मसमय के इन्हें आदि अनेक दुःखहैं जन्मके पीछे बालपन में नानाप्रकारके आधि भौतिकादि दुःखसहता मारे अज्ञानके अन्तःकरण में ऐसी अंधियारी छाय जातीहै कि वह नहीं जानता कि हम कहांसे आयेहैं व कहांजा- ताहै व कौनहैं किसबँधेई में बँधेहैं बँधनेका कौनकारण व कौन अकारणहै

क्या करना चाहिये क्या न करना चाहिये क्या कहने के योग्य है क्या न कहना चाहिये कौन धर्म है कौन अधर्म फिर किसमें किसभांति वर्तना चाहिये क्या कर्तव्य क्या अकर्तव्य किसमें गुणहै किसमें दोष ये बातें नहीं जानते ऐसे होते होते युवावस्था आयजाती जिसमें अनेक शिश्नोदर के व्यापार पशुओं के समान करते जिनसे महादुःख पाते हैं अज्ञानवश से तामसी व्यापार धारण करते जिससे किसी अच्छे कार्य का प्रारम्भही नहीं करते इसीसे अज्ञानियों के कर्म लोप होजाते हैं जिन कर्मों के लोपका फल नरकवास होनाहै जिससे अज्ञानियों को इसलोक परलोक दोनों स्थानों में सुख नहीं होता यही शिश्नोदरादि के भोग करते कराते वृद्धावस्था आजाती है जिसमें बुढ़ापा के मारे देह कांपने लगती सब अंग शिथिल होजाते दांत सब हिल हिल गिरपरते खाल ठौर ठौर सिकुरजाती दृष्टि से देख नहीं परता गली में चलते समय ऊपर नेत्र उठाय उठाय देखते हैं नासिका के भीतरके रोम बाहर निकलआते देह जानो कांपही करती हाड़ ठौर ठौर निकलआते पीठ करिहायँ आदि झुकजाते पेट की आग मन्द होजाने के कारण थोड़ाही भोजन किया जाता इससे कार्य भी मनुष्यों के बिना बल थोड़ेही होनेलगते बड़े कष्टसे बैठना उठना चलना सोना खाना पीना आदि कर्म होते हैं कान आंख सब मन्द होजाते मुखसे लार बहा करती होते होते सब इन्द्रियां अपने आधीन नहीं रहजातीं इसलिये दुःख सहते सहते मरणोन्मुख होजाता है चाहे उस कामको बहुत दिनमें करचाहो पर क्षण क्षण पर सुधि जाती रहती है एकवार भी बोलने में बड़ा परिश्रम करना परता जबतक श्वास खांसी आदि आने से नींद कभी आतीही नहीं अब औरही के उठाये उठते व और ही के बैठाये पौढ़ाये बैठते पौढ़ते हैं अपने नौकर चाकर पुत्र स्त्री सब अपमान करते उसे सहना परता सब शौचादि किया छुटजाती पर विहार आहारादि की इच्छा नहीं मिटती परिवार वाले देख २ हँसते हैं सब भाई बन्धु ऊबजाते हैं कि कब मरेंगे बड़ी ऊँची स्वासें ले २ अपनी युवावस्था की बातों की सुधि करते पर जानपरता कि जानो अन्य जन्म में सब कार्य किये थे ऐसी बातों से चित्त व्याकुल बनारहता इन्हें आदि अनेक दुःख बुढ़ापे में भोग मरने में जो जो दुःखहोते हैं सुनिये जब मरने के दिन आये तो हाथ पांव पैर हाथ सब शिथिल मुखपरगये गला घर २ शब्द लगा बार २ मूर्छा आनेलगी।

क्षणमें कुछ ज्ञान होआया तब शोचनेलगे कि धन धान्य पुत्र स्त्री नौकर चाकर व घर पशु पक्षी आदि ये कैसे निबहेंगे व कैसे बढ़ेंगे इसबात की ममता से व्याकुल होगये शरीर में आराके समान अति दारुणरोग मर्मस्थल में भेदनकरने मानो यमराज के सब बाणहैं जो इधरसे उधर छिन्न भिन्न कियेदेते हैं इससे सबअङ्गों के बन्धन कटजाते जानो कोई अङ्ग किसी में लगाही नहीं है ऐसा होते २ आखें घूमजातीं हाथ पाँव बार २ पटकनेलगते तालू ओठ सब सूखजाते कि गला घुघुराने लगता अब ऊर्द्ध्वश्वास चलने के कारण कण्ठावरोधन होजाता इससे बहुत पीडाहोती उस समय ऐसीगर्मी लगती कि बारबार पानी पीनेकी इच्छा होती बस इसी दशा में प्राण निकलजाते यमराज के किङ्कर लोहके दण्डों से मारते पीटते घसीटतेहुये यमद्वार को ले चलते उसमें अनेक दुःख होते हैं इन्हें आदि और भी बहुत दुःख मरण समय में होते है अब नरक के दुःख सुनिये जो मरे हुये मनुष्यों को भोगने होते जैसेही लेचले प्रथम तो यमदूतों के लोहे के सोंटोंकी मार फांसी आदिमें बांधना लातों मूकोंसे मारना आदि कष्ट फिर अति भयानक यमके दर्शन अतिकठोर रस्ता देखना जिसके देखनेही से सब रोम खड़े होजाते जैसे कि सुजवा के मारखे भी गरमबालू मग्नी में माठि २ तक भरीहै जिस में ठौर २ नानाप्रकार के शस्त्र शस्त्रादिभी बीन २ परे हैं प्रत्येक नरक में जो २ स्थानतहैं सब अति दुःसभे सहनेलायक हैं कहीं तो कर्फरौता आरा चलरहे हैं जावेही सर्वाङ्ग चीर फार डारे जाते कहीं २ यन्त्रायन चलरहे हैं उनमें डार तपाते कहीं कुल्हाड़ी से छीलते कहीं ऐसेही भूमि में गाड़लेते शूलपर चढ़ाते बाघ के मुखमें पैठादेते गीधों से खिलाते सर्पों में चबवाते खलभलातेहुये तेल में डारते खारीकीचड़में डार गोजते ऊँचे से नीचे गिराते उछालनेवाले यन्त्रों पै चढ़ाय उछालते इन्हें आदि अनेक दुःख होते नरकमें जितने दुःख पापी प्राणी पाते हैं उनकी गनती नहीं है द्विजराज! केवल नरकही में दुःख समूह नहीं बरन स्वर्ग में भी पुण्यक्षीण होजानेपै नीचे गिराने का भय रातिदिन बनारहता है इससे वहां भी सुख नहीं क्योंकि स्वर्ग से आय फिर गर्भवास होता जन्मादि के दुःख फिर भोगनेहोते कोई तो जन्मलेतेही मरते कोई बाल भाव में कोई ज्वानी में कोई अधबैसू होने में कोई बुढ़ापे में जबतक जीते तब तक नानाप्रकार के दुःख सहाकरते जैसे कपास के बीजमें सूतही भोरहते यदि

जब बोयाजावे अन्नमें सूनही सुख पावे प्राणी के शरीर में दुःखभरे हैं व्याहे जड़ा जावे भोगने पड़ते हैं द्रव्य उपार्ज्जन धन नाश धनरक्षान इत्यादिकों अनेक दुःख होते हैं तिसी भांति इष्ट मित्र भाई बन्धुओं के मरने पर भी दुःखही दुःख होते जो जो वस्तु पुरुष को प्यारी होती है वही दुःख व इक्ष का बीजरूप है स्त्री पुत्र मित्र धन घर खेत आदि से पुरुषों को उतना बहुत सुख नहीं मिलता जितना कि इनसे दुःख मिलता है सो इस रीतिसे संसार भरो दुःख का सूर्य्य है तिसके ताप से तपायेहुये प्राणियों के जुड़ाने के लिये मोक्षरूपी वृक्ष की छाया बिना अन्यत्र कहां सुख है तिससे गर्भ जन्म जरादि समयों में आध्यात्मिकादि ३ दुःखों से पीड़ित मनुष्यों के लिये भगवान् श्रीविष्णु में अनेक सुख देनेवाली आत्यन्तिक प्रीति है तिससे पण्डित नरोंको चाहिये कि विष्णुप्रीति के लिये अवश्य प्रयत्न करतेरहैं उसके मिलने के अर्थ ज्ञान व कर्म दो उपाय हैं फिर ज्ञान भी दो प्रकारका है एक शास्त्र के पढ़ने लिखने श्रवण मननादि करने से दूसरा अपने आप विवेक होजाने से शास्त्रसे उत्पन्न ज्ञानको शब्द ब्रह्मज्ञान कहते व जो विवेक से उत्पन्न होता परब्रह्म ज्ञान उसमें शास्त्रोत्पन्न ज्ञान तो इन्द्रियों के द्वारा दीपरूप प्रकट हो अज्ञानान्धकार को दूर करता व जो विवेक से उत्पन्न ज्ञान है वह सूर्य्यसमान प्रकाशमान सर्व्वजनों के अज्ञानान्धकार का नाश करै है इस विषय में वेदार्थ स्मरण कर मनुजी ने भी कुछ कहा है सो तुम्हें सुनाते हैं ब्रह्म दो हैं एक शब्दब्रह्म दूसरा परब्रह्म प्रथम शब्दब्रह्म वेदशास्त्रमें अच्छीभांति अभ्यास करने से शुद्धान्तःकरण होजाता तो फिर परब्रह्म को पुरुष पहुँचता है अथर्ववेद की भी श्रुति इस विषय में है कि विद्या दो हैं एक शब्दविद्या दूसरी ब्रह्मविद्या सो शब्दविद्या वेदादि पढ़ना उनके अनुसार कर्म करना फिर जब अच्छा विवेक होगया तो ब्रह्मविद्या सो पहुँच परब्रह्म में लीन होजाना वह परब्रह्म अव्यक्त जरामरणरहित अचिन्त्य जन्महीन नाशरहित देखने के योग्य नहीं अरूप कर चरणादि अंगहीन समर्थ सर्व्वगत नित्य प्राणियों के उत्पन्न होने का स्थान सर्व्वव्यापी सबसे बाहर जिससे सब उत्पन्न होताहै पण्डितलोग उसे ऐसा देखते रहते । ब्रह्म वही परन्धाम वही मोक्षकी इच्छा किये हुये लोगों के ध्यान करने लायक वेदवाक्यप्रतिपादित विष्णु का परमपद है वही भगवत् वस्तु परमात्मा का स्वरूप भगवत् शब्द का वाचक है ऐसे परमात्माको इसभांति जानने के अर्थ

परब्रह्मज्ञान कहते इससे भिन्नवेदमय ज्ञान कर्मकाण्डादिविषयकहै यद्यपि वह ब्रह्म अशब्दगोचर है नामादि उसके नहीं होसक्ते तथापि रीति है कि उसकी पूजाभी भगवान् ऐसा कह करते हैं नहीं तो भगवान् यह शब्द तो महाविभूति पुरुष शुद्धस्वरूप सर्व्वकारण के कारण परमात्मा के विषय में कहा जाता है भकार सम्भर्त्ता व भर्त्ता भकारके दो अर्थ हैं संसारके भेरक व चलाना ये दो गकारके व सब ऐश्वर्य सब वीर्य सब यश सब लक्ष्मी ज्ञान वैराग्य इन छः को भग कहते जिसमें ये सबहों उसे भगवान् कहते व वकार का यह अर्थ है कि जिसमें सब प्राणी बसें व जो सबके रहनेका स्थानहो व सब प्राणियों में जो टिकाहो इसी से वकारका नाशरहित भी अर्थ है इसभांति भगवान् यह महाशब्द बनता है इसलिये परब्रह्मरूप वासुदेवही का भगवान् नाम है और का नहीं होसक्ता उसमें तो यह शब्द कहना पूजामें भी सब प्रकार ठीकहै अन्य देवादिकों को भगवान् कहना एक उपचारमात्र है वास्तव नहीं क्योंकि ये सब पदार्थ उनमें नहीं क्योंकि भगवान् शब्दका यहभी अर्थ है प्राणियों की उत्पत्ति प्रलय आना जाना विद्या अविद्या जो जाने सो भगवान् व यह भी कि ज्ञानशक्ति बल ऐश्वर्य वीर्य सम्पूर्ण तेज ये पदार्थ जिसमें वह भगवान्है और भी जिस परमात्मामें महाप्रलयके समय सब प्राणी जाय बसते व जो सदा सब प्राणियों में चैतन्यरूप बसा है उसका भगवान् वासुदेवनाम है आगे की कथाहै कि केशिध्वजने पूछने पर खाण्डिक्य जनकसे अनन्त वासुदेवके नामकी व्याख्या निश्चय २ कही है सो सुनाते हैं जो सब प्राणियों में बसे व जिसमें सब प्राणी बसें व जो जगत्को धारण पालनकरे उसको वासुदेव कहते हैं वह वासुदेव सब प्राणियों की प्रकृति विकार गुणादि दोषों से अलगहै व उनके आसपास कोई आवरण नहीं सब संसार उसी में रहता सब भुवन उसीके बनाये हुये हैं फिर सब कल्याणादि गुणरूप व अपनी शक्तिके लेशसे सब प्राणियों को घेरे है जब इच्छा होतीहै तब बहुतदेह धारण करताहै व सब जगत् के सकल हित सिद्ध करता तेज बल ऐश्वर्य वीर्य शक्त्यादि गुणों का स्थान व राशिहै सब परोंसे पर व जिसमें क्लेशादि कोई विकार नहीं सोई सबका ईश्वर व सर्व्वेशादि वासुदेव रूप अभिव्यक्त अनभिव्यक्त स्वरूप सर्व्वेश्वर सब को विशेष रीति से जानने वाला सर्व्वशक्तिमान् परमेश्वर परमात्मा है ॥

चौ० जा परोक्ष विधि मे मन आवत। अरु साक्षात वृत्ति मों गावत॥
दोषरहित निर्मल यक रूपा। शुद्ध स्वरूप अनूप निरूपा॥ १॥
जहा अविद्या कारज नाहीं। विद्या परम ज्ञान ज्याहि माहीं॥
नहिं अज्ञान लेशकी चर्चा। गावत वेद करत नित चर्चा॥ २॥
यासों जो सब गावे भगवाना। शब्द निरुक्ति किये गुणवाना॥
सो हरिपद नहिं तहां उपेक्षा। करन चही नरको कहुँ स्वेक्षा॥ ३॥

छठवां अध्याय॥

दो० कहब छठे अध्याय महँ वेद पाठ अरु योग॥
जिमि कीन्हें हरि दर्श अरु केशिध्वजनियोग॥ १॥

पराशरमुनि बोले ॐकार जपने व इन्द्रिय अपने वशकर ध्यान करने से पुराण पुरुषोत्तम भगवान् के दर्शन होतेहैं तिससे चाहिये कि भगवान् के मिलने का कारण ॐकार जपना व ध्यान करे इनमें चाहिये कि प्रथम ॐकारादि जपकरे फिर योगाभ्यास ध्यानादि करे क्योंकि ॐकार जपने वेदपाठ करने से परमात्मा प्रकाशित होता तिस परमात्मा के देखनेके लिये स्वाध्याय ॐकारादि जप व योगाभ्यास यही दो नेत्रहैं और अन्य नेत्रों से परमेश्वर को कोई नहीं देखसक्ता यह सुन मैत्रेयजी बोले हे मुनिराज। अब हम वह योग जानना चाहते हैं जिसके जानने से परमात्मा के दर्शन होते हैं पराशरजी बोले जिस भांति खाण्डिक्य जनक से केशिध्वज ने योग कहा है हम तुमसे कहते हैं फिर मैत्रेयजी बोले हे ब्रह्मन्! खाण्डिक्य व केशिध्वज कौनहैं व उनदोनों के संवाद से ऐसा संयोग कैसे हुआ कि उन्हीं का सबन्धी वह योग कहाता है पराशरजी बोले धर्मध्वज नाम जनक राजा हुये तिनके पुत्रका मितध्वज नाम हुआ इन्हीं के कृतध्वज भी हुये ये अध्यात्मविद्या में बड़े निपुण थे कृतध्वज के अतिधन्य केशिध्वज हुये व मितध्वज के खाण्डिक्य जनक नाम हुये ये खाण्डिक्यजी कर्ममार्ग में पृथिवीतल में बड़े चतुर हुये हैं केशिध्वज भी अतीव आत्मविद्याविशारद हुये ये दोनोंजन जीतने की इच्छासे परस्पर लड़नेलगे केशिध्वज ने पराजितको खाण्डिक्य को राज्यसे निकाल दिया था [illegible] थोड़ाही [illegible] भगवान ने [illegible] के साथ [illegible]

चलेगये यहां केशिध्वज ने वेद शास्त्रानुसार मृत्यु जीतने के लिये बहुत यज्ञ किये एकसमय उनके यज्ञमें दूध देनेवाली गाय वनको चरने गईथी वहां उसे बाघने मारडाला तो राजाने ऋत्विजों से पूछा कि यज्ञकी गाय मारडाली गई अब इस पाप के मिटाने के लिये कौन प्रायश्चित्त करना चाहिये ऋत्विजों ने कहा हम इसका प्रायश्चित्त नहीं जानते आप कशेरुमुनिसे पूछिये जब कशेरु से पूछागया तो उन्हों ने कहा हमभी नहीं जानते भृगुवंशी शुनक से पूछिये राजाने जाय शुनक से पूछा उन्हों ने कहा इसका प्रायश्चित्त न ऋत्विजही जानते न कशेरु न हम किन्तु तुम्हारे शत्रु खाण्डिक्य जिनको तुमने जीतलिया था व अब वनमें हैं वे जानते हैं उन के सिवाय संसारमें हमलोग क्या कोई नहीं जानता यह सुन राजाने कहा कि अच्छा हम अपने शत्रुसे पूछने जायँगे जो वे हमको मारभी डालेंगे तो भी यज्ञका फल हम पावेंहींगे यदि प्रायश्चित्त बतादेंगे तो जानो बिलकुलही यश फल पावेंगे कुछ सन्देह नहीं पराशरमुनि बोले यह कह वैसेही मृगचर्मधारण किये कुशादि लिये घोड़े पै सवार हो केशिध्वज वनमें खाण्डिक्य के पासगये खाण्डिक्य ने देखा कि हमारा शत्रु चला आता है इसलिये बड़ाक्रोधकै धनुष पै तीरचढ़ाय कहा हम जानते हैं कि तुम मृगचर्मही को कवच बख्तर समझ धोखे से हमको मारोगे क्योंकि हम को तो जानतेही हो कि मृगचर्मधारण किये हुये हमको ये न मारेंगे सो हे मूढ़! मृगचर्मधारण करने से क्या होता है क्या मृगों की पीठपर मृगचर्म नहीं होता जिनको हमने व तुमने सहस्रों बाण मारेहोंगे तिमसे हम आज तुमको मारही डालेंगे जीते न छोड़ेंगे क्योंकि तू आततायी दुर्बुद्धि है हमारा राज तूने लेलियाहै यहसुन केशिध्वज बोले हे खाण्डिक्य! हम तुमसे संशय पूछने आये हैं तुम्हें मारने नहीं आये इस बातको विचारलो तो फिर हमारे ऊपर कोपही छोड़ देना व बाणभी छोड़ देना पराशरमुनि बोले कि तब खाण्डिक्य जी ने अपने मन्त्री व पुरोहित से एकान्त में सलाह की मन्त्रियों ने कहा यह आपका शत्रुहै दैवयोगसे वश हुआ है अब इसे मारही डालिये कि सब राज्य मिलजावे खाण्डिक्य ने कहा हां इसमें तो कुछ सन्देह नहीं इसके मार डालने से सब पृथिवी तो मिलजायगी परन्तु जो इसको मारते हैं तो यह परलोक जीतेगा व हम सब पृथिवी यदि हम इसे संग्राम में इन को न मारेंगे तो

परलोक को हम जीतेंगे व इसकी जानो पृथिवी सनीही है सो परलोक जय तो अनन्त समयतक सुख देनेवाला है व पृथिवी जय स्वल्पकाल तक सुखदेगा इससे हम इसे न मारेंगे जो पूछेगा अवश्य बतावेंगे पराशरमुनि बोले कि तब खाण्डिक्य जनक अपने वैरी से आय बोले जो पूछनाहो पूछो सब तुम से बतावेंगे तब केशिध्वज ने सब वृत्त धर्मधेनु मारेजाने आदि के कहे व उसका प्रायश्चित्त पूछा तब जो कुछ उसका प्रायश्चित्त था केशिध्वज से खाण्डिक्यजीने विधिसहित बताया केशिध्वज अच्छीतरह सब विधिजान खाण्डिक्य से आज्ञाले अपने यज्ञ आये यज्ञस्थान में जाय सब प्रायश्चित्त जैसे सुनाथा क्रम सहित किया जब यज्ञ पूर्ण हुआ यज्ञान्तस्नानादि होगया तो राजा प्रसन्नहो अपने मनमें चिन्तना करनेलगे कि हमने ऋत्विजों की पूजाकी सब सभासदों का मान किया जो कोई धनादि की इच्छा से यज्ञमाग आये उन को भी वाञ्छित वस्तु दे प्रसन्न किया अब सब कुछ जो इस लोकों करना था करचुके पर हमारा चित्त प्रसन्न नहीं अब नहीं जानते क्या करने को बाक़ी रहा इतने में सुधिआई कि और सब तो हमने किया पर खाण्डिक्य को गुरुदक्षिणा न दी यह विचार फिर घोड़ेपै चढ़ उसी गहन वनको राजागये जहां खाण्डिक्य तपस्या करते थे खाण्डिक्यजी ने भी देखा कि अब फिर केशिध्वज आते हैं तो मारने के लिये अस्त्रउठाये तब फिर केशिध्वज बोले हे खाण्डिक्य! हम तुम्हारा अपकार करने के लिये नहीं आये कोप न कीजिये हम गुरुदक्षिणा देनेकेलिये आये हैं आप समझने आपके उपदेश से हमने सब यज्ञ पूर्णकिया अब गुरुदक्षिणा दिया चाहते हैं जो चाहिये मांगिये तब फिर खाण्डिक्यजीने मन्त्रियों से पूंछा कि ये गुरुदक्षिणा देने आये हैं क्या मांगना चाहिये मन्त्रियों ने कहा आप सब राज्य गुरुदक्षिणा में मांगलीजिये क्योंकि चतुरलोग अब उनके पास सेना नहीं रहती व किसी यत्न से राज्य मिलने की युक्ति लगाते हैं तो राज्यही मांगते हैं यह सुन बहुत हँस महामति खाण्डिक्यजी मन्त्रियों से बोले कि थोड़े समयतक सुखदायक राज्य जो हमारे समान मिलती है कैसे मांगें तुम्हारी भी भूल नहीं क्योंकि तुमलोग तो अर्थसाधनके मन्त्रीहो पर परमार्थ के से व कौन यहा है इस विषय में तुमको। यह कहनहीं जो यह कहकर केशिध्वज के निकटजाय बोले कि क्या तुम अवश्य ही गुरुदक्षिणा दिया चाहतेहो देंगे

ध्वज ने कहा हाँ तब खाण्डिक्य बोले यदि आप अध्यात्मज्ञान के परमार्थ को जानतेहों तो हमको वह गुरुदक्षिणा दीजिये जो अध्यात्मज्ञान परमार्थ जानने में जो क्लेश पड़ते हैं उन क्लेशों के नाश करने में समर्थहो ॥

सातवां अध्याय ॥

दो॰ कह्य सप्तमाध्याय महँ जिमि केशिध्वज दीन ।
खाण्डिक्यहि अध्यात्मिकी विद्या बहुत प्रवीन ॥ १ ॥

यह बातसुन केशिध्वज बोले कि आपने अकण्टक हमारा राज्य क्यों नहीं मागा क्षत्रियों को राज्यलाभ को छोड़ और कुछ नहीं प्रिय होता खाण्डिक्य बोले हे केशिध्वज ! जिस राज्यको मूर्खलोग इच्छाकरते हैं उसे हमने जिस हेतु नहीं मागा सो सुनिये क्षत्रियोंका धर्म्म प्रजापालन करना व जो राज्यमें कुमार्गी पुरुषहों व राज्य में उनसे कोई खराबी पाईजाती हो तो उन्हें धर्म्मयुद्ध से मारनाहै जिस राज्यमें अब तुम्हारे लेलेने से हमको कुछ दोष नहीं रहा नहीं तो इसी में हम लगे रहते अविद्या के कारण बन्ध नहीं होता व जो हमको कुछ राज्यके लेनेकी वाञ्छाथी भी तो इस जन्मके बितानेही के लिये थी कुछ इससे परमार्थसिद्ध करनेकी इच्छा न थी उसकेलिये तो कुछ अन्यही उपाय कररहे थे कुछ अन्य लोगों के समान हम राज्यासक्त न होजाते कि यह राज्य जैसे सब लोगों के धर्म्मको रोंकता है वैसे हमारे को न रोंकता परन्तु क्षत्रियोंको याञ्चा करने का निषेधहै इसलिये अब तुम्हारा राज्य हमने नहीं मांगा जो लोगों का चित्त ममतासे दबाहुआ होता वे मूढ़ राज्यकी वाञ्छा करते यह अहङ्कार व मान महामदिरा के पानके समानहै जो लोग उससे मत्त रहते वही राज्यकी अभिलाषा रखते न कि हमारे समान लोग पराशरमुनि बोले कि तब प्रसन्नहो बहुत अच्छा यह कह केशिध्वज खाण्डिक्य जनकसे बोले कि हमारे वचन सुनिये जो आपने कहा कि राज्य अविद्या के अन्तर्गतहै सो सत्यहै हमभी इस राज्यको इसी लिये करते हैं कि अविद्या से मृत्युको तरजावें अर्थात् विविध प्रकार के राज्य के सुखभोगने व यज्ञादि करने से पुण्यक्षय होजायगी तो विद्यामें मोक्षसाधन कर लेंगे जिससे अहो भाग्यहै कि तुम्हारा मन विवेकी ऐश्वर्य्यता को प्राप्तहै सब हम विद्याका स्वरूप कहते हैं सुनिये देहादिमें आत्मबुद्धि और द्रव्यादि में अपना

स्वत्व मानना यही दो अविद्यारूप के बीजहैं प्राणी मोहान्धकारसे घेराहुआ इस पृथिवी जल वायु अग्नि आकाश ५ तत्त्वोंसे बनेहुये शरीरमें आप कहते हैं कि हम ऐसे हैं यह हमाराहै इष्ट ऐसी बुद्धि करताहै नहीं तो जब इस देहके आकाश पृथ्वी जल वायु अग्नि ये जब देहसे अलग होजायँ तो देहमें आत्मभाव कौन करेगा ये गृह क्षेत्रादि सब शरीर बनाहै तब भी अच्छीरीतिसे भोगके काममें नहीं आवे फिर जब शरीरही नहीं तो कौन ऐसा पण्डितहै जो इसे अपना समझे जब शरीरहीका ठीक नहीं तो देहहीसे उत्पन्न पुत्र पौत्रादिकों को कौन पण्डित अपने वश समझेगा व अपना को उनका स्वामी मानेगा सब कर्म मनुष्य देहहीके भोगके लिये करता है यदि पुरुषका देहही बशमें नहीं तो उसकेलिये कर्म करना बन्धनही के अर्थ है जैसे माटीका घर चीकन होनेकेलिये माटी व जलसे लीपतेहैं तैसेही यह पृथिवी से उत्पन्न देह अन्न जलके लेपन से टिकाहै पृथिवी जल वायु अग्नि आकाश इन पाँच तत्त्वों से बना हुआ देह व इन्हीं पाचों से उत्पन्न भोगों से पाला पोषाजाता तो पुरुष इस विषयों काहेको गर्व करे यह जीव अनेक जन्मों के सहस्रों तक संसार में घूमता हुआ वासना धूलि लगाय मोहरूप श्रमको प्राप्त होता है जब ज्ञानरूप उष्ण जलसे वह वासना रूप धूलि धोईजाय तो संसाररूप पथिक का मोह श्रम नाशहो जब मोह श्रम नाशहोजाय तो पुरुष स्वस्थान्तःकरणहो सब दोषरहित मोक्षपद को पावै यह आत्मा तो सदाहीका मोक्षमय ज्ञानमय व निर्मल है ये दुःख व अज्ञान मलादि तो प्रकृति के धर्म हैं आत्मा के नहीं जैसे जल का संसर्ग अग्नि से नहीं होता किन्तु जिस पात्रमें अग्निपर चढ़ाया जाता उसकाही संसर्ग होता पर ज्यों २ भाजनमें अग्निका तेज लगता त्यों २ पानी भी गरम हो शब्द करनेलगता तैसेही प्रकृतिके सङ्ग वशसे अहङ्कारादि से दूषितहो आत्माभी प्राकृत धर्मों की सेवा करनेलगता है पर वस्तुतः आत्मा नाशरहित निर्मल शुद्धस्वरूप प्रकृति के गुणों से अलग है जिससे यह अविद्याका बीज हमने आपसे कहा क्लेशों का नाश करनेवाला योगाभ्याससे बढ़ अन्य कोई नहीं यह सुन खाण्डिक्यजी बोले हे केशिध्वज! आप इस राजा निमिके वंशमें योगशास्त्र के अर्थ अच्छीभांति जानतेहो इसलिये क्लेशनाशक योग कहिये केशिध्वज बोले हे खाण्डिक्य! जिस योगमें स्थितहो ब्रह्मलयमें मुनिलोग फिर नहीं पतित होते तिस योगका

स्वरूप कहते हैं मुनियो मनुष्योंका मनही बन्ध व मोक्षका कारणहै फिर जो बन्धनमें परता तो विषय वासना में लीन रहता जब मुक्तहोजाता तो विषय वासना से छूट जाता तिससे चाहिये कि स्त्री पुत्रादि विषय वासना से मन खींच विज्ञानीलोग ब्रह्मभूत परमात्माकी चिन्तना मोक्षकेलिये करें जब ब्रह्मकी चिन्तना मुनि करते हैं तो वह ब्रह्म खींच अपनामें मिलाय लेताहै जैसे कि चुम्बक अपनेही विकार लोह को जब अपने सामने देखता खींचलेता है यम नियमादि अपने प्रयत्न हैं तिन के करने से जो धारणाशक्ति होती उसकेसाथ जो मनकी धारणा तिसका जब ब्रह्म के साथ संयोग हो अर्थात् जीवात्मा व ब्रह्मकी एकता को योग कहते जबतक योगी योग करही रहाहै तबतक योगयुक्त कहाता जब योगाभ्यास करते २ समाधि ज्ञान सिद्ध होजाता तो ब्रह्मोपलब्धिमान् कहाता है यदि योगयुक्त होनेकेसमय आलस्य व्याधि भ्रान्तिप्रमोद अश्रद्धा भ्रान्त्यादि विघ्नों से योगी का मन दूषित न हो तो तो ब्रह्मरूप होही जाता यदि करते २ इतना विघ्नों में भी फँसगया तो बहुत जन्मों के पीछे ब्रह्म में लीन होता और जिस योगी की योगसमाधि सिद्ध होगई वह तो उसी जन्म में मुक्त होजाता क्योंकि योगाग्नि से बहुत जन्मोंके बटोरे कर्म भस्म होजाते हैं योगीको चाहिये कि ब्रह्मचर्य रहे किसी जीवकी हिंसा न करे सत्य बोले चोरी न करे किसीका दान न ले इसभांति निष्कामहो अपने मनकी योग्यता को प्राप्त करे फिर ओंकार जपना शौच सन्तोष तपस्या करना जितेन्द्रिय होना ब्रह्ममें व अन्यमें मन नम्र करना ये योगीके लिये हैं ये १० यम नियमहैं जो कामनासे इनको करता उसको तो विशेष फलदेते जो निष्कामहो करता उसे मुक्ति देते यम व नियम सहित भद्रासनादि आसन जो योगशास्त्र में कहे हैं उनमेंसे एक किसी आसन पर बैठ जितेन्द्रिय हो योगीको योग करना चाहिये अभ्यासमें हृदयमें जो प्राण वायु है उसके वश्य करने को प्राणायाम कहते हैं उसके करने केसमय बीज मन्त्रभी जपना होताहै श्वास लेनेसे मुख नासिका से जो वायु निकलता उसे प्राण कहते व जो श्वाससे भीतर को पैठताहै उसे अपान वायु कहते इन दोनोंको थाँभकर धीरे २ छोड़ने को रेचक प्राणायाम कहते वायु के ऊपर को खींचने को पूरक व रोकने को कुम्भक प्राणायाम कहते इन प्राणायामों के अभ्यास करने में मङ्गलादि अनन्त के स्थूल रूपोंका ध्यान करना चाहिये

रूप रस गन्ध शब्दादि देखने खाने सूंघने सुननेआदि के लिये जो इन्द्रियों के मार्ग्ग खुले हैं उनको योगी को चाहिये अपने वश किये रहै इन्द्रियगण बड़े बलवान् हैं योगाभ्यास में इनका वश करनाही बड़ाभारी काम है जिस योगी के इन्द्रियगण वश नहीं वह योग को नहीं सिद्धकरसक्ता प्रथम प्राणायामों से पवन जीते फिर इन्द्रियों को वशीभूत करे तिसके पीछे चित्तको शुभ स्थानमें लगावे यह सुन खाण्डिक्य बोले हे महाभाग ! मनके ठहरने का निश्चलस्थान बताइये जहां ठहरनेमें फिर चलायमान न हो व अनेक दोष मिटजावें केशिध्वज बोले हे बह्मन् ! चित्तके आश्रय स्थान दो हैं एक मूर्त्तिमान् दूसरा अमूर्त्तिमान् व इस विश्वमें तीन प्रकार की भावना है एक ब्रह्मरूपिणी दूसरी कर्म्म रूपिणी तीसरी इन दोनोंसे मिली हुई ब्रह्मरूपिणी में ब्रह्म की भावना होती कर्म्म रूपिणी में कर्म्मकी जिसमें दोनों की भावना होती वह तीसरी है इनमें सनन्दनादि मुनीश्वर तो ब्रह्मभाव भावनामें तत्पर हैं अन्य देवादि स्थावर जगम कर्म्म भावना में तत्परहैं ब्रह्मा कश्यपादि ब्रह्मकर्मात्मिका भावना मानने जगतकी सृष्ट्यादि व आत्मतत्त्वबोधयुक्त वस्तुमें भाव भावनाहै जब तक ज्ञानकर्म्म विद्यमानहो तब यह भावनाहो कि यह विश्व परहै कि अन्य यह भेद जनक अच्छी रीतिसे विचार नहींआता तभीतक है नहीं तो ब्रह्म तो भेदरहित सत्तामात्र अगोचर वचनसे जाननेके योग्य ऐसाहै तिससे इसप्रकारके ब्रह्म की चिन्तना योगी कभी नहीं करसक्ता वही निर्विकार अगोचर अक्षर विष्णु का अज अक्षर परम रूपहै इसमें विश्व के स्वरूपकी वैलक्षणताहै जिससे निर्गुण निराकारादि होने से योगीलोग इसकी चिन्तना नहीं करसक्ते तिससे जो विश्व में भगवान् हरि के स्थूलरूपहैं उनकी चिन्तना करैं स्थूलरूप यहहै ब्रह्मा इन्द्र प्रजापति पवन वसु रुद्र सूर्य्य नक्षत्रगण ग्रह गन्धर्व यक्ष दैत्यादि सकल देवयोनि मनुष्य पशु पक्षी पर्वत समुद्र नदी वृक्ष अन्य सब प्राणी अन्य जो प्राणियों के हेतु प्रधान आदि द्विपाद बहुपाद पादहीन ये जितने हैं सब तीनों भावनाओं में मिलेहुये श्रीहरि के मूर्त्तस्वरूप हैं यही सब चराचर विश्व परब्रह्मस्वरूप विष्णुभगवान की शक्ति सहित स्थूलरूप है एक विष्णुशक्ति दूसरी क्षेत्रज्ञशक्ति तीसरी अविद्या कर्म्म शक्ति इनमें विष्णुही की विष्णुशक्ति कहते भावनाओं में मुख्यतीन में कर्म सब संसारमें व्याप्तहो क्षेत्रज्ञशक्ति सवाहै सब तापोंको भोगतीहै यह सेतगा है

स्वरूप कहते हैं सुनिये मनुष्योंका मनही बन्ध व मोक्ष का कारणहै फिर जब बन्धनमें परता तो विषय वासना में लीन रहता जब मुक्तहोजाता तो विषय वासना से दूर भागता जिससे चाहिये कि स्त्री पुत्रादि विषय वासना से मन खींच विज्ञानीलोग ब्रह्मभूत परमात्मा की चिन्तना मोक्षकेलिये करें जब ब्रह्मकी चिन्तना मुनि करते हैं तो वह ब्रह्म खींच आत्मामें मिलाय लेताहै जैसे कि चुम्बक अपनेही विकार लोह को जब अपने सामने देखता खींचलेता है यम नियमादि अपने प्रयत्न हैं तिन के करने से जो धारणाशक्ति होती उसकेसाथ जो मनकी धारणा तिसका जब ब्रह्म के साथ संयोग हो अर्थात् जीवात्मा व ब्रह्मकी एकता को योग कहते जबतक योगी योग करही रहाहै तबतक योगयुक्त कहाता जब योगाभ्यास करते २ समाधि ज्ञान सिद्ध होजाता तो ब्रह्मोपलब्धिमान् कहाता है यदि योगयुक्त होने केसमय आलस्य व्याधि अतिप्रमोद अश्रद्धा भ्रान्त्यादि विघ्नों से योगी का मन दूषित न हो तो तो ब्रह्मरूप होही जाता यदि करते २ इतना विघ्नों में भी फँसगया तो बहुत जन्मों के पीछे ब्रह्म में लीन होता और जिस योगी की योगसमाधि सिद्ध होगई वह तो उसी जन्म में मुक्त होजाता क्योंकि योगाग्निसे बहुत जन्मोंके बटोरे कर्म भस्म होजाते हैं योगीको चाहिये कि ब्रह्मचर्य्य रहे किसी जीवको हिंसा न करे सत्य बोले चोरी न करे किसीका दान न ले इसभांति निष्कामहो अपने मनकी योग्यता को प्राप्त करे फिर ओंकार जपना शौच सन्तोष तपस्या करना जितेन्द्रिय होना ब्रह्ममें व अन्यमें मन नम्र करना ये योगीके कामहैं ये १० यम नियमहैं जो कामनासे इनको करना उसको तो विशेष फलदेते जो निष्कामहो करना उसे मुक्ति देते यम व नियम सहित भद्रासनादि आसन जो योगशास्त्र में कहे हैं उनमेंसे एक किसी आसन पर बैठ जितेन्द्रिय हो योगीको योग करना चाहिये अभ्याससे हृदयमें जो प्राण वायु है उसके वश्य करने को प्राणायाम कहते हैं उसके करने के समय बीज मन्त्रभी जपना होताहै श्वास लेनेमें मुख नासिका से, जो वायु निकलता उसे प्राण कहते व जो श्वासमें भीतर को पैठताहै उसे अपान वायु कहते इन दोनोंको थाँभकर धीरे २ छोड़ने को रेचक प्राणायाम कहते वायु के ऊपर को खींचने को पूरक व रोकने को कुम्भक प्राणायाम कहते इन प्राणायामों के अभ्यास करने में सङ्कर्षणादि अनन्त के स्थूल रूपोंका ध्यान करना चाहिये

रूप रस गन्ध शब्दादि देखने खाने सूंघने सुननेआदि के लिये जो इन्द्रियों के मार्ग खुले हैं उनको योगी को चाहिये अपने वश किये रहे इन्द्रियगण बडे बलवान् हैं योगाभ्यास में इनका वश करनाही बड़ाभारी काम है जिस योगी के इन्द्रियगण वश नहीं वह योग को नहीं सिद्ध करसक्ता प्रथम प्राणायामों से पवन जीते फिर इन्द्रियों को वशीभूत करे तिसके पीछे चित्त को शुभ स्थानमें लगावे यह सुन खाण्डिक्य बोले हे महाभाग! मनके ठहरने का निश्चलस्थान बताइये जहां ठहरनेमें फिर चलायमान न हो व अनेक दोष मिटजावें केशिध्वज बोले हे ब्रह्मन्! चित्तके आश्रय स्थान दो हैं एक मूर्तिमान् दूसरा अमूर्तिमान् व इस विश्वमें तीन प्रकार की भावना है एक ब्रह्मरूपिणी दूसरी कर्म रूपिणी तीसरी इन दोनोंसे मिलीहुई ब्रह्मरूपिणी में ब्रह्म की भावना होती कर्म रूपिणी में कर्मकी जिसमें दोनों की भावना होती वह तीसरी है इनमें सनन्दनादि मुनीश्वर तो ब्रह्मभाव भावनामें तत्पर हैं अन्य देवादि स्थावर जंगम कर्म भावना में तत्परहैं ब्रह्मा कश्यपादि ब्रह्मकर्मात्मिका भावना मानने जगतकी सृष्ट्यादि व आत्मतत्त्वबोधयुक्त वस्तुमें भाव भावनाहै जब सबेग ज्ञानकर्म विद्यमानहो तब यह भावनाहो कि यह विश्व परहै कि अन्य यह भेद जनक अच्छी रीतिसे विचार नहीं आता तभीतक है नहीं तो ब्रह्म तो भेदरहित सत्तामात्र अगोचर वचनसे जाननेके योग्य ऐसाहै तिसमें इसप्रकारके ब्रह्म की चिन्तना योगी कभी नहीं करसक्ता उसी निर्विकार अगोचर आत्मा विष्णु का अज अक्षर परम रूपहै इसमें विश्वके स्वरूपकी विलक्षणताहै जिसमें निर्गुण निराकारादि होने से योगीलोग इसकी चिन्तना नहीं करसक्ते तिससे जो विश्व स स्थूलहै कि स्थूलरूपहै उसकी चिन्तनाकरे स्थूलरूप यहहै ब्रह्मा इन्द्र प्रजापति पवन वसु रुद्र सूर्य नक्षत्रगण ग्रह गन्धर्व यक्ष दैत्यादि सकल देवयोनि मनुष्य पशु पक्षी पर्वत समुद्र नदी वृक्ष अन्य सबप्राणी अन्य जो प्राणियों के हेतु जड़ चेतन एकपाद द्विपाद बहुपाद पादहीन ये जितने हैं सब तीनों भावनाओंसे मिलेहुये मूर्तिमान् के मूर्तस्वरूप हैं यही सब जगत्‌ विश्व परमब्रह्मस्वरूप विष्णुभगवान की शक्ति सहित स्थूलरूप है एक विष्णुशक्ति दूसरी क्षेत्रज्ञशक्ति तीसरी अविद्या कर्म शक्ति इनमें विष्णुही की विष्णुशक्ति कहते क्षेत्रज्ञशक्ति में यह जो है वे सब सब समाते भासते क्षेत्रज्ञशक्ति सत्ताके सब नाना भांति की यह क्षेत्रज्ञशक्ति-

सब प्राणियों में सदा बनी रहती वरन निर्जीवों में भी रहती है निर्जीव में थोड़ी से थोड़ीरहती वृक्षवल्यादि स्थावरों में निर्जीवों की अपेक्षा कुछ अधिक रहती सर्पादि जीवों में उनसे अधिक इनसे अधिक पक्षियों में इनसे अधिक वन्यपशुओं में इनसे भी अधिक ग्राम्यपशुओं में पशुओं से अधिक मनुष्यों में इनसे अधिक नाग गन्धर्व यक्ष देवताओं में देवों में भी इन्द्रमें सब से अधिक इन्द्रसे अधिक प्रजापति में प्रजापति से अधिक ब्रह्मामें ये सब रूप जिससे कि विष्णुही की शक्तिने आकाशवत् व्याप्तहैं तिससे विष्णुही के रूपहैं यह तो विष्णु का मूर्तस्वरूप हुआ दूसरा अमूर्त विष्णुस्वरूप जो सब में चैतन्यरूप सत्तामात्र विद्यमानहैं जिस विश्वरूप हरि में सब ये शक्तियां टिकी हैं वह हरिका महारूप है वही रूप सब शक्तिरूप देव दैत्य मनुष्यादिकों को अपनी लीला से बनाता है जो संसार के उपकारार्थ वह चेष्टाहै न कि कर्मों के भोगसे क्योंकि केवल सबमें वह चेष्टा व्याप्तरहती जीवों के साथ सुख दुःख नहीं सहती हे राजन्! योगी को चाहिये कि विश्वरूप भगवान् का यही रूप अपने विशुद्ध होने के लिये चिन्तना करें क्योंकि उससे सब पाप मिटते हैं जैसे पवन के चलने से अग्नि प्रबलहो सूखेघास को भस्म करता तिसीभांति योगियों के चित्तमें टिकेहुये श्रीविष्णु उनके सकल पापोंको भस्मकरते तिससे सब शक्तियों के आधाररूप विष्णुभगवान् के लीला स्वरूपमें चित्त की धारणा करनी चाहिये क्योंकि इसी का शुद्ध धारणा नाम है जब योगियोंका आत्मा शुभाश्रय चित्त सहित तीनों भावनाओं से अलग होजाय तो उनकी मुक्ति का कारणहो व अन्य जो चित्तके रहने के स्थान देवगण हैं वे कर्मयोनि होने के कारण अशुद्ध हैं यद्यपि सब देवादि भी भगवान् विष्णु के मूर्तिस्वरूप हैं न सब आश्रयों से निस्पृह हैं व मूर्त स्वरूपमें भी धारणा करनी चाहिये यह लिखआये हैं उसका प्रयोजन यह है कि निर्गुण में चित्त धारणा नहींहोसक्ती जिससे किसी न किसी प्रकार देवादि जो हरिके मूर्तस्वरूप हैं उन्हीं में हो वास्तवमें तो जिस प्रकारका हरिका मूर्तस्वरूप चिन्तनीयहै उसे हम बखानतेहैं सुनिये अनाधारमें धारणा नहीं होसक्ती इसलिये श्रीहरिका ऐसा रूप चिन्तनीय है जिसका कि प्रसन्न रमणीक मुख कमल समान नेत्र सुंदर कपोल बड़ाभारी लिलार कर्णों में समान अतिमनोहर कुण्डल शंखसे गान तीन रेखासहितगल श्रीवत्सचिह्न चिह्नित छाती नाभि उदर त्रिवलीसहित

मलम्ब चतुर्भुजधारित समान स्थान में गरुड़पीठपर बैठे कमल पुष्प हाथमें लिये जाघके ऊपरधरे निर्मल पीताम्बर ओढ़े मुकुट केयूर क्षुद्रघण्टिकादि धारण किये धनुष् शंख गदा खड्ग चक्र कङ्कण हाथमें विराजित ऐसे ब्रह्मस्वरूप हरिके मूर्त्तस्वरूपकी चिन्तना ध्यान समय योगीको तबतक ध्यान करतारहै जबतक धारणा बनाय दृढ़ न होजाय जबतक बोलते बैठे खाते पीते व स्वेच्छापूर्वक अन्य कर्म करते में वह रूपकी धारणा न मिटिजाय अर्थात् इनकामों के करनेमेंभी बनीरहै तबतक ध्यानमें अभ्यास करता रहै जब ऐसा होजाय तो धारणाको सिद्ध जाने तिसके पीछे शंख गदा चक्र धनुरादिरहित प्रशान्तचित्त कमलाक्ष की माला धारण किये यज्ञोपवीत पहिने भगवान् की मूर्त्ति की चिन्तना करै फिर जब इस मूर्त्ति में भी वैसीही धारणा होजाय तो मुकुट केयूरादि भूषणरहित भगवत् मूर्त्ति का स्मरण करै इस ध्यान में प्रत्येक अङ्गोंको अलग अलग ध्यावै जब सब अङ्गों का ध्यान आजावै व अन्यत्र किसी पदार्थ के देखनेको कोई इन्द्रिय न चलै तो निश्चल ध्यान समझै इसीको जब बनाय मन लागजावै हटाने से भी न हटै तो समाधि कहते हैं हे राजन्! विज्ञान परब्रह्म में आत्माको पहुँचानेवाला है व आत्मा पहुँचने के योग्य जबतक सब भावना नहीं छूटतीं आत्मा परब्रह्ममें नहीं लीन होसक्ता व भावना जानो विज्ञान से छूटतीही हैं इसीसे विज्ञान आत्माको ब्रह्म में पहुँचानेवाला है जब ब्रह्म के भावकी भावना में जीव ऐसा करते करते युक्त होजाता है तो ब्रह्म और उसमें कुछ अन्तर नहीं रहजाता यह जो जीव व ब्रह्ममें भेद जान पड़ताहै सो अज्ञानकृत है जब भेद उत्पन्न करनेवाला अज्ञान जातारहा तो ब्रह्म व आत्मामें कौन भेद करसक्ताहै हे खाण्डिक्य! संक्षेप व विस्तार दोनों रीतों से सब योग तुमसे कहे अब तुम्हारा कौन काम करें सो कहिये खा ण्डिक्यजी यह सुन बोले कि तुमने योगका अच्छा भाव कहा हमारा सब कुछ किया क्योंकि तुम्हारे उपदेशसे हमारे चित्तका सब मल नष्ट होगया जो कि हमने हमारा तुम्हारा यह कहाथा सो सत्य सत्य समीचीन नहीं है क्योंकि ऐसा भेदीहीलोग कहसक्ते अभेदी नहीं कहसक्ते अहम् मम इत्यादि ज्ञान अविद्यादी है इसमें सन्देह नहीं अविद्याके व्यवहारसे परमार्थ कहनेके योग्य नहीं क्योंकि परमार्थ कहनेतक वचन पहुँचही नहीं सक्ता जिससे है केशिध्वज! आप जाइ ये जो योग हमसे कहा इससे हमारे कल्याणार्थ आप लिये हुआ क्योंकि हम ने

मुक्ति होही जायगी पराशर मुनि बोले कि यह कह खांडिक्य ने बड़ी पूजा की उसे अङ्गीकारके राजा केशिध्वज अपने नगरको आये खांडिक्यका राज्य भी खांडिक्य को देदिया परंतु खांडिक्य ॥

चौ० सुतहिं राज्य दै आप सिधाये । योग सिद्धिहित बन कहँ आये ॥
तहँ हरिचरण कमल मन दीन्हा । आपनजन्म सफलकरि लीन्हा ॥ १ ॥
नियम यमादि कीन बहुभांती । शुद्धचित्त मे सब मल शांती ॥
निर्म्मल विष्णु ब्रह्ममहँ जाई । लीन भये नृप मतिहरषाई ॥ २ ॥
केशिध्वजहु मुक्ति हित नीके । निज सब कर्म्म मिटावत ठीके ॥
राज्यभोग कीन्हों सब भांती । तनु नहिं लगी कर्म्मकी पांती ॥ ३ ॥
सदा कीन कल्याण सुभोगा । क्षीणपाप भे गत सब शोगा ॥
तापरहित सिधिलही महीशा । जायमिल्यो तनु श्रीजगदीशा ॥ ४ ॥

आठवां अध्याय ॥

दो० कहब अष्टमाध्याय महँ पुनि संवाद मुनीश ॥
सर्व्वात्मतानुवाद अरु श्रवण पुराण फलीश ॥ १ ॥

पराशरमुनि बोले शाश्वत ब्रह्ममें जो आत्यन्तिक लीन होताहै यही तीसरा आत्यन्तिक प्रलयहै सो कह सर्ग प्रतिसर्ग वंश व मन्वन्तर वंशानुचरित सब तुमसे कहा और सब पापनाशक सकलशास्त्रों से विशेष पुरुषपुराण विष्णुके अर्थको कहनेवाला यह श्रीविष्णुपुराण तुम्हारे पूछने से तुमसे कहा अब अन्य जो कुछ पूछनाहो पूछिये यह सुन मैत्रेयजी बोले कि जो कुछ हमने पूछा आपने सब कहा व हमने सब भक्तिपूर्वक सुना अब कुछ भी हमको पूछना नहीं रहा सब सन्देह रहित ज्ञान तुम्हारे प्रसादसे हमको मिला व संसार की उत्पत्ति पालना विनाश सब जाना सृष्टि स्थिति विनाश सब चार २ प्रकारके सुने विष्णुशक्ति क्षेत्रज्ञशक्ति अविद्याकर्म्मशक्ति ये तीन शक्तियां सुनी सब प्रकारके विज्ञान व सब भावना भी सुनीगई जैसे यह संसार विष्णु से बाहर नहीं तिसी प्रकार हमने जो कुछ आपसे जाना उसके बाहर अब कुछ नहीं है जिससे कि वर्णाश्रमादिकों के सब धर्म्म सुने इससे अब सब सन्देह जातेरहे व कृतार्थ हुये प्रवृत्ति निवृत्ति सब कर्म्म भी आपके बताने से हमने जाना अब कृपा कीजिये

कुछ भी पूछना नहीं रहा जो कि इस पुराण के कहने के लिये हमने आपको परिश्रम दिया सो क्षमाकीजिये क्योंकि पुत्र व शिष्यमें कुछ अन्तर नहींहोता पराशरमुनि बोले यह जो वेदसम्मित पुराण तुमसे हमने कहाहै इसके सुनने से सब दोषों से उठी पापराशि नष्टहोजाती है इसमें सर्ग प्रतिसर्ग वंश मन्वन्तर वंशानुचरित जो कि पुराणके ५ लक्षणहैं सब तुमसे कहे इस पुराणमें हम ने देवता दैत्य गन्धर्व सर्प राक्षस यक्ष विद्याधर सिद्ध अप्सरा व्रतितपस्वी मुनि लोगों के चरित्र ब्राह्मणादि ४ वर्ण व विशेष २ मनुष्यों की कथा पृथिवी के पुण्य देश प्रदेश पुण्य नदियां समुद्र महापुण्यदायक पर्वत भरतादि बुद्धिमानोंके चरित्र वर्ण धर्मादि धर्म सब वेदोंकी शाखा जिनके सुनने से पुरुष तुरन्त ही सब पापों से छूटजाताहै ये सब इसमें कहेगये हैं व संसारकी उत्पत्ति पालन नाशके करनेवाले नाशरहित सर्वभूतमय सर्वात्मा श्रीभगवान् हरिका वर्णन सब ग्रन्थ में है जिसका नाम पुरुष अवशहोके भी लेनेसे तुरन्त सब पापोंसे छूट जाताहै जैसे सिंहके शब्दमात्रसे भेड़िया लोमड़ीआदि जीव स्थान छोड़ भाग जाते हैं फिर जिसके नामोंका भक्तिसहित कीर्त्तन सब पापों को कैसे नाशकरता जैसे अग्नि सब लोहा सोना चांदीआदि धातुओंका मल दूरकरताहै फिर एक बार भी जिसका नाम स्मरण करनेसे नरकके दुःख देनेवाले कलियुगकाभी पाप तुरन्त नाश होजाताहै व ब्रह्मा इन्द्र रुद्र आदित्य अश्विनीकुमार पवन किन्नर वसु साध्य विश्वेदेवादि देवता यक्ष राक्षस सिद्ध दैत्य गन्धर्व दानव अप्सरा तारागण नक्षत्र सूर्यादि ग्रह सप्तर्षिआदि स्थानों के स्वामी व स्थान व ब्राह्मणादि मनुष्य पशुगण मृगगण सर्प वृश्चिकादि पक्षी भैनादि वृक्षरूपादि वन पर्वत सागर नदी पाताल पृथिवी शब्द रस रूपादि सहित यह सब ब्रह्माण्ड व सब जगत् जिस विष्णुमें अतीव सूक्ष्म ज्ञान पाने जैसे सुमेरुपर्वत में सब छोटे २ परिमाणु विदित होते सो विष्णु सर्वरूप सब जाननेवाले सर्वस्वरूप रूपरहित सब पापनाशक इस पुराण में कहेगये हैं॥

चौ॰ अश्वमेध अवभृथादि नहाई। जो फलपावत नर समुदाई॥
सो फल यह पुराणसुनिलेई। पापन जाथिन भस्मकरेई॥ १॥
जो प्रयाग पुष्कर कुरुक्षेता। अर्बुद महँ उपवास किये॥
पावतफल सो सुनत पुराना। हरतनरक अपने मनमाना॥ २॥

जो फल वर्ष एकलगि कीन्हे। अग्निहोत्र होयत मंनदीन्हे॥
सो फल लहत पुराण सुनेते। सुनि निजमनमहँ फेरि गुनेते॥ ३॥
ज्येष्ठशुक्लद्वादशि महँ जोई। मथुरा हरिदर्शन फल होई॥
ज्येष्ठ मास शुचि पक्षहि माहीं। जो यमुना जल माहिं नहाहीं॥ ४॥
अरु पूजत अच्युत चित लाई। मथुरा अश्वमेघ फल पाई॥ ५॥

जब कोई लोग ज्येष्ठमासके शुक्लपक्ष में मथुराजी में जाय यमुना स्नान करते व अपने पितरों को नरकसे निकालि, स्वर्गादि को पठाते तो उन्हें देख अन्य लोगोंके पितर कहने लगते कि कोई हमारे कुलमें उत्पन्नहो मथुराजी में आय यमुना नहाय व्रत रह हरिकी पूजा करेगा कि हमलोग भी नरकसे निकल स्वर्गवासी होंगे इससे जो कोई ज्येष्ठमास के सितपक्ष में यमुना स्नान कर तर्प्पणादि करता व हरिदर्शन करता व पिण्डदान देता उसके पितर धन्यहैं इसलिये उस समय में मथुरा में जाय हरिदर्शन कर यमुना नहाय तर्प्पणादि करने से जो पुण्य होतीहै वह इस पुराण के सुननें से मिलतीहै यह पुराण संसारी दुःखों से डरेहुये लोगोंकी रक्षा करनेवाला दुस्स्वप्न विनाशनेहारा सब दुःख मिटानेवाला है इस विष्णुपुराण को नारायणने ब्रह्मासे ब्रह्माजीने ऋभुसे कहा ऋभुने प्रियव्रतसे उन्होंने भागुरिसे भागुरिने स्तम्भमित्रसे तिसने दधीचि पुत्र से तिसने सारस्वतसे सारस्वतने भृगुसे भृगुने पुरुकुत्ससे तिन्होंने नर्म्मदा से नर्म्मदाने धृतराष्ट्रनाम नागसे व अपूरणनाम नागसे तिन दोनोंने नागराज वासुकि से कहा वासुकि ने वत्ससे वत्सने अश्वतरसे तिसने कम्बल से कम्बल ने एलापत्र से तब वेदशिरामुनि पाताल को गये वहांसे पढ़आये यहां उन्होंने प्रमिति से कहा प्रमिति ने जातूकर्ण्य से कहा जातूकर्ण्य ने बहुत पुण्यात्माओंसे कहा वशिष्ठजी के वरदान से हमको भी आयगया हमने जैसाका तैसा सब पुराण तुमसे कहा तुमभी यह पुराण कलियुग के अन्तमें शिनीकसे कहोगे जो कोई परमगुह्य कलिपापनाशन यह पुराण सुनेगा वह सब पापों से छूटेगा जो कोई इस पुराण को प्रतिदिन सुनताहै वह जानो पितर यक्ष मनुष्य व सब देवोंकी स्तुति करचुका जो जन इसके १० अध्याय सुनता वह कपिलागाय देने का फल पाता है व जो कोई सर्व्व स्वरूप सर्व्वमय सब जगत्के आधार आत्माके आश्रयभूत ज्ञानस्वरूप अन्त आदि रहित जानने के योग्य सब

देवों के हितकारी ऐसे अच्युत भगवान् को मन में स्थापित के यह सम्पूर्ण पु-
राण विधिपूर्वक सुनाता वह सर्वाङ्ग पूर्ण अश्वमेध यज्ञका फल पाता है इसमें
कुछ सन्देह नहीं जिस विष्णुपुराण में चराचरके गुरु ब्रह्मज्ञानमय सकल सं
सारके आदि मध्य अन्त में रहनेवाले श्रीभगवान् विष्णु कहेगये हैं तिस परम
पवित्र पुराण के सुनने व भक्तिसहित पढ़ने से पुरुष जो फल पाता वह समस्त
भुवन भवनमें नहीं है क्योंकि इसके सुननेसे तो एकान्तसिद्धिरूप हरिही फ-
लरूप मिलते फिरहरिके लक्षण तो भुवन में दुर्लभही हैं जिस अच्युत में बुद्धि
लगानेसे पुरुष नरकको नहीं जाता व जिसके चिन्तनमात्र से स्वर्ग भी मि-
लता व जिसमें जीव मन लगाने से ब्रह्माके भी लोकको अतिलघु समझता
व जो विमलमति पुरुषोंके चित्तमें स्थितहो मुक्तिदेते व आप नाशरहित है
तिन अच्युतके कीर्त्तन करने में जो पाप नाशहो तो कौन आश्चर्यकी बातहै
फिर जिस हरिको यज्ञ जाननेवाले कर्मकाण्डीलोग यज्ञके ईश्वर समझ यज्ञों
से पूजते व जिसको ज्ञानीलोग ब्रह्ममय कार्य्य कारणसे भिन्न ध्यावते हैं व
जिसको पाय जीवात्मा फिर न उत्पन्न होता न मरता न बढ़ता न घटता न
कार्य्य कारण होता इससे हरिको छोड़ और कौन सुननेके योग्य है जो हरि
पितरोंके रूपसे विधिपूर्वक होम करने से कव्य भोजन करने व देवस्वरूपीहो
हव्य क्योंकि आदि मध्य अन्तहीन स्वधा स्वाहारूप वही हैं व जिस सर्वश-
क्तिके स्थान ब्रह्मरूप में मानीलोगों के मान निष्ठाकेलिये नहीं समर्थहोते सो
हरि कानोंमें परतेही सब पाप हरते हैं इससे वही सुननेके योग्यहैं जिस हरिका
न तो अन्त है न उत्पत्ति न वृद्धि क्योंकि वह परिणामहीनहै कभी रूपान्तर
उसका नहीं होता न कभी उसका नाशही होता क्योंकि वह सकल विकार
रहित ब्रह्मस्वरूपहै तिस पुरुषोत्तमके नमस्कारहै फिर जो तिस ईश्वरके पीछे
गुणात्मक प्रधानके गुणोंका भोगना व जो एकही शुद्धस्वरूप है परन्तु आदि
रूप धारण करने से बहुतप्रकार व अशुद्धरूप जान पड़ताहै न ीं तो वह तो
परमज्ञानी सब जीवोंका कर्त्ता है तिस नाशरहित पुरुषोत्तमके प्रणाम है फिर
ज्ञानकी प्रवृत्ति व तिसके नियमोंके कर्त्ता सबको भोग देनेमें समर्थ रजोगुण
सत्त्वगुण तमोगुणरूप रूपरहित होते हुवानेके कारण अपने आप स्थितस्व-
रूप सदा एकरस श्रीहरि के वन्दना करते हैं॥

भागवत को अच्छीतरह से समझनेका है यह पुस्तक प्रत्येक विद्वान् के पास रहनी चाहिये क्योंकि भागवत बड़ा कठिन पुराण है बिना ऐसे सहज भाषा टीका के सबको श्लोकार्थ नहीं समझ पड़ता है इसका मूल बीचमें और भाषा टीका नीचे ऊपर रखकर अत्यन्त शुद्धता से पत्रेनुमा छपाहै कागज़ हिनाई है और छापा पत्थर है ॥

बृहन्नारदीयपुराण क़ी० ।≈)

पण्डित देवीसहायशर्मा नारनौलनिवासीकृत भाषा है-जिसमें श्रीनारदजी और सनत्कुमार संवादद्वारा श्रद्धाभक्ति निरूपण, भगवद्भक्ति माहात्म्य वर्णन, उत्तम तीर्थोंका निरूपण, सगरवंशीय सौदास राजाकी कथा, श्रीगङ्गाजी की उत्पत्ति, राजा बलिका वृत्तान्त दानविधि का निरूपण व्रतों और श्राद्धों का विधान, तिथिनिर्णय, प्रायश्चित्तविधान, यममार्गका निरूपण संसार के दुःखोंका कथन, मोक्षोपायवर्णन, वेदमाली और तिसके पुत्र यज्ञमाली वा सुमालीकी कथा और विष्णुजी के चरणोदक का माहात्म्य इत्यादि कथा वर्णितहैं ॥

सुखसागर क़ी० ७) पु०

सुखसागरों का तर्जुमा पञ्जाब के रहनेवाले बाबू मक्खनलालजी ने कियाहै इस सुखसागर में बहुतही मोटेहरूफ़ और अत्यन्त बड़ी उम्दा तसवीरें इत्यादि सब सामान हैं कि जिसकी तारीफ़ नहीं होसक्ती देखनेही से हाल मालूम होगा ॥

गणेशपुराण भाषा क़ी० २॥) पु०

इसको मुन्शीनवलकिशोरजी की आज्ञानुसार नारनौलनिवासी पण्डित देवीसहायजी ने संस्कृतसे श्लोक २ का देशभाषा में उल्था कियाहै इसमें गणेशजीका सम्पूर्ण चरित्र विस्तार पूर्वक व और भी अनेक विषय वर्णितहैं ॥

श्रीवाराहपुराण पूर्वार्द्ध व उत्तरार्द्ध क़ी० १) पु०

जिसका जयपुरनिवासि पण्डित माधवप्रसादजी ने मुन्शीनवलकिशोरजी के व्यय व आज्ञा से देवनागरी में भाषा किया और पण्डित दुर्गाप्रसाद और पण्डित सरयूप्रसादजी ने शुद्धकिया है इसमें श्रीभगवान् वाराह नारायण ने धरती से चौबीस हजार श्लोकों में धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष सिद्धहोने के लिये इतिहाससंयुक्त कथायें वर्णन की हैं ॥

गरुड़पुराण क़ी० ≈)॥

इसमें १४ अध्याय अक्षरों के बीच में मूल और नीचे ऊपर भाषा टीका रखकर छापागया है जिसमें सम्पूर्ण प्रेतही का कर्म है और प्रेतही की सम्पूर्ण षोडशी सपिण्डन शान्ति इत्यादि इत्यादि क्रिया भी विस्तारपूर्वक वर्णित है ॥

नरसिंहपुराण भाषा क़ी० ।≈)

भाषा पण्डित महेशदत्तशुक्ल कृत-इस में संस्कृत नरसिंहपुराण से प्रतिश्लोक अन्वयपूर्वक प्रति पदका टीका अति सरल व मधुर, भाषामें कियागया है-जिस में सृष्टि वर्णन, सर्ग रचना, सृष्टिरचना प्रकार, पुत्रजन्मोपाख्यान, मार्कण्डेय मुनिका तपोबलसे मृत्युका जीतना, यमगीता, यमाष्टक वर्णन मार्कण्डेय चरित्र, यमीयम संवाद ब्रह्मचारी व पतिव्रता संवाद, एक ब्राह्मण का इतिहास जिसने परोक्षत्व कृष्णजीका ध्यानकर देहत्यागकिया और व्यासजी का शुक से संसाररूपी वृक्षको वर्णन करना शिव व नारद जरके भवतरने की क्रिया का वर्णन और मंत्र का मन्त्र माहात्म्य इत्यादि अनेक विषय संयुत है ॥